श्रीमद्भागवत

हिन्दी टीका सहित

भाग : २

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते अष्टमस्कन्धप्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

गजेंद्र
हरि
दैत्य
समुद्र मंथन
देव
मंदर पर्वत
चतुर्दश रत्नें
मोहिनी
अमृतबांटते
कश्यप
वामन
बली
वामन
मत्सावतार

सोरठा—अहो विहारी लाल, भयहारी आनँद भवन। जयति जयति नँदलाल, गोपेश्वर राधारमण ॥ १ ॥ हे व्रजेश व्रजराज, व्रजवल्लभ व्रजलाडिले। राखी व्रजकी लाज, धर करपर गिरिवर हरी ॥ २ ॥ अहो लड़ैते लाल, कीजै कृपायतन। गोपसखा गोपाल, गोपी वल्लभ गोपपति ॥ ३ ॥ जटाजूट अर्द्धंग, संग विराजित रातदिन। कुन्दइन्दुसम अङ्ग, करहु दया दायासदन ॥ ४ ॥ दोहा—स्वायंभुव स्वारोचिष, उत्तम तामस चार। मनुओंका वर्णन करूँ, प्रथमाध्याय विचार ॥ महाराज परीक्षित् योगिवर श्रीशुकदेवजीसे पूछने लगे कि हे भगवन्! स्वायम्भुव मनुके वंशका वृत्तान्त तो हमने विस्तार सहित सुना, इस मन्वन्तर में ही मनुकी कन्याओंमें विश्वके रचनेवाले मरीचि आदि पुत्रपौत्रादिरूपसे उत्पन्न हुए थे, अब आप कृपा करके मनु लोगोंका वृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! उन सब

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ स्वायंभुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ॥ यत्र विश्वसृजां सर्गो मनून्न्यान्वदस्व नः ॥ १ ॥ यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ॥ गृणन्ति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥ २ ॥ यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् भगवान्विश्वभावनः ॥ कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवोऽस्मिन् व्यतीताः षट् कल्पे स्वायंभुवादयः ॥ आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च संभवः ॥ ४ ॥ आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ॥ धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥ ५ ॥

मन्वन्तरोंमें हरिका महत्तर जन्म और कर्मका विवरण जो पंडित लोग कहा करते हैं, मैं उनके सुननेकी इच्छा करता हूँ, आप सब मुझसे कहिये ॥ २ ॥ भगवन् विश्वभावनने पिछले-पिछले मन्वन्तरोंमें जो-जो चरित्र किये और आगेको जो-जो करेंगे और वर्तमान मन्वन्तरमें जो कुछ लीला करते हैं वे सब आप कहें ॥ ३ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस कल्पमें स्वायम्भुव मनु आदि छः मनु हैं, उनमेंसे स्वायम्भुव मनु, कि जिससे देवता आदिकोंकी उत्पत्ति हुई, उनका वृत्तान्त हम तुमसे कह चुके हैं॥ ४ ॥ भगवान् विष्णुजीने धर्मज्ञानोपदेशके लिये स्वायम्भुव मनुकी आकूती और देवहूती नामक दो बेटियोंमें कपिल और यज्ञरूप जन्म ग्रहण करके उनके पुत्रत्वको प्राप्त

हुए ॥ ५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवान् कपिलजीका कार्य प्रथम वर्णन कर आये हैं और यज्ञ भगवान्ने जो कुछ किया वह पीछे कहेंगे ॥ ६ ॥ शतरूपाके पति प्रभु (मनु) कर्मयोगसे विरक्त हो, राज्य भोगको छोड़ तप करनेके लिये अपनी स्त्रीको साथ ले वनमें चले गये ॥७॥ उन्होंने सुनन्दा नदीके किनारे एक पांवसे खड़े होकर सौ वर्षतक निरंतर अति कठोर तप करके विस्मितके समान हो यह वक्ष्यमाण वचन कहे थे ॥ ८ ॥ मनुजीने कहा था कि स्वतः चित्स्वरूप और इसी करके प्रयुक्त जो चिदात्मा हैं, उससे विश्व चैतन्य होता है, परन्तु यह विश्व उसको सचेतन करनेको समर्थ नहीं है और इस पुरुष (जीव) के शयन करनेपर जो जाग्रत् अर्थात् साक्षिस्वरूप वर्तमान रहते हैं, क्या आश्चर्य है कि यह जन उसको नहीं जानता परन्तु वे इसको जानते हैं ॥ ९ ॥ लोकमें जो कुछ प्राणियोंके सहित दिखायी देता है, वह

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ॥ आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥६॥ विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ॥ विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥७॥ सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् ॥ तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥८॥ मनुरुवाच ॥ येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ॥ यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥ ९ ॥ आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किंचिज्जगत्यां जगत् ॥ तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १० ॥ यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ॥ तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥ ११ ॥

सब ही ईश्वरकी सत्ता और चैतन्य शक्तिसे व्याप्त है, इसलिये ईश्वरने जो कुछ दान किया है, उससे ही सब भोगोंको भोगो और अपने लिये पराये दानकी वांछा न करो अथवा और किसीके पास धन है ही क्या जो उसकी वाञ्छा करोगे ॥ १० ॥ इसके अतिरिक्त वह परमात्मा सबको देखता है परन्तु लोक अथवा किसीके भी नेत्र उसको नहीं देख सकते क्योंकि वह नेत्रादिकका विषय नहीं है, परन्तु जैसा घटादिके नाशसे देवदत्तादिका तद्विषयक चाक्षुषज्ञान नाशको प्राप्त नहीं होता वैसे आकारोंकी उत्पन्न हुई वृत्ति ही नाशको प्राप्त होती है । स्वतः सिद्ध ज्ञानका विनाश नहीं होता, क्योंकि प्रकाश्य वस्तुके विनाशसे सूर्यके प्रकाशका नाश कभी नहीं होता, इसलिये सर्व भूतोंके अन्तर्यामी

असंग उन ईश्वरका भजन करो ॥११॥ जिसका आदि, अन्त, मध्य, अपना, पराया, भीतर और बाहर कुछ नहीं है, परन्तु जिससे विश्वके यह सब आदि, अन्त प्रभृति होते हैं और यह विश्व जिसका स्वरूप है, वही सत्य और परिपूर्ण ब्रह्म है ॥१२॥ वही ईश, अज, सत्य, स्वयं-प्रकाश और निर्विकार है, यह विश्व उसीका शरीर है, उसके नाम बहुत हैं, वह अपनी मायासे विशेष जन्मादि विधान करते और नित्य सिद्ध विद्याके हेतु इस मायाको त्यागकर निष्क्रिय हो रहे हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे ईश्वर कर्म करके फिर उनको छोड़ कर्मरहित होनेसे ऋषिलोग भी अकर्मार्थ अर्थात् मुक्तिके लिये पहले यत्न करते हैं क्योंकि जो पुरुष चेष्टा करते हैं, वे प्रायः निःचेष्टताको पाते हैं ॥ १४ ॥ चेष्टाकारी पुरुष कर्मोंके द्वारा घिर जाते हैं, अथवा वे कोषाकार कीड़ेके समान बंधनसे बँध जाते हैं। इस प्रकारकी शङ्का नहीं की जा सकती, क्योंकि

न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः ॥ विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत् ॥ १२ ॥ स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ॥ धत्तेऽस्य जन्माद्यजयाऽऽत्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥ १३ ॥ अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे ॥ ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥ १४ ॥ ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते ॥ आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम् ॥ १५ ॥ तमीहमानं निरहंकृतं बुधं निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ॥ नॄन् शिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् ॥ दृष्ट्वाऽसुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन् क्षुधा ॥ १७ ॥

भगवान् ईश्वर चेष्टा करते हैं और उसमें आसक्त नहीं होते इसलिये जो पुरुष उनकी अनुवृत्ति करते हैं वे भी आत्मलाभ होनेसे चरितार्थ हो जाते हैं और कभी उसमें आसक्त नहीं होते ॥ १५ ॥ इसलिये जो राम कृष्णादि नाना अवताररूप निज मार्गमें भली भांति अवस्थित हो वेदोक्त कर्माचरण करते हैं और स्वयं पूर्ण, अहंकाररहित, स्वयं प्रभु हैं, इस कारण किसी दूसरेसे वे नियुक्त नहीं होते और जो अखिलधर्मका प्रचार करनेके लिये अपने आचारसे मनुष्योंको शिक्षा देते हैं, हम उन्हीं ईश्वरकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! शतरूपाके पति यज्ञमें समाधि लगाकर उपनिषद्के मन्त्र उच्चारण करते थे, असुर और राक्षसगण उनको

देखकर अवशके समान समझ भूख लगनेसे उनको खानेको दौड़े ॥ १७ ॥ वह यज्ञ स्वयं सर्वगत हरि उन असुर और राक्षसोंका ऐसा कर्म
जानते ही अपने पुत्र याम नामक देवताओंके साथ उस (दैत्य) को मारकर आप स्वयं इन्द्र होकर स्वर्गका पालन करने लगे * ॥१८॥
हे राजन् ! अग्निका पुत्र स्वारोचिष दूसरा मनु हुआ। उसके द्युमत्, सुषेण और रोचिष्मान् आदि पुत्र हुए। इस मन्वन्तरमें रोचन नामक
इन्द्र और तुषितादिक देवता हुए और ऊर्जस्तम्भादि ब्रह्मवादी सप्त ऋषि हुए ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ इस मन्वन्तरमें वेदशिरा ऋषिके तुषिता

तांस्तथाऽवसितान् वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः ॥ यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाऽशासत्त्रिविष्टपम् ॥ १८ ॥ स्वारोचिषो द्वितीय-
स्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् ॥ द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥ १९ ॥ तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासीद्देवाश्च तुषिता-
दयः ॥ ऊर्जस्तम्भादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥ ऋषेस्तुवेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत् ॥ तस्यां जज्ञे
ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः ॥२१॥ अष्टाशीति सहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः ॥ अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्म-
चारिणः ॥२२॥ तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ पवनस्सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप॥ २३ ॥

नाम जो पत्नी थी, उसके गर्भमें इस ऋषिके विभु नामसे विख्यात भगवान् उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ इन विभुका चरित्र कहते हैं तुम सुनो।
जब इन विभुने कौमार ब्रह्मचारी व्रत ग्रहण किया, तब अट्ठासी सहस्र (८८०००) व्रतधारी मुनियोंने उनके निकट व्रतकी शिक्षा पायी
॥ २२ ॥ प्रियव्रतका पुत्र तीसरा उत्तम नाम मनु हुआ, उसके पुत्र पवन, सृञ्जय और यज्ञहोत्रादि हुए ॥ २३ ॥

---

* शंका—स्वायम्भुव मनुके खानेके लिये जो राक्षस दौड़े, उनको मारकर त्रिविष्टपको भगवान्ने शिक्षा दी, वह त्रिविष्टप कौन था ?

उत्तर—चोरी, जारी, जुआ इन तीन दुष्ट कर्मोंसे जो तीनों लोकोंकी रक्षा करे उसका नाम त्रिविष्टप है। त्रिविष्टप नाम शास्त्रमें इन्द्रका है और दूसरा अर्थ यह कि काम, क्रोध, लोभ इन तीन शत्रुओंसे जो त्रिलोकीकी रक्षा करे उसका नाम भी त्रिविष्टप है और सन्तोषका भी नाम त्रिविष्टप है क्योंकि काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंका नाश सन्तोषके सिवाय और दूसरा कोई नहीं कर सकता, इन्द्र तो अभिमानके समुद्रमें डूबा हुआ था, वह किसीको भी शिक्षा नहीं मानता था, इसलिये यज्ञभगवान्ने सन्तोषकी शिक्षा दी, कि भाई ! तुम काम, क्रोध और लोभ इन दुष्टोंसे तीनों लोकोंकी रक्षा करो। यहां त्रिविष्टप नाम सन्तोषका है।

इस मन्वन्तरमें वसिष्ठजीके पुत्र प्रमदादि सप्त ऋषि हुए। सत्य, देवश्रुत और भद्र ये देवता हुए और सत्यजित इन्द्र हुए ॥२४॥ और इसी मन्वंतरमें धर्मकी सूनृता नामक भार्यासे भगवान् पुरुषोत्तम सत्यव्रत गणोंके साथ उत्पन्न हो सत्यसेनके नामसे विख्यात हुए ॥ २५ ॥ उन्हीं सत्यसेनने इन्द्रके मित्र होकर झूठ बोलनेवाले दुःशील, असत्, यक्ष, राक्षस और भूतद्रोही प्राणियोंको मार डाला ॥ २६ ॥ तीसरे मनु उत्तमके भ्राता तामस नामक चौथे मनु हुए। उनके पृथु, ख्याति, नरकेतु आदि दश पुत्र हुए ॥ २७ ॥ इस मन्वंतरमें सत्यक, हरि और वीर नामक देवगण व त्रिशिख नाम इंद्र और ज्योतिर्धामादि सप्तऋषि हुए ॥ २८ ॥ हे राजन्! तामस मन्वंतरमें ऊपर कहे हुए सत्य-

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयः ॥ सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥ २४ ॥ धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥ २५ ॥ सोऽनृतव्रतदुश्शीलानसतो यक्षराक्षसान् ॥ भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत् सत्यजित्सखः ॥ २६ ॥ चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ॥ पृथुः ख्याति-र्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥ २७ ॥ सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ॥ ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषय-स्तामसेऽन्तरे ॥ २८ ॥ देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप ॥ नष्टाः कालेन यैर्वेदाः विधृताः स्वेन तेजसा ॥ २९ ॥ तत्रापि जज्ञे भगवान् हरिण्यां हरिमेधसः ॥ हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात् ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ बादरायण एतत्ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥ ३१ ॥ तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ॥ यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान् गीयते हरिः ॥ ३२ ॥

कादिके अतिरिक्त अतिपराक्रमी वैधृतिगण भी देवता हुए थे, जो कि विधृतिके पुत्र थे, हे महाराज! जब कालके वश होकर वेद नष्ट हो रहे थे, तब इन्हीं सब देवताओंने अपनेअपने तेजसे उन सबको धारण किया था ॥ २९ ॥ जिन्होंने ग्राहके मुखसे गजेन्द्रको छुड़ाया था, उन भगवान् विष्णुने भी हरि मेधाकी हरिणी नामक स्त्री के उदरसे इसी मन्वंतरमें जन्म लिया और वह हरि नामसे विख्यात हुए थे। ॥ ३० ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे व्यासनन्दन! ग्राहद्वारा पकड़े हुए गजेंद्रको भगवान् हरिने किस प्रकारसे छुड़ाया था, उस कथाको मैं आपके मुखसे विस्तार सहित सुनना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन्! जिसमें उत्तमश्लोक भगवान् हरि गाये जाते हैं, वह कथा अतिशय

पवित्र, धन्य, शुभदायक और मंगलकारी है ॥३२॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मण ! जब इस प्रकार प्रायोपविष्टव्रत धारणकर राजा परीक्षित्‌ने योगिश्रेष्ठ शुकदेवजीसे भगवत् कथा कहनेके लिये प्रार्थना की,तब उन व्यास पुत्रने श्रवण करनेवाले मुनियोंकी सभामें राजा परीक्षित्‌के वचनोंपर आनन्द प्रकट करते हुए कथा आरम्भ किया ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां मन्वन्तरानुवर्णने गजेन्द्रोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ दोहा-दूजेमें करि करिनि युत, जलमें करत विहार । जब पकड़ो गज ग्राहने, तब गज करी पुकार ॥ श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजन् ! त्रिकूट नामक एक प्रधान पर्वत है, वह पर्वत अतिशय श्रीमान् और चारों ओर क्षीरसागरसे

सूत उवाच ॥ परीक्षितैवं स तु बादरायणिः प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ॥ उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥३३॥ इति श्रीभा० महा० अष्ट० मन्वन्तरानुचरितादिप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ॥ क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥ तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् ॥ दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥ २ ॥ अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥ ३ ॥ स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात् पयऊर्मिभिः ॥ करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥ ४ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः ॥ किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥ ५ ॥

घिरा हुआ है और दश सहस्र योजन ऊँचा है ॥ १ ॥ और चारों ओर उसका विस्तार भी दशसहस्र योजनका है। वह पर्वत अपने चांदी, सोने और लोहेके तीन बड़े-बड़े शृगोंसे समुद्र और सब दिशाओंको शोभायमान कर रहा है,इसी लिये उसका नाम त्रिकूट हुआ है ॥ २ ॥ त्रिकूट पर्वतके और दूसरे शिखर अनेक भाँतिके रत्न और धातुओंसे चित्रित हैं । उन शिखरोंसे और विविध भाँतिकी लता, बेल, झाड़ी और वृक्षोंसे झरनोंके गिरते हुए जलके शब्दसे सब दिशाओंकी शोभा हो रही है ॥ ३ ॥ और जलकी तरंगसे इस पर्वतका मूलभाग धुलनेसे पलाशके समान रंगवाली मरकत मणिसे निकटकी भूमि मानो श्यामवर्ण हो रही है ॥ ४ ॥ इस पर्वतकी कन्दरायें क्रीड़ा करते हुए

सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, बड़े-बड़े नाग, किन्नर और अप्सराओंसे सदा ही परिपूर्ण रहती हैं ॥ ५ ॥ इस पर्वतकी जो कंदरायें ऊपर कहे हुए किन्नर इत्यादिकेसंगीत शब्दसे शब्दायमान हैं उनमें इसी स्थानके रहनेवाले मदगर्वित सिंहोंके झुंड दूसरे सिंहोंकी आशंकासे उस शब्दको न सहकर गर्जन करते हैं ॥ ६ ॥ और इस पर्वतकी सब गुफायें विविध भांतिके बनैले पशुओंके समूहसे सदा भरपूर और उनके व्याप्त रहनेसे मानो स्वयं (आप) ही सज रहीं हैं । त्रिकूट पर्वतके ऊपर जो देवता लोगोंकी फुलवाड़ियाँ हैं उनमें भांति-भांतिके चित्रविचित्र पुष्पोंके वृक्ष लग रहे हैं, उनपर बैठे हुए रंगरंगके विहंग निरंतर मधुर-मधुर बोलियाँ बोल रहे हैं ॥ ७ ॥ यह पर्वत अनेक निर्मल नदी और सरोवरोंसे भूषित है, उन सब नदी और सरोवरोंके किनारे मणिमय बालू बिछा हुआ है । देवताओंकी स्त्रियाँ जब उस नदी और

यत्र सङ्गीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ॥ अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥ ६॥ नानारण्यपशुव्रातसंकुलद्रोण्यलंकृतः ॥ चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥ ७ ॥ सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः ॥ देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैर्युतः ॥८॥ तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥ उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥ सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः ॥ ९ ॥ मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ॥ चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ॥ १० ॥ क्रमुकैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥ मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ॥ ११ ॥ अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥ पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः ॥ १२ ॥

सरोवरोंमें स्नान करती हैं तब वहां अति सुगंध फैल जाती है, जिससे वहांके जलमें और पवनमें सुगंध हो जाती है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उस पर्वतकी गुफामें महात्मा वरुणजीका एक उपवन है, उसका नाम ऋतुमत् है और वहां देवता लोगोंकी स्त्रियाँ क्रीड़ा करती हैं और वहांके वृक्षोंमें सब दिन फलफूल लगे रहते हैं कि जिससे यह उद्यान (बाग) सदा सब प्रकारसे शोभायमान रहता है ॥ ९ ॥ हे महाराज ! इस त्रिकूटपर्वतके ऊपर कितने वृक्ष हैं, उन सबका वर्णन मैं नहीं कर सकता, परंतु कुछ संक्षेपसे कहता हूँ-मन्दार, पारिजातक, पाटल, अशोक, चम्पा ॥ १० ॥ आम, चिरौंजी, कटहर, आम्र, आम्रातक, सुपारी, नारियल, खजूर, दाड़िम, महुआ, साल, ताल, तमाल, पीतसाल, अर्जुन, ॥११ ॥ रीठा, गूलर, पिलखन, बड़, ढाक, चन्दन, नीम, कचनार, पिचुमन्द, कोविदार, स्वरूपा, देवदारु, ॥ १२ ॥

दाख, किसमिस, ईख, केला, जामुन, बेरी, बहेड़ा, हड़, आमला, कपित्थ बेल जंभीरी और भिलावे आदि असंख्य वृक्षोंसे यह पर्वत शोभायमान है ॥ १३ ॥ इस त्रिकूट पर्वतपर एक बड़ा भारी सरोवर है, उसमें सुवर्णके कमल सदा प्रकाशमान रहते हैं और अगणित कुमुद (बबूले), कह्लार, कमल और शतपत्रकी शोभासे वह अति उद्दीप्त है और यह सरोवर मतवाले भौंरोंके शब्दोंसे शब्दायमान है ॥ १४ ॥ और मधुर बोली बोलनेवाले विशेष करके हंस, कारंडव, चक्रवाक और सारसोंसे व्याप्त है, व जलमुर्गावी, पपीहे, दौदुर इनके समूह भी वहां गूंज रहे हैं ॥ १५ ॥ और मच्छ व कछुए इस प्रकारसे पैरते हैं, जिनसे कमलके फूल हिल जाते हैं और उनके परागसे सरोवरका जल विभूषित हो जाता है। उसके चारों ओर कदम्ब, बेत, नरसल, लोटन, कदम्ब, धूलिकदम्ब,

द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥ विल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ॥ १३ ॥ तस्मिन् सरस्सुविपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ॥ मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥ १४ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ॥ जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १५ ॥ मत्स्यकच्छपसञ्चारचलत्पद्मरजःपय ॥ कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैर्वृतम् ॥ १६ ॥ कुन्दैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेङ्गुदैः ॥ कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥ १७ ॥ मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ॥ शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥ १८ ॥ तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ॥ सकण्टकान्कीचकवेणुवेत्रवद्विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥ १९ ॥

दाडिम, बेल ॥ १६ ॥ कुन्द, कुरबक, अशोक, शिरस, कुटज गोन्दी अर्जक स्वर्णजुही नागकेशर पुन्नाग ॥ १७ ॥ जाही, जुही, चमेली, कमल, माधवी, मालती, गन्धराज, मदनबाण, चांदनी, कनेर, सेवती, गुलाब, मोतिया, गेंदा, हरसिंगार, ऐचक, पेचक, मौलसिरी, जालक ऐसे अनेक लताओंके रहनेसे वह सरोवर चारों ओरसे घिरा हुआ है। इनके अतिरिक्त और जो पेड़ किनारे पर हैं, उन सब पर सदा फल फूलोंके रहनेसे वहां मानो सब ऋतुयें नित्य वर्तमान रहती हैं, इस कारण इन वृक्षोंके लगे रहनेसे वह सरोवर अत्यन्त ही शोभायमान है ॥ १८ ॥ वहांपर एक दिन पर्वतके वनमें रहनेवाला हाथियोंके यूथका पालन करनेवाला, बड़े बलवाला हाथी

हथिनियोंके सहित विचरण करता हुआ प्याससे पीड़ित अपने यूथको साथ ले जल पीनेको सरोवरके निकट आया। काटोंके सहित कीचक, ठोस बांस और बेंतोंसे युक्त बड़ी-बड़ी लताओंके समूह और बड़े-बड़े वृक्षोंको तोड़ता हुआ चला आता था ॥१९॥ उसका ऐसा प्रताप था कि उसकी गन्ध पाते ही सिंह, गजेन्द्र, व्याघ्रादि और गैंडे, कृष्ण सांप, शलभ, कूल और चमरगाय भयके कारण भागने लगे * ॥२०॥ परंतु भेड़िया, सुअर, भैंसे, रीछ, मेह, लंगूर, कुत्ता, बंदर, हरिण, खरगोश आदि जो क्षुद्र जीव हैं ये उसकी दृष्टि बचाकर उसके अनुग्रहसे निर्भय होकर विचरण करते हैं ॥ २१ ॥ यह गजेन्द्र ग्रीष्मसे संतापित हो प्यासका मारा अपने यूथको साथ लिये अति

यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा व्याघ्रादयो व्यालमृगाश्च खड्गाः ॥ महोरगाश्चापि भयाद्द्रवन्ति सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥ २० ॥ वृका वराहा महिषर्क्षशल्या गोपुच्छसालावृकमर्कटाश्च ॥ अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादयश्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥ २१ ॥ स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिर्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः ॥ गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २२ ॥ सरोनिलं पङ्कजरेणुरूषितं जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ॥ वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्सरोवराभ्याशमथागमद्द्रुतम् ॥ २३ ॥

वेगसे इस सरोवरके निकट आया। उसके साथमें बहुत हथिनियाँ थीं और मद चुआते हुए बहुतसे बच्चे भी दौड़कर पीछेसे आ रहे थे। वह गजेन्द्र ऐसे बड़े भारी दलको साथ लेकर निकला कि उसके भारसे त्रिकूट पर्वत सर्वतः कम्पायमान हो गया। उसके गण्डस्थलसे जो मद चू रहा था, उसमें मदका जल पीनेवाले भौंरे उसकी सेवा कर रहे थे॥ २२ ॥ इस सरोवरकी वायु जो कमलके परागसे सुवा-

* शंका—हाथियोंका अभिमान भंग करनेवाले जो सिंह है, वे सब उस गजके देहकी सुगन्धको सूंघकर बनको छोड़ इधर-उधर भाग गये। बड़े आश्चर्यकी बात है एक सिंहको देखकर हाथियोंके यूथके यूथ भाग जाते हैं, फिर एक हाथीकी गंधको पाकर सब वनके सिंह क्यों भाग गये ?

उत्तर—आपका कहना सत्य है सिंहके सामने हाथी नहीं ठहर सकते वरन् सिंहके वनमें हाथी जाते भी नहीं, यह बात जो प्राकृत हाथी होता है उसकी है और यह हाथी तो तपस्वी था, शापसे हाथी हो गया था परन्तु रात-दिन इसके पूर्व जन्मका तप रक्षा करता था, उस तपकी अग्निके गन्धसे सब सिंह भाग गये थे।

सित होकर आती थी, उसकी सुगन्धको पाकर उस गजेन्द्रके दोनों नेत्र मदके मारे विह्वल हो रहे थे॥ २३ ॥ यूथपति सरोवर पर जाकर स्नान करके अपने ऊपर जल छिड़क-छिड़क थकावटको मिटाकर फिर काञ्चन कमल और उत्पलरेणुसे सुगंधित निर्मल और मीठा जल शुण्डमें भरकर पीने लगा ॥ २४ ॥ इसके उपरांत शुण्डमें भरे शीतल जलसे वह दयावान् गृही पुरुषोंके समान अपनी हथिनियों और बच्चोंको स्नान कराने लगा और जल भी पिलाया। वह गजेन्द्र अतिशय दुर्मद और परमेश्वरकी मायासे मोहित था इस कारण इस कार्यके करनेसे दूसरे किसीको जो बड़ा भारी कष्ट होता था उसको वह नहीं जान सका ॥२५॥ परन्तु हे राजन्। इसी सरोवरमें एक बलवान् ग्राह (नाका) रहता था। थोड़ी ही देरके पीछे उसने देवप्रेरितके समान आकर विजातीय क्रोधसे इस गजेन्द्र (हाथी) के पैरको झपटकर

विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बु निर्मलं हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम् ॥ पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृतमात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥ २४ ॥ स पुष्करेणोद्धृतशीकराम्बुभिर्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ॥ घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥ २५ ॥ तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् ॥ यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥ २६ ॥ तथाऽऽतुरं यूथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ॥ विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥ २७ ॥ नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयोर्विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः ॥ समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ २८ ॥

पकड़ लिया, यह यूथपति भी अति बलवान् था, जब यह इस प्रकारकी विपत्तिमें पड़ा, बत अपने छुटकारेके लिये यथासाध्य विक्रम प्रकट करने लगा ॥ २६ ॥ ग्राहमें भी थोड़ा बल नहीं था, वह भी उत्तेजित हो महावेगसे गजेन्द्रके चरणको पकड़कर खैंचने लगा। यह देखकर हथिनियाँ हीनमन हो केवल हाहाकार करने लगीं और जो हाथी थे वे इस गजेन्द्रको पकड़ रहे थे परन्तु उस ग्राहके बलसे इसको छुड़ानेके लिये समर्थ न हुए ॥ २७ ॥ हे राजन्! इस प्रकार गजेन्द्र और ग्राह दोनोंका महाघोर युद्ध हुआ। वे दोनों एक दूसरेको जलके बाहर भीतरको खींचते थे, इस प्रकारसे एक सहस्र वर्ष बीत गये, परंतु इस बीचमें किसीके भी प्राण न गये, हाथी भी जीवित रहा और ग्राहके प्राण भी न निकले। देवतालोग यह बात देखकर अति आश्चर्य करने लगे ॥ २८ ॥

इसके उपरांत बहुत कालके पीछे गजेन्द्र का उत्साह, शारीरिक बल, शक्ति और इंद्रियोंका वीर्य घटने लगा, इससे ग्राहस जलमें खींचे जाने-पर वह गजेंद्र व्याकुल होने लगा और उस नाकेकी उत्साहशक्ति क्रम-क्रमसे बढ़ती ही जाती थी ॥ २९ ॥ यह यूथपति जब इस प्रकार प्राणोंके संकटको प्राप्त हुआ और किसी प्रकार अपनेको न छुड़ा सका तब बहुत देरतक चिंता करता रहा, इसके पीछे उसके मनमें यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥३०॥ कि मैं अत्यन्त व्याकुल हो गया हूँ और मेरी जातिवाले हाथी भी मुझको छुड़ानेको समर्थ नहीं हैं और मैं स्वयं भी समर्थ नहीं हूँ, फिर इसकी क्या आशा की जाय कि यह हथिनियाँ मुझे छुड़ायेंगी ? मैं ग्राहरूप विधाताकी फांसीसे बँध गया हूं,

ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः ॥ विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो विपर्ययोऽभूत्स-कलं जलौकसः ॥ २९ ॥ इत्थं गजेन्द्रः स यदाऽप संकटं प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ॥ अपारयन्नात्मविचक्षणे चिरं दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥ ३० ॥ न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम् ॥ ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतोऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥ ३१ ॥ यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्प्रचण्डवे-गादभिधावतो भृशम् ॥ भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापु० अष्टमस्कंधे मन्वन्तरानुवर्णने गजेन्द्रोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ॥ जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

इस फांसीसे यद्यपि मुझको कोई नहीं छुड़ा सका, तथापि जो ब्रह्मादिके देवगणोंके आश्रय हैं उन शुद्ध सच्चिदानंद परब्रह्म परमेश्वरकी मैं शरण होता हूँ ॥ ३१ वे अनिर्वचनीय ईश हैं, अत्यन्त प्रचण्ड वेगसे दौड़ते हुए बलवान् मृत्युरूप सर्पसे डरकर जो उनकी शरणमें आते हैं, उनकी वे रक्षा करते हैं, उनके भयसे मृत्यु भी भाग जाती है, अतः मैं उनकी ही शरण जाता हूँ * ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां गजेन्द्रोपाख्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा—जिन हरिकी स्तुति करी, जब गजेन्द्र बहुबार । तिसरेमें गजराजको, उन हरि लियो उबार ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि, हे राजा परीक्षित् ! उस गजेन्द्रने बुद्धिसे इस प्रकार

* सवैया—ह्वै अति आरत मैं विनंती बहु, बार करौं करुणारस भीनी । कृष्ण कृपानिधि दीनके बन्धु, सुनी असुनी तुम काहेको कीनी ।। रीझते रंचक ही गुणसों वह, बानि बिसारि मनो अब दीनी । जानि परी तुमहूं प्रभुजी कलि कालके दानिनकी गति लीनी ।

भा० अ० निश्चय करके हृदयमें अपने मनको समाधान किया और पूर्वजन्ममें जो इंद्रद्युम्न नामक राजा था और यह स्तोत्र अपना सीखा हुआ
॥ ६ ॥ था, उसका उसने जप करना आरंभ किया ॥ १ ॥ गजने कहा कि मुझको ग्राहने पकड़ा है, इस कारण ऐसी शक्ति नहीं की मैं कायिक
प्रणाम कर सकूं, इसलिये उन भगवान्‌के प्रशान्तस्वरूपका ध्यान करता हूँ । क्योंकि उनसे ही यह समस्त देहादि सचेतन हुए हैं, जो
पुरुष अर्थात् देहरूप पुरमें कारणत्वरूपसे प्रविष्ट हैं उन आदि बीजस्वरूप परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥ और जिसमें यह
विश्व अधिष्ठित है और जिससे यह उत्पन्न है और जिस करके यह स्पष्ट दिखायी देता है और जो स्वयं इस विश्वके रूप हैं, कार्य और

गजेन्द्र उवाच ॥ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ॥ पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥२॥ यस्मिन्निदं
यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ॥ योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥ ३ ॥ यः स्वात्मनीदं निजमायया-
र्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ॥ अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥
कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ॥ तमस्तदाऽऽसीद्गहनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजते
विभुः ॥५॥ न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ॥ यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स माऽवतु ॥ ६ ॥

कारणसे भिन्न हैं, उन स्वतःसिद्ध विभुकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥ जो अपनी आत्मामें निजमाया द्वारा विश्वको धारण किया
है उसीसे यह विश्व कभी लीन होता है, कभी प्रकाशमान होता है । जो साक्षी होकर कार्य और कारण दोनोंको ही सदा देखते हैं,
भा० टी० क्योंकि वे सर्वव्यापक हैं और वे स्वयंप्रकाश परात्पर एवं प्रकाशक जो चक्षुरादि हैं, उनके भी प्रकाशक हैं, वे परमेश्वर मेरी रक्षा करें
अ० ३ ॥ ४ ॥ कालके वश समस्तलोक और सबके कारण लोकपाल संपूर्ण रूपमें विनाशको प्राप्त होनेपर उस समय जो दुर्भेद्य अनन्त
अन्धकारमात्र था तब विभु उस अन्धकारराशिके पार रहकर विराजमान होते हैं ॥५॥ देवगण और ऋषिगण भी जिसके स्वरूपको नहीं

जानते, फिर आज कलका और कौन प्राणी उसके जानने वा कहनेको समर्थ होगा ? वह नटके समान अनेक आकार धारण कर चेष्टा किया करता है, उसका चरित्र जानना अति दुर्लभ है, वह मेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥ सब प्राणियोंके सुहृद् साधुगण, चित्तके मंगलकारी जिसके चरणोंके दर्शन करनेकी वासनासे सब प्राणियोंमें समान दृष्टि कर अक्षय ब्रह्मचर्य व्रतका आचरण करते हैं वही परमात्मा हमारी गति हों ॥ ७ ॥ और जिनका जन्म कर्म नहीं, नाम रूप नहीं, गुण दोष नहीं, तथापि लोककी उत्पत्ति और विनाशार्थ जो अपनी मायासे समय-समयमें यह समस्त (जन्मादि) स्वीकार करते हैं, मैं उन भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥ वह अरूप ब्रह्म हैं और वही बहुरूपी व अनन्त शक्तिमान् हैं, क्योंकि उनके सब कर्म अति आश्चर्यकारी हैं इसलिये मैं उस परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ॥ चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥ न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ॥ तथाऽपि लोकाप्ययसम्भवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥ तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्य-कर्मणे ॥ ९ ॥ नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ॥ नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥ सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ॥ नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥ नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ॥ निर्विशेषाय सौम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ॥ पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥

वह सबका प्रकाशक है, इसलिये वह आप दूसरे प्रकाशका विषय नहीं है और वह परमात्मा अर्थात् जीवका नियन्ता है, उसको मेरा नमस्कार है। जो वाणी, मन और चित्तकी वृत्तिमें आनेके योग्य नहीं है, उसको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥ परंतु वह इस प्रकारके होकर भी निर्गुण और शुद्ध संन्यासयोगसे प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ करता है, उस कैवल्यनाथको मैं नमस्कार करता हूँ, उसका स्वरूप मोक्षके आनंदका देनेवाला है॥ ११॥और वह शांत, घोर, मूढ़ और सत्त्वादि धर्मानुकारी हैं, उनका विशेष नहीं है, वह समस्त विश्वरूपी और ज्ञानघन हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! आप क्षेत्रज्ञ (आत्मा) सर्वाध्यक्ष और सर्वसाक्षी हैं, मैं आपको

नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो ! आपके क्षेत्रज्ञ सबके मूल हैं और मूलके भी (प्रधानके भी) उत्पन्न होनेके हेतु हैं, क्योंकि आप पूर्णस्वरूप हैं, इससे मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! आप सब इंद्रियोंके विषय देखनेवाले हैं और सब इंद्रियोंकी वृत्ति आप जानते हैं, असत् जो अहंकार आदि प्रपंच है, उसके द्वारा असत्रूप छायाद्वारा आप कहलाये जाते हैं, अर्थात् प्रतिबिम्बद्वारा बिम्बके समान संकुचित हो जाते हैं, क्योंकि विषयमें आपका सद्रूप आभास विद्यमान रहता है, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१४॥ हे प्रभो ! आप सर्व कारणरूपी हैं, इसलिये स्वयं निष्कारण हैं, परंतु कारण होनेपर भी मृत्तिकादिके समान आपको विकार नहीं होता; अर्थात् आप अद्भुत कारण हैं और जो पंचरात्रादि आगम और वेद हैं, उन सबके उत्पत्ति स्थान हैं, सब प्राणियोंके लिये पर्यवसानस्थान और मोक्षरूपी हैं,

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ असता छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥ नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय ॥ सर्वागमाम्नाय महार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥ गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ॥ नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमस्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥ मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ॥ स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीतप्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥

इसलिये उत्तम साधुजनोंके आश्रय आपको मैं नमस्कार करता हूं॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आप गुणरूप अरणिसे ढके हुए हैं, ज्ञानाग्नि स्वरूप हैं, परंतु उन सब गुणोंका कार्य आपके मनकी वृत्तिमात्र नहीं है । जो लोग आत्मतत्त्वके विचारसे विधिनिषेधरूप आगम छोड़ देते हैं, उनके बीचमें भी आप स्वयं प्रकाश करते हैं, आपको मेरा नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! मेरे समान शरण आये हुए पशुका भी त्रास (अविद्या) आपके सम्मुख छूट जाता है, क्योंकि आप मुक्त और आपकी करुणा अपार है, अधिक करके करुणा बांटनेके विषयमें आपको आलस्य नहीं है, इस लिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे प्रभो ! समस्त देहधारियोंके अंतरमें प्रस्थित जो ज्ञान है, आप अन्तर्यामी रूपसे उसके स्वरूप हैं और सब प्राणियोंके प्रतीत करानेको समर्थ हैं और शरीरधारियोंके अन्तःकरणमें जो स्थित हो रहे हैं इससे

परिच्छिन्न नहीं हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं, तथापि देह, पुत्र, गृह, वित्त, सेवक इत्यादिमें आसक्त पुरुष आपको नहीं पा सकते, क्योंकि आप गुणसंगवर्ज्जित हैं, इस लिये देहादिमें अनासक्त मनुष्यलोग ही आपका ध्यान कर सकते हैं, आप ज्ञानात्मा ईश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥ अहो ! धर्म, अर्थ, काम व मुक्तिके कामी पुरुष जिनका भजन करके अपने-अपने अभिलाष किये धर्मादिकोंको नहीं प्राप्त होते, परन्तु उनके अतिरिक्त अकामना किये हुए प्राणियोंको आशिष और अव्यय देह भी जो स्वयं प्रदान किया करते हैं, वे भगवान् जो महादयावान् हैं, केवल मुझको इस ग्राहसे छुड़ायें और मैं कुछ कामना नहीं करता

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ॥ मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥ यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ॥ किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥ एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ॥ अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥२०॥ तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ॥ अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥ यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ॥ नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥ यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः ॥ तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥ २३ ॥

॥ १९ ॥ मैं भक्तिके सुखको नहीं जानता, इसलिये मैंने केवल इतनी ही प्रार्थना की और जो लोग उनके एकान्त भक्त हैं, मुक्त पुरुषोंकी सेवा करके कामना रहित हो गये हैं; इसलिये केवल उनका सुमंगल चरित्र गान करके आनन्दके समुद्रमें मग्न रहते हैं, वे किसी अर्थकी वांछा नहीं करते ॥ २० ॥ वह परेश, अक्षर, अव्यक्त, परब्रह्म, आध्यात्मिक योगसे गम्य, सूक्ष्म पदार्थके समान इंद्रियोंकी दृष्टिमें न आनेवाले, जो बाहिरी दृष्टिमें सबसे अति दूर, अनन्त, आद्य और परिपूर्णस्वरूप हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूँ ॥ २१ ॥ जिसके अति छोटे अंशमें समस्त वेद, ब्रह्मादिदेव और चराचर लोग पृथक्-पृथक् नामवाले होकर बने हुए हैं ॥ २२ ॥ और जिस प्रकार अग्निसे लपटें और

सूर्यसे किरणसमूह उत्पन्न होते हैं और उसमेंही लीन हो जाते हैं वैसे ही जिससे गुणप्रवाह अर्थात् बुद्धि, मन और शरीर उत्पन्न होते हैं उसीमें लीन हो जाते हैं ॥ २३ ॥ वह देव नहीं, दानव नहीं, मनुष्य नहीं, पशु नहीं, पक्षी नहीं, स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, नपुंसक नहीं, और लिंगत्रयशून्य प्राणिमात्र भी नहीं हैं और गुण नहीं, कर्म नहीं, सत् नहीं, असत् नहीं, सब पदार्थोंके निषेधके अवधित्वरूपमें जो शेष रहता है, परन्तु वह मायासे अशेषात्मा है, वह भगवान् मेरे छुड़ानेके लिये शीघ्र प्रकट हों ॥ २४॥ मैं इस ग्राहसे शरीरके छुड़ाने और इसके बचानेकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि भीतर-बाहर में व्याप्त इस गजजन्मसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है, आत्माके प्रकाशका ढकना जो अज्ञान है, मैं उस अज्ञानसे मोक्षकी इच्छा करता हूँ, क्योंकि कालसे मोक्षका नाश कभी नहीं हो सकता । अथवा देहके नाशसे देहका बंधन

**स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ् न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः ॥ नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषो जयता-
दशेषः ॥ २४ ॥ जिजीविषे नाहमिहामुया किमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ॥ इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्म-
लोकावरणस्य मोक्षम् ॥२५॥ सोऽहं विश्वसृजां विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ॥ विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम्
॥२६॥ योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ॥ योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥२७॥ नमो नम-
स्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ॥ प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥**

अवश्यही नाश होगा, फिर मोक्षकी प्रार्थनाका क्या प्रयोजन है ? आत्म प्रकाशका ढकना जो कालसे भी नष्ट नहीं होता, जो सबके अज्ञानको नष्ट करने वाला है, उससे ही मेरा छुटकारा हो ॥२५॥ जिसके निकट यह प्रार्थना करता हूँ उसको मैं नहीं जानता ! वह संसारको रचने वाला विश्वरूप और विश्वसे पृथक् है, विश्व उसका उपकारण है, वह विश्वकी आत्मा है और अज (ब्रह्मा) परमपद स्वरूप है, मैं केवल उस योगेश्वर भगवान्को नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥ भगवद्धर्मरूप योगसे जिनके समस्त कर्म भस्म हो गये हैं ऐसे योगी मनुष्य योगसे शुद्ध हुए हृदयमें जिनको देखते हैं मैं उन योगेशको प्रणाम करता हूँ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! आपको नमस्कार ! नमस्कार ! ! आपकी तीन शक्तियोंका वेग अर्थात् रागादि अतिशय असह्य हैं । आप सब इंद्रियोंमें शब्दादि विपय स्वरूपसे प्रतीयमान होते हैं, इस कारण

जिनकी इंद्रियाँ कुत्सित हैं, वे आपके मार्गको नहीं पा सकते हैं ॥२८॥अहो ! जिनकी मायाके वश अहंबुद्धिसे आवृत अपनी मायाको यह पुरुष नहीं जानता है, उसका माहात्म्य अति दुरंत है, उन्हीं भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! वह गजेन्द्र इस प्रकारसे मूर्तिभेद न करके परम तत्त्वका वर्णन करता रहा । ब्रह्मादि देवगण पृथक्-पृथक् मूर्तिके अभिमानी हैं, इस कारण उसके छुड़ानेको जब वहाँ न गये, तब अखिलके आत्मा, अकारण, देवमय भगवान् हरि स्वयं प्रगट हुए ॥ ३० ॥ जगन्निवास भगवान् उस

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याऽहंधिया हतम् ॥ तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ॥ नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥ तं तद्वदार्तमुपलभ्यजगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ॥ छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ ३१ ॥ सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ॥ उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥

गजेन्द्रको इस प्रकार आर्त देखकर और स्तुति करनेवाले देवता लोगोंके समूहके साथ उसकी की हुई स्तुति सुनकर चक्रायुध धारण किये और गरुड़पर सवार हुए जहां गजेंद्र व्याकुल हो रहा था वहां अति शीघ्रतासे चले ॥३१॥ गजेंद्र सरोवरके भीतर महाबलवान् ग्राह(नाका) से अतिशय आर्त हो रहा था । वह आकाशमें गरुड़के ऊपर चक्रधारी भगवान्‌को आते हुए देखकर कमलके फूलके साथ अपनी शुण्डको उठाता हुआ और अतिकष्टसे "हे नारायण ! हे अखिलगुरो ! ! हे भगवन् ! ! ! आपको मेरा नमस्कार है" यह वाक्य कहने लगा ॥ ३२ ॥

भगवान् उसको अत्यन्त पीड़ित देखकर दयाके कारण अपने मनहीमन कहने लगे कि "गरुड़ तो धीमी चालवाला है" इस कारण ऊपरसे सहसा उतर पड़े और वहां वेगसे दौड़कर गजेंद्र के निकट जाकर नाके सहित उसको सरोवरसे निकाल लिया उसके पीछे दर्शनकारी देवता लोगोंके सामने चक्रसे उस ग्राहका वदन विदीर्ण कर गजेंद्रको छुड़ा दिया॥३३॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः॥३॥दोहा–चौथेमें गंधर्व बन,ग्राह गयो निज धाम । गजको अपने संग ले,परम धाम गये राम ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि हे राजन्!उस समय ब्रह्मा, महेश इत्यादि देवगण, ऋषिगण, गन्धर्वगण भगवान्के इस कार्यकी प्रशंसा करते हुए फूल वर्षाने लगे

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसाऽवतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ॥ ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्रियाणाम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागव० म० अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रोपाख्याने गजेन्द्रमोक्षणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥ मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥ नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा नन्नृतुर्जगुः ॥ ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥ योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ॥ मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः ॥३॥ प्रणम्य शिरसाऽधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ॥ अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ स्वर्गमें नगाड़े बजने लगे, गन्धर्व नाचनेगाने लगे,ऋषि और चारण व सिद्धगण उन पुरुषोत्तम भगवान्की स्तुति करने लगे ॥२॥ हे राजन् ! 'हूहू' नामक जो गन्धर्व था, वह देवल मुनिके शापसे ग्राह हो गया था जैसेही भगवान्ने चक्रसे उसका हृदय विदीर्ण किया वैसे ही वह आयुरहित हो अतिशीघ्र पापसे छूटकर अपना परम आश्चर्यमय गंन्धर्वरूप धारणकर लिया ॥ ३ ॥ और उत्तमश्लोक अव्यय अधीश्वर भगवान्को मस्तक झुका कर प्रणाम करके उनके गुण गान करने लगा । हे राजन् ! भगवान् विष्णु परमयशके आश्रय हैं,इसलिये

१. एक समय यह गन्धर्व अपनी स्त्रियोंको साथ लिये हुए सरोवरमें क्रीडा करता था, उसी समय उस सरोवरमें देवल ऋषि स्नान करने लगे, तब गन्धर्वने जलमें गोता लगाकर इन मुनिका चरण पकड़कर खींचा। मुनिने क्रोध कर शाप दिया कि अरे दुष्टात्मा! कुमति तूने विना अपराध मुझको खींचा, इसलिये ग्राह हो जा। जब उस गन्धर्वने बड़ी स्तुति की, तब देवल ऋषिने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि जब तू गजराजका चरण पकड़ेगा और उसके छुड़ानेको विष्णु भगवान् स्वयं आयेंगे तो सुदर्शन चक्रसे तुझे मारेंगे तब तेरा उद्धार हो जायगा।

उनका गुण-कीर्तन करनेके योग्य व उनकी कथायें भी श्रेष्ठ और कहनेके योग्य हैं ॥४॥ इसके उपरान्त भगवान्‌की कृपा करनेपर उस गन्धर्वने उनको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा करके निष्पाप हो गया और दर्शनकारी सब लोगोंके सम्मुख अपने गन्धर्व लोकको चला गया ॥ ५ ॥ और यह गजेंद्र श्रीनारायणके स्पर्श करने से अज्ञानस्वरूप बन्धनसे छूट पीतवसन और चार भुजा धारण करके भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त हो गया ॥ ६ ॥ ❋ ॥ हे राजन् ! यह गजेंद्र पूर्वजन्ममें इन्द्रद्युम्न नामक विख्यात पांडुदेशका राजा था, यह नरनाथ विष्णुव्रतपरायण होकर अपना समय व्यतीत करता था ॥ ७ ॥ एक समय जितेंद्रिय, मौनव्रती, जटा धारण किये, तपस्वी वेष धारण

सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥ लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥ गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ॥ प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥ स वै पूर्वमभूद्राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः ॥ इंद्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥ स एकदाऽऽराधनकाल आत्मवान् गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ॥ जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥ यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ॥ तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं रहस्युपासीनमृषिश्चुकोपह ॥ ९ ॥ तस्मा इमं शापमदादसाधुरयं दुरात्माऽकृतबुद्धिरद्य ॥ विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥ १० ॥

करके मलयाचलमें जाकर वहां आश्रम बनाकर वास करने लगा और उपासनाके सहित यत्नसे भगवान् हरिकी पूजा करने लगा ॥ ८ ॥ एक समय महायशस्वी अगस्त्यजी शिष्योंके सहित उसके आश्रममें आकर उपस्थित हुए, परंतु राजा इस प्रकारसे आराधनामें मग्न था कि उसने अगस्त्यजीका कुछ भी आदर-सम्मान न किया, न कुछ पूजा ही की । निर्द्वन्द्व जिस प्रकार बैठा था, वैसेही बैठा रहा । यह देखकर अगस्त्यजीने इस राजर्षिके ऊपर महाकोप किया॥९॥और उसी समय यह शाप दिया कि यह दुरात्मा अतिशय असाधु है,इसकी बुद्धि सुशील

* शंका—अनेक तपस्वी जिनसे भगवान् वारंवार मिलते थे, वे तपस्वी तो भगवान्‌के रूप में प्राप्त नहीं हुए और गजेन्द्र क्षुद्रकर्म करके भगवान्‌के रूपको प्राप्त हो गया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ।

उत्तर—गजेन्द्रको तप करते करते-अनेक युग बीत गये, परन्तु गजेन्द्रकी तपस्याका वृत्तान्त व्यासजीने अधिक वर्णन नहीं किया, तपके बलसे गजेन्द्र भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥

नहीं यह ब्राह्मणका अपमान करता है, अतः यह इसी समय तामिस्र गतिको प्राप्त हो। जैसे हाथी बैठा रहता है, यह दुष्ट भी वैसे ही बैठा रहा, इस कारण यह हाथीका जन्म ग्रहण करे॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! महर्षि अगस्त्यजी इस प्रकार शाप देकर अपने शिष्योंके साथ चले गये। राजा इन्द्रद्युम्न इस घटनाको होनहार जान हाथीकी योनिको प्राप्त हुआ, जो आत्मविस्मृतिका कारण है परन्तु उसने बहुत कालतक भगवान् हरिकी पूजा की थी, इस कारण हाथीकी योनि प्राप्त होनेपर भी उसकी स्मृति बनी रही ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! भगवान् पद्मनाभने इस प्रकारसे गजयूथपतिको छुड़ाकर पार्षद बनाकर अपने साथ ले लिया। मुरलीधरके इस कर्मसे गन्धर्व,

श्रीशुक उवाच ॥ एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृप सानुगः ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥११॥ आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् ॥ हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥१२॥ एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभस्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ॥ गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमानकर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥ १३ ॥ एतन्महाराज तवेरितो मया कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं दुस्स्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥१४॥ यथाऽनुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः ॥ शुचयः प्रातरुत्थाय दुस्स्वप्नाद्युपशान्तये ॥ १५ ॥ इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्र कुरुसत्तम ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम् ॥ वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥ १७ ॥

सिद्ध और देवता लोग गान करने लगे, इसके पीछे हरि भगवान् अपने अद्भुत लोकको चले गये॥१३॥हे महाराज ! यह गजेन्द्र–मोक्षरूप श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दका प्रभाव मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया। हे कुरुश्रेष्ठ ! जो इस वृत्तान्तको श्रवण करते हैं उनको स्वर्ग और यश प्राप्त होता है और कलिमल नष्ट होकर दुःस्वप्न बंद हो जाते हैं॥१४॥इस कारण श्रेष्ठ कामना वाले द्विजातिगणों को प्रातःकाल ही उठकर पवित्र हो बुरे स्वप्नोंकी शान्तिके लिये यथाविधिसे इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये॥१५॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! सर्वभूतात्मा भगवान् हरिने प्रसन्न होकर श्रवणकारी सब प्राणियोंके सामने शापसे छूटे हुए उस गजेंद्रसे ऐसे वचन कहे थे। श्री भगवान् बोले कि हे अंग !

जो पुरुष हमको और तुमको स्मरण करेंगे और इस सरोवर, गिरिकंदर वन, बेत, कीचक, (खुक्खल बांस जिसमें बाँसुरीकेसा शब्द हुआ करता है), ऐसा झोंपड़ियोंको और कल्पवृक्ष इन सबका ॥ १६ ॥ १७ ॥ और जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवका स्थान है तीनों शृङ्गोंको और हमारे प्रियधाम क्षीरससुद्र और दीप्तिमान श्वेत द्वीपका स्मरण करेंगे वे सब पापोंसे छूट जायेंगे ॥१८॥ और हमारे श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुममणि, वनमाला, कौमोदकी गदा, सुदर्शनचक्र, पाञ्चजन्य शंख, पक्षिराज गरुड़ ॥१९॥ शेषनाग और हमारी सूक्ष्मकलारूपिणी और हृदयमें रहनेवाली श्री देवी, महेश, देवर्षि नारद, प्रह्लाद ॥२०॥ और मत्स्य कूर्मादि अवतार द्वारा हमारे किये, कर्म, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि ॥२१॥

शृङ्गाणीमानिधिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ॥ क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥१८॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ॥ सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥१९॥ शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम् ॥ ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥ २० ॥ मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे ॥ कर्माण्यनन्तपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥ २१ ॥ प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान् धर्ममव्ययम् ॥ दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥ २२ ॥ गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणम् ॥ ध्रुवं ब्रह्मऋषीन् सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥ २३ ॥ उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः ॥ स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते ह्येनसोऽखिलात् ॥२४॥ ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये ॥ तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥ २५ ॥

प्रणव (ॐकार), सत्य, माया, गौ, ब्राह्मण, भक्तिलक्षण, धर्म, धर्मपत्नी, सोम और कश्यपकी स्त्रियाँ (जो कि हमारी बेटी हैं) ॥२२॥ गङ्गा, सरस्वती, नन्दा और कालिंदी यह पुण्यमयी नदी, ऐरावत हाथी, ध्रुव, सप्तर्षि और पुण्यश्लोक मानवगण यह सब हमारी विभूतियाँ हैं॥२३॥ इसलिये जो लोग रातके पिछले प्रहर उठकर नियम सहित एकाग्रचित्त हो इन सबका स्मरण करेंगे वे भी सब पापोंसे छुटकारा पायेंगे ॥ २४ ॥ हे अंग ! जो पुरुष रात्रिके पिछले प्रहर जागकर इस वृत्तान्तको पढ़ेंगे अथवा हमारा स्मरण करेंगे उनको हम मृत्युके

समय निर्मलचित्त कर श्रेष्ठगति देंगे ॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! भगवान् हृषीकेश उस गजेन्द्रको इस प्रकारसे आज्ञा दे और शंखध्वनि करते हुए अपने स्थानको जानेके लिये देवता लोगोंके साथ हर्ष प्रगट करते हुए अपने वाहन (सवारी) गरुड़जीपर आरूढ होकर यह कहते हुए चले गये ❀ ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां गजेंद्रमोक्षवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा—पँचयेमें पँचयें छठे, मनुको करूँ बखान । विप्रशापसे निधन वन, धरो कृष्णको ध्यान ॥ इतनी कथा राजा परीक्षित्को सुनाकर श्रीव्यासपुत्र शुकदेवजी कहने लगे कि हे कौरववंशावतंस ! भगवान् हरिका चरित्र गजेन्द्रमोक्ष नामक

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य हृषिकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम् ॥ हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० महा० अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रोपाख्याने वैकुण्ठगमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम् ॥ गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥ पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्ताम-ससोदरः ॥ बलिविन्ध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥२॥ विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः ॥ हिरण्यरोमा वेद-शिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥३॥ पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः ॥ तयोः स्वकलयाजज्ञे वैकुण्ठो भगवा-न्स्वयम् ॥ ४ ॥ वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ॥ रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥

पापोंका नाश करनेवाला है, वह आपसे मैंने कहा। अब रैवत मनुका वृत्तान्त कहते हैं, वह सुनो ॥ १ ॥ पञ्चम रैवत मनु चौथे मनु ताम-सका सगा भाई था। रैवत मनुके पुत्र अर्जुन बली और विंध्यादि हुए॥२॥ हे राजन् ! इस मन्वन्तरमें विभुनाम इंद्र और भूतरयादि देवता हुए और हिरण्यरोम, वेदशिरा और ऊर्ध्वबाहु इत्यादि सप्त ऋषि हुए ॥ ३ ॥ और सुभ्रूकी जो विकुण्ठा नामक पत्नी थी, उसके गर्भमें सुभ्रूके वीर्यसे भगवान् वैकुण्ठनाथ स्वयं वैकुण्ठवासीने देवता लोगोंके साथ अपने अंशसें जन्म ग्रहण किया ॥ ४ ॥ इन्हीं वैकुण्ठनाथने लक्ष्मीजीकी

* कवित्त–पाय प्रभुताई कछु कीजिये भलाई यहां, न है थिरताई बैन मानिये कविनके। यश अपयश रहिजात बीच पुहुमीके, मुलक खजाना रूप साथ गये किनके ॥ और महिपालनकी गिनती गिनावै कौन, रावणसे ह्वै गये त्रिलोको वश जिनके । चोपदार चाकर चमूपति चंवरदार, मंदिर मतंग ये तमाशे चार दिनके ॥

प्रार्थनासे उनका प्रिय कार्य करनेकी वासनासे लोकनमस्कृत वैकुण्ठलोक बनाया ॥ ५ ॥ उन(वैकुण्ठनाथ) का प्रभाव, ब्रह्मण्यतादि गुण और बड़ी भारी ऋद्धियोंका विवरण (तीसरे स्कन्धमें) कुछेक वर्णन किया गया है । हे राजन् ! भगवान् विष्णुजीके सब गुणोंका वर्णन करनेका किसमें सामर्थ्य है ? जो पुरुष उनके सब गुणोंका वर्णन कर सके, वह पृथ्वीपरके धूरिकणोंकी भी गणना (गिनती) कर लेगा ॥६॥ अब छठे मनुका वृत्तान्त सुनो। चाक्षुष नामक छठा मनु हुआ। उसके पूरु,पुरुष,सुद्युम्न आदि उत्पन्न हुए॥७॥हे राजन्! इस मन्वन्तरमें मंत्रद्रुम, इंद्र, आप्यादिगण देवता,हविष्मत और वीरकादि ऋषि हुए ॥ ८ ॥ उक्त (ऊपर कहे हुए) मन्वन्तरमें वैराजके ओरसे और देव सम्भूतिके गर्भसे जगत्पति भगवान् विष्णुजी अपने अंशसे जन्म ग्रहण करके अजित नामसे विख्यात हुए ॥ ९ ॥ जिन्होंने समुद्रको

तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ॥ भौमान्रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद्गुणान् ॥६॥ षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ॥ पुरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥७॥ इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ॥ मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८ ॥ तत्रापि देवः संभूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः ॥ अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥९॥ पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ॥ भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥१०॥ राजोवाच ॥ यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ॥ यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधारांबुचरात्मना ॥११॥ यथाऽमृतं सुरैः प्राप्तं किंचान्यदभवत्ततः ॥ एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥

मथ करके देवता लोगोंके लिये अमृत निकाला और कूर्म रूप धारण करके जलके बीच भ्रमण करते हुए मन्दराचल पर्वतको धारण किया ॥१०॥यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! भगवान् विष्णुने किस प्रकार क्षीरसमुद्रको मथा ? और किस कारण उन्होंने कूर्मरूप होकर मन्दराचलको धारण किया था ? वह सब आप मुझसे कृपा करके वर्णन कीजिये ॥११॥ और देवता लोगोंने जिस प्रकार अमृतको प्राप्त किया और उनसे और भी जो जो कार्य हुए वे समस्त कार्य अवश्य ही अद्भुत होंगे, इसलिये आप विस्तार सहित उनको वर्णन कीजिये हे योगिन्! आप भक्तवत्सल भगवान्की जितनी महिमा कहते हैं, उससे मेरा चित्त किसी प्रकार सन्तुष्ट नहीं होता, वरन् निरन्तर

सुननेको चित्त चाहता है, क्योंकि मेरा हृदय अत्यन्त सन्तापित हो रहा है॥ १२॥ यादवपति भगवान्‌की विविध तापकी नाश करनेवाली जो महिमा है, उन भगवान्‌की कथा सुननेसे मेरा मन तृप्त ही नहीं होता॥ १३॥ सूतजी बोले-हे द्विजगण! द्वैपायनतनय शुकदेवजीसे जब इस प्रकार राजा परीक्षित्‌ने पूछा तब राजाकी प्रशंसा और आनन्द प्रगट करके श्रीशुकदेवजी भगवान् हरिके सामर्थ्यका वर्णन करने लगे ॥ १४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! जिस समय दानवलोग समरमें अस्त्र-शस्त्र चलाकर देवता लोगोंका वध करने लगे तब बहुतसे देवता

त्वया सकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः ॥ नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३॥ सूत उवाच ॥ संपृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ॥ अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः ॥ गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ॥ १५॥ यदा दुर्वाससः शापात्सेन्द्रा लोकास्त्रयो नृप ॥ निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरीज्यादयः क्रियाः ॥ १६ ॥ निशाम्यैतत्सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः ॥ नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चयम् ॥ १७ ॥ ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः ॥ सर्वं विज्ञापयांचक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥ १८ ॥ स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन्निस्सत्त्वान्विगतप्रभान् ॥ लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥ १९ ॥

लोग निर्जीव होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और फिर जीवित नहीं हुए ॥ १५ ॥ और जब दुर्वासा मुनिके शापसे इन्द्रसहित त्रिभुवनकी श्री नष्ट हो गयी और यज्ञ यागादि भी लुप्त हो गये * ॥ १६॥ और महेन्द्र व वरुण इत्यादि देवगण यह देखकर जब स्वयं मन्त्रसे कोई उपाय न पाये ॥ १७ ॥ तब इकट्ठे हो परस्पर अर्थात् आपसमें सम्मति कर सुमेरु पर्वतके ऊपर ब्रह्माजीकी सभामें गये और शिर नवाकर विनीत भावसे पितामहके निकट सब वृत्तांत निवेदन किया ॥ १८॥ इन्द्र, चन्द्र, वायु इत्यादि निःसत्त्व और प्रभारहित सब लोगोंका अमंगल और

* शंका—दुर्वासा मुनिने अकेले इन्द्रको शाप दिया, कि हे इंद्र ! इस तेरी सब लक्ष्मीका नाश हो जायेगा, परन्तु तीनों लोकोंको शाप नहीं दिया था, फिर त्रिलोकी लक्ष्मीसे हीन क्यों हो गयी?

उत्तर—मुनिका शाप इन्द्रको हुआ, तब तीन लोकोंका राज्य राजा बलिको हुआ, इस कारण तीनों लोकोंको यज्ञ से तथा लक्ष्मी से राक्षसोंने हीन कर दिया, इसलिये तीनों लोक यज्ञसे और लक्ष्मीसे हीन हो गये ।

असुरोंको बलवान् देख ब्रह्माजीको अत्यन्त विस्मय प्राप्त हुआ ॥१९॥ कुछ देरके पीछे सावधान मन हो भगवान् पुरुषोत्तमका स्मरण कर प्रफुल्लितमुख हो ब्रह्माजी सब देवताओंसे कहने लगे ॥ २० ॥ हे देववृन्द ! मैं (ब्रह्मा), महेश (महादेव), तुम, असुर और मनुष्य, तिर्यक् (पशु-पक्षी), द्रुम इत्यादिक कर्मज जाति अर्थात् जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज ये सब ही जिसके अवताररूप पुरुषके अंश जो ब्रह्मा हैं, उसकी कलासे सृष्टि अर्थात् पुत्र-पौत्रादि द्वारा उत्पन्न हुए हैं, चलो हम उन्हीं अव्यय परब्रह्म परमेश्वरकी शरणमें चलें ॥ २१ ॥ यद्यपि उनका कोई वध्य नहीं, रक्षणीय नहीं, त्यागनेके योग्य नहीं और आदरणीय भी नहीं, तथापि सृष्टि, स्थिति, प्रलयके निमित्त समय-समय पर सत्त्वगुण, तमोगुण और रजोगुणको धारण करते हैं ॥ २२ ॥ वे शरीरधारियोंके पालन करनेके लिये सत्त्व

समाहितेन मनसा संस्मरन् पुरुषं परम् ॥ उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥ २० ॥ अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यग्द्रुमधर्मजातयः ॥ यस्यावतारांशकलाविसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥ २१ ॥ न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो नोपेक्षणीयादरणीयपक्षः ॥ अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं धत्ते रजस्सत्त्वतमांसि काले ॥२२॥ अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् ॥ तस्माद्व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥२३॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याभाष्य सुरान्वेधा सह देवैररिंदम ॥ अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥ २४ ॥ तत्रादृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो ॥ स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच॥अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ॥ मनोऽग्रयानं वचसाऽनिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥ २६ ॥

गुणको धारण करते हैं, यह उनकी स्थिति और पालनका काल है इसलिये इस समय उन जगत्गुरुकी शरण लेनेसे वह आत्मीय जो अस्मदादि हैं, अवश्य हमारा कल्याण करेंगे ॥ २३ ॥ हे परीक्षित् ! ब्रह्माजी देवता लोगोंसे इस प्रकार सम्मति कर उन सबके साथ जिस क्षीरसागरमें अजित भगवान् हरि वास करते हैं, उसी परमस्थानको गये ॥२४॥ वहांपर पहुँचकर सावधान हो एकाग्रचित्त कर वेदवाक्योंसे नहीं देखा है स्वरूप जिनका परन्तु पहले श्रवण किया है, उन भगवान् हरिकी सब देवगण स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्माजीने कहा हे देव ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं । आपको नमस्कार करता हूँ । भगवन् ! आपके मध्य विकार नहीं है, आप सत्य, अनन्त, सर्वान्तर्यामी हैं, निरु-

पाधि हैं और तर्क करनेके अयोग्य हैं; आप मनके भी आगे चलते हैं। वचनद्वारा आपको निर्गतचित्त नहीं किया जा सकता, ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ अहो ! जो प्राण, मन, बुद्धि और आत्माको जानता है और विषय व इंद्रियाँ इन दोनों रूपोंमें प्रकाश पाता है, जो स्वप्न देखनेवालेके समान अज्ञानरहित हैं और जिनमें देह नहीं है, जो अक्षर और आकाशवत् सर्वव्यापी हैं और जिसमें जीवोंका पक्ष करनेवाली अथवा उनमें लीन करनेवाली अविद्या कुछ भी नहीं रहती, जो तीनों युगोंमें प्रकट होते हैं, हम उन्हींकी शरण ग्रहण करते हैं ॥२७॥ और इस जीवका चक्र अर्थात् चक्रवत घूमते हुए देहादि जो माया करके प्रेरित होते हैं, उनके जो अक्ष अर्थात् अधिष्ठान हैं हम उन्हीं सत्यरूप परमेश्वरकी शरण जाते हैं, जीवका जो मनोमय चक्र है, दस इंद्रिय और पञ्चप्राण यह पंद्रह उसके अक्ष (आल)

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनामर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ॥ छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुग व्रजामहे ॥ २७ ॥ अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पञ्चदशारमाशु ॥ त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥ २८ ॥ य एकवर्णं तमसः परं तदलोकमव्यक्तमनन्तपारम् ॥ आसां चकारोपसुपर्णमेनमुपासते योगरथेन धीराः ॥ २९ ॥ न यस्य कश्चातितितर्ति मायां यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् ॥ तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥ ॥ ३० ॥

सत्त्वादि तीन गुणोंके समान उसमें वर्तमान हैं, वह बिजलीके समान चञ्चल है और यथार्थ धुरीके समान उसका आवरण है ॥ २८ ॥ जो भक्त लोगोंकी रक्षा करनेको गरुड़पर आरूढ (सवार) हैं परन्तु ज्ञानके स्वरूप और प्रकृतिसे परे हैं। अदृश्य, अव्यक्त, देशकालसे जिनका परिच्छेद नहीं होता और धीर पुरुष योगरूप उपायसे जिनका भजन किया करते हैं, हम उन्हीं परमेश्वरको प्रणाम करते हैं ॥२९॥ जिनकी मायाका कोई पुरुष उल्लंघन नहीं कर सकता वह माया साधारण नहीं है, उससे पुरुष मोहित होता है और अपने स्वरूपको नहीं जान सकता, हम उन्हीं परमेश्वरको प्रणाम करते हैं। उन्होंने माया और मायाके गुण दोनोंको जीत लिया है और सब प्राणियोंमें

समानरूपसे वर्तमान हैं, ऐसे जो परमेश्वर हैं उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥ हम देवता और ऋषि हैं जिनके प्रियमूर्तिस्वरूप सत्त्व गुणके द्वारा उत्पन्न हुए हैं, बाहर अन्तरकी सत्ता और प्रकाशसे जिसकी सूक्ष्म गति अर्थात् निरुपाधि स्वरूप नहीं जान सके, उसे रजो गुण, तमोगुण-प्रधान असुरादि किस प्रकारसे जान सकते हैं, इसलिये हम उनको प्रणाम करते हैं ॥३१॥ अहो! जिस पृथ्वी पर जरायुजादि चार प्रकारके प्राणी उत्पन्न होते हैं, यह पृथ्वी जिसके दो चरणरूप है, वैराजरूपी वे ही महापुरुष हमारे ऊपर प्रसन्न हों। यद्यपि उसके चरणादि हैं तथापि वे किसीके वश नहीं हैं, क्योंकि उनका स्वरूप कभी विच्युत नहीं होता और महदाश्चर्यशाली है ॥ ३२ ॥ जिस जलसे

इमे वयं तत्प्रिययैव तन्वा सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः ॥ गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्या इतर प्रधानाः॥३१॥ पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ॥ स वै महापुरुष आत्मतन्त्रः प्रसीदतां ब्रह्म-महाविभूतिः॥३२॥ अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं सिध्यन्ति जीवन्त्युतवर्धमानाः॥ लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः प्रसी-दतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३३॥ सोमं मनो यस्य समामनन्ति दिवौकसां वै बलमन्ध आयुः॥ ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३४॥ अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकाण्ड निमित्तजन्मा॥अन्तस्स-मुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३५॥ यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ॥ द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३६ ॥

समस्त लोक और लोकपाल उत्पन्न होते हैं, जीते रहते हैं और वृद्धि पाते हैं, वह उदारशक्ति युक्त जल जिनका वीर्य है वे महा ऐश्वर्य-शाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥३३॥ जो उदार चन्द्रमा देवता लोगोंके अन्न, बल, आयु स्वरूप हैं और जो सब वृक्षोंके अधिकतासे बढ़ानेका कारण है, पंडित लोग उसी सोमको जिनका मन कहते हैं, वे महाविभूतिशाली महेश हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥३४॥ जिससे वेदरूप धन उत्पन्न होता है और वेदोंके प्रतिपाद्य कर्मोंके लिये जिनका जन्म है और जो अन्तःसमुद्र अर्थात् उदरमें जठराग्निरूपसे भोजन और अन्नादि पाक किया करते हैं; वही अग्नि जिसका मुख है, वे महाभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥३५॥ जो सूर्य देवयान अर्थात्

भा० अ० ॥ १४ ॥

अर्चिरादि मार्गके देवता वेदत्रयीमय ब्रह्मकी उपासनाके स्थान हैं और देवयान तत्त्वके हेतु मुक्तिके द्वार हैं और पुण्यश्लोकोंके हेतु हैं, अमृत स्वरूप और परकालरूपत्व होनेसे मृत्युरूप हैं, वह सूर्य जिनकी आँख हैं वे महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३६ ॥ जिनके प्राणसे वह वायु उत्पन्न हुई है, जो चर-अचर सब प्राणियोंका तेज बल व सामर्थ्यादि धर्मयुक्त प्राण है, सेवक लोग जिस प्रकार महाराजाधिराजके पीछे-पीछे चलते हैं, वैसे ही हम लोग बुद्धि इत्यादिके अधिष्ठातादेवता जिनका अनुसरण किया करते हैं वे महाऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों॥ ३७ ॥ जिनके श्रवणोंसे दिशा, जिनके हृदयसे इंद्रियाँ और नाभिसे आकाश उत्पन्न हुआ, जो

प्राणादभूद्यस्य चराचराणां प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ॥ अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३७॥ श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ॥ प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३८ ॥ बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादान्मन्योर्गिरीशो धिषणाद्विरिञ्चः ॥ खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३९ ॥ श्रीर्वक्षसः पितरश्छायया॒ऽऽसन्धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ॥ द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४० ॥ विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च ॥ ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१ ॥

भा० टी० अ० ६

पञ्चप्राण, इंद्रियाँ, मन, नाग, कूर्मादि वायु और शरीरके आश्रय हैं, वे महासम्पन्न विभु हमारे ऊपर प्रसन्न हों॥३८॥जिनके बलसे महेन्द्र, प्रसन्नतासे सुरगण, क्रोध (गुस्से) से गिरीश, बुद्धिसे ब्रह्मा, छिद्रसे समस्त भेद, मेढ्रसे ऋषि और प्रजापतिगण उत्पन्न हुए हैं, वह महाऐश्वर्यशाली पूर्ण ब्रह्म भगवान् हरि हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ जिनकी छातीसे लक्ष्मी, छायासे पितृगण, स्तनसे धर्म, पीठसे अधर्म, मस्तकसे स्वर्ग और विहारसे अप्सरागण उत्पन्न हुईं, वे महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥४०॥ जिनके मुखसे ब्राह्मण और परमगुप्त वेद,दोनों भुजाओंसे क्षत्रिय,जंघाओंसे वैश्य एवं चतुरता और चरणोंसे शूद्र और सेवा उत्पन्न हुई है । वे महाविभूतिशाली परमेश्वर

हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ जिनके अधरसे लोभ, (नीचेके) ओष्ठसे प्रीति, नासिकासे कांति उत्पन्न हुई है और स्पर्शसे पशुओंका हितकारी काम और दोनों भौंहोंसे यम,पलकोंसे कालका जन्म हुआ है, वे महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥४२॥ और पञ्चभूत, काल, कर्म, गुण, लौकिक प्रपञ्च इन सबको ज्ञानी लोग जिनकी योगमायासे उत्पन्न हुए कहा करते हैं और उसी मायासे द्रव्य, काल, कर्म, गुण; भौतिक प्रपञ्च यह उत्पन्न हुए हैं ऐसा कहते हैं और फिर पृथक्-पृथक् विद्वान लोग इन सबका खण्डन किया करते हैं, वे महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥४३॥ अहो ! हम लोग उन परमेश्वरको नमस्कार करते हैं,उसकी शक्ति उपशांति है;

लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद् द्युतिर्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ॥ भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥ द्रव्यं वयः कर्मगुणान्विशेष यद्योगमायाविहितान्वदन्ति ॥ यद्दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४३ ॥ नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये स्वराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने॥गुणेषु माया-रचितेषु वृत्तिभिर्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥४४॥ स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ॥ प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम्॥४५॥तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो ॥ कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ॥ ४६ ॥ क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि च ॥ देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥ ४७ ॥

स्वर्गका राज्यलाभ करनेके लिये वे आत्माको परिपूर्ण करते हैं, परन्तु दर्शनादि द्वारा मायारचित गुणोंमें आसक्त नहीं होते उनकी लीला पवनके समान है,हम उनको नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! हम शरणापन्न होकर आपके स्मितमुखारविन्दका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं, आप हमारी इंद्रियोंके गोचर हो अर्थात् अपना स्वरूप दिखाओ ॥४५॥ हे प्रभो ! आप भक्तजनोंकी इच्छाके अनुसार रहा करते हैं, इसके भूरि प्रमाण हैं; जिन कर्मोंके करनेमें हम अशक्य होते हैं, आप काल-कालमें इच्छानुसार अतवार ले करके उनसे स्वयं उन कर्मोंको सम्पन्न किया करते हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! जो शरीरधारी विषयके लिये आर्त हैं, उनके कर्म जैसे अनेक क्लेश और अति थोड़े

भा० अ० ॥ १९ ॥

फलके देनेवाले हैं, आपके भक्तोंके अर्पित हुए कर्म ऐसे नहीं हैं ॥ ४७ ॥ अति थोड़ा जो कर्माभास है, वह भी परमेश्वरमें अर्पण किये जानेपर विफल नहीं होता, क्योंकि ईश्वर पुरुषोंका आत्मा है, दयावान् और हितकारी है, वह प्रिय और हितकारी आत्मामें जो कुछ अर्पण किया जाता है, वह क्या निष्फल हो सकता है ? ॥ ४८ ॥ जैसे पेड़की जड़में जल देनेसे शाखा, चोटी सबका सींचना हो जाता है, वैसे ही विष्णु भगवान्‌की आराधना करनेसे सबकी आराधना हो जाती है ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! हम आपके भक्त हैं, जो कुछ कर्म करते हैं वह आपको समर्पण कर देते हैं । हम लोगोंका यह क्लेश जिस कारणसे हुआ है, आप स्वयं ही जानते हैं, क्या निवेदन करें ? आप अनन्त, निर्गुण, गुणेश और सत्त्वस्थ हैं आपका स्वभाव और चेष्टा तर्क करनेके योग्य नहीं है, अतः हमलोग केवल आपको नमस्कार करते

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ॥ कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥ ४८ ॥ यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ॥ एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ॥ निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभा० म० अष्टमस्कन्धेऽमृतमथने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ तेषामाविरभूद्राजन् सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥ तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ॥ नापश्यन्खं दिशः क्षोणिमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २ ॥ विरिञ्चो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ॥ स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥

हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायाममृतमथने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा—छठवेंमें प्रगटे हरि, असुर प्रार्थना कीन्ह । दैत्यनको धोखा दियो, देवन अमृत दीन्ह ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब सब देवता लोगोंने इस प्रकारसे स्तुति की तब श्रीभगवान् हरि उनके सामने ही प्रगट हुए । सहस्र सूर्यके उदय होनेसे जिस प्रकार दीप्ति होती है, वैसे ही उस समय श्रीनारायणजीकी भी दीप्ति प्रकाशित होने लगी ॥ १ ॥ उस द्युतिसे सब देवताओंकी दृष्टि तिलमिला गयी, कि जिससे देवता लोग आकाश, दिशा, पृथ्वी और अपने आपको भी न देख सके, फिर उन विभुको किस प्रकार देख सकें ? ॥ २ ॥ बहुत देरतक

भा० टी० अ० ६

ब्रह्माजीने भलीभांति देखकर महादेवजीके सहित उनकी स्तुति करनी आरम्भ की। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! भगवान्‌की मूर्ति मरकतमणिके समान श्यामवर्ण और स्वच्छ थी, इससे पद्मगर्भके समान अरुणवर्ण उनके दोनों नेत्र शोभायमान हो रहे थे ॥३॥ और वह मूर्ति तपाये हुए सुवर्णके समान पीतवर्ण पीताम्बर धारण किये हुए थी, श्रीभगवान्‌के समस्त अंग प्रसन्न और अतिशय मनोहर थे और भ्रुकुटीकी शोभा भी अत्यन्त सुन्दर थी ॥ ४ ॥ मस्तकपर महामणियोंसे जड़ा हुआ मुकुट था, दोनों भुजाओंमें भुजबन्द और नौरतन विराजमान थे, कानोंमें कुण्डलोंका हिलना अति मनोहर था, उन कुण्डलोंके द्वारा कपोलोंकी दीप्ति होनेसे मुखारविन्दपर अनिर्वचनीय

तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ॥ प्रसन्नचारुसर्वांगीं सुमुखीं सुन्दरभ्रुवम् ॥ ४ ॥ महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ॥ कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ॥५॥ काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ॥ कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ॥ ६ ॥ सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् ॥ तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ॥ सर्वामरगणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिं गतैः ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अजातजन्मस्थितिसंयमायागुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ॥ अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥

ज्योति प्रकाशित हो रही थी ॥ ५ ॥ और काञ्चीकलाप, कंकण, हार, नूपुरसे वह मूर्ति विशेष शोभायमान हो रही थी। वे कण्ठमें कौस्तुभमणि और वक्षस्थलमें लक्ष्मीजीको धारण किये हुए थे और उनका हृदय वनमालासे शोभायमान हो रहा था * ॥६॥ अधिक करके सुदर्शनादि अपने अस्त्रोंसे भी वे शोभायमान हो रहे थे, यह सुदर्शनादि उनके अस्त्र अपनी-अपनी मूर्तियां धारण कर चारों ओर खड़े होकर उनकी उपासना कर रहे थे, यह मूर्ति देखकर देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, शिव और सब देवता लोग उनको प्रणाम करने लगे॥७॥ ब्रह्माजी बोले कि हे भगवन् ! श्रीमूर्तिका आविर्भावमात्र हम लोगोंके समान आपके जन्मादि नहीं हैं; क्योंकि आपको जन्म, स्थित, संयम

* शंका—भगवान्‌ने हार, नूपुर, कंकण, कुण्डल, भुजवन्द आदिक गहने बालक और स्त्रीके क्यों पहिने ?

उत्तर—ब्रह्मादि देवताओंको बालकरूप भगवान्‌की उपासना बड़ी प्यारी है, इसलिये शीघ्र बालकरूप बनकर अथवा बालकके सब गहना धारण करके ब्रह्मादिकको दर्शन देते हैं, इसलिये बालकके गहना धारण करते हैं।

भा० अ० यह तीनों उत्पन्न नहीं होते, इसका कारण यह है कि आप निर्गुण हैं, इसलिये ज्ञानी लोग आपको 'निर्वाण सुखका समुद्र' कहा करते
॥ १६ ॥ हैं, परन्तु आप इस प्रकार जाननेके योग्य न होनेसे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हो, वास्तवमें आपकी मूर्तिकी सीमा नहीं है। हे प्रभो ! हमसे जो कुछ भी कहा यह कुछ भी असम्भव नहीं है, क्योंकि आपका स्वभाव अचिन्तनीय है, इस लिये आपको नमस्कार ! नमस्कार ! ! नमस्कार ! ! ! है ॥८॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! हे धातः ! कल्याणके चाहनेवाले पुरुष लोग वैदिक और तान्त्रिक उपायसे आपकी इस मूर्तिकी सदा पूजा करते हैं। हे भगवन् ! हम देवतालोग पूज्यरूपसे प्रसिद्ध तो हुए हैं, परन्तु आपमें त्रिभुवनसहित हम सब कुछ देखते हैं, आपकी यह मूर्ति ब्रह्माण्डका आधार है, इसलिये आपका यह रूप परिच्छिन्न नहीं है ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! आप स्वतंत्र हैं, यह जगत् प्रथम

रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं श्रेयोर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ॥ योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥ त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ॥ त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥ १० ॥ त्वं माययाऽऽत्मश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ॥ पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥ ११ ॥ यथाऽग्निमेधस्यमृत च गोषु भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम् ॥ योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति ॥ १२ ॥

आपमें ही था, मध्यमें भी आपमें ही रहा है और अंत समय भी आपमें ही रहेगा। मिट्टी जैसे घड़ेकी आदि, अन्त और मध्य है, वैसे आप इस जगतके आदि, मध्य और अवसान हैं, क्योंकि आप प्रधानसे भी परे (श्रेष्ठ) हैं ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आप निजाश्रित
भा० टी० माया द्वारा इस विश्वकी सृष्टि करके पीछे इसमें प्रविष्ट होते हैं, इसलिये शास्त्रके जाननेवाले विवेकी योगी लोग सबके परिणाममें भी
अ० ६ आपको निर्गुण देखते हैं॥११॥ हे प्रभो ! जैसे काष्ठमें अग्नि, गौमें घृत, पृथ्वीमें अन्न और पुरुषार्थमें जीविका वर्तमान है, मनुष्यगण उपायसे इन सबको प्राप्त होते हैं, अर्थात् मथे जानेपर काष्ठसे अग्नि, दुहे जानेसे गौमें घृत और खोदने पर पृथ्वीमें अन्न और जल, वाणिज्य इत्यादि

करनेपर पुरुषार्थसे जीविका प्राप्त होती है। ऐसा ज्ञानीलोग कहते हैं कि आप भी वैसे ही गुणमें वर्तमान हैं और वह बुद्धिके योगसे आपको उसने प्राप्त कर लेते हैं ॥ १२॥ हे नाथ ! हे पद्मनाभ ! आप हमारे बहुत दिनोंके वांछा किये हुए अर्थ हैं, आप योगगम्य होकर भी स्वयं प्रगट हुए, दावानलसे पीड़ित हुये हाथी गंगाजलको देखकर जैसे आनन्द पाते हैं, वैसे ही हम लोग आज आपका प्रत्य क्षदर्शन पाकर परम आनंदको प्राप्त हुए हैं॥ १३ ॥ इस समय इन सब लोकपालोंके सहित हम जो इच्छा करके आपके कोमलअमल चरणकमलकी शरण आये हैं,उस कार्यको आप पूर्ण कीजिये। हे अन्तरात्मन् ! आप अनन्त पदार्थोंके साक्षी हैं फिर भला हम क्या बतायें? आप सभी कुछ जानते

तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ॥ दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे गजा दवार्ता इव गाङ्ग-मम्भः ॥१३॥ स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ॥ समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्किं वाऽन्य-विज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥ १४ ॥ अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ॥ किं वा विदामेश पृथग्विभाता विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विरिञ्चादिभिरीडितस्तद्विज्ञाय तेषां हृदयं यथैव ॥ जगाद जीमूतगभीरया गिरा बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥ १६ ॥ एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः ॥ विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥ १७॥

हैं ॥१४॥ हे भगवन् ! मैं (ब्रह्मा) महादेव और देवता, दक्षप्रजापति हम सभी अग्निकी चिनगारीके समान आपसे अलग प्रकाशमान होते हैं, हम नहीं जानते कि आपमें क्या श्रेष्ठता है ? इसलिये आपही द्विज और देवतालोगोंकी मंत्रणा कहिये अर्थात् "यह करो" ऐसी आज्ञा कर उपाय बताइये ॥ १५ ॥ इतनी कथा सुनकर श्रीशुकदेवजी मुनि कहने लगे कि हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! जब ब्रह्मादिक देवतालोगोंने इस प्रकार भगवान्की स्तुति की तब श्रीभगवान् उनके मनके अभिप्रायको जान मेघ समान गम्भीर बाणीसे बोले–हे राजन् ! उससमयसब देवताओंने अपनी इंद्रियोंको अपने वशमें कर लिया था ॥ १६ ॥ यद्यपि भगवान् देवताओंके उस कार्यको अकेले

कर सकते थे, तो भी समुद्रमंथनादि विहार करनेकी इच्छा कर उनसे यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् कहने लगे कि, कैसे खेदकी बात है ? ब्रह्मन् ! अहो शम्भो ! हे देवगण ! हे गन्धर्वगण ! तुम सब सावधान होकर हमारे वचन सुनो । हे देवसमूह ! जिस प्रकारसे तुम्हारा भला हो वही हम कहते हैं, तुम सुनो ॥ १८ ॥ दैत्य-दानव सब पर ही शुक्राचार्यजीने अनुग्रह किया है, तुमलोग उनके पास जाकर उनसे तबतक संधि (मेल) कर लो जबतक अपने आपसे तुम्हारी वृद्धि न हो जाय ॥ १९ ॥ हे देवगण ! कार्य और अर्थके गौरवसे अर्थ साधनेमें तत्पर पुरुष कभी सांप और चूहेके समान शत्रुके साथ भी संधि अर्थात् मेल कर लेते हैं, जैसे पिटारीमें रुका हुआ

श्रीभगवानुवाच ॥ हन्त ब्रह्मन्नहो शंभो हे देवा मम भाषितम् ॥ शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथा सुराः ॥१८॥ यात दानवदैतेयैस्तावतत्संधिर्विधीयताम् ॥ कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्वो भव आत्मनः ॥ १९ ॥ अरयोऽपि हि संधेयाः सति कार्यार्थगौरवे ॥ अहिमूषकवद्देवा अर्थस्य पदवीं गतैः ॥ २० ॥ अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम् ॥ यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥ २१ ॥ क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ॥ मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२२॥ सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः ॥ क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥ २३ ॥

सर्प उनमेंसे निकलनेके लिये चूहेसे मेल करता है और जब वह चूहा छेद कर देता है, तब वह सर्प बाहर निकलकर चूहेको भक्षण करता है इसी भांतिसे तुम दैत्योंसे मिलाप कर लो ॥ २० ॥ तुम दैत्योंके साथ संधि करके शीघ्र अमृत निकालनेका यत्न करो, क्योंकि अमृतके पीनेके प्रभावसे मृत्युसे ग्रसा हुआ भी मनुष्य अमर हो जाता है ॥२१॥ जाओ ! क्षीरसमुद्रमें शीघ्र तृण, लता और औषधियोंको डालो फिर उसमें मंदराचलकी रई और वासुकी नागकी डोरी करके ॥ २२ ॥ मेरी सहायता लेकर आलस्यरहित हो समुद्रको मथो । हे देवगण ! यद्यपि दैत्यलोग तुम्हारे साथ मिलकर समुद्र मथेंगे, तो भी उन लोगोंको क्लेशही मिलेगा और मथनेका फल तुम्हीं पावोगे ॥२३॥

हे सुरगण ! बलवान् साथीके द्वारा जो कोई कार्य सिद्ध करना हो तो उसकी इच्छानुसार कार्य करना चाहिये। इसलिये असुर लोग जो कुछ भी इच्छा करें, तुम उसमें ही प्रसन्न होना ! जिस प्रकार शांतिके मार्गसे शीघ्र अर्थकी सिद्धि होती है, वैसी क्रोधके मार्गसे नहीं होती॥ २४ ॥ हे देवगण ! समुद्रके मथनेसे कालकूट उत्पन्न होगा, उससे कुछ भय न करना और मथते-मथते जो कुछ श्रेष्ठ वस्तु निकलेगी, उसके लिये लोभ न करना और लोभके वश होकर क्रोध भी मत करना ॥ २५ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! भगवान् पुरुषोत्तम देवता लोगोंको इस प्रकार आज्ञा करके उनके सामने ही अंतर्धान हो गये। हे राजन् ! वे ईश्वर हैं, उनकी गति स्वाधीन

यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः ॥ न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ॥ २४ ॥ न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसंभवात् ॥ लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥ २६ ॥ अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ॥ भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाऽरीनप्यसंयत्ताञ्जातक्षोभान्स्वनायकान् ॥ न्यषेधद्दैत्यराट्र श्लोक्यः संधिविग्रहकालवित् ॥ २८ ॥ ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ॥ श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९ ॥ महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः ॥ अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३० ॥

है ॥२६॥ श्री भगवान्के अंतर्धान होनेपर ब्रह्माजी और महादेवजी उन आदिपुरुषको प्रणाम करके अपने स्थानको चले गये, फिर देवता लोग संधि करनेका विचार कर राजा बलिके स्थान पर गये ॥२७॥ दैत्यराज बलि संधि (मेल) और विग्रह (लड़ाई) का अवसर भलीभांति जानते थे। इसी कारण वह यशस्वी थे, इसलिये शत्रु होनेपर भी इंद्रादि देवताओंको असज्जित देखकर क्षोभको प्राप्त हुए अपने सेनापतियोंको युद्ध करनेसे रोका ॥ २८ ॥ और जहां विरोचनका पुत्र त्रिलोकी को जीत असुर यूथपोंकरके रक्षित हो सुन्दरी रमणियोंसे सेवित हो विराजमान थे, देवता लोग वहां जाकर पहुँचे ॥२९॥ और महामति वाले इन्द्र मनोहर वचनोंसे समझाते हुए राजा बलिके

निकट भगवान् पुरुषोत्तमजीने समुद्र मथनेके विषयमें जो कुछ सिखा दिया था वह सब ही बतलाने लगे ॥ ३० ॥ इन्द्रके वचन राजा बलिको प्यारे लगे और वहांपर शम्बर, अरिष्टनेमि इत्यादि असुर और वृत्रपुरवासी जो-जो दानव थे, उन सबने भी इन वचनोंको माना ॥३१॥ हे परंतप ! इसके पीछे दानव और देवता लोगोंने परस्पर मिलाप किया और अमृतके निकालनेकी शपथ कर उसके लिये अत्यन्त यत्न करने लगे ॥३२॥ दानव लोग बल पूर्वक मन्दराचलको उखाड़कर लाये और सिंहनाद करते-करते उस पर्वतको क्षीरसमुद्रकी ओर ले चले ॥ ३३ ॥ यद्यपि इंद्रादिक देवगण और बलि इत्यादि दानव अतिशय शक्तिमान् थे, और उनकी भुजायें परिघके समान

तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ॥ शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥ ३१ ॥ ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ॥ उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परंतप ॥ ३२ ॥ ततस्ते मन्दगिरिमोजसोत्पाटच दुर्मदाः ॥ नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥ दूरभारोद्वहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः ॥ अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥३४॥ निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ॥ चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥३५॥ तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान् ॥ विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥ ३६ ॥ गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ॥ ईक्षया जीवयामास निर्जरान्निर्व्रणान्यथा ॥ ३७ ॥ गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ॥ आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥ ३८ ॥

थीं, तो भी दूरसे बड़ा भारी बोझ लानेके कारण देवता और दैत्य दोनों शीघ्र ही थक गये और उस पर्वतके बोझको जब न सँभाल सके तो मार्गमें ही रख दिया ॥ ३४ ॥ इन्द्र और बलि आदि देवता व असुरोंने जब उसको लाते-लाते मार्गमें छोड़ दिया तब वह पर्वत भारी बोझसे अनेक देवता व असुरोंको चूर्ण करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥ देवता और दानवोंकी जब इस पर्वतके लानेमें बांहें टूट गयीं, जांघें कट गयीं और उनके मन मलिन हो गये तब भगवान् गरुड़ध्वज यह बात जानते ही उसी समय वहां आकर उपस्थित हुये ॥ ३६ ॥ और पर्वतके गिरनेसे देव दानवोंको पिसा हुआ देख उन्हें अपनी दृष्टिसे सावधान करके फिर जिला दिया ॥३७॥ इसके पीछे लीलापूर्वक

एक हाथसे उस पर्वतको अपने वाहन गरुड़जीपर रख और स्वयं उसके ऊपर चढ़ समुद्रकी ओर ले चले और सुर-असुर भी चारों ओरसे घेरकर उनके पीछे चले ॥३८॥ समुद्रके निकट पहुँच गरुड़जीने अपने कन्धेपरसे आप ही उस पर्वतको उतार दिया, तब श्रीभगवान्‌ने जलके समीप भेज दिया। तात्पर्य यह है कि जहां गरुड़जी हों वहांपर वासुकी नहीं आ सकता * ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायाममृतमथने मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा—सप्तममें सागर मथ्यो, प्रकट्यो गरल कराल। डरकर सब शिवपहँ गये, कीजै दया दयाल ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुवंशावतंस परीक्षित्! "समुद्रके मथनेसे जो अमृत

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात्सुपर्णः पततां वरः ॥ ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धेऽमृतमथने मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ॥ परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदाऽन्विताः ॥ १ ॥ आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह ॥ हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥ तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुष चेष्टितम् ॥ न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ॥ ३ ॥

निकलेगा, इसमें तुम्हारा भी भाग रहेगा" यह कह देवता व असुर लोगोंने वासुकी नागको मथानीकी डोरी बनाकर उसको मन्दराचल पर्वतसे लपेटा, फिर आनन्दपूर्वक समुद्रका मंथन करने लगे ॥ १ ॥ वासुकी नागका मुख विषके दांत रहनेसे अत्यन्त तीव्र था, इसलिये चतुरतासे भगवान् हरिने प्रथम मथनेकी डोरीका वासुकीके मुखकी ओरका सिरा थामा, और देवता लोग भी उसी ओर गये। दैत्यपति लोग यह देखकर समझे कि मुखकी ओर पकड़ना विक्रमका कार्य है; इसलिये उन्होंने मुखकी ओर पकड़नेकी इच्छा की और

* कवित्त—तारो है निषाद प्रह्लादको उवार लियो, सादर अहल्या तरी पादरज लायकै। कहै जगन्नाथ हाथ धरि गिरि व्रजनाथ, पालो व्रज पाथते पुरन्दरं लजाय कै। बार न करी है नेक बानरके तारनेमें, कारन कहा है जगतारन कहाय कै। जोहत इतै हौं नहिं सोवत कितै है प्रभु, ऐसे ही बितैहौं कि चितैहौं चित लायकै ॥

बोले–देवतालोग मुखकी ओर नहीं पकड़ें॥२॥उन दैत्योंने उसमें बाधा देकर कहा कि हम वेदपाठ करते हैं और शास्त्र सुने हुए हैं, जन्म और कर्म द्वारा सर्वत्र विख्यात हैं, सर्पकी पूँछका भाग अमंगल है, हम उसको ग्रहण नहीं करेंगे ॥ ३॥ दैत्यलोगोंके यह वचन सुन भगवान् हरि मनमें मुसकाये और उन्होंने उसी समय वासुकी नागके शरीरका अग्रभाग छोड़कर देवता लोगोंके सहित पुच्छ भाग ग्रहण किया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! कश्यपनंदन दानवगण इस प्रकारका स्थानका विभाग करके मथनेकी डोरी पकड़ परमयत्नसे अमृत प्राप्त करनेके लिये समुद्रको मथने लगे ॥ ५ ॥ यद्यपि महाबलवान् और पराक्रमी देवता-असुरों द्वारा मन्थानदण्ड मंदर पर्वत पकड़ा गया था, तो भी मथन करते यह

स्वाध्याय श्रुतसंपन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः ॥ इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः ॥ ५ ॥ ममन्थुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ॥ मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥ ६ ॥ ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पाण्डुनन्दन ॥ ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ॥ आसन्स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥ विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसंधिः ॥ कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार॥८॥तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः ॥ दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनप्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥

मन्दर आधार–शून्य हो समुद्रके जलमें डूबने लगा॥६॥हे राजन् ! बलवान् भाग्यके वश इस प्रकारसे अपने-अपने पौरुषको नष्ट देखकर उन देवता व असुर लोगोंके अंतःकरण अतिशय क्षुभित हुए और मुख अत्यन्त मलिन हो गये ॥७॥ नारायण वीर्य अत्यन्त दुरंत और उसका संकल्प अत्यन्त सत्य है, उन्होंने उस समय अमृत निकालनेमें यह विघ्न हुआ देख उसी समय बड़ा भारी अद्भुत कच्छपरूप धारण किया और समुद्रमें प्रवेश करके पीठपर भलीभांति उस पर्वतको उठाकर अपने ऊपर धारण कर लिया ॥ ८ ॥ कुलाचल मन्दरके फिर उठने पर देवता और दानवलोग महाहर्षित हुए और फिर सबने समुद्र मथनेका उद्यम किया, कूर्मशरीरधारी भगवान् हरिने अपनी पीठका

विस्तार लाख योजनका कर लिया उसपर एक भले द्वीपके समान वह मन्थानदंड मंदरगिरिको धारण किये रहे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! देव दानवोंके भुजवीर्यसे कम्पायमान यह पर्वत सब प्रकारसे भ्रमण करने लगा, अप्रमेय आदि कूर्म प्रशस्त पीठपर धारण करके उस पर्वतके घूमनेको खुजलीके समान समझने लगे कि मानो कोई पीठपर खुजा रहा है ॥ १० ॥ फिर श्रीनारायणने असुराकारसे असुरोंमें प्रवेश कर उनके बल-वीर्यको बढ़ा दिया और देवाकारसे देवता लोगोंमें प्रवेश कर उनको चैतन्य किया और अबोधरूपसे नागेंद्र (वासुकी) में प्रवेश कर उसको सबल कर दिया ॥ ११ ॥ इसके पीछे हजार भुजा धारण करके दूसरे पर्वतके समान अपने हाथके द्वारा ऊपरसे

सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः ॥ बिभ्रत्तदावर्त्तनमादिकच्छपो मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ॥१०॥ तथाऽसुरानाविशदासुरेण रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ॥ उद्दीपयन्देवगणांश्च विष्णुर्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥ ११ ॥ उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ॥ तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यैरभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ॥ १२ ॥ उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः ॥ ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥ १३ ॥ अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुखश्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ॥ पौलोमकालेयबलील्वलादयो दावाग्निदग्धाः सरला इवाभवन् ॥ १४ ॥

मंदराचलको दाबकर स्थित रहे, यह आश्चर्य देख देवलोकमें ब्रह्मा, इंद्रादि देववृन्द फूल वर्षा-वर्षाकर श्रीनारायणकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! भगवान् हरिके ऊपर, नीचे और आत्माके अर्थात् देव दानवोंमें और पर्वत मन्थान रज्जु वासुकीमें प्रवेश कर जानेपर मदोत्कट देव दानवगण उत्कंठित हो मन्थानरूपी मंदराचलसे ऐसे वेगसे मथने लगे कि एक क्षणमें समुद्रके वास करनेवाले सब ग्राह क्षुभित हो गये ॥१३॥ और वासुकी नागके सहस्रों विकराल फण और श्वासोंसे अग्नि और धुँआ निकलने लगा कि जिससे पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल आदि असुर लोगोंका तेज नष्ट हो गया, इसलिये वह अति शीघ्र दावानलसे भस्म हुए सरकण्डेके समान प्रभाहीन हो गये ॥१४॥

देवतागण भी वासुकीके श्वाससे निकली हुई अग्निकी शिखासे प्रभाहीन होते थे और उनके वदन, वसन, भूषण, कंचुकादि धूम्रवर्ण हो रहे थे, परन्तु भगवान्‌के वश हुए मेघोंने उनके ऊपर जल वर्षाया और समुद्रकी तरंगोंके संयोगसे आया हुआ शीतल पवन उनके ऊपर चलने लगा इस लिये वे असुर लोगोंके समान व्याकुल नहीं हुए * ॥ १५ ॥ देवता असुर लोगोंके समूह करके मथे हुए समुद्रसे जब अमृत न निकला तब भगवान् हरि अजित अपने आपसे समुद्रको मथने लगे ॥ १६ ॥ मेघसमान श्यामवर्ण श्रीनारायण सुवर्णके समान

देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकाननान् ॥ समभ्यवर्षन् भगवद्वशा घना ववुः समुद्रोर्म्युपगूढवा-
यवः॥१५॥ मथ्यमाने तदा सिन्धौ देवासुरवरूथपैः ॥ यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाजितः स्वयम् ॥१६॥ मेघश्यामः
कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः ॥ जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा
मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥ १७ ॥ निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणं हालाहलाह्वमग्रतः ॥
संभ्रांतमीनोन्मकराहिकच्छपात्तिमिद्विपग्राहतिमिंगिलाकुलात् ॥ १८ ॥

पीताम्बर धारण किये बिजलीकी दमकके समान चमकीले कुण्डल पहने, जिनके मस्तकपर अलकें छिटक रहीं, माला पहने हुए, लाल-लाल नेत्र किये अपने अभय देनेवाले हस्तकमलोंसे मंदराचल द्वारा समुद्रको मथने लगे । उस समय ऐसी शोभा हो रही थी कि मानो एक पर्वत दूसरे पर्वतको मथ रहा है ॥१७॥ जब इस प्रकारसे समुद्र मथा गया तब उसमेंके मत्स्य, मकर, कछुए, सर्पादि अतिशय व्याकुल हुए और तिमि, जलहस्ती, नाके और तिमिंगिल सब घबड़ा गये । इसके पीछे उस समुद्रसे प्रथम हलाहल नाम महोल्वण विष निकला ॥१८॥

* शंका—सर्पके मुखकी श्वाससे निकला जो विष, उस विषकी अग्निसे जो देवता मूर्छित हो गये थे उन देवताओंको देखकर भगवान्‌की आज्ञा माननेवाले मेघोंने केवल उन्हींके ऊपर किस लिये वर्षा की ? उत्तर—विषके वीर्यको नाश करनेवाला रस अश्विनीकुमार वैद्यने मेघोंको दिया, उसी रसको मेघोंने जलमें मिलाकर अकेले देवताओंके ऊपर वर्षा की थी ।

अति उग्र वेगवाले, दशों दिशाओंमें ऊपर-नीचे उफनकर आनेवाले प्रतिकार रहित विषको देखकर देवता लोग विष्णु भगवान्से भी रक्षा न पाकर अत्यन्त भीत हो वे सब भूतनाथ भगवान्की शरणमें गये ॥ १९ ॥ उस कालमें देवदेव महादेवजी त्रिलोकीके उद्भवार्थ भगवती पार्वतीजीके सहित कैलास पर्वतपर विराजमान थे और जो मुनिलोगोंको मोक्षकी देनेवाली हैं, उस तपस्याको श्रीभोलानाथ कर रहे थे। प्रजापतिलोग समीप जाकर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे॥२०॥हे देवदेव! हे महादेव ! हे भूतात्मन्! हे भूतभावन! हम लोग आपकी शरणमें आये हैं, समुद्रसे निकला हुआ यह कालकूट विष त्रिलोकीको दग्ध किये डालता है, इससे हम लोगोंकी रक्षा कीजिये ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! आप सब जगतके बन्धन करने और मोक्ष देनेवाले ईश्वर हैं, निपुण ज्ञानी लोग आपकी ही पूजा किया करते हैं, आप परमगुरु

तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो विसर्पदुत्सर्पदसह्यवीर्यम् ॥ भीताः प्रजाः दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥१९॥ विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्याऽभिमतं मुनीनाम् ॥ आसीनमद्रावपवर्गहेतोस्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥२०॥ प्रजापतय ऊचुः ॥ देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन ॥ त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥२१॥ त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः ॥ तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥२२॥ गुणमय्या स्वशक्त्याऽस्य सर्वस्थित्यप्ययान्विभो ॥ धत्से यदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥ २३ ॥ त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः ॥ नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥ २४ ॥ त्वंशब्दयोनिर्जगदादिरात्मा प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः ॥ कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्मस्त्वय्यक्षरं यत्त्रिवृदामनन्ति ॥ २५ ॥

और शरण आये हुओंकी आर्तिके हरनेवाले हैं ॥ २२ ॥ हे विभो ! आप गुणमयी अपनी शक्तिसे, जब कि इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं तब हे भूमन् ! आपका ज्ञान स्वयंसिद्ध है, आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर यह तीन संज्ञा धारण करते हैं॥२३॥आपका ज्ञान ही परम गुह्य ब्रह्म है, आपसे ही देव तिर्यगादि सत् और असत् समस्त पदार्थ प्रकाशित होते हैं, बस, आपके अतिरिक्त और उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं है, आत्मरूपी आप ही अनेक शक्तियोंसे जगतरूप हुए हो इसलिये आप ही ईश्वर हैं ॥ २४ ॥ हे भगवन् ! आप ही वेदकी योनि हैं अर्थात् समस्त वेद आपसे ही उत्पन्न हुए हैं, इस कारण आपका ज्ञान स्वतः सिद्ध है, आप जगत्के आदि अर्थात् महत्तत्त्व हैं और

जिनके गुण, प्राण, इंद्रिय और द्रव्यके कारणीभूत हैं, वह राजसादि त्रिविध अहंकार भी आप ही हैं और आप ही स्वभाव, काल, संकल्प और सत्य व ऋतु जो धर्म है, यह भी सब आप ही हैं; क्योंकि त्रिगुणात्मक जो प्रधान, उसे ज्ञानी लोग आपके आश्रय कहा करते हैं ॥ २५ ॥ हे लोकभावन् ! समस्त देवतास्वरूप अग्नि आपके मुख हैं, पृथ्वी आपकी चरण है, काल आपका चलना है, सब दिशायें आपके कान हैं, वरुण आपकी रसना (जीभ) है, हम आपकी शरण हैं ॥ २६ ॥ आकाश आपकी नाभि है, पवन आपका श्वास है, सूर्य आपके नेत्र हैं, जल आपका वीर्य है, ज्ञानी लोग आपको अहंकारको पर और अपर जीवोंका आश्रय कहा करते हैं, इसलिये हे भगवन् ! चन्द्रमा आपका मन और स्वर्ग आपका मस्तक है ॥२७॥ हे प्रभो ! तीनों वेद आपकी मूर्ति हैं, समस्त समुद्र आपकी कोख

अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥ २६ ॥ नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ॥ परावरात्माश्रयणं तवात्मा सोमो मनो द्यौर्भगवञ्छिरस्ते ॥ २७ ॥ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघा रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ॥ छन्दांसि साक्षात् तव सप्तधातवस्त्रयीमयात्मन् हृदयं सर्वधर्मः ॥२८॥ मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः ॥ यत्तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं देवः स्वयं ज्योतिरवस्थितिस्ते ॥ २९ ॥ छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ॥ साक्षान्मतुः शास्त्रकृतस्तवेक्षा छन्दोमयो देवऋषिः पुराणः ॥ ३० ॥

है, समस्त पर्वत आपकी हड्डियाँ हैं, सब प्रकारकी ओषधि और लतायें आपके शरीरके रोम हैं, छन्द वेद तुम्हारे सात धातु हैं और प्रसिद्ध धर्म आपका हृदय है ॥ २८ ॥ हे ईश ! पञ्च उपनिषद् अर्थात् तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव, ईशान, यह पाँच मन्त्र आपके मुख हैं, इन मुखोंसे (३८) अड़तीस मन्त्र वर्ग होते हैं अर्थात् प्रथम कहे हुए पांच मन्त्रोंके पदच्छेदसे अड़तीस शकलात्मक मंत्र होते हैं। हे देव ! शिवनामसे प्रसिद्ध जो परमात्मतत्त्व है, वह आप ही हैं, आपकी उपरतावस्था स्वयं ज्योति है ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! आपकी छाया अधर्मकी ऊर्मियों (लहरों) में अर्थात् दम्भ लोभादिमें वर्तमान है, जिन लहरोंसे संहार हुआ करता है और सत्त्व, रज व तम ये तीन

गुण आपके तीन नेत्र हैं। हे प्रभो! आप शास्त्रकारी हैं, सांख्यज्ञान आपकी आत्मा है। हे देव! छन्दमय पुराण ऋषि अर्थात् वेद आपकी दृष्टि हैं ॥३०॥ हे गिरीश! आप परमज्योति अखिल लोकपाल ब्रह्मा, विष्णु और सुरेन्द्र इंद्रके गम्य नहीं हैं, इस ज्योतिमें रज अथवा तम वा सत्त्व कुछ भी नहीं है वह निरन्तर परब्रह्मस्वरूप है ॥३१॥ हे भगवन्! आपने कन्दर्प्प (कामदेव), दक्ष, यज्ञ, त्रिपुरा, कालकूट इत्यादि बहुतेरे प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले प्राणियोंका विनाश किया तो है,परन्तु वह सब कर्म तुम्हारे स्तुत्यर्थ नहीं हो सकते। आपके लिये तो यह कार्य अति छोटे हैं,क्योंकि प्रलयकालमें आपके नेत्रकी चिनगारीसे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान यह बड़ा भारी ब्रह्माण्ड जो भस्म हो जाता है; उसको भी तो आप अनदेखा करते हैं ॥ ३२ ॥ हे भगवन्! आत्माराम और विश्वके हितोपदेशक ज्ञानीलोग अपने-अपने हृदयमें आपके

न ते गिरित्राखिललोकपालविरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ॥ ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद् ब्रह्मनिरस्तभेदम् ॥ ३१ ॥ कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेकभूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते ॥ यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्रवह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद ॥ ३२ ॥ ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रिद्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाऽभितप्तम् ॥ कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने ते नूनमूर्तिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥ ३३ ॥ तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य नाञ्जः स्वरूपनमने प्रभवन्ति भूम्नः ॥ ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥

दोनों चरणोंका ध्यान किया करते हैं। आप ऐसे ही हैं ऐसा कोई नहीं जान सकता और आप सदा तप करनेमें लगे रहते हैं, जो लोग पार्वतीके साथ घूमता हुआ देखकर उनपर नितांत अनुरागी जान आपको कामी कहा करते हैं और श्मशानमें फिरता देखकर आपको कठोर और हिंसक कह कर प्रलाप करते हैं, वह क्या आपकी लीलाको जानते हैं? हम निश्चयसे कहते हैं कि वे कुछ भी नहीं जानते, इस कारणसे निर्लज्ज हो विचार न करके ऐसा प्रलाप करते हैं। अहो! जिनके चरणोंकी आत्माराम लोग सेवा करते हैं, क्या उनको कामदेव उत्पन्न हो सकता है? किन्तु जो सदा तप किया करते हैं वे शांत मूर्ति ही हो सकते हैं, उनमें हत्यापन वा कठोरपन किस प्रकार सम्भव हो सकता है? ॥ ३३ ॥ इसलिये हे देव! सत् और असत्से परे और परमपुरुष जो आप हैं उन आपका यथार्थ स्वरूप ब्रह्मा आदि भी

जाननेको समर्थ नहीं हैं, फिर भला वे आपकी स्तुति करनेको कैसे समर्थ होंगे ? हे प्रभो ! हम उन ब्रह्माजीकी सृष्टिमें अत्यन्त नये हैं, फिर हम भी आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं ? तथापि यह स्तुति जो कि यह केवल आत्मशक्तिका परिणाम है ॥ ३४ ॥ हे परमेश्वर ! यद्यपि हम सबने आपके अतिरिक्त और जो श्रेष्ठ रूप है, उसे नहीं देख पाया तथापि इसको ही देखकर कृतार्थ हो गये क्योंकि आप अव्यक्त कर्मकारी हैं; आपका इस रूपसे प्रगट होना लोककी रक्षा ही करनेके लिये हैं ॥३५॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित् ! भगवान् भूतनाथ (शिव) जो सब प्राणियोंके सुहृद हैं, वे प्रजागणोंका दुःख देखकर करुणानिधान करुणाके वश हो अत्यन्त दुःखित हुए और निकट बैठी हुई अपनी प्रिया सतीजीसे बोले ॥ ३६ ॥ कि हे प्यारी ! देखो ! देखो ! क्षीरसागरके मथे जानेसे उसके मध्यसे यह कालकूट

एतत्परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ॥ मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥ ३५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः ॥ सर्वभूतसुहृद्देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥ ३६ ॥ शिव उवाच ॥ अहो बत भवान्येतत् प्रजानां पश्य वैशसम् ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतात्कालकूटादुपस्थितम् ॥ ३७ ॥ आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ॥ एतावान् हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥ ३८ ॥ प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभंगुरैः ॥ बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥ ३९ ॥ पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ॥ प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ॥ तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥ ४० ॥

निकला और फिर इससे प्रजा लोगोंको कैसा दुःख उपस्थित हुआ है ॥३७॥ ये सब प्रजा प्राणोंकी रक्षा करनेको अत्यन्त व्याकुल हुई हैं, इनको अभय देना हमारा कर्त्तव्य है, क्योंकि दीन जनोंका पालन करना ही सामर्थ्यवान् पुरुषोंका कर्तव्य है, इसलिये साधुलोग क्षण-भंगुर विचार कर अपने प्राणोंसे भी दूसरोंकी रक्षा करते हैं॥३८॥हे भद्रे ! जो पुरुष परमात्माकी मायासे मोहित होकर परस्पर वैर बांध हिंसा करते हैं, उनके ऊपर जो पुरुष दया दिखाते हैं उनके प्रति सर्वात्मा हरि प्रसन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ हे देवि ! भगवान् हरिके प्रसन्न होनेसे चराचर सहित हम भी प्रसन्नताको प्राप्त होते हैं, इसलिये हम यह विष भक्षण करते हैं, जिससे हमारे द्वारा प्रजापुञ्ज सुखसे जीवनधारण करे ॥४०॥

हे परीक्षित् ! भवानीसे इस प्रकार कह भगवान् वृषवाहन (महादेवजी) उस विषको भक्षण करनेके लिये प्रस्तुत हुए। भगवती पार्वतीजी महादेवजीके प्रभावको जानती थीं, इसलिये वे हर्षित हुई ॥४१॥ इसके पीछे करुणासागर भूतभावन महादेवजी सब दिशाओंमें व्याप्त हुए उस हलाहल विषको ग्रहणकर हथेलीपर रखके भक्षण कर गये ॥ ४२ ॥ परन्तु हे राजन् ! उस कालकूटने महादेवजीको भी अपना पराक्रम दिखा दिया, क्योंकि उससे श्रीमहादेवजीका कण्ठ उसी समय नीलवर्ण हो गया, परन्तु वह करुणामय ईश्वरका भूषण स्वरूप हुआ॥४३॥ हे महाराज ! साधु पुरुषगण और दूसरेके सन्तापसे सन्तापित हुआ करते हैं, इसलिये अखिलात्मा परम पुरुषकी आराधना करनाही श्रेष्ठ है॥ ४४ ॥ देवदेव महादेवजीका यह आश्चर्यमय कार्य देखकर व सुनकर प्रजागण दाक्षायणी, ब्रह्मा, वैकुण्ठनाथ

श्रीशुक उवाच ॥ एवमामन्त्र्य भगवान् भवानीं विश्वभावनः ॥ तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञाऽन्वमोदत ॥ ४१ ॥ ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ॥ अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥ ४२ ॥ तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ॥ यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ ४३ ॥ तप्यन्ते लोक तापेन साधवः प्रायशो जनाः ॥ परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥ ४४ ॥ निशम्य कर्म तच्छंभोर्देवदेवस्य मीढुषः ॥ प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ॥ ४५ ॥ प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किंचिज्जगृहुः स्म तत् ॥ वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च ये परे ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अमृतमंथने गरपानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पीते गरे वृषांकेण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ॥ ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

सब ही बड़ाई करने लगे ॥४५॥ महाराज ! उसी हलाहलके पीनेके समयमे जो महादेवजीकी हथेलीसे खसककर विष गिर पड़ा था, वह विच्छू, साँप, विषमय औषधि और दन्दशूक गणोंने ग्रहण किया था, इसलिये यह सब तीव्र हुए हैं, जब यह इतने अधिक तीव्र हुए तब इसका विचार भी सहजसे ही किया जा सकता है कि वह कालकूट कितना तीव्र विष रहा होगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषा० टी० अमृतमंथने शिवकृतगरादननिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा-अष्टम प्रगटी लक्ष्मी, वरे विष्णु भगवान् । सुधा लिये धन्वन्तरी, पुनि प्रगटे सज्ञान ॥ अनन्तर श्री शुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे, कि हे परीक्षित् ! जब भगवान् वृषवाहनजीने

कालकूट पान किया, तब देव और दानवगण अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर अतिशीघ्रतासे समुद्रको मथने लगे, तब समुद्रमें सुरभी गौ निकली ॥१॥ ब्रह्मवादी ऋषि लोगोंने ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाले जो यज्ञ हैं, उनमें पवित्र हविके लिये इस गायको ग्रहण किया ॥ २ ॥ इसके पीछे उच्चैःश्रवानामक चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण एक घोड़ा निकला, उसके लेनेकी इच्छा दैत्यराज बलिने की, परंतु ईश्वरकी शिक्षासे देवराज इन्द्रने उसके लेनेकी अभिलाषा न किया ॥ ३ ॥ इसके पीछे ऐरावत नामक गजेन्द्र निकला । इस हाथीके चार दाँत, पर्वतके शिखरके तुल्य और वह चन्द्रमाके तुल्य श्वेतवर्ण था । वह अपने श्वेतवर्णवाले चार वदनोंसे कैलास पर्वतकी महिमाको हरण कर रहा था ॥ ४ ॥

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥२॥ तत उच्चैश्श्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः ॥ तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥ तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः ॥ दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४ ॥ कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः ॥ तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलंकरणे मणौ ॥५॥ ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम् ॥ पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैःशश्वद्भुवि यथा भवान् ॥६॥ ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥ रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ॥ ७ ॥

इसके पीछे समुद्रसे कौस्तुभ नामक महामणि निकली, भगवान् हरिने उसकी दमक देखकर उससे अपनी छातीको सजानेकी अभिलाषा किया अर्थात् ग्रहण किया ॥ ५ ॥ इसके पीछे पारिजात (कल्पवृक्ष) निकला, यह वृक्ष देवलोकका भूषण हुआ । हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जैसे आप अर्थ देकर याचकोंकी प्रार्थना पूर्ण करते हो, वैसेही वह वृक्ष निरन्तर समस्त काम देकर याचना करनेवालोंकी प्रार्थनाको पूर्ण करता है ❀ ॥६॥ इसके पीछे सब अप्सरायें निकलीं, कण्ठमें मणियाँ धारण किये हुए और अत्यन्त शोभायमान वस्त्राभूषण पहन रही

* शंका—सतयुग, त्रेता, द्वापरमें बड़े दानी राजा हुए और उनकी बड़ी बड़ी आयुष थी, परंतु सब प्राणियों की आशा पूर्ण करने में उनको मुनि लोगों ने ऐसी उपमा नहीं की जैसी उपमा याचकोंके मनोरथ पूर्ण करनेके लिये शुकदेवजीने कल्पवृक्षकी उपमा परीक्षितकी को ऐसी उपमा किसी राजाकी नहीं की यह बड़े संदेह की बात है ?

उत्तर—संसार के सुखकी जो याचना करनेवाले प्राणी हैं उनकी आशा पूर्ण करने में यह उपमा मुनियों ने परीक्षितकी नहीं की, यह उपमा तो भागवतकी याचना पूर्ण करने में परीक्षितको शुकदेवजी कल्पवृक्ष के तुल्य कहते हैं, क्योंकि राजा परीक्षित भागवत को सुनके बूझ-बूझकर बहुत कथा का विस्तार किया इसलिये कल्पवृक्ष की उपमा राजा परीक्षितको श्रीशुकदेवजीने दी ।

थीं, वे मनोहर चालढाल और कटाक्षके अवलोकनसे स्वर्गवासियोंको रमण कराती हैं॥७॥ हे राजन्! इसके पीछे साक्षात् लक्ष्मीजी-मूर्ति धारण कर प्रकट हुई। ये भगवत्परायण समुद्रसे प्रकट हो स्फटिकादि मणिमय पर्वतके शिखरपर चमकती हुई बिजलीके समान अपनी कांतिसे सब दिशाओंको प्रकाशित करने लगीं ॥८॥ उनका रूप, उदारपन, वयस, रंग और महिमाको देखकर सुर असुर, सबका ही हृदय खिंच गया इसलिये सबने ही उनके प्राप्त करनेकी अभिलाषा की ॥९॥ लक्ष्मीजीको देखते ही देवराज इन्द्रने अभिषेकके लिये उनके अर्थ बड़ा भारी अद्भुत आसन ला दिया और बड़ी-बड़ी नदियाँ मूर्तिमान् होकर सुवर्णके कलशोंमें पवित्र जल भर लायीं ॥ १० ॥ अभिषेक करनेमें जिन औषधियोंकी आवश्यकता होती है; उन सबको पृथ्वीने ला दिया और गायें पवित्र पञ्चगन्ध और वसंतऋतुके चैत महीनेका

ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्रीरमा भगवत्परा ॥ रंजयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामनी यथा ॥ ८ ॥ तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ॥ रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥ तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् ॥ मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचिः ॥ १० ॥ आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः ॥ गावः पञ्च पवित्राणि वसंतो मधुमाधवौ ॥ ११ ॥ ऋषयः कल्पयांचक्रुरभिषेकं यथाविधि ॥ जगुर्भद्राणि गंधर्वा नटयश्च ननृतुर्जगुः ॥ १२ ॥ देवा मृदंगपणवमुरजानकगोमुखान् ॥ व्यनादयन् शंखवेणुवीणास्तुमुलनिस्स्वनान् ॥ १३ ॥ ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ॥ दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥ १४ ॥ समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ॥ वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥ १५ ॥

उत्पन्न हुआ मधु (शहद) ले आयीं ॥११॥ फिर ऋषि लोगोंने शास्त्रके अनुसार अभिषेकके लिये विधिका विचार किया। इसके पीछे गन्धर्व लोगोंने मीठे-मीठे स्वरोंसे गाना आरम्भ किया और समस्त नदी नृत्य करने लगीं ॥१२॥ और मेघोंके समूह मृदंग, ढोल, मुरज, नगाड़े, सहनाई, शंख, अलगोजे आदि जिन बाजोंकी बड़ी ध्वनि होती है उन सबको बजाने लगे ॥१३॥ हे राजन्! इसके पीछे दिग्गजोंने पूर्ण कलश और ब्राह्मणोंके उच्चारण किये गये वेदमन्त्रोंसे कमल हाथमें लिये उन लक्ष्मीजीका अभिषेक किया ॥ १४ ॥ इसके पीछे समुद्रने लक्ष्मीजीके पहननेको पीतवर्णके दो रेशमी वस्त्र दिये, वरुणजीने मतवाले भौंरे जिसके चारों ओर घूमते हैं ऐसी वैजयन्ती माला दी ॥१५॥

विश्वकर्माने विविध भूषण, सरस्वतीजीने हार, ब्रह्माजीने पद्म और सब सागरोंने कुण्डल लाकर दिये ॥ १६ ॥ इसके पीछे स्वस्तिवाचन की हुई लक्ष्मीजी नाद कर रहे हैं भौंरे जिसमें ऐसी कमलकी माला हाथमें लेकर चलनेकी इच्छा करने लगीं। उनका वदन कपोलोंपर लटकते हुए दो कुण्डलोंसे और सलज्ज हास्यसे अतिशय शोभायमान हो रहा था ॥ १७ ॥ और दोनों उरोजोंपर चन्दन और कुंकुम लगा हुआ था, वह कृशोदरी रमा मनोहर नूपुरोंकी झनकार करती हुई इधर-उधर चरण धरती हुई चञ्चल हेमलताकी नाईं महाशोभाको पा रही थीं ॥ १८ ॥ हे राजन्! वे अपने दोष रहित आश्रयके लिये चारों ओर देखने लगीं, परन्तु जिसमें नये सद्गुण विराजते हों ऐसा आश्रय गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, चारण वा स्वर्गके रहनेवाले देवता इन सबमें किसीको न पाया, इन सबोंमें एक न एक दोष लक्ष्मीजीको जान पड़ने

भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले ॥ १६ ॥ ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं नदद्विरेफां परिगृह्य पाणिना ॥ चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥ १७॥ स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम् ॥ ततस्ततो नूपुरवल्गुशिञ्जितैर्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥ १८ ॥ विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः पदं ध्रुवं चाव्यभिचारि सद्गुणम् ॥ गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारणत्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ॥ १९ ॥ नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो ज्ञानं क्वचित्तच्च न सङ्गवर्जितम् ॥ कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः ॥ २० ॥ धर्मः क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् ॥ वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं नहि द्वितीयो गुणसङ्गवर्जितः ॥ २१ ॥

लगा ॥१९॥ बस, उन्होंने विचार कर देखा कि किसी-किसी पुरुषमें (दुर्वासादिमें) तपस्या तो है, परन्तु क्रोधका जीतना नहीं है, किसी-किसी पुरुषमें (शुकादिमें) ज्ञान तो है, परंतु संगका त्याग नहीं है, कोई-कोई पुरुष (ब्रह्मा-सोमादि) महान् तो हैं परंतु कामजयी नहीं हैं, और जो पुरुष (इन्द्रादिक) हैं, वे पराई राह तकनेवाले हैं, फिर भला वे ईश्वर कैसे हो सकते हैं ? ॥ २० ॥ और किसी-किसी पुरुषमें (परशुरामादिमें) धर्म तो है, परन्तु सब प्राणियोंके ऊपर दया नहीं है, किसी राजामें (शिबिप्रभृतिमें) त्याग है तो सही, परंतु मोक्षार्थका त्याग नहीं है, किसी-किसी पुरुषमें (कार्तवीर्य्यार्जुनादिमें) वीर्य तो है, परंतु कालका वेग उनसे नहीं रुक सकता, जो लोग

(सनकादि) गुणसंगसे रहित हैं वे समाधिपरायण हैं, इसलिये वे भी विवाह के योग्य नहीं हैं ॥ २१ ॥ कोई पुरुष (मार्कण्डेयादि) चिरञ्जीवी तो हैं, परंतु वे भी मंगलशील नहीं हैं, कोई-कोई पुरुष (हिरण्यकशिपु आदि) मंगलशील तो हैं परंतु उन लोगोंकी आयु की स्थिरता नहीं जानी जाती; एक पुरुषमें (रुद्रमें) शील-स्वभाव और आयुका स्थिरपन दोनों बातें हैं और कोई दोष भी नहीं है, परन्तु तो भी वे स्वयं अमंगल रूप हैं, क्योंकि उनका श्मशानमें सदा वासादि करना अमंगलकी ही चेष्टा है । लक्ष्मीजी यह विचार करके फिर श्रीमुकुंदजीको निहारकर बोलीं कि यहाँपर ये तो सब भाँतिसे सुमंगलरूप हैं, परंतु ये आत्माराम हैं, इसलिये जी नहीं चाहता,कि हम इनको वरें और अपना प्राणेश्वर बनायें ॥ २२ ॥ हे राजन् ! लक्ष्मीने इस प्रकारसे विचार करके देखा कि भगवान् मुकुंद अव्यभिचारी धर्मज्ञानादि सद्गुणशाली और अपने ही नित्य आश्रित हैं, इसलिये सर्वापेक्षा उत्तम जाननेपर यद्यपि उन्होंने (लक्ष्मीजीने) इन (श्रीनारायणजी) को दृष्टि उठाकर

क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमङ्गलं क्वचित्तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः ॥ यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः सुमंगलः कश्च न काङ्क्षते हि माम् ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणैर्वरं निजैकाश्रयताऽगुणाश्रयम् ॥ वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥ २३ ॥ तस्यांसदेश उशतीं नवकञ्जमालां माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ॥ तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥ २४ ॥

नहीं देखा, तो भी इनको प्राणेश्वर बनानेकी अभिलाषा की । अधिक करके भगवान् मुकुंद प्रकृतिके गुणसे परे हैं, विशेष करके अणिमादि गुण सब उनमें वर्त्तमान हैं,यह देखकर लक्ष्मीजीने इनके वरनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की "अर्थात् लक्ष्मीजीने कहा कि यद्यपि भगवान् स्वयं आत्माराम होनेके कारण औरकी अपेक्षा नहीं करते तथापि इनका आश्रय जो अणिमादि सिद्धि किये हुये हैं और उन सबकी भी यह जैसे उपेक्षा नहीं करते वैसे ही जब मैं इनका आश्रय लूँगी,तब ये मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे, इससे मैं इनकी सेवा कर कृतार्थ हो सकूंगी, फिर और प्राकृत देवादिकोंसे क्या होगा ?" यह विचार कर श्रीनारायणको ही वरण किया ॥ २३ ॥ इन लक्ष्मीजीके हाथमें जो कमलफूलोंकी कमनीय माला थी, जो कि मतवाले भौंरोंके गुंजार करनेसे शब्दायमान हो रही थी, लक्ष्मीजीने प्रथम वह माला श्रीवैकुण्ठनाथके

गलेमें डाल दी और उनके अनुग्रहकी वाट देखती हुई चुपचाप हो अलग खड़ी हो गयीं, परंतु उनका भाव देखकर भलीभाँति जाना गया कि सलज्ज हास्यसे विकासमान नमन योगसे मानो भगवान्का वक्षस्थल जो निजधाम है, उस अपने धामको लक्ष्मीजी प्राप्त हुई हैं। बस, वह लजीले नेत्रोंसे भगवान्के वक्षस्थलकी प्रतीक्षा करने लगीं ॥ २४ ॥ फिर शीघ्र ही रमानाथने अपने वक्षस्थलको जगज्जननी अतिविपुल वैभवशालिनी उन लक्ष्मीजीका वासस्थान निश्चय कर दिया। हे राजन्! भगवान्के वक्षस्थलमें स्थान प्राप्त होकर लक्ष्मीजीकी करुणासहित चितवनद्वारा अपनी प्रजा और लोकपालों सहित त्रिलोकीको वर्द्धित करने लगीं ॥ २५ ॥ यह देखकर देवतागणोंके सेवक

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षो निवासमकरोत्परमं विभूतेः ॥ श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन नीरीक्षणेन यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥ २५ ॥ शङ्खतूर्यमृदंगानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ॥ देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥ २६ ॥ ब्रह्मरुद्रांगिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ॥ ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः ॥ २७ ॥श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ॥ शीलादिगुणसंपन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥ ॥ २८ ॥ निस्सत्त्वा लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपा ॥ यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥ अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना ॥ असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥ ३० ॥

लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ नाचने लगे और शंख, तुरही, मृदंगादि सबका पृथक्-पृथक् शब्द हुआ ॥२६॥ और ब्रह्मा, रुद्र, अंगिरादि यह सब विश्वके उत्पन्न करनेवाले फूल वर्षाकर विष्णुप्रतिपादक यथार्थ मंत्र उच्चारण करके श्रीभगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ देवतागण और प्रजापतिसमूह लक्ष्मीजीकी दृष्टिसे देखे जानेपर शीलादि गुणसम्पन्न हुए और उन सबको परम आनन्द हुआ ॥ २८ ॥ परन्तु लोलुप दैत्य व दानवगण लक्ष्मीजीसे उपेक्षित होनेपर सत्त्वरहित और निरुद्यम होने लगे ॥ २९ ॥ इसके पीछे कमललोचना कुमारीरूपसे वारुणी देवी अर्थात् अन्नमयी सुरा उस समुद्रसे निकली भगवान् हरिकी अनुमति (सलाह) से असुर लोगोंने इस

कन्याको ग्रहण किया ॥ २० ॥ इसके पीछे फिर देवता व दैत्यगण समुद्रको मथन करने लगे। हे राजन्! तब समुद्रसे एक परम आश्चर्य मय पुरुष निकला ॥ ३१ ॥ उसकी भुजायें लम्बी और पुष्ट थीं; गर्दन शंखकी नाभि समान तीन रेखाओंसे अंकित और सुन्दर गोल थी, उसका रंग श्याम था और अनेक प्रकारके आभूषण धारण कर रहा था ॥३२॥ उसके सब वस्त्र पीले थे; छाती चौड़ी थी और दोनों कानोंमें मणिजटित कुण्डल पहने हुए थे, उसके केश अति सुन्दर प्रांतभागतक चिकने और घूँघर वाले दृष्टि आते थे और उसका विक्रम सिंहके समान था॥३३॥वह भुजाओंमें कंकण पहनकर अमृतका पूर्ण कलश धारण किये हुए था। हे राजा परीक्षित्!वह पुरुष साक्षात् श्रीभगवान् वैकुण्ठनाथके अंशसे उत्पन्न हुआ था ॥३४॥ इनका नाम धन्वन्तरि था, आयुर्वेदके पारदर्शी और यह यज्ञभागके पानेवाले थे। इन

अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः ॥ उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥ ३१ ॥ दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ॥ श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥३२॥ पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ॥ स्निग्धकुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ॥३३॥ अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद्वलयभूषितः ॥ स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसंभवः ॥ ३४ ॥ धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्य भाक् ॥ तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम् ॥३५॥ लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाऽऽहरन् ॥ नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने ॥ ३६ ॥ विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ॥ इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान् भृत्यकामकृत् ॥ मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥ ३७ ॥ मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥ ३८ ॥

धन्वन्तरिजीके हाथमें अमृतका भरा हुआ कलश देखकर असुर लोगोंने सब अमृत पानेकी वासना करके बलपूर्वक उस कलशको छीन लिया ॥३५॥ जब अमृतका कलश लेकर असुर भागनेको उपस्थित हुए तब देवता लोग अत्यन्त शोकाकुल हो श्रीभगवान् हरिकी शरणमें गये ॥३६॥ अपने सेवक लोगोंकी मनोकामनाको पूर्ण करनेवाले श्रीभगवान् देवता लोगोंकी ऐसी दीनता देखकर उनको समझाकर बोले कि हे देवगण! हम योगमायासे तुम्हारे अर्थकी सिद्धि करेंगे,तुम लोग शोक मत करो॥३७॥हे राजन्! इसके पीछे असुर लोगोंमें परस्पर क्लेश आरम्भ हुआ। अमृतके लिये सबही अभिलाषी होकर कहने लगे कि—"प्रथम हम, प्रथम हम" "तुम नहीं, तुम नहीं" ॥ ३८ ॥

और जो दानव लोग बल नहीं दिखा सकते थे,वे लोग मत्सरयुक्त होकर कलशधारियोंको वारंवार रोकने लगे कि देवता लोगोंने भी अमृत निकाल
नेमें बराबर परिश्रम किया है इसलिये सच्चाईसे जो उनका अंश हो उस अंशको देवता लोग भी पायें जिसको जो भाग लेना है उसको
वह देना ही सनातन धर्म है ॥३९॥४०॥ हे परीक्षित् ! इस समयमें सब उपायोंके जाननेवाले भगवान् विष्णुने परम आश्चर्यमय अनिर्वच-
नीय स्त्रीका रूप धारण किया ॥ ४१ ॥ यह रूप देखनेमें नील कमलके फूलके समान श्यामवर्ण; दोनों कर्ण समान और मनोहर,
कर्ण फूलोंसे भूषित कमलकेसे नेत्र और सुंदर नासिका ॥ ४२ ॥ और नये यौवनके वेगसे जो उरोजोंका भार हुआ था इसलिये
उदर अतिकृश हो रहा था । हे राजन् ! उसके मुखकी सुगन्धसे भ्रमरगण अनुरागी हो रहे थे,कि जिससे उसके दोनों नेत्र चकित हो रहे थे

देवाः स्वं भागमर्हन्ति ये तुल्यायासहेतवः ॥ सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥३९॥ इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया
जातमत्सराः ॥ दुर्बलाः प्रबलान् राजन् गृहीतकलशान् मुहुः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ॥
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधारपरमाद्भुतम् ॥ ४१ ॥ प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् ॥ समानकर्णाभरणं सुकपो-
लोन्नसाननम् ॥ ४२ ॥ नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् ॥ मुखामोदानुरक्तालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम् ॥ ४३ ॥ विभ्र-
त्स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ॥ सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजांगदभूषितम् ॥ ४४ ॥ विरजाम्बरसंवीतनितम्बद्वी-
पशोभया ॥ काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥ ४५ ॥ सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ॥ दैत्ययूथपचेत-
स्सु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥४६॥ इति श्रीभागवते म० अष्टम० अमृतमथने मोहिनीरूपधारणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

॥४३॥उसके केशोंमें चँबेलीके फूल गुँथे हुए थे,सुन्दर कण्ठपर मनोहर भूषण लटककर चटक रहे थे,दोनों भुजाओंमें भुजबन्द देवता दैत्योंके
बन्द ढीले कर रहे थे ॥ ४४ ॥ उसके नितम्बस्वरूप दीप निर्मल बसनसे ढके हुए थे, उनमें कमनीय काञ्ची (तगड़ी) पड़ी थी,
चलनशील चरणोंमें नूपुर झनकार कर रहे थे ॥४५॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे महाराज ! वह कामिनी लजीले शरमीले हास्य सहित
जो कटाक्ष कर रही थी; उसके विलाससहित अवलोकनसे वारंवार दैत्यलोगोंके मनमें मार, मार मारकर रहा था॥४६॥इति श्रीमद्भागवते
महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां भगवन्मोहिनीरूपधारणनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—मोहित होकर दैत्य सब, सुधा कलश दे दीन्ह । सब असुरोंको मोहिनी, नवमें वंचन कीन्ह ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! असुर लोग परस्पर सुहृदपन त्याग उस अमृतपूर्ण कलशको छीन चोरोंके समान आचरणकर धक्कमधक्का करने लगे कि, इतनेमें ही उन्होंने देखा कि एक मनमोहिनी सोहनी तरुणी स्त्री उनके निकट चली आती है ॥१॥ यह दैत्य लोग उसके देखते ही कामदेवके वश होकर कहने लगे कि अहो ! यह क्या मनोहर सुन्दरता है, कैसी अद्भुत कांति है, कैसा अनुपमवाला यौवन है । इस प्रकारसे कहते-कहते उन कामातुर दैत्योंने उसके निकट जाकर पूछा कि ॥२॥ हे कमलदलनयनी ! तुम कौन हो ! और कहांसे आयी हो ? क्या करनेकी इच्छा है ? तुम किसकी वधू अथवा सुता हो ? वह कहो । हे सुन्दर जंघाओंवाली! तुमको देखकर हमारा मन मोहित हो गया है॥३॥ हे सुन्दरी ! हम लोगोंको निश्चय

श्रीशुक उवाच ॥ तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः ॥ क्षिपन्तो दस्युधर्माणं आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥१॥ अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ॥ इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥२॥ का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि ॥ कस्यासि वद वामोरु मथ्नन्तीव मनांसि नः ॥ ३ ॥ न वयं त्वाऽमरैर्दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्चकुतो नृभिः ॥ ४ ॥ नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषिताऽसि शरीरिणाम् ॥ सर्वेन्द्रियमनःप्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥५॥ सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि ॥ ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥ ६ ॥ वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः ॥ विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ ७ ॥

जान पड़ता है कि—देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, चारण अथवा लोकपाल इनमेंसे किसीने भी अभीतक तुमको नहीं छुआ है, फिर इसकी क्या सम्भावना है कि मनुष्यगण तुम्हें स्पर्श कर सकें !॥४॥ हे सुभ्रु ! हम जानना चाहते हैं कि शरीरधारियोंकी सब इंद्रियाँ और अन्तःकरणमें प्रीति उपजानेके लिये दयावान् होकर क्या विधाताने तुमको यहां भेज दिया है ? या अपनी इच्छानुसार यहां आयी हो? हमतो जानते हैं कि विधाताने तुमको भेजा होगा ॥ ५ ॥ हे भामिनि ! हमारी यह सब जाति एक वस्तुकी चाहना कर परस्पर झगड़ा कर वैर बांधे हुए है, वह तुम हम सबका झगड़ा निपटाकर हम लोगोंका मंगल करो ॥ ६ ॥ हम कश्यपजीकी सन्तान हैं परस्पर भाई-भाई हैं । सभीने पौरुष

प्रकट किया है यह अमृतका कलश लेकर तुम न्यायानुसार हम सबको बांट दो कि जिसमें हम लोगोंके बीच परस्पर भेद न हो ॥ ७ ॥ हे राजन् ! मायाके द्वारा स्त्रीका रूप धारण किये हुए भगवान् विभु इस प्रकार दैत्य लोगोंकी प्रार्थना सुनकर हँसे और मनोहर कटाक्षसे देखते-देखते वक्ष्यमाण वचन कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि हे कश्यपपुत्रगण हम व्यभिचारिणी हैं, तुमने किस प्रकार हमारा विश्वास किया ? पण्डित लोग कदापि स्त्रियोंका विश्वास नहीं करते * ॥९॥ हे देवरिपुगण ! शालावृक (कुत्ता) और व्यभिचा-

इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः ॥ प्रहस्य रुचिरापांगैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथं कश्यपदायादः पुंश्चल्यां मयि संगताः ॥ विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु न याति हि ॥ ९ ॥ सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ॥ सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ॥१०॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुरा ॥ जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥ ११ ॥ ततो गृहीत्वाऽमृतभाजनं हरिर्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा ॥ यद्यभ्युपेतं क्व च साध्वसाधु वा कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् ॥ १२ ॥ इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुंगवाः ॥ अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत ॥ १३ ॥

रिणी स्त्री इनकी मित्रता अनित्य है, क्योंकि यह दिनदिन नये-नये ढूंढते हैं ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! असुरलोग इस मोहिनी नारीके ऐसे परिहास वचनोंको सुन उसका विश्वास कर किसी अभिप्रायसे गम्भीरतापूर्वक हँसने लगे और पीछे वह अमृतका कलश उसको सौंप दिया ॥ ११ ॥ मोहिनीरूप हरि अमृतका कलश हाथमें लेकर मन्द मुसकानसे मुखको शोभायमान कर कहने लगे कि हम

* शंका—दैत्योंके छलनेके लिये भगवान्ने सब रूपोंको त्यागकर संसारमें अत्यन्त निन्दायोग्य वेश्याका रूप क्यों किया । यदि कोई कहे कि राक्षसोंको मोहनेके लिये माया करके वेश्याका रूप धारण किय तो भी अन्याय है, क्योंकि क्या और किसी दूसरे रूपसे राक्षसोंको नहीं मोह सकते थे ? भगवान् बड़े-बड़े महात्माओंको मोह उत्पन्न कर देते हैं तो राक्षसोंको मोह उत्पन्न कर देना क्या बड़ी बात थी ।

उत्तर—सत्ययुगमें भगवान् नारदमुनिको माया द्वारा स्त्री बना दिया था, देवी भागवत्में लिखा है कि जब नारदजीको बने सहस्त्रों वर्ष व्यतीत हो गये तब नारद मायासे छूट पुरुषरूप हुए । तब भगवान्को शाप दिया कि हे भगवन् ! तुम भी कभी हम सरीखे स्त्री रूप में हो जाओगे इसलिये भगवान्ने वेश्याका रूप धारण किया ।

जो कुछ करें, वह भला हो चाहे बुरा हो उसको जो तुम अंगीकार कर लो तो हम इस अमृतको बांट सकती हैं ! उनके यह वचन सुन प्रधान-प्रधान असुर लोग "अच्छा ऐसा ही होगा" यह कहकर सम्मत हुए और उन मोहिनीरूप श्रीनारायणकी इच्छाको नहीं जाना ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त असुरोंने उपवास करके स्नान किया और हव्यसे अग्निमें होम कर गौ, ब्राह्मण और सब प्राणियोंको नमस्कार करने लगे, फिर ब्राह्मणलोगोंने उनके मंगलके लिये स्वस्तिवाचन किया ॥ १४ ॥ फिर वे असुरलोग अपने-अपने मनमाने नये-नये वस्त्र पहनकर सब ही सुन्दररूपसे विभूषित हो पूर्वकी ओरको बिछे हुए कुशोंपर जाकर बैठ गये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जिस गृहमें अमृत बांटना नियत हुआ था, वह गृह धूप-दीपसे सुगंधित और मालाओंसे सजाया गया था। देव-दानवलोग उसमें पूर्वकी ओरको मुख करके बैठे ॥ १६ ॥ फिर

अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषाऽनलम् ॥ दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥ १४ ॥ यथोपजोषं वासांसि परिधायाहतानि ते ॥ कुशेषु प्राविशन् सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः ॥ १५ ॥ प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च ॥ धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥ १६ ॥ तस्यां नरेन्द्र करभोरुरुशद्दुकूलश्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी ॥ सा कूजती कनकनूपुरशिञ्जितेन कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ॥ १७ ॥ तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्णनासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् ॥ संवीक्ष्य संमुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकान्ताम् ॥१८॥

वह मनमोहिनी नारी लचक-मचक अमृतका कलश हाथमें ले उनके बीचमें गयी। उसकी दोनों जाँघें केलेके समान चिकनी, श्रोणीतट रेशमसे ढका हुआ है, नितम्बोंके भारसे चाल मन्द-मन्द है, दोनों नेत्र मदसे मतवाले हैं दोनों कुच अनारके समान हैं, वह कनकमय नूपुरोंकी ध्वनि व झनकारसे मानों अव्यक्त ध्वनि कर रही थी ॥१७॥ कानोंमें रत्नजटित कुण्डल धारण किये, मनोहर कपोल, चन्द्रमासा मुखारविन्द, मनहरण नासिका, परदेवता नाम लक्ष्मीजीकी सखी, जिसके स्तनोंपरका झीना वस्त्र वारंवार पवनकी झकोरसे गिर-गिर पड़ता था और वह सँभालती जाती थी, इसलिये उस मोहिनी-सोहिनी प्यारी नारीको देखकर देवता व असुर सबको ही मोह उत्पन्न हुआ ॥१८॥

हे महाराज ! जब इस प्रकार देव-दानव दोनों दल मोहित हो गये तब मोहिनीरूप श्रीभगवान्ने विचारा कि सर्पोंको दूध पिलानेके समान असुर लोगोंको अमृतका पिलाना अन्याय है, दैत्य लोगोंने हमारे किये बुरे भले कर्म सब स्वीकार कर लिये हैं, इससे हम देवता-लोगोंको ही अमृत पिलायें, अधिक करके दैत्योंने न्यायानुसार बांट बांटकर लेनेको कहा और इन दैत्योंकी सब ही जाति क्रूर है, इसलिये उनको अमृतका अंश देना ठीक नहीं । यह विचार कर मोहिनीने दैत्योंको अमृतका भाग देनेकी इच्छा नहीं की ॥ १९॥ इसके पीछे उस मनमोहनीने देवता व दैत्योंकी पृथक्-पृथक् पंक्ति करके उनको अलगअलग अपनी-अपनी पांतिमें बैठाया ॥ २० ॥ इसके पीछे कलश ग्रहण करके बहुत मान और प्रिय भाषणादिसे धोका दे, दैत्योंको उल्लंघन कर देवता लोगोंके दूर रहनेपर भी उनको ही जाकर अमृत पिलाने

असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् ॥ मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥ १९ ॥ कल्पयित्वा पृथक् पङ्क्तीरुभयेषां जगत्पतिः ॥ तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पंक्तिषु ॥२०॥ दैत्यान् गृहीतकलशो वञ्चयन्नुपसंचरैः ॥ दूरस्थान् पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥ २१ ॥ ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं नृप॥तूष्णीमासन् कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया॥२२॥तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः॥ बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किंचन विप्रियम् ॥२३॥

लगी कि जिस सुधा (अमृत) से न कभी मृत्यु हो, न बूढ़ापन ही सताये ॥ २१ ॥ हे राजन् ! असुर लोगोंने स्वयं मोहिनीका करना-धरना सब स्वीकार कर लिया था, इसलिये अपने किये समयको चुपचाप पालन कर रहे । कभी-कभी मोहिनी भगवान् कनखियोंसे दैत्यलोगोंके ऊपर कटाक्ष करते जाते थे, इसलिये वे असुर यह विचार करते थे कि स्त्रीके साथ विवाद करना ठीक नहीं, यह समझ चुपचाप रहे ॥ २२ ॥ अधिक करके मोहिनीमें जो दैत्योंका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया था, वह प्रेम कहीं छूट न जाय, इस लिये वे दैत्य लोग कुछ अप्रिय वचन भी न कह सके और मोहिनीसे मान पाकर फिर अप्रिय वचन कहनेको उनका सामर्थ्य भी न रह गया, इसलिये चुपचाप बैठे रहे । धन्य है प्रेम ! हजारों लक्षों अभागे तेरी कुहुकिनी मायामें पड़कर अपना तन, मन, धन खो बैठते हैं, प्रेमके ही वश होकर कितने

ही विद्वानोंने ठोकरें खायी हैं यह प्रेम क्या मोहिनीशक्ति रखता है ? इसको आजतक कोई भी न समझ सका ! जो लोग शत्रुके बाण, खड्ग, कटारी आदि अस्त्र शस्त्रोंसे नहीं मरते, वही लोग अपने प्यारेके क्रोधित होनेसे और उसके अपमान करनेसे बहुत ही डरते हैं; डरना ही क्या, बरन् उनको लोक परलोकका भी कुछ ज्ञान नहीं रहता ॥ २३ ॥ हे राजन् ! दानवगणोंमेंसे राहु देवताओंका वेष धारण कर देवताओंकी पंक्तिमें चन्द्रमा और सूर्यके मध्यमें बैठा हुआ अमृत पी रहा था कि उसी समय चन्द्रमा और सूर्यने उसको दैत्य जानकर श्रीभगवान्से कहा-महाराज ! यह राहु दैत्य है, इसे अमृत न पिलाइये ॥ २४ ॥ तब छूरेके समान धारवाले सुदर्शनचक्रसे भगवान् हरिने उसका शिर काट डाला, उसके शरीर में अमृत नहीं छुआ गया था इसलिए वह कट गया ॥ २५ ॥ और शिरसे अमृत छुवा गया था, इस

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ॥ प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥ २४ ॥ चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः ॥ हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधायाऽप्लावितोऽपतत् ॥ २५ ॥ शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत् ॥ यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥ २६ ॥ पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः ॥ पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥ २७ ॥ एवं सुरासुरगणाः समदेशकालहेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फलेविकल्पाः ॥ तत्रामृतं सुरगणाः फलमञ्जसाऽऽपुर्यत्पादपङ्कजरजश्श्रयणान्न दैत्याः ॥ २८ ॥

कारण वह अमरताको प्राप्त हुआ। इसलिये ब्रह्माजीने सूर्यादिके तुल्य उसको भी ग्रहपदका अधिकार दिया। राहु इसी वैरके कारण अबतक पौर्णमासी और अमावास्याके दिन सूर्य चन्द्रमाको ग्रहण कर लेता है॥२६॥ जब देवता लोगोंने सब अमृत पी लिया, तब लोकभावन श्रीभगवान् हरि दर्शनकारी उन प्रधान-प्रधान असुर लोगोंके सामने ही मोहिनीरूप छोड़ फिर अपना वही रूप धारण कर लिया ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! देवदानवोंका समुद्र मथना देश, काल, हेतु, अर्थ, कर्म और बुद्धिमें यद्यपि समान था, तथापि फल विचित्र हुआ अर्थात् किसीको सम्पूर्ण फल हुआ, किसीको कुछ न मिला, इसलिये देवगणोंने जिसके चरण पृष्ठ परागका आश्रय

लिया था, इससे वह यथार्थ मनोऽभिलषित फलको प्राप्त हुए और दैत्यलोग जिन करके ठगे गये वही सेवनीय हैं ॥२८॥ हे महाराज ! मनुष्य लोग धन,प्राण,कर्म,मन और राज्यसे देह और स्त्री पुत्रादिकेलिए जो कुछ करते हैं, सो भेदाश्रयसे मूल त्याग करके शाखाके सींचनेके समान वह व्यर्थ होता है, परन्तु इन्हीं धनादि द्वारा ईश्वरके लिये जो कोई कर्म करे, तो भेदभाव छोड़ देनेके कारणसे जड़के सींचनेके समान वह फलदायक होता है, क्योंकि ईश्वर सबमें ही अनुगत हैं, जैसे जड़के सींचनेसे फूल व शाखा सबका सींचना हो जाता है वैसे ही ईश्वरके अर्थ कर्म करनेसे और भी सब देव प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायांअमृत-

यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् ॥ तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्सर्वस्य तद्भवती मूलनिषेचनं यत् ॥२९॥ इति श्रीभा० म० अष्टम० अमृतमथने अमृतविभागो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

श्रीशुक उवाच ॥ इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप ॥ युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥ साधयित्वाऽमृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥ सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनंदनाः ॥ अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥

मथनेऽमृतदाननिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–दशवेंमें लड़ने लगे, दैत्य महाबलवान् । तब घबराये देव सब, प्रगट भये भगवान् ॥ इतनी कथा सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! यद्यपि दैत्य, दानवगण कर्ममें योग्य और सावधान थे तो भी श्रीमहाभगवान्से विमुख होनेके कारण उनको अमृत न मिला ॥ १ ॥ श्रीभगवान् विष्णु अमृतको सिद्ध कर और उन अपने भक्त देवता लोगोंको पिलाकर दर्शन करने वाले सब प्राणियोंके सामने ही अपने स्थानको चले गये ॥ २ ॥ उसके पीछे अदितिके पुत्र ईर्ष्याके मारे अपने शत्रु देवता लोगोंका कार्य सिद्ध देखकर न सह सके और अस्त्र-शस्त्र उठाकर देवता लोगोंके साथ युद्ध करनेको उपस्थित हुए ॥ ३ ॥

१- शंका—राक्षस तो भगवान्के शत्रु थे, इसलिये उन्होंने अमृतको नहीं पाया,, परन्तु राजा बलि तो भगवान्का भक्त था उसको अमृत क्यों नहीं मिला ? यह बड़े संशय की बात है । उत्तर—अमृत लेनेकी इच्छा राजा बलिको नहीं थी। अच्छा यदि अमृत लेनेकी इच्छा नहीं थी तो यह काम क्यों किया ? (समाधान) राजाका धर्म देखनेके लिये, कि राजाको सब कामकी परीक्षा लेना चाहिये तथा जातिधर्म देखकर, जातिकी आज्ञा बलि न मानता तो जातिगणविद्रोही हो जाते, इसलिये यह काम राजा बलिने किया और राजा बलिको अमृत प्राप्त नहीं हुआ ।

अमृत पीनेसे देवतालोग सब प्रकारसे समृद्ध हुए थे; वे लोग भी श्रीभगवान्‌के चरणोंका आश्रय करके अस्त्र-शस्त्र ग्रहण कर संग्राम करने लगे ॥ ४ ॥ उस समुद्रके तीर सुर-असुर लोगोंका महा घोर कठोर दारुण संग्राम हुआ, कि जिसका वृत्तान्त सुननेसे रोयें खड़े हो जाते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! देव दानवगण संग्राम करनेमें अपना मन लगाकर परस्पर एक-दूसरेको ताककर खड्ग, बाण व और दूसरे विविध प्रकारके आयुधोंसे मारने लगे ॥ ६ ॥ वहां पर शंख, तुरही, मृदंग, भेरी, डमरु और हाथी, घोड़े, रथ, पैदल इन सबका महाघोर शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ रथी रथियोंसे, पैदल पैदलोंसे, घोड़ोंके समूह घोड़ोंसे और हाथियोंके यूथ हाथियोंसे संग्राम करने लगा ॥ ८ ॥ और

ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः ॥ प्रति संयुयुधुः शस्त्रनारायणपदाश्रयाः ॥ ४ ॥ तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः ॥ रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥ तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे ॥ समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥ शङ्खतूर्यमृदंगानां भेरीडमरुणां महान् ॥ हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निस्स्वनोऽभवत् ॥ ७ ॥ रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः ॥ हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे ॥ ८ ॥ उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः ॥ केचिद्गौरमृगैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ ॥ गृध्रैः कङ्कैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिङ्गिलैः ॥ शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥ १० ॥ शिवाभिराखुभिः केचित्कृकलासैः शशैर्नरैः ॥ बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥ ११ ॥

कितने ही योद्धा ऊंटों पर चढ़कर कितने ही वीर हाथियों पर सवार हो और कितने ही सैनिक गधोंपर आरोहण कर अपने-अपने शत्रुओंके सम्मुख युद्ध करने लगे । हे राजन् ! कोई कोई वीर गौरमुख (वानर विशेष) को ले, कोई-कोई अनुचर रीछोंको ले, कोई-कोई व्याघ्र ले और कोई-कोई सिंहको ले लड़नेके लिये रणस्थलमें आ आकर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ कोई-कोई वीर गिद्धोंपर, काकोंपर, बगलोपर, सिकरोंपर और कोई भैंसोंपर चढ़कर झपटे। कोई मछलियोंपर, कोई शरभोंपर, कोई गैडोंपर, कोई बैलोंपर, कोई-कोई गवयों (लीलगायों) पर चढ़कर आये ॥ १० ॥ कोई-कोई गीदड़ोंपर, कोई-कोई काले चूहोंपर, कोई-कोई खरगोशोंपर, कोई मनुष्योंपर, कोई बकरोंपर, कोई-कोई काले हरिणोंपर, कोई-कोई

हंसोंपर और कोई-कोई शूकरोंपर चढ़कर आये ॥११॥ और कुछेक योद्धालोग जलचारी व थलचारी, पक्षी व विकटाकार और दूसरे प्राणियों पर चढ़कर आये। हे राजा परीक्षित्। इस प्रकारके वीरगण दोनों ओरकी सेनाओंके आगे आगे आकर रणभूमिमें विराजमान हुए ॥१२॥ हे राजन् ! चित्र-विचित्र ध्वजा पताका, स्वच्छ निर्मल और बड़े मोलके रत्नोंसे जड़ी हैं डंडियें जिसकी, ऐसे चमर और व्यजन ॥१३॥ पवनसे कम्पायमान, उपरने, पगड़ी, जामा, पटका, कवच इनसे व तेजसे प्रकाशित और सूर्यकी किरणोंसे अतिशय प्रकाशमान निर्मल शस्त्र और वीरश्रेणी ॥ १४ ॥ इन सबसे देवदानवोंका बल अर्थात् दोनों ओरकी सेना इस प्रकारसे प्रकाशित होने लगी, कि जैसे दो समुद्रोंमें जलजन्तु शोभायमान होते हैं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! विरोचनका पुत्र बलि इस संग्राममें सेनापति हुआ, वह वैहायस नामक

अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतवित्तहैः ॥ सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥१२॥ चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः ॥ महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥ १३ ॥ वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिभिर्वर्मभूषणैः ॥ स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥ १४ ॥ देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनंदन ॥ रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥ १५ ॥ वैरोचनो बलिः सङ्ख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ॥ यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥ १६ ॥ सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥ १७ ॥ आस्थितस्तद्विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ॥ वालव्यजनछत्राग्र्यै रेजे चन्द्र इवोदये ॥ १८ ॥

विमानमें आरूढ़ (सवार) हो, उदयगिरिके शिखरपर विराजमान हुआ, चन्द्रमाके समान दीप्तिमान् होने लगा। यह वैहायस नामक विमान मय दानवने बनाया था ॥१६॥ यह विमान इच्छानुसार चलनेवाला था और इसमें युद्धकी सब सामग्री भरी हुई थी, यह विमान आश्चर्ययुक्त था और तर्कसे भी निश्चय नहीं किया जा सकता था। यह कभी दिखलायी देता था और कभी छिप जाता था ॥१७॥ हे महाराज ! जब उस सर्वश्रेष्ठ विमानपर राजा बलि सवार हुआ, तब समस्त सेनापतियोंने उसको चारों ओरसे घेर लिया और इधर-उधर चामर, व्यजन, और मस्तक पर छत्र लगाया गया तब उदयाचलपर विराजमान हुए, चन्द्रमाके समान उसकी शोभा होने लगी ॥१८॥

पृथक्-पृथक् यूथके अध्यक्ष असुरलोग अपने विमानोंके सहित सेनापति राजा बलिके साथ गमन करने लगे ॥ १९ ॥ हे राजन्! नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्ताप-वज्रदंष्ट्र, विरोचन ॥ २० ॥ हयग्रीव, शंकुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्रजित, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल ॥२१॥ अरिष्ट, अरिष्टनेमि, मय, त्रिपुराधिप, व और पौलोम, कालेय निवातकवच इत्यादि ॥२२॥ जो असुर लोगोंके अमृत न मिलनेसे क्लेश पाया था, वे सब ही क्रोधित हो सिंहनाद करते हुए महाशब्दसे शंखकी ध्वनि करने लगे, कि जिसकी ध्वनिसे सब दिशायें परिपूर्ण हो गयीं। हे राजन्! असुरलोगोंको इस प्रकार बलसे उन्मत्त देखकर

तस्यासन् सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः ॥ नमुचिः शम्बरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥ द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ॥ शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥ २० ॥ हयग्रीवः शङ्कुशिराः कपिलो मेघदुन्दुभिः ॥ तारकश्चक्रदृक् शुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कलः ॥ २१ ॥ अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ॥ अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥ २२ ॥ अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः ॥ सर्व एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥२३॥ सिंहनादान् विमुञ्चन्तः शंखान्दध्मुर्महास्वनान् ॥ दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान् बलभित्कुपितो भृशम् ॥ २४ ॥ ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ॥ तथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ॥ २५ ॥ तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः ॥ लोकपालाः सहगणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ २६ ॥ तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः ॥ आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ॥ २७ ॥

स्वर्गनाथ इन्द्रको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ ॥२३॥२४॥ वे देवराज इन्द्र गगनमण्डलसे जल झरण करते हुए ऐरावत हाथीपर इस प्रकार सवार हुए, कि जैसे झरना झरते हुए उदयाचल पर्वतपर सूर्य भगवान् आरोहण करते हैं, उस समय ऐसी ही शोभा देवराज इन्द्रकी हुई ॥ २५ ॥ हे महाराज! जब इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हुए तब देवता लोग विविध भांतिके वाहन आयुध और ध्वजाओं सहित वायु, अग्नि, वरुणादि लोकपाल अपने-अपने गणोंका साथ ले इन्द्रके चारों ओर आ मिले ॥ २६ ॥ इसके पीछे द्वंद्वयुद्ध करनेवाले वे देवता

और दैत्यगण परस्पर एक दूसरेके साथ हो अपना-अपना नाम सुना-सुनाकर एक दूसरेकी भर्त्सना करके पुकारने लगे और आगे बढ़कर युद्धारम्भ कर दिया ॥ २७ ॥ महाराज इन्द्रके सम्मुख राजा बलि आ भिड़ा, तारकासुरके संगमें स्वामिकार्तिकजीका संग्राम हुआ, हेतिके संग वरुणजीने युद्ध किया, प्रहेतिके साथ मित्रका संग्राम होने लगा ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहते हैं कि हे पाण्डुनन्दन ! इसी प्रकार कालनाभके साथ यमराज, मयदानवसे विश्वकर्मा, त्वष्टाके साथ शम्बर और विरोचनके साथ सूर्यभगवान् जा भिड़े ॥ २९ ॥ अपराजितके सङ्ग नमुचि, वृषपर्व्वाके साथ अश्विनीकुमार, राजा बलिके बाण इत्यादि शत पुत्रोंके साथ एक सूर्यदेवका संग्राम होने लगा ॥३०॥ और राहुके साथ भगवान् चंद्रमाने युद्ध किया, पुलोमाके साथ वायुका समर हुआ । हे अरविन्द ! निशुम्भ और शुंभके साथ वेगवती

युयोध बलिरिन्द्रेण तारकेण गुहोऽस्यत ॥ वरुणो हेतिनाऽयुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥ २८ ॥ यमस्तु कालनाभेन
विश्वकर्मा मयेन वै ॥ शम्बरो युयुधे त्वष्टा सवित्रा तु विरोचनः ॥ २९ ॥ अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा ॥
सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैश्शतेन च ॥ ३० ॥ राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः ॥ निशुम्भशुम्भयोर्देवी
भद्रकाली तरस्विनी ॥ ३१ ॥ वृषाकपिस्तु जम्भेन महिषेण विभावसुः ॥ इल्वलः सहवातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिन्दम ॥ ३२ ॥
कामदेवेनदुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह ॥ बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥ ३३ ॥ मरुतो निवातकवचैः
कालेयैर्वसवोऽमराः ॥ विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥ ३४ ॥ त एवमाजावसुराः सुरेन्द्रा द्वन्द्वेन संहत्य
च युध्यमानाः ॥ अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥ ३५ ॥

भद्रकाली देवीका संग्राम हुआ ॥३१॥ जम्भासुरके साथ वृषाकपि शिव, महिषके साथ विभावसु (अग्नि), वातापि और इल्वलके साथ ब्रह्मपुत्र ॥ ३२ ॥ कामदेवके साथ दुर्मर्ष, मातृगणोंके साथ उत्कल, शुक्रके साथ बृहस्पति, नरकासुरके साथ शनिने युद्ध किया ॥३३॥ निवातकवचोंके साथ मरुत देवता, कालेय नामक असुर लोगोंके साथ वसुगण संग्राम करने लगे, पौलोम असुरोंके साथ विश्वेदेवगण लड़ने लगे और क्रोधवश असुरोंके साथ रुद्रगणोंने संग्राम किया ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे दानव और दैत्यवृन्द विरुद्ध हो प्रत्येक पृथक्-पृथक् पुरुषसे युद्ध करते-करते परस्पर जीतनेकी इच्छा किये हुए तीक्ष्ण बाण, खड्ग और तोमरादि अस्त्र-शस्त्रोंको उठाकर महावेगसे चोट लगाने लगे ॥ ३५ ॥

और भुशुण्डी, चक्र, गदा ऋष्टि, पट्टे, शक्ति, तोमर, पाश, फरसा, खड्ग, भाले, गदा, मुद्गर, भिंदिपाल(गोफन) से बराबर शत्रुओंके शिरोंको काटते थे ॥३६॥ और हाथी, घोड़े, रथ, पैदल व सवारों सहित विविध वाहन विविध भांतिके शस्त्रोंके प्रहारसे खण्ड-खण्ड हो गये उनकी भुजायें जांघें कंधे चरण कट गये और ध्वजा; धनुष, कवच, भूषणादि छिन्न भिन्न हो गये॥३७॥ हे राजन्! इन दैत्यलोगोंके चरणाघातसे और रथके पहियोंसे रणभूमिमें बड़ी धूल उड़ी, कि जिसने प्रथम गगन मंडल और सूर्यभगवान्‌को ढक लिया, पीछे वह रुधिरके संयोगसे गीली हो इस कार्यसे निवृत्त हुई अर्थात् फिर आकाशको न उड़ सकी ॥ ३८ ॥ हे राजन्! वह रणभूमिमें अनेक योद्धाओंकी भूषणभूषित छिन्न भिन्न भुजाओंसे शुण्डोंके समान जांघोंसे और बड़े-बड़े मस्तकोंसे ढककर बड़ी शोभाको प्राप्त हुई। संग्राम स्थलमें जो मस्तक कटे

भुशुण्डिभिश्चक्रगदार्ष्टिपट्टिशैः शक्त्युल्मुकैःप्रासपरश्वधैरपि ॥ निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ॥३६॥ गजास्तुरङ्गाः सरथाः पदातयः सारोहवाहा विविधा विखण्डिताः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रयश्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥ ३७ ॥ तेषां पदाघातरथाङ्गचूर्णितादायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा ॥ रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन् न्यवर्ततासृक् स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥३८॥ शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः संरम्भदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः ॥ महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥३९॥ कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पश्यतःस्वशिरोऽक्षिभिः ॥ उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावन्तो भटान्मृधे ॥४०॥ बलिर्महेन्द्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमाच्छर्यत् ॥ ४१ ॥ स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः ॥ चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसंप्राप्तान्हसन्निव ॥ ४२ ॥

हुए पड़े थे, उन सबके किरीट और कुण्डल गिर पड़े थे, उन शिरोंके नेत्र क्रोधके कारण लाल-लाल हो रहे थे और दांतोंसे ओठोंको चबा रहे थे ॥३९॥ इसके पीछे गिरे हुए अपने-अपने शिरोंकी आँखोंसे देखते-देखते अनेक अनेक कबन्ध उठने लगे। यह कबन्ध अपने-अपने हाथोंमें विविध भांतिके आयुध उठा-उठाकर सेनाके ऊपर धावमान होने लगे॥४०॥ इसके पीछे महाअसुर राजा बलिने दशबाणोंसे इन्द्रको, तीन बाणोंसे उसके वाहन ऐरावतको, चार बाणोंसे ऐरावतके चार रखवालोंको और एक बाणसे हाथीके महावतको मारा ॥ ४१ ॥ परंतु राजा इन्द्रने हँसकर इन वेगवान् बाणोंको अपने ऊपर गिरनेसे पहले ही उतने ही अपने तेज भालोंसे काट डाला ॥ ४२ ॥

हे महाराज ! देवराज इंद्रका यह प्रशंसा करने योग्य कर्म देख राजा बलि ईर्षाके कारण इनको न सह सका और उसने महाक्रोध कर अतिवेगवान् शक्ति ग्रहण की, परंतु वह शक्ति राजा बलिके ही हाथमें रहकर जब उल्काके समान प्रज्वलित हो रही थी, उसी समय देवराज इन्द्रने अपने अस्त्रसे उसको काट डाला ॥ ४३ ॥ इसके पीछे दैत्यराज बलिने शूल ग्रहण किया फिर प्रास (अस्त्रविशेष) लिया, फिर तोमर (अस्त्रविशेष) और इसके पीछे ऋष्टि ली, परंतु राजा बलि जिस अस्त्रको ग्रहण करता था शचीनाथ इन्द्र उसको ही काट डालते थे ॥ ४४ ॥ इसके पीछे यह असुर राजा बलि अचानक अन्तर्धान हो गया और आसुरी माया प्रकट की, कि जिससे अकस्मात् देवताओंकी

तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे ॥ तां ज्वलन्तीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥ ४३ ॥
ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः ॥ यद्यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं तदच्छिनद्विभुः ॥ ४४ ॥ ससर्जाथासुरीं मायामन्तर्धानं गतोऽसुरः ॥ ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ॥४५॥ ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना॥शिलाः सटङ्कशिखराश्चूर्णयन्त्यो द्विषद्बलम् ॥४६॥ महोरगाः समुत्पेतुर्दन्दशूकाःसवृश्चिकाः ॥ सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयन्तो महागजान् ॥४७॥ यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः॥ छिन्धि भिन्धीति वाहिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥४८॥
ततो महाघना व्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाः ॥ अङ्गारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥ ४९ ॥ सृष्टो दैत्येन सुमहान् वह्निः श्वसनसारथिः ॥ सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥ ५० ॥

सेनाके ऊपर एक बड़ा भारी पर्वत आकर गिरा ॥ ४५ ॥ इसके पीछे बहुत वृक्ष दावानलसे भस्म होकर गिरने लगे और टांकीके समान पैनी अनीवाली बहुत सी शिलायें गिरकर शत्रु सेना को चूर्ण करने लगीं॥४६॥ और दंदशूक, बड़े-बड़े सर्प, विच्छू और सिंह, व्याघ्र, बाराह व भागते हुए बड़े-बड़े हाथी गिरने लगे और नंग धड़ंगी शूल धारण किये सैकड़ों सहस्रों निशाचरी और बहुतेरे राक्षस धावमान हो, "मार मार काट काट" कहकर भयंकर कोलाहल करने लगे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इसके पीछे आकाश मंडलमें बड़ा भारी मेघ उदय हो गम्भीर और कठोर ध्वनि करने लगा व दूसरे बादल पवनसे टकरा कर अंगारोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४९ ॥ महाअसुर बलिने जो अपनी मायासे

अग्नि उत्पन्न की थी, वह प्रलयके आगके समान भयंकर हो देवता लोगोंकी सेनाको भस्म करने लगी ॥५०॥ फिर चारों ओर से समुद्र उफना हुआ दिखायी दिया। प्रचंड पवनके चलनेसे जो उसमें तरंगें उछलने लगीं और भवंर पड़ने लगे उससे रणभूमि अत्यन्त ही भयंकर दिखायी देने लगी ॥ ५१ ॥ और मायावी दानवगण अदृश्य रहकर इस प्रकारसे जब रणभूमिमें विविध भांति की माया उत्पन्न करने लगे तब देवता लोगोंकी बहुतसी सेना नाशको प्राप्त हो गयी ॥५२॥ हे राजन् ! जब इंद्रादि देवता लोगोंने इस मायाका कोई उपाय न देखा तब श्रीभगवान्का ध्यान किया, जैसे ही ध्यान किया कि उसी स्थानमें भगवान् विश्वभावन प्रगट हो गये ॥ ५३ ॥ उस समय पीतवसनधारी नवीन कमलके समान नेत्रवाले भगवान् गरुड़के कन्धे पर चरणपल्लव धरे; आठ भुजाओंमें आयुध धारण किये सबको दिखायी दिये । अपने

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ प्रचण्डवातैरुद्धूततरंगावर्तभीषणः ॥ ५१ ॥ एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः ॥ सृज्यमानासुमायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥५२॥ न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिन्द्रादयो नृप ॥ ध्यातः प्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥ ५३ ॥ ततः सुपर्णांसकृताङ्घ्रिपल्लवः पिशंगवासा नवकञ्जलोचनः ॥ अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लसच्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा माया विनेशुर्महिनामहीयसः ॥ स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्व विपद्विमोक्षणम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः ॥ तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद् गृहीत्वा तेनाहनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः ॥ ५६ ॥

वाहन गरुड़जीके दोनों कन्धोंपर उनके दोनों चरण रक्खे हुए थे और श्री-कौस्तुभ, बड़े मोलका किरीट और दोनों मनोहर कुण्डल यथायोग्य अंगोंपर धारण किये जानेसे अत्यन्त शोभा विस्तार कर रहे थे ॥५४॥ जैसे जाग्रद्दशाके आनेसे स्वप्नावस्था भाग जाती है, वैसे ही मुरलीमनोहरके रणक्षेत्रमें आते ही असुर लोगोंके मन्त्रोंसे उत्पन्न हुई माया शीघ्र ही नाशको प्राप्त हो गयी। हे राजन् ! श्रीभगवान् हरिकी महिमा ऐसी ही है कि उनके स्मरण करते ही सब दुःख नाशको प्राप्त हो जाते हैं, फिर उनके आनेसे देवता लोगोंका दुःख दूर होनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥५५॥ कालनेमि नामक जो असुर सिंहपर चढ़ा हुआ शूरवीरता प्रकट कर रहा था, वह रणभूमिमें गरुड़जी पर चढ़े हुए भगवान्

नारायणको घायल करनेकी इच्छासे शूल चलाने लगा, उस शूलको गरुड़जीके मस्तकपर गिरता हुआ देखकर त्रिगुणाधीश भगवान् हरिने लीलासे ही पकड़ लिया और उस शूलसे ही वाहन सहित उस कालनेमिका शिर काट लिया ॥ ५६ ॥ इसके पीछे अतिबलशाली सुमाली युद्धमें आया, तब श्रीभगवान्ने चक्र चलाकर दोनोंके शिर काट लिये, तब माल्यवान अति पैनी गदा लेकर गरुड़जीके संहार करनेको दौड़ा और तुरंत ही भगवान्ने चक्र चलाकर उसका भी मस्तक काट लिया ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां देवासुरसंग्रामे भगवत्प्रादुर्भाववर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा—ग्यारहमें सब देवतन, हने असुर बलवान । मरे परे लखि शुक्रने, सबहिं दीन्ह जिवदान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके पीछे इंद्र, वायु आदि देवता लोग परम पुरुष भगवान्की

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्यच्चक्रेण कृत्तिशिरसावथ माल्यवांस्तम् ॥ आहत्य तिग्मगदयाऽहनदण्डजेंद्रं तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाऽऽद्यः ॥५७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अमृतदाने देवासुरयुद्धं नाम-दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्य पुंसः परमानुकम्पया ॥ जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्तांस्तान् रणे यैरभिसंहिताः पुरा ॥१॥ वैरोचनाय संरब्धो भगवान् पाकशासनः ॥ उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हाहेति चुक्रुशुः ॥ २ ॥ वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरः स्थितम् ॥ मनस्विनं सुसंपन्नं विचरन्तं महामृधे ॥ ३ ॥ नटवन्मूढमायाभिर्मायेशान् नो जिगीषसि ॥ जित्वा बलान् निबद्धाक्षान् नटो हरति तद्धनम् ॥ ४ ॥ आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सिसृप्सन्ति ये दिवम् ॥ तान् दस्यून् विधुनोम्यज्ञान् पूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५ ॥

कृपासे सावधान हो उन असुर लोगोंके ऊपर अति वेगसे आघात करने लगे, कि जिन राक्षसोंने पहले उनको मारा था ॥ १ ॥ जब देवराज इन्द्र क्रोधित होकर विरोचनके पुत्र राजा बलिके मारनेको वज्र उठाकर दौड़े, तब प्रजा हाहाकार करने लगी ॥२॥ मनस्वी राजा बलि प्रस्तुत होकर महारणमें घूम रहा था कि इतनेमें वज्र हाथमें लिये देवराज इन्द्रने सम्मुख खड़े हुए उस दानवका तिरस्कार करके कहा ॥ ३ ॥ कि अरे मूढ़ ! कपटवृत्तिवाले चोर लोग जैसे बालकोंके नेत्र व कान बंद करके उनके धन हर लेते हैं, वैसे तू भी माया कर हम लोगोंके जीतनेकी वासना करता है, परंतु यहां तेरी कामना पूरी नहीं होगी, क्योंकि हम मायाके ईश्वर हैं ॥ ४ ॥ अरे ! तू हमारा प्रभाव सुन, जो लोग

मायासे स्वर्गमें चढ़नेकी वांछा करते हैं वा जो लोग स्वर्गका उल्लंघन करना चाहते हैं, हम उन सब चोरोंको उनके पदसे भी नीचे पटक देते हैं ॥ ५ ॥ अरे मंदात्मन ! हम इस शतधारावाले वज्रसे अभी तेरा शिर काटे डालते हैं, तू अपनी जातिवालोंके साथ युद्ध करनेका यत्न कर ॥ ६ ॥ राजा बलिने कहा कि हे इन्द्र! इतना गर्व क्यों करते हो ? जो सब पुरुष कालसे प्रेरित होकर संग्राम करते हैं उन सबको क्रमसे कीर्ति, जय, पराजय और मृत्यु प्राप्त हुआ करती है॥७॥इस कारण पंडित लोग इस जगत्को कालसे बँधा हुआ समझते हैं बस इससे इन सब बातोंके लिये हर्ष अथवा शोक कुछ नहीं करते, परन्तु तुमने यह विचार नहीं किया, क्योंकि तुम इस विषयमें चतुर नहीं हो ॥८॥ इसलिये इन सब

सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ॥ शिरो हरिष्ये मन्दात्मन् घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥ बलिरुवाच॥ संग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ॥ कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७ ॥ तदिदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः ॥ न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ॥ ८ ॥ न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ॥ गिरो वः साधुशोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः ॥ आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥ १० ॥ एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ॥ नामृष्यत् तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥ ११ ॥

कीर्ति जयादिकोंमें अपना कारण समझकर तुम मर्मके पीड़ा देनेवाले वचन कहते हो परन्तु हम तुम्हारे इन वचनोंपर कान नहीं देंगे, क्योंकि तुमको कुछ बोध नहीं है, बरन् तुम्हारे लिये हम शोक करते हैं ॥९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि वीरमर्दनकारी राजा बलिने इस प्रकार इंद्रका निरादर कर कानतक धनुष खींच देवराजके बाण मारे । हे राजन्! एक तो शचीनाथ राजा बलिसे तिरस्कार पाकर घायल हुये ही थे और दूसरे बाणोंके लगनेसे फिर घायल हुए॥१०॥ यद्यपि इन्द्र इस प्रकारसे यथार्थ कहनेवाले अपने शत्रुसे तिरस्कृत किये गये तो भी अंकुश खाये

* कवित्त–वैर प्रीति करबेको मनमें न राख शक, राजा रंग देखके न छाती धकधाकरी । आपकी उमंगकी निबाहिबेकी चाह जिन्हें, एक सो विख्यात तिन्हे बाघ और बाकरी । ठाकुर कहत मै विचारके विचार देखो, यहै मरदाननकी टेवं बात आकरी । गही तीन गही जौन छोड़ी तौन छांडि दई, करी तौन करी जौन, ना करी सो ना करो ॥

हुए हाथीके समान इन्होंने राजा बलिके तिरस्कारको नहीं सहा ❋ ॥११॥ और उसी समय अमोघ (जो कभी व्यर्थ ही न हो) वज्र हाथमें लेकर राजा बलिपर चलाया, कि जिसके लगनेसे दानवराजा बलि पंख कटे पर्वतके समान विमानसे गिरकर भूतलमें पतित हुआ अर्थात् पृथ्वीपर गिर पड़ा॥१२॥ राजा बलिका मित्र जम्भासुर अपने सखाको संग्राम स्थलमें गिरता हुआ देखकर आहत सुहृद के साथ सुहृदपनका आचरण करनेके लिये धावमान हुआ ॥ १३ ॥ और सिंहवाहनके समीप जाकर वेगसे गदा उठाकर इन्द्रके और उनके वाहन ऐरावत हाथीके कन्धेमें जहां जोड़ा होता है वहां मारी॥१४॥देवराजका हाथी गदाके प्रहारसे अत्यन्त व्यथित हो गया, और उसने आगे दोनों घुटने पृथ्वीमें टेक दिये

प्राहरत् कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ॥ सयानो न्यपतद् भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥ १२ ॥ सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत् ॥ अभ्ययात् सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥ १३ ॥ स सिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ॥ जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥ १४ ॥ गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ॥ जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥ १५ ॥ ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ॥ आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥ १६ ॥ तस्य तत् पूजयन् कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः ॥ शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥ १७ ॥ सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालम्ब्य मातलिः ॥ इन्द्रो जम्भस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥ १८ ॥

और बड़े मोहको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ हे पाण्डुकुलभूषण परीक्षित् ! यह देखकर इसका सारथी मातलि ऐसा रथ लेकर पहुँचा, कि जिसमें एक सहस्र घोड़े जुते हुए थे। तब देवराज इन्द्र हाथीको छोड़कर उस रथमें बैठ गये॥१६॥ जम्भासुर देवराज इन्द्रके सारथीका यह कार्य देखकर प्रशंसा करने लगा, परंतु दूसरे क्षणमें ही गर्व प्रगट करके संग्रामके बीच उसने प्रदीप्त शूल चलाकर मातलिको मारा॥१७॥ देवराज इन्द्रके सारथी मातलिने अपने बलका आश्रय करके उस शूलके प्रहारकी दुःसह व्यथाको सहन किया, तब स्वर्गनाथ इन्द्रने क्रोधित होकर वज्र

* शंका—शुक्राचार्य तो मरे हुए राक्षसोंको अपनी संजीवनी विद्यासे जिला देते थे, फिर राक्षसोंका नाश कैसे हो गया ?

उत्तर—शुक्राचार्य राक्षसोंको जीवित कर सकते थे । परंतु जब राक्षसोंके स्वामीका ही तेज नष्ट हो गया तब शुक्राचार्य राक्षसोंको कभी नहीं जिला सकते थे, क्योंकि समयके प्रतापको भगवान् भी जानते हैं तो शुक्रकी क्या बात है ?

चलाकर जम्भासुरका मस्तक काट डाला॥१८॥ हे राजन्! जम्भासुरके मारे जानेका समाचार देवर्षि नारदके मुखसे सुन उसकी जातिवाले नमुचि, बल और पाक ये तीन दानव बड़ी शीघ्रताके साथ वहां आये॥१९॥ और विविध प्रकारके कठोर वचनोंसे इन्द्रका मर्म भेदन करने लगे, जैसे मेघ जलकी वर्षा कर पर्वतको ढक लेते हैं वैसे ही बाण वर्षाकर इन तीन राक्षसोंने देवराज इन्द्रको रूँध लिया॥ २०॥ बल नामक असुर बड़ी शीघ्रताके साथ बाण छोड़ता था। उसने रणक्षेत्रमें दस सौ बाण चलाकर देवराज इन्द्रके एक हजार (१०००) घोड़ोंको मारा॥२१॥ पाक नाम असुरने दो सौ बाण देवेन्द्रके सारथिके और रथके मारे। केवल एक बारहीके चढ़ानेसे और छोड़नेसे अर्थात् इन दोनों

जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः॥ नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रपेतुस्त्वरान्विताः॥ १९॥ वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु॥ शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम्॥२०॥ हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः॥ तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान्॥ २१॥ शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक्॥ सकृत्संधानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे॥ २२॥ नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः॥ आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः॥ २३॥ सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम्॥ छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः॥ २४॥ अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः॥ अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता वणिक्पथा भिन्ननवो यथाऽर्णवे॥२५॥ ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः॥ बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये॥ २६॥

क्रियाओंके साथ प्रकाशित होनेसे समर भूमि अद्भुत जान पड़ने लगी॥२२॥ इसके पीछे नमुचिने सुवर्णकी फोंक लगे हुए बड़े भारी पन्द्रह बाणोंसे देवराज इन्द्रको बींध डाला और रणक्षेत्रमें जल भरे बादलके समान भयंकर गर्जना करने लगा॥ २३॥ अम्बुदपटल (मेघगण) जिस प्रकार शरत्कालके सूर्य भगवान् को ढक लेते हैं, वैसे ही असुर लोगोंने बाणोंके समूहसे रथ और सारथीके साथ इन्द्रको ढक लिया॥२४॥ तब देवता लोग इन्द्रको न देखकर अपने अनुचरोंके साथ विह्वल हो इस प्रकारसे चिल्लाने लगे, कि जैसे समुद्रमें जहाजके फट जानेसे बनिये व्याकुल होकर हाय-हाय करते हैं। उन सब देवता लोगोंने जाना, कि आज हम स्वामी रहित हुए॥२५॥ इसके पीछे देवराज इन्द्र असुर

लोगोंके द्वारा बाणोंसे बांधे पिञ्जरेमें ध्वजा, अश्व, रथ और सारथीके सहित निकलकर रात्रि बीत जानेपर सूर्य भगवान्‌के समान अपने तेजसे पृथ्वी, आकाश व समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उदित हुए ॥ २६ ॥ और सेनापति लोगोंको समरमें शत्रु लोगोंसे पीड़ित देख वज्र धारण कर वैरियोंका नाश करनेके लिये क्रोधके कारण अपना शस्त्र (वज्र) उठाने लगे ॥२७॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रने अष्टधातुवाले वज्रसे एक ही समयमें बल और पाक दो असुरोंका मस्तक काट लिया । यह देखकर इन दोनों दानवोंके जातिवाले भयसे अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥२८॥ परन्तु बल और पाकका नाश देख दानवश्रेष्ठ नमुचि शोक और अमर्षयुक्त हो क्रोधसे परिपूर्ण हुआ और इन्द्रका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा करके अनेक यत्न करने लगा ॥२९॥ वह घंटायुक्त और सुवर्णसे भूषित लोहेका शूल ग्रहणकर महाक्रोधसे "मार लिया, मार लिया"

नीरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे ॥ उदयच्छद्रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥२७॥ स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बल पाकयोः ॥ ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥ २८ ॥ नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः ॥ जिघांसुरिन्द्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥ २९ ॥ अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम् ॥ प्रगृह्याभ्यद्रवत् क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ॥ प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥ ३० ॥ तदाऽऽपतद्गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा ॥ तमाहनन्नृप कुलिशेन कन्धरे रुषाऽन्वितस्त्रिदशपतिः शिरोहरन् ॥ ३१ ॥ न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः ॥ तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित् तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥ ३२ ॥ तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥ ३३ ॥

कहकर गर्जता हुआ देवराज इन्द्रके ऊपर झपटा और सिंहके समान गम्भीर गर्जन करते देवराज इन्द्रके ऊपर इस राक्षसने शूल चलाया॥३०॥ हे राजन् ! इस महाशूलको आकाशमार्गमें उछलता देखते ही स्वर्गाधिपति इन्द्रने अपने बाणोंसे काटकर हजार टुकड़े कर डाला और फिर क्रोधकर नमुचिका शिर काटनेके लिये उस दानवकी गर्दनमें बड़े जोरसे वज्र मारा ॥ ३१ ॥ यद्यपि इन्द्रने महावेगसे तेजस्वी वज्र चलाया, तथापि वह उस दानवकी खालको भी न काट सका । वज्रने अतिवीर्यवान् वृत्रासुरको भी छिन्न भिन्न कर डाला था, वही वज्र नमुचिकी गर्दनपर लगकर खुटला हो गया । सत्य है-"समयके फेरसे सुमेरु होत माटीको" बड़े ही आश्चर्यकी बात हुई ॥३२॥ हे राजन् ! जिससे इन्द्रके

वज्रका अति तिरस्कार होता था, देवराज उससे महा भय करते थे, इसलिए इस व्यापारको देखकर देवराज इन्द्र विस्मित हो आप ही आप कहने लगे कि दैवयोगसे यह क्या विमोहन हुआ ॥३३॥ अहो! जब-जब प्रजा लोगोंपर दुःख हुआ है, कि पर्वत बोझसे भारी हुए पंखोंसे उड़ते-उड़ते प्रजा लोगोंके ऊपर गिर पड़ते थे, तब जिस वज्रसे हमने उनके पंख काटे हैं ॥३४॥ और त्वष्टाके तपके प्रभावसे जो उत्पन्न हुआ वह वृत्रासुर जिससे मारा गया है, वह बलवान् शूरवीरकि जिनकी खाल किसी अस्त्रसे नहीं कटी, वे लोग भी जिससे मारे गये, वही वज्र इस क्षुद्र असुरपर चलाया और लगा भी परंतु इसके घाव भी न आया ॥३५॥ हाय! डंडेके समान इस वृथा वज्रको हम अब नहीं धारण करेंगे। कैसे खेद की बात है, द्विजश्रेष्ठ दधीचिका सामर्थ्य भी व्यर्थ हो गया ॥ ३६ ॥ हे राजन्! जब देवराज इन्द्र इस प्रकार शोक कर रहे थे कि अशरीरिणी

येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ॥ कृतो निविशतां भारैः पतत्रैः पततां भुवि ॥ ३४ ॥ तपःसारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः ॥ अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥ ३५ ॥ सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके ॥ नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥३६॥ इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी ॥ नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥ ३७ ॥ मयाऽस्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः ॥ अतोऽन्यश्चिन्तनीयस्ते उपायो मघवन् रिपोः ॥ ३८ ॥ तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः ॥ ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥ ३९ ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः ॥ तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥ ४० ॥ गन्धर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥

वाणी (आकाशवाणी) ने उनसे कहा हे देवेन्द्र! यह दानव सूखी व गीली वस्तुसे नहीं मारा जायगा ॥३७॥ क्योंकि मैंने इसको वर दिया है कि सूखी व गीली वस्तुसे तेरी मृत्यु नहीं होगी, इसलिये इसके मारनेका कोई दूसरा उपाय सोचिये ॥३८॥ आकाशवाणी सुन देवराज इन्द्रने सावधानतापूर्वक ध्यानकर गीला और सूखा उभयात्मक उपाय देख लिया ॥३९॥ कि जलका फेन यह न सूखा है न गीला है, यह विचार उसीको वज्रमें लपेटकर नमुचिका मस्तक काट लिया हे राजन्! नमुचिके मारे जानेपर मुनिलोग देवेन्द्र इन्द्रकी भली-भांति स्तुति करने लगे और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥४०॥ गन्धर्वोंमें मुख्य विश्वावसु और परावसु गाने लगे, देवता लोग दुन्दुभी बजाने लगे, अप्स-

रायें आनन्दके कारण नृत्य करने लगीं॥४१॥ हे महाराज! इन्द्रने जिस प्रकार नमुचिका शिर काट डाला;वायु,अग्नि,वरुणादि देवता लोगोंने भी उसी प्रकार असुरलोगोंका प्राणसंहार किया, कि जैसे केशरी (सिंह) मृगोंका वध करते हैं ॥ ४२ ॥ परन्तु उसी समय ब्रह्माजीके भेजे हुए देवर्षि नारद देवता लोगों के निकट आ गये और दानवोंका नाश देखकर उनको निवारण करने लगे ॥ ४३ ॥ श्रीनारदजी कहने लगे कि हे देववृन्द ! तुम लोगोंने भगवान्‌की भुजाओंके बलसे अमृत प्राप्त किया है, और सर्व सम्पत्तियोंसे युक्त हुए हो, अब फिर युद्ध क्यों

अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान् वाय्वग्निवरुणादयः ॥ सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगान् केसरिणो यथा ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा प्रेषितो देवान् देवर्षिर्नारदो नृप ॥ वारयामास विबुधान् दृष्ट्वा दानवसंक्षयम् ॥ ४३ ॥ नारद उवाच ॥ भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः ॥ श्रिया समेधिताः सर्वे उपारमत विग्रहात् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः ॥ गीयमाना अनुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ ४५ ॥ येऽवशिष्टा रणे तस्मिन् नारदानुमतेन ते ॥ बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ॥ ४६ ॥ तत्राविनष्टावयवान् विद्यमानशिरोधरान् ॥ उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया ॥ ४७ ॥

करते हो ? इस युद्धसे अलग हो जाओ ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि नारदजीके वचनों को मानकर देवता लोगोंने उसी समय अपना-क्रोध छोड़ दिया और अपने अनुचरोंके साथ स्वर्गको चले गये ॥४५॥ रणभूमिमें दानव लोगोंके जो बचे बचाये वीर थे; वे नारदजीकी सम्मतिसे मरे हुये राजा बलिको साथ ले अस्ताचल पर्वतपर चले गये ॥४६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भारत ! रणभूमिमें मरकर गिरे हुए जिन दानवोंके अंग सम्पूर्णतःनष्ट नहीं हुए थे और जिनकी गर्दनें विद्यमान थीं उनको दैत्यगुरु शुक्राचार्यने संजीवनी विद्याके बलसे फिर

जिला दिया ॥४७॥ दैत्यराज बलि शुक्राचार्यके हाथोंसे स्पर्श किये जानेपर फिर इंद्रिय और स्मरण शक्तिको प्राप्त हो गया ! यह राजा बलि लोकतत्त्वको भली भांति जानता था, इसलिये पराजित होकर भी उसने खेद नहीं किया * ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषाटीकायां देवासुरसंग्रामवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा—द्वादशमें भगवान्‌ने, धरो मोहनी रूप । मोहित कर शिवको बहुरि, दीन्हों ज्ञान अनूप ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! श्रीभगवान्‌ने स्त्रीरूपधारण करके दानवोंको मोहित कर देवता लोगोंको अमृत पिलाया था ॥ १ ॥ यह सुन उस रूपको देखनेके लिये वृषभध्वज गिरीश महादेवजी अपने वाहन नंदीपर चढ़कर समस्त भूपगण और पार्वतीजीके साथ उस स्थानमें गये कि जहां भगवान् मधुसूदन विराजमान थे॥२॥श्रीपार्वतीजीके साथ महेश्वर महा-

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः ॥ पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे देवासुरसंग्रामविश्रान्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीबादरायणिरुवाच ॥ वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ॥ मोहयित्वाऽसुरगणान् हरिः सोमममपाययत ॥ १ ॥ वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः ॥ सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥ सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ॥ सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन् हरिम् ॥ ३ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीशजगन्मय ॥ सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥ आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ॥ यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ॥ ५ ॥

देवजीको आया हुआ देखकर श्रीभगवान्‌ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और यथायोग्य पूजा करके बैठनेके लिए आसन दिया। महादेव भी आनंदपूर्वक बैठे और श्रीभगवानकी पूजा कर विस्मय युक्त वचन उनसे कहने लगे ॥ ३ ॥श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवदेव ! जगद्व्यापिन् ! हे जगन्मय ! हे जगदीश ! आप सब पदार्थोंके कारण होनेसे ईश्वर हैं ॥४॥ हे भगवन् ! जिससे इसजगत् का आदि, अन्त

* कवित्त—हेम हय हाथी हथियार हू न भये साथी, सुन्दरी न सुन्दरी जड़ाऊ खाट छपरा। आड़ धन गाड़ धरे मोहरे भंडारनमें, धधाधूरी छायवते बध गये छपरा ॥ कहै देवदत्त, काहू खायो न खवायो अरु, खायो तीन पाव चून पहिरे तीन कपरा। हो नहीं अचेत भये रेत, खेत परे रहे, देखो दुष्ट लोकन की खोपरीको खपरा ॥

और मध्य होता है और अव्यक्त होनेसे जिसमें यह आदि, मध्य और अन्त नहीं है और जो "यह" शब्दके आस्पद दृश्य पदार्थ और "हम" इस शब्दके आस्पद द्रष्टा और "बहिः" इस पदके वाच्य भोज्य और भोक्ता हैं, वही सत्यस्वरूप चिद्रूप ब्रह्म आप हैं, इससे यद्यपि आपको जगन्मय कहकर सम्बोधन किया तो भी आपमें विकारादिकी शंका नहीं है ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! आप जो ऐसे हैं इसमें मुमुक्षुजनोंका आचार ही प्रमाण है, क्योंकि श्रेयस्काम निराशी मुनि लोग इस कालमें और परकालमें संग छोड़ आपके चरण-कमलकी वंदना किया करते हैं ॥६॥ हे प्रभो ! यद्यपि आप साक्षात् ब्रह्म हैं तथापि उदासीन नहीं हैं, आप इस जगत् प्रपंचके सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं और प्रपंचोपाधि हैं सब जीवोंके ईश्वर हैं अर्थात् वैसे ही फलके दाता हैं किन्तु आप राजा लोगोंके समान कुछ

तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिषः ॥ विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥ ६ ॥ त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोकमानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ॥ विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमानामात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयाऽनपेक्षः ॥ ७ ॥ एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ॥ अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो यस्माद्गुणैर्व्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥ ८ ॥

अपेक्षा करके सेवकोंको फल नहीं देते अर्थात् दूसरेमें तत् तत् (उन उन) आत्माके द्वारा तत्तत् फल पदार्थ जैसी अपेक्षा की जाती हैं, वह फल देनेके विषयमें आपको वैसी अपेक्षा नहीं है । फलतः आपपूर्ण सुखस्वरूप, नित्य आनंदमय, अगुण और अशोक हैं । आपसे, अलग दूसरा पदार्थ नहीं और आप, सब पदार्थोंसे भिन्न हैं । हे भगवन् ! आप ऐसे सुखात्मक ब्रह्मस्वरूप हैं इसलिए आपको किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है, आपका ऐश्वर्य केवल भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये है, आत्मार्थ नहीं है ॥ ७ ॥ हे देव ! जैसे कुण्डलादिरूप सुवर्ण और केवल सुवर्ण, यह दोनों एक ही वस्तु हैं, वैसेही सत् और असत् अर्थात् कार्यकारणरूप रूपद्वय (दो) हैं और परमकारण-रूप अद्वय एक आप ही हैं, अज्ञानके वश होकर लोग आपमें भेद कल्पना किया करते हैं परंतु वास्तवमें आप निरूपाधि हैं, गुणद्वारा ही

आपका भेद होता है स्वयं कोई भेद नहीं है ॥ ८ ॥ हे भगवन् अज्ञानके वश होकर लोग अनेक भांतिसे आपका वर्णन किया करते हैं, परंतु कोई भी तत्त्व नहीं जानता । कोई पुरुष (वेदांती लोग) आपको ब्रह्म मानते हैं, कोई-कोई (मीमांसक) आपको धर्म कहते हैं, कुछ लोग (सांख्य जाननेवाले) प्रकृति पुरुषसे परे आपका वर्णन करते हैं और दूसरे (पंचरात्रज्ञ पुरुष) नवशक्ति युक्त परमपुरुष कहकर आपको बताते हैं और कुछ (पातंजल दर्शन जाननेवाले) अव्यय स्वतंत्र महापुरुष आपको कहते हैं ॥ ९ ॥ हे ईश ! ब्रह्मा मैं (महेश्वर) और मरीचि प्रभृति मुनि जो कि सत्त्व गुणसे उत्पन्न हुये हैं वे आपकी माया द्वारा चित्त हरे जानेपर जब वह भी आपके रचित ब्रह्माण्डके तत्त्वको नहीं जानते तब दैत्य मनुष्यकी जितनी उत्पत्ति और वृत्ति राजस-तामससे हुई है वे आपको क्या जानेंगे ? अर्थात् वे आपको

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेक एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् ॥ अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां केचिन्म-
हापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ९ ॥ नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ॥
यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्यमर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥ १० ॥ स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं
भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ॥ वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयाऽवगमोऽवरुन्त्से ॥ ११ ॥
अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ॥ सोऽहं तद् द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥ १२ ॥ येन संमोहिता
दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ॥ तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥ १३ ॥

नहीं जानते ॥ १० ॥ परंतु आप जगत्का जन्म, स्थिति, नाश, सब प्राणियोंकी चेष्टा जगत्के बन्धन और मोक्ष सबको ही जानते हो । जिस प्रकार वायु चर-अचर देवसमूह और आकाशमें व्याप्त हो रहे हैं, वैसे ही आप भी आत्मस्वरूपसे सब चराचरमें व्याप्त हो रहे हैं । आप ज्ञानस्वरूप हैं, इस कारण सबके आत्मा हैं ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! आप गुणद्वारा क्रीड़ा करके जो-जो अवतार धारण करते हैं मैं उन सबको देखता हूँ; इसलिये अब जो आपने मोहिनीरूप धारण किया है, मैं उसे देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥ १२ ॥ जिस मोहिनी रूपसे आपने दुर्दम दानवोंको मोहित किया और देवताओंको अमृत पिलाया, मैं वही मोहिनीरूप देखनेके लिये यहां आया हूँ,

भा० अ० ॥ ३८ ॥

क्योंकि इसके लिये मुझे बड़ा कौतूहल हुआ है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब शूलपाणि महादेवजीने ऐसी प्रार्थना की तब श्रीभगवान् मुसकाकर गम्भीर वाणीसे महादेवके प्रति कहने लगे ॥ १४॥ श्रीभगवान् बोले-हे देवदेव ! जब अमृतका पात्र देवता लोगोंके हाथसे छीनकर असुर लोगोंके पास गया तब मैंने विचारा कि "स्त्रीका" रूप ही धारण करनेसे देवता लोगोंका कार्य सिद्ध होगा, अर्थात् उन्मत्त दैत्योंको ठगकर देवताओंको अमृत पिलाया जायगा, परंतु विना दूसरारूप धारण किये यह कार्य नहीं हो सकता, इसलिये दानव लोगोंके कौतूहलार्थ ठगाई मोहनादिका सारस्वरूप यह कामिनीरूप हमने धारण किया ॥ १५ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! आप हमारे उस मोहिनीरूपके देखनेकी इच्छा करते हैं, अच्छा आपको दिखाया जायगा, उस रूपको कामीपुरुष बहुत ही मानते हैं उससे मीनकेतु (कामदेव) का उदय हो जाता है ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि भगवान् इस प्रकार कहते-कहते वहांही अन्तर्धान हो गये ।

श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवाञ्छूलपाणिना ॥ प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः ॥ पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥ १५ ॥ तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम ॥ कामिनां बहुमन्तव्यं संकल्पप्रभवोदयम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥ १७ ॥ ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ॥ विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लसद्दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥ १८ ॥ आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तनप्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे ॥ प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥ १९ ॥

उस समय महादेवजी अपनी भार्या पार्वती सहित चारों ओर दृष्टि करते हुए रूपके देखनेकी उत्कण्ठासे बैठे रहे ॥ १७ ॥ कुछ देरके पीछे उपवनमें कि जहांपर वृक्षोंमें चित्रविचित्र कुसुम और अरुण वर्णके पल्लव शोभायमान हो रहे थे, वहांपर परम सुन्दर एक स्त्री श्रीमहादेवजीने देखी। उसके नितम्ब उज्ज्वल रेशमी वसनसे ढक रहे थे। उसमें मेखला (जञ्जीर) की लड़ियाँ ऐसी दीप्तिमान हो रही थीं कि मनुष्यका मन उसकी ही कड़ियोंमें उलझे रहे, वह स्त्री गेंद उछालकर देखनेवालोंके मनको भी मानों उसीके साथ उछालती है ॥१८॥ गेंदके ऊपर नीचे उछालनेके कारण उसके शरीरके झुकने और ऊँचे होनेसे उसकी दोनों छातियाँ (स्तन) व मनोहर हार बार-बार कम्पायमान

भा० टी० अ० १२

होता था। उस समय ऐसा जान पड़ता कि मानो उन (स्तनों) के भारी भारसे उसकी कमर लचकती थी, कि जिससे वह अपने मूंगेके तुल्य लाल कोमल चरण इधर-उधर धरती थी ॥१९॥ सब दिशाओंमें गेंदके उछलने उसके चंचल भावसे उद्विग्न हुए तारेके समान विशाल नेत्र अपने कानोंमें प्रकाशित होते हुए कुण्डलोंसे उसके कपोल शोभायमान हो रहे थे और इधर मुखपर छिटकी हुई अलकें अलग ही अपना जाल फैला रही थीं कि जिससे उसकी आश्चर्यमय ऐसी शोभा हो रही थी कि मानो अमृतके लोभसे अमृत पीनेको चन्द्रमाके पास छोटे-छोटे नागोंके बच्चे आये हैं ॥२०॥ शरीरसे खसके हुए दुपट्टेको और मस्तकसे खुली हुई वेणीको अपने बायें हाथसे जो इन दोनों बन्धनोंको सँभाल दाहिने हाथसे गेंद उछाल रही थी, उस समय ऐसी शोभा हो रही कि मानो यह अपनी मायासे जगत्को मोहित

दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ॥ स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्कपोलनीलालकमण्डि-
ताननाम् ॥२०॥ श्लथद्दुकूलं कबरीं च विच्युतां सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ॥ विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं विमो-
हयन्तीं जगदात्ममायया ॥२१॥ तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषद्व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ॥ स्त्रीप्रेक्षण-
प्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥२२॥ तस्याः कराग्रात् स तु कन्दुको यदा गतो विदूरं
तमनुव्रजत्स्त्रियाः ॥ वासः ससूत्रं लघुमारुतोऽहरद्भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥ २३ ॥

कर लेगी। अहो ! इसके रूप लावण्यका क्या ठिकाना ! मानो जगत् जीतनेके लिये कामदेवने यह पताका प्रस्तुत अर्थात् तैयार की है ॥२१॥ हे राजन् ! इस मोहिनीके रूपको निहारते ही महादेवजी अपने आपको भूल गये। गेंदको उछालते हुए जो वह कामिनी कुछेक लाज प्रकट कर रही थी, उससे मन्द मुसकान सहित उसके छोड़े हुए कटाक्षसे महादेवजी एक ही बारमें मोहित हो गये, इस कारण उसको देखनेसे और उस द्वारा देखे जानेसे इन दो क्रियाओं द्वारा विभुका मन अत्यन्त विह्वल हो गया, इसलिये उन्होंने अपने निकट अपने सेवकोंको और पार्वतीजीको न जाना ॥ २२ ॥ वह मोहिनी जिस गेंदको उछाल रही थी, वह गेंद एक बार उसके हाथसे उछलकर दूर गिर पड़ा, उस गेंदके लेनेको जब वह बाला दौड़ी तब वायुके वेगसे काञ्चीसहित उसका कटिवसन उड़ गया, और देवदेव महादेवजी

खड़े होकर एकटक उसको देखने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे जैसे ही महादेवने उस मनोरमा रामाको देखा कि वैसेही वह भामिनी कुञ्चित कटाक्ष चलाकर उनको देखने लगी, तब महादेवजीका मन उसपर अनुरागी हो गया ॥२४॥ मोहिनीके हावभाव से देवदेव महादेवजीका ज्ञान नष्ट हो गया और वह उस कामिनीके किये हुए कामविलाससे ऐसे विह्वल हुए कि पार्वती सामने खड़ी होकर देखती रहीं तो भी वे निर्लज्ज होकर उस सुन्दरीके समीप चले गये ॥२५॥ यह मोहिनी कामिनी वस्त्ररहित थी, महादेवजीको निकट आते हुए देखकर लज्जित

एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम् ॥ दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ॥ २४ ॥ तयाऽपहृत-
विज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः ॥ भवान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ॥ २५ ॥ सा तमायान्तमालोक्य विवस्त्रा
व्रीडिता भृशम् ॥ निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत ॥ २६ ॥ तामन्वगच्छद्भगवान्भवः प्रमुषितेन्द्रियः ॥
कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥ २७ ॥ सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वाऽनिच्छतीं स्त्रियम् ॥ केशबन्ध
उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २८ ॥ सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ॥ इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्ण-
शिरोरुहा ॥ २९ ॥

हो गयी और हँस-हँस वृक्षोंकी आड़में जाने लगी वहां खड़ी न हुई ॥ २६ ॥ भगवान् महादेवजीकी इंद्रियाँ प्रबल हो गयीं । वे शंकरजी पंचबाणके वश हो उस स्त्रीके पीछे-पीछे इस तरह दौड़ने लगे कि जैसे यूथपति हाथी हथिनियोंके पीछे-पीछे दौड़ता है * ॥ २७ ॥ जब वह साधारण चालसे महादेवजीके हाथ न आयी, तब वह अतिवेगसे दौड़े और उस स्त्रीको अपने संगकी इच्छा न करते देख केश पकड़ दोनों भुजाओंसे उसको अपने हृदयसे लगा लिया ॥२८॥ हाथी जिस प्रकार हथिनीका आलिंगन करता है वैसे ही वह मनमोहिनी बाला

* शंका—महादेवजी कामके नाश करनेवाले हैं, फिर भगवान्का स्त्रीरूप देखकर कामके वशीभूत भूतनाथ क्यों हो गये? यह बड़े आश्चर्यकी बात है?

उत्तर—अनेक युग "नमः शिवाय । नमः शिवाय" इस मन्त्रको जपकर माया तप करने लगी, तब एक दिन शिवजी बोले–कि हे माये ! जिस वरकी तुझको इच्छा है वह वर माँग । माया बोली कि हे शम्भो ! तीन लोकमें जो देहधारी प्राणी ब्रह्मा, विष्णु, देवता, मनुष्य, असुरादिक हैं सो सब मेरे वश हों, एक आपको छोड़कर, परन्तु आधी घड़ीके लिये आप भी मेरे वशमें हों; शिवजीने मायासे कहा कि हम आधी घड़ीतक ही तेरे वशमें होंगे। सो इसलिये महादेव कामके वश हुए, कुछ कामी होकर कामके वश नहीं हुए ।

भूतेश्वर् भगवान् भवानीपतिके हृदयसे लिपटी हुई इधर-उधर दौड़ने लगी, कि जिससे उसके केश छूट गये ॥२९॥ हे राजन् ! इसके पीछे देवमायाकी बनाई हुई बड़े-बड़े नितम्बवाली वह स्त्री अतिकष्ट करके महादेवजीकी भुजाओंसे अपनेको छुड़ाकर भागी ॥ ३० ॥ हे राजन् ! यह अद्भुत कथा श्रवण करो, श्रीभगवान् विष्णु ही माया विस्तार करके यह स्त्री हुए थे । जब श्रीभगवान् स्त्री बनकर भागे, तब भूतनाथ (शिव) अपने सदाके वैरी कामदेवसे पराजित हो फिर उसकी पदवीका अनुसरण करने लगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! वासिता के (ऋतुमती हथिनीके) पीछे-पीछे दौड़ते हुए कामी हाथीका वीर्य जिस प्रकार गिर जाता है, वैसे ही उस मोहिनीके पीछे पड़े हुए अमोघ वीर्यवान् भगवान् शिवजीका वीर्य गिर गया ॥ ३२॥ हे कुरुवर ! देवश्रेष्ठ महादेवजीका वह वीर्य पृथ्वीके जिस-जिस स्थानमें गिरा उन सब

आत्मानं मोचयित्वाऽङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात् ॥ प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥३०॥ तस्यासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः ॥ प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जित ॥३१॥ तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतसः ॥ शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावतः ॥ ३२ ॥ यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ॥ तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥ सरित्सरस्सु शैलेषु वनेषूपवनेषु च ॥ यत्र क चासन्नृषयस्तत्र सन्निहितो हरः ॥३४॥ स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ॥ जडीकृतं नृपश्रेष्ठ संन्यवर्तत कश्मलात् ॥३५॥ अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ॥ अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदुहाद्भुतम् ॥३६॥ तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः ॥ उवाच परमप्रीतो बिभ्रत स्वां पौरुषीं तनुम् ॥ ३७ ॥

स्थानोंमें सुवर्ण और चांदीकी खानें हो गयीं ॥३३॥ देवदेव महादेवजी इस प्रकारसे मोहिनीके पीछे दौड़ते-दौड़ते नद, नदी, सरोवर, गिरि, वन, उपवन और जहां-जहां ऋषिलोग रहते थे, उन सबही स्थानोंमें पहुँचे ॥ ३४ ॥ हे नृप श्रेष्ठ ! जब वीर्य गिर गया, तब भगवान् भवने जान लिया कि हम देवमायासे मोहित हुए हैं, तब वे इस व्यापारसे निवृत्त हुए ॥३५॥ जिस जगदात्माका वीर्य जाननेके योग्य नहीं है, उसके माहात्म्यका महादेवजीने स्मरण किया और उनकी माया करके अपनेको मोहित हो जानेका भी कुछ आश्चर्य नहीं माना ॥ ३६ ॥ इसके पीछे मधुदैत्यके मारनेवाले भगवान् मधुसूदन अपना पुरुष रूप धारण करके फिर प्रगट हुए और उन देवदेव महादेवजीको क्षोभरहित

व लज्जारहित देखकर प्रसन्न हो यह वचन कहने लगे ॥ ३७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवश्रेष्ठ ! आप हमारी स्त्रीरूप मायासे मोहित होकर भी जो फिर अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुए यह बड़े भाग्यकी बात है । आप निःसन्देह अपनी आत्मामें स्थिर हैं ॥ ३८ ॥ हे देव ! आपके विना ऐसा कौन पुरुष है, जो अनुरागी होकर फिर हमारी मायासे पार पा सके ? हमारी माया अनिर्वचनीय भाव प्रकट किया करती है, कच्ची बुद्धिवाले पुरुषकी क्या सामर्थ्य है जो इससे पार पाये ॥३९॥ भला जो हुआ सो हुआ, अब यह गुणमयी माया सृष्ट्यादि निमित्त कालके वश होनेसे कालरूपी हमारे साक्षात् रजोगुण प्रभृति अंशमें मिली हुई है अर्थात् मेरे अधीनमें है, अब यह कभी आपको न सता सकेगी ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! श्रीवत्सांक भगवान् विष्णुने जब इस प्रकार कहा और

श्रीभगवानुवाच ॥ दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः ॥ यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया
॥ ३८ ॥ को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् ॥ तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तराम कृतात्मभिः ॥ ३९ ॥
सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ॥ मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥
एवं भगवता राजन् श्रीवत्सांकेन सत्कृतः ॥ आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ॥ ४१ ॥ आत्मांश
भूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ॥ शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याऽऽचष्टाथ भारत ॥ ४२ ॥ अयि व्यपश्यस्त्व-
मजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः ॥ अहं कलानामृषभो विमुह्ये ययाऽवशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥४३॥ यं माम-
पृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समासहस्रान्त उपारतं वै ॥ स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः ॥ ४४ ॥

नमस्कार किया, तब देवदेव महादेवजीने सम्भाषण कर उनकी प्रतिष्ठा की और फिर श्रीभगवान्की अनेक प्रकारसे स्तुति कर और उनसे बिदा हो अपने भूतगणोंके साथ कैलासको चले आये ॥ ४१ ॥ फिर अपनी अंशरूपिणी उस माया रूपी भवानीसे, जिसको प्रधान प्रधान मुनि लोग मानते हैं उनसे प्रीति प्रकट करके भगवान् महादेवजी प्रिय वचन कहने लगे ॥ ४२ ॥ हे प्यारी ! परदेवता परपुरुष भगवान्की मायाको देखनेसे प्राणी अवश्य मोहित हो जाते हैं, क्योंकि जब मैं भी उसके वशमें पड़कर मोहित हो गया तो फिर पराधीनको मोहित होना क्या आश्चर्य है ? ॥ ४३ ॥ हे सती ! सहस्र वर्षके पीछे योगसे निवृत्त होनेपर

तुमने जिनकी कथा हमसे पूछी थी यह वही साक्षात् पुराणपुरुष हैं, उनमें काल भी प्रवेश नहीं कर सकता और दैवका भी उनपर वश नहीं चल सकता ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! भगवान् शारंगधारी, जिन्होंने समुद्र मथनेके समय अपनी पीठपर महापर्वत मन्दराचलको धारण किया था, उनके विक्रमका वृत्तांत तुमसे कहा ॥ ४५ ॥ जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस कथाको कहेंगे अथवा सुनेंगे, उनका उद्योग कभी निष्फल नहीं होगा, क्योंकि उत्तम श्लोक भगवान्‌के गुणानुवाद कीर्त्तन करनेसे समस्त क्लेशों और पापोंका नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥ जिन्होंने कपटपूर्वक मोहिनी रूप धारण कर दानव लोगोंको मोहित कर समुद्र मथन करनेसे उत्पन्न हुआ अमृत अपने चरणोंकी शरण आये हुए देवता लोगोंको पिलाया था उनके चरणकमल असज्जन लोगोंके ध्यानमें नहीं आते, केवल उपा-

श्रीशुक उवाच ॥ इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ॥ सिन्धोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥४५॥ एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ॥ यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥ ४६ ॥ असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्नानमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुपथ्यम् ॥ कपटयुवतिवेषो मोहयन् यः सुरारींस्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥ ४७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे शंकराय मोहिनी रूपप्रदर्शनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ॥ सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २ ॥ करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परंतप ॥ ३ ॥

सनासे प्राप्त होते हैं। अपने आश्रित जनोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले जो विष्णु भगवान् हैं, उनको हम भक्तिसहित नमस्कार करते हैं ॥४७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीकाया मष्टमस्कन्धे शङ्करमायामोहन नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ दोहा–तेरहवें अध्यायमें, सप्तम मनु विस्तार। षड्विध मन्वंतर कथा, कहिहौं सहित विचार ॥ इतनी कथा सुनाकर महामुनि श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहने लगे कि हे नृपश्रेष्ठ ! विवस्वान्‌के पुत्र श्राद्धदेव नामक सप्तम मनु हुए, जो अभी वर्तमान हैं, उनकी संतानका वृत्तांत कहता हूँ तुम सुनो ॥ १ ॥ हे परंतप ! इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्य्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥ २ ॥ करूष, पृषध्र, और वसुमान् ये दश वैवस्वत

मनुके पुत्र हुए ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा, मरुद्गण, दो अश्विनीकुमार और भृगु देवता हुए; पुरंदर इन सब देवताओंका इंद्र हुआ ॥ ४ ॥ कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज, यह सप्तऋषि हुए ॥ ५ ॥ इन मन्वन्तरको भी प्रजापति कश्यपजीसे अदितिके गर्भमें भगवान् विष्णुका अवतार हुआ। विवस्वान्, अर्यमा पूषा इत्यादि जो द्वादश (१२) आदित्य हैं, सबके पीछे उनके बीच जन्म लेकर यह विष्णु भगवान् वामनरूप हुए थे ॥ ६ ॥ वह सात मन्वन्तरोंकी कथा तो मैं तुम्हारे निकट वर्णन कर चुका हूँ। अब भगवान्के अवतारोंसे युक्त जो मन्वंतर आगेको होंगे, उनकी कथा कहता हूँ, वह

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ अश्विनावृभवो राजन्निन्द्रस्तेषां पुरन्दरः ॥४॥ कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥ जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥ अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् ॥ आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ॥ ६ ॥ संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वन्तराणि ते ॥ भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्याऽन्वितानि च ॥७॥ विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे ॥ संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव ॥८॥ तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः ॥ यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुताञ्छृणु ॥९॥ सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ॥ शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥ १० ॥

आप सावधान होकर सुनिये ॥ ७ ॥ हे राजन् ! विवस्वान् (सूर्य) की दो स्त्रियाँ थीं, वे दोनों विश्वकर्माकी कन्या थीं, संज्ञा और छाया उनके नाम थे, कि जिनका वृत्तांत पहले कह चुका हूँ ॥ ८ ॥ कोई ऋषि कहते हैं कि विवस्वान्के तीसरी स्त्री भी थी, कि जिसका नाम वडवा था, परंतु हमारे मतसे तो संज्ञाका ही नाम पीछे वडवा हुआ जो कुछ भी हो, इन स्त्रियोंमें संज्ञाके तीन सन्तान हुई, यथा–यम, यमी (यमुना) और श्राद्धदेव। अब छायाकी सन्तानका वृत्तान्त कहते हैं, वह सुनो ॥ ९ ॥ छायाके एक पुत्रका नाम सावर्णि हुआ और तपती नामक एक कन्या, जो कि संवरणकी स्त्री हुई। इस छायाके शनैश्चर नामक एक तीसरा पुत्र हुआ। विवस्वानके वडवा नामक जो

तीसरी स्त्री थी उससे ही दोनों अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ * ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! आठवें मन्वंतरके आनेपर सावर्णि नामक मनु होंगे। निर्मोक, विरजस्क इत्यादि इस सावर्णि मनुके पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ उसके समयमें सुतपा, विरजा और अमृतप्रभा यह देवता और विरोचनका पुत्र बलि इन्द्र होगा ॥ १२ ॥ यह राजा बलि कोई साधारण पुरुष नहीं है, स्वयं भगवान् विष्णुने इसके द्वारपर जाकर तीन चरण पृथ्वी माँगी थी, तब राजा बलिने समस्त पृथ्वी दान कर दी और सातवें मन्वन्तरमें भगवान्के प्रसादसे पाये हुए इन्द्रपदको त्याग यह सिद्धिको प्राप्त होंगे ॥ १३ ॥ हे राजन्! प्रथम तो वामनजीने राजा बलिको बांधा, फिर प्रसन्न होकर

अष्टमेऽन्तर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः॥ निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥११॥ तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः ॥ तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥ १२ ॥ दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ॥ राद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥ १३ ॥ योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः ॥ निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनाऽऽस्ते स्वराडिव ॥ १४ ॥ गालवो दिप्तिमात्रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ॥ ऋष्यशृङ्गः पिताऽस्माकं भगवान्बादरायणः ॥ १५ ॥ इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्म योगतः ॥ इदानीमासते राजन्स्वे स्व आश्रममण्डले ॥१६॥ देवगुह्यात्सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ॥ स्थानं पुरन्दराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥ १७ ॥

सुतलनामक पातालमें स्थापित किया; वह राजा बलि वहां स्वर्गसे भी श्रेष्ठ उस स्थानमें इन्द्रके समान वास करता है॥ १४ ॥ इस मन्वंतरमें गालव, दीप्तिमान् परशुराम, अश्वत्थामा, कृप, ऋष्यशृङ्ग और हमारे पिता भगवान् बादरायण (व्यास) जी महाराज॥१५॥ यह सप्तऋषि होंगे। ये लोग इस समय योगावलम्बन करके अपने-अपने आश्रमोंमें वास करते हैं ॥१६॥ हे राजन्! इस आठवें मन्वन्तरमें देवगुह्यसे सरस्वतीके गर्भमें भगवान् उत्पन्न होकर सार्वभौम नामसे विख्यात होंगे, वह ईश्वर पुरंदरसे स्वर्ग छीनकर फिर राजा बलिको दे देंगे ॥१७॥

* शंका—शनैश्चर सूर्यनारायणके तो पुत्र तथा सावर्णि मनुके छोटे भाई है, ऐसे कुलमें जन्म लेकर फिर नित्यप्रति संसारके लोगोंको क्यों दुःख देते हैं?

उत्तर—त्रिलोकीको उन्मत्त देखकर शनैश्चरने विचार किया कि सब प्राणी अभिमान वश परमात्माको भूल गये, तब शनैश्चरने ब्रह्मासे वरदान माँग संसारमें जो उन्मत्त हैं, उनके अभिमान नष्ट करनेके लिये उन दुष्ट जीवोंको दुःख देते है और जो सज्जन पुरुष हैं उनको किसी प्रकार दुःख नहीं देते।

भा० अ० ॥ ४२ ॥

अब नवम मनुका वृत्तांत कहते हैं दक्षसावर्णि नववें मनु होंगे। वरुणसे उनकी उत्पत्ति होगी। उनके पुत्र भूतकेतु, दीप्तिकेतु इत्यादि होंगे ॥१८॥ इस मन्वन्तरमें पार, मरीचि गर्भ इत्यादि देवता होंगे। अद्भुत इनके इन्द्र और द्युतिमान् प्रभृति ऋषि होंगे॥१९॥ और आयुष्मान्से अम्बुधाराके गर्भमें साक्षात् भगवान् विष्णु जन्म लेकर ऋषभदेवजीके नामसे विख्यात होंगे और तात्कालिक अद्भुत नामक इन्द्रको सर्वसंपत्ति और समृद्धिमान् त्रिलोकीका भोग करायेंगे ॥२०॥ हे नृप ! दशवाँ मनु उपश्लोकका पुत्र ब्रह्मसावर्णि होगा; भूरिषेण आदि इस मनुके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान् प्रभृति ब्राह्मण होंगे अर्थात् हविष्मान्, सुकृत, सत्य, जय, मूर्ति इत्यादि ऋषि और सुवासन विरुद्धादि देव और शम्भु देव-

नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसंभवः ॥ भूतकेतुर्दीप्तिकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥ १८ ॥ पारामरीचिगर्भाद्या देवा इन्द्रोऽद्भुतः स्मृतः ॥ द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यन्त्यृषयस्ततः ॥ १९ ॥ आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला ॥ भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥२०॥ दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ॥ तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥ २१ ॥ हविष्मान्सुकृतः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः ॥ सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शंभुः सुरेश्वरः ॥ २२ ॥ विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शंभोः सख्यं करिष्यति ॥ जातः स्वांशेन भगवान् गृहे विश्वसृजो विभुः ॥ २३ ॥ मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ॥ अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥ २४ ॥ विहंगमाःकामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ॥ इन्द्रश्च वैधृतिस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥ २५ ॥ आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति श्रुतः ॥ वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥ २६ ॥

भा० टी० अ० १३

राज होंगे ॥२१॥२२॥ दशवें मन्वन्तरमें भगवान् विभु विषूचीके गर्भमें अंशांशसे जन्म ग्रहण कर विष्वक्सेनके नामसे प्रसिद्ध होंगे और उसी समयके देवराज शम्भुके साथ उनकी मित्रता होगी ॥२३॥ ग्यारहवाँ मनु धर्मसावर्णि होगा, उसके सत्य धर्मादि दश पुत्र होंगे ॥२४॥ इस मन्वन्तरमें विहंगम, कालंगम और निर्वाणरुचि प्रभृति देवता होंगे, वैधृति उनका इन्द्र होगा, अरुणादि ऋषि होंगे ॥२५॥ और भगवान् हरि एकांशसे वैधृतिके गर्भसे जन्म ले आर्यकके पुत्र हो धर्म सेतु नामसे प्रसिद्ध होंगे । हे राजन् ! उस समय भगवान् हरिका यही अंश

त्रिलोकीको धारण करेगा ॥२६॥ फिर बारहवें रुद्रसावर्णि मनु होंगे जिनके पुत्र देववान् उपदेश और देवश्रेष्ठादि होंगे॥२७॥ उस मन्वन्तरमें ऋतधामा इन्द्र और हरित आदि देवता होंगे तथा तपोमूर्ति,तपस्वी व आग्नीध्रक आदि ऋषि होंगे॥२८॥और भगवान् हरिका अंश सत्यसह विप्रकी सूनृता नामक कन्यामें उत्पन्न होगा, वह भगवान् स्वधामा नामसे विख्यात होंगे, जिनके कारण इस मनुका समय अत्यन्त प्रसिद्ध होगा ॥ २९ ॥ तेरहवां मनु देवसावर्णि होगा। चित्रसेन, विचित्रादि उसके पुत्र होंगे ॥३०॥ मन्वन्तरमें सुकर्मा सुत्रामादि देवता इस दिवस्पति

भविता रुद्रसावर्णी राजन् द्वादशमो मनुः ॥ देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥२७॥ ऋतधामा च तत्रेन्द्रो देवाश्च हरितादयः ॥ ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥२८॥ स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः॥ अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥ २९ ॥ मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ॥ चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥ ३० ॥ देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः ॥ निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा ॥ ३१ ॥ देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः ॥ योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां संभविष्यति ॥ ३२ ॥ मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति ॥ उरुगम्भीरबुद्ध्याद्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः ॥ ३३ ॥ पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति ॥ अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः ॥३४॥ सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः ॥ वितानायां महाराज क्रियातन्तून्वितायिता ॥ ३५ ॥

देवराज और निर्मोक तत्त्वदर्शादि ऋषि होंगे ॥ ३१ ॥ इस मन्वन्तरके समय भगवान् हरि बृहतीके गर्भमें एक अंशसे अवतार लेकर देवहोत्रके पुत्र होंगे और योगेश्वर नामसे प्रसिद्ध हो तात्कालिक दिवस्पति नामक इंद्रका कार्य सिद्ध करेंगे ॥३२॥ फिर इंद्रसावर्णि नाम चौदहवां मनु होगा। उरु, गम्भीरब्रध्न प्रभृति उसके पुत्र होंगे ॥ ३३ ॥ इस मन्वंतरमें पवित्र चाक्षुष प्रभृति देवता शुचिनायक देवराज और अग्निबाहु, शुचि, शुद्ध,मागध प्रभृति ऋषि होंगे ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! इस कालमें भगवान् हरि विनताके गर्भसे अवतार धारण करके सत्रायणके पुत्र

होंगे और बृहद्भानु नामसे प्रसिद्ध हो क्रिया-कलापका विस्तार करेंगे ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! वर्तमान, भूत, भविष्य इन तीनों कालोंके अनुगत चौदह (१४) मनुओंका वृत्तांत हमने आपके सामने वर्णन किया, इन चौदह मन्वन्तरोंके समयका प्रमाण एक सहस्र युगका है ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
दोहा-पृथक्-पृथक् मनुकी कथा, यहि चौदह अध्याय । वर्णन करि हौं यथामति, भिन्न-भिन्न समुझाय ॥ श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखसे इतनी कथा श्रवण कर राजा परीक्षित् हाथ जोड़ फिर बोले हे भगवन् ! इन मन्वन्तरोंके लोक जिस प्रकारसे जिस करके जिस कर्ममें नियुक्त होते हैं, वह अनुग्रह करके आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ राजा परीक्षितकी ऐसी प्रार्थना सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग !

राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ॥ प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे मन्वंतरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ मन्वन्तरेषु भगवन् यथा मन्वादयस्त्विमे ॥ यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते ॥ इन्द्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥ यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप ॥ मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः ॥३॥ चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्ताञ्छ्रुतिगणान्यथा ॥ तपसाऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥ ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः ॥ युक्ता सञ्चारयन्त्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृपाः ॥ ५ ॥

समस्त मनु,मनुके पुत्र मुनि,इन्द्र और सब देवता यह परम पुरुष ईश्वर करके यज्ञादि अवतार द्वारा नियोजित हुआ करते हैं॥२॥इन सब मन्वंतरोंमें यज्ञादि जो पौरुषी मूर्ति अर्थात् ईश्वरके अवतार लेनेको वर्णन की गयी हैं उन समस्त, मूर्तियों द्वारा नियोजित हो मनु आदि लोग जगत्का कार्य किया करते हैं ॥ ३ ॥ हे महाराज ! चारों युगोंके अन्तमें श्रुतिगण कालग्रस्त हुए थे, इन मन्वन्तरोंमें ऋषिलोग अपने-अपने तपसे उन सबका दर्शन किया करते हैं । उन श्रुतियोंके ही द्वारा सनातन धर्म फिर प्रगट होता है ॥४॥ भगवान् हरिसे प्रेरित हुए

* शंका–चार युगके अंतमें कालसे ग्रसित हुए जो वेद उनको ऋषि लोग देखते हैं, परंतु उन ऋषियोंके देखने से क्या फल हुआ ?

उत्तर––जबतक चारों वेदोंका प्राकट्य फिर होगा, तबतक वेदमेंसे चारों युगोंके धर्मको देखकर मनुष्यों से कहते है, मनुष्य लोग सुनकर धर्म का नाश नहीं करते, जब ऋषियोंसे मनुष्य धर्म नहीं सुने तब वेद तो उस कालमे होते ही नहीं लुप्त हो जाते है. इसलिये ग्रसित हुए वेदोंको ऋषिलोग देखते है और उनका प्रचार करते हं ।

मुनिलोग चार पावोंवाले धर्मको साक्षात् अपने-अपने समयमें पृथ्वीपर फैलाते हैं ॥५॥ प्रजापाल अर्थात् मनुके पुत्रगण जबतक कि मन्वन्तरका अन्त नहीं होता; तबतक पुत्र-पौत्रादिकके कर्मसे उस धर्मका पालन करते हैं और देवता लोग यज्ञभाग ग्रहण करते हैं ॥६॥ भगवान्की दी हुई त्रिलोकीकी बड़ी सम्पत्तियोंको भोगते हुए इन्द्रदेवता तीनों लोकोंका पालन करते हुए जलकी वर्षा करते हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! भगवान् हरि प्रत्येक युगमें सनकादिक सिद्धरूप धारण करके ज्ञानोपदेश करते हैं, याज्ञवल्क्यादि ऋषिरूप धारण करके योगोपदेश करते हैं। मरीच्यादि प्रजापतिरूपी होकर प्रजासृष्टि, राजमूर्ति होकर चोरोंका वध और कालरूपी होकर समस्तका संहार किया करते हैं, उस कालमें उनके शीतोष्णादि गुण अलग-अलग हो जाते हैं ॥८॥९॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! लोग अनेक शास्त्रोंके साथ उन हरिके तत्त्व निरूपण कर-

पालयन्ति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः ॥ यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥ ६ ॥ इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् ॥ भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन्कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७ ॥ ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ॥ ऋषिरूपधरः कर्मयोगं योगेशरूपधृक् ॥ ८ ॥ सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात्स्वराड्वपुः ॥ कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥ स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया ॥ विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥ १० ॥ एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥ यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥ इति श्रीभा० म० अष्ट० सप्तमादिमन्वन्तराद्यनुवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ॥ भूतेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥ १ ॥

नेका यत्न करते हैं, परन्तु नामरूपात्मिका माया करके उनके आत्माके मोह जानेके कारण बहुत यत्न करके भी उनको नहीं देख पाते॥१०॥ हे महाराज ! कल्प और अवान्तर कल्पका प्रमाण यह आपके सामने मैंने कहा, कि जिसमें पुरावृत्तके जाननेवाले चौदह मन्वन्तर वर्णन किया करते हैं ॥ ११ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां मनुवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा—कियो यज्ञबलि नृपति जिमि, जय कीन्हों सुरलोक। सो पन्द्रह अध्यायमें, सुनकर होडु विशोक ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्राह्मण ! भगवान् वासुदेव सब प्राणियोंके ईश्वर हैं उन्होंने दीनके समान बन तीन चरण पृथ्वी राजा बलिसे किस लिये मांगी थी ! और मुंहमांगी

वस्तु पाकर फिर राजा बलिको किस लिये बांधा ? ॥ १ ॥ हे योगिन् ! हम इस वृत्तांत के सुननेकी अभिलाषा करते हैं, इस बातको जाननेके लिये हमको बड़ा कौतूहल हुआ है, क्योंकि पूर्णस्वरूप ईश्वरकी याचना और निरपराधी राजा बलिको बांधना, यह दोनों बड़े ही आश्चर्यकी बातें हैं ? ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! युद्धमें राजा बलिका इन्द्रसे पराजय तो हुआ था; परंतु शुक्राचार्यके अनुग्रहसे वह दानव (बलि) उस युद्धके पीछे उन (शुक्राचार्य) का चेला हो सब तन,मन,धन अपना उनको अर्पण कर यत्नपूर्वक शुक्राचार्यकी उपासना करने लगा ॥ ३ ॥ राजा बलिकी सेवासे शीघ्रही भृगुवंशी ब्राह्मण प्रसन्न हो गये, वह महान् ब्राह्मण यह जानकर कि राजा बलि स्वर्गके जीतनेकी इच्छा करता है,संतुष्ट हुए और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ शुक्राचार्यजी महाभिषेकद्वारा यथाविधिसे राजा बलिका अभि-

एतद्वेदितुमिच्छामो महत्कौतूहलं हि नः ॥ यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो हीन्द्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः ॥ सर्वात्मना तानभजद् भृगून् बलिः शिष्यो महात्माऽर्थनिवेदनेन ॥ ३ ॥ तं ब्राह्मणा भृगवः पीयमाणा अयाजयन्विश्वजिता त्रिनाकम् ॥ जिगीषमाणं विधिनाऽभिषिच्य महाभिषेकेण महानुभावाः ॥ ४ ॥ ततो रथः काञ्चनपट्टनद्धो हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ॥ ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥ ५ ॥ धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ॥ पितामहस्तस्य ददौ च मालामम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥ एवं स विप्रार्जितयोधनार्थस्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् ॥ प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादमामन्त्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥

षेक कर उससे विश्वजित् यज्ञकी विधिसे यज्ञ कराने लगे ॥ ४ ॥ जब उस यज्ञकी अग्निमें उचित हवि होम दी गयी तब अतिशीघ्र उस अग्निमेंसे सुवर्णके पटसे बँधा हुआ एक इन्द्रके रथके घोड़ोंके समान हरे वर्णके घोड़े और सिंहकी मूर्ति जिसपर विराजमान ऐसी एक ध्वजा ॥ ५ ॥ सुवर्णके बंदोंसे बँधा हुआ दिव्य धनुष,एवं अक्षय बाणोंसे परिपूर्ण दो तूण (तरकस) और दिव्य कवच यह वस्तु निकलीं। जब राजा बलिने यज्ञाग्निसे इन सब सामग्रियोंको पाया, तब उनके दादा परम भक्त प्रह्लादजीने उनको एक फूलोंकी माला दी, कि जिसके गूँथे हुए फूल कभी नहीं कुंभलाते थे और शुक्राचार्यने एक शंख दिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! भृगुवंशीय ब्राह्मणोंने राजा बलिको इस प्रकारसे

रणकी सामग्रियाँ दिलवायीं और फिर उनका स्वस्त्ययन किया, तब राजा बलिने प्रणाम कर उन सबकी प्रदक्षिणा की, फिर चरण छूकर अपने दादा प्रह्लादको प्रणाम किया ॥ ७ ॥ फिर भृगुजीके दिये हुए दिव्य रथपर सवार हो शोभायमान माला पहन कवच धारण किया, फिर धनुष और कवच ग्रहण करके पीठमें तरकस बांधा ॥८॥ हे राजन्! सुवर्णके भुजबंदोंसे राजा बलिकी दोनों भुजायें दीप्तिमान हो रही थीं, दोनों कानोंमें मकराकार कुण्डल दमक रहे थे, इस प्रकार राजा बलि रथारूढ़ हो कुण्डमें विराजमान अग्निके समान शोभायमान होने लगा ॥ ९ ॥ जिनका बल और ऐश्वर्य राजा बलिके ही समान था और जो गगनमण्डलको अपनी दृष्टिसे पान कर और दिशाओंको मानो भस्म ही कर देते थे ॥१०॥ ऐसे दैत्ययूथपतिगण अपने-अपने यूथोंके साथ जाकर राजा बलिके साथ मिल गये। राजा

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः ॥ सुस्रग्धरोऽथ सन्नह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥८॥ हेमाङ्गदलसद्बाहुःस्फुरन्मकरकुण्डलः ॥ रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९॥ तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः ॥ पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥ वृतो विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः ॥ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन्निव रोदसी ॥११॥ रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः ॥ कूजद्विहंगमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ १२ ॥ प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः॥ हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः ॥ नलिन्यो यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥१३॥ आकाशगङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया ॥ प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥ १४ ॥

बलि उन सब असुरोंकी बड़ी भारी सेनाको संग ले सब सम्पत्तियोंसे भरी-पुरी अमरावतीकी ओर चला। राजा बलिके चलनेके समय मानो पृथ्वी स्वर्ग दोनों कम्पायमान हो रहे थे ॥११॥ हे राजन्! इंद्रपुरीके विभवका क्या वर्णन किया जाय? यह पुरी शोभायमान नन्दनादि उपवन व उद्यान समूहोंसे युक्त होकर अतिशय रमणीय हो रही थी, उन उपवनों व उद्यानोंमें पक्षियोंके जोड़े कलरव कर रहे थे और मतवाले भौंरे मीठी गुञ्जारसे अपूर्वही गान गा रहे थे ॥१२॥ वहां जो देवताओंके वृक्ष हैं उन सबकी शाखायें प्रवाल और फलफूलोंके भारी बोझसे झुक रही थीं और वहांके सब सरोवरोंमें सुरसेवित स्त्रियाँ परमकौतूहलसे विहार कर रही थीं, उन सरोवरोंमें जो कमलिनी खिल रही थीं, वे हंस, सारस, चक्रवाक और कारंडव आदि जलचर पक्षियोंसे व्याप्त थीं ॥१३॥ हे राजन्! उस इन्द्रपुरीके चारों ओर आकाशगंगा है, मानो यही

अमरावतीकी खाँई है। इस इन्द्र पुरीके चारों ओर अतिऊंची चहारदीवारी है, उस चहारदीवारीके ऊपर सामरीक अड्डे (बुर्ज) बने हुए हैं ॥ १४ ॥ यह पुरी विश्वकर्माजीकी बनाई हुई थी, यहांके द्वारोंके कपाटोंपर सुवर्णके पत्ते जड़े हुए थे, वहांके गोपुर (फाटक) स्फटिक मणिके बने हुए थे और उस पुरीमें बड़े-बड़े सुन्दर राजमार्ग बने हुए थे ॥ १५ ॥ वह पुरी सभा, चौक, गली इनसे सम्पन्न थी, दश करोड़ गन्धर्व और अप्सरा वहांपर रहते थे अनन्त विमान वहांपर धरे थे, हीरा, मूंग मोती भी वहां ढेरके ढेर रखे थे, और बाजार समस्त सम्पत्तियोंसे भरे हुये थे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इंद्रपुरीकी स्त्रियाँ बहुत रूपवती थीं, जिनका यौवन और सुकुमारता कभी नष्ट नहीं होती, जिनके श्यामवर्ण थे और वचन भी निर्मल थे, वे इस प्रकार शोभायमान होती थीं कि जैसे शिखासहित अग्नि प्रकाशमान होती है ॥ १७ ॥

रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ॥ जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् ॥ शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥ यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ॥ भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥ १७ ॥ सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्रजाम् ॥ यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥ १८ ॥ हेमजालाक्षनिर्गच्छन्धूमेनागुरुगन्धिना ॥ पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥ १९ ॥ मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभिर्नानापताकावलभीभिरावृताम् ॥ शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां वैमानिकस्त्रीकलगीतमंगलाम् ॥ २० ॥ मृदंगशंखानकदुन्दुभिस्वनैः सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः ॥ नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकैर्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥ २१ ॥

उस अमरावती पुरीमें देवता लोगोंकी स्त्रियोंके केशोंसे हुई सुगंधित मालाओंकी सुगंध ग्रहण किये हुए पवन प्रत्येक मार्गमें बह रहे हैं ॥ १८ ॥ सुवर्णके झरोखोंसे निकले हुए श्वेत अगरके धुएँसे ढके हुए राजमार्गमें देवताओंकी प्यारी अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड उस पुरीके राजमार्गमें चले जाते थे ॥ १९ ॥ यह पुरी मुक्तामय वितान (चंदोवा) सुवर्णमय ध्वजा और विविध पताकाओंसे सजे-धजे हुए विमानोंके अग्रभाग (छज्जा) से व्याप्त थी और मोर, कबूतर, भौंरे आदिके शब्दसे शब्दायमान थी और विमानमें बैठी हुई स्त्रियोंके मनोहर गीतोंसे मंगलस्वरूप हो रही थी ॥ २० ॥ अधिक करके यह पुरी मृदंग, शंख, ढोल, दुन्दुभी इत्यादिकी ध्वनि और तालसहित बीणा,

मुरज, वंशीके नाद, गन्धर्वों के गीत, नृत्य आदिकोंसे अतिमनोहर हो रही थी, उसमें ऐसी प्रभा प्रकाशित होती थी कि मानों इसने सबकी कान्तिको जीत लिया है ॥२१॥ हे राजन् ! इस पुरीमें अधार्मिक, भूतद्रोही, खल, अभिमानी, कामी लोभी जन नहीं जा सकते, जिनमें यह दोष नहीं होते वे ही लोग वहांपर जाते हैं ॥ २२ ॥ सेनापति बलिने इस देवपुरीमें जाकर सेनाके द्वारा उस पुरीका बाहरी भाग चारों ओरसे घेर लिया और देवताओंकी स्त्रियोंको भय दिखानेके लिये शुक्राचार्यका दिया हुआ शंख बजाने लगा ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे राजा बलिका उद्यम जान देवराज सब देवता लोगोंको साथले अपने गुरु बृहस्पति जीसे जाकर कहने लगे ॥२४॥ कि हे भगवन् ! हम अपने वैरी राजा बलिका फिर बड़ा भारी उद्यम देखते हैं । हम अनुमान करते हैं कि उसका यह उद्यम हम लोग नहीं सह सकेंगे । हे गुरो ! किस लिये

यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः ॥ मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्तियत् ॥ २२ ॥ तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्बहिः समन्ताद्रुरुध पृतन्यया ॥ आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुञ्जन् भयमिन्द्रयोषिताम् ॥ २३ ॥ मघवांस्तदभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् ॥ सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥ २४ ॥ भगवन्नुद्यमो भूयान् बलेर्नः पूर्ववैरिणः ॥ अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत् तेजसोर्जितः ॥२५॥ नैनं कश्चित् कुतो वाऽपि प्रतिव्योढुमधीश्वरः ॥ पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ॥ दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥२६॥ ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः ॥ ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥२७॥ गुरुरुवाच ॥ जानामि मघवञ्छत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ॥ शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ २८ ॥

राजा बलिका ऐसा तेज बढ़ गया ॥ २५ ॥ हमको जान पड़ता है कि किसी उपायसे इस दैत्यराज बलिको यहाँसे दूर नहीं कर सकेगा, क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि यह बलि मुखसे मानो सब जगत्को पिये लेता है और जीभसे दशों दिशाओंको चाटता है, नेत्रोंसे दशों दिशाओंको भस्म किये देता है । निःसन्देह ऐसा ज्ञात होता है कि, यह दानव प्रलयके अग्निके समान उठा है । हे गुरो ! यह हमारा शत्रु इस प्रकार दुर्द्धर्ष कैसे हुआ ? इस शत्रुमें इस प्रकारका सामर्थ्य कैसे हुआ ? और ऐसा तेज व साहस किस कारण हुआ ? क्योंकि सामर्थ्यादिके होनेसे ही युद्धकी सामग्रियाँ हो रही हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ २६ ॥ २७ ॥ यह सुनकर श्रीबृहस्पति जी महाराज कहने

लगे कि देवराज इन्द्र ! तुम्हारे इस वैरीकी उन्नति होनेके कारणको हम जानते हैं। यह दानव ब्रह्मवादी भृगुवंशियोंका शिष्य (चेला) है, उन ब्राह्मणोंने स्नेहके वश होकर अपने शिष्यका तेज बढ़ा दिया है ॥२८॥ इसलिये स्वयं हरिके अतिरिक्त तुम अथवा तुम्हारे ही समान कोई पुरुष तेजस्वी राजा बलिके जीतनेको समर्थ नहीं होगा, अब ब्रह्मतेज सम्मुख आया है उसको कौन जीत सकता है? जिस प्रकार लोग कालके सामने खड़े नहीं हो सकते उसी प्रकार कोई उस ब्रह्मतेजके आगे खड़े होनेको समर्थ नहीं होगा ॥ २९ ॥ बस अब हम आपको यही सम्मति देते हैं कि जबतक शत्रुका विनाश हो तबतक कालकी प्रतीक्षा कर स्वर्गको छोड़ तुम अदृश्य हो जाओ ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोंके ही बलसे

भवद्विधो भवान्वाऽपि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ॥ नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः॥२९॥तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम्॥यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥३०॥ एष विप्रबलोदर्कः सम्प्रत्यूर्जितविक्रमः ॥ एषामेवापमानेन सानुबन्धो विनङ्क्ष्यति ॥३१॥ एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणाऽर्थानुदर्शिना ॥ हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥ ३२ ॥ देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम् ॥ देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥

बलिका बल बराबर बढ़ गया है कि जिससे यह अब महाविक्रमशाली हो गया है, ब्राह्मणोंका अपमान करनेसे यह स्वयं अपने वंशके साथ नाशको प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥३१॥अर्थ और कामके जाननेवाले गुरु बृहस्पति जीने जब इस प्रकार से करने योग्य कार्य बताकर श्रेष्ठ सम्मति दी, तब सब कामरूपी देवता लोग स्वर्गको छोड़कर अन्तर्धान हो गये॥३२॥शुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जबसे देवतालोग अदृश्य हो गये तब विरोचनका पुत्र राजा बलि स्वर्गमें विराजमान हुआ और तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया * ॥३३॥

* शंका–जो मनुष्य और दैत्य अश्वमेध यज्ञ नहीं करते सो प्राणी इन्द्रासनपर नहीं बैठ सकता ऐसा हमने सब शास्त्रोंमें सुना है और ऐसा भी हमने सुना है कि, अनेक बार राक्षसोंको अपने अधीन कर लिया है, परंतु यह बड़ी भारी शंका है कि, एक शुक्रको ही पूजकर राजा बलिने इन्द्रका राज्य छीन लिया और बिना ही अश्वमेध यज्ञ किये इन्द्रासन पर जा बैठा।

उत्तर–जिस दिन अहल्याके संग इंद्रने खोटा कर्म किया उसी समय ६० साठ अश्वमेध यज्ञका पुण्य नष्ट हो गया केवल ४० चालीस अश्वमेध यज्ञका पुण्य शेष रह गया, तब हिरण्यकशिपु इन्द्रासनपर बैठा था, उसके पीछे राजा बलि इन्द्रासनपर बैठा फिर जितना पुण्य इन्द्रका अवशेष रह गया था उतनीही भगवान्ने इन्द्रकी रक्षा की इसलिये बिना अश्वमेध यज्ञ किये राजा बलिने इन्द्रका इन्द्रासन छीन लिया।

हे राजन्! शिष्योंपर स्नेह करनेवाले भृगु लोगोंने अपने आज्ञाकारी शिष्य विश्वविजयी बलिका इन्द्रत्व स्थिर करनेवाले उससे शत अश्वमेध यज्ञ कराये ॥ ३४ ॥ शत अश्वमेध यज्ञ करनेके प्रभावसे राजा बलिकी कीर्ति दशों दिशाओंमें फैल गयी और वह नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान विराजमान हुआ ॥ ३५ ॥ और ब्राह्मण लोगोंने जो बड़ी सम्पत्ति प्राप्त करा दी इसलिये राजा बलि अपनेको कृतार्थ मानकर उस सम्पत्तिको भोगने लगा ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा–सोलहवें सुत–दुर्दशा, देखि अदिति भय मान। कश्यपकी विनती करी, कश्यप दीन्हों ज्ञान ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि हे राजा परीक्षित! जब देवता लोग इस प्रकारसे छिप गये और दैत्योंने स्वर्गपुरीको छीन लिया; तब

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ॥ शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥ ३४ ॥ ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ॥ कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेज उडुराडिव ॥ ३५ ॥ बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते म० अष्टम० बलिकृतस्वर्गाक्रमणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा ॥ हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥१॥ एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात्॥निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥ स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ॥ सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥ अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनाऽऽगतम् ॥ न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥ अपि वा कुशलं किंचिद् गृहेषु गृहमेधिनि ॥ धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥ ५ ॥

इंद्रकी माता अदिति अनाथके समान हो परितापको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ इनके पति कश्यपजी बहुत कालके पीछे समाधि बिसार एक दिन उत्सवहीन व आनन्दरहित अदितिके आश्रममें आये ॥ २ ॥ और यथाविधि पूजित हो आसनपर बैठ अपनी स्त्रीका मलिन मुख देखकर पूछने लगे कि ॥ ३ ॥ हे भद्रे! लोकमें ब्राह्मण लोगोंका तो कोई अमंगल नहीं हुआ! अधर्म तो प्राप्त नहीं हुआ? और मृत्युके वशमें पड़े लोगोंका तो कोई अशुभ नहीं हुआ ॥ ४ ॥ अथवा तुम्हारे गृहमें धर्म, अर्थ, कामकी तो कोई अकुशल नहीं हुई है? हे

गृहिणी! गृहस्थाश्रम साधारण नहीं है, इस गृहस्थाश्रमसे अयोगी लोग भी स्वधर्मादि करके योगके फलको पाते हैं ॥ ५ ॥ हे सति! इतनी मलिन क्यों हो? अथवा तुम्हारे कुटुम्बके विषय अनुरागी रहनेपर कोई अतिथि विना पूजा और आदर पाये तुम्हारे घरसे तो नहीं चला गया? गृहसे अतिथिका विमुख होकर चला जाना वास्तवमें क्षोभकी बात है ॥ ६ ॥ जिस घरमें केवल जलसे भी अतिथि का सत्कार नहीं होता, वह गृह शृगालराजके भट्ठेके समान है ॥ ७ ॥ हे साध्वि! तुम्हारे अनमने होनेका क्या कारण है? हमारे

अपि वाऽतिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया ॥ गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥६॥ गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ॥ यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥ अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति ॥ त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ८ ॥ यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान् गृहान्वितः ॥ ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥९॥ अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि॥लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥ १० ॥

परदेशमें चले जानेपर उद्विग्नचित्त हो क्या? किसी दिन यथासमयपर तीनों अग्नियोंमें हवि देना तो नहीं भूल गयी? ॥ ८ ॥ गृहस्थ पुरुषको तीनों अग्नियोंमें अवश्य होम करना उचित है, क्योंकि ब्राह्मण और अग्नि सर्वदेवमय विष्णु भगवान्‌का मुख है, अग्निकी पूजा करनेसे पुरुषगण कामनाओंके पूर्ण करनेवाले लोकोंको प्राप्त होते हैं * ॥ ९ ॥ हे मनस्विनी! तुम्हारे पुत्र तो सब मंगलसे हैं? मुख-मलिनतादि लक्षणोंको देखकर जान पड़ता है कि तुम्हारा अंतःकरण सावधान नहीं है, बताओ तो सही, ऐसी अनमनी किसलिये हो

* शंका—अदितिसे कश्यपजीने कहा था कि, हे प्रिये! हम किसी दूसरे ग्रामको गये थे तब तुमने अग्निमें होम नहीं किया, इसलिये उदासीन बैठी हो क्या? लेकिन विना वेदमन्त्रोंसे तो होम होता नहीं और वेदमन्त्र पढ़नेका स्त्रियोंको अधिकार नहीं तो फिर ऐसा अनुचित वाक्य कश्यपजीने क्यों कहा?

उत्तर—प्रायश्चित्तकदंब श्लोक एक लक्ष १००००० तथा विधानपारिजातक एक लक्ष १००००० श्लोक अथवा दशस्मृति बावन सहस्र ५२००० श्लोक और बड़े-बड़े धर्मशास्त्र हैं, उन धर्मशास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि यदि स्त्रीका पति एक महीनेके लिये दूसरे ग्रामको चला जाय, और अपने अग्निहोत्रकी अग्नि आदि सामग्री न ले जा सके तब स्त्रीको उचित है कि अपने पतिके नामसे मन्त्र पढ़कर होम कर दे, पतिके होमका विघ्न किसी प्रकार न होने पावे, ऐसा धर्मशास्त्रका मत जानकर कश्यपजीने अदितिसे पूछा था।

रही हो ? ॥ १० ॥ यह सुनकर अदितिने कहा कि हे स्वामिन् ! गो, ब्राह्मण, धर्मादि सबका ही मंगल है । गृहमेधिन्, जो-जो गृह धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंका उद्भव स्थान है वह भी कुशलसे है, अर्थात् धर्मादि त्रिवर्ग भी यथारीतिसे निर्बाह होते हैं ॥ ११ ॥ और मैं जो आपका ध्यान करती हूँ, उसके प्रभावसे अग्नि, अतिथि, भिक्षु प्रभृति जो कोई भी हैं, वे सबही बलि (भोजन) की कामना करते हैं और अघाये हुए हैं ॥ १२ ॥ आप हमारे प्रजाध्यक्ष हैं और ऐसा ही धर्मोपदेश करते हैं, फिर भला हमारे मनकी कामना पूर्ण क्यों नहीं होती ? ॥ १३ ॥ हे प्रजेश ! सब प्रजा आपके ही मन और शरीरसे उत्पन्न हो सत्त्व, रज अथवा तमोगुणका अवलम्बन

अदितिरुवाच ॥ भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ॥ त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥ ११ ॥ अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ॥ सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥ १२ ॥ को नु मे भगवन्कामो न संपद्येत मानसः ॥ यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान् प्रभाषते ॥ १३ ॥ तवैव मारीच मनश्शरीरजाः प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः ॥ समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो तथाऽपि भक्तं भजते महेश्वरः ॥ १४ ॥ तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत ॥ हृतश्रियो हृतस्थानान् सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥ १५ ॥ परैर्विवासिता साऽहं मग्ना व्यसनसागरे ॥ ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥ १६ ॥ यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः ॥ तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥ १७ ॥

करती हैं । सुरादि सब प्रजाओंमें यद्यपि समानभाव हैं, तो भी महेश्वरगण भक्त पुरुषके प्रति विशेष अनुग्रह करते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये मैं भक्ति करके आपको भजती हूँ, सो आप मेरी भलाईका विचार करें । हे प्रभो ! मेरी सौतके पुत्र दैत्य लोगोंने हमारे पुत्रोंकी लक्ष्मीको हरण किया और स्थान भी छीन लिया, आप मेरे पुत्रोंकी रक्षा करें और दितिके पुत्रोंने हमको निकाल दिया है, इसी कारण मैं दुःखके समुद्रमें डूब रही हूँ । हे ब्रह्मन् ! दानवोंने प्रबल होकर हमारे पुत्रोंका ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी और स्थान जो-जो वस्तु थीं, वे सब हरण कर ली हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे कल्याणकारिन् ! हमारे पुत्र उन सबको जिस प्रकार फिर प्राप्त हों, वैसा ही कल्याण

आप अपनी बुद्धिसे विचारें ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब अदितिने इस प्रकारसे कश्यपजीकी प्रार्थना की, तब महर्षि कश्यपजी विस्मित होकर बोले कि अहो ! भगवान् विष्णुकी माया कैसी बलवान् है ? कैसा आश्चर्य है, यह जगत् स्नेहकी फाँसीमें बँध रहा है ॥१८॥ हे भद्रे ! कहां तो पंचभूतका बना हुआ देह और प्रकृतिसे परे वह आत्मा और कौन किसका पति है और कौन किसका पुत्र है ? केवल मोह ही इन सबका कारण है ॥१९॥ हे राजन् ! महर्षि कश्यपजीने जब इस प्रकारसे तत्त्वज्ञानका उपदेश कर देखा कि इससे अदितिको सन्तोष न हुआ तब फिर बोले कि हे भद्रे ! सब प्राणियोंके अंतर्यामी, जगत्के गुरु, आदिपुरुष, वासुदेव भगवान्की तुम पूजा करो ॥ २० ॥ वे दीनदयालु अर्थात् दीनोंपर दया करनेवाले भगवान् अवश्य ही तुम्हारी

श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ॥ अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥१८॥ क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः ॥ कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥ १९ ॥ उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम्॥सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥२०॥ स विधास्यति ते कामान् हरिर्दीनानुकम्पनः॥ अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥ २१ ॥ अदितिरुवाच ॥ केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् ॥ यथा मे सत्यसंकल्पो विदध्याच्च मनोरथम् ॥ २२ ॥ आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ॥ आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥ २३ ॥ कश्यप उवाच ॥ एतन्मे भगवान् पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः ॥ यदाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥ २४ ॥

मनःकामना पूर्ण करेंगे । हम भली भांति जानते हैं कि भगवत्सेवा ही अमोघ है, इसके सिवाय और कुछ अमोघ नहीं है ॥ २१ ॥ यह सुनकर अदिति प्रसन्नमन हो कहने लगी कि हे ब्रह्मन् किस विधानसे जगद्गुरु भगवान्की उपासना करूं, जिस प्रकारसे वह सत्य संकल्प हमारा मनोरथ पूर्ण करें ॥२२॥ और पुत्रोंसहित दुःखी हुई मेरे ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो जायँ, आप मुझको वैसे ही वह पूजा करनेकी विधि बतला दीजिये ॥ २३ ॥ यह सुनकर कश्यपजीने कहा कि हे भद्रे ! हमने पहले पुत्रकी इच्छा करके पद्मयोनि ब्रह्माजीसे यह बात पूछी थी, तो उन्होंने मुझको केशवतोषण नामक जिस व्रतका उपदेश किया था वही व्रत हम तुमसे कहते हैं, वह तुम सचेत

हो मन लगाकर सुनो ॥ २४ ॥ फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें बारह दिनका पयोव्रत करे, इस व्रतमें भक्तियुक्त होकर कमललोचन भगवान्‌की पूजा करे ॥ २५ ॥ हे सति ! जो मिल सके तो जंगली शूकरकी खोदी हुई मिट्टी शरीरमें लगाकर नदीके जलमें स्नान करे और स्नान करनेके समय इस मंत्रको पढ़े ॥ २६ ॥ हे देवि ! स्नानकी इच्छा करके आदिवराहजीने तुम्हारा रसातलसे उद्धार किया था, हे पृथ्वी ! तुमको नमस्कार है । तुम हमारा पाप दूर करो ॥ २७ ॥ इसके पीछे नित्य नैमित्तिक नियमोंको पालन कर सावधान चित्तसे मूर्तिमें, पृथ्वीमें, सूर्यमें, जलमें, अथवा अग्निमें व गुरुमें जहां इच्छा हो वहां भगवान्‌की पूजा करे ॥ २८ ॥ पूजाके समय निम्न

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयाऽन्वितः ॥२५॥ सिनीवाल्यां मृदाऽऽलिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया ॥ यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२६॥ त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ॥ उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥ २७ ॥ निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः ॥ अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ॥ सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९ ॥ नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ॥ चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥ ३० ॥ नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःश्रृङ्गाय तन्तवे ॥ सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥ ३१ ॥ नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ॥ सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥

लिखित नव मन्त्रोंको पढ़कर भगवान्‌का आवाहनादि करना चाहिये नव मन्त्र यह हैं हे भगवन् वासुदेव ! आप बड़ेसे भी बड़े पुरुष हैं, सर्व प्राणियोंके निवास स्थान हैं, एवं सबके साक्षी हैं, आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ आप चौबीस तत्त्वोंके जाननेवाले हैं, सांख्य योगका विस्तार करनेवाले हैं, ऐसे अव्यक्त सूक्ष्म प्रधान पुरुष, आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ वे विष्णुभगवान् यज्ञके फलका विस्तार करनेवाले हैं, और यज्ञरूपी हैं जिनके दो शिर (प्रायणीय और उदयनीय) हैं, तीन चरण (सवनत्रय) हैं, चारशृंग (चारों वेद) हैं, सात हस्त (सात छेद) हैं, त्रयी विद्या आत्मा है, उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥ शिव और रुद्ररूपी उन भगवान्‌को नमस्कार है,जो

शक्तिधर एवं सर्वविद्याओंकेपति हैं और प्राणियोंके अधिपति हैं, उनको हमारा नमस्कार है ॥२२॥ जो जगत्के आत्मा योगेश्वरहैं, और जिनका शरीर ही योगका कारण है, उन हिरण्यगर्भको नमस्कार है ॥२३॥ हे भगवन्! आप आदि देव हैं, सबके साक्षीरूप हैं, नारायण, नर और हरि हैं; आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे भगवन्! आप केशव हैं, आपका शरीर मरकत मणिके समान श्यामवर्ण है, आप पीतांबर धारण किये हुए हैं, आप श्रीको प्राप्त हुए हैं, आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे वरेण्य! हे वरदश्रेष्ठ!! आप पुरुषोंको सब वर देते हैं, इस कारण वीरलोग कल्याणके लिये आपकी चरणरजको पूजते हैं ॥ २६ ॥ अहो! देवता लोग और लक्ष्मीजी जिनके चरण

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ॥ योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥ २३ ॥ नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ॥ नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥ २४ ॥ नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ॥ केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ २५ ॥ त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ॥ अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥ २६ ॥ अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ॥ स्पृहयन्त इवामोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥ एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ॥ अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥ ३८ ॥ अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् ॥ वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ॥ गन्धधूपादिभिश्चार्चेद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३९ ॥ शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ॥ ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥

कमलके सौरभकी चाहना करती हैं, वे भगवान् हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ इन मन्त्रोंसे आवाहन कर सम्मान करे, इंद्रियोंके ईश्वर भगवान्‌को श्रद्धायुक्त हो पाद्य व आचमनादिसे तथा गंध मालादिकसे पूजन स्नान कराये और "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस बारह अक्षरके मन्त्रसे विधिपूर्वक पूजन करे ॥३८॥ गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन कर भगवान्‌को दूधसे स्नान कराये। फिर वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पाद्य, आचमन, गन्ध, धूप, नैवेद्यादि उपचारोंसे द्वादशाक्षर मन्त्रको पढ़ पढ़कर हितचित्तसे पूजन करे ॥ ३९ ॥ हे सति! जो आपसे हो सके तो दूधमें खीर बनाकर उसका श्रीनारायणको भोग लगाओ। फिर घृत और गुड़के सहित उस खीरको निवेदन करके

मूलविद्या अर्थात् बारह अक्षरके मन्त्रसे होम करे ॥ ४० ॥ फिर निवेदन किये हुए पदार्थ भगवद्भक्तको भोजन कराये, अथवा स्वयं भोजन कर ले। हे भद्रे! पूजा करनेके पीछे आचमन कराकर फिर ताम्बूल निवेदन करे ॥४१॥ फिर एकशत आठ (१०८) वार द्वादशाक्षर मन्त्र जप करके पहले कहे व और दूसरे मन्त्रोंसे भगवान्की स्तुति करे। फिर भूपरिक्रमा करके भूमिपर गिर साष्टांग दंडवत् प्रणाम करे और निर्माल्य ग्रहण करके फिर देवताका विसर्जन करे ॥ ४२ ॥ फिर खीरसे ब्राह्मणोंको भोजन कराये कि जिनकी गिनती दोसे कम न हो॥४३॥ फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले बन्धु बांधवों सहित अपने आप भी भोजन करे, फिर रात्रिमें ब्रह्मचारी रहकर प्रभातको प्रथम दिन ॥ ४४ ॥

निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीत वा स्वयम् ॥ दत्त्वाऽऽचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत्॥४१॥ जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दण्डवन्मुदा ॥ ४२ ॥ कृत्वा शिरसि तच्छेषं देवमुद्वासयेत् ततः ॥ द्व्यवरान् भोजयेद्विप्रान् पायसेन यथोचितम् ॥४३॥ भुञ्जीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ॥ ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥४४॥ स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ॥ पयसा स्नापयित्वाऽर्चेद्यावद्व्रत समापनम् ॥ ४५ ॥ पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः ॥ पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४६ ॥ एवं त्वहरहः कुर्याद्द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ॥ ब्रह्मचर्यमधः स्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४८ ॥

प्रातःकाल स्नान कर पवित्र हो जाय,फिर गायके दूधसे भगवान्को स्नान कराये और पूजा करे, जबतक व्रत समाप्त न हो तबतक ऐसे ही करना चाहिये ॥ ४५ ॥ हे देवि! केवल दूध ही पान करके विष्णु भगवान्का पूजन आदरपूर्वक करता हुआ व्रत करे और पहलेके ही समान अग्निमें होम करे और ब्राह्मण भोजन कराये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार बारह दिनका पयोव्रत करे अर्थात् पड़वा तिथिसे शुक्ला त्रयोदशी तक होम, पूजन और ब्राह्मण-भोजनादिसे भगवान् वासुदेवकी आराधना करे ॥ ४७ ॥ इन बारह दिनतक ब्रह्मचर्यका पालन करना, पृथ्वीमें

शयन करना और तीनों संध्याओंमें स्नान करना आवश्यक है ॥ ४८ ॥ वासुदेव--परायण होकर असाधु लोगोंसे संभाषण न करे, सर्व प्राणियोंकी हिंसा एवं ईर्ष्या न करे। त्रयोदशीके दिन पञ्चामृतसे विष्णु भगवान्‌को विधिके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी बतायी हुई विधिसे शास्त्रानुसार स्नान कराये ॥ ४९ ॥ और धानादिकी कांक्षा छोड़कर बड़ी भारी पूजा करे, फिर दूधसे चरु तैयार कर भगवान् विष्णुको निवेदन करे ॥ ५० ॥ और अच्छे प्रकार पवित्र व सावधान हो पिछले कहे हुए मंत्रोंसे पूजा करे, जिससे परम पुरुष प्रसन्न हो जायँ

वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ॥ अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥ त्रयोदश्यामथो विष्णोःस्नपनं पञ्चकैर्विभोः ॥ कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥५०॥ पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ५१ ॥ शृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ॥ नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात् पुरुष तुष्टिदम् ॥ ५२ ॥ आचार्यं ज्ञानसंपन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ॥ तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥ ५३ ॥ भोजयेत् तान् गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ॥ अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः ॥५४॥ दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्वि-ग्भ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ अन्नाद्येनाऽऽश्वपाकांश्च प्रीणयेत् समुपागतान् ॥ ५५ ॥ भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणेषु च ॥ विष्णोस्तत् प्रीणनं विद्वान् भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥ ५६ ॥

वैसे ही गुणयुक्त नैवेद्यका भोग लगाये ॥ ५१ ॥ फिर वस्त्र, भूषण और गोदान करके ज्ञानसम्पन्न आचार्य और पुरोहित लोगोंको संतुष्ट करे। हे सति ! इन सबके प्रसन्न करनेसे भगवान्‌की आराधना अपने आप हो जाती है ॥५२॥५३॥ इन सब पुरुषोंको व और जो ब्राह्मण वहांपर उस समय आ जायँ, उन सबको अपने सामर्थ्यके अनुसार उत्तम भोजन कराये। फिर ऋत्विज और गुरुको यथायोग्य दक्षिणादि देकर और जो पुरुष आ गये हों उनको अन्नादि देकर तृप्त करे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ दीन, अन्धे, कृपण, इन लोगोंको भोजन करानेसे भगवान्

हरिका प्रसन्न होना जानकर इनको भी भोजन कराये और फिर आप जातिभाइयों सहित भोजन करे ॥ ५६ ॥ हे भद्रे ! व्रतके समय प्रतिदिन गाना, बजाना, नाचना, स्तुतिपठन, स्वस्तिवाचन और भगवतकथा इत्यादिसे भगवान्‌की पूजा करे ॥ ५७ ॥ हे महाभागे ! इसका नाम पयोव्रत है; इससे ही परमपुरुषका आराधन होता है । पितामह ब्रह्माजीने हमको यह व्रत बताया था, हमने प्रीतिके वश हो तुम्हारे आगे वर्णन किया ॥ ५८ ॥ श्रीकश्यपजी बोले कि हे महाभागे ! तुम इस व्रतको भलीभांति करके इससे जितेन्द्रिय होकर भजनेके योग्य अव्यक्त भगवान्‌की आराधना करो ॥ ५९ ॥ इस व्रतका नाम सर्वयज्ञ है, यही सर्व व्रत, यही तपका सार है, यही बड़ा भारी दान और

नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ॥ कारयेत्सत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥ ५७ ॥ एतत् पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ॥ पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥ ५८ ॥ त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ॥ आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥ ५९ ॥ अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ॥ तपस्सारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥ ६० ॥ त एव नियमाः साक्षात् त एव च यमोत्तमाः ॥ तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥६१॥ तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ॥ भगवान् परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥६२॥ इति श्रीभागवते म० अष्टमस्कन्धेऽदित्यै पयोव्रतोपदेशो नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता साऽदिती राजन् स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ॥ अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥

यही ईश्वरका तर्प्पण है ॥६०॥ हे भद्रे ! जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं वही नियम, वही उत्तम संयम, वही तप, वही दान, वही व्रत और वही यज्ञ है ॥ ६१ ॥ इसलिये तुम नियमसहित और श्रद्धापूर्वक इस व्रतको करो, भगवान् इससे शीघ्र ही प्रसन्न होकर तुमको मनोवांछित वरदान देंगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां अदिति पयोव्रतवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा–व्रत करनेसे अदितिपर, है प्रसन्न भगवान् । सो सत्रह अध्यायमें, धारो तनु सुखदान ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित् ! अपने स्वामी महर्षि कश्यपजीके इस प्रकार कहनेपर अदितिने श्रद्धापूर्वक आलस्य त्याग इस बारह दिनके व्रतको आरंभ किया ॥ १ ॥

वह अपनी बुद्धिको सारथी बनाकर इंद्रियरूप दुष्ट घोड़ों को वशमें कर एकाग्रचित्तसे परमपुरुष ईश्वरके ध्यानमें मग्न हुई ॥ २ ॥ और एकाग्रबुद्धिसे अखिलात्मा वासुदेव भगवान्में मन लगाकर बराबर पयोव्रतको करने लगी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इस व्रतके करनेसे भगवान् आदिपुरुष शीघ्र ही पीताम्बर धारण किये हुए हाथमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये अदिति के सामने आकर प्रकट हुए ॥ ४ ॥ उनको देखते ही अदिति आदरपूर्वक शीघ्रतासे उठी और प्रीतिसे विह्वल हो पृथ्वीमें गिरकर दण्डेकी नांई प्रणाम किया ॥५॥ हे राजन् ! फिर प्रीतिसे विह्वल होनेके कारण अदिति हाथ जोड़े हुए उठी परन्तु स्तुति करनेको ही समर्थ न हुई, बरन् उसके मुखसे बाततक

चिन्तयन्त्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् ॥ प्रगृह्येन्द्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥ मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥ तस्याः प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः ॥ पीत-वासाश्चतुर्बाहुः शंखचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ॥ ननाम भुवि कायेन दण्डवत प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥ सोत्थाय बद्धाञ्जलिरीडितुं स्थिता नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा ॥ बभूव तूष्णीं पुलकाकुला-कृतिस्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥ प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ॥ उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ ७ ॥ अदितिरुवाच ॥ यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ॥ आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्यशं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ ८ ॥

न निकली, उसके दोनों नेत्रोंमें आनन्दके आंसू भर आये, शरीर पुलकायमान हो गया और उत्सवरूपी भगवान्का दर्शन् पाकर सब शरीर कम्पायमान होने लगा ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उन यज्ञपति, जगत्पति, रमापतिको देखकर कश्यपजीकी स्त्री अदिति नेत्रोंसे मानो पान करते बहुत देरके पीछे प्रीतिके भरे गद्गद वचनोंसे श्रीभगवान् की स्तुति करने लगी ॥ ७ ॥ अदितिने कहा कि हे यज्ञेश ! हे यज्ञपुरुष ! हे अद्भुत ! हे तीर्थपाद ! हे तीर्थकीर्ति ! आपका नाम श्रवणगोचर होते ही मंगलकारी है, आपका उदय शरणमें आये हुए भक्त लोंगोके

पापोंका नाश करने वाला है। हे आद्य! हे प्रभो! हे भगवन्! आप हमारा कल्याण करें। आप दीनदयालु हैं ॥ ८ ॥ हे भगवन्! यद्यपि आप विश्वस्वरूप हैं और विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं इच्छानुसार मायाके गुणोंको ग्रहण करते हैं, तथापि आप स्वस्थ हैं अर्थात् आपका स्वरूप अप्रच्युत है, नित्य बढ़ता हुआ जो पूर्ण बोध है उससे आपने परमात्मामें मायारूप तम नित्य निरस्त किया है, मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥९॥ तुम्हारे प्रसन्न होनेसे मनुष्योंको ब्रह्माकीसी आयु, सुन्दर रूप, अतुल लक्ष्मी, स्वर्ग, पृथ्वी, सर्वयोगके गुण, धर्म, अर्थ, काम, ज्ञान यह सब प्राप्त हो जाते हैं, फिर वैरियोंपर विजय पानेका आशीर्वाद जो आपसे मिलेगा, इसमें क्या बड़ी बात

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ॥ स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥ आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्योभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ॥ ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात् त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥१०॥ श्रीशुक उवाच ॥ अदित्यैवं स्तुतो राजन् भगवान् पुष्करेक्षणः ॥ क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ११ ॥ देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितम् ॥ यत सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥ १२ ॥ तान् विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ॥ प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥ १३ ॥ इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधिविद्विषाम् ॥ स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ॥ १४ ॥ आत्मजान् सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशश्श्रियः ॥ नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥ १५ ॥

है? ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जब अदितिने इस प्रकार स्तुति की, तब प्राणियोंके अन्तर्यामी कमललोचन भगवान् उनसे यह वचन कहने लगे ॥ ११ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवजननि! तुम्हारी सौतके पुत्रोंने जो तुम्हारे पुत्रोंकी सम्पत्ति हरण करली है और स्थान भी छीन लिया है, उन अपने पुत्रोंके लिये अनेक दिनसे तुम जो चिन्ता करती हो, वह हम जानते हैं ॥१२॥ तुम्हारी वासना यह है कि दुर्मद दानव लोगोंको समरमें पराजित कर तुम्हारे पुत्रगण विजयको प्राप्त हों और तुम उनके सहित एक जगह रहो ॥ १३॥ और इन्द्रादि तुम्हारे पुत्रगण विद्वेषियोंको जब संग्राममें मार डालें तब उन शत्रुओंकी स्त्रियाँ जो दुःखसे रोदन करें उन्हें तुम देखो ॥१४॥ और

तुम्हारा अभिलाष यह भी है कि तुम्हारे पुत्रगण अपनी जयलक्ष्मीको पाकर भलीभांति वृद्धिको प्राप्त हों और पहलेके समान स्वर्गमें विहार करें, कि जिसको देखकर तुम प्रसन्न होओ ॥ १५ ॥ परन्तु हे देवि ! हमको जान पड़ता है कि असुर-यूथपलोगोंके ऊपर सहसा आक्रमण नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि सामर्थ्यवान ब्राह्मणलोग अनुकूल होकर उनकी रक्षा करते हैं फिर जहांपर ऐसी बात है, वहांपर विक्रम प्रकाश करनेसे सुख नहीं मिलेगा ॥ १६ ॥ किन्तु हे देवि ! तुमने पयोव्रत करके हमको बहुत संतोषित किया है, सो अब हम अवश्य इस विषयका उपाय करेंगे, क्योंकि हमारी पूजा करनेसे निश्चय इच्छानुसार फल मिलता है, हमारी पूजाका विफल होना उचित नहीं है॥१७॥ हे देवि ! तुमने सन्तानकी रक्षा करनेके लिये जो पूजा की और प्रयोव्रत करके हमारी स्तुति की, इससे हम परम प्रसन्न हुए

प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः ॥ यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥ १६ ॥ अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्यः संतोषितस्य व्रतचर्यया ते ॥ ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात ॥ १७ ॥ त्वयाऽर्चितश्चाहमपत्यगुप्तये पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ॥ स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान् गोप्ताऽस्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १८ ॥ उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ॥ मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥ नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयाऽपि कथंचन ॥ सर्वं संपद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृत्तम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥ २१ ॥

हैं। मैं अपने अंशसे तुम्हारा पुत्र होकर कश्यपजीके तपमें स्थित हो तुम्हारे पुत्रोंका पालन करूँगा ॥ १८ ॥ इसलिये तुम इस समय अपने पापरहितपति प्रजापति कश्यपजीके समीप जा उनकी सेवा करो और हमको भी इसी प्रकारसे अपने पतिमें अवस्थित हुआ चिन्तन करना ॥ १९ ॥ हे देवि ! यह बात किसी औरके निकट किसी प्रकारसे भी प्रकट मत करना, क्योंकि देवता लोगोंका रहस्य भलीभांति छिपाये रहनेसे ही सिद्ध होता है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अदितिसे यह सब वचन कहकर भगवान् वासुदेव उसी स्थानमें अंतर्धान हो गये, उसके पीछे अदिति अपने गर्भमें दुर्लभ भगवान्का वास होना सुन मनमें कृतार्थ हो गयीं और

परमभक्तिके साथ पतिके निकट गयीं ॥ २१ ॥ महर्षि कश्यपजीकी अव्यर्थ दृष्टि थी, अतः उन्होंने भी योगकी समाधिमें देख लिया कि भगवान् हरिका अंश हममें प्रविष्ट है ॥ २२ ॥ सावधान मनवाले वह मुनि यद्यपि सब पुत्रोंको समान देखते थे, तो भी जैसे सब कहीं रहनेवाला वायु काष्ठकी रगड़से वनकी जलानेवाली अग्निको उत्पन्न करता है, वैसे ही अदितिजीके गर्भमें दैत्योंका क्षय करनेवाला बहुत कालसे संचय किया हुआ वीर्य धारण किया * ॥ २३ ॥ हे राजन् ! भगवान् सनातन विष्णुको अदितिके गर्भमें विराजमान हुआ

उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥ स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ॥२२॥ प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ॥ सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ॥ समाहितमना राजन् दारुण्यग्निं यथाऽनिलः ॥ २३ ॥ अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम् ॥ हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥२५॥ नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ॥ त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ २६ ॥

जानते ही हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी गुह्यनामसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि उरुगाय भगवन् ! आपकी जय हो । हे उरुक्रम आपको नमस्कार है ! हे प्रभो ! आप ब्रह्मण्यदेव हैं, आपको नमस्कार है । हे त्रियुग ! आपको वारंवार नमस्कार है, नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! पूर्व जन्ममें इन अदितिका नाम पृश्नि था; आप उनके गर्भसे भी अर्भक होकर जन्मे थे, आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! आप विधाता हैं, सब देवताओंमें प्रकाशमान हैं, आपको नमस्कार है । हे भगवन् ! स्वर्ग, मृत्यु, पाताल यह तीनों

* शंका—भगवान्के जन्म होनेके लिये कश्यपजीने अदितिके शरीरमें वीर्य स्थापित किया, यह बड़ी भारी शंका है कि विना वीर्य स्थापन किये क्या भगवान्का जन्म नहीं हो सकता ? क्योंकि वीर्यसे जन्म तो चौरासी लक्ष योनिका होता है और भगवान् तो सर्वव्यापी हैं, उनके जन्म होनेके लिये वीर्यस्थापनका क्या काम था ?

उत्तर—भगवान् अनेक प्रकारका दुःख सहकर अपनी बनायी मर्यादाकी रक्षा करते हैं, यह बात शास्त्रमें और लोकमें सबको प्रगट है, कि विना वीर्य संसारकी उत्पत्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती, इसलिये वीर्यकी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये वीर्यसे आप प्रगट होते हैं, जो वीर्यकी मर्यादा तथा अपनी बनायी लोककी मर्यादा न रक्खें, तो परमेश्वर सब वस्तुमें विराजमान हैं फिर जन्म लेनेकी क्या आवश्यक्ता थी ? परमेश्वरको सब बातका अधिकार है वैकुण्ठमें बैठे-बैठे जो चाहे सो करें, इसलिये कश्यपजीने वीर्य स्थापित किया ।

लोक आपकी नाभिमें वर्त्तमान हैं और आप त्रिलोकीके ऊपर स्थित हैं, सब जीवोंमें अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट हुए हैं, हे सर्वव्यापी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ हे ईश ! आप इस भुवनके आदि, अन्त और मध्य हो, आप ही अनन्तशक्ति पुरुष कहे जाते हैं, जैसे गंभीर प्रवाह जलमें गिरे हुए तृणादिको आकर्षण करता है, वैसे ही कालरूपी जो आप हैं, प्रलयकालमें इस विश्वको आकर्षित किया करते हैं ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! आप स्थावर-जंगम सब प्रजा और प्रजापति अर्थात् लोगोंके उत्पन्न करनेवाले हैं। आपके जन्मादि नहीं हैं । हे देव ! जलमें डूबते हुए मनुष्यके लिये जैसे नाव प्राण बचानेका अवलम्बन है, वैसे ही आप स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंके परम आश्रय हैं, इसलिये निःसंदेह आपका यह अवतार देवतालोगोंका कार्य साधन करनेके कारण हुआ है, आप

त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्यमनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः ॥ कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथाऽन्तः पतितं गभीरम् ॥ २७ ॥ त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः ॥ दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धेऽदितिगर्भे भगवदंशप्रवेशो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं विरिञ्चिस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ॥ चतुर्भुजः शंखगदाब्जचक्रः पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥ श्यामावदातो झषराजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ॥ श्रीवत्सवक्षा वलयाङ्गदोल्लसत्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥

बहुत शीघ्र स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंको फिर स्वर्गमें स्थापित कीजिये ॥ २८ ॥ इति श्रीद्भागवते अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां अदितिवरदानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा-अष्टादश अध्यायमें, बलिके यज्ञ मँझार । श्रीवामनजी जिमि गये, सो संवाद उदार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान्के कार्य और वीर्यकी स्तुति की तब जन्ममृत्युहीन वह भगवान् अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए । उनके नेत्र कमलदलके समान बड़े-बड़े थे, चार भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म आयुध देदीप्यमान हो रहे थे और कमरमें पीताम्बर पड़ा हुआ था ॥ १ ॥ उनका शरीर श्याम और गोर वर्ण था मकराकार कुण्डलोंकी श्री उनके वदनारविंदको प्रकाशमान कर रही थी, वक्षस्थलमें श्रीवत्सचिह्न विराजमान था और वलय व अंगद (बाजू) सहित उनके किरीट

और काञ्चीव मनोहर नूपुर यथास्थानमें शोभायमान ही रहे थे ॥ २ ॥ और अत्यन्त सुन्दर वनमाला जो कि बहुतसे भ्रमरगणोंकी गुञ्जारसे शब्दायमान हो रही थी उससे श्रीनारायण विराजमान हो अपने शरीरसे प्रजापतिजी (कश्यपजी) के गृहके अन्धकारको दूर कर रहे थे, और उनकी गर्दनमें प्रसिद्ध कौस्तुभमणि पड़ी हुई थी ॥३॥ जैसे ही श्रीभगवान् इस प्रकारसे उत्पन्न हुए कि वैसे ही सब दिशायें और जलाशयोंने निर्मल रूप धारण किया, प्रजा हर्षित हुई और समस्त ऋतु अपने-अपने गुणोंसे (फलपुष्पादिसे) शोभायमान हुई। स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी और सब पर्वतोंपर मनोहर शोभा होने लगी। देव, द्विज, गायें, इन सबके ही मनमें परमहर्ष हुआ ॥ ४ ॥ हे राजन्! भगवान् किस समयमें उत्पन्न हुए वह तुम सुनो। भादों महीनेकी शुक्ल द्वादशी जो कि श्रवणद्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है, उसी तिथिको श्रवण नक्षत्रमें

मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालया हरिः ॥ प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥ दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ॥ द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥ श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ॥ सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां सविताऽतिष्ठन् मध्यंदिनगतो नृप ॥ विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्मविदुर्हरेः ॥ ६ ॥ शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः ॥ चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७ ॥ प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन् गन्धर्वप्रवरा जगुः ॥ तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥

प्रथमांशके मध्य अभिजित् मुहूर्त्तमें श्रीभगवान्‌ने जन्म लिया, उस कालमें अश्विनी आदि सब नक्षत्र और गुरु शुक्रादिक सब ग्रहोंने अनुकूल रहकर उनका जन्म उदार किया था, अर्थात् उनके जन्मकालमें ग्रह नक्षत्रादि सब ही शुभ पड़े थे ॥ ५ ॥ हे महाराज ! जिस द्वादशीमें भगवान् वामनजीने जन्म लिया वह प्राचीन कवि लोग कहते हैं कि उस द्वादशीके दिवाभागमें ही श्रीनारायणका जन्म हुआ था, उस समय सूर्य भगवान् मध्याह्नमें स्थित थे, अर्थात् भलीभांति दुपहर हो गया था, इस द्वादशीका नाम विजया है ॥ ६ ॥ जिस समय श्रीभगवान्‌ने जन्म लिया, उस समय शंख, नगाड़े, भेरी, ढोल, आनक, तुरही वा और बाजोंका बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ अप्सरायें प्रसन्न होकर नाचने लगीं और गंधर्व लोग गाना आरंभ करने लगे, मुनि लोगोंने स्तुति करनी आरंभ की, फिर

भा० अ० ॥ ६४ ॥

देववृन्द, मुनिवर्ग, पितृगण, सब अग्नियें ॥ ८ ॥ सिद्ध, विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण देवता लोगोंके सेवक व आदित्यगण नाच-नाचकर गुण गाने लगे ॥९॥ और प्रशंसा करकर फूल वर्षा-वर्षाकर कश्यपजीके आश्रमको छा लिया ॥१०॥ हे राजन् ! अपने गर्भसे उन परमपुरुषको उत्पन्न हुआ देखकर अदितिको विस्मय और हर्ष एक साथ हुआ । प्रजापति कश्यपजी योगमायासे अवतार लिये हुए उन श्रीभगवान् हरिको देखकर विस्मययुक्त हो यही वचन बोले कि हे भगवन् ! तुम्हारी जय हो ! हे राजन् ! भगवान् हरिने जो यह अवतार मनुष्यका धारण किया कि जिससे चित्त अव्यक्त था, अपनी द्युति, भूषण व आयुध सहित उस शरीरमें

सिद्धविद्याधर गणाः सकिंपुरुषकिन्नराः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥ गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः ॥ आदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसंभवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ॥ गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥ यत्तद्वपुर्भाति विभूषणायुधैरव्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्धरिः ॥ बभूव तेनैव स वामनो बटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥१२॥ तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ॥ कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥ तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥ ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः ॥ कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥ १५ ॥ कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ॥ अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६ ॥

नटकी नाईं दर्शनकारी मातापिताके सामने ही वामन वटुकरूप हो गये, उसकी गति दिव्य थी, ऐसा होना कुछ विचित्र नहीं है ॥११॥ इन वामनजीका दर्शन करके महर्षि लोग आनन्द प्रकट करते-करते कश्यपजीके स्थानपर गये ॥१२॥ और उनको आगे कर नारायणका जातकर्म संस्कार कराने लगे ॥ १३ ॥ उसके उपरान्त जब इन वामनजीका यज्ञोपवीत हुआ, तब सूर्य नारायणने स्वयं इनको गायत्री सिखायी; बृहस्पतिजीने यज्ञसूत्र (जनेऊ) दिया और कश्यपजीने मेखला पहनायी ॥१४॥ भूमिने मृगचर्म दिया, सब वनोंके पति चन्द्रमाने दण्ड दिया, माताने कौपीन दी और उन जगतपतिको स्वर्गसे छत्रदान किया ॥ १५ ॥ अधिक करके वेदगर्भ ब्रह्माजीने

भा० टी० अ० १८

कमण्डलु, सप्तर्षियोंने कुशा और सरस्वतीने अक्षमाला लेकर उन अविनाशीको उपहार दी ॥ १६ ॥ हे राजन् ! जब वामनजीका जनेऊ हो गया तब कुबेरने उनको भिक्षापात्र दिया और साक्षात् सती अम्बिकाजीने उनको भिक्षा दी ॥ १७ ॥ यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचारी वामनजी इस प्रकार आदर-सत्कार पा, अपने तेजसे ब्रह्मर्षियोंकी सभाको भी अतिक्रमण करके शोभायमान होने लगे ॥१८॥ अग्निके परिसमूहके द्वारा कुशोंको बराबर कर समाधान करके होम करने लगे ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त वामनजीने सुना कि भृगुवंशियोंके प्रवर्तित किये हुए अनेक अश्वमेध यज्ञोंसे राजा बलि यज्ञ कर रहा है, इसलिये अखिल बलसे पूर्ण हो अपने भारसे पग-पगपर पृथ्वीमण्डलको कम्पाय-

तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ॥ भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादम्बिका सती ॥ १७ ॥ स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो वटुः ॥ ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरोचतमारिषः ॥ १८ ॥ समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ॥ परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद्द्विजः ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ॥ जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन् पदे पदे ॥ २० ॥ तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ॥ प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षताराद्दुदितं यथा रविम् ॥ २१ ॥ ते ऋत्विजो यजमानः सदस्या हतत्विषो वामनतेजसा नृप ॥ सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥ २२ ॥ इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमाणो भगवान् स वामनः ॥ छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥ २३ ॥

मान करते हुए राजा बलिके यज्ञस्थानमें वामनजीने गमन किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! नर्मदाके उत्तर किनारेपर भृगु कच्छ नामक क्षेत्रमें बलिके श्रेष्ठ ऋत्विज जो यज्ञको करा रहे थे; उन्होंने अपने उदय हुए सूर्यनारायणके समान इन वामनजीको देखा ॥ २१ ॥ श्रीवामनजीके तेजसे सब ऋत्विज सभासदगण और यजमान असुरश्रेष्ठ राजा बलि यह सब तेजरहित हो गये और यह कहकर परस्पर तर्कवितर्क करने लगे कि "क्या यज्ञ देखनेकी इच्छासे सूर्य भगवान् आ रहे हैं ? वा अग्नि है वा सनकादिक ऋषियोंका आगमन हुआ ?" ॥ २२ ॥ शिष्योंके सहित भृगुगण करके इस प्रकार विविध भांतिसे वितर्कित हो भगवान् वामनजी छत्र, दण्ड, जलसे भरा कमण्डलु लिये हुए राजा

भा॰ अ॰
॥ ९९ ॥

बलिके अश्वमेध मण्डपमें आये ॥ २३ ॥ मुञ्जकी मेखला पहने हुए मृगके उत्तरीय जो जनेऊके समान बायें कन्धेपर पड़ा था, ऐसे जटिल विप्र मायारूपी उन हरिको ॥ २४ ॥ यज्ञशालामें प्रवेश करते हुए देखकर उनके तेजसे व्याकुल हो शिष्योंके सहित भृगुलोग उठ खड़े हुए और उनका आदर-सम्मान करने लगे ॥२५॥ दर्शन करने योग्य मनोहर रूपवाले अनुकूल अङ्गयुक्त श्रीवामनजी महाराजको देखकर प्रसन्न हो राजा बलिने अपने हाथसे आसन दिया और कहा कि "भले आये महाराज! विराजिये" यह कह कोमल तथा अमल चरणकमलको धोकर उन सुकुमार मनोहर हरिकी पूजा करने लगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजन्! भगवान्के मंगलकारी चरणोदकको,

मौञ्ज्या मेखलयावीतमुपवीताजिनोत्तरम् ॥ जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥२४॥ प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ॥ प्रत्यगृह्णन् समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥ यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ॥ रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥२६॥ स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः ॥ अवनिज्यार्चयामास मुक्तसङ्गं मनोरमम् ॥ २७ ॥ तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविद् मूर्ध्न्यदधात् सुमंगलम् ॥ यद् देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥ २८ ॥ बलिरुवाच ॥ स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते ॥ ब्रह्मर्षीणां तपःसाक्षान्मन्ये त्वार्य वपुर्धरम् ॥ २९ ॥ अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ॥ अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद् भवानागतो गृहान् ॥ ३० ॥

जो कि कलिमलका नाश करनेवाला है, राजाबलिने अपने मस्तकपर चढ़ाया। हे महाराज! आप इस बातको कुछ विचित्र न समझो, क्योंकि चन्द्रमौलि देवदेव गिरीश भूतेश्वर महादेवजी भी परम भक्तिसे इस चरणामृतको अपने मस्तकपर चढ़ाया करते हैं ॥२८॥ तब राजा बलि भक्तिके प्रकाशित होनेसे कुतूहलके कारण कहने लगा कि हे ब्रह्मन्! आपका आगमन बड़ा ही सुखदायक हुआ मैं आपको नमस्कार करता हूँ, मैं आपका कौनसा कार्य करूं वह आज्ञा कीजिये। हे श्रेष्ठ! हमको जान पड़ता है कि आप ब्रह्मर्षि लोगोंके मूर्तिमान तप हैं, अतः आज मैं कृतार्थ हो गया ॥ २९ ॥ आज जो मेरे स्थानपर आकर सुशोभित हुए इस कारण हमारे पितृगण तृप्त हो गये, आज मेरा

भा॰ टी॰
अ॰ १८

कुल पवित्र हो गया और आज मेरा यह यज्ञ भलीभांतिसे पूर्ण हुआ ॥३०॥ आज हमारा अग्नियोंमें भलीभांति होम करना सफल हुआ, हे ब्राह्मणकुमार ! आपके चरणोदकसे हमारा सब पाप धुल गया और आज आपके छोटे-छोटे चरणोंके पड़नेसे यह भूमि पवित्र हो गयी ॥३१॥ हे विप्रनन्दन ! हम अनुमान करते हैं कि आप कुछ मांगनेके लिये आये हैं जो इच्छा हो वही आप मुझसे लीजिये ! हे पूज्यतम ! गौ, सुवर्ण, श्रेष्ठ गृह, मीठा तथा उज्ज्वल अन्न और पान, कन्या, ऋद्धि, सिद्धिसे भरे हुए ग्राम, अश्व, हाथी व रथ जिसकी आपको आवश्यकता हो वह मुझसे मांग लो, मैं देनेको प्रस्तुत हूँ * ॥३२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां बलिवामन-

अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ॥ हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥ ३१ ॥ यद्यद् बटो वाञ्छसि तत् प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ॥ गां काञ्चनं गुणवद्धाम मृष्टं तथाऽन्नपेयमुत वा विप्रकन्याम् ॥ ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा रथांस्तथाऽर्हत्तम संप्रतीच्छ ॥३२॥ इति श्रीभागव० म० अष्टम० बलिवामनसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं स सूनृतम् ॥ निशम्य भगवान् प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ॥ यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥ २ ॥

संवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा—ऊनविंशमें तीन पग, धरणी मांगी ईश । कियो शुक्रने मने जिमि, कहौं सुमिरि जगदीश ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! ऐसे धर्मयुक्त सुन्दर राजा बलिके वचन सुन श्रीभगवान् प्रसन्न होकर और सम्मान करके राजा बलिसे यह वचन कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे नरदेव ! तुम्हारे यह वचन अत्यन्त सुन्दर, धर्मयुक्त, यशके देनेवाले और कुलके योग्य

---

* शंका—सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें ब्राह्मण राजाओंसे दान मांगते थे, तब राजालोग गुरुसे अनेक बार पूछकर अर्थात् सुपात्र कुपात्र विचारकर दान देते थे । जब ऐसे विचारकर दान देते थे तब वामन भगवान्‌ने तो बलिसे दान मांगा नहीं, बिना मांगे दान देनेको बलि क्यों उद्यत हुआ ?

उत्तर—धर्मशास्त्रका यह मत है कि, यदि गृहस्थ ब्राह्मण दान मांगे तब राजा दान दे, पर विरक्त ब्राह्मण दान न मांगे तो भी राजाको उचित है कि दान दे । ऐसे धर्मशास्त्रके मतको जानकर राजा बलि विरक्त वामनको न मांगने पर भी दान देनेको उद्यत हुआ ।

हैं, तुम ऐसा क्यों न हो, भृगुगण और कुलके बढ़ानेवाले प्रशान्त अपने दादा प्रह्लादजीको तुमने पारलौकिक धर्ममें प्रमाण पाया है ॥ २ ॥ हे राजन्! तुम्हारे इस कुलमें ऐसा निःसत्त्व अथवा कृपण पुरुष कोई नहीं हुआ, कि जिसने प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंका कार्य न किया हो अथवा कुछ देनेको कहकर न दिया हो॥३॥हे नृप! दानके अवसरमें वा युद्धके कालमें याचकके मांगनेपर न देनेवाला अमनस्वी (अधीर) पुरुष तुम्हारे कुलमें नहीं हैं। इसका प्रमाण देखो आकाशमें जिस प्रकार नक्षत्रनाथ चन्द्रमा दीप्तिमान होते हैं वैसे ही तुम्हारे कुलमें निर्मल यशसे युक्त होकर प्रह्लादजी प्रकाशमान हैं ॥४॥ और तुम्हारे इस विख्यात वंशमें महावीर हिरण्याक्षने जन्म ग्रहण किया,जो कि गदा धारण किये दिग्विजय करनेको अकेले ही समस्त पृथ्वीमें घूमे, परन्तु उसे कहीं भी कोई युद्ध करनेवाला बली न मिला ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्

नह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निस्सत्त्वः कृपणः पुमान् ॥ प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये ॥ ३ ॥ न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनाऽर्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृप ॥ युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे ॥ ४ ॥ यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ॥ प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ॥५॥ यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् ॥ नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥६॥ निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥ तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् ॥ चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८ ॥ यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ॥ अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥

विष्णुने जब पृथ्वीका उद्धार किया था, उस समय यह महावीर हिरण्याक्ष वहां आया था, परंतु अति कठिनाईसे उस हिरण्याक्षको हराकर उसके पुरुषार्थको दमन कर भगवान्ने अपने आपको विजयी नहीं माना ॥ ६ ॥ और इस हिरण्याक्षके सगे भाई हिरण्यकशिपुने जब उस (हिरण्याक्ष) के वधका वृत्तांत सुना, तब यह भ्राताके मारनेवालेका प्राण संहार करनेको क्रोध कर भगवान् विष्णुके स्थानपर गया ॥ ७ ॥ माया जाननेवालोंमें श्रेष्ठ व कालको पहचाननेवाले इस दानवको शूल धारण किये कालके समान आता हुआ देखकर भगवान् विष्णुने यह चिन्ता की ॥ ८ ॥ कि जहां-जहां पर हम जाते हैं, वहीं-वहीं पर प्राणियोंकी मृत्युके समान हम

इस दानवको अपने साथ ही देखते हैं, इसकी दृष्टि बहिर्भागमें ही है, इससे मैं इसके हृदयमें प्रवेश करता हूं ॥ ९ ॥ हे राजन्! भगवान् वासुदेव इस प्रकारसे विचार करके दौड़ते हुए उस शत्रुकी नासिकाके छेदसे उसके हृदयमें घुस गये, तथापि उनका चित्त विशेष उद्विग्न और श्वासकी अग्निसे अन्तर्हित हो रहा था ॥ १० ॥ हे राजा बलि! जब हिरण्यकशिपुने विष्णु भगवान्को न देखा, तब उनके सूने स्थानमें घूम-घामकर सिंहनाद करने लगा और पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, विवर, समुद्र सबमें उसने खोज किया, परंतु विष्णु भगवान् तो उसके अंतरमें ही पैठ गये थे, इससे कहीं नहीं दीख पड़े ॥ ११ ॥ विष्णुको न देखकर हिरण्यकशिपुने यह कहा कि मैंने सब संसारको ढूँढा, परंतु अपने भाईके मारनेवालेका कहीं पता न पाया, हमको जान पड़ता है कि हमारा भ्रातृघाती उस स्थानमें

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र ॥ श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥
॥ १० ॥ स तन्निकेतंपरिमृश्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद ॥ क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन्
न ददर्श वीरः ॥ ११ ॥ अपश्यन्निति होवाच मयाऽन्विष्टमिदं जगत् ॥ भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान्
॥ १२ ॥ वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥ १३ ॥ पिताप्रह्लादपुत्रस्ते
तद्विद्वान्द्विजवत्सलः ॥ स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्यो देवेभ्योऽदात् स याचितः ॥ १४ ॥ भवानाचरितान्धर्मानास्थितो
गृहमेधिभिः ॥ ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥

चला गया है, कि जहांसे पुरुष फिर नहीं लौटता ॥ १२ ॥ हे राजन्! देहाभिमानी पुरुषोंका मरनेतक वैरभाव और अहंकार अभिमानसे बढ़ा हुआ क्रोध इसी प्रकारसे हुआ करता है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति अज्ञानसे है। बस, अज्ञानकी निवृत्ति होनेके पहले पौरुषका छोड़ना केवल मूर्खता है, इसीलिये हिरण्यकशिपुने अपने शत्रुकी खोज नहीं छोड़ी ॥ १३ ॥ हे असुरराज! तुम्हारे पिता प्रह्लादनन्दन विरोचन ऐसे ब्राह्मणवत्सल थे, कि अपना वैरी जान लेनेपर भी मांगनेपर द्विजवेषधारी देवता लोगोंको उन्होंने अपनी परमायु दे दी थी ॥१४॥ तुमने भी गृहमेधी ब्राह्मण और पूर्वज शूरगण और उद्यमयुक्त यशस्वान महात्माओंके धर्मका आचरण किया है ॥१५॥

इसलिये हम तुमसे कुछ भूमिकी भिक्षा मांगते हैं। हे दैत्येन्द्र ! हम इस अपने चरणके परिमाणकी तीन पग पृथ्वी चाहते हैं * ॥१६॥ हे राजन् ! तुम वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हो और इस जगत्के सत्य-सत्य ईश्वर भी हो, परन्तु हम आपसे इसके अतिरिक्त और अधिक कुछ नहीं मांगते, क्योंकि विद्वान् पुरुष उतना ही लेते हैं, जितनेका उनको प्रयोजन होता है और उतनेके ग्रहण करनेसे किसी प्रकारका पाप भी नहीं होता ॥ १७ ॥ राजा बलि यह सुनकर अति विस्मित होकर बोले कि बड़ा आश्चर्य है, अजी विप्रकुमार ! तुम्हारी

तस्मात् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात् ॥ पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ॥१६॥ नान्यत् ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ॥ नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थपरिग्रहः ॥ १७ ॥ बलिरुवाच ॥ अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ॥ त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥ १८ ॥ मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेक-मीश्वरम् ॥ पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम् ॥ १९ ॥

यह बातें वृद्ध लोगोंकी बातोंके समान हैं, तुम बालक हो और तुम्हारी बुद्धि अजानके समान है, तुम अपने स्वार्थको कुछ नहीं जानते "राजा बलिकी इस बातका यह तात्पर्य है कि तुम बालकके समान हो, वास्तवमें बालक नहीं हो। तुम्हारी बुद्धि पण्डितोंकी बुद्धिके समान है, तुम अपना स्वार्थ नहीं जानते अर्थात् भक्तोंके अर्थ को ही समझते हो, क्योंकि स्वयं परिपूर्ण हो, भक्तका अर्थ पूर्ण करनेके अतिरिक्त स्वयं आपका स्वार्थ अप्रसिद्ध है" ॥ १८ ॥ कैसे खेदकी बात है। हम सब लोकोंके ईश्वर हैं, एक द्वीपको भी दान कर

* शंका—वामनजी भगवान् होकर और ब्रह्मचारी होकर थोड़ेसे-कामके लिये इतना झूंठ क्यों बोले ! क्या बलिको दण्ड देनेका कोई दूसरा उपाय नहीं था ?

उत्तर—धर्मशास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, दुष्टके संग जो दुष्टता करते हैं उनको किसी प्रकारका दोष नहीं होता, राजा बलि कैसा दुष्ट था कि यह अपने मनमें जानता था कि इन्द्रका पुण्य अभी है हम किसी प्रभावसे राज्य ले लेंगे तब भगवान् को दुःख भोगना पड़ेगा ऐसा जानता था तो भी शुक्राचार्यका पूजन करके इन्द्रका राज्य ले लिया, तब राज्य से भ्रष्ट इन्द्र भगवान् से कहने लगा कि, महाराज मैंने १०० सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं तब आपने मुझको इन्द्र बनाया है, कुछ ले देकर इन्द्र नहीं बना दिया है। १०० यज्ञमें मैंने राज्य किया सो तो भोग लिया अब जो मेरा शेष पुण्य हो उस पुण्यसे मेरा राज्य दो और राज्य नहीं तो मेरा पुण्य दो, इन्द्रके वचन सुन भगवान् लज्जित हुए और दुःख को प्राप्त होकर विचार किया कि बिना छल किये बलिसे इन्द्र का राज्य नहीं मिलेगा ऐसा विचारकर झूंठ बोलकर भगवान्ने इन्द्रको इन्द्रासन दिया।

सकते हैं, बहुत वचनों से आराधना करके फिर तुम हमारे पाससे अज्ञानीके समान केवल तीन पग भूमिका दान मांगते हो ? ॥ १९ ॥ हमसे प्रार्थना करके फिर किसीको दूसरेका याचक नहीं बनना चाहिये, इसलिये आप हमसे बहुत सी भूमि ले लीजिये । राजा बलिके वचन सुनकर श्रीभगवान् वामनजी कहने लगे कि ॥ २० ॥ जो पुरुष अजितेन्द्रिय है, जिसने अपनी तृष्णाको नहीं जीता है उसको त्रिलोकीमें जो कुछ भी श्रेष्ठ वस्तुयें हैं वे सब भी तृप्त नहीं कर सकतीं हैं ॥ २१ ॥ जो पुरुष तीन चरण भूमिसे असंतुष्ट है, उसकी तृष्णा एक द्वीप पानेपर भी नहीं छूटेगी, जब ऐसे पुरुषको एक द्वीप मिल जायगा तब वह सात द्वीपोंके पानेकी अभिलाषा करेगा ॥ २२ ॥ और ऐसा सुना भी है कि राजा वेन और गयादि नृपगणने सप्त द्वीपोंके अधिपति होकर भी अर्थ और कामके द्वारा

न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ॥ तस्माद् वृत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ॥ न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥ २१ ॥ त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ॥ नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥ २२ ॥ सप्तद्वीपाधिपतयो नृपाः वैन्यगयादयः ॥ अर्थैः कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥२३॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ॥ नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ २४ ॥ पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तये स्मृतः ॥२५॥ यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्द्धते ॥ तत्प्रशाम्यत्यसंतोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥२६॥ तस्मात् त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ॥ एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७ ॥

तृष्णाका अन्त नहीं पाया ॥२३॥ यदृच्छा द्वारा मिले हुए द्रव्यसे जो संतुष्ट हैं, वे ही सुखी हैं, असन्तुष्ट और जिसने अपनी आत्माको नहीं जीता है, वह तीनों लोक पाकर भी सुखी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ इसलिये कवि लोगोंने कहा है कि अर्थ और कामके लिये जो असन्तोष है यही पुरुषके संसारका कारण है और दैवेच्छानुसार पाये हुएसे सन्तोष करना ही मुक्तिका हेतु है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! दैवेच्छानुसार वस्तुको पाकर सन्तोष कर लेनेसे ब्राह्मणोंका तेज बढ़ जाता है, नहीं तो जिस प्रकार जलके पड़नेसे अग्नि बुझ जाती है वैसे ही असन्तोषी ब्राह्मणका तेज शांत होकर नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ इसलिये हे वरदश्रेष्ठ ! हम तुमसे केवल तीन

चरण भूमिकी ही प्रार्थना करते हैं और इससे ही हमारा कार्य सिद्ध हो जायगा, क्योंकि प्रयोजनानुसार वित्त ही सुखका देनेवाला है; शेष धन क्लेशका कारण होता है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! जब वामनजीने इस प्रकार कहा तब राजा बलि हँसकर बोला कि–"तब जो आपकी इच्छा है वह ग्रहण कीजिये" यह कहकर भूमिदान करनेके लिये राजा बलिने जलका पात्र हाथमें लिया ॥ २८ ॥ कि इतनेमें ही दैत्योंके गुरु शुक्राचार्यजी विष्णुके कपटको जान गये इस कारण उनको भूमिदान करनेके लिये उद्यत देख अपने शिष्य राजा बलिपर क्रुद्ध होकर शुक्राचार्यजी यह वचन कहने लगे ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य बोले कि हे विरोचननन्दन !

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् ॥ वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥ २८ ॥ विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशनात्वसुरेश्वरम् ॥ जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदांवरः ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य उवाच ॥ एष वैरोचने साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३० ॥ प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ॥ न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥ ३१ ॥ एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ॥ दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥ ३२ ॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति ॥ सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥ ३३ ॥

यह साक्षात् सनातन विष्णु भगवान् हैं, कश्यपजीकी स्त्री अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए औरस पुत्र हैं, और यह अवश्य ही देवता लोगोंका कार्य सिद्ध करेंगे ॥ ३० ॥ यह तुमने क्या किया कि विना अर्थके विचारे इनको भूमिदान देनेकी प्रतिज्ञा कर ली। हम जान गये कि अब मंगल नहीं है, दैत्यलोगोंके लिये बड़ा अनर्थ आ पहुँचा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! यह तुम्हारा स्थान, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, तेज, यश और विद्या सब छीनकर इन्द्रको दे देंगे क्योंकि ये मनुष्य नहीं हैं, किन्तु ये भगवान् विष्णु मायाके योगसे वामनरूप हुए हैं ॥३२॥ तुमने वास्तवमें तीन चरण भूमिका देना स्वीकार तो कर लिया है, परन्तु यह तीन चरणोंमें ही सब लोकोंको नाप लेंगे, क्योंकि ये विश्वमूर्ति

हैं । फिर क्रोध करने लगे कि अरे मूढ ! विष्णु को सर्वस्व देकर फिर तू कहां रहेगा ? ॥ ३३ ॥ यह एक पैर (चरण) से सब पृथ्वीको नाप लेंगे, दूसरे चरण से स्वर्गको नाप लेंगे, इनका विशाल शरीर आकाशमण्डलमें व्याप्त हो जायगा, फिर तीसरे चरणकी गति कहांसे होगी, यह तो बता ? ॥ ३४ ॥ जब तू वचन देकर फिर न देगा तब हमको जान पड़ता है कि तेरा नरकमें वास होगा, क्योंकि तू अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सकेगा ॥ ३५ ॥ अरे मूढ ! जिससे अपनी जीविका जाती रहे, वह दान प्रशंसाके योग्य नहीं होता, क्योंकि संसारमें जीविकावाले पुरुषके यहां ही यज्ञ, दान, तप और पुत्रादि कर्म हुआ करते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष धर्म, यश, अर्थ, काम और सुजन इन पांचोंके लिये अपने धनका विभाग कर देता है, वह इस लोक और परलोक दोनोंमें सुखी होता है ॥ ३७ ॥

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ॥ खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥३४॥ निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ॥ प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥ ३५ ॥ न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ॥ दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥ ३६ ॥ धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ॥ पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥ ३७ ॥ अत्रापिबह्वृचैर्गीतं श्रृणु मेऽसुरसत्तम ॥ सत्यमोमिति यत् प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥ ३८ ॥ सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ॥ वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ॥३९॥ तद्यथा वृक्ष उन्मूलश्शुष्यत्युद्वर्त्ततेऽचिरात् ॥ एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥ ४० ॥

अरे ! अब तू इस विचारको छोड़ दे कि "वचन देकर अब किस प्रकार से मिथ्या बोलूँ ?" सत्य मिथ्याकी व्यवस्थाके लिये बह्वृच श्रुतिमें जो कहा जाता है, उसको तू हमसे सुन-"हां" बोल स्वीकार करके जो कहा जाता है; उसका नाम सत्य है और "न" जो वचन है वह मिथ्या है ॥ ३८ ॥ यह सत्य देहरूप वृक्षका पुष्प फल है, क्योंकि श्रुतिमें भी ऐसा ही कहा है, परन्तु जब यह देहरूप वृक्ष ही जीवित न रहेगा, तब यह पुष्प फल कैसे होंगे ? इसलिये अनृत देहका मूल है, बस, अनृतसे ही देहकी रक्षा होती है ॥ ३९ ॥ अतएव जिस प्रकार जड़के उखड़नेसे वृक्ष सूख जाता है और शीघ्र गिर जाता है, वैसे ही झूंठके नष्ट होनेसे देह शीघ्र ही

नष्ट हो जाता है ॥४०॥ और सदा सत्य कहनेसे देहकी यात्राका निर्वाह होना असम्भव है, इस कारण सत्यके दोष और मिथ्याके गुण तुम हमसे श्रवण करो ॥ "हां" अक्षर जो है, यह सम्पत्तिको दूर ले जाता है और पुरुषको धनशून्य कर देता है, अथवा अपूर्ण किये रहता है अर्थात् याचककी आशाका अन्त नहीं है, क्योंकि किसीने कहा भी है कि–"याचक कहा न मांगहीं, दाता कहा न देहिं" इसलिये वह पूर्ण नहीं हो सकती। बस, याचकसे–"हां" कह स्वीकार कर लेना अच्छा नहीं। देनेसे पुरुष न्यून हो जाता है अधिक करके जो पुरुष याचकसे "सब दूंगा अंगीकार कर उसको दे भी देता है उस दाताका अपना कार्य भी सिद्ध नहीं होता अर्थात् उसके अपने भोगका भी उपाय नष्ट हो जाता है, परन्तु "न" यह जो अनृत वाक्य है धनका व्यय न करानेके हेतु पूर्ण सुखस्वरूप है और

पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत्तदोमिति ॥ यत्किंचिदोमिति ब्रूयात्तेन रिच्येत वै पुमान् ॥४१॥ भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥ अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ॥४२॥ सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः॥४३॥ स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ॥ गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महा० अष्टम० वामनावतारे बलियाचनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अपनी ओरको दूसरेका खींचनेवाला है, क्योंकि जो पुरुष नित्य कहता है कि हमारे पास कुछ नहीं है, वह अपने अनृतसे दूसरेके धनको खींच सकता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे दैत्यराज ! हमारी इस बातसे तुम यह न समझ लेना कि अमृतके समान सदा ही अनृत सेवन करनेके योग्य है, क्योंकि जो सब ही समय "न" कहकर झूठ बोलता है वह अत्यन्त अकीर्तिका भागी होता है और जीवित रहते भी मृतकके समान रहता है ॥ ४३ ॥ केवल इन सब बातोंमें अर्थात् स्त्रियोंके वश करनेमें, परिहासमें, विवाहके समय, वरादिकी प्रशंसा करनेमें, जीविकाकी रक्षा करनेमें, प्राणके संकटमें इन अवसरोंमें और गौ ब्राह्मणके हितार्थ, एवं किसीकी हिंसा उपस्थित होनेपर झूठ कभी दोषका देनेवाला नहीं है ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

दोहा–बलिसे जिमि संकल्प ले, बड़े भये भगवान्। कथा विंश अध्यायकी, सो वरणौं सुखदान॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहने लगे कि हे श्रेष्ठ! दैत्यगुरु शुक्राचार्यके इस प्रकारसे कहनेपर गृहपति राजा बलि कुछ देर तक चुपचाप रहे और फिर सावधान होकर अपने गुरुजी से यह वचन कहने लगे * ॥१॥ राजा बलिने कहा कि हे गुरो! आपने जो कुछ भी आज्ञा की वह सब सत्य है, जिससे किसी कालमें भी अर्थ, काम, यश और जीविकाका व्याघात न हो गृहस्थोंका वही धर्म है ॥२॥ परन्तु मैं महात्मा प्रह्लादका पोता होकर "दूंगा" यह वचन

श्रीशुक उवाच ॥ बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ॥ तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥१॥ बलिरुवाच ॥ सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥ अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २ ॥ स चाहं वित्तलोभेन प्रत्यचक्षे कथं द्विजम् ॥ प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्रादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥ ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ॥ सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४ ॥ नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ॥ न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥ यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ॥ तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥

कहकर फिर साधारण बनियेके समान धनके लोभसे ब्राह्मणसे किस प्रकार कहूँ कि "अब मैं नहीं दूंगा" ॥ ३ ॥ असत्यके समान बड़ा अधर्म और कोई नहीं है, क्योंकि इस पृथ्वीने कहा है कि झूठ कहनेके सिवाय और सबका भार मैं अपने ऊपर सम्हाल सकती हूँ ॥ ४ ॥ हे गुरुजी महाराज! जितना मैं ब्राह्मणोंके वचनोंसे डरता हूँ, उतना नरकसे, दुःखके समुद्रसे, दरिद्रसे, स्थानके भ्रष्ट होनेसे और मृत्युसे भी नहीं डरता ॥५॥ और इस लोकमें पृथ्वी आदि जो कुछ वस्तुयें दिखायी देती हैं, ये सब मृत पुरुषको अवश्य ही त्याग करेंगी, फिर जीते ही

* शंका––राजा बलिको श्रीशुकदेवजीने घरका पति करके वर्णन किया है सो घर किसका नाम है? राजा बलि इन्द्रकी गद्दीपर बैठकर त्रिलोकीका राजा बनकर घरका पति कहाये ऐसा उत्तम घर क्या पदार्थ है?

उत्तर––जो प्राणी भगवानका नाम अत्यन्त आदर सत्कार और प्रेम प्रीति से जपते हैं, जप करने का ग्रहण करना भी नाम है उन प्राणियों का गृह नाम है, उनका पति बलि है, क्योंकि रात दिन राजा बलिके समान भगवान् का भजन करने वाला संसार में कोई भी नहीं है इसलिये श्री शुक देवजीने राजा बलिको गृहपति कहा। वास्तव में गृहपति शब्दका अर्थ गृहस्थ है।

क्यों न दान किया जाय ? यदि कहो कि सर्वस्व दान करनेसे जीविकाके विषयमें संकट होगा; तब जीविकाका संकट दूर करनेके लिये आधा दो, पर इसमें यह कहना है कि जो आधेमें उस दानसे ब्राह्मणको सन्तोष न हो तो फिर उस दानके देनेका फल ही क्या हुआ ? बस, इसी कारणसे जितना मांगा है उससे थोड़ा देनेपर इन ब्राह्मणकुमारको सन्तोष न होगा, जिससे हमारा दान व्यर्थ हो जायगा, इसलिये जो कुछ भी इन्होंने मांगा है,हम वह सब देंगे ॥६॥ हे गुरो ! दधीचि,शिबि आदि साधु पुरुषोंने त्यागके अयोग्य प्राण देकर भी साधु लोगोंका उपकार किया है, फिर भला भूमि आदि साधारण वस्तुका क्या विचार किया जाय ? ॥ ७ ॥ युद्धसे विमुख न होकर जिन दैत्येन्द्रोंने इस पृथ्वीको भोग किया था, वह कराल कालने इनका इस लोक व परलोक दोनोंमें संहार किया, परंतु जो कुछ यश वे इस

श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ॥ दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥७॥ यैरियं बुभुजे ब्रह्मन् दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः ॥ तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८ ॥ सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनुवृत्तास्तनुत्यजः ॥ न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥ मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ॥ कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो बटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥१०॥ यजन्ति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता भवन्त आम्नाय विधानकोविदाः ॥ स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥ ११ ॥

पृथ्वीपर इकट्ठा कर गये हैं, उसको काल भी नहीं संहार कर सका, इसलिये यशका इकट्ठा करना ही उचित है ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! देहत्याग करनेकी अपेक्षा धनके त्याग करनेमें अधिक यश मिल सकता है, क्योंकि युद्धमें जिस प्रकार देहत्यागी अनेक पुरुष साधारण ही देखे जाते हैं, परन्तु ऐसे पुरुष बहुत थोड़े देखनेमें आते हैं, कि जो सत्पात्रके आनेपर उसको श्रद्धासहित धन दे दें ॥ ९ ॥ हे महाराज ! साधारण याचककी अभिलाषा पूर्णकरनेमें जो दरिद्रता आ जाय तो मनस्वी दयावान् पुरुषका इससे भी कल्याण होता है और आपके समान ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकी अभिलाषा पूर्ण करनेमें जो हमें दरिद्रता आ जाय तो यह दरिद्रता भलाई क्यों नहीं गिनी जायगी ? अतएव जो कुछ इन ब्राह्मणने मांगा है वह हम अवश्य इनको दान देंगे ॥१०॥ हे मुने ! आप लोग वेदविद्यामें चतुर हैं, आप आदरपूर्वक योग यज्ञद्वारा जिनकी

पूजा किया करते हैं, ये ब्राह्मण वही वरदानी विष्णुजी हों, या हमारे शत्रु ही क्यों न हों, परन्तु हम इनकी मांगी हुई भूमि अवश्य इनको दान करेंगे ॥ ११ ॥ हम निरपराध हैं, जो यह अधर्म करके हमको बांध भी लेंगे तो भी हम इन भीत ब्राह्मणरूपी शत्रुकी हिंसा न करेंगे ॥१२॥ जो यह उत्तम श्लोक विष्णु भगवान् हैं और अपने यशकी त्यागनेकी इच्छा नहीं करते हैं, तब तो यह युद्धमें हमारा नाश कर इस सब भूमिको ले लेंगे अथवा हमारे द्वारा मारे जायँगे तो पृथ्वीमें शयन करेंगे ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! अपने शिष्य राजा बलिको श्रद्धारहित हो अपनी आज्ञाके प्रतिपालन करनेसे विमुख देखकर भाग्यके भेजे हुएके समान दैत्यगुरु श्रीशुक्राचार्यने क्रोध करके सत्यप्रतिज्ञ,

यदप्यसावधर्मेण मां वध्नीयादनागसम् ॥ तथाऽप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥ १२ ॥ एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ॥ हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ॥ शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥ १४ ॥ दृढं पंडितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ॥ मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रियः ॥ १५ ॥ एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ॥ वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६ ॥ विन्ध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी ॥ आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥ यजमानस्स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ॥ अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १८ ॥

इस असुरश्रेष्ठ राजा बलिको यह शाप दिया ॥ १४ ॥ श्रीशुक्राचार्य बोले कि अरे अज्ञानी तू अपनेको पंडित मानता है, हमारी उपेक्षा करके तूने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया, इसलिये तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा ॥ १५ ॥ हे महाराज ! महात्मा बलि अपने गुरुजीसे इस प्रकार शापित होकर भी अपने सत्यसे विचलित नहीं हुआ, उसने वामनजीका पूजन कर कुशको लेकर पृथ्वी दान करने लगा ॥१६॥ तब राजा बलिकी रानी विंध्यावली मोती जड़े हुए आभूषण पहन और मालायें धारण कर जलसे भरा हुआ एक कलश लाकर अपने स्वामीके निकट स्थापित किया ॥ १७ ॥ यज्ञ करनेवाले राजा बलिने स्वयं उस जलसे परम हर्षके साथ श्रीवामनजीके दोनों चरण पखारे, फिर

संसारके पवित्र करनेवाले उस जलको अपने मस्तकपर धारण किया ॥१८॥ हे राजन् ! उस समय स्वर्गमें देवता लोग और गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर व चारणादि सब ही राजा बलिके इस कर्मकी प्रशंसा कर परमहर्षके साथ उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे और बारंबार हजारों नगाड़े बजने लगे ॥ १९ ॥ और गन्धर्व, किन्नर, किंपुरुषगण यह कहकर गाने लगे कि राजा बलिने अति दुष्कर कर्म किया कि सब जान-बूझकर भी अपने शत्रुको त्रिभुवनका दान कर दिया। हे परीक्षित् ! राजा बलिने पहले "जो इच्छा हो वह ग्रहण कीजिये" यह जो कहा था, इसीसे भगवान्का वह वामनरूप आश्चर्यरूपसे बढ़ा। उस मूर्तिकी आत्मामें त्रिगुणके रहनेसे पृथ्वीपर आकाश, दिक्, विवर, समुद्र, पशु, पक्षी,

तदाऽसुरेन्द्रं दिवि देवतागणा गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदा-
ऽन्विताः ॥ १९ ॥ नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयःसहस्रशो गन्धर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः ॥ मनस्विनाऽनेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदा-
द्यद्रिपवे जगत्त्रयम् ॥ २० ॥ तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ॥ भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयो-
धयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥ २१ ॥ काये बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ॥ ददर्श विश्वं
त्रिगुणं गुणात्मके भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥२२॥ रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जंघयोः ॥
पतत्रिणो जानुनि विश्वमूर्तेरूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥ २३ ॥ सन्ध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापतीञ्जघने आत्म-
मुख्यान् ॥ नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्त सिन्धूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४ ॥ हृद्यङ्ग धर्मतनयोर्मुरारेर्ऋतं च सत्यं
मनस्यथेन्दुम् ॥ श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५ ॥

देव और सम्पूर्ण ऋषि उसमें अवस्थित थे ॥ २० ॥ २१ ॥ ऋत्विक् आचार्य और सभासदोंके सहित असुरराज बलि महाऐश्वर्यशाली हरिके त्रिगुणात्मक कलेवरमें पञ्चभूत, सब इंद्रिय, गन्धादि आशय, चित्त और जीवोंके सहित त्रिगुण विश्व देखने लगे ॥२२॥ अर्थात् इन्द्रकी सेना ही जिसकी सेना थी, उस राजा बलिने इस विश्वमूर्ति हरिके चरणोंके नीचे रसातल, दोनों चरणोंमें धरणी, दोनों जंघाओंमें पर्वत, घुटुओंमें सब पक्षी और दोनों ऊरुमें मरुद्गणोंको देखा ॥ २३ ॥ भगवान् विभुके नेत्रोंमें संध्या, गुह्यमें प्रजापति, जंघाओंमें आप जिनके पति हैं ऐसे बहुतेरे असुर, नाभिमें आकाश, कोखमें सातों समुद्र और छातीमें नक्षत्रमाला विराजमान देखी ॥२४॥ और धैर्यवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलिने

उन मुरारीके हृदयमें धर्म, दोनों स्तनोंमें ऋत और सत्य, मनमें चन्द्रमा, वक्षस्थलमें कमलका फूल हाथमें लिये कमला (लक्ष्मी), कण्ठमें सामवेद और समस्त वेद॥२५॥ चारों भुजाओंमें इन्द्रादि देवता लोग, कानोंमें सब दिशायें, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघ, नाकमें पवन, दोनों नेत्रोंमें सूर्य, शरीरमें अग्नि ॥ २६ ॥ वाणीमें चारों वेद, रसनामें वरुण, दोनों भौंहोंमें विधि और निषेध, दोनों नेत्रोंकी पलकोंमें दिन और रात्रि, माथेमें क्रोध, अधरोंमें लोभ ॥ २७ ॥ स्पर्शमें काम, वीर्यमें जल, पीठमें अधर्म, चरणधरनेमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसनेमें माया, सब रोमावलियोंमें ओषधियाँ ॥ २८ ॥ सब नाड़ियोंमें नदियाँ, नखोंमें शिला, बुद्धिमें ब्रह्मा सब इंद्रियोंमें देवता और ऋषिगण, और गातमें स्थावर,

इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु तत्कर्णयोःककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ॥ केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥ २६ ॥ वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ॥ अहश्च रात्रिं च परमस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥ २७ ॥ स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ॥ छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २८ ॥ नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ॥ प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥ २९ ॥ सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग ॥ सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥ पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ॥ विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्तस्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥ सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ॥ ३१ ॥ स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डलः श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥ मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ॥ ३२ ॥

जंगम सब प्राणी राजा बलिने देखे॥२९॥ हे राजन्! सर्वात्मा वामनजीके शरीरमें इस प्रकार त्रिभुवनको देखकर सारे असुरलोग विस्मयको प्राप्त हुए, परंतु असह्य तेजवाला सुदर्शनचक्र मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त शार्ङ्ग धनुष ॥३०॥ बादलके समान शब्दायमान पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, विद्याधर नामक शतचन्द्रयुक्त असि, उत्तम दो तरकस कि जिनमें अक्षय सायक थे ॥ ३१ ॥ इन सबके ईश्वर उन ईश्वरको घेरकर सुनन्दादि बड़े-बड़े पार्षदगण लोकपालोंके सहित इस विराट् रूपकी स्तुति करने लगे और श्रीभगवान् किरीट, बाजू व मक-

राकार कुंडलोंसे अलंकृत और रत्नोत्तम श्रीवत्स,मेखला और वस्त्रोंसे शोभित हो भ्रमरगण जिसमें गुंजार कर रहे हैं ऐसी वनमालासे व्याप्त हो अत्यन्त दीप्तिमान् हुए ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त वामनजीने एक चरणसे राजा बलिकी समस्त भूमि, शरीरसे आकाश और दोनों भुजाओंसे सब दिशाओंको माप लिया॥३३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इन वामनरूपी भगवान्‌ने जब दूसरा चरण धरा तब स्वर्ग उनके लिये कुछ थोड़ासा स्थान हुआ, परंतु उस तीसरे चरणके लिये कुछ भी शेष न बचा, इसलिये यह चरण स्वर्गके ऊपर गमन करता हुआ, महर्लोक, जनःलोक, तपोलोकके ऊपर सत्यलोकमें जा पहुँचा ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां भूमिदाने विश्वरूपदर्शनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा-जिमि बाँधो प्रभु नृपतिको, एक चरणके काज । सो इक्किस अध्यायमें, कहौं

क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे नभश्शरीरेण दिशश्च बाहुभिः॥ पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि॥ उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३३॥ इति श्रीभागवते म० अष्टम० विश्वरूपदर्शनंनाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभिर्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ॥
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः॥१॥वेदोपवेदा नियमा यमान्वितास्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः ॥ ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः ॥ ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥२॥ अथाङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ॥ समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुचिश्रवा यन्नाभिपंकेरुहसंभवः स्वयम् ॥ ३ ॥

सुमिरि यदुराज ॥ अनन्तर योगिवर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहने लगे—हे नरदेव ! वामनजीका तीसरा चरण सत्यलोकमें पहुँचा हुआ देख पद्मयोनि ब्रह्माजी व मरीचि प्रभृति व्रतधारी बड़ेबड़े ऋषि और सनन्दनादि योगिगण उस चरणके निकट गये। हे राजन् ! उनके नखरूप निशाकरकी किरणसे ब्रह्माजीकी द्युति भी क्षीण हो गयी और वे उस तेजसे ढँक गये ॥१॥ इसके उपरान्त वेद,उपवेद, नियम,यम, तर्क,इतिहास, शिक्षादि वेदाङ्ग, पुराण संहिताके जाननेवाले आये और जिनकी योगरूपी पवनसे ज्ञानाग्नि उद्दीप्त और उससे कर्मके मल भस्म हो गये थे, वे भी वहां आये ॥२॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! यह सब भगवान्‌के चरणारविन्दोंका स्मरण करनेके लिये ब्रह्माजीके स्थान-

पर आये थे, इसलिये सब ही इस चरणकमलकी वंदना करने लगे। यह चरण अत्यन्त दुर्लभ है समस्त कर्मोंके द्वाराभी प्राप्त नहीं होता ॥३॥ इसके उपरान्त पद्मयोनि ब्रह्माजी, जो कि स्वयं नारायणकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलसे जन्मे थे; उन्होंने हर्षित होकर उन वामनजीके चरणको धोया और भक्तिपूर्वक पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे। हे नरेन्द्र ! ब्रह्माजीके कमण्डलुका जल इन वामनजीके चरण धोनेसे पवित्र स्वर्गकी नदी हुई, वह नदी अबतक भगवान्‌की अमलकीर्तिस्वरूप होकर आकाशसे गिरती हुई त्रिभुवनको पवित्र करती है ॥ ४ ॥ इसके पीछे ब्रह्माजी आदिसे लेकर समस्त लोकपाल अपने-अपने सेवकगणोंके साथ आदरपूर्वक अपने स्वामी उन विष्णु भगवान्‌के लिये, जिन्होंने अपने विस्तारको सिकोड़ वामनरूप धारण किया था, भेंट देने लगे ॥ ५ ॥ अर्थात् सुशीतल जल, सुन्दर माला, सुगन्धित

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ॥ स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः ॥ सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥५॥ तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ॥ ६ ॥ स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्खदुन्दुभिनिस्स्वनैः ॥ ७ ॥ जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः ॥ विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥ महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपद व्याजयाच्ञया ॥ ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ ॥ न वा अयं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥ १० ॥

चंदन व उबटन, सुवासिक धूप, दीप, खीलें अक्षत, फल, अंकुर इनसे भगवान्‌की पूजा करने लगे ॥६॥ और भगवान्‌के पुरुषार्थकी महिमा, जय ध्वनि, अधिक करके नृत्य, गीत, वाद्य और शंख दुन्दुभीका शब्द इन सबसे वे देवतालोग स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ हे राजन् ! फिर ऋक्षराज जाम्बवान भेरी बजाकर सब दिशाओंमें इस विजय महोत्सवको पुकारने लगा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! इस ओर असुरलोग तीन चरण भूमि मांगनेके मिषसे अपने प्रभु यज्ञदीक्षित राजा बलिकी समस्त पृथ्वी हरी हुई देख महाक्रोधसे कहने लगे ॥ ९ ॥ कि अरे ! यह ब्रह्मबन्धु नहीं है, यह तो बड़ी भारी मायाका जाननेवाला विष्णु है, यह दुष्ट ब्राह्मणरूपसे हम लोगोंको ठग देवताओंका कार्य करनेको

आया है ॥१०॥ बटुकरूपी इस शत्रुने भिक्षुक होकर हम लोगोंका सर्वस्व हरण कर लिया, हमारे स्वामी सदा सत्यव्रतवाले हैं; विशेष-करके इस समय यज्ञमें दीक्षित हुए हैं ॥ ११ ॥ सदा सत्य बोलते हैं, ब्राह्मणहितैषी हैं, दयावान् हैं और कभी मिथ्या नहीं बोल सकते हैं ॥ १२ ॥ इसको हम लोग यदि मार डालें तो ऐसा करनेसे हमें धर्म होगा और स्वामीकी सेवा भी हो जायगी, इस प्रकारसे कह राजा बलिके अनुचर लोगोंने अस्त्र-शस्त्र ग्रहण किये ॥ १३ ॥ ये लोग शूल, पट्टिश आदि हाथमें लेकर श्री भगवान् वामनजीको मार डालनेके लिये क्रोधसे दौड़े, परंतु राजा बलिकी ऐसी इच्छा नहीं थी ॥१४॥ हे महाराज ! इन दानव सेनापति लोगोंको आता हुआ देखकर विष्णु

अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा ॥ सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥ सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ॥ नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥ तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ॥ इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः ॥ १३ ॥ ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः ॥ अनिच्छतो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥ १४ ॥ तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप ॥ प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥१५॥ नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट् ॥ १६ ॥ जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः ॥ सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥ १७ ॥ हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ॥ वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १८ ॥ हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ॥ मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥

भगवान्के सेवक हँसे और अपने-अपने शस्त्र उठाकर उन लोगोंको रोकने लगे ॥१५॥ हे राजन् ! नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन और गरुड़ ॥१६॥ जयंत, श्रुतदेव, पुष्पदंत, सात्त्वत यह विष्णुके अनुचर जिनमें एक-एकका बल दश-दश हजार हाथियोंके समान था; यह लोग अतिवेगसे असुरकी सेनाका नाश करने लगे ॥१७॥ राजा बलिने देखा कि इन महापुरुषके सेवक हमारी सब सेनाका नाश किये डालते हैं, इसलिये शुक्राचार्यके शापकी बात स्मरण कर अपने सब सेनापतियोंको रोका ॥ १८ ॥ और यह कहा

हे विप्रचित्ति ! हे राहु ! ! हे निमि ! ! ! हमारी बात सुनो और इस समय युद्ध मत करो, क्योंकि यह समय हम लोगोंके लिये अनुकूल नहीं है ॥ १९ ॥ हे दैत्यगण ! जो सब प्राणियोंको सुख देनेके स्वामी हैं, उनका पौरुषसे अतिक्रमण करनेका किसीमें सामर्थ्य नहीं है ॥ २० ॥ हे भाइयो ! जो भगवान् पहले हमारा मंगल और देवता लोगोंका अमंगल करते थे, वही भगवान् इस समय हमसे प्रतिकूल हो गये हैं ॥२१॥ और सुनो ! मंत्री,सेना, बुद्धि,दुर्ग, मंत्र, औषधादि और शमादि उपायोंसे किसी तरह कोई कालका उल्लंघन नहीं कर सकता ॥२२॥ इन हरिके सेवक देवता लोगोंको तुमने बार-बार रणभूमिमें पराजित किया है, परंतु इस समय यह भाग्यके बलसे बलवान् हो गये हैं,

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ॥ तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥ २० ॥ यो नो भवाय प्रागासी-दभवाय दिवौकसाम् ॥ स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥२१॥ बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः॥सामा-दिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ ॥ भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ॥ दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥ २३ ॥ एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ॥ रसां निर्विविशू राजन्विष्णुपार्षदता-डिताः ॥ २५ ॥ अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट्प्रभुचिकीर्षितम् ॥ बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥२६॥ हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतो दिशम् ॥ गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥ तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ॥ नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २८ ॥

इसलिये हमको युद्धमें जीतकर गर्ज रहे हैं ॥२३॥ हम लोगोंके ऊपर काल फिर प्रसन्न हो तब फिर हम इन लोगोंको जीत लेंगे, इससे जो काल हमको जितायेगा, अब तुम लोग उसी समयकी राह देखो ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अपने स्वामीकी यह बात सुनकर दैत्य-दानव लोग विष्णुजीके सेवकोंसे मार खानेके डरसे पातालमें घुसनेको प्रस्तुत हुए ॥ २५ ॥ इसके पीछे पक्षिराज गरुड़जी श्रीभगवान्के अभिप्रायको जान यज्ञमें सोमाभिषेकके दिन वरुणकी फाँसीसे राजा बलिको बांधने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! प्रभावशाली भगवान् विष्णुने जब इस प्रकारसे राजा बलिको बँधवाया तब पृथ्वीकी सब दिशाओंमें महा हाहाकार मचने लगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार

वरुण पाशमें बँधनेसे जब राजा बलि श्रीभ्रष्ट हुआ, तब स्थिरबुद्धि और महायशस्वी उस महात्मा राजा बलिसे विष्णु भगवान् यह वचन कहने लगे कि॥२८॥ हे असुरश्रेष्ठ! जो तूने हमको तीन चरण पृथ्वी दान दी है वह हमारे दो ही चरणोंमें सब पृथ्वी माप गयी, अब तीसरे चरणकी भूमि कहां है ? शीघ्र बता ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सूर्यनारायणकी किरणें जहांतक पड़ती हैं, जहांतक निशानाथ चंद्रमा तारागणोंके सहित अपनी चाँदनी फैलाते हैं और जहांतक मेघ जल वर्षाते हैं वहाँतक तुम्हारी सम्पूर्ण पृथ्वी है॥३०॥हमने एक चरणसे समस्त भूलोकको

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर ॥ द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥ २९ ॥ यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः ॥ यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥ ३० ॥ पदैकेन मया क्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ॥ स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥ ३१ ॥ प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ॥ विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥ ३२ ॥ वृथामनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ॥ प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते ॥ ३३ ॥

माप लिया, मेरे शरीरसे आकाश और सब दिशायें व्याप्त हो गयीं । देखता नहीं कि तेरे सामने ही दूसरे चरणसे स्वर्गलोकको माप लिया, इस प्रकार हमने तेरा सर्वस्व मापा ॥ ३१ ॥ परन्तु यह सब लेनेसे भी तेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई, इसलिये तुझको नरकमें बास करना चाहिये। अब तू अपने गुरु शुक्राचार्यजीकी आज्ञा लेकर नरकमें प्रवेशकर * ॥३२॥ जो ब्राह्मणसे यह कहकर कि "दूँगा" और फिर नहीं देता, वह याचकके संग ठगाई करता है, उसका मनोरथ वृथा हो जाता है और उसको स्वर्ग अतिदूर है, अर्थात् वह

* शंका—वामन भगवान् ने प्रथम तो बलिसे कहा था कि, तू महापापी है इससे नरकमें वास कर, फिर पीछे सुतल लोक, बलिको दिया नरकमें क्यों न भेजा ? पामर जीवके समान यह कौतुक किया, जैसे कोई क्रोधी मनुष्य क्रोध आने पर जो चाहे वह मुखसे कह दे ।

उत्तर—वामन भगवान्ने जो लोक बलिको देनेके लिये कहा था, वही लोक उसको दिया, क्योंकि निरयका अर्थ नरक नहीं है, किन्तु जो लोक अयस जो लोहा उस करके 'निर' कहिये रहित हो, अर्थात् जिस लोकमें लोहा न हो उस लोकको भी मुनिलोग निरय कहते हैं। भगवान्ने भी निरयका अर्थ ऐसा करके बलिसे कहा कि निरयमें वास करोगे । इसलिये निरय जो सुतल है वहाँ बलि को भेज दिया, क्योंकि सुतल लोकमें मणियोंके सिवाय दूसरी धातु कोई नहीं है। निरयका ऐसा अर्थ विचारकर वामनजीने कहा था, नरकमें जानेको बलिको नहीं कहा ।

नीचे गिरता है ॥ ३३ ॥ तूने देनेको कहकर फिर हमको नहीं दिया और कपट किया, इसलिये झूठका फल यही है कि आप कुछ दिन नरकका भोग कीजिये ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टम-स्कन्धे बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा-सुतल लोक पठयो बलिहि, प्रभु दीनो वरदान। सो बाइस अध्यायकी, कथा सकल जग जान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार अंगीकार किये हुए राजा बलिको इस तरह भगवान्ने चलायमान भी किया तथापि अविचलित चित्तसे वह राजा बलि वक्ष्यमाण अविक्लव वचन बोला ॥ १ ॥ राजा बलिने ने कहा कि, हे उत्तमश्लोक भगवन् ! मेरी कही हुई प्रतिज्ञा असत्य नहीं है, आपने ही पहले कपटका आश्रय ले वामनरूप बनकर मुझसे भिक्षा मांगी और इस समय दूसरा रूप धारण किया। अच्छा जो इस प्रकारसे भी आप मेरी (प्रतिज्ञा)

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाऽहं चाढ्यमानिना ॥ तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥३४॥ इति श्रीभागवते महा० अष्टम० बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुरः ॥ भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ यद्युत्तम श्लोक भवान्ममेरितं वचोव्यलीकं सुरवर्य मन्यते ॥ करोम्यृतं तन्नभवेत्प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥ बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबन्धाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ॥ नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥ पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ॥ यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥ ४ ॥

बातको झूठ मानें, तो भी मैं अपना वचन पूर्ण करता हूं। हमारा वचन ठगाईका नहीं हो सकता, आपने दो चरण तो माप ही लिये, तीसरे चरण का स्थान नहीं पाया, अतः मैं अपना मस्तक झुकाता हूँ, इसपर यह अपना चरणकमल रखिये, क्योंकि मैं सब लोगोंका राजा हूं, तब क्या मेरा शरीर एक चरणके बराबर भी न होगा ॥ २ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार मैं अपकीर्तिसे डरता हूँ वैसा नरकसे, वरुणकी फांसीसे, अत्यन्त भयंकर विपत्तिसे नहीं डरता और धन के कष्टसे अथवा राज्यभ्रष्ट होनेसे भी मैं वैसा नहीं डरता ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आपका किया हुआ यह दण्ड अपकीर्तिका कारण नहीं है, क्योंकि माननीय पुरुष जो दण्ड देते हैं, वह तो वाञ्छनीय है, क्योंकि

माता अथवा पिता वा भ्राता किंवा सुहृद् लोग ऐसा दण्ड नहीं दे सकते, इस कारण आप हमारे हितैषी हैं, वह दण्ड जो दिया इससे तो मैं बड़ाईके ही योग्य हुआ ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! आप वास्तव में शत्रुके रूपसे प्रगटे हैं, प्ररंतु यथार्थ आप शत्रु नहीं हैं, नहीं तो हम असुरलोगोंके भी आप ही परम गुरु हैं, क्योंकि हम लोग महामदसे अन्धे हो रहे थे, आपने हमारी ममताका नाश करनेके लिये हमारे ज्ञान के नेत्र खोल दिये ॥५॥ अहो ! जिनसे वैर बांधकर अनेक असुरगण सिद्धिको प्राप्त हो गये और जिनको केवल एकान्तयोगी लोग ही प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ अनेक कर्मकारी उन्हीं परमगुरु करके हमको दंड मिला और वरुणकी फांसीसे बँधे तो फिर इससे हमको लाज अथवा दुःख क्या हो सकता है ? बस, इस बंधनसे न मैं दुःखी हूं न लज्जित हूं ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! मेरे ऊपर जो आपने दण्डरूप यह अनुग्रह किया,

त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः ॥ यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥ यस्मिन्वैरानुबन्धेन रूढेन विबुधेतराः ॥ बहवो लेभिरे सिद्धिं यामुहैकान्तयोगिनः ॥ ६ ॥ तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ॥ बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥ पितामहो मे भवदीयसंमतः प्रह्राद आविष्कृतसाधुवादः ॥ भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥ किमात्मनाऽनेन जहाति योऽन्ततः किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ॥ किं जायया संसृतिहेतुभूतया मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥९॥ इत्थं स निश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ॥ ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तम ॥१०॥

मैं इसका अधिकारी नहीं था, आपने अपने भक्तका पोता (नाती) जानकर मुझपर यह अनुग्रह किया, हमारे पितामह प्रह्लादजी आपके परमप्रीतिपात्र हैं उनके साधुपन को सबही जानते हैं, आप उनके पराश्रय थे। यद्यपि वह आपके शत्रु अपने पिता हिरण्यकशिपु करके अद्भुत पीडाको प्राप्त हुए थे ॥८॥ तो भी यह विचार करके कि आयु के शेष में आत्मीय नामधारी चोररूपी जो पुत्रादि हैं; वे जो देहको छोड़कर चले जायँगे, उस देह से क्या फल ? और स्त्री संसारकी हेतुभूत है, इससे भी कुछ फल नहीं और घरसे भी क्या प्रयोजन है ? क्योंकि इससे केवल आयुका क्षय होता है, सुख कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ हे सत्तम ! अगाध बोधसम्पन्न हमारे पितामह प्रह्लादजी ऐसा निश्चय करके, यद्यपि आप उनके पक्ष (पितादि निशिचरों) के क्षयकारी थे, तथापि स्वजनसे भीत होते हुए जहांपर किसी ओरसे भयकी

संभावना नहीं और जो ध्रुव हैं, ऐसे आपके चरणकमलकी शरणको प्राप्त हुए थे ॥ १० ॥ हे भगवन् ! इस समय दैव करके मैं भी अपने शत्रु आपकी शरण आया हूँ, यह दैव हमसे अति अनुकूल है, क्योंकि बलात्कार इसने हमसे उस सम्पत्तिका त्याग कराया है, जिस सम्पत्ति से पुरुष स्तब्धमति हो मृत्युके निकट आनेपर भी इस जीवन को अनित्य नहीं समझता है ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ ! असुरश्रेष्ठ राजा बलि इस प्रकार कह रहा था कि इतने में ही भगवद्भक्त प्रह्लादजी पूर्ण चन्द्रमा समान आकाशसे उदय हो दैत्यराज बलिके निकट आकर उपस्थित हुए ॥१२॥ श्रीप्रह्लादजी के दोनों नेत्र कमलदलके समान बड़े-बड़े थे, श्यामवस्त्र धारण किये हुए थे, दोनों भुजायें अत्यन्त लम्बायमान थीं; वे अति ऊँचे थे, रंग श्याम था, अपनी कांतिसे विराजमान हो रहे थे, इस प्रकारसे पितामह महात्मा प्रह्लादजी

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ॥ इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं ययाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥ ११ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ॥ प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं प्रलम्बबाहुं सुभगं समैक्षत ॥ १३ ॥ तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ॥ ननाम मूर्ध्नाऽश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥१४॥ तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ॥ उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविह्वलः ॥ १५ ॥

को राजा बलिने देखा ॥१३॥ परन्तु वरुणजीकी फांसीमें बँधनेके कारण पहलेके समान भेंट देकर राजा बलि उनकी पूजा नहीं कर सका, आंखोंमें आंसू भरकर और शिर झुका केवल प्रणाम करने लगा । हे राजन् ! उस समय ऐसा जान पड़ा कि राजा बलिको अपने किये हुए अहंकारादि अपराधका स्मरण हुआ कि जिससे वह लाजके कारण चुपचाप मस्तक नवाकर रह गया ॥१४॥ हे राजन् ! सुनन्दादि पार्षदोंसे पूजित जगत्पति भगवान् हरिको राजा बलिके निकट बैठा हुआ देखकर प्रह्लादजीने विचारा कि इसके ऊपर निःसंदेह भगवान्का अनुग्रह हुआ है, इसलिये यह महात्मा पुलकावलीसे पूर्ण व अश्रुजलसे पूर्ण हो मस्तक झुकाकर वारंवार नमस्कार करते-करते भगवान्के

भा० अ० निकट गये और निकट जाकर शिर झुकाकर प्रणामकर बैठ गये ॥१५॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे भगवन्! आपने ही बलिको इन्द्रपदवी दी
॥ ६६ ॥ और आपने ही ले ली। आपने इसके इन्द्रपदको हरण नहीं किया, बरन् अपना पद फिर ग्रहण कर लिया, यह अच्छा नहीं हुआ।
मैं अनुमान करता हूं, कि इस पर आपका बड़ा ही अनुग्रह हुआ है, क्योंकि ऐश्वर्य और सम्पत्ति आत्माको मोह करनेवाली हैं, यह इससे छूट गया ॥ १६ ॥ हे भगवन्! ऐश्वर्य व सम्पत्तिके मोहकी वार्त्ता क्या कहूँ! इससे विद्यावान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं, इस लिये सम्पत्ति रहनेपर कोई पुरुष भली-भांति आत्मतत्त्वको नहीं देख सकता, आपने बलि की सम्पत्ति लेकर इसपर बड़ा ही अनुग्रह प्रकट किया। आप महा करुणाकर हैं, जगदीश्वर अखिल लोकके साक्षी नारायण हैं, मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ। श्रीशुकदेवजी

प्रह्लाद उवाच ॥ त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम्॥मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥ १६ ॥ यया हि विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ॥ तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृताञ्जलेः ॥ हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥१८॥ बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ॥ प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥ विन्ध्यावलिरुवाच ॥ क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर-ईश कुर्युः ॥ कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यतआवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २० ॥

बोले कि हे परीक्षित्! इसके पीछे हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी हाथ जोड़कर खड़े हुए, उन प्रह्लादजीके सामने ही उन वामनरूपी मधुसूदनसे कुछ कहनेकी इच्छा करने लगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे राजन्! उसी समय राजा बलिकी स्त्री विंध्यावली भगवान्से कुछ कहनेके लिये आयी, इस
भा० टी० कारण ब्रह्माजी उसका सम्मान करनेके लिये कुछ देर चुपचाप रहे। बलिकी स्त्री विंध्यावली पतिको बँधा हुआ देखकर भयके कारण
अ० २२ व्याकुल हो गयी, फिर हाथ जोड़ नीचेको मुख कर यह वचन कहने लगी ॥ १९ ॥ विंध्यावली बोली कि हे ईश! आपने अपनी क्रीडाके लिये यह जगत् बनाया है, परन्तु दुर्बुद्धि लोग इसमें अपना अपना स्वामीपन कल्पित किया करते हैं। हे भगवन्! आप त्रिजगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके करनेवाले हैं, कोई दूसरा आपको इस जगत्में क्या देगा? जो लोग कहते हैं, "*कि हमने आपको समर्पण*

किया " उनको लज्जा नहीं है, "हम स्वतंत्र हैं" उनमें केवल यही वाद आपने अवरोपित किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! विंध्यावलीके इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि इस हमारे स्वामीने आपसे जो यह कहा कि हमने आपको तीनों लोक अर्पण कर दिये हैं और तीसरे चरणके पूर्ण करनेको अपनी देहका देना कहा, सो इन्होंने देहादिमें अपना स्वामीपन जानकर जो कुछ कहा उससे निर्लज्जता ही प्रकाशित होती,है क्योंकि आप सर्वव्यापी हैं,इसलिये मन्दबुद्धिवाले इस राजाको आप कृपा करके छोड़ दीजिये॥२१॥यद्यपि भगवान् प्रह्लाद और रानी विन्ध्यावलीके दीन वचनोंसे प्रसन्न हो गये, तथापि ब्रह्माजीने लोभ दिखानेके लिये बहुत सारी विनती और प्रार्थना करके कहा कि हे भूत-भावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगन्मय ! आप राजा बलिका सर्वस्व हरण कर लिया, अब इसको दण्ड न देकर छोड़ दीजिये

ब्रह्मोवाच ॥ भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ॥ मुञ्चै नं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥ २१ ॥ कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ॥ निवेदितं च सर्वस्वमात्माऽविक्लवया धिया ॥ २२ ॥ यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ॥ अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्ति-मृच्छेत् ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ॥ यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥ २४ ॥

॥ २१ ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह असुरवर श्रेष्ठबुद्धिवाला है और इसने अपने कर्मसे प्राप्त किये सब लोकोंको दान कर दिया है, जिसने अकातर होकर प्रथम सर्वस्व और पीछे अपना देहतक अर्पण कर दिया वह फिर दण्ड पानेके योग्य नहीं हो सकता । हे भगवन् ! लोकोंमें शठताईको छोड़ जो आपके चरणामृतको पान करता है वह दूबके अंकुरोंके दान करनेसे भी उत्तम गतिको पाता है, फिर यह राजा बलि, कि जिसने क्लेशरहित होकर आपको त्रिलोकी दान कर दिया, फिर भी क्या यह दण्ड पानेके योग्य हो सकता है ? ॥ २३ ॥ श्री भगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! हम जिसके ऊपर अनुग्रह करते हैं, प्रथम उसके धनका नाश कर देते हैं, क्योंकि धनसे ममता उत्पन्न होती है, इससे पुरुष नम्रता रहित हो सब लोकोंको और मुझको भी कुछ नहीं समझता, इस कारण मदके दूर करनेके लिये सब धनका हरण करना ही

अनुग्रह है ॥ २४ ॥ और जीवात्मा सदा परवश होकर अपने कर्मोंकरके कृमिकीटादि अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ फिर पौरुषी गतिको प्राप्त होता है, अर्थात् पुरुष होकर जन्मता है ॥ २५ ॥ जो उस पुरुषजन्ममें जन्म, कर्म, वयस, सत्य, विद्या, ऐश्वर्य और धनादिसे उसको स्तंभ (गर्व) न हुआ तो मेरा बड़ा ही अनुग्रह है ॥ २६ ॥ हमने ध्रुवादिकोंको जो सम्पत्ति दानकी है, उसमें एक कारण है, जो हमारे भक्त हैं वे अनम्रतादिके लिये भूत और सर्व प्रकार भलाईके प्रतिकूल जन्मादिके होनेपर भी कभी मोहित नहीं होते, इसलिये हम भक्तकी इच्छासे सम्पदा देते हैं, अभक्त सम्पदासे मोहित हो जाता है, इसलिये उसपर अनुग्रह हम सब सम्पदा हरण करके करते हैं ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह दानव (बलि) दैत्यलोगोंका अगुआ और कीर्तिका बढ़ानेवाला है, इसने दुर्जयमायाको जीत लिया है, इसलिये यह खेदको

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः ॥ नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥ २५ ॥ जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ॥ यद्यस्य न भवेत्स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥२६॥ मानस्तम्भनिमित्तानांजन्मादीनां समन्ततः ॥ सर्वश्रेयः प्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥ एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ॥ अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २८ ॥ क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ॥ ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥ २९ ॥ गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ॥ छलैरुक्तोमया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥ ३० ॥ एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ॥ सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥ ३१ ॥

प्राप्त होकर भी मोहित नहीं होता है ॥ २८ ॥ यह निर्धन हो गया स्थानसे भ्रष्ट हो गया, शत्रुसे बांधा गया, झिझकारा गया और इसके जातिवालोंने इसको छोड़ दिया व इसने अनेक प्रकारकी यातना भी पायी; अधिक करके इसके गुरु शुक्राचार्यजीने भी इसको बहुत धमकाया, शाप भी दिया, तो भी इसने अपने सङ्कल्पको नहीं छोड़ा ॥ २९ ॥ मैंने छलकरके जो धर्म इसको बताया उसको भी यह नहीं छोड़ता, इससे यह पुरुष अतिशय भक्तिमान् और सत्यवादी है ॥ ३० ॥ ऐसी निष्ठा रखनेके लिये मैंने भी इसको ऐसा स्थान दिया है कि जो देवता लोगोंको भी नहीं मिल सकता । अब हमने इस बलि का आश्रय लिया, यह बलि सावर्णि-मन्वन्तरमें इन्द्र

होगा ॥ ३१ ॥ जबतक वह सावर्णिमन्वन्तर न आये, तबतक यह विश्वकर्माजीके बनाये सुतल लोकमें जाकर वास करे। यह स्थान साधारण नहीं है, जो लोग वहां पर वास करते हैं, हमारी दृष्टिके पड़नेसे उनको आधि, व्याधि और थकावट कभी नहीं होती है ॥३२॥ हे राजन्! ब्रह्माजीको इस प्रकारसे उत्तर देकर भगवान् फिरकरुणा परायण होकर राजा बलिसे बोले कि हे इन्द्रसेन! हे महाराज! तुम्हारा मंगल हो तुम अपने सब जातिवालोंके साथ सुतललोकको चले जाओ कि जिसे स्वर्गके रहनेवाले भी चाहते हैं ॥ ३३ ॥ उस स्थानमें लोकपालगण भी तुम्हारा पराभव नहीं कर सकेंगे, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है! जो दैत्यलोग तुम्हारी आज्ञाको न

तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः ॥ नोपसर्गा निवसतां संभवन्ति ममेक्षया ॥ ३२ ॥ इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ॥ सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥ ३३ ॥ न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे ॥ त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥ ३४ ॥ रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ॥ सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥ ३५ ॥ तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात्ते भाव आसुरः ॥ दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मानेंगे, उनका संहार हमारे चक्रसे हो जायगा ॥ ३४ ॥ सब सामग्रीके साथ और सब सेवकोंके साथ हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। हे वीर! क्या हमारे वियोगके मारे तुम वहां जानेकी इच्छा नहीं करते? हम सत्य ही सत्य कहते हैं कि हमको तुम सदा उस स्थानमें देखोगे ॥३५॥ वहां दैत्यदानवोंके संग रहनेसे हुआ जो तुम्हारा असुरभाव वह मेरे प्रभावको देखकर उसी समय नष्ट हो जायगा * ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीका बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

* शंका–ऐसा कौन लोक है कि, जिसमें देवता भी बड़े क्लेशसे जा सकते हैं? और उसी लोकको एक क्षणमें राजा बलि चला गया, जो कभी स्वर्ग लोकको बलि गया तो स्वर्गलोक देवताओं का है और जो सुतल लोकको गया तो सुतल लोक नागोंका है ।

उत्तर—वामन भगवान्ने जिस समय राजा बलिसे दान लिया तो उसी समय बलि जीता था तो भी संसारसे मुक्त कर दिया था, चाहे तो संसारमें रहे चाहे योगियोंके लोकको जाय, ऐसे लोकको देवता लोग बड़े दुःखसे भी नहीं जा सके, इसलिये शुकदेवजीने कहा कि जिस लोकको बलि गया वह लोकदेवताओंको भी प्राप्त नहीं होता ॥

भा० अ० ॥ ६८ ॥ दोहा–सुतल लोकको बलि गये, इन्द्र मिल्यो सुरलोक । सो तेइस अध्यायमें, पढ़कर होहु विशोक ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! पुरातनपुरुष भगवान्‌ने जब इस प्रकारसे कहा, तब समस्त साधुसम्मत महानुभाव राजा बलिके दोनों नेत्र आँसुओंकी कलाओंसे आकुल हो गये । वह भक्तिसे उत्कंठित हो हाथ जोड़कर गद्गद स्वरसे श्रीभगवान्‌से कहने लगा ॥ १ ॥ राजा बलि बोला कि अहो ! आपके प्रति नमस्कार करनेकी कैसी आश्चर्यमय महिमा है ? इसके लिये उद्यम करते ही भक्तजनोंके कार्य सिद्ध हो जाते हैं, आपको नमस्कार करनेके उद्यमने इस अधम असुरको भी उस अनुग्रहका दान किया, कि जो लोकपालोंको भी नहीं मिल सकता । हे भगवन् ! आप परमेश्वर हैं मैं अति अवस्तु हूँ; मैं भला क्या आपको त्रिलोकीका दान दूंगा ? बरन् मैंने तो आपको भली-भाँति प्रणाम भी

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं महानुभावोऽखिलसाधुसम्मतः ॥ बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ॥ यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ॥ विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥ एवमिन्द्राय भगवान् प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ॥ पूरयित्वाऽदितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥

नहीं किया, केवल प्रणाम करनेको उद्यम किया है, सो इतने ही उद्यमका ऐसा माहात्म्य है कि करोड़ों तप और दान करनेसे जो अनुग्रह प्राप्त नहीं हो सकता, वह मुझको मिल गया । हे महाराज ! आपके प्रणाम करनेका माहात्म्य अति आश्चर्यमय है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित् ! असुरश्रेष्ठ राजा बलिने इस प्रकार कहकर भगवान् वामनजीको और महेश्वरके साथ ब्रह्माजीको प्रणाम किया इसके पीछे प्रीतिमें भर प्रफुल्लचित्त हो असुरसमूहके साथ सुतललोकको चला गया ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे भगवान् हरिने इन्द्रको फिर त्रिलोकी समर्पण कर अदिति की कामना को साध स्वयं इंद्र बन सब जगतका

पालन किया था ॥ ४ ॥ इधर अपने वंशधर पोते बलिको छूटते हुए और भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करते हुए देख प्रह्लादजीने भक्तिसे गद्गद हो यह वचन कहे ॥ ५ ॥ प्रह्लादजीने कहा कि हे भगवन् ! जिन लोगोंकी वन्दना सम्पूर्ण विश्व करता है, वे समस्त लोग आपके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं। आप "सर्व प्रकार से रक्षा करेंगे" यह कहकर जो हमारे दुर्गपाल हुए आपका यह प्रसाद अति दुर्लभ है। ब्रह्मा महेश्वर और लक्ष्मी कोई भी इस प्रसादको प्राप्त नहीं हुए, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ? ॥ ६ ॥ हे आश्रयप्रद ! आपके पदारविन्दमकरन्दका सेवन करके ब्रह्मादि देववृन्द विभूतियोंका भोग करते हैं, हम खलयोनि किस प्रकारसे आपकी

लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ॥ निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत ॥५॥ प्रह्लाद उवाच॥नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ॥ यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः॥६॥यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः ॥ कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥ चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ॥ सर्वात्मनः समदृशो विषमस्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ॥ मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥९॥ नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ॥ मद्दर्शनमहाह्लाद्ध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥ १० ॥

कृपादृष्टिकी पदवीको प्राप्त हों ? ॥७॥ हे भगवान्! आपकी चेष्टा अतिशय आश्चर्यकी है, यह तो कुछ बात ही नहीं है, आप अचिन्त्य योगमायासे लीलापूर्वक त्रिभुवनकी रक्षा करते हैं और सर्वात्मा व सर्वज्ञ होनेके कारण आप सबको समभावसे देखते हैं, आपका ऐसा विषम स्वभाव नहीं है परन्तु भक्तके ऊपर स्नेहवश हो आपका ऐसा कल्पतरुस्वभाव हुआ है ॥८॥ तब श्री भगवान् बोले कि हे प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम भी सुतललोकमें चले जाओ और अपने पोते बलिके साथ आनन्द करते हुए अपने जातिवालोंको सुख दो ॥ ९ ॥ हम वहां पर गदा हाथमें लिये खड़े रहेंगे और वहां तुम नित्य हमको देखोगे, हमारे दर्शन करनेसे आनन्द पाओगे और

तुम्हारा ज्ञान भी नष्ट नहीं होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! निर्मलमतिवाला प्रह्लाद अपने पोते राजा बलि के साथ " यही करता हूँ " कह भगवान्की आज्ञा को स्वीकार किया। फिर सब असुर और सेनापति हाथ जोड़कर महात्मा आदि पुरुष की परिक्रमा दे प्रणाम कर उनकी आज्ञा लेकर उसी समय सुतललोक को चले गये, कि जो बड़ा भारी पाताल था ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके पीछे भगवान् वामनजी संनिकट बैठे हुए ब्रह्मवादियोंकी सभामें ऋत्विक् लोगोंके बीच आसीन महर्षि शुक्राचार्यजीसे बोले ॥१३॥ कि हे ब्रह्मन् ! आपके शिष्य राजा बलिके यज्ञमें जो कुछ त्रुटि रह गयी है, उसको आप स्वयं पूर्ण कीजिये। यदि तुम कहो कि यज-

श्रीशुक उवाच ॥ आज्ञां भगवतो राजन् प्रह्लादो बलिना सह ॥ बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥ परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ॥ प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥ अथाहोशनसं राजन् हरिर्नारायणोऽन्तिके ॥ आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः ॥ यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥ १४ ॥ शुक्र उवाच ॥ कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ॥ यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥१५॥ मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ॥ सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम संकीर्तनं तव ॥ १६ ॥ तथाऽपि वदतो भूमन् करिष्याम्यनुशासनम् ॥ एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञाऽनुपालनम् ॥ १७ ॥

मानके विना यज्ञ किस प्रकार पूरा हो सकता है ? वह बात नहीं, क्योंकि ब्राह्मण करके देखे जाते ही सब कर्मों की विषमता समताको प्राप्त होती है, आपके करनेसे इस यज्ञ के पूर्ण हो जाने में क्या सन्देह है ? ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् वामनजीने ऐसे वचन सुनकर शुक्राचार्यजी बोले कि हे भगवन् ! आप कर्मके प्रवर्तक, यज्ञफलदाता और यज्ञ पुरुष हैं, आप जिस करके सर्व प्रकार पूजित हुए फिर उसके कर्मोंकी विषमता कहां रही ? ॥१५॥ मन्त्रसे स्वरादिभ्रंश द्वारा, तन्त्रसे क्रमकी विपरीतता द्वारा और देश, काल, पात्र, वस्तुसे दक्षिणादि द्वारा जो जो न्यूनता होती है, आपका नाम लेते ही उन सब छिद्रोंको दूर करता है ॥ १६ ॥ तथापि आप जो कुछ आज्ञा करते हैं, उसको मैं अवश्य

पालन करूंगा, क्योंकि आपकी आज्ञा पालन करनेसे ही पुरुषोंका कल्याण होता है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शुक्राचार्यजीने इस प्रकारसे भगवान्की आज्ञा पर हर्ष प्रकट कर सब ब्राह्मणोंसहित राजा बलिके छिद्रको अच्छिद्र किया अर्थात् यज्ञ पूरा कर दिया॥१८॥ हे महाराज परीक्षित् ! श्रीभगवान् वासुदेवने वामन अवतार ले इस प्रकार राजा बलिके सम्मुख भूमिकी भिक्षा मांग दानव लोगोंने जिसको हरण कर लिया था वह स्वर्ग फिर अपने भ्राता इन्द्रको दे दिया॥१९॥ उसके उपरान्त कश्यप अदितिजी को प्रसन्न करने के लिये और सब प्राणियोंके

श्रीशुक उवाच ॥ अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ॥ यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥१८॥ एवं बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः ॥ ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥ १९ ॥ प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ॥ दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥ २० ॥ कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ॥ लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥ २१ ॥ वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ॥ मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥ २२ ॥ उपेन्द्रं कल्पयांचक्रे पतिं सर्वविभूतये ॥ तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥ २३ ॥

हितार्थ देव, ऋषि, पितृगण, मनुवर्ग, दक्ष, भृगु, अंगिरादि मुनिगण और कुमार व भोलानाथ शिवके साथ प्रजापति ब्रह्माजीने उन वामनजीको लोक व लोकपालोंका अधीश्वर किया * ॥ २० ॥ २१ ॥ यद्यपि इन्द्र सब लोकोंके पति हैं तो भी समस्त वेद, सर्व देव, धर्म, यश और सब प्रकारसे मंगल व्रतादिके पालन करनेमें निपुण वे वामनजी सर्व प्राणियोंका बहुत ऐश्वर्य बढ़ाने को इन्द्रके सहायक उपेंद्र बनाये गये,

* शंका–जगत्को उत्पन्न करने वाले, जगत्के स्वामी, जगत्के पालन करनेवाले जो भगवान् हैं, उन भगवान्को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माजीने राज्य दिया, अधीश तो इन्द्रभगवान्को ब्रह्माने किया, यह बड़ी शंका है ?

उत्तर—भगवान्की आज्ञा मानकर ब्रह्माने बहुत प्रकारसे विचार किया और इन्द्रको त्रास देनेके लिये भगवान् को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने अधीश्वर किया, क्योंकि लोकमें भी अपने बराबर पुत्रको भाईको देखकर लोग कुकर्म नहीं करते । इस प्रकारसे भगवान् इन्द्रके छोटे भाई हैं, अतः वामन भगवान्के सम्मुख इन्द्र खोटा कर्म नहीं करेगा, इसलिये त्रिलोकीके नाथको इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने स्वामी किया ।

इसलिये उस समय सब प्राणियोंको बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ ॥२२॥२३॥ इसके पीछे इन्द्रने विमानपर चढ़ाकर आगे कर उन वामनजीको स्वर्गमें ले गये । यह देखकर लोकपालोंके और ब्रह्माजीके मनमें परमानन्द हुआ ॥२४॥ हे महाराज ! इस प्रकार इंद्र त्रिलोकीको प्राप्त हो उपेंद्रजीके बाहुबलसे उसको पालन करने लगा और परम श्रीसम्पन्न व निर्भय होकर सुख संभोगमें निमग्न हुआ ॥ २५ ॥ इस ओर ब्रह्मा,महेश्वर,कुमार,भृगु आदि मुनि,पितृलोग और सर्व प्राणी,सिद्ध व वैमानिक सब ही भगवान् के इस अद्भुत कर्मकी प्रशंसा करते-करते अपने-अपने स्थानोंको चले गये और सब स्थानोंमें कश्यपजीकी स्त्री अदितिजीकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे कुरुनन्दन परीक्षित् ! श्रीभगवान्के ये पवित्र चरित्र श्रोता लोगोंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, वह हमने आप के संमुख सब वर्णन किये ॥ २८ ॥

ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ॥ लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥ २४ ॥ प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः ॥ श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥ २५ ॥ ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ॥ पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥ २६ ॥ सुमहत् कर्म तद्विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम् ॥ धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥ २७ ॥ सर्वमेतन्मयाऽऽख्यातं भवतः कुलनन्दन ॥ उरुक्रमस्य चरितं श्रोतृणामघमोचनम् ॥ २८ ॥ पारं महिम्न उरुविक्रमतो गृणानो यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः ॥ किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥ २९ ॥ य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारानुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥ ३० ॥

भा० टी०
अ० २३

जिस पुरुषने बलसे अनेक भांतिके विक्रम करनेवाले भगवान् विष्णुकी महिमाका पार देख लिया है, वह पृथ्वीके राजःकणोंकी संख्या भी कर सकता है, अर्थात् जिस प्रकार पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या नहीं हो सकती, वैसे ही भगवान्के चरित्रों को गाते-गाते कोई पार नहीं पा सकता । इसलिये मंत्र और मंत्रदर्शी पुरुष लोगोंने स्पष्ट कहा है कि उत्पन्न हुये और उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंकी जातिमें क्या कोई पुरुष पूर्णस्वरूप पुरुषकी महिमाको प्राप्त हुआ है! अर्थात् कोई नहीं हुआ और न आगेको होगा ॥२९॥ हे राजन् ! अद्भुतकर्मकारी देव देव भगवान् वासुदेवके वामनावतारविषयक चरित्र जो मनुष्य गायेंगे वा सुनेंगे अथवा सुनायेंगे व लिखेंगे उनको परम श्रेष्ठ गति प्राप्त

हो जायगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित् ! देवता अथवा पितरोंमें अथवा लौकिक कर्म करनेके समय जिस-जिस कार्यमें इस चरित्रका गान होगा, वे समस्त कार्य यथावत् पूर्ण होंगे, इस बातको पंडितगण भली प्रकार जानते हैं ॥३१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीका वामनावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा—कथा मत्स्य अवतारकी, चौबिसवें अध्याय । सत्य व्रत रक्षा करी, सो कहिहौं समुझाय ॥ राजा परीक्षित् व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भगवन् ! आपने जो अनुग्रह करके वामन अवतारकी कथा मुझे सुनायी वह मुझे अत्यन्त प्रिय लगी, अब कृपापूर्वक मुझे प्रथमावतारकी कथा सुनाइये कि जिसमें अद्भुत कर्मकारी भगवान्ने अपनी मायाके द्वारा मत्स्यरूप धारण किया था, मैं उसके श्रवण करनेकी इच्छा

क्रियमाणे कर्मणीदं देवे पित्र्येऽथ मानुषे ॥ यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे वामनावतारचरिते त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥ यदर्थमदधाद् रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ॥ तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्तमिवेश्वरः ॥२॥ एतन्नो भगवन् सर्वं यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः ॥ उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत् कृतम् ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ॥ रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥

करता हूं ॥ १ ॥ क्योंकि मत्स्यरूप लोकमें निंदित है और तमोगुणी स्वभाववाला होनेका कारण सहनेके अयोग्य है, ईश्वरने कर्मग्रस्तके समान होकर इस रूपको किस कारण धारण किया था ? ॥ २ ॥ यह सब वृत्तांत आप मुझसे यथार्थरूपसे कहिये। हे योगिन् ! भगवान् उत्तमश्लोकके चरित्र सबको ही सुखके देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि जब राजा परीक्षित्ने इस प्रकारसे प्रार्थना की तब व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी वह सब लीला कहने लगे, जो कि विष्णुभगवान्ने मत्स्यरूप धारण करके की थी ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी प्रसन्नता पूर्वक कहने लगे कि हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु, कर्म और अर्थकी रक्षा करने के लिये समय-समय पर विष्णु भग-

वान् अवतार लिया करते हैं ॥ ५ ॥ बुद्धिके गुण करके ऊंचे-नीचे प्राणियोंके पवनके समान आदिपुरुष भगवान् विचरण करते हैं, परंतु निर्गुण होनेके कारण ऊंच-नीचको नहीं भजते और मत्स्यावतारका जो प्रयोजन है वह भी सुनो ॥६॥ अतीत कल्पके अंतमें जब ब्रह्माजीकी निद्राके लिये प्रलय हुआ, तब भूरादि सब लोग समुद्रके जलमें डूब गये ॥ ७ ॥ तब समयके वश होकर ब्रह्माजी सो रहे थे, उस समय उनके वदनमेंसे सब वेद निकले, कि जिनको दानवेंद्र हयग्रीवने हरण कर लिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जब दानवश्रेष्ठ हयग्रीवका यह कर्म भगवान् वासुदेवने जाना; तब वे इस दैत्यका दमन करनेके लिये शफरीरूप (मत्स्यरूप) धारण कर लिये ॥ ९ ॥ उसी समय कोई

उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः ॥ नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥६॥ आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥ समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७ ॥ कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली ॥ मुखतो निस्सृतान् वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा तद्दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ॥ दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः ॥९॥ तत्रराजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ॥ नारायणपरोऽतप्यत् तपः स सलिलाशनः ॥ १० ॥ योऽसावस्मिन् महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ॥ श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणाऽर्पितः ॥ ११ ॥ एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥ तस्याञ्जल्युदके काचित् शफर्येकाऽभ्यपद्यत ॥ १२ ॥ सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत ॥ उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥ १३ ॥तमाह साऽतिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् ॥ यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ॥ कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले ॥ १४ ॥

सत्यव्रत नामक नारायणपरायण राजर्षि केवल जलका आहार कर तप करते थे ॥ १० ॥ वही राजर्षि इस महाकल्पमें विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र हो श्राद्धदेवके नामसे विख्यात और भगवान् हरिकरके मन्वन्तरके पदपर अभिषिक्त हुए ॥ ११ ॥ एक दिन यह राजर्षि सत्यव्रत कृतमाला नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे, कि इतनेमें ही उनकी अञ्जलीके जलमें एक मछली दिखायी दी ॥१२॥ हे भारत ! यह देखकर दयावान् द्रविड़राज सत्यव्रत अंजलिके जलसहित इस मछलीको नदीके जलमें डालनेको प्रस्तुत हुए ॥ १३ ॥ राजर्षि सत्यव्रतको महा

करुणाकर जानकर वह मछली करुणाके वचन कहने लगी कि हे महाराज ! आप दीनवत्सल हैं और मैं दीन,हीन क्षीण मीन हूँ, नदीके जलमें जातिका घात करनेवाले अनेक जन्तु हैं, उनके हाथमें हमको आप किस प्रकार छोड़ते हैं ? हे महाराज ! हम भीत हो शरण आयी हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ १४ ॥ राजर्षि सत्यव्रत यद्यपि यह नहीं जानते थे कि हमारे ही ऊपर अनुग्रह करनेको स्वयं भगवान्ने यह सत्यस्वरूप धारण किया है,तो भी प्रीतिपूर्वक उस मछलीकी रक्षा करनेको मन स्थिर कर लिया ॥१५॥ दीन वचन सुनते ही राजर्षिके मनमें दया उत्पन्न हो गयी और वह जलपूर्ण कलशमें रखकर मछलीको अपने आश्रममें ले आये ॥ १६ ॥ हे राजा परीक्षित् ! कलशमें रहनेपर एक ही रातके बीच वह मछली इतनी बढ़ी, कि वह फिर उसमें न समा सकी, इसलिये अपने सुभीतेके लिये उन राजर्षिसे कहने लगी

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ॥ अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनोदधे ॥ १५ ॥ तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ॥ कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥ सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ ॥ अलब्ध्वाऽऽत्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥ नाहं कमण्डलावस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ॥ कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥ स एनां तत आदाय न्याधादौदञ्चनोदके ॥ तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥ १९ ॥ न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ॥ पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाऽहं शरणं गता ॥२०॥ तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे ॥ तदावृत्त्यात्मना तोयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ कि हे राजन् ! इस गगरीमें मेरा शरीर नहीं समाता, इसमें कष्टके मारे मैं वास नहीं कर सकती, अतः आप मुझे कोई ऐसा स्थान बता दीजिये कि जहाँ मैं सुखसे रह सकूं ॥ १८ ॥ यह सुनकर राजा सत्यव्रतने उस मछलीको जलसे निकाल एक बड़े भारी कमण्डलुमें डाल दिया । हे राजन् ! उस कमण्डलुमें गिरते ही एक क्षणके बीचमें वह मछली तीन हाथ बढ़ गयी ॥ १९ ॥ तब वह मछली कहने लगी कि इस कमण्डलुके बीच भी मैं सुखसे नहीं रह सकती, अनुग्रह करके मुझको आप किसी बड़े भारी स्थानमें रखवा दें, क्योंकि मैं आपकी शरण आयी हूँ, इसलिये सब प्रकार आपको मेरी रक्षा करनी उचित है ॥ २० ॥ तब राजर्षिने इस मछलीको कमण्डलुसे उठाकर एक

सरोवरमें डाल दिया परंतु डालतेही वह मछली अपने शरीरसे उस सरोवरमें बड़ी मछलीके समान बढ़ गयी और फिर राजर्षि सत्यव्रतसे
निवेदन करने लगी कि हे महाराज ! मैं जलवासी हूँ, मुझको नहीं जान पड़ता कि सरोवरका जल मेरे मंगलार्थ होगा ॥ २१ ॥ महा-
ह्रदको पानेके प्रथम विना जलके जिससे मेरा नाश न हो जांय ऐसा उपाय करके तुम मुझको किसी ह्रदमें स्थापित करो, क्योंकि ह्रद
स्वभावसे ही गम्भीर नीरवाले होते है उनका जल शीघ्र नहीं घटता ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जब उस मत्स्यने इस प्रकारसे कहा तब
राजर्षि सत्यव्रतने उसको लेकर जिसका जल कभी क्षीण न हो ऐसे अगाध जलाशयमें डाल दिया, परन्तु एक दिनमें ही वह
मछली इतनी बढ़ी कि वह जलाशय भर गया, राजा सत्यव्रतने जब देखा कि इस मछलीका शरीर जलाशयमें भी नहीं समाता तो

**नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ॥ निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः
सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ॥ जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥२३॥ क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां
मकरादयः ॥ अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥२४॥ एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ॥ तमाह को
भवानस्मान् मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥ नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपिच ॥ यो भवान् योजनशतमह्ना-
ऽभिव्यानशे सरः ॥ २६ ॥ नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ॥ अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम्
॥ २७ ॥ नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ॥ भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २८ ॥**

उसको समुद्रमें डालनेके लिये चला ॥२३॥ तब उस मीनने दीन भावसे राजर्षिके प्रति कहा कि हे राजन् ! यहांपर अति बलवान् मकरादि
जन्तु हैं, वे हमको भक्षण कर लेंगे इसलिये आप हमको इस स्थानमें न छोड़िये ॥ २४ ॥ जब उस मत्स्यसे ऐसे वचन सुनकर राजर्षि

सत्यव्रत अतिशय मोहित हुये तब मत्स्यसे बोले, "आप कौन हैं ?" और मत्स्यके रूपसे हमको क्यों मोहित करते हैं ? ॥ २५ ॥ हमने
कभी इस प्रकारका जलचर न देखा, न सुना । आपने एक दिनमें अपना शरीर बढ़ाकर शत योजनके विस्तारवाले सरोवरको ढक
दिया ॥ २६ ॥ हम निश्चय जानते हैं कि आप नारायण अथवा हरि हैं, प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जलचररूप धारण
किया है ॥ २७ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है । आप सृष्टि, स्थिति और प्रलयके अधीश्वर हैं । हे प्रभो ! हम आपके

भक्त हैं और शरणागत है, आप हमारे आत्मा और आश्रय है ॥ २८ ॥ आपके समस्त लीला-अवतार प्राणियोंकी विभूतिके अर्थ है तो सही, पर इस रूपके धारण करनेका क्या कारण है? वह मैं जानना चाहता हूँ ॥ २९ ॥ हे अरविन्दलोचन! देहाभिमानी पुरुषोंकी उपासना जिस प्रकार व्यर्थ होती हैं, वैसे ही सर्व सुहृद् और प्रिय आत्मा आपके चरणोंकी उपासना व्यर्थ नहीं हो सकती, क्योंकि हम लोग केवल आपके भक्त है तो भी आपने ऐसी अनिर्वचनीय दया प्रकट करके हमको यह अद्भुत मूर्ति दर्शन कराया ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब राजा सत्यव्रतने इस प्रकारसे कहा तब जगत्पालक मत्स्यरूपी भगवान् प्रलयके समुद्रमें

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ॥ ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥२९॥ न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ॥ यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥३०॥ श्रीशुक उवाच॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ॥ विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियःप्रियम् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्यतदरिंदम ॥ निमङ्क्ष्यत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥३२॥ त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा ॥ उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ॥ ३३ ॥ त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ॥ सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥३४॥ आरुह्य महतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ॥ एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥ ३५ ॥

विहार करनेकी इच्छासे अपने मनकी बात उस राजासे कहने लगे, क्योंकि भक्तजन उनको अत्यन्त प्यारे होते है ॥ ३१ ॥ मत्स्यरूपी भगवान् बोले कि हे अरिन्दम! आजसे सातवें दिन प्रलय होगा और उस प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूब जायगी ॥ ३२ ॥ हे राजन्! जब प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूबने लगगी तब उस समय हमारी भेजी हुई एक बड़ी नाव तुम्हारे निकट आयेगी ॥ ३३ ॥ तुम उसको देखते ही सब प्रकारकी औषधियाँ और छोटे-बड़े समस्त बीज ग्रहण करके सप्तऋषियोंको लेकर सब प्राणियोंके साथ ॥३४॥ उस नावपर अतिशीघ्रताके साथ चढ़ जाना। उस नावमें चढ़कर विना खेदके तुम सब जगत् घूम सकोगे। हे राजन्! जब सब जल ही जल हो जायगा तब

उजाला नहीं रहेगा, परन्तु तुम ऋषिलोगोंके तेजसे सब कुछ देखनेको समर्थ होगे ॥३५॥ फिर प्रलय पवनके लगनेसे जब वह नाव कम्पायमान होने लगेगी, तब हम भी तुम्हारे समीप आ जायँगे, तब तुम बृहत् सर्परूप रस्सीसे हमारे सींगमें नावको बांध देना ॥ ३६ ॥ जबतक ब्रह्माजीकी रात रहेगी तबतक हम उस नावको ऋषि लोगोंके सहित प्रलय समुद्रमें खींचते फिरेंगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! परब्रह्मपदवाच्य जो हमारी महिमा है वह उसी समय तुम्हारे प्रश्न करने पर कहेंगे । तुम हमारी प्रसन्नतासे उस महिमाको अपने हृदयमें जान सकोगे ॥३८॥ श्री भगवान् इस प्रकार सत्यव्रतको आज्ञा दे उसी स्थलमें अन्तर्धान हो गये। इसके उपरान्त यह राजर्षि सावधान हो भगवान्की आज्ञा दिये

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ॥ उपस्थितस्य मे शृंगे निबध्नीहि महाहिना ॥ ३६ ॥ अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ॥ विकर्षन् विचरिष्यामि यावद् ब्राह्मी निशा प्रभो ॥ ३७ ॥ मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् । वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥३८॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत ॥ सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥ ३९ ॥ आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ॥ निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन्मत्स्यरूपिणः ॥ ४० ॥ ततः समुद्रउद्वेलः सर्वतः प्लावयन्महीम् ॥ वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥ ४१ ॥ ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् ॥ तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥ तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम् ॥ स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति ॥ ४३ ॥

हुए कालकी राह देखने लगे ॥ ३९॥ अर्थात् सत्यव्रत राजा मत्स्यरूपी भगवान्के चरित्रका स्मरण करता हुआ पूर्वकी ओरको हैं अग्रभाग जिनके ऐसे कुशोंको बिछाकर पूर्व उत्तरकी ओर को मुख करके बैठ गया ॥ ४० ॥ कुछ कालके पीछे दिखायी दिया कि समुद्र का नीर तटको तोड़ सर्व प्रकारसे पृथ्वीको डुबाता हुआ बढ़ने लगा और भयंकर मेघ अनिवारित जलधारा वर्षाने लगे ॥ ४१ ॥ राजा सत्यव्रतने भगवान् की आज्ञाका विचार करते-करते देखा कि एक नाव निकट आ पहुँची । मत्स्यमूर्ति भगवान्की आज्ञाका स्मरण कर वह सत्यव्रत सब प्रकारकी औषधि व लतादि लेके सप्तऋषियोंके साथ उस नावपर आरूढ़ हो गया ॥ ४२ ॥ जब यह सत्यव्रत राजर्षि

नौकापर चढ़े तब मुनिलोग बोले कि हे राजन्! भगवान् केशवका ध्यान करो, वे ही हम लोगोंको इस संकटसे बचाकर मंगल करेंगे ॥४३॥ हे राजन्! जब राजा सत्यव्रतने ध्यान किया तब एक शृंग धारण किये मत्स्य भगवान् साक्षात् समुद्रमें प्रकट हुए। इनका यह शृंग सुवर्णका था और देहकी लम्बाई एक लाख योजनकी थी ॥४४॥ राजर्षि सत्यव्रत भगवान्की आज्ञानुसार अहिडोरसे इस मत्स्यकी शृंगमें नौका बांध प्रसन्नचित्त हो भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ राजर्षि सत्यव्रतने कहा कि हे भगवन्! जिन पुरुषोंका अन्तःकरण अनादि अविद्यासे ढका हुआ है, इस कारण जो अविद्यारूप संसारके परिश्रमसे आतुर हैं, वे लोग भी इस संसार में जिसके अनु-

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ॥ एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥ ४४ ॥ निबद्ध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा ॥ वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ अनाद्यविद्योपहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ॥ यदृच्छयेहोपसृता यदाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥ जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ॥ यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७ ॥ यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ॥ भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८ ॥ न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ॥ कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥

ग्रहके लिये आश्रित हो जिसको प्राप्त होते हैं आप वही पुरुष हैं, हम लोगोंको मुक्तिके देनेवाले आप परमगुरु हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन्! यह जन अत्यन्त अबोध है, अपने कर्मोंसे ही इसका बन्धन हुआ है, यह सुखकी इच्छासे असुरोंकेसे कर्म करनेकी चेष्टा करता-फिरता है, परन्तु जिनकी सेवा करनेसे वह सुखकी इच्छा छूट जाती है वे हमारे हृदयकी गांठको खोल दे, वे ही भगवान् हमारे परमगुरु हैं ॥ ४७ ॥ अहो! चांदी जिस प्रकार अग्निकी सेवा करके अपनी मलिनताको छोड़ अपने पहले रूपको प्राप्त हो जाती है, ऐसे ही जिन आपकी सेवासे मनुष्य अज्ञानको छोड़ अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाता है, वे ही अव्यय ईश हमारे गुरु हों, क्योंकि वे ही गुरुके भी परमगुरु हैं ॥ ४८ ॥ अहो! देवता गुरु व सब श्रेष्ठजन एकत्र होकर भी जिसके प्रसादके दश हजार भागके एक किनकेको भी प्राप्त करने के लिये समर्थ नहीं

भा० अ० हो सकते, हे भगवान् ! आप वही ईश्वर हैं, हम आपकी शरण हैं ॥४९॥ हे प्रभो । अंधा जिस प्रकार अन्धेको आगे करके चले, वैसे ही
॥ ७४ ॥ अविद्वान् पुरुष अबोध को अपना गुरु बनाता है; हम वैसे नहीं हैं। आपके जाननेकी इच्छा करते हैं, इसलिये आपको ही गुरु बनाते हैं,
आपका ज्ञान सूर्यके प्रकाशके समान स्वयंसिद्ध है और आप ही सब इंद्रियोंके प्रकाशक हैं ॥५०॥ हे भगवन् ! प्राकृत गुरु केवल अनर्थके हेतु हैं, वे पुरुषको कामादिककी मतिका उपदेश करते हैं; इससे मनुष्य तरनेके अयोग्य संसारको प्राप्त हो जाता है, आप इस प्रकारके नहीं हैं, आप यथार्थमें अव्यय और अव्यय ज्ञानका उपदेश दिया करते हैं, इससे सर्वसाधारण अर्थात् सब कोई आपके पदको प्राप्त हो जाते हैं ॥५१॥ हे देव ! यद्यपि आप सब पुरुषोंके सुहृद, प्रिय, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञान और अष्टसिद्धिस्वरूप हैं, तो भी अनेक दूसरी

अचक्षुरन्धस्य यथाऽग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ॥ त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥५०॥ जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ॥ त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥५१॥ त्वं सर्वलोकस्य सुहृत्प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ॥ तथापि लोको न भवन्तमन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥ ५२ ॥ तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ॥ छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभिर्ग्रन्थीन्हृदय्यान्विवृणु स्वमोकः ॥५३॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः॥मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥५४॥ पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५ ॥

भा० टी० बुद्धि और कामके वश होकर अपने हृदयमें स्थित हुए आपको नहीं जान सकते ॥ ५२ ॥ परन्तु हम ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपकी
अ० २४ शरणमें आये हैं आप देवताओंमें श्रेष्ठ, वरेण्य और ईश्वर हैं। हे भगवन् ! आप परमार्थप्रकाशक वचनोंसे हमारे हृदयमें उत्पन्न हुई अहंकारादिकी गांठ खोलिये और आज्ञास्वरूपप्रकाश करनेकी कृपा हो ॥ ५३ ॥ शुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जब राजर्षि सत्यव्रतने इस प्रकार से स्तुति की तब मत्स्यरूपी भगवान् आदिपुरुषने प्रलयके महासमुद्रमें विहार करते-करते उस राजर्षिको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया था ॥ ५४ ॥ और सांख्ययोग व क्रियाविशिष्ट दिव्य पुराणसंहिता अर्थात् मत्स्यपुराण और अतिगुप्त करने योग्य आत्म-

तत्त्वको भी बड़ी भारी व्याख्याके सहित कहा था ॥ ५५ ॥ ऋषिगणोंके सहित सत्यव्रत राजर्षि नावमें बैठकर ब्रह्मा और श्रीभगवान्‌के कहे हुए उस समस्त आत्मतत्त्वको विशेष करके सनातन धर्मकी कथाको श्रवण करने लगा और उस कथाके श्रवण करनेसे कुछ संदेह भी हुआ ॥ ५६ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहने लगे कि हे भारत ! पहले प्रलयके अन्तमें जब ब्रह्माजी सोकर उठे तो उन मत्स्यरूपी भगवान्‌ने हयग्रीव असुरका संहारकर फिर सब वेद ब्रह्माजीको दे दिये॥५७॥और यह सत्यव्रत राजा भगवान्‌के प्रसादसे ज्ञानविज्ञान सम्पन्न हो इस कल्पमें वैवस्वतमनु हुआ है ॥५८॥ हे राजा परीक्षित् ! सत्यव्रत राजर्षिके और मायामत्स्यरूपी भगवान् विष्णुके इस अवतार का

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ॥ नान्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥ ५६ ॥ अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे ॥ हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः ॥५७॥ स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ विष्णोः प्रसादात्कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥ ५८ ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ॥ संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ ५९ ॥ अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ॥ संकल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥ ६० ॥ प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमुपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ॥ दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ समाप्तोऽयमष्टमः स्कन्धः ॥

बड़ा पवित्र आख्यान श्रवण करनेसे सब पाप छूट जाते हैं ॥ ५९ ॥ श्रीभगवान् वासुदेवके इस अवतारको जो मनुष्य दिन-प्रतिदिन कहते सुनते हैं उनके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं और अन्तमें परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं॥६०॥अहो ! प्रलय समुद्र के जलमें शयन करते हुए और शक्ति रहित विधाताके वदनसे निकले हुए सब वेदोंको जिस दानवने हरण कर लिया और जिन्होंने मत्स्यरूपी होकर उस हयग्रीव राक्षसको मार सब वेद सत्यव्रत और सप्तऋषियोंसे कहे थे, उन अखिलकारण मायामत्स्यरूपी भगवान्‌को हम वारंवार नमस्कार करते हैं* ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीका मत्स्यावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

* छप्पय-जय जय नटवर वेष तरणियतनयातच लम्पट । जय जय अट पट लटक चटक भूषित वंशीवट । जय जय जटित सुहाटक घटित मुकुट धर ॥ जब जय उत्कट शकट विपाटक वेणु लकुट कर ।। जयति चटुल तर पतिपट धर अघटित घटनाचरण ।। जय जयति निपट पटु करण प्रभु मम इच्छा पूरण करण ।

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते अष्टमस्कंधः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कन्धः प्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

अश्विनीकुमार
सुकन्या
च्यवन
अंबरीष
सुदर्शन
दुर्वासा
कृत्या
कपिल
सौदासराजा
ऋषिपत्नी
सहस्रार्जुन
परशुराम
श्रीराम
सीता
ल.
भ.
शा.
हनुमान
देवयानी
ययातिपुत्र
शर्मिष्ठा
ययाति

सोरठा—जयवृन्दावन चन्द, जय मुकुन्दगोविंद हरि ॥ जय प्रभु आनन्दकन्द, जगवन्दन दुष्टनदलन ॥ जय त्रिभुवन आधार, जय जय जीवन जगतपति ॥ मम उर करहु विहार, कर मुरली शिर मुकुट धर ॥२॥ हे वृन्दावनचन्द, यह वर दीजे दयाकर ॥ श्रीव्रजको आनन्द, नित्य प्रति निरखत रहौं ॥३॥ शीश मुकुट उर माल; सँग राधा बाधा हरण ॥ इहि छबिसौं नँदलाल, वसहु सदा मेरे हिये ॥४॥ श्रीयमुनाके तीर, गाय चरावत सखन सँग ॥ ता छबिसों यदुवीर, वास करहु मेरे हृदय ॥५॥ अहो मदन गोपाल, रासरसिक राधारमण॥ हरहु जगतजंजाल, करहु दया जन जानकर ॥६॥ कर त्रिशूल शशिभाल, शीश गंग मन्मथदहन ॥ गलमें गरल कराल, आठ पहर झलकत रहत ॥७॥ दोहा-स्कन्ध नवममें वंश द्वै, सूर्य सोम विस्तारि ॥ तेरहग्यारहसों भनें, क्रम अध्याय विचारि ॥१॥ तहां प्रथम अध्यायमें वैवस्वतसुत वंश ॥ मध्य भन्यौ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥ योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ॥ ज्ञानं योऽतीतकल्पान्ते लेभे पुरुषसेवया ॥ २ ॥ स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ॥ त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ ३ ॥ तेषां वंशं पृथग् ब्रह्मन् वंशानुचरितानि च ॥ कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥ ये भूता ये भविष्याश्च भवन्त्यद्यतनाश्च ये ॥ तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥ ५ ॥

सुद्युम्नके, स्त्रीत्व जासु विधुवंश॥२॥श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! सब मन्वन्तरोंका वृत्तान्त और मन्वन्तरोंमें अनन्त-वीर्यवान् भगवान् हरिने जो वीर्य प्रकट किया; वह सम्पूर्ण आपके अनुग्रहसे मैंने सुना ॥ १ ॥ हे योगिन् ! अतीतकल्पके अन्तमें द्रविड़ा-धिपति सत्यव्रत नामक राजर्षिने भगवान्की सेवा करके जो ज्ञान प्राप्त किया ॥ २ ॥ और वह वैवस्वतके पुत्र मनु हुए थे इसको भी मैंने सुना और उन वैवस्वत मनुके पुत्र जो इक्ष्वाकु आदि राजा हुए, उनका वृत्तान्त भी आप कह ही चुके हैं ॥ ३ ॥ हे महाभाग ! इन इक्ष्वाकु आदिका पृथक्-पृथक् वंश और वंशोंके चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ; उसे कृपापूर्वक आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! इस वंशमें जो पुरुष हो गये हैं और जो आगे होंगे, जो अब वर्तमान हैं, पुण्यकीर्तिवाले उन सब मनुष्योंका विक्रम आप

यथार्थ मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंकी सभामें राजा परीक्षितने जब इस प्रकारसे पूछा; तब परमधर्मज्ञ-श्रीशुकदेवजी कथाका आरम्भ करने लगे ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! मनुके वंशका वृत्तान्त हम कहते हैं, तुम श्रवण करो परंतु इसका विस्तारसे वृत्तान्त तो हम सहस्रों वर्षतक नहीं कह सकते ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जो परम पुरुष पर अपर भूतोंके आत्मा हैं आगे केवल वही थे; कल्पके अन्तमें उनके अतिरिक्त विश्वमें कुछ और वस्तु नहीं थी ॥ ८ ॥ उन परमपुरुषकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमल उत्पन्न हुआ । हे महाराज ! उस कमलसे चतुर्मुख ब्रह्माजीका जन्म हुआ ॥ ९ ॥ इन ब्रह्माजीके मनसे मरीच जन्मे, उनके पुत्र

सूत उवाच ॥ एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ पृष्टः प्रोवाच भगवान् शुकः परमधर्मवित् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप ॥ न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ७ ॥ परावरेषां भूताना-मात्मा यः पुरुषः परः ॥ स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किंचन ॥ ८ ॥ तस्य नाभेः समभवत् पद्मकोशो हिरण्मयः ॥ तस्मिन् जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥९॥ मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ॥ दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत् सुतः ॥ १० ॥ ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ॥ श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान् ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ॥ नरिष्यन्तं पृषधं च नभगं च कविं विभुः ॥१२॥ अप्रजस्य मनोः पूर्वं वशिष्ठो भगवान्किल ॥ मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥ १३ ॥ तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत ॥ दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥ १४ ॥

कश्यपजी हुए, इन कश्यपजीकी भार्या दक्षकी बेटी अदितिके गर्भमें कश्यपजीसे सूर्यका जन्म हुआ ॥ १० ॥ हे भारत ! इन सूर्यनारा-यणसे संज्ञाके गर्भमें श्राद्धदेव मनु उत्पन्न हुए । इन श्राद्धदेवकी भार्या श्रद्धा हुई कि जिसके गर्भसे इन महात्माके दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ उनके नाम यह हैं, यथा–इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंकी उत्पत्तिके पहले मनुजी निःसन्तान थे, इसलिये महर्षि वशिष्ठजीने उनसे मित्रावरुणका यज्ञ कराया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मनुकी भार्या श्रद्धा उस यज्ञमें केवल दूध ही पीकर नियमसहित होताके निकट गयी और उसने *प्रणाम करके यह प्रार्थना की कि*

आप ऐसा होम करें कि जिससे मेरे कन्या उत्पन्न हो ॥ १४ ॥ श्रद्धाकी प्रार्थनासे "यज्ञ करो" इस प्रकार अध्वर्य्युसे प्रेरित हो होताने हविके ग्रहण हो जाने पर मनमें इस प्रकारका ध्यान और मुखसे "वषट्" शब्द उच्चारण करके मनुभार्याकी प्रार्थना को पूर्ण किया ॥ १५ ॥ हे राजन्! जब होताने इस प्रकारसे आचरण किया तब मनुके इलानाम एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्रकी चाहना होनेके कारण पुत्रीके होनेसे मनुको संतोष नहीं हुआ, इसलिये असंतुष्ट हो वशिष्ठजीसे बोले कि ॥ १६ ॥ हे भगवन्! आप ब्रह्मवादी हैं आप लोगोंका यह विपरीत कर्म कैसे हुआ? हा! कैसा कष्ट है? इस प्रकारसे मंत्रका उलटा होना उचित नहीं है॥१७॥ आप लोग ब्रह्मज्ञ और योगी हैं, तपकी अग्निसे आपके

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत्सुसमाहितः ॥ हविषि व्यचरत् तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥ १५ ॥ होतुस्तद्व्यभिचारेणकन्येलानाम साऽभवत् ॥ तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥ १६ ॥ भगवन् किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ॥ विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद् ब्रह्मविक्रिया ॥१७॥ यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥१८॥ तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः ॥ होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम् ॥ १९ ॥ एतत्संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ॥ तथाऽपि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं स्वतेजसा ॥२०॥ एवं व्यवसितो राजन् भगवान् सुमहायशाः ॥ अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१ ॥ तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥ स एकदा महाराज विचरन् मृगयां वने ॥ वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैन्धवम् ॥ २३ ॥

अनन्त पाप भस्म हो गये हैं, देवता लोगोंमें अनृत (झूठ) के समान आप सब लोगोंमें इस प्रकार संकल्पकी विषमता कैसे हुई? ॥१८॥ हे राजन्! मनुके यह वचन सुनकर महर्षि वशिष्ठजी होताके व्यभिचारको समझ गये और मनुसे बोले कि ॥१९॥ हे वत्स! यद्यपि तुम्हारे होताने अन्य आचरण किया है, तो भी हम तुमको सुन्दर पुत्र ही देंगे॥२०॥ हे राजन्! वशिष्ठजी इस प्रकारसे कह मनुकी कन्या इलाको पुत्र बनानेकी कामनासे भगवान् आदिपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ वशिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और संतुष्ट हो वशिष्ठजीको मनमाना वरदान दिया, उस वरके प्रभावसे मनुकी कन्या इला सुद्युम्ननामक श्रेष्ठ पुत्र हो गयी ॥२२॥ हे महाराज! यह सुद्युम्न

एक दिन, सिंधुदेशके उत्पन्न हुए घोड़ेपर चढ़कर और कुछेक मंत्रियोंको साथ लेकर आखेटके लिये वनमें विचरण करने लगा ॥ २३ ॥ उसके हाथमें रुचिर धनुष और विचित्र बाण था और शरीरमें दृढ़ बख्तर पहने हुए था, इसलिये वह मृगोंके पीछे निर्भय दौड़ता हुआ उत्तर दिशामें पहुँचा ॥ २४ ॥ वहां सुमेरुपर्वतकी तलैटीमें सुकुमार वन है, जहां भगवान् भूतनाथ भूतेश्वर सदा पार्वतीजीके साथ रहकर विहार किया करते हैं, मनुका पुत्र सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ उसी वनमें पहुँचा । उसने वहां पहुँचते ही अपने आपको स्त्री देखा और अपने घोड़ेको घोड़ीरूप पाया ॥ २५ ॥ २६ ॥ और उसके सब सेवक अकस्मात् अपने-अपने पुरुषपनमें विकार हुआ देख परस्पर एक दूसरेको निहारकर विस्मित हुए ॥ २७ ॥ यह सुन राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! यह स्थान ऐसे गुणवाला कैसे हुआ ? और किस पुरुषने

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ॥ दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २४ ॥ स कुमारो वनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह ॥ यत्रास्ते भगवान् रुद्रो रममाणः सहोमया ॥२५॥ तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ॥ अपश्यत् स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६ ॥ तथा तदनुगाःसर्व आत्मलिङ्गविपर्ययम् ॥ दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन् वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ कथमेवं गुणो देशः केन वा भगवन्कृतः ॥ प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥२८॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ॥ दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥२९॥ तान् विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ॥ भर्तुरङ्कात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥३०॥ ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः ॥ निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥

इस स्थानको ऐसा कर दिया ? इस बातको सुनकर हमको बड़ा कौतूहल हुआ है, आप कृपा करके इस प्रश्नकी व्याख्या कीजिये ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे नृपश्रेष्ठ ! एक समय श्रेष्ठ बुद्धिवाले ऋषि लोग भगवान् गिरीश (महादेव) जीके दर्शन करनेकी वासनासे सब दिशाओंका अन्धकार दूर करते और प्रकाशको रहित करते अर्थात् केवल अपना प्रभाव प्रकाशित करते हुए वनमें गये थे ॥ २९ ॥ उस समय भगवती अम्बिकादेवी विवसना अर्थात् वस्त्ररहित थीं, इसलिये मुनि लोगोंको देखकर अत्यन्त लज्जित हुई और उन्होंने घबड़ाकर पतिकी गोदीसे उतर झटपट कटिवसन पहन लिये ॥ ३० ॥ हरगौरीका विहार देखकर उन सब

ऋषिगणोंका मन भी स्त्री प्रसंगसे कलुषित हुआ और वे उसी समय वहांसे लौटकर नरनारायणके आश्रमको चले गये ॥३१॥ इसके पीछे भगवान् भूतनाथ अपनी प्राणप्यारीका प्रिय कार्य करनेको समझाते-बुझाते हुए बोले कि आजसे जो कोई इस स्थानमें आयेगा, वह उसी समय स्त्री हो जायगा। * हे राजन्! तबसे सब पुरुषोंने इस वनको छोड़ दिया, कोई उस दिशाको भी तो नहीं जाता था ॥ ३२ ॥ राजकुमार सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ इस वनमें प्रवेश करनेके पीछे वन-वनमें भ्रमण करने लगे ॥ ३३ ॥ सखी सहेली नारियोंके

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ॥ स्थानं यः प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥ तत ऊर्ध्वं वनं तद्वै पुरुषा वर्जयन्ति हि ॥ सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥ ३३ ॥ अथ तामाश्रमाभ्याशे चरन्तीं प्रमदोत्तमाम् ॥ स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान्बुधः ॥३४॥ साऽपि तं चमके सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥३५॥ एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ॥ सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम॥३६॥ स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ॥ सुद्युम्नस्याशयन्पुंस्त्वमुपधावत शंकरम् ॥ ३७ ॥

साथ उस सुद्युम्नको अपने आश्रमके समीप भ्रमण करता हुआ भगवान् बुधजीने देखा ॥ ३४ ॥ देखते ही बुधके मनमें कामदेवका सञ्चार हुआ और वह सुद्युम्न, जो कि मनोहर स्त्रीके रूपमें थे, चन्द्रमाके पुत्र बुधको देख उनको पति बनानेकी अभिलाषाकी ॥ ३५ ॥ इसलिये बुधने उसका पाणिग्रहण किया और उसके गर्भसे बुधके पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ हे राजन्! ऐसा सुना गया

* शंका—महादेवजी तो बड़े शीलवान और दयानिधान थे, फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा कि हमारे स्थानके सामने जो कोई पुरुषमात्र आयेगा वह उसी समय स्त्री हो जायेगा। चौरासी लाख योनिमें किसी योनिका पुरुष क्यों न हो और तीन लोकमें जो चराचर प्राणी हैं वे सब अपने-अपने कामकी सिद्धिके लिये शिवके समीप कैलाशको जाते हैं और वे लोग स्त्री नहीं होते, क्या कारण है?

उत्तर—जब शिवजी शाप दे चुके तो पीछे अपने मनमें विचारा कि अब क्या उपाय करना चाहिये? तब उसी दिनसे कैलाश के चारों ओर अपने गण बैठा दिये; अतः जो कोई प्राणी कैलाशको जाता है तो शिवगण एक कोश आगे उसको रोक लेते हैं और शिवजीसे पूछते हैं कि, हे महाराज! अमुक पुरुष आपके दर्शनके लिये आया है तब महादेव आज्ञा देते हैं कि आने दो, तब उस मनुष्यको दूतगण कैलाशकी सीमाके अन्दर ले जाते हैं, इसलिये वे लोग स्त्री नहीं होते। कोसभरपर खड़ा होनेका कारण यही है कि जिस सीमाके भीतर आनेमें स्त्री होते हैं उस सीमासे दूर वह एक कोशपर खड़ा करते हैं।

है कि मनुके पुत्र सुद्युम्नने इस प्रकार स्त्रीपनको प्राप्त हो अपने कुलाचार्य महर्षि वसिष्ठजीका स्मरण किया ॥ ३७ ॥ स्मरण करते ही महर्षि वसिष्ठजी उनके समीप आये और उनकी यह दशा देख दयासिन्धु दयाके मारे अति दुःखित हुए और फिर उनको पुरुष करनेकी इच्छासे श्रीमहादेवजीके निकट जाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! वसिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् उनके प्रिय कार्यको और अपने वचनको सत्य करनेके लिये यह बोले कि तुम्हारे गोत्रमें उत्पन्न हुआ सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री रहेगा। इस व्यवस्थासे यह सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे कुलाचार्य वसिष्ठजीकी कृपासे यद्यपि सुद्युम्न पुरुषत्व

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ॥ स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते ॥ ३८ ॥ मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ॥ इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९ ॥ आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ॥ पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन्स्म तं प्रजाः ॥ ४० ॥ तस्योत्कलो गयो राजन्विमलश्च सुतास्त्रयः ॥ दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ४१ ॥ ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ॥ पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इलोपाख्याने सुद्युम्नस्य स्त्रीपुंस्त्वयोः प्राप्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पाकर व्यवस्थापूर्वक पृथ्वीका पालन करता था परन्तु महीनेके महीने स्त्री हो जानेसे छिपकर सभामें नहीं आता था। इसलिये प्रजा उससे असंतुष्ट थी ॥ ४० ॥ इस राजा सुद्युम्नके तीन पुत्र थे-उत्कल, गय और विमल। ये तीनों धर्मपरायण थे और दक्षिण देशका राज्य करते थे ॥ ४१ ॥ प्रतिष्ठानपुरीका (जो अब प्रयागमें गंगाजीके पास झूंसी नामसे प्रसिद्ध है) पति सुद्युम्न प्राप्त हुई वृद्धावस्थाको देख अपने पुत्र पुरूरवाके हाथमें राज्यका भार सौंप वनको चला गया ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा–मनु द्वै सुत वैराग्यसे, रहे असुत वन जाय । करुषादिक पँचसुतनकी, कथा द्वितिय अध्याय ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे नृपोत्तम ! जब सुद्युम्नकी इस प्रकारसे अव्यवस्था हुई तब वैवस्वत मनुने पुत्रकी कामना करके शतवर्षतक यमुनामें तप किया था ॥१॥ इसके पीछे सन्तानके अर्थ भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया, उस यज्ञके करनेसे उन्होंने अपने योग्य दश पुत्र पाये । इन दश पुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे बड़े थे ॥ २ ॥ हे राजन् ! मनुके पृषध्र नामक जो पुत्र हुआ था, उसको मनुजीने गोपालक बताया, इस लिये वह पुत्र वीरासन व्रत धारण करके रात्रिके समय सावधान होकर गायोंकी रक्षा करता था ॥ ३ ॥ एक दिन रात्रिके समय जल वर्ष रहा था कि उसी समय एक व्याघ्र आकर गोठमें घुस गया । उसके घुसते ही गोठमें जितनी गायें सो रही थीं सब डकराकर इधर-उधर दौड़ने लगीं ॥ ४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ॥ पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥१॥ ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ॥ इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्रान् लेभे स्वसदृशान् दश॥२॥ पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ॥ पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥३॥ एकदा प्राविशद् गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ॥ शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥ एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ॥ तस्यास्तत्क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह॥५॥खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ॥ अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ॥६॥ व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः ॥ निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन्॥७॥ मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ॥ अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८ ॥

गोठमें घुसा हुआ व्याघ्र अतिशय बलवान् था, वह एक गायको जब पकड़कर भागने लगा तब वह गाय अति आर्त होकर पुकारी, उस गायका डकराना सुनकर पृषध्र उस शार्दूलके पीछे दौड़ा ॥ ५ ॥ एक तो रात ऐसी अँधियारी थी कि अपना देह भी नहीं दिखायी देता था, दूसरे घनघोर घटासे और भी अन्धकार हो रहा था, कि जिससे कुछ नहीं दिखायी देता था, इसलिये पृषध्रने खड्ग ग्रहण करके समीप व्याघ्र समझ अज्ञानतासे एक गायका शिर काट डाला ॥६॥ उस खड्गके चलानेसे व्याघ्रका भी कान कट गया, वह अत्यन्त भीत हो मार्गमें रुधिर गिराता हुआ भाग गया ॥ ७ ॥ पृषध्रने मनमें समझाकी व्याघ्र मर गया परंतु जब प्रभात हुआ तो देखा कि कपिला मारी गयी, तब

बहुत ही दुःखित हुआ ॥८॥ हे राजन् ! यद्यपि राजकुमार पृषध्रने यह अपराध अनजानमें किया था, तो भी कुलपुरोहितने गायके शोकसे व्याकुल हो उसको यह शाप दिया कि,रे पापिष्ठ ! तू क्षत्रियोंका बंधु भी नहीं हो सकेगा,बरन् इसी जन्ममें शूद्र होगा * ॥९॥ जब इस प्रकारसे आचार्यने शाप दिया, तब पृषध्रने हाथ जोड़कर उसको अंगीकार किया, फिर ब्रह्मचर्य धारणकर मुनियोंके प्यारे व्रतको ग्रहण किया ॥१०॥

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः ॥ नक्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भविताऽमुना ॥९॥ एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृताञ्जलिः ॥ अधारयद् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥१०॥ वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले ॥ एकान्तित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥११॥ विमुक्तसङ्गः शान्तात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः ॥ १२ ॥ आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः ॥ विचचार महीमेतां जडान्धबधिराकृतिः ॥ १३ ॥

इसके पीछे सर्वात्मा निर्मल परमपुरुष भगवान् वासुदेवमें भक्ति करके एकान्तताको प्राप्त हो सर्व प्राणियोंका सुहृद् और सबको समान अर्थात् बराबर देखनेवाला हुआ । उसने संग छोड़ दिया, उसकी आत्मा शान्त हो गई, इंद्रियां उसके वशमें हो गयीं । संग्रहको त्याग अपने आपसे जो कुछ मिल जाता था, उसीसे अपनी जीविका करता था ॥११॥१२॥ और परमात्मामें आत्माको लगाकर ज्ञानसे तृप्त हो

---

* शंका—गौका वध करनेवाला राजा पृषध्र जो था, उसको वशिष्ठजीने यह शाप दिया, कि गायका मारनेवाला तू इस दुष्ट कर्मके करनेसे शूद्र योनिको प्राप्त होगा। यही शाप उसको क्यों दिया, क्योंकि गायका वध करके शूद्र नहीं किन्तु चाण्डाल होना चाहिये ।

उत्तर—सत्युगमें त्रिदण्डी नाम मुनि किसी समय बाज पक्षीका रूप धरकर संसारमें भ्रमण करता था, एक दिन अपनी इच्छासे यमपुरीका कौतुक देखनेके लिये गये । यमपुरी मुनिका चरित्र जानकर कौतूहल करनेके लिये गौका रूप धरकर पक्षीरूप जो मुनि थे, उनको अपने शृंगोंसे मारनेके लिये दौड़ी तब मुनिने शाप दिया कि बारह वर्ष तू गाय रूप रहेगी, इसलिये वह यमपुरीकी स्त्री गौ बनकर अयोध्याके राजाकी गायमें रहा करती थी। उसी गोरूप स्त्रीको पृषध्रने दैवयोगसे मार डाला, तब मुनिका शाप छूटकर पृषध्रकी मोक्ष होनेके लिये आशीर्वाद देकर अपने पतिके पास गयी । वसिष्ठजीने ध्यान करके सब चरित्र जान लिया और दो काम विचारकर गायोंका माहात्म्य बढ़ानेके लिये, कि आगे कोई ऐसा काम न करे और पृषध्रका मोक्ष होनेके लिये शाप दिया कि जा तू शूद्र हो जा । यदि कोई पूछे कि शूद्र होने का शाप क्यों दिया गया ? तो शूद्र होनेका कारण यह है कि शूद्र अभिमान रहित होते हैं और श्रीगंगाजीका भाई भी शूद्र है, क्योंकि यह सबको विदित है कि भगवान्‌के चरणसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं और गंगाजी भी भगवान्‌के चरणोंसे निकली हैं, इसलिये दो गुण करके शूद्रको मुक्ति शीघ्र होती है, इसीलिये वशिष्ठजीने पृषध्रको शूद्र होनेको कहा था ।

जड़,अंधे,अथवा बहरेके समान पृथ्वीपर घूमने लगा ॥१३॥ हे राजन्! इस प्रकार आचार-व्यवहार युक्त हो पृषध्रने वनमें प्रवेश करके अपने शरीरको भस्म कर दिया और परब्रह्मके पदको प्राप्त हुआ ॥१४॥ हे महाराज! मनुका छोटा पुत्र कवि विषय का लालच छोड़ बन्धु-बांधवों सहित राज्यको छोड़नेके पीछे परमपुरुषको हृदयमें धारण करके किशोर अवस्थाके समयमें ही वनको चला गया। इसलिये उसका भी वंश आगेको न चला ॥ १५ ॥ परन्तु मनुके करूष नामक जो पुत्र था, उससे कारूष नामसे विख्यात क्षत्रिय जातिकी उत्पत्ति हुई; वह जाति ब्रह्मनिष्ठ धर्मरक्षक और उत्तर मार्गके देशकी राजा हुई ॥१६॥ इस प्रकार धृष्ट नामक मनुके पुत्र से धाष्टर्च्य नामसे प्रसिद्ध क्षत्रियोंकी जाति

एवं वृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् ॥ तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥ १४ ॥ कविः कनीयान् विषयेषु निस्स्पृहो विसृज्य राज्यं सह बन्धुभिर्वनम् ॥ निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥ १५ ॥ करूषान्मानवादासन् कारूषाः क्षत्रजातयः ॥ उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्यां धर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥ धृष्टाद् धाष्टर्यम-भूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गंत क्षितौ ॥ नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७ ॥ वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवतिपिता ॥ कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८ ॥ चित्रसेनो नरिष्यन्ताद् दक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः ॥ १९ ॥ वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात् तस्य सत्यश्रवा अभूत् ॥ उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥ २० ॥

उत्पन्न हुई वह इस पृथ्वीमंडलपर ब्राह्मणपनको प्राप्त हुई है। हे राजन्! नृगनामक मनुका जो पुत्र था, उसका पुत्र सुमति, उसका पुत्र भूति-ज्योति और उसका संतान वसु हुआ ॥१७॥ वसुका पुत्र प्रतीक उसका पुत्र ओघवान् हुआ, उस ओघवान्के औघवान नामक एक पुत्र और औघवती नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई। उस औघवती कन्याके साथ राजा सुदर्शनने विवाह किया ॥१८॥ हे राजन्! नरिष्यन्त नामक जो मनुका पुत्र था उसका पुत्र चित्रसेन, उस चित्रसेनका पुत्र ऋक्ष, उसका पुत्र मीढ्वान् और मीढ्वान्से कूर्च उत्पन्न हुआ, उस कूर्चसे इन्द्रसेन नामकपुत्र उत्पन्न हुआ ॥१९॥ इन्द्रसेनका पुत्र वीतिहोत्र और वीतिहोत्रसे सत्यश्रवाने जन्म ग्रहण किया। इस सत्यश्रवाका पुत्र उरुश्रवा

और उरुश्रवासे देवदत्तकी उत्पत्ति हुई ॥२०॥ देवदत्तके पुत्र अग्निवेश्य हुए। यह स्वयं भगवान् अग्निस्वरूपसे उत्पन्न हुए थे यह अग्निवेश्य ही कानीन और जातूकर्ण नामसे विख्यात महान् ऋषि हुए थे और उनसे ही अग्निवेश्यायन नामक प्रसिद्ध ब्रह्मकुलकी उत्पत्ति हुई है॥२१॥हे नृप! नरिष्यंतके वंशका वर्णन हो गया। अब दिष्टवंशका वर्णन करता हूँ। उसे आप मन लगाकर एकाग्रचित हो सुनिये ॥२२॥ दिष्टका पुत्र नाभाग, पीछे जिस नाभागकी कथा कहेंगे वह यह नाभाग नहीं है, यह अन्य जो कर्मद्वारा वैश्यपनको प्राप्त हुआ था; इसका पुत्र भलन्दन और भलन्दनसे वत्सप्रीतिकी उत्पत्ति हुई ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिका पुत्र प्रांशु, उसका पुत्र प्रमति, प्रमतिका पुत्र खनित्र और उससे चाक्षुषने जन्म

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत् सुतः ॥ कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥ २१ ॥ ततो
ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ॥ नरिष्यन्तान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥ २२ ॥ नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः
कर्मणा वैश्यतां गतः ॥ भलन्दनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ॥२३॥ वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः ॥
खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥२४॥ विविंशतिसुतो रम्भः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ॥ करन्धमो महाराज
तस्यासीदात्मजो नृपः ॥ २५ ॥ तस्याविक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ संवर्त्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्य-
ङ्गिरस्सुतः ॥ २६ ॥ मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कश्चन ॥ सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किंचिच्चास्य शोभनम्
॥ २७ ॥ अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥ २८ ॥

ग्रहण किया, चाक्षुषका पुत्र विविंशति ॥ २४ ॥ उसका पुत्र रम्भ, रम्भका पुत्र खनिनेत्र, जो कि परमधार्मिक हुआ, इस खनिनेत्रके पुत्र करन्धम राजा हुआ ॥ २५ ॥ करन्धमके पुत्र अविक्षित, अविक्षितके मरुत जो कि चकवर्ती हुए, जिसने अंगिराके पुत्र महायोगी संवर्त्तने यज्ञ कराया था ॥२६॥ इस मरुतके यज्ञके समान किसीका यज्ञ प्रसिद्ध नहीं है। उनके यज्ञके मध्य सब पात्र सुवर्णके बने हुए शोभायमान थे ॥२७॥ जिसके यज्ञमें सोमपान करके सुरेन्द्र (बहुत) प्रसन्न हुए, अनेक प्रकारकी दक्षिणा पाकर ब्राह्मणोंको अत्यन्त हर्ष हुआ था। इस यज्ञमें मरुद्गण परोसने वाले और विश्वदेवगण सभासद् हुए थे ॥ २८ ॥

इन मरुतके पुत्र दम, उनके पुत्र राजवर्द्धन, उनके सुत सुधृति, सुधृतिका पुत्र नर ॥२९॥ उनका पुत्र केवल, उससे धुन्धमान हुए। धुन्धमान के पुत्र वेगवान, उनके पुत्र बुध, उनके पुत्र तृणविन्दु राजा हुए ॥ ३० ॥ यह राजा अति उत्तमोत्तम गुणविभूषित था। श्रेष्ठ अप्सरा अलम्बुषा देवी उनके गुणोंपर मोहित हो उसके संग हुई, इस अलम्बुषा अप्सराके तृणविन्दुसे कई एक पुत्र और इलविला नाम एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३१ ॥ हे राजन्! योगीश्वर विश्रवाजी ऋषिने अपने पितासे परम विद्याको प्राप्त होकर इस इलविलाके गर्भमें कुबेरको उत्पन्न किया ॥३२॥ अब तृणविन्दुके पुत्रोंका वृतान्त सुनो। विशाल, शून्यबन्धु और धूमकेतु ये तीन तृणविन्दुके पुत्र हुए, उनमें विशाल ही वंशकारी राजा हुआ

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्धनः ॥ सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥ २९ ॥ तत्सुतः केवलस्तस्माद् बन्धुमान्वेगवांस्ततः॥ बन्धुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ॥३०॥ तं भेजेऽलम्बुषा देवी भजनीय गुणालयम् ॥ वराऽप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाऽभवत् ॥३१॥ तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ॥ प्रादाय विद्यांपरमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥ ३२ ॥ विशालः शून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ॥ विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम्॥३३॥हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ॥ तत्पुत्रात् संयमादासीत् कृशाश्वः सहदेवजः ॥३४॥ कृशाश्वात सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ॥ इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥ ३५ ॥ सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ॥ एते वैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः ॥३६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे कारूषकादिवंशानुकीर्तनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

और उसने वैशाली नामक एक पुरी भी बनायी ॥३३॥ इस विशालका पुत्र हेमचन्द्र, हेमचन्द्रका पुत्र धूम्राक्ष और धूम्राक्षका पुत्र संयम हुआ, संयमके देवल और कृशाश्व ये दो पुत्र उत्पन्न हुए॥३४॥उनमें कृशाश्वका पुत्र सोमदत्त हुआ, कि जिसने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपति परमपुरुषकी पूजाकर योगेश्वर लोगोंके समान उत्तम गति प्राप्त की ॥३५॥ सोमदत्तका पुत्र सुमति, सुमतिका पुत्र जन्मेजय हुआ। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित्! विशालवंशमें यह राजा गण उत्पन्न हुए। ये सब राजा तृणबिन्दुका यश धारण करनेवाले थे ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

भा० न०
॥ ६ ॥

दोहा–मनुसुत नृप शर्यातिके, भई सुकन्या एक। तिसरेमें रेखन कथा, वरणौं सहित विवेक ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित! मनुका पुत्र शर्य्याति अति ब्रह्मनिष्ठ राजा हुआ। उसने अंगिरागणोंके यज्ञमें दूसरे दिवसका कर्तव्य कर्म उपदेश किया ॥ १ ॥ इस राजाके कमलके समान नेत्रवाली सुकन्या नाम एक कन्या हुई। एक समय राजा उसको साथ ले वनमें गया, जहां कि च्यवन मुनिका आश्रम था ॥२॥ उस वनमें यह राजकुमारी अपनी सुकुमारी सखियोंके साथ फूलपत्तोंको एकत्र करते-करते एक स्थानमें गयी और उसने उसी वनके मध्य बँबईकी मट्टीके छेदमें पटबीजनेके समान दो प्रकाशवान् वस्तु देखीं ॥३॥ यह देखकर राजकुमारी सुकन्याको अति कौतूहल उत्पन्न हुआ, उसने भाग्यप्रेरितके समान हो उसी समय एक कांटा ग्रहणकर मोहसे उन प्रकाशित छिद्रोंको फोड़ दिया। हे राजन्! बिद्ध

श्रीशुक उवाच ॥ शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ॥ यो वा अंगिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥ १ ॥ सुकन्या नाम तस्यासीत् कन्या कमललोचना ॥ तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥२॥ सा सखीभिः परिवृता विचिन्वत्यङ्घ्रिपान्वने ॥ वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥ ३ ॥ सा दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै ॥ अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु ॥ ४ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत् सैनिकानां च तत्क्षणात् ॥ राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ॥ व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६ ॥ सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित् कृतं मया ॥ द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ॥७॥ दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ॥ मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्गतं शनैः ॥ ८ ॥

भा० टी०
अ० ३

होते ही उस बम्बईके छिद्रोंमेंसे बराबर रुधिरकी धार निकलने लगी ॥४॥ अतएव राजा शर्य्यातिके साथ जो सेना थी, उन सब वीरोंका मल मूत्र रुक गया। यह देखकर राजा शर्याति विस्मित हुआ और अपने साथी पुरुषोंसे पूछने लगा ॥ ५ ॥ क्या तुममेंसे किसीने महर्षि च्यवन ऋषिका कुछ अपराध किया है? हमको भलीभांति जान पड़ता है कि हम लोगोंमेंसे किसीने महर्षिके आश्रमको दूषित किया होगा ॥ ६ ॥ यह सुनकर सुकन्याने भीत हो अपने पितासे निवेदन किया कि हे पितः! मुझसे कुछ अपराध हुआ है। मैंने न जानकर एक कांटेसे दो प्रकाशित पदार्थोंको बेध डाला है ॥ ७ ॥ बेटीके यह वचन सुनकर राजा शर्य्यातिको बड़ा भय हुआ। बँबईमें मुनि अंतर्हित हुए हैं उनके

निकट जा विविध भांतिकी स्तुतिसे प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त महर्षिका अभिप्राय जान राजाने अपनी कन्या उनको दे दी। हे राजन्! इस प्रकार राजा शर्याति विपत्तिसे छूटकर मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीसे सम्भाषण करनेके पीछे सावधान चित्तसे अपने स्थानको लौट गया ॥ ९ ॥ इस ओर अपने पति परमक्रोधी च्यवन ऋषिके योग्य चित्तकी जाननेवाली सुकन्या सावधान होकर सदा चित्तको देकर उनकी सेवा करती थी ॥ १० ॥ कुछ कालके बीतनेपर एक दिन दोनों अश्विनीकुमार उनके आश्रममें आये। मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीने भली-भांति उनकी पूजा करके कहा कि आप दोनों बड़े वैद्य हैं, कृपा करके हमको आप युवा कर दीजिये ॥ ११ ॥ स्त्रियाँ जिस रूप और जिस वयसको चाहती हैं वही तुम हमको दे दो। तुम सोमपानरहित हो कभी सोमपान नहीं किया है अतः हम सोमयज्ञ करके तुमको सोमपूर्ण

तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद् दुहितरं मुनेः॥कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥९॥ सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ॥ प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्ताऽनुवृत्तिभिः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ॥ तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ११ ॥ ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ॥ क्रियतां मे वयोरूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥ १२ ॥ बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ ॥ निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसंततः ॥ ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविग्रहः ॥१४॥ पुरुषास्त्रय उत्तस्थु-रपीच्या वनिताप्रियाः ॥ पद्मस्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥ १५ ॥

पात्र देंगे ॥१२॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ च्यवनजीके यह वचन सुनकर दोनों अश्विनीकुमारोंने कहा कि "यही करते हैं" यह कह फिर आनन्द प्रकाश कर बोले कि अच्छा तो पहले सिद्धोंके बनाये इस सरोवरमें स्नान करनेको चलिये ॥ १३ ॥ हे राजन्! इस प्रकार कहनेसे जरासे ग्रस्त है देह जिनका, नसें दिखायी देती हैं, कुप्यारे पके हुए केशवाले महर्षि च्यवनजी इन दोनों देववैद्योंके साथ सरोवरमें घुसे अर्थात् दोनों अश्वि-नीकुमार इनको लेकर सरोवरमें घुसे ॥ १४ ॥ कुछ देर पीछे उस सरोवरसे सुडौल शरीरवाले रमणीप्रिय तीन पुरुष निकले। तीनों जनोंके गलोंमें कमलकी मालायें पड़ी हुई थीं, कानोंमें कनक (सुवर्ण) कुण्डल विराजमान थे, तीनोंका स्वरूप अनुपम था और वस्त्रोंकी शोभा

एक अपूर्व ही भावको धारण किये हुई थी ॥१५॥ तीनों सूर्यके समान तेजस्वी, समान रूप और समान अवस्थावाले देख पतिव्रता सुकन्याको अति विस्मय प्राप्त हुआ और वह नहीं पहचान सकी कि हमारे पति कौनसे हैं ? इसलिये दोनों अश्विनीकुमारोंकी शरण गयी अर्थात् उसने यह प्रार्थना की कि आपलोग पृथक् होकर हमारे पतिको हमें दिखादें * ॥ १६ ॥ सुकन्याका पतिव्रत देखकर अश्विनीकुमारोंको सन्तोष हुआ और अपने आप अलग हो उसे उसके पति च्यवनऋषिको दे दिया । इसके पीछे महर्षि च्यवनजीसे संभाषण कर वह दोनों

तान् निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान् सूर्यवर्चसः ॥ अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥ १६ ॥ दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ॥ ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः ॥ ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम् ॥ आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव ॥ १९ ॥

अश्विनीकुमार विमानपर बैठ कर स्वर्गको चले गये ॥१७॥ हे राजन् ! कुछेक कालके पीछे शर्याति राजाने यज्ञ करनेके लिये च्यवन ऋषिके आश्रममें जाकर देखा कि कन्याके निकट सूर्यके समान एक तेजस्वी पुरुष बैठा हुआ है ॥ १८ ॥ सुकन्या पिताको देखकर शीघ्रतासे उठी और उनके चरण छुए । राजा शर्यातिने आशीर्वाद दिया, परन्तु यह विचार वे प्रसन्न न हुए कि हम जराजीर्णच्यवन ऋषिको अपनी कन्या दे गये थे, वे आश्रममें नहीं हैं बरन् उनके बदलेमें स्वरूपवान् एक और युवा पुरुष बैठा हुआ है, यह सोचकर उनको बड़ी शंका हुई । तब वह

* शंका—सुकन्या अपने सम्मुख एक सरीखे तीन पुरुष देखकर अश्विनीकुमारकी शरणमें कैसे गयी ? क्योंकि वे तो तीनों एक ठौर रहे थे, दीपक दीपकसे जलावे तो यह कैसे जान पड़ेगा कि यह तिलके तेलका है, यह अलसीके तेलका है, यह घीका दीपक है, ऐसे ही वे तीनों एक रूप थे फिर उसने अश्विनीकुमारको कैसे पहिचाना ?

उत्तर—सुकन्याने अपने मनमें अश्विनीकुमारका ध्यान किया था और उन दोनों देवताओंके सम्मुख वह नहीं गयी थी, उसने अश्विनीकुमारका ध्यान करके बारंबार उनकी ही प्रार्थना की कि, हे महाराज ! हे दीनवत्सल ! ! हे कृपासिन्धो ! ! ! आप दोनों मेरे पिताके समान हो किसी प्रकार कृपा करके मेरे पतिको मुझे दिखा दो । जब अश्विनीकुमारकी इस प्रकार विनयकी तो उसका पति उसको मिल गया ।

अप्रसन्न होकर अपनी बेटीसे बोले ॥१९॥ कि यह क्या करनेकी वासना की है ? अरी असत्यन ! तेरे पति लोगोंके नमस्कार करने योग्य हैं, उनको तूने क्यों ठगा ? जराग्रस्त होनेके कारण तू उनसे प्रसन्न नहीं हुई, इससे ही इस पथिकको उपपति बनाकर तू भजती है ॥ २० ॥ अरे कुलकलंकिनी ! तू अति उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है, ऐसी बुद्धि करनेका किस प्रकारसे साहस किया । हा ! हमारे कुलको दूषित किया । निर्लज्ज होकर उपपतिकी पूजा करती है । पिता और पतिके कुलको तूने एकबार ही डुबो दिया ॥ २१ ॥ पिताजीके यह वचन सुन मन्द मुसकानवाली सुकन्या विस्मित हो कहने लगी-हे पिताजी ! यही आपके जमाई हैं,यही भृगुनंदन च्यवनजी हैं ॥ २२ ॥ फिर जिस प्रकारसे

चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ॥ त्वं यज्जराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २० ॥ कथं मतिस्तेऽवगताऽन्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ॥ बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥ २१ ॥ एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ॥ उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः ॥ २२ ॥ शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् ॥ विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥ २३ ॥ सोमेन याजयन् वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ॥ असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥ हन्तुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः ॥ सवज्रं स्तम्भयामास भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ॥ २५ ॥ अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ॥ भिषजाविति यत् पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६ ॥

इनको रूपयौवनकी प्राप्ति हुई थी, वह भी सब वृत्तान्त पिताजीको कह सुनाया । यह सुन राजा शर्याति विस्मित और प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी सुकन्याको हृदयसे लगाया ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे महर्षि च्यवनजीने शर्याति राजासे सोमयज्ञ कराकर सोम पीनेके योग्य न होनेपर भी अश्विनीकुमारोंको सोम पीनेको दिया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इन्द्रको तत्काल ही बोध हो जाता है, अतः उसने यह देख च्यवन ऋषिका विनाश करनेके लिये वज्र हाथमें लिया था, परंतु भृगुनंदनने अपने ब्रह्मतेजसे वज्रसहित इन्द्रका हाथ स्तंभित कर दिया ॥ २५ ॥ यद्यपि पहले चिकित्सक होनेके कारण अश्विनीकुमार सोमयज्ञसे बाहर थे तथापि तबसे सब देवताओंने उनको

यज्ञसोम देनेके लिये अंगीकार किया ॥ २६ ॥ इन शर्यातिके तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उत्तानबर्हि, आनर्त और भूमिसेन । इन तीनोंमें आनर्तके रेवत नाम एक पुत्र हुआ ॥ २७ ॥ हे अरिन्दम ! यह रेवत सागरके बीचमें कुशस्थली नामक एक नगरी बसाकर उसमें विराजमान हो आनर्तादि देशोंका पालन करता था ॥ २८ ॥ उसके शत पुत्र जन्मे थे, उनमें ककुद्मी बड़ा और गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था यह ककुद्मी रेवती नामक अपनी कन्याको साथ ले उसके लिये वर ढूँढ़नेको ब्रह्माजीके पास गया ॥ २९ ॥ उस समय ब्रह्माजीकी सभामें गन्धर्वोंका गाना हो रहा था, इसलिये अवसर न पाकर ककुद्मी वहां क्षण कालतक ठहरा और फिर अवकाश पाकर प्रणाम

उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ॥ शर्यातेरभवन् पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत ॥ २७ ॥ सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दम ॥२८॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९ ॥ कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ॥ आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥३०॥ तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥३१॥ अहो राजन् निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२ ॥ कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ॥ तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥३३॥ कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भो ॥ भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः ॥३४॥ अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ इत्यादिष्टोऽभिवन्द्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥

करके अपना सब अभिप्राय निवेदन किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यह सुन ब्रह्माजी हँसकर बोले कि हे राजन् ! तुमने जिन पुरुषोंको विचारा है, उन सबको कालने संहार कर डाला, इस समय उनके बेटे, पोते और नातियोंका गोत्र व नाममात्र भी नहीं सुना जाता ॥ ३२ ॥ मूल बात यह है कि तुमको यहां सत्ताईस चौकड़ी युग बीत गये इसलिये जाओ देवदेवके अंशसे जो महाबलवान् बलदेव हैं, उन नररत्नको तुम यह अपनी कन्यारत्न समर्पण करो ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! जिनके कहने-सुननेसे पुण्य होता है वह भूतभावन भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे अवतार ले चुके हैं इस प्रकारसे आज्ञा पाकर ककुद्मी ब्रह्माजीको प्रणाम करके अपने पुरमें आया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

भ्राता लोग यक्षोंके भयसे इस पुरीको छोड़कर सब दिशामें भाग गये थे इसके पीछे दूषणरहित अंगवाली अपनी बेटीको बलवानोंमें श्रेष्ठ बलदेवको इस राजाने दे दिया और आप तप करनेके लिये नारायणके स्थान बदरिकाश्रमको चला गया ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीकायां नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ दोहा–चौथे मनुसुत नभगको,कहौं सहित विस्तार । अम्बरीष ताके तनय, भये भक्त-आधार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि नभगका पुत्र नाभाग हुआ । इस नाभागने जब बहुत कालतक गुरुकुलमें वास किया तब उसको नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भ्रातालोगोंने बांट करनेके समय इसके लिये पिताके धनका अंश नहीं रखा ॥ १ ॥ जब नाभाग ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके गुरुकुलसे अपने घरपर आया, तब उसके भाइयोंने पिताको ही उसके भागमें रखा, अर्थात् जब नाभागने आकर भाइयोंसे

त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥ सुतां दत्त्वाऽनवद्यांगीं बलाय बलशालिने ॥ बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥ इति श्री भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे शर्यात्यन्वयनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ श्रीशुक उवाच ॥ नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम् ॥ यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥ भ्रातरोऽभक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ॥ त्वां म आर्यास्तताऽभाङ्क्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २ ॥ इमे अंगिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ॥ षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यन्ति कर्मणि ॥ ३ ॥ तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ॥ ते स्वर्यन्तो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥ ४ ॥

पूछा कि तुमने हमारे लिये क्या रखा है ? तब भाइयोंने कहा कि हमने तुम्हारे अर्थ पिताको ही अंशस्वरूप कर रखा है इसलिये तुम पिताको ग्रहण करो । यह सुन नाभागने पिताजीके निकट जाकर कहा कि हे पितः ! हमारे बड़े भाइयोंने आपको किसलिये हमारा भाग बनाया है ? तब पिताजी बोले कि हे वत्स ! तुम उनकी बातका विश्वास मत करो; क्योंकि हम भागके समान भोगने योग्य वस्तु नहीं हैं ॥२॥ परन्तु तुम्हारे भ्राताओंने जो हमको तुम्हारा भाग बताया है इसलिये हम तुम्हारी जीविकाका उपाय बतलाये देते हैं । हे विद्वन् ! अंगिरागोत्री मुनिलोग यज्ञ कर रहे हैं, वे लोग यद्यपि सुबुद्धिमान हैं,तो भी वे विहित षड्यज्ञ उपस्थित होनेपर प्रत्येक षष्ठ दिवसमें कर्मको प्राप्त होकर ज्ञानके अभावसे अनुष्ठान करनेमें मोहित होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ जाकर उन महात्माओंको विश्वेदेव सम्बन्धी दो सूक्त पढ़ाओ।

कर्मके समाप्त होनेपर जब वे स्वर्गमें गमन करेंगे, तब यज्ञका बचा हुआ धन अवश्य तुमको दे देंगे, जाओ विलम्ब न करो, इसी समय उनके निकट चले जाओ। हे राजन्! जब इस प्रकार नाभागने अपने पितासे सुना तो उन्होंने ऐसा ही किया और वह सब अंगिरा भी अपने यज्ञका बचा हुआ धन इस नाभागको देकर स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ५ ॥ जब नाभाग वह धन अंगीकार करने के लिये प्रस्तुत हुआ, तब इतनेमें ही श्यामवर्ण शरीरवाले एक पुरुष (रुद्र) ने उत्तरकी ओरसे आकर कहा कि यज्ञभूमिमें रखा हुआ यह सब धन हमारा है ॥६॥ तब नाभाग बोले कि यह कैसे? यह धन तो हमको अभी ऋषिलोग दे गये हैं। नाभागके यह वचन सुनकर उस पुरुषने कहा "भाई! झगड़ा क्यों करते हो" तुम जाकर अपने पितासे तो पूछो। उस पुरुषके यह वचन सुनकर नाभागने अपने पिताके निकट जाकर यथाविधिसे पूछा

दास्यन्त्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान् यथा ॥ तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ॥ ५ ॥ तं कश्चित् स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ उवाचोत्तरतोऽभेत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥ ६ ॥ ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः ॥ स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान् पितरं तथा ॥ ७ ॥ यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ॥ चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥ ८ ॥ नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् ॥ इत्याह मे पिता ब्रह्मन् शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ९ ॥ यत्ते पिताऽवदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे ॥ ददामि ते मन्त्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥ १० ॥ गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः ॥ ११ ॥

॥७॥ यह सुनकर उसके पिता नभगने कहा कि वत्स! दक्षके यज्ञमें जो वस्तु बची थी, ऋषि लोगोंने उस सबको भगवान् रुद्रका भाग बताया था, अधिक करके वह ईश्वर सब ही कुछ पाने योग्य हैं फिर यज्ञमें बचे हुएका तो बात ही क्या है? ॥ ८ ॥ यह सुनकर नाभाग फिर उस पुरुष (रुद्र) के निकट आकर शिर नवाकर बोले कि हे ईश्वर! यज्ञभूमिमें पड़े हुए सब धनके आप अधिकारी हैं, यह बात हमसे हमारे पिताने कही है; इसलिये प्रसन्न होकर आप हमारा अपराध क्षमा कीजिये, हम मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥ नाभागकी विनती सुनकर रुद्रजीने कहा—"तुम्हारे पिताने धर्मवाक्य कहा है और तुम भी धर्म वाक्य कहते हो, इसलिये तुम मन्त्रके जाननेवालेको हम ज्ञानरूप सनातन ब्रह्म देते हैं ॥ १० ॥ और यज्ञका बचा हुआ जो धन है इसको भी तुम ग्रहण करो, क्योंकि हमने यह तुमको दिया"

हे राजन्! धर्मवत्सल भगवान् रुद्रजी इस प्रकारसे कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥११॥ जो पुरुष भलीभांतिसे साधवान हो सन्ध्या और प्रातःकालके समय इस उपाख्यानको सुनेगा वह इसके प्रभावसे विद्वान और मन्त्रका जाननेवाला होकर यथेष्ट धन पायेगा ॥१२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित्! इसी नाभागसे अम्बरीषकी उत्पत्ति हुई, जो ब्रह्मशाप कहीं भी निष्फल नहीं होता, वह भी अर्थात् ब्राह्मण (दुर्वासा) की बनायी कृत्यारूप अग्नि भी जिनको स्पर्श न कर सकी, इसलिये वे परमभक्त और अतिशय बुद्धिमान हुए ॥ १३ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! बुद्धिमान् राजा अम्बरीषके चरित्र सुननेकी मुझे बड़ी अभिलाषा है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि ब्रह्मनिर्मित कृत्यानल जो अति दुरत्यय है, वह भी राजा अम्बरीषको दण्ड देनेके लिये सामर्थ्यवान् न हुई ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

य एतत् संस्मरेत् प्रातस्सायं च सुसमाहितः ॥ कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथाऽऽत्मनः ॥ १२ ॥ नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ॥ नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥१३॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ॥ न प्राभूद यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५ ॥ मनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्नसंस्तुतम् ॥ विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत् पुमान् ॥ १६ ॥ वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ॥ प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत् स्मृतम् ॥ १७ ॥ स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ॥ करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥

कि हे महाभाग! राजा अम्बरीष सप्त द्वीप पृथ्वी, अक्षय सम्पद् और पृथ्वीके अतुल ऐश्वर्य पाकर यद्यपि ये सब पदार्थ और पुरुषोंको अति दुर्लभ हैं, स्वप्नके समान झूठे समझने लगा, क्योंकि, विभवके नाशका न जानने वाला पुरुष ही विभवमें अथवा उसके अंशसे मोहको प्राप्त होता है ॥१५॥१६॥ और यह राजा भगवान् वासुदेवमें और उनके भक्त सब साधुओंमें उस परमभाव (भक्ति) को प्राप्त हुआ था, जिससे यह विश्व अति तुच्छ जान पड़ता है ॥१७॥ अधिक करके उन्होंने श्यामसुन्दर श्रीकृष्णजीके पादारविन्दमें अपने चित्तको अर्पण कर दिया था और अपने वचनोंको वैकुण्ठनाथके गुणवर्णनमें लगाया था, अपने दोनों हाथ हरिमंदिरके मार्जनादिमें लगा दिये थे, अपने कानोंको अच्युत

सत्कथाओंके श्रवण करनेमें लगा दिया था ॥१८॥ नेत्रोंको मुकुन्दके रूप देखनेमें लगा रखा था अंगसंगको भगवत्सेवकोंके शरीरस्पर्शमें, नासिकाको भगवच्चरणकमलके संयोगसे श्रेष्ठ तुलसीका जो सौरभ है इसके ग्रहणमें और रसना को भगवान्के प्रति निवेदित अन्नादिके स्वाद चखनेमें तत्पर कर रखा था और चरण हरिके क्षेत्रमें जानेके लिये नियत कर रक्खे थे। इनका मस्तक हृषीकेशके चरणोंमें प्रणाम करनेके लिये ही झुकता था, चन्दनादिकी सेवा दासभावसे करता था, कुछ विषयकी इच्छासे नहीं। उत्तमश्लोक भगवान्के जन जिस प्रकार इन वस्तुओंमें प्रीति रखते थे ॥ १९ ॥ २० ॥ इस प्रकारसे सब कर्मकलापोंको राजाने यज्ञपति भगवान्को अर्पण कर दिया था और भगवद्भक्त ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार राज्यका पालन करता था ॥ २१ ॥ और अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवान्की आराधनामें सदा

मुकुन्दलिङ्गालय दर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम् ॥ घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ १९ ॥ पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ॥ कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥ २० ॥ एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ॥ सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥ २१ ॥ ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचितांगदक्षिणैः ॥ तत्तैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥ २२ ॥ यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः ॥ तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्त सुवाससः ॥ २३ ॥ स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः ॥ शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥ २४ ॥

लगा रहता था। इन यज्ञोंके अंग और दक्षिणामें बहुत धन लगाता था और यह सब यज्ञ वसिष्ठ,असित,गौतमादि ऋषियोंके द्वारा ही विस्तारित होते थे। हे राजन्! धन्वदेश (मारवाड़) में जहां सरस्वतीजी बहती थीं वहां पर राजा अम्बरीषने इन यज्ञोंको किया था ॥२२॥ उनके यज्ञमें सदस्य और ऋत्विगादि वसन भूषणादि द्वारा सज-धजकर देवतालोगोंके समान रूपवाले दिखाई देते थे। आश्चर्य देखनेकी उत्कंठासे उन सभासदोंके पलक तनक भी नहीं लगते थे, इसलिये वे सब प्रकारसे देवता लोगोंके समान हो जाते थे ॥ २३ ॥ और राजा अम्बरीषकी प्रजा भी देवताओंके प्यारे स्वर्गलोककी चाहना नहीं रखती थी, केवल भगवच्चरित्र श्रवण और कीर्तन करनेमें लगी रहती

थी, फिर इनसे उसके संबन्धमें क्या कहा जाय ? बस, जो पुरुष अपने हृदयमें भगवान् मुकुन्दको देखता है और स्वरूप सुखके द्वारा जो अतिशय आनन्द पाता है इससे सिद्ध लोगोंको भी दुर्लभ जो समस्त विषय हैं वे सब इस पुरुषको आनन्द (हर्ष) नहीं उपजा सके ॥२४॥२५॥ अधिक करके इस प्रकार राजा अंबरीषने स्त्री, पुत्र, मित्र, हाथी, घोड़े, रथादि व अक्षय रत्न भूषणादि व अनंत कोषको भी वृथा समझा ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यद्यपि राजा अंबरीष इस प्रकार विरागी हो गया था तो भी अपने शत्रुओंको जीतनेको असमर्थ नहीं हुआ, भगवान् वासुदेवने इस राजर्षिके भक्ति भावसे प्रसन्न हो जिससे शत्रुकी सेनाको भय हो और भक्तोंकी रक्षा हो ऐसा

समर्धयन्ति तान्कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः ॥ दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः ॥ २५ ॥ स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ॥ स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् सङ्गान्सर्वाञ्छनैर्जहौ ॥२६॥ गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु ॥ अक्षय्य रत्नाभरणायुधादिष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥ २७ ॥ तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ॥ एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥२८॥ आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ॥ युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥ व्रतान्ते कार्त्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ॥ स्नातः कदाचित्कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥ ३० ॥ महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा ॥ अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम् ॥ ब्राह्मणांश्च महाभागान् सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥ ३२ ॥ गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम् ॥ पयश्शीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदाम् ॥ ३३ ॥

सुदर्शन चक्र उनको दे दिया था ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इस राजा अंबरीषने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी पूजा करनेकी इच्छासे अपनी भार्या जो कि शीलतामें अपने ही समान थी, उसके साथ मिलकर एक वर्षतक अखंड एकादशीके व्रतको धारण किया ॥ २९ ॥ एक समय मथुरामें जाकर व्रतके अंतमें, जब कार्तिक महीनेमें तीन दिन उपवास किया था, कालिंदीमें स्नान कर मधुवनमें श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजाकी ॥ ३० ॥ महाभिषेककी विधिसे सब सामग्रियोंकी संपत्तिसे वस्त्र, आभूषण, गंध, फूल-फल-मालाके द्वारा एकाग्रचित्तसे मुरली मनोहरकी पूजा करने लगे । फिर बड़े भाग्यवाले सिद्धकाम ब्राह्मणोंकी भक्तिभावसे पूजा करने लगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जिनके सींग और

खुर चांदीसे मढ़े थे, शरीरमें शोभायमान वस्त्र पहन रही थीं दुधारी थीं सुशीलता, वयस, रूप और वत्सादि श्रेष्ठ सम्पत्तियोंसे भूषित थीं, ऐसी छः करोड़ (६०००००००*) गायें राजा अम्बरीषने साधु ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे दीं ॥ ३३ ॥ इसके पीछे ब्राह्मण लोगोंको षड्रस भोजन कराकर उनकी आज्ञा ले आप भी व्रतपारणा करनेको तत्पर हुआ ॥ ३४ ॥ हे राजन्! राजा अम्बरीष व्रतपारणा करनेको जाता ही था कि इसी अवसरमें दुर्वासा मुनि अतिथिकी भांति उन राजा अम्बरीषके स्थानमें आये ॥ ३५ ॥ दुर्वासा मुनिको देखते ही राजा अम्बरीषने व्रतपारणा नहीं की और उसी समय आकर प्रणाम व पूजा करके उनका भलीभांतिसे आदर-सम्मान किया ।

प्राहिणोत् साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ॥ भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥ ३४ ॥ लब्धकामैरनु-
ज्ञातः पारणायोपचक्रमे ॥ तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद् दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५ ॥ तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थाना-
सनार्हणैः ॥ ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६ ॥ प्रतिनन्द्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः ॥ निममज्ज
बृहद् ध्यायन्कालिन्दीसलिले शुभे ॥ ३७ ॥ मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ॥ चिन्तयामास धर्मज्ञो
द्विजैस्तद्धर्मसंकटे ॥ ३८ ॥

फिर विनीतभावसे चरणोंके निकट खड़ा होकर भोजन करनेके लिये उनसे प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ राजाकी इस प्रार्थनासे दुर्वासाऋषि हर्षित हो भोजन करना स्वीकार कर बोले कि अभी नियमित मध्याह्नके नित्यकर्म हमने समाप्त नहीं किये हैं, यह कहकर नित्यकर्म करने को यमुनाके तटपर गये । इसके पीछे ब्रह्मचिन्ता करते-करते यमुनाके पवित्र जलमें स्नान किया ॥ ३७ ॥ हे राजन्! जब दुर्वासा मुनि मध्याह्न कालकी क्रिया करने गये तो वह बहुत विलम्ब होनेपर भी वहां नहीं गये । इस ओर द्वादशीका केवल अर्द्ध मुहूर्त्त शेष रह गया

* शंका—राजा अम्बरीषने (६०००००००) छ करोड़ गायका दान किया है, सो हमको बड़ा संदेह है कि, ६ करोड़ गायें और बछड़े और बछिया और उतनेही दान के लेनेवाले ब्राह्मण क्योंकर इकट्ठे हो गये ।

उत्तर—ज्योतिष शास्त्रमें पांच अर्बुदकी सहस्रकी संज्ञा लिखी है और एक अर्बुदको दश कोटि लिखा है, "प्रायश्चित्तकदम्ब" तथा "विधान परिजातक" जिनमें एक एक लाख श्लोक हैं इनके सिवाय और भी जो धर्म शास्त्र के ग्रन्थ हैं उनमें भी एक अर्बुदकी ५००० सहस्रकी ही संज्ञा है इस प्रमाणसे जाना जाता है कि, पांच हजार गाय राजा अम्बरीषने दान की थीं ।।

और इस मुहूर्त्तमें पारणा न करनेसे व्रतका फल नष्ट हो जायगा, ऐसा समझकर धर्मज्ञ अम्बरीष राजा धर्मसंकटमें पड़ ब्राह्मणों सहित विचार करने लगे॥३८॥ राजाने कहा कि जो दोषब्राह्मणके अतिक्रममें है, द्वादशी पारणा न करनेसे भी वही दोष है, अब क्या करें ? क्या करनेसे मेरा भला होगा ? और अधर्म मुझको न स्पर्श कर सके ? ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंके सहित इस प्रकार विचार करके राजाने फिर यह निश्चय किया कि केवल चरणामृत पीकर व्रत समाप्त किया जाय तो ठीक है, क्योंकि केवल जलपान करनेको मुनि लोगोंने भोजन अभोजन दोनों कहा है ॥ ४० ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! राजा अम्बरीषने इस प्रकार मनमें भगवान् वासुदेवका स्मरण कर जैसे ही चरणामृत पिया वैसे ही द्विजागमन देखा ॥ ४१ ॥ अर्थात् उसी समय दुर्वासाजी नित्यकर्म समाप्त करके यमुनाके किनारेसे राजा अम्बरीषके स्थानपर आ

ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ॥ यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥ ३९ ॥ अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् ॥ प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४० ॥ इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन्मनसाऽच्युतम् ॥ प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥ ४१ ॥ दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः ॥ राज्ञाऽभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ४२ ॥ मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ बुभुक्षितश्च सुतरां कृताञ्जलिमभाषत ॥४३॥ अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ॥ धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥ ४४ ॥ यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च ॥ अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥ ४५ ॥

पहुँचे। यद्यपि राजाने उन मुनिको देखकर आनन्द प्रकट किया और हाथ जोड़ उनके सम्मुख खड़े हुए तो भी इस राजा अम्बरीषका आचरण दुर्वासा ऋषिने ध्यान धरकर जान लिया ॥ ४२ ॥ इसलिये क्रोधसे कम्पितशरीर हो भौंहें टेढ़ी कर हाथ जोड़े खड़े हुए राजा अम्बरीषसे कहने लगे कि ॥ ४३ ॥ अहो ! यज्ञ पुरुष कैसा निर्लज्ज है, धन सम्पत्तिके मदसे अत्यन्त मतवाला हो रहा है, अपने आपको ईश्वर मानता है, इसके धर्मव्यतिक्रमको तो देखो ॥ ४४ ॥ हम इसके आश्रममें अतिथि आये हैं, इसने आप ही पहुनाई करनेके लिये हमको निमंत्रण दिया, परन्तु हमारा भोजन होनेसे प्रथम ही यह इच्छानुसार भोजन करके बैठ गया। इसका फल इसको अभी

दिखाता हूँ ॥ ४५ ॥ इस प्रकार कहते-कहते क्रोधित हो मस्तकसे एक जटा उखाड़कर उस राजाके सामने कालाग्निके समान एक कृत्या बनायी ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! वह कृत्या खड्ग हाथमें ले अपने चरण धरनेसे पृथ्वीको कम्पायमान करती हुई प्रकाशपूर्वक प्रकट हुई । राजा अम्बरीष उसको अपने सम्मुख आती हुई देखकर भी अपने स्थानसे चलायमान नहीं हुए ॥ ४७ ॥ राजा अम्बरीष विष्णु भगवान्के परमभक्त थे, अतः उन्होंने अपने भक्तपर यह विपत्ति पड़ी देख अपने चक्रको आज्ञा दी । परमपुरुष भगवान्की आज्ञा पाते ही वह अपने तेजसे इस प्रकार कृत्याको भस्म करने लगा, जिस प्रकार दावानल वनमें रहते हुए क्रोधित सर्पोंको दग्ध करें ॥४८॥ जब दुर्वासा ऋषिने देखा कि हमारा किया यत्न विफल हुआ और अब यह चक्र हमारी ही ओरको चला आता है इसलिये भीत हो प्राणोंकी रक्षा करनेको

एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ॥ तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥४६॥ तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ॥ वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७ ॥ प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ॥ ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८ ॥ तमभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ॥ दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥ तमन्वधावद्भगवद्रथांगं दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाऽहिम् ॥ तथाऽनुषक्तं स निरीक्षमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥ ५० ॥ दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रान् लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ॥ यतो यतो धावति तत्र तत्र सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥ ५१ ॥ अलब्धनाथस्स यदा कुतश्चित् संत्रस्त चित्तोऽरणमेषमाणः ॥ देवं विरिञ्चं समगाद्विधातस्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२ ॥

त्रासके मारे सब दिशाओंमें भागने लगे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! जैसे लपटयुक्त उठी हुई दावानल बनैले सर्पोंके पीछे दौड़ती है, वैसे ही भगवान्का चक्र इन ऋषिके पीछे-पीछे दौड़ा । दुर्वासा मुनि चक्रको इस प्रकारसे अपने पीछे आता हुआ देखकर सुमेरुकी गुफामें प्रवेश करनेकी इच्छा कर महावेगसे दौड़ने लगे ॥५०॥ दौड़ते-दौड़ते दिक्, आकाश, भूमि, विवर, सागर और लोकपालसहित सब लोकमें और स्वर्गमें भी दुर्वासा गये परन्तु जहां वे जाते थे,उस-उस स्थानमें दुर्धर्ष चक्रभी उनके पीछे लगा ही चला जाता था॥५१॥इस प्रकार शरण ढूँढ़ते सब जगहमें भ्रमण करके यह कहीं भी अपने किसी रक्षकको नहीं पा सके, तब त्रसित हो पद्मयोनि ब्रह्माजीके निकट गये और कातरता प्रकट करके बोले

कि हे भगवन् ! हे आत्मयोने ! । इस दुःसह हरिके चक्रसे आप मेरी रक्षा करें ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि परार्द्धनामक कालक्रीडाके अन्तमें कालस्वरूप जो विष्णु भगवान् हैं, वे जब सबके दग्ध करनेकी वासना करते हैं, तब उनकी भ्रुकुटी टेढ़ी हो जाती है, ब्रह्माण्ड समेत हमारा यह स्थान भी भस्म हो जायगा और हम (ब्रह्मा,) शिव, दक्ष, भृगु आदि और प्रजापति, भूतपति, सुरपति, इत्यादि जिनकी आज्ञाको प्राप्त होकर जिस प्रकारसे लोगोंका हित हो उसी प्रकार अपने मस्तकपर सब नियमोंको रखते हैं, वह तुमने उनके ही भक्तसे द्रोह किया है इसलिये तुम्हारी रक्षा करनेका सामर्थ्य हममें नहीं है ॥५३॥५४॥ हे राजन् ! जब ब्रह्माजीने भी शरण नहीं दी, तब दुर्वासा कैलासके शिखरपर गये और विष्णुचक्रसे अतिसन्तापित होनेके कारण कातरता प्रकट कर भगवान् महादेवजीकी शरण हुए ॥५५॥ महादेवजी बोले कि हे तात ! उन

ब्रह्मोवाच ॥ स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ॥ भ्रूभङ्गमात्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरोभविष्यति ॥ ५३ ॥ अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ॥ सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्धन्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥ ५४ ॥ प्रत्याख्यातो विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापितः ॥ दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम् ॥ ५५ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः ॥ भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६ ॥ अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ॥ कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७ ॥ मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ॥ विदाम न वयं सर्वे यन्मायां माययाऽऽवृताः ॥ ५८ ॥ तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ॥ तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥ ५९ ॥

महान् परमेश्वरके सम्मुख हमारी प्रभुता कुछ नहीं चलेगी । उनसे ब्रह्मादिरूपका उपाधिभूत यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और इस प्रकारसे दृश्यमान ब्रह्माण्डका प्रमाण व और पदार्थ भी जिनमें कल्पित हैं, लोकपालाभिमानी हम हजार-हजार वार भ्रान्त हुआ करते हैं । हे वत्स ! सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिल (जिनके अंतःकरणका अन्धकार दूर हो गया था) देवल, धर्म, आसुरि ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ और मरीचि आदि और भी सिद्धगण सर्वज्ञ होकर भी जिनकी मायाको नहीं जान सकते, बरन् स्वयं उनकी मायासे घिरे हुए हैं, उन्हीं विश्वेश्वरका यह शस्त्र (चक्र) है, सो हमलोग किसी भांति इसे नहीं सह सकते, इसलिये तुम उन्हीं विष्णु भगवान्‌की शरण

जाओ, वही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकारसे दुर्वासाजीको महादेवजीने भी शरणमें न रखा और कोरा जवाब दे दिया तब वह भगवान्के धाम वैकुण्ठको गये कि जहां भगवान् श्रीनिवास लक्ष्मीजीके साथ विराजमान थे ॥ ६० ॥ यह ऋषि कम्पायमान होकर श्रीभगवान्के चरणोंपर गिर पड़े और कहने लगे कि हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे साधुजनोंके भय हरनेवाले ! हे प्रभो ! मैंने बड़ा भारी अपराध किया है । हे विश्वभावन ! मेरी रक्षा करो ॥ ६१ ॥ हे प्रभो ! आपके परमप्रभावको न जानकर मैंने आपके प्रिय भक्तका अपराध किया है । अतः हे प्रभो ! अब इस अपराधका आप प्रायश्चित बताइये कि जिससे मेरा छुटकारा हो । हे भगवन् ! जो आपके भक्तका द्रोह करता है उसका छुटकारा नहीं हो सकता यह बात ठीक नहीं, क्योंकि जिनका नाम लेते ही नरकमें

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ॥ वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥६०॥ स दह्यमानोऽजित-शस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतित सवेपथुः ॥ आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ॥ ६१ ॥ अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाऽघं भवतः प्रियाणाम् ॥ विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥६२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ॥ साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजन प्रियः ॥ ६३ ॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ॥ श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥ ६४ ॥ ये दारा-गारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ॥ हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥ मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ॥ वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥६६॥

पड़ा हुआ पुरुष मुक्तिको प्राप्त हो जाता है, उसके लिये असाध्य क्या है ? ॥ ६२ ॥ यह वचन सुनकर श्रीभगवान् बोले कि हम भक्तके वश हैं, इसलिये परवश हैं । भक्तजन हमारे प्रिय हैं इससे भक्त साधुगण हमारे हृदयको ग्रसे हुये हैं ॥ ६३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिन मनुष्योंकी गति एक मुझसे ही होती है उन सब साधुपुरुषोंके सिवाय अपनी आत्माको और लक्ष्मीको भी अत्यन्त प्यार नहीं करते ॥६४॥ जो पुरुषगण स्त्री, पुत्र, गृह, तन, धन, प्राण और इस लोक व परलोक सबको छोड़कर हमारी शरणमें आये हैं, हम उनको त्याग करके किस प्रकार उत्साहित हो सकते हैं ? ॥ ६५ ॥ हे मुनिमहाराज ! सर्वत्र समदर्शी साधुपुरुष लोग हममें अपने-अपने हृदयको

बांध हमको अपने वश किये हुए हैं कि जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने श्रेष्ठ पतिको अपने वश कर लेती है ॥ ६६ ॥ और वह भक्तगण साधुसेवा द्वारा सालोक्यादि चारों पदार्थोंके सम्मुख आनेपर भी उनके ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करते, किन्तु वे साधुसेवासे ही परितृप्त हो जाते हैं, इसलिये कालसे नाश होनेवाली और किसी वस्तुमें उनकी अभिलाषा होनेकी क्या सम्भावना है ? ॥ ६७ ॥ और जिन-जिन पुरुषोंने हमको अपना हृदय अर्पण कर दिया है, हम उनके हृदयको जानते हैं, वे हमारे अतिरिक्त और किसीको नहीं जानते और हम भी उनके अतिरिक्त और किसीको नहीं समझते ॥ ६८ ॥ इसलिये हे मुने ! जिससे कि यह तुम्हे संकट उत्पन्न हुआ है उसके ही निकट तुम विना विलम्ब किये चले जाओ । हे मुने ! क्या तुम यह नहीं जानते हो कि साधु लोगोंके ऊपर चलाया हुआ तेज प्रहार करनेवालेको

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम् ॥ ६७ ॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ॥ मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ ६८ ॥ उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तम् ॥ अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ॥ ६९ ॥ साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ॥ ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ॥ ७० ॥ ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ॥ क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥ इति श्रीभागवते म० नवमस्कन्धेऽम्बरीषोपाख्याने दुर्वासोऽनुतापशमनं नाम चतुर्थोऽध्याय ॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ॥ अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥

ही अमंगल करता है ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंकी तपस्या और विद्या यह दोनों भला करनेवाली तो हैं परन्तु दुर्विनीत स्वामीके लिये यह दोनों विपरीत फल देनेवाली हैं परन्तु इस समय अपनी तपोविद्याको मनमें लाकर इस अनर्थ घटनापर विस्मय करना आपको योग्य नहीं है॥७०॥इस समय तुम महाभाग नाभागपुत्र राजा अम्बरीषके निकट जाओ जिससे तुम्हारा मंगल हो, उसी पृथ्वीपतिसे क्षमा मांगनेका यत्न करो, तब इस उत्पातकी शांति होगी ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकाया मम्बरीषचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा—अम्बरीष हरिचक्रकी, विनय करी शिर नाय । ब्राह्मणकी रक्षा करी, इस पञ्चम अध्याय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

कि हे कुरुकुलभूषण ! चक्रकी अग्निसे संतापित हुए दुर्वासा ऋषि विष्णु भगवान्‌की आज्ञासे उसी समय राजा अम्बरीषके यहां गये और दुःखित हो उस राजर्षिके चरण पकड़नेको झपटे * ॥ १ ॥ यह जब चरण छूने लगे, तब राजर्षि अम्बरीष अत्यन्त लज्जित हुए और दुर्वासाजीको ऐसा व्याकुल देखकर स्वयं दुःखित होते हुए भगवान्‌के चक्रकी स्तुति करने लगे ॥२॥ राजा अम्बरीष बोले कि हे सुदर्शन ! तुम ही भगवान् सूर्य हो और तुम ही सब नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा हो, तुम ही जल, तुम ही भूमि, तुम ही आकाश, तुम ही पवन, तुम ही

तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः ॥ अस्तावीत् तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ॥ त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेंद्रियाणि च ॥३॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ॥ सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४ ॥ त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ॥ त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५ ॥

मात्रा और तुम ही सब इंद्रिय हो अर्थात् तुम्हारी ही शक्तिसे अग्नि आदि अपना-अपना कार्य करते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये तुम्हें नमस्कार है। हे अच्युतप्रिय ! तुम्हारी हजार धार हैं। हे सर्वघातिन् ! हे पृथ्वीनाथ ! इस ब्राह्मणकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे सुदर्शन ! ब्राह्मणकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य कर्म है, क्योंकि तुम साक्षात् धर्म, अमृत, सत्य, यज्ञमूर्ति और सब यज्ञोंके भोगनेवाले हो, अधिक करके तुम ही लोकपाल और ईश्वरका परम सामर्थ्य हो। हे चक्र ! तुम्हारा नाम सुदर्शन है, इसका अर्थ भगवान्‌के शोभायमानका दर्शन, भग-

* शंका—दुर्वासा मुनि भगवान्‌के चक्रके तेजसे भस्म होनेको प्रस्तुत थे, तो फिर उन्होंने अम्बरीषके चरण कैसे ग्रहण किये ? यह तो बड़ा अयोग्य कर्म है, दुर्वासाऋषि कुछ कलियुगी ब्राह्मण तो थे नहीं, जो कि देहके सुखके लिये नीच कर्म करने लगते, वह तो महाप्रतापी और परम तेजस्वी ब्राह्मण थे, फिर इन्होंने नीच कर्म क्यों किया।

उत्तर—दशसहस्र (१००००) ब्राह्मणोंको साथ लिये दुर्वासा ऋषि बड़े अभिमान सहित त्रिलोकीमें घूमते फिरा करते थे और त्रिलोकीके मनुष्योंको शाप दे देकर बहुत दुखी कर दिया। जो कोई किंचिन्मात्र भी अपराध करता था, उसको ऐसा भारी शाप देते थे कि वह बहुत कालतक कष्ट पाता था। तीनों लोकोंको कंपायमान देखकर भगवान् महादेवने दुर्वासा ऋषिका अभिमान भञ्जन करनेके लिये वह यत्न करके त्रिलोकीको सुखी किया, क्योंकि दुर्वासाऋषिके चित्तमें अम्बरीषका चरित्र खटकने लगा यह विचारकर क्रोध करने लगे, इसलिये मोहको प्राप्त हुए दुर्वासाऋषिको अंबरीषके चरणोंको ग्रहण करना पड़ा।

वान्‌के दर्शनसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, इसलिये तुम ही सर्वात्मा हो ॥५॥ और तुम अद्भुतकर्मकारी हो क्योंकि अखिल धर्मके सेतु-स्वरूप हो इसलिये तुम ही अधर्म करते हुए असुर लोगोंको धूमकेतु अर्थात् दाहक हो तुम्हारा तेजसमूह अतिउज्ज्वल है। तुम त्रिलोकीके रक्षक हो, तुम मनके समान वेगवान् हो, तुम्हारी स्तुति करनेका सामर्थ्य किसमें है। इसलिये मैं तुम्हारे प्रति केवल 'नमः' शब्दका प्रयोग करता हूँ ॥ ६ ॥ हे सुदर्शन! तुम्हारे धर्ममय तेजसे अंधकार दूर होता है और महात्मा लोगोंकी दृष्टि प्रकाशित होती है। हे वाणीनाथ! तुम्हारी महिमा अपरंपार है। सत्, असत्, पर, अपर इत्यादि समस्त पदार्थ तुम्हारे ही स्वरूप हैं, क्योंकि सूर्यादिका प्रकाश भी तुमसे ही होता है ॥ ७ ॥ हे अनंत अनञ्जन! भगवान्‌के करसे जब तुम छोड़े जाते हो; तब दैत्यदानवोंके बीचमें प्रवेश कर उनकी भुजायें,

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ॥ त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥६॥ त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ॥ दुरत्ययस्ते महिमा गिरांपते त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥ ७ ॥ यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ॥ बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥ स त्वं जगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ॥ विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥९॥ यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ॥ कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥ यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ॥ सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥११॥

पेट, जाँघे, चरण और कन्धोंको काटते हुए समरमें विराजमान होते हो ॥ ८ ॥ हे जगत्त्रातः! तुम ऐसे गुणोंसे युक्त हो कि भगवान् गदा-धरने खल पुरुषोंके मारनेको तुम्हें नियुक्त किया है, इसलिये हमारे कुलका सौभाग्य करनेको तुम इस विपत्तिमें पड़े हुए ब्राह्मणका मंगल करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा बड़ा भारी अनुग्रह मेरे ऊपर होगा ॥ ९ ॥ हे सुदर्शन! यदि हमारे किसी दान करनेसे वा किसी यज्ञ करनेसे कुछ पुण्य हुआ हो, यदि मैंने अपने धर्मका भलीभांतिसे अनुष्ठान किया हो, यदि मेरे कुलदेवता ब्राह्मण हों तो मेरी यही प्रार्थना है कि उस धर्मके प्रभावसे यह मुनिजी शीघ्र निष्कंटक हो जायँ ॥ १० ॥ और अनुपम वह सब प्राणियोंके प्रति आत्मभावके हेतु

सर्वगुणोंके आश्रय भगवान यदि हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो उनके प्रसादसे यह ब्राह्मण शीघ्र सन्ताप रहित हो ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जब राजा अम्बरीषने इस प्रकार स्तुति की तब भगवान्का सुदर्शन चक्र, जो ब्राह्मण श्रेष्ठ दुर्वासाजीको जलाये देता था, इन राजर्षिकी प्रार्थनासे शान्त हो गया ॥१२॥ इसलिए दुर्वासाजी अस्त्राग्निके तापसे छुटकारा पाकर कल्याणवान् हुए । फिर दुर्वासा मुनि राजाको आशीर्वाद दे अनेक अनेक प्रशंसा करने लगे ॥१३॥ दुर्वासाजी बोले, अहो ! भगवद्भक्तोंकी अद्भुत महिमा आज हमने देखी । हे राजन् ! यद्यपि हमने अपराध किया तो भी तुमने हमारी भलाई ही चाही ॥ १४ ॥ अथवा जिन पुरुषोंने सात्वतपति भगवान्को अपने वश किया है, उन महात्माको

श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥ अशाम्यत् सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाञ्चया ॥ १२ ॥ स मुक्तोऽस्त्राऽग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ॥ प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥ १३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ॥ कृतागसोऽपि यद्राजन्मङ्गलानि समीहसे ॥१४॥ दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ॥ यैः संगृहीतो भगवान् सात्त्वतामृषभो हरिः ॥ १५ ॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ॥ तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥ १६ ॥ राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयाऽतिकरुणात्मना ॥ मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणायन्मेऽभिरक्षिताः ॥१७॥ राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया ॥ चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥१८॥ सोऽशित्वाऽऽहृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ॥ तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥

साधुपुरुषोंके लिये कौन बात दुस्त्यज वा दुर्लभ है ? ॥ १५ ॥ जिनका नाम श्रवण करते ही पुरुष निर्मल हो जाता है, तीर्थपद भगवान्के उन दासोंसे कौनसा कार्य बच रहा है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! तुम अतिकरुणात्मा हो, हमपर आपने बड़ा भारी अनुग्रह किया, क्योंकि हमारे अपराधकी ओर न निहारकर हमारे प्राणोंकी रक्षाकी ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! अबतक राजा अम्बरीषने भोजन नहीं किया था । इस राजाने फिर भी इनके आनेकी प्रार्थना की और बारंवार इसके चरणकमलोंकी वन्दना करके भोजन कराया ॥ १८ ॥ आदरसहित आये हुए सर्वाभिलाषकी पूर्णकरनेवाली पहुनईको मानकर महर्षि दुर्वासाजीको अति सन्तोष उत्पन्न हुआ । दुर्वासाजी आहार

करनेके उपरांत राजासे बोले कि हे महाराज ! तुम भी भोजन करो॥१९॥ हे महीपाल ! तुम परमभागवत हो। हमारे ऊपर तुम्हारा बड़ा अनुग्रह हुआ, तुम्हारे दर्शन करने और तुम्हारे संभाषण करनेसे, जिससे आत्मामें बुद्धि होती है, ऐसा आतिथ्य जो तुमने किया इससे हमको बहुतही प्रीति उत्पन्न हुई है ॥२०॥ स्वर्गवासी देवता लोगोंकी स्त्रियाँ इस निर्मल कर्मको सदा गायेंगी और पृथ्वीके रहनेवाले सदा तुम्हारी परम पवित्र कीर्तिको गायेंगे॥२१॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! महर्षि दुर्वासाजी सन्तुष्ट मनसे इस प्रकार कहकर राजर्षि अम्बरीषके साथ वार्त्तालाप करके आकाशमार्गसे हो ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २२ ॥ परन्तु वह गमन करके जबतक न आये थे, तबतक एक वर्ष

प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ॥ दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥२०॥ कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः ॥ कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥२१॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ॥ ययौ विहायसाऽऽमन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२ ॥ संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः ॥ मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षी राजाऽब्भक्षो बभूव ह ॥ २३ ॥ गते च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ॥ ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥२४॥ एवंविधानेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ॥ क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं ययाऽऽविरिञ्चान्निरयांश्चकार ॥२५॥ अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं समानलीलेषु विसृज्य धीरः ॥ वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधद् ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६ ॥

समयतकके बीतनेपर भी राजा अंबरीष उनके दर्शनकी इच्छासे केवल जल ही पीकर रहे थे ॥ २३ ॥ इसके उपरांत एक वर्ष पीछे जब वह ऋषि आये तब राजा अंबरीषने ब्राह्मणभोजनसे जो पवित्र हुआ आहार वही भोजन किया और ऋषिकी विपत्ति व उद्धारकी बात स्मरण करके अपने धैर्यादिरूप वीर्य और भगवान्के प्रभावको आधार मानने लगा ॥२४॥ हे राजन् ! अंबरीष राजामें इस प्रकारके अनेक गुण थे, वह अपने क्रियाकर्मसे परमात्मा भगवान् वासुदेवकेप्रति परमभक्ति दिखलाते थे,उसी भक्ति के प्रभावसे ब्रह्मपदके सहित सब प्रकारके भोग इनके संमुख सदा प्राप्त रहते थे, परंतु यह उनको नरकके समान जानते थे ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरांत यह वीर अपने समान वीर्यवान् पुत्रको राजभार सौंप वनमें चला गया । जबकि इस राजर्षिने अपना मन व आत्मा भगवान्में लगा दिया था, इस-

लिए उनका गुणप्रवाह विध्वंस हो गया, अर्थात आवागमनसे इनका छुटकारा हो गया ॥ २६ ॥ हे राजन् ! राजा अंबरीषके इस पवित्र चरित्रको जो मनुष्य सुनेंगे और ध्यान करेंगे, सो भगवान्के भक्त होंगे और जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इन महाराज अंबरीषके चरित्रको गान करेंगे वे समस्त भगवान् विष्णुके प्रसादसे सरलतापूर्वक मुक्तपदवीको प्राप्त होंगे ॥२७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां मम्बरीषचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ दोहा–अम्बरीष अध्याय षट, अरु शशाद इतिहास । मान्धाता इक्ष्वाकुकुल, सौभरि–ऋषी विलास ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! राजा अम्बरीषके विरूप, केतुमान् और शंभु ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें विरूपका पुत्र पृषदश्व और इसका पुत्र रथीतर हुआ ॥ १ ॥ रथीतरके पुत्र व कन्या कुछ नहीं हुआ अर्थात् वह निःसन्तान था । जब इसने सन्तानके लिये

इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ॥ संकीर्तयन्ननुध्यायन् भक्तो भगवतो भवेत् ॥२७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धेऽम्बरीषोपाख्याने दुर्वासा उपचरणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विरूपः केतुमान् शंभुरम्बरीषसुतास्त्रयः ॥ विरूपात्पृषदश्वोभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥ रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽर्थितः ॥ अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २ ॥ एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः ॥ रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३ ॥ क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ॥ तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ ४ ॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ॥ पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥ ५ ॥

महर्षि अङ्गिराजीसे प्रार्थना की तब महर्षि अंगिराजीने उनकी भार्यामें ब्रह्मतेजसे युक्त कई पुत्र उत्पन्न कर दिये ॥ २ ॥ हे राजन् ! अंगिराजीसे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, वे रथीतरके क्षेत्रमें उलटा होनेके कारण यद्यपि रथीतर गोत्री हुए थे, तो भी अंगिराजीके वीर्यसे उनकी उत्पत्ति होनेके कारण आंगिरस नामसे विख्यात हुए । अधिक करके इनके क्षेत्रोपेत ब्राह्मण होनेपर रथीतरकी दूसरी सन्तानमें मुख्य थे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! मनुके दश पुत्रोंमें पृषध्र और कवि संसारत्यागी हुए थे; इसलिये उनका वंश नहीं हुआ । करूषादि सप्त पुत्रोंका वंश प्रथम कहा गया है । इक्ष्वाकुका वंश बहुत बड़ा है इसलिये पहले नहीं कहा, अब कहते हैं :–छींकें लेते हुए मनुकी नासिकासे इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए । इन इक्ष्वाकुके शत पुत्र हुए, उनमें विकुक्षि, निमि और दण्डकादि श्रेष्ठ थे ॥ ४ ॥ इन शत पुत्रोंमें पचीस जन विन्ध्याचल और हिमालय पर्व-

तके मध्यमें पूर्वकी ओर आर्यावर्तके सम्मुख समुद्रतक एक-एक मण्डलके राजा हुए। इसी प्रकार पश्चिममें भी इनमेंसे पचीस पुत्र एक-एक मण्डलके राजा हुए, परन्तु मध्यस्थलमें ज्येष्ठ तीन पुत्र और दक्षिण-उत्तरादि भागमें अन्य पुत्रगण राजसिंहासन पर बैठे ॥५॥ एक दिन राजा इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्ध करनेके लिये विकुक्षिको निकट बुलाकर कहा—हे वत्स! शीघ्र वनमें जाकर श्राद्धके लिये पवित्र मांस लाओ ॥६॥ विकुक्षि "बहुत अच्छा" कह वनमें चला गया और श्राद्धके योग्य अनेक पशुओंको मारने लगा। इसके उपरांत जब विकुक्षि थककर भूखा हो गया तब इसने भूलकर मारे हुए पशुओंमेंसे एक खरहे (खरगोश) का मांस भूनकर खा लिया ॥ ७ ॥ फिर अवशिष्ट मांस लेकर पिताके निकट आया और सब उनको दे दिया। इक्ष्वाकु राजाने उस मांसका श्राद्धोचित संस्कार करनेके लिये कुलगुरु वसिष्ठजीको बुलाया।

स एकदाऽष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत्॥ मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम्॥६॥ तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान्॥ श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः॥७॥ शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः॥ चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम्॥ ८॥ ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाऽभिहितं नृपः॥ देशान्निस्सारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा॥९॥ स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन्॥ त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम्॥१०॥ पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम्॥ शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः॥ ११॥

तब वसिष्ठजीने कहा कि यह मांस दूषित हो गया, इसलिये श्राद्धकर्मके योग्य नहीं है ॥८॥ जब महर्षि वसिष्ठजीने सब ब्योरा भलीभांति कह सुनाया तब राजाने अपने पुत्रके कर्मको जानकर उसको अपने देशसे निकाल दिया, क्योंकि श्राद्धके योग्य मांसका प्रथम भाग ग्रहण कर लेनेसे उसका सदाचार छूट गया था ॥९॥ इसके पीछे राजा इक्ष्वाकु वसिष्ठजीके साथ ब्रह्मज्ञानका विचार करने लगे। फिर राज्यभोगसे विरागी हो गये और योगके द्वारा शरीरको छोड़ परमतत्त्वको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ जब पिता वनको चले गये तब विकुक्षि अपने देशमें आकर शशाद नामसे विख्यात हो पिताके राज्यको ग्रहण कर उसको पालने लगा। इस शशादने यज्ञोंको करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा

की । राजाने शशाका मांस जो खा लिया था इसलिये इसका नाम शशाद प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ शशादका पुत्र पुरञ्जय हुआ, यह पुत्र इन्द्रवाहन नामसे भी विख्यात था और कोई-कोई इसको ककुत्स्थ भी कहते हैं, जिन कर्मोंके करनेसे इसके यह कई नाम हुए, हम उनको कहते हैं, तुम श्रवण करो॥१२॥पहले समयमें जब दानवोंके साथ देवता लोगोंका विश्वविनाशन संग्राम हो रहा था, उस समय देवताओंने दैत्योंसे पराजित हो इस वीरको अपना सहायक बनाया ॥ १३ ॥ इसने कहा कि जो इन्द्र हमारे वाहन बनें तो हम अवश्य दैत्योंका वध करेंगे, यह कहकर इन्होंने इन्द्रको अपना वाहन बनाया था । पहले तो इन्द्र लाजके मारे इस बातको नहीं माना, फिर विश्वात्मा देव-देव विष्णुके कहनेसे पुरंजयका वाहन होनेके लिये महावृषभ हुए । "जब इस प्रकारसे इन्द्र वाहन हुए तब इन पुरंजयका नाम इंद्रवाह

पुरञ्जयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः ॥ ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः श्रृणु नामानि कर्मभिः ॥१२॥ कृतान्त आसीत् समरो देवानां सह दानवैः ॥ पार्ष्णिग्राहो वृत्तो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥ वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ॥ वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥ १४ ॥ स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखाञ्छितान् ॥ स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥ तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः ॥ प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैः पुरम् ॥१६॥ तैस्तस्य चाभूत् प्रधनं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान्येऽभिययुर्मृधे ॥१७॥ तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८ ॥

हुआ" ॥ १४ ॥ इसके पीछे राजा पुरंजय वख्तर पहनकर दिव्य धनुष और बहुत सारे तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके उस बैलकी पीठपर जा बिराजे । यह देखकर देवतालोग उनकी पूजा करने लगे ॥ १५ ॥ फिर महात्मा पुरंजयने परमपुरुष विष्णुजीके तेजसे बढ़कर देवता लोगोंके द्वारा पश्चिम दिशासे दैत्योंकी पुरीको घेर लिया ॥ १६ ॥ इसके उपरांत इस पुरंजयके साथ दैत्यलोगोंका घोर संग्राम हुआ । जो दैत्य संग्राममें इनके सन्मुख आया, सबको ही इस नरनाथने यमराजके भवनको भेज दिया ॥ १७ ॥ प्रलयाग्निके समान इन महाराजके उल्बण बाणोंका उत्पात देख सब बचे-बचाये दैत्य पातालको भाग गये ॥ १८ ॥

दैत्योंके भागनेपर इस राजर्षिने स्त्रियोंके समस्त धन और पुर जीतकर देवराज इन्द्रको दे दिया। इन कार्योंके करनेसे इन महाराजका 'पुरंजय' नाम हुआ ॥ १९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! इस पुरञ्जयका पुत्र अनेना था, इसका पुत्र पृथु, उससे विश्वगंधिने जन्म ग्रहण किया, उसका पुत्र चन्द्र और उसका पुत्र युवनाश्व हुआ ॥२०॥ युवनाश्वका पुत्र शावस्त हुआ जिसने शावस्तीपुरी बसाई। इसशावस्तका पुत्र बृहदश्व, उसका पुत्र कुवलयाश्व हुआ ॥ २१ ॥ इस महाबलवान् राजाने उतङ्कऋषिका प्रिय कार्य करनेको अपने इक्कीस सहस्र (२१०००) पुत्रोंको साथ ले धुन्धुनामक असुरको मार डाला था ॥ २२ ॥ इसका नाम धुन्धुमार हुआ, परन्तु इसके समस्त पुत्र धुन्धुकी

जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ॥ प्रत्ययच्छत्स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥ १९ ॥ पुरञ्जयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः ॥ विश्वरन्धिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ २० ॥ शाबस्तस्तत्सुतो येन शाबस्ती निर्ममे पुरी ॥ बृहदश्वस्तु शाबस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥ २१ ॥ यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामासुरं बली ॥ सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद्वृतः ॥ २२ ॥ धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ॥ धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २३ ॥ दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ॥ दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४ ॥ बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित ॥ युवनाश्वोऽभवत् तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥ २५ ॥ भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ॥ इष्टिं स्म वर्तयांचक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥ २६ ॥

मुखाग्निसे भस्म हो गये ॥ २३ ॥ केवल तीन बचे थे अर्थात् दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व ॥ २४ ॥ इन तीनोंमें दृढ़ाश्वका पुत्र हर्यश्व और हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ हुआ। निकुम्भका पुत्र बहुलाश्व हुआ, उससे कृशाश्व उत्पन्न हुआ। इस कृशाश्वका पुत्र सेनजित् नामक हुआ ॥२५॥ उसका पुत्र युवनाश्व हुआ। यह युवनाश्व सन्तानरहित था, इसलिये वनको चला गया। इसके सौ १०० स्त्रियां थीं, संतानके न होनेसे वनमें जाकर यह अपनी सब भार्याओंके साथ शोकाकुल रहा करता था, यह देख वनवासी ऋषिलोगोंने राजापर दया

की और पुत्रके लिये सावधान हो उस राजासे इन्द्रदैवत्य यज्ञ यज्ञ कराने लगे ॥२६॥ हे राजन् ! अब आश्चर्यकी बात सुनोः—जब कि यज्ञ हो रहा ही था, तभी युवनाश्व एक दिन रात्रिके समय प्यासा हो जलके लिये यज्ञशालामें गया । उस समय यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण सो रहे थे, तब राजाने उस जलको उठाकर पी लिया कि जो राजाकी स्त्रीको देनेके लिये मन्त्रसे पढ़कर रखा गया था * ॥२७॥ जब पुरोहित लोग जागे तो उन्होंने देखा कि कलशमें जल नहीं है, इसलिये विस्मित होकर पूछा कि "यह कर्म किसका है ? पुत्रके उत्पन्न करनेवाले जल्को कौन पी गया" ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त जब ज्ञान हुआ कि ईश्वर प्रेरित होकर राजाने यह जल स्वयं पान कर लिया है । तब "अहो !

राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ॥ दृष्ट्वा शयानान् विप्रांस्तान् पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥ २७ ॥ उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ॥ पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥ २८ ॥ राज्ञा पीतं विदित्वाऽथ ईश्वरप्रहितेन ते ॥ ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥ २९ ॥ ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ॥ युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥ ३० ॥ कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ॥ मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ॥ ३१ ॥

भाग्य बड़ा बली है, पुरुषका बल किसी कामका नहीं" वाक्य उच्चारण करते हुए ईश्वरको वारंवार नमस्कार करने लगे ॥२९॥ इसके पीछे जब समय पूर्ण हो गया, तब युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाड़कर चक्रवर्तिलक्षणोंसे युक्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ यह देखकर ब्राह्मणलोग दुःखित हो यह कहकर चिल्लाने लगे कि, हा ! यह कुमार दूध पीनेको बहुत रो रहा है, वह अब क्या पीयेगा ? तब देवराज इन्द्र वत्स ! रोओ मत "मां धाता, अर्थात् मुझे पान कर" यह कहा और अपनी अंगुली पीनेको दी इसीलिये इनका नाम 'मान्धाता' हुआ ॥३१॥

* शंका—राजा युवनाश्वने आप उठकर चोरके तुल्य ब्राह्मणोंको सोता देखकर यज्ञका जल पी लिया, अनुचरोंके होते हुए यह बालकोंके समान कर्म राजाने क्यों किया ?

उत्तर—पुष्करजीमें राजा युवनाश्व गंगाजीके राजा शन्तनुके वीर्यसे गर्भ देखकर बहुत हँसा, परन्तु गंगाजीने युवनाश्वके अपराधका कुछ ध्यान न किया, और क्षमा किया परन्तु राजाके अपराधको भगवान्ने क्षमा नहीं किया. इसलिये राजाओंमें श्रेष्ठ जो युवनाश्व राजा था उसको माया से मूर्ख बना दिया और यह जल पिलाकर उसको गर्भ धारण करा दिया कि जैसे तू गर्भ देखकर हँसा था ऐसे ही तेरा गर्भ देखकर लोग हसेंगे ।

मान्धाताके पिता युवनाश्व देव ब्राह्मणोंके प्रसादसे मरे नहीं, बरन् उन्होंने तप करके कुछ दिनों पीछे उसी स्थानमें सिद्धि प्राप्त की ॥ ३२ ॥ रावणादि चोरगण इस मान्धाताके प्रतापसे कम्पायमान हो त्रस्त होते थे, इसलिये इन्द्रने मांधाताका दूसरा नाम 'त्रसदस्यु' रखा था। इसके उपरान्त युवनाश्वका पुत्र सम्राट् हो भगवान् वासुदेवके तेजसे अकेला ही सप्तद्वीपोंको पालता था॥३३॥३४॥ आत्मवान् होकर भी अनेक-अनेक दक्षिणा दे अनेक यज्ञ करने लगा, उसने यज्ञरूपी सर्व देवमय सर्वात्मक सब इंद्रियोंसे परे उन देवताकी पूजा करने लगा ॥ ३५ ॥ कि द्रव्य, मंत्र, बलि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विक्, धर्मोपदेश और काल ये सब जिनके स्वरूप हैं ॥ ३६ ॥ हे महाराज

न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ॥ युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥३२॥ त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम तस्य वै ॥ यस्मात्त्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥३३॥ यौवनाश्वोऽथमान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ॥ सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥ ३४ ॥ ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम् ॥३५॥ द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथार्त्विजः ॥ धर्मो देवश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥३६॥ यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ॥ सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥३७॥ शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृपः ॥ पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ॥ ३८ ॥ तेषां स्वसारः पञ्चाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥ यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः ॥३९॥ निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ॥ जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ॥ ४० ॥

परीक्षित् ! जहांसे सूर्य भगवान् उदय होते हैं और जहां अस्त हुआ करते हैं, इतनी दूरतक सब स्थान युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके क्षेत्र कहे जाते थे ॥३७॥ इस राजा मांधाताके शशबिन्दुकी पुत्री इन्दुमतीके गर्भसे पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचुकुन्द ये तीन पुत्र हुए ॥३८॥ इन तीन पुत्रोंकी ५० पचास बहनें थीं, अर्थात् तीन पुत्रोंके अतिरिक्त मान्धाताके पचास कन्या हुई थीं और वे सब सौभरि ऋषिको व्याही गयीं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! सौभरि यमुनाके जलमें बैठ तप कर रहे थे, तब उन्होंने मीनराजके मैथुनका आनन्द देखा कि जिससे इनका भी

भा० न०
॥१९॥

विवाह करनेमें बड़ा भारी अनुराग हुआ । इस लिये तप करना छोड़ मान्धाताके निकट जाकर अपनी स्त्री बनानेको एक कन्या मांगी ॥४०॥ मान्धाताने इन ऋषीश्वरकी प्रार्थना सुनकर कहा कि हमारी कन्याका स्वयंवर होगा, जो कन्या तुम्हें वरे उसको तुम लेना यह सुनकर सौभरिने मनमें समझा कि हम जरा (बुढ़ापा) से जीर्ण हो गये हैं और हमारे केश श्वेत हो गये हैं, बड़ी अवस्था हो जानेसे मस्तक कम्पायमान होता है, इसपर भी हम तपस्वी हैं, यही सब जानकर राजा हमें कन्या देनेको सम्मत न हुए । इन्होंने हमें स्त्रियोंका कुप्यारा जान छलसे हमको लौटा दिया । अच्छा अब हम अपनी चेष्टा ऐसी बनाते हैं कि जिसस मनुष्य स्त्रियोंकी तो बात ही क्या ? सुरसुन्दरी भी देखकर चाहना कर बैठें । यह सोच-विचार इस कार्यके करनेको निश्चय किया इसके उपरान्त तप प्रभावसे इनका रूप वैसे ही हो गया जैसा

सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्यां स्वयंवरे ॥ स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः ॥४१॥ वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृता ॥ साधयिष्ये तथाऽत्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ॥ किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥४२॥ मुनिः प्रवेशितः क्षत्रा कन्यान्तः पुरमृद्धिमत् ॥ वृतश्च राजकन्याभिरेकः पञ्चाशता वरः ॥ ४३ ॥ तासां कलिरभूद्भू-यांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ॥ ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥४४॥ स बह्वृचस्ताभिरपारणीयतपः श्रियाऽन-र्घ्यपरिच्छदेषु ॥ गृहेषु नानोपवनामलाम्भस्सरस्सु सौगन्धिककाननेषु ॥ ४५ ॥ महार्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुले-पाभ्यवहारमाल्यकैः ॥ स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गबन्दिषु ॥ ४६ ॥

कि इन्होंने सोचा था । ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ एक समय राजपुत्री प्रतिहारी इनको राजकन्याओंके अन्तःपुरमें ले गयी । इससे पचासों कन्याओंने इनको अपना पति बनाया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! मान्धाताकी कन्याओंमें प्रथम परस्पर बड़ा प्रेम था परन्तु सौभरि ऋषिसे व्याह करनेके लिये उनमें चित्त लगाकर सबकी सब परस्पर क्लेश करने लगीं और बोलीं कि "यह हमारे योग्य वर है, तुम्हारे योग्य नहीं है" बस, इन ऋषिके लिये उनमें बड़ा झगड़ा मचने लगा । तब सौभरि ऋषि बोले कि तुम सब ही हमसे विवाह कर लो ॥ ४४ ॥ सौभरि ऋषि तप सामर्थ्य सम्पन्न थे, उनके कठिन तपःप्रभावसे उसी समय प्रत्येक भवनमें अनमोल सामग्री प्रस्तुत हुई और अनेक प्रकारसे वन, उपवन

भा० टी०
अ० ६

शोभायमान होने लगे, सरोवरोंमें सुगन्धित कुमुद, कल्हारके वन फूल उठे। जितने गृह थे, सब दास-दासियोंसे भलीभांति शोभायमान हो गये और सब कहीं भ्रमर गुंजार करने लगे, बन्दियोंने मधुर स्वरसे गाना आरंभ किया, वे ऋषि महामोलकी शय्या, आसन, बसन, भूषण, स्नान व उबटनादिसे सम्पन्न हो सब गृह व उपवनादिमें अपनी सब स्त्रियोंसहित सदा विहार करने लगे ॥४५॥४६॥ हे राजन्! सौभरिका गृहस्थाश्रम देखकर सात द्वीप पृथ्वीके राजा मान्धाताजी अति विस्मित हो गये। उन्होंने अपने राज्य और सम्पत्तिका गर्व छोड़ दिया ॥ ४७ ॥ सौभरि ऋषि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें रहकर भोग विलासके सुख भोगने लगे परन्तु तो भी उनको किसी प्रकार से तृप्ति नहीं हुई, क्योंकि जिस प्रकार घीकी बूंदे गिरनेसे अग्नि बढ़ती ही है, घटती नहीं ॥ ४८ ॥ किसी समय ऋग्वेदाचार्य यह सौभरि

यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ॥ विस्मितः स्तम्भमजहात्सार्वभौमश्रियाऽन्वितम् ॥४७॥ एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ॥ सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८ ॥ स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ॥ ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥४९॥ अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ॥ अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात् प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५० ॥ संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिन्द्रियाणि ॥ एकश्चरन्रहसि चित्तमनन्त ईशे युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसङ्गः ॥५१॥

ऋषि एकान्तमें बैठ कर अपने आपकी चिन्ता करने लगे। तब वह उस तपस्याकी हानिको समझे, जो उनको मत्स्यके संसर्गसे प्राप्त हुई थी ॥ ४९ ॥ इसलिये अछताय पछताय कर आप ही आप बोले कि हाय! हम साधुचरित्रव्रत और तपस्वी थे, हमारा यह नाश तो देखो कि हमने जलमें जलचरके संगमें रहनेसे सदाका इकट्ठा किया तपस्यारत्न खो दिया ॥ ५० ॥ मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि दाम्पत्य धर्मवान् पुरुषोंका संग त्याग करें और इन्द्रियोंकी अग्नि उत्पन्न करनेको रोकना भी उनका आवश्यकीय कार्य है, अकेले निर्जन वनमें भ्रमण करके अनन्त परमेश्वरमें चित्त लगाना उचित है। जो कहीं प्रसंग आ जाय तो ईश्वरके लिये केवल धर्मवान् साधुका संग करना चाहिये ॥५१॥

भा० न० हम अकेले जलमें तप कर रहे थे, वहां मत्स्यसंसर्गवश भार्या ग्रहण करनेकी हमारी अभिलाषा हुई और एकके बदले (५०) पचास
॥२०॥ स्त्रियां मिलीं और एक-एक स्त्रीके गर्भसे सौ-सौ पुत्र उत्पन्न हुए, कि जिससे सब पांच हजार हुए तो भी हम इस लोक व परलोकके मनोरथका अन्त नहीं पाते, क्योंकि मायाके गुणसे मेरी मति हरी गयी है, इसलिये मैं विषयमें ही पुरुषार्थ समझता हूँ ॥५२॥ हे राजन् ! जब सौभरि इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वास करते-करते विरक्त हुए तब संग छोड़नेको वानप्रस्थधर्म धारण कर वनको चले गये। उनकी पतिपरायणा सब स्त्रियाँ उनके संग संग चलीं ॥ ५३ ॥ आत्मज्ञानके जाननेवाले मुनि जिससे परमात्मा मिल जाय ऐसी तीक्ष्ण तपस्या करके

एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्गः ॥ नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥५२॥ एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ॥ वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥५३॥ तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान् ॥ सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥ ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ॥ अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते म० नवम० इक्ष्वाकुवंशवर्णने सौभर्याख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मान्धातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ॥ पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ १ ॥ हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मान्धातृप्रवरा इमे ॥ नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः ॥ २ ॥

तीनों अग्नियोंके साथ आत्माको परमात्मामें मिला दिये ॥ ५४ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि, हे कुरुकुलभूषण !
भा० टी० अपने पतिकी ऐसी आध्यात्मिक गति अर्थात् परब्रह्ममें लीन होते देख उनकी सब स्त्रियाँ सत्यके प्रभावसे उन्हींके संग गयीं, जैसे अग्निके
अ० ७ शान्त हो जानेपर उसकी लपट उसके संग ही बुझ जाती है॥५५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ दोहा—सप्तम मान्धाता कुलहि, पुरूकुत्स हरिचन्द्र। भये सत्यव्रत जगतमें, पूरण परमानन्द॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! मान्धाताके श्रेष्ठ पुत्र अम्बरीषको युवनाश्वने पुत्रभावसे गोद लिया। अम्बरीषका बेटा हारीत हुआ, वह मान्धाताके गोत्रमें श्रेष्ठ हुआ ॥ १ ॥ हे राजन् !

उरगोंने अपनी बहन नर्मदाको पुरुकुत्ससे विवाह दिया, ॥ २ ॥ शेषजीके कहनेसे यह नर्मदा अपने स्वामी पुरुकुत्सको पातालमें ले गयी विष्णुशक्ति धारण करके वध करनेके योग्य अनेक गन्धर्वोंको निहत किया और पीछे अपने नागराजसे अनुपम वर प्राप्त किया; वह वर यह था कि नर्मदाका यह समस्त रसातलके आनेका व्यापार जो पुरुष स्मरण करेंगे, उनको सर्पसे भय नहीं होगा पुरुकुत्सका पुत्र त्रसदस्यु, इनके अनरण्य,॥ ३ ॥ ४ ॥ उनके हर्यश्व हुए, जिनसे वरुणजीने जन्म ग्रहण किया ! वरुणका पुत्र त्रिबन्धन हुआ त्रिबन्धनका पुत्र सत्यव्रत,

तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ॥ गन्धर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् ॥ ३ ॥ नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ॥ त्रसदस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत ॥४॥ हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ निबन्धनः ॥ तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः ॥ ५ ॥ प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद्गुरोः कौशिकतेजसा ॥ सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ॥ ६ ॥ पातितोऽवाक्छिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात् ॥ त्रैशङ्कवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७ ॥

जो कि दुःखके हेतु तीन दोषोंके रहनेसे त्रिशंकु नाम हुआ इसलिये इनके पिताने क्रोधित होकर शाप दिया कि तू चाण्डाल हो जा । इसलिये ये चाण्डालपनको प्राप्त हुए थे। फिर विश्वामित्र मुनिके प्रभावसे शरीरके सहित स्वर्गको गये और अबतक आकाशमें टिके हुए हैं । देवतालोगोंने अवाक्शिरा होकर स्वर्गसे गिराना चाहा था, परन्तु महर्षि विश्वामित्रने इनको अपने बलसे वहीं थाम दिया ॥५॥ इन त्रिशंकुके पुत्र सत्यव्रतधारी महात्मा हरिश्चन्द्र हुए इन्हीं राजर्षिके निमित्त वसिष्ठ और विश्वामित्रजी परस्पर शाप देकर आड़ी और बक

* शंका—हरिवंश यह तीन दोष प्रकट हैं –"यथा पिताको असंतुष्ट रखना, गुरुकी दुधारी गायका बध करना, विना धुली वस्तुका सेवन" यहां पर एक इतिहास है कि विश्वामित्र मुनिसे राजसूय यज्ञ कराकर इस त्रिशंकुने ब्राह्मणकी कुमारी कन्याका हरण कर लिया था ।

(बगला) पक्षी हुए और इन दोनोंने एक वर्ष तक घोर युद्ध किया था ॥ ६ ॥ ७ ॥ इन हरिश्चन्द्रके प्रथम कोई पुत्र न था; इसलिये सदा अनमने रहते थे। एक समय देवर्षि नारदजीके उपदेशसे जलाधिपति वरुणजीकी शरण जाकर प्रार्थनाकी कि हे देव ! आप हमें यह वर दें कि हमारे एक पुत्र हो । हे प्रभो ! जो हमारे वीर पुत्र उत्पन्न होगा तो हम उसी पुरुषपशुसे आपका यज्ञ करें वरुणजीने कहा कि ऐसा ही होगा । तब राजा हरिश्चन्द्रके रोहित नामक एक पुत्र हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ पुत्रके उत्पन्न होनेपर वरुणजी राजाके निकट आकर बोले कि हे राजन् !

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः ॥ वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥८॥ यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ॥ तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥९॥ जातस्सुतो ह्यनेनाङ्ग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति॥१०॥निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत्॥दन्ताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥११॥ जाता दन्ता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ यदा पतन्त्यस्य दन्ताः अथ मेध्यो भवेदिति ॥१२॥

तुम्हारे पुत्र हो गया, अब कहनेके अनुसार तुम हमारा यज्ञ करो कि जिसमें यह तुम्हारा पुत्र ही पशु बने । तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि हे देव ! दश दिन की आयु न होनेसे पशु पवित्र और यज्ञके योग्य नहीं होता, इसलिये मैं दश दिन बीतनेपर आपका यज्ञ करूंगा * ॥१०॥ हे राजा परीक्षित ! दश दिनके बीतते ही वरुणजी फिर आकर बोले कि अब यज्ञ करो । तब महाराज हरिश्चन्द्रने कहा कि दांत निकलनेपर यज्ञ किया जायगा ॥११॥ दांत निकलनेपर वरुणजीने आकर कहा कि दांत भी निकल आये अब तो यज्ञ करो। तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि दांत

उत्तर—यहां पर एक इतिहास प्रसिद्ध है कि—"विश्वामित्र मुनिने राजसूय यज्ञ कराकर उसकी दक्षिणामें सर्वस्व हरण कर राजा हरिश्चन्द्रको आर्त किया। यह सुन महर्षि वशिष्ठजी क्रोधित हो विश्वामित्रके पास जाकर यह शाप दिया कि अन्यायाचरण करनेके हेतु "तुम आड़ी पक्षी हो जाओ" विश्वामित्रने बदलेमें यह शाप दिया कि 'तुम बगला हो जाओ' फिर इन दोनों ने परस्पर आड़ी और बगला हो घोर युद्ध किया था."

* शंका—राजा हरिश्चन्द्रने सब यज्ञको त्यागकर पुत्रके मांस द्वारा यज्ञ करनेको क्यों विचार किया और वरुण भी ऐसे देव उससे बालहत्या ग्रहण करने को क्यों अंगीकार किया ? इस बातसे जान पड़ता है कि हरिश्चन्द्र और वरुण महापापी हैं ।

उत्तर—राजा हरिश्चन्द्र अपने आपको पुत्रहीन जानके मनमें राजनीति विचारकर पुत्रके मांससे यज्ञ करनेका विचार किया कि अभी मेरे पुत्र नहीं है, वरुणको लोभ देके जो मुझको हो जावेगा तो नहीं मारूंगा पुत्रके लिये झूठ बोलनेका पाप भी नहीं होगा, इसलिये हरिश्चन्द्रने पुत्रके मांस से यज्ञ करनेका विचार किया ।

गिरनेपर यह महा पवित्र यज्ञ मलीभांति सम्पूर्ण होगा ॥ १२ ॥ कुछ दिन पीछे रोहितके दांत गिर गये तब वरुणजी फिर राजाके निकट आकर बोले कि हे राजन् ! हमारे पशुके दांत गिर गये, अब तो यज्ञ अवश्य ही करना चाहिये । हरिश्चन्द्रने कहा कि दांत गिरकर जबतक फिर न उपजें तबतक पशु पवित्र नहीं होता, यह सुनकर वरुणजी अपने स्थानको चले गये ॥१३॥ और कुछ समय उपरान्त फिर आकर बोले कि तुम्हारे पुत्रके दांत दूसरी बार उत्पन्न हो आये, अब तो यज्ञ करो । तब राजर्षि हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया कि हे वरुणदेव ! जब क्षत्रिय पशु कवच बख्तर पहरने योग्य होता है, तब वह पवित्र कहा जाता है,सो हमारा पुत्र अभी इस योग्य हुआ नहीं तो भला हम कैसे यज्ञ कर दें ॥ १४ ॥ हे महाराज परीक्षित ! राजा हरिश्चन्द्रका चित्त स्नेहके वश हो गया था,उन्होंने पुत्रानुरागके वश यज्ञ करनेके लिये वरुणजीको

पशोर्निपतिता दन्ता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशोः पुनर्दन्ता जायन्तेऽथ पशुः शुचिः ॥ १३ ॥ पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ सान्नाहिको यदा राजन्राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥ १४ ॥ इति पुत्रानुरागेणस्नेहयन्त्रितचेतसा ॥ कालं वञ्चयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥ १५ ॥ रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् ॥ प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥ पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ॥ रोहितो ग्राममेयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत ॥ १७ ॥ भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः ॥ रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत्समाम् ॥ १८ ॥ एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा ॥ अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाऽऽह वृत्रहा ॥ १९ ॥

जो-जो समय बताये,वह वरुणजी उसी समयकी राह देखने लगे॥१५॥कि इतनेमें रोहित पिताका अभिप्राय अर्थात् अपनेको पशु बनाकर वरुणजीके यज्ञ करनेकी इच्छा जान गया, इसलिये वह अपने प्राण बचानेको धनुष ग्रहण कर वनको चला गया॥१६॥ इससे वरुणजीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रको सताया, इसलिये राजा हरिश्चन्द्रका पेट अति बड़ा हो गया।इसके पीछे रोहितने सुना कि पिताजीको वरुण देवने पीड़ा दी है, इसलिये अपनी पुरीमें जानेकी इच्छा की, परंतु देवराज इंद्रने वहां आकर रोहितको जानेसे रोका ॥१७॥ और कहा कि तीर्थोंकी सेवा करते हुए पृथ्वीपर विचरण करना अत्यन्त पुण्यदायक है, तुम ऐसा ही करो । यहां रोहिताश्वने एक वर्षतक वनमें वास किया था ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें वर्षमें जब रोहितने फिर पिताजीके पासजानेकी इच्छा की,

उसी समय देवराज इन्द्र ब्राह्मण रूपसे उसके निकट आकर इस प्रकारसे कहने लगे-"पुण्यतीर्थोंमें विचरण करो" ॥ १९ ॥ इसलिये रोहित राजकुमारने छः वर्षतक वनमें विचरण किया इस प्रकार जब रोहितको छठा वर्ष वनमें रहते बीत गया और पुरीमें आने लगा,तब यह रोहित अजीगर्तके मध्यम पुत्र शुनःशेपको उसके पितासे मोल ले आये ॥ २० ॥ और इस शुनःशेपको अपने पिता राजा हरिश्चन्द्रको देकर प्रणाम किया इसके पीछे महायशस्वी प्रसिद्ध महात्मा महाराज हरिश्चन्द्रजीने नरमेधयज्ञकी विधिसे वरुणदेवताका यज्ञ प्रारंभ किया । ॥ २१ ॥ तब वरुणजीने राजा हरिश्चन्द्रकी उदरपीड़ा शांत कर दी इस यज्ञमें विश्वामित्रजी होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा और आयास्य मुनि सामग हुए ॥२२॥ हे राजा परीक्षित् ! इस व्यापारसे देवराज इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रके ऊपर प्रसन्न हो उनको एक सुवर्णका

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ॥ उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥२०॥ शुनश्शेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत ॥ ततः पुरुष मेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ॥२१॥ मुक्तोदरोऽयजद् देवान् वरुणादीन् महत्कथः ॥ विश्वामित्रोऽभवत् तस्मिन् होता चाध्वर्युरात्मवान् ॥ २२ ॥ जमदग्निरभूद् ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः ॥ तस्मै तुष्टोददाविन्द्रश्शातकौम्भमयं रथम् ॥२३॥ शुनश्शेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात् प्रचक्ष्यते ॥ सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥२४॥ विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् ॥ मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसाऽपोऽनिलेन तत् ॥२५॥ खे वायुंधारयंस्तच्चभूतादौ तं महात्मनि ॥ तस्मिन् ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानंविनिर्दहन् ॥२६॥

रथ दिया ॥ २३ ॥ हे महाराज ! शुनःशेपका माहात्म्य (विश्वामित्र उपाख्यान के प्रसंगमें) आगे वर्णन करेंगे हे महाराज ! भार्यासहित राजा हरिश्चन्द्रका सत्य, सामर्थ्य और धैर्य देखकर महामुनि ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे, इसलिये उन्होंने महाराज हरिश्चन्द्रको अविहत अर्थात् परमज्ञान दिया था तब इन राजर्षि हरिश्चन्द्रजीने अन्नमय मनको अन्नशब्दवाच्य पृथ्वीमें धारण अर्थात् पृथ्वीके साथ मिलकर फिर उसको जलके साथ मिलाया इसके उपरांत उस जलको तेजके साथ मिलाकर उस तेजको वायुके साथ मिलाया, फिर पवनको आकाशमें धारण कर उस आकाशको अहंकारमें मिला दिया, फिर उस अहंकारको महत्तत्त्वमें मिलाकर विषयकी

ओरसे हटाकर ज्ञानांशका आत्मस्वरूपमें ध्यान कर उससे आत्माके आवरणभूत अज्ञानको भस्म कर डाला ॥२५॥२६॥ फिर निर्वाण सुख संपत्तिसे ज्ञानांशको छोड़ मुक्त हो अनिर्देश्य और अप्रत्यक्ष स्वरूपमें स्थित हुआ॥२७॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा—अष्टम रोहितवंशमें, प्रगटे सगर भुवाल । तिनके सुत ऋषिशापसे, भस्म भये तत्काल ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! रोहितका पुत्र हरित हुआ । इस हरितसे चंपने जन्म लिया जिसने चंपापुरी बसायी । चंपका पुत्र वासुदेव और वासुदेवका पुत्र विजय हुआ ॥ १ ॥ विजयका पुत्र भरुक, उसका पुत्र वृक और वृकसे बाहुकने जन्म लिया । जब शत्रुओंने

हित्वा तां स्वेन भावेननिर्वाणसुखसंविदा ॥ अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥ २७ ॥ इति श्रीभाग० म० नवम० हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता ॥ चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्यचात्मजः ॥ १ ॥ भरुकस्तत्सुतस्तस्माद् वृकस्तस्यापि बाहुकः ॥ सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २ ॥ वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनुमरिष्यती ॥ और्वेण जानताऽऽत्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥ ३ ॥ आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह ॥ सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥ ४ ॥ सगरश्चक्रवर्त्यासीत् सागरो यत्सुतैः कृतः ॥ यस्तालजङ्घान् यवनाञ्छकान् हैहयबर्बरान् ॥ ५ ॥

इस बाहुकका राज्य छीन लिया तब यह अपनी स्त्रियोंको साथ ले वनमें चला गया ॥२॥ उसी स्थानमें वृद्ध होकर वह मृत्युको प्राप्त हुआ । उनकी स्त्री उनके साथ सती होनेको जाती थी कि महर्षि और्वने उसको गर्भवती जानकर मरनेसे निवारण किया *॥३॥ रानीकी सौतोंने इसको गर्भवती जानकर हिंसाके वश हो उसके गर्भका नाश करनेको अन्नके सहित गरल (विष) मिलाकर उसे खानेको दे दिया, परंतु वह गर्भ विष देनेसे विनष्ट नहीं हुआ । तब इस गरलके संग उत्पन्न होनेसे उस पुत्रका नाम सगर हुआ ॥४॥ हे महाराज परीक्षित् ! यह

---

* शंका—और्वऋषिने राजाकी स्त्री भस्म होती हुई को क्यों रोका ? अपने आपको पुत्रवान् क्यों माना कि यह स्त्री भस्म नहीं होगी तो हमारे पुत्र होगा, यह बड़ा संदेह है ।

उत्तर—भूत, भविष्य वर्तमानकी बात जाननेवाले जो और्वऋषि थे वह ऐसा जानके कि राजा सगर बड़ा बलवान होगा और हमारा शिष्य होगा, संसार में हमारी कीर्ति होगी, लोकमे और शास्त्र में ज्ञानी लोगों का यह विचार है कि,पुत्रमे और शिष्यमे कुछ भेद नहीं समझना चाहिये, यह दोनों बराबर हैं ऐसा विचारके सगरको पुत्र मानकर अपने आपको पुत्रवान मानने लगे ॥

सगर बड़ा प्रतापी और चक्रवर्ती राजा हुआ। इस राजाने अपने गुरु औौर्वऋषीश्वरके कहनेसे तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर॥५॥ इन जातियोंको मारा नहीं, किन्तु राजा सगरने प्रत्येक जातिको पृथक् पृथक् प्रकारसे विकृत किया था अर्थात् किसी जातिके केश सम्पूर्ण मुंडवा दिये, किसीके दाढ़ी मूछ रखवा दीं, किसी जातिको खुले केश किया और किसीको अर्धमुंडित॥६॥ किसी जातिको अन्तर्वासविहीन करके केवल बहिर्वासधारी किया और किसी जातिको बहिर्वासहीन करके केवल कौपीनधारी किया। हे राजन्! महाराज सगरने महर्षि और्वके बताये हुए उपायसे अश्वमेध यज्ञ करके सर्व वेद और सर्वदेवमय परमात्मा परमेश्वर भगवान् हरिकी पूजा की। जब उसने पृथ्वीपर भ्रमण करनेको घोड़ा छोड़ा, तब उसको देवराज इन्द्रने हरण कर लिया॥ ७॥ ८॥ हे कुरुप्रवीर! सगर राजाके दो स्त्री सुमति और

नावधीद्गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः॥ मुण्डाञ्छ्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान्॥६॥ अनन्तर्वाससः कांश्चिद्बहिर्वाससोऽपरान्॥ सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम्॥॥ ७॥ और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम्॥ तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः॥८॥ सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः॥ हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्न्यखनन् महीम्॥ ९॥ प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके॥ एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः॥ १०॥ हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्रिणः॥ उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः॥ ११॥ स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः॥ महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात्॥ १२॥

केशिनी थीं। राजाने यज्ञका घोड़ा ढूँढ़नेके लिये सुमतिके साठ हजार ६०००० पुत्रोंको आज्ञा दी। तब आज्ञाको पाकर वे सुमतिके पुत्र अहंकार करके यज्ञके घोड़ेको खोजनेके लिये सारी पृथ्वी खोजने लगे॥९॥ जब पृथ्वीपर घोड़ा नहीं मिला तो चारों ओरसे पृथ्वीको खोदने लगे। कुछ दिन पीछे यह सगरके पुत्र उत्तर पूर्वके कोनेमें जहां महर्षि कपिलदेवजीका आश्रम था वहां पहुँचे और वहांपर उस घोड़ेको बँधा हुआ देख "इसने हमारे घोड़ेको चुराया है, यही चोर है देखो कैसी आँखें बन्द कर ली हैं? इस दुराचारी पापीको अभी मार डालो" इस प्रकारसे कहकर यह साठ हजार सहोदर भाई अस्त्र-शस्त्र उठाकर महात्मा कपिलदेवजीको मारने दौड़े। भगवान् कपिलजी उस समय समाधिमें स्थित थे, उन्होंने कुलाहल सुनकर समाधि त्याग दी और नेत्र खोले॥१०॥ हे राजन्! देवराज इन्द्रकी मायासे सगरके पुत्रोंकी

बुद्धि नाशको प्राप्त हो रही थी, इसलिये वे महर्षि कपिलदेवजी पर ऐसा अत्याचार करनेको प्रस्तुत हुए, परंतु इस महाकुकार्यको करनेके हेतु अतिमहान् अग्नि,जो कि महर्षि कपिलदेवजीके शरीरसे निकलती थी, उससे यह सबके सब क्षणमात्रमें भस्म हो गये॥१२॥ हे परीक्षित् ! कोई-कोई यह कहते हैं कि कपिलदेवजीकी क्रोधाग्निसे सगरके पुत्र भस्म हुए, यह साधुवाद नहीं क्योंकि भगवान् कपिलदेवजी शुद्ध सत्त्वमूर्ति हैं उनका भी आत्मा जगत्को पवित्र करनेवाला है, आकाशमें पार्थिव धूरिके समान उन कपिलदेवमें किस प्रकारसे क्रोधरूपी तमोगुणका उदय हो सकता है ? ॥१३॥ और जिन कपिलदेवजीने इस संसारमें सांख्य शास्त्रकी अति दृढ़ नौका चलायी है, जिस नौकापर चढ़कर मुमुक्षु लोग तुरंत मृत्युके पथरूप संसारके पार होते हैं, उन सर्वज्ञ सर्वात्मारूप महामुनिमें शत्रु मित्रादि भेददृष्टिका होना किस प्रकारसे सम्भव

न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ॥ कथं तमो रोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥ १३ ॥ यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ॥ भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥ १४ ॥ योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्यां नृपात्मजः ॥ तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम पितामहहिते रतः ॥ १५ ॥ असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् ॥ जातिस्मरः पुरा सङ्गाद्योगी योगाद्विचालितः ॥ १६ ॥ आचरन् गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ॥ सरय्वां क्रीडतो बालान् प्रास्यदुद्वेजयञ्जनम् ॥ १७ ॥

है ? ॥ १४ ॥ सगर राजाके एक पुत्रका नाम असमंजस था " केवल अज्ञानी लोगही इनको असमंजस कहते थे, परंतु वास्तवमें यह समंजस ही थे," जो केशिनी रानीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, उन असमंजसका पुत्र अंशुमान् सदा अपने दादाके हितकारी कार्य करता था ॥१५॥ हे राजन् ! यह असमंजस पहले जन्ममें योगी था, संग करनेके हेतु योगसे भ्रष्ट हुआ, इसलिये अपनी जातिका स्मरण कर दूसरे जन्ममें भी संगको छोड़नेको निन्दनीय कार्य करनेवाली जातिकी भांति निन्दनीय कर्म करता था अर्थात् लोगोंको उद्वेग उत्पन्न कर लोक निंदित आचार और अपनी जातिके अर्थ विप्रिय कर्म करता हुआ खेल ही खेलमें बालकोंको सरयूके जलमें डाल देता था ॥ १६ ॥ १७ ॥

भा० टी० इस प्रकारके कर्म देख इनके पिता राजा सगरने पुत्रपनका स्नेह छोड़कर त्याग दिया। तब इसने अपने योगके प्रभावसे मृतक बालकोंको
॥२४॥ फिर जिलाकर सबको दिखाया और फिर उस पुरीसे निकल कर चले गये ॥ १८ ॥ हे राजन् ! अयोध्यावासी प्रजाके लोग असमंजसके मारे हुए अपने-अपने बालकोंको सजीव देखकर महाविस्मित हुए और राजा सगरने फिर असमंजसके लिये महासन्ताप किया॥१९॥श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि हे कुरुकुलभूषण ! अब इधरकी कथा सुनिये कि जब सुमतिके सब पुत्र मारे गये तब राजा सगरने यज्ञके घोड़ेको खोजनेके लिये असमंजसके पुत्र अंशुमान्को भेज दिया,तब अंशुमान् उसी मार्गसे चले,जो कि उनके चाचा लोगोंने खोदकर बनाया था और फिर बहुत दूर जाकर भस्मके ढेरके समीप ही घोड़ेको बँधा हुआ देखा ॥२०॥ हे राजन् ! उस स्थानमें कपिलमुनि साक्षात्

एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै ॥ योगैश्वर्येण बालांस्तान् दर्शयित्वा ततो ययौ ॥ १८ ॥ अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान् पुनरागतान् ॥ दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन्राजा चाप्यन्वतप्यत ॥१९॥ अंशुमांश्चोदितोराज्ञा तुरङ्गान्वेषणे ययौ ॥ पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम् ॥ २० ॥ तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ॥ अस्तौत्समाहितमनाः प्राञ्जलिः प्रणतो महान् ॥ २१ ॥ अंशुमानुवाच ॥ न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ॥ कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥ २२ ॥ ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान् विपश्यन्त्युत वा तमश्च ॥ यन्मायया मोहितचेतसस्ते विदुः स्वसंस्थं न बहिः प्रकाशाः ॥ २३ ॥

भगवान्‌रूप बैठे थे, उनको बैठा हुआ देख महात्मा अंशुमान् सावधान चित्तसे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे॥२१॥ हे देव ! जो ब्रह्मा
भा० टी० जन्मसे रहित हैं,उन्होंने भी अबतक आत्मासे परे जो परमेश्वर आप हैं; आपको समाधि लगाकर भी नहीं देख पाया, न वे युक्तिसे आपको
अ० ८ जान सके फिर दूसरे अर्वाचीन पुरुष आपको कैसे देख सकते हैं ? ब्रह्माजीके मन, शरीर और बुद्धिसे जो विविध देव तिर्यक् नर आदिकी सृष्टि होती है, वे लोग उसमें ही उत्पन्न हुए हैं फिर उसपर हम उनसे भी मूर्ख हैं, इसलिये हमको आपके दर्शन पानेकी कुछ भी सम्भावना नहीं है ॥ २२ ॥ हे देव ! जो पुरुष देहधारी है, यद्यपि आप उनकी आत्मामें भलीभांति विराजमान हैं तो भी आपको वे नहीं जानते, केवल

सब गुणोंको देखते हैं अथवा गुण भी उनको दिखाई नहीं देते, केवल तमको ही देखते हैं क्योंकि उनमें त्रिगुणात्मिका बुद्धि ही प्रधान है, अर्थात् वह बुद्धिके वश हैं। इसलिये जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें विषय देखते हैं और सुषुप्ति अवस्थामें केवल तम ही देखते हैं। आप निर्गुण हैं, इससे आपको किसी अवस्था में नहीं देख पाते,क्योंकि उनका चित्त आपकी मायासे मोहित हो रहा है ॥२३॥ हे प्रभो ! आप ज्ञानघनस्वभाव अर्थात् शुद्धसत्त्वमूर्ति हैं इसलिये जिन पुरुषोंके माया गुण निमित्त भेद विध्वंसको प्राप्त हो गये हैं, ऐसे सनक, सनन्दनादि मुनिजनोंके भी आप विचारने योग्य हैं, मैं मूढ़ विचार करके भी किस प्रकार आपको जान सकता हूँ ? फलतःआप ज्ञानघनस्वरूप हैं, इसलिये ज्ञानगम्य नहीं हैं, यद्यपि आप विचारके विषय हों तो भी मैं मायाके गुणोंमें लिपटा हुआ हूँ, इससे विचार करनेको समर्थ नहीं हूँ ॥२४॥ हे प्रशान्त ! मायाके

तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ॥ सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि ॥ ॥ २४ ॥ प्रशान्त मायागुणकर्मलिङ्गमनामरूप सदसद्विमुक्तम् ॥ ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥ २५ ॥ त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ॥ भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः ॥ २६ ॥ अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः ॥ मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान् कपिलो मुनिः ॥ अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप ॥२८॥

गुणसे ही आपके विश्वसृष्ट्यादि कर्म हैं। आपका लिंग ब्रह्मादि रूप है, आप कार्यकारणसे परे हैं, आपने केवल ज्ञानका उपदेश देनेके लिये इस शुद्धसत्त्वमूर्तिको प्रकट किया है, इसलिये आप पुराण पुरुष हैं, मैं आपको केवल नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥ हे विभो ! यह लोक आपकी मायासे बना हुआ है। इसमें वस्तु बुद्धि करके काम, लोभ, ईर्ष्या और मोहसे जिन मनुष्योंका चित्त भ्रान्त है, वे सब ही गृहादिमें भ्रमण करते हैं ॥२६॥ परन्तु हे सर्वात्मन् ! आपकी कृपासे और आपका दर्शन होनेसे आज हमारा काम कर्म और इंद्रियोंका आश्रयरूप अतिदृढ़ मोहपाश छिन्न हो गया अर्थात् आपके प्रसादसे हम कृतार्थ हो गये ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे महाराज ! जब इस प्रकारसे स्तुति करके कपिलदेवजीका प्रभाव गाया,तब वे कपिलदेव भगवान् अनुग्रह कर सगरपुत्र अंशुमानसे यह वचन बोले ॥२८॥

भा० न० भगवान् कपिलदेवजी बोले कि हे वत्स! अपने दादाके यज्ञपशु इस घोड़ेको ले जाओ। जब अश्व पाकर भी अंशुमान् आकांक्षाके साथ खड़े
॥२९॥ रहे तब महर्षि कपिलदेवजी इनके मनका अभिप्राय जानकर बोले-तुम्हारे चाचा लोग, जो कि भस्म हो गये हैं, गंगाजल पानेके योग्य हैं, अन्य जलसे इनकी गति नहीं होगी॥२९॥ यह सुनकर अंशुमान्ने मुनिको शिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके यज्ञका घोड़ा ले राजा सगरके पास आया, सगर राजाने उस घोड़ेको पाकर यज्ञका शेष कार्य समाप्त किया ॥ ३० ॥ फिर राजा सगर निस्पृह हो गये और अंशुमान्के हाथमें राज्यका भार सौंप बन्धनोंसे छूट और मुनिके बताये योगमार्गमें जाकर उत्तमगतिको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव ॥ इमे च पितरो दग्धा गङ्गाम्भोऽर्हन्ति नेतरत् ॥२९॥ तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् ॥ सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥३०॥ राज्यमंशुमति न्यस्य निस्स्पृहो मुक्तबन्धनः ॥ और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीभाग० म० नवमस्कन्धे सगरोपाख्याने अश्वमेधाश्वानयनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ॥ कालं महान्तं नाशक्नोत् ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥ दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ॥ भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत् तपः ॥ २ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा—अंशुमान—कुलको कहौं, नृप खट्वांग समेत। गंगा लाये नवममें, भागीरथ श्रुतिसेत ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज! जिस प्रकार राजा सगर अपने पोतेको राज्यभार दे
भा० टी० तपस्या करनेको चले गये, अंशुमान् भी उसी प्रकार अपने पुत्रको राज्य दे गंगाजीके लानेकी कामनासे बहुत दिनोंतक तपस्या करते रहे,
अ० ९ परन्तु उनके मनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई। कुछ समय पीछे राजा अंशुमान् कालवश हो मृत्युको प्राप्त हुए॥१॥ अंशुमान्के दिलीप नामक पुत्र भी गङ्गाजीके लानेमें असमर्थ होकर कालके कवल हुए। इनके पुत्र भगीरथने गंगाके लानेके लिये बड़ी तपस्या की * ॥ २ ॥

* शंका—राजा सगरके वंशवाले सब राजा तपस्या करते करते मर गये परंतु संसारके पापनाश करनेवाली और अनेक विघ्नोंको हरनेवाली श्रीगंगा महारानी जगत्सुखदायिनी वैकुण्ठकी निशानीको कोई भी भूपाल भूमिपर नहीं ला सका परंतु राजा भगीरथने ऐसा क्या तप किया, जिस तपके करने से गंगाजीको पृथ्वीपर भगीरथजी ले आये !

तब गंगाजी इनको दर्शन देकर बोलीं कि हे वत्स ! हम तुमपर प्रसन्न हो वर देनेके लिये आयी हैं,यह सुनकर भगीरथजीने अपना अभिप्राय निवेदन किया ॥३॥ तब श्रीगंगाजीने कहा कि हे राजन् ! जब हम आकाशसे गिरेंगी तब किसी पुरुषको हमारा वेग अवश्य धारण करना पड़ेगा, नहीं तो हम पृथ्वीको फोड़कर पातालको चली जाऊंगी, अतः यह तो कहो कि हमारा वेग कौन धारण करेगा ? ॥४॥ और मुख्य बात तो यह है कि हम पृथ्वीपर नहीं जा सकेंगी, क्योंकि मनुष्य लोग हममें अपवित्र पदार्थ धोयेंगे, सो बताइये कि उस अपवित्रताको

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदाऽस्मि ते ॥ इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३ ॥ कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले ॥ अन्यथा भूतलं भित्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥४॥ किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम् ॥ मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥ ५ ॥ भगीरथ उवाच ॥ साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ॥ हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥ धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ॥ यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिवम् ॥ कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥ ८ ॥

हम कहां धोयेंगी ? ॥ ५ ॥ तब श्रीभगीरथजी बोले कि हे जननि ! संसारत्यागी ब्रह्मनिष्ठ साधुलोग अपने लोकपावन अंगोंसे आपकी अपवित्रता हर लेंगे, क्योंकि उनके हृदयोंमें सर्व अघहारी भगवान् नित्य विराजमान रहते हैं, इसलिये वे लोग पापके विनाश करनेको समर्थ हैं ॥ ६ ॥ और भगवान् रुद्र, जो कि सब शरीरधारियोंके आत्मा हैं और जिस प्रकार साड़ी सूतमें पोही हुई रहती है, वैसे ही वे शिवजी इस संसारमें अतिप्रीत हो रहे हैं, वे ही तुम्हारे इस प्रबल वेगको धारण करेंगे ॥ ७ ॥ हे राजा परीक्षित् राजा भगीरथ

उत्तर—जब राजा भगीरथकी अवस्था पांच वर्षकी हुई तब अपने पितरोंका चरित्र सुना कि, गंगाके लानेके लिये हमारे कुलमें दादा परदादा आदिने अनेक तप कर करके मर गये परंतु गंगा पृथ्वीपर न आयीं, पांच वर्षकी अवस्थामें गंगासहस्त्रनामका पाठ करना आरंभ किया, परंतु जिस दिन से पाठ करना आरंभ किया उस दिनसे जब तक गंगाजी नहीं आयीं तब तक एक दिन भी नहीं छोड़ा । राजा वृद्ध भी हो गये परंतु तो भी अपना प्रण नहीं छोड़ा उनका पूरा प्रण देखकर थोड़े ही तप करनेसे श्रीगंगाजी बालकपनसे अपना भक्त समझकर अत्यन्त प्रसन्न हो भगीरथजीके संग भूमिपर चली आयीं ॥

गंगाजीसे इस प्रकार कहकर तपस्या करके देवदेव महादेवजीको प्रसन्न करनेके लिये यत्न करने लगे। शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवजी इस राजराजर्षि पर बहुत शीघ्र प्रसन्न हो गये ॥८॥ महात्मा भगीरथजीने जो कुछ प्रार्थना की उसको लोकहितैषी भगवान् महादेवजीने 'तथास्तु' कहा और सावधान होकर गंगाजीको धारण किया। हे राजन् ! गंगाजीके माहात्म्यका वर्णन कैसे करें ? उनका जल भगवान् वासुदेवके चरणस्पर्शसे पवित्र हुआ है ॥९॥ राजर्षि भगीरथजी भुवनपावनी गंगाजीको उस स्थानपर ले आये कि जहां उनके पितृलोगोंकी भस्मका ढेर पड़ा था। भगीरथजी पवनके समान वेगगामी रथपर सवार हो आगे-आगे चलने लगे और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगाजी उनके पीछे-पीछे बहती हुई सब लोकोंको पवित्र कर भस्म हुए सगरके पुत्रोंपर अपना पवित्र जल डालने लगीं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे राजन् !

तथेति राज्ञाऽभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ॥ दधारावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥ भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ॥ यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥१०॥ रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती ॥ देशान्पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत्सगरात्मजान् ॥ ११ ॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि ॥ सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ १२ ॥ भस्मीभूताङ्गसंगेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥१३॥ न ह्येतत परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ॥ अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४ ॥

सगरके पुत्र ब्राह्मणका अपराध करके भस्म हुए थे, जबकी उनकी राखके ऊपर गंगाजीका जल पड़ा और वे स्वर्गको चले गये, तब उन लोगोंको कैसा फल मिलेगा, जो कि श्रद्धापूर्वक श्रीगंगामहारानी जगत्सुखदायिनीकी सेवा करते हैं ॥ १२ ॥ सगरके पुत्र अपनी राखपर गंगाजीका जल पड़नेसे जब पवित्र हो गये और स्वर्गको सिधारे तब जो पुरुष गंगाजीका व्रत धारण करेंगे और श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करेंगे, उनका स्वर्गमें जाना कुछ विचित्र बात नहीं है ॥ १३ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! यहां पर यह गंगाजीकी महिमा जो हमने वर्णन की, यह कुछ बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि ये भगवान्‌के चरणसे उत्पन्न हुई हैं और संसारके नाश करनेवाली हैं, अर्थात् इनकी सेवा करनेसे संसारका

आना-जाना छूट जाता है ॥१४॥ हे परीक्षित् ! अमल मुनिलोग श्रद्धासहित जिनमें मन लगाकर छोड़नेके अयोग्य देहका सम्बन्ध त्याग शीघ्र ही उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवके रूपको प्राप्त हो जाते हैं, उनके चरणसे उत्पन्न हुई गंगाजीका प्रभाव अवश्य ही अनिर्वचनीय है ॥ १५ ॥ राजा भगीरथके पुत्र श्रुत, उनके पुत्र नाभ, उनके सिन्धुद्वीप उत्पन्न हुए और उनके अयुतायु जन्मे ॥१६॥ उन अयुतायुके ऋतुपर्ण हुए, जो कि नलके सखा थे। ऋतुपर्णने राजा नलको चौपड़की विद्या सिखाकर उनसे अश्वविद्या सीखी थी। इन ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम हुआ ॥१७॥ उसका पुत्र सुदास, उसका बेटा सौदास हुआ, जो मदयन्तीका पति था, जिसको कोई-कोई मित्रसह और कोई-कोई कल्माषपाद

सन्निवेश्य मनो यस्मिन् श्रद्धया मुनयोऽमलाः ॥ त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५ ॥ श्रुतो
भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ॥ सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥ ऋतुपर्णो नलसखो
योऽश्वविद्यामयान्नलात् ॥ दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥ १७॥ ततःसुदासस्तत्पुत्रो मदयन्तीपतिर्नृप ॥
आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् ॥ वशिष्ठशापाद्रक्षोऽभूदनपत्यस्स्वकर्मणा ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ किंनि-
मित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
सौदासो मृगयां किंचिच्चरन्रक्षो जघान ह ॥ मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥ २० ॥ स चिन्तयन्नघं
राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ॥ गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥

कहते हैं, इनके कोई सन्तान नहीं हुई। यह अपने कर्मदोष और वसिष्ठजीके शापसे, राक्षसयोनिको प्राप्त हुए ॥१८॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! महात्मा सौदासको वसिष्ठजीने शाप क्यों दिया था ? इस कथाके श्रवण करनेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है, इसे कृपापूर्वक वर्णन कीजिये॥१९॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! एक समय राजा सौदासने मृगयाके लिये वनमें जाकर घूमते-घूमते एक राक्षसको मार डाला और उसके भाईको छोड़ दिया इसलिये यह निशाचर राजासे बदला लेनेकी खोजमें रहा। यह निशाचर इस राजाका बुरा चाहने लगा, रसोइयेका रूप बनाकर घरमें रहने लगा। एक दिन राजपुरोहित वसिष्ठजीने आकर भोजनकी इच्छा प्रकट की, तब इसी

कपटवेषधारी राक्षसने भोजन बनाया और उस भोजनमें मनुष्यका मांस भी मिला दिया ॥ २० ॥ २१ ॥ जब वह भोजन परोसा गया तब उस समय भगवान् वसिष्ठजीने दिव्य नेत्रोंसे देख लिया कि भोजनमें अभक्ष्य वस्तु मिलायी गयी है, इसलिये महाक्रोधित होकर राजाको शाप दिया कि "मनुष्यका मांस व्यवहार करनेसे तुम राक्षसयोनि पाओगे" ॥ २२ ॥ परन्तु पीछे महर्षि वशिष्ठजीने जाना कि यह कर्म राक्षसका किया हुआ है, तब वसिष्ठजीने शापका क्षय करनेको बारह वर्षका व्रत किया ॥ २३ ॥ राजा भी विना अपराध शाप पाकर क्रोधित हो हाथमें जल लेकर गुरुजीको शाप देनेके लिये प्रस्तुत हुआ, परन्तु उसकी स्त्री मदयन्तीने उसको निवारण किया, तब राजाने रोषसे तीव्र हो वह जल अपने पैरोंपर डाल लिया। इस राजर्षिने यह जल इसलिये अपने पैरोंपर डाला कि दिक्, आकाश, पृथ्वी

परिवेक्ष्यमाणं भगवान् विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा॥राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२ ॥ रक्षः कृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ॥ सोऽप्यपोऽञ्जलिनाऽऽदाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ २३ ॥ वारितो मदयन्त्याऽपो रुशतीःपादयो-र्जहौ ॥ दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥ २४ ॥ राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ॥ व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ ॥ २५ ॥ क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ॥ न भवान्राक्षसस्साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ २६ ॥ मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ॥ देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥ २७ ॥ देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः ॥ तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥ २८ ॥

यह सब ही जीवमय हैं ॥ २४ ॥ यह राजा कल्माषपाद राक्षसभावको प्राप्त हो एक समय वनमें विचरण कर रहा था। हे राजन्! इस प्रकार वनमें घूमते हुए उसने एक ब्राह्मणको ब्राह्मणीके साथ रति करता हुआ देखा ॥२५॥ उस समय इस राजाको बड़ी भारी भूख लगी थी, तब इसने क्षुधासे पीड़ित हो उनमेंसे ब्राह्मणको भक्षण करनेके लिये पकड़ लिया। ब्राह्मणके पकड़ लेनेसे ब्राह्मणी अत्यन्त दीन तनु छीन मन मलीन होकर बोली कि ॥ २६ ॥ हे राजन्! तुम राक्षस नहीं हो, इक्ष्वाकुवंशियोंमेंसे एक महारथी वीर हो। मदयन्तीके पति हो, आपको अधर्म करना उचित नहीं है। यह ब्राह्मण हमारा पति है, हम सन्तानकी इच्छासे इनकी सेवा कर रही थीं, अभी इनकी रति समाप्त नहीं हुई है,इसलिये आप अनुग्रह करके हमारे पतिको छोड़ दीजिये ॥२७॥ हे राजन्! इस मनुष्य देहके अखिल पुरुषार्थ

होते हैं, इसलिये देहसे नाशको सब अर्थोंका नाश कहा जाता है ॥२८॥ अधिक करके यह ब्राह्मण विद्वान् तपःशील और गुणयुक्त है और महापुरुष नामवाले परब्रह्म जो गुणयोगसे सब प्राणियोंमें अन्तर्हित हैं "सर्व भूतके आत्मा" इस प्रकारकी चिन्तासे यह उनकी आराधना करना चाहते हैं ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! हे धर्मज्ञ ! तुम राजर्षियोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये पितासे पुत्रके समान तुम्हारे हाथसे यह ब्राह्मण मारे जानेके योग्य नहीं है । हे राजन् ! कर्म, मन और वचनसे सब प्राणियोंके प्रति जो सुहृदाचरण करता है उसको ही विद्याविवेक सम्पन्न पंडित लोग शीलवान् कहा करते हैं ॥ ३० ॥ हे धर्मज्ञ ! आप साधुजनोंके सम्मत हैं, आज आप किस प्रकार गोवधके समान इस निष्पाप और तीन वेदोंके वक्ता ब्राह्मणका वध संमत समझते हैं ? ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! हम इनके विना एक क्षणको भी नहीं जी सकेंगी।

एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपश्शीलगुणान्वितः ॥ आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥ सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ॥ कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥ ३० ॥ तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ॥ कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान् ॥ ३१ ॥ यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ॥ न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥ ३२ ॥ एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् ॥ व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ॥ शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥ ३४ ॥ यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ॥ तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥ ३५ ॥ एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ॥ तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ॥३६॥

इन हमारे पतिको यदि तुमने अवश्य ही अपना भोजन करना विचारा है, तो मृतकतुल्य हमको भी तुम पहले भक्षण कर लो ॥ ३२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्राणह्मकी भार्याने इस प्रकार अनाथके समान हो करुणाके वचन कहे, परन्तु तो भी शापमोहित सौदासने उस ब्राह्मणको भक्षण कर ही लिया, कि जैसे व्याघ्र पशुको भक्षण कर जाता है ॥ ३३ ॥ जब ब्राह्मणीने देखा कि गर्भाधानकारी ब्राह्मणको राक्षसने भक्षण कर ही लिया, इसलिये अपने निमित्त शोक करते-करते क्रोधित हो इसने उस राजाको शाप दिया कि ॥ ३४ ॥ अरे पापात्मा ! तूने हमारे पतिको रतिसे अलग करके भक्षण कर लिया है,इसलिये तेरी मृत्यु भी रति ही करते होगी ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! पतिलोकपरायणा

वह ब्राह्मणी इस प्रकार इस सौदास राजाको शाप दे पतिकी अस्थि जलती हुई अग्निमें डाल और स्वयं भी उसी चितामें बैठकर स्वामी की गतिको प्राप्त हो गयी और जब बारह वर्ष बीत गये तब राजा सौदास शापसे छूट गया इसके पीछे जब यह राजा एक दिन मैथुन करनेको प्रस्तुत हुआ, तब इस राजाकी भार्याने ब्राह्मणीका शाप कहकर राजाको निवारण किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! तबसे राजा सौदास स्त्रीके सुखसे अलग हुआ और अपने कर्मदोषसे निःसन्तान रहा। कुछ कालके पीछे वसिष्ठ मुनिने राजाकी अनुमतिसे उसकी स्त्री मदयन्तीमें गर्भाधान किया ॥३८॥ परंतु यह अबला सात वर्षतक इस गर्भको धारण किये रही, किसी प्रकारसे उसने प्रसव नहीं किया, तब वसिष्ठने आकर अश्म (पत्थर) रानीके पेटमें मारा,इसलिये इस गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रका नाम अश्मक हुआ ॥२९॥ इस अश्मकसे मूलक

विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः ॥ विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥३७॥ ततः ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजाः ॥ वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८ ॥ सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत ॥ जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥ अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ॥ नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥ ततो दशरथस्तस्मात् पुत्र ऐडविडस्ततः ॥ राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत ॥ ४१ ॥ यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः ॥ मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥ ४२ ॥

राजाकी उत्पत्ति हुई। जब परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया उस समय उसकी स्त्रियोंने चारों ओरसे घेरकर परशुरामजीके कोपसे रक्षा की थी, इसलिये इसका एक नाम नारीकवच हुआ और पृथ्वी जब क्षत्रियहीन हुई तब ही क्षत्रियवंशके मूल हुए थे, इससे मूलक भी कहलाते थे ॥ ४० ॥ इन अश्मकसे राजा दशरथका जन्म हुआ, दशरथका पुत्र ऐडविडि उसका पुत्र राजा विश्वसह, उसके पुत्र चक्रवर्ती महाराज खट्वांग हुए। यह राजा खट्वांग अति अजित थे। जब देवतालोगोंने प्रार्थना की तब इन्होंने युद्धमें राक्षस लोगोंका वध किया, फिर जब प्रसन्न होकर देवतालोगोंने इनसे वरदान मांगनेको कहा तब इन्होंने कहा कि प्रथम तो यह बताओ कि हमारी परमायु कितनी है, तब देवतालोगोंने कहा कि आपकी परमायु दो घड़ी शेष है,यह जानकर खट्वांग राजा देवतालोगोंके दिये हुए विमानमें बैठकर अति-

शीघ्र अपने नगरमें आये और परमेश्वरमें मन लगाया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ फिर पीछे उनको यह निश्चय हुआ कि कुलदेव जो ब्रह्मकुल है, उनसे अधिक प्राण, पुत्र, धन, संपत्ति, पृथ्वी, राज्य और स्त्री भी प्यारी नहीं है ॥ ४३ ॥ और हमारी मति कदाचित् थोड़े अधर्ममें भी रत नहीं हो और उत्तमश्लोक भगवान्के अतिरिक्त और किसी वस्तुको हम नहीं देख सकें ॥४४॥ इसलिये त्रिभुवनेश्वर देवता लोग प्रसन्न होकर जो हमसे कहते हैं कि अभिलषित वर मांगो परन्तु, भूतभावन हरिमें अपनी भावना रहनेसे हम उनसे भी कुछ वर नहीं चाहते ॥ ४४ ॥ जिन पुरुषोंकी इंद्रियाँ चलायमान् और बुद्धि विक्षिप्त हैं वे देवता होकर भी अपने हृदयमें स्थित प्रिय आत्माको नित्य नहीं देख पाते, फिर और किसीको देखनेकी क्या संभावना है ? ॥४५॥ इसलिये गंधर्वपुरके समान ईश्वरकी मायासे रचे हुए जो गुण हैं, उनमें वह संग जो

न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः ॥ न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥ ४३ ॥ न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ॥ नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत्किंचन वस्त्वहम् ॥ ४४ ॥ देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ॥ न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५ ॥ ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ॥ न विदन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे॥४६॥अथेशमायारचितेषु संगं गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु॥रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्वभर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ॥ हित्वाऽन्वभावमज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः ॥४८॥ यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम्॥भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः॥४९॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सूर्यवंशानुवर्णने गंगावतरणादिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

कि स्वभावसे ही आत्मामें आरूढ हो रहा है, विश्वकर्ताके भावसे छोड़कर हम केवल उनकी शरण जाते हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! राजा खट्वांग नारायणसंबंधिनी बुद्धिके योगसे इस प्रकार निश्चय कर देहादिके अभिमानरूप अज्ञानको छोड़ फिर अपने भावमें स्थित हुआ ॥४७॥ जो सूक्ष्म परब्रह्म और रागादिसे परे हैं, इसलिये शून्यके समान कल्पित होते हैं और अशून्यस्वरूप हैं और जिनके प्रति भक्तजन भगवान् वासुदेव शब्दका प्रयोग किया करते हैं, क्योंकि परब्रह्म ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये भक्ति प्रकाशित करके वासुदेव होते हैं ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

भा॰ टी॰ ॥२९॥ दोहा—दसवेंमें खट्वांगकुल, लीन राम अवतार। रावणवध घर आवनो, राजकाज व्यवहार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् परीक्षित् ! खट्वांग राजाका पुत्र दीर्घबाहु हुआ, उससे रघुने जन्म लिया, रघुके पुत्र महायशस्वी अज हुए। हे महाराज परीक्षित् ! इन्हीं अजसे महात्मा दशरथजी उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ ब्रह्ममय हरि साक्षात् भगवान् देवतालोगोंकी प्रार्थनासे राम लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न, इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त हो इन्हीं दशरथजीके पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ हे राजन् ! वाल्मीकादि तत्त्वदर्शी ऋषि लोगोंने इन्हीं सीतापति रामचंद्रजीका वर्णन किया है, यद्यपि यह चरित्र आपने बारंबार सुना है, तो भी हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं तुम सुनो ॥ ३ ॥ जो पिताजीका सत्य पालन करनेको राज्य छोड़ जो प्यारी सीताजीके करस्पर्शका भी नहीं सहन कर सकते थे, ऐसे कमलके समान सुकुमार दोनों चरणोंसे वन-वनमें घूमे

श्रीशुक उवाच ॥ खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ॥ अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥१॥ तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः॥अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥२॥ रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥ गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ॥ वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा रोषितभ्रूविजृम्भत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोशलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४ ॥ विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ॥ पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

भा॰ टी॰ अ॰ १० थे, वानरेन्द्र हनुमान् अथवा सुग्रीव और अनुज लक्ष्मण जिनके मार्गकी थकावट दूर करते थे शूर्पणखाके नाक कान काटनेसे विरूप करनेके कारण उसने रावणके निकट जाकर उसको स्त्रीका लोभ दिखाया, तब रावण आकर जिनकी प्यारी सीताजीको हरकर ले गया था, प्रियाका विरह होनेसे जिनकी भ्रुकुटीसे समुद्र त्रस्त हो गया और उसी समुद्रके कहनेसे जो समुद्रपर सेतु बांध रावणादि खल गणरूप गहन वनका विध्वंस किया, वही कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ उन्हीं श्रीरामचंद्रजीने महर्षि विश्वामित्रजीके यज्ञमें मारीचादि प्रधानप्रधान राक्षसोंको अकेलेही मार डाला था, समीप खड़े होकर देखते हुए लक्ष्मणकी कुछ सहायता नहीं चाही ॥ ५ ॥

उन्होंने सीताजीके स्वयंवर गृहमें वीर पुरुष समूहके बीचमें महादेवजीके धनुषको गन्नेके समान उठा लिया था और ज्या चढ़ा लेनेके उपरान्त खींचकर बीचमेंसे तोड़ दिया। हे राजन्! वह धनुष अतिभारी कि जिसे तीनसौ वाहक खींचकर लाये थे परंतु श्रीरामचन्द्रजीकी लीला बालगजतुल्य अद्भुत है कि जिन्होंने एक खेलमें ही उस धनुषको तोड़ डाला ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त जिन सीताजीने उनके हृदयमें वास किया था, जिन सीताजीमें गुण, शील, वयस और अंगोंका गठन सब गुण श्रीरामचन्द्रजीके ही समान थे, धनुष तोड़ उन सीताजीको ले जानेके समय धनुष टूटनेकी महाध्वनि सुनकर क्षुभित हुए परशुरामजीने जब धमकाया तब श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें गमन करते-करते ही उनका गर्वचूर्ण कर दिया। हे महाराज! आप तो परशुरामजीको जानते हैं? यह वही महात्मा परशुरामजी हैं कि जिनके

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ॥ आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥ ६ ॥ जित्वाऽनुरूपगुणशीलवयोंगरूपां सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ॥ मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥ ७ ॥ यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः॥ राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसंगः ॥८॥ रक्षस्स्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् ॥ जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ ९ ॥

बाहुबलसे यह पृथ्वी इक्कीस बार क्षत्रियोंसे हीन हो गयी थी ॥ ७ ॥ किसी समय रानी कैकेयी पर प्रसन्न होकर राजा दशरथजीने यह वचन दिया था कि जब कोई वरदान तुम मांगोगी, हम तुम्हें अवश्य देंगे। जब श्रीरामचन्द्रजीको अभिषेक होनेकी तैयारियां हुईं, तब इस कैकेईने भरतजीका युवराज होना और श्रीरामचन्द्रजीका वन जाना ये दो वरदान मांगे। यद्यपि महाराज दशरथजी स्त्रैण थे, तो भी यह जानकर कि वचन भंग होनेसे इनको महापाप होगा,अतःश्रीरामचन्द्रजीने अपने पिताकी आज्ञाको मस्तकपर चढ़ाकर ग्रहण किया। कहा भी है कि "रघुकुलरीति सदा चलि आई। प्राण जाहि बरु वचन न जाई" फिर जिस प्रकार योगी लोग त्यागनेके अयोग्य प्राणोंको छोड़ देते हैं, वैसे ही राज्य,श्री,प्रणय,सुहृद् और रहनेका स्थान भी छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये ॥ ८ ॥ वनके बीच कामातुरा शूर्पणखाके

नाक, कान, काटकर खरदूषण, त्रिशिरादि उस शूर्पणखाके मुख्य बांधवोंसहित चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला, फिर महाकठिन धनुष हाथमें लेकर बराबर ही विचरण करते हुए अतिकष्टसे वनमें रहने लगे। इस बीचमें जनककुमारी जानकीजीकी सुन्दरता सुनकर राक्षस रावणके हृदयमें कामाग्नि उबलने लगी और सीताजीका हरण करनेकी इच्छासे श्रीरामचंद्रजीको आश्रमसे दूर करनेके लिये उस दुरात्मा रावणने मारीच नामक राक्षसको नियुक्त किया, तब मारीच अद्भुत मृगका रूप धारण करके श्रीरामचंद्रजीको आश्रमसे बहुत दूरतक भागता हुआ ले गया "प्रगटत दुरत करत छल भूरी। यहि विधि प्रभुहि गयउ लै दूरी" जब श्रीरामचंद्रजी उस कपटमृगके पीछे बहुत दूरतक चले गये, तब उन्होंने हरिणरूपी निशाचरको अतितीक्ष्ण बाण चलाकर इस प्रकार मार डाला जैसे भगवान् रुद्रजीने मृगरूप धारण करके दौड़ते हुए ब्रह्माजीको बाण मारा था ॥ ९ ॥ १० ॥ इसी समयमें राक्षसोंमें नीच रावणने भेड़िया जैसे चुपचाप भेड़को उठा ले जाता है, वैसेही

सीताकथा श्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ॥ जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥१०॥ रक्षोऽधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ॥ भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः स्त्रीसंगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥ ११ ॥ दग्ध्वाऽऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन् कबन्धं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ॥ बुद्ध्वाऽथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यैर्वेलामगात्स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ १२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके पीछे उनकी भार्या सीताजीका हरण कर लिया। तब श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्राणप्यारीसे अलग हो स्त्री रखनेवालोंका परिणाम अतिदुःखितरूपी गतिको प्रकाशित करते हुए दीनके समान अपने परमप्रिय भाई लक्ष्मणको संग लिये वन वनमें घूमने लगे ॥११॥ और घूमते-घूमते देखा कि उनके ही लिये कर्म करके अर्थात् रावणके साथ संग्राम करके जटायु गिद्ध मर गया है, उसका देह पड़ा था और शास्त्रोक्त संस्कार अर्थात् दहनादि संस्कार कुछ भी नहीं हुए थे, इसलिये इस पक्षीके मृतक देहको जला दिया और आगे चले। फिर उनके ग्रहण करनेको जो एक कबन्ध बाहें फैलाये मुख बाये हुए आ रहा था, उसका प्राणसंहार किया, फिर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे मित्रता करके वालिनामक वानरका वध कर उनकी सेनासे अपनी भार्याका खोज कराया। फिर उनका पता जानकर समुद्रके तटपर गये, इन श्रीरामचन्द्रजीने यद्यपि मनुष्यावतार धारण किया था परंतु महेश्वर और ब्रह्माजी भी उनके चरणों की वंदना करते थे ॥ १२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके तटपर जाकर तीन रात उपवास कर समुद्रके आनेकी बाट देखी, जब ऐसा करनेपर भी समुद्र न आया तब श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त कुपित हुए। क्रोधके कारण श्रीरामचन्द्रजीकी भ्रुकुटियाँ ऐसी टेढ़ी होरही थीं कि उनकी दृष्टि समुद्रमें पड़ते ही जलधिके रहनेवाले नाके आदि जलजन्तु अत्यन्त व्याकुल हो गये। तब समुद्र अपने शब्दको निवारण करके मूर्ति धारण कर मस्तकपर अर्घ्यादि पूजा उपहार लिये हुए श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके निकट आकर कहने लगा ॥ १३ ॥ हे भूमन् ! हम मन्दमति हैं, इसलिये अबतक आपको नहीं जान सके, आप निर्विकार आदिपुरुष और जगतके अधीश्वर हैं, अधिक करके जिनके वश हुए सत्त्व गुणसे देवतालोग, रजोगुणसे प्रजापतिगण और तमोगुणसे भूतपति उत्पन्न होते हैं, वह आपही गुणेश्वर हैं ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! यदि आपकी इच्छा हो तो हमारे जलको लांघकर

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ॥ सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥ १३ ॥ न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन् कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ॥ यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः ॥ १४ ॥ कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ॥ बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५ ॥ बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ॥ सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लङ्कां विभीषणदृशाऽविशदग्रदग्धाम् ॥ १६ ॥

चले जाओ, विश्रवाके विष्ठाके तुल्य दुरात्मा रावण त्रिभुवनको क्लेशका देनेवाला है, उसका शीघ्र वध करके अपनी भार्या सीताजीको ग्रहण कीजिये, हे प्रभो ! यद्यपि हमारा जल आपके गमन करनेमें बाधा नहीं दे सकता, तो भी इसमें पुल-बांध दीजिये। सेतुके बांधनेसे सदाही आपकी कीर्ति स्थिर रहेगी, क्योंकि इस सेतुके समीप आकर यह दुष्कर कार्य देख निःसन्देह राजालोग आपके यशको गायेंगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! समुद्रके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने विविध भांतिके पर्वतशिखर और वृक्षोंसे उनके ऊपर सेतु बांधा, उन पर्वतोंके शिखरोंपर बहुतसे पेड़ भी लगे हुए थे, उन वृक्षोंकी शाखा वानरेन्द्रोंकी भुजाओंसे अत्यन्त कम्पायमान हुई थीं; जब सेतु बांध लिया गया, तब विभीषणके परामर्शसे सुग्रीव, नील, हनुमानादि सेनाके साथ श्रीरघुनाथजीने लंकापुरीमें प्रवेश किया; श्रीरामचन्द्रजीके प्रवेश करनेसे प्रथम ही

भा० न० ॥२१॥

सीताजीके खोजनेके समय हनुमानजीने लंका पुरीको जला दिया था ॥१६॥ जैसे हि श्रीरामचन्द्रजी सेनाके साथ लंकापुरीमें पहुँचे, वैसे ही लंकापुरी घूमनेसी लगी, जिस प्रकार हाथियोंके समूहसे नदी चलायमान हो जाती है; क्योंकि वानरेन्द्रोंकी सेनाने वहांके विहारस्थान, खजाने, कोषगृहादिके द्वार, पुरद्वार, सभा, वलभी महलकी अग्रभागाच्छादनी (छज्जा) और कपोतपालिकादि स्थान घेर लिये और इस सेनाने वेदी(चबूतरे),पताका,स्वर्णकलश और चौराहे आदि सब तोड़-फोड़ दिये ॥ १७ ॥ राक्षसराज रावणने यह देखकर निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष,दुर्मुख,सुरान्तक,नरान्तक, सम्पूर्ण अनुचर और इंद्रजीत, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पादि पुत्रोंको और पीछेसे अपने भाई कुम्भकर्णको भेजा॥१८॥ हे महाराज परीक्षित् ! यद्यपि सब राक्षसोंकी सेना असि, शूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, शर, तोमर, खड्गादि विविध भांतिके

सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठश्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का ॥ निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भशृंगाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७ ॥ रक्षः पतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भधूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ॥ पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन् सर्वानुगान्समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥ १८ ॥ तां यातुधानपृतनामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमादनीलांगदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥१९॥ तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ॥ जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरंगदाद्याः सीताभिमर्शहतमंगलरावणेशान् ॥२०॥

शस्त्रोंसे अतिशय दुर्द्धर्ष थी,तो भी वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने माला पहिने हुए लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, गन्धमादन, नील, अंगद, जाम्बवान् और पनसादि सेनापतियोंके साथ उनके ऊपर चढ़ाई की थी ॥१९॥ हे राजन् ! श्रीरामचन्द्रजीके इन सेनापतियोंने रावणकी हाथी घोड़ोंसे युक्त जितनी सेना आयी थी उनमें जिस प्रकारसे द्वन्द्वयुद्ध हो वैसे ही कार्य करने लगे अर्थात् उनके ऊपर झपटने लगे और पर्वत, गदा, बाण चला-चलाकर उन राक्षसोंका संहार करने लगे । महाराज ! राक्षसोंकी सेनाका संहार क्यों न हो ? जब कि बलात्कार जगज्जननी जानकीजीका अंगस्पर्श करनेवाला रावण जिसका स्वामी था, जिसका सब मंगल नाशको प्राप्त हो गया था ॥ २० ॥

इस प्रकारसे अपनी सेनाका नाश होता हुआ देखकर दुरात्मा रावण सहसा पुष्पक विमानपर आरूढ होकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर दौड़ा, उसी समय इंद्रका सारथी मातलि दीप्तिमान् देवराज इन्द्रका रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट आया श्रीरामचन्द्रजीको रथारूढ देखकर दुरात्मा रावण तीक्ष्ण-तीक्ष्ण छुरेवाले बाण श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर चलाने लगा ॥ २१ ॥ तब सीतापति पाखण्डी रावणको ललकार कर बोले कि अरे दुष्ट ! तू राक्षसोंमें विष्ठाके समान है, कुत्ता जैसे गृहस्वामीके पीछे घरमें प्रवेश करके किसी सामग्रीको चुराकर ले जाता है, वैसे ही हमारे पीछे हमारी भार्याको तू हरण कर ले आया है, तू अति निर्लज्ज है, क्योंकि नीच कर्म किया है, हमारा वीर्य अमोघ है। देख ! हम कृतान्तके समान अभी तेरे किये इस नीच कर्मका फल देते हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार रावणको धिक्कार देकर वह बाण; जो कि

रक्षः पतिःस्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ॥ स्वस्स्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते विभ्राजमानमहनन्निशितः क्षुरप्रैः ॥ २१ ॥ रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः कान्ताऽसमक्षमसताऽपहृताश्ववत्ते ॥ त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः ॥ २२ ॥ एवं क्षिपन् धनुषि सन्धितमुत्ससर्ज बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ॥ सोऽसृग् वमन् दशमुखैर्न्यपतद्विमानाद्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥ २३ ॥ ततो निष्क्रम्य लंकाया यातुधान्यः सहस्रशः ॥ मन्दोदर्या समं तस्मिन् प्ररुदत्य उपाद्रवन् ॥ २४ ॥ स्वान्स्वान् बन्धून् परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ॥ रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना ॥२५॥ हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण ॥ कं यायाच्छरणं लंका त्वद्विहीना परार्दिता ॥ २६ ॥

धनुषपर चढ़ा हुआ था, श्रीरामचन्द्रने छोड़ा, उस बाणने निशाचरराज रावणके ऊपर गिरकर उसके हृदयको फाड़ डाला हे राजन् ! रावण पुष्पकविमानसे इस प्रकार नीचे गिर पड़ा कि जैसे पुण्य क्षीण होकर पुरुष स्वर्गसे नीचे गिरता है। रावणको गिरता हुआ देखकर सब लोग हाहाकार करने लगे ॥ २३ ॥ इसके पीछे सहस्रों राक्षसियाँ लंकाके बाहर आकर मन्दोदरी नामक रावणकी स्त्री सहित रोती हुई रणभूमिमें घूमने लगीं ॥ २४ ॥ जिन राक्षसियोंके बन्धुबांधव वीर्यवान् लक्ष्मणजीके बाणोंसे मारे गये थे, वे राक्षसियाँ उनको अपने हृदयसे लगा लगाकर, शिर पीट-पीट और छाती कूट-कूट आर्त वाणीसे रोने लगीं ॥ २५ ॥ राक्षसियाँ कहने लगीं कि हा नाथ !

हम मर मिटीं । हे रावण ! तुम लोकोंके रुलानेवाले थे, परंतु अब हमारी लंकापुरी तुमसे बिहीन हो शत्रुसे पीड़ित हो रही है, इस समय हम किसकी शरण जायं ? ॥२६॥ हे महाभाग ! तुम कामके वश हो एकबार ही बुद्धिहीन हो गये थे; जनकनंदिनीके प्रभाव और तेजको नहीं जाना इससे ही तुम्हारी यह दशा हुई ॥२७॥ हे रावण ! तुम्हारे मारे जानेसे हम और यह लंकापुरी दोनों पतिहीन हुईं । तुमने अपने ही दोषसे अपनी देहको शृगालोंका भक्ष्य किया और आत्माको नरकभोगी बनाया ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत परीक्षित् ! इसके उपरांत राक्षसेन्द्र विभीषणने महात्मा रामचंद्रजीकी आज्ञा पाकर अपने ज्येष्ठ भ्राता रावणके मृतक कर्म किये ॥ २९ ॥ इसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी अशोकवनमें गये । वहीं शीशमके नीचे बैठी हुई अति क्षीण विरहके दुःखसे दुःखी जानकीजीको महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने

नैवं वेद महाभाग भवान् कामवशं गतः ॥ तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥ २७ ॥ कृतैषा विधवा लंका वयं च कुलनन्दन ॥ देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रानुमोदितः ॥ पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम् ॥२९॥ ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ॥ क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम् ॥ ३० ॥ रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ॥ आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपंकजाम् ॥ ३१ ॥ आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ॥ विभीषणाय भगवान् दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥ ३२ ॥ लंकामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ॥ अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥ ३३ ॥ उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ॥ गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥ ३४ ॥

देखा ॥३०॥ प्रियतमा जानकीजीको अत्यन्त दीन-हीन देखकर श्रीरामचन्द्रजीके कोमल हृदयमें दया आ गयी ॥३१॥ परंतु पतिके दर्शनसे आनन्द पाकर जनकनन्दिनी जानकीजीका वदनारविन्द भी विकसित होने लगा, फिर महात्मा लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीको विमानपर बैठाकर फिर हनूमानजीके साथ आप भी उसपर बैठे ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त विभीषणको राक्षसोंका राज्य दे लंकाका स्वामी बनाया और एक कल्पभरकी आयु दे दी, फिर चौदह वर्षका वनवास समाप्त करके विभीषणके साथ अयोध्यापुरीको चले । मार्गमें जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर लोकपालगणोंके हाथोंसे छूटी हुई फूलोंकी मालाओंकी वर्षा होने लगी और

ब्रह्मा आदि परमानन्दसे श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र गाने लगे श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें जाते हुए सुना कि भ्राता भरत अयोध्यासे बाहर भदरसा में आकर अपना डेरा किये हुये हैं, वह कुशोंपर सोते और वल्कल पहनते हैं, प्राण धारण करनेके लिये गोमूत्रमें पका केवल यवान्न खाते हैं। यह सुन रामचन्द्रजीका हृदय भर आया, रोवें खड़े हो गये और विलाप-कलाप करते हुये विभीषणसे बोले ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ महात्मा रामचन्द्रजी इस प्रकार विभीषणसे कहते विलाप करते चले जाते थे,हे महाराज परीक्षित्! जबसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये,तबसे भरतजी अयोध्यामें न रहकर नंदिग्राम (भदरसा) में ही रहते थे, अब भरतजीने सुना कि श्रीरघुनाथजी रणमें शत्रुको जीत, सीता और लक्ष्मणसहित कुशलपूर्वक आगये तब भरतजी मंत्री, पुरोहित और पुरवासियोंके साथ उनको लिवा लानेके लिये श्रीरामचन्द्रके निकट

महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम् ॥ भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ॥ पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ॥ ३५ ॥ नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिस्स्वनैः ॥ ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३६ ॥ स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ॥ ३७ ॥ श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥ पादयोर्न्यपतत्प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः ॥ ३९ ॥ तामाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥ रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ॥ ४० ॥

चले गये ॥३५॥ उस समय अनेक बाजे बजने लगे, गीत सुनाई पड़े और वेदपाठी ब्राह्मणोंके वेद पढ़नेका शब्द अति जोरसे होने लगा और सुवर्णमय अनेक पताकायें और चित्रमय ध्वजाओंसे शोभायमान असंख्य सुवर्णमय रथ, बख्तर पहने हुई बहुतसी सेना और पदाति सेवक भी बहुत सारे संग गये॥३६॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस प्रकार राजाके योग्य चवँर,छत्र और सब सामग्री लेकर जब भरतजी अपने बड़े भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंपर गिर पड़े तब उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी कि जिससे उनके नेत्र व हृदय भीग गये। तब हाथ जोड़; दोनों करोंसे खड़ाऊँ आगे रख दीं और फिर नेत्रजलसे स्नान कराते-कराते बहुत देरतक भुजाओंसे पकड़ श्रीरामचन्द्रजीको अपने हृदयसे लगाये रहे। इनके पीछे श्रीरामचन्द्रसे सीता और लक्ष्मणजीके साथ मिलकर ब्राह्मण और कुलवृद्ध पुरुषोंको

नमस्कार किया इसके उपरान्त सब प्रजाने श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और उत्तर कौशलाके सब रहनेवाले बहुत कालके पीछे अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको आया हुआ देखकर आनन्दके समुद्रमें स्नान करने लगे और अपने-अपने दुपट्टे कंपाते हुए हर्षित हो फूलोंकी मालायें वर्षाकर नाचने लगे हे महाराज परीक्षित् ! जब महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें आये, उस समयमें भरतजीने उनकी खड़ाऊँ धारण कर ली थीं। विभीषण सुग्रीवने चामर और व्यजन लिया था । पवनकुमार हनुमान्जी श्वेत छत्र धारण किये हुए थे शत्रुघ्नजीने धनुष और तरकस लिया और जगज्जननी जानकीजीने तीर्थोंके जलसे भरा हुआ कमण्डलु ग्रहण किया था और युवराज अंगदजी खड्ग और ऋक्षराज जाम्बवान् सुवर्णमय बख्तर ले आये पुष्पक विमानमें जब वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी

तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः॥ धुन्वन्त उत्तरासङ्गान् पतिं वीक्ष्य चिरागतम्॥४१॥उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥ पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे ॥४२॥ विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥ धनुर्निषंगाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम् ॥४३॥ अबिभ्रदंगदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण्नृप ॥ पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिःस्तूयमानश्च बन्दिभिः॥४४॥ विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः॥ भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत्पुरीम् ॥४५॥ प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥ गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥ वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥ पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ॥ आरोप्यांकेऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥४७॥

विराजमान हुए, तब नारियोंने उनकी प्रशंसा की, बन्दीजनोंने यश बखाना, ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे कि जैसे तारागणोंके साथ निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है अपने भ्राताओंसे सम्मानित होकर श्रीरामचन्द्रजीने उत्सवयुक्त पुरीमें प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचन्द्रजीने राजभवनके भीतर जाकर कैकेयी इत्यादि गुरुपत्नी, अपनी माता और गुरुजनोंकी पूजा की । फिर अपने सखा और छोटे जनोंसे पूजित हो सबका यथोचित सम्मान किया ॥ ४६ ॥ इसके पीछे सीता और लक्ष्मणजी भी जाकर यथानियम इन सब गुरुजनोंसे मिले प्राणोंको पाकर जिस प्रकार देह उठ खड़ा

होता है उसी प्रकार अपने पुत्रोंको सब पाकर मातायें सहसा उठ खड़ी हुई और उनको गोदीमें बिठाके नेत्रजलसे उनका अभिषेक कर अपना शोकसंताप दूर करने लगीं ॥ ४७ ॥ इनके उपरान्त ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीकी जटा छुड़वाय कुलवृद्ध पुरुषोंके साथ मिलकर समुद्रके व और सब तीर्थोंके जलसे उनका अभिषेक किया ॥ ४८ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार शिरसे स्नान कर प्रथम शोभायमान वस्त्र धारण किये, फिर हार और अलंकारोंसे सजकर वसन-भूषण पहन भाइयों और सीताजीके साथ दीप्तिमान हो विराजमान होने लगे ॥४९॥ इनके पीछे महात्मा भरतजीने प्रणाम कर जब श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न किया तब उन्होंने राज-

जटा निर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः ॥ अभ्यषिञ्चद्यथैवेन्द्रं चतुस्सिन्धुजलादिभिः ॥४८॥ एवं कृतशिरस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ॥ स्वलंकृतः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥४९॥ अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः ॥ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥५०॥ जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ त्रेतायां वर्त्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ॥ ५१ ॥ रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः ॥ ५२ ॥ सर्वे कामदुघा आसन् प्रजानां भरतर्षभ ॥ नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ॥ ५३ ॥ मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥ एक पत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ॥ ५४ ॥

सिंहासन ग्रहण किया स्वधर्मनिरत और वर्णाश्रमगुणोंसे युक्त प्रजापुञ्जको पिताके समान पालन करने लगे हे राजा परीक्षित् ! सब प्राणियोंको सुखके देनेवाले धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी जब राजा हुए उस समय यद्यपि त्रेतायुग वर्त्तमान था, तो भी वह काल सत्ययुगके समान जान पड़ने लगा समुद्र, नद, नदी, पर्वत, वन, द्वीप, खण्ड सब ही प्रजाका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हुए कमलनयन श्रीराम-चन्द्रजीके राज्यके बीच आधि, व्याधि, जरा, शोक, दुःख, भय, ग्लानि अथवा थकावट कुछ भी न रही ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जबतक इच्छा न होती तबतक मृत्यु किसीको नहीं दबा सकती थी ❋ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजी पवित्र और

❋ शंका—रामचन्द्रके राज्यमें जो प्राणी मरनेकी इच्छा आप करता था उसीका मरण होता था और जो अपना मरना नहीं चाहता था उसका मरण कभी नहीं होता था, क्योंकि मृत्यु तो सब लोकमें है, किसी लोकमें जल्दी किसी लोकमें देरसे, परंतु ऐसा लोक कोई भी नहीं है कि जिस लोकमें मृत्यु न हो ?

भा० न० एकपत्नी व्रतधारी होकर सब लोगोंको राजर्षियोंके अनुष्ठान किये हुए गृहमें धैर्य एवं धर्मका उपदेश करके स्वयं उसका भी पालन करने लगे
॥२४॥ और भावकी जाननेवाली देवी सीताजी अपने स्वामीका आश्रय ले प्रेम, सेवा, शीलता, भय और लाजसे उनके चित्तको हर लेती थीं
॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीरामचरिते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा—ग्यारहमें श्रीरामने, अवधपुरीमें आन । यज्ञ किये भाइन सहित, सो सब कहौं बखान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! इसके पीछे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने आचार्यलोगोंके साथ उत्तमोत्तम यज्ञ करके सर्व देवमय परमदेव जो आप हैं, अपनी ही पूजा करने लगे ॥ १ ॥

स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत ॥ प्रेम्णाऽनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥ धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताऽहरन्मनः ॥५५॥ इति श्रीभाग० म० नवमस्कन्धे इक्ष्वा० सगरोपाख्याने श्रीरामचरितं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानात्मनाऽऽत्मानं राम उत्तमकल्पकैः ॥ सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥ होत्रेऽददाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २ ॥ आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा ॥ मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निस्स्पृहः ॥३॥ इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः ॥ तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता ॥ ४ ॥

यज्ञके अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने होताको पश्चिम दिशा और ब्रह्माजीको दक्षिणदिशा, अध्वर्युको पूर्वदिशा और सामगान करनेवालोंको उत्तर दिशा दे दी । इन दिशाओंके बीचकी जितनी भूमि थी, "इसको ब्राह्मण ही पानेके योग्य हैं" यह विचार निस्पृह श्रीरामचन्द्रजीने
भा० टी० अवशेष पृथ्वी आचार्यको दे दी ॥ २ ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे दानिशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने जब सब दान कर दिया तब केवल उनके
अ० ११ पास वसन भूषण बच रहे और राजराजेश्वरी श्रीमती जानकीजीके पास भी केवल वसन भूषण ही रहे अर्थात् इसके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्र-

---

उत्तर—"अनिच्छता" इस शब्दका अर्थ मरणकी इच्छा करना नहीं होता, इसका यह अर्थ है कि जो प्राणी रामचन्द्रके चरणारविन्दके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते थे, अर्थात् दिनरात उन्हीं चरणोंमें उन्मत्त रहते थे, उन प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती थी ।

जीने सब कुछ दान कर दिया ॥४॥ परन्तु ब्राह्मण देवता श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी वत्सलता देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करके सबवस्तु श्रीरामचन्द्रजीको लौटा दी * और बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! हे भुवनेश्वर ! आपने हमको क्या नहीं दिया है ? अर्थात् आपने हमको सब कुछ दिया, क्योंकि आपने हम लोगोंके हृदयमें प्रवेश करके अपनी प्रभा विस्तारकर हमारे अन्धकारको दूर किया है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! आप ब्रह्मदेव अकुण्ठ बुद्धिमान् हैं, सो हम आपको नमस्कार करते हैं। हे भगवन् ! आप उत्तमश्लोकोंमें आगे गिने जाने योग्य हैं, मुनिलोग भी अपने-अपने चित्तमें आपके दोनों चरणकमलकी सदा चिंता करते हैं ॥ ७ ॥ बहुत दिन गये पीछे किसी समय श्रीरामचन्द्रजी

> ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ॥ प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥ अप्रत्तं नस्त्वया किन्तु भगवन् भुवनेश्वर ॥ यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ॥ उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥ ७ ॥ कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ॥ चरन् वाचोऽश्रृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित ॥ ८ ॥ नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ॥ स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९ ॥

गूढ वेष धारण कर यह जाननेके लिये कि हमारे राज्यमें लोग हमारी निन्दा करते हैं वा स्तुति, रात्रिकालमें गुप्तभावसे घूमने लगे। एक दिन अकेले घूम रहे थे कि एक पुरुष अपनी स्त्रीसे कुछ कटुवचन कहा कि जिसको वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने सुना ॥ ८ ॥ वह पुरुष अपनी स्त्रीसे कह रहा था कि तू पराये घर जाया करती है, तू अतिदुष्टा असती है मैं अब तुझे खाने पहननेको नहीं दूँगा। श्रीरामचन्द्रजीका ही स्त्रियोंपर अनुराग है कि पराये घरमें बहुत दिनोंतक रही सीताको फिर अपने घर लाकर पालन करते हैं। मैं रामचन्द्र नहीं हूँ, चली जा, अब तेरा

* शंका—जो वस्तु रामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको दान कर दी थी; वह वस्तु ब्राह्मणोंने लेकर कुछ दिन पीछे प्रीति सहित रामचन्द्रजीको दे दी। तब रामचन्द्रने अपनी दान की हुई वस्तु ब्राह्मणोंसे क्यों ली ?

उत्तर—ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर अपना प्रसाद तुलसीदल फूल आदि लेकर तथा तीन लोकका सुखपर्यन्त जब क्षत्रियोंको देते हैं तब उसी समय क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंको दिया हुआ प्रसाद प्रीतिपूर्वक ले लेते हैं। जब कोई राजा नहीं ले तो शीघ्र ही ब्राह्मण लोग उस राजाको शाप देते हैं, ऐसा रामचन्द्रने मनमें विचार कर अपनी दी हुई वस्तु प्रसाद समझकर ग्रहण की, कुछ लोभ से नहीं ली ।

मुख नहीं देखूंगा॥९॥अज्ञानी,दुराराध्य,बहुमुख लोकके मुँहसे यह वचन सुनते ही रामचन्द्रजीको अत्यन्त भय हुआ और उन्होंने अपने स्थानपर आकर अपनी प्रियतमा जनकनंदिनी जानकीजीको त्याग दिया। गर्भावस्थामें पतिसे त्यागी हुई भीत जानकीजी महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें आयी ॥ १० ॥ कुछ दिनोंमें जानकीजीके समय पूर्ण होनेपर दो पुत्र उत्पन्न हुए यह दोनों कुश, लव नामसे विख्यात हुए। महर्षि वाल्मीकिजीने उन दोनों पुत्रोंका जातकर्म आदि संस्कार किया ॥ ११ ॥ हे परीक्षित्! इधर अयोध्यापुरीमें वीर्यवान् लक्ष्मणजीके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम अंगद और चित्रकेतु हुआ। महात्मा भरतजीके भी तक्ष और पुष्कल नामक दो पुत्र हुए और शत्रुहनजीके पुत्रका नाम सुबाहु और श्रुतसेन हुआ उसी समय भरतजी दिग्विजय करनेके लिये गये, करोड़ों गंधर्वोंका संहार किया और उनका सब धन

इति लोकाद्बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ॥ पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥ अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ॥ कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रियामुनिः ॥११॥ अंगदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ॥ तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥ सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ॥ गन्धर्वान् कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ॥ १३ ॥ तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥ १४ ॥ हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ॥१५॥ ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः ॥ १६ ॥ स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान् नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥ स्त्रीपुंप्रसंग एतादृक् सर्वत्र त्रासमावहः ॥ १७॥

लाकर राजाको दे दिया शत्रुघ्नजीने मधुके पुत्र लवणासुरका प्राण संहार करके मधु वनमें मथुरापुरी बसायी जनकनंदिनी जानकीजीका जब रामचन्द्रजीने त्याग कर दिया ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ तब कुछ दिन पीछे अपने पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीको सौंप अपने पति श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई पृथ्वीके विवरमें समा गयी यह बात श्रीरामचन्द्रजीने भी सुनी यद्यपि इन महाराज स्वयं ईश्वरने अपनी बुद्धिके बलसे शोक निवारण किया, तो भी प्राणप्यारीके गुणगण वारंवार याद आने लगे कि जिनके याद आनेको यह किसी प्रकार न रोक सके हे राजा परीक्षित्! स्त्री पुरुषोंका अनुराग सब कालमें इसी प्रकार भयका देनेवाला है। जब

कि यह अनुराग अवतारोंका भी भयदायी हुआ, तब गृहस्थीमें चित्त लगाये ग्राम्य पुरुषोंकी तो क्या बात है ? उपरांत श्रीरामचन्द्रजी अखण्डित ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अग्निहोत्र करते रहे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८॥ उसके पीछे दण्डकवनके काटोंसे जिनके चरण-कमल विध गये थे उन्हीं चरणोंको स्मरणकारी भक्तजनोंके हृदयमें स्थापित करके अपने धामको चले गये ॥१९॥ हे राजन्! भगवान् श्रीराम-चन्द्रजीका समुद्रमें पुल बांधना और अस्त्रसमूहसे राक्षसादिका वधकार्य यद्यपि कविलोगोंने आश्चर्यमय वर्णन किया है तो भी इन कार्योंसे उनका यश कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि उनका यश बहुत है, सो साम्यसे छूटा है वैरीको मारनेके समय बन्दर बिचारे क्या उनकी सहायता कर सकते हैं, इसलिये जिस प्रकार सुग्रीवादिके निकट इन श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय लेना केवल लीलामात्र है, वैसा ही राक्षसोंका वधादि

अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ॥ त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रम-खण्डितम् ॥ १८ ॥ स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ॥ स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः ॥१९॥ नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ॥ रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २० ॥ यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनाऽपि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ॥ तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥ स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ॥ कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ २२ ॥

कार्य भी लीला ही है हे महाराज! आप ऐसा न समझ लेना कि हमारे यह वचन अयुक्त हैं। देवता लोगोंकी प्रार्थनासे लीला करनेके लिये ही भगवान्ने यह अवतार धारण किया था ॥२०॥ अहो! जिनका निर्मल यश दिग-दिगन्तरमें व्याप्त होकर दिक्पाल हस्तियोंका आच्छादन पटस्वरूप हुआ है, इसलिये अबतक जिसको युधिष्ठिरादि नृपतियोंकी सभामें ऋषिलोग निरंतर गान करते हैं और जिनके चरणकमल देवता और नृपति लोगोंसे सेवित् हैं, हम उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें जाते हैं ॥ २१ ॥ अयोध्या निवासियोंने जिन पुण्यात्मा श्रीराम-चन्द्रजीको स्पर्श किया वा दर्शन किया अथवा जिन्होंने उनको बैठाया था किंवा जो लोग उनके अनुमत हुए थे, वे सब पुण्यात्मा

भा० न०
॥३६॥

लोग उस स्थानमें जायँगे, जहां कि योगीलोग जाया करते हैं ॥ २२ ॥ हे परीक्षित् ! जो पुरुष श्रवणोंके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके इस आख्यानको धारण करेंगे, वह उपशमनिष्ठ हो निःसन्देह कर्मबंधनसे छूट जायँगे ॥ २३ ॥ इसके उपरांत राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे कहने लगे कि हे ब्रह्मन् ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्वयं किस प्रकार वर्तमान थे ? उन्होंने अपने भ्राताओंसे, जो कि उनके अंशरूपी थे कैसा व्यवहार किया था और साक्षात् परमेश्वररूप जो श्रीरामचन्द्रजी थे, उनसे उनके भ्राता और प्रजा लोग कैसा व्यवहार करते थे ? ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षित्का प्रश्न सुनकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित् ! त्रिभुवनके ईश्वर श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्यामें आकर राजसिंहासनपर बैठनेके पीछे अपने भ्राताओंको दिग्विजय करनेके लिये आज्ञा दी, फिर अपनी

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ॥ आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कथं स भगवान् रामो भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः ॥ तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथादिशद् दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ आत्मानं दर्शयन् स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥ आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः ॥ स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥ प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ॥ विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥ २७ ॥ पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ॥ आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥

भा० टी०
अ० ११

जातिवाले लोगोंके साथ बंधुत्व प्रकाशित कर अपने मित्रोंके साथ निरन्तर पुरीकी देखभाल करने लगे॥२५॥ जबसे श्रीरामचंद्रजीका अभिषेक हुआ, तबसे अयोध्यापुरीके सब मार्गोंपर बराबर सुगन्धका जल और हाथियोंके मदका जल छिड़का जाता था, यह अयोध्या पुरी अपने स्वामीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे समृद्धि सम्पन्न हुई थी ॥ २६ ॥ वहांके महल, पुरके द्वार पत्थरसे बने हुए थे और द्वारपर जलसे भरे हुए सुवर्ण कलश सदा रखे रहते थे, सर्व स्थानोंमें सदा ही पताका फहराती, गुच्छोंके साथ सुपारियें, केला और शोभायमान वसन, पाट और कौतुक बनानेके योग्य वस्त्र, माला इत्यादिसे स्थान-स्थानमें मंगलके तोरण बनाये गये थे ॥ २७ ॥ २८ ॥

और जहां जहांपर श्रीरामचन्द्रजी गमन करते थे उसी-उसी स्थानमें पुरवासी लोग भेंट साथ लेकर आते थे और यह कहकर आशीर्वाद देते थे कि हे देव ! आपने प्रथम वराहरूप धारण करके इस पृथ्वीका उद्धार किया था, अब इसका आप प्रतिपालन कीजिये॥२९॥ राज्यकी प्रजा बहुत समयके पीछे अपने राजाके आनेका समाचार पाकर उनके दर्शन करनेकी वासना से स्त्री-पुरुष सब ही अपने-अपने घर छोड़कर महलोंके की छतपर चढ़े हुए थे और अपरितृप्त लोचनसे राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीको अवलोकन करके उनके ऊपर फूल वर्षा रहे थे ॥ ३० ॥ जिस समय श्रीरामचन्द्रजीने अपने गृहमें प्रवेश किया उस समय श्रीरामचंद्रजीका धनागार अत्यन्त अखिल रत्नादिसे परिपूर्ण और अनेकानेक महामोलकी सामग्रियोंसे सुशोभित था । यद्यपि इस धनागारको पहले श्रीरामचंद्रजीके सम्बन्धी लोग भोग कर चुके थे, तो भी

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः ॥ आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥२९॥ ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ॥ आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥ अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वजादिभिः ॥ अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥३१॥ विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ॥ स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भ्राजत्स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥ चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ॥ मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः ॥३३॥ धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः ॥ स्त्री पुंभिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥३४॥ तस्मिन् स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ॥ रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥३५॥

यह पूर्ण था ॥ ३१ ॥ वहांके द्वारोंकी देहलियाँ मूँगोंकी बनी हुई थीं, थम्भ वैदूर्यमणिके बने हुये थे, गृहोंके आंगन मरकतमय होनेके कारण अति स्वच्छ थे और स्फटिक मणिकी बनी हुई भीतें अत्यन्त दीप्तिमान् हो रही थीं॥३२॥ विचित्र पुष्पोंके हारोंसे श्रेष्ठ पट्टिकाओंसे और वस्त्र व रत्नोंकी किरणोंसे यह भवन दीप्तिमान् हो रहा था और चैतन्यतुल्य उज्ज्वल मुक्ताफलोंसे व कमनीय भोगसाधन द्रव्यसमूहोंसे यह भवन सब प्रकार सुसज्जित था । सुगंधित धूपसे सुगंधित पुष्पमण्डलसे मण्डित और सब अलंकारोंके अलंकारस्वरूप देवताओंके समान स्त्री पुरुषोंसे यह भवन सेवित हो रहा था ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि आत्माराम मुनि लोगोंके अग्रगण्य थे, तो भी

उस भवनमें अपनी प्राणप्यारी श्रीजानकीजीके साथ विहार करते थे। इन रामचन्द्रजीने बहुत वर्षोंतक यथाकालमें सब अभिलषित भोगोंका भोग किया था। उस समय सब मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका ध्यान करते थे आत्माराम और धैर्यवानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने कालानुसार धर्मको विना पीड़ा दिये रमण किया था ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीरामोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा-द्वादशमें कुरुवंशकी, कहूँ कथा समझाय। पुनि इक्ष्वाकुजवंशकी, कथा कहौं सब गाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशजीके अतिथि नामक जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनसे निषध उत्पन्न हुए। निषधका पुत्र नभ, उसका पुण्डरीक और उसका सुत क्षेमधन्वा हुआ ॥ १ ॥ क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक, उसका पुत्र अनीह, अनीहके

बुभुजे च यथा कालं कामान्धर्ममपीडयन्॥वर्षपूगान्बहून् नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः॥३६॥इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इक्ष्वा० सगरचरिते श्रीरामोपाख्यानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ॥ पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाऽभवत् ततः ॥१॥ देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ॥ ततो बलस्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥ २ ॥ खगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः ॥ ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३ ॥ शिष्यः कौसल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः ॥ योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम् ॥ ४ ॥ पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिस्ततोऽभवत् ॥ सुदर्शनोऽग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५ ॥ योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ॥ कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥

पारियात्र, पारियात्रका पुत्र बलस्थल, उसका पुत्र वज्रनाभ हुआ ॥ २ ॥ वज्रनाभका बेटा खगण और उसका पुत्र विधृति हुआ विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई। यह हिरण्यनाभ महर्षि जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था ॥ ३ ॥ इसके ही निकट याज्ञवल्क्य ऋषिने उस अध्यात्मयोगको सीखा, जिसके सिद्ध होनेपर हृदयकी गांठ खुल जाती है ॥ ४ ॥ इस हिरण्यनाभका पुत्र पुष्य और पुष्यसे ध्रुवसंधिकी उत्पत्ति हुई। इसका पुत्र सुदर्शन, सुदर्शनका सुत अग्निवर्ण और अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र उत्पन्न हुआ। इस शीघ्रसे राजा मरु जन्मे ॥ ५ ॥ यह मरु योगमें सिद्धि प्राप्त करके कलापनामक ग्राममें विराजमान है। जब ये कलियुगके अन्तमें सूर्य वंशका नाश होता हुआ

देखेंगे तब ये अपने वंशको फिर उत्पन्न करेंगे * ॥ ६ ॥ इनके पुत्र प्रसुश्रुत, उनका पुत्र संधि, उनका पुत्र अमर्षण, अमर्षणका पुत्र महस्वान् और महस्वान्‌के विश्वसाहु हुआ विश्वबाहुके प्रसेनजित्, प्रसेनजित्‌से तक्षक ॥ ७ ॥ तक्षकसे युत, युतके बृहद्बल उत्पन्न हुआ, कि जिसका तुम्हारे पिता अभिमन्युने संग्राममें संहार किया था हे परीक्षित्! ऊपर कहे हुए राजा इक्ष्वाकुवंशमें हो गए हैं अब उनका वृत्तांत सुनो जो कि आगेको होंगे ॥ ८ ॥ इसके पीछे बृहद्बलसे बृहद्रणनामक पुत्र होगा उसका पुत्र वत्सवृद्ध ॥ ९ ॥ इस

तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः ॥ महस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ततः प्रसेनजित तस्मात् तक्षको भविता पुनः ॥ ७ ॥ ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ॥ ८ ॥ बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥ उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ॥ ९ ॥ प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ॥१०॥ प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ॥ ११ ॥ तस्यान्तरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित ॥ बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतंजयः ॥ १२ ॥ रणंजयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ॥ तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १३ ॥

वत्सवृद्धसे प्रतिव्योम, उसके भानु और इस भानुसे सेनापति दिवाकरका जन्म होगा। उसका सहदेव, उसका पुत्र वीर बृहदश्व और उसका पुत्र भानुमान् होगा ॥ १० ॥ इस भानुमान्‌का पुत्र प्रतीकाश्व, उससे सुप्रतीक जन्म ग्रहण करेंगे। उसके मरुदेव, उसके सुनक्षत्र और सुनक्षत्रसे पुष्कर नामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ११ ॥ उसके अन्तरिक्ष, उसका पुत्र सुतपा, उसके पुत्र अमित्रजित्, उसका पुत्र बृहद्राज, बृहद्राज के बर्हि और बर्हिसे कृतञ्जयका जन्म होगा ॥ १२ ॥ कृतञ्जयका पुत्र रणञ्जय और उससे संजयकी उत्पत्ति होगी। सञ्जयका पुत्र शाक्य,

* शंका—त्रिलोकीमें जो प्राणी जन्म लेता है, उसको काल खा लेता है, परन्तु राजा मरुको कालने क्यों नहीं खाया? जो राजा मरु कलियुगके नाश हुए पीछे सूर्यवंशको फिर उत्पन्न करेगा?

उत्तर—राजा मरु बाल्यावस्थासे ही परमेश्वरका भजन करने लगा था और भजन करते-करते बड़ा योगी हो गया और योगियोंको काल किसी प्रकार नहीं खा सकता, क्योंकि काल तो योगियोंका रूप देखकर डरता है, इसलिये राजा मरुको कालने नहीं खाया।

भा० न० शाक्यका पुत्र शुद्धोद और उसका पुत्र लांगल होगा ॥ १३ ॥ लांगलसे प्रसेनजित्, उससे क्षुद्रक और क्षुद्रकसे रनक और रनकसे सुरथ
॥२८॥ जन्म लेगा ॥१४॥ हे महाराज परीक्षित् ! सुरथके यहां सुमित्र जन्म ग्रहण करेगा और ये सब राजा बृहद्बलके वंशमें उत्पन्न होंगे हे राजन् !
इक्ष्वाकुके वंशमें सुमित्र तक ये सब राजा होंगे और सबसे पीछे सुमित्रके राजा होनेपर कलियुगमें यह वंश ध्वंस हो जायगा ॥ १५ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–तेरहमें इक्ष्वाकुसुत, निमिका
वंश बखान । तिसमें प्रगटे जनकजी, ज्ञानी परम सुजान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने यज्ञ आरंभ करके
महर्षि वसिष्ठजीको अपना ऋत्विज वरण किया, तब वसिष्ठजी बोले कि यज्ञ करनेके लिये देवराज इन्द्र हमको वरण कर चुके हैं ॥ १ ॥

ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः ॥ १४ ॥ सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रान्तो भविष्यति ॥ यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुचरिते कुशान्वयवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ श्रीशुक उवाच ॥ निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ॥ आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग् वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥ तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ॥ तूष्णीमासीद् गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥ निमिश्चलमिदं विद्वान् सत्रमारभतात्मवान् ॥ ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद् यावता गुरुः ॥ ३ ॥ शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ॥ अशपत् पतताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥ ४ ॥

भा० टी० इस कारण विना इन्द्रका यज्ञ समाप्त किये हुए हम तुम्हारा यज्ञ नहीं करा सकते हैं,जबतक इन्द्रका यज्ञ समाप्त हो तबतक ठहरे रहो । यह सुन-
अ० १२ कर महाराज निमि कुछ न बोले अर्थात् चुपचाप रहे और महर्षि वसिष्ठजी देवराज इन्द्रका यज्ञ कराने लगे ॥२॥ वसिष्ठजीके जानेपर महाराज
निमिने विचारा कि इस जीवनका क्या ठिकाना है, यदि इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेके प्रथम ही हमारी मृत्यु हो जाय, तो फिर यज्ञ न होगा,
इसलिये जबतक कुलगुरु वशिष्ठजी न आयें तबतक किसी और ऋत्विजसे यज्ञ आरंभ कराऊं । यह विचार निमिराजाने यज्ञारंभ कर
दिया ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त महर्षि वसिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ समाप्त कराकर राजा निमिके स्थानपर आये, शिष्यका अन्याय देखकर मुनिको

क्रोध उत्पन्न हुआ और क्रोध करके यह शाप दिया कि पंडिताभिमानी इस निमिका देह शीघ्र छूट जाय * ॥ ४ ॥ जब कुलगुरु वसिष्ठजीने इस प्रकार अधर्मवर्ती होकर शाप दिया, तब राजा निमि भी उनको यह शाप देने लगा कि "तुमने लोभके वश होकर धर्मकी ओरको नहीं देखा इसलिये तुम्हारा देह भी छूट जाय" ॥५॥ यह कहकर राजा निमिने अपनी देहको छोड़ दिया। उसी समय वसिष्ठ ऋत्विक् का भी देह छूट गया परन्तु कुछ कालके पीछे मित्रावरुणके यज्ञमें उर्वशीके गर्भसे वसिष्ठजीने फिर जन्म लिया अर्थात् यज्ञ करते-करते उर्वशीको देखकर मित्रावरुणजीका जो वीर्य गिरा, उस वीर्यको उन्होंने कलशमें रखा था, उससे ही फिर वसिष्ठजी उत्पन्न हुये ॥ ६ ॥ इधर

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ॥ तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥ इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ॥ मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥ गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ॥ समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥ ७ ॥ राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ॥ तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम् ॥ ८ ॥

जब यज्ञ करते-करते राजा निमिका देह छूट गया, तब मुनिलोगोंने सुगंधित वस्तुमें (उत्तम तैलमें) उनके शरीरको रख दिया, इसके उपरान्त जब यज्ञ समाप्त हो गया तो आये हुये देवता लोगोंसे बोले कि "आप लोग यदि प्रसन्न हों और सामर्थ्य रखते हों तो राजाका यह देह सजीव हो उठे" देवता लोगोंने कहा ऐसा ही हो । तब राजा निमिका शरीर गन्ध वस्तुमेंसे बोला कि हे प्रिय ! हमें

---

* शंका—राजा निमि बड़ा ज्ञानी और ध्यानी था एवं मुनियोंमें पूजन करने योग्य वशिष्ठमुनि बड़े महात्मा पुरुष थे, उन दोनोंने फिर मूर्खों के समान काम क्यों किया ? राजाने मुनिको शाप दिया, मुनिने राजाको शाप दिया, इसका क्या कारण ?

उत्तर—जब नारदमुनि स्त्रीके लिये मोहित हो गये और विवाह करनेकी इच्छा की तब राजा निमि और वसिष्ठ ये दोनों उनको देखकर बहुत हँसे । दोनों को नारद मुनिने शाप दिया कि हे वसिष्ठमुनि ! हे राजा निमि ! हम स्त्रीके लिये दुःखी हो रहे हैं हमारे मन में विवाह करनेकी इच्छा नहीं है, परन्तु भगवान्की मायाने हमको मोहित कर लिया है, इसपर भी तुम दोनों जब हमारी हँसी करते हो, इसलिये तुम दोनों जने बहुत शीघ्र मायाके फन्देमें फँसकर हमारे समान बड़ी दुर्गतिको प्राप्त होगे इसलिये दोनों जनोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी ।

भा० न०
॥२९॥

कभी देहका बन्धन न हो ॥ ७ ॥ ८ ॥ हरिसेवक मुनिलोग वियोगके भयसे कातर हो कदापि देह धारण करनेकी वाञ्छा नहीं करते । वह केवल मुक्तिके लिये भगवान्के चरणकमलकी सदा वन्दना किया करते हैं ॥ ९ ॥ और दुःख, शोक, भयके देनेवाले मनुष्यके शरीरकी मैं इच्छा नहीं करता क्योंकि इस देहकी सर्वत्र मृत्यु है, जैसे मछलियोंकी जलमें सर्वत्र मृत्यु है ॥ १० ॥ तब देवता लोगोंने कहाकि यह निमि विना ही देहके सब प्राणियोंके नेत्रोंपर इच्छानुसार वास करे । इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा होनेसे मुनिलोग जिस लिये राजाके जीवनकी प्रार्थना करते हैं, वह प्रार्थना सिद्ध हो जायगी और राजाको देहका सम्बन्ध भी नहीं होगा । हे राजन् ! इसी वाक्यके अनुसार निमि जीवित हुए थे । नेत्रोंपर पलकका उघड़ना और पड़ना इन्हीं राजा निमिके कियेसे होता है ॥ ११ ॥ परन्तु इसके

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः ॥ भजन्ति चरणांभोजं मुनियो हरिमेधसः ॥९॥ देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम् ॥ सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ॥ उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥११॥ अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः ॥ देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारस्समजायत ॥१२॥ जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः ॥ मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३ ॥ तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः ॥ ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥ १४ ॥ तस्माद् बृहद्रथस्तस्य महावीर्यस्सुधृत्पिता ॥ सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५ ॥

भा० टी०
अ० १३

पीछे महर्षियोंने विचारा कि विना राजाके राज्य सदा प्रजाका भय दिलाने वाला है इसलिये सबने राजकुमारकी कामना करके इन निमिके देहको मथा । मथन करनेसे राजा निमिके देहसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ उस निमिके पुत्रका असामान्य जन्म होनेके कारण जनक नाम हुआ । इस शब्दका अर्थ उत्पादक है और विदेहसे जन्म ग्रहण करनेके कारण इनका एक नाम 'विदेह' हुआ और मथनेसे जन्म होनेके कारण एक नाम मिथिला हुआ। अथवा मिथिलापुरीके निर्माणकर्ता होनेके कारण मिथिलाधिपति कहलाते थे ॥१३॥ इन जनकके पुत्र उदावसु, इनके पुत्र नन्दिवर्द्धन हुए । नंदिवर्द्धनका पुत्र सुकेत और सुकेतका पुत्र देवरात हुआ ॥ १४ ॥ देवरातसे बृह-

द्रथका जन्म हुआ,उसका पुत्र महावीर्य,महावीर्यका पुत्र सुधृति,उसका पुत्र धृष्टकेतु, उसका पुत्र हर्यश्व और हर्यश्वसे मरुकी उत्पत्ति हुई ॥ १५ ॥ मरुका बेटा प्रताप, उससे कृतरथने जन्म लिया, उसका पुत्र देवमीढ और उससे विश्रुत पुत्र उत्पन्न हुआ और उससे महाधृतिने जन्म लिया ॥ १६ ॥ महाधृतिका पुत्र कृतरात, उसका पुत्र महारोमा और महारोमाका बेटा स्वर्णरोमा हुआ तथा उससे ह्रस्वरोमाने जन्म ग्रहण किया ॥ १७ ॥ उसके सीरध्वज जन्मा । ह्रस्वरोमा राजा यज्ञके लिये भूमि जोत रहे थे, उसी समय उसकी सीर अर्थात् हलके अग्रभागसे इस पुरुषका जन्म हुआ, इस कारणसे यह सीरध्वज कहलाता था ॥ १८ ॥ सीरध्वजका पुत्र कुशध्वज, उसका पुत्र धर्मध्वज, धर्मध्वजके कृतध्वज और मित्रध्वज नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ उनमें कृतध्वज से केशिध्वजने जन्म लिया और

मरोः प्रदीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ॥ देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ महाधृतिः ॥१६॥ कृतिरातस्ततस्त-स्मान्महारोमाऽथ तत्सुतः ॥ स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७ ॥ ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ॥ सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥ कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ॥ धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ ॥ १९ ॥ कृतध्वजात्केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात् ॥ कृत-ध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥ २० ॥ खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः ॥ भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ शुचिस्तत्तनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ उर्ध्वकेतुस्सनद्वाजादजोऽथ पुरु-जित्सुतः ॥ २२ ॥ अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ॥ ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमर्द्धिर्मिथिलाधिपः ॥ २३ ॥ तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ॥ आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ॥ २४ ॥

मित्रध्वजसे खाण्डिक्य जन्मा ॥२०॥ हे राजन् ! कृतध्वजका पुत्र आत्मविद्यामें विशारद हुआ और कर्मोंका भलीभांति जाननेवाला था । एक समय यह किसी कारणवश केशिध्वजके डरसे भाग गया ॥ २१ ॥ इस केशिध्वजका पुत्र भानुमान् हुआ, उसका पुत्र शतद्युम्न, शतद्युम्नका पुत्र शुचि और इस शुचिसे सनद्वाज हुये ॥ २२ ॥ सनद्वाजका पुत्र ऊर्ध्वकेतु, उसका पुत्र पुरुजित् पुरुजित्का पुत्र अरिष्टनेमि, उसका पुत्र श्रुतायु, उसका पुत्र सुपार्श्व सुपार्श्वसे चित्ररथ, उससे क्षेमाधि, ॥ २३ ॥ क्षेमाधिका पुत्र समरथ, उसका पुत्र सत्यरथ

उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ सत्यरथका पुत्र उपगुरु और उससे अग्निके अंशसे उपगुप्तने जन्म ग्रहण किया । उपगुप्तका पुत्र वस्वनन्त, वस्वनन्तका पुत्र युयुधान और उससे सुभाषणने जन्म लिया ॥२५॥ सुभाषणका बेटा श्रुत, उसका पुत्र जय, जयका पुत्र विजय और उसके ऋत उत्पन्न हुआ । ऋतका पुत्र शुनक, उसके वीतहव्य, उसके धृति और धृतिका पुत्र बहुलाश्व और उसका पुत्र कृति हुआ । यह बड़ा ही जितेन्द्रिय था ॥ २६ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यह सब भूपाल मिथिलावंशके कहे गये । यह सब आत्मविद्यामें पंडित और याज्ञवल्क्यादि योगेश्वरोंकी कृपासे घरमें रहते हुए भी सुखदुःखादिके द्वंद्वसे छूटे हुए थे ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे

वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत्सुभाषणः ॥ श्रुतस्ततो जयस्तस्माद् विजयोऽस्माद्दतः सुतः ॥ २५ ॥ शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ॥ बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६ ॥ एते वै मिथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ॥ योगेश्वर प्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥ इति श्रीभा० म० नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुचरिते निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः ॥ यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥ सहस्राशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ॥ जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥२॥ तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ॥ विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥३॥

भाषाटीकायां निमिवंशानुवर्णनं नामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा—चौदहमें गुरुनारिसे, चन्द्र प्रगट कियो बुद्ध ॥ छः सुत प्रगटे बुद्धसे, आयु आदि चित शुद्ध ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! अब अत्यन्त पावन सोमवंशका वर्णन करते हैं वह आप सचेत हो चित्त लगाकर सुनिये ॥१॥ इस वंशके ही पुण्यकीर्ति ऐलप्रभृति राजा विख्यात हैं । हे महाराज ! सहस्रशीर्षा परमपुरुष भगवान्‌के नाभिकमलसे जगत्पिता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए उनके पुत्र अत्रि, यह अत्रिजी गुणोंमें अपने पिताके समान थे ॥ २ ॥ इन अत्रिजीके नेत्रोंसे अमृतमय सोम (चन्द्रमा) नामक पुत्र उत्पन्न हुए । भगवान् ब्रह्माजीने इन चन्द्रमा को विप्र, ओषधि और सब नक्षत्रोंका अधिपति किया था ॥३॥

इन चन्द्रमाने त्रिभुवनको जीतकर राजसूय यज्ञ किया था; इन्हीं चन्द्रमाने गर्व करके बृहस्पतिजीकी स्त्री ताराको हर लिया था * ॥४॥ हे राजन् ! देवदानवोंके बीच संग्राम होनेके कारण तुम जानते हो, जब चन्द्रमाने ताराको हर लिया, तब देवगुरु बृहस्पतिजी अनेक बार चन्द्रमाके निकट गये और उनसे अपनी भार्याको मांगा परंतु मदमत्तताके कारण चन्द्रमाने अपनी गुरुभार्याको नहीं त्यागा बस; इसलिये दैत्य व सुरोंमें महासंग्राम हुआ था ॥५॥ बृहस्पतिजीसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य डाह रखते थे इसी लिये उन्होंने अपने शिष्य असुर लोगोंके साथ चन्द्रमा को ग्रहण किया अर्थात् चन्द्रमाका पक्ष लिया और भूतेश्वर (महादेव) अंगिराजीके निकट विद्या पानेसे सब भूतोंको साथ

सोऽयजद् राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ॥ पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात् तारां नामाहरद्बलात् ॥ ४ ॥ यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ॥ नात्यजत् तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥ शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ॥ हरो गुरुसुतं स्नेहात् सर्वभूतगणावृतः ॥६॥ सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात ॥ सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ॥ तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥

ले अपने गुरुपुत्र बृहस्पतिजीकी ओर गये ॥६॥ देवराज इन्द्र भी अपने सब देवताओंके संग मिल अपने गुरु बृहस्पतिजीकी ओर गये । इसके पीछे ताराके लिये सुर और असुरोंका नाशकारी महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जब कुछ दिनोंतक युद्ध हुआ, तब देवगुरु बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीसे जाकर यह सब वृत्तान्त कहा । यह सुन महात्मा ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बुलाकर बहुत डाटा और तारा

* शंका—गुरुकी स्त्री तारा, उसको चन्द्रमाने क्यों ग्रहण किया ? गुरुकी स्त्री तो माताके समान होती है, उसके संग कैसे रमण किया ? और भगवान्ने भी ऐसे दुष्टको दण्ड नहीं दिया बड़े आश्चर्यकी बात है।

उत्तर—बृहस्पतिसंहिता आदि और भी धर्मशास्त्रके प्रमाणसे बृहस्पतिजीने चन्द्रमाको शिक्षा दी थी कि अपनी इच्छासे स्त्री पुरुषके संग भोग करनेके लिये चाहती हो अथवा पुरुष स्त्रीकी प्रार्थना कर उसके संग भोग करनेकी इच्छा करता हो तो पाप नहीं होता और जो प्रार्थना नहीं माने तो पुरुषको महापाप लगता है और ताराको भी बृहस्पतिजीने यही सिखाया था कि जो पुरुषके संग स्त्री क्रीड़ा करेगी तो जबतक स्त्री मासिक धर्म न होगी तब तक तो अशुद्ध रहेगी और रजस्वला हुई तो तीन दिनमें शुद्ध हो जायगी अर्थात पाप किंचिन्मात्र भी नहीं रहेगा । इस प्रकार बृहस्पतिजीने तारा और चन्द्रमाको उपदेश दिया था, इसीसे दोनों गुरु और पतिके वचनपर आरूढ़ रहे, अतः उनका कुछ दोष नहीं है ।

बृहस्पतिजीको दिला दी॥८॥बृहस्पतिजी अपनी भार्या ताराको पाकर जान गये कि यह अबला अन्तर्वत्नी अर्थात् गर्भवती हुई है, इसलिये ताराके ऊपर घृणा प्रकट करके कहने लगे अरे दुर्म्मति रमणि ! हमारे क्षेत्रमें औरका गर्भ धारण किया। इसे शीघ्र गिरा दे, अरे असति ! तू ऐसा समझकर न डरना कि गर्भ गिरानेके पीछे तुझे हम मार डालेंगे ? और हमारे क्रोधकी अग्नि बहुत भड़क रही है तो भी तुझ स्त्रीजातिको हम क्या भस्म करेंगे ? और अधिक करके हम बहुत संतानकी इच्छा करते हैं ॥ ९॥ पतिके यह वचन सुनकर तारा अति लज्जित हुई और अपने गर्भसे तत्काल ही कनकप्रभ सुकुमारको त्याग दिया। हे राजन् ! उस कुमारको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंने लेना चाहा ॥१०॥ और दोनों परस्पर कहने लगे कि यह बालक तुम्हारा नहीं है हमारा है, इसलिये इन दोनों जनोंमें बहुत झगड़ा

गर्भं त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ॥ नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति ॥ ९ ॥ तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ॥ स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥ ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन् विवदमानयोः ॥ पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥११॥ कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ॥ किं न वोचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे ॥१२॥ ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् ॥ सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३ ॥ तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ॥ बुद्ध्या गम्भीरया येनपुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥ १४ ॥

हुआ। पुत्रके लिये इन दोनोंमें झगड़ा होता हुआ देखकर ऋषि और देवता लोगोंने तारासे कहा कि यह वास्तवमें किसका पुत्र है ? परन्तु तारा लाजके कारण कुछ भी न कह सकी और चुप हो रही ॥ ११ ॥ इसलिये वह बालक अलीक लाजसे कोपायमान हो अपनी मातासे बोला-अरी अशुभे ! बोलती क्यों नहीं शीघ्र मेरे सामने अपना दोष वर्णन कर ॥ १२ ॥ और फिर ब्रह्माजीने एकान्तमें ताराको बुलाकर समझाया-बुझाया और कहा, हे वत्से ! बतलाओ यह किसका पुत्र है ? तब तारा नीचेको शिर झुकाकर लाजसहित धीरेसे बोली-पुत्र तो यह चन्द्रमाजीका है, ताराके मुखसे यह वचन निकलते ही चन्द्रमाने उस पुत्रको ले लिया ॥ १३ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इस बालककी गंभीर बुद्धि देखकर इसका नाम "बुध" रखा । हे राजन् चन्द्रमा पुत्रको पाकर

परम हर्षित हुआ ॥१४॥ इस बुधसे इलाके गर्भमें पुरूरवाका जन्म हुआ। यह पुरूरवा अत्यन्त विख्यात हुआ था ॥ १५ ॥ एक समय देवर्षि नारदजी देवराज इन्द्रकी सभामें पुरूरवाके रूप, गुण, धन, उदारता, शीलता और विक्रमका गान कर रहे थे। देववेश्या उर्वशी यह गुण सुनकर कामके वश हो गयी और राजाके निकट स्वयं ही आयी ॥ १६ ॥ हे परीक्षित् ! तुम ऐसी शंका मत करना कि उर्वशी स्वर्गकी अप्सरा होकर मनुष्यके निकट क्यों गयी ? यह अप्सरा मित्रावरुणके शापसे इस समय मनुष्यभावको प्राप्त हुई थी, इस लिये पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाको कामदेवके समान स्वरूपवान् सुनकर यह अधीर हो उनके निकट जाकर खड़ी हो गयी॥१७॥ हे राजन् ! उस उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र आनन्दके कारण खिल गये। राजाने पुलकित हो मधुर वचनसे कहा ॥ १८ ॥ हे सुन्दरी ! हमारे साथ विहार

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ॥ तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥१५॥ श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान् सुरर्षिणा ॥ तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥१६॥ मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ॥ निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम् ॥१७॥ धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके ॥ स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः॥ उवाच श्लक्ष्णयावाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ॥ संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥१९॥ उर्वश्युवाच ॥ कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर ॥ यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥ २० ॥ एतावुरणकौ राजन् न्यासो रक्षस्व मानद ॥ संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥ २१ ॥

करो। बहुत वर्षोंतक हम दोनोंका परम सुखसे रमण होगा और मैं यही चाहता हूं कि मेरा तुम्हारा स्नेह ऐसा ही बना रहे ॥ १९ ॥ उर्वशी बोली कि हे सुन्दर ! तुम्हारे प्रति किसके नेत्र और मन अनुरागी न होंगे ? तुम्हारे हृदयको प्राप्त हो रमण करनेकी इच्छासे कोई इस हृदयसे दूर होनेकी इच्छा न करेगी ॥ २० ॥ इसके उपरान्त शापके अन्तमें प्रतिज्ञा भंग करनेके छलसे जानेके लिये कहने लगी कि हे प्रियवर ! मैं प्रथम ही आपसे यह वचन मांग लेती हूं कि मेरे यह दोनों भेड़ोंके बच्चे तुमको धरोहरके समान रखने पड़ेंगे और हमारे साथ तुम रमण करो, क्योंकि जो पुरुष बड़ाईके योग्य है, उसको ही स्त्रियाँ वरण करती हैं, इसलिये विजातीय होनेपर भी तुम्हारे वरण

करनेमें हमें कोई दोष नहीं है ॥ २१ ॥ हे वीर ! परन्तु मैं तुम्हारे निकट रहकर घृत भक्षण करूंगी और मैथुनके अतिरिक्त किसी समय तुमको वस्त्ररहित न देखूं,जब तक इतनी बातें आप मेरी स्वीकार न कर लेंगे तबतक मैं आपके संग कदापि प्रसंग न करूंगी। राजा पुरूरवाने उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर यह सब बातें अंगीकार कर लीं ॥२२॥ और कहा कि हे सुन्दरि ! तुम्हारा आश्चर्यमय रूप और आश्चर्यमय भाव देखते ही मनुष्यका हृदय मोहित हो जाता है। तुम स्वर्गकी देवी अपने आप यहां आयी हो, अतः कौन मनुष्य तुम्हारी सेवा न करेगा ? ॥ २३॥ हे राजन् ! यह कहकर पुरुषप्रधान पुरूरवा उर्वशीके साथ देवतालोगोंके विहार-स्थल चैत्ररथादि वनोंमें विहार करने लगे और उर्वशी भी यथायोग्य उस नृपालको आनंद देने लगी ॥ २४ ॥ इस देवी उर्वशीके शरीरमें कमलके परागके

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्यत्र मैथुनात् ॥ विवाससं नत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥ २२ ॥ अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ॥ को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥ २३ ॥ तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः ॥ रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥ २४ ॥ रममाणस्तया देव्या पद्मकिञ्जल्कगन्धया ॥ तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥२५॥ अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समचोदयत् ॥ उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥२६॥ त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ॥ उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥ २७ ॥ निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ॥ हताऽस्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ २८ ॥

समान सुगंधि निकलती थी । उर्वशीके साथ विहार करके राजा इसके वदनकी सुगंधिसे बहुत दिनतक हर्ष पाते रहे ॥ २५ ॥ इस ओर पुरमें देवराज इंद्रने उर्वशीका दर्शन न पाकर गन्धर्वोंको आज्ञा दी कि वह उर्वशी जहांपर हो वहांसे शीघ्र ले आओ, क्योंकि विना उर्वशीके हमारे स्थानकी शोभा नहीं होती ॥ २६ ॥ आधी रातके समय जब महाअन्धकार हुआ, उस समय वह इन्द्रके भेजे गन्धर्व मृत्युलोकमें आये और उन मेढ़ोंको हरण करके चल दिये जिनको धरोहरकी भांति उर्वशीने पुरूरवाके निकट सौंपा था ॥ २७ ॥ उन दोनों मेढ़ोंको उर्वशी पुत्रके समान मानती थी, जब उन मेढ़ोंको गन्धर्वगण हरण करके ले जाने लगे तब वह अति आर्त वाणीसे चिल्लाये । उस चिल्लानेके शब्दको सुनकर उर्वशी देवलोकमें जानेकी वासनासे खेदसहित

राजा पुरूरवासे कहने लगी—"हाय ! मैं इस कुत्सित स्वामीसे मारी गयी। इस नपुंसकमें कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है, वरन् यह अपने आपको वृथा ही वीर जानकर अभिमान करता है ॥२८॥ इसके ऊपर विश्वास करनेसे मेरा नाश हो गया। हाय ! मेरे पुत्र समान मेढ़ोंको चोर हरण करके चले जाते हैं। अरे ! यह पुरुष कैसा है ? कि जो नारीके समान भीत रहकर दिनरात घरमें पड़ा रहता है" ॥ २९ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार हाथी अंकुशसे विद्ध होता है उसी प्रकार उर्वशीके वचन वाणके समान राजाके हृदयको वेध दिये और उसी समय खड्ग ग्रहण करके क्रोधके कारण वस्त्ररहित मेढ़ोंके हरनेवालोंपर झपटा ॥ ३० ॥ गंधर्वोंने देखा कि राजा हमारे पीछे आता है, तब गंधर्वगणोंने मेढ़ोंको छोड़ दिया और द्युतिमान होकर वहां प्रकाश करने लगे। तब राजा उन मेढ़ोंके बच्चोंको लेकर वहां

यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ॥ यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥ २९ ॥ इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्त्रैरिव कुञ्जरः ॥ निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥ ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः ॥ आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१ ॥ ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ॥ तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२ ॥ स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ॥ पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥३३॥ अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥ मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४ ॥

आया, परन्तु उस समय उर्वशीने उनको नग्न देख लिया। हे कुरुश्रेष्ठ ! "मैथुनके अतिरिक्त नङ्गा न देख सकूँगी" इस बातको विचार वह अप्सरा वहांसे चली गयी। इसके उपरान्त राजा पुरूरवा सेजपर उर्वशीको न पाकर अत्यन्त विमन हुआ और उसीमें चित्त लगाकर कातरता प्रगट करके शोकके वेगसे उन्मत्तकी नाईं पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कुछ दिनों पीछे कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तट पर वह अप्सरा पांच सखियोंके साथ राजा पुरूरवाको दिखाई दी, तब राजाने सिटपिटाकर हर्षित हो यह वचन कहे ॥३३॥ हे प्यारी ! हे निर्दय बाले ! रहो, रहो। हे सुमुखि ! मैं अबतक सावधान नहीं हूँ। प्राणेश्वरी ! आओ तो दोनों एक स्थानपर बैठकर बात-

चीत करें॥३४॥हे देवि! हमारा यह कमनीय शरीर तुमसे दूर किया हुआ जो यहां आया है अभी यहां गिरता है और देखो तुम्हारी प्रसन्नताके पात्र न होनेसे भेड़िये और गिद्ध इसको भक्षण कर जायँगे ॥ ३५ ॥ राजाके यह वचन सुनकर उर्वशी बोली कि हे राजन्! मरो नहीं, तुम पुरुष हो। धैर्य धारण करो, यह भेड़िये अथवा प्रसिद्ध इन्द्रियाँ तुमको भक्षण न करें अर्थात् तुम इन्द्रियोंके वश मत होओ। हे राजन्! कहीं भी स्त्रियोंकी मित्रता नहीं स्थिर होती, क्योंकि इनका हृदय भेड़ियोंके समान होता है॥ ३६ ॥ स्त्रियोंको स्वभावसे ही करुणा नहीं होती। यह क्रूर और शांतिरहित कहलाती हैं, अपने प्रीतमके लिये साहस करती हैं, थोड़ी सी बातके लिये वह विश्वास-

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥ उर्वश्युवाच ॥ मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाऽद्युर्वृका इमे ॥ क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ॥ घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७ ॥ विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ॥ नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८ ॥ संवत्सरान्ते हि भवानेक रात्रं मयेश्वर ॥ वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अन्तर्वत्नीमुपालभ्य देवीं स प्रययौ पुरम् ॥ पुनस्तत्र गतोऽब्दान्ते उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥ उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम् ॥ अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१ ॥

घातिनी पति अथवा भ्राताको प्राणोंसे मार डालती हैं ॥ ३७ ॥ अधिक करके जो पुँश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी हैं इच्छानुसार घूमती हैं, वह सौहार्दको एक साथ ही छोड़ देती हैं, वह तो अज्ञानी पुरुषके सामने बाहरी (अलीक) प्रेम प्रकट करती हैं ॥३८॥ जब राजाने बहुत विनती की तब उर्वशी बोली कि वर्षके अन्तमें तुम मेरे साथ एक दिन विहार कर सकोगे और उससे ही तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त राजा पुरूरवा देवी उर्वशीको गर्भवती देख उसके वचन मान अपने नगरको चला आया, परंतु वर्षके व्यतीत होनेपर फिर वहांपर गया,जहां कि पहले उर्वशीसे भेंट हुई थी।वहां वीर प्रसविनी उर्वशीको देखकर राजाको परम हर्ष हुआ और प्रमुदित

चित्तसे उर्वशीके पास एक रात वास किया। फिर वियोगके भयसे राजाका चित्त व्याकुल हुआ ॥४०॥४१॥ उर्वशी दीन राजाको विरहातुर देखकर कृपा करके बोली—हे राजन् ! हमारे लिये शोक क्यों करते हो ? गन्धर्वलोगोंकी विनय करो। वे गन्धर्वगण प्रसन्न होकर हमको सदाके लिये तुम्हें दे देंगे। हे परीक्षित् ! उर्वशीके यह वचन सुनकर राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी बड़ी स्तुति की कि जिससे गन्धर्वगण बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रसन्न होकर राजाको अग्निस्थाली (टोकनी) दी। उसके देनेका तात्पर्य यह था कि जब इससे अग्निकर्म किया जायगा, तब ही उर्वशी प्राप्त हो जायगी, परन्तु राजा पुरूरवाने उस अग्निस्थालीको ही उर्वशी समझा और उसको कांखमें दबाये वनमें घूमता फिरा परन्तु फिर राजाका भ्रम दूर हो गया अर्थात् यह समझ लिया कि यह उर्वशी नहीं किन्तु अग्निस्थाली है ॥४२॥ उसके उपरांत अग्निस्थालीको वनमें डालकर घर आया और घरमें आकर नित्य रात्रिके समय उर्वशीका ध्यान करने लगा। इससे त्रेतायुगके

गन्धर्वानुपधावेमां स्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति ॥ तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ॥ उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन् वने ॥४२॥ स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्वत ॥४३॥ स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः ॥ तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४ ॥ उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ॥ आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत् प्रजननं प्रभुः ॥४५॥ तस्य निर्मन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ॥ त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥

आरंभके समय राजाके हृदयमें कर्मबोधक तीन वेद उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ उसके पीछे राजा फिर वहीं पर गया कि जहां अग्निस्थाली पड़ी थी और देखा कि शमी वृक्षके गर्भमें अथवा शमी जिसके गर्भमें थी ऐसा एक पीपलका पेड़ जमा है, उसमें अग्निका होना भलीभांतिसे देख उर्वशी लोककी कामनासे राजाने उस पेड़से दो अरणी बनायी और उस अग्निको मथा। हे राजन् ! राजा पुरूरवाने किस प्रकारसे अरणियोंसे अग्नि निकाली वह तुम सुनो। मंत्रके अनुसार नीचेकी अरणीको और उत्तरकी अरणीको आत्मा समझकर और उन दोनोंमें जो काठका टुकड़ा था, उसका यह राजा पुत्रकी भांति ध्यान करने लगे ॥४४॥४५॥ जैसे ही वह अरणी मथी गयी कि उसमेंसे अग्नि निकली। यह अग्नि साधारण नहीं, इससे भोज्यधन जन्म लेता है। इसके पीछे वह अग्नित्रयी विद्याकी विधिके अनुसार कहे हुए संस्कारसे त्रिवृत अर्थात् आहव-

भा॰ न॰ ॥४४॥ नीयादि त्रिरूप हुई। फिर राजाने उस त्रिवृत अग्निको अपना पुत्र कहकर माना ॥४६॥ और इस राजाने उर्वशी लोककी कामना करके उस अग्निसे सर्व देवमय यज्ञेश भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! पहले सतयुगमें सब प्रकारके वाक्योंका बीजभूत ओंकार ही एकमात्र वेद था, नारायण ही अकेले देवता थे, वर्ण भी एक ही था और अग्नि भी एक ही था ॥४८॥ फिर त्रेतायुगके आरंभमें पुरूरवासे तीन वेद उत्पन्न हुए इसलिये इस युगमें यह राजा अग्निरूप प्रजा द्वारा गन्धर्वलोकको प्राप्त होकर उर्वशीके साथ विहार करने लगा। सत्ययुगमें सब ही पुरुष सत्त्वगुण प्रधान थे इसलिये सब ही ध्याननिष्ठ हुआ करते थे। उसके पीछे रजोगुण प्रधान त्रेतायुगमें वेदादिके विभागसे कर्म-

तेनायजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् ॥ उर्वशीलोकमन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७ ॥ एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ॥ देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥ पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥ अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महा॰ नवमस्कन्धे सोमवंशचरिते ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऐलस्य चोर्वशीगर्भात् षडासन्नात्मजा नृप ॥ आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥ श्रुतायोर्वसुमान् पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतंजयः ॥ रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनो होत्रकस्ततः ॥ तस्य जह्नुः सुतो गङ्गां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत् ॥ जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ३ ॥

भा॰ टी॰ अ॰ १५ मार्ग प्रकाशित हुआ है ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा—पुरूरवाके वंशमें, भये गाधि गम्भीर। ता दौहित्रके पुत्र भे, परशुराम रणधीर ॥ इसके उपरांत श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! राजा पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे ६ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम यह हैं:—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥ १ ॥ इनमें श्रुतायुके वसुमान्, सत्यायुके श्रुतञ्जय हुआ, रयका पुत्र एकनामा हुआ। जयकी सन्तान अमित और विजयका पुत्र भीम हुआ। भीमका पुत्र काञ्चन और काञ्चनके होत्रक जन्मा। इस होत्रकके उन जह्नुका जन्म हुआ, जिन्होंने एक ही घूँटमें सब गंगाजीका जल

पान कर लिया है जह्नुके पुरूरवा जन्मा, उसका बलाक, उसका बेटा अजक ॥ २ ॥ ३ ॥ और अजकके यहां कुशने जन्म लिया । कुशके कुशाम्बु, मूर्त्तय, वसु और कुशनाभ यह चार पुत्र हुए उनमें से कुशाम्बुके महात्मा गाधिने जन्म ग्रहण किया * ॥ ४ ॥ इन गाधिके सत्यवती नामक एक कन्या उत्पन्न हुई । ब्राह्मण ऋचीकने राजा गाधिसे उस कन्याको मांग लिया था । राजा गाधिने कन्याके योग्य यह वर न विचार कर निवेदन किया॥५॥ हे महाराज ! जिनका एक ओरका (बाँया अथवा दाहिना) कान श्यामवर्ण हो और जिनके

ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुर्मूर्तयो वसुः ॥ कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत् कुशाम्बुजः ॥ ४ ॥ तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ॥ वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥ सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६ ॥ इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम् ॥ आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥ स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ॥ श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८ ॥

सब अंगोंमें चन्द्रमाके समान ज्योति हो ऐसे एक सहस्र घोड़े तुम हमें इस कन्याके शुल्क स्वरूप भेंट दो तब हम तुम्हें यह कन्या दें कुछ इन हजार घोड़ोंको आप अधिक न समझें, क्योंकि हम कुशिकके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! ऋचीक मुनि राजाके ऐसे वचन सुनकर सब अभिप्राय जान वरुणजीके निकट उसी समय चले गये और वहांसे एक हजार घोड़ोंको लाकर उसे देकर श्रेष्ठ मुखवाली कन्यासे विवाह किया ॥७॥ कुछ कालके पीछे ऋचीक मुनिकी भार्या और सासने पुत्रकी कामना करके इन ऋचीकसे प्रार्थना

---

* शंका—पुत्र होनेके लिये सब राजा लोग यज्ञ किया करते थे, परन्तु राजा गाधिने पुत्र होनेके लिये यज्ञ क्यों नहीं किया ? क्योंकि राजा गाधिकी स्त्रीने पुत्रहोनेके लिये अपने जामातासे याचना की थी, यह सन्देह हमारा निवारण करो ।

उत्तर—राजा गाधि नित्यप्रति यही चिन्ता करते थे किसी समय पुत्र होनेके लिये यज्ञ करेंगे यही विचार करते-करते बहुत दिन बीत गये । तबतक ऋचीक नाम भृगुवंश तपस्वी के संग राजा गाधिने जब अपनी सत्यवती कन्याका विवाह कर दिया, तब रानी अपने जामाता (जमाई) को सिद्ध समझकर पुत्रकी याचना करने लगी । रानीने अपने मनमें विचारा कि राजा यज्ञ करनेके लिये अभी विचार कर ही रहे हैं; परन्तु अभी यज्ञ करते नहीं । इसलिये रानीने जामातासे पुत्र होनेकी याचना की कि राजा यज्ञ करें वा न करें ।

की, तब यह ऋषि अपनी भार्याके लिये ब्रह्ममन्त्रसे और सासके लिये क्षत्रिय मन्त्रसे चरु पकाकर स्नान करनेको चले गये ॥८॥ तब सत्यवतीकी माताने मनमें विचारा कि भार्याके ऊपर पतिका अधिक स्नेह हुआ करता है अतः जामाता मेरी कन्याके लिये जो चरु बनाकर गये हैं वह अवश्य ही हमारे चरुसे श्रेष्ठ होगा। यह सोच-विचार इसने अपनी कन्यासे वह चरु मांगा जो कि ऋषि इस अपनी भार्याके लिये बना गये थे। सत्यवतीने माताकी प्रार्थनासे ब्रह्ममन्त्रयुक्त अपना चरु उसको दे दिया और आपने क्षत्रियमन्त्रका पढ़ा हुआ चरु भक्षण किया ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त जब मुनिने आकर यह बात जान ली तब अपनी स्त्रीसे बोले-"बड़ा नीच कर्म किया, चरुका अदल-बदल करने से तुम्हारा पुत्र घोर दण्डधारी होगा और तुम्हारा भ्राता ब्रह्मचारी होगा"॥१०॥यह सुन सत्यवती अत्यन्त भीत हो अनेक भांतिकी अनुनय

तावत सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती ॥ श्रेष्ठं मत्वा तस्याऽयच्छन्मात्रे मातुरदात्स्वयम् ॥ ९ ॥ तद्विज्ञाय
मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ॥ घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्या
मैवं भूदिति भार्गवः ॥ अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥ सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपा-
वनी ॥ रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥ १२ ॥ तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ॥ यवीयाञ्जज्ञ
एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् ॥ त्रिस्सप्तकृत्वो य इमां चक्रे निः
क्षत्रियां महीम् ॥ १४ ॥ दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ॥ रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥ १५ ॥

विनय कर ऋषिसे बोली-"महाराज ! ऐसा न हो"तब भार्गव प्रसन्न होकर बोले कि तुम्हारा पौत्र भयंकर होगा, हे राजन्! इसके पीछे सत्यवतीके 'जमदग्नि' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥११॥ हे राजन् ! फिर,वही सत्यवती अबला लोकपावनी महापुण्यमय कौशिकी नदी होकर बही है हे परीक्षित् ! इन महर्षि जमदग्निने रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया ॥ १२ ॥ उस रेणुकाके गर्भसे इन ऋषिके वसुमानादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, उन सब पुत्रोंमें छोटे'परशुराम'हुये ॥१३॥ प्राचीन कविलोग इनको भगवान् वासुदेवका अंश और हैहय नाम क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाला कहते हैं । इन परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन किया था ॥ १४ ॥ पहले क्षत्रिय जातिके लोग रजोगुणसे व तमोगुणसे परिपूर्ण हो गर्वकारी और वेद विरुद्धाचारी हुए इसलिये यह पृथ्वीपर भारकी नाईं हो गये थे। यद्यपि अपराध इनका थोड़ा

था तो भी परशुरामजीने इनको मार ही डाला ॥ १६ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! अजितेन्द्रिय क्षत्रियजातिने भगवान् परशुरामजीका ऐसा क्या अपराध किया था,कि जिससे उनका क्रोधानल बारबार क्षत्रियकुलके ऊपर पड़ा था ॥१६ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षितका प्रश्न सुनकर सहर्ष श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! हैहयोंके अधिपति-क्षत्रियश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनने नारायणके अंशके अंश भगवान् दत्तात्रेयकी सेवा करके सहस्र भुजायें प्राप्त की और इनके ही बलसे यह शत्रुओंपर दुर्द्धर्ष हुआ था। दत्तात्रेयकी सेवासे राजाको अव्याहत इन्द्रियसामर्थ्य,सम्पदा,प्रभाव, वीर्य,बल, ॥ १७ ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्व और जिसमें अणिमादि सिद्धि विराजमान रहें ऐसा ऐश्वर्य भी उसने पाया था इसलिये यह राजा पवनके समान अव्यर्थगतिवाला हो सब लोकोंमें विना बाधाके भ्रमण करने लगा

राजोवाच ॥ किं तदहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ॥ कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः ॥ दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७ ॥ बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ॥ अव्याहतेन्द्रियौजःश्रीस्तेजो वीर्यं यशो बलम् ॥ १८॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ॥ चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥१९॥ स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्रेवाम्भसि मदोत्कटः ॥ वैजयन्ती स्रजं बिभ्रद्रुरोध सरितं भुजैः ॥ २० ॥ विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतस्सरिज्जलैः ॥ नामृष्यत तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ॥ माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥२२॥

॥१९॥ एक समय यह सहस्त्रार्ज्जुन वैजयन्ती माला धारण कर बहुतसी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीके जलमें क्रीड़ा करने लगा । मदोन्मत्तताके कारण केलि करते-करते इसकी हजार बाहोंसे अचानक नर्मदाकी धारा रुक गयी ॥२०॥ उसी समय राक्षसराज रावण दिग्विजय करनेके लिये बाहर हो माहिष्मती पुरीके समीप डेरा डाल शिवलिंग स्थापित कर, इस नदीके किनारे उनकी पूजा करता था जब कार्तवीर्यार्जुनकी भुजाओंसे जलकी धार रुक गयी तब नदीकी धार प्रतिकूल हो नदीके किनारेको डुबाती हुई दूसरी ओरको लौटा । नदीकी धारके जलसे अपने डेरेको डूबता हुआ देखकर अर्जुन के वीर्यको वीर्याभिमानी रावण नहीं सह सका तब रावणने विहार करते हुए सहस्रार्जुनको

भा० न०
॥४६॥

पराजित करनेका उद्योग किया। हे राजन्! जब स्त्रियोंके सामने रावणने इस प्रकारका ढीठपन किया तब सहस्रार्जुनने क्रोधित हो उसको पकड़ लिया और अपने नगर में बाँधकर ले आया और बंदरके समान कुछ दिन अपने घरमें बांधे रहा और फिर अवज्ञा कर छोड़ दिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ जिस तरह कार्तवीर्यार्जुन अपराधी होकर परशुरामजीके हाथसे मारा गया उसका भी वर्णन करते हैं, तुम सुनो—एक समय सहस्रार्जुन मृगयाके लिये विजय वनमें घूमता-घूमता अकस्मात् जमदग्निजीके आश्रममें आ पहुंचा ॥ २३ ॥ मंत्री, सेना, सामन्त और अश्वादि वाहन सहित इस राजाको अपने आश्रममें आया हुआ देखकर जमदग्निऋषिने अपने कामधेनु गाय द्वारा भलीभांति इनका अतिथिसत्कार किया ॥२४॥ मुनिकी इस धेनुरत्नको अपने ऐश्वर्यमें श्रेष्ठ देखकर इस पहुनईसे सहस्रार्जुनको सन्तोष न हुआ,

स एकदा तु मृगया विचरन्विपिने वने ॥ यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥२३॥ तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ॥ ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥ २४ ॥ स वीरस्तत्र तद् दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ॥ तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः ॥२५॥ हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ॥ ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ॥ २६ ॥ अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ॥ श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥ २७ ॥ घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ॥ अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥

अतः उसने हैहय लोगोंके साथ परामर्श करके इस गायके ले जानेकी अभिलाषा की॥२५॥ इसलिये दर्प करके अपने पुरुषोंको आज्ञा दी
भा० टी०
अ० १५
कि ऋषिके अग्निहोत्रकी गाय ले लो। यह आज्ञा पाकर सहस्रार्जुनके सेवक रोती और डकराती हुई बच्चे सहित गायको बलात्कार (जबरदस्ती) पकड़कर माहिष्मती नगरीको ले गये ॥ २६ ॥ जब राजा गायको लेकर माहिष्मती पुरीको चला आया तब जमदग्नि जीके पुत्र परशुरामजी आश्रममें आये। वह इस राजाकी यह दुष्टता सुनकर चोट खाये हुए सर्पके समान क्रोधाग्निसे जल उठे ॥ २७ ॥ उसी समय परशुरामजी घोर परशा हाथमें ले तूण सहित धनुष बाण ले बख्तर पहनकर महाक्रोधित हो उस राजाके पीछे दौड़े, जैसे

सिंह यूथपति हाथीके ऊपर झपटता है ॥ २८ ॥ हे राजन् ! कार्तवीर्यार्जुन जब अग्निहोत्रकी गाय लेकर अपनी माहिष्मती पुरीमें प्रवेश करना ही चाहता था कि इतनेमें ही उसने देखा कि भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी मृगचर्म पहने हुए बाणादि आयुध सहित धनुष धारण किये महावेगसे आ रहे हैं और सूर्यके समान प्रकाशमान इनकी जटा इधर-उधर छिटक रही है ॥ २९ ॥ यह देखकर सहस्रार्जुनने भीत हो अपने बचनेके लिये हाथी, घोड़े, रथ, पैदल और गदा, असि, बाण, ऋष्टि (अस्त्रविशेष) शतघ्नी और शक्ति सहित सहस्र अक्षौहिणी भयंकर सेना भेज दी,परन्तु परशुरामजीने अकेले ही उस सब सेनाका संहार कर डाला ॥ ३० ॥ महात्मा परशुरामजीका वीर्य और वेग व मन पवनके तुल्य था, इस कारण शत्रुसेनाको नाश करनेके लिये वे अग्निके समान थे। वे अपना परशा चलाते हुए जहां-जहां गये

तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ॥ ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥ २९ ॥ आचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ॥ अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत ॥ ३० ॥ यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः ॥ ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकन्धरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः ॥ विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहय आपतद् रुषा ॥३२॥ अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभिर्धनुष्षु बाणान्युगपत्स संदधे ॥ रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥

उसी-उसी स्थानमें शत्रुसेनाके वीरगण छिन्नबाहु, छिन्नजंघ और छिन्नमुण्ड होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और उनके अश्व सारथी सबही मारे गये ॥ ३१ ॥ हैहयपति अर्जुन रणभूमिमें रुधिरकी धारासे कीच उठी देख और परशुरामजीके कुठार व बाण प्रहारसे वर्म, ध्वजा, धनुष, बाण और शरीर छिन्न-भिन्न होनेसे प्रायः सब ही सेना युद्धमें गिर पड़ी, यह देख क्रोधित हो सहस्रबाहु आप ही संग्राम करनेके लिये चला आया ॥३२॥ और परशुराम जीका संहार करनेको अपनी सब भुजाओंसे एकबार ही पांच सौ (५००) धनुष ग्रहण कर उनपर पांच सौ तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर चलाने लगा। हे राजन् ! महातेजस्वी परशुरामजी अस्त्रधारियोंमें आगे गिनने योग्य हैं। यद्यपि वे एक

भा० न०
॥४७॥

ही धनुष चढ़ाये थे तो भी उसी धनुषसे अगणित बाण चलाकर एक साथ अर्जुनके पांच सौ धनुष काट डाले ॥ ३३ ॥ धनुषोंके कट जाने पर अपनी भुजाओंसे समर करनेके योग्य अनेक अनेक पर्वत और वृक्ष लेकर महावेगसे रणभूमिमें खड़े हुए परशुरामजीके ऊपर दौड़ा ॥ ३४ ॥ यह देखकर परशुरामजीने अति पैनी धार वाले कुठारसे सर्पके फणोंके समान उसकी सब भुजायें काट डालीं और पीछेसे पर्वतके शिखरके समान सहस्रबाहुका मस्तक भी काट दिया । हे राजन् ! सहस्रबाहुके मारे जाने पर उसके दश सहस्र पुत्र भयके कारण भाग गये ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त परशुरामजी बच्चे सहित उस गायको लेकर आश्रममें आये और शत्रुके

पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेऽङ्घ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ॥ भुजान्कुठारेण कठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥३४॥ कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृङ्गमिवाहरत् ॥ हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ॥ समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६ ॥ स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ॥ वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ राम राम महाबाहो भवान्पापमकारषीत् ॥ अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥ वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयाऽर्हणतां गताः ॥ यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात्पदम् ॥ ३९ ॥ क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ॥ क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥ ४० ॥

हाथमें जानेसे क्लेशित हुई उस गायको लाकर अपने पिताजीको सौंप दिया ॥३६॥ परंतु जिस समय परशुरामजीने अपना किया हुआ
भा० टी० कर्म पिता और भ्राताओंसे वर्णन किया तब मुनिश्रेष्ठ जमदग्निको संतोष नहीं हुआ, अतः विराग दिखाते हुए बोले ॥ ३७ ॥ हे राम !
अ० १५ हे महाबाहु ! तुम महापाप कर आये । कैसी खेदकी बात है ? नरदेव राजा सर्वदेवमयस्वरूप है, उसको तुमने वृथा ही मार डाला ॥३८॥ हे तात ! हम ब्राह्मण क्षमागुणसे ही पूजित हुए हैं । यह गुण साधारण नहीं है । इसी गुणसे ब्रह्माजी लोकगुरु हो परमेष्ठी पदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! जमदग्नि फिर बोले कि वत्स ! क्षमासे ही सूर्य संबंधिनी प्रभाके समान ब्रह्मसम्बन्धिनी श्री शोभायमान होती है और

क्षमाशील पुरुषके ऊपर भगवान् वासुदेव शीघ्रही प्रसन्न हो जाते हैं ॥४०॥ हे अंग! चक्रवर्ती राजाका वध ब्रह्मवधसे भी भारी है। इसलिए तुम भगवान् हरिमें मन लगाकर तीर्थ-सेवा और यम-नियमादि द्वारा अपने पापोंका नाश करो इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां परशुरामचरिते हैहयार्जुनवधो नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ दोहा—सोलहमें जमदग्नि वध, युत सुत कियो हजार। परशुराम तासों करत, क्षत्रिनको संहार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशावतंस परीक्षित्! पिताके उपदेशसे परशुरामजी "बहुत

राज्ञो मूर्धाभिषिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः ॥ तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महा० नवमस्कन्धे सोमवंशचरिते कार्त्तवीर्यार्जुनवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ॥ संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाऽऽश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् ॥ गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥ विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता ॥ होमवेलां न सस्मार किंचिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३ ॥ कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता ॥ आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥

अच्छा" कह वनको चले गये और एक वर्षतक तीर्थयात्रा करके आश्रममें लौट आये ॥ १ ॥ किसी समय जमदग्निकी स्त्री रेणुकाने गंगा जीके निकट जाकर वहां पद्ममाली चित्ररथ नाम गन्धर्वराजको अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ देखा ॥२॥ रेणुका जल लानेके लिये गंगाजीपर गयी थी, विहार करते हुए गंधर्वराजके देखनेमें रेणुकाने उनकी चाहनाकी और होमका समय व्यतीत हो गया इसको भी रेणुकाने जाना * ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कालको बीता जाता हुआ देखकर मुनिसे शापकी आशंका कर वह अत्यन्त भीत

* शंका—रेणुकाकी वृद्धावस्था थी तो भी स्त्री पुरुषकी रतिका आनन्द देखती थी, यह बड़े सन्देहकी बात है ? वृद्धावस्थामें विषयकर्मका आनन्द क्यों देखा ?

उत्तर—बाल्यावस्थामें रेणुका अत्यन्त चञ्चल थी और अपने पिताके भवनमें रहती थी, तो भी प्रत्येक कार्य चंचलपनेके साथ करती थी। एक दिन बहुतसी सखियोंको संग लेकर स्नान करनेके लिये एक नदीपर गयी। एक वृद्ध चिड़ियाने अपने प्रिय पति पक्षीके सङ्ग विहार कर रही थी, उसको देखकर रेणुका बहुत हँसी। तब चिड़ियाने अत्यन्त कुपित होकर शाप दिया कि रे दुष्टबुद्धे ! मैं तो अपने पतिके साथ रमण करती हूँ, परन्तु तू वृद्धावस्थामें दूसरे पुरुषके संग क्रीड़ा करेगी, अर्थात् सब क्रीड़ाओंका मूल आंखोंसे देखना है; वही क्रीड़ा तू करेगी इसलिये रेणुकाने वृद्धावस्थामें पाप किया, कोई दूसरा कारण नहीं था ?

भा० न० ॥४८॥ हुई और शीघ्र आ जलकलशको मुनिके आगे रख खड़ी हो गयी ॥ ४ ॥ इधर अपनी भार्याके मानसिक व्यभिचारको जान महर्षि जमदग्निको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ, उन्होंने प्रज्वलित अग्निके समान तीक्ष्ण हो अपने पुत्रोंको पुकारकर यह आज्ञा दी कि तुम इसी समय अपनी पापिनी माताको मार डालो, परन्तु इन पुत्रोंने पिताका वचन नहीं सुना ॥ ५ ॥ और परशुराम अपने पिताकी समाधि, एवं तपस्याके प्रभावको जानते थे, अतः जब इनसे मुनिने कहा कि तुम अपने इन भाइयोंको और अपनी माताको मार डालो तब उन्होंने विचारा जो पिताकी आज्ञा उल्लंघन कर इनको नहीं मारता तो पिताजी क्रोधित होकर हमको शाप दे देंगे और जो हम इनको मार डालेंगे तो कदाचित् हमारे ऊपर प्रसन्न हो गये तो ये हमारी माता और भ्राताओंको जिला भी सकते हैं। इसलिये जैसेही पिताने आज्ञा दी वैसे ही महात्मा परशुरामजीने माताके सहित अपने भ्राताओंका संहार किया ॥ ६ ॥ यह देखकर सत्यवतीके पुत्र जमद-

व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् । घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥ रामः संबोधितः पित्रा भ्रातॄन्मात्रा सहावधीत ॥ प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च यः ॥६॥ वरेण च्छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥ ७ ॥ उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा ॥ पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥ ८ ॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन् स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् ॥ रामवीर्यपराभूता लेभिरे न शर्म कचित् ॥ ९ ॥ एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ॥ वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥

ग्निमुनि परशुरामजीपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और परशु रामजीसे बोले—इच्छानुसार वर मांगो। तब परशुरामजीने यह वरदान मांगा कि हमारे भ्राता और माता फिर जी जायँ और यह इस बातको भी भूल जायँ कि हमने इनको मारा है ॥७॥ वैसे ही जमदग्निमुनिने वर देकर कहा कि "ऐसा ही हो" तब उन मरे हुओंमें प्राण आ गया और जैसे सोया हुआ पुरुष नींदसे उठ बैठता है, वैसे ही ये सब उठ बैठे। हे राजन्! यह शंका मत करना कि परशुरामने ऐसा निंदित कर्म क्यों किया? यह परशुरामजी अपने पिताके तपोबलको भलीभांति जानते थे, इसलिये उन्होंने अपने सुहृदोंको मार डाला था ॥ ८ ॥ हे महाराज! इधर कार्त्तवीर्यार्जुनके दशहजार पुत्र परशुरामजीके वीर्यसे पराभव पाकर अपने पिताके वधको याद करके कहीं भी सुख स्वच्छन्दता पानेके लिये समर्थ नहीं हुए ॥ ९ ॥ एक समय परशुरामजी

भ्राताओंसहित वनको गये थे तब कार्तवीर्यार्जुनके ये सब पुत्र अवसर पाकर पिछला वैर लेनेकी इच्छासे परशुरामजीके आश्रममें आये ॥१०॥ इन सबने वहां आकर देखा कि परशुरामजीके पिता जमदग्निमुनि भगवान् में चित्त लगाये अग्निशालामें बैठे हुए हैं। यह अवसर पाकर इन पापात्माओंने उसी समय इन मुनिको मार डाला ॥ ११ ॥ परशुरामजीकी माता रेणुका अपने पतिको मरा हुआ देख अतिदीन हो अपने पतिके प्राणोंकी भिक्षा चाहने लगी, परंतु तो भी निष्ठुर क्षत्रियोंको दया न आयी और बलपूर्वक रेणुकाके केश पकड़कर ले गये ॥१२ ॥ तब परशुरामजी की माता पति शोकसे आर्त हो अपनी छाती पीटती हुई "हा राम ! हा राम ! हा तात ! ! हा तात ! ! ! " कह बड़े जोरसे रोने और विलाप करने लगी ॥१३॥ दूरसे "हा राम ! " की पुकार और आर्तवाणी सुनकर वीर्यवान् परशुरा-

दृष्ट्वाऽग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ॥ भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥११॥ याच्यमानाः कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः ॥प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः ॥१२॥ रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मनमात्मना ॥ राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥ तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत् स्वनम् ॥ त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥ १४ ॥ तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः ॥ हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽस्मान् स्वर्गतो भवान् ॥ १५ ॥ विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ॥ प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे ॥ १६ ॥ गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नं विहतश्रियम् ॥ तेषां स शीर्षभी राजन् मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७ ॥

मजी भ्राताओं सहित अतिशीघ्र अपने आश्रममें आये और वहां देखा कि पिता मृतक हुए पड़े हैं ॥ १४ ॥ पिताको मृतक देख सब भाइयोंको ऐसा दुःख, शोक, क्रोध, झुँझुलाहट और पीड़ा उत्पन्न हुई कि सबके सब मोहितसे हो गये ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त महात्मा परशुरामजी "हा तात ! हा साधो ! हा धार्मिक ! हमको छोड़कर आप स्वर्गको चले गये" इस प्रकार विलाप करने लगे और पिताके मृतक देहको अपने भाइयोंके निकट रखकर भयंकर परशा लेकर मनमें विचारने लगे कि अब हम (अवश्य) क्षत्रियोंके वंशका ध्वंस करेंगे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! परशुरामजीने अति शीघ्र माहिष्मती पुरीमें जाकर उसके बीचमें अर्जुनपुत्रोंके मस्तक काट काटकर एक

बड़ा भारी पर्वत बना दिया । जब वह सहस्रार्जुनके पुत्र ब्रह्महत्या कर आये थे तब ही इस माहिष्मती पुरीकी शोभा जाती रही थी, मध्यस्थानमें मुण्डमय पर्वतके होनेसे वह पुरी और भी भयानक हो गयी। फिर तेजस्वी परशुरामजीने उस कार्तवीर्यार्ज्जुनके पुत्रोंके रुधिरसे एक नदी उत्पन्न की, वह नदी ब्रह्मद्वेषियोंको अत्यन्त भयकी देनेवाली हुई ॥१७॥१८॥ इसके उपरान्त क्षत्रिय जातियोंको अन्याय वश हुआ देख पिताके वधका स्मरण कर परशुरामजीने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन किया और स्यमन्तपञ्चक स्थानमें रुधिरके नौ कुण्ड भर दिये ॥१९॥ उसके पीछे परशुरामजीने अपने पिताका शिर उनकी देहसे लगाकर कुशोंके ऊपर रख विविध यज्ञोंसे

तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ॥ हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि ॥ १८ ॥ त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥ स्यमन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान् नव ॥ १९ ॥ पितुः कायेन संधाय शिर आदाय बर्हिषि ॥ सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥ ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥ अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यमाम् ॥ आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥ ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥२३॥ स्वदेहं जमदग्निस्तुलब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ॥ ऋषीणां मण्डले सोऽभूत् सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ ॥

सर्वदेवमय आत्मा ईश्वरकी पूजा की ॥ २० ॥ उस यज्ञमें होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिम दिशा और उद्गाताको उत्तर दिशा दक्षिणामें दे दी ॥२१॥ अवान्तर दिशायें और दूसरे ऋत्विक् लोगोंको दे दीं । मध्यस्थल कश्यपजीको दान कर दिया, फिर उपद्रष्टाको आर्यावर्त देश दक्षिणामें देकर सभासदोंको भी यथायोग्य भूमि दक्षिणामें दी ॥ २२ ॥ इसके पीछे महानदी सरस्वतीमें जाकर यज्ञान्तका स्नान कर अनन्त पापोंको दूर कर आकाशमें बादल रहित सामने विराजमान होने लगे ॥२३॥ इस ओर महामुनि जमदग्नि परशुरामजीसे पूजित होनेके कारण स्मृति ही जिसका शरीर है ऐसे अपने शरीरको प्राप्त होकर सप्तर्षिमण्डलमें जाकर सप्तऋषि हुये॥२४॥

* प्रश्न —हे राजन् ! परशुरामजीने इक्कीस बार क्षत्रियों को क्यों मारा था ।
उत्तर—रेणुकाने सहस्रार्ज्जुनके पुत्रोंकी दुष्टता देख दुःखके मारे इक्कीस बार अपनी छातीको कूटा था, इसलिये परशुरामजीने इक्कीस बार क्षत्रियोंका नाश किया ॥

हे राजन्! कमललोचन जमदग्निके सुत भगवान् परशुरामजी भी आगामी मन्वन्तरमें वेदका प्रचार करेंगे अर्थात् वह भी वेद प्रचार करनेवाले सप्तर्षियोंमें से एक होंगे॥ २५ ॥ वह परशुरामजी दण्ड छोड़ शांत चित्तसे अबतक महेन्द्रपर्वतपर विराजमान हैं। सिद्ध, चारण और गंधर्वगण सदा उनके विचित्र चरित्रको गाया करते हैं॥ २६ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे भगवान् विश्वात्मा ईश्वर हरिने भृकुगुलमें अवतार ले अनेक वार क्षत्रियोंका संहार कर भूमिका भार उतार दिया॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! अब आगे सुनो। गाधिके प्रकाशमान अग्नितुल्य महातेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए। हे राजन्! यह तपके प्रभावसे क्षत्रियपन छोड़ ब्राह्मण हो गये ॥ २८ ॥

जामदग्न्योऽपि भगवान् रामःकमललोचनः॥ आगामिन्यन्तरे राजन् वर्तयिष्यति वै बृहत्॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः॥ उपगीयमान चरितःसिद्धगन्धर्वचारणैः॥२६॥एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः॥ अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन् बहुशो नृपान्॥२७॥गाधेरभून्महातेजाःसमिद्ध इव पावकः॥ तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम्॥ २८ ॥ विश्वामित्रस्य चैवासन् पुत्रा एकशतं नृप॥ मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते॥ २९ ॥ पुत्रं कृत्वा शुनश्शेपं देवरातं च भार्गवम्॥ आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम्॥ ३० ॥ यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः॥ स्तुत्वा देवान् प्रजेशादीन् मुमुचे पाशबन्धनात्॥ ३१ ॥ यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः॥ देवरात इति ख्यातःशुनश्शेपः स भार्गवः॥ ३२ ॥

हे महाराज! इन तेजस्वी विश्वामित्रजीके एक शत पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें यद्यपि केवल मध्यम पुत्रका नाम मधुच्छन्द था, तो भी सभी पुत्र मधुच्छन्द कहे जाते थे॥ २९ ॥ महर्षि विश्वामित्रजीने अजीगर्तके पुत्र शुनः शेपको भृगुवंशीय देवरात नामक पुत्र करके अपने सब पुत्रोंसे कहा था कि तुम सब इनको अपना बड़ा भाई समझना॥ ३० ॥ हे राजन्! इन शुनःशेपके पिता अजीगर्तने महाराज हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पशु बनानेके लिये मध्यम समझ ममता छोड़ बेंच दिया था परंतु यह पुरुषपशु (शुनःशेप) प्रजेशादि वरुणादि देवता लोगोंकी स्तुति करके पाशबन्धनसे छूटगया॥३१॥ वह देवता लोगोंसे रात (प्रदत्त) होनेसे गाधिवंशमें देवरात नामसे प्रसिद्ध हुआ

परन्तु भृगुवंशमें उसका नाम शुनःशेप था ॥३२॥ विश्वामित्रके मधुच्छन्द नामक जो पचास पुत्र बड़े थे, उन्होंने शुनःशेप को बड़ा मानने में अपना भला न समझा, इसलिये क्रोधित होकर विश्वामित्रजीने अपने पुत्रोंको यह शाप दिया कि तुम अति दुर्जन हो अतः आजसे म्लेच्छ हो जाओगे ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त मध्यम पुत्र मधुच्छन्दने अपने पचास छोटे भाइयोंके साथ पिताके पास आकर कहा कि "आप हमारे पिता हैं" हमको बड़ाई अथवा छुटाई जिसकी भी आज्ञा देंगे हम वही स्वीकार करेंगे ॥ ३४ ॥ यह कहकर इन्होंने मंत्रदर्शी शुनःशेपको अपना बड़ा भ्राता बनाया और सब एक वचन होकर बोले कि "हम सब ही तुम्हारे अनुगामी अर्थात् छोटे भाई हुए" यह सुनकर विश्वामित्रजी प्रसन्न हो अपने इन पुत्रोंसे बोले कि तुमने हमारे मानको रखकर हमको पुत्रवान् किया इससे हमको बहुत सन्तोष

ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ॥ अशपत् तान् मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥३३॥ स होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशता ततः ॥ यन्नो भवान् संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥३४॥ ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि ॥ विश्वामित्रःसुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ ॥ ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त माम् ॥ ३५ ॥ एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ॥ अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥ एवं कौशिकगोत्रे तु वैश्वामित्रैःपृथग्विधम् ॥ प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे परशुरामकृतक्षत्त्रवधविश्वामित्रान्वययोर्वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

हुआ और हम सन्तुष्ट होकर तुमको यह वर देते हैं कि तुम लोग पुत्रवान् होगे ॥ ३५ ॥ हे कुशिकगण ! ये देवरात भी तुम्हारा कौशिकगोत्री है, क्योंकि यह हमारा पुत्र हुआ है, इस लिये तुम इसके अनुगामी हो । हे राजन् ! इन पुत्रोंके अतिरिक्त विश्वामित्रके अष्टक हारीत, जयक्रतु, मानादि और भी अनेक पुत्र हुए थे ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार अनुगृहीत हुए और एक पुरुषको पुत्र मान लेनेसे विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक अनेक प्रकारका हो गया अर्थात् कुछ अभिशप्त और कुछेक प्रवरांतरको प्राप्त हुए । बस, देवरातको सबसे बड़ा माननेका ही यह कारण है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां

षोडशोऽध्यायः॥१६॥दोहा–सत्रहमें पुरूरवाको, ज्येष्ठ पुत्र भयो आय। ताके पाचों सुतनको, वंश कहौं सबगाय॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! पुरूरवाके * आयु नामक जो पुत्र हुआ था, उसके पांच पुत्र हुए नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, रम्भ और अनेना इनके नाम थे। उन क्षत्रवृद्धके वंशका वृत्तांत अब कहता हूँ, तुम श्रवण करो॥ १॥ २॥ क्षत्रवृधके पुत्र सुहोत्रके काश्य, कुश और गृत्समद यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए; इनमेंसे गृत्समदके शुनक उत्पन्न हुआ। उस शुनकसे ऋग्वेदियोंमें श्रेष्ठ शौनक मुनि हुए॥ ३॥ काश्यका पुत्र काशी, उसका पुत्र राष्ट्र और उसका बेटा दीर्घतमा दीर्घतमाके पुत्र धन्वन्तरि हुए कि जिन्होंने आयुर्वेदका प्रचार किया। यह धन्वंतरि यज्ञ भोक्ता

श्रीशुक उवाच॥ यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः॥ नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान्॥ १॥ अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम्॥ क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्होत्रस्यात्मजास्त्रयः॥ २॥ काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत्॥ शुनकश्शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः॥ ३॥ काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमः पिता॥ धन्वन्तरिर्दैर्घतम आयुर्वेदप्रवर्तकः॥४॥ यज्ञभुग्वासुदेवांशस्स्मृतमात्रार्तिनाशनः॥ तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः॥ ५॥ दिवोदासोद्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृतः॥ स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः॥ तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः॥६॥ षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च॥ नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा॥ ७॥

भगवान्के अंश स्मरण करते ही रोगक्लेशका भय नष्ट करते हैं इन धन्वंतरि जीका पुत्र केतुमान, केतुमानका पुत्र भीमरथ॥ ४॥ ५॥ और उससे दिवोदासकी उत्पत्ति हुई। इनके पुत्र द्युमान जो कि प्रतर्दन भी कहे जाते थे और शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व भी यही कहलाते थे इस द्युमानके अलर्कादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए॥ ६॥ उनमेंसे अलर्कने साठ सहस्र साठसौ अर्थात् छासठ(६६०००) सहस्रवर्ष तक युवा अवस्था रखकर राज्य भोग किया था। हे राजन्! अलर्कके अतिरिक्त किसी युवाने इतने कालतक पृथ्वीका भोग नहीं

* इस स्थानमें श्रीकृष्णावतारका प्रस्ताव करनेके लिये संक्षेपसे वंशका वर्णन किया जाता है। जिसके वंशमेंसे स्वयं भगवान् अवतार लेंगे। इस वंशका वर्णन पीछेसे विस्तार सहित किया जायगा। इसलिये पुरूरवाके पांच पुत्रोंमे से छोटे पुत्रका वर्णन करके अब ज्येष्ठके वंशका वर्णन करते हैं।

किया ॥ ७ ॥ इस अलर्कके संतति नामवाले राजाकी उत्पत्ति हुई। उसका पुत्र सुनीथ सुनीथका पुत्र निकेतन, निकेतनका पुत्र धर्मकेतु और धर्मकेतुसे सत्यकेतुने जन्म ग्रहण किया ॥ ८ ॥ सत्यकेतुके पुत्र धृष्टकेतु, उसके कुमार उत्पन्न हुए । उनका पुत्र वीतिहोत्र, उनके सुत भर्ग और उनके पुत्र भार्गभूमि हुए ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! यह सब नरेश काशिवंशीय हुए। यह काशिके परदादा क्षत्रवृद्ध वंशके अनुगामी थे हे परीक्षित् ! अब रम्भके वंशका वर्णन करते हैं, आप सावधान हो चित्त लगाकर सुनिये। रम्भका पुत्र रंभस, उसका पुत्र गम्भीर, उससे अक्रियकी उत्पत्ति हुई,॥१०॥ अक्रियका पुत्र ब्रह्मवित् हुआ।अब अनेनाके वंशका वर्णन करते हैं कि अनेनाका पुत्र शुद्ध हुआ, उसके शुचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शुचिसे धर्मके सारथि त्रिककुद पुत्र उत्पन्न हुए, त्रिककुदके पुत्र

अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनीथोऽथ सुकेतनः ॥ धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः ॥ वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९ ॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ॥ रम्भस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः ॥ १० ॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ॥ शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः ॥ ११ ॥ ततश्शान्तरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ॥ रजेः पञ्चशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२ ॥ देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेन्द्रायाददाद्दिवम् ॥ इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥१३॥ आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशङ्कितः॥ पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥ १४ ॥ त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान्समाददुः ॥ गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान्रजेः ॥ १५ ॥

शांतरय हुए; जो कि बड़े जितेंद्रिय और ज्ञानी थे,इसलिये उन्होंने कोई पुत्र भी उत्पन्न नहीं किया ॥ ११ ॥ हे महाराज ! रजिके अत्यन्त बलशाली पांच सौ ५०० पुत्र हुए। एक समय जब देवता लोगोंने प्रार्थना की तब इस रजिने दैत्योंका संहार करके इंद्रपुरी देवता लोगोंको दी थी, परंतु फिर इन्द्रने उन रजिके चरणों की वंदना करते हुए अपनी पुरी उन्हें दे दी ॥ १२ ॥ १३ ॥ राजा रजिकी मृत्यु होनेपर देवराज इंद्रने जब उनके पुत्रोंसे स्वर्गपुरी मांगी,तब उनके पुत्रोंने नहीं दी और आप ही स्वर्गपति होकर यज्ञका भाग लेने लगे॥१४॥ इसलिये देवगुरु बृहस्पतिजीने रजिके पुत्रोंकी बुद्धिका नाश करनेके लिये अभिचार विधानसे अग्निमें होम किया। उससे शीघ्र ही रजिके

सब पुत्र नीतिमार्गसे भ्रष्ट हो गये और फिर देवराज इन्द्रने सरलतासे उन सबको मार डाला, कोई शेष नहीं रहा * ॥१५॥ हे राजन् ! क्षत्रवृद्धका पोता कुश, उसका पुत्र प्रति, प्रतिका पुत्र संजय, संजयका पुत्र जय, ॥१६॥ जयका पुत्र कृत और उसका पुत्र हर्यवन राजा हुआ हर्यवन राजाका पुत्र सहदेव उसका पुत्र अहीन और अहीनका पुत्र जयसेन हुआ॥१७॥जयसेनका पुत्र संस्कृति, उनका पुत्र जय, जयके क्षत्रधर्म और क्षत्रधर्मके महारथ हुआ ये सब भूपाल क्षत्रवृद्धके वंशमें उत्पन्न हुए थे । अब आगे नहुषके वंशका वृत्तांत हम तुमसे वर्णन करते हैं, तुम सावधानता पूर्वक चित्त लगाकर श्रवण करो ॥ १८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चंद्रवंशानुवर्णनं

अवधीद् भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः ॥ कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥ १६ ॥ ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ॥ सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥१७॥ संस्कृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः ॥ क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥ १८ ॥ इति श्रीभा० म० नव० चन्द्रवं० क्षत्रवृद्धवंशा० सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृति ॥ षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनाम् ॥१॥ राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ॥ यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥ पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद्द्विजैः ॥ प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥ ३ ॥

नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा-अट्ठारहमें नहुषसुत, भयो ययाति जुझार ॥ षट्मित सुत तिनके भये, तिनमें छोट उदार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जैसे शरीरमें छः इंद्रियाँ होती हैं,इसी प्रकारसे नहुष राजाके यति,ययाति, संयाति, आयाति, वियाति और कृत नामक छः (६) पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ इनमेंसे यति राज्यका परिणाम अर्थात्, राज्यको अनर्थका हेतु जान गया था, इसलिये पिताके राज्य देनेपर इसने ग्रहण नहीं किया, क्योंकि राज्यकार्यमें लगा हुआ पुरुष अपनी आत्माको नहीं जानता ॥ २ ॥ इससे इन्द्राणीके ऊपर ढिठाईका व्यवहार करनेके हेतु पिता (नहुष) के स्वर्गभ्रष्ट और अगस्त्यादि विप्रोंके शापसे अजगर होनेपर मध्यमपुत्र

* शंका---बृहस्पतिजी अग्निमें किस वस्तुका होम करते थे ? जिस बीजके होमके प्रतापसे रजिराजाके पुत्रोंको इन्द्रने मार डाला ?
उत्तर–रक्षा करनेवाले जो परमरक्षक बृहस्पतिजी थे, वे राजा रजिके पुत्रोंको तेजोवधकारी मंत्रसे अग्निमें होम करते थे, इसी कारण राजारजिके पुत्र तेजहीन होगये, तब राजा रजिके पुत्रको इन्द्रने मार डाला।

भा० न०
॥८२॥

ययाति ही राजा हुआ था ॥३॥ राजा ययातिने राजगद्दीपर बैठ अपने चार छोटे भाइयोंको चारों दिशाओंमें राज्य करनेकी आज्ञा दे दी। आप शुक्राचार्य और वृषपर्वाकी दो कन्याओंसे विवाह करके पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥ ४ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन! भगवान् शुक्राचार्यजी ब्रह्मर्षि और नहुषपुत्र ययाति क्षत्रिय था। यह ब्राह्मण–क्षत्रियका प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ था? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! ईश्वरकी इच्छासे प्रतिलोम विवाह दोषदायी नहीं है। एक समय दानवराज वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नामक कन्या सहस्र सखी और गुरुकी कन्या देवयानीके साथ पुरके समीप ही एक उद्यानमें विहार करनेको गयी। वह उपवन अत्यन्त मनोहर

चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातॄन् भ्राता यवीयसः ॥ कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥४॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मर्षिर्भगवान् काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः ॥ राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ॥ सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥ देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले ॥ व्यचरत् कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ॥ तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिञ्चतीर्मिथः ॥ ८ ॥ वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ॥ सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ॥ स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥

भा० टी०
अ० १८

था। वृक्ष फूलोंके भारसे झुके हुए थे और वहां निकट ही एक नलिनीकी रेतीमें भ्रमरगण कलवाणीसे गान कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ शर्मिष्ठाने सखियोंके साथ घूमते-घूमते बागमें एक सरोवर देखा। यह सब कन्यायें किनारे पर अपने वस्त्र उतार परस्पर जलको उछालकर एक-दूसरेके ऊपर जल डाल खेल करने लगीं ॥ ८ ॥ उसी समय अचानक देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमहादेवजी पार्वतीके साथ नन्दीश्वरपर चढ़े हुये इस ओरको आये। इनको देखकर सब कन्यायें अत्यन्त लज्जित हो झटपट सरोवरसे बाहर निकलकर अपने वस्त्र पहनने लगीं ॥९॥ घबड़ाहटके कारण भूलमें गुरुकन्याके वस्त्र शर्मिष्ठाने अपने समझकर पहन लिये, यह देख देवयानी अति क्रोधित होकर बोली ॥ १० ॥

अरे ! इस दासीका अन्यायकर्म तो देखो, जिस प्रकारसे कुतिया यज्ञके हविको खा जाती है, वैसे ही इस दुष्टाने मेरे पहननेके कपड़े पहन लिये ॥ ११ ॥ देखो जिन ब्राह्मणोंने तपस्या करके इस जगत्‌की उत्पत्ति की है,जो लोग परमपुरुषके मुख अर्थात् ब्रह्ममुखसे उत्पत्तिके हेतु सर्वश्रेष्ठ हैं, जो कि ब्रह्मको धारण किये हुए हैं, एवं जिन्होंने वेदको शुभ मार्ग बताया है और सब लोगोंके नाथ सुरेश्वर गण और भगवान् विश्वात्मा पावन श्रीनिवास भी जिनकी पूजा किया करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ वह ब्राह्मणजाति सहजसे ही माननीय है और उनमें फिर हम महाप्रभावशाली भृगुवंशमें उत्पन्न हुई हैं। इस दासीका पिता जो असुर है,वह भी हमारे पिताका शिष्य है,इस असत्यनकी चाल तो देखो कि इसने हमारे पहननेके वस्त्र पहन लिये हैं, जैसे शूद्रजाति वेदोंको धारण करे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जब गुरुकन्या देवयानीने

अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसाम्प्रतम् ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११ ॥ यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ॥ धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाश्च दर्शितः॥१२॥यान् वदन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः॥ भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥१३॥ वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥ एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत। रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥१५॥ आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ॥ किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान् बलिभुजो यथा ॥ १६ ॥ एवंविधैः सुपरुषैः शप्त्वाऽऽचार्यसुतां सतीम् ॥ शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे वास आदाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ॥ प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥ १८ ॥

इस प्रकार तिरस्कार किया, तब शर्मिष्ठा धर्षित हुई सर्पिणीके समान बारंबार लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगी और क्रोधके मारे होठ चबा-चबाकर कहने लगी कि ॥ १५ ॥ अरी भिखमंगी ! अपने आचरणको विना जाने ही कटु वचन कहने लगी ? काकके समान क्या तुम हमारे गृहका मुख नहीं देखती रहती हो ? ॥ १६ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकारके कठोर वचन भी गुरुकन्या देवयानीको कहकर शर्मिष्ठाका क्रोध शांत नहीं हुआ, बरन इसके वस्त्र उतार नंगी कर धक्का दे एक कुएँमें ढकेल दिया ॥ १ ॥ देवयानीको कुएँमें ढकेलकर शर्मिष्ठा अपने घरपर चली आयी। भाग्यसे शिकार खेलकर घूमते-घूमते राजा ययाति भी उस वनमें आ पहुँचे और प्यासके मारे जल

भरनेके लिये जैसे ही इस कुएँके समीप गये कि वैसे ही उन्होंने देवयानीको कुएँमें देखा ॥ १८ ॥ शुक्राचार्यकी कन्याको कुएँमें नंगी गिरी हुई देखकर राजाको अत्यन्त दया आयी और तत्काल अपना दुपट्टा राजाने उसे पहननेको दे दिया और अपने हाथसे उसका हाथ पकड़कर उस दयावान् राजाने उसको कुएँसे बाहर निकाल लिया ॥ १९ ॥ देवयानी कुएँसे निकलकर प्रेमभरे वचन राजा ययातिसे बोली ॥२०॥ हे महाराज! आपने अनुग्रह करके हमारा हाथ पकड़ा है, अब यही प्रार्थना है कि जिस हाथको एकबार आपने ग्रहण किया उसको कोई दूसरा ग्रहण न करने पाये ॥२१॥ हे वीर! यद्यपि प्रतिलोम विवाह ठीक नहीं तो भी मैं कुएँमें डूबकर मरती थी इसी अव-

दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥ तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ॥ राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरंजय ॥ २० ॥ हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि मे ॥ एष ईशकृतो वीर संबन्धो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥ यदिदं कूपमग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥ न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ॥ कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद् यमशपं पुरा ॥ २२ ॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः ॥ मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ २३ ॥ गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ॥ न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४ ॥

सरपर आपका दर्शन हुआ तब हमारा दोनों जनोंका यह बानक परमेश्वरने बनाया है, यह किसी पुरुषका बनाया नहीं है और हे नरेश! ब्राह्मणके साथ मेरा विवाह नहीं होगा क्योंकि पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दिया था, तब उन्होंने भी हमको शाप दिया था ॥ २२ ॥ शास्त्रके प्रतिकूल और इच्छानुसार न होने पर भी भाग्यसे प्राप्त हुआ जान और अपने अन्तःकरणको भी उसके प्रति सकाम देखकर यह निश्चय करके, कि मेरा मन अधर्ममें नहीं प्रवेश करता। देवयानीके वाक्यको राजा ययातिने अंगीकार किया॥२३॥ इसके उपरांत जब राजा ययाति चले गये तब देवयानी उस स्थानसे रोती-रोती पिताके निकट गयी और सब वृत्तांत निवेदन कर दिया

* इसमें यह कथा है कि –" बृहस्पतिके पुत्र कच जब शुक्राचार्य मुनिके निकट मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करते थे उस समय एक दिन शुक्रकी पुत्री देवयानी उनके साथ विवाह करना चाहा था, तब कच बोले कि तुम हमारी गुरुकन्या होनेसे पूजने योग्य हो, फिर हम किस प्रकारसे तुम्हारा पाणिग्रहण करें? तब देवयानीने कुपित हो यह शाप दिया कि, "तुम्हारी विद्या प्रभाहीन होगी" तब कचने भी यह शाप दिया कि–"तुम्हारा ब्राह्मणके साथ विवाह ही नहीं होगा" इसलिये ब्राह्मण हमसे विवाह ही न कर सकेगा ।

अर्थात् शर्मिष्ठाने जो भिखमङ्गी कहा था और कुएँमें डालकर जो कुकर्म किया था, वह सब विस्तारपूर्वक इसने अपने पितासे कहा॥२४॥ यह सुनकर शुक्राचार्यके मनमें बड़ा दुःख हुआ। पुरोहिताईकी निंदा करते और भिक्षावृत्तिकी प्रशंसा करते हुए वे दैत्यराजकी पुरीसे अपनी कन्यासहित बाहर चले ॥ २५ ॥ यह सुनकर राजा वृषपर्वाने जाना कि गुरुजी अप्रसन्न होकर देवताओंकी जीत करेंगे, इसलिये शीघ्र ही मार्गमें जाकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा और शिर नवाकर प्रसन्न करने लगा ॥ २६ ॥ एक क्षणभरमें शुक्राचार्यका आधा क्रोध शांत हो गया और वह शिष्यसे बोले कि हे राजन्! हमारी कन्या जो कुछ कहे, इसकी उस अभिलाषाको तुम पूर्ण करो, क्योंकि हम इस अपनी कन्याको छोड़कर रह नहीं सकते ॥ २७ ॥ गुरुजीके यह वचन सुनकर गुरुकन्याकी प्रसन्नता चाहता हुआ वृषपर्वा खड़ा रहा।

दुर्मना भगवान् काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ॥ स्तुवन् वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ॥ गुरुं प्रसादयन् मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥ क्षणार्धमन्युर्भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ॥ कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७ ॥ तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ॥ पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥ २८ ॥ स्वानां तत् संकटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ॥ देवयानीं पर्यचरत् स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशना ॥ तमाह राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥

तब देवयानी अपने मनकी बात प्रकाशित करके बोली कि हमारे पिता जहां हमारा विवाह करें, यह शर्मिष्ठा तुम्हारी कन्या उसी स्थानमें अपनी सब सखियोंके साथ जाकर हमारी दासी हो ॥ २८ ॥ वृषपर्वाने विचारा कि गुरुजीके चले जानेसे हमारे ऊपर घोर संकट आ पड़ेगा और यहां रहनेसे हमारे कार्य सिद्ध होंगे। यह सोच-विचार कर राजा वृषपर्वा गुरुकन्या देवयानीके हाथमें सखियों सहित शर्मिष्ठाको सौंप दिया। जब पिताने शर्मिष्ठाको दे दिया तब यह हजार सखियोंके साथ देवयानीकी सेवा करने लगी ॥ २९ ॥ इसके पीछे दैत्यगुरु शुक्राचार्यजीने शर्मिष्ठासहित देवयानीका राजा ययातिके साथ विवाह कर दिया और भलीभांतिसे कह दिया, कि यद्यपि हम अपनी कन्याके

साथ शर्मिष्ठाको भी तुम्हें देते हैं तो भी तुम किसी समय इसको अपनी शय्यापर न ग्रहण कर सकोगे ॥ ३० ॥ हे महाराज परीक्षित् ! किसी समय शर्मिष्ठाने देखाकि देवयानीने स्वामीके सहवाससे परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया है, इसलिये ऋतुकाल आ पहुँचनेपर अपनी सखीके पति ययाति राजाको एकान्तमें बुलाकर पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रार्थना की॥३१॥राजा ययाति अत्यन्त धर्मात्मा थे। ऋतुकालमें राजकुमारी शर्मिष्ठासे संतानके लिये प्रार्थित होकर विचारने लगे कि इसकी कामना पूरी करनेमें धर्म है, इसलिये शुक्राचार्यजीका वचन स्मरण आनेपर भी उन्होंने दैवप्राप्त पितृयज्ञसे शर्मिष्ठाके साथ विवाह किया। राजा ययातिने धर्म समझकर ही शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूर्णकी थी, कुछ कामके वश होकर नहीं की । इसके उपरांत देवयानीने यदु और तुर्वसु दो पुत्र उत्पन्न किये और शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु,

विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् ॥ तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥ राजपुत्र्याऽर्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ॥ स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥ गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ॥ देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्च्छिता ॥ ३४ ॥ प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् ॥ न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष ॥ त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥ ययातिरुवाच ॥ अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन् दुहितरि स्म ते ॥ व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥३७॥

अनु और पूरु इन तीनों पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! अपने स्वामीसे शर्मिष्ठाको गर्भकी उत्पत्ति जानकर देवयानी अभिमानसे परिपूर्ण होगयी और क्रोधके कारण मूर्च्छितसी हो तत्काल पिताके घरको चली गयी ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! राजा ययाति अत्यन्त कामी थे। वह प्यारीका क्रोध देखकर विनती करके प्रसन्न करते-करते अपनी प्रिय भार्याके पीछे-पीछे चले गये, परंतु अनेक प्रकारसे प्रार्थना द्वारा भी वह देवयानीको प्रसन्न नहीं कर सके ॥३५॥ हे महाराज ! इस ओरका कन्याके मुखसे सब वृत्तांत जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्यजी महाक्रोधित हो घृणायुक्त वचनोंसे जामाताको कहने लगे- तू कामी होकर अन्यायके कर्म करता है । अरे मतिमन्द ! इस अपराधसे मनुष्योंको विरूप करनेवाली जरा (बुढ़ापा) तेरे शरीरमें प्रवेश करे ॥ ३६ ॥ यह शाप सुनकर राजा ययातिका चित्त अत्यंत

दुःखित हुआ और निवेदन किया; ब्रह्मन् ! आपकी बेटीके काम भोगसे हम अबतक भी सब प्रकारसे तृप्त नहीं हुए हैं। तब शुक्राचार्यजी बोले कि हां यदि कोई पुरुष तुम्हारी जरा ग्रहणकर ले तो उसकी वयस (अवस्था) से तुम इच्छानुसार काम भोग कर सकोगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार राजा ययाति जराके उतरनेंकी व्यवस्था पाकर पहले अपने बड़े पुत्र यदुको बुलाकर बोले- हे तात यदो ! हमारी यह जरा अवस्था ग्रहण करके अपनी वयस हमको दो॥३८॥बेटा! तुम्हारे नाना शुक्राचार्यने हमको जरा ग्रस्त किया है, परंतु हम अबतक विषय भोगसे तृप्त नहीं हुए हैं, इसलिये यह जरा तुम लो और तुम्हारी युवा अवस्था लेकर कुछ वर्षतक मैं विहार करूँगा ॥ ३९ ॥ यह सुन कर यदु बोले कि पिता ! आप मध्यम समयमें जराको प्राप्त हुए हैं। आपकी इस जराके लेनेको हमारा चित्त नहीं चाहता, क्योंकि विना

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ॥ यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥ मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ॥ वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥ ३९ ॥ यदुरुवाच ॥ नोत्सहे जरसा स्थातु-मन्तरा प्राप्तया तव ॥ अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥४०॥ तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ॥ प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥ अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ॥ न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच ॥ को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् ॥ प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसा-दाद्विन्दते परम् ॥ ४३ ॥

ग्राम्यसुखोंके भोगे कौन पुरुष उस (कामभोग) से तृष्णारहित हो सकता है ?॥ ४० ॥ हे भारत ! इसके पीछे तुर्वसु और द्रुह्यु इन दो पुत्रोंसे राजाने युवा अवस्था मांगी,परन्तु उन्होंने भी कोरा जवाब दे दिया। हे राजन् ! इन लोगोंको धर्मज्ञान नहीं था। यह अनित्य पदार्थको ही नित्य मानते थे। फिर भला इन लोगोंसे पिताकी आज्ञा मानी जानेकी क्या सम्भावना ? ॥४१॥ परंतु राजा ययातिका सबसे छोटा पुत्र यद्यपि वयसमें छोटा था, तथापि गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था, सबसे पीछे उसको बुलाकर राजा ययाति जरा लेनेके लिये बोले कि हे वत्स ! तुम अपने बड़े भ्राताओंके समान हमसे " नहीं " कहने योग्य नहीं हो ॥ ४२ ॥ जब इस प्रकार राजा ययातिने कहा तब पूरुने कहा कि

हे मनुष्येंद्र। इस लोकमें कोई पुरुष भी पिताका प्रत्युपकार नहीं कर सकता है। पिता क्या साधारण पुरुष हैं? क्योंकि उनसे देहका सम्बन्ध है और उनकी प्रसन्नतासे पुरुष परमगतिको प्राप्त हो जाता है॥४३॥ तो भी जो पुत्र पिताका विचारा हुआ कार्य अपने आप ही कर देता है, वह उत्तम कहलाता है और जो आज्ञा पाकर कार्य करता है वह मध्यम है और जो आज्ञा पाकर भी उस कार्यको नहीं करता है, वह पुत्र नहीं किन्तु पिताका विष्ठामात्र है और नीच कहलाता है ॥४४॥ इस प्रकार कह हर्ष प्रकट करके उसने पिताकी जरा अवस्था ग्रहण

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ॥ अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥ ४४ ॥ इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ॥ सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥ ४५ ॥ सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥ यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥ ४६ ॥ देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ॥ प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७ ॥

करली। राजा ययाति भी अपने पुत्रकी युवा अवस्था पाकर भलीभांति सुख भोगने लगा ॥४५॥ हे महाराज! राजा ययाति सप्तद्वीपका राजा था। वह भलीभांति पुत्रके समान प्रजाका पालन करने लगा इच्छानुसार विषयभोग भोगने लगा पुत्रकी युवा अवस्था पानेसे इस राजा ययातिकी सब इंद्रियाँ प्रबल और अनिवारित हो गयीं *॥४६॥ और देवयानी भी मन, वचन, कायसे व और भी सब भांति

* शंका—राजा ययाति छोटे पुत्रकी अवस्था लेकरके उसी छोटे पुत्रकी माताके संग विहार करता था, इस बातसे जान पड़ता है कि, पुत्रने ही अपनी माताके साथ रमण किया, क्योंकि राजामें रमण करनेका सामर्थ्य होता तो पुत्रकी युवावस्था क्यों लेता? इसने यह महापाप क्यों किया? यदि कोई ऐसा कहे कि पुत्रको पिताकी आज्ञा पालन करनी चाहिये, यह भगवान्‌की बनायी मर्यादा है और धर्म शास्त्रका भी यही वाक्य है, सो सत्य है। निःसन्देह वह मर्यादा पूरी करनी चाहिये, परन्तु न्याय विचारकर कार्य करना चाहिये क्योंकि जो पिताकी बुद्धि मलिन होजाय और पिता आज्ञा करें कि मेरे लिये वेश्या अथवा वारुणी, अथवा बुरी वस्तुको ला दे और वह अनेक प्रकारकी कुत्सित वस्तुपर दृष्टि करे तो पुत्रको ऐसे पिताकी आज्ञा भी नहीं माननी चाहिये फिर पुत्रने ऐसे पिताके वचन क्यों माने।

उत्तर—शर्मिष्ठाके ओष्ठ पान करके ययातिकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और वह दैत्यकी कन्याका पुत्र था इसलिये दोनों पापी मिल गये इसीसे महापाप किया।

एकान्तमें दिनपर दिन अपने प्राणेश्वरको अत्यन्त प्रसन्न करती रहती थी ॥४७॥ हे राजन्! राजा ययाति भी अनेक-अनेक दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ कर सर्ववेदमय सर्वदेवस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवका भजन करने लगे ॥४८॥ अर्थात् आकाशमण्डलमें जलदावलि (बादलोंकी पंक्ति) के समान जिससे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत् विरचित होकर यावत् इंद्रियवृत्ति तावत् विचित्र रूपसे प्रकाश पाती है और इसी इंद्रियवृत्तिके उपरममें स्वप्न और मायारहित मनोरथपाकर प्रकाशहीन होते हैं॥ ४९ ॥ राजा ययातिने विरागी होकर उन्हीं अन्तर्यामी परमसूक्ष्मरूप भगवान् वासुदेवके अनेक यज्ञ किये॥५०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस प्रकार सहस्र वर्षतक अपराङ्मुख पञ्च इंद्रिय और छठे मनसे सदा विषयभोग करके भी सर्वभूमीश्वर राजा ययाति सब भांतिसे तृप्तिको नहीं प्राप्त हुआ ॥५१॥ इति श्रीम-

अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥ यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ॥ नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥ तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ॥ नारायणमणीयांसं निराशीरयजत् प्रभुम् ॥ ५० ॥ एवं वर्षसहस्राणि मनष्षष्ठैर्मनः सुखम् ॥ विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे ययातिचरितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमाचरन् कामान् स्त्रैणोपह्नवमात्मनः ॥ बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत् ॥ १ ॥ शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ॥ धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः ॥२॥ बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन् प्रियमात्मनः ॥ ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम्॥ ३ ॥

द्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः॥ १८ ॥ दोहा—नृप ययाति निजप्रियाको, अजसम चरित सुनाय। बहुरि मोक्षभागी भयो, उन्निसवें अध्याय ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित्! राजा ययाति इस प्रकार विषयभोगकरते-करते अकस्मात् एक दिन अपने आपको स्त्रैण समझकर अपनी आत्माका विकार जान वैराग्ययुक्त हो अपनी परम प्यारी देवयानीसे वर्णन करने लगे ॥ १ ॥ कि हे भार्गवि! हमारे समान कोई कामी एक गांवमें रहता था। वनवासी धीरगण उसके आचरणोंपर अब तब कभी-कभी शोक किया करते हैं। उस पुरुषकी अनुष्ठान की हुई गाथा मैं तुमसे वर्णन करता हूँ, श्रवण करो ॥ २ ॥ "एक छाग (पुरुष)

ने वन (संसार) में अपने प्रिय विषयको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अचानक एक छागीको कर्मके वश कुएँमें गिरी हुई देखा ॥३॥ इस अत्यन्त कामी छागने उस बकरीके निकालनेका उपाय सोचा और कुएँके किनारे अपने सींगसे मिट्टी खोदकर उसके निकालनेका मार्ग कर दिया ॥४॥ उस मार्गसे वह कांतियुक्त छागी कुएँसे निकल उसी छागकी अभिलाषा पूर्ण करने लगी । जब उस बकरीने इस बकरेको वरण कर लिया तो और बहुत सारी छागी भी मोटे-ताजे, रति करनेमें समर्थ, वीर्यके सींचनेवाले और मैथुन करनेमें चतुर समझकर उस छागको चाहने लगीं ॥५॥ इसलिये वह एक ही बकरा इन बहुतसी बकरियोंकी रति बढ़ाता हुआ उनके साथ केलि करने लगा । वह छाग कामरूप गृहमें ऐसा फँस गया कि अपनी आत्माको भी न जान सका ॥ ६ ॥ परन्तु जो छागी कुएँमें गिरी थी, और छागियोंको अपने से अधिक

तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिन्तयन् ॥ व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४ ॥ सोत्तीर्य कूपात् सुश्रोणी तमेव चकमे किल ॥ तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कान्तकामिनीः ॥ पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मिढ्वांसं याभकोविदम् ॥५॥ स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ॥ रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥६॥ तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजाऽन्यया॥ विलोक्य कूपसंलग्ना नामृष्यद् बस्तकर्म तत् ॥७॥ तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ॥ इन्द्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥८॥ सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ॥ कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि संधितुम् ॥९॥ तस्य तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा ॥ लम्बन्तं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित्॥१०॥

प्यारी और उनके साथ अपने प्रियतमको सदा रमण करता हुआ देख अत्यन्त क्रोधित हुई और उस छागका यह कर्म बहुत नहीं सह सकी ॥७॥ इसलिये वह सुहृदरूपी, वास्तवमें दुहृद; क्षणसौहृद, इंद्रियासक्त और कामुक उस छागको छोड़कर दुःखित हो अपने स्वामीके पास चली गई ॥ ८ ॥ वह छाग तो बहुत ही स्त्रैण था, इसलिये कातर हो शब्द करता हुआ उसको मनानेके लिये उसके पीछे-पीछे जाने लगा, परन्तु मार्गमें वह उस बकरीको किसी प्रकारसे भी प्रसन्न न कर सका ॥ ९ ॥ उस स्थानमें इस छागीके स्वामी एक ब्राह्मणने क्रोध करके इस छागके दोनों लम्बायमान अण्डकोश काट डाले अर्थात् उसको भोग करनेके योग्य न रखा, परंतु वह ब्राह्मण उपाय भी

जानता था, इस लिये अपनी बकरीके काम भोगार्थ फिर इस छागके अण्ड जोड़ दिये अर्थात् फिर उस छागको मैथुन करनेका सामर्थ्य दे दिया ॥१०॥ हे भद्रे ! इस प्रकारसे वह छाग सवृद्धवृषण अर्थात् रतिशक्तियुक्त हो कुएंसे निकाली हुई उस छागीके साथ बहुत कालतक विषयभोग करता रहा, परन्तु कामकी सेवासे अबतक उस बकरेको सन्तोष नहीं हुआ" ॥ ११ ॥ हे सुभ्रु ! इस छागके समान हम भी तुम्हारे प्रेममें बँधकर अत्यन्त दीन हो गये हैं । तुम्हारी मायासे मोहित होनेके कारण हम अपने आपको भी भूल गये हैं ॥ १२ ॥ हे भद्रे ! पृथ्वीमें जितना धान्य, सुवर्ण, जितने पशु, जितनी स्त्री और जो-जो वस्तु हैं,वे सब भी कामसे हत हुए पुरुषके मनको संतुष्ट नहीं कर सकती हैं ॥ १३ ॥ भोग विलासके द्वारा कामकी किसी प्रकार शांति नहीं होती वरन् घृतद्वारा अग्निके समान विषयभोग

संवृद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ॥ कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥ तथाऽहं कृपणः सुभ्रूर्भवत्याः प्रेमयन्त्रितः ॥ आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥१२॥ यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥ न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥१४॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ॥ समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ॥ तां तृष्णां दुखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६ ॥ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ॥ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १७ ॥

बढ़ता ही जाता है, जैसे घृत डालनेसे अग्नि ॥ १४ ॥ परन्तु जिस समय पुरुष सब प्राणियोंसे अमंगल भाव अर्थात् रागद्वेषादिकी विषमताका त्याग कर देता है और सबसे समदृष्टि कर लेता है, तब उसको सब दिशायें सुखदायिनी हो जाती हैं ॥ १५ ॥ इसलिये दुर्म्मति पुरुष जिसको नहीं छोड़ सकते और प्राचीन पुरुषके पास भी जो पुरानी नहीं होती और जो दुःखकी राशिके लिये रहती है, उस तृष्णाको सुख चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि शीघ्र छोड़ दे ॥१६॥ और स्त्रीका सङ्ग तो सब प्रकारसे त्यागना आवश्यक है, अतः माता बहन अथवा कन्याके संग इकलेमें एक आसनपर बैठना ठीक नहीं क्योंकि इन्द्रियाँ अतिशय बलवान् हैं, विद्वान् पुरुषको भी

खींच लेती हैं ॥१७॥ हे भद्रे ! विचार करके देखो बारम्बार विषयकी सेवा करते हुए पूरे एक सहस्र वर्ष बीत गये तो भी दिन-दिन तृष्णा बढ़ती ही जाती है ॥ १८ ॥ इसलिये मैं पहले तृष्णाको छोड़कर फिर ब्रह्ममें मन लगाऊंगा, फिर सुखदुःखादि द्वन्द्वरहित और निरहंकार हो मृगगणोंके साथ घूमूंगा ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! जो पुरुष देखे-सुने संसारको भी आत्मनाशक और असत् जानकर उसका अनुध्यान व भोग छोड़ देते हैं, वे ही देखे-सुने विषयके अनुध्यानादिमें पण्डित और आत्मदर्शी हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! राजा ययातिने इस प्रकार अपनी स्त्रीको समझाकर छोटे पुत्र पूरुको उसकी युवा अवस्था लौटाकर उससे अपनी जरा अवस्था

पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान् सेवतोऽसकृत् ॥ तथाऽपि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥ १८ ॥ तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ॥ निर्द्वन्द्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥ दृष्टं श्रुतमसद्बुद्ध्वानानुध्यायेन्न संविशेत् ॥ संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक् ॥२०॥ इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ॥ दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ॥ प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्रे उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥ भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ॥ अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥ आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः ॥ क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥

ग्रहण करली । फिर पीछे राजा ययातिको कुछ चाहना न रही ॥२१॥ पूर्वदिशा द्रुह्युको, दक्षिण दिशा यदुको, पश्चिम दिशा तुर्व्वसुको और उत्तर दिशाका अनुको राजा बनाया ॥ २२ ॥ फिर सब भूमण्डलका राज्य क्षत्रियोत्तम प्यारे पुत्र पूरुको * देकर और बड़े बेटों को इस पूरुकी आज्ञामें रखकर आप वनको चले गये ॥ २३ ॥ हे राजन् ! राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक शब्दादि विषय समूहमें छः

* शंका—राजा ययाति बड़े बुद्धिमान् और गुणनिधान थे; तो भी ऐसा बड़ा अन्याय क्यों किया ? कि बड़े पुत्रोंको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य दिया, क्या कारण है ?

उत्तर—कामी, लोभी, क्रोधी, ऐसे-ऐसे जीव पृथ्वीपर हैं, परतु न्याय अन्यायका विचार नहीं करते । नित्य अपने शरीरका सुख चाहते हैं, अर्थात् न्यायमें दुःख देखेंगे तब न्यायको त्याग देंगे, अन्यायमें सुख देखेंगे तब अन्याय करेंगे । जिसमें शरीरको सुख हो उसीको पुण्य जानते है और जिसमें शरीरको कष्ट हो उसको पाप समझते हैं, सुकर्म कुछ नहीं देखते । इसीसे ययाति राजाने छोटे बड़ेका विचार नहीं किया, जिसकी देहसे सुख पाया उसीको राज्य दिया ।

इन्द्रियोंके द्वारा सुख भोगा था, परन्तु उसने इस प्रकारसे स्पृहा छोड़ एक क्षणभरमें इंद्रियोंके सुखको छोड़ दिया, जैसे पंख जम आनेपर पक्षियोंके बच्चे घोंसलेको छोड़ देते हैं ॥२४॥राजा ययाति संगको छोड़कर आत्मानुभवसे त्रिगुणात्मकरूप लिंग निरस्त कर और भली-भांति विख्यात हो निर्मल परब्रह्म वासुदेवमें शीघ्र ही भगवद्गतिको प्राप्त हो गया ॥ २५ ॥ हे महाराज ! स्त्री-पुरुषका परस्पर स्नेह हेतु परिहासके समान जो इतिहास कहा गया, देवयानी इसको सुनकर अपने प्रस्तोभ अर्थात् निवृत्तिमार्गमें उत्साहित हुई ॥ २६ ॥ और उस अबलाने प्याऊपर जानेवालोंके समान ईश्वर परतन्त्र सुहृद्गणोंका वास मायाविरचित समझा,स्वप्नके समान उपमा देकर सबको मिथ्या जान सबका संग छोड़कर भगवान्में मन लगाकर अपने शरीरको भी छोड़ दिया ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अब यह बतलाते हैं कि देवयानीने

स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्ग आत्मानुभूत्याविधुतत्रिलिङ्गः ॥ परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥२५॥ श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ॥ स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात् परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥ सा सन्निवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ॥ विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥२७॥ सर्वत्र सङ्गमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ॥ कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिंगमात्मनः ॥२८॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥२९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवम० ययातिविरक्तिवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ श्रीशुक उवाच ॥ पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ॥ यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥१॥ जन्मेजयो ह्यभूत् पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ॥ प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥

किस प्रकारसे भगवान् वासुदेवमें अपना मन लगाया था, वह तुम सुनो । भगवन् ! आप विधाता, वासुदेव, सर्वभूतोंके निवासस्थान, परमशान्त और अतिबृहत् हो, इसलिये मैं आपको नमस्कार करती हूँ । इस तरह परब्रह्म परमात्माको पुकारती हुई मुक्त हो गयी ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायांययात्युपाख्याने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा—ययातिसुत पुरु वंशमें, भये नृपति दुष्यन्त । भरत पुत्र तिनके भये, भक्त शिरोमणि संत ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरत ! अब पूरुके वंशका वर्णन करते हैं, वह तुम सुनो । इसी वंशमें तुमने जन्म लिया है । अनेक राजर्षि इस पूरुवंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ पूरुसे जन्मेजय उत्पन्न हुए । जन्मेजय

भा॰ न॰ का पुत्र प्राचिन्वान् और उससे प्रवीणने जन्म ग्रहण किया, उसके पुत्र नमस्यु और उससे चारुपदका जन्म हुआ, चारुपदके यहां
॥५८॥ सुद्युने जन्म ग्रहण किया, उससे बहुगव उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र संयाति, संयातिका पुत्र अहंयाति और अहंयातिके रौद्राश्व जन्मा ॥२॥३॥ इस रौद्राश्वने घृताची अप्सरासे दश पुत्र उत्पन्न किये उनके नाम यह हैं,-ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थंडिलेयु, कृतेयु, जलेयु, संततेयु, धर्म्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और सबसे छोटा वनेयु हुआ। हे राजन् ! जिस प्रकार इंद्रियगण जगत्के आत्मभूत मुख्य प्राणके वश रहते हैं, वैसे ही यह दश पुत्र रौद्राश्वके वशमें रहते थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन रौद्राश्वके दश पुत्रोंमेंसे ऋतेयुके रंतिभार नामक एक पुत्र हुआ। उसके तीन पुत्र हुए, यथा-सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ। इन तीनोंमेंसे अप्रतिरथका पुत्र कण्व हुए ॥ ६ ॥ कण्वके मेधातिथि और उससे

तस्य सुद्युरभूत् पुत्रस्तस्माद् बहुगवस्ततः ॥ संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥ ३ ॥ ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः ॥ जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः ॥ घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥ ऋतेयो रन्तिभारोऽभूत त्रयस्तस्यात्मजा नृप ॥ सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥ ६ ॥ तस्यमेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ॥ पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्यो दुष्यन्तस्तत्सुतो मतः ॥ ७ ॥ दुष्यन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ॥ तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥ विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ॥ ८ ॥ बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तपरिश्रमः ॥ ९ ॥

प्रस्कण्वादि द्विजातिगण उत्पन्न हुए। हे राजन् रंतिभार नामका बड़ा बेटा सुमति उसका पुत्र रैभ्य और इस रैभ्यके ही पुत्र राजा दुष्यन्त
भा॰ टी॰ हुए ॥ ७ ॥ एक समय यह राजा दुष्यन्त आखेट करते-करते वनमें प्रवेशकर महर्षि कण्वके आश्रममें पहुँचे, वहांपर एक स्त्री बैठी लक्ष्मीके
अ॰ २० समान अपने शरीरकी प्रभासे आश्रमको शोभायमान कर रही थी। देवमायाके समान उस तरुणीको देखते ही राजा दुष्यंत मोहित हो गया॥८॥इसके उपरांत कुछ सेनाके सिपाही लेकर निकट जाकर उस वरारोहाके साथ राजाने सम्भाषण किया।हे राजा परीक्षित ! उस सुन्दरीको देखते ही राजा दुष्यन्तको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ था और मानो उसको देखकर जङ्गलमें घूमनेसे जो थकावट हुई थी

वह सब जाती रही ॥ ९ ॥ कामपीड़ित हो हँसते-हँसते मधुर वचनसे राजाने पूछा कि हे कमलपत्राक्षि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? ॥ १० ॥ और इस निर्जन वनमें क्या करनेकी वासना किये हुये हो ! हे सुमध्यमे ! पूरुवंशीय लोगोंका चित्त कभी अधर्ममें नहीं लगता है इसलिये स्पष्ट जान पड़ता है कि तुम किसी क्षत्रियवंशकी बेटी हो ॥११॥ यह सुनकर शकुन्तलाने उत्तर दिया कि हे राजन्! मैं विश्वामित्रकी पुत्री हूँ,मेनका नामक अपसरा मेरी माता है स्वर्गमें जानेके समय माता मुझको इस निर्जन वनमें अकेली छोड़कर चली गयी, इसलिये वास्तवमें क्षत्रियकी कन्या हूँ;इस बातको भगवान् कण्व ऋषि भलीभांति जानते हैं। हे वीर! हम आपका कौनसा कार्य करें ?

पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे ॥ १० ॥ किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ॥ नहि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥११॥ शकुन्तलोवाच ॥ विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ॥ वेदैतद् भगवान् कण्वो वीर किं करवाम ते ॥१२॥ आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ॥ भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते॥१३॥दुष्यन्य उवाच ॥ उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ॥ स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यकास्सदृशं वरम् ॥ १४ ॥ ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् ॥ गान्धर्वविधिना राजा देशकालविभागवित् ॥ १५ ॥ अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ॥ श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १६ ॥

आज्ञा कीजिये ॥ १२ ॥ हे महाराज ! आसन ग्रहण कीजिये और हमारी पूजा भी आप अंगीकार करें, यहां नीवारोंके चावल हैं, भोजन कीजिये और यदि रुचि हो तो रात्रिको यहां ही रहिये ॥ १३ ॥ राजा दुष्यन्त बोले कि हे सुन्दरी ! तुमने कुशिकके वंशमें जन्म लिया है वास्तवमें तुम्हारा आचरण ठीक है; क्योंकि राजकन्यायें समान वरको स्वयं वरण कर लेती हैं ॥१४॥ शकुन्तलाने राजाकी बात सुनकर कहा कि 'हां' तब देशकालके जाननेवाले इस राजाने शकुन्तलासे गन्धर्व विवाह किया॥१५॥ हे भारत!अमोघवीर्यवान् राजा दुष्यन्त भार्या शकुन्तलामें वीर्याधान करके दूसरे दिन अपने नगरको चले गये।तब यथायोग्य समयमें शकुन्तलाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥

महर्षि कण्वऋषीश्वरने वनमें ही यथायोग्य उस बालककी संस्कारादि क्रिया करा दी। हे राजन्! यह कुमार बालकपनसे ही अपने बलसे सिंह पकड़ करके उनके साथ खेला करता था ॥ १७ ॥ इसलिये महाविक्रमशाली देखकर प्रमदोत्तमा शकुंतला भगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न उस पुत्रको ले अपने स्वामीके निकट गयी॥१८॥परन्तु राजा दुष्यन्तने अनिन्दित स्त्री और पुत्रको ग्रहण नहीं किया परन्तु जिस समय राजा दुष्यन्तने शकुंतलाका निरादर किया, तब श्रवणकारी सब प्राणियोंके सम्मुख आकाशसे अशरीरिणी वाणी प्रकट हो राजाको पुकारकर बोली कि॥१९॥ हे राजा दुष्यन्त! माता भस्त्रा अर्थात् चर्मपात्रवत् आधारमात्र पिताका ही पुत्र है, क्योंकि आत्मा ही

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः ॥ बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥१७॥ तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमोदोत्तमा ॥ हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरन्तिकमागमत् ॥१८॥ यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥१९॥ माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥२०॥ रेतोधाः पुत्रा नयति नरदेव यमक्षयात् ॥ त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ २१ ॥ पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ॥ महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २२ ॥ चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ॥ ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड् विभुः ॥ २३ ॥

पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है, इसलिये अपने पुत्रको ग्रहण करके पालो और शकुंतलाका अपमान न करो * ॥ २० ॥ हे नरदेव! जो पुरुष वीर्य डालता है, पुत्र उसका ही यमालयसे निस्तार करता है और शकुन्तला यह सत्य कहती है, तुमने ही इस पुत्रको गर्भमें धारण किया था ॥ २१ ॥ हे भारत! आकाश वाणीको सुनते ही राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको अंगीकार किया। कुछ कालके पीछे महाराज दुष्यन्तके स्वर्गवासी होनेपर राजाके महायशस्वी पुत्र यही भरतजी सिंहासनपर बैठकर चक्रवर्ती राजा हुए थे। महाराज भरत श्रीभगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये उनकी महिमा समस्त भूमण्डलमें गायी जाती है ॥ २२ ॥ उनके दाहिने हाथमें चक्र

* शंका—थोड़े ही दिनोंमें राजा दुष्यन्तने अपने चरित्रको भूलकर शकुन्तला और अपने पुत्रको क्यों नही ग्रहण किया?

उत्तर—राजा दुष्यन्त बड़ा बुद्धिमान था और यह भली प्रकार जानता था कि यह हमारा ही पुत्र है और शकुन्तला हमारी स्त्री है परंतु लोकापवादसे डरकर उसको ग्रहण नहीं करता था, आकाश वाणीसे सबको विदित हो गया तो राजाने ग्रहण किया।

और दोनों चरणोंमें पद्मकोशका चिह्न विराजमान था । उन्होंने महाभिषेक कराकर राजाधिराज हो गंगाजीके किनारेपर पचपन (५५) अश्वमेध यज्ञ करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा की थी ये राजा भरत ममताके पुत्र मामतेय ऋषिको अपना पुरोहित बनाकर यमुनाके तटपर अश्वमेध यज्ञके अठहत्तर (७८) पवित्र अश्व (घोड़े) यथाक्रमसे बांधे । इन यज्ञोंके समय राजर्षि भरतजीने बहुतसा धन ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दिया था ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे राजन् ! श्रेष्ठ गुणवाले देशमें महाराज भरतजीकी अग्नि प्रणीत थी । उस अग्निप्रचयन कालमें ब्राह्मणलोग उन महाराज भरतजीकी दी हुई गायोंको एक-एक बद्धमें भाग करके ले गये थे । (एक बद्ध तेरह सहस्र चौरासी (१३०८४) का होता है ॥ २५ ॥ और महाराज भरतजीने एकबारमें ही एक सौ तैंतीस १३३ यज्ञीय घोड़े बांध राजा लोगोंके विभवको भी विस्मित

पञ्च पञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः ॥ मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः अष्टसप्ततिमेध्याश्वान् बबन्ध प्रददद्वसु ॥ २४ ॥ भरतस्य हि दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः ॥ सहस्रं बद्वशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥२५॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान् बद्ध्वा विस्मापयन् नृपान् ॥ दौष्यन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥२६॥ मृगाञ्छुक्लदतः कृष्णान् हिरण्येन परीवृतान् ॥ अदात् कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥ २७ ॥ भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ॥ नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २८ ॥ किरातहूणान्यवनानन्ध्रान् कङ्कान् खशाञ्छकान् ॥ अब्रह्मण्यान् नृपांश्चाहन् म्लेच्छान् दिग्विजयेऽखिलान् ॥ २९ ॥ जित्वा पुराऽसुरा देवान् ये रसौकांसि भेजिरे ॥ देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३० ॥

कर देवतालोगोंका आक्रमण किया था । उनका ऐसा कर्म करना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि वे भगवान् हरिको प्राप्त हुए थे ॥ २६ ॥ इन महाराज भरतने मष्णारनामक कर्ममें श्वेतदन्त और कृष्ण रंगके चौदह लाख १४००००० हाथी सुवर्णसे सजे हुए दान किये ॥ २७ ॥ महाराज भरतजीने जो कर्म किये, उन कर्मोंको पहले हुए नृपतिगण भी प्राप्त नहीं कर सके और आगे जो राजा होंगे वह भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे जैसे भुजाओंके बलसे स्वर्ग प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २८ ॥ इन महाराज भरतजीने दिग्विजय करनेको जाकर किरात, हूण, यवन, पौंड, कंक, खग, शक,और दूसरे अब्रह्मण्य राजाओंके और सब म्लेच्छजातिका संहार कर डाला॥२९॥ पूर्व समयमें जिन दान-

वोंने देवता लोगोंको जीतकर जिन रसातलादि स्थानोंमें वास किया था और बली दानव लोग देवता लोगोंकी स्त्रियोंको भी पातालमें ले गये थे । महात्मा भरतजीने उन सब देवांगनाओंका उद्धार किया था ॥३०॥ हे महाराज ! महाराज भरतजीके समयमें स्वर्ग और पृथ्वीसे प्रजालोगोंकी सब अभिलाषा पूरी होती थी। इस राजा भरतने सत्ताईस हजार वर्षतक राज्य करके सब दिशाओंमें अपनी सेना भेजी थी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार राज्यभोग करके पीछे महाराज भरतजीने लोकपालोंका विभव, अधिराज्यकी सम्पत्ति, अस्खलित सेना और आत्मप्राणादि मिथ्या विचार कर विषयसे मुँह मोड़ लिया ॥ ३२ ॥ इन भरतजीके विदर्भदेशके राजाकी बेटी सुसम्मत तीन स्त्रियाँ थीं । एक समय राजाने कहा कि " यह पुत्र हमारे अनुसार नहीं है " इसलिये यह तीनों ऐसी शंका करने लगीं कि वारंवार अनुहारका विचार

सर्वकामान् दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी ॥ समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३१ ॥ सम्राट् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्श्रियम् ॥ चक्रं चास्खलितं प्राणान् मृषेत्युपरराम ह ॥३२॥ तस्यासन् नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसमंताः॥ जघ्नुस्त्यागभयात् पुत्रान् नानुरूपा इतीरिते ॥ ३३ ॥ तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ॥ मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥३४॥ अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः॥ प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥३५॥

कर कहीं यह राजा हमपर व्यभिचारकी शंका न कर बैठे और हमको त्याग दे, इसलिये अपनी-अपनी सन्तानको मार डाला ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वंशके व्यर्थ होनेसे महाराज भरतजीने पुत्रार्थ वायु और सोमका यज्ञ किया। उस यज्ञके मरुद्गणोंने प्रसन्न हो राजाके हाथमें भरद्वाजनामक एक पुत्र समर्पण किया ॥ ३४ ॥ हे परीक्षित् ! भरद्वाजके जन्मका वृत्तान्त और समर्प्पणकी कथा कहते हैं । अपने भ्राता उतथ्यकी स्त्री ममतासे एक दिन छिपकर बृहस्पतिजीने भोग करना चाहा था । परंतु उस समय गर्भके बीच एक और बालक था, फिर उस समय गर्भके मध्य दूसरे गर्भका स्थान कैसे हो ? इसलिये गर्भके बालकने बृहस्पतिजीको वीर्य डालनेके अर्थ निवारण किया परंतु बृहस्पतिजी कामान्ध हो रहे थे । उन्होंने क्रोधित होकर बालकको यह शाप दिया कि "तू अंधा हो जा" और अपना वीर्य ममताके पेटमें डाला

दिया॥३५॥बृहस्पतिजीके शापसे उतथ्यतनय दीर्घतमा हुए थे, परंतु उन्होंने अपनी एड़ी प्रहारसे बृहस्पतिजीके वीर्यको योनिके बाहर निकाल दिया, परंतु उस भूमिपर गिरे हुए वीर्यसे उसी समय कुमार उत्पन्न हुआ। पीछे हमको व्यभिचारिणी जान कर छोड़ न दें इस भयसे भीत होकर जब उतथ्यकी स्त्री ममताने उस कुमारको त्याग करनेकी इच्छा की, तब उस समय देवता लोगोंने बृहस्पति और ममताके विवाद रूप इस कुमारका नाम धरनेके लिये यह वचन कहे ॥ ३६ ॥ पुत्रको त्याग करके जाते हुए देख देवताओंने ममतासे कहा अरी मूढ स्त्री ! यह बालक एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे होनेके कारण इसका दो जनोंसे जन्म हुआ इसलिये यह तुम्हारे स्वामीका भी पुत्र है। स्वामीसे कुछ भयकी शंका नहीं, तुम इस बालकको पालो और बृहस्पतिसे भी कहा कि तुम भी इसका पालन-पोषण करो, क्यों कि तुम दोनों जनोंसे अन्यायके द्वारा यह बालक उत्पन्न हुआ है। पर पिता माता द्वाज अर्थात् बृहस्पति और ममता झगड़ा करते-करते इस बाल-

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशिङ्किताम् ॥ नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३६ ॥ मूढे भरद्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ॥ यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३७ ॥ चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ॥ व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे शकुन्तलोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ॥ महावीर्यो नरो गर्गस्संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥

कको छोड़कर चले गये, इसलिये इसका नाम भरद्वाज हुआ, क्योंकि भर (पोषण) और (दोनोंसे उत्पन्न) इन दोनों शब्दोंके मिलानेमें 'भरद्वाज' नाम हुआ ॥ ३७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! देवता लोगोंके इस प्रकार कहते रहनेपर भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुए उस बालकको व्यर्थ समझकर उतथ्यकी भार्याने इस बालकको त्याग दिया। तब उस बालकको मरुद्गणोंने लेकर पालन किया था। जब भरतवंशके वितथ होनेका उपक्रम हुआ, तब उस समय मरुद्गणोंने इस पुत्रको लेकर महाराजाधिराज भरतजीको दे दिया ॥३८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा—भरतवंश इक्कीसमें, रंतिदेव अजमीढ। तिनके कुलकी कीर्ति सब, वरणों सहित सपीढ ॥श्रीशुकदेवजी बोले—हे महाराज परीक्षित्! वंशके वितथ होने पर भरतजीको मरुद्गणोंने यह बालक दिया, इसलिये इन

भरद्वाजका नाम वितथ हुआ । इन वितथका पुत्र मन्यु, उनसे बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए उनमें नरका पुत्र संकृति हुआ ॥१॥ उसका पुत्र गुरु और रंतिदेव हुआ ! हे राजन् ! रंतिदेवकी महिमा इस लोक और परलोक दोनोंमें गायी जाती है ॥ २ ॥ इस राजाका चित्त निरंतर व्ययमें नियुक्त था । वह आप भूखे रहकर भी जो कुछ मिलता था उसे तत्काल दान कर देता था । वह धीर नरपति सब कुछ दान करके निष्किञ्चन हो सपरिवार क्षुधाके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥ ३ ॥ और विना जलपान किये राजाको अड़तालीस दिन व्यतीत हो गये । सब परिवार विना आहारके कष्ट पा रहा था और आप भी भूख-प्यासके मारे कम्पायमान हो रहे थे । उसी समय घृत, खीर और हलुआ भोजन करनेके लिये राजाको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ उसको पाकर राजा प्रातःकाल

गुरुश्च रन्तिदेवश्च संकृतेः पाण्डुनन्दन ॥ रन्तिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥ २ ॥ वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ॥ निष्किंचनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥ ३ ॥ व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपि बतः किल ॥ घृतपायसंसयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ॥ अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागतम् ॥ ५ ॥ तस्मै संव्यभजत् सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयाऽन्वितः ॥ हरिं सर्वत्र संपश्यन् स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥६॥ अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ॥ विभक्तं व्यभजत् तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥७॥ याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः ॥ राजन् मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥ ८ ॥

भोजन करनेको चले ही थे कि उसी समय कोई ब्राह्मण अतिथि आ गया ॥५॥ तो राजाने श्रद्धापूर्वक सर्वदेवमय भगवान् हरिको देखते हुए आदरपूर्वक उस ब्राह्मणको भी उस सब अन्नमेंसे विभाग करके दिया और वह ब्राह्मण भोजन करके चला गया ॥ ६ ॥ इसके पीछे उस बचे हुए अन्नादिको अपने सब परिवारको बांट चूंट आप स्वयं भोजन करने जा रहे थे कि उस अवसरपर एक और कोई शूद्र अपनेको अतिथि बताकर आया तो इन रंतिदेवने भगवान् हरिका स्मरण करके उस बचे हुए अन्नमेंसे उस शूद्रको भी भाग दिया ॥ ७ ॥ एक शूद्र अतिथि आकर बिदा हो चला गया कि इतनेमें ही और एक जन बहुत सारे कुत्तोंको साथ लिये अतिथि बनकर वहां आया और आकर

बोला—"मैं इन सब कुत्तोंके साथ बहुत ही भूंखा हूँ" अतः इस यूथके सहित मुझको तुम आहार दो ॥ ८॥ राजाने उसका बहुत ही आदर किया और सम्मान करके वह बचा हुआ अन्न कुत्तोंके यूथको और उनके स्वामीको खानेके लिये देकर उनको नमस्कार किया ॥ ९ ॥ उसके पीछे सब कुछ देकर एक जनकी तृप्तिके योग्य जो जल वहां बचा था, उसके ही पीनेका राजाने उद्योग किया कि इतनेमें ही एक पुल्कस (चाण्डाल) आया और करुणासहित यह वचन बोला कि हे महाराज ! मैं बहुत थक गया हूँ, मुझ अशुभ पुरुषको कुछ जल दीजिये ॥ १० ॥ इस चाण्डालके ऐसे करुणायुक्त वचन सुनकर राजा रंतिदेवको अत्यन्त दया आई और दुःखित हो यह अमृतमय वचन बोले कि ॥ ११ ॥ हम परमेश्वरसे अणिमादि अष्ट सिद्धि युक्त गति अथवा मुक्तिकी भी कामना नहीं करते। हमारी प्रार्थना है कि हम

स आदृत्यावशिष्टं यद् बहुमानपुरस्कृतम् ॥ तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥ पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ॥ पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥ १० ॥ तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ॥ कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥ न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ॥ आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥ १२ ॥ क्षुत्तृट्च्छ्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविशादमोहाः ॥ सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३ ॥ एवं प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ॥ पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥१४॥ तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ॥ आत्मानं दर्शयांचक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण देहधारियोंके दुःखको भोक्तारूपसे भीतर स्थिर होकर प्राप्त हों और हमसे सब प्राणियोंका दुख दूर हो जाये ॥ १२ ॥ यह दीन जन-जीवन धारण करनेकी वासना करता है, इसके जीवनके लिये जल अर्पण करते ही हमारी क्षुधा, तृष्णा, थकावट, अंगोंका घूमना, कातरता, क्रांति, खेद, विषाद,मोह सब ही निवृत्त हो गये ॥१३॥ इस प्रकार कहकर स्वभावसे ही दयालु महाराज रंतिदेवने स्वयं प्यासके मारे म्रियमाण होनेपर भी उस चाण्डालको अपने पीनेका जल दे दिया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! त्रिभुवनाधीश जो ब्रह्मादि देवता फलाकांक्षी पुरुषोंको फलदान किया करते हैं यह सब महाराज रंतिदेवके धैर्य और धर्मकी परीक्षा करनेके लिये विष्णुकी बनायी हुई मायासे अपने-

अपने स्वरूपको दिखाते हैं ॥१५॥ परन्तु महाराज रंतिदेवने इन सब देवताओंको नमस्कार किया और निःसंग व स्पृहारहित होकर केवल भगवान् वासुदेवको अर्पण कर दिया इसलिये उन्होंने ब्रह्मादि देवताओंसे कुछ भी नहीं चाहा ॥१६॥ हे राजन् ! रंतिदेवके ईश्वरातिरिक्त और किसी फलकी इच्छा न करनेपर अपने चित्तको ईश्वरावलम्बित करनेसे उनके निकट गुणमयी माया स्वप्नके समान आत्मामें ही विलीन हुई थी ॥१७॥ उसके अनुगामी जनगण इस राजा रंतिदेवके संसर्ग प्रभावसे सब ही नारायणपरायण योगी हुये थे ॥ १८ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! मन्युके पुत्र नरका वंश कहा गया, अब गर्गके वंशका वृत्तांत कहते हैं,वह तुम सुनो। गर्गसे शिनि उत्पन्न हुए, शिनिसे गार्ग्य; ये

स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निस्सङ्गो विगतस्पृहः ॥ वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम् ॥१६॥ ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ॥ माया गुणमयी राजन् स्वप्नवत् प्रत्यलीयत ॥ १७ ॥ तत्प्रसंगानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः ॥ अभवन् योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः॥१८॥ गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यःक्षत्राद् ब्रह्म ह्यवर्तत ॥ दुरितक्षयो महावीर्यात् तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ॥ बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्तीयद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ॥ अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥२१॥ अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ॥ बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥

ब्रह्मकुलके प्रवर्तक हुए अब महावीर्यके वंशका विवरण सुनो, महावीर्यसे दुरतिक्षय उत्पन्न हुआ। उसके पुत्र त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि ये तीनों जन क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए थे। अब मन्युके पांच पुत्रोंमेंसे सबसे बड़ेका वंश सुनो। बृहत्क्षत्रका पुत्र हस्ती × हुआ, जिसने हस्तिनापुर बसाया ॥ १९ ॥ २० ॥ इस हस्तीके अजमीढ, ❋ द्विमीढ और पुरुमीढ यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें अजमीढके वंशसे प्रियमेधादि ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ और इस अज मीढसे बृहदिषु नाम और एक पुत्र जन्मा, उसका पुत्र बृहद्धनु

× इसी राजा हस्तीने "हस्तिनापुर" बसाया था जो अब तक गंगा भागीरथीके किनारेपर उपस्थित है।

❋ इसी अजमीढ़ने 'अजमेड़' नामक नगर बसाया था जो आजकल पुष्करजीके निकट 'अजमेर' नामसे विख्यात है।

हुआ । बृहद्धनुकी सन्तान बृहत्काय,इसका पुत्र जयद्रथ हुआ ॥ २२ ॥ जयद्रथका पुत्र विशद, उसका पुत्र सेनजित्, सेनजित्के पुत्र रुचिराश्व, दृढ़हनु, काश्य और वत्स ये चार पुत्र हुए ॥२३॥ उनमें रुचिराश्वके पार नामक पुत्र हुआ । उसका युत्र पृथुसेन हुआ । हे राजन् ! पारका दूसरा पुत्र नीप और नीपके सौ (१००) पुत्र हुए ॥ २४ ॥ और इसी नीपने शुककी कन्या + कृत्वीके गर्भसे ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया । योगी ब्रह्मदत्तने अपनी भार्या सरस्वतीके गर्भसे विष्वक्सेन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ जिसने जेगीषव्यके उप-

तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित् समजायत ॥ रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥२३॥ रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥ पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४ ॥ स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ॥ स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात् सुतम् ॥२५॥ जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह ॥ उदक्स्वनस्ततस्तस्माद् भल्लादो बार्हदीषवाः ॥ २६ ॥ यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ॥ नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥२७॥ सुपार्श्वात् सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ॥ कृति हिरण्यनाभाद् यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥२८॥

देशसे योगशास्त्र प्रणयन किया था । इस विष्वक्सेनसे उदक्सेनने जन्म लिया, जिसके भल्लाद नाम पुत्र उत्पन्न हुआ । हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! ये सब महीपाल बृहदिषुके वंशमें उत्पन्न हुये थे ॥२६॥ द्विमीढका पुत्र यवीनर, यवीनरका पुत्र कृतमान, उसके यहाँ सत्यधृति नामक पुत्र जन्मा । सत्यधृतिका पुत्र दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ ॥ २७ ॥ सुपार्श्वसे सुमतिने जन्म लिया, उसका पुत्र सन्नति, उसका पुत्र कृति, जिसने हिरण्यनाभसे योगविद्या सीखकर प्राच्य सामकी छः संहिताओंका विभाग करके उनको पढ़ाया ॥ इस

+ शंका—राजा नीपने क्षत्रिय होकर ब्राह्मण शुकदेवजी की कन्याके साथ अपना विवाह क्यों किया ? क्षत्रियकी पुत्रीको तो ब्राह्मण सदैव विवाहते रहे, परन्तु ब्राह्मणकी कन्याके साथ क्षत्रियका विवाह हमने आज ही सुना है, कभी देवयानीकी बात तो शापसे हो गयी, परन्तु यह कैसे हुआ ?

उत्तर—तीन लोकमे शुकदेवजीकी कन्या सब ब्रह्मज्ञानियोंमें परम ब्रह्मज्ञानी थी और ब्रह्मज्ञानी हीं पुरुषको अपना पति करना चाहती थी और किसी दूसरे पुरुषको नहीं चाहती थी और राजा नीप बड़ा ब्रह्मज्ञानी था, ऐसा विचारके अपनी इच्छासे राजा नीपको उसने अपना पति बनाया, कुछ संसारकी रीतिसे यह विवाह नहीं हुआ था ।

कृतिके नीप हुआ और नीपसे उग्रायुधकी उत्पत्ति हुई । उग्रायुधके क्षेमा, उसका पुत्र सुवीर, सुवीरका पुत्र रिपुञ्जय, ॥ २८ ॥२९॥ उसका पुत्र बहुरथ हुआ । हे राजन् ! हस्तीका पुत्र पुरुमीढ निःसन्तान रहा अजमीढकी नलिनी नाम जो भार्या थी उससे नीलनाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ और नीलका पुत्र शान्ति जन्मा ॥ ३० ॥ शान्तिका बेटा सुशान्ति, सुशान्तिका पुत्र उरुज और उससे अर्कने जन्म ग्रहण किया,अर्कका पुत्र भर्म्याश्व और उसके मुद्गलादि पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ अर्थात् मुद्गल, यवीनर, बृहदश्व, काम्पिल्य और संजय

संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ॥ तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः ॥ २९ ॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ॥ नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिस्सुतस्ततः ॥ ३० ॥ शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ॥ भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ ३१ ॥ यवीनरो बृहदिषुः काम्पिल्यः सञ्जयः सुताः ॥ भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥ विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः ॥ मुद्गलाद् ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ मिथुनं मुद्गलाद् भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत् ॥ अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात ॥ ३४ ॥ तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ॥ शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ॥ ३५ ॥

ये पाँच पुत्र जन्मे । भर्म्याश्वने इन पुत्रोंको देखकर एक समय कहा था कि हमारे ये पाँच पुत्र पाँच विषयके रक्षा करनेमें समर्थ हैं ये पाञ्चाल देशका पालन कर सकते हैं । इसी कारण इन पुत्रोंकी पाञ्चाल संज्ञा हुई और पाञ्चाल देश इनके ही नामसे प्रसिद्ध हुआ और मुद्गलसे मौद्गल्य गोत्री ब्रह्मकुल हुआ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे शुभनर-मिथुनने जन्म लिया । इनमें दिवोदास नर और अहल्या नाम नारी हुई थी । उसी समय अहल्यामें गौतमजीसे शतानन्दकी उत्पत्ति हुई॥३४॥शतानन्दका पुत्र सत्यधृति हुआ, यह धनुर्वेदको

भलीभांतिसे जानता था, उसका पुत्र शरद्वान हुआ, जिसका वीर्य उर्वशीके दर्शनसे शरकण्डेके समूहमें गिरा था। और फिर इसीं वीर्यसे एक शुभ जोड़ा उत्पन्न हुआजब शन्तनु राजा मृगया करनेको गया तब उसने दैवात् इस जोड़ेको देखा और दयाके वश हो अपने घरपर ले आया, उस नर-मिथुनमेंसे बालकका नाम कृप और बालिकाका नाम कृपी हुआ जो कि द्रोणाचार्य की स्त्री हुई॥३५॥ ३६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सोमवंशानुवर्णने एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ दोहा–दिवोदासको वंश कह्, ऋक्षवंश बाईस। जरासन्ध औ धर्मसुत, दुर्योधन धनईस ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे नृपश्रेष्ठ! दिवोदासका पुत्र मित्रायु, उसका पुत्र च्यवन,च्यवनका पुत्र सुदास, सुदासका पुत्र सहदेव और उसकी सन्तान सोमक हुआ। इस सोमकके सौ १०० पुत्र थे, उनमें जन्तु

शरस्तम्बेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ तद् दृष्ट्वा कृपयाऽगृह्णाच्छन्तनुर्मृगयां चरन् ॥ कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भरतरन्तिदेवाजमीढादिचरितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मित्रायुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप ॥ सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥ १ ॥ तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान् पृषतः सुतः ॥ द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥२॥ धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्भार्म्याः पाञ्चालका इमे ॥ योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्ष संवरणस्ततः ॥ ३ ॥ तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ॥ परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोस्सुताः ॥ ४ ॥ सुहोत्रोऽभूत् सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती ॥ वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥

बड़ा था॥१॥और पृषत छोटा हुआ। इस पृषतसे सर्व सम्पद् युक्त राजा द्रुपदने जन्म लिया। इन्हीं राजा द्रुपदसे द्रौपदीका जन्म हुआ ॥ २ ॥ और इनके पुत्र धृष्टद्युम्नादि हुए धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु हुआ। यह सब भर्म्याश्वके पाञ्चाल वंशमें हुए और पंजाबके राजा थे ॥ ३ ॥ हे राजा परीक्षित्! अब अजमीढके वंशका वृत्तांत कहते हैं, वह आप सुनिये अजमीढका दूसरा पुत्र जो ऋक्ष था, उसका पुत्र संवरण हुआ; इस संवरणसे सूर्यकी कन्या तपतीके गर्भसे कुरुक्षेत्रपति कुरुने जन्म ग्रहण किया, इन कुरुके परीक्षित, सुधनु, जह्नु, और निषधाश्व ये चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ इनमें सुधनुका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र च्यवन और इनके कृती हुआ, कृतीका पुत्र उपरि-

चर नामकवसु हुआ, उससे बृहद्रथ प्रभृति उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ और पुत्रोंके यह नाम हैं, यथा—कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप इत्यादि । यह सबही चेदिप अर्थात् चन्देलीके राजा थे ॥ ६ ॥ बृहद्रथ से कुशाग्रका जन्म हुआ उसका पुत्र ऋषभ, उसका सुत सत्यहित, सत्यहितका पुत्र पुण्यवान् और उसका बेटा जह्नु हुआ, हे राजन्! बृहद्रथकी दूसरी भार्यासे एक पुत्र दो खण्ड होकर जन्मा था ॥ ७ ॥ उसकी माताने उस बालकको ऐसा देखकर बाहर फेंकवा दिया । फिर जरा राक्षसीने उसको देख "जीवित हो जीवित हो" यह वाक्य उच्चारणपूर्वक क्रीड़ा करते उन दोनों खण्डोंको जोड़ दिया था उससे ही यह बालक सर्वावयव सम्पन्न हो जरासन्ध नामक हुआ ॥ ८ ॥ इस जरा-

कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ॥ बृहद्रथाद्कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥ ६ ॥ जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जह्नुः ॥ अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥ ७ ॥ ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसन्धिते ॥ जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत् सुतः ॥ ८ ॥ ततश्च सहदेवोऽभूत् सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ परीक्षिदनपत्योऽभूत् सुरथो नाम जाह्नवः ॥ ९ ॥ ततोविदूरथस्तस्मात् सार्वभौमस्ततोऽभवत् ॥ जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १० ॥ ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च ॥ ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥ ११ ॥ देवापिश्शन्तनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः ॥ पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥१२॥ अभवच्छन्तनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः ॥ यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥१३ ॥

सन्धका पुत्र सहदेव, उसका पुत्र सोमापि, उससे श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई । हे राजन् ! कुरुपुत्र परीक्षितके सन्तान नहीं थी । जह्नुका पुत्र सुरथ ॥ ९ ॥ इससे विदूरथका जन्म हुआ । उसका पुत्र सार्वभौम, उसका पुत्र जयसेन, जयसेनका पुत्र राधिक, राधिकसे आयुतायुने जन्म लिया ॥ १० ॥ आयुतायुके क्रोधन, क्रोधनके देवातिथि, उनके ऋक्ष और ऋक्षसे दिलीपने जन्म ग्रहण किया और दिलीपके प्रदीप नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ इन प्रदीपके देवापि, शन्तनु और बाल्हीक नामक तीन पुत्र हुए । उनमें बड़ा पुत्र देवापि पितृराज्यको छोड़कर वनमें चला गया था ॥ १२ ॥ इसलिये मध्यम पुत्र शन्तनु राजा हुए । पूर्वजन्ममें इनका नाम महाभिष था । यह शन्तनु अपने

हाथसे जिस किसी वृद्ध पुरुषको स्पर्श करते थे वही युवा हो जाता था ॥ १३ ॥ और शांति प्राप्त कर लेता था, इस कर्मके ही करनेसे इनका नाम शन्तनु हुआ इन शन्तनुजीके राजा होनेपर देवराज इन्द्रने बारह वर्षतक पानी नहीं वर्षाया ॥ १४ ॥ तब राजाने उद्विग्न होकर ब्राह्मणोंसे इसका कारण पूछा, ब्राह्मणोंने इस विषयमें केवल इतना ही कहा कि महाराज ! बड़े भाईके रहते हुए जो पुरुष—राज सिंहासन पर बैठता है, वह अपने समान पुरुष होने पर भी परिवेत्ता ही हो जाता है आप परिवेदन दोषसे दूषित हुए हैं। इस दोषको दूर करनेके लिये शीघ्र अपने बड़े भाईको बुलाकर उनको राज्यभार दे दो। तब देवता जल वर्षायेंगे और राष्ट्रोंकी वृद्धि होगी ॥ १५ ॥ ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर राजा शंतनु उसी समय वनको चले गये और "प्रजा पालन करना ही राजाका परमधर्म है, अतः आप राज्यको स्वीकार

शान्तिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः ॥ समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४ ॥ शन्तनुर्ब्राह्मणै-रुक्तः परिवेत्ता त्वमग्रभुक् ॥ राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥१५॥ एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत् ॥ तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥१६॥ वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह ॥ देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राम-माश्रितः ॥ १७॥ सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ॥ बाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥ १८ ॥ शलश्च शन्तनोरासीद्गङ्गायां भीष्म आत्मवान् ॥सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥१९॥ वीरयूथाग्रणीर्येन रामो-ऽपि युधि तोषितः ॥ शन्तनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्रांगदः सुतः ॥ २० ॥

कीजिये" यह कहकर अपने बड़े भ्रातासे राज्य ग्रहण करनेके लिये विनय करने लगे। परन्तु इससे पहले शंतनुके मन्त्री अश्ववारने देवापिको पाखण्ड करके राज्यके अयोग्य करनेके लिये उनके पास कुछेक ब्राह्मणोंको भेज दिया था। ब्राह्मणलोगोंकी पाखण्डमतानुयायी कथाके द्वारा जब देवापि वेदमार्गसे परिभ्रष्ट हुए तब उन्होंने शन्तनुकी प्रार्थना न मानी और वेदशास्त्रकी निंदा करने लगे, तब वेदोंकी निंदा करनेसे नीचता पानेके कारण राज्यके योग्य देवापि न रहे, फिर उसके उपरांत शंतनुके राज्य भोग करनेमें और कोई दोष नहीं रहा। फिर यथाकालमें वर्षा होने लगी। तबसे देवापि योगमार्गका अवलम्बन कर कलाप ग्राममें रहते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ जब कलियुगमें चन्द्र-वंशका नाश हो जायगा, तब सत्ययुगके पहले वह देवापि फिर चन्द्रवंशको स्थापित करेंगे शंतनुके पुत्र बाह्लीकसे सोमदत्तकी उत्पत्ति हुई।

भा० न०
॥६९॥

इस सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा और शल यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। हे परीक्षित्! इन शंतनुके गंगाजीके गर्भसे भीष्मजीका जन्म हुआ था। यह भीष्मजी धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाभागवत विद्वान् और वीरगणोंमें अग्रगण्य थे, उन्होंने संग्राममें * परशुरामजीको भी प्रसन्न किया था। हे राजन्! इन शंतनुसे दास (धीवर) कन्यामें चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र जन्में * ॥१८॥१९॥२०॥ उनमें छोटा विचित्रवीर्य हुआ और बड़ा पुत्र चित्रांगद, जिसको किसी गन्धर्वने मार डाला था। शंतनु राजाके ग्रहण करनेसे पहले इस दाशकन्या (सत्यवती) में महर्षि पराशरसे साक्षात् भगवान् हरिके अंशसे कृष्णद्वैपायन मुनि (श्रीव्यासजी) का अवतार हुआ ॥२१॥

विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्रांगदो हतः ॥ यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१ ॥ वेदगुप्तो मुनि कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ॥ हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः ॥ २२ ॥ मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ ॥ विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥ २३ ॥ स्वयंवरादुपानीते अंबिकाम्बालिके उभे ॥ तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥ २४ ॥

हे परीक्षित्! उनके जन्म होनेसे पहले समस्त वेद गुप्त हो गये थे, उनसे ही हमने श्रीमद्भागवत शास्त्र पढ़ा था, जो कि इस समय आप को सुना रहे हैं॥ इन भगवान् बादरायणके पैलादि अनेक शिष्य थे, परंतु वह सब शियोंको छोड़कर हमको, जो उनके स्वभावसे जानकार थे परमगुह्य श्रीमद्भागवत शास्त्रकी व्याख्या सुनाते थे क्योंकि मैं उनका शान्त पुत्र था इन विचित्रवीर्यने काशिराजकी दो कन्या अंबिका, अम्बालिकासे विवाह किया, इन दोनों कन्याओंको महाबलवान् भीष्म स्वयंवरमेंसे लड़कर छीन लाये थे, इन दोनों स्त्रियोंमें विचि-

भा० टी०
अ० २२

* शंका—रामचन्द्रके सामने त्रेतायुगमे परशुरामजी अपना धनुषबाण रखकर उत्तर दिशामें तप करने चले गये थे, रामायणमें ऐसा लिखा है, फिर द्वापरयुगमें भीष्मजीके संग युद्ध कैसे किया, उस समय परशुरामजीके पास धनुष बाण कहांसे आया?

उत्तर—जब परशुरामजीने रामचन्द्रजीके सामने अस्त्रोंका त्याग किया, उस समय कुछ उन्होंने ऐसी शपथ नहीं कि थी आजसे हम कभी अस्त्र ग्रहण न करेंगे, इसलिये अम्बिकाको अत्यन्त दुःखी देखकर और अपने शरण आयी जानकर तपके प्रभावसे दूसरा धनुषबाण बनाकर भीष्मके संग युद्ध करने लगे।

* उपरिचरवसुके वीर्यद्वारा मत्स्यगर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी और केवट लोगोंने उसका पालन पोषण किया था। इसलिये यह दाशकन्याके नामसे विख्यात हुई, वास्तवमें इसका नाम सत्यवती था।

त्रवीर्य अत्यन्त अनुराग करते थे, इसलिये अल्पकालमें ही यक्ष्मारोगसे ग्रस्त हो मृत्युको प्राप्त हुए ॥२२॥२३॥२४॥ इनके कोई संतान नहीं हुई, तब इनके सहोदर भगवान् वेदव्यासजीने अपनी सत्यवती माताके कहनेसे अपने भाई विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र पांडु विदुर यह तीन पुत्र उत्पन्न किये इनमें धृतराष्ट्रकी ॥२५॥ स्त्री गांधारी हुई, इस धृतराष्ट्रके गांधारीसे (१००) पुत्र जन्मे, उन पुत्रोंमें दुर्योधन सबसे बड़ा था, और दुःशला नामक एक कन्या हुई ॥ २६ ॥ हे राजन्! पांडुराजा एक समय वनमें शिकार खेलनेको गये थे वहां उन्होंने मैथुन करते हुए एक मृगका वध किया, तब मृगने इनको शाप दिया कि जब तुम मैथुन करोगे तब तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। इन राजा पांडुकी स्त्री कुन्तीमें धर्म, पवन और इंद्रके वीर्य द्वारा क्रमसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन यह तीन पुत्र महारथी उत्पन्न हुए इन्हीं राजाकी माद्री

क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः॥ धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत ॥ २५ ॥ गांधार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ॥ तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका॥२६॥शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महारथाः ॥ जाता धर्मानिलेन्द्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥२७॥ नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः ॥ द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरात् प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ॥ अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतो राजन् श्रुतकर्मा तथाऽपरे ॥ युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥ भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः ॥ सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥ ३१ ॥

नामक दूसरी भार्यामें अश्विनीकुमारोंसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ ॥ इन पांचों पाण्डवोंकी भार्या द्रौपदी हुई द्रौपदीके गर्भमें युधिष्ठिरादि पांच पाण्डवोंसे पांच पुत्र उत्पन्न हुए जो कि तुम्हारे पितृव्य थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ अर्थात् युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसे, श्रुतसेन और अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा उत्पन्न हुआ। हे राजन्! इन पांच पाण्डवोंसे इनकी दूसरी भार्याओंमें इन पुत्रोंके अतिरिक्त (सिवाय) और भी पुत्र उत्पन्न हुए थे युधिष्ठिरकी पौरवी नामक जो दूसरी भार्या थी, उससे देवक नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ। भीमसेनके हिडम्बा नामक वनितामें घटोत्कचने जन्म ग्रहण किया। भीमसेन के काली नामक एक

भा० न० और भार्या थी जिससे सर्वंगत नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ सहदेवकी दूसरी भार्या विजया नामक पर्वतकी बेटीने सुहोत्र नामक एक
॥६६॥ पुत्र उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ नकुलकी करेणुमती नामक वनितामें निर्मित नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । हे राजन् ! अर्जुनने
नागराजकी कन्या उलूपीके गर्भसे इरावन्त नाम एक पुत्र उत्पन्न किया और मणिपुराधीशकी बेटीमें अर्जुनने बभ्रुवाहन नामक
पुत्र उत्पन्न किया था, वह पुत्र यद्यपि अर्जुनका बेटा था, तो भी नानाके गोद लेनेसे मणिपुरपतिका पुत्र कहलाया था ॥ ३२ ॥ और
इनकी सुभद्रा नामक और एक भार्या थी, उससे तुम्हारे पिता अभिमन्युने जन्म लिया । यह अभिमन्यु समस्त अतिरथी वीरोंके
जयकारी और महावीर थे । हे महाराज परीक्षित् ! उनके ही औरससे उत्तराके गर्भमें आपने जन्म लिया ॥३३॥ हे राजन् ! अश्वत्थामाके

करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथाऽर्जुनः॥इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ॥ मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रि-
कासुतः ॥ ३२ ॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ॥ सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३ ॥ परिक्षीणेषु
कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥ ३४ ॥ तवेमे तनयास्तात जनमेजय
पूर्वकाः ॥ श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥३५॥ जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ॥ सर्वान् वै
सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषाऽन्वितः ॥ ३६ ॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् ॥ समन्तात्पृथिवीं सर्वां जित्वा
यक्ष्यति चाध्वरैः॥३७॥तस्य पुत्रश्शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् ॥ अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति॥३८॥

छोड़े ब्रह्मास्त्रके तेजसे जब कुरुवंशका नाश हो रहा था, तब तुम भी उससे नष्ट होते थे परंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुरली मनोहरके
भा० टी० प्रभावसे मृत्युके हाथसे तुम छूट गये थे ॥ ३४ ॥ हे तात ! तुम्हारे इस समय जन्मेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन यह
अ० २२ चार पुत्र हैं ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित् ! तुम्हारे इन पुत्रोंमेंसे जनमेजय तक्षक (सर्प) से तुम्हारी मृत्युका होना सुनकर रोषके कारण सर्पसत्र
यज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञाग्निमें सब सर्पोंका होम कर देगा ॥ ३६ ॥ और तुम्हारे ये पुत्र समस्त पृथ्वीको जीत अश्वमेध यज्ञ
करेंगे और कावषेय वंशके " तुर " नामक ऋषिको पुरोहित बनाकर और भी बहुतसे अश्वमेध यज्ञ करेंगे ॥ ३७ ॥ हे परीक्षित !

तुम्हारे पुत्र जन्मेजयके शतानीक नामक एक पुत्र होगा । यह शतानीक याज्ञवल्क्य मुनिसे तीन वेद पढ़ेगा और शौनक मुनिसे ब्रह्मविद्या और आत्मज्ञान सीखेगा और कृपाचार्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेगा ॥ ३८ ॥ शतानीकका पुत्र सहस्रानीक होगा, उससे अश्वध्वजकी उत्पत्ति होगी । उसका पुत्र असीमकृष्ण और उसका पुत्र नेमिचक्र होगा ॥ ३९ ॥ इस नेमिचक्रके राजकालमें हस्तिनापुर गंगाजीमें डूबेगा । तब यह राजा कौशांबी नगरीमें वास करेगा । नेमिचक्रके उक्त नामक सन्तान होगी । उसका पुत्र चित्ररथ और उससे कविरथ जन्मेगा ॥ ४० ॥ कविरथका पुत्र वृष्णिमान और उसका पुत्र सुषेण नामक राजा होगा । सुषेणके सुनीथ नामक पुत्र जन्मेगा, उसका पुत्र नृचक्षु होगा और उससे सुखीनल जन्म लेगा ॥ ४१ ॥ सुखीनलका पुत्र पारिप्लव

सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः ॥ असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति ॥ उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥ ४० ॥ तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ॥ सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥ ४१ ॥ परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ॥ नृपञ्जयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ॥ ४२ ॥ शतानीकाद् दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥ दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ ४४ ॥ अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥ भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ ४५ ॥

होगा, उससे सुनय जन्म धारण करेगा, उसका पुत्र मेधावी, मेधावीका पुत्र नृपञ्जय और उसके दूर्व नामक पुत्र होगा और उसका पुत्र तिमि होगा तिमिसे बृहद्रथकी उत्पत्ति होगी । उसका पुत्र सुदास और सुदाससे शतानीक जन्म धारण करेगा ॥ ४२ ॥ शतानीकका पुत्र दुर्दमन, इनका बहीनर, बहीनरका दण्डपाणि, दण्डपाणिका पुत्र नेमि और नेमिसे क्षेमक नामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४३ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! देवर्षिसत्कृत ब्रह्मक्षत्रियवंश इस क्षेमकको राजा पाकर कलियुगमें समाप्तिको प्राप्त हो जायगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा सुनाकर नृपश्रेष्ठ परीक्षित्से बोले कि हे कुरुवंशावतंस ! अब मगधवंशमें जो

राजा होंगे उनका वृत्तांत कहता हूँ, आप सचेत हो मन लगाकर सुनिये। बृहद्रथके पुत्र जरासन्धके सहदेव नामक पुत्र होगा। सहदेवके मार्ज्जारि और इस मार्ज्जारिसे श्रुतश्रवा जन्म ग्रहण करेगा ॥४५॥ इसका पुत्र अयुतायु, उसकी सन्तान निरमित्र, इसका पुत्र सुनक्षत्र, इस सुनक्षत्रसे बृहत्सेनकी उत्पत्ति होगी। इस बृहत्सेनका पुत्र कर्मजित्,उसके सृतञ्जय, उससे विप्र नाम एक नरेश उत्पन्न होगा। इसका पुत्र शुचि, शुचिका पुत्र क्षेम, उससे सुव्रत जन्मेगा। सुव्रतका पुत्र धर्मसूत्र और धर्मसूत्रके शम नाम पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इस शमसे द्युमत्सेनकी उत्पत्ति होगी, द्युमत्सेनका पुत्र सुमति होगा। इस सुमतिका पुत्र सुबल उत्पन्न होगा,सुबलका सुनीथ, सुनीथका पुत्र सत्यजित, सत्यजितका पुत्र विश्वजित और विश्वजितका पुत्र रिपुञ्जय उत्पन्न होगा ॥४८॥ हे राजा परीक्षित्! हजार वर्षतक यह सब राजा

ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः॥ सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद्बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ॥ ४६ ॥ ततः सृतंजयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः॥४७॥द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥ सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुञ्जयः ॥ बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे दिवोदासर्क्षयोर्वंशवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ श्रीशुक उवाच ॥ अनोः समानरश्चक्षुः परोक्षश्च सुतास्त्रयः ॥ सभानरात् कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥ जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ॥ उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥ शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ॥ २ ॥

उत्पन्न होंगे और इनके उपरांत जो समस्त राजा होंगे वह पीछे (द्वादशस्कन्धमें) कहे जायँगे ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ दोहा–ययातिसुत अनु द्रुह्यु पुनि, वरणों तुर्वसु वंश। पीछे ज्यामघ राज्य तक, यदुकुल कहौं प्रशंस ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण! पूरुका वंश तो कह चुके, अब राजा ययातिके चौथे पुत्र अनुके वंशका वर्णन करते हैं। अनुके सभानर, चक्षु और परोक्ष यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सभानरका पुत्र कालनर, उसका पुत्र सृञ्जय ॥१॥ और उसका पुत्र जन्मेजय हुआ। जन्मेजयका पुत्र महाशील और महाशीलका पुत्र महामना हुआ महामनाके उशीनर और तितिक्षु यह दो पुत्र उत्पन्न

हुए । इन दोनोंमें उशीनरके शिबि, बेन, शम और दक्ष यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ इनमें शिबिसे वृषादर्भ, सुवीर, मद्र, कैकेय यह चार पुत्र जन्मे । तितिक्षुका पुत्र रुषद्रथ, उसका पुत्र होम, उसका पुत्र सुतप और सुतपसे बलि नाम पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ ४ ॥ इस बलिके क्षेत्रमें दीर्घतमासे अंग, वंग, कलिंगादि और सुह्म, पुंड्र और अन्ध्र नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए यह सब अपने-अपने नामसे छः जनपद और छः प्राच्य देशोंमें अंग, वंग, कलिंग, सुह्म और पुण्डरीक और अन्ध्र आदि बसाये ॥५॥ अंगसे खलपान नामक जो पुत्र जन्मा था उसका पुत्र दिविरथ, उसकी संतान धर्मरथ और उससे चित्ररथ जन्मा । चित्ररथके कोई संतान नहीं हुई ॥ ६ ॥ रोमपाद नाम करके यह राजा

वृषादर्भः सुवीरश्च भद्रः कैकेय आत्मजाः ॥ शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ॥ ॥ ३ ॥ ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ॥ अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्मपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः ॥ ४ ॥ जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्चते ॥ ५ ॥ खनपानोऽङ्गतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ॥ सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ॥ ६ ॥ रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह ताम् ॥ ७ ॥ देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः ॥ ८ ॥ स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वताः ॥ प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः ॥ ९ ॥ चतुरंगो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः ॥ १० ॥

विख्यात था, उसके सखा दशरथ राजाने उसको पुत्रार्थ शांतानामक अपनी कन्या दान कर दी थी, इस कन्याका पाणिग्रहण ऋष्यशृङ्ग मुनिने किया ॥७॥ हे राजन् ! रोमपाद राजाके राज्यमें किसी कारणसे कुछ कालतक देवता लोगोंने जल नहीं वर्षाया । तब राजाकी अनुमतिसे वरांगनागण तपोवनमें जा गीत गाकर बाजे बजा-बजाकर नाचने लगीं और हाव-भाव कटाक्ष आलिंगन और अर्हण योगसे इन ऋष्य शृङ्गको ले आयीं ॥८॥ ऋष्य शृङ्गके आते ही जल वर्षा इसके उपरान्त इन मुनिने राजाको निःसंतान देख यज्ञ कराकर पुत्रका मुख दिखलाया ॥ ९ ॥ इन रोमपादसे चतुरंग उत्पन्न हुआ, उसकी संतान पृथुलाक्ष, पृथुलाक्षसे बृहद्रथ, बृहत्कर्मा, और बृहद्भानु ये तीन

भा० न० पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ इनमें बृहद्रथसे बृहन्मना जन्मा, उसका पुत्र जयद्रथ, जयद्रथका पुत्र विजय हुआ। इस विजयकी सम्भूति
॥६८॥ नामक भार्यासे धृतिने जन्म ग्रहण किया ॥११॥ धृतिका पुत्र धृतव्रत, उसका पुत्र सत्कर्मा, उससे अधिरथ उत्पन्न हुआ। इस अधिरथने श्रीगंगाजीके किनारेपर क्रीडा करते हुए कुन्तीजीके बहाये संदूकमें एक बालक पाया और यह अधिरथ सन्तानहीन था, इसीलिये इसने संदूकसे पाये हुए बालकको अपना पुत्र बना लिया। हे राजन्! बालकका नाम कर्ण था और इससे ही वृषसेन की उत्पत्ति हुई ॥१२॥१३॥ ययातिसुत द्रुह्युका पुत्र बभ्रु हुआ,बभ्रुका पुत्र सेतु,सेतुका पुत्र आरब्ध हुआ,उसका पुत्र गान्धार,उसका बेटा धर्म और उससे धृतजन्मा॥१४॥ धृतका पुत्र दुर्मना और उससे प्रचेताकी उत्पत्ति हुई। इस प्रचेताके सौ १०० पुत्र हुए, जो कि उत्तर दिशामें विराजमान होकर म्लेच्छा-

आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथः उदाहृतः ॥ विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत ॥११॥ ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ॥ योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन्मञ्जूषान्तर्गतं शिशुम् ॥ १२ ॥ कुन्त्याऽपविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत् सुतम् ॥ वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ॥ १३ ॥ द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मस्ततो धृतः ॥ १४ ॥ धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ १५ ॥ तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करन्धम उदारधीः ॥ १६ ॥ मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ दुष्यन्तः स पुनर्भेजे स्ववंशं राज्यकामुकः ॥ १७ ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥ १८ ॥ यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा
भा० टी० सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः ॥१९॥

धिपति हुए हैं ॥ १५ ॥ तुर्वसुका पुत्र वह्नि, उसका सुत भर्ग, उससे भानुमान्‌का जन्म हुआ। भानुमान्‌का त्रिभानु, उसका पुत्र उदा-
अ० २३ रमति करंधम हुआ ॥१६॥ करन्धम पुत्र मरुत, इन्होंने पुत्र रहित होनेसे कुरुवंशीय राजा दुष्यन्तको गोद लिया। यह दुष्यन्त राज्याभिलाषी होकर फिर अपने कुरुवंशको प्राप्त हुए थे ॥ १७ ॥ हे नरश्रेष्ठ! अब राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करते हैं। यह अति पवित्र वंश मानवमण्डलीके पापोंका नाश करनेवाला है ॥ १८ ॥ इस यदुवंशका वृत्तान्त सुननेसे मनुष्यमात्र पापोंसे छुट-

कारा पाते हैं, क्योंकि इसी वंशमें भगवान् वासुदेव नराकारसे अवतीर्ण थे ॥ १९ ॥ यदुके सहस्रजित्, कोष्टा, नल, रिपु ये चार पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें सहस्रजित्का पुत्र शतजित् हुआ ॥ २० ॥ इसके महाहय, वेणुहय और हैहय ये तीन पुत्र हुए इनमें हैहयका पुत्र धर्म, उसका पुत्र नेत्र और नेत्रका पुत्र कुंति हुआ, कुंतिसे सोहञ्जि जन्मा और उसका पुत्र महिष्मान् और महिष्मान्का पुत्र भद्रसेन हुआ॥२१॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक दो पुत्र हुए।इनमें धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा ये चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ इनमें कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ,जो कि सप्तद्वीपका अधीश्वर था और जिसने श्री भगवान्के अंश दत्तात्रेयजीसे योग गुण प्राप्त किया था ॥२३॥

यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ॥ चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः ॥ २० ॥ महाहयो वेणुहयो हैहयश्चे त तत्सुताः ॥ धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः ॥ सोहञ्जिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ॥ २१ ॥ दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ॥ कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥ २२ ॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपे वरोऽभवत् ॥ दत्तात्रेयाद्धरेरंशाद् प्राप्तयोगमहागुणः ॥२३॥ न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ॥ यज्ञदानतपोयोग श्रुतवीर्यजयादिभिः ॥ २४ ॥ पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः ॥ अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥ २५ ॥ तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे ॥ जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥ २६ ॥ जयध्वजात्तालजङ्घस्तस्या पुत्रशतं त्वभूत ॥ क्षत्रं यत् तालजंघाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥ २७ ॥

ऐसा जान पड़ता है कि कोई राजा यज्ञ, दान, तप, योग, वेदाध्ययन और शूरता, वीरता, व दयादिसे इन महात्मा अर्जुनकी गतिको नहीं प्राप्त हो सकता ॥ २४ ॥ इस राजाने अव्याहत पराक्रमसे पचासी हजार ८५००० वर्षतक अक्षय छः इंद्रियोंके सुखको भोगा था । इस राजाकी स्मरणशक्ति आश्चर्यमय थी कि जिससे कदापि वित्तका नाश नहीं होता था ॥ २५ ॥ इस अर्जुनके हजार पुत्र थे, इनमेंसे केवल पांच परशुरामके संग्राममें मरनेसे शेष बचे थे । जिनके नाम ये हैं-जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु, और ऊर्जित् ॥२६॥ इनमें जयध्वजका पुत्र तालजंघ और इस तालजंघके तालजंघा नामवाले शत पुत्र हुए । इन सबको क्षत्रियोंके संग्राममें सगरने संहार किया था ॥२७॥

भा० न०
॥६९॥

जो कुछ भी हो, तालजंघके उन सब पुत्रोंमें बड़ा वीतिहोत्र था। हे राजन् ! महात्मा वृष्णि तो मधुका पुत्र था। इस मधुके शत १००पुत्र उत्पन्न हुए थे, यद्यपि वृष्णि और यदुके कारणसे मधुका कुल माधव वृष्णि और यादव इन तीन नामोंको प्राप्त हुआ था, परन्तु तो भी वृष्णि ही इस कुल में श्रेष्ठ था ॥२८॥२९॥ यदुका पुत्र क्रोष्टु, इसका पुत्र वृजिनवान्, वृजिनवान्का पुत्र श्वाहि, उसका पुत्र रुशेकु, उसका सुत चित्ररथ और उससे महायोगी महाभाग शशबिन्दुकी उत्पत्ति हुई। यह प्रत्येक जातिके श्रेष्ठ चौदह महारत्नोंका (हाथी, रथ, स्त्री, बाण, निधि, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, माल्य, मणि, छत्र और विमानादिका) स्वामी और अपराजित चक्रवर्ती था ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् !

तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद् वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २८ ॥ माधवा वृष्णयो राजन् यादवाश्चेतिसंज्ञिताः ॥ यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः॥२९॥श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ॥ शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥ ३० ॥ चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ॥ तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥३१॥ दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ॥ तेषां षड्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजाः ॥ ३२ ॥ धर्मो नामोशनास्तस्य हयमेधशतस्य याट् ॥ तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चासन्नात्मजाः शृणु ॥ पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथु ज्यामघसंज्ञिताः ॥ ३३ ॥ ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥ नाविन्द-च्छत्रुभवनाद् भोज्यां कन्यामहारषीत् ॥ ३४ ॥

भा० टी०
अ० २३

इसके दश हजार १०००० स्त्रियाँ थीं ॥ ३१ ॥ इनमेंसे प्रत्येक स्त्रीके लक्ष-लक्ष १००००० पुत्र उत्पन्न हुए, जिससे सब मिलकर दश लाख हजार पुत्र जन्मे अर्थात् एक अर्व १००००००००० इन सब पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पुण्ययशा इत्यादि छः पुत्र विख्यात हुए थे ॥३२॥ पुत्रोंमें पृथुश्रवाका पुत्र धर्म हुआ, कि जिस धर्मके उशना पुत्रने सौ १०० अश्वमेध यज्ञ किये उशनाका पुत्र रुचक हुआ। इस रुचकके पुरु-जित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ यह पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥ इनमें ज्यामघकी भार्या शैब्या थी। इस ज्यामघके कोई सन्तान नहीं थी परंतु भार्याके डरसे और विवाह नहीं किया। यह एक समय इंद्रभवनसे भोज्या नामक कन्याको हरण करके ला रहा था ॥३४॥

कि उस कन्याको रथपर बैठे देखकर शैब्या अत्यन्य क्रोधित हुई और अपने पतिसे बोली कि कौन है ? जिसको मेरे बैठनेके रथपर चढ़ाकर ला रहे हो ॥३५॥ तब ज्यामघने भयके कारण उत्तर दिया कि यह तेरी पतोहू है। शैब्या विस्मित होकर बोली कि मैं तो वंध्या हूँ और मेरे कोई सौत भी नहीं कि यह कन्या जिसके बेटेकी बहू हो, फिर यह हमारी पतोहू कैसे हुई ? ॥ ३६ ॥ ज्यामघने कहा कि प्राणेश्वरी ! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी यह उसकी ही बहू होगी। हे राजन्! विश्वे देव और पितृलोगोंने ज्यामघके इस दीन वचनपर आनन्द प्रकट किया, क्योंकि ज्यामघने पहले उनकी बहुत दिनों तक पूजा की थी, अतः उन्होंने कृपा करके वरदान दिया ॥३७॥ इसके उपरांत शैब्याको गर्भाधान हुआ और यथायोग्य कालमें इस रानीने एक श्रेष्ठ कुमार उत्पन्न किया। इस कुमारका नाम विदर्भ हुआ, फिर कुमार

रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥ केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ॥ ३५ ॥ स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत् ॥ अहं वन्ध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ॥ ३६ ॥ जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ अन्वमोदन्त तद् विश्वेदेवाः पितर एव च ॥३७॥ शैब्या गर्भमधात् काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥ स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धेऽनुद्रुह्युतुर्वसुयदुवंशानुवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां विदर्भोऽजनयत् पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥ तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥ रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ॥ कुशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २ ॥ क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद् धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ॥ ततो दशार्हो नाम्नाऽभूत् तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३ ॥

विदर्भने इस पतिव्रता कन्याका पाणिग्रहण किया, कि जिसको पिता हरण कर लाये थे और इसी राजा विदर्भने अपने नामसे विदर्भ देश बसाया ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भावते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा—चौबिसमाहिं विदर्भके, भये तीन सुत वीर। रामकृष्ण तक वंश सब, कहौं सुनो मतिधीर ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कुमार विदर्भने अपनी स्त्रीके गर्भसे कुश और क्रथ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये इसका तीसरा पुत्र रोमपाद हुआ ॥ १ ॥ इम रोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुसे कृतिने जन्म ग्रहण किया। कृतिका पुत्र उशिक, उससे चेदि और चेदिसे दमघोष राजा की उत्पत्ति हुई ॥ २ ॥ हे राजन् ! विदर्भा-

त्मज क्रथका पुत्र कुन्त हुआ, उसका धृष्टि, धृष्टिका पुत्र निवृत्त, उसके दशार्हनाम पुत्र हुआ, दशार्हके व्योम ॥३॥ व्योमका पुत्र जीमूत, जीमूतके भीमरथ और उससे नवरथने जन्म ग्रहण किया, उसका पुत्र दशरथ हुआ ॥४॥ उससे शकुनि, शकुनिके करंभि, करंभिके देवरात, देवरातके देवक्षेत्र, उसके मधु, मधुसे कुरुवंश उत्पन्न हुआ कुरुवंशका पुत्र अनु ॥ ५ ॥ उसका पुत्र पुरुहोत्र, उसका पुत्र आयु और उससे सात्वतकी उत्पत्ति हुई। हे आर्य ! सात्वतके भजमान, भजिक, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज, ये सात पुत्र उत्पन्न हुए इनमें भजमान के दो स्त्रियाँ हुईं। एक स्त्रीसे निम्लोचि, किंकिण, वृष्णि, ये तीन और दूसरी स्त्रीमें भी शताजित, सहस्राजित् और अयुताजित

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ॥ ततोनवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥४॥ करम्भिः शकुने पुत्रो देवरातस्तदात्मजः ॥ देवक्षेत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥ पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ॥ भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥६॥ सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष॥भजमानस्य निम्लोचिः किङ्किणो वृष्णिरेव च ॥७॥ एकस्यामात्मजा पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ॥ शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥८॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू ॥ यथैव शृणुमो दूरात् संपश्यामस्तथाऽन्तिकात् ॥९॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ १० ॥ येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ॥ महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥ ११ ॥

ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे राजन् ! देवावृधकी संतान बभ्रु हुआ। इन पिता पुत्रके प्रसंगमें कवि लोग श्लोक * गाया करते हैं। उस श्लोकका अर्थ यह है। हम दूरसे जैसा सुनते हैं निकटसे वैसा देखते भी हैं ॥ ९ ॥ महात्मा बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवावृध राजा देवताके समान है, इस वंशमें पंचषष्टि षट् सहस्र और आठ जो यह ६०७३ पुरुष हुए, ये सब बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे मोक्षको प्राप्त हुए थे सात्वतके चौथे महाभोज अति धर्मात्मा थे। इनके वंशमें भोजगणोंकी उत्पत्ति हुई ॥ १० ॥ ११ ॥

* "बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू। तथैव शृणुमो दूरात् संपश्यामस्तथान्तिकात् ॥ १ ॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः । पुरुषाः पंचषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ २ ॥

हे परन्तप ! सात्वतके चौथे पुत्र वृष्णिके सुमित्र और युधाजित् नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। युधाजित्के पुत्र शिनि और अनमित्र हुए। उनमें अनमित्रका पुत्र निम्न हुआ ॥ १२ ॥ इस निम्नके सत्राजित और प्रसेन दो पुत्र हुए। राजन्! अनमित्रके शिनि नामक एक दूसरा पुत्र जो था, उसके यहां सत्यक जन्मा ॥१३॥ सत्यकका पुत्र युयुधान (सात्यकि) युयुधानका पुत्र जय, जयका पुत्र कुणि और इस कुणिसे युगंधरका जन्म हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ ! अनमित्रके वृष्णि नामक दूसरे पुत्रसे॥ १४ ॥ श्वफल्क और चित्ररथने जन्म लिये, श्वफल्कसे गांदिनीके गर्भमें अक्रूरजीके सिवाय और भी बारह पुत्र जन्मे, जो कि बड़े विख्यात हुए ॥१५॥ यथा—आसंग१, सारमेय२, मृदुर३, मृदुवित४, गिरि५, धर्म-

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद्युधाजिच्च परन्तप ॥ शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥ सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ॥ अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥ १३ ॥ युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः ॥ युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४ ॥ श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः ॥ अक्रूरप्रमुखा आसन् पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥ आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः ॥ धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ॥ तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥१७॥ देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ॥ पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥ १८ ॥ कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः ॥ कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥ कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुम्बुरुः ॥ अन्धको दुन्दुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥ २० ॥

वृद्ध६, सुकर्मा ७, क्षेत्रोपेक्ष ८, अरिमर्दन ९ ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न १०, गन्धमाद ११ और प्रतिबाहु १२ बारह ये अक्रूरको लेकर तेरह पुत्र हुए और इनके सुचीरा नामक एक बहन भी हुई थी। अक्रूरजीके देववान् और उपदेव दो पुत्र हुए। चित्ररथका पुत्र पृथु, इसके अतिरिक्त विदूरथादि बहुतसे पुत्र हुए ॥ १७ ॥ १८ ॥ दूसरे कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बलबर्हिष यह चार अंधकके पुत्र हुए, उनमें कुकुरका पुत्र वह्नि और वह्निका पुत्र विलोमा ॥१९॥ उसका पुत्र कपोतरोमा, उसका पुत्र अनु हुआ, जिसका मित्र तुम्बुरु गन्धर्व था। उस अनुका

भा० न०
॥७१॥

पुत्र अन्धक, उससे दुन्दुभि उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र अहिद्योत और उसका पुत्र पुनर्वसु हुआ ॥ २० ॥ पुनर्वसुके आहुक पुत्र और आहुकी कन्या हुई। आहुकके देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुए देवकके देववान्, उपदेव, सुदेव, देववर्द्धन यह चार पुत्र उत्पन्न हुए। इन चार पुत्रोंके धृतदेवादि सात बहनें थी ॥ २१ ॥ २२ ॥ यथा धृतदेवा १, शांतिदेवा २, उपदेवा ३, श्रीदेवा ४, देवरक्षिता ५, सहदेवा ६ और देवकी ७ इन सात कन्याओंके साथ वसुदेवजीने विवाह किया ॥ २३ ॥ हे परीक्षित् ! उग्रसेनका पुत्र कंस १, सुनामा२, न्यग्रोध ३, कंक ४, शंकु ५, सुहु ६, राष्ट्रपाल ७, धृष्टि ८ और तुष्टिमान् ये नौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ और कंसा १,

तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ ॥ देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ॥ तेषां स्वसारः सप्तासन् धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥ शांतिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥२३॥ कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शङ्कुः सुहूस्तथा ॥ राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥ २४ ॥ कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका ॥ उग्रसेनदुहितरो वासुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५ ॥ शूरो विदूरथादासीद्भजमानः सुतस्ततः ॥ शिनिस्तस्मात् स्वयम्भोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥२६॥ देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ॥ देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७॥ तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ॥ वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८ ॥ सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकम् ॥ देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥

भा० टी०
अ० २४

कंसवती २, कंका ३, शरभू ४, राष्ट्रपालिका ५, ये पांच कन्यायें वसुदेवजीके छोटे भाई जो देवभागादि थे इनकी भार्या हुईं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! पहले चित्ररथके बेटे विदूरथका जो वर्णन कर आये हैं, उस विदूरथके सूर उत्पन्न हुए, उसका पुत्र भजमान, उससे शिनिका जन्म हुआ, शिनिका पुत्र भोज और उससे हृदीक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ उससे देवमीढ, शतधनु और कृतवर्मा, यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए उनमें देवमीढका पुत्र शूर हुआ। उसकी मारिषा नामक एक पत्नी थी, उसके गर्भसे शूरने दश पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम ये हैं-यथा वसुदेव १, देवभाग २, देवश्रवस ३, आनक ४ ॥ २७ ॥ २८ ॥ सृञ्जय ५, श्यामक ६, कंक ७, शमीक ८,

वत्सक ९ और वृक १० । हे राजन् ! जिस समय वसुदेवजीका जन्म हुआ उस समय स्वर्गसे देवतालोगोंने नगाड़े और ढोल बजाये थे * ॥ २९ ॥ इसी लिये इन वसुदेवजीका एक नाम 'आनकदुन्दुभि' था, क्योंकि ये भगवान् हरिकी उत्पत्तिके स्थान थे। शूरसेनके इन पुत्रोंके अतिरिक्त पृथा १, श्रुतदेवा २, श्रुतकीर्ति ३, श्रुतश्रवा ४ ॥ ३० ॥ और राजाधिदेवी ५ नामक पांच कन्यायें हुईं । यह इन दश पुत्रोंकी बहनें थीं। राजा शूरसेनने अपने सखा कुंतिराजको निःसंतान देखकर अपनी पृथा कन्या उसको दे दी ॥३१॥ हे परीक्षित् ! किसी

वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ॥ पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः ॥ कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥ ३१ ॥ साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतिं प्रतोषितात् ॥ तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥ ३२ ॥ तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा ॥ प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥

समय दुर्वासा ऋषिके गृहमें आनेपर पृथाने भलीभांति सेवा कर उनको संतुष्ट किया और दुर्वासा मुनिने प्रसन्न होकर पृथाको देवाह्वान विद्या सिखा दी इसके उपरान्त पृथाने उस विद्याके बलकी परीक्षा करनेके लिये सूर्य भगवान्को बुलाया ॥ ३२ ॥ परंतु इस सूर्य भगवान्को तत्काल आता हुआ देखकर पृथा अति विस्मित हुई और विनयसहित यह वचन कहने लगी—हे देव ! हमने केवल परीक्षाके लिये मन्त्र पढ़ा

---

* शंका – मृत्युलोकमें जो मनुष्य जन्म लेते हैं उनके किसीके जन्म होनेपर देवता दुन्दुभी नहीं बजाते और हमने आजतक कभी सुना भी नहीं कि, मनुष्यों के जन्म लेने पर देवता दुन्दुभी बजाते हैं, परंतु वसुदेवके जन्म होनेपर देवताओंने दुन्दुभी क्यों बजाया ? जो कोई कहे की भगवान् वसुदेवके घर जन्म लेंगे इसलिये देवताओं ने आगे ही हर्ष मानकर बजाये हैं तो दशरथ आदि लेकर बहुत जनोंके भगवान पुत्र हुए तो दशरथ आदिके जन्मसमय देवताओं ने दुन्दुभी क्यों नहीं बजाया ?

उत्तर—जो मथुरामें वसुदेवजीने जन्म लिया तो उस समय दुन्दुभीके निकट चन्द्रमा खड़ा था, चन्द्रमाने जान लिया कि इस लड़केके पुत्र भगवान् होंगे मेरे वंशका प्रकाश करने वाला यह होगा जानकर चन्द्रमाने दुन्दुभी बजाया। कुछ देवताओं ने दुन्दुभी नहीं बजाया और दशरथके जन्मके समय सूर्य दुन्दुभीके समीप नहीं थे और जो होते तो सूर्य भी निश्चय दुन्दुभी बजाते अपने अपने वंशकी वृद्धि देखकर सबको हर्ष होता है ।

भा० न०
॥७२॥

था, इस समय आपसे कोई विशेष काम नहीं है, इसलिये आप क्षमा करें ॥ ३३ ॥ यह सुनकर सूर्य भगवान् बोले कि देवदर्शन व्यर्थ नहीं होता, हम तुममें गर्भाधान करेंगे। पृथा बोली कि मैं कन्या हूँ अतः संसारमें दूषित हूँगी। सूर्यनारायणने कहा कि तुम कन्या समझकर अपने मनमें कुछ संकोच मत करो, हम ऐसा करेंगे कि जिससे तुम्हारी योनि दूषित नहीं होगी ॥ ३४ ॥ हे महाराज परीक्षित्! इस प्रकार गर्भाधान करके सूर्य भगवान् स्वर्गको चले गये। उसी समय दूसरे दिवाकरके समान पृथाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥३५॥ तो पृथाने लोकापवादसे डरकर उस पुत्रको संदूकमें बन्दकर नदीमें बहा दिया। इसके उपरांत पृथाको देखकर तुम्हारा पर-

अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम् ॥ योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥ इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ॥ सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥ तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ॥ प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥३६॥ श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ॥ यस्यामभूद्दन्तवक्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥ ॥ ३७ ॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत ॥ संतर्दनादयस्तस्यां पंचासन् कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥ राजाधिदेव्यामावन्त्यो जयसेनोऽजनिष्ट ह ॥ दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ ३९॥ शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य सम्भवः ॥ देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४० ॥

भा० टी०
अ० २४

दादा महाराज सत्यविक्रम पाण्डु विवाह करनेके लिये ले गये ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! शूरसेनकी कन्या श्रुतवेदा कुरुवंशीय वृद्धशर्माकी भार्या हुई। उसमें दितिसुत दन्तवक्रने सप्तऋषि सनकादिके शापसे जन्म लिया ॥३७॥ और केकयवंशीय धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण किया, उससे सन्तर्दनादि पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ और अवन्तीके राजा जयसेनने राजाधिदेवीका पाणिग्रहण करके उससे बिंदु और अनुबिंदु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। हे राजा! चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ इसका पुत्र शिशुपाल उत्पन्न हुआ, कि जिसका वृत्तांत पहले वर्णन कर चुके हैं। अब वसुदेवजीके भ्राताओंका वृत्तांत कहते हैं।

देवभागकी भार्या कंसाके चित्रकेतु और बृहद्बल ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ देवश्रवसकी भार्या कंसावतीके गर्भसे सुवीर और इषुमानने जन्म ग्रहण किया। आनककी वनिता कंकासे सत्यजित् और पुरुजित् ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४१ ॥ सृञ्जयकी भार्या राष्ट्रपालीके गर्भसे वृष, दुर्म्मर्षणादि उत्पन्न हुए। श्यामककी शूरभूमि नामक भार्यासे हरिकेश और हिरण्याक्षने जन्म लिया ॥४२॥ वत्सकने मित्रकेशी नामक अप्सराके वृकादि पुत्र उत्पन्न किये। वृककी पत्नी दुर्वाक्षीसे तक्ष,पुष्कर शालप्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए॥४३॥शमीककी वनिता सुदामिनीने सुमित्र अर्ज्जुन और पाल इत्यादि पुत्र उत्पन्न किये। कंकने अपनी स्त्री कर्णिकाके गर्भसे ऋतुधामा और जयनामक दो पुत्र उत्पन्न

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ॥ कंकायामानकाज्जातौ सत्यजित् पुरुजित्तथा ॥ ४१ ॥ सृञ्जयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ॥ हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥ मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन् वत्सकस्तथा ॥ तक्षपुष्करशालादीन् दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥ ४३ ॥ सुमित्रार्जुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी ॥ कंकश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥ ४४ ॥ पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ॥ देवकी प्रमुखा आसन् पत्न्य आनकदुन्दुभेः ॥ ४५ ॥ बलं गदं सारणं च दुर्मदं विमलं ध्रुवम् ॥ वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥ ४६ ॥ सुभद्रो भद्रबाहुश्च दुर्मदो भद्र एव च ॥ पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥ ४७ ॥ नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ॥ कौसल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ॥ ४८ ॥ रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः ॥ इलायामुरुवल्कादीन् यदुमुख्यानजीजनत् ॥ ४९ ॥

किये ॥ ४४ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! वसुदेवजीकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि अनेक पत्नियाँ थीं ॥ ४५ ॥ इन स्त्रियोंमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४६ ॥ पौरवीसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूतादि बारह पुत्र जन्में ॥ ४७ ॥ मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक और शूरादि पुत्र उत्पन्न हुए। भद्राने कुलका आनन्द देनेवाला केवल केशी नामक एक ही पुत्र उत्पन्न किया॥४८॥रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमांगद प्रभृति जन्मे। और इलामें उरु-

वल्क आदिसे लेकर यदु जिनमें मुख्य ऐसे अनेक पुत्र हुए ॥४९॥ धृतदेवाके वसुदेवसे विपृष्टने जन्म ग्रहण किया। शांतिदेवामें श्रम, प्रतिश्रुत, आदि पुत्र उत्पन्न हुए ॥५०॥ इसी प्रकार उपदेवासे कल्प, वर्षादि दश पुत्र उत्पन्न हुए। श्रीदेवाके वसु, हंस, सुवंशारि छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥ देवरक्षिताके गदप्रभृति नव पुत्र उत्पन्न हुए। जैसे साक्षात् धर्मने आठ वसु उत्पन्न किये वैसे ही वसुदेवजीने सहदेवामें पुरु विश्रुत आदि आठ पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उनसे देवकीमें आठ पुत्र उत्पन्न हुए, यथा—कीर्तिमान्१, सुषेण२, भद्रसेन३, ऋजु४, सम्मर्दन ५, भद्र ६, संकर्षण ७ और अहीश्वर ८ ये आठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे परीक्षित्! वसुदेव देवकीके अष्टम

विपृष्टो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः ॥ शान्तिदेवात्मजा राजञ्छ्रमप्रतिश्रुतादयः ॥ ५० ॥ राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ॥ वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥ ५१ ॥ देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ॥ वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥ पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव ॥ वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥ कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ॥ ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥५४॥ अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः किल ॥ सुभद्रा च महाभागा तव राजन् पितामही ॥ ५५ ॥ यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ॥ तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ ५६ ॥ न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ॥ आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥ ५७ ॥ यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ॥ अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥

पुत्र स्वयं विष्णु भगवान् हुए और तुम्हारी दादी महाभागा सुभद्राजी भी उनसे ही उत्पन्न हुई ॥ ५५ ॥ अधिक क्या कहें? जिस जिस समय धर्मका क्षय अधर्मकी वृद्धि होती है, उसी-उसी समयमें भगवान् वासुदेव अपना अवतार लिया करते हैं ॥५६॥ नहीं तो जो लोग मायाके नियन्ता संगविहीन, सर्वसाक्षी, सर्वगत हैं उनका मायाविनोदके अतिरिक्त (सिवाय) जन्म अथवा कर्मका और क्या हेतु हो सकता है ॥ ५७ ॥ जिसकी मायाचेष्टा जीवके लिये अनुग्रहस्वरूप है, क्योंकि यह माया ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी निदान है, इसलिये जो सर्व जीवोंके अनुग्रह हैं फिर उनको कर्मादिके वश पड़कर जन्मादि सम्बंधकी क्या सम्भावना? इनके मायाचेष्टित श्रूयमाण

होनेपर उसके द्वारा सृष्टिप्रभृतिकी निवृत्ति होनेपर वे ही जीवके मोक्ष होनेका कारण होते हैं ॥ ५८ ॥ हे परीक्षित् ! बहुतसी अक्षौहिणीके नृपरूपी असुरगण जब पृथ्वीको आक्रमण करते हैं और अपने बोझसे पृथ्वीको दबा लेते हैं तब भूमिका भार उतारनेके लिये भगवान्‌का यह अवतार होता है क्योंकि जिन कर्मोंको सुरेश्वर लोग भी मनके द्वारा तर्क करके नहीं कर सकते भगवान् मधुसूदन संकर्षणके साथ उन सब कर्मोंको लीलासे ही कर डालते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे राजन् ! भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, यद्यपि वह संकल्प ही करके पृथ्वीके भारको हरण करनेमें समर्थ थे परंतु तो भी कलियुगमें जो भक्त होंगे, उनके प्रति अनुग्रह प्रकट करनेके लिये दुःख, शोक और तमोगुणका नाशक यह पुण्ययश भगवान्‌ने विस्तारित किया है यह श्रेष्ठ यश साधुपुरुषोंके लिये कर्णामृत और श्रेष्ठ तीर्थस्वरूप है। केवल एक बार

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः ॥ भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९ ॥ कर्माण्यपरिमेयानि मनसाऽपि सुरेश्वरैः ॥ सहसंकर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥ ६० ॥ कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः ॥ ६१ ॥ यस्मिन् सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत ॥ श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥ भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः ॥ श्लाघनीयेहितः शश्वत् कुरुसृञ्जय पाण्डुभिः ॥ ६३ ॥ स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ॥ नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥ ६४ ॥ यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण भ्राजत्कपोलसुभगं सुविलासहासम् ॥ नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥ ६५ ॥

कर्णरूप अञ्जलिसे पान करनेपर पुरुष कर्म वासनाके त्याग देनेको समर्थ होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसलिये भोज, वृष्णि, अंधक, मधु, शूरसेन, दाशार्ह, कुरु, सृञ्जय और श्रेष्ठ पाण्डुवंशीय सब मनुष्यगण भगवान्‌के चरित्रकी बड़ाई किया करते हैं॥६३॥ उन्हीं भगवान्‌ने सुन्दर मनोहर मुसकान, दर्शन, उदारवचन, विक्रमलीला और रमणीक मूर्तिके द्वारा सब मनुष्यलोकको प्रमुदित किया था ॥ ६४ ॥ मकराकार-कुण्डल, मनोहर कर्ण, चमकते-दमकते हुए कपोल, इन सबसे श्रीभगवान्‌का वदन अनुपम शोभायमान था, विलासयुक्त मुसकान मानो उसमें लगी हुई थी, इसलिये मानो सदा ही उत्सव होता था, उस वदनको दृष्टिके द्वारा पान करके नर नारी परितृप्त नहीं हुए अर्थात्

भा० न०
॥७४॥

वह सब आनंदित तो हुए थे परन्तु नेत्रोंको वारंवार पलक मारनेको न सहकर निमेषके बनानेवाले राजा निमिके ऊपर वारंवार कोप करते थे ॥ ६९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने अपने रूपसे जन्म ग्रहण किया, उसके पीछे मनुष्याकार हो पिताजीके घरसे व्रजको चले गये। वहांपर शत्रुओं का नाश कर व्रजवासियोंका अभिलाष पूर्ण कर धन सम्पत्तिको बढ़ाया। फिर बहुतसी सुन्दरियोंसे विवाह कर उनसे सहस्रों पुत्र उत्पन्न किये, फिर लोकसमाजमें स्वकृत वेदमार्गका विस्तार करके

जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः ॥ उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥ ६६ ॥ पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन् कुरूणामन्तस्समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ॥ दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७ ॥ इति श्रीमद्भावगते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां नवमस्कन्धे श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशविदर्भान्वयानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ समाप्तोऽयं नवमस्स्कन्धः ॥

अनेक यज्ञोंको कर आपने अपनी ही पूजा की ॥ ६६ ॥ फिर इन्होंने कौरव और पाण्डवोंमें द्वेष उत्पन्न कर पृथ्वीका भारी भार उतार दिया और दृष्टिसे ही युद्धभूमिमें खड़े हुए राजाओंको कम्पायमान कर दिया। फिर जब अर्जुनने रणमें जय पायी तब उसकी कीर्तिका विकास कर उद्धवजीके परमतत्त्वका उपदेश किया और अन्तसमय अपने उसी स्वरूपसे परम धामको चले गये ॥ ६७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां विदर्भवंशवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कन्धः समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धपूर्वार्द्धः प्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

दशमस्कंध पूर्वार्ध
कंस
देवकी
महामाया
देवकी
कंस
यशोदा
बकासुर
गोवर्धन
वस्त्रहरण
यज्ञपत्नी

अंबिका
गोप
रासक्रीडा
धनुर्भंगः
कुवलयापीड
अरिष्टासुर
कृ.
मु
चा.
कृ.
कं
कृ.
केशी
गोप्य
अक्रूरः
गोप्य
गोप्य
उद्धव
पांडवाः
अक्रूरः

सवैया–जाकी कृपा शुक ज्ञानी भये, अतिदीन औ ध्यानी भये त्रिपुरारी ॥ जाकी कृपा विधि वेद रचे, भये व्यास पुराणनके अधिकारी ॥ जाकी कृपाते त्रिलोकधनी, सुकहावत श्रीव्रजचन्द विहारी ॥ मेरेहू काज करैगी सोई, श्रीकृष्णप्रिया वृषभानुदुलारी ॥१॥ कबित्त–काहूको भरोसो है गणेश शेष शारदाको, काहूको भरोसो कालिका मशानीको ॥ काहूको भरोसो उमा रमा सिया लक्ष्मीको, काहूको भरोसो महादेव ब्रह्मज्ञानीको ॥ काहूको भरोसो गङ्ग यमुना हनुमानजीको, काहूकोभरोसो सिंहवाहिनी भवानीको ॥ तनसे और मन से कहै बार बार शालिग्राम,मोको तो भरोसो एक राधा महारानीको॥१॥दोहा–हे मुकुन्द गोविन्द हरि, नन्दनंदन घनश्याम । चरण शरण मोहिं राखिये, कृपासिंधु सुखधाम ॥ पूरण दशमस्कंधमें कियो कृष्णयशगान ॥ सो नब्बे अध्यायकरि, कीन्हचो सकल बखान ॥२॥ तहां प्रथम अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ॥ राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥१॥ यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ॥ तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥२॥ अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः ॥ कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥

में, कंस आपनो काल । सुन देवकिसंभूत तब, हने तासु षट बाल ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि, हे दीनदयालु ! आपने प्रथम नवमस्कन्धमें चन्द्रवंश और सूर्यवंशमें जो-जो नामी राजा हुए उन दोनों वंशोंके सब राजाओंका अति विचित्र चरित्र विस्तारसहित वर्णन किया ॥१॥ हे मुनिवर ! धर्मशील महाराज यदुका वंश भी विस्तारपूर्वक आपने अच्छी रीतिसे कहा, परन्तु अब दया करके वह कथा कहो, जो महाराज यदुके वंशमें बलरामजीके साथ परिपूर्णरूपसे अवतार धारण करके संसारके सुख देनेको जो-जो अद्भुत लीलायें भगवान् वासुदेवने कीं, उनको विस्तार सहित हमारे सामने वर्णन कीजिये ॥२॥ सब प्राणियोंके प्रतिपालक भगवान् भूतभावनने

---

* शंका–सूर्यवंशसे चंद्रवंश हुआ है और राजा परीक्षितके प्रश्नवाले श्लोकमें प्रथम सोमवंशका नाम है, सो पीछे सूर्यवंश क्यों वर्णन किया ? सूर्यवंश तो प्रथम वर्णन करना चाहिये यह बड़े संदेह की बात है, प्रथम वाले को पीछे वर्णन करना और पीछे वालेको प्रथम इसका क्या कारण है ? वहां कोई छन्दोभङ्गभी नहीं तो आगे पीछे छन्दभ्रष्ट हो जानेके कारण लिख दिया ।

उत्तर ––राजा परीक्षितने चंद्रवंशमें श्रीकृष्णका जन्म सुनकर और अपने भी कुलका सम्मान करने के लिये श्लोकमें प्रथम चन्द्रमाका कीर्तन किया ।

यदुकुलमें जन्म लेकर जो-जो आश्चर्ययुक्त चरित्र किये वह भी सब यथावत् हमारे आगे कथन करो ॥३॥ इस संसारमें तीन प्रकारके पुरुष हैं—एक तो ज्ञानी, दूसरे मुमुक्षु, तीसरे विषयी। इन तीनों प्रकारके मनुष्योंको उत्तमश्लोक भगवान्के चरित्र परम प्रिय हैं, वे दिन रात उनको गाते रहते हैं और ज्ञानी लोगोंको परमेश्वरके चरित्र सुननेसे संसारकी सब वासना छूटनेका उत्तम उपाय दिखाई देता है और जिन मुमुक्षु जनोंको मोक्षकी इच्छा है ऐसे नारद, उद्धवादिकोंको संसाररूपी रोगोंके दूर करनेको सजीवन मूल औषध है और विषयमें जिनका मन है ऐसे मनुष्योंके मनको और कानोंको परमानन्दका देनेवाला यही विषय है, सिवाय आत्मघातीके और पशुघातीके ऐसा कौनसा मनुष्य है जो परमेश्वरके गुणानुवादको सुनकर आनन्दित न होगा ? ॥४॥ चाहे कुछ हो, परन्तु हमको तो वृन्दावन विहारी भक्त हितकारीका गुण दिन-रात गाना और उनके उत्तम-उत्तम चरित्रोंकी कथा नित्यप्रति सुननी है, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र तो हमारे कुलपूज्य ही थे, संग्राममें

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ॥ क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहा मे समरे ऽमरञ्जयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ॥ दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥५॥ द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ॥ जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥

देवताओंको भी पराजित करनेवाले पितामह भीष्म और दुर्योधन आदि महारथीरूप जिसमें वड़वानल, सौबल और दुःशासनरूप महा गम्भीर नीर, जो भारी भीड़ वीर योद्धाओंकी जहां-तहां घूम रही थी, वही उसमें तरंगें, शल्य, द्रोण, कर्ण आदि महारथीरूप ग्राह थे, मर्यादारूप राजाओंकी कतार थी, उस कौरवरूपी अत्यन्त गम्भीर समुद्रने जो द्रौपदीका चीर हरा वही उस समुद्रका विस्तार था, ऐसे दुस्तर महासागरको मेरे पितामह युधिष्ठिर आदिकोंने भक्तिरूप नौकाका आश्रय लेकर बछड़ेके खुरके सदृश समझकर बेखटके पार उतर गये ॥ ५ ॥ इतनाही मत समझना कि भगवान्ने कृष्ण अवतार केवल पाण्डवोंकी सहायता के लिये धारण किया था, मेरे भी प्राणोंकी रक्षा श्रीकृष्णजीने ही की थी। कौरव और पाण्डवोंकी सन्तानका बीजरूप जो मेरा यह देह अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे दग्ध होनेको था उसी समय मेरी

माता उत्तराने महादुःखी हो श्रीकृष्णकी शरण ली, तब उत्तराको दुःखी जानकर भगवान्‌ने चक्र ग्रहण कर मेरी माताकी कुक्षिमें प्रवेश करके मेरे तनकी रक्षा की है ॥ ६ ॥ हे विद्वन्! सब जगत‌के प्रकाश करनेवाले प्राणियोंमें परमपुरुष कालरूप, संसारको मोक्ष देनेवाले और उसी रूपसे दुरात्मा लोगोंको मृत्युके देनेवाले, जिन्होंने भक्तोंके ऊपर दया करके नर शरीर धारण किया, उन श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला हमारे आगे कहो, हमको उनके पराक्रमोंके सुननेकी बड़ी लालसा है ॥७॥ बलदेव संकर्षणको आपने पहले तो देवकीका पुत्र कहा था, अब दूसरी बार रोहिणीका पुत्र कहा, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि दो माताओंसे एक पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ ?॥८॥ भक्तभावन भगवान् अपने माता-पिता वसुदेव देवकीको छोड़कर व्रजमें नन्द यशोदाके घर क्यों गये? और भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी जातिवालोंको

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ॥ प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ॥ देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ॥ क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान् सात्वतांपतिः ॥ ९ ॥ व्रजे वसन् किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ॥ भ्रातरं चावधीत् कंसं मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥ १० ॥ देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ॥ यदुपुर्यां सहावात्सीत् पत्न्यः कत्यभवन् प्रभोः ॥ ११ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ॥ वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२ ॥

संग लेकर कहां निवास किया ? ॥ ९ ॥ गोप सखाओंके संग नन्दकुमार भगवान्‌ने व्रजमें नन्द यशोदाके घर रहकर कौन-कौनसे उदार चरित्र किये ? और मथुरामें जाकर अपने मामा कंसको अपने हाथसे कैसे मारा ! मामाको मारना किसी प्रकार योग्य नहीं, फिर उसका वध क्यों किया ? ॥१०॥ हे प्रभो! मनुष्य देह धारण करके भगवान् वासुदेवने यादवोंके साथ मथुरापुरीमें कितने दिन तक वास किया ? और श्रीकृष्ण महाराजकी कितनी स्त्रियां थीं ? ॥ ११ ॥ हे सर्वज्ञ ! जो-जो प्रथम मैंने आपसे पूछा उसके सिवाय और जो कुछ चरित्र मेरे पूछनेसे शेष रह गये हैं उन सबको मेरे सामने वर्णन करिये, क्योंकि मेरा चित्त श्रीकृष्णके गुणानुवादके सुननेको अधिक

चाहता है और इस विषयमें मेरी बड़ी श्रद्धा है ॥१२॥ हे मुनिवर ! यद्यपि यह क्षुधा पियास जगत्में परम दुःसह है तो भी वे मुझे दुःख नहीं दे सकतीं, क्योंकि आपके मुखारविन्दसे जो भगवान्की अमृतरूपी कथाका अमृत टपकता है, उसको पीता हूँ उसके पीनेसे मुझको भूख-प्यासकी कुछ बाधा नहीं होती ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि हे भृगुनन्दन शौनकजी ! इस प्रकार भागवतोंमें मुख्य श्रीशुकदेवजी महाराजने यह उत्तम प्रश्न सुनकर राजा परीक्षित्की प्रशंसा करके कलियुगके पापोंके नाश करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र कहना आरंभ किया ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजऋषियोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! आपकी बुद्धिने अच्छा निश्चय किया है कि जिस बुद्धिसे आपकी कृष्णकथामें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रीति हुई है ॥ १५ ॥ भगवान् वासुदेवकी कथा तीन जनोंको पवित्र करती है श्रोताको, वक्ताको

नैषातिदुस्सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ॥ पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम्॥प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥१४॥ श्रीशुक उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ॥ वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥ १५ ॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि ॥ वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄँस्तत्पादसलिलं यथा ॥१६॥ भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ॥ आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥ गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ॥ उपस्थिताऽन्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥ १८ ॥ ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ॥ जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥

और प्रश्नकर्ताको, जैसे श्रीगङ्गाजीका जल तीन जनोंको पावन करता है । दर्शन, स्पर्श, और पान करनेवाले अथवा पुरोहितको, यजमानको और ग्रहण करनेवालेको ॥ १६ ॥ हे राजन् ! अभिमानी राजा जिनका सदा दैत्योंकासा स्वभाव उनकी अधिक सेनाओंके भारसे पृथ्वी अत्यन्त दुःखी होकर गायका रूप धर ब्रह्माजीके निकट गयी ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शरीर जिसका क्षीण, मन मलिन, जिनको देखकर सबके मनमें दया उपजे, इस प्रकार रांभती-डकराती हुई ब्रह्माजीके समीप जाकर खड़ी हुई और अपना सब दुःख उनसे कहा ॥१८॥ ब्रह्माजी पृथ्वीका दुःख सुनकर सब देवताओंको और शिवजीको अपने संग लेकर क्षीरसागरके समीप गये, जहां विष्णु भगवान्

शेषशय्यापर शयन कर रहे थे ॥ १९ ॥ वहां जाकर ध्यानपूर्वक जगदीश्वर भगवान् अर्थियोंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले देवोंके देव विष्णु भगवान्‌की पुरुष सूक्तके इन षोडश "सहस्रशीर्षा पुरुषः" मंत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ ॥ २० ॥ समाधिमें ही ब्रह्माजीको आकाश-वाणी हुई, उस वाणीको सुनकर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि हे देवताओ ! मुझको श्रीनारायणकी आज्ञा हुई है, उसको तुम सब लोग सुनो और सुनकर विलम्ब मत करो, शीघ्र वैसे ही करो ॥ २१ ॥ हमारी प्रार्थनासे पहले ही भगवान् इस पृथ्वीका दुःख दूर करनेका विचार कर लिया है अब जबतक सर्वदेवपति भगवान् अपनी कालशक्तिसे वसुंधराका भार उतारनेके लिये धरणीपर मनुज अवतार धारण न करें, तबतक तुम सब अपने-अपने अंशोंसे यदुकुलमें जाकर जन्म लो ॥ २२ ॥ वसुदेव देवकीके भवनमें साक्षात् आदि पुरुष

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥ पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥ गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ॥ गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥ २१ ॥ पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ॥ स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥ वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान् पुरुषः परः ॥ जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलाऽनन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ॥ अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥ विष्णोर्माया भवगती यया संमोहितं जगत् ॥ आदिष्टा प्रभुणांऽशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्यामरगणान् प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥

भगवान् आकर प्रकट होंगे । उनके संग विहार करनेके लिये और अपने हितके लिये देवपत्नी भी ब्रजमें जन्म धारण करें ॥ २३ ॥ और सहस्र मुखवाले स्वयंप्रकाश विष्णु भगवान्‌की अनन्त कलासे शेषनागजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रके साथ लीला करनेके लिये बलभद्रनामसे प्रथम ही वसुदेवजीके घर जन्म धारण करेंगे ॥ २४ ॥ फिर देवकीके गर्भको खींचनेके लिये और यशोदाको मोह करानेके लिये सब संसारके मनको मोहनेवाली परमेश्वरकी माया भी भगवान्‌की आज्ञाको मानकर अपने अंशों सहित यशोदाके भवनमें उत्पन्न होगी ॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने देवताओंको आज्ञा दी और पृथ्वीको समझा-बुझाकर आप

अपने ब्रह्मलोकको चले गये ॥२६॥ यदुपति शूरसेन पहले मथुरा पुरीमें वसता हुआ माथुर शूरसेन आदि देशोंको भोगता रहा ॥ २७ ॥ यह मथुरापुरी सदासे यदुवंशियोंकी राजधानी थी और इसी मथुरापुरीमें श्रीकृष्णभगवान् सदा विराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥ कंसकी अनीतिसे उग्रसेन अत्यन्त दुःखी रहते थे और उग्रसेनका भ्राता जो देवक था उसकी कन्या देवकी जब विवाहके योग्य हुई तब उसने उग्रसेन और कंससे पूछा कि इस लड़कीका विवाह किसके साथ करें? कंस बोला—आजकल यदुवंशियों में शूरसेन बड़ा तेजस्वी और प्रतापी राजा है, उनके पुत्र वसुदेवके साथ इसका विवाह कर दो तो अच्छा है। देवकने उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाकर शुभ लग्न निश्चित कर राजा शूरसेनके घर टीका भेज दिया। शूरसेन बड़ी धूमधामसे बारात सजाकर सब देशके नरेशोंको संग ले सब यदुवंशी मिल मथुरापुरीमें वसुदेव-

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम् ॥ माथुरान् शूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥ राजधानी ततः साऽभूत् सर्वयादवभूभुजाम् ॥ मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ॥ देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ रश्मीन् हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥ चतुश्शतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ॥ अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥

जीको विवाहनेके लिये गये। जब बरात मथुराके समीप आयी तब उग्रसेन, देवक और कंस अपनी सेना संग ले आगे आये। आदर-सत्कारसे अगौनी कर बरातको नगरमें लाये और सुन्दर जनवासा दिया। फिर सब जनोंको अच्छे-अच्छे भोजन जिमाया और वेद विधिसे देवकने वसुदेवको कन्यादान दिया और बरातको बिदा किया। शूरसेनका पुत्र वसुदेव अपनी विवाहिता स्त्री देवकीके साथ अपने घर जानेको रथपर बैठे ॥ २९ ॥ और उग्रसेनका पुत्र कंस अपनी भगिनी देवकीके प्रसन्न करनेके लिये घोड़ोंकी रस्सी पकड़कर रथ हांकनेको बैठा। उसके संग सैकड़ों रथ रत्नजटित स्वर्णके और भी थे ॥ ३० ॥ अपनी कन्यापर अत्यन्त प्रीति करनेवाले देवकने देवकीको बिदाके समय स्वर्णकी माला और रत्नजटित अम्बारीवाले चार सौ ४०० हाथी, दश सहस्र १०००० घोड़े, अठारह सौ १८०० रथ ॥ ३१ ॥

और शृङ्गार सहित सुन्दर सुकुमारी दो सौ २०० दासी उसकी सेवाके लिये दीं ॥३२॥ दूलह-दुलहनकी यात्राके समय मङ्गलके लिये शङ्ख, भेरी, मृदंग, दुन्दुभी आदि सब बाजे बरातके बजने लगे और उग्रसेन देवक आदि सब बरातके पहुँचानेको सङ्ग चले ॥ ३३॥ जब मथुरासे थोड़ी दूर बाहर बरात निकली और देवकीके रथके घोड़ोंकी बागडोर पकड़े जो कंस हांक रहा था, उस समय कंशको आकाशवाणी हुई, अरे मूर्ख ! जिसको हर्षसहित तू पहुँचाने जाता है इसी देवकीके आठवें गर्भमें तेरे मारनेवाला उत्पन्न होगा॥३४॥इस प्रकार आकाशवाणीको सुन वह अधम पापी भोजवंशियोंके कुलको कलङ्क लगानेवाला कंस बहनके मारनेके लिये उपस्थित हुआ और खड्ग हाथमें ले केश पकड़ देवकीको रथसे नीचे खींच लिया और क्रोधसे दांत चबाचबा होठोंको काट-काट कहने लगा, कि जिस वृक्षको जड़से उखाड़ डाले तो

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते ॥ दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥ शंखतूर्यमृदङ्गांश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् ॥ प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥ पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ॥ अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥ इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ॥ भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥ तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६ ॥ वसुदेव उवाच ॥ श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान् भोजयशस्करः ॥ स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ॥ अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥

फिर उसमें फल-फूल क्यों लगेगा ? इसलिये इसीको न मार डालूँ कि जिससे पुत्र होनेका संशय ही न रह जाय; फिर निर्भय होकर अपना निष्कण्टक राज्य करूँ ॥ ३५ ॥ यह गति देख उस निंदनीय कर्म करनेवाले महामूर्ख निर्लज्ज कंसको बड़े ऐश्वर्यवान् वसुदेवजी स्तुति और युक्तियोंसे और करुणा भरे मधुर वचनोंसे उसको शांत करके बोले कि हे कंस ! तुम बड़े शूरवीर और योद्धाओंमें प्रशंसनीय गुणज्ञ और भोजवंशका सुयश फैलानेवाले हो। देखो इस समय एक तो विवाहका उत्साह, दूसरे यह साध्वी जाति स्त्री अबला, तीसरे तुम्हारी प्यारी बहन, फिर इस बिचारी दीन अबलाको मारना कौन धर्म है ? बली कभी अबला पर हाथ नहीं डालते, क्योंकि स्त्रियोंके मारनेका शास्त्रमें महापाप लिखा है ॥३६॥३७॥ जो मृत्युके भयसे इस बिचारी दीनको मारते हो तो मृत्यु तो किसी प्रकार मिटती ही नहीं, क्योंकि मृत्यु

तो जन्मधारी मनुष्योंके सङ्ग ही लगी रहती है, जिस मनुष्यका जन्म होता है, उसी दिन मृत्यु भी संग जन्मती है और जो अधिक जीवनके लिये इसको मारते हो तो आज अथवा सौ १०० वर्षके अनंतर देहधारीका मरण निःसन्देह होगा ॥ ३८ ॥ और मनुष्यको यदि यह शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना न पड़े, यह कदापि हो नहीं सकता क्योंकि मरण समयमें भी यह प्राणी अपने वशमें नहीं रहता, यहां भी कर्मोंके अनुसार प्रथम दूसरे शरीरको प्राप्त कर लेता है, तब पीछे इस शरीरको त्यागता है ॥३९॥ जैसे चलनेके समय मनुष्य अपना अगला पांव सँभालकर रख लेता है, तब पिछले पांवको उठाता है, जैसे जोंक चलते समय पहले अगले तृणको पकड़ लेती है तब पिछले तृणको छोड़ती है, ऐसे ही यह देही जिसमें अनेक प्रकारसे संस्कार लग रहे हैं जीवात्मा दूसरे शरीरको प्रथम ग्रहण कर लेता है, पीछे पिछली देहको छोड़ता है ॥ ४० ॥ स्वप्नमें मनुष्य जैसे देखे हुए और सुने हुए देह जिसमें

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ॥ देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९ ॥ व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ॥ यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥ ४० ॥ स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथे नाभिनिविष्टचेतनः ॥ दृष्टश्रुताभ्यां मनसाऽनुचिन्तयन् प्रपद्यते तत् किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥ यतो यतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ॥ गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२ ॥

अनेक प्रकारसे संस्कार लग रहे हैं और मन उनके वशमें वह मन उसीमें वस देहका चिन्तन करता रहता है और वह मनुष्य स्वप्नमें भी वैसा नहीं देखता है और उसी देहको अपनी समझकर कहता है 'मैं हूँ,' यह मेरा देह दुःखी है, ऐसे अपने आपको राजा और इन्द्रादिकके समान मानकर अभिमान करता है और जाग्रत् देहकी सम्पूर्ण स्मृति भूल जाता है, फिर उसी संस्कार वाले मनसे मनोरथ करते-करते देहको भूलकर जाग्रत्में भी उसी प्रकारके मनोरथ देहको देखता है और थोड़ी देरमें कहने लगता है 'यह मैं हूँ' यह शरीर मेरा है, ऐसा मानता है और स्वप्नके देहकी स्मृति कुछ भी नहीं रहती इसी प्रकार कर्मोके अधीन होकर पूर्व देहको छोड़ देता है और वैसा ही और देह प्राप्त कर लेता है ॥४१॥ फलके देनेवाले कर्मोंसे प्रेरित विकारोंसे भरा हुआ जो मन है,वह माया रचित पञ्चमहाभूतोंके बने हुए मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादिक

जो शरीर हैं; जिस जिसकी ओरको दौड़ता है और अभिमानको बाँधता है उसी उस शरीरमें जीवको संग लेकर जन्म लेता है। यह मन ही सब बातका कर्ता हर्ता ठहरा तो मनको ही जन्म लेना चाहिये परंतु अकर्ता आत्मा क्यों जन्मता है ? आत्मा उस मनको यह करके मानता है कि 'मैं हूँ' इस कारण आत्मा उस मनके साथ जन्म लेता है ॥४२॥ जैसे सूर्य चन्द्रमादिकोंका ज्योतिर्मय पदार्थ जलके भरे घटादिक पात्रोंमें प्रतिबिम्बरूप होकर पवनके वेगसे कम्पायमान प्रतीत होते हैं, ऐसे ही पुरुष अपनी अविद्या रचित देह में रोगके कारण प्रविष्ट आत्माभिमान करके मोहको प्राप्त होता है, आत्मामें देहादिककी भ्रान्ति होनेसे जैसे सूक्ष्म और स्थूल देहादिकके धर्म आत्मामें दिखाई देते हैं, वैसे ही देहादिकमें आत्माकी भ्रांति होनेसे प्रेमपात्रत्व आदि आत्माके धर्म देहादिकमें दिखाई देते हैं इसलिये इंद्र और गर्दभादिके तनुमें प्रीति समान होनेसे मृत्युसे बचनेका प्रयत्न करना वृथा है॥४३॥ इसलिये अपने आत्माका कल्याण करने वाले प्राणि-

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते ॥ एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान् गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥ ४३ ॥ तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत् स तथाविधः ॥ आत्मनः क्षेममन्विच्छन् द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४ ॥ एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ॥ हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः ॥ न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥ ४६ ॥ निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः ॥ प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥

योंको चाहिये कि किसीसे शत्रुभाव न रखें। क्योंकि शत्रुता करने वाले पुरुषोंको दूसरे शत्रु और यमसे भी भय होता है ॥४४॥ इसी लिये हे राजन् ! यह तुम्हारी छोटी बहिन है और अभी बालक है दीन है अबला है, देखो काठकी पुतलीकी नाईं तुम्हारे आगे खड़ी है और तुमको परमेश्वरने दीनहितकारी और स्वजनभयहारी बनाया है, यह मंगलरूपिणी आपके मारने योग्य नहीं है क्योंकि दीनको और पराधीनको मारनेका बड़ा दोष है ॥४५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुवंशी राजा परीक्षित् ! ऐसे प्रिय वचन कहकर वसुदेवजीने साम और भेदसे समझाया, तो भी एक तो आप ही दुष्ट, दूसरे राक्षसोंका साथी, तीसरे आकाशवाणीका भय उस महाक्रूर कंसने वसुदेवजीकी बात एक भी न मानी ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने समझा कि यह हठीला अपनी हठको कभी नहीं छोड़ेगा, ऐसा विचार और देवकीकी

मृत्यु निकट आयी जानकर समय बितानेके लिये अपने मनमें यह विचार किया ॥ ४७ ॥ चतुर लोगोंको उचित है कि जहांतक अपना बल, विद्या, बुद्धि पहुँचे वहांतक मृत्यु दूर करनेका उपाय करें, जब इतने प्रयत्नोंसे भी मृत्युसे न बचे तो फिर पुरुषका कुछ दोष नहीं है ॥ ४८ ॥ इसलिये इस मृत्युरूप कंसको देवकीके जो पुत्र होंगे उनके देनेका वचन देकर किसी प्रकार पहले तो इस दीन देवीके प्राण बचाऊँ । कदाचित् कोई कहे कि पुत्र देके देवकीके प्राण बचाये यह तो बड़ी अनीति है नहीं, समयका टाल देना बड़े चतुरोंका काम है, जब देवकीके पुत्र होगा उस समय देखा जायगा, अभी तो किसी प्रकार यह जीती बचे, न जाने बालकके जन्म होनेसे पहले यह दुष्ट कंस ही मर जाय तो फिर कुछ किसी बातका खटका ही न रहे कदाचित् इसके पुत्र ही न हो और जो पुत्र हो और कंस दया करके

मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ॥ यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥ प्रदाय मृत्यवे पुत्रान् मोचये कृपणामिमाम् ॥'सुता मे यदि जायेरन् मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥४९॥ विपर्ययो वा किं न स्याद् गतिर्धातुर्दुरत्यया ॥ उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥५०॥ अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति॥ एवं हि जन्तोरपिदुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ॥ पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरस्सरम् ॥ ५२ ॥

उसको न मारे तो अवश्य ही मेरा पुत्र कंसको मारेगा और जो यह उलटी बात न हो और कोई कहे कि तुम्हारा पुत्र बालक इस तरुण कंसको कैसे मार सकता है,तो आपही वसुदेवजी अपने वचनका समाधान करते हैं कि विधाताकी गति किसीके जाननेमें नहीं आती, जो प्राणी मरनेके योग्य हैं वे नहीं मरते हैं और जो मरने के योग्य नहीं वे मर जाते हैं ॥ ४९ ॥५०॥ देखो जब वनमें आग लगती है तो जो वृक्ष जलने वाले नहीं वे समीपके बच जाते हैं और जो जलनेवाले दूरके होते हैं वे जल जाते हैं, जैसे गाँवमें अग्निके पासके घर जलनेसे रह जाते है और दूरके जल जाते हैं ❋ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जहांतक अपनी बुद्धि पहुँची वहांतक वसुदेवजीने विचार

* इस बातपर एक मनोहर दृष्टान्त है—एक सेठजी मंदिरमें बैठे हनुमानजीकी पूजा कर रहे थे, उसी नगरमें आग लगी और सैंकड़ों घरोंको फूंकती-फांकती सेठजीके निकट पहुँच गयी, तब तो सब लोगोंने सेठजीसे जाकर कहा कि, आग आपके घरके समीप आ गयी, शीघ्र पूजा छोड़-छाड़कर चलो । कुएँसे पानीके दश बीस घड़े भरकर रखो, जब घरपर आग आ गयी तो पानी कहां ? सेठजी बोले कि जिसकी हम पूजा

करके बड़े प्यारसे कंसका आदर-सत्कार किया ॥५१॥५२॥ कंसको विश्वास दिखानेके लिये वसुदेवजी लोकरीतिके सदृश प्रफुल्लित मुख कमलसे महाक्रूर निर्लज्ज कंसके सामने मुसकाकर बोले, परंतु मन तो अत्यंत ही दुःखी था ॥ ५३ ॥ वसुदेवजी बोले कि हे सौम्य! जो भय आपके चित्तमें आकाशवाणीने उत्पन्न किया है वह भय तुम किञ्चिन्मात्र भी मत मानो, क्योंकि देवकीसे आपको कुछ भय ही नहीं

प्रसन्न वदनाम्भोजं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साऽऽहाशरीरवाक् ॥ पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ॥ वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद् गृहम् ॥ ५५ ॥ अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ॥ पुत्रान् प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥ कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ॥ अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥

है,इसके पुत्रोंसे कुछ भय है,वह भय मैं आपका दूर किये देता हूँ,जो कि पुत्र इसके होगा उसको मैं उसी समय आपको समर्पण कर दूँगा ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! वसुदेवजीके वचनको सत्य मानकर कंसने अपनी बहिनको मारनेसे छोड़ दिया और वसुदेवजी भी प्रसन्न हो कंसकी बड़ाई करके बरात समेत देवकीको लेकर अपने घर आये ॥ ५५ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवान्‌को पूजने

करते हैं क्या वह आग नहीं बुझा सकता? और वह हमारे घरको नहीं बचा सकता, हमको कुछ प्रयोजन नहीं, जिसका घर होगा वह आप बुझा लेगा, जब उसका नाम पवनपुत्र तो क्या अपने पिताको नहीं समझा सकता? जिसके लिये हम बरसोंसे तनमन लगा रहे हैं, क्या वह एक घड़ीको भी हमारा काम नहीं कर सकता? मुझको पूर्ण विश्वास है कि वह मेरा कार्य सिद्ध करेगा—

कवित—लंकको जरायो और सीताको बचाय दियो, आंच नहीं आई विभीषणके मकानको। लगते ही शक्तिके लखन गिरे पृथ्वी पै, ओषधिको भेजो राम वीर बलवानको ॥ मिली ना सजीवन तो पर्वत उठाय लाये, लखन जिवायो शिरनायो भगवान्‌को। दुष्टनके भक्षक रक्षक हरिभक्तनके, मोको तो भरोसो उन वीर हनुमानको ॥

उसी समय पुरवाई पवनसे पछाहियां पवन हो गयी और सेठजीका घर छोड़कर पवन पीछेको लौटी और सैकड़ों घर फूंक दिये, देखो किस-किसकी आशा थी और कौन-कौनसे घर जल गये। ऐसे ही प्राणियोंके जन्म-मरणका कारण भी विचारमें नहीं आता।

वाली देवकीने समय पाकर आठ पुत्र और एक कन्या एक-एक वर्षके उपरांत उत्पन्न किये। प्रथम कीर्तिमान् पुत्र हुआ, उसको वसुदेवजी बड़े कष्टसे कंसके पास ले गये;क्योंकि मिथ्या बोलनेसे वसुदेवजी बहुत डरते थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ अपने वचनोंका निर्वाह करनेवाले पुरुष ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका सहन नहीं कर सकते ? देखो वसुदेवजीने अपने पुत्रको अपने हाथसे मृत्युके मुखमें दे दिया। एक परमेश्वरके सिवाय कोई पदार्थ सत्य नहीं है,ऐसे समझनेवाले मनुष्योंको किसी बातकी अभिलाषा नहीं रहती, इसलिये वसुदेवजीने पुत्रके लाड़-प्यारको पहले ही त्याग दिया,क्योंकि विद्वान् पुरुषोंको सिवाय सत्यके और किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं रहती, और वसुदेवजीने यह भी नहीं समझा था कि मैं पुत्रको आप ले जाऊँगा तो दया करके न मारेगा,यह बात वसुदेवजीके मनमें सैकड़ों कोसों तक भी नहीं थी, क्योंकि दुष्ट जन कौनसी बात नहीं कर सकता, कंससे दुष्टके मनमें दया कब आ सकती है,कोई कहे कि पहले-पहल तुरतके जन्मे पुत्रको

किं दुस्सहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ॥ किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ॥ कंसस्तुष्टमना राजन् प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ॥ अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥ ६० ॥ तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः ॥ नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥ ६१ ॥

देवकीने कैसे दे दिया ? देवकीने समझा कि जिसका काल नहीं उसको मारनेवाला कोई नहीं और जो मार भी डाले तो ऐसे पुत्र बहुत होंगे। मेरे सच्चे पुत्र तो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वैकुण्ठविहारी भक्तहितकारी हैं, यह समझ कंसको दे दिया ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! वसुदेवजीकी समता और सत्यता देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे कंस बोला कि ॥ ५९ ॥ इस बालकको अपने घर फेरकर ले जाओ, क्योंकि इससे मुझको कुछ भय नहीं है। तुम्हारे आठवें पुत्र से मेरी मृत्यु निश्चित है ॥ ६० ॥ बहुत अच्छा ! यह कह वसुदेवजी पुत्रको लेकर अपने घरको चल दिये, परन्तु कंसके वचनका कुछ विश्वास नहीं किया, क्योंकि कंस क्षणिकबुद्धि है, उसका मन उसके वशमें नहीं है, अभी फेर दिया है, थोड़ी देरमें फिर मँगा ले। जब यह बात नारदजीने सुनी कि वसुदेवजीका पुत्र कंसने फेर दिया, उसी समय

आकर कंससे कहने लगे ॥ ६१ ॥ व्रजमें नन्दजी आदिसे लेकर जो गोप ग्वाल हैं और वसुदेवजी आदि लेकर वृष्णि यादव और देवकी आदिसे लेकर यादवोंकी स्त्री ॥ ६२ ॥ ये जो तुम्हारे समीपवर्ती हैं, हे कंस ! यह सम्पूर्ण वसुदेवजी और नन्दजीके वंशमें जाति, बन्धु,सुहृद यह सब देवता ही आकर प्रकट हुए हैं॥६३॥पृथ्वीपर जो दैत्यलोगोंका भार बढ़ा है,उसके उद्धारके लिये भगवान्ने अवतार लेनेके लिये यह उपाय रचा है,वह तुम जान लेना,फिर आठ लकीरें पृथ्वीपर खींचकर दिखायीं, इधरसे गिनी तो आठ हुईं और उधरसे गिनी तो आठ हुईं और बीचमेंसे गिनी तो भी आठ ही हुईं, तब नारदजी बोले कि आठवां गर्भ इनमें कौनसा समझना चाहिये ॥६४॥ इस प्रकार समझा-बुझाकर नारदजी तो चले गये, तब कंसने यादवोंको देवता समझकर और देवकीके आठवें गर्भमें विष्णु भगवान् अव-

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ॥ वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ॥ ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत् कंसाय भगवान् शशंसाभ्येत्य नारदः ॥ भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ॥ देवक्या गर्भसंभूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥६५॥ देवकी वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ॥ जातं जातमहन् पुत्रं तयोरजनशङ्कया ॥ ६६ ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन् सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥ आत्मानमिह संजातं जानन् प्राग्विष्णुना हतम् ॥ महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥

तार धारण करके मुझको मारेंगे यह निश्चय समझकर ॥ ६५ ॥ देवकी और वसुदेवको बन्दीघरमें बन्दकर पावोंमें बेड़ी और हाथोंमें हथकड़ी डाल दी और जो-जो इनके पुत्र हुए उन्हें विष्णु भगवान् की शङ्का मान मँगवाकर मारता रहा ॥ ६६ ॥ क्योंकि संसारमें जो अपने प्राणोंकी रक्षा करने वाले अभिमानी, घातकी और लोभी राजा हैं वे माता, पिता, भ्राता और मित्रोंको भी मार डालते हैं ॥ ६७ ॥ कंस यह भी जानता था कि मैं पहले जन्ममें कालनेमि नाम एक बड़ा राक्षस था और विष्णुकी आज्ञासे महावीरजीने मुझको अपने हाथसे मारा था, अब मैं इस जन्ममें कंस हुआ, यही समझकर उसने यादवोंसे वैर किया ॥ ६८ ॥

यदुवंशी, भोजवंशी, अन्धकवंशियोंके राजा उग्रसेन अपने पिताको कारागारमें डालकर महाबली कंस आपही शूरसेन देशका राज्य करने लगा ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णावतारोपक्रमे श्रीकृष्णजन्महेतुवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–इस द्वितीय अध्यायमें, कंस हतन हित देव । गर्भान्तर्गत देवकी, बिनवत विष्णु अभेव ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! प्रलम्बासुर, चाणूर तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुकासुर ॥ १ ॥ असुरोंके राजा बाणासुर और भौमासुरको सङ्ग लेकर मगध देशके राजा जरासन्ध आदि अपने सम्बन्धियों की सहायतासे महाबली कंस यादवों को अत्यन्त दुःख देने लगा ॥ २ ॥ यादवलोग कंसके भयसे दुःखित होकर कुरुदेश, पांचाल, कैकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह, कौशलादि देशमें

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ॥ स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान् महाबलः ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे श्रीकृष्णावतारहेत्वादिनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रलम्ब-बकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥ मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ॥ यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥२॥ ते पीडिता निविविशुः कुरुपाञ्चालकेकयान् ॥ शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोसलानपि ॥ ३ ॥ एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते ॥ हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥ सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ॥ गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥ ५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ॥ यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥

जा जाकर वास करने लगे ॥ ३ ॥ और बहुतसे अक्रूरादिक यादव कंसके आज्ञाकारी बन दिन-रात उसकी सेवा करने लगे । जब कंसने देवकीके छः बालक मार डाले ॥ ४ ॥ तब विष्णु भगवान् की कला शेषजी जिनका नाम कहते हैं, देवकीके गर्भमें स्थित हुए, यह गर्भ देवकीको हर्ष और शोकका बढ़ानेवाला हुआ, क्योंकि आनन्दरूप भगवान्का अवतार होगा, इस बातका तो हर्ष और पहलेके बालकोंके समान इस बालकको भी कंस मार डालेगा इस बातका शोक दिन-रात रहता था ॥ ५ ॥ तब विश्वभावन भगवान्ने जाना कि मेरे प्रिय यादवोंको कंस बहुत दुःख देता है उस समय अपने नेत्रोंसे योगमायाको प्रकट करके उसको आज्ञा दी ॥ ६ ॥

हे भद्रे ! हे देवि ! हे कल्याणरूपिणि ! जो ग्वाल और गौओंसे शोभित ब्रजभूमि है, तू वहां जाकर वसुदेवजीकी स्त्री रोहिणी नन्दराय जीके घर गोकुलमें है ॥ ७ ॥ और दूसरी वसुदेवजीकी स्त्रियाँ कंसके भयसे गुप्तस्थानमें वास करती हैं और देवकीके उदरमें मेरी कलारूप शेषनागजीने प्रवेश किये हैं, उनको वहांसे निकालकर रोहिणीके उदरमें पहुँचा दे, परंतु इस बातको कोई दूसरा न जाने और सब लोग तेरा यश बखान करें॥८॥हे मङ्गलरूपिणि ! जब तू गर्भको खींचेगी तो पीछे मैं परिपूर्ण रूपसे देवकीके पुत्रभावको प्राप्त हूँगा और तू नन्दराय जीकी भार्या यशोदाके उदरमें उत्पन्न हो॥९॥हे कल्याणि ! तू पुत्रादिकोंकी कामना करनेवाले मनुष्योंकी सब मनःकामना पूर्ण करनेवाली है और सब संसारके मनुष्य धूप, दीप, फल, फूलादि सामग्री और बलिदान भेंटकर कलियुगमें तेरा पूजन करेंगे और तू उनके सम्पूर्ण

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ॥ रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ॥ अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥७॥ देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥८॥ अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ॥ प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥ अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ॥ धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥ नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ॥ दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११ ॥ कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ॥ माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥१२॥ गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि॥ रामेति लोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥१३॥ श्रीशुक उवाच ॥ संदिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ॥ प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाऽकरोत् ॥ १४ ॥

मनोरथ पूर्ण करेगी ॥१०॥ पृथ्वीपर मनुष्य तेरे स्थान, भवन और सुन्दर-सुन्दर मंदिर बनायेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी ॥ ११ ॥ कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका इत्यादि नाम धरेंगे ॥ १२ ॥ गर्भके खींचनेसे संसारके लोग उस बालकका नाम 'सङ्कर्षण' कहेंगे और जगतको रमानेवाले होंगे, अतः उनको 'राम' कहेंगे और महाबलशाली होनेसे उनको 'बलभद्र' कहेंगे। ॥ १३ ॥ इस प्रकार भगवान्की आज्ञा पाते ही उनकी परिक्रमा दे, वचनोंको स्वीकार करके पृथ्वीपर आकर वही कार्य किया और मोहिनी रूप बन मथुरामें वसुदेवके घर आयी और जो गर्भ छिपाकर लायी थी वह रोहिणीके उदरमें

प्रविष्ट किया और सब गोकुलवासियोंने यही जाना कि पहला ही आधान है, योगमायाका भेद किसीको प्रकट न हुआ जब पूरे दिन हुए तो श्रावण शुदी चौदस बुधवारको बलदेवजीने गोकुलमें जन्म लिया और योगमायाने वसुदेव देवकीको स्वप्न दिया कि मैंने तुम्हारे पुत्रको ले जाकर राहिणीको दे दिया है। अब तुम किसी बातकी चिन्ता मत करना। यह बात सुनते ही अचानक वसुदेव देवकी चौंककर सोतेसे जाग उठे और देवकी अपने पतिसे कहने लगी कि यह काम तो भगवान्ने बहुत अच्छा कर दिया, परन्तु कंसको इसी समय जाकर जता देना चाहिये, न जाने कि पीछे वह दुष्ट क्या उपद्रव मचाये? यह सोच समझकर रखवालोंको बुला सब वृत्तान्त कह दिया

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ॥ अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥
भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ॥ आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥ १६ ॥

उन्होंने ज्योंका त्यों कंसको जा सुनाया कि हे महाराज! आज देवकीका गर्भ पतित हो गया बालक पूरा नहीं हुआ, यह बात सुनते ही कंस अकुलाकर बोला कि जो कुछ हुआ सो हुआ परन्तु अब आगे तुम आठवें गर्भकी अच्छी चौकसी रखना, क्योंकि मुझको आठवें गर्भका ही बड़ा खटका है ॥ १४ ॥ वह योगमाया देवकीके उदरसे बालकको ले रोहिणीके उदरमें रख आयी, तब सब पुरवासी मनुष्य पुकार-पुकार कर कहने लगे कि अबकी बार कंसने अपनी बहन देवकीको ऐसा धमकाया कि उसका गर्भ अधूरा ही गिर गया, बालक पूरा नहीं होने पाया ❋ ॥१५॥ अपने भक्तोंको अभयदान देनेवाले विश्वात्मा भक्तभावन भगवान् अपने परिपूर्ण रूपसे वसुदेव देवकीके मनमें आकर

* शंका–रोहिणी और वसुदेवजीकी रीति प्रीति कुछ बहुत दिनों से नहीं थी और बलभद्र रोहिणीके गर्भसे जन्मे, तब लोकमें निन्दा और दुर्नामता वसुदेव और रोहिणीकी क्यों नहीं हुई? और जो कोई कहे कि, योगमायाने सब काम किया, वह बात बहुत ठीक है परंतु संसारमें तो भगवान्के चरित्रको कोई नहीं जानता और योगमायाकी बातको तो करोड़ों मनुष्यों में एक दो जानते हैं, फिर संसारके लोगोंके संदेह कैसे दूर हो?

उत्तर–एक समय पुष्करजीके स्नान करनेके लिये सब संसारके मनुष्य गये, तब कंस भी सब यदुवंशियोंको संग लेकर पुष्करजीको गया, कंसके संग वसुदेवजी भी पुष्कर को गये और नंदादिक गोपों की रक्षा सहित रोहिणी भी गयी, वहां सबकी रीति प्रीति सबसे हुई, वसुदेव और रोहिणीकी भेंट कंसके भयसे नहीं हुई, परंतु संसारके सब लोगोंने जान लिया कि, पुष्कर में वसुदेवजीसे रोहिणीकी भेंट हो गई, इसलिये बलदेवजीके जन्मपर कोई भी वसुदेव और रोहिणीकी निंदा नहीं कर सका।

प्रकट हुए ॥ १६ ॥ जब वसुदेवजीके मनमें भगवान् आकर उपस्थित हुए, तब सूर्यके तेजके समान वसुदेवजीमें तेज हो गया, उस समय कोई मनुष्य, तेजके प्रकाशके कारण वसुदेवजीके सन्मुख न आ सके, ऐसा तेजस्वी वसुदेवजी हो गये ॥ १७ ॥ फिर विश्वके कर्ता सर्वात्मा मूर्तिमान् जो कि देवकीके पहलेसे ही विराजमान थे उनको वसुदेवजीने अपने मनसे देवकीके मनमें विराजमान किया, तब देवकीने भगवान्को इस प्रकार अपने मनसे अपने शरीरमें धारण कर लिया, जैसे पूर्वदिशा सर्वसुखदायक चन्द्रमाको परम प्रेमसे अपने हृदयमें धारण करती है ॥ १८॥ जैसे घटके भीतर छिपे हुए दीपका प्रकाश नहीं होता और ज्ञानवंचक पुरुषोंमें छिपी हुई विद्या दूसरे लोगोंको आनन्द नहीं दे सकती वैसे ही सारे जगत्के निवासस्थानरूप भगवान्का निवासस्थान रूप होनेपर भी कंसके कैदखानेमें बंद होनेके

स बिभ्रत् पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ॥ दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥ १७ ॥ ततो जगन्मङ्गल-मच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ॥ दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे ॥ भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥ तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाऽजितान्तरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् ॥ आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ ॥ २० ॥ किमद्य तस्मिन् करणीयमाशु मे यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ॥ स्त्रियाः स्वसुर्गुरु-मत्या वधोऽयं यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥

कारण देवकी अधिक शोभाको प्राप्त नहीं होती थी ॥ १९ ॥ अजित भगवान्के देवकीके उदरमें रहनेसे कुछ-कुछ कांति झलकने लगी, उस कांतिने बन्दीगृहको प्रकाशवान् करदिया और सुन्दर रूपवाली देवकी मन्द-मन्द मुसकाकर वसुदेवजीसे कुछ कह रही थीं, उसी समय वहां कंश आ पहुँचा और गर्भका प्रकाश देखकर कंस अपने मनमें कहने लगा कि मेरे प्राणोंका हरने वाला हरिरूप सिंह निश्चय इसी उदररूप यमगुफामें आकर बैठा है, क्योंकि पहले इस देवकीका इतना तेज नहीं था ॥ २० ॥ फिर तो कंस अपने मनमें अनेक प्रकारके विचार करने लगा कि अब मैं शीघ्र इसके लिये क्या उपाय करूँ? यह तो देवताओंका कार्य करनेको आ ही पहुँचा, अब सब प्रकारसे

मुझको निश्चय होता है कि यह अवश्य मुझको मारेगा, अब जो इस समय देवकीको मैं मारता हूँ तो संसारमें बड़ा अपशय होगा, क्योंकि एक तो स्त्रीकी जाति,दूसरे मेरी बहिन और उसपर भी फिर गर्भिणी,जो मैंने इसको मार डाला तो सब संसारमें मेरी अपकीर्ति होगी, दूसरे लक्ष्मी और आयुका नाश हो जायगा क्योंकि महात्माओंके मुखसे मैंने ऐसा सुना है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य संसारमें दुष्टता करता है, वह जीते जी ही मृतकके समान है और उसके सम्मुख ही लोग बुरा कहते हैं और बारम्बार धिक्कार देते हैं, निश्चय वह मनुष्य घोर नरकमें जाता है ॥२२॥ भगवान् वासुदेवसे वैर बांधकर पापरूप कंस आप मरनेको समर्थ (स्वतंत्र) था तो भी इस घोरतमभावसे आप ही निवृत्त हो भगवान्के जन्मकी बाट देखने लगा ॥ २३ ॥ जब बैठते-उठते, सोते-जागते, भोजन करते और पृथ्वी पर विचरते, इंद्रियोंके

स एष जीवन् खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन ॥ देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥२२॥ इति घोरतमाद्भावात् संनिवृत्तः स्वयं प्रभुः ॥ आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥२३॥ आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीम् ॥ चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ॥ देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ २५ ॥ सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ॥ सत्यस्य सत्यं ऋतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥ एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ॥ सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥

ईश्वर भगवान्की ही चिन्तामें रहता था और सब जगत्को भगवत् रूप ही देखता था ॥ २४ ॥ इतनेमें ब्रह्मा, महादेव, नारदादिक मुनि और ऋषियों समेत देवता और गन्धर्व लोग वहां आकर गर्भमें ही सर्व कामनाओंके पूर्ण करनेवाले भगवान् वासुदेवकी मधुर वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ आप सत्यसंकल्प और सत्यपरायण हो, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें पृथ्वी, जल, पवन, तेज, आकाश इन पञ्चभूतोंके कारणरूप हो और पंचभूतोंके विनाश होनेके समय आप ही अवशिष्ट रहते हो, समदृष्टि और मनोहर वाणीप्रवर्तक और ज्ञानियोंके प्रेरणा करनेवाले सत्यरूप आप ही हो, हे नाथ ! हम सब आपकी शरण आये हैं ॥ २६ ॥ यह देह ब्रह्माण्ड रूपी आदि वृक्ष

आपकी मायासे उत्पन्न होकर आपके ही आश्रय रहता है और इसकी रक्षाके लिये आप अनेक रूप धारण करते हैं, इस वृक्षका आधार एक माया है। उसमें दो फल हैं सुख और दुःख। उसकी तीन जड़ हैं—सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण। उनमें चार रस हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। उसमें पांच अंकुर हैं, जिनसे ज्ञान होता है नेत्र, रसना, नाक, कान, त्वचा। उसके छः स्वभाव हैं—क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह, जरा (बुढ़ापा), मृत्यु; उसमें सात प्रकारकी छाल हैं—रक्त, वसा, मेद, मांस, अस्थि, मज्जा, रेत। उसकी आठ शाखायें हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। उसमें नौ खखोडल अर्थात् छिद्र हैंः—नेत्र दो, मुख, कान दो, नाकके दो छेद, उपस्थ और गुदा। उसमें दश पत्ते, हैं, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, और धनञ्जय। उसपर दो पक्षी रहते हैं—जीव और ईश्वर। यह देहरूप वृक्ष है, कभी यह उपजता है, कभी कटता है, ऐसे ही यह देह कभी जन्म लेता है, कभी मरता है ॥२७॥ इस संसारके उत्पत्ति,

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं संनिधानं त्वमनुग्रहश्च ॥ त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥ २८ ॥ बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ॥ सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥ २९ ॥ त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके ॥ त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० ॥

पालन, संहार करनेवाले आपही हो। यह जगत् आपसे भिन्न नहीं है, आपकी मायाके वशीभूत हो जिनके चित्त भूल रहे हैं, वे लोग जगत्को आपसे भिन्न देखते हैं और आपको नानाप्रकारका जानते हैं और जो ज्ञानी पुरुष हैं वे आपको एक ही रूप मानते हैं ॥ २८ ॥ हे प्रभो! एक रूप जो आप हो, ब्रह्मा बनकर जगत्को उत्पन्न करते हो, विष्णु बनकर रक्षा करते हो और शिव बनकर संहार करते हो। सत्त्वगुणसे संयुक्त सत्पुरुषोंको सुख देते हो और अधर्मियोंको दण्ड देनेवाले जो रूप हैं उनके लिये उनको धारण करते हो ॥ २९ ॥ हे कमललोचन! समस्त जीवोंके जीवन आधार आप ही हो, इसीसे आपके विषे ज्ञानी पुरुष समाधि द्वारा चित्तको लगाकर महत् पुरुषोंकी सिद्धकी हुई आपके चरणकमलरूप नौकाके आश्रयसे इस संसाररूप महासागरका अवगाहन करके बछड़ेके खुरके समान

सुखपूर्वक पार उतर जाते हैं ॥ ३० ॥ हे स्वयंप्रकाश ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, वे महाभयंकर दुस्तर संसार समुद्रको पार उतरनेके लिये भजन, भावना और सम्प्रदाय यह जो आपके चरणकमलरूपी नौका हैं, उसको और दूसरे महात्माओंके पार उतरनेको छोड़ गये और आप भी पार उतर गये । प्रभो ! आप अपने भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले हो ॥ ३१ ॥ हे कमलनयन ! जो ज्ञानी पुरुष अपने आपको जीवन्मुक्त मानते हैं, वे आपके चरणारविन्दके विषे भावना नहीं रखते । इसीसे अशुद्ध बुद्धि बने रहते हैं और बड़े-बड़े कष्ट सहकर उच्च पदको प्राप्त होते हैं । वे उच्चपद किसको समझते हैं, कि उत्तम कुलमें जन्म होना और परिश्रम करके शास्त्रोंको पढ़ना, इनको ही उच्चपद जानते

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ॥ भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥ येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ॥ आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥३२॥ तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्धसौहृदाः ॥ त्वयाऽभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥३३॥ सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः ॥ वेदक्रियायोगतपस्समाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४॥

हैं, आपके चरणारविन्दकी भक्तिका निरादर करते हैं फिर पीछे विघ्नोंसे पराभव पाकर नीच योनिमें जन्म लेते हैं । * हे माधव ! जो पुरुष आपके ही चरणोंमें प्रीति रखते हैं और आपके दास कहलाते हैं वे अपने मार्गसे कभी भ्रष्ट नहीं होते अर्थात् इन लोगोंको उन मिथ्याज्ञानियोंकी नाईं किसी प्रकारका विघ्न नहीं होता, वरन् हे प्रभु ! आपके भक्त आपसे रक्षित होनेके कारण निर्भय होकर बड़े-बड़े भारी भयंकर विघ्नोंके माथेपर पाँव धरकर सदा संसारमें घूमते रहते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे प्रभु ! आप विश्वकी रक्षा करनेके समय सब प्राणियोंके पालनेके लियेऔर शुभ कर्मोंके फलदेनेके लिये शुद्ध सत्त्वगुण स्वरूप धारण करते हो । जिस स्वरूपसे ब्रह्मचारी

* कवित्त-वने हैं आचारी कोई धर्मधुरधारी ध्रुव, कोई उपकारी बड़े कोई निर्विकारी हैं । कोई बड़े पंडित विरागसे न खंडित, अनंदित अवनिमें उदंडित विचारी हैं ॥ कोई षट् शास्त्र पढ़े बाद और विवाद बढ़े, कोई कुलकाव्य गढ़े दया मढ़े भारी हैं । छाके नाहि सीके पीके प्रेमरस पीके नीके, कहा किय जीके जीके फीके सुखकारी हैं ।

वेद पाठसे, गृहस्थ कर्मयोगसे, वानप्रस्थ तपस्यासे, संन्यासी समाधिसे, सब अपनी-अपनी प्रीतिसे, आपका पूजन करते हैं। हे प्रभु! यदि आप संसारमें अवतार न लेते तो आपका पूजन बनना भी कठिन था, क्योंकि आपके सुन्दर स्वरूपकी मूर्तिमें भक्तोंका मन लगा रहता है ॥३४॥ हे विधाता! आपका सत्त्वगुण मूर्तिमान् सुन्दर स्वरूप प्रगट न होता तो अज्ञानका नाशक विज्ञान जो आपका प्रेरणा किया हुआ बुद्ध्यादिक गुणोंको प्रकाशित करता है, वह कैसा होता? और आपही सब प्रकारसे उन गुणोंके साक्षी हैं और ऐसे ही इन्द्रियोंके प्रकाशसे आपके स्वरूपका अनुमान होता है, परंतु आपका स्वरूप नेत्रोंके द्वारा प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशमान्! इस विश्वके परिपूर्ण साक्षी आप ही हो और आपके नाम, गुण, कर्म, जन्म वर्णन करनेमें नहीं आते। यद्यपि मन वाणीके द्वारा

सत्त्वं न चेद् धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ॥ गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान् प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥ न नामरूपे गुण जन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ॥ मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥ ३६ ॥ शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ॥ क्रियासुयस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥३७॥ दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ॥ दिष्ट्याऽङ्कितां त्वत्पदकैस्सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ॥ ३८ ॥

आपके स्वरूपका वर्णन नहीं होता, हे प्रभु! तो भी आपके जो भक्तजन हैं, वे ध्यान और उपासनामें आपके मनोहर स्वरूपका साक्षात् दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ हे मंगलरूप! आपके जो मंगलरूप नाम हैं उनको कानोंसे सुनते हैं, जिह्वासे उच्चारण करते हैं और दूसरे मनुष्योंको सुन्दर-सुन्दर आपकी कथा सुनाते हैं; स्मरण करते हैं और पूजनादिक क्रियाओंमें और आपके चरणारविन्दोंमें जिन मनुष्योंका मन लग रहा है फिर संसारमें उनका जन्म-मरण नहीं होता॥३७॥हे ईश! आपके अवतार लेनेसे और आपके चरणारविन्द पृथ्वीपर रखनेसे भूमिका भार सब एक बार ही दूर हो जायेगा, यह बड़े आनन्दकी बात है कि आपके छोटे-छोटे चरणारविन्द पृथ्वीपर जब पड़ेंगे और उनका हम दर्शन करेंगे तो आप अपने वैकुण्ठधामको जानकर पृथ्वी और स्वर्गपर कृपादृष्टि करोगे और उसको हम अपने नेत्रोंसे देखेंगे उस समय

महामङ्गल होगा॥३८॥ हे भगवन् ! आप जो जन्मरहित हो, आपके जन्म लेनेका कारण सिवाय क्रीडा और विनोदके दूसरा और कोई हमारी समझमें नहीं आता । हे नित्यमुक्त ! प्राणियोंका भी जन्म, मरण और पालन केवल आपके स्वरूपको न जाननेसे होता है,यह अविद्या ही जन्म-मरणका मुख्य कारण है ॥ ३९ ॥ हे भक्तवत्सल ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, वाराह, नृसिंह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम, वामनादि रूप धरकर आपने जिस प्रकार त्रिलोकीकी और हम लोगोंकी पहले रक्षा की थी, उसी प्रकार अब सब पृथ्वीका भार उतारो ! हे वैकुण्ठविहारी ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४० ॥ अब सब देवकीसे कहते हैं कि हे माता ! हमारा कल्याण करनेके लिये

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विनाविनोदं बत तर्कयामहे ॥ भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ॥ त्वं पासि न स्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥ ४० ॥ दिष्ट्याऽम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद् भगवान् भवाय नः ॥ मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥ ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे ब्रह्मादिकृतगर्भगतविष्णुस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

साक्षात् परम् पुरुष भगवान् अपने परिपूर्ण रूपसे तुम्हारी कोखमें आये हैं, यह आनन्द हुआ । हम निश्चितरूपसे कहते हैं कि अब कंसभी इनके ही हाथसे मारा जायगा । तुम किसी प्रकार मत डरो, तुम्हारा पुत्र सब यादववंशकी रक्षा करनेवाला होगा ॥ ४१ ॥ * श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जिसका स्वरूप कहनेमें नहीं आये ऐसे जो परमपुरुष भगवान् हैं, उनकी इस प्रकार यथावत् स्तुति करके ब्रह्माजी और महादेवजीको आगे करके सब देवता स्वर्गको चले गये ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

* कवित्त-फेर देवकीसों सर्व देव जस बोले वैन, आदिपुरुष विश्वात्मा धाम हूं अशोकको । जगको निवास सो निवास्यो तेरी कुक्षिमाहि, त्रास नाशिबेको सब देवनके लोकको ॥ जननि जगतमात धीर धरो धीर धरो कंसकाल आय गयो काम नाहिं शोकको । यदुवंशपाल अरु दुष्टकुलघातक सो, है तुव बालक जो मालिक त्रिलोकको ॥

दोहा-इस तृतीय अध्यायमें, प्रकट भये व्रजचन्द । हरिको ले वसुदेवजी,गै गोकुल गृह नन्द ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दके प्रकट होनेका समय आया वह समय सर्वगुणसम्पन्न परम शोभायमान हो गया और सुधाकर रोहिणी नक्षत्र पर आ गया, एवं शांतियुक्त शुभ ग्रह तारागण हो गये ॥ १ ॥ दशों दिशायें उज्ज्वल हो गयीं, आकाश निर्मल हो गया, समस्त तारागण उज्ज्वल उदित हुए पृथ्वी परममंगलरूपिणी हो गयी । पुर, नगर, ग्राम, व्रज, आकर, वन, वाटिका अत्यन्त रमणीक शोभायमान दृष्टि आने लगे ॥ २ ॥ नदनदियोंका जल स्वच्छ और शीतल हो गया,तालोंमें कमल कमलिनी खिल गये, भ्रमर उन सुन्दर-सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंको सूंघ-सूंघकर उन्मत्तहो गुंजारने लगे, वृक्षोंकी शाखाओंपर पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियाँ बोलने लगे ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥ यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ॥ मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥ नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ॥ द्विजालिकुलसन्नादस्तबका वनराजयः ॥ ३ ॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ॥ अग्नयश्च द्विजातीनां शांतास्तत्र समिन्धत ॥ ४ ॥ मनांस्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ॥ जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥ ५ ॥ जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६ ॥ मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदाऽन्विताः ॥ मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥७॥ निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥

सुखदायक शीतल, मन्द, सुगन्धिसनी पवन बहने लगी, ब्राह्मणोंके होमकी अग्नि शान्त प्रज्वलित हो गयी ॥४॥ सिवाय कंसादिक राक्षसोंके सब महात्माओंके मन प्रसन्न हो गये । स्वर्गमें भगवान्‌के अवतारसूचक दुन्दुभी बजने लगी ॥ ५ ॥ किन्नर-गन्धर्व भगवान्‌का यश गान करने लगे । सिद्ध, चारण स्तुति करने लगे, विद्याधरोंकी स्त्रियाँ और अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥ ६ ॥ मुनि और देवता व्रजपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, समुद्र आनन्दमें भरकर लहरें लेने लगा, मेघ मन्द-मन्द शब्दसे गर्जने लगे, चपला क्षण-क्षणमात्रमें चमकने लगीं ॥ ७ ॥ इस प्रकार भादों वदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्रमें आधी रातके समय देवरूपिणी देवकीकी कोखमें सर्वान्तर्यामी

भक्तभावन भगवान् साक्षात् अपने रूपमें प्रकट हुए जैसे आधीरातके समय पूर्वदिशामें पूर्णमासीका चंद्रमा उदित होता है ॥ ८ ॥ कमलसदृश नेत्रोंवाले, चार भुजा धारण किये, शंख, चक्र, गदा, आयुध उठाये, श्रीवत्सचिह्न धारण किये गलेमें शोभावाली कौस्तुभमणि धारण किये, पीताम्बर धारण किये, सघन श्याम मेघके सदृश ॥९॥ महँगे मूल्यकी वैदूर्यमणिसे जटित मुकुट कुंडलोंकी कांति करके देदीप्यमान केश धारण किये, सुन्दर कांची बाजूबन्द कंकण आदिकों करके शोभायमान, ऐसे अद्भुत बालक श्रीकृष्णको वसुदेवजी देखते भये॥ १०॥ विष्णु भगवान्‌को अपना पुत्र जान आश्चर्यसे वसुदेवजीके नेत्र प्रफुल्लित हो गये और मनमें धैर्य धर उसी समय दश सहस्र गोदानका मान-

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषापरिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ॥ उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥१०॥ सविस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ॥ कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥ अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः ॥ स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥ १२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३ ॥ स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाऽग्रे त्रिगुणात्मकम् ॥ तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४ ॥

सिक संकल्पब्राह्मणोंको देनेके लिये किया ॥ ११ ॥ हे भारत! हे अभिमन्युकुमार! उस बालककी कांतिसे प्रसूतिकागार ऐसा प्रकाशमान हो रहा था कि किंचिन्मात्र भी अन्धकार नहीं रहा। वसुदेवजी पुत्रको परब्रह्म परमात्मा समझकर उनके प्रभावको देख शुद्धि बुद्धिसे हाथ जोड़, शिर झुकाकर, निर्भय होकर उनकी स्तुति करने लगे॥१२॥हे भगवन्! आपको मैंने भलीभांति जाना, आप मायासे परे साक्षात् परम पुरुष हो, केवल अनुभव और आनंद ही आपका स्वरूप है और सम्पूर्ण जनोंकी बुद्धिके द्रष्टा हो ॥ १३ ॥ मैं भलीभांति जानता हूँ कि आप वही हैं, जिन्होंने पहले अपनी मायासे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण रूप यह विश्व रचा है, आप उसमें प्रविष्ट नहीं होते और सद्रूपसे प्रविष्ट सदृश

देखनेमें आते हो ॥ १४ ॥ जैसे महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये सातों पदाथ, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेंद्रिय और ग्यारवां मन, पंच महाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन सोलह विकारोंके संग मिलकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको रचते हैं और पृथक्-पृथक् ब्रह्माण्डके उत्पन्न करनेका सामर्थ्य नहीं रखते ॥१५॥ और उत्पन्न होनेके उपरान्त ब्रह्मांडमें प्रविष्ट होकर जैसे जाननेमें आते हैं, यथार्थ रीतिसे प्रथम कारणरूपसे प्रविष्ट ही थे, इस कारण उत्पन्न हुए कार्यमें उनका पीछेसे प्रवेश होना सम्भव नहीं हो सकता, ऐसे ही आपका प्रवेश पीछेसे सम्भव नहीं ॥ १६ ॥ और ऐसे ही आपके रूप बुद्ध्यादिक इंद्रियोंसे जाननेमें नहीं आते, विषयोंमें अपार हो, परंतु विषयोंके साथ आप ग्रहण करनेमें नहीं आते, जैसे नेत्रोंमें रूप ही देखनेमें आता है, रसका ज्ञान नेत्रोंसे

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ॥ नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥ १५ ॥ सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव ॥ प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः । ॥ १६ ॥ एवं भवान् बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैस्सन्नपि तद्गुणाग्रहः ॥ अनावृतत्वाद्बहिरन्तरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥ य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ॥ विनाऽनुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत् पुमान् ॥ १८ ॥ त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ॥ त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥

किसी प्रकार नहीं हो सकता, ऐसे विषयोंके ग्रहणमें आपका ग्रहण नहीं हो सकता। परिच्छिन्न पक्षीका घोसलेमें प्रवेश होता है, आप अपरिच्छिन्न हैं, इसलिये आपके स्वरूपमें बाहर-भीतरका भेद नहीं है, गर्भमें आप कब रह सकते हैं। आवरण करके रहित हो, सर्वस्वरूप हो, सर्वात्मा हो, सर्वव्यापक हो और परमार्थ वस्तुरूप हो ॥ १७ ॥ आत्माके जो दृश्यगुण देहादिक हैं उनको आत्माके विना जो पुरुष सत्य मानते हैं वह अतिशय अज्ञानी हैं। विचारकर देखो तो कथनमात्र विना देहादिक सब झूठ ही है इसलिये झूठे देहादिकोंको जो पुरुष सत्य मानते हैं वे अज्ञानी हैं ॥१८॥ हे विभो ! निरीह, निर्गुण, निर्विकार आपही हो। आपसे ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार होता है, आप

ही ईश्वर और ब्रह्मस्वरूप हो, इसलिये आपसे कुछ विरोध नहीं है, आपका आश्रय लेकर तीनों गुण ही विश्वको रचते हैं, इसीलिये आपका नाम कर्त्ता है ॥ १९ ॥ आप अपनी मायासे सृष्टिके पालनके लिये सत्त्वगुणी शुक्लवर्ण विष्णुरूप धारण करते हो और जगत्की उत्पत्तिके समय रजोगुणी रक्तवर्ण ब्रह्मादिरूप धारण करते हो और विश्वके संहारके समय तमोगुणी कृष्णवर्ण रुद्ररूप धारण करते हो ॥ २० ॥ हे सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण ! हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! आप इस विश्वका पालन करनेके लिये मेरे घरमें उत्पन्न हुए हो और क्षत्रिय जिनका नाम, ऐसे करोड़ों असुरोंके समूह जहां-तहां चलायमान हो रहे हैं, उनका विध्वंस करोगे ॥ २१ ॥ हे देवेश ! दुष्ट कंसने तुम्हारे जन्मका वृत्तान्त हमारे घरमें सुनकर आपके बहुत भ्राता मार डाले हैं, अभी जो कोई मनुष्य उस दुष्टसे कह देगा कि आपका अवतार हुआ

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ॥ सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥ त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ॥ राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥ अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाऽग्रजांस्ते न्यवधीत् सुरेश्वर ॥ स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ॥ देवकी तमुपाधावत् कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥ २३ ॥ देवक्युवाच ॥ रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ॥ सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥ नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ॥ व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥

तो वह सुनते ही शस्त्र हाथमें लेकर यहां चला आयेगा ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब इस प्रकार वसुदेवजी स्तुति कर चुके तब पीछे देवकी पुत्रमें महापुरुष भगवान्के सब लक्षण जानकर और मधुर मुसकान देख कंसके भयसे धीरे-धीरे पुत्रकी स्तुति करने लगी ॥ २३ ॥ अनादि, व्यापक, ज्योतिस्वरूप, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, दिव्यगुणराशि, निर्विशेष और चेष्टारहित जो तुम हो, यह स्वरूप किसीके जाननेमें नहीं आता। वेद आपके स्वरूपका वर्णन करते हैं, तुम ज्ञानके प्रकाश करनेवाले साक्षात् विष्णु भगवान् हो ॥ २४ ॥ जिस समय ब्रह्माजीकी सौ १०० वर्षकी अवस्था होती है, उस समय प्रलयकालमें सब लोग नष्ट हो जाते हैं। पंचमहाभूत अपनी

अपनी तन्मात्राओंमें मिल जाते हैं और तन्मात्रा प्रधानमें लीन हो जाती हैं, प्रधानके जाननेवाले उस समय केवल एक आपही अजन्मा अवशिष्ट रह जाते हो ॥ २५ ॥ हे मायाप्रेरक ! यह जो काल है इसको अपनी माया वर्णन करती है । इसी कालसे विश्व होता है, पल आदिसे लेके जिसकी वर्षतक गणना है यह परार्द्धरूपसे बड़ा है, ऐसे आप निर्भयरूप हो, मैं आपकी शरणागत हूँ ॥२६॥ हे आदिपुरुष ! सब मनुष्य मृत्युरूपी सर्पके भयसे सब लोकोंमें भागे-भागे फिरते हैं और उनको बैठनेके लिये निर्भय स्थान कहीं नहीं मिलता, जब किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे आपके चरणारविन्दका आश्रय मिल जाता है, तब उस निर्भय स्थानको प्राप्त करके निर्भय होकर सो रहता है, फिर मृत्यु भी उसके निकट नहीं आती; दूरसे दूर भागती है ॥२७॥ महाभयानक स्वरूपवाला उग्रसेनका पुत्र जो कंस है उससे हम अत्यन्त

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ॥ निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन् सर्वांल्लोकान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ॥ त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाऽद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥ स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहासि ॥ रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥ जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ॥ समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ॥ शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥३०॥ विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ॥ बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥ ३१ ॥

भयभीत हैं, उस दुष्टसे आप हमारी रक्षा करो । भक्तोंके भय दूर करनेवाले और जाननेवाले, ध्यान करनेके योग्य आप भगवान् स्वरूप हो, अब आप अपने इस श्याम सुन्दर स्वरूपको चर्मचक्षुवालोंको मत दिखाओ ॥२८॥ हे मधुसूदन ! आपका जन्म जो मेरे यहां हुआ है इस बातको यह पापी कंस न जानने पाये, क्योंकि अधीर चित्तवाली स्त्री जाति जो मैं हूँ, आपके कारण उस कंसके भयसे अत्यन्त भयभीत हूँ ॥२९॥ हे विश्वात्मक ! शंख, चक्र, गदा, पद्मसे शोभायमान जो यह आपका चतुर्भुज और अद्भुत स्वरूप है इसको छिपा लो ॥ ३० ॥ यह जो जगत् प्रत्यक्ष कालमें दृष्टि आता है, प्रलयकालके समय विना परिश्रम ही उस सृष्टिको आप अपने उदरमें

धारण कर लेते हो, आप मेरे गर्भमे प्राप्त हुए हो, यह बड़े हास्यकी बात है ॥ ३१ ॥ यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र मुसकाकर बोले कि अहो मातः! तुमको अपने पूर्वजन्मकी सुध नहीं है, उसे सुनो, स्वायंभुव मन्वन्तरमें पहले तुम्हारा पृश्नि नाम था और वसुदेवजी उस समय पापरहित सुतपा प्रजापति थे ॥ ३२ ॥ तब तुम दोनोंको ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी तब आपने इन्द्रियोंको रोककर बड़ा भारी तप किया ॥३३॥ वर्षा, वायु, धूप, गर्मी, शीत, इन सब कालोंके गुणोंका ग्रहण किया और श्वास रोककर मनके मैलको दूर कर दिया ॥ ३४ ॥ सूखे पत्र और पवनका भोजन करके वर्षोंतक रहे और मुझसे वरदान प्राप्त करनेके मनोरथसे आप दोनों जन शान्तचित्त हो मेरी आराधना करने

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति ॥ तदाऽयं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवां वै ब्रह्मणाऽऽदिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं ते पाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ॥ सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥ शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन च चेतसा ॥ मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषाऽनघे ॥ तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥ प्रादुरासं वरदराड्युवयोः कामदित्सया ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती ॥ न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९ ॥

लगे ॥ ३५ ॥ हे मातः! तुम दोनों जनोंने मुझमें चित्त लगाकर बड़ा भारी तप किया और करते-करते देवताओंके बारह सहस्र वर्ष बीत गये ॥३६॥ हे निष्पाप! जब तुमने तप करनेके समय श्रद्धा भक्तिसे हृदयमें मेरा ध्यान किया उसी समय इस देहसे तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हुआ ॥ ३७ ॥ तुमदोनोंके मनकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये मैं उसी समय इसी शरीरसे आपके सम्मुख आकर प्रकट हुआ और आपसे कहा 'वर मांगो', 'वर मांगो', 'वर मांगो'। तब आपने यह वर मांगा कि हे भगवन्! जो आपके वर देने की इच्छा है और हमपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि आपके समान हमारे पुत्र हो ॥ ३८ ॥ संसार के विषय सुख आपने नहीं भोगे थे और कोई

* 'ब्रह्म' गोकुलमें और 'माया' मथुरामें *

यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ।। मन्मायामानयाशु त्वं यशोदा गर्भसंभवाम् ।।४६।। द. । अ. ३ ।

सन्तान भी नहीं थी, आपने मेरी मायासे मोहित होकर मुक्ति नहीं मांगी ॥ ३९ ॥ उस समय मैंने तुमको मनोवांछित वर दिया कि "तुम्हारे मेरे ही समान पुत्र होगा" तुमको यह वर देकर मैं अन्तर्धान हो गया और अपने मनोरथ प्राप्त करके विषयोंका सुखभोग भोगने लगे ॥४०॥ जब मैंने शील, उदारता आदि गुणोंसे युक्त अपने सदृश दूसरा कोई पुरुष कहीं नहीं देखा; तब पृश्निगर्भ नामसे विख्यात होकर मैं ही आपका पुत्र हुआ ॥४१॥ फिर पीछे दूसरे जन्ममें आप कश्यप और अदिति हुए। वहां भी मैंने उपेन्द्र नामसे आपके ही घर आकर फिर जन्म लिया। हे जननि ! उस अवतारमें मेरा शरीर बहुत छोटा था, इसलिये मेरा नाम वामन विख्यात हुआ ॥४२॥ फिर अब तीसरी

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ॥ ग्राम्यान् भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥४०॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ॥ अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥४१॥ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ॥ उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥ तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाऽथ वाम् ॥ जातो भूयस्तयो-रेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥ एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ॥ नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥ ४४ ॥ युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ॥ चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥४५॥ यदि कंसाद् बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥ ४६ ॥

बार उसी रूपसे आपके घर जन्म लिया है। हे मातः! मेरा वचन सत्य मानो। देखो तुमने एक बार वर मांगा, मैंने तुम्हारे घर तीन बार जन्म लिया॥४३॥पहले जन्मका स्मरण करानेके लिये मैंने तुमको यह रूप दिखाया है, जो और प्रकारसे मनुष्यके बालकका रूप धरकर प्रकट होता तो तुम क्या जानते ? और तुमको कैसे विदित होता कि परमेश्वरने हमारे घर आकर अवतार लिया ॥४४॥ अब आपकी इच्छा है चाहे पुत्र भावसे मेरा सम्मान करो चाहे ईश्वर जानकर मेरा ध्यान करो, मुझसे स्नेह करोगे तो परम गतिको प्राप्त होगे ॥ ४५ ॥ और जो तुमको कंसका यह भय है कि मेरे इस पुत्रको भी वह दुष्ट मार डालेगा, तो तुम मुझको गोकुलमें नन्दरायजीके घर पहुँचा दो और

सन्तान भी नहीं थी, आपने मेरी मायासे मोहित होकर मुक्ति नहीं मांगी ॥ ३९ ॥ उस समय मैंने तुमको मनोवांछित वर दिया कि "तुम्हारे मेरे ही समान पुत्र होगा" तुमको यह वर देकर मैं अन्तर्धान हो गया और अपने मनोरथ प्राप्त करके विषयोंका सुखभोग भोगने लगे ॥४०॥ जब मैंने शील, उदारता आदि गुणोंसे युक्त अपने सदृश दूसरा कोई पुरुष कहीं नहीं देखा; तब पृश्निगर्भ नामसे विख्यात होकर मैं ही आपका पुत्र हुआ ॥४१॥ फिर पीछे दूसरे जन्ममें आप कश्यप और अदिति हुए। वहां भी मैंने उपेन्द्र नामसे आपके ही घर आकर फिर जन्म लिया। हे जननि ! उस अवतारमें मेरा शरीर बहुत छोटा था, इसलिये मेरा नाम वामन विख्यात हुआ ॥४२॥ फिर अब तीसरी

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ॥ ग्राम्यान् भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥४०॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ॥ अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥४१॥ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ॥ उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥ तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाऽथ वाम् ॥ जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥ एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ॥ नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥ ४४ ॥ युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ॥ चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥४५ ॥ यदि कंसाद् बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥ ४६ ॥

बार उसी रूपसे आपके घर जन्म लिया है। हे मातः ! मेरा वचन सत्य मानो। देखो तुमने एक बार वर मांगा, मैंने तुम्हारे घर तीन बार जन्म लिया॥४३॥पहले जन्मका स्मरण करानेके लिये मैंने तुमको यह रूप दिखाया है, जो और प्रकारसे मनुष्यके बालकका रूप धरकर प्रकट होता तो तुम क्या जानते ? और तुमको कैसे विदित होता कि परमेश्वरने हमारे घर आकर अवतार लिया ॥४४॥ अब आपकी इच्छा है चाहे पुत्र भावसे मेरा सम्मान करो चाहे ईश्वर जानकर मेरा ध्यान करो, मुझसे स्नेह करोगे तो परम गतिको प्राप्त होगे ॥ ४५ ॥ और जो तुमको कंसका यह भय है कि मेरे इस पुत्रको भी वह दुष्ट मार डालेगा, तो तुम मुझको गोकुलमें नन्दरायजीके घर पहुँचा दो और

यशोदाके गर्भसे प्रकट हुई जो योगमाया है उसको इसी समय अपने घरको ले आओ ॥ ४६ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह बातें समझा-बुझाकर भगवान् चुप हो गये और अपनी मायासे माता-पिताके देखते साधारण बालक हो गये ॥४७॥भगवत्की प्रेरणासे वसुदेवजीने प्रसूतिकाघरमें से पुत्रको लेकर बाहर निकलनेकी इच्छा की। उसी समय गोकुलमें नन्दरायजीकी स्त्री यशोदाके उदरसे योगमायाने जन्म लिया ॥ ४८ ॥ उस समय योगमायाने सब पुरवासी और द्वारपालोंका ज्ञान हर लिया, उसी समय सब निद्राके वशीभूत हो गये, पांवोंकी बेड़ी गिर पड़ी; जब श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी चले तब द्वारोंके बड़े-बड़े जो किवाड़ थे उनमें जो लोहेकी भारी भारी संकलें पड़ी थीं और ताले लग रहे थे, वह सब आपसे आप खुल गये, जैसे सूर्यनारायणके उदय होनेसे सर्वत्र

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ॥ पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः॥४७॥ ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ॥ यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नन्दजायया ॥ ४८ ॥ तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वास्स्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ॥ द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलश्रृंखलैः ॥ ४९ ॥ ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्तन्त यथा तमो रवेः ॥ ववर्ष पर्जन्य उपांशु गर्जितः शेषोऽन्वगाद् वारि निवारयन् फणैः॥५०॥ मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ॥ भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥ ५१ ॥

अन्धकार दूर हो जाता है, ॥ ४९ ॥ और मन्द-मन्द शब्दसे मेघ गर्ज-गर्ज कर बरसने लगे, आधीरात सायँ-सायँ कर रही थी, अँधेरी झुक रही थी, मार्ग देखनेमें नहीं आता था, कभी-कभी बीच-बीचमें बिजली चमक जाती थी। उसके आश्रयसे धीरे-धीरे चले जाते थे, परन्तु वर्षा इनके ऊपर नहीं होती थी, क्योंकि पीछे-पीछे शेषजी महाराज फणरूप छत्रछायासे जलका निवारण करते थे ॥ ५० ॥ उस समय मेघोंके वर्षनेसे यमुना ऐसी चढ़ रही थी कि कोसोंतक जल ही जल दिखायी देता था। पवनके वेगसे जलमें ऊँची-ऊँची तरंगें उठती थीं और जलके घरघराहटका शब्द दूरतक सुनायी देता था। उस गम्भीर नीरमें महाभयानक सैकड़ों भँवर पड़ते थे, जैसे लङ्काकी चढ़ा-

ईके समय श्रीरामचन्द्र महाराजको समुद्रने मार्ग दिया था, उसी प्रकार यमुनाने वसुदेजीको मार्ग दे दिया ❀ ॥५१॥ जैसे-तैसे कर वसुदेवजी गोकुलमें पहुँचे और नंदजीके द्वारपर जाकर देखा तो किवाड़ खुले पड़े हैं। भीतर घुसकर देखा तो सब नींदमें मतवाले पड़े हैं और यशोदा मायाके मोहसे ऐसी बेसुध पड़ी थी कि उसको कन्याके उत्पन्न होनेका भी ध्यान नहीं था। उसको सोती हुई देखकर वसुदेवजीने श्रीकृष्णको तो यशोदाकी शय्यापर सुला दिया और उसकी कन्याको उठाकर अपनी राह ली। ॥५२॥ और उसी बन्दीगृहमें आकर कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और अपने उसी प्रकार पावोंमें बेड़ी और हाथोंमें हथकड़ी पहन ली और उसी भांति बैठ गये

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान् गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ॥ सुतं यशोदा शयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ ५२ ॥ देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ॥ प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५३ ॥ यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत ॥ न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयाऽपगतस्मृतिः ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे श्रीकृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वसुदेवजीको देख देवकी पूछने लगीं कि स्वामी! कुशलपूर्वक गोकुलमें पहुंचे? पुत्र तो आनंदसे है? वसुदेवजीने कहा सब नारायण की कृपा है ॥ ५३ ॥ उसी समय यहां गोकुलमें नन्दरायके घर यशोदाजीके मनसे जब माया हटी तो जाना कि मेरे प्रसव हुआ, परंतु कुछ परिश्रम और कष्ट न पड़ा, क्योंकि योगमायाने पहले ही स्मृति भुलाकर नींदके वश कर दिया था और यह भी कुछ ज्ञान नहीं रहा कि मेरे पुत्र हुआ या कन्या ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

शंका—श्रीशुकदेवजी मुनिने राजा परीक्षित्‌से कहा कि, श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी जब गोकुलको चले तब जैसे भगवान् रामको समुद्रने सुखसे मार्ग दिया था उसी प्रकार यमुनाने वसुदेवजीको बड़े सुखसे मार्ग दिया, हम बूझते हैं भला किस स्थानपर भगवान् को समुद्रने सुखसे मार्ग दिया? यह बड़ी शंका है, जो कोई कहे कि, लंकाको जानेके समय रामचन्द्रको मार्ग दिया तो वह बात व्यर्थ है क्योंकि रामचन्द्रने बहुत दुःख सहकर समुद्रके शोषनेके लिये अग्निबाण धनुषपर चढ़ाया तो त्रास मानकर आ मिला तो भी रामचन्द्र पुल बांधकर समुद्रके पार गये, सुखसे रामचन्द्रको समुद्रने नहीं जाने दिया।

उत्तर—इस स्थानपर भगवान्‌को सुखसे मार्ग देता है कि जब राजाबलिको दर्शन देनेके लिये वामनजी नित्यप्रति सुतल लोकको जाते हैं तब पातालके जानेका एक मार्ग है, दूसरा और कोई मार्ग नहीं। सो नित्य भगवान् वामनजीको समुद्र सुखकर मार्ग देता है इस वास्ते भगवान् व्यासजीने सुखसे समुद्र को पंथ देनेके लिये कहा॥

दोहा—चौथे चण्डीवचन सुनि, अतिसभीत भयो कंस । मंत्रिन सहित विचार कर, कियो बाल विध्वंस ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! बाहर-भीतर के द्वार उसी प्रकार बन्द हो गये और कन्या रोने लगी तब बालकका रोना सुनकर सब रखवाले सावधान हो तोपें, बंदूकें छोड़ने लगे; हाथी, चिंघाड़ने लगे, सिंह दहाड़ने लगे; भादोंकी अँधेरी झुक रही थी; मेघ बरस रहा था॥१॥सब चौकीदार और द्वारपाल पुकारते हुए उसी समय कंसके पास दौड़ गये और जाते ही देवकीके बालक होनेका समाचार सुनाया, जो कंस उद्विग्न मनसे आठवें गर्भका मार्ग जोह रहा था ॥२॥सुनतेही कंस घबड़ाकर यह कहता उठ खड़ा हुआ, क्या मेरा कालरूप बालक उत्पन्न हो गया। खुले बाल, गिरता, पड़ता, ठोकरें खाता, कांपता हुआ, खड्ग हाथमें ले प्रसूतिका भवनकी ओरको दौड़ता हुआ बहनके पास गया ॥३॥ देवकी कंसको देख दीन होकर करुणा वचन

श्रीशुक उवाच ॥ बहिरन्तः पुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥ ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥ ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ॥ आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २ ॥ स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ॥ सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन् मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥ तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ॥ स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ॥ त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥५॥ नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ॥ दातुमर्हसि मन्दाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम् ॥६॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपगृह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत् ॥ याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥

बोली कि हे भ्राता ! हे कल्याणरूप ! जिसके सुननेसे सबके मनमें अत्यन्त दया उत्पन्न हो रही है यह पुत्र नहीं है, यह देवीरूप कन्या है, इसको मत मार, क्योंकि यह तेरी भानजी है और तुम्हें स्त्री यानी कन्याका वध करना योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ हे भ्राता ! अग्निके समान तेजवाले मेरे सात पुत्र जो तूने मारे हैं, वह ताप मेरे हृदयसे अभी नहीं गया। परंतु उसमें तेरा भी क्या दोष है, दैवने तेरी बुद्धि भी वैसी ही कर दी, अब यह कन्या तो मेरा हृदय ठण्डा करनेको मुझे छोड़ दे ॥५॥ हे सामर्थ्यवान् । तूने बहुत पुत्र मेरे मारे, अब दया कर, मैं तेरी छोटी बहन हूँ, महादीन हूँ, मन्द भागिनी हूँ, यह मेरी अन्तकी पेट-पोछनी कन्या है, इसको तू मुझे अपनी करके दे दे, जिससे मेरा थोड़ा-बहुत धैर्य बँधा रहे ॥६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! देवकी इस प्रकार कंसकी विनती कर कन्याको छातीसे लगाकर अतिदीनकी नाईं

रुदन करने लगी। देवकी दीन तो नहीं थी, क्योंकि मनमें अत्यन्त प्रसन्न थी कि मेरा पुत्र तो और स्थान पर पहुँच ही गया और यह कन्या योगमाया है, यह इस दुष्टसे किसी प्रकार मर ही नहीं सकती, तो भी देवकीके हाथसे उस दुष्टने कन्याको छीन ही लिया। देवकीने नम्र होकर बहुतेरी प्रार्थना की, परंतु उस दुष्टने न माना और कहा कि इस कन्याको मैं कभी जीती न छोड़ूँगा, क्योंकि जो कन्याके साथ विवाह करेगा वह मुझको मारेगा ॥ ७ ॥ यह कह अपने स्वार्थके सिद्ध करनेके लिये तुरन्तकी उत्पन्न हुई अपनी भगिनीकी कन्याका चरण पकड़ घुमाकर ज्योंही पटकने लगा ॥ ८ ॥ उसी समय वह कन्या कंसके हाथसे छूट उसके माथेपर पांवधर उछलकर आकाशको चली गयी और वहां प्रत्यक्ष देवीका दिव्य स्वरूप देखनेमें आया, अति विशाल लाल नेत्र ललाटपर चन्दनका तिलक, कण्ठमें पुष्पोंकी

तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ॥ अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ॥ ८ ॥ सा तद्धस्तात् समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ॥ अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥ दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरण-भूषिता ॥ धनुश्शूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ॥ १० ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरः किन्नरोरगैः ॥ उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ॥ यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥ १२ ॥ इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ॥ बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥

माला, सुन्दर शोभायमान वस्त्र, रत्नजटित आभूषण, आठ भुजा जिनमें धनुष, त्रिशूल, ढाल, कृपाण, गदा, पद्म, शङ्ख,चक्र, आयुध लिये थी॥९॥१०॥सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नाग यह बारम्बार बलिदान देते और प्रार्थना करते थे इनसे स्तुति की हुई योगमाया यह वचन बोली॥११॥अरे अधम कंस! मेरे मारनेसे तेरे हाथ क्या आया? तेरे पूर्व जन्मका वैरी, जोकि तेरा मारनेवाला है वह पहले ही और कहीं दूसरे स्थानमें जन्म ले चुका। अरे मूर्ख! बालकोंको मारकर और मुझको पटककर वृथा तूने अपने शिरपर पापका भार धरा, तेरा मारनेवाला सर्पके समान है और तू दादुरके सदृश है, दादुरको इतना सामर्थ्य कहां है जो सर्पको निगलनेकी इच्छा करे। अब तू सावधान रहना, अब वह बहुत शीघ्र तुझको मारकर भूमिका भार उतारेगा ॥१२॥ इस प्रकार भगवान्‌की दैवी योगमाया कंससे कहकर बहुत स्थानोंमें दुर्गा,

भा.द.पू. ॥१७ भद्रकाली, भगवती, भवानी, महामाया नामसे संसारमें विख्यात हुई ॥ १३ ॥ इस प्रकार योगमायाका वचन सुनकर कंस अत्यन्त विस्मित हुआ और वसुदेव देवकीको कारागारसे उसी समय छोड़ दिया और वेड़ी हथकड़ी उनके हांथ पांवोंसे निकलवा दी और विनय करके बहन-बहनोईसे बोला कि ॥ १४ ॥ अहो भगिनी ! अहो भाम ! मैं आपका बड़ा अपराधी हूँ, मुझ पापी अधर्मीने तुम्हारे संग बड़ा अनर्थ किया और अपने सुखके लिये तुम्हारे छः बालक मार डाले जैसे कोई राक्षस अपने पुत्रों को अपने हाथसे मारे और मेरा मनोरथ भी पूरा नहीं हुआ ॥ १५ ॥ देखो मैं कैसा निर्दयी और हत्यारा हूँ, अपने जातिवाले हितकारी और सम्बन्धियोंका संग मैंने छोड़ दिया । हाय ! मैं महापापी नीचबुद्धि न जाने कौनसे नरकमें जाऊँगा ? ब्रह्मघातीकी नाईं मैं जीता ही मृतकके समान हूँ, यह कलंक मेरा कैसे

तयाऽभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ॥ देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥ अहो भगिन्यहो भाम मया वा बत पाप्मना ॥ पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥ स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत् खलः ॥ काँल्लोकान् वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥ दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ॥ यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवान् शिशून् ॥ १७ ॥ मा शोचतं महाभागावात्मजान् स्वकृतं भुजः ॥ जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदाऽऽसते ॥ १८ ॥ भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्युपयान्ति च ॥ नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥ यथानेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ॥ देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥ २० ॥

छूटेगा और मेरा कैसे उद्धार होगा॥१६॥कोई कहे कि मनुष्य ही झूठ बोलते हैं, परंतु देवता भी झूठ बोलते हैं । जिन्होंने कहा था कि देवकीके आठवें गर्भमें पुत्र होगा सो कन्या उत्पन्न हुई । हाय ! मैंने झूठी आकाशवाणीके कहनेसे अपनी बहनके बालक मारे, मेरी क्या गति होगी ?
भा० टी० अ० ४ ॥ १७ ॥ हे महाभागियो ! तुम अपनेपुत्रोंके मरनेका शोक मत करो, यह प्राणी अपने किये हुए कर्मोंका भोग भोगता है और दैवाधीन है, सर्वदा एकत्र नहीं कर सकता । तुम समझना कि हमारे पुत्रोंकी आयु इतनी ही थी ॥ १८ ॥ जैसे पृथ्वीके विकार घट-पट इत्यादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं और फूट फट जाते हैं, इनके होनेमें पृथ्वीका विकार नहीं आता, ऐसे ही यह देह जन्मता और मरता है, कुछ इसके संग आत्मा नहीं मरता-जीता ॥ १९ ॥ मूर्ख लोग ऐसे नहीं जानते, वह देहको ही आत्मा मानते हैं और देहको आत्मा माननेसे "मैं हूँ"

"तू है" यह अनेक प्रकारसे बुद्धिभेद उत्पन्न होता है, इस भेदसे पुत्रादिकके देहसे योग-वियोग होता है, इसीसे उनके अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती ॥२०॥ हे मंगलरूपिणी ! मैंने तेरे पुत्रोंको मारा है तो भी तू उनका शोक-सन्ताप मत कर, क्योंकि सब प्राणियोंको परतंत्रतासे अपने-अपने किये हुए कर्मोंका भोग-भोगना पड़ता है ॥ २१ ॥ जब तक प्राणी अपने स्वरूपको नहीं जानता और यह कहता है कि मैं मारता हूँ और मैं मरता हूँ तब तक वह देहाभिमानी अज्ञानी पुरुष मरता है और मारता है ॥२२॥ हे दीनदयालु ! हे सत्यवक्ताओ ! अब आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये, क्योंकि साधुजन दीनोंपर सदा ही दया करते हैं। यह कह आखोंमें आंसू भरकर कंस, वसुदेव देवकीके चरणोंमें गिर पड़ा ॥२३॥ और योगमायाने जो यह वचन कहा था कि तेरा मारनेवाला कहीं उत्पन्न हो गया, इस वाणीपर विश्वास

तस्माद्भद्रे स्वतनयान् मया व्यापादितानपि ॥ माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥ २१ ॥ यावद्धतोऽस्मि हन्ताऽस्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक् ॥ तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२ ॥ क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ॥ इत्युक्त्वाऽश्रुमुखः पादौ श्यालस्स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥ २३ ॥ मोचयामास निगडाद्विस्रब्धः कन्यकागिरा ॥ देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥ भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्त्वा रोषं च देवकी ॥ व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥ एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवाऽहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६ ॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ॥ मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥ २७ ॥

कर वसुदेव और देवकीके पांवोंकी बेड़ी कटवा दी और अपनी सुहृदयता और मित्रता जताने लगा॥२४॥ हे देवकी ! अब मेरा अपराध क्षमाकर ! देवकी अपने भ्राता कंसको अत्यन्त व्याकुल देखकर बोली कि हे भय्या ! मैंने तेरा सब अपराध क्षमा किया, तू मत डर, यह कह उसकी आखोंसे आंसू पोछने लगी और वसुदेवजी उससे शत्रुता तजकर मुसकराकर बोले ॥ २५ ॥ हे महाभाग कंस ! जैसे तुम कहते हो वैसे ही है। देहधारियोंको अज्ञानसे अहंकार होता है इसी अहंकारने मेरा तुम्हारा परस्पर भेद कर दिया ॥ २६ ॥ शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह जिनको लग रहे हैं वे मनुष्य इन चारोंसे आपही मरते हैं, उनको कौन मारता है? वह उन्मत्त पुरुष यह नहीं

जानते कि परमेश्वर ही पदार्थोंसे पदार्थोंका परस्पर नाश करता है और उस परमात्माको नहीं देखते और अज्ञानी पुरुष मैं मरता हूँ, मैं मारता हूँ ऐसे मानते हैं ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार प्रसन्न हो शुद्ध अन्तःकरणवाले वसुदेव देवकीसे आज्ञा लेकर कंस अपने राजभवनको गया ॥२८॥ और जैसे-तैसे करके रात काटी, प्रातःकाल होते ही कंसने अपने सब मंत्रियोंको बुलाकर जो कुछ योगमायाने कहा था कि "तेरा मारनेवाला उत्पन्न हो गया है" वह सब वृत्तान्त मंत्रियोंके सामने ज्योंका त्यों कह सुनाया ॥ २९ ॥ कंसके वचन सुनकर देवताओंके शत्रु अविवेकी देवताओंपर क्रुद्ध होनेवाले जो अघासुर, तृणावर्त्त, आदिक मंत्री थे वे कंससे बोले कि ॥३०॥ हे यादवेन्द्र ! जो ऐसा हो तो भी क्या चिन्ता है ? कुछ सन्देह न कीजिये, केवल इतना काम करो कि-पुर, ग्राम,खिरक इत्यादि

श्रीशुक उवाच ॥ कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ॥ दवकी वसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद् गृहम् ॥ २८ ॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः ॥ तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥ आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ॥ देवान् प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥३०॥ एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ॥ अनिर्दशान् निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥ किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः ॥ जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥ केचित् प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ॥ मुक्तकच्छशिखाः केचित् केचिद् भीताः स्म वादिनः ॥ ३४ ॥

जितने स्थान हैं, उनमें दश-पांच दिनके भीतर जो बालक उत्पन्न हुए हैं, उनको मारने की हमको आज्ञा दे दीजिये। हम आज ही सब बालकोंको बीन-बीनकर मार आयेंगे। उनमें जो आपका शत्रु होगा वह भी मारा जायगा ॥३१॥ और जो देवता संग्रामके नामसे थरथर कांपते हैं, वे आपके सामने क्या पराक्रम करेंगे ? आपके धनुषका टंकार ही सुनकर निरंतर व्याकुल रहते हैं॥३२॥जिस समय आप धनुषपर बाण चढ़ाकर चारों ओरको प्रहार करते हो, उस समय देवता अपने-अपने प्राणोंको लेकर रणस्थलसे भाग जाते हैं और भाग जाना ही उनके लिये अच्छा है ॥३३॥ उनमें कोई-कोई तो शस्त्र त्याग दीन बन हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है और कोई निकच्छ होकर शरणमें आता है और कहता है

'हम हार गये, हम हार गये, हमको मत मारो' ॥३४॥ आपके सामने रथ जिनके टूट गये शस्त्र हाथोंमेंसे छूट गये, भयभीत हो भाग गये, युद्धसे विमुख, धनुष जिनके हाथोंसे गिर गये और जो संग्राम छोड़कर भागने लगते हैं उनको तो आप मारते ही नहीं हो ॥३५॥ जहां कोई शूरवीर और युद्ध करनेवाले योद्धा नहीं होते, उस निर्भय स्थानमें बैठकर झूठा बकवाद करनेवाले देवताओंसे और जो क्षीरसागरमें शेषशय्या पर पड़ा दिन-रात लक्ष्मीसे भोग-विलास करता रहता है उसीके ध्यानमें नित्य मतवाला हो आलस्यके कारण कोई काम नहीं करता, जो आपके डरसे क्षीरसमुद्रमें छिपा हुआ पड़ा है उस लक्ष्मीकी आश करनेवाले विष्णुसे युद्ध कब हो सकता है ? इलावृत खण्डका रहनेवाला जहां जाते ही पुरुष स्त्री हो जाता है, दिनरात पार्वतीके संग क्रीडा करनी और उसी के मोह जालमें मग्न रहनेवाला, विषके पीनेसे जिसका चित्त नित्य उद्विग्न रहता है ऐसे बावले बहुरंगे शिवसे क्या ? ॥ ३६ ॥ तुच्छ पराक्रमी, किंचिन्मात्र विपत्ति पड़नेसे देवताओंको ले भगवान्‌के

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान् भयसंवृतान् ॥ हंस्यन्यासक्तविमुखान् भग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥ किं क्षेमशूरैर्विबुधै-रसंयुगविकत्थनैः ॥ रहोजुषा किं हरिणा शंभुना वा वनौकसा ॥ ३६ ॥ किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ॥ ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥३७॥ यथाऽमयोऽङ्गे समुपे-क्षितो नृभिर्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ॥ यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान् बद्धबलो न चाल्यते ॥३८॥

पास जाकर पुकार मचाता है, आपने सुना ही होगा कि हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु और रावणादिक अनेक असुरोंने उनकी कैसी-कैसी दुर्दशा की और बताओ आजतक किसको जीता, सदा घर बैठेही वज्र घुमाता रहता है, ऐसे असमर्थ इन्द्रसे क्या ? रहा ब्रह्मा, वह दिन-रात पूजापाठमें लगा रहता है, उसको अपने ही कामोंमें पलभरको अवकाश नहीं फिर बताओ कि इन लोगोंसे हमको क्या भय है और कौन इनमें हमसे युद्ध कर सकता है ? परन्तु तो भी वैरी ही हैं, न जाने कलको क्या उपद्रव कर बैठें, क्योंकि शत्रुको और सर्पको छोटा न समझे, इसीलिये इन लोगोंको छोड़ना अच्छा नहीं। इस समय तो इनकी जड़ उखाड़नेको हम उपस्थित हैं, हम लोगोंको आज्ञा दीजिये ॥ ३७ ॥ जैसे विना उपाय किये शरीरका रोग जड़ पकड़ जाता है, तो फिर पीछे उपाय करनेसे कुछ नहीं हो सकता, जैसे योगीजन पहले इन्द्रियोंसे

विषय भोग करके फिर पीछे उनको रोकना चाहे तो फिर वे नहीं रुक सकतीं, ऐसे ही शत्रुको छोटा समझकर जो छोड़ देते हैं, फिर पीछे प्रबल होकर वह शत्रु जीतनेमें नहीं आता और जो कदाचित जीत भी लिया तो बड़ी विपत्ति उठानी पड़ती है और दांत खट्टे हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ सब देवताओंकी जड़ विष्णु हैं और विष्णुकी जड़ सनातन धर्म है और सनातनधर्मकी मूल गौ, ब्राह्मण, तप, यज्ञ और दक्षिणा है ॥ ३९ ॥ हे राजन् कंस ! इसलिये वेदपाठी, तपस्वी, याज्ञिक ब्राह्मण, यज्ञके उपयोगी और दूध देनेवाली गायोंको हम अवश्य मारेंगे

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ॥ तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥ तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ॥ तपस्विनो यज्ञशीलान् गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥ विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ॥ श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥ स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः ॥ तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ॥ अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह संमन्त्र्य दुर्मतिः ॥ ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥

॥ ४० ॥ गौ, ब्राह्मण, सत्य, वेद, तप, दम, शम, श्रद्धा, क्षमा और यज्ञ सब विष्णु भगवान्‌के अंग हैं ॥४१॥ वह विष्णु सब देवताओंमें मुख्य, दैत्योंका द्रोही और सबके हृदयमें वास करनेवाला और महादेवजी सब देवता और ऋषियोंका मूल भी वही है, इसलिये ऋषीश्वरों-मुनीश्वरोंका मारना, यही विष्णुके मारनेका ठीक उपाय है ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! दुष्टबुद्धि कंस कालके फन्देमें फँसा हुआ इस प्रकार दुष्ट मंत्रियोंके साथ सम्मति करके ब्राह्मणोंको मारकर अपना कल्याण चाहा * ॥ ४३ ॥

शंका—कंसने राक्षसोंसे जिस ब्रह्मका बन्धन कराकर अपना कल्याण माना वह ब्रह्म कौन है ? क्योंकि सर्वव्यापी अजर अमर चैतन्यकारक ऐसा जो ब्रह्म है वह कभी भी किसीके किसी भी बन्धनमें नहीं आ सकता और किसीके मारनेसे नहीं मर सकता वह ब्रह्म किसीके मारनेसे मरनेवाला नहीं है, जो राक्षसोंके मारनेसे मर गया ?

उत्तर—अजर, अमर सर्वव्यापी ब्रह्म है, सो " ब्रह्महत्यां हितं मेने " इस श्लोककार अर्थ नहीं किया । इस श्लोकका अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है कि यज्ञादि, दानादि, नारायणके पूजनादि, अनुराग, अपने हृदयमें कोमलता दया इनको आदि लेकरऔर अनेक प्रकारके कर्म सोई ब्रह्म है, उनका और अपना नाश कराकर कंस अपना हित मानता था, ऐसा अर्थ व्यासजीने कहा है ।

महापुरुषोंका कष्ट जिनको प्रिय, इच्छापूर्वक रूप धारण करनेवाले ऐसे असुरोंको सब देश-विदेशोंमें साधुसंतोंके मारनेके लिये आज्ञा देकर भेज दिया और आप अपने राजमन्दिरको चला गया ॥४४॥ राजस, तामस स्वभाववाले दुर्बुद्धि, अज्ञानसे जिनका अन्तःकरण आच्छादित हो रहा, मृत्यु जिनके शिरपर खेल रही, ऐसे-ऐसे दैत्य साधुओंके विद्रोही होकर उनसे वैर करने लगे ॥४५॥ सत्पुरुषोंसे द्वेष रखने वाले पुरुषकी आयु, धन, यश, धर्म, परलोक, सुख, महात्माओंका आशीर्वाद और मंगल इन सबका नाश हो जाता है, ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कंसोद्यमनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा—पंचममें उत्सव अधिक, भयो नन्दके भौन । मथुराको वसुदेवने, किये मिलनहित गौन ॥ हे राजन् ! पुत्रका जन्म होनेसे आनंदसहित उदारचित नंदरायजीने उसी समय स्नान

संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान्॥कामरूपधरान् दिक्षु दानवान् गृहमाविशत्॥४४॥ ते वै रजः प्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ॥ सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥४५॥ आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥ हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० कंसाज्ञप्तकृतबालादिहिंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ॥ आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ॥ कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥ धेनूनां नियुते प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते ॥ तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ॥ शुध्यन्ति दानैः संतुष्ट्या द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ॥ ४ ॥

कर पवित्र हो पीतांबर पहन शृङ्गार कर, आसनपर जा विराजे ॥ १ ॥ ज्योतिषी ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन कराकर मोतियोंसे चौक पुराकर उसपर सुवर्णका कलश स्थापनकर गणेश, गौरी, वरुण इत्यादि देवता, पितृ, लोकपाल, दिक्पाल, इन सबका संस्थापन करके जातकर्म संस्कार कराय ॥२॥ उसी समय भूषित करी दो लाख गायें और तिलोंके सात पर्वत बनाकर ऊपरसे सुनहरी रंगका वस्त्र उढ़ा दिया । उनके भीतर मणि, माणिक, मोती, हीरे और अनेक-अनेक प्रकारके रत्न भर-भरके सातों पर्वत ब्राह्मणोंको दान कर दिये ॥ ३ ॥ कालसे तो पृथ्वी पदार्थ शुद्ध होता है, स्नान करनेसे शरीर शुद्ध होती है, धोनेसे वस्त्रादिक शुद्ध होता है, संस्कारसे गर्भादिक शुद्ध

होता है, तप करनेसे इन्द्रियोंकी शुद्धि होती है, यज्ञ करनेसे ब्राह्मणोंकी शुद्धि होती है, दान करनेसे धनकी शुद्धि होती है, सन्तोषसे मनकी शुद्धि होती है और आत्मविद्यासे आत्माकी शुद्धि होती है, यह विचार नन्दरायजीने अनेक प्रकारके दान दिये ॥४॥ ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढ़ने लगे, पुराणवक्ता पुराण बांचने लगे, गायक वंशावली बखानने लगे, भाट बन्दीजन यश वर्णन करने लगे, गायक गुण गाने लगे, और भेरी-नगाड़े जहां-तहां बजने लगे ॥५॥ व्रजमें द्वार-द्वार, आंगन-आंगन, घर-घर सब झाड़-बुहार हो रहे हैं और बजारोंमें, गलियोंमें, घाटोंमें, रजवाड़ोंमें, चौराहोंमें बुहारी लगाकर गुलाबके जलसे, केवड़ेके जलसे, सेवतीके जलसे, खसके जलसे, चन्दनके जलसे, छिड़कने लगे। सब गोकुल और महावन नन्दगांव सुगन्धसे सुगंधित कर दिया। सब अपने-अपने भवनोंकी शोभा निराले ही निराले ढंगकी बना दी। सुंदर स्फटिक मणिके द्वार, सुवर्णके किवांड़, वैदूर्यकी देहरी, मूंगोंकी चौखट, जिनमें पुष्प बिखर रहे, आमके पत्ते और फूलोंकी

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधबन्दिनः ॥ गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥ ५ ॥ व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ॥ चित्रध्वजपताकास्रक्चेलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥ गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ॥ विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥ ७ ॥

बन्दनवारें जहां-तहां लटक रहीं, सुवर्णके कलश कलशियाँ द्वार-द्वार पर बिज्जुछटासी चमक रहीं, ध्वजा स्तम्भ गड़ रहे हैं, जिनमें चित्र-विचित्र रंग ध्वजा पताका फहरा रहीं हैं, मोतियोंकी माला जहां-तहां लटक रहीं, मानो भवन-भवनमें पुत्रजन्मोत्सव हो रहा है ॥६॥ जबही ग्याललोग गाय बछड़ोंको ले-लेकर वनको चले उसी समय एक गोप वृक्षपर चढ़कर पिछौरिया घुमाकर बोला—अरे भैया ! आज कोई

व्रजवासी वनको मत जाना, हमारे नन्दरायजीके पुत्रका जन्म हुआ है। यह बात सुनकर सब ग्वाल-बाल आनंदमें मग्न हो गये और सब अपनी-अपनी गायोंका शृङ्गार बनाने लगे। पहले तो छोटी-छोटीगाय, बछड़े, बछियाओंको हलदी तेल लगाकर उबटन किया, फिर गेरू, मेंहदी, लाख, हरतालसे रंगा और बीच-बीचमें हलदी और रोलीके थापे लगाये। जंगाल और सिंगरफसे उनके सींग रंगे और मोरछल जिनमें लटक रहे ऐसी शोभायमान झूलें उढ़ा दीं, मोरछलकी कलँगी न्यारी ही पहना दी। गलेमें घंटोंकी मालाका शब्द निराला ही सुनायी देता

था और कोई-कोई गोप अपने-अपने घरोंसे सुनहरी आभूषणोंके डिब्बे और उत्तम-उत्तम वस्त्रोंकी गठरी उठा लाये, मोहनमाला, चन्दन-हार, हमेल, पचलड़ी चम्पाकली, धुकधुकी बछड़े बछियाओंके गलेमें डाल दिये। पाँवोंमें पावटे, घुंघरू, कड़े झांझन पहरा दीं और ऊपरसे शाल-दुशाले जरीकी ओढ़नी ओढ़ा दीं। इस प्रकार सबने अपनी-अपनी गायोंका श्रृङ्गार किया ॥ ७ ॥ सब गोप-ग्वाल सुंदर-सुंदर सूही बैजनी ऐंठदार पाग बांध कर और दो चार पेंच गलेमें डाल सुंदर-सुंदर जामें पहन लिये। किसी-किसीने काछ बांध लिये, किसीने लटकवां धोती, रेशमी दुपट्टे ओढ़ लिये और भांति-भातिके आभूषण सज सुन्दर श्रृङ्गार बनाये, यमुनाकी रज मस्तक चढ़ाये, कन्धोंपर तलवारें धरे, कानोंमें फूलोंके तुर्रे घुरेसे हुए, शिरमें मोरके पंखोंकी कलँगी धरे, भारी-भारी लट्ठ लिये, पानसे मुख लाल किये, थालोंमें भेंट लिये, गायोंको आगे-आगे नचाते-कुदाते, गाते-बजाते, हँसते-हँसाते नन्दरायजीको बधाई देनेके लिये चले। उस समय नन्दजीके द्वारपर बड़ी भारी भीर हुई उस छबिको देख छबि भी लज्जाकी मारी एक कोनेमें छिपी हुई उस आनन्दको देख रही थी। इस उत्सवको देखनेके लिये स्वर्गसे ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेरादिक अनेक देवता अपनी-अपनी स्त्रियोंको संग लिये मनुष्यरूप धारण किये गोपग्वालोंमें

महार्हवस्त्राभरणाः कञ्चुकोष्णीषभूषिताः ॥ गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥

आ मिले और सब नन्दके द्वारपर पुकार-पुकार बार-बार यह कहते थे कि आज नन्दके घर बधाई है। उस समय नंदजी ऐसे मग्न थे कि अंगमें फूले नहीं समाते थे और सबके हाथ पकड़-पकड़ अत्यन्त आदर-सत्कारसे कुशलक्षेम पूछ-पूछकर मखमलके बिछौनों पर बिठाते जाते थे और बार-बार सबको पान मिठाई दे-देकर वह कहते थे कि यह सब आपका ही प्रताप है। दूसरे दिन यह शुभ संवाद समीप-समीपके सब ग्रामोंमें भी पहुँच गया कि नन्दजीके पुत्रका जन्म हुआ। यह शुभ समाचार सुन सब व्रजवासी परमानंद हो होकर इन ग्रामोंमें हाथौरा, रीठा, कारब, सबल, लौहवन, महावन, धाराकुण्ड, बरसाना, गोपालपुर, विसौली, जसौली, रसौली, मांठ, आंठ, बिजौली, आढ़स, सुनर, वसई, छटीकरा, नरी, सेमरी, परासौली, कोठवन, मधुवन, बढैन, करहैला, नन्दीश्वर, नन्दगांव, बनेई, ऊँचागांव, चिकसौली, सुमहरा, कामवन, वृन्दावन, दीघम, होली, इत्यादि और अनेक गांवोंसे भेंट ले-लेकर चले तो वृद्ध-वृद्ध जो गोप थे उन्होंने भी अपना-अपना शृंगार किया और युवा बालकोंका तो कहना ही क्या है ? सुवर्णके थालों में ही हीरे, मणि, रत्न, पन्ना, पोखराज, हँसली, खंडुवे, कण्ठी, माला, कुरते, टोपी,

रोली, चन्दन, पान, मिठाई, मेवा, श्रीफल, धर-धरकर सब ब्रजवासी डफ, ढोल,झांझ, मृदंग, चङ्ग, मुहचङ्ग, उपंग बजाते और गीत गाते, धूमधाम मचाते, नन्दरायजीके द्वारपर आये और उनको दण्डवत् प्रणाम कर करके भेंट उनके आगे धरीं। उस समय नन्दराय उनको देख-देख प्रसन्न हो हो बड़े-बड़े गोपोंसे मिल-मिल सबको आदर-सम्मानसे आसन दे-देकर बैठाते थे। सब गोप बोले कि नन्दरायजी! हम आपके भाग्यकी बड़ाई नहीं कर सकते, आज आपका पूर्व पुण्य उदय हुआ, तुम बड़े धन्यभागी हो, तुमने हमारे मनके मनोरथ सिद्ध किये और आज हमारे मनकासा समाज सजा है। नन्दरायजी बोले कि भैया! यह सब तुम लोगोंके पुण्यका प्रभाव ऐसा है, नहीं तो बुढ़ापेमें मेरा भाग्य कहां था जो ऐसा परमानंद प्राप्त हुआ? कोई केवड़ा छिड़क रहा है, कोई गुलाब छिड़क रहा है, कोई पुष्पोंकी माला पहनाता

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिताः यशोदायाः सुतोद्भवम् ॥ आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥९॥ नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ॥ बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥ गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बराः पथिशिखाच्युतमाल्यवर्षाः ॥ नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डल पयोधरहारशोभाः ॥११॥

केशर और चन्दन लगाता है, मानो त्रिलोकीका आनंद नन्दके घर छा रहा है ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जब व्रजबालाओंने सुना कि हमारी व्रजेश्वरीके पुत्र उत्पन्न हुआ है। तब सब गोपियोंने सुन्दर श्रृंगार बनाकर मेहँदी महावर रचाकर नवीन-नवीन केशर कस्तूरी मिलाकर मस्तकपर तिलक लगाये, फिर पीछे रेशमी वस्त्र आभूषण पहन, नेत्रों में अञ्जन आंज, नखशिखसे अलंकृत हुई ॥ ९ ॥ केशर मुखारविंदपर मली हुई हैं, कटि लचक रही हैं, नितम्ब जिनके पुष्ट हैं, कुच चलायमान हैं, भेंटे ले-लेकर नन्दरायजीके मंदिरको चलनेकी सब सुन्दरी अभिलाषा कर रही थीं ॥१०॥ उज्ज्वल मणियोंके जड़ाऊ कुण्डल कानोंमें शोभायमान हैं, अति सुन्दर मुक्ताओंके हार कुचोंके बीचमें लटक रहे हैं, मानो दो पर्वतों के बीचमें गंगाकी धार बह रही है। हाथोंमें कङ्कण, चित्रविचित्र वस्त्र धारण किये, कमलसे भी कोमल जिनके चरण उनमें अनवठ, बिछुवे, नूपुर, पगपान पहन रहीं, जब एक सङ्ग सब मिलकर पग उठाती हैं, तो उस समय पायल और नूपुरोंकी झनकार इस प्रकार हो रही मानो आनन्दमय घन गर्जता है और उस शब्दसे दशों दिशाओंका अमङ्गल दूर होता

चला जाता है और क्षीण कटिकी लचकसे जो शरीर कम्पायमान होता था तो जूड़ेसे मालती और मदनबाणके फूलोंके हार खिसक-खिसक उनके चरणोंमें गिरते थे। वे हार आपसे आप नहीं गिरते थे, किन्तु केश उन चरणोंकी अद्भुत शोभा देख-देखकर रीझते थे, और बार-बार प्रसन्न हो-होकर पुष्पोंके हार उनपर चढ़ाते थे और दूसरा प्रयोजन यह भी था कि हमारे ऐसे भाग्य कहां थे, यही हमको श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करानेके लिए चलते हैं। इस प्रकार गोपियोंके झुण्डके झुण्ड नन्दजीके घरको चले जाते हैं, उस समयकी शोभाको कौन कवि वर्णन कर सकता ॥ ११ ॥ तब सब गोपिका नन्दरायजीके आंगनमें आकर श्रीकृष्णचन्द्रको आशीर्वाद देने लगीं। हे कृष्ण! तुम चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो और हमारी बहुत दिनोंतक रक्षा करो। इस प्रकार बालकको आशीष देकर हलदीके चूर्णमें तैल और पानी मिलाकर परस्पर छिड़कती-छिड़काती गीत गाती आंगनमें केशर और चन्दनके रंगकी झारी और पिचकारी लिये धूमधाम मचा रही थीं ॥ १२ ॥

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके॥ हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥ १२॥ अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे॥ कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते॥ १३॥ गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः॥ आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः॥ १४॥

विश्वेश्वर विश्वभावन भगवान्के व्रजमें आते ही मनुष्योंके मनमें परमोत्सव बढ़ गया और मंदिर-मंदिरमें भांति-भांतिके बाजे बजने लगे, सब गोपिका श्यामसुन्दरका मुखारविन्द देख-देख आनन्दित हो-हो न्योछावर कर नन्दरानीसे कह रही थीं कि हे यशोदा! तेरे पुत्रके तो चक्रवर्तीकेसे लक्षण हैं। चक्रादिक चिह्नोंके छिपानेके लिये अपने हाथोंकी मुट्ठी बांध ली है। तूने पूर्वजन्ममें भगवान्की बड़ी सेवा की है, जो ऐसा मनोहर पुत्र पाया है। यशोदा सबके पांवों पड़-पड़ कहती थी कि इसमें मेरा क्या है, यह सब तुम्हारा ही पुण्य है। सब गोपी अशीष देती हैं" कि सदा सुहागण रहहु तुम, युग-युग जीवे बाल" ॥ १३ ॥ व्रजवासियोंने उस दिन अत्यन्त प्रसन्न होकर घी, दूध, दही, माखन, जल, हलदी मिलाकर दधिकांदोका प्रबन्ध किया। प्रथम नन्दरायको बुलाकर उनके ऊपर छिड़का, फिर परस्पर ऐसा खेल मचाया कि जहां देखो वहीं दधि माखनकी ही रेलपेल हो रही थी। इस आनंदको देवता विमानों पर बैठे देख-

कर कह रहे थे, कि गोकुलवासियोंका धन्य भाग्य है ! जिन परमपुरुष परमात्माका दर्शन शिव सनकादिकके ध्यान में महाकठिनतासे आता है वह नन्दके घर जन्म लेकर ब्रजवासियोंको आनन्द दिखा रहे हैं और देवांगनायें पछता-पछताकर कह रहीं थीं कि हाय ! आज हम नन्दरायके घरकी दासी भी न हुई जो इस उत्सवके सुखको समीप से देखकर अपने मनको प्रसन्न करतीं ! इस प्रकार दधिकांदोके उत्सवमें ब्रजवासी विह्वल हो रहे थे ॥ १४ ॥ अति उदारचित्त नन्दरायजीने सूत, मागध, वंदीजन और जो-जो गुणीजन गाने बजानेवाले थे सबको वस्त्र, आभूषण, गाय, द्रव्य, दान दिया और नंदरायसे सब वृद्ध-वृद्ध जनोंने कहा—हे मित्र नन्द ! आज तो नाचनेका दिन है, हमारे सङ्ग नाच लो, सबने नन्दजीका हाथ पकड़ इनको उठाया और सब ब्रजवासी मग्न हो होकर नंदके सङ्ग नाचने लगे और गोपियाँ बाजे बजा-बजाकर गीत गाने लगीं। उस समयकी शोभाको देख करके वर्णन करनेमें सरस्वती भी चकित हो अवाक्सी हो

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकारगोधनम् ॥ सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥ तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ॥ विष्णोराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥१६॥ रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ॥ व्यचरद्दिव्यवासस्स्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥

गयीं तो फिर और कवियोंकी क्या सामर्थ्य है, जो उस मनभावनी सुहावनी शोभाका वर्णन कर सकें ? ॥१५॥ नंदरायजी उदारचित्त पुत्रके कल्याणके लिये विष्णुभगवान्की आराधना करते थे और वारंवार यह वरदान मांगते थे कि हे नाथ ! मुझपर प्रसन्न होओ और यह मेरा बालक चिरंजीव रहे; इसीलिये नंदजीके समीप जो-जो गुणीजन आ-आकर जिस-जिस वस्तुकी कल्पना करते थे, उनको वही वस्तु दे-देकर उनकी अभिलाषा पूर्ण करते थे और यथायोग्य उनका पूजन भी करते थे ॥ १६ ॥ नन्दरायजीके घर सब ब्रजकी बहू और बेटी आयीं परन्तु रोहिणीजी नहीं आयीं, क्योंकि इनके पति मथुरामें थे। लिखा है कि जिस स्त्रीका पति परदेशमें हो उसको शृङ्गार नहीं करना चाहिये और पराये घर न जाय, इसलिये नन्दजीके घर नहीं गयीं, तब नन्दजीने रोहिणीसे जाकर कहा कि तुम ही तो बड़भागिनी ठहरीं और तुम हमारे घर न आयीं, हमारे घर बधाई हो रही है, तुमको अवश्य चलना पड़ेगा वह घर तो आपका ही है, तुम हमको

ऊपरी मत समझो, वह तो सोवरमें बैठी है, केवल एक सुनन्दा है उसको ऊपरहीके काम बहुत हैं, अतः जो गोपिकायें आती हैं उनका आदर-सत्कार कौन करे ? तब रोहिणी बोली कि तबतक तुम चलो, तुम्हारे भतीजेको दूध पिलाकर मैं भी आऊँगी। तब नन्दराय बोले कि मेरे संग ही तुमको चलना पड़ेगा, क्योंकि कामका कारोबारी सिवाय आपके कोई दृष्टि नहीं आता। नन्दजीकी आज्ञानुसार सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, आभूपण, मुक्तामाला, कण्ठाभरण पहन बलदेवजीको गोदमें ले प्रसन्न होती हुई नंदजीके संग चलीं और दासीके हाथमें पान-फूल मेवा-मिठाईकी थाली दे दी और यशोदाके समीप आकर कृष्णका मुख देख नौछावर कर नाइनको दी और आंगनमें जो-जो गोपी कुरता टोपी लिये बैठी थीं उनके हाथसे लेकर मंदिरमें धरने लगीं और यथायोग्य उनका आदर-सम्मान करने लगीं और सब गोपी यह आशीष देती थीं कि सदा नंदालयमें ऐसा ही उत्सव बना रहे ॥ १७ ॥ जिस दिनसे व्रजमें कृष्णजन्म हुआ उस दिनसे

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ॥ हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥ गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ॥ नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥१९॥ वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ॥ ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २० ॥

सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे नंदजी परिपूर्ण हो गये, नंदरायजी नित्य खजानेको लुटाते थे, परंतु फिर भाण्डागारको जैसाका तैसाही भरा पाते थे, क्योंकि जहां वैकुण्ठनाथकी भार्या लक्ष्मी व्रजमें आकर मालिनीका वेप धारणकर द्वार-द्वार वंदनवार बांधती फिरती थीं वहां और सम्पत्तियोंकी क्या गिनती है ? ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजीबोले कि हे कुरुकुलदीपक ! एक दिन नंदरायजीने गोकुलकी रक्षा करनेके लिये बहुतसे गोपोंको सब प्रकार नियुक्त किया और आप कुछ ग्वालोंको संग ले और दूध, दही, माखन, मटकियोंमें भर-भरकर गाड़ियोंमें लाद और वार्षिक कर लेकर भेंट देनेके लिये मथुराको चले ॥ १९ ॥ अपने परम हितकारी नंदरायजीका आगमन सुनकर वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए कि आज हमारे मित्र नंदजी कंसजीकी बरसौडी देनेके लिये आये हैं। जब नंदजी कंसको कर दे चुके और किसी स्थानपर आकर विश्राम किया, उस समय वसुदेवजी कुछ भोजनादिक लेकर नंदजीसे मिलने गये ॥ २० ॥

जैसे मृतक देहमें प्राण आनेसे देह उठ खड़ा होता है, ऐसे ही वसुदेवजीको आये हुए देख नंदजी अकुलाकर शीघ्र खड़े हो गये और अपने प्यारे सुहृदका हाथ पकड़कर प्रेममें विह्वल हो हृदयसे लगाकर मिलने लगे ॥ २१ ॥ हे राजन् ! नन्दरायजीने वसुदेवका पूजन कर सुखपूर्वक आसनपर बैठाकर कुशलक्षेम पूछने लगे और परमप्रिय पुत्रोंमें जिनका मन अत्यन्त लग रहा था, वे वसुदेवजी आदर-सत्कार कर बोले ॥ २२ ॥ अहो भ्राता नन्दजी ! तुम्हारे सन्तान नहीं होती थी और आपने पुत्र होनेकी आशा भी छोड़ दी थी,

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ॥ प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥२१॥ पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः ॥ प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥ २२ ॥ दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ॥ प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥ २३ ॥ दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः ॥ उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥ नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ॥ ओघेन व्यूह्यमाननां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥ २५ ॥

क्योंकि बहुत वृद्धावस्था हो गई थी, परमेश्वरकी कृपासे अब आपके पुत्र हुआ, यह सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए * ॥ २३ ॥ इस संसारमें रहकर पुनर्जन्मकी नांई आपका मिलना हुआ, यह बड़े आनन्दका दिन है ! सब मिलते हैं, परन्तु संसारमें मित्रका मिलना बहुत दुर्लभ है ॥२४॥ अहो प्यारे ! नदीके प्रवाहसे काष्ठ और तृणादिक बहते हैं, कभी स्थिर होते हैं, परंतु एक स्थानपर संगम नहीं होता,

* शंका–वसुदेवजीने ऐसे महात्मा होकर अपने परममित्र नन्दजीके संग कपट क्यों किया ? जो सत्य बोलते कि, हमारे दो पुत्र आपके पास हैं आप रक्षा करो, क्योंकि विपत्तिमें सिवाय मित्रके दूसरा सहाय नहीं कर सकता, ऐसा करने पर क्या श्रीकृष्णकी रक्षा नंदजी न करते । कपटका क्या काम था ?

उत्तर–त्रिलोकीमें जो प्राणी हैं सो मायासे उन्मत्त हो रहे हैं; उसी प्रकार वसुदेवजी भी उन्मत्त हो गये, जो कोई यह कहै कि, विना कारण माया किसीको नहीं मोह करती यह सब सत्य है परंतु वसुदेवजीको मोह होनेका क्या कारण था ? पहिले किसी समय नन्द और यशोदाको भगवान् ने यह वरदान दिया था, कि हम जन्म तो दूसरेके यहां लेंगे परंतु बाललीला तुम्हारे यहां करेंगे, इसलिये भगवान्ने वसुदेवको मायासे मोहित करके कपट कराया जो वसुदेवजी सत्य बोलते तो नन्दजी कृष्णकी पालना करते तो सही परंतु कुछ भेददृष्टि रहती कि, दूसरेके पुत्र हैं इसलिये नन्दसे वसुदेवजीने कपट किया, कुछ कपट भावसे कपट नहीं किया ।

ऐसे जो अपने प्यारे सुहृद हैं उनका एक स्थान पर रहना नहीं होता ॥ २५ ॥ हे नन्दजी ! बहुत जल, तृण और गुल्मलतायुक्त पशुओंका हितकारी जो अत्यन्त रमणीक महावन है, जहां अपने संबन्धियों सहित आप निवास करते हो, वह महावन नीरोग तो है ? इस वचनसे ध्वनि निकली कि हमारे पुत्र जो आपके निवासस्थानपर वास करते हैं, वह तो अच्छे हैं ? जहां जल, तृण अधिक होगा तो वहां गायोंकी अच्छी उदरपूर्णता होगी और दूध भी अधिक होगा और नीरोग भी होगा तो उस दूधको हमारे पुत्र पियेंगे तो वे भी नीरोग रहेंगे ॥२६॥ वसुदेवजी बोले कि हे मित्र ! मेरा पुत्र अपनी जननीके संग आपके ब्रजमें रहता है और आपको ही अपना पिता समझता है और आप ही उस बालकके प्रतिपालक हैं, वह अपनी मातासहित प्रसन्न है ? ॥२७॥ सत् पुरुष अपने प्रियतम प्यारेको संग लेकर ही धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पदार्थोंको करते हैं और जो अपने प्यारे स्नेहियोंको छोड़कर अकेले धर्म करते हैं, वा द्रव्यका भोग भोगते हैं, अथवा काम विष-

कच्चित् पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ॥ बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥ २६ ॥ भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ॥ तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ॥ न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८ ॥ नन्द उवाच ॥ अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ॥ एकाऽवशिष्टाऽवरजा कन्या साऽपि दिवं गता ॥२९॥ नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ॥ अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥

यका भोग करते हैं, तो यह त्रिवर्ग उनको सुखदायक नहीं होते ॥२८॥ वसुदेवजीके मधुर वचन सुनकर नन्दजी बोले कि अहो मित्र ! सब व्रजमें परमेश्वरकी कृपा है और आपके पुत्र बलरामजी भी अच्छे हैं, उनके उत्पन्न होनेके पीछे मेरे भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह भी आपकी कृपासे अच्छा है, परंतु आपकी ओरका हमको बड़ा दुःख बना रहता है ॥२९॥ हे मित्र ! प्रारब्ध ही सर्वोपरि है, जिन पुत्रादिकोंका देनेवाला भाग्यहीन हो जाता है उस समय यह पुत्रादिक भी नहीं होते हैं, सब बिछुड़ जाते हैं और जब प्रारब्ध अच्छा होता तो फिर सब मिलते हैं । हे भ्रातः ! प्रारब्ध ही सुखका देनेवाला है और प्रारब्ध ही दुःखका देनेवाला है, जो पुरुष इस प्रकार जानते हैं वे कभी मोहको प्राप्त नहीं होते । इस वचनसे यह सूचित किया कि अहो वसुदेव ! अपने मनमें पुत्रोंका सोच संकोच मत करो, किसी समय

भा.द.पू.
॥२४॥

आपके पुत्रोंका भी संयोग हो जायगा, हमसे वियोग हो जायगा ॥३०॥ वसुदेवजी बोले कि हे नन्दरायजी ! विधाताने जो हमारे भाग्यमें लिखा है, उसको कोई नहीं मेट सकता और इस संसारमें आकर ऐसा कौन है जो कष्ट नहीं भोगता ? और आपके समान अपना मित्र हम किसीको नहीं देखते। देखो, हमने कंसके भयसे अपनी गर्भवती स्त्रीको आपके यहां निःसन्देह भेज दिया और जब उसके पुत्र हुआ तो आपने अपने पुत्रके समान उसका लालन-पालन किया यह परमोपकार आपका मैं कैसे भूल सकता हूँ ? जन्म-जन्मांतर मैं आपकी सेवा करूं तो भी उऋण नहीं हो सकता। जब सुना कि आपके यहां पुत्रोंका जन्म हुआ तो मैंने परमसुख माना। हे मित्र ! मैं अपने पुत्रोंमें और आपके पुत्रोंमें कुछ भेद नहीं समझता, परन्तु इन दिनों कंसने बड़ा उपद्रव मचा रखा है, छोटे-छोटे बालकोंको मारनेकी

वसुदेव उवाच ॥ करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ॥ नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥ ३१ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥
इति श्रीभागवते महा० दशमस्कन्धे पू० नन्दवसुदेवसंगमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ॥ हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥

भा० टी०
अ० ६

आज्ञा दे रखी है और आज एक पूतना राक्षसीको गोकुलमें भी भेजा है, तुम वार्षिक कर कंसको दे चुके और हमसे भी मिल चुके, अब यहां रहना तुम्हारा बहुत दिनतक अच्छा नहीं, न जाने गोकुलमें पूतनाने क्या उत्पात मचाया होगा ? ॥३१॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीके वचन सुन नन्दरायने सब गोपोंको आज्ञा दी कि शीघ्र गाड़ी जोतो। यह कह वसुदेवजीसे आज्ञा लेकर नन्दजी मथुरापुरीसे गोकुलको चल दिये ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां नन्दवसुदेवसमागमवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–छठयेमें नन्दरायजी, शोच करत मन जाहिं। मरी परी इक राक्षसी, देखी मारग–माहिं ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! नन्दरायजी मार्गमें यह विचार करते हुये जा रहे थे कि वसुदेवका वचन तो मिथ्या

हो ही नहीं सकता, उत्पातके भयसे भगवान्‌का स्मरण करने लगे कि हे जन प्रतिपालक ! जो यह दो बालक आपने दिये हैं तो इनकी रक्षा भी आपको करनी पड़ेगी ॥१॥ महाघोर रूपवाली बालघातिनी पूतना नाम राक्षसी कंसकी पठायी हुई जितने ब्रजमें पुर, ग्रामादिक थे सबमें बालकोंको मारती-फिरती थी ॥ २ ॥ यह बात सुनकर राजा परीक्षित्‌के मनमें शंका हुई तो श्रीशुकदेवजीसे पूछा कि यह पूतना नंदजीके मंदिरमें गई वा नहीं गयी ? और गयी तो क्या किया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! चिंता मत करो। जहां परमेश्वर का यश और यज्ञादिक कर्म नहीं होते वहीं राक्षसी जा सकती है और अपना पुरुषार्थ करती है और जिन स्थानोंमें भगवान्‌का स्मरण होता रहता है, वहां राक्षस लोग क्या कर सकते हैं ? और नंदजीके भवनमें तो साक्षात् अनन्त भगवान् विराजमान हैं फिर वहां पूतना विचारी क्या कर सकती है ? आप ही मारी जायगी ॥३॥ हे राजन् ! अनेक राक्षस गांव-गांवमें बालकोंको मारनेके लिए फिरते थे, परंतु तो भी कंसके

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ॥ शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥ न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ॥ कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥ सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ॥ योषित्वा माययाऽऽत्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥ ४ ॥ तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ॥ सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलभूषिताननाम् ॥ ५ ॥

मनमें धैर्य नहीं था और आठों पहर इसी शोचमें व्याकुल था कि उसी अवसर पर पूतना नाम राक्षसीको बुलाकर अपना सब वृत्तांत कहा कि और किसीसे तो हमारा कार्य पूरा न हुआ परंतु मुझको विश्वास है कि तुमसे हमारा काम सिद्ध होगा और बालकका तो मुझको थोड़ा ही खटका है, परंतु गोकुलमें नंदके जो पुत्र हुआ उसका बड़ा भय है, तू गोकुलमें जा और उसको किसी प्रकार मारके आ मैं तुझको पूरा पारितोषिक दूंगा। यह बात सुनते ही पूतना कंसकी आज्ञा शिरपर धारण कर गोकुलको चल दी और मार्गमें यह विचार करती जाती थी कि किस प्रकार नन्दकुमारको मारना चाहिये ? सोचा कि और किसी प्रकार नहीं होगा, गोपीका वेष बनाकर बधाई देनेके मिषसे नंदके घर जाऊँ और छलबलकर उस बालकको मार डालूं। इस प्रकार बन-ठन गोकुलमें पहुंची ॥ ४ ॥ उसकी चोटीमें मालतीके फूल गुँथे हुए थे, बड़े-बड़े नितम्ब सुन्दर स्तनोंके भारसे कटि जिससे नीचेको झुकी जाती थी, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण कर रही

थी, कानोंमें कर्णफूल, कुण्डलोंकी छवि शशिको लज्जित कर रही थी और केशोंसे जिसका मुख शोभायमान हो रहा था ॥ ५ ॥ मन्द-मंद मुसकान और बांकी चितवन ब्रजवासियोंके मनको मोहित करनेवाली; बेखटके राजभवनमें चली गयी और द्वारपालोंपर ऐसी मोहिनी डाली कि किसीने उसको नहीं रोका और उसके हाथमें एक कमलका फूल था उसको देखकर सब गोपियोंने कहा कि यह लक्ष्मी अपने पति नारायणके दर्शनके लिये आयी हैं और यशोदा रोहिणीने भी यही जाना ॥६॥ ग्रहरूप पूतना छोटे-छोटे बालकोंको खोजती हुई नन्दजीके मंदिरमें गयी, जहां दुष्टोंके मारनेवाले भगवान भस्म में दबी हुई अग्निके समान बालकरूपमें अपने तेजको छिपाये शय्यापर पड़े सो रहे थे, उनको देखा ॥७॥ स्थावर जंगम प्राणियोंके अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने इस बालघातिनी पूतनाको देखकर आंखें

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम्॥अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम् ॥ बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि॥७॥ विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः ॥ अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥८॥ तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यान्तरा कोशपरिच्छदासिवत् ॥ वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥ ९ ॥ तस्मिन् स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोराऽङ्कमादाय शिशोर्ददावथ ॥ गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥

मीच लीं और हँसकर चुप हो रहे, उस दुष्टाने आते ही कालरूप भगवान्‌को गोदीमें उठा लिया, जैसे कोई अज्ञानी पुरुष रस्सी समझकर सोते हुए सांपको उठा लेता है ॥ ८ ॥ जैसे मखमली म्यान की तलवार ऊपरसे मनोहर कोमल और भीतरसे महातीव्र तीक्ष्ण धारवाली होती है, ऐसी पूतनाको देख चकित होकर रोहिणी और यशोदा देखती रहीं, मुखसे कुछ न कहा, तब एक गोपी बोली कि तू कौन है ? तब उस कपटिन पूतनाने कहा कि मैं देवांगना हूं, तुम्हारे यहां बधाई देने आयी हूं। इस मनोहर बालकको देखकर जी खिलानेको चाहा, इसलिए गोदमें ले लिया, परमेश्वर करे यह बालक करोड़ वर्ष जीता रहे॥ ९ ॥ ऐसी रीतिप्रीति भरी बातचीत कर उस कपटरूप पूतनाने चुमकारके कृष्णको गोदमें ले लिया और भयानक विष लगा हुआ अपना स्तन पकड़के मुख कमलमें दे दिया, तब तो

कुपित होकर कृष्णचन्द्रने दोनों हाथोंसे उसके स्तन पकड़कर प्राण सहित स्तनको ओषधि समझकर पी गये ॥ १० ॥ तब पूतना बोली–अरे लाल ! छोड़ दे छोड़ दे, प्राण चलने चाहते हैं अतः बस, रहने दे, मेरा अपराध क्षमा कर, मेरे शरीरमें अत्यन्त पीड़ा होती है, जब नेत्र फटने लगे तो पुकारा–अरी यशोदा ! अपने लालसे मुझको छुड़ा, मैं मरी, यह तेरा बालक मनुष्य नहीं है, यह तेरी कोखमें कोई महाबलवान देवता उत्पन्न हुआ है। यह कहती ही कहती हाथ पांव पीटकर मर गयी ॥११॥ पूतना के महागम्भीर शब्दसे पर्वतों सहित

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीडयमानाऽखिलजीवमर्मणि ॥ विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा-क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥ तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा ॥ रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्कया ॥ १२ ॥ निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ॥ प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥ १३ ॥ पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ॥ चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४ ॥

पृथ्वी कम्पायमान हो गयी, ग्रह तारागणसहित सब आकाशमण्डल चलायमान हो गया, रसातल और दिशाओंमें घोर शब्द पूरित हो गया, इन्द्रके वज्रपात होनेकी शङ्कासे मनुष्य पछाड़ खा-खाकर पृथ्वीपर गिर गये * ॥ १२ ॥ स्तनोंकी व्यथासे प्राण जिसके निकल गये और मरते समय अपना कपट रूप जिसने त्याग दिया अर्थात् राक्षसीरूप प्रकट कर लिया, जैसे मरनेके समय वृत्रासुर कपट तजकर भूतलपर गिरा था; इसी प्रकार पूतनाभी हाथ-पांव पसारके पृथ्वीपर गिर गयी॥१३॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्!जिस समय पूतना मरकर

* शंका—कंसकी भेजी हुई पूतनाने मरते समय ऐसा गम्भीर शब्द किया कि तीनों लोक कम्पायमान हो गये । बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है, हम लोगोंने तो कभी नहीं सुना कि राक्षसीके शब्दसे तीनों लोक कांप उठे ?

उत्तर—जब पूतनाने मरते समय शब्द किया उस समय गुप्त होकर तीन लोकोंमें स्थित जो प्रजा थी वह सब श्रीकृष्णके दर्शनके लिये ब्रजमें आयी थी, सब प्रजागण पूतनाके शब्दको सुनकर शीघ्र कांपने लगे, इस लिये तीन लोकका नाम व्यासजीने कहा था, क्योंकि लोक प्रजाका भी नाम है ।

पृथ्वीपर गिरी उस समय छः कोशके बीचमें जो वृक्ष थे चूर्ण हो गये ॥१४॥ उस महाभयानक रूपवाली पूतनाके मुखमें हलके समान दाढें और पहाड़की कन्दराके समान जिसकी नाक पर्वतके शृङ्गके सदृश जिसके स्तन और महाभयंकर लोहित रंगके जिसके बिखरे हुए केश थे॥१५॥ अन्धकूपकी नाईं गम्भीर जिसके नेत्र, जैसे पुल बंधा हो वैसे ही जिसके हाथ-पांव जंघा और सूखे सरोवरके समान जिसका उदर है॥१६॥ऐसा महाभयानक पूतनाका देह देखकर गोप-गोपी अत्यन्त भयभीत हुए, क्योंकि उसके गम्भीर शब्दसे पहले ही उनके हृदय, कान, मस्तक फट गये थे॥१७॥उस पूतनाकी छाती पर निःशंक श्रीकृष्णचंद्र क्रीड़ा कर रहे थे, सब गोपी जो हड़बड़ाई हुई व्याकुल फिरती थीं झटपट उस राक्षसीके

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ॥ गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥ अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ॥ बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥१६॥ संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ॥ पूर्वं तु तन्निस्स्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥१७॥ बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् ॥ गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ॥ रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥ गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसाऽर्भकम् ॥ रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः ॥ २० ॥ गोप्यः संस्पृष्टसलिला अंगेषु करयोः पृथक ॥ न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥ अव्यादजोऽङ्घ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ॥ हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२ ॥

ऊपरसे श्रीकृष्णचन्द्रको उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥ १८ ॥ सब गोपी यशोदा रोहिणी ब्रजनन्दनको गायकी पूंछसे झाड़ा देकर फूंक मारने लगीं और अनेक विधियोंसे रक्षा करने लगीं ॥१९॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेको गोमूत्रसे स्नान कराकर गोरजमें लुटाय गोबर लगाय द्वादश अंगोंमें केशवादिक द्वादश नामोंसे रक्षा करने लगीं ॥ २० ॥ सब गोपियोंका मन जो व्याकुल हो रहा था इसलिए पहले कुछ श्रेष्ठ उपाय न कर सकीं, फिर सावधान हो स्वस्थ चित्त कर सब गोपी स्नान कर आचमन ले अपने अंगोंमें तथा करोंमें पृथक्-पृथक् अंगन्यास और करन्यास करके फिर नन्दनन्दनके शरीरमें बीजन्यास किया ॥ २१ ॥ हे यशोदानंदन ! अजन्मा भगवान् तुम्हारे

चरणोंकी रक्षा करें, अणिमान् भगवान् तुम्हारे ऊरुओंकी रक्षा करें, यज्ञ भगवान् तुम्हारी जङ्घाओंकी रक्षा करें, अच्युत भगवान् तुम्हारी कटिकी रक्षा करें, हयग्रीव भगवान् तुम्हारे उदरकी रक्षा करें, केशव भगवान् तुम्हारे हृद्‌य की रक्षा करें, विष्णुभगवान् तुम्हारी भुजाओंकी रक्षा करें, उरुक्रम भगवान् तुम्हारे मुखारविंदकी रक्षा करें, ईश्वर भगवान् तुम्हारे माथेकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी भगवान् तुम्हारे अग्रभागकी रक्षा करें, गदाधर भगवान् तुम्हारे पश्चाद्भागकी रक्षा करें, धनुषधारी मधुनाम दैत्यके हन्ता भगवान् और खड्गधारी अजन्मा भगवान् यह दोनों तुम्हारे दाहिने और बांयी पार्श्वके रक्षा करें, शङ्खधारी उरुगाय भगवान् चारों कोनोंकी रक्षा करें, उपेन्द्र भगवान् तुम्हारे ऊपरकी रक्षा करें, तार्क्ष्य भगवान् नीचे पृथ्वीकी रक्षा करें, हलधर भगवान् सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें ॥२३॥ हृषीकेश भगवान् तुम्हारी

चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ॥ कोणेषु शंख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात ॥ २३ ॥ इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु ॥ श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भश्च ते बुद्धिमात्मानं भगवान् परः ॥ क्रीडन्तं पातु गोविंदः शयानं पातु माधवः ॥ २५ ॥ व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ॥ भुञ्जानं यज्ञभुक्पातु सर्वग्रहभयंकरः ॥ २६ ॥ डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥ कोटरारेवतीज्येष्ठापूतना-मातृकादयः ॥ उन्मादा ये ह्यपस्मारादेहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ २८ ॥

इन्द्रियोंकी रक्षा करें, नारायण भगवान् प्राणोंकी रक्षा करें, श्वेतद्वीपाधिपति भगवान् तुम्हारे चित्तकी रक्षा करें, योगेश्वर भगवान् तुम्हारे मनकी रक्षा करें ॥२४॥ पृश्निगर्भ भगवान् तुम्हारी बुद्धिकी रक्षा करें, परम भगवान् तुम्हारी आत्माकी रक्षा करें, विहार के समय गोविंद भगवान् तुम्हारी रक्षा करें,शयनके समय माधव भगवान् तुम्हारी रक्षा करें ॥ २५ ॥ वैकुण्ठनाथ भगवान् चलने-फिरनेके समय तुम्हारी रक्षा करें, लक्ष्मीपति भगवान् बैठनेके समय तुम्हारी रक्षा करें और सर्व ग्रहोंके भयको दूर करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् भोजनके समय तुम्हारी रक्षा करें ॥ २६ ॥ डाकिनी, शाकिनी, यातुधानी, कूष्माण्ड, बालग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायकगण ॥ २७ ॥ कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृकादिक जो राक्षसी हैं वे और उन्माद अपस्मारादिक जो-जो रोगके करनेवाले देह प्राण इंद्रियोंके द्रोही

हैं ॥ २८ ॥ और जो-जो स्वप्नमें देखनेके उत्पात हैं वृद्धग्रह, बालग्रह, योगिनी, वैताल, जो समस्त विष्णुभगवान्के नाम लेनेसे डरते हैं वे सब नष्ट हो जायें ॥ २९ ॥ इस प्रकार हाथ जोड़ गोपियोंने विष्णु भगवान्की प्रार्थनासे रक्षा करके श्रीयशोदानन्दनको यशोदाको सौंप दिया । तब यशोदाजीने मनमोहन प्यारेको दूध पिलाकर घरमें छिपाकर शय्यापर सुला दिया ॥३०॥ उसी अवसरमें नन्दादिक व्रजवासी भी मथुरासे आ गये, तब मार्गमें मरी हुई पूतनाको पड़ी देख बड़ा आश्चर्य मानकर ॥३१॥ नन्दजी कहने लगे कि वसुदेवजी तो निश्चय कोई ऋषि वा योगेश्वर जान पड़ते हैं, क्योंकि जो कुछ उन्होंने हमसे कहा था वही हुआ । हमसे कहा था कि तुम शीघ्र मथुरासे

स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ॥ सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ ॥२९॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ॥ पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ॥ ३० ॥ तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ॥ विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥ नूनं बतर्षिः सञ्जातो योगेशो वा समास सः ॥ स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२ ॥ कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः ॥ दूरे क्षिप्त्वावयवशो न्यदहन् काष्ठवेष्टितम् ॥ ३३ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ॥ उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४ ॥ पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ॥ जिघांसयाऽपि हरये स्तनं दत्त्वाऽप सद्गतिम् ॥ ३५ ॥ किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ॥ यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥

गोकुलको जाओ, वहां कोई नया उत्पात होनेवाला है, वह आते ही नेत्रोंसे देख लिया ॥३२॥ पीछे सब गोकुलवासियोंने पूतनाके देहको कुल्हाड़ोंसे काट-काटकर घरोंसे दूर ले जाकर चितामें धर उसको फूंक दिया ॥ ३३ ॥ जिस समय पूतनाका शरीर जलने लगा तो उसकी चितामेंसे अगर कीसी सुगन्धका धुवां निकलने लगा । श्रीकृष्णचन्द्रने उसके स्तन जो पान किये थे इससे सब पाप उसके दूर हो गये ॥ ३४ ॥ जगत्के बालकोंको मारनेवाली और रुधिरकी प्यासी पूतनाने भगवान्को स्तन पिलाकर मारनेकी इच्छा की, परंतु भगवान्ने तो भी उसको मोक्ष दिया ॥ ३५ ॥ फिर श्रद्धा और भक्ति करके श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्की माता अत्यन्त प्रिय पदार्थोंकी देनेवाली मुक्तिको

पाये तो क्या आश्चर्यकी बात है ? ॥ २६ ॥ अपने जनोंके हृदयमें वास करनेवाले और लोकवंदित देवताओंके भी पूजनीय ऐसे देवताधिपति ब्रह्मा जिनको प्रणाम करें ऐसे चरणारविंदोंसे पूतनाका अंग दाबकर श्रीकृष्णचन्द्रने स्तनपान किया ॥ २७ ॥ माताकी गति स्वर्ग है; उस गतिको पूतना राक्षसीने प्राप्त किया और जिन गायों, गोपियोंका दूध श्रीकृष्णचन्द्रने पिया है जो वह सुन्दर गतिको प्राप्त हों तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ २८ ॥ मोक्ष आदि समस्त पदार्थोंके देनेवाले देवकीके पुत्र भगवान्‌ने पुत्रके स्नेहसे गाय और गोपियोंका दूध परिपूर्ण होकर पिया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! कृष्णचन्द्रमें पुत्रभाव माननेवाली उन माता और गोपियोंको अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः ॥ अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत् स्तनम् ॥३७॥ यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननी गतिम् ॥ कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥ ३८ ॥ पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ॥ भगवान्देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥ तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ॥ न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥ ४० ॥ कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ॥ किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥ ४१ ॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ॥ श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥ नंदः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥ ४३ ॥

संसार न होगा ॥ ४० ॥ व्रजवासी लोग पूतनाकी चिताके धुएँकी सुगन्ध सूंघकर परस्पर कहने लगे यह आज क्या है और यह सुगंध कहांसे आती है ? यह कहते हुए नन्दादिक गोकुलमें आये ॥ ४१ ॥ तब ग्वालबालोंके मुखसे पूतनाका आना और उसका मरना और कुशलपूर्वक बालकका बचना सुनकर नन्दादिक व्रजवासी बड़ा आश्चर्य मानने लगे ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! उदारबुद्धि नन्दजी मथुरासे आकर पुत्रको गोदमें लेकर परमानन्दको प्राप्त हुए और वारंवार उसके

शिरको सूँघ-सूँघ मन ही मनमें प्रसन्न होते थे और चूम-चूमकर प्यार करते थे ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित्ने पूछा कि हे भगवन् ! यह पूर्वजन्ममें पूतना कौन थी, जिसको श्रीकृष्णचंद्र महाराजने ऐसी उत्तम गति दी ? श्रीशुकदेवजी बोले कि प्रथमजन्ममें यह राजा बलिकी कन्या थी और रत्नमाला इसका नाम था । वामनजीके स्वरूपको इसने देखा तो मन ही मनमें यह कामना की कि जो ऐसा सुंदर सुत मैं पाऊँ तो हृदय पर रखकर स्तन पान कराऊँ । श्री भगवान् वासुदेव सर्व घट-घटके वासी उन्होंने उसके हृदयकी गति जानकर कहा कि कृष्णावतारमें तेरी कामना पूर्ण करूँगा । दैत्यकुलमें इसका जन्म था इसलिये तामसी देहके कारण राक्षसके ही घरमें जन्म लिया और "पूतना" नाम हुआ ॥ ४४ ॥ यह श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानंदनका अद्भुत चरित्र पूतनामोक्षकी कथा जो कोई श्रद्धापूर्वक सुनेगा वह निश्चय गोविंद भगवान्का स्नेही होगा ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां

य एतत्पूतना मोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥४४॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे पूतनामोक्षोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ॥ करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुध्यत्यचिरेण पुंसः ॥ भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ॥ मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥ ३ ॥

पूतनामोक्षनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, शकटासुरहि गिराय। माताको मुखमें दिये, तीनों लोक दिखाय ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे प्रभो ! छः प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सब प्राणियोंके दुःखोंके दूर करनेवाले श्रीकृष्णचंद्र भगवान्ने जिन-जिन अवतारोंको धारण करके जो-जो लीलायें की हैं वे सब मेरे कानोंको और मुझको प्रिय लगती हैं ॥ १ ॥ जो मनुष्य श्रीकृष्णचंद्रके चरित्रोंकी कथा दिन-रात सुनते हैं, उनके मनकी ग्लानि जाती रहती है और अनेक प्रकारकी तृष्णा भी दूर हो जाती है, शीघ्र ही सम्पूर्ण अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है, भगवान्में भक्ति और प्रेम बढ़ता है और हरिभक्तोंसे मित्रता होती है इसलिये अनुग्रह करके श्रीकृष्णके मनोहर चरित्र मुझको सुनाओ ॥ २ ॥ और मनुष्य देह धारण कर मनुष्योंकीसी लीला करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रका और भी मनोहर

अद्भुत बालचरित्र हमारे सामने वर्णन करो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन्! जब बहुत दिन व्यतीत हुए तो श्रीकृष्णचंद्रजीकी वर्षगांठके उत्सवका दिन आया और उसी दिन जन्म नक्षत्रका योग भी आ गया, तो उस दिन महामंगल हुआ और सब गोपिका भी बधाई ले-लेकर आयीं! नंदरानी यशोदाजीने बाजे बजवाये, गीत गवाये, ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन पढ़वाया और श्रीकृष्णचंद्रको अभिषेक (स्नान) कराने लगीं ॥ ४ ॥ जब स्नान करवाया तो बाल मुकुंदके नेत्रोंमें निद्रा आ गयी तब सहजसे श्रीकृष्णको गाड़ेके नीचे पालनेमें व्रजरानीने थपकी देकर सुला दिया ॥५॥ भगवान्की बधाई लेनेसे जिनके मनमें अत्यन्त हर्ष बढ़ रहा था, वह यशोदारानी उदारचित्त घर

श्रीशुक उवाच ॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ॥ वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥ नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ॥ अन्नाद्यवासनस्स्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥ औत्थानिकोत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः ॥ नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदन्स्तनार्थीचरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥ अधश्शयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ॥ विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्त चक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ॥ नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥८॥

आयी हुई गोपियोंका आदर-सम्मान कर रही थीं और ऐसी मग्न हो रही थीं कि अपने पुत्रके रोनेका शब्द भी नहीं सुन सकीं। श्रीकृष्णको भूख लगी तो दूध पीनेकी इच्छा हुई तब रोते-रोते पांव ऊपरको उठा लिये ॥ ६ ॥ गाड़ेके नीचे पालनेमें श्रीकृष्णके अति छोटे-छोटे कोमल कमलसे चरणारविन्द लाल-लाल मूँगोंके रंग उन चरणोंकी ठोकरसे गाड़ा गिर पड़ा और अनेक प्रकारके रसोंसे भरे तांबे पीतलके वासन गिर पड़े, पहिये न्यारे-न्यारे उखड़कर गिर गये, धुरी निकल गयी, जुआ टूट गया ॥ ७ ॥ यशोदा आदि जो व्रजकी स्त्रियाँ थीं और जो-जो भेटें लेकर नंदके घर उत्सवमें आयी थीं, वह और नंदजी आदि जो-जो व्रजवासी वहां थे, वे सब

उस आश्चर्यको देखकर व्याकुल हो गये कि आपसे आप गाड़ा किस प्रकार टूट पड़ा॥८॥कोई कुछ कोई कुछ परस्पर विवाद करके कहने लगे और मन ही मनमें व्याकुल थे, परन्तु किसीको कुछ निश्चय नहीं हुआ। तब नन्द यशोदाके समीपके खेलनेवाले बालकोंने कहा कि तुम किसी बातका सन्देह क्यों करते हो ? हमने अपनी आंखसे देखा कि रोते-रोते श्रीकृष्णने पांवकी ठोकर मारी इससे यह शकट उलटकर गिर पड़ा इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं ॥ ९ ॥ बालक समझकर श्रीकृष्णके अनन्त बलको किसीने नहीं जाना इसलिए उन बालकोंकी बातका किसीने विश्वास नहीं माना और कहने लगे कि कहां श्रीकृष्णके कोमलकमलसे चरण और कहां यह महाकठोर शकट, छोटेसे बालककी ठोकरसे कैसे टूट सकता है ? भाई ! ऐसा तो किसी प्रकार विश्वास नहीं आता ॥ १० ॥ यशोदाने रोते हुए

(इति ब्रुवन्तोऽतिविवाद मोहिता जनाः समन्तात्परिवव्रुरार्तवत) ॥ ऊचुरव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्च बालकाः ॥ रुदताऽनेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९ ॥ न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ॥ अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥१०॥ रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता ॥ कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥ पूर्ववत् स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ॥ विप्रा हुत्वाऽर्चयांचक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ १२ ॥ येऽसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ॥ न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥

अपने पुत्रको उठाकर हृदयसे लगा लिया और कहने लगीं--आज कोई बड़ा खोटा ग्रह हमारे ऊपर आ गया था, परंतु तुम पञ्चोंके प्रतापसे मेरा बालक बचा। उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाकर बहुतसा दान-पुण्य कर स्वस्तिवाचन पढ़वाकर व्रजभूषण प्यारेको दूध पिलाया और बार-बार यही विचार करती रहीं कि कहीं डर न गया हो ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको न जाना इसीसे ब्राह्मणोंके कहनेसे आठों दिशाओंमें बलिदान करके और सम्पूर्ण वस्तु धरकर गाड़ा रख दिया और ब्राह्मणोंने नवग्रहादिकोंका पूजन होम कराकर दधि, अक्षत, फल, फूल, कुश, चंदन मँगाकर जलसे गाड़ेका पूजन किया, देखो! प्रेमी व्रजवासियोंका धान्य खा-खाकर व्रजके ब्राह्मण भी प्रेमी हो गये जो गाडेका पूजन किया ॥ १२ ॥ जिन पुरुषोंमें निंदा, झूठ, पाखंड, ईर्ष्या, हिंसा, अभिमान नहीं है उन सत्यवादी ब्राह्मणोंका आशीर्वाद

कभी निष्फल नहीं होता ॥ १३ ॥ यह बात मनमें विचार कर नंदरायजीने श्रीकृष्णको गोदमें लेकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मंत्रोंसे शुद्ध और पवित्र औषधियोंके पानीसे पुत्रका अभिषेक कराया ॥१४॥ फिर स्वस्तिवाचन और अग्निमें होम कराकर नंदरायजीने और गोप-गोपियोंने सावधान हो श्रेष्ठ गुणकारी अन्नका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥ १५ ॥ सर्वगुणवाली गायोंको सुंदर-सुंदर वस्त्रों की झूलें उढ़ाकर स्वर्ण, चांदी और पुष्पोंकी माला आभूषण पहनाकर काञ्चनसे सींघ मढ़ा पुत्रके कल्याणके लिये दीं और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लिया ॥ १६ ॥ वेदमन्त्रोंके जाननेवाले योग्य ब्राह्मणोंने जो-जो आशीर्वाद दिये वे उसी प्रकार होंगे, क्योंकि ब्रह्मवाक्य किसी समय निष्फल नहीं होता, यह बात शास्त्र और पुराणोंसे प्रकट है ॥१७॥ एक दिन नंदरानी श्रीकृष्णको लाड-प्यार कर रही थीं उसी

इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ॥ जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ॥ हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥ गावःसर्वगुणोपेता वासस्स्रग्रुक्ममालिनीः ॥ आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात् तेचान्वयुञ्जत ॥१६॥ विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाऽऽशिषः॥ ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥१७॥ एकदाऽऽरोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ॥ गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥ भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ॥ महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥ दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ॥ चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥

समय श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतके समान अपने शरीरका भार बढ़ाया कि वह भारी भार यशोदाजीसे सम्हाला न गया। बोझ बढ़ानेका कारण यह है कि श्रीकृष्णचंद्रजीने जाना कि जो मैं माताकी गोदमें रहा तो यह जो मेरे सम्मुख तृणावर्त्त उपस्थित है, यह मेरी माता सहित मुझको उठाकर ले जायगा। इसलिए मुझको कष्ट हो तो हो, परंतु मेरे कारण मेरी माताको कष्ट न हो ॥ १८ ॥ यशोदाने श्रीकृष्णमें भारी भार समझकर बड़ा आश्चर्य माना और बोझसे अति पीड़ित होकर त्रिलोकीनाथको पृथ्वीपर बैठाकर परमेश्वरका ध्यान करने लगीं और मन ही मनमें विचार करने लगीं कि आज मेरे कन्हैयामें इस प्रकार बोझ क्यों हो गया ? इसी सोच-विचारमें घरके कार्यमें लग गयीं ॥ १९ ॥ कंसका अनुचर तृणावर्त्त महाबलशाली था, कंशने कृष्णके मारनेके लिए उसको भेजा वह पवनके बबूलेका रूप धरकर आया और

पृथ्वीपर खेलते हुए कृष्णको उड़ाकर ले गया ॥२०॥ सब गोकुल धूलसे आच्छादित हो गया और ऐसी धूरि उड़ी कि सबकी आंखे मिच गयीं और अन्धकार हो गया। उसके घोर शब्दसे दिशा-विदिशाओंमें सन्नाटा होने लगा ॥२१॥ दो घड़ी तक गोकुलमें अन्धकार छाया रहा, यशोदा ब्रजभूषणके उठानेको आंगनमें दौड़ी आयी, देखा तो वहां कृष्णका पता ही नहीं ॥ २२ ॥ तृणावर्त्तने कंकरी ठीकरियोंकी बड़ी भारी वर्षा की, जिससे सब गोकुलवासी मोहको प्राप्त होकर अपने ही आपको न देख सके, फिर दूसरेको देखना महाकठिन था॥२३॥ इस प्रकार महाकठिन धूलिकी वर्षा होनेसे और आंधीके चलनेसे यशोदाने ढूंढ़ते-ढूंढ़ते कहीं भी ब्रजभूषण प्यारेको नहीं पाया, तब

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः॥ईरयन् सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः॥२१॥मुहूर्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसावृतम्॥ सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥ नापश्यत् कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ॥ तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥२३॥ इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता ॥ अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद् भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥२४॥ रुदितमनु निशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ॥ रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥२५॥ तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ॥ कृष्णं नभो गतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत ॥२६॥ तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ॥ गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम्॥ २७ ॥

अत्यन्त व्याकुल हो मरे हुए बछड़ेवाली गायकी नाईं निर्बल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी और करुणा भरे वचन वह कहकर शोच करने लगी ॥ २४ ॥ उस समय यशोदाका रुदन सुन-सुनकर पशुपक्षियोंका भी हृदय विदीर्ण होता था। अत्यन्त पीडित और महाव्याकुल हुई, नेत्रोंमें आंसू भरे गोपियाँ श्रीकृष्णको विना देखे रो-रोकर प्राण त्यागनेको प्रस्तुत थीं ॥२५॥ इतनेमें धूरि वर्षा आंधी तो थम गई और बबूलेका रूप धरनेवाले तृणावर्त्त दैत्यका वेग सब धरणीके धारण करनेवाले विश्वनाथ भगवान्के उठा ले जानेसे आकाशको न उड़ा गया तो शांत हो गया, इसी कारण उस दैत्यसे अधिक भारी भार लेकर ऊपरको न उड़ा गया ❋ ॥२६॥ जब तृणावर्त्तको बहुत बोझ ज्ञात होने लगा

❋ शंका—श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्द मुनिमनरंजन भक्त भयभंजन भगवान्का नाम है, फिर कृष्णचन्द्रने अपनी माताको और ब्रजवासियोंको दुःखी करके और अपनी माताको रुलाकर अपनी देहमें भारको बढाया तो तृणावर्त हरिको हरकर ले चला तब भगवान्ने अपनी देहमें भार क्यों नहीं बढ़ाया, जो राक्षसके उठानेसे न उठते तो सबको कष्ट क्यों होता ?

तब यह जाना कि मैं किसी बड़े पत्थरको उठा लिया हूं, क्या कोई वज्र मेरे हाथमें है? यह कह श्रीकृष्णसे छूटनेकी इच्छा करने लगा, परंतु श्रीकृष्णने उसका कण्ठ ऐसा गहकर पकड़ा था कि वह किसी प्रकार न छूट सका ॥ २७ ॥ कण्ठके घुटनेसे उसकी चेष्टा हत हो गयी, नेत्र निकल पड़े, मुखसे शब्द न निकल सका, प्राणहीन होकर वह तृणावर्त ❋ दैत्य श्रीकृष्ण समेत गोकुलमें गिर पड़ा ॥ २८ ॥ जैसे महादेवके

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ॥ अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥ तमन्तरिक्षात् पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ॥ पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥ प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लंबमानम् ॥ तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ॥ गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या लब्धाशिषः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥

बाणका मारा त्रिपुरासुर पृथ्वीपर गिरा था, ऐसे ही आकाशसे वह विकराल दैत्य शिलाके ऊपर गिरा, जिसके सब अंग टूटकर चूर हो गये। उस तृणावर्तका वह महाभयानक रूप रोती हुई व्रजबालाओंने देखा ॥ २९ ॥ उस तृणावर्तकी छातीके ऊपर निर्भय खेलता हुआ

उत्तर—ब्रह्माने पहले तृणावर्तको वरदान दिया था कि तेरे किये दुःख से यशोदाकी आंखोंसे आंसू गिरेगी तब तेरी मृत्यु होगी, इसलिये श्रीकृष्णने अपनी देहमें भार नहीं बढ़ाया।

राजा परीक्षित् बोले कि, हे प्रभो! पूर्वजन्ममें यह तृणावर्त कौन था, जो इसने राक्षसका शरीर पाया? यह सब कथा मुझको समझाकर कहो। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! यह तृणावर्त पाण्डुदेशका राजा था और 'विश्व विजय' इसका नाम था। दुर्वासा ऋषिके शापसे यह राक्षश होगया। परीक्षित्ने फिर पूछा कि क्या ऐसा खोटा कर्म उसने किया जो यह शाप दुर्वासाने दिया? श्रीशुकदेवजी बोले कि इस राजाके एक सहस्र स्त्रियां थीं। एक दिन उन सब स्त्रियों समेत वनविहारके हेतु वनको गया और वहां ऊँचे-ऊँचे वृक्ष आकाशसे बातें कर रहे थे, सुन्दर फल-फूल खिल रहे थे। मोर, कीर, कोकिला बोल रहे थे, एक ओर गन्धमादन पर्वत निराला ही शोभा दे रहा था। उसके नीचे पुष्पभद्रा नदी न्यारी ही लहरें लेती चली जाती थी। ऐसा शोभायमान निर्जन वन देखकर उसी नदीमें स्त्री और आप नंगा होकर जलक्रीड़ा करने लगा। मद पी-पी कर स्त्री और राजा ऐसा मतवाला हो गया कि सम्पूर्ण लज्जा त्याग निर्लज्ज बन जलविहार करने लगा। उसी समय एक लाख शिष्यों को साथ लिये दुर्वासाऋषि भी उसी आश्रममें आगये, देखा तो सब स्त्रियोंके संग राजा नंगा होकर केलि कर रहा है मुनिने कोप करके शाप दिया कि रे दुष्ट! मेरे वचनके प्रतापसे तू असुर हो जा, भारतखण्डमें एक लाख वर्षतक भ्रमता फिरेगा, जब व्रजमें श्रीकृष्णचन्द्र अवतार लेंगे तो तू उनके हाथसे मृत्यु पायेगा। तब तेरी मुक्ति होगी। राजा यह शाप सुन बहुत उदास हुआ और अग्निकुण्ड बनाकर सब स्त्रियों सहित अपना शरीर भस्म कर दिया।

श्रीकृष्णको भी देखा तो तुरंत गोपियोंने दौड़कर श्रीकृष्णको उठाकर यशोदाकी गोदमें दे दिया बड़ा आश्चर्य मानकर सब गोपी यह कहने लगीं कि बालकको उठाकर यह राक्षस आकाशमें ले गया था, यह बालक मृत्युके मुखमेंसे फिर निकलकर आया है नंदादिक गोप और गोपिकायें कृष्णको पाकर परमानंदको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ और परस्पर कहने लगे कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि देखो इस राक्षसने इस बालकके मारनेमें कुछ भी कसर नहीं रखी, परन्तु भगवान्ने इसको बचाया और यह दुष्ट अपने पापसे आप ही मर गया और यह बालक साधुके समान है, इसलिए इस दुष्टके हाथसे छूट आया। साधु पुरुष अपनी समताके द्वारा भयसे छूट जाते हैं ॥३१॥ देखो हमने ऐसा कौनसा भारी तप किया है! क्या भगवान् वासुदेवका पूजन किया है ? क्या कुआं, बावडी, तालाब खुदवाये हैं ? क्या पंचयज्ञ

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात् पुनः ॥ हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ॥३१॥ किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ॥ यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन्नुपस्थितः ॥३२॥ दृष्ट्वाऽद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ॥ वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥३३॥ एकदाऽर्भकमादाय स्वांकमारोप्य भामिनी ॥ प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥ पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ॥ मुखं लालयती राजन्जृम्भतो ददृशो इदम् ॥ ३५ ॥

किये हैं ? क्या कोई बड़ा भारी दान किया है ? अथवा भूखे-नंगे प्राणियोंपर दया की है ? जिन पुण्योंके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हुआ हमारा बालक अपने माता-पिता और बन्धुओंके सुख देनेके लिए लौटकर आ गया ? ॥ ३२ ॥ नन्दजीने गोकुलमें बहुतसे उत्पातोंको देखकर अपने मनमें बड़ा आश्चर्य माना। हमसे मथुरामें वसुदेवजीने पहले ही कह दिया है कि गोकुलमें बड़ा भारी उत्पात होगा, आज हमको वसुदेवजीके उस वचनका पूर्ण विश्वास हो गया ॥ ३३ ॥ एक समय यशोदाजी मनमोहन प्यारेको अपनी गोदमें बैठाकर मोहमें अति निमग्न होकर जिन स्तनोंसे दूध टपकता था वह स्तन पिलाने लगीं, देखो यशोदाके कैसे उत्तम भाग्य हैं ॥ ३४ ॥ कुछ एक स्तन पिया पीछे यशोदाजी अपनी मन्दमुसकानसहित श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविंदके ऊपर अंगुली धरकर दूध पिलाने लगीं। इतनेमें ही हे राजन् !

श्रीकृष्णने जँभाई ली, उस समय यशोदाने उनके मुखमें यह सब संसार देखा ॥३५॥ आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारागण, दिशा, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन, स्थावर, जंगम, जीव इन सबको देखा ॥ ३६ ॥ हे राजन्! सब विश्वको तत्काल यशोदाने श्रीकृष्णके मुखमें देखकर डरके कारण कम्पायमान होकर अपने मृगकेसे नेत्र बन्द कर लिया और बड़ा आश्चर्य माना कि इस बालकके मुखमें मैंने क्या जञ्जाल देखा ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां शकटतृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा–अष्टममें श्रीगर्गमुनि, नन्दरायगृह आय। नामकरण उत्सव कियो, मुखमें विश्व दिखाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ॥ द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥ ३६ ॥ सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः ॥ संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशमस्कन्धे पू० शकटतृणावर्तभञ्जनविश्वप्रदर्शनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ॥ व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥ आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरस्सरम् ॥२॥ सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ॥ नन्दयित्वाऽब्रवीद् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३ ॥ महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ॥ निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥ ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ॥ प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥ ५ ॥

हे राजन्! बड़े तपस्वी यादवोंके पुरोहित श्रीगर्गाचार्य वसुदेवजीके भेजे हुए मथुरापुरीसे गोकुलमें नंदरायजीके घर आये ॥ १ ॥ गर्गाचार्यको देखकर नन्दजी बहुत प्रसन्न हुए और उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और भगवान्‌के समान जानकर पूजन किया ॥ २ ॥ गर्गाचार्यजीको सुन्दर आसन पर बैठाकर षड्रस भोजन कराया और मधुरवाणीसे नन्दरायजी बोले कि अहो ब्रह्मन्! आप तो परिपूर्ण हो, आपका पूजन हम किस प्रकार कर सकते हैं? ॥ ३ ॥ हे भगवन्! दीन गृहस्थ लोगोंके कल्याण करनेके लिए आप सरीखे महात्मा अपने आश्रमसे गृहस्थोंके घर जाते हैं और उनसे अपना कुछ प्रयोजन नहीं रखते ॥ ४ ॥ और जो देखने और सुनने में नहीं आता उस

ज्ञानका प्रकट करनेवाला और सूर्य-चन्द्र नक्षत्रादिकोंका प्रतिपादन करनेवाला ज्योतिषशास्त्र साक्षात् आपने कथन किया है; जिसके पढ़नेसे पुरुष भूत, भविष्य, वर्तमान कालका वृत्तान्त जान लेता है ॥५॥ ज्योतिष शास्त्रके कर्ता और वेदवादियोंमें भी आप परिपूर्ण हो, इस लिए तुम हमारे दोनों पुत्रोंका नामकरणसंस्कार करो। तब गर्गाचार्यजीने कहा कि जो तुम्हारे गुरु आचार्य हों उनसे नामकरण क्यों नहीं करा लेते? तब नन्दजी बोले कि हे महाराज! आपके सम्मुख और कौन है? क्योंकि ब्राह्मण जन्मसे ही सबके गुरु हैं ॥ ६ ॥ फिर गर्गा-

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ॥ बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥ गर्ग उवाच ॥ यदू-नामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ॥ सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥ कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ॥ देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥ इति संचिन्तयञ्छ्रुत्वा देवकीदारिकावचः ॥ अपि हन्ताऽऽगताशंकस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९ ॥

चार्यजीने कहा कि मैं यादवोंका पुरोहित हूँ और सब जगत्में विख्यात हूँ, जो मैं तुम्हारे पुत्रोंका नामकरण संस्कार कराऊँगा तो वह दुष्टात्मा कंस इन बालकोंको देवकीके पुत्र समझेगा ॥ ७ ॥ और आपकी और वसुदेवजीकी परम मित्रता है यह बात भी कंस भलीप्रकार जानता है और दूसरे कंसको यह भी सन्देह है कि देवकीके गर्भमें कन्या न होनी चाहिये, कहीं अपने पुत्रको पहुँचा न दिया हो, क्योंकि कंस दिन-रात सैकड़ों विचार किया करता है ॥ ८ ॥ और अब तो उसने देवकीके गर्भसे कन्या उत्पन्न हुई समझ ही रखी है, और जो दूसरी यह बात सुनेगा

* शंका--गर्गाचार्यने नन्दजीके संग कपट क्यों किया? हम कृष्णका नाम नहीं धरेंगे यह क्यों कहा? इसलिये तो गये ही थे, झूंठ वचन एक क्षण में ब्राह्मणोंके सब तपका नाश कर देता है, जान बूझकर क्यों झूंठ बोले?
उत्तर---गर्ग मुनिने अपने मनमे विचारा कि जो हम नन्दसे सत्य बोलेंगे और प्रत्यक्ष कृष्णका नाम धरेंगे तो बड़े उत्साहसे बाजा बजायके अनेक हर्षसे आनन्द करेंगे तब कंसादिक दैत्य जान जायँगे कि, यह बालक किसी यदुवंशका है तो बडाभारी उत्पात होगा, इसलिये झूठ बोले कि, बिना कपट किये नन्दजी गुप्त नाम न धरा बडा उत्साह करते और शास्त्र में ऐसा भी लिखा है, पराये उपकारके लिये झूठ बोलनेका कुछ,दोष नहीं होता।

कि गर्गाचार्यने नन्दजीके घर जाकर बालकोका नाम रखा है, इससे निश्चय वह जानेगा कि यह वसुदेवजीके पुत्र हैं और कंस तो बिना ही जाने बालकोंके मारनेका उपाय कर रहा है और जो सत्य समझकर इन बालकोंको मरवा दिया तो बड़ा अनर्थ होगा ॥९॥ नन्दजी बोले कि, हे गर्गाचार्यजी ! वह उपाय करो जो हमारे साथी ब्रजवासी भी नहीं जानें, इस प्रकार एकांत स्थान जहां गायोंका खिरक वहां बैठकर स्वस्तिवाचन पढ़कर दोनों बालकोंका संस्कार किया, जो कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको करना योग्य है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार नन्दरायजीने जब प्रार्थना की तो एकांतमें गर्गाचार्यजीने छिपकर नामकरण किया, क्योंकि नामकरण करनेकी इच्छासे तो गर्गाचार्यजी आये ही थे ॥ ११ ॥ गर्गमुनि बोले कि यह रोहिणीका पुत्र अपने गुणोंसे सुहृदोंको रमण करायेगा इसलिये इसका

नन्द उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे ॥ कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥
श्रीशुक उवाच ॥ एवं संप्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ॥ चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥
गर्ग उवाच ॥ अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः ॥ आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ॥ यदूनाम-
पृथग्भावात् संकर्षणमुशन्त्युत ॥ १२ ॥ आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं
कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥

नाम 'राम' रखना चाहिये और बल अधिक होगा इसलिये इसका नाम 'बलदेव' रखना चाहिये और बिछुरे यादवोंको मिलायेगा इससे इसका नाम 'संकर्षण' होगा ॥ १२ ॥ और यह जो तुम्हारा दूसरा पुत्र है, यह युग-युगमें अवतार धारण करता है और इसके तीन रंग हुए–श्वेत, लाल, पीला। सत्युगमें शुक्लवर्ण हुआ, त्रेतामें लालवर्ण हुआ और द्वापरमें पीतवर्ण हुआ। अब इन्द्र-नीलमणिके सदृश श्यामसुन्दर रूप धारण किया है, इसलिये इसका 'कृष्ण' नाम रखना चाहिये ॥ १३ ॥ किसी समय यह तुम्हारा महाभाग पुत्र वसुदेवजीके घर जन्मा था, इसलिए ज्ञानी पुरुष इसका नाम वासुदेव भी कहेंगे, तुम्हारे पुत्रके गुणकर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं और रूप भी अनेक हैं, उनको मैं नहीं जानता और कोई दूसरा पुरुष भी नहीं जानता, क्योंकि यह बालक परब्रह्म परमेश्वरका

अवतार है, इसलिये इसका भेद ब्रह्मा, शिव, सनकादिक भी नहीं जान सकते हैं ॥ १४ ॥ गाय, गोप, गोपी और तुमको आनन्द देनेवाला यह तुम्हारा पुत्र होगा और नन्दरायजी ! तुम्हारे ऊपर बड़े-बड़े कष्ट आकर प्राप्त होंगे, उन कष्टोंको इनकी कृपासे सहजमें तर जाओगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे व्रजराज ! पहले जब कोई राजा नहीं था । तब इस बालकने पृथ्वीपर सब दुष्ट चोरोंको पीड़ितकर महात्मा-ओंकी रक्षा की और चोरोंको पराजित किया ॥ १७ ॥ और जो महात्मापुरुष इस तुम्हारे पुत्रसे स्नेह रखते हैं उनका शत्रु लोग कुछ तिरस्कार नहीं कर सकते, जिस प्रकार विष्णुके सहायक रहनेसे देवताओंका दैत्यलोग कुछ नहीं कर सकते ॥ १८ ॥ हे नंदरायजी ! यह

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥ १७ ॥ य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥ तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्याऽनुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥ कालेन व्रजताऽल्पेन गोकुले रामकेशवौ ॥ जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥ २१ ॥

तुम्हारा पुत्र गुण, कीर्ति, लक्ष्मी और प्रतापमें विष्णु भगवान्के समान जान पड़ता है, सावधान होकर तुम इसकी रक्षा करना ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे ब्रजनाथ ! इसी राधाके साथ आपके पुत्रका विवाह होगा और यही राधा तुम्हारे कुलकी बाधा हरनेवाली होगी । यह कह सबको आशीर्वाद दे गर्गाचार्य बिदा होकर चल दिये, पीछे नन्दजीने परमानंदित हो अपने मनोरथको सब प्रकार परि-पूर्ण समझा ॥२०॥ जब कुछ और थोड़े दिन व्यतीत हुए तब बलदेवजी और श्रीकृष्ण दोनों भैया हाथ टेक-टेक कर घुटनों चलने लगे॥२१॥

जिस समय कृष्ण और बलभद्र दोनों भाई ब्रजकी कीचमें विचरते थे उस समय उनके पावोंकी पैंजनी और कटिकी किंकिणीकी झनकारका सुन्दर शब्द सुनकर यशोदा और रोहिणी मनही मनमें आनंदित होती थीं और जो पथिक मार्गमें जाते थे उन्हींके पीछे घुटनों-घुटनों थोड़ी दूर चले जाते थे, जब वह पुरुष इनकी ओरको देखते थे, तब डर कर अपनी माताके पासको भागते थे ॥२२॥ तब माता यशोदा और रोहिणी अपने-अपने पुत्रको उठाकर हृदयसे लगाकर उनके अङ्गोंको देखती हैं। कहीं तो ब्रजकी कीचमें लिपट रहे हैं और कहीं प्रमादकी केशर अंगमें लगी हुई है, जिनके स्तन दूधसे खिसिआये हैं, उनको खिला-खिलाकर दूध पिला-पिलाकर उनकी ओरको देख-देख प्रेममें मग्न हो रही हैं और उनके मुखकी भोलीभाली मुसक्यान और छोटी-छोटी दन्तुरियोंकी छबि निहार-निहार वारंवार प्रसन्न

तावंघ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ॥ तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्तिमात्रोः ॥ २२ ॥ तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् ॥ दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मितालपदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥ २३ ॥ यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे-तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ॥ वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥ २४ ॥ शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ॥ गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥

होती थीं ॥ २३ ॥ जिस समय व्रजमें गोपियोंके देखनेके योग्य श्रीकृष्ण और बलराम बाललीलाओंको करने लगे और दौड़-दौड़कर बछड़ों की पूंछ पकड़-पकड़कर खींचते हैं और जब बछड़े भागते हैं तो यह उनके पीछे-पीछे खिंचे चले जाते हैं। इस प्रकारकी लीला वह गोपी देख घरोंके कामको छोड़-छोड़ हँस-हँसकर हर्ष को प्राप्त होती थीं ॥ २४ ॥ माता यशोदा और रोहिणी अति चञ्चल खेलमें लगे हुए श्रीकृष्ण बलदेवको देखकर गाय, बैल, डाढ़वाले जीव, बन्दर, अग्नि, जल, सांप, पक्षी, कांटोंसे रोक-रोक बचाती फिरा करती थीं और घरके काम-धन्धे सब छोड़ दिये थे जब रोहिणी और यशोदा फिरती-फिरती हार जाती थीं तब श्रीकृष्ण बलभद्र माताओंके मनकी गति

जानकर आंगनमें खेलने लगते थे ॥२५॥ हे राजन्! व्रजमें रामकृष्ण दोनों भाई थोड़े ही दिनों पीछे घुटनोंके ही बल नहीं वरन् चरणोंसे अनायास चलने लगे। कभी घरमें जाते, कभी बाहर आते, कभी भुजा उठा-उठाकर बालकोंको बुलाते, कभी धौरी, धूमरी, गोरी काली नाम ले लेकर गायोंको गुहराते, कभी माखन मिश्री मातासे मांग-मांगकर खाते, कभी मुकुरमें जो अपना प्रतिबिम्ब दिखायी देता तो उससे कहते भैया! तू भी माखन खाले जब वह प्रतिबिम्ब न लेता तो दोनों हाथोंसे आधा-आधा कर एक भाग उसको देते, जब माखन पृथ्वीपर गिर जाता तो कहते थे कि भैया! अब क्यों नहीं लेते! वह बात भी बताओ। इन अद्भुत चरित्रों को यशोदा मैया छिप-छिपकर देखती और मन ही मनमें प्रसन्न होती और झट आकर गोदमें उठाकर मुख चूम लेती थी। उस परमानन्दके सुखको कौन वर्णन कर सकता है ॥ २६ ॥ एक दिन मदनमोहन व्रजवासियोंके बालकोंके संग अपनी सिंहपौर पर खेल रहे थे सबकी एक अवस्था, भोलीभाली

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ॥ अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥ २६ ॥ ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ॥ सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम् ॥ २७ ॥ कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ॥ शृण्वन्त्याः किलतन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥ वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजात-हासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ॥ मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति सचेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति द्रव्या-लाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥

सूरत, कृष्णकी प्रीतिमें मतवाले अनेक-अनेक प्रकारकी लीला कर रहे थे। कभी गाते, कभी हँसते, कभी किलकारी मारते, कभी अपनी माताको पुकारते, धन्य यशोदाके भाग्यको! मदनमोहनकी उस मनोहर छबिको देख-देखकर व्रजवासी लोग स्त्री-पुरुष मनही मनमें कहते थे कि कोटि कामदेव भी इस शोभाकी समताको नहीं पा सकते। देखो बलराम और घनश्याम अपने समान अवस्थावाले व्रजवासियोंके बालकोंको संग लेकर नयी-नयी क्रीड़ा कर हम लोगोंको कैसा-कैसा आनंद देते हैं ॥ २७ ॥ गोपी श्रीकृष्णचन्द्रकी बाल-लीलाकी चपलता देखकर सब जुड़ मिलकर आयीं और श्रीकृष्णचन्द्रकी माता यशोदाको सुनाकर यह कहने लगीं ॥ २८ ॥ अहो यशोदा! तुम अपने पुत्रको बर्ज लेना। हमारे घरोंमें आकर द्वन्द्व मचाता है, हम तो गायोंको दुहने नहीं पातीं, वह पहले ही बछड़ोंको

खोल देता है, बछड़ दूध पी-जाते हैं, दुहनेवाले ग्वालिये शिर मार-मार कर चले जाते हैं। यशोदा बोली—अरी ! तुम्हारे घर जब जाय तो इसको डाट दिया करो। यशोदाजीका वचन सुनकर गोपिका कहने लगीं कि जब हम इसको डाटती हैं तब यह हँस देता है, इसकी हँसी देखकर हमको भी हँसी आ जाती है और यह चोरीके उपाय करके दूध दही और जो कुछ मीठे-मीठे पदार्थ हमारे घरोंमें रक्खे रहते हैं, उनको स्वादसे चुरा-चुराकर खा जाता है और जो कुछ बचा रहता है, उसको बन्दरोंको खिला देता है और जो बन्दर भी नहीं खाते तो जान-बूझकर दूध दही घीके चिकने बासनोंको फोड़ डालता है और जो कदाचित् माखन दूध इसके हाथ नहीं लगता तो क्रोध करके गालियाँ देता है और कहता है कि इनके घरोंमें आग लग जाय, फिर पालनेमें सोते हुए हमारे बालकोंको रुलाकर भाग जाता है ॥२९॥ और जो ऊँचे-ऊँचे छींकोंपर धरती हैं कि इसके हाथ न आये तब पीढ़ा, पट्टा, ऊखली इत्यादि धरकर चोरीका उपाय करता है और किसी-

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ॥ ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥ एवं धाष्टर्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ॥ इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥

किसी छींकेके बासनमें छेद कर देता है, और नीचे सब बालक मुख लगाकर सब गोरस पी जाते हैं और जो मीठा होता है तब तो खा जाते हैं और जो खट्टा होता है तो गिरा देते हैं और जो मेवा मिष्टान्न होता है उसको बालकोंके कन्धेपर चढ़कर खा लेता है और जो हम अन्धेरे घरमें दही माखन कहीं छिपाकर भी धरती हैं, तो उसके आभूषणोंमें जो रत्न, मणि, माणिक, हीरे जड़े हैं, उनका प्रकाश हो जाता है, दूसरे इसका जो चन्द्रमासा मुख है उसकी उजियालीकी चांदनी हो जाती है, तब हमारा धरा ढका सब निकाल लाता है। जबतक हम घरमें बैठी रहती हैं उस समय आता है तो हमको देखकर भाग जाता है और जब हम अपने घरके काम-धन्धेमें लग जाती हैं, उस समय घरमें आकर घुस जाता है ॥ ३० ॥ और जब कभी हम आकर इसको देख पाती हैं और कहती हैं कि अरे चोर ! तो यह लौटकर कहता है

कि तुम ही चोर हो, मैं घरका स्वामी हूँ ऐसी हँसी की बातोंमें बातको टाल देता है। हमारे लिपे-पुते घरोंको बिगाड़ देता है, सब दिन सखाओंको संग लिये चोरीकी चिन्तामें फिरता रहता है, यह कन्हैया तुम्हारा बड़ा ढीठ है और पेटमें इसके सैकड़ों छल भरे हैं, परंतु मुंहका मीठा है, जो तुमको विश्वास न आवे तो हम पकड़के दिखा दें। कभी किसीके कपड़े फाड़ता है, कभी किसीको मारता है, सब व्रजमें धूमधाम मचा रक्खी है॥ अब देखो! तुम्हारे आगे कैसा भोला-भाला बना खड़ा है मानो कुछ जानता ही नहीं। इस प्रकार जब गोपियोंने डराया तो उस समय भयसंयुक्त नेत्र उसमें श्रीमुखकी शोभा देखनेके लिये श्रीयशोदाजीसे आकर गोपियोंने उलाहना दिया,तब श्रीयशोदाजीने हँसकर मनमोहन प्यारेको गोदीमें उठा लिया और पुत्रसे कुछ कहा नहीं ॥३१॥ एक समय बलभद्रादिक गोपियोंके बालकोंमें क्रीड़ा कर रहे थे, वहां श्रीकृष्णचन्द्र मिट्टी खाने लगे, तब सब बालकोंने कहा—आज कृष्णको कृष्णकी मातासे पिटवायेंगे और जाकर यह

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः॥ कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन्॥ ३२॥ सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी॥ यशोदा भयसंभ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत॥ ३३॥ कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान्भक्षितवान्रहः॥ वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम्॥ ३४॥ नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः॥ यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम्॥ ३५॥

कहेंगे कि आज श्यामसुन्दरने मिट्टी खायी है। तब यह विचारकर सब बालक और श्रीदामा यशोदाजीके पास गये और जाकर कहा कि आज श्रीकृष्णने मिट्टी खायी है॥३२॥ तब परमहितकी करनेवाली श्रीकृष्णकी माता यशोदाने क्रोधित हो श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर धमकाया और भययुक्त चञ्चल नेत्र मोहन प्यारेसे यह कहा॥ ३३॥ हे चपलगात चञ्चल! तूने इकले जाकर मिट्टी क्यों खायी? अरे अन्यायी! जो यह बात गांवके लोग सुनेंगे तो घर-घर यह जवाब होगा कि नन्दरानी ऐसी जड़ (कंजूस) है कि अपने बालकको पेटभर रोटी भी नहीं देती, इसलिए वह मिट्टी खा-खाकर दिन पूरे करता है। यह बात सुनकर श्यामसुन्दर डरते-कांपते बोले कि हे माता! यह झूंठ बात तुझसे किसने कही? कदाचित् कोई बालक तेरे पास आकर मुझको झूंठा कलंक लगा दे तो उसमें मेरा क्या अपराध है? तब यशोदाने कहा कि तेरे मित्र श्रीदामाने मुझसे कही है और तेरे ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊने भी कही है॥३४॥ हे मैया! मैंने मिट्टी नहीं

खायी और श्रीदामाकी ओरको कड़ी दृष्टिसे देखकर बोले–क्यों रे श्रीदामा ! मैंने तेरे सामने मिट्टी कब खायी थी ? श्रीदामा बोले-मैंने तेरी मातासे कुछ नहीं कहा । तब यशोदाने छड़ी लेकर कहा सच्ची बता ? श्रीकृष्ण बोले कि मैय्या ! जो तुझको विश्वास नहीं हो तो मेरा मुख देख ले ॥ ३५ ॥ यह बात सुनकर यशोदा बोली–मुझको तेरी झूठी बातोंका किसी प्रकार विश्वास नहीं आता, जो तू सच्चा है तो अपना मुख फैलाकर दिखला दे । यशोदाकी यह बात सुन अनेक दुःखोंके दूर करने वाले अखण्ड ऐश्वर्यवान् भगवान् क्रीडा करने के लिये मनुजतनुधारी बालकरूप श्रीकृष्णचन्द्रने अपना मुखारविन्द फैलाकर यशोदा को दिखला दिया ॥३६॥ तब यशोदाजीने श्रीकृष्णके मुखमें स्थावर, जंगम, विश्व, अन्तरिक्ष,दिशा, पर्वत, द्वीप,समुद्र,भूगोल,प्रवाह, वायु, अग्नि; चन्द्रमा, तारागण ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्र, जल,

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ॥ व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥ सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः ॥ साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ॥ वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रागुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ॥ सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥ ३९ ॥ किं स्वप्न एतदुत देवमाया किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ॥ अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४० ॥

तेज, आकाश, इन्द्रियोंके देवता, इन्द्रिय, मन, शब्दादि और इनके विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पाँचों, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ॥ ३८ ॥ जीव, काल, स्वभाव, कर्म, अन्तःकरण और उसके होनेवाले चराचर और सम्पूर्ण प्राणियोंके भेदसहित चित्र-विचित्र संसारको श्रीकृष्णचंद्रके मुखमें देखा और उसमें ही ब्रजभूमि और अपने देहको देख यशोदाके मनमें भ्रम उत्पन्न हुआ ॥ ३९ ॥ और अपने मन ही मनमें कहने लगी कि मैं जो देख रही हूँ क्या यह स्वप्न है ? नहीं, यह स्वप्न नहीं क्योंकि स्वप्न तो सोतेमें दिखाई देता है, तो क्या फिर परमेश्वरकी माया है ! नहीं-नहीं, यह माया भी नहीं क्योंकि माया होती तो और लोग भी देखते; क्या जैसे मुकुरमें मुख दीखता

है, ऐसे ही दिखायी दिया। क्या यह मेरी बुद्धिका ही भ्रमजाल है ? नहीं-नहीं, ऐसा भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा होता तो दर्पणमें जैसे दर्पण दृष्टि नहीं आता वैसे इस पुत्रके मुखमें यह पुत्र भी दीखना अनुचित है और बाहर तथा भीतर एकरूपसे जगत्की प्रतीति किसी प्रकार न होनी चाहिये, अथवा मेरे पुत्र श्रीकृष्णका यह स्वाभाविक ऐश्वर्य है ॥ ४० ॥ जो ध्यान करके देखा जाय तो यह अंतिम पक्ष ही बलवान् जान पड़ता है, क्योंकि यह संसार जो किंचित् मन, वाणी और वचनसे अनायासपूर्वक भली प्रकार विचारमें नहीं आ सकता, वह किसके आश्रय है और किस रीतिसे प्रतीत हो सकता है, उस अचिन्तनीय स्वरूपको मैं बारंबार नमस्कार करती हूँ ॥४१॥ इन ब्रज राजके सम्पूर्ण धनकी अधिष्ठाता मैं हूँ, यह व्रजनाथ नन्दजी मेरे स्वामी हैं, यह श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है और ये सब गोप-गोपिका तथा गाय-

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनः कर्मवचोभिरञ्जसा ॥ यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्य प्रणताऽस्मि
तत्पदम् ॥ ४१ ॥ अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ॥ गोप्यश्च गोपा सहगोधनाश्च मे
यन्मायर्येत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥ इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ॥ वैष्णवीं व्यतनोन्मायां
पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥ सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् ॥ प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद्यथा
पुरा ॥४४॥ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ॥ उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥४५॥

बछड़े मेरे हैं, मायासे जिसकी ऐसी कुबुद्धि हो रही है, हे भगवन् ! मैं अब तुम्हारी शरण हूँ ॥४२॥ इस प्रकार यशोदाजीको कृष्णमें जब ईश्वरकी बुद्धि हो गयी, तब श्रीकृष्णने विचार किया कि माता तो परमगतिको पहुँच गयी, अब मेरा लालन-पालन कौन करेगा ? तब पुत्रने फिर स्नेहरूपी अपनी वैष्णवी माया यशोदापर फैला दी ॥ ४३ ॥ उस समय यशोदाजीने मनसे कृष्णचन्द्रकी ईश्वरबुद्धि अलग कर दी और पुत्रप्रभाव मानकर श्रीकृष्णको गोदमें बैठा प्रेममें मग्न होकर पहलेके समान वात्सल्यभाव करने लगी ॥४४॥ ऋग, यजु, साम ये तीनों वेद, सांख्ययोग समस्त निरंतर जिन वासुदेव भगवान्की महिमाको रातदिन गाते हैं उन श्रीकृष्णको यशोदा पुत्रभावसे

मानती है ॥ ४५ ॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे पूछा कि हे ब्रह्मन् ! नन्दरायजीने ऐसा क्या पुण्य किया था जिसके प्रभावसे उनका ऐसा भाग्य उदय हुआ ? और यशोदाजीने ऐसा कौनसा श्रेष्ठ पुण्य किया था जिससे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने उनका स्तनपान किया ॥४६॥ और सब लोकोंके पापको दूर करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका बाल चरित्र आजतक जिसे कवीश्वरलोग वर्णन करते हैं, उस बाललीलाका सुख देवकी और वसुदेवको प्राप्त नहीं हुआ और नन्द, यशोदाको प्राप्त हुआ इसका क्या कारण ? ॥ ४७ ॥ यह गूढ वचन राजा परीक्षित्का सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! आठ वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण नामक वसुने अपनी धरा नामक स्त्रीको साथ लेकर ब्रह्माजीकी आज्ञा शीशपर धारण कर परमेश्वरका तप किया । तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर चतुराननसे कहा कि मेरे भक्त जो

राजोवाच ॥ नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ॥ यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥
पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ॥ गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ॥ करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥ जातयोर्नौ महादेवे भुवि
विश्वेश्वरे हरौ ॥ भक्तिः स्यात्परमा लोके ययाऽञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥ अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो
महायशाः ॥ जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराऽभवत् ॥ ५० ॥ ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ॥ दम्प-
त्योर्नितरामासीद् गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥

वर मांगे,वह देना । ब्रह्माने इन दोनोंके सम्मुख आकर कहा कि वर मांगो, तब वे स्त्री पुरुष बोले कि हे प्रभो ! जो हमपर प्रसन्न हो तो यह वर दो ॥४८॥ कि हमारे जन्म मृत्युलोकमें हों परंतु विश्वेश्वर देवोंके देव हरि भगवान्में हमारी भक्ति बनी रहे, जिससे अनायास इस संसारसागरसे पार उतर जायँ ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजीने वर दिया कि जाओ पृथ्वीमें ही तुम्हारा जन्म होगा और तुमको भगवान्की भक्ति भी होगी, तब तो बड़े यशस्वी और तेजस्वी द्रोण वसु ब्रजमें जन्म धारण कर नन्दनामसे प्रसिद्ध हुए और वह-धरा यशोदा नामसे विख्यात हुई ॥५०॥ हे भारत ! जितने गोप गोपी थे सबमें भगवान्की भक्ति थी, परंतु नन्द यशोदामें अधिक भक्ति थी,जिनके घर पुत्र होकर वास

किया, यह ब्रह्माके वरदानका प्रभाव था ॥५१॥ परमात्मा विष्णुभगवान्ने ब्रह्माजीकी आज्ञा करनेके लिये बलदेवजीके साथ नन्द यशोदाके घर वास कर अपनी लीला करके गोप गोपियोंको आनन्द दिया ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषा टीकायां विश्वरूपदर्शनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा—नवमें पय उफनत लख्यो, गइ यशुमति इक साथ। पीछे मटुकी पटकि हरि, बांधे यशुदा हाथ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण! एक दिन घरकी सब दासी तो काम धन्धेमें लग रही थीं, इसलिये यशोदा ही प्रातःकाल उठकर अपने हाथसे दही मथने लगी। उस समय दहीके मथनेका ऐसा गम्भीर शब्द होने लगा जैसे मेघ गर्जता है ॥ १ ॥ दधि मथनेके समय जो जो लीला बालचरित्रकी इस संसारमें श्रीकृष्ण ने की है उनको स्मरण कर-करके गाने लगी ॥२॥ सूत्रसे बँधी रेशमी

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ॥ सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वा० विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ॥ कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥१॥ यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ॥ दधिनिमन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥ २ ॥ क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः ॥ रज्ज्वाकर्ष श्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ ॥३॥ तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः ॥ गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥

सारी कटि मेखलासे लपेट पुत्रकी प्रीतिसे स्तनोंमें दूध भर रहा था और नेती खींचनेके अतिश्रमसे हाथोंमें चूड़ियोंका शब्द होता था और भुजाओंसे कङ्कण और कानोंमें कुंडल, कर्णफूल बिजलीसे चमक-चमक जाते थे, मुखारविन्दपर पसीनेके कण आ रहे थे, गुथी हुई वेणीमेंसे जूहीके पुष्प गिर रहे थे और भ्रुकुटी ऐसी शोभायमान थी मानो इन्द्रने धनुष तान रखा है। इस अद्भुत छबिसे यशोदाजी दही बिलोड़ रही थी ॥३॥ इतनेमें श्रीकृष्णकी आंख खुली और रो-रोकर माँ! माँ! पुकारने लगे, जब उनके रोनेका शब्द किसीने न सुना तब आप ही माताके समीप आये और सुसक-सुसक, ठिनक-ठिनक आंखें मल-मल तुतलाकर कहने लगे कि, मां! तुझे सैकड़ों पुकारें दीं

और तू मुझे दूध पिलाने न आयी यह कह मथनियां पकड़ ली कि पहले मुझको दूध पिलादे ॥४॥ यशोदा दूधसे भरा स्तन श्यामसुन्दरको गोदमें लिटाकर आंचलकी ओट करके पिलाने लगी और हरिकी मन्द-मन्द मुसकान देख यशोदा मन ही मन आनंदित होती थी, इतनेमें चूल्हेपर जो औटानेको दूध धरा था उसको उफनता देख व्रजभूषणको भूखा ही गोदसे उतार दूध उतारनेको दौड़ी ॥ ५ ॥ उस समय श्रीकृष्णको बड़ा क्रोध आया और लाल-लाल बिम्बाफलसे होठोंको दांतोंसे काट सब दही महीके बासन फोड़ डाले। झूठे आंसू बहाकर माखनकी कमोरी उठाकर अपने सखाओंमें जा बैठे और परस्पर बांट-बांटकर खाने लगे ॥६॥ उस उफनते हुए दूधको यशोदा चूल्हेसे नीचे उतारकर दही मथनेको फिर आयीं, तो देखा कि सब घरमें दही मही बह रहा है और सब बासन फूटे-टूटे पड़े हैं और माखनके बासनका

तमङ्कमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ॥ अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥ ५ ॥ संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं संदश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम् ॥ भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः ॥ ६ ॥ उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ॥ भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥ ७ ॥ उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ॥ हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः ॥ ८ ॥ तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततो-ऽवरुह्यापससार भीतवत् ॥ गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥ ९ ॥

कहीं पता ही नहीं, जब मनमें विचारा तो समझा कि यह सब कौतुक श्यामसुन्दरके ही हैं, उसके विना ऐसा और कौन है और वह छलिया यहां है भी नहीं ? तब यशोदा हँसकर कहने लगी कि देखो कामका काम बिगाड़ा और माखनकी मटकी लेकर कहींको सटक भी गया ॥ ७ ॥ बाहर निकलकर देखा तो घरके पिछवारे उलूखलको औंधा कर उसके ऊपर बैठे और चारों ओर सखा मण्डलीको बैठाये माखन बांट-बांट कर खा रहे हैं और कहीं माता न आजाय इस भयसे इधर उधरको देख भी लेते हैं, इतनेमें ढूंढ़ती-ढूंढ़ती यशोदा भी वहां जा पहुँची ॥ ८ ॥ छड़ी हाथमें लिये माताको आती देख उसी समय उलूखलसे कूद डरके मारे घबड़ाकर भाग निकले। यशोदा भी उनके पीछे हुई और चिल्लाकर बोली—खड़ा तो रह, तूने बड़ा शिर उठाया है, परंतु यशोदाके हाथ न आये। देखो एकाग्रचित्त कर योगीराज

उनका ध्यान करनेवाले भी उनकी गतिको नहीं पहुँच सकते और तप करके तपस्वियोका मन जिनकी गतिको नहीं जान सकता फिर यशोदा उनको कैसे पकड़ सकती थी ॥ ९ ॥ मनमोहनके पीछे यशोदाजीकी गति नितम्बके भारसे शिथिल हो गयी, दौड़नेसे शीशके केशोंके बन्धन खुल गये और चोटीमें जो मालतीके फूल गुँथ रहे थे वे पुष्प आगे गिरते जाते थे और यशोदा उनपर पांव धरती चली जाती थी, क्योंकि पुष्पोंकी सुगन्धसे चित्त व्याकुल नहीं होता, इस प्रकार यशोदाने महाकठिनतासे, श्यामसुन्दरको पकड़ा ॥१०॥ अपराधी तो थे ही, पकड़ते ही विह्वल हो गये, रोरोकर काजल लगे हुये नेत्रोंको मलने लगे और हा-हा कर-कर यशोदासे कहने लगे कि मैया ! मुझे छोड़ दे; मैं नहीं जानता दही मही किसने गिराया। तो कृष्णका हाथ पकड़ छड़ी उठा कर यशोदाने धमकाया और कहा कि

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रान्तगतिस्सुमध्यमा ॥ जवेन विस्रंसितकेशबन्धनच्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी कर्षन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना ॥ उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ॥ ११ ॥ त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ॥ इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥ १२ ॥ नचान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ॥ पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥ १३ ॥ तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ॥ गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥१४॥ तद्दाम बध्यमानस्यस्वार्भकस्य कृतागसः ॥ द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेन संददधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥

सिवाय तेरे और दधिमाखनका चोर मेरे घर कौन आ गया ? ॥ ११ ॥ पुत्रपर हित करनेवाली और भगवान्‌की गति न जाननेवाली यशोदाने मनमोहन प्यारेको व्याकुल समझकर छड़ी हाथमेंसे फेंक दी और पुत्रके पराक्रमको न समझकर रस्सीसे बांधनेको प्रस्तुत हुई ॥ १२ ॥ जिस आदि पुरुष अविनाशीके बाहर-भीतर, आगे-पीछे कुछ भी नहीं है और जो पूर्ण अवतार हैं, जगत्‌के अन्तर, बाहर तथा आगे, पीछे रहने वाले एवं जो जगत्‌रूप हैं ॥ १३ ॥ इंद्रियोंकी जिनमें गति नहीं ऐसे-अव्यक्त भगवान्‌को पुत्र मानकर यशोदाजी रस्सी लेकर उलूखलमें इस प्रकार बांधने लगीं जैसे कोई साधारण बालकको बांधता है ॥१४॥ अपराधी समझकर जब यशोदा अपने मनमोहन

प्यारेको बांधने लगीं, उस समय वह रस्सी दो अंगुल ओछी रह गयी तब यशोदाने उसमें दूसरी रस्सी और जोड़ी ॥ १९ ॥ परन्तु जो उसमें रस्सी जोड़ी थी वह भी दो अंगुल ओछी रह गयी, तब तीसरी और जोड़ी तो वह भी दो अंगुल ओछी हो गयी। इस प्रकार कितनी ही रस्सी जोड़ी परन्तु पूरा न पड़ सका ॥१६॥ तब तो यशोदाने सर्व घर भरकी रस्सी इकट्ठी करके जोड़ी और श्यामसुन्दर न बँधे तब तो सब गोपी आश्चर्य मान हँसने लगीं और मुसकराकर यशोदा भी विस्मित होने लगी ॥१७॥ सब शरीर पानीमें डूब गया, माला कण्ठसे

यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे॥ तदपिद्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम् ॥ १६ ॥ एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि ॥ गोपीनामुत्स्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताऽभवत् ॥ १७ ॥ स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तक-बरस्रजः ॥ दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने ॥ १८ ॥ एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भक्तवश्यता ॥ स्ववशे-नापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥१९॥ नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ॥ प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥ २० ॥

टूट पड़ी, शिखासे शीशफूल खिसक गया। तब यशोदाको श्रमित देखकर करुणामय श्रीकृष्णचन्द्र आप ही कृपा करके बन्धनमें बँध गये ॥ १८ ॥ हे राजन् ! ऐसे कष्ट हरनेवाले भगवान् ब्रह्मासहित सर्व विश्व जिनके अधीन है उन श्रीकृष्णचन्द्रने अपने भक्तोंको भक्तवश होना दिखाया कि जो भक्त मुझको बांधना चाहे तो बन्ध भी जाता हूँ, मैं इस प्रकार भक्तोंके वशमें हूँ * ॥ १९ ॥ हे राजन् ! भक्तिके देने वाले श्रीकृष्णचंद्र भगवान्से जो पुत्रके सम्बन्धसे प्रसाद गोपियोंने पाया वह प्रसाद ब्रह्माको भी नहीं मिला था और शिवजी जो भगवा-

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने यशोदा माताको पहले तो बहुत दुःखी किया अर्थात् अनेक रस्सियोंसे भी नहीं बँधे, फिर पीछे रस्सीसे बंध गये इसका क्या कारण ?

उत्तर—जब श्रीकृष्ण भक्तभयहारी जगतहितकारीने मृत्युलोकमें आनेकी इच्छा की, तब सब गोलोककी गायें श्रीकृष्णके संग व्रजको आने लगीं। तब गोलोककी सेवा करनेवाली दासी रस्सी बनकर गायोंके चरणमें और कण्ठमें बँधकर चली आयीं। भगवान्ने विचारा कि गोलोककी गायोंकी सेवा करने वाली तो नन्दबाबाके घर आ गयीं; अतः नन्दकी गायोंकी दासी जो यहां पर रस्सी बन गयी हैं इनको अब यहांसे गोलोक में भेजना चाहिये। ऐसा विचार उन गायोंकी दासियोंको फिर गोलोकको भेजनेके लिये एक रस्सीसे नहीं बँधे, क्योंकि यदि एक रस्सीसे बँध जाते तो यशोदा सब घरभरकी रस्सी क्यों इकट्ठी करके ले आती ?

न्की आत्मा हैं उनको भी प्राप्त नहीं हुआ और लक्ष्मीजी सदा हृदयमें विराजमान और भार्या हैं, तो भी उनको यह प्रसाद हाथ न आया जो प्रसाद यशोदाने पाया है॥२०॥ यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् जैसे भक्तोंको सहजमें प्राप्त होते हैं, ऐसे देहाभिमानी तपस्वी आदिकोंको और देहाभिमानरहित आत्मज्ञानियोंको सहज नहीं मिल सकते ॥ २१ ॥ इनको बांध यशोदा तो घरके काम धन्धेमें लग गयी इतनेमें सर्वसामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् कुबेरके पुत्र जो प्रथम जन्ममें गुह्यक थे और अब आकर यमलार्जुन वृक्ष हुए हैं उनका समय जान भगवान्ने उनकी ओरको देखा ॥ २२ ॥ प्रथम ये दोनों अत्यन्त शोभायमान नलकूबर मणिग्रीव नामसे विख्यात थे, कुबेरके पुत्र प्रथम जन्मके मदसे नारदके शापसे वृक्षयोनिको प्राप्त हुए थे ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ॥ ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥ कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ॥ अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२ ॥ पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥ नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥२३॥ इति श्रीभागव० म० दशम० पू० दामबन्धने कृष्णप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ राजोवाच ॥ कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥ यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ॥ कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदघूर्णितलोचनौ ॥ स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥

गोपीप्रसादोलूखलबन्धनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा—यमलार्जुन वृक्ष दोउ, दीन्हे कृष्ण गिराय । प्रगटे देवशरीर धरि, परे चरणमें आय ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! नलकूबर, मणिग्रीवके शापकी कथा वर्णन कीजिये कि उन दोनोंने ऐसा क्या निन्दित कर्म किया था कि जिससे नारदजीके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ और उन दोनोंको ऐसा कठिन शाप दिया ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि शिवजीके अनुचर ये दोनों अत्यन्त अभिमानी मद पीनेसे मतवाले कुबेरके पुत्र मंदाकिनी के तटपर कैलासकी पुष्पवाटिकामें घूम रहे थे ॥ २ ॥ वारुणी मदिराके पान करनेसे उनके नेत्र मदसे चलायमान हो रहे थे और उपवनमें विचर रहे थे, उनके पीछे-पीछे परम

सुन्दरी स्त्रियां भी घूम रही थीं ॥३॥ और कमलोंके समूहोंसे सुशोभित श्रीगंगाजीके मध्यमें जाकर स्त्रियोंको संग लेकर विहार करने लगे जैसे हथिनियोंके संग हाथी विहार करते हैं * ॥ ४ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! अनायास देवर्षि भगवान् नारदजी भी वहां आ गये और उनको अत्यन्त क्रीड़ा करता देखकर मतवाला समझा ॥ ५ ॥ नंगी स्त्रियोंने नारदजीको देखकर लज्जा मानी और शापके भयसे कांपने लगीं । उसी समय शीघ्रतासे अपने-अपने वस्त्रोंके समीपको झपटीं परंतु नलकूबर, मणिग्रीवने वस्त्र नहीं पहिने अर्थात् नंगे ही खड़े रहे

अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि ॥ चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥ ४ ॥ यदृच्छया च देवर्षिर्भगवाँस्तत्र कौरव ॥ अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः ॥ वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥ ६ ॥ तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ नह्यन्यो जुषतो जोष्यान् बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ॥ श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ॥ मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्युनश्वरम् ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ तब नारदजी कुबेरके पुत्रोंको मतवाला देखकर उनका मद दूर करनेके लिए और श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दके दर्शनके निमित्त शाप देते हुये गान करने लगे ॥७॥ तब नारदजीने कहा कि प्रियविषयोंके भोग करने वाले पुरुषकी बुद्धिको धनमदके बिना हास्य, हर्षणादिक कुलीनता पंडिताई आदिसे हुआ मद अथवा रजोगुण नाश नहीं कर सकता परन्तु धनका मद ही बुद्धि भ्रष्ट कर देता है, क्योंकि लक्ष्मीका मद जिसको होता है, वह स्त्रीप्रसंग करता है, अथवा जुआ खेलता है और वारुणीका पान करता है ॥ ८ ॥ इस क्षणभंगुर

* शंका—किसी नदीमें भी कमलोंका वन होता है ? हमने शास्त्रोंमें कहीं नहीं सुना और नहीं ऐसा आज तक किसी नदीमें हमने कमलका वन देखा, फिर दोनों यक्षोंने नदीके जलमें प्रवेश करके कमलके बनमें स्त्रियोंके संग विहार कैसे किया ?

उत्तर—"अम्भोजवनराजिनि" इस श्लोकमें अम्भोजवनराजिनिका अर्थ व्यासजीने कमलका वन नहीं किया। इसका अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है कि अम्भोज जो कमल है उसके बनको राजि कहिये प्रकाश करनेवाला जो सूर्य है उसको साक्षी करके नदीमें स्त्रियोंके संग क्रीड़ा यक्षलोग कर रहे थे, यही अर्थ व्यासजीने किया है, कमलबनका नहीं किया।

शरीरको लक्ष्मीके मदसे अजर और अमर माननेवाले अजितेन्द्रिय मनुष्य निर्दय होकर पशुओंको मारते हैं ॥ ९ ॥ राजाके देहकी भी मरनेके पीछे तीन गति होती है, गाड़नेसे अथवा पृथ्वी पर डालनेसे कृमि हो जाते हैं, वा पशु आदिक खा जाते हैं तो विष्ठा हो जाती है और अग्निमें जलानेसे भस्म हो जाती है; इस कारण इस तुच्छ शरीरके लिये प्राणियोंसे विरोध करना अच्छा नहीं है; क्योंकि जीवोंके द्रोहसे तो नरक ही प्राप्त होता है ॥ १० ॥ फिर यह देह किसका कहना चाहिये ? क्योंकि जो अन्न देकर इसका पालन-पोषण करता है, वह पुरुष कहता है,कि यह मेरा है,उसका कहना भी सत्य है । माता-पिता कहते हैं कि हमारा है, हमारे वीर्यसे और हमारे उदरसे उत्पन्न हुआ है, उनका कहना भी सत्य है । नाना कहता है कि यह मेरा दौहित्र है,मेरी कन्याके पेटसे उत्पन्न हुआ है इसका दिया पानी और इसका किया श्राद्ध मुझको प्राप्त हो सकता है,मेरे पुत्र न होनेके पीछे मेरे धनका अधिकारी यही है इस रीतिसे नानाका कहना भी सत्य

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ १० ॥ देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव वा ॥ मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥११॥ एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ॥ को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम् ॥ आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥

है । मोल लेनेवाला कहता है कि यह मेरा है। उसका कहना भी किसी प्रकार असत्य नहीं है । कोई बलवान् पुरुष अपना दास व चाकर बनाकर रखे और यह कहे कि मेरा है तो उसका कहना भी वृथा नहीं । अग्नि कहती है कि यह मेरा है,क्योंकि मेरे ही तेजसे यह सबका काम करता है,उसका कहना भी सत्य है। पृथ्वी आदिक कहते हैं कि हमारा है, क्योंकि अन्त समय हमारे सिवाय और कहीं जा ही नहीं सकता उसके कहनेमें भी कुछ संशय नहीं और श्वानादिक कहते हैं हमारा है, एक दिन हम उसको खांयगे उनका कहना भी झूंठ नहीं ॥ ११ ॥ इस प्रकार यह तुच्छ शरीर मायासे ही उत्पन्न होता है और मायामें ही लय हो जाता है और पांच-सात विवादी उसमें विवाद करें कि यह हमारा है, ऐसे झगड़ेके देहको पाकर केवल अज्ञानियोंके सिवाय ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो जीवोंकी हिंसा करे ? ॥ १२ ॥ जो अज्ञानी

पुरुष धनके मदसे अन्धे हो जाते हैं उनके लिये दरिद्र ही श्रेष्ठ अञ्जन है दरिद्र पुरुष सब प्राणियोंको दुःख-सुख में अपने समान देखता है, क्योंकि अपने मनमें निर्धन विचार लेता है कि मुझको दुःखने इस प्रकार बाधा की थी, ऐसे ही औरोंको बाधा करता होगा जैसे मुझको सुख होता है ऐसे औरको भी सुख होता होगा॥१३॥ जिस पुरुषके पांवमें कांटा लगता है वह पुरुष दूसरेके पांवमें भी कांटा लगना नहीं चाहता,

यथा कण्टकविद्धांगो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ॥ जीवसाम्यं गतो लिंगैर्न तथाऽविद्धकण्टकः ॥ १४ ॥ दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ॥ कृच्छ्रं यदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥

क्योंकि वह अपने मनमें विचार करता है कि जैसे मुझको कांटा लगनेसे पीड़ा हुई है, ऐसे ही सबको होती होगी और जिसके कांटा लगा नहीं वह कांटेकी पीड़ाको कैसे जान सकता है कि कांटा लगनेसे इतना कष्ट * होता है ॥ १४ ॥ दरिद्री पुरुषका अहंकार,मद और संपूर्ण

---

* इस बातपर एक दृष्टान्त है—वङ्गदेशमें एक धनंजय नामक राजा था। उसका पुत्र गुरुके पास विद्या पढ़ता था। जब राजाकी अवस्था अधिक हुई तो राजाने विचार किया कि अब इस मोह-ममताको त्यागकर तप करना चाहिये और मंत्रियोंको बुलाकर सब राज्यका प्रबन्ध कर दिया और राज्यसिंहासनका अधिकार पुत्रको देना चाहा। यह चर्चा उन गुरुके कानमें भी पड़ी जो उनके पुत्रको पढ़ाते थे। गुरुने अपने मनमें विचार किया, मैंने राजकुमारको सब विद्या पढ़ा दी; परंतु अभी तक इसको दुःख-सुखका ज्ञान नहीं हुआ। दुःख किसे कहते हे और सुख किसे कहते हे, ऐसी विद्या इसको अभी नहीं सिखायी। अभी तो यह मेरे वशमें है मैं सब कुछ कर सकता हूँ और जब यह अपने वशमें हो गया तो मैं कुछ नहीं कर सकता और जो यह ऐसा ही रहा तो न जाने किसको-किसको दुःख दे,यह सोच-समझ उसको अपने पास बुलाकर पांच-सात सोंटी ऐसी जोरसे मारी कि शरीरकी खाल सब उड़ गयी और रुधिर बहने लगा। इतनेपर भी एक कोठरी में बन्द कर दिया, तो तत्काल उपाय भी न कर सके और जब वह रोया तो रोने तक भी न दिया। दोपहर तक बंद रहा तब उसको खोल दिया, और चार लड़कोंके साथ राजकुमारको राजभवनमें राजाके पास भेज दिया। राजकुमारने अपने पितासे सब वृत्तान्त कहा कि विना अपराध गुरुने मुझको मारा और अपना सब शरीर दिखाया। राजाने देखा, सोंटी जहांकी-तहां उछल रही है। रक्त बह रहा है। राजकुमारकी यह दशा देखकर उसके पिताको क्रोध आया और कोतवालको आज्ञा दी कि उस ब्राह्मणको अभी पकड़ कर शूली दे दो। उस निर्दयीने विना अपराध राजकुमारको मारा है। राजाकी आज्ञाके अनुसार कोतवालने पकड़कर वधिकोंको सौंप दिया कि इसको शूली दे दो। वधिक जिस समय उस ब्राह्मणको शूली देने चले। तब उस ब्राह्मणने कहा कि मैं कुछ बात राजासे करना चाहता हूँ। वधिक बोले चल, ब्राह्मणने राजासे कहा मुझको शूलीकी आज्ञा किस लिये हुई? आपने मुझको राजकुमारके पढ़ानेके लिये नियत किया था या शूली देनेके लिये? राजाने कहा कि क्या हमने विना अपराध मारनेके लिये दिया था? ब्राह्मण बोला कि मैंने नहीं मारा, राजाने राजकुमारका सब शरीर दिखाया और कहा यह क्या है? ब्राह्मणने कहा कि यह भी एक प्रकारकी विद्या है, राजा बोला कि यह कैसी विद्या है? ब्राह्मण बोला कि मैंने सुना कि प्रातःकाल राजकुमार राज्यसिंहासनपर बैठेंगे और अभीतक वे नहीं जाने कि दुःख कैसे होता है और जो मैंने इनको दुख न दिखाया तो हजारों मनुष्योंको दुःख देंगे। अब इन्होंने दुःखका भेद जान लिया तो अब किसीको विना अपराध दुःख न देंगे। अब इनको भली प्रकार दुःख रूप दरशा दिया। राजा ब्राह्मणकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और दश गांव और अनेक प्रकारके आभूषण उसको पारितोषिकमें दे हाथ जोड़कर कहा कि मेरा अपराध क्षमा करना मैंने आपकी गुप्त विद्याको नहीं समझा था। ब्राह्मण राजा और कुंवरको आशीर्वाद देकर चला गया। देखो पहले ब्राह्मण कैसे चतुर होते थे।

प्रकारका अभिमान नष्ट हो जाता है और जो कष्ट आकर प्राप्त होता है तो वह कष्ट ही उसकी तपस्याके समान हो जाता और तप में व्रत हो जाता है, क्योंकि दरिद्री अन्नके विना भूखा-प्यासा रहता है,जब दरिद्रीको अन्न न मिले तो निःसन्देह वह भूखा-प्यासा रहेगा तो वही व्रत हो गया ॥ १८ ॥ अन्नकी आकांक्षा करनेवाले दरिद्रीके घर नित्य कड़ाके होते हैं, इससे उसका शरीर सूख जाता है, इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, फिर उससे हिंसा भी नहीं होती, जो आप ही मरता है तो वह दूसरेको कैसे मार सकता है? ॥ १६ ॥ दरिद्री मनुष्य सबको समान देखता है और दरिद्रीको साधु महात्मा पुरुष भी मिल जाते हैं, कि जिस समय दरिद्री क्षुधित होकर अन्न-अन्न पुकारता है, तब साधु महात्मा उससे कहते हैं कि अरे ? कृष्ण, कृष्ण पुकार जो सब संसारका पालन-पोषण करनेवाले हैं । इस प्रकार वे साधु

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः ॥ इन्द्रियाण्यानुशुष्यन्ति हिंसाऽपि विनिवर्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ॥ सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥ १७ ॥ साधूनां समचित्तानां मुकुन्द-चरणैषिणाम् ॥ उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८ ॥ तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः ॥ तमो-मदं हरिष्यामि स्त्रैणयो रजितात्मनोः ॥१९॥ यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमः प्लुतौ ॥ न विवाससमात्मानं विजा-नीतः सुदुर्मदौ ॥२०॥ अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातांनैवं यथा पुनः ॥ स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥२१॥

महात्मा लोग उसके अन्नकी तृष्णाको दूर कर देते हैं, तब शीघ्र उसका सन्ताप छूट जाता है ॥१७॥ समचित्त और परमेश्वरके चरणानुरागी साधु महात्मा पुरुषोंको दरिद्री ही प्यारा होता है, उनको लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त दुष्ट लोगोंसे प्रयोजन ही क्या ? ॥१८॥ इसलिये इन दोनोंको जो कि वारुणीके मदसे मतवाले, लक्ष्मीके मदसे अन्धे स्त्रियोंके लम्पट और अजितेंद्रिय हैं, इनके अज्ञानसे हुए मदको मैं दूर करूंगा, क्योंकि इस समय ये अन्धे हो रहे हैं ॥ १९ ॥ देखो ! यह कुबेरके पुत्र होकर अज्ञानमें डूब रहे हैं, यह नहीं जानते कि हम नंगे हैं,इनको कुछ भी अपने तनुकी सुधि नहीं, अत्यन्त मतवाले हो रहे हैं ॥२०॥ इसलिये ये दोनों स्थावर होनेके योग्य हैं जिससे, फिर

आगे इन्हें ऐसा मद न हो और वृक्षयोनिमें भी मेरी कृपासे इनको सुधि बनी रहेगा ॥ २१ ॥ और भगवान् वासुदेवका दर्शन पाकर पीछे फिर स्वर्गमें जाकर देवता होंगे, परन्तु पहले देवताओंके सौ १०० वर्ष वृक्षयोनि भोगनी पड़ेगी, तदनन्तर इनको भक्ति प्राप्त होगी ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! देवर्षि नारदजी इस प्रकार कहकर नारायणके आश्रमको चले गये। अब नलकूबर, मणिग्रीव दोनों यमलार्जुन वृक्ष हुए ॥२३॥ अपने भक्तोंमें मुख्य श्रीनारदजीके वचन सत्य करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र महाराज यमलार्जुन वृक्षोंके निकट चले गये ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें विचार किया कि श्रीनारदजी मेरे प्रिय भक्त हैं और यह कुबेरके दोनों पुत्र हैं

वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ॥ वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ॥ नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ॥ जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥२४॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ॥ तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥ इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ॥ आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ २६ ॥ बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ॥ निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥ २७ ॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ॥ कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥२८॥

अतः नारद महात्माने इनके विषयमें जो कुछ कहा है वह सब सत्य करूंगा॥२५॥ इस प्रकार विचार करके यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें होकर निकले और वृक्षोंके बीचमें आकर उलूखलको तिरछा कर दिया ॥२६॥ रस्सीसे उदरमें बँधे हुए उलूखलको बालकरूप श्रीकृष्णदामोदरने झटका मारकर खींचा तब दोनों वृक्ष जड़से उखड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े, श्रीकृष्णके पराक्रमसे गुद्दे, शाखा, डाली और पत्ते सब कांपने लगे, बड़ा भारी शब्द हुआ ॥२७॥ जैसे संघर्षणके उत्पन्न होनेसे अग्नि निकले ऐसे ही अति शोभायमान दशों दिशाओंको प्रकाशमान करते हुए दोनों पुरुष निकले, और भगवान् त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको शिर झुकाकर प्रणाम किया तथा मदको त्याग हाथ जोड़ इस

प्रकार प्रार्थना करने लगे ॥२८॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगिन् तुम बालक नहीं हो परम कारणरूप हो और स्थूल सूक्ष्मरूप जो आप हो उस रूपको ब्रह्मवेत्ता जानते हैं ॥२९॥ सब प्राणियोंके देह, प्राण, इंद्रिय, अहंकारके आपही एक ईश्वर हो और संपूर्णमें व्यापक भगवान् कालरूप आप ही हो ॥ ३० ॥ आप ही महान् रूप हो! रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण और सूक्ष्म मायारूप सब तुम ही हो। देहोंके विकारके जाननेवाले साक्षी पुरुष आप ही हो ॥ ३१ ॥ आप प्रकृतिके गुण, बुद्धि, अहंकार इंद्रियादिकसे ग्रहण करनेमें नहीं आते हो। उत्पत्तिसे पहले ही स्वयंप्रकाशरूप जो आप हो ऐसे आपको कारण गुण आच्छादित जीव कैसे जान सकते हैं? ॥ ३२ ॥ आप अपने

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्रह्मणा विदुः ॥ २९ ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ॥ त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥ त्वं महान् प्रकृतिः साक्षाद् रजस्सत्त्वतमोमयी ॥ त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्र विकारवित् ॥ ३१ ॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ॥ को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥ तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥ यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ॥ तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः॥३४॥ स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ॥ अवतीर्णोऽंशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥ नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ॥ वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥

वासुदेव सर्वके कर्ता और स्वयंप्रकाशित किये हुए गुणोंसे जिनकी महिमा ढक रही है, ऐसे जो आप ज्ञानस्वरूप हैं, हम आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ हे भगवन्! आप सबके शरीरमें रहकर भी शरीरके सम्बन्धसे रहित हो और यद्यपि आपका शरीर भी नहीं है, परंतु जब आप अवतार धारण करते हैं तब और प्राणियोंसे न होनेवाले जिनके तुल्य वा अधिक कोई नहीं कर सकता ऐसे-ऐसे चरित्रोंसे आपके अवतार जाने जाते हैं ॥३४॥ सब लोकोंके ऐश्वर्य और मोक्षके लिये निरन्तर परिपूर्ण रूप होकर अपने अंशोंसहित प्रकट हुए हो ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याणरूप! हे मंगलरूप! आपको नमस्कार है। आपके शांतिरूपको नमस्कार है। हे वासुदेव!

यदुकुलकी रक्षा करनेवाले आपको वारंवार नमस्कार है ॥३६॥ हे परिपूर्ण भगवन् ! हम आपके दासोंके दास हैं, हमने भगवान् नारदजी महाराजकी कृपासे आपका दर्शन पाया है और आपको परिपूर्ण रीतिसे देख लिया, अब हमको आप आज्ञा दीजिये ॥३७॥ हमारी वाणी आपके गुणानुवादोंको निरंतर गाया करे, कान आपकी कथाओंको सदा सुनते रहें, हाथ आपकी सेवा और पूजनमें लगे रहें, हमारा मन सदा आपके चरणारविंदोंमें लगा रहे, हमारा मस्तक आपके निवासरूप जगत्‌को प्रणाम करता रहे और हमारी दृष्टि तुम्हारी साधु मूर्तियोंका नित्यप्रति दर्शन किया करे। हे दीनबन्धो ! हम वारंवार आपसे यह वर मांगते हैं ॥३८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब इस प्रकार नलकूबर मणिग्रीवने गोकुलनाथ भगवान्‌की स्तुति की तब रस्सीसे उलूखल जिनके उदरमें बँध रहा था ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करौ ॥ दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥ वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ॥ स्मृत्यां शिरस्तवनिवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः ॥ दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ॥ यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥ साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ॥ दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥४१॥ तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम् ॥ सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥ ४२ ॥

आनन्दकन्द यशोदानन्दन मुसकाकर बोले ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे यक्षो ! करुणामय श्रीनारदजी लक्ष्मीके मदसे तुमको अन्धा देखकर शाप दिया और तुमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट करके तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, इस सब इतिहासको मैं पहलेसे ही जानता था ॥ ४० ॥ समानचित्त ब्रह्मज्ञानी सनातन धर्ममें तत्पर उनमें भी मुझमें निरन्तर मन लगानेवाले महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे ऐसे पुरुषोंका बन्धन इस प्रकार कट जाता है, जैसे सूर्यके दर्शनसे नेत्रोंका अन्धकार दूर हो जाता है ॥ ४१ ॥ हे नलकूबर ! हे मणिग्रीव ! तुम मेरे भक्त होकर अपने स्थानको जाओ, तुम्हारी मेरे विषे सर्वदा भावना रहेगी और तुम्हारा जन्म-मरणरूप संसार मुझमें प्रेम करनेसे छूट गया ॥ ४२ ॥

भा.द.पू. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्‌के वचन सुन कर नलकूबर, मणिग्रीव वारंवार परिक्रमा करके
॥४३॥ प्रणाम करने लगे और उलूखलसे बँधे हुए श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा लेकर उत्तर दिशाको चले गये॥४३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां नारदशापयमलार्जुनमुक्तिनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा–ग्यारहमें बछरन सहित, वृन्दावन हरि आय । वत्सासुर अरु बकासुर, हने कहूँ सो गाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे कुरु कुलभूषण ! वृक्षोंके गिरनेका शब्द सुन यशोदा अत्यन्त व्याकुल होकर दौड़ी और जहां उलूखलमें कृष्णको बांधा था वहां न तो कृष्णको पाया और न उलूखलको देखा, तब तो एकाएकी घबड़ाकर हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! हा मोहन प्यारे ! कह-कहकर चिल्ला-चिल्ला रोने लगी। यशोदाकी चिल्लाहट सुनकर नन्दादिक समस्त गोप कहने

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे यमलार्जुनयोः नारदशापमोचनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
श्रीशुक उवाच ॥ गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥ तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥ १ ॥
भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ॥ बभ्रमुस्तदभिज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥२॥ उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च
बालकम् ॥ कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥३॥ बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ विकर्षता मध्यगेन
पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥

लगे कि यह कोई वज्र गिरा अथवा कोई नया उत्पात हुआ ! इस भयसे भयभीत हो सब गोप वहां आये जहां वृक्ष गिरे थे ॥ १ ॥ देखा तो पृथ्वीपर यमलार्जुन वृक्ष उखड़े हुए पड़े हैं, गिरनेका कारण विद्यमान है, परंतु गोपोंके मनमें भ्रम हुआ कि आंधी भी नहीं आयी वज्र भी
भा० टी० नहीं टूटा, फिर यह वृक्ष आपसे आप कैसे उखड़ पड़े ? ॥२॥ रस्सीसे बँधे बालक श्रीकृष्णको उलूखल खींचते देखा तो भी व्रजवासियोंने
अ० ११ न जाना और परस्पर कहने लगे कि यह किस राक्षसका काम है ? कहांसे यह आश्चर्यरूप उत्पात हुआ ? ऐसे कह व्रजवासी डरने लगे ॥ ३ ॥ वहां जो छोटे-छोटे बालक खेल रहे थे उन्होंने कहा कि यह श्रीकृष्ण उलूखलको खींचते हुए वृक्षोंके बीचमें चला गया, जब यह उलूखल तिरछा होकर इन दोनों वृक्षोंके बीचमें अड़ गया तब इसने झटका मारकर खींचा इससे यह दोनों वृक्ष गिर पड़े,

इनमेंसे दिव्यरूप दो पुरुष निकले उनको भी हमने देखा ॥ ४ ॥ बालकोंकी बातका व्रजवासियोंने तो विश्वास न माना और परस्पर कहने लगे कि इस बालकने इतने बड़े वृक्षोंको कैसे उखाड डाला। और कोई व्रजवासी कहने लगे कि इस बालकने जन्मसे ही ऐसे अद्भुत चरित्र किये हैं। जब बहुत ही छोटासा था तो पूतनाको मारा, तृणावर्त्तको मारा और गाड़ा पटक दिया, फिर यह दो वृक्ष उखाड़ डाले, तो क्या अचम्भा है ! ॥५॥ उलूखलंको उदरमें बँधा देखकर नन्दरायजी बोले कि तुझको उलूखलसे किसने बांधा है ! तब श्यामसुन्दरने कहा कि, मेरी प्यारी मैयाने। कृष्णके तुतलाते मधुर वचन सुन नन्दरायने उलूखलसे खोल हृदयसे लगा लिया और

न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ॥ बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित् संदिग्धचेतसः ॥ ५ ॥ उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ॥ विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥ ६ ॥ गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ॥ उद्गायतिक्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥ ७ ॥ बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ॥ बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥ ८ ॥

हँसकर बोले कि चल बेटा ! तेरी मैयाको मारेंगे। श्रीकृष्ण बोले—पिताजी ! मेरी मातासे कुछ मत कहना, क्योंकि उसका कुछ दोष नहीं सब अपराध मेरा ही है ॥६॥ तब गोपियाँ बोलीं कि हे मनमोहन प्यारे ! हम तो ताली बजावें और तुम नाचो, हम तुमको बहुतसा माखन खिलायेंगी। यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कभी बालककी नाईं नाचते थे, और कभी भोले बनकर गाते थे, जैसे काठकी पुतली बाजीगरके हाथमें होती है और जिधरको फेरता है, उधरको फिरती है, ऐसे गोपियोंके प्रेमके वशमें परब्रह्म परमेश्वर हो रहे हैं ॥७॥ कभी यशोदाजी

* शंका—अपने पुत्र श्रीकृष्णको बहुत रोता देखकर और कमरमें बहुत कसके रस्सीमें बँधा देख और वृक्षोंको टूटा हुआ देखकर, कहीं कृष्णके ऊपर न गिर गया हो, परंतु श्रीकृष्णकी देहमें कहीं चोट नहीं लगी, परमेश्वरने शरीरकी रक्षा की, ऐसे अपने पुत्रको देखकर नन्दजी क्यों हँसे ? बालकको दुःखी देखकर तो ऊपरी लोग भी शोच करने लगते हैं और श्रीकृष्ण नन्दजी के पुत्र ठहरे फिर नन्दजीने शोच किस लिये नहीं किया ?

उत्तर—नन्दजी गर्गाचार्यके वचनोंका स्मरण करके हँसे, क्योंकि गर्गाचार्य नन्दजीसे पहलेही कह गये थे, श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् नारायणका स्वरूप है श्रीकृष्णके जन्मसे नन्दजी अपने भाग्य के लक्ष्मीके प्राणपति, जगत्के स्वामी ऐसे कृष्णको बारंबार नमस्कार करके और अपने आपको धन्य जानकर मनमें परमानन्दित होकर नन्दजी हंसते थे कि देखो ! आज मेरे भाग्यकी बड़ाई शिव, सनकादिक भी नहीं कर सकते।

कहती हैं कि हे बेटा ! पीढ़ा ले आओ, कभी कहती हैं, बाबाकी खड़ाऊँ लेआओ, तब तुरंत ही पीढ़ा ले आते हैं और तुरंतही खड़ाऊं ले आते हैं और जब कोई वस्तु नहीं उठती तब माता माता पुकारते हैं । इस प्रकार व्रजवासियोंको लीला द्वारा आनंद देते हैं ॥८॥ संसारमें पंडित लोगोंके दिखानेको कि "मैं इस प्रकार भक्त लोगोंके वशमें हूँ जैसे नचाते हैं, वैसे नाचता हूं" इस प्रकार बाललीला करके व्रजवासियोंको प्रसन्न करते हैं और व्रजवासी आनंदित होते हैं ॥९॥ एक समय फल लो, ऐसा मालिनीका शब्द सुनकर; संपूर्ण फलोंके देनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् धान्य लेकर फल लेनेको चले॥१०॥ मालिनीने उनके धान्य डाल देनेके उपरांत मनमोहन प्यारेकी परमप्यारी छबि देख

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ॥ व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥ गृह्णीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ॥ फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वं फलप्रदः ॥ १० ॥ फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम् ॥ फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥ ११ ॥ सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ॥ रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ॥ १२ ॥ नोपेयातां यदाऽऽहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ ॥ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥ १३ ॥ क्रीडन्तं सा सुत बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ॥ यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥१४॥ कृष्णकृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब ॥ अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक ॥ १५ ॥

उनके दोनों हाथ फलोंसे भर दिये, तब व्रजरत्नने उसकी डलिया रत्नोंसे भर दी ॥११॥ यमलार्जुन वृक्षोंके उखाड़नेवाले श्रीकृष्ण यमुनाके तीरपर बालकोंके संग बलभद्रसहित खेल रहे थे, उनको रोहिणीने पुकारा ॥१२॥ दोनों भाई खेलमें ऐसे मग्न हो रहे कि थे रोहिणीके बुलानेसे भी न आये, तब पुत्रसे प्रेम करनेवाली यशोदाजीको रोहिणीने बुलानेके लिये भेजा ॥ १३ ॥ बालकोंके संग श्रीकृष्ण बलदेवके खेलते जब बहुत दिन चढ़ गया तब यशोदाके पुत्रके स्नेहके कारण स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा तब यशोदाजी श्रीमनमोहन प्यारेको बुलाने लगीं ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! हे कमलदललोचन ! हे पुत्र प्यारे ! स्तन पान कर ले, तू खेलते-खेलते थक गया होगा, हे तात ! तुझको

भूख बहुत लगी होगी,अब खेलनेको रहने दे,सन्ध्याको फिर खेलना ॥ १५ ॥ हे राम ! हे मोहन ! हे नन्दलाल ! हे कुलभूषण ! शीघ्र छोटे भाईको अपने साथ लेकर घरको आओ । प्रातःकाल ही कलेऊ करके गया है, अब आकर भोजन करलो ॥ १६ ॥ अरे खेलनेके मतवाले ! व्रजनाथ तुझ विना भोजन करनेको बैठे हैं, तेरे आनेकी बाट देख रहे हैं, तुझको बूढ़े बाबाकी दया नहीं आती ? तू आकर हमको प्रसन्न कर । इस बातको सुनकर कृष्ण आये तब बालक बोले कि जैसे-तैसे करके तो खेल जमा है, अब श्रीकृष्ण जाते हैं, अब इसको कभी नहीं अपने साथ खेलने देंगे, यह बात सुनकर श्रीकृष्ण फिर खेलने लगे,तब यशोदा बोलीं कि अरे बालको ! तुम्हारे घरबार हैं कि नहीं ! क्यों नहीं अपने घरोंको जाते ! ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारा शरीर धूलिमें सन रहा है, अब तुम चलकर स्नान करो और आज तुम्हारा जन्म नक्षत्र

हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन ॥ प्रातरेवकृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥ १६ ॥ प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह-भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ॥ एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥ १७ ॥ धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जन-मावह ॥ जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गा शुचिः ॥ १८ ॥ पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् ॥ त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १९ ॥ इत्थं यशोदा मतशेषशेखरं मत्वासुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ॥ हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ २० ॥

है इससे पहले स्नान करके ब्राह्मणोंको अच्छी-अच्छी दूध देनेवाली गायें दान करके दो ॥ १८ ॥ जब मोहन प्यारे बुलानेसे न आये तब कहने लगी कि तेरी बराबरके बालकोंको उनकी माताओंने उनको स्नान कराकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण भी पहना दिये, देख तो ले तू उनके सामने कैसा बुरा लगता है, इससे तू भी शीघ्र स्नान करके भोजन करले फिर मैं तुझे अच्छेअच्छे वस्त्र और गहने पहना-कर नेत्रोंमें काजर लगाकर चन्दनकी ऐसी सुन्दर खौर लगाऊंगी मानो तेरे मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्रमा उदय हुआ है ॥ १९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! प्रेममें मतवाली यशोदाजी ब्रह्मादिकोंके मुकुटमणि श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र मानकर बलदेवसमेत श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर मन्दिरमें ले आयी, और शरीरमें उबटन मल गरम जलसे नहवाय, वस्त्र आभूषण पहनाके अच्छी-अच्छी दूधकी गायें मँगाकर उनके

हाथसे दान करायीं । इस प्रकारका उत्सव किया ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब व्रजमें बड़े-बड़े उत्पात होने लगे तब नंदादिक वृद्ध-वृद्ध व्रजवासियोंने विचार किया कि महावनमें तो नित्य नये उत्पात होते हैं अब गोकुलके हितका कोई विचार करना चाहिये ॥ २१ ॥ उनमें जो कि ज्ञान और अवस्था करके अधिक देशकालके तत्त्व जाननेवाले और बलभद्र और श्रीकृष्णचंद्रसे अतिहित करनेवाले उपनंद नाम गोप थे, वे बोले ॥ २२ ॥ गोकुलके हितकी इच्छा करके उपनंद कहने लगे कि हम यहांसे हटकर और स्थानपर वास करेंगे क्योंकि यहां बालकोंके विघ्न करनेवाले बहुतसे उत्पात होते हैं ॥२३॥ बालकोंकी घातिका पूतना राक्षसीके हाथसे जैसे-तैसे कर यह बालक

श्रीशुक उवाच ॥ गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने ॥ नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन् ॥ २१ ॥ तत्रोपनन्दनामाऽह गोपो ज्ञानवयोऽधिकः ॥ देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २२ ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ॥ आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २३ ॥ मुक्तः कथंचिद् राक्षस्या बालघ्न्या बालकोह्यसौ ॥ हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥ २४ ॥ चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ॥ शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥ २५ ॥ यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः ॥ असावन्यतमो वाऽपि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥२६॥ यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ॥ तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्रसानुगाः ॥२७॥ वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ॥ गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २८ ॥

बचा और एक समय संकट इसके ऊपर गिरा उस विपत्तिसे भी भगवान्‌की कृपासे बचा ॥२४॥ एक समय तृणावर्त बबूलेका रूप धरकर इस बालकको आकाशमें उड़ाकर ले गया और वहांसे उसने शिलाके ऊपर पटक दिया । वहां भी देवताओंने इसकी रक्षा की ॥२५॥ यह बालक उलूखलमें बँधा हुआ दोनों वृक्षोंके बीचमें फँस गया और मरनेसे बचा । वहां उस समय और बालक भी कोई नहीं था । वहां भी इस बालककी परमात्माने रक्षा की ॥२६॥ अब परमेश्वर और कोई दूसरा उत्पात व्रजमें न खड़ा कर दें, इससे पहले ही बालकोंको यहांसे लेकर और दूसरी ठौर कहीं चल बसें ॥२७॥ पशुओंका हितकारी और नये बाग-बगीचे और पुष्पवाटिकावाला श्रीवृन्दावन नाम वन है

और वही अतीव उत्तम गोपगोपी गायोंके रहने योग्य स्थान है और महापवित्र जहां गोवर्धन पर्वत है, यमुनाजीका किनारा है, वहां तृण, जल, लता और उत्तम सब प्रकारके वृक्ष हैं ॥ २८ ॥ उस वृन्दावनका वास सदैव अच्छा है, आपकी इच्छा हो तो गाड़ियोंको जोतो और गायोंको हांक लो । अब विलम्ब करनेका समय नहीं है ॥ २९ ॥ इस प्रकार उपनन्द गोपने नंदजीसे कहा उपनन्द गोपके वचन सुनकर सब वृद्ध जनोंने कहा—धन्य है ! आपकी बुद्धिको आपने बहुत अच्छा कहा । हे व्रजराज ! उपनन्दका कहना बहुत ठीक है,हमारी भी सम्मति यही है वृन्दावनमें वास कीजिये । नन्दजीने कहा—हमारी भी यही इच्छा थी, परन्तु आपके कहनेसे और

तत् तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरम् ॥ गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः ॥ व्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥३०॥ वृद्धान् बालान्स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च ॥ अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥३१॥ गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः ॥ तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥ ३२ ॥ गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुङ्कुमकान्तयः ॥ कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥ ३३ ॥ तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ॥ रेजतुः कृष्ण-रामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३४ ॥

पक्की बात हो गयी । नंदजीकी बात सुन अपनी-अपनी गाड़ियोंको जोत घरकी सब सामग्री लादकर चल दिये ॥ ३० ॥ हे राजा परीक्षित् ! प्रथम सब सामानको गाड़ियोंमें भरकर ऊपर वृद्ध, बालक, स्त्रियोंको बैठाकर धनुषबाण हाथोंमें ले लेकर ॥ ३१ ॥ सब व्रजवासी सावधान हो गायोंको आगे कर चारों ओर बड़े-बड़े रणसिंगा बजाते और तुरहीका शब्द करते पुरोहितको संग लेकर सब गोकुल-वासी वृन्दावनको चल दिये ॥३२॥ गाड़ियोंमें बैठी गोपी नवीन केशर कुचोंमें लगाये, कठला, धुकधुकी कण्ठमें पहने; रथ और गाड़ियोंमें बैठी कृष्णकी लीला गाती जाती थीं ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार रोहिणी और यशोदा भी एक गाड़ीमें श्रीकृष्ण और बलदेवजीको साथ

लिये बैठी थीं और उनकी लीला और चरित्रोंको सुन-सुनकर आनंदको प्राप्त होती थीं ॥ ३४ ॥ सर्वानंदको देनेवाले वृन्दावनमें आकर गाड़ियोंको बराबर खड़ा करके अर्द्धचंद्रमाके समान गायोंके रहनेके लिये खिरक बनाया ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! वृन्दावन, गोवर्धन और यमुनाजीका अत्यंत रमणीक तट देखकर श्रीकृष्ण और बलराम बहुत प्रसन्न हुए॥ ३६ ॥ इस प्रकार बाललीला और तोतली मधुरवाणीसे ब्रजवासियोंको आनन्द देने लगे और जब दोनों भाई बछरे चराने योग्य हुए,तब वत्सपालक कहलाये ॥३७॥ ब्रजभूमिके निकट ही गोपालोंके बालकोंको संग लेकर श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई बछरोंको चराने लगे और भांति-भांतिकी क्रीड़ा नित्यप्रति करने लगे॥३८॥ कभी बांसुरी बजाते थे और कभी आमलोंको गोफनमें धरकर चलाते थे, कभी पावोंमें घुँघुरू बांधकर ऐसा नाच नचाते थे कि अप्सराओंको

वृन्दावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ॥ तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥ ३५ ॥ वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ॥ वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥३६॥ एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ॥ कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३७ ॥ अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ॥ चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥३८॥ क्वचिद् वादयतो वेणुं क्षेपणैःक्षिपतः क्वचित् ॥ क्वचित् पादैः किंकिणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥ ॥ ३९ ॥ वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ॥ अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥४०॥ कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ॥ वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ४१ ॥

लजाते थे। कभी परस्पर युद्ध करते थे, कभी कम्बल उढ़ाकर कृष्ण बलदेव दोनों भैया ग्वालोंको बैल बनाते थे और उनके संग आप भी बैल बनकर गम्भीर शब्द करते थे ॥ ३९ ॥ कभी पक्षियोंकी बोली बोल-बोलकर कहते हैं कि हम हंस हैं, कोई कहते हम मोर हैं, जैसे प्राकृत बालक खेल खेलते हैं, वैसे ही दोनों भाई वनमें जाकर नये-नये खेल खेलते थे ॥४०॥ एक समय यमुनाजीके तीरपर श्रीकृष्ण और बलराम बछरे चरानेको गये और वहां कंसने सुना कि नंदादिक गोप गोकुल छोड़कर वृन्दावनमें जा बसे हैं। तब कंसने अपने साथी वत्सासुरको बुलाकर विनयपूर्वक अपने दुःखका सब वृत्तान्त कहा कि, भाई! नन्दके पुत्रने मुझको बड़ा दुःख दे रखा है, कोई ऐसा उपाय करो जिससे वह

बालक मारा जाय। कंसकी बात सुन वत्सासुर बछरेका रूप बनाकर वृन्दावनमें गया ॥ ४१ ॥ और जो बछरे कृष्ण और बलराम चराते थे, उन्हीं बछरोंमें मिलकर यह भी चरने लगा और उसका भयानक रूप देख सब बछरे डरकर जहां-तहांको भाग गये। तब श्यामसुन्दर उस राक्षसको पहचान कर आंखकी सैनसे बलदेवजीको जताया कि देखो भाई! यह दुष्ट राक्षस कंसका भेजा हुआ बछरेका रूप धारणकर मेरे मारनेके लिये यहां आया है, तुम भी इसका ध्यान रखना ॥ ४२ ॥ वत्सासुर घूमता-घामता अपनी घात लगाता हुआ धीरे-धीरे वृन्दावनविहारीके समीप आ पहुँचा। श्रीकृष्णचन्द्रने उसका पिछला पैर पकड़कर एक कैथके पेड़की जड़में घुमाकर ऐसा पटका कि उसके प्राण निकलकर परमधामको सिधार चले। बड़े भारी शरीरवाला वत्सासुर दैत्य कैथके वृक्षसहित पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४३ ॥

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ॥ दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥ ४२ ॥ गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलांगूलमच्युतः ॥ भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद् गतजीवितम् ॥ स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४३ ॥ तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ देवाश्च परिसंतुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ४४ ॥ तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ॥ सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥ ४५ ॥ स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा ॥ गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥ ४६ ॥

उसको गिरा हुआ देखकर सब बालक अत्यन्त विस्मित हो धन्य-धन्य कहने लगे और अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंने आकाशसे फूल बरसाये ॥ ४४ ॥ समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भ्राता बछरोंके वत्सपाल होकर प्रातः कालका कलेवा लेकर वनमें जाकर बछरोंको चराते और अनेक-अनेक प्रकारकी लीला विहार करते थे ॥ ४५ ॥ जब कंसने वत्सासुरके मारे जानेका वृत्तान्त सुना तो बड़ा शोच किया और उसके भाई बकासुरसे जाकर कहा कि तू अपने भाईका बदला ले और उस दुष्ट कृष्णको मारकर मेरी छाती ठण्डी कर। यह बात सुनकर बकासुर बगलेका रूप धारण कर वृन्दावनमें आया और कालिन्दीके किनारे

पर्वताकार हो मुँह फैलाकर इस घातमें जा बैठा कि श्यामसुन्दर यहां आये तो निगल जाऊँ। उस दिन सब बालक अपने-अपने बछरोंके समूहोंको यमुनाजीके निकट जल पिलानेके लिये गये और वहां जाकर बछरोंको जल पिलाया और आप भी पिया ॥ ४६ ॥ और वहां उन बालकोंने वज्रसे टूटे गिरे पर्वतके शिखरके तुल्य बड़े मुखवाला एक पक्षी देखा और उसको देखकर अत्यन्त भयभीत हुए ॥४७॥ यह महाबली तीक्ष्ण चोंचवाला बगलेका रूप धारण किये बकासुर नाम दैत्य था। यह बलवान् बकासुर आकर श्रीकृष्णको शीघ्र ही निगल गया और बोला कि मैंने आज अपने वत्सासुरका बदला ले लिया ॥ ४८ ॥ जब श्रीकृष्णको बकासुर लील गया तब बलदेवादिक सब बालक विना प्राणोंकी इंद्रियोंके समान अचेत हो गये और रो-रो कर कहने लगे कि हाय! हम यशोदाको जाकर क्या उत्तर देंगे? जिसने

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ॥ तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ॥ ४७ ॥ स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् ॥ आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥४८॥ कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ॥ बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४९ ॥ तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ॥ चच्छर्द सद्योऽतिरुषाऽक्षतं बकस्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥ ५० ॥ तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः ॥ पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥ ५१ ॥

अपना प्यारा पुत्र हमको सौंप दिया था। सब दौड़े हुए बलदेवजीके पास आये और वृत्तान्त सुनाया कि हमने बहुतेरा बरजा परन्तु श्यामसुन्दरने हमारा कहना एक न माना, अब हम क्या करें और क्या न करें? बलदेवजी बोले कि तुम घबड़ाओ मत, उस दैत्यको मारकर मनमोहन प्यारे अभी आते हैं॥४९॥उसी समय गायोंके पालन करनेवाले नन्दके दुलारे, ग्वालबालोंके प्यारे यशोदाके नेत्रोंके तारे, जगत्के गुरु, ब्रह्माके पिता श्रीकृष्णजीने अग्निके अंगारके समान उसके तालूको जलाना आरंभ किया तब उस बकासुरने श्रीकृष्णको तुरन्त ही उगल दिया और उनके शरीरमें कुछ भी कष्ट न हुआ तब तो अत्यन्त क्रोध करके फिर बकासुर ब्रजविहारीके ऊपरको धाया॥५०॥ सज्जनोंके सहायक देवताओंके आनंददायक, श्रीकृष्ण यदुनायक कंसके सखा बकासुरको फिर आता देख दोनों हाथोंसे उसकी चोंच

पकड़कर सब बालकोंके देखते-देखते ही तृणके समान चीरकर फेंक दिया ॥ ५१ ॥ उस समय सुरपुरनिवासी देवता बकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके ऊपर नंदनवनके मालतीके पुष्पोंकी वर्षा करके दुन्दुभी और शंख बजाकर उनकी स्तुति करने लगे। इस कौतुकको देख-देखकर ग्वालबाल आश्चर्य मानते थे ॥ ५२ ॥ जैसे इंद्रियाँ प्राण आनेसे आनंदित होती हैं, वैसे ही बलभद्रादिक सब बालक बकासुरके मुखसे निकले हुए श्यामसुन्दर प्यारेको देखकर आनन्दित हुए और छातीसे लगाकर सब बालक उनसे मिले और बछरोंको इकट्ठा करके वारंवार प्रशंसा करने लगे ॥ ५३ ॥ यह सुनते ही गोप और गोपी बहुत संशय करने लगे। और बड़े आदर-

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरन्नन्दनमल्लिकादिभिः ॥ समीडिरे चानकशंखसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥५२॥ मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवैन्द्रियो गणः ॥ स्थानागतं तं परिरभ्यनिर्वृताः प्रणीय वत्सान्व्रजमेत्य तज्जगुः ॥५३॥ श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपागोप्यश्चातिप्रियादृताः ॥ प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥ ५४ ॥ अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ॥ अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ५५ ॥ अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ॥ जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ५६ ॥ अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ॥ गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥ ५७ ॥

सत्कारसे कृष्णको देखने लगे, जैसे कोई मृतक होकर घर आ जाता है और सब कुटुम्बियोंका चित्त उनको देखते-देखते तृप्त नहीं होता ॥५४॥ सब गोप कहने लगे कि इस बालकके ऊपर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ पड़ीं,परंतु जो मारनेको आया वह आप ही मारा गया, क्योंकि पहले उन्होंने औरोंको भय दिखाया ॥५५॥ महाभयंकर रूप धर-धरकर अनेक असुर और राक्षस कृष्णके मारनेको आये, परंतु परमेश्वरकी दयासे इसका कुछ न कर सके,आप ही मरनेके लिये इसके पास आये, जैसे अग्निमें आकर पतङ्ग जल जाते हैं, वैसे आप ही आकर मर जाते हैं ॥ ५६ ॥ अहो ! वेदवादियोंकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती ! जो-जो बात गर्गाचार्य कह गये थे, वह सब बातें अब

भा. द. पू. ॥४८॥ सत्य होती जाती हैं ॥ ५७ ॥ इस प्रकार कृष्ण बलरामकी रस भरी बातें कह कहकर नंदादिक आनंदित होते और सुख पाते, जिन्होंने भवसागरकी वेदनाको कुछ न समझा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार आंखमिचौनी, पुल बांधने, बन्दरोंके समान कूदना यह कौमार अवस्थाके खेल करके श्रीकृष्ण बलराम कौमार अवस्था व्यतीत किये ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां वत्सवकवधवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा–द्वादशमें धरि सर्पवपु, निगल ग्वाल अरु बाल । तासु अघासुरको हनो, कृपासिंधु गोपाल ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! एक दिन वनमें भोजन करनेके विचारसे प्रातःकाल उठकर सुंदर शृङ्गी बजाकर

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ॥ कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन्भववेदनाम् ॥ ५८ ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० वत्सबकवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥ प्रबोधयञ्छृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरस्सरो हरिः ॥ १ ॥ तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ॥ स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसंख्ययाऽन्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ॥ चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥ ३ ॥ फलप्रवालस्तबकसुमनः पिच्छधातुभिः ॥ काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥

भा० टी० अ० १२ अपने प्यारे ग्वालबालोंको जगाकर कलेवा बांध बछरोंको आगेकर श्रीकृष्णचन्द्र घरसे निकले ॥ १ ॥ उन श्रीकृष्णके संग स्नेही ग्वालोंके सहस्रों बालक उत्तम छीके, बेत, शृंगी और बांसुरी ले-लेकर सहस्रसे भी अधिक संख्यावाले अपने बछरोंके समूहोंको आगे करके आनन्दसहित घरसे चले ॥ २ ॥ असंख्यात श्रीकृष्णके बछरोंमें मिलाकर चराते-चराते बाललीला कर करके ये बालक जहां-तहां बिहार करते थे ॥ ३ ॥ मणियोंके जड़ाऊ सुवर्णके गहने पहने हुए थे, तो भी वनमें जाकर फलोंके, कोपलोंके, चौटलियोंके, गुच्छोंके, फूलोंके, मोरपुच्छके और खड़िया माटी, गेरूके तिलक लगा-लगाकर अपना-अपना शृंगार कर रहे थे ॥ ४ ॥

परस्पर छींका बेत आदि चुराते, जब जान लेते तो दूसरे बालकके पास फेंक देते । वे बालक फिर औरके पासको फेंक देते थे । जब वह छींकेवाले बालक रोने लगते थे, तब श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर उनके छींके बेत दिला देते थे ॥५॥ सुन्दर वनकी शोभा देखनेके लिए जब श्रीकृष्ण दूर चले जाते थे तब बालक परस्पर छोड़ बद-बदकर दौड़ते थे और कहते थे कि पहले मैं छुऊँ वह कहते थे कि पहले मैं छुऊँ,इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको छूते थे और आनन्दित होकर खेलते थे ॥६॥ कोई बालक बांसुरी बजाते थे, कोई शृंगी शब्द सुनाते थे, कोई-कोई बालक भौंरोंके संग गाते थे और कोई कोकिलाकी वाणीमें मिलाते थे ॥ ७ ॥ और कोई आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाके संग दौड़ते, कोई बालक हंसोंके संग धीरे-धीरे चलते, कोई बालक बगलोंकी पांतिके पास चुपके-चुपके जा बैठते और कोई

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ॥ तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥ ५ ॥ यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ॥ अहं पूर्वमहंपूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥ केचिद्वेणून् वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन ॥ केचिद्भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥ ७ ॥ विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु हंसकैः ॥ बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥ विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् ॥ विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥ साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः ॥ विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥ १० ॥ इत्थं सतां ब्रह्म सुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ॥ मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥११॥

बालक मोरोंके संग नाचते थे ॥८॥ कोई बालक बंदरोंकी पूँछ पकड़-पकड़कर खींचते थे और कोई पूँछ पकड़े ही पकड़े उनके सङ्ग कूदकर वृक्षोंपर चढ़ जाते थे और कोई बालक अपने कान दबाकर आंख फैलाकर बंदरोंके सम्मुख खड़े हो घुड़की बताते थे । कोई वृक्षोंपर चढ़-चढ़ नीचेको कूदते थे ॥ ९ ॥ कोई-कोई मेढ़कोंके संग फुफकारते थे, जब वह पानीमें डुबकी मारे तब आप भी उसके संग डुबकी (गोता) मारते हैं । कोई बालक अपनी परछाईं पानीमें देखकर उसकी हँसी करते थे, कोई बालक कुएँ बावड़ीमें अपनी प्रतिध्वनिको सुन उसको गाली देते थे ॥१०॥ इस तरह गोपबालक उन श्रीकृष्णचन्द्रके साथ खेल करते हैं जो कि ब्रह्मज्ञानियोंको ब्रह्मस्वरूप करके जाननेमें आते

हैं। दासभावके करनेवाले भक्त जिनको परम देवतरूप स्वामी जानते हैं और मायासे मोहित हुए पुरुष उनको मनुष्यका बालक मानते हैं, जिनकी जैसी भावना है, उसको वैसे ही दिखाई देते हैं। धन्य भाग्य है ग्वालबालोंका देखो ब्रह्मज्ञानियोंको केवल भगवान्‌का अनुभव ही होता है,केवल भजन सर्वानन्द है,परंतु ग्वालबालोंकी ओरको देखिये कि इन्होंने कैसे उग्र तप किये हैं कि दिनरात भगवान् वासुदेव जिनके सङ्ग आहार-विहार करते हैं देखो यह सखाभावका प्रभाव है॥११॥योगीजनोंको भी अनेक जन्म महाकष्ट सहकर तप करनेसे जिनके चरणारविंदकी धूरि मिलनी अत्यन्त दुर्लभ है वे श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्द स्वच्छन्दविहारी वासुदेव भगवान् जिनके सम्मुख प्रत्यक्ष विराजमान रहें उन व्रजवासियोंके भाग्यकी कहांतक बड़ाई करें ॥१२॥ इन ग्वालबालोंकी सुखपूर्वक लीलाको न सहन करके अघासुर नाम दैत्य उस

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः॥ स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥ १२ ॥ अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः॥ नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाऽर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः॥ अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥ १४ ॥ एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः॥ प्राणे गते वर्ष्मसु कानु चिंता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५ ॥ इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ॥ धृत्वाऽद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः॥ १६ ॥

बनमें आया, अमृतपान करनेवाले देवता भी अपने जीनेकी इच्छासे नित्यप्रति जिसके मरनेकी राह देखते थे ॥ १३ ॥ वह असुर कंसका भेजा हुआ, पूतना और बकासुरका छोटा भ्राता, कृष्णादिक छोटे-छोटे बालकोंको देखकर मनमें विचार करने लगा कि इसी कृष्णने मेरे भाई और बहनको मारा है, उन दोनोंके बदले आज ग्वालबाल बछड़े और बलदेव समेत इस कृष्णको मारूँगा ॥ १४ ॥ और अपने भैया-बहनका भी इन बालकोंके संग तिलांजलि दूँगा, तब सब व्रजवासी मृतक समान हो जायेंगे, प्राण गये पीछे देहोंकी क्या चिंता है, क्योंकि प्राणधारी पुरुषोंके पुत्र ही जीवनप्राण हैं ॥ १५ ॥ ऐसा विचारकर चार कोस लम्बा, पर्वतके समान मोटा, अजगर सांपका अद्भुत रूप

धारणकर गुफाके सदृश मुख पसार बछड़े और बालकोंके निगलनेके लिए मार्ग में बैठ गया ॥१६॥ नीचेका होंठ तो पृथ्वीपर और ऊपरका होंठ बादलतक फैला रखा था, पर्वतकी गुफाके समान जिसका मुख, पहाड़के शिखरके सदृश जिसकी दाढ़ें, गूढ़ कन्दराके तुल्य मुखमें अंधकार, बड़े लम्बे-चौड़े मार्गकी नाईं जिसकी जीभ, कठोर पवनके समान जिसका श्वास और अग्निके तुल्य जिसकी दृष्टि थी *॥१७॥ सब बालक उस अजगरको देखकर वृन्दावनकी शोभा समझकर खेलते-खेलते फूले हुए उस अजगरके मुखकी लीलासेही उत्प्रेक्षा करने

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्रः ॥ ध्वान्तान्तरास्यो वितताध्वजिह्वः परुषानिलश्वास दवेक्षणोष्णः ॥१७॥ दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ॥ व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥१८॥ अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरःस्थितम् ॥ अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्धनम् ॥ अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छा ययाऽरुणम् ॥ २० ॥

लगे ॥ १८ ॥ और परस्पर कहते थे कि अहो मित्रो ! यह तो कहो कि यह जो हमारे सम्मुख दिखाई देता है, कोई पक्षी है वा मनुष्य है ! मानो हमारे निगलनेके लिए सर्पके समान मुख पसार रहा है ॥ १९ ॥ सूर्यके किरणोंसे लाल-लाल बादल ऐसे दृष्टि आते हैं मानो सर्पका ऊपरवाला होठ है और सूर्यकी परछाईसे सब पृथ्वी ऐसी लाल दिखाई देती है मानो सर्पके नीचेकी ठोडी है ॥ २० ॥

* शंका अघासुर राक्षसके दोनों होठोंकी लम्बाई सुनकर हमारे सबके मनको--बड़ा संदेह है और हमारा हृदय कांपता है, क्योंकि ऐसी होठोंकी लंबाई रावणकी, तारककी और अनेक राक्षसोंकी भी न थी यह महिमा हमने आज तक कहीं नहीं सुनी, होठ थे वा कोठ थे ?

उत्तर---अघासुरका पूर्वजन्मका पुण्य था, सो श्रीकृष्णका दर्शन करके बड़े मुखसे अपने सन्मुखसे वर्द्धित होकर स्वर्गको चला गया, परंतु अपने तेजसे होठको संगही लेता गया और इस जन्ममें जो पाप किया था वह श्रीकृष्णको देखकर डरकर भागा और पातालमें जानेकी इच्छा की भूमिको भेद अघासुरका पाप रसातलको चला गया, परंतु अघासुर नीचेके होठको खींच कर अपने सङ्ग लेता गया पहिले अघासुरने श्रीकृष्ण महाराजके शरीरको स्पर्श किया उसके पुण्य पाप दोनों नष्ट हो गये, तब अघासुर कृष्णकी देहमें मिल-गया, पाप पुण्य नाश होने का कारण यह है, जबतक पुण्य रहेंगे तबतक वह प्राणी स्वर्ग भोगेगा और पापसे नरक भोगेगा, जब दोनों नष्ट हो जायंगे तब ईश्वर में मिलेगा इसलिये आकाश और भूमिमे अघासुरके होठोंकी वृद्धि हुई ।

इधर-उधर पर्वतकी कंदरासी महागंभीर अँधियारी ऐसी जान पड़ती है मानो सर्पके मुखका अन्त है। ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखरसे हमको ऐसे दिखाई देते हैं मानो साक्षात् सर्प अजगरकी दाढ़ें हैं, तुम ध्यान करके देखो ॥ २१ ॥ यह लम्बा-चौड़ा मार्ग हमको ऐसा दृष्टि आता है मानो सांपकी जिह्वा है और इन शिखरोंके भीतर हमको ऐसा अंधकार दीखता है मानो सर्पके मुखके भीतरका भाग है ॥ २२ ॥ दावानलसे उष्ण-उष्ण महातीक्ष्ण पवन ऐसा लगता है मानो महाविषवाले सर्पका श्वास है और यह विचार कर देखो कि अग्निमें जैसे जीव जलते हैं ऐसी दुर्गंधि आती है। यह सर्पके डँसे हुए मानो मांसकी दुर्गंधि है ? ॥ २३ ॥ इस सर्पके मुखमें जो हम घुस भी गये तो क्या यह हमको निगल जायगा ? और जो यह हमको निगल गया तो श्रीकृष्ण इसको बकासुरकी नाईं क्षणभरमें मार सकते हैं वा

प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ॥ तुङ्गशृङ्गालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥२१॥ आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रति गर्जति ॥ एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥ २२ ॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद् भाति पश्यत ॥ तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥२३॥ अस्मान् किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद् बकवद् विनङ्क्ष्यति॥ क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ॥ रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान् मनो दधे ॥ २५ ॥

नहीं ? इस प्रकार परपर कहते-सुनते बकासुरके विध्वंस करनेवाले श्रीकृष्ण का सुन्दर मुखारविंद देख हँसते-हँसाते ताली बजाते सब ग्वालबाल आगेको चले "ताली बजानेका कारण यह था कि जो सर्प होगा तो सरक जायगा और वृन्दावनकी यह अद्भुत शोभा होगी तो खेलेंगे" ॥ २४ ॥ श्रीवृन्दावनविहारी भक्तहितकारीने विचारा कि वास्तवमें तो यह सर्प ही है और सर्पका देह धारण किये हुए कोई दैत्य है और हमारे साथी बालकोंने इसे वृन्दावनकी शोभा समझकर फिर सर्पके भी सब लक्षण वर्णन किये तो भी अजान हैं और परस्पर भूलते बातें कर रहे हैं। ऐसा समझ सब प्राणियोंके हृदयमें वास करनेवाले भगवान् उन भोले बालकोंके वचन सुनकर जबतक उनको

निषेध करना चाहा कि इसमें मत घुसो कि ॥ २५ ॥ इतनेमें वह सब बालक बछरों समेत उस अघासुर दैत्यके मुखमें घुस गये, परन्तु अघासुरने अपने मरे हुये भाई-बहन की सुधि करके उन बालकोंको निगला नहीं, क्योंकि मनमें विचार किया कि बकासुरका मारने-वाला मेरा वैरी कृष्ण तो अभी आया ही नहीं ॥ २६ ॥ सबके अभयदाता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अनाथके समान दीन बालकोंको अपने हाथसे छूटे हुए जान और असाधुके घरमें घुसे हुए देखकर दयासे पीड़ित हुए आश्चर्यसे कहने लगे कि दैवकी कैसी अद्भुत गति है ॥ २७ ॥ अब इस समय क्या उपाय करना चाहिये ? कि यह दुष्ट तो मारा जाय और मेरे जीवनप्राण प्रिय ग्वालबाल बच जांय । ये दोनों बातें एकबारमें कैसे हों ? यह विचार करके उन दोनोंको जानकर संसारके द्रष्टा भगवान्‌ने अघासुरके मुखमें

तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ॥ प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥२६॥ तान् वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान् स्वकरादवच्युतान् ॥ दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान् घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥ कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ॥ द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥ २८ ॥ तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ॥ जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ॥ चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥ ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ॥ पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो मूर्धन् विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥

प्रवेश किया, क्योंकि मित्रताका यह धर्म नहीं है कि मित्र तो अघासुरके मुखमें चले गये और आप बाहर बड़े-बड़े कौतुक देखें, यह नहीं। जो कुछ मित्रोंकी गति होगी वह हमारी भी होगी, यह समझ आप घुस गये ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंकी ओटमें देवता खड़े होकर हाहाकार करने लगे और नैर्ऋतवंशी अघासुरके भाई-बन्धु कंसादि राक्षसोंको परमानन्द हुआ ॥ २९ ॥ अविनाशी श्रीकृष्ण भगवान् देवताओंका हाहाकार शब्द सुनकर, ग्वालबाल बछड़ों समेत कृष्णको चूर्ण करनेकी इच्छावाले उस अघासुरके कण्ठमें बढ़े ॥३०॥ तब उस बड़े शरीरवाले राक्षसका बल घट गया, आंखें बाहरको निकल आयीं, इधर-उधर छटपटाने लगा, देहमें श्वास रुक गया, बाहर

निकलनेको मार्ग नहीं मिला; पवन उसके ब्रह्मरन्ध्रको छेदन करके बाहर निकल गया ॥ ३१ ॥ अघासुरके श्वासके संग ही प्राण बाहर निकल गये तब सब बालक और बछड़ोंको मरा देखकर अपनी सञ्जीवनी दृष्टिसे अमृतकी वृष्टि करके जिला दिया। उनको साथ लेकर फिर श्रीमुकुन्द भगवान् अघासुरके मुखसे बाहर निकले ॥ ३२॥ उस दुष्ट अघासुरके देहमेंसे बड़ी अद्भुत ज्योति निकलकर अपने तेजसे दशों-दिशाओंको प्रकाशित करके आकाशमें स्थित होश्रीकृणचन्द्रके बाहर निकलनेका पंथ जोहता रहा। जब श्रीकृष्ण उसके मुखसे बाहर निकले तब सब देवताओंके देखते ही देखते श्रीकृष्णके शरीरमें प्रविष्ट हो गया ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओंने प्रसन्न होकर आकाशसे फूल वर्षाकर श्रीकृष्णकी पूजा की, अप्सराओंने नृत्य किया, गन्धर्व गाने लगे, बाजेवाले बाजे बजाने लगे, ब्राह्मण जयजय शब्द करके स्तुति

तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान् सुहृदः परेतान् ॥ दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान् विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद् दिशो दश ॥ प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ॥ गीतैः सुग वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिस्स्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥ तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमंगलस्वनान् ॥ श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद् दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥ राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ॥ व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ॥ मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥

करने लगे ॥ ३४ ॥ यह अद्भुत स्तोत्र और गीत, वाद्य, जय आदिक अनेक उत्सव मंगल शब्दोंको सुनकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे शीघ्र ही चले आये और श्रीकृष्णकी महिमा देखकर आश्चर्यमय हुए ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! उस अजगरका सूखा हुआ अद्भुत खखोड़ल वृन्दावनमें बहुत दिनतक व्रजवासियोंके बालकोंको खेलनेके लिये एक गुफा हो गयी, मुखके मार्गसे घुसें और नेत्रके मार्गसे निकल आयें। नेत्रोंके मार्गसे घुसें तो मुखके मार्गसे निकल आयें, इस प्रकार दिन-रात विहार करते रहे ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् बालकोंको और अपने आपको मृत्युसे छुड़ाना और अघासुरको मोक्षका देना ये सब काम पांच वर्षकी अवस्थामें किये, परन्तु

इसको आश्चर्य मानकर सब बालकोंने व्रजमें श्रीकृष्णकी पौगण्ड अवस्था अर्थात् पांच वर्षके व्यतीत होने के उपरांत छठे वर्षके मध्यमें यह अद्भुत लीला भगवान्ने की ऐसा कहा है ॥ ३७ ॥ मायासे मनुष्य बालक रूप धारण किये हुए सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमके आदि-कारण परमात्मा श्रीकृष्ण भगवान्के स्पर्शसे महापापी अघासुर पवित्र हो गया । जो बात असत्पुरुषोंको महादुर्लभ है ऐसे भगवद्रूपमें वह लय हो गया, यह बात आश्चर्यकी नहीं है ॥ ३८ ॥ क्योंकि जिसकी मनोहर मूर्ति प्रह्लादादिक भक्तोंने एक बार ही बलात्कार मनमें धारण की और उसीके प्रभावसे उन लोगोंने मोक्ष पायी तो सदैव अपने आत्मानन्दके अनुभवसे और माया करके रहित श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के शरीरमें अघासुरका प्रवेश होनेसे उसकी मुक्ति हुई तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ३९ ॥ शौनकादिक ऋषीश्वरोंसे

नैतद् विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ॥ अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसात्म्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥ सकृद् यदंगप्रतिमान्तराहिता मनोमयीं भागवतीं ददौ गतिम् ॥ स एव नित्यात्मसुखानुभूत्य-भिव्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ॥३९॥ सूत उवाच ॥ इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ॥ पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन् कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ॥ यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥४१॥ तद् ब्रूहि मे महायोगिन् परं कौतूहलं गुरो ॥ नूनमेतद्धरे-रेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥

सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार अपनी माताके गर्भमें यदुकुलके देव श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित हुए राजा परीक्षित् अपनी रक्षा करने वाले श्रीकृष्णचन्द्रके विचित्र पवित्र चरित्र सुनकर व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीसे फिर उसी प्रसङ्गसम्बन्धी प्रश्न किया, क्योंकि उन चरित्रोंके सुननेसे राजा परीक्षित्का मन अपने वशमें हो गया था ॥ ४० ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्ण महाराजने कुमार अवस्थामें जो लीला की वह बालकोंने पौगण्ड अवस्थामें गायी, यह एक वर्षका अंतर बीचमें कैसे पड़ गया ? ॥ ४१ ॥ हे बड़े योगिराज ! हे गुरू ! यह बात मुझको समझाकर कहो, मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य है, क्योंकि यह निश्चय भगवान्की ही माया है और कुछ नहीं है ॥४२॥

हे गुरो ! हैं तो हम क्षत्रियवंशी परन्तु तो भी हम संसारमें अतिशय धन्य हैं! क्योंकि जिस दिन ब्राह्मणका शाप हुआ उस दिनसे और भी धन्य हैं और जब तुम्हारे दर्शन किये तबसे धन्यतर हुए और अब जो तुमसे वारंवार कृष्णकथा अमृत पान करते हैं इसलिये अतिशय करके आज हम धन्य हैं ॥४३॥ श्रीसूतजी बोले कि हे हरिभक्तो ! इस प्रकार राजाने प्रश्न करके अपनी श्रद्धा दिखायी, दूसरे हरिका स्मरण करते ही प्रथम तो श्रीशुकदेवजीकी समस्त इन्द्रियाँ नारायणमें लय हो गयीं, फिर व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने बड़े कष्टसे फिर नेत्र खोलकर भक्तोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित्से कहा ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामघासुरवधनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–तेरहमें अज मोहवश, हरे ग्वाल अरु बाल । उसी रूपके कृष्णने, रचे बहुरि तत्काल ॥ श्रीशुक-

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः ॥ यत् पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ॥ कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महा० दशम० पू० अघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥ यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥ सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणी श्रुतिचेतसामपि ॥ प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत् स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता ॥ २ ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवोगुह्यमप्युत ॥ ३ ॥

देवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! हे बड़भागी ! हे भक्तभूषण ! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया, क्योंकि ईश्वरकी कथाको श्रद्धासहित वारंवार सुनते हो इससे तुम परम श्रेष्ठ हो ॥१॥ सार वस्तुके ग्रहण करनेवाले सज्जनोंका यही स्वभाव है, क्योंकि जिन पुरुषोंकी वाणी, कान और मन, यह सब भगवान्की कथामें लगे रहते हैं । वाणीसे कृष्णचन्द्रके गुण वर्णन करते हैं, कानोंसे नित्य नयी कथा सुनते रहते हैं, मनसे श्यामसुन्दरके स्वरूपका ध्यान करते रहते हैं । इस प्रकार भगवान्की वार्तामें क्षण-क्षण प्रति ध्यान लगाये रहते हैं । और वे कथायें ऐसी प्रिय लगती हैं मानों कभी नहीं सुनी हैं, जैसे विषयी पुरुषोंको स्त्रियोंकी बातें प्यारी लगती हैं ॥२॥ हे राजा परीक्षित ! यह कथा

परमगूढ़ है तो भी मै आपसे कहता हूँ, क्योंकि कैसी भी गुप्त वार्ता हो, गुरुको चाहिये कि अपने प्यारे शिष्यके सामने सब कहे। उसे आप सावधान होकर सुनिये ॥ ३ ॥ अघासुरके मुखमेंसे मृतक बालक और बछरोंको जिलाकर यमुनाके किनारे अत्यन्त रमणीक रेतीमें उनको लाकर श्रीकृष्ण भगवान् यह कहने लगे ॥४॥ हे परम प्यारे मित्रो ! यह अत्यन्त रमणीक रेती है और विहार करनेके लिये परम-श्रेष्ठ और शोभायमान स्थान है, देखो कैसे सुन्दर और स्वच्छ बालूके कोमल-कोमल बिछौने बिछ रहे हैं, रंग-रंगके कमल खिल रहे हैं, उनपर सुगंधके लोभसे भौंरे गुंजार रहे हैं और जलपक्षियोंके शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे चारों ओरके वृक्ष शब्दायमान हो रहे हैं ॥५॥ यहां बैठ-कर कलेवा कर लो, दिन भी बहुत चढ़ गया और भूख भी अधिक लग रही है बछरोंको भी जल पिलाकर यहीं चरनेके लिये छोड़ दो,

तथाऽघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ॥ सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् ॥ स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवाऽऽरूढं क्षुधार्दिताः ॥ वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥ तथेति पाययित्वा-र्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ॥ मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥ कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलै-रभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ॥ सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाऽम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥ केचित् पुष्पै-र्दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ॥ शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ ९ ॥

सहज सहजमें घास चरते रहेंगे ॥६॥ श्रीकृष्णने सब बालकोंके वचनोंको मान बछड़ोंको पानी पिला हरी-हरी घासमें चरनेको छोड़ दिया और अपने-अपने छींकोंको खोल-खोल छाछ परोस-परोस श्रीकृष्णके संग सब भोजन करनेको बैठे ॥७॥ व्रजवासियोंके बालक श्रीकृष्ण-चन्द्रके चारों ओर अनेक पंक्तियोंकी मण्डली बनाकर एक साथ बैठे। यदुनाथके सम्मुख मुख करनेसे जिनकी दृष्टि प्रफुल्लित हो रही थी। जैसे कमलकी कलीके चारों ओर पखुरियोंकी छबि दिखायी देती है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र तो कलीके समान थे और ग्वालबाल पखुरीके समान, इस प्रकार यमुनाकी रेतीमें शोभायमान जान पड़ते थे ॥८॥ किसी बालकने फूलोंकी पत्तल बनायी, किसीने पखुरियोंकी पत्तल

बनायी, किसीने पत्तोंकी पत्तल बनायी, किसीने अंकुरोंकी पत्तल बनायी और किसीने फलोंकी पत्तल बनायी और किसीने वृक्षोंकी छाल छीलकर पत्तल बनायी और उनपर भांति-भांतिके भोजन परोसे। किसी-किसीने छींकमें ही भोजन करनेका विचार किया, कोई शिलापर ही अपना भोजन परोसकर खानेको बैठ गया ॥ ९ ॥ सब बालक अपने-अपने भोजन पृथक्-पृथक् प्रकारके आप खाते और अन्योंको स्वाद दिखाते और चखाते परस्पर हँसते-हँसते ठट्ठे उड़ाते श्रीकृष्णके साथ भोजन कर रहे थे ॥१०॥ फेंटमें बांसुरी धारणकर रहे थे, श्रृंगी, बेतकी छड़ियोंको कांखमें दाब रहे थे, दही भातसे लिपटा हुआ ग्रास बायें हाथमें ले रहे थे और बेर, आमले, नींबू आम, जामुनादिक फल अंगुलियोंमें धर लिये थे। यज्ञभोक्ता भगवान् चारों ओर अपनी मित्रमंडलीमें बैठे उनसे हँसीकी बातें कह-कहकर उनको हँसाते जाते थे और धीरे-धीरे भोजन

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ॥ हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥ बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ॥११॥ भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ॥ वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥ तान् दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ॥ मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥

खाते जाते थे। इस बाल चरित्रको स्वर्गमें देवता देख-देखकर आश्चर्यमय हो मनही मन कहते थे कि देखो यज्ञभोक्ता भगवान् किस प्रकार आनन्दित हो होकर ब्रजवासियोंके बालकोंकी जूठन छीन छीनकर खा रहे हैं, पूर्वजन्ममें इन्होंने पूर्ण पुण्य किये हैं ॥११॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णमें मन लगाये ग्वालबाल भोजन कर रहे थे और बछरे हरी हरी घासके लोभसे बहुत दूर वनके भीतर चले गये ॥१२॥ जब बछरे दूर चले गये तब सब बालक अपने मनमें घबड़ाये, उस समय उनकी घबड़ाहट दूर करनेके लिये भगवान् भयहारी उनसे बोले कि हे मित्रो ! तुम भोजन करते रहो, उठो मत, क्योंकि ऐसी सुन्दर मण्डली फिर न बँधेगी, मैं अभी बछरोंको लिये आता हूँ ॥१३॥

इस प्रकार सबको धैर्य बंधाकर दही-भातका ग्रास हाथमें लिये श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफाओंमें, वनमें, कुञ्जोंमें, गह्वर स्थानोंमे अपने बछड़ोंको ढूँढते-ढूँढते दूर चले गये ॥१४॥ हे कुरुकुल भूषण ! उसी अवसरमें कमलोद्भव ब्रह्माजी, जो कि प्रथम मायासे बालकरूप श्रीकृष्णका किया अघासुरका मोक्ष होना देखकर अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हो आकाशमें खड़े-खड़े देख रहे थे। अब वे फिर श्रीकृष्णकी यह दूसरी माया देखनेके लिये यहांसे तो बालकोंको और वनमेंसे बछरोंको देखकर चुराकर दूसरे स्थानमें लेजाकर अन्तर्धान हो गये * ॥१५॥ जब वनमेंसे बछरोंको न देखा तब लौटकर फिर यमुनातीरके निकट आये तो यहां बालकोंको भी न पाया, उस समय बालकोंको और बछरोंको वनमें चारों ओर

इत्युक्त्वाऽद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ॥ विचिन्वन् भगवान् कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥ १४ ॥ अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ॥ नीत्वाऽन्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात् खेऽवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वाऽघासुरमोक्षणं प्रभवत प्राप्तः परं विस्मियम् ॥ १५ ॥ ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ॥ उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥ १६ ॥ काप्यदृष्ट्वाऽन्तर्विपिने वत्सान् पालांश्च विश्वजित् ॥ सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥ १७ ॥ ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ॥ उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥

ढूँढते फिरे ॥१६॥ जब वनमें कहीं बछरों और बालकोंको न पाया तब विश्वभावन भगवान् सब विश्वकी गतिके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें जान लिया कि यह सब ब्रह्माका कौतुक है ॥१७॥ यह समझकर जगदीश्वर भगवान्ने विचार किया कि जो मैं चुप होकर बैठा रहा तो बालकोंकी माता रोवेंगी और जो ब्रह्माके पाससे छीनकर ले आऊँगा, तो ब्रह्मा अपने मनमें लज्जित होगा और उसके मनका मोह दूर न

* शंका–भगवान्के अनेक अवतार हुए, परंतु किसी अवतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न नहीं हुआ। यह बात शास्त्र और पुराणोंके वक्ता और आचार्य लोगोंसे सुन रखी है, परंतु कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह क्यों उत्पन्न हुआ ?
उत्तर–ब्रह्माने नारदजीको मायामें ग्रस्त हुआ देखकर उनकी हँसीकी, तब नारदने शाप दिया कि हे पिताजी ! आपको भी माया मोहित करेगी, किसी दिन श्रीकृष्णको भोजन करते देखकर उनकी मायामें मोहित होओगे । हे पिताजी ! श्रीनारायणकी माया सर्वोपरि बलवान है । इस नारदके शापसे कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न हुआ ।

होगा, ऐसा विचार कर बालकोंकी माताओंको आनन्द देनेके लिये और ब्रह्माका मोह बढ़ानेके लिये विश्वके रचयिता श्रीकृष्णचन्द्रभगवान्‌ने अपने ही अनेक रूप धारण किये, अर्थात् बछरे भी आप ही बने और ग्वालबाल भी आप बने ॥ १८ ॥ जैसा जिसके बछरोंका और बालकोंका छोटा अथवा बड़ा, और जैसे जिनके हाथ-पांव थे, किसीके छः अँगुली थीं जैसी-जैसी उनके पास छड़ी, शृङ्गी, बांसुरी, छींके थे, जैसे जिसके आभूषण, वस्त्र, कुसुम्भी, हरी, पीली, गुलाबी पगड़ी थी, जैसा जिसका स्वभाव था वैसा ही स्वभाव, रूप, गुण, नाम, अवस्था, आहार, व्यवहार और लक्षण थे उसी प्रकारके सर्वात्मा भगवान् आप बने ॥१९॥ सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् आप ही बछरे बने, आप ही उनको घेर-घेरकर अपने खेलोंसे खेलने लगे। इसी प्रकारका विहार करते हुए आप ही व्रजमें पधारे ॥ २० ॥ हे राजन्!

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ॥ यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ १९ ॥ स्वयमात्मात्मगोवत्सान् प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ॥ क्रीडन्नात्मविहारैश्च सार्वात्मा प्राविशद् व्रजम् ॥२०॥ तत्तद्वत्सान् पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ॥ तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयस्सुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२ ॥ ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालङ्काररक्षातिलकाशनादिभिः ॥ संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन् सायं गतो यामयमेन माधवः ॥ २३ ॥

जिन जिन व्रजवासियोंके बछड़े थे, समूहमेंसे अलग अलग होकर उन-उनके खिरकोंमें घुस गये और जिन जिन व्रजवासियोंके बालक थे वे अपने अपने घरों को चले गये ॥२१॥ उन बालकोंकी माता बांसुरियोंका शब्द सुनकर शीघ्रतासे उठ उठकर अपने अपने घरोंसे बाहर निकलकर बालकोंके हाथ पकड़ पकड़ कर हृदयसे लगाने लगीं। स्नेहसे स्तनोंमें दूध भर आया, वही अमृतके तुल्य स्वादवाला दूध परब्रह्म श्रीकृष्णचंद्रको अपने पुत्रमानकर पिलाने लगीं॥२२॥फिर पीछे उबटन करके पीछे मज्जन (स्नान) कराकर चंदन केशर लगाकर गहने पहनाने लगीं, फिर मस्तकपर तिलक लगाकर भोजन कराया। इस प्रकार सब गोपी श्रीकृष्णचन्द्रको लाड़ लड़ाती थीं और वृन्दावनविहारी

अपने सुन्दर-सुन्दर चरित्र दिखाकर उनको आनन्द देते थे, उस समय खेलका नियम साधकर सन्ध्याकाल ब्रजमें आते थे ॥ २३ ॥ इस प्रकार गोपियोंका मोह कहकर अब गौओंका मोह कहते हैं:-गायें दौड़-दौड़कर रम्भाय ब्रजमें आती हैं और अपने अपने बछरोंको बुलाती हैं। जब बछरे आते हैं तब अपने-अपने बछरोंको प्रेमसे अयनमें सञ्चित हुए दूधको उन्हें पिलाती हैं, वारंवार हित मानकर उनको चाटती जाती हैं ॥ २४ ॥ इस कृष्णचन्द्रमें सब गोप गोपियोंका मैत्री भाव पहलेके समान हो गया, परंतु पहले इतना हित नहीं था, अब पहलेसे अधिक स्नेह बढ़ गया। गाय गोपियोंमें भी श्रीकृष्णकी बाल भावना पहलेके समान रीति-प्रीति हो गई परंतु मैं इसका पुत्र हूं और यह मेरी माता है यह मोह नहीं रहा ॥ २५ ॥ ब्रजवासियोंकी अपने बालकोंमें स्नेह रूपी लता एक वर्ष तक धीरे धीरे

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् ॥ स्वकान्स्वकान् वत्सतरानपाययन् मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥ २४ ॥ गोगोपीनां मातृताऽस्मिन् सर्वा स्नेहर्धिकां विना ॥ पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ ॥ २५ ॥ व्रजौकसां स्वतो केषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् ॥ शनैर्निस्सीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥ इत्थमात्माऽऽत्मनाऽऽत्मानं वत्सपालमिषेण सः ॥ पालयन् वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एकदा चारयन् वत्सान् सरामो वनमाविशत् ॥ पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥ ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ॥ गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाऽथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ॥ द्विपात् ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्रुपया जवेन ॥ ३० ॥

ऐसी बढ़ी कि जिसकी वृद्धिका पारावार नहीं, जैसे पहले देवकीनंदनमें बढ़ी थी ॥ २६ ॥ इस प्रकार सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बछड़े और बालकोंके बहाने आपरूप बछड़ोंको आपरूप ग्वालोंको बनाकर बछरे चराकर वनमें व्रजमें एक वर्ष तक क्रीड़ा करते रहे ॥ २७ ॥ जबकि एक वर्ष पूरा होनेमें पांच सात दिन शेष रह गये तब एक दिन भगवान् बलभद्र भैयाको संग लेकर वनमें बछड़े चरानेको गये थे, वहां बलभद्रजीको ऐसा कुछ देखनेमें आया ॥ २८ ॥ बहुत दूर जो गायें गोवर्द्धन पर्वतके ऊपर चर रही थीं उन्होंने ब्रजके निकट अपने बछड़ोंको चरता देखा ॥ २९ ॥ बछड़ेको देखते ही प्रेमके वश हो अपने तनमनकी सब सुधिभूल गयीं

और उनके थनोंसे दूध टपकने लगा, गोपोंके निवारण करने और विषम मार्गका कुछ भी ध्यान नहीं किया और ऐसी भागीं मानो दोहीं पांवोंसे चलरही हैं, मुख और पूँछ ऊपरको उठाये बड़े वेगसे हुँकार शब्द करती बछरोंके समीप पहुँचीं ॥३०॥ यद्यपि उन गायोंके और छोटे-छोटे दूसरे बछरे भी थे तो भी वह गायें गोवर्द्धन पर्वतसे नीचे आकर इन बछरोंसे मिल, उन बछरोंको दूध पिलाने लगीं और ऐसे उनके शरीरको चाटने लगीं मानो निगल जायँगी ॥ ३१ ॥ अब गोपोंका मोह कहते हैं:—जब गोपोंने गायोंको घेरा और गायें नहीं घिरीं तब लज्जित हो अपने मन ही मनमें कहने लगे कि हम बानैत गोप कहलाते हैं, परन्तु आज हमसे गायें भी नहीं रुकीं । तब अपने मनमें बड़ा क्रोध करने लगे और उन कठिन कठिन मार्गोंमें बड़ी कठिनतासे नीचे आये, तब बलदेवजीके संग बछरोंको लिए अपने पुत्रोंको

समेत्य गावोऽधो वत्सान् वत्स वत्योऽप्यपाययन् ॥ गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥ ३१ ॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ॥ दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥ तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ॥ उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥ ३३ ॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ॥ कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥ व्रजस्य रामः प्रेमर्द्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ॥ मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविद चिन्तयत् ॥ ३५ ॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥ व्रजस्यसात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥

देखा ॥ ३२ ॥ उनको देखते ही वह गोप अत्यन्त ही प्रेमरसमें मग्न हो गये, इससे सब क्रोध शांत हुआ और प्रेम बढ़ गया, तब तो बालकोंको हाथ उठा उठाकर हृदयसे लगा लिया और उनके माथेको सूँघकर ब्रजवासी बड़े आनंन्दित हुए ॥३३॥ फिर पीछे वृद्ध-वृद्ध गोप बालकोंको हृदयसे लगाकर बड़े प्रसन्न हुए और महाकठिनतासे सहज-सहजमें बालकोंको छोड़कर बाहर निकले । बालकोंकी सुधिले उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ३४ ॥ यद्यपि उन बालकोंने दूध पीना छोड़ दिया था और बड़े भी हो गये थे, तो भी उन बालकोंमें ब्रजवासियोंके प्रेमकी ऐसी वृद्धि देख और उसके कारणको न समझकर बलराम अपने मनमें विचार करने लगे ॥ ३५ ॥ कि सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर जैसा प्रेम प्रथम था वैसा ही अपूर्व प्रेम अब बालकोंपर भी बढ़ता जाता है और यही नहीं मेरे हृदयमें भी

वत्स और बालकोंपर क्षण-क्षणमें अधिक प्रेमकी वृद्धि होती चली जाती हैं, यह बड़ी अद्भुत बात है, न जाने यह क्या कारण है ? ॥३६॥ यह क्या है, देवताओंकी माया है, वा मनुष्योंकी माया है अथवा राक्षसी माया है, मैं नहीं जान सकता कि यह कहांसे आयी और कैसी अलौकिक माया है ? क्योंकि इसने मुझको भी मोहित कर लिया, इससे मुझको यह जान पड़ता है कि यह माया मेरे स्वामी श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्दकी हो तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि और दूसरेकी माया मेरे मनको मोहित नहीं कर सकती ॥ ३७ ॥ इस प्रकार शोच विचार कर दाशार्हवंशोद्भव बलदेवजीने अपनी ज्ञानदृष्टिसे देखा तो सब बछड़े और बालक सर्वात्मा श्रीकृष्णरूपमें दिखाई दिये ॥ ३८ ॥ सब देवता ग्वालबाल बने हैं और ऋषि-मुनियोंने बछड़ोंका रूप धारण किया है, यह मैं जानता हूँ, परंतु यह बालक अब देवता नहीं है और यह बछड़े ऋषि भी नहीं हैं, अब तो मुझको सबमें श्रीकृष्ण दृष्टि आते हैं, जब यह भ्रम हुआ तो श्रीकृष्णसे पूछा कि हे प्रभु !

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युताऽऽसुरी ॥ प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति संचिन्त्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ॥ सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥ नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाऽऽश्रयेऽपि ॥ सर्वं पृथक् त्वं निगमात् कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत ॥३९॥ तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुटयनेहसा ॥ पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥ ४० ॥ यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ॥ मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥ ४१ ॥

इस भेदको कहो कि यह क्या है ? आप सम्पूर्ण भेद भिन्न-भिन्न समझाकर कहो जिससे मेरे मनका सन्देह दूर हो जाय ? जब इस प्रकार बलदेवजीने श्रीकृष्णसे कहा तब श्रीकृष्णने सब वृत्तान्त समझाकर कहा कि हे भैया ! तुमको आज सुधि हुई है जब ब्रह्माको मोह हुआ और बछड़े और बालकोंको चुराकर ले गया, तब मैंने बालक और बछड़ोंका वैसा ही रूप धारण कर लिया, और उनके कुटुंबियोंको क्लेश न होने दिया। इस प्रकार श्रीकृष्णके कहनेसे बलदेवजीने सब भेद जान लिया ॥ ३९ ॥ देखो यहां तो एक वर्ष बीत गया, परन्तु ब्रह्माका एक पल ही बीता था, तब ब्रह्माने फिर आकर देखा तो पहलेकी नाईं बछड़े और बालकोंको सङ्ग लिए श्रीवृन्दावनविहारी नये ढंगके खेल खेल रहे हैं ॥ ४० ॥ यह अद्भुत कौतुक देख ब्रह्माजी अपने मनमें विचार करने लगे कि गोकुलमें जितने बछड़े और बालक

हैं वे सब मेरी मायारूपी शयनमें पड़े सो रहे हैं और अभी तक उठे नहीं ॥४१॥ फिर यह मेरी मायासे अलग जो ग्वालबाल और बछड़े चर रहे हैं और अनेक प्रकारसे विहार कर रहे हैं, ये यहां कैसे आ गये ? जितने मैं हरकर ले गया हूँ उतने तो उस स्थानपर हैं, यहां वर्ष दिनसे भगवान्के सङ्ग जो विहार कर रहे हैं ये कौन हैं ? ॥४२॥ इस प्रकार मोहित हो ब्रह्माजी बहुत देरतक विचार करते रहे कि इनमें कौनसे बालक और बछड़े सत्य हैं और कौनसे असत्य हैं ? मैं जो हरकर ले गया वे सत्य हैं वा यह जो ब्रजविहारीके सङ्ग विहार कर रहे हैं ये सत्य हैं ? दोनों एकसे दिखाई देते हैं, क्या करूँ ? मैं किसी प्रकार इस भेदको नहीं जान सकता ॥४३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कभी वनमें, कभी ब्रह्मलोकमें एक वर्षतक चकईके समान ब्रह्मा दिन-रात घूमते फिरे ! देखो । इस प्रकार ब्रह्माजी विश्वके मोह करनेवाले

अतः एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ॥ तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥४२॥ एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः ॥ सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन ॥४३॥ एवं संमोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ॥ स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥ ताभ्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहिनि ॥ महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥ ४५ ॥ तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ॥ व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥४६॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥

और मोहरहित विष्णुभगवान्को अपनी मायासे मोहित करना चाहते थे, परंतु आप ही मोहित हो गये ॥४४॥ जैसे अँधेरी रातमें कुहर अंधकारसे अपना पृथक् आवरण नहीं कर सकता, क्योंकि उसी अन्धकारमें आप भी लय हो जाता है, जैसे दिनमें खद्योत (पटबीजना) अपना प्रकाश पृथक् नहीं कर सकता, ऐसे ही ऐश्वर्यवान् पुरुषोंपर कोई साधारण पुरुष अपनी माया करना चाहे तो उस अधमकी माया उत्तम पुरुषका कुछ भी नहीं कर सकती, बरन् चलानेवालेके ही सामर्थ्यका विनाश करती है ॥४५॥ देखो ब्रह्माके देखते ही देखते क्षणमात्रमें और एक अद्भुत आश्चर्य हुआ कि सब बछरे और बालक मेघवत् श्यामवर्ण, पीताम्बर पहने ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजरूप धारे, हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिये, मस्तकपर किरीट, मुकुट धारण किये, कानोंमें कुण्डल विराजमान, कण्ठमें मोतियोंके हार और वनमाला पहने ॥ ४७ ॥

श्रीवत्सकी कांतिसे शोभायमान, भुजाओंमें भुजबंद पहने रत्नजटित शंखके समान तीन रेखावाले कङ्कण करमें धारण किये, नूपुर, कटक, कमरमें तगड़ी और मुंदरियोंके धारण करने से शोभायमान ॥ ४८ ॥ बड़े पुण्यवान् सज्जनोंसे समर्पण की हुई तुलसीकी नवीन और कोमल मालाओंसे शिरसे पावों तक परिपूर्ण ॥ ४९ ॥ चद्रिकाके सदृश स्वच्छ मन्दहास्यसे मानो अपने दासोंको सत्त्वगुणसे पालन करते और अरुणाई युक्त कटाक्षभरी चितवनसे अपने भक्तोंके मनोरथोंको मानो रजोगुणसे उत्पन्न करते विदित होते थे ॥ ५० ॥ ब्रह्मा आदिसे लेकर तृणपर्यंत स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी मूर्तिमान् होकर एक-एक बछेड़के सम्मुख नाच और गान आदिक अनेक-अनेक

श्रीवत्सांगददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः ॥ नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥ ४८ ॥ अङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ॥ कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥ चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः ॥ स्वकार्थानामिव रजस्सत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥ ५० ॥ आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ॥ नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥ अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ॥ चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥५२॥ कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ॥ स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ॥ अपृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४ ॥ एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ॥ यस्य भासा सर्वमिदं विभातिसचराचरम् ॥ ५५ ॥

प्रकारसे उनकी पूजा और शिष्टाचार करते थे ॥ ५१ ॥ और अणिमादिक अष्ट सिद्धि, मायासे लेकर महदादि विभूति, चौबीस तत्त्व चारों ओर देदीप्यमान थे ॥५२॥ काल, स्वाभाव, संस्कार, काम, कर्म, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण,यह रूप धारण कर प्रत्येककी सेवा करते थे। इन सबकी स्वतन्त्रता श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमाके आगे नष्ट हो गयी थी ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानरूप आनन्दमात्र एकरस जो ब्रह्ममूर्तिवाले तथा जिनके चक्षु आत्मज्ञान है ऐसे महात्मा पुरुष भी जिनकी महिमाके माहात्म्यको नहीं जान सकते, ऐसा सबका रूप ब्रह्माजीने देखा ॥ ५४ ॥ उस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ समस्त बछड़े और बालकोंको परब्रह्ममय देखा, जिस पर ब्रह्मकी कांतिसे संपूर्ण

स्थावर-जंगम और यह विश्व प्रकाशमान हो रहा है ॥ ५५ ॥ उसके पीछे फिर बड़े आश्चर्यसे ब्रह्माजीकी सब इंद्रियाँ शिथिल हो गयीं और उनके तेजसे ब्रह्माजी चुप हो गये, जैसे ग्रामकी रक्षा करनेवाली पुतलोंके आगे चार मुखकी सुवर्णकी प्रतिमा खड़ी हो इस प्रकार खड़ा हुआ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार सरस्वतीके स्वामी तर्कनारहित स्वप्रकाश सुखनिधान प्रकृतिसे परे और ब्रह्मसे पृथक् वस्तुसे मिथ्या जिनका ज्ञान प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदोंसे हो सकता है उस अलौकिक रूपको देखकर और उस महिमाको विचार कर यह क्या है ? ऐसे सोचते हुए ब्रह्माजी मोहित हो गये और उनकी अवलोकन करनेकी शक्ति भी जाती रही। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्माजीकी

ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशेन्द्रियः ॥ तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्तिका ॥५६॥ इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ॥ अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम्॥५७॥ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः॥ कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥५८॥ सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् ॥ वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥५९॥ यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः॥ मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम्॥६०॥तत्रोद्वहत् पशुवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ॥ वत्सान् सखीनिव पुरा परितो विचिन्वदेकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥

सब दशा देखकर मायाका आवरण उनके हृदयसे दूर कर दिया ॥ ५७ ॥ तब तो ब्रह्माजीकी सब इंद्रियाँ चैतन्य हो गयीं जैसे मृतक पुरुष जी उठे हैं ऐसे बड़े कष्टसे नेत्रोंको खोलकर अपने आत्मासहित ब्रह्माजीने जगत्को देखा ॥ ५८ ॥ जब ब्रह्माजीने चारों ओर दृष्टि उठाकर देखा तो सम्मुख ही चारों ओर प्रिय पदार्थोंसे परिपूर्ण और मनुष्योंकी जीविकाके लिये वृक्षोंसे भरापुरा वृन्दावन है ॥५९॥ जिस वृन्दावनमें स्वाभाविक वैर करनेवाले सिंह, मृग और मनुष्य परस्पर परममित्रके समान रहते हैं ! श्रीवृन्दावनविहारीके सङ्ग रहनेसे सब प्राणियोंका क्रोध और तृष्णा दूर हो गयी है ॥ ६० ॥ उस वृन्दावनमें गोपालवंशके बालकपनका आचरण करनेवाले अनन्त अगाध ज्ञान

स्वरूप बछड़े और ग्वालबालोंको पहलेके समान ढूँढ़ते-फिरते थे और हाथमें दही भातका ग्रास लिये अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र मुरली मनोहरका दर्शन ब्रह्माको हुआ ॥६१॥ इस प्रकार वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको देख उसी समय ब्रह्माजी अपने वाहन हंसपरसे नीचे उतर कांचनके दण्डके तुल्य अपनी देहसे साष्टांग कर चारों मुकुटोंका अग्रभाग चरणारविन्दोंसे लगा दण्डवत् कर आनन्दरूप आंसु-ओंके जलसे श्रीकृष्णका अभिषेक करने लगे ॥ ६२ ॥ प्रथम जो भगवान्की अद्भुत महिमा देखी थी उसको वारंवार स्मरण कर करके श्रीगोविंद भगवान्के चरणारविन्दोंपरसे उठ और फिर गिर पड़े, इस प्रकार बड़ी देर तक ब्रह्मा पाओंमें पड़े रहे ॥६३॥ फिर पीछे सहज सहजमें उठ आंसू पोंछ, भगवान्की ओर निहार, लज्जाके कारण नीचेको गर्दन कर, हाथ जोड़, शरीर कम्पायमान, मुखसे कुछ कुछ अक्षर

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य ॥ स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥६२॥ उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ॥ आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ॥ कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥६४॥ इति श्रीभाग० म० दशम० पू० ब्रह्ममोहनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ ब्रह्मोवाच ॥ नौमीड्यतेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥ वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्म-श्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥

निकले इस प्रकार गद्गद वाणीसे ब्रह्माजी स्तुति करने लगे कि हे नाथ ! ॥६४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषा-टीकायां ब्रह्मणा मोहनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ दोहा—चौदहमें हरिके चरित, अद्भुत अलख लखाय। हरि अस्तुति अज ज्यों करी, कहौं कथा सो गाय ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे स्तुति करने योग्य ! श्यामघटाके समान तुम्हारा शरीर; बिजली सम पीतांबर धारण किये, गुञ्जाओंके कर्णभूषण, मयूरपिच्छके मुकुटसे शोभायमान मस्तक, कण्ठमें वनमाला पहने, दही भातका ग्रास, बेतकी छड़ी, शृङ्ग बासु-रीके चिह्नोंसे सुशोभित अतिसुन्दर कोमल चरणारविंदोंसे विचरते हो, हे गोपाल नन्दलाल ! आपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥१॥

हे देव सच्चिदानन्द ! मेरे ऊपर कृपा करनेवाली और भक्तोंकी इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाली पञ्चभूतरहित यह आपकी मनोहर मूर्ति शुद्ध सत्त्वयुक्त है, इस आपके अवतारकी महिमाको मैं (ब्रह्मा) क्या, किसीमें भी जाननेकी सामर्थ्य नहीं है। आप जो साक्षात् आत्मसुखके अनुभवरूप अवतारधारी हो, तुम्हारी महिमाको समाधि लगाकर भी कौन जान सकता है ? अथवा पञ्चभूतमय विराट्-रूपकी महिमा जाननेको कोई समर्थ नहीं हो सकता, मेरे ऊपर आपने अनुग्रह करके दर्शन दिया ॥ २ ॥ हे अजित ! आप किसीके जीतनेमें नहीं आते, परन्तु जो मनुष्य ज्ञान प्राप्त करनेके परिश्रमको त्यागकर महात्मा पुरुषोंके मुखसे निकली हुई आपकी कथाको श्रवणद्वारा पान करके अपने घर बैठे बैठे मनसे, वाणीसे, देहसे आपका अर्चन वन्दन करके जीते हैं उन लोगोंको त्रिभुवनमें कोई नहीं जीत

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य नतु भूतमयस्य कोऽपि ॥ नेशे महि त्ववसितं मनसान्तरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥ ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ॥ स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयस्सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ॥ तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥ पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहानिजकर्मलब्धया ॥ विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥ तथाऽपि भूमन् महिमाऽगुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ॥ अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥ ६ ॥

सकता और वे लोग आपको अपने वशमें कर लेते हैं ॥ ३ ॥ हे विभो ! भुक्ति-मुक्ति देनेवाली आपकी भक्तिको त्यागकर जो लोग केवल ब्रह्मज्ञानी होनेके लिये अधिक क्लेश और खेद करते हैं उन लोगोंको केवल क्लेश और खेद ही शेष रह जाता है कुछ नहीं मिलता। जैसे जो मनुष्य थोथे तुषोंको कूटता है, उसको दुःखके सिवाय अन्न किसी प्रकार नहीं मिल सकता ॥४॥ हे व्यापक ! हे भूमन् ! इस संसारमें पहले बहुतसे योगीश्वरोंको जब योगसे ज्ञान नहीं मिलता तो अपनी सब क्रिया और कर्म आपको समर्पण करनेसे और कथा सुननेसे भक्तिको प्राप्त हो उससे आत्मज्ञानकी प्राप्ति कर फिर अनायास ही आपके पदको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ हे परिच्छेद रहित ! इस प्रकार आपके

सगुण और निर्गुण दोनों रूपोंका ज्ञान होना कठिन है और भक्तिसे ही आप जाननेमें आते हैं, तो भी निर्मल अन्तःकरणवाले जितेन्द्रिय महात्मा पुरुष अपने अन्तःकरणके साक्षात्कारसे, निर्विकारतासे, अरूपतासे, एवं अनन्यबोधसे कुछ-कुछ आपकी महिमाको जान सकते हैं, परंतु और किसी प्रकारसे आप जाननेमें नहीं आते ॥६॥ हे गुणात्मन् ! आप गुणोंके आधार हो, इस विश्वका मंगल करनेके लिए आपने इस संसारमें अवतार लिया है। सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन गुणोंके तुम साक्षी हो,आपके इतने गुण हैं, जिसके गिननेके लिए कौन पुरुष सामर्थ्यवान् हो सकता है ? कोई चतुर बहुत दिनोंमें बहुतसे जन्म धारण करके पृथ्वीकी रेणुकी गिनती कर ले, आकाशके हिमकणकी गिनती करले और स्वर्गके नक्षत्रादि किरणोंके परमाणुओंको भी गिन सकता है, परंतु आपके गुणोंका पार कोई किसी प्रकार नहीं

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ॥ कालेन यैर्वाविमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥७॥ तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ॥ हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥ ८ ॥ पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपिमायिमायिनि ॥ मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥९॥ अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ॥ अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुषा एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥ क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ॥ क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥

पा सकता ॥ ७ ॥ बहुतेरे भक्त जगत्में ऐसे भी हैं, और रात दिन यही कहते रहते हैं, आप किस समय कृपा करेंगे ? इसकी बाट देखते देखते आसक्तिसहित हो अपने किये कर्मफल दुःख-सुखको सहते हुए शरीर, मन, वाणीसे जो पुरुष आपको प्रणाम करते हैं, वे प्राणी भी मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! मेरी दुष्टता तो देखो कि आप जो समस्त मायावियोंके मोहित करनेवाले अनंतरूप परमात्मा हो आपपर भी मैंने अपनी माया फैलाकर अपना वैभव दिखाने की इच्छा की, इससे क्या हो सकता है, जैसे अग्निके सामने स्फुलिङ्ग (चिनगारी) तुच्छ है, अर्थात् कुछ नहीं कर सकता है, ऐसे ही आपके सम्मुख मैं तुच्छ हूँ, कुछ नहीं कर सकता ॥९॥ हे अच्युत ! हे अखण्डरूप ! मैंने रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण आपके स्वरूपको नहीं जाना । आपसे भिन्न ही भगवान्को जाना, मैं अजन्मा जगत्का कर्ता हूँ इस अभि-

मानसे अन्धा हो रहा हूँ, आप मेरे स्वामी हो, मुझे अपना दास जानकर कृपा करिये, क्योंकि मैं आपकी कृपाके योग्य हूँ, आप मुझको ब्रह्माण्डका नाथ कहो तो हे भगवन्! माया, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वीसे बने ब्रह्माण्डमें सात बिलादिकी देहवाला मैं कहां और आपके रोमकूपरूप झरोखोंमेंसे ऐसे अनन्त ब्रह्माण्डरूप परमाणु घूमते फिरते हैं, ऐसी आपकी अद्भुत महिमा कहां? मुझमें और आपमें बड़ा अन्तर है, इस लिए मुझको अत्यन्त तुच्छ जानकर मुझपर अनुग्रह कीजिये और यह भी समझना चाहिये कि यह ब्रह्मा यद्यपि लोकोंका अधिष्ठाता है तो भी हमारा अनुचर ही है ॥ १० ॥११॥ हे अधोक्षज! (इन्द्रियोंसे जाननेमें न आये) जो अनजान बालक अपनी माताकी गोदमें बैठकर पांव उछाले अथवा लात मारे तो क्या माता उसको अपराधी माने "कोई कहे ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता कैसे कहा? ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता इस प्रकार कहा है" कि स्थूल सूक्ष्म कार्य कारण रूप सम्पूर्ण विश्व आपके उदरमें विद्यमान है, जो शब्दसे

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ॥ किमस्तिनास्ति व्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥ १२ ॥ जगत्त्रयान्तोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ॥ विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ्न वै मृषा किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥ नारायणस्त्वं नहि सर्वदेहिनामात्मास्यधीशोऽखिललोकसाक्षी ॥ नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥

कहनेमें नहीं आता। जब सब विश्व आपके उदरमें ठहरा तो विश्वमें रहनेसे मैं भी आपके उदरमें हुआ, इसलिये मुझे अपना पुत्र समझकर मेरा अपराध क्षमा करो ॥१२॥ हे नारायण! प्रलयकालमें जब भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक इन तीनों लोकोंका नाश हो जाता है तब चारों ओरसे समुद्रका जल उमड़ आता है, और उस जलके भीतर नारायणकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न होता है, उस कमलनालसे ब्रह्मा उत्पन्न होता है, क्या यह बात झूँठ है? क्या यह देववाणी नहीं है? क्या मैं आपसे उत्पन्न नही हूँ? या तो कह दो यह बात झूँठ है और जो कहो कि झूँठ नहीं है तो मैं आपका पुत्र ही हूँ तो मेरा अपराध सब प्रकारसे क्षमा करना चाहिये, क्योंकि चौपाई—"बड़े दया छोटनपर करहीं। गिरि निज शिरन सदा तृण धरहीं" ॥१३॥ क्या तुम नारायण नहीं हो? नहीं तुम नारायण हो और तुमही संपूर्ण देहधारियोंके आत्मा

हो! हे अधीश! सबके प्रेरणा करनेवाले समस्त लोकोंको साक्षात् देखते हो। नार जो जीवसमूह और जल जो आपका अयन (वास, आश्रय) है, इसलिए 'नारायण' नाम आपका प्रसिद्ध है, वह आपकी मूर्ति है और जो विचार करके देखिये तो यह भी सत्य नहीं है, क्योंकि मुझको सब मायारूप ही जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ हे जगदीश्वर! जगत्‌का आश्रयभूत आपका रूप जलके भीतर सत्य है तो जिस समय मैंने कमलनालके भीतर पैठकर सौ (१००) वर्षतक आपको ढूँढ़ा तब आप क्यों नहीं दिखाई दिये और हृदयमें भी क्यों नहीं प्रकट हुए? फिर तप करनेसे तुरन्त ही क्यों आपका रूप दिखायी दिया! इसलिए यह सब आपकी माया ही है, तुम्हारी मूर्तिमें किसी देशकालका परिच्छेद नहीं बन सकता ॥ १५ ॥ हे मायाके करनेवाले! बाहर भीतर समस्त विश्वके प्रकाश करनेवाले! यदि यह जलादि प्रपञ्च तुमसे पृथक् हो तो इससे तुम्हारा परिच्छेद होना सम्भव है, परंतु यह मायासे उत्पन्न है, यह बात आपने इस अवतारमें यशोदा मैयाको अपने

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ॥ किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किन्नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥ अत्रैव मायाधमनावतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ॥ कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६ ॥ यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ॥ तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥ १७ ॥ अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ॥ तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥ १८ ॥

उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दिखाकर प्रत्यक्ष कर दिया, इससे यह प्रपञ्च मायाका ही किया हुआ है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार आपके उदरके भीतर आप समेत यह विश्व प्रकाशमान है वैसा ही बाहर प्रकाशमान है और तुम्हारे साथ इसका प्रकाश होना मायाके बिना ही बन सकता है। जो बाहरके जगत्‌का तुममें प्रतिबिंब पड़े तो वह बाहरकी वस्तु उलटी दीखनी चाहिए और यदि आपको दर्पणस्थानमें माना जाय तो आपका दर्शन उसमें नहीं होना चाहिए इस कारण यह सब माया ही है ॥ १७ ॥ केवल आपके बिना यह सब संसार मायारूप है, क्या यह माया ही दिखायी है? क्योंकि प्रथम आप अकेले थे, पीछे सम्पूर्ण व्रजके बछड़े और ग्वालरूप हो गये, फिर कुछ कालोपरान्त सबके सब चतुर्भुज रूप हो गये, फिर एक एक रूपके आगे मैं (ब्रह्मा), शिव, इन्द्र सहस्रों दृष्टि आये और एक एकने एक रूपकी स्तुति की, फिर आप

ब्रह्मरूप हो गये, फिर पीछे प्रणाम करनेमें भी नहीं आये, इस प्रकार अद्वितीय ब्रह्मरूप अवशेष रह गये ॥१८॥ सर्वव्यापक आपके स्वरूपको मायामें स्थित हुए जो प्राणी नहीं जानते हैं, उन पुरुषोंके ऊपर मायाको फैलाकर स्वतंत्रतासे आप प्रकाशते हो, जगत्‌के उत्पन्न करनेके समय ब्रह्माका रूप धारण कर लेते हो, पालनेके समय विष्णुरूप धारण कर लेते हो और संहारके समय तीन नेत्रवाले रुद्ररूप बन जाते हो ॥१९॥ हे ईश ! हे प्रभु ! हे जन्मरहित विधाता ! देवता, ऋषीश्वर, मनुष्य, पशु, पक्षी और जलके जीवोंमें आप साधु लोगोंपर कृपा करनेके लिए और दुष्टोंके अभिमान हरनेके लिये जन्म लेते हो ॥ २० ॥ हे व्यापक ! हे भगवन् ! हे योगेश्वर ! आप जब अपनी योगमायाका विस्तार करके जिस समय विहार करते हो उन लीलाओंको त्रिलोकीमें कौन जाननेवाला है ! कि कहां हैं; कैसी हैं, कौन हैं और

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्माऽऽत्मना भासि वितत्य मायाम् ॥ सृष्टा विवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः॥१९॥ सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य ॥ जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥२०॥ को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ॥ क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥ तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ॥ त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते माया त उद्यदपि यत् सदिवावभाति ॥२२॥ एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ॥ नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥

कितनी हैं ? ॥२१॥ इसलिए यह मिथ्या स्वरूप स्वप्नके समान प्रकाशमान दुःखरूप यह सब संसार केवल आपके नित्य सुख चैतन्यमय अनन्तस्वरूपमें मायासे उत्पन्न होनेके कारण नित्यसुख और चैतन्यस्वरूपके समान भासता है, परन्तु वास्तवमें असत्स्वरूप, स्वप्नतुल्य, प्रतिभासे रहित, कष्टसे भी अधिक कष्टरूप अर्थात् कष्टमय ही है ॥ २२ ॥ केवल सत्यस्वरूप तो एक आप ही हो, क्योंकि आत्मा हो, आत्मा दृश्य नहीं इसलिये जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, जहांतक मन जाता है, वह सब माया है । आपमें कोई विकार नहीं इसलिये सत्यस्वरूप हो, आप सबके कारणस्वरूप हो, सबमें व्यापक होनेसे पुरुष कहलाते हो, तुम सदा पूर्ण हो, नित्य सुखस्वरूप हो, अक्षर हो, अमृत हो, इसलिये आपका कभी विनाश नहीं होता, तुम अनन्त और अद्वैत हो इसलिये आपके देश कालका परिच्छेद नहीं, आप स्वयंप्रकाश, उपाधिरहित,

असङ्ग हो, इसलिये ज्ञानके साधनसे आपकी प्राप्ति नहीं होती, आप निरञ्जन हो इसलिये आपके स्वरूपमें किसी प्रकारका संस्कार भी नहीं है, आप नित्यमुक्तरूप हो, अमृत हो ॥२३॥ इसलिये आप सदा आत्मारूप हो और समस्त जीवोंके आत्मा हो जिन पुरुषोंने सूर्यरूप गुरुसे उपनिषदके ज्ञानरूप नेत्र प्राप्त किये हैं वे महात्मा आत्मासे ही आपका दर्शन करके संसारसागरके पार हो जाते हैं॥ २४ ॥ जबतक प्राणी आपके आत्मस्वरूपको आत्मरूप नहीं जानते तबतक उनको अज्ञानसे यह सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रकट भासता रहता है और वही प्रपञ्च आत्मरूपके जाननेसे लय हो जाता है। जब तक अज्ञान है तबतक रज्जुमें सर्परूप भासता है,जब ज्ञान हो जाता है,तब रज्जु,रज्जु ही जाननेमें आती है।

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ॥ गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥२४॥ आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ॥ ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥२५॥ अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ॥ अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी॥ २६ ॥त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च॥ आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताऽज्ञता ॥ २७ ॥

अज्ञानसे रज्जुमें सर्प जानना अध्यास है और ज्ञानसे रज्जु ही जानना अपवाद है ॥२५॥ संसारमें बन्धन और मोक्ष केवल अज्ञानसे है, सत्य ज्ञानरूप आत्मासे भिन्न नहीं है। निरंतर चैतन्यरूप आत्मा परमेश्वर आप ही हो ऐसा विचार करनेसे आत्मामें अज्ञान वा बंधन कुछ भी नहीं है,जैसे सूर्यके सम्मुख रात दिन नहीं है,अर्थात् सदा प्रकाश ही रहता है ॥२६॥ आत्मस्वरूप परब्रह्म आपको देह मानकर और देहादिकको आत्मा मानकर यहीं खोये हुए आत्मरूपी पदार्थको देखो! बाहर खोजना यह मूर्खोंकी कैसी मूर्खता है, क्योंकि घरकी खोयी हुई वस्तु कोई

वनमें खोजने नहीं जाता ॥२७॥ विना जाने झूंठ भी सत्यके ही समान विदित होता है। * हे अनन्त! ज्ञानी पुरुष तो इस देहमें ही आपको

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति संतः॥असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति संतः२८

खोजते हैं; "यहां भी आत्मा नहीं, यह भी आत्मा नहीं" ऐसे जड़ पदार्थोंका त्याग करते हैं, क्योंकि अपने निकट यद्यपि सर्प नहीं भी

---

* इस बातपर एक दृष्टान्त है–किसी राजाके यहां एक कुपठ (बेपढ़ा) पुरोहित था। परंतु बोलचालमें महाधूर्त और पाखंडी था। उसने राजाको "शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये" इस श्लोकका अर्थ वही बड़ेके बतला रखा था कि जो सफेद दही उसमें लिपटा है वह, शुक्ल वस्त्र है और वेष्टीति विष्णु विशेष लिपटा होनेसे विष्णु है, गोल-गोल गोल चन्द्रमाके समान मुख है और चतुर्भुज अर्थात् चतुर पुरुषोंके भोजन योग्य है, ध्यान करते ही प्रसन्न मुख हो जाता है और भोजन करनेसे सब विघ्न शांत हो जाते हैं। राजाने इस श्लोकका यह अर्थ सत्य समझकर और उसको महात्मा जानकर उसका बड़ा आदर–सन्मान करता था। जो विद्वान् आता था राजा उसीसे उस श्लोकका अर्थ पूछते थे। सब पंडित लोग विष्णु भगवान्का ही अर्थ करें, राजा कहे, यह अर्थ इस श्लोकका नहीं है। इसी प्रकार अनेक पंडितोंका तिरस्कार होता था, तब एक पंडित आये और उन्होंने रुपयेका अर्थ किया, कि देखो। यह रुपया श्वेतवर्ण है और चार चौवन्नी जो हैं वही चार भुजा हैं देखते ही मुख प्रसन्न हो जाता है, सब विघ्नोंका शांत करनेवाला है। इस अर्थको सुनकर राजाने कहा और पंडितोंसे तुम अच्छे हो, दशांश पारितोषिकके योग्य हो, परंतु सत्य अर्थ इसका आप भी नहीं जानते। एक महात्मा पंडितने विचारा कि यह राजा किसी मूर्खका बहँकाया हुआ है और यह राजा भी मूर्ख है। यह महात्मा पंडित राजाके पुरोहितके घर जाने लगे और उनसे बड़ी मित्रता कर ली और मिसरानीको भी एक बड़ी चिकनपटकी तीयल बना दी और आभूषण भी अनेक-अनेक प्रकारके दिये और अत्यन्त प्रेमसे उनकी सेवा करने लगे और दिन-रात माता ही माता कहते मुख सूखे। एक दिन उस ब्राह्मणीने कहा कि इतने दिनोंसे तू हमारे यहां रहता है, तूने कुछ अपना अभिप्राय नहीं कहा कि क्या मनोरथ है? ब्राह्मण बोला कि हे माता! मेरा तो नाम न लेना परंतु (शुक्लाम्बर) इस श्लोकका अर्थ अपने पतिसे पूछकर बता दो तो बहुत अच्छा है। वह बोली आज ही –लो, जैसे पुरोहितजी घर आये उसी समय पूछा कि हे स्वामिन्! "शुक्लाम्बर" इस श्लोकका क्या अर्थ है? परंतु पुरोहितने बहुतेरी तीन-पांच की, "नारि विवश नर सकल गुसाईं। नाचहिं नट मर्कटकी नाईं" मिसरानीने एक न मानी निदान बताना ही पड़ा। मिसरानीने अगले दिन उन महात्माजीको बता दिया। महात्माजी अच्छे वस्त्र पहन, कांखमें पोथी दबा राजाकी सभामें गये और बड़ी धूमधामके साथ राजाको उस श्लोकका वही दही बड़ेवाला अर्थ सुनाया। राजा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा तुम बड़े विद्वान् हो, हमारे पास रहा करो, और बहुत कुछ धन भी उसको दिया। पुरोहितजी इस बातको सुनकर शून्य हो गये और मनमें कहने लगे कि परमेश्वरने आज हमारी आजीविका यहांसे बन्द कर दी और महात्माजीने कहा यह राजा मूर्ख है और मूर्खके समीप रहना किसी प्रकार अच्छा नहीं, या तो इसको पढ़ाना चाहिये और जो वह न पढ़े तो यहांसे सिधारना अच्छा है। पंडितजीने राजासे कहा आप कुछ पढ़ा करें तो अच्छा है, राजाने स्वीकार किया और पंडितजीने राजाको पढ़ाना आरंभ किया। व्याकरणके पढ़नेसे राजाको पदपदार्थका बोध हो गया तो एक दिन उस श्लोकको विचारने लगे तो कहीं भी दही बड़ेका अर्थ न पाया। तब राजा चकित हो पंडितजी और पुरोहितको बुला भेजा और आते ही राजाने उससे क्रोध करके कहा कि, पुरोहितजी! तुमने मुझे बड़ा धोका दिया, बताओ इसमें दही बड़ेका अर्थ कहां है? पुरोहितजीके तो छक्के छूट गये। पंडितजीने कहा मैंने ही क्या सब ही पंडितोंने यह शुद्ध अर्थ किया था, तब आपने क्यों न माना? तब राजा बोला उस समय मैं अज्ञानी था। पंडितजी बोले बिना पढ़े यह ज्ञान कभी नहीं होता अब ज्ञान होनेसे आप समझे। ऐसे ही ये प्राणी मायाके वशमें हो उलटा ही समझते हैं॥

है, परन्तु उनका निषेध किये विना सत्य रज्जु जाननेका ज्ञान नहीं होता; सर्पके निषेध होनेके उपरांत रज्जु जाननेमें आती है ॥२८॥ हे देव ! जब ज्ञानसे ही मुक्ति हो जाती है तो मुक्तिकी क्यों बड़ाई की ? ब्रह्मा कहते हैं कि यद्यपि ज्ञान प्राप्त होना बहुत सुगम है तो भी आपके चरणारविंदोंके प्रसादकी कणिकाके कणिकाका अनुग्रह जिसपर हो गया वही तुम्हारी महिमाके स्वरूपको जानता है और जिसपर तुम्हारे चर-

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ॥ जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥ तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वाऽन्यत्र तु वा तिरश्चाम् ॥ येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥ अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ॥ यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥ ३१ ॥

णारविंदोंकी कृपा ही नहीं है वह चाहे कितना ही विचार किया करे और वर्षोंतक ढूँढ़ा करे तो भी आपकी महिमाको नहीं जान सकता। शुद्ध भक्तिसे ही आपकी महिमा जानी जाती है* ॥२९॥ हे नाथ ! इस ब्रह्माके जन्ममें; अथवा और कोई जन्म हो उसमें अथवा पशुपक्षियोंमें जन्म हो तो मैं अपना बड़ा भार मानूँगा, जब तुम्हारे व्रजवासियोंमेंसे किसीके चरणारविंदकी सेवा करूंगा ॥ ३० ॥ देवताके जन्मसे अथवा और

---

* यहां एक दृष्टान्त है—एक राजाने अपने मंत्रीसे कहा कोई ऐसी औषधी भी है कि जिसके खानेसे परमेश्वरका दर्शन हो जाय। मंत्रीने कहा—हमारे दादा परदेशसे साढ़े तीन लाख रुपये देकर एक ऐसी पुड़िया लाये हैं, वह घर पर है। राजा बोला—मुझको ला दो, मैं खाऊंगा। मंत्रीने अपने घर आकर चूल्हेकी राखकी पुड़िया बांध लाये और राजासे कहा—इलायची, वंशलोचन इसमें मिलाकर शहदमें चाटो, परंतु इसका पथ्य अवश्य करना और जो पथ्य न करोगे तो औषधि क्या गुण करेगी ? विना पथ्य साढ़े तीन लाख रुपयोंकी औषधि वृथा जायगी। विचार देखो जो रोगी पथ्यको करे तो रोगको जीत लेता है, और कुपथ्य करे तो रोग औषधिको जीत लेता है, इससे पथ्यकी पुड़िया खाओ तो मनमें झूंठ मत लाना और झूंठ मनमें लाओगे तो परमेश्वरका दर्शन न होगा। यह कह मंत्री तो अपने घरको चले गये और प्रातः काल होते ही राजाने पुड़िया खायी तो औषधि मनमें झूंठ जान पड़ी, ओषधि धर चित्तको सावधान कर दो घड़ी पीछे फिर वह ओषधि खायी। वह फिर झूंठी समझ पड़ी तब तो ओषधि रख दी। ऐसे ही शोच विचारमें तीन पहर बीत गये, कहा अब कल खायेंगे। सन्ध्याको मंत्री आया उसने पूछा औषधि खायी कि नहीं खायी ? राजा बोला झूंठ तो मनसे हटता नहीं खायें कैसे। मंत्री बोला कि यही उपाय भगवान्के मिलनेका है जो मनसे सब वासना निकल गयी और मन शुद्ध हो गया, तब भगवान्का दर्शन हो गया और तनक भी अन्तर रह गया तो भगवान् नहीं मिलते।

किसीके जन्मसे जिसमें आपकी भक्ति हो वही जन्म श्रेष्ठ है। इस प्रकार उत्कण्ठापूर्वक सात श्लोकसे स्तुति करते हैंः–अहो आश्चर्य! व्रजकी गाय गोपी धन्य हैं। हे प्रभो! जिन गौ गोपियोंके स्तनोंका दूधरूप अमृत बाल बछड़े बन आपने आनन्दसे पेट भरकर पिया, आपकी तृप्तिके लिये अबतक यज्ञ भी पूर्ण नहीं हुए,क्या यज्ञोंमें आपका पेट नहीं भरता है? भगवान्के सखाओंकी महिमा किसीके कहनेमें और जाननेमें नहीं आती॥ ३१॥ ब्रह्माजी बोले कि नंदरायजी व ब्रजवासियोंका आश्चर्यरूप अहोभाग्य है। परमानंद पूर्ण ब्रह्म सनातन जिन ब्रजवासियोंके सर्वदा मित्र हो रहे हैं॥ ३२॥ उन ब्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कहनेको किसका सामर्थ्य है, इंद्रियोंके अधिष्ठाता यज्ञ देवता, महादेव, बुद्धिके अधिष्ठाता, मैं (ब्रह्मा) ऐसे ग्यारह देवता महादेव आदिसे लेकर हम सब बड़भागी हैं। सब ब्रजवासी इंद्रियरूप दोनोंसे आपके चरणारविंदका मकरन्द अमृतके तुल्य मधुर पीते हैं, जिस समय ब्रजवासी तुम्हारा दर्शन नेत्रोंसे करते हैं, उस समय

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्॥ यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥ ३२॥ एषां तु भाग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः॥ एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते॥ ३३॥ तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्॥ यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥ ३४॥

नेत्रोंका अधिष्ठाता सूर्य कृतार्थ हो जाता है और कानोंसे तुम्हारी बात सुनते हैं तब कानोंके देवता दिशा कृतार्थ हो जाती हैं, नाकसे तुम्हारा प्रसाद तुलसीपत्र सूँघते हैं तब नासिकाके देवता अश्विनीकुमार कृतार्थ हो जाते हैं, जब हाथोंसे तुम्हारी सेवा करते हैं तब हाथोंके देवता कृतार्थ हो जाते हैं, इसी प्रकार सब इंद्रियोंके सेवनसे सब देवता कृतार्थ हो जाते हैं,सम्पूर्ण पदार्थोंके सेवा करनेवाले ब्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कैसे कही जाय?॥ ३३॥ इस लोकमें कदाचित् मेरा जन्म हो तो वृन्दावनमें हो, उसपर भी गोकुलमें, यह मैं नहीं कहता मनुष्य योनिमें ही, चाहे जिस योनिमें हो, परन्तु गोकुलमें हो तो मैं पूर्ण भाग्यशाली हो जाऊँ और मेरे धन्य भाग हो जायँ? तब श्रीकृष्ण बोले हे ब्रह्माजी! सत्यलोकको छोड़कर यहां जन्म लेनेसे तुमको क्या लाभ होगा? तब ब्रह्मा बोले–जिस जन्ममें ब्रजवासियोंके चरणारविंदकी रज मेरे मस्तकपर पड़ेगी वही मुझको परम लाभ होगा, तब श्रीकृष्ण बोले कि ब्रजवासी लोग क्यों धन्य

हैं ? तब ब्रह्मा बोले कि इन व्रजवासियोंका पूर्ण जीवन व्रज है, क्योंकि जहां श्रीमुकुन्दपरायण हैं, जिनके चरणारविंदकी रजको नित्यप्रति देव खोजते हैं, उस वृन्दावनकी रजका मिलना अहोभाग्य है ॥३४॥ इन व्रजवासियोंकी कृतार्थताका क्या वर्णन करूँ ? जिनकी भक्तिसे तुम भी ऋणीसे हो रहे हो। तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे—मैं किस वस्तुके देनेमें असमर्थ हूँ जो ऋणी रहूँ ! तब ब्रह्माजी बोले कि हे देव ! जगत्में विराजमान समस्त फलस्वरूप तुम हो, इसलिए और फल व्रजवासियोंको क्या दोगे ? यह जब विचार करता हूँ तब मेरा मन मोहित हो जाता है। तब श्रीकृष्णजी बोले—मैं अपने आपका ऋणी हो जाऊँगा ? तब ब्रह्माजी बोले कि नहीं माताका स्वरूप धरकर पापिनी पूतना आयी थी उसको आपने अपना सर्वस्व दिया। तब श्रीकृष्ण बोले-व्रजवासियोंको परिवारसहित सर्वस्व और अपना धाम दूँगा। तब ब्रह्माजी बोले कि पूतनाका कुटुम्ब अघासुर बकासुरको आपने मुक्त कर दिया। तब श्रीकृष्ण बोले कि मेरे पास तो यही पदार्थ देनेको है। तब ब्रह्माजी

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देवरातेति नश्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ॥ सद्वेषादिव पूतनाऽपि सकुला त्वामेव देवाऽऽपिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥ तावद्रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ॥ तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥ प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ॥ प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥ ३७ ॥

बोले कि, जिन व्रजवासियोंने धाम, धन, सुहृद्, प्रिय, देह, पुत्र, प्राण और अंतःकरण आपमें समर्पण कर रखे हैं, फिर ऐसे व्रजवासियों और वैरियोंको क्या बराबर ही रखोगे ? आप परमेश्वर हैं तो क्या है ? परंतु आपके यहां न्याय नहीं, कहां बपुरी पूतना और कहां परमहितकारी व्रजवासी ? आपको अपने ही मनमें न्याय करना चाहिए ॥३५॥ हे कृष्ण! जबतक रागादिक चोर इस शरीरमें उपस्थित हैं, तबतक घर कारागार (बन्दीखाना) रूप है, मोह भी तबतक ही पाँओंकी बेड़ी है जबतक प्राणी तुम्हारे चरणारविंदकी शरण नहीं आता। आपकी शरण लिए पीछे रागादिक जो चोर हैं वे भी चोरसे साह हो जाते हैं, और जो घर हैं वे भी सुन्दर मंदिर हो जाते हैं और सम्पूर्ण मोह दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! तुम संसाररहित हो, तो भी संसारमें शरणागत भक्तोंको आनन्द देनेके लिए संसारमें वारंवार

अवतार धारण करते हो ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! हे प्रभो ! जो पुरुष आपको जानते हैं वह जानते होंगे, परंतु मैं बहुत क्या कहूँ ? मनसे, वचनसे, देहसे आपका वैभव मेरे जाननेमें किसी प्रकारसे नहीं आ सकता ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! अब मुझपर अनुग्रह करके मुझको सत्यलोकके जानेकी आज्ञा दीजिये, आप सब जानते हो, अर्थात् अपनी अपार महिमा, मेरा ज्ञान, बल, पराक्रम देखनेवाले हो, आप ही इस जगत्के अधिष्ठाता हो, मैंने ऐसा ब्रह्मापना छोड़ा, यह जगत् आपकी ही भेंट है ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! यदुकुलकमलपर स्नेह करनेवाले (दिवाकरके सदृश), इसमें सूर्यकी उपमा दी है । हे पृथ्वीके देवता ! ब्राह्मण, पशु, समुद्र इनकी वृद्धि करनेवाले हो, (सुधाकरके समान) इसमें

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ॥ मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ॥ त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ॥ उद्धर्म शार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ॥ नत्वाऽभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥

चन्द्रमाकी उपमा दी है । पाखण्डरूप अन्धकारके विनाश करनेवाले, इसमें सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी उपमा आयी, पृथ्वीपर कंसादिक राक्षसोंके मारनेवाले, इसमें फिर सूर्यकी उपमा आयी, हे सूर्य ! हे अर्हन् ! सबके पूज्य भगवन् ! अर्थात् छः प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण तुमको मेरा दण्डवत् है और नमस्कार है ॥ ४० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सर्वव्यापक श्रीकृष्णचन्द्रजीकी स्तुति कर, कल्पपर्यंत तीन प्रदक्षिण दे चरणारविन्दोंको नमस्कार कर, जगत्के विधाता ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोकको चले गये * ॥ ४१ ॥

* शंका—जब श्रीकृष्णजी की स्तुति करके ब्रह्माजी अपने लोकको गये तो श्रीकृष्ण भगवान् ब्रह्मासे क्यों नहीं बोले ? सब स्थानोंपर देवताओं से भगवान् बोलते हैं । आदर-सत्कार करते हैं, फिर यहां भगवान् ब्रह्माका निरादर क्यों किया ?

उत्तर—अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना मूर्खों का काम है कि मैं ऐसा सज्जन हूं इसलिये श्री कृष्णचन्द्र पूर्णब्रह्म विश्व के नाथ ब्रह्मासे की हुई स्तुतिको सुनकर लज्जायमान हुए ब्रह्मासे कुछ भी नहीं बोले—और विचार किया कि हमने वृथा ब्रह्माके किये हुए चरित्रको नहीं माना क्योंकि जब ब्रह्मा बालकोंको हरकर ले गया था तो हमको ब्रह्माकी स्तुति करके ले आना चाहिये था, ऐसे दयालु भगवान् लज्जासे नहीं बोले ।

तब पीछे श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार बछड़े और बालकोंको ले आये। प्रथमके समान ग्वालमण्डलीको उसी यमुनाकी रेतीमें ले आये जहां पहले बैठे भोजन कर रहे थे और इस भेदको किसीने न जाना। यह बात सुनकर राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे पूछा कि इतने दिनतक बालक कैसे यमुनाके किनारे पर बैठे रहे और भोजन पान कुछ न किया ? ॥४२॥ हे राजन् ! जब अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णचन्द्र विना एक वर्ष बीत गया, तो भी भगवान्की मायासे मोहित हुए, उन बालकोंको वह समय आधे पलके समान जान पड़ा ॥४३॥ भगवान्की मायासे मोहित चित्तवाला पुरुष इस संसारमें क्या-क्या नहीं भूल सकता ? सम्पूर्ण जगत् भगवत्की मायासे मोहित होकर बारम्बार अपने आत्माको भूल रहा है ॥४४॥ सब ग्वालबालोंने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा कि भैया ! तुम तो बहुत शीघ्र आये, हमने तो तुम विना एक

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्रागवस्थितान् ॥ वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥ एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः ॥ कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥४३॥ किं किं न विस्मरन्तीह माया-मोहितचेतसः॥ यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥४४॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ॥ नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम्॥४५॥ ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः॥ दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥ ४६ ॥ बर्हप्रसूननवधातुविचित्रिताङ्गः प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ॥ वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्र-कीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥ अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ॥ हतोऽविता वयं चास्मा-दिति बाला व्रजे जगुः ॥ ४८ ॥

ग्रास भी अभी नहीं खाया, अब जाओ पहले शीघ्रतासे भोजन कर लो ॥४५॥ सब इन्द्रियोंकी प्रेरणा करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् बालकोंकी बात सुनकर हँसे और बालकोंके सङ्ग भोजन करके मार्गमें जो सूखा हुआ अघासुरका देह पड़ा था उसको दिखाते वनसे लौटकर व्रजमें आये ॥ ४६ ॥ और मयूर पङ्ख शिरपर धारण किये, नवीन पुष्प एवं (गैरिकादि) धातुओंसे शरीरको भूषित किये, हाथमें लकुटी लिये मधुर शब्दवाली वंशी बजाकर वत्सोंको बुलाते हुए सखाओंके द्वारा अपनी पवित्र कीर्तिको सुनते हुए, दर्शन देकर गोपियोंके नेत्रोंको तृप्त करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र व्रजमें आये ॥ ४७ ॥ वनसे आकर सब बालक अपनी माताओंसे कहने लगे कि आज यशोदानंदनने वनमें एक

बड़ा भारी सर्प मारा और उससे हमारी रक्षाकी ॥ ४८ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! व्रजवासियोंका इतना प्रेम श्रीकृष्णमें कैसे हुआ ? जो कि पराया पुत्र या अपने पुत्रोंमें इतना प्रेम पहले नहीं था, यह बात मुझको समझाकर कहो ॥४९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! श्रीकृष्णका नाम सर्वात्मा है, इसलिये श्रीकृष्ण सब प्राणियोंके साक्षात् आत्मा ठहरे, फिर सब प्राणियोंको अपना आत्मा ही परमप्रिय है,

राजोवाच ॥ ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् ॥ योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैकवल्लभः ॥ इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥५०॥ तद्राजेन्द्र
यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ॥ न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥५१॥

इसलिये श्रीकृष्णमें सन्तानसे बढ़कर अधिक प्रेम था । स्त्री, पुत्र, धन आदिक और जो पदार्थ हैं वह सब आत्माके ही सुखके लिये हैं ❋ ॥ ५० ॥ इसलिये हे राजा परीक्षित् ! देहधारियोंको जितनी अपने आत्मामें प्रीति है उतनी ममताके स्थान अपने पुत्र, धन, घर

❋ इस बातपर दृष्टान्त है–किसी नगरमें एक ब्राह्मण था। उसके सन्तान नहीं होती थी। प्रथम तो उसने यन्त्र मन्त्रा दिकके बहुतसे उपाय किये परंतु कुछ न हुआ, फिर वैद्यलोगोंकी बहुतसी ओषधियाँ कीं और ज्योतिषियोंने भी अनेक प्रकारके दान पुण्य कराये, परंतु किसी प्रयत्नसे भी उसने पुत्रका मुख नहीं देखा एक दिन वह वनमें पूजाके लिये फल-फूल लेने को गया, वहाँ उसको उदास देखकर एक महात्मा पुरुष उससे पूछने लगे कि, हे ब्राह्मण ! तू क्यों इतना उदास है ब्राह्मण बोला कि हे स्वामिन् ! मेरे सन्तान नहीं, इस बातका मुझको बड़ा क्लेश है, महात्माने कहा तू सन्तान गोपालका पाठ कर, तेरे पुत्र होगा । ब्राह्मणने वैसा ही किया और भगवत्की कृपासे उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ । जब वह बड़ा हो गया तो साधु संतोंके समीप बहुत बैठता और इकला बेटा समझकर उसके माता-पिता भी उसपर लाड़-प्यार करते थे और वह भी अपने माता–पितासे अत्यन्त प्रेम रखता था, एक दिन कोई साधु गीताका पाठ कर रहे थे, उसमें यह श्लोक आया:—

श्लोक–" अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे । गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः । "

अर्थात् माता, पिता, सुहृद्, बन्धु कोई किसीका नहीं, यह सब केशवी माया है, इन लोगोंके लिये कभी शोच करना नहीं चाहिये । तुम बुद्धिहीनोंकी नाईं उनके लिये शोक करते हो और कभी बुद्धिमानोंकी नाईं बात करते हो, परंतु ज्ञानी लोग मरने जीनेका कुछ शोक नहीं करते । ऐसा सुनकर वह लड़का बोला–महाराज ! मेरे माता–पिता तो मेरे ऊपर प्राण खोनेको उपस्थित हैं और मुझको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं । साधु बोले यह सब झूठ है । लड़केने कहा–मेरी बात झूठ क्या हो सकती है ? साधु बोले कि अच्छा, आज तू घर जाकर बीमार बनकर पड़े रह, फिर तू सबकी परीक्षा कर लेना और तुझको झूठ सत्य सब प्रत्यक्ष दिखा देंगे । उस दिन द्विजपुत्रने वैसा ही किया । तब वैद्योंके उपाय और अनेक प्रकारके यन्त्र-मन्त्र बड़े-बड़े दान-पुण्य होने लगे । तब तो ब्राह्मणके बेटेने कहा कि अब उन महात्मा पुरुषको बुलाना चाहिये। जो कहते थे कि न कोई माता है, और न पिता है। तब उसने उस महात्माको बुलाया और जैसे रुपयोंको कंकारी कर दिया था वह सब दिखाया कि देखो मेरे माता-पिता कितना रुपया खर्च कर रहे हैं । साधु बोले कि यह लड़का मर जायगा, तब उसके माता–पिता बोले कि किसी प्रकार यह अच्छा भी होगा ? साधु बोला कि

आदि लेकर जो वस्तु हैं उनमें नहीं ॥५१॥ हे क्षत्रिय वंशोत्तम राजा परीक्षित् ! जो पुरुष देहको आत्मा कहते हैं उनको भी देह अत्यन्त प्रिय है और जो देहके अनुवर्ती स्त्री, पुत्र, धन आदिक हैं वे देहके समान प्यारे नहीं लगते॥५२॥ और देहको भी इस प्रकार मान लें कि यह मेरा देह है, अर्थात् यह जब ममताका स्थान हो जाता है तब यह देह आत्माके समान प्यारा नहीं रहता क्योंकि जिस समय यह देह जीर्ण हो जाता है अर्थात् अब यह देह किसी प्रकार स्थिर न रहेगा तो भी जीनेकी आशा बलवती रहती है कि किसी उपायसे दो-चार दिन और बच रहूँ तो अच्छा है ॥५३॥ इस बातसे यह निश्चय होता है कि सब देहधारियोंको अपना आत्मा ही अधिक प्यारा है । उस आत्माके ही

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ॥ यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥ देहोऽपि ममताभाक् चेत् तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः ॥ यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥ तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ॥ जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ॥ भवगद्रूपमखिलं नान्यद् वस्त्विह किंचन ॥ ५६ ॥ सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ॥ तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥

लिये सब स्थावर जंगम आदि संसारपर जो प्रीति होती है सब आत्माका ही कारण है॥५४॥ हे राजन् ! सब प्राणियोंके आत्मा जगत्के कल्याण करनेके लिये मनुष्यदेह धारण कर अपनी मायासे प्रकाश करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन ही हैं, इस कारण उनपर प्रेम होना सम्भव है ॥५५॥ यही न समझना कि श्रीकृष्णचन्द्र केवल देहधारियोंके ही आत्मा हैं, नहीं, वे सब जड़ पदार्थोंके भी आत्मा हैं, वास्तवमें इस सब विश्वके आदि कारण श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं इस प्रकार माननेवाले पुरुषोंको सब स्थावर जङ्गममें भगवान्का ही रूप भासता है अर्थात् कोई वस्तु इस संसारमें भगवान् से भिन्न नहीं है ॥ ५६ ॥ समस्त पदार्थोंको परमार्थरूपसे विचार कर देखिये

हां, एक उपाय तो है, कि तीन बार इसके ऊपर दूध उतारा जाय और जो उसको पियेगा वह तो मर जायगा परंतु यह अच्छा हो जायगा । तुम आपसमे सम्मत कर लो कि उस दूधको कौन पियेगा । तब तो सबको दिनमें तारे दीखने लगे और एककी ओरको एक दीखने लगा, परंतु किसीने इस बातको अंगीकार न किया कि दूध में पिऊँगा और सबने अपने प्राणोंकी रक्षा करनी चाही, तब बाबाजीने कहा कि बच्चा ! देख, कोई नहीं पीता तो इस दूधको हम पियेंगे, संसारमें कोई किसीका नहीं, सब अपने-अपने प्राणोंके रक्षक हैं ।

भा.द.पू. तो कोई भी वस्तु अपने-अपने कारणोंसे पृथक् नहीं है और जो जो कारण हैं, वे सब भगवान् से पृथक् नहीं, इससे सिद्ध हुआ कि कारणोंके
॥६६॥ भी मुख्य कारण श्रीकृष्ण भगवान् हैं फिर कौन-सी वस्तु श्रीकृष्णसे पृथक रही, तुम ही बताओ ? ॥ ५७ ॥ पवित्र वंश निर्मल कीर्ति-
वाले श्रीकृष्ण भगवान्के चरणकमलरूप नौका जो परम प्रेमी सज्जनोंका आश्रय है, जो पुरुष उन चरणारविन्दरूपी नौकाका
आश्रय करते है, उनको संसाररूपी समुद्र बछड़ेके खुरके जलके समान हैं और उनको परमधामका वास मिलता है, कभी कोई विपत्ति
नहीं होती ॥ ५८ ॥ जो जो लीला भगवान् व्रजविहारीने पांच वर्षकी अवस्थामें की, वह बालकोंने पौगण्ड अवस्थामें अपने अपने घर
आकर कही । उसका कारण जो तुमने हमसे पूछा वह सम्पूर्ण हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ५९ ॥ मुरनाम दैत्यके शत्रु श्रीकृष्ण-
चन्द्रने मित्रोंके संग यह चरित्र किया कि अघासुरको मारा, यमुनाकी रेतीमें ग्वाल बालोंके साथ भोजन किया, जड़ प्रपञ्चसे भिन्न शुद्ध सत्त्व-

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ॥ भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्
॥ ५८ ॥ एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ यत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत्
सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाद्वलजेमनं च ॥ व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥
एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे॥ निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥६१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे
दशमस्कन्धे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूव-
तुस्तौ पशुपालसंमतौ ॥ गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥

गुणीरूप ब्रह्माको दिखाया, बछड़े और ग्वालबालोंका तद्वत् रूप धारण किया, ब्रह्माने प्रेममय हो बड़ी स्तुति की, इस अद्भुत चरित्रको जो
भा० टी० कोई मनुष्य कहेगा अथवा सुनेगा उस पुरुषके सब पुरुषार्थ सफल होंगे और श्रीकृष्णचन्द्रमें पूर्ण भक्ति होगी ॥६०॥ इस प्रकार आंखमिचौनी
अ० १५ के खेलनेमें ठौर-ठौर छिपना, नदियोंके पुल बांधने, बन्दरके समान वृक्षोंपर चढ़ना और कूदना और अनेक प्रकारके बाल्यावस्थाके और
कौमार्य अवस्थाके श्रीकृष्ण और बलदेवजीने विहार करके कौमार अवस्था पूर्ण की ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे
पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां ब्रह्मकृतस्तुतिनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा—पन्द्रहमें धेनुक हन्यो, लीनी गाय बचाय । मित्रनको
आनंद दियो, धन-धन श्रीयदुराय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब कुमार अवस्था व्यतीत हुई और पौगण्ड अवस्थाका

आरम्भ हुआ, जब व्रजमें गाय चरानेके योग्य कृष्ण बलदेव दोनों भाई हुए तब ग्वाल बालोंको साथ ले श्रीव्रजनाथने वृन्दावनको अपने कोमल चरणकमलसे अत्यन्त पवित्र किया ॥ १ ॥ मधुवंशके प्रगट होनेवाले श्री श्यामसुन्दर बांके बिहारी कृष्णचन्द्र अपने यश गानेवाले ग्वालबालोंको सङ्ग लेकर बलदेव भ्रातासहित बांसुरी बजाते, बछरोंको कुदाते, गायोंको आगे आगेकर क्रीड़ा करनेके मनोरथसे पशुहितकारी अनेक प्रकारकी फुलवारी जहां फूल रहीं उस वृन्दावनमें विहार करनेके लिये गये। वह वृन्दावन कैसा है मधुर मधुर वाणी वाले भौंरे मृग; अनेक प्रकारके पक्षी जहां बास कर रहे हैं, महत्पुरुषोंके मनके सदृश निर्मल जलसे सुन्दर सरोवर भरे हुए, जिनका स्पर्श करके कमल कमलिनी दोनों नित्य प्रफुल्लित रहते हैं। उनकी सुगन्धयुक्त पवन दिन-रात चलती रहती है ऐसे मनोहर वृन्दावनको देखकर

तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ॥ पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥ तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनः प्रख्यपयस्सरस्वता ॥ वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे ॥३॥ स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ॥ स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥४॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो अमी देववरामरार्चितं पदाम्बुजं ते सुमनः फलार्हणम् ॥ नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम्॥५॥ एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ॥ प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥६॥

श्रीकृष्ण भगवान्‌ने विहार करनेकी इच्छा की ॥ २ ॥ ३ ॥ जहां तहां अरुणवर्णके पल्लव निकल रहे हैं उनकी अद्भुत शोभा हो रही है, फलफूलोंके भारसे झुककर जिनकी शाखाओंके अग्रभाग चरणोंमें लग रहे थे, ऐसे ऐसे सुन्दर वृक्षोंको देखकर परमानंदित हो मुसकायके आदिपुरुष श्रीकृष्णचंद्रने अपने बड़े भ्राता बलदेवजीसे कहा ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवताओंमें श्रेष्ठ बलदेवजी ! देखो यह बड़ा आश्चर्य है, यह वृन्दावनके देवताओंके पूजन योग्य अपने पापोंके नाश करनेके लिए मौन साध आपके चरणारविंदोंको फल फूल भेंट ले लेकर अपनी शाखाओंसे झुक झुककर प्रणाम करते हैं, किसलिए कि जिस अज्ञानसे हमारा वृक्षजन्म हुआ है वह अज्ञान दूर हो जाय, इसलिए झुके हैं ॥५॥ हे आदिपुरुष ! सब लोकोंका पवित्र करनेवाला आपका यश है, उसको निरन्तर यह भौंरे गान कर करके आपका

भजन करते हैं, अतः ऐसा जान पड़ता है कि ये भौंरे आपके मुख्य भक्त मुनिजन हैं। हे पापरहित ! आप अपने दैवतरूपको छिपाये मनुजवेष बनाये इन ग्वालबालोंमें क्रीड़ा कर रहे हो तो यह मुनि भी भौंरेके रूपसे गुप्त होकर आपकी सेवा और भजन करते हैं। हे सर्वात्मन् ! इन्होंने यहां भी आपका पीछा नहीं छोड़ा ॥६॥ हे स्तुति करने योग्य ! देखो, ये मोर आपके समीप कैसा सुन्दर नृत्य कर रहे हैं और यह हरिणी गोपियोंकी नाई चितवनसे भोलीभाली सूरत बनाये आपके ऊपर कैसा प्यार कर रही है और देखो ! यह कोकिलाओंके समूह कैसी मधुरबाणीसे शुश्रूषा कर रहे हैं, यह वनवासी भी धन्य हैं, क्योंकि अच्छे पुरुषोंका यही स्वभाव है कि जो कोई अतिथि अपने घर आये तो जो कुछ अपने पास फल फूल हो वह उसकी भेंट करें ॥ ७ ॥ आज यह भूमि, तृण, लता आपके चरणारविंदोंको

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ॥ सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥ ७ ॥ धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ॥ नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं वृन्दावनं श्रीमत्प्रीतः प्रीतमनाः पशून् ॥ रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ९ ॥ क्वचिद्गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः ॥ उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम् ॥ अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥ ११ ॥

स्पर्श करके आनन्द पाती हैं ! नदी, पर्वत, पक्षी, वनके पशु भी धन्य हैं ! जो आप दयापूर्वक इनपर दृष्टि डालते हैं, जिस वक्षस्थलकी लक्ष्मी इच्छा करती हैं उसका स्पर्श गोपियोंको होता है, इसलिये यह भी धन्य हैं ॥ ८ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुल मुकुटमणि ! ऐसी अद्भुत वृन्दावनकी शोभा देख प्रसन्नमन श्रीकृष्णचंद्र पर्वतके समीप यमुना नदीके तीरपर गौओंको चराते ग्वालबालोंके संग विहार करते थे ॥ ९ ॥ मदोन्मत्त भौंरे जिस समय गुंजार करते थे, तब श्रीकृष्ण और बलराम आप भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गाते थे, वनमाला पहने हुए बलदेव जीके साथ ग्वाल बाल जिनके चरित्रोंको गाते थे ॥ १० ॥ कभी राजहंसोंकी मधुर वाणी सुन उनके

संग वैसी ही मधुर वाणी बोलते थे। कभी अपने साथी मित्रोंको हँसानेके लिये मोरोंको नाचता देखकर उनके सम्मुख आप भी जामा फैलाकर नाचते थे ॥ ११ ॥ कभी जो कोई गाय चरती चरती दूर निकल जाती थी तो मेघके समान गम्भीर शब्दसे प्रसन्न हो उनके नाम ले-लेकर बुलाते थे ॥ १२ ॥ कभी चकई, चकोर, क्रौंच, चकवा, भारद्वाज, चातक, कीर, कपोत, सारिका, मोर इनके शब्द सुन आप भी उसी प्रकारका शब्द उच्चारण करते थे। कभी व्याघ्र सिंहको देख डरकर जैसे और पशु भागते हैं वैसे ही गायोंको देख भयभीत हो आप भी भागते थे ॥ १३ ॥ किसी समय खेलते खेलते बलदेवजीको परिश्रम हो जाता था तब किसी मित्रकी गोदीमें शिर चरण

मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान् पशून् ॥ क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ॥ अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद् व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्संगोपबर्हणम् ॥ स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥ नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ॥ गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥ क्वचित् पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ॥ वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्संगोपबर्हणः ॥ १६ ॥

रख उसकी जंघाका तकिया बनाकर सो जाते थे, तब श्रीकृष्णचन्द्र आप उनके पैर दबाकर पंखा करके उनकी थकावट दूर करते थे * ॥ १४ ॥ किसी समय कृष्ण बलदेव परस्पर अद्भुत रीतिसे नृत्य करते, गाते, कूदते, लड़ते-भिड़ते और फिर ग्वालबालोंकी भुजा पकड़ हँसकर कृष्ण बलदेव दोनों भाई कहते थे देखो कैसा नाच नाचा, कैसा गाना गाया, इस प्रकार अपनी अपनी बड़ाई करते थे ॥ १५ ॥ किसी समय मल्लयुद्ध करते करते जब हार जाते थे, तब श्रीकृष्ण वृक्षकी जड़के सहारेसे पत्तोंकी शय्यापर गोपोंकी गोदीकी

* शंका—श्रीकृष्ण विष्णु भगवान् होकर अपने अंश शेषजीको अपनेसे बड़ा क्यों किया? उलटा श्रीकृष्णको बलदेवजीका सेवन करना पड़ा।

उत्तर—त्रेतामें लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत सेवा की थी और विना रामचन्द्रजीकी आज्ञा लक्ष्मणजीने कोई कार्य नहीं किया, तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर लक्ष्मणको वरदान दिया कि, हे भैय्या लक्ष्मण! द्वापरमें तुमको अपना बड़ा भाई बनाकर हम तुम्हारी सेवा करेंगे, तुम्हारा नाम बलदेव होगा और हमारा नाम विपिनविहारी होगा, इसलिये शेषजी विष्णुसे बड़े हुए।

तकिया बनाकर सो जाते थे ॥ १६ ॥ हे राजन्! कोई ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके चरण दाबते कोई पापरहित ग्वालबाल पत्तोंके और पुष्पोंके पंखे बनाकर श्यामसुन्दरको बयार करते थे ॥१७॥ कोई ग्वालबाल स्नेहभरी बुद्धिसे महात्मा श्रीकृष्णचंद्रकी नींद किसी प्रकार न उचट जाय इससे ऐसे ऐसे मनोहर मलारोंके पद सहज सहजमें गाते थे ॥ १८ ॥ इस प्रकार अपनी मायासे अपना ईश्वररूप छिपाये हुए नयी नयी लीला करके गोपोंके बालकोंका अनुकरण करते थे, लक्ष्मी जिसके चरणोंमें लोटें वह श्रीकृष्ण सुखधाम ग्रामके रहनेवाले व्रजवासियोंके संग उनकी इच्छानुसार खेल खेलते थे और बीच बीचमें कभी ईश्वरपनकी भी लीला दिखला देते थे ॥ १९ ॥ बलराम श्यामसुन्दरके मित्र श्रीदामा नाम गोप, सुबलस्तोक, कृष्णादिक गोप प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे ॥२०॥ हे राम! हे राम! हे

पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः ॥ अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ॥ गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८ ॥ एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ॥ रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ १९ ॥ श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ॥ सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥ राम राम महाबाहो कृष्ण-दुष्टनिबर्हण ॥ इतोऽविदूरे सुमहद् वनं तालालिसंकुलम् ॥२१॥ फलानि तत्र भूरीणि पतितानि पतन्ति च ॥ सन्ति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥२२॥ सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ॥ आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभि-र्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात् कृतनराहाराद् भीतैर्नृभिरमित्रहन् ॥ न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥

राम! दीर्घबाहो! दुष्टोंके दलनहारे श्रीकृष्ण! यहां थोड़ीसी दूरपर तालके वृक्षोंका एक बड़ा गम्भीर वन है ॥ २१ ॥ उस तालवनमें बहुतसे तालनके फल वृक्षोंके नीचे टूट पड़े हैं, और भी टूट टूटकर बहुतसे गिरते हैं, परन्तु धेनुकासुर दैत्य वहां रहता है, उसने वे फल वहां रोक रक्खे हैं, न वह आप खाता है और न किसी दूसरेको खाने देता है ॥ २२ ॥ हे राम! हे कृष्ण! वह दैत्य बड़ा पराक्रमी और बलशाली है, सदा गधेका रूप धारण किये रहता है और उसीके समान बड़े बड़े योद्धा उसकी जाति के बहुतसे असुर उसके संग रहते हैं और उनके बीचमें वह मण्डली बनाये बैठा रहता है ॥२३॥ हे दुष्टदमन! वह दुष्ट जहां कहीं मनुष्योंको देखता है उनको खा जाता है, इस

डरसे कोई मनुष्य उस वनमें नहीं जाता और पशुपक्षियोंने भी उसके भयके कारण वह वन छोड़ दिया है ॥२४॥ आजतक किसीने नहीं खाये वे ऐसे सुगन्धित और मधुर फल हैं, न मानो तो चारों ओर उनकी सुगन्ध फैल रही है सूंघकर देख लो ॥ २५ ॥ हे कृष्णचन्द्र ! उनकी सुगंधसे हमारे मन लुभा गये हैं, तुम वे फल लाकर हमको दो, क्योंकि उन फलोंके खानेकी हमारी बड़ी इच्छा है जो आपकी भी इच्छा हो तो उस वनको चलें ॥ २६ ॥ इस प्रकार मित्रोंके वचन सुन उनको प्रसन्न करने के लिये सब मित्रोंको अपने संग ले दोनों भाई हँसकर तालवनको चल दिये ॥२७॥ वहां जाकर बलदेवजीने ताल बजाकर हाथसे तालके वृक्षोंको हिलाया तो फलोंके ढेरके ढेर पृथ्वीपर

विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ॥ एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥ प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् ॥ वाञ्छाऽस्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥२६॥ एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ॥ प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥२७॥ बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् संपरिकम्पयन् ॥ फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥ २८ ॥ फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः ॥ अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन्॥२९॥ समेत्य तरसा प्रत्यग् द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ॥ निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन् पर्यसरत खलः ॥३०॥ पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः ॥ चरणावपरौ राजन् बलाय प्राक्षिपद् रुषा ॥ ३१ ॥ स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ॥ चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥

गिर गये, जैसे मतवाला हाथी वृक्षोंको हिलाकर फलोंके ढेरके ढेर नीचे डाल देता है ॥ २८ ॥ पृथ्वीपर फलोंके गिरनेका शब्द सुनकर वह गर्दभरूप धेनुकासुर पर्वतोंसमेत पृथ्वीको कम्पायमान करता हुआ दौड़कर बलरामजीके सम्मुख आया ॥ २९ ॥ उस महाबलवान् धेनुकासुरने शीघ्रतासे आकर दोनों पिछले पाँवोंसे बलदेवजीके हृदयमें एक दुलत्ती मारी और गम्भीर शब्दसे रेंकने लगा ॥ ३० ॥ हे राजन् क्रोधमें भरकर धेनुकासुरने फिर आकर मुख फेर बलदेवजीके पिछले पाँवोंसे एक दुलत्ती और मारी ॥३१॥ तब तो बलदेवजीने उसकी दोनों टांगें एक हाथसे पकड़कर ऐसे घुमाये जैसे लड़के गोफन घुमाते हैं, जब उसके प्राण निकल गये, तब तो फिर फिराकर

एक तालके वृक्षके ऊपर फेंक दिया ॥३२॥ हे राजन् ! जब धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उसके फेंकनेसे वह अत्यन्त भारी तालका वृक्ष टूटकर पृथ्वीपर गिर गया । उसके गिरनेसे चारों ओरके वृक्ष टूट टूटकर पृथ्वीपर गिर गये, अर्थात् एककी चपेट से एक, इस प्रकार अनेक वृक्ष चूर्ण हो गये ॥ ३३ ॥ बलदेवजीने लीला करके जो धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उस गर्दभदेहकी चपेटसे सर्वत्र तालबनके वृक्ष कांपने लगे, जैसे महाबेगकी आंधीसे सब पृथ्वी तलके वृक्ष कम्पायमान हो जाते हैं ॥३४॥ बलदेवजीके इस पराक्रम करनेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि वे अनन्त और जगदीश्वर हैं और यह विश्व उनमें ओतप्रोत हो रहा है, जैसे वस्त्र तानेबानेमें ओतप्रोत रहता है ॥३५॥ जब धेनुकासुर मर गया, तब उसके भाई बन्धु जाति वाले सब गधे क्रोधित होकर श्रीकृष्ण बलदेवके ऊपरको झपटे ॥ ३६ ॥ हे राजन् !

तेनाहतो महातालो वेपमानो महाशिराः ॥ पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥३३॥ बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ॥ तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ॥ ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ॥ क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृपलीलया ॥ गृहीतपश्चाच्चरणान् प्राहिणोत् तृणराजसु ॥ ३७ ॥ फलप्रकरसंकीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः ॥ रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥ तयोस्तत् सुमहत् कर्म निशम्य विबुधादयः ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ ३९ ॥ अथ तालफलान्यादन् मनुष्या गतसाध्वसाः ॥ तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥

श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भाइयोंके सामने जो-जो गधे आये, उनकी टांगें पकड़ पकड़ घुमा घुमाकर वृक्षोंके ऊपर फेंक दिये ॥३७॥ उस कालमें लाल-लाल तालके फलोंके समूहसे श्वेत श्वेत मरे हुए गधोंकी लासोंसे, हरी-हरी तालके वृक्षोंकी शाखाओंसे और काली काली उन वृक्षोंकी जड़ोंसे पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी, जैसे लाल, श्वेत, हरी, काली, घटाओंसे आकाश शोभायमान दिखायी देता है ॥३८॥ ऐसे अद्भुत चरित्र कृष्ण बलदेवके देख देखकर देवता लोग प्रसन्न हो होकर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करते थे और अनेक प्रकारके बाजे बजा बजाकर स्तोत्र पढ़ते थे ॥३९॥ जब धेनुकासुर मारा गया तो फिर मनुष्य निःसन्देह होकर उन तालवृक्षोंके फलोंको खाने लगे

और गायें भी निर्भय होकर घास चरने लगीं ॥ ४० ॥ और अनुचर गोप जिनकी स्तुति करते, कमलपत्रसे जिनके विशालनेत्रोंको देखते और परमपवित्र जिनकी कथा और चरित्रोंको सुनते सब ग्वाल श्रीकृष्ण बलदेव सहित ब्रजमें आये ॥ ४१ ॥ गायोंकी खुरोंकी जो धूरि उड़ती थी उसके पड़नेसे जिनके केश धूसर वर्ण हो रहे हैं, मोरपुच्छोंके मुकुट शीशपर धारण कर रहे हैं, बनके पुष्पोंके तुर्रे कानोंमें लटक रहे हैं, तिरछी चितवनसे, मनोहर मुसकानसे इधर उधरको देखते बांसुरी बजाते ग्वालबाल जिनका यश गाते, उन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द यशोदानन्दनको देखनेके लिये सब गोपी हिल मिलकर आयीं ॥४२॥ ब्रजबालाओंने नेत्ररूपी भवरोंकी श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलके रससे दिन दिन तृष्णाको और श्यामसुन्दरके विरहके तापको शान्त करके लाजभरी मुस्कानसे और कटाक्षभरी चितवनसे जो

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥ तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ॥ वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥४२॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृंगैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ॥ तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥ ४३ ॥ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ॥ यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥ गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ॥ नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ॥४५॥ जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ॥ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥ एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ॥ ययौ राममृते राजन् कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥

आदर सम्मान किया उसको स्वीकार करके ब्रजमें आये ॥४३॥ पुत्रोंमें जिनका परमस्नेह वह यशोदा और रोहिणी अपने पुत्रोंकी इच्छा-नुसार सब पदार्थ उपस्थित रखती थीं ॥४४॥ ब्रजविहारीने ब्रजमें आकर उबटन लगाकर स्नान किया तो मार्गका सब श्रम दूर हो गया, उस समय दोनों भाइयोंने सुन्दर सुन्दर पीताम्बर पहन सुगन्धित पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण कर चन्दन चोवा लगाकर ॥ ४५ ॥ जब निश्चिन्त हुए तो बड़े प्रेमप्रीतिसे माता माखन, मिश्री, मिष्टान्न और षड्रस भोजन परोसकर लायीं, उसको बड़ी प्रीतिसे भोग लगाया और आनन्दपूर्वक सुन्दर शय्यापर जाकर शयन करने लगे ॥४६॥ हे राजन्! इस प्रकार वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्ण भगवान्

नित्यप्रति वृन्दावनमें विहार किया करते थे। एक दिन विना बलरामको संग लिये अकेले ही ग्वालबालोंको साथ ले यमुनाके तीर धेनु चराने गये ॥४७॥ मार्गमें ग्रीष्मकी धूपसे अत्यन्त व्याकुल होकर गाय और ग्वालबाल बहुत तृषित हुए, तब सबने प्यासके कारण कालीदहमें जाकर विषसे दूषित यमुनाजीका जल पिया ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! उस जहरीले जलके पीनेसे वे ऐसे अचेत हुए कि तन मनकी कुछ सुधि बुधि न रही मृतकके समान निष्प्राणसे हो मुरझाकर यमुनाके किनारे पर गिर गये ॥ ४९ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् अपने मित्र ग्वालबाल और गायोंको मूर्छित देख अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर सबको जिला दिया ॥ ५० ॥ जब सब गायें और

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥ विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ॥ निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य तान् वै तथाभूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः॥ ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत् ॥ ५० ॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ॥ आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥ अन्वमंसत तद्राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ॥ पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते म० दशमस्कन्धे पू० धेनुकासुरवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ॥ तस्यां विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत्॥ १ ॥

ग्वालबाल जी उठे और श्रीकृष्णको अपने सम्मुख खड़े देखा और बड़े आश्चर्यसे परस्परको देखने लगे ॥५१॥ अब हमने श्रीकृष्णकी कृपादृष्टिका प्रभाव देख लिया, जिनके विष पीकर प्राण निकल गये थे और फिर जी उठे, हम सब इसे अपने परम प्यारे कृष्णकी कृपादृष्टि ही मानते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
दोहा–इस सोरह अध्यायमें, कालीदहमें जाय । नाथो कालीनागको, पीछे करी सहाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कालिन्दीको कालियसर्पके विषसे बिगड़ा देखकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाके जलको शुद्ध करनेके लिए उस कालिय सर्पको वहांसे निकाल दिया ॥१॥

राजा परीक्षितने पूछा कि हे ब्रह्मन् ! भगवान्‌ने महागम्भीर जलके भीतर कैसे कालियनागको दण्ड दिया और वह किस कारण कालिन्दीके महागम्भीर जलमें वास करता था वह कृपाकर विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी जो अपने भक्तोंको दिखानेके लिए अनेक प्रकारके चरित्र करते हैं, उन भक्तभावन भगवान्‌के गोपालनादिक परमोदार प्राणाधार चरित्रामृतके श्रवण द्वारा पान करनेसे कौन पुरुष तृप्त हो सकता है ? ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि कालिन्दी (यमुना) में कालियनागका एक कुण्ड था, जिसमें विषकी अग्निसे नित्य जल औटता रहता था और आकाशके उड़नेवाले पक्षी उस गरलके तापसे जलकर उस जलमें गिर पड़ते थे ॥ ४ ॥ और उस विषैले जलकी लहरोंके जलकणोंसे मिली पवन जो चलती

राजोवाच ॥ कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् ॥ स वै बहुयुगावासं यथाऽऽसीद्विप्र कथ्यताम् ॥२॥ ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्तिनः ॥ गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥३॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालिन्द्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद्विषाग्निना ॥ श्रप्यमाणपया यस्मिन् पतन्त्युपरिगाः खगा ॥४॥ विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ॥ म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥५॥ तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ॥ कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्गमास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥

थी उसके लगनेसे किनारेके वृक्ष और घास सूख जाती थी और जो जीव उस कुण्डके तटपर भूलसे चले जाते तो उसी समय उस जलकी झलसे जलकर तड़फ-तड़फ मर जाते थे ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें कहा कि इस कुण्डमें ऐसे विषधर सर्प का रहना अत्यन्त दुःखदायक है, क्योंकि जो कोई पशु पक्षी वा पुरुष इस जलको पीता है वह एक क्षणभर भी नहीं जीता, उसी समय अकुलाकर मर जाता है और दूसरे यमुनाके जलको दोष लगता है इसलिए ऐसे दुष्टका यहांसे निकालना ही अच्छा है, कारण जो यह यहां रहा तो लाखों जीवोंकी हत्या करेगा, जिसके विषकी लपटसे चार कोस तक जल खौलता रहता है ऐसा कोई सामर्थ्यवान् नहीं जो उस कुण्डके पास जा सके, इस प्रकार श्रीकृष्णने विचार विषसे बिगड़ी हुई यमुनाको देखकर दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये जिन्होंने अवतार लिया है, उन श्रीकृष्णमहारा-

जने काछ बांध पीताम्बरसे कमर कस, उस महा ऊँचे कदम्बके रूखसे ताल ठोंककर कालिय कुण्डमें कूद पड़े ॥ ६ ॥ पुरुषोत्तम भगवान् जिस समय जलमें कूदे उस समय उनके मारके झटकेसे और सर्पके गरलकी गर्मीसे कालियदहका जल बहुत ऊपरको उछला और विषकी लपटोंके प्रभावसे अत्यन्त खारी और महाभयानक तरल तरंगे जलमें उठने लगीं और चारों ओरसे यमुनाका जल सौ-सौधनुष तक फैल गया,भगवान्का अनन्त बल है,इस कार्यमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है॥७॥हे राजन्! महाबलवान् हाथीके समान जिनका पुरुषार्थ वाले कृष्ण भगवान् जिस समय कालियदहमें जाकर गिरे, उस समय बलशाली भगवान्के भुजदण्डसे ताडित जलशब्दको सुनकर और श्रीकृष्णसे अपने घरका विनाश समझकर कालीनागकी पत्नी अपने घरमें कहने लगी कि, ऐसा कौन बलवान् है जो मेरे घरमें आकर

सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ॥ पर्यक्प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावन् धनुश्शतमनन्तबलस्य किं तत् ॥७॥ तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य ॥ आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुश्श्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥ तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनस्मितसुन्दरास्यम् ॥ क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चच्छाद ॥९॥ तन्नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ॥ कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥१०॥

धूम मचा रहा है, जब उससे न सहा गया तब झट झपट श्रीकृष्णके सन्मुख धाया ॥ ८ ॥ दर्शन करनेके योग्य सुन्दर स्वरूप, सुकुमार अवस्था, मेघवर्ण, हृदयमें भृगुलता चिह्न विराजमान, पीत वसन धारण किये, मन्दहास्य सहित जिनका मुखारविन्द, निर्मल खिले हुए कमलसे जिनके पदपंकज, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्को निशंक उस विषैले जलमें विहार करता देख, अत्यन्त क्रोधित हो वक्षस्थलमें डसनेको दौड़ा परन्तु उस मोहनी मूर्तिको निहारकर मोहित हो गया ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णके देहमें सर्प लिपटा हुआ देखकर प्यारे मित्र ग्वालबाल सब दुःखित हुए तथा श्रीकृष्णचन्द्रमें देह, मित्र, धन स्त्री समस्त कामना जिनने अर्पण कर दी और दुःख शोक भयसे सुधि

बुद्धि बिसार वे गोप पृथ्वीमें पछार खायके गिरते गये श्रीदामाको गालियाँ देते हुए वृन्दावनकी ओर चले और यह यहां सब मूर्छित हो गये॥१०॥तब गाय, बैल, वत्स, छोटी-छोटी बछियाँ महादुःखी होकर रंभाने लगीं और टकटकी बांधकर मनमोहन प्यारे की ओर देखने लगीं और डरके कारण ऐसे सुस्त हो रहे थे मानो सो रहे हैं ॥ ११ ॥ कलसे तीन प्रकारके उत्पात ब्रजमें हो रहे हैं, पृथ्वी डामाडोल होरही है, आकाशसे तारे टूट टूटकर गिर रहे हैं, पुरुषोंकी बाईं भुजायें और बायें नेत्र फड़क रहे हैं, यह उत्पात विपत्तियोंको सूचित करते हैं ॥ १२ ॥ नंद प्रभृति उन उत्पातोंको देखकर अत्यन्त भयभीत हुए कि, आज विना बलदेवको संग लिये कृष्ण अकेले गायें चरानेको गये हैं ॥१३॥ उन खोटे उत्पातोंसे श्रीकृष्णका निधन मानकर और उनके प्रभावको कुछ न जानकर श्रीकृष्णमें

गावो वृषावत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः ॥ कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदत्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥ अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ॥ उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥ तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः ॥ विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ॥ तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः ॥ निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥ तांस्तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवो बलः ॥ प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥ तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ॥ भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥

जिनका तन, मन,धन लग रहा था, वह इन कठिन उत्पातोंके भयसे अत्यन्त पीड़ित हो कहने लगे ॥ १४ ॥ उस समय नंद यशोदादिक सब ब्रजवासी, बाल, वृद्ध, स्त्री, अत्यन्त व्याकुल हो रोते-पीटते पशुकी नाईं रामकृष्णके खोजनेको गोकुलसे बाहर निकले, क्योंकि पूर्णप्रेमसे जिनके मन श्रीकृष्णमें लग रहे थे ॥ १५ ॥ "यदुवंशी भगवान् बलदेवजी किसी वनमें बालकोंके संग विहार कर रहे थे, उनसे भी किसीने कहा कि, आज श्रीकृष्ण खो गये हैं । उनके ढूँढनेके लिये नन्द-यशोदादिक सब ब्रजवासी अति अधीर रोते-चिल्लाते फिरते हैं,और तुम्हारा भी नाम ले-लेकर पुकारते हैं बलदेवजी उनको अधीर व्याकुल समझकर हँसे"परंतु कुछ मुखसे न कहा क्योंकि वह तो अपने छोटे भ्राता श्रीकृष्णकी महिमाको, अच्छी रीतिसे जानते थे कि, वह किसीके वशके नहीं ॥१६॥ वह सब ब्रजवासी श्रीकृष्ण प्यारेको ढूँढ़ते-

ढूँढ़ते मार्गमें कृष्णचन्द्रके चरणचिह्न देखे, उन चरणचिह्नोंको देखकर सब पुकार कर कहने लगे कि देखो भाई और ग्वालबालोंके भी चरण चिह्न पृथ्वीपर लग रहे हैं, और गाय बछड़े भी उनके संग हैं, विदित होता है कि यमुनाकी ओरको गये हैं, यह कह सब ब्रजवासियोंने कुछ-कुछ धैर्य धारण किया ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वह लोग गायोंके मार्गमें और ग्वालबालोंके पदोंके बीचमें श्रीकृष्णचंद्र भगवान् जगदीश्वरके चरणोंके चिह्न कमल, यव, अंकुश, वज्र, ध्वजाकी रेखा देखते-देखते बहुत शीघ्र चले॥१८॥सब स्त्री, पुरुष कालीदहके किनारे पहुँचे,जाकर देखा तो दहके भीतर किनारेपर जड़बुद्धि हुए ग्वालबाल पछाड़ खाये पड़े हैं,चारों ओर गाय-बछड़े रंभाते फिर रहे हैं, उन सबकी यह दशा देखकर सब महादुःखी हुए॥१९॥जिन गोपियोंका मन अनन्त भगवान्‌में लय हो रहा है वह गोपी मनमोहनमें मन लगानेवाली श्रीकृष्णचन्द्र

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः ॥ मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे निरीक्षमाणा ययुरङ्ग-सत्वराः ॥ १८ ॥ अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात् कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ॥ गोपांश्च मूढधिषणान् परितः पशूंश्च संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ॥ ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥२०॥ ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ॥ तास्ताःप्रियव्रजकथाः कथयन्त्य आसन् कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान् निर्विशतो नन्दादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् ॥ प्रत्यषेधत् स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित्॥२२॥

का प्यार, मन्दमुसकान, तिरछी चितवन, मधुर वचनोंकी सुधि करके अतिशय प्यारे श्यामसुन्दरको सर्पसे ग्रसित हुआ देखकर अत्यन्त व्याकुल होगईं और तीनों लोक सूने दिखाई देने लगे ॥ २० ॥ पुत्र श्रीकृष्णको दहमें देख यशोदा माता जलमें गिरने चली, तब गोपियां उन्हें पकड़ अतिदुःखित होके आँखोंमें आँसू बहातीं यशोदाके समान दुःख करतीं, व्रजमें करी हुई भगवान्‌की प्यारी लीला उनका वर्णन करतीं भगवान्‌के मुखकी ओर दृष्टि देकर गोपियां मृतकके समान हो गईं ॥२१॥ श्रीकृष्णचन्द्रमें प्राण लगाये कालिंदीके दहमें पुत्र शोकसे नन्द आदि व्रजवासियोंकी देहमें गिरता देख श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले भगवान् बलदेवजी रोकते भये ॥ २२ ॥

इस प्रकार अपने गोकुलको अनन्यगति देखकर और कोई उनके क्लेशका मिटानेवाला नहीं यह जानकर और स्त्री, बालक समेत सब ब्रजवासी मेरे लिये अत्यन्त दुःखी हैं, यह विचारकर मनुष्योंके सदृश लीला करनेवाले गर्वप्रहारी भगवान्‌ने दो घड़ी उस सर्पकी कुण्डलीमें रहकर फिर उस बन्धनसे छूटनेकी इच्छा की ॥ २३ ॥ तब श्रीकृष्णने अपना देह इतना बढ़ाया कि उसके अङ्गके सब बन्द-बन्द ढीले हो गये, नस-नस दुखने लगीं, हड्डियोंके जोड़-जोड़ टूटने लगे; तब तो वह नाग कृष्णचन्द्रको छोड़ महाक्रोध कर फणोंको उठा-उठाकर लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगा और नथनोंमेंसे विषकी ज्वाला निकलने लगीं । आंखोंके पलक खुलेके खुले रह गये और मुखसे विषानलकी ज्वाला भड़कने लगी, ऐसा वह कालिय नाग कृष्णकी ओरको देख रहा था ॥ २४ ॥ दो-दो फांकवाली

इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ॥ आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरंगबन्धात् ॥ २३ ॥ तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजंगः ॥ तस्थौ श्वसन् श्वसनरन्ध्रविषाम्बरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥२४॥ तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ॥ क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥२५॥ एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरस्स्वधिरूढ आद्यः ॥ तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादाम्बुजोऽखिल-कलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥

जिह्वाओंसे अधरोंको क्षण-क्षण में चाट-चाटकर क्रोध करता था, उस विकराल विषानलभरी चितवनवाले कालियनागके चारों ओर फिर-फिरकर ब्रजविहारी विहार करते फिरते थे, जैसे गरुड़ सर्पके चारों ओर फिरता है और वह कालिय भी अपना अवसर देखता हुआ भगवान्‌के चारों ओर घूमता फिरता था । श्रीकृष्ण अपना दांव विचारते थे, कालिय अपना दांव विचारता था, श्रीकृष्णकी इच्छा तो यह थी कि मेरा दांव लगे तो कालियके फणोंपर चढ़कर नृत्य करूं और कालियके मनमें यह विचार था कि किसी प्रकार एक बार तो वनमालीको फिर लिपट जाऊँ । दोनों अपना-अपना दांव तक रहे थे ॥ २५ ॥ जब फिरते-फिरते कालियका पराक्रम घट गया तब कालियके

ऊपरको उठे हुए फणोंको नीचे नवाकर श्रीकृष्णने झट झपटकर उसका फण पकड़कर चरणतले दाब उसकी नाकमें नाथ डाल दी और उसके शीशपर जा चढ़े और नाचने लगे ॥२६॥ जिस समय नटनागर नटवरवेष धरकर कालियके फणोंपर नाचनेको खड़े हुए; उसको देखनेके लिये गंधर्व, सिद्धि, सुरगण, चारण, देवांगना यह सब अत्यंत प्रसन्न होकर मृंदग, ढोल, नगाड़े आदि अनेक प्रकारके बाजे बजाते, गीत गाते; पुष्प वर्षाते, भेंट ले लेकर आये और भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! जिस कालियके एक सौ एक मस्तक थे उसने जो मस्तक ऊपरको उठाया उसको दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय पांवकी ठोकरसे नीचेको दबा दिया और जब वह क्षीण अवस्थावाला इधर-उधर गिरने लगा तब मुखसे नासिकासे रुधिरकी धारा निकलने लगी, शरीर के बन्द ढीले हो गये, इस

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ॥ प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सह-सोपसेदुः ॥२७॥ यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन्ममर्द खलदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः ॥ क्षीणायुषो भ्रमत उल्बण-मास्यतोऽसृक् नस्तो वमन्परमकश्मलमाप नागः ॥२८॥ तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ॥ नृत्यन्पदाऽनुनमयन्दमयांबभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पुराणः ॥२९॥ तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन्नृपभग्नगात्रः ॥ स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥

प्रकार दुष्ट कालियका दुष्टदमन भगवान्‌ने मर्दन किया ॥ २८ ॥ तो भी उस कालियनागने महाक्रोध करके लम्बे-लम्बे श्वास लिये और मुखसे विष उगला और फिर शिर ऊपरको उठाया परंतु भगवान् शत्रुदमनने नृत्य कर करके चरणोंकी ठोकरोंसे उसके मस्तकोंको नीचेको झुका दिया; उस समय गंधर्व और देवताओंने अत्यंत प्रसन्न होकर शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले नारायणके समान जानकर यशोदानंदन भगवान्‌की पुष्पोंसे पूजा की ॥ २९ ॥ हे राजन् ! नटनागर भगवान्‌ने जो चित्र-विचित्र ताण्डव नृत्य किया, उससे कालियके फणरूपी क्षत्र टूट गये और सब शरीरकी नस-नस ढीली हो गयीं, मुखसे रुधिर बहने लगा, तब श्रीकृष्णको स्थावर-

जङ्गमका गुरु पुराणपुरुष नारायण समझकर मनसे उनकी शरण ली ॥३०॥ समस्त ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें विराजमान है ऐसे विश्वभावन भगवान् मुरलीधरने त्रिलोकीका भार अपने देहमें धारण कर कालियके मस्तकपर मुरली बजा-बजाकर उछल-उछल तांडव नृत्य किया, उस समय मुरलीमनोहरका कौतुक देखनेके लिए देवता, गन्धर्व,किन्नर,अप्सरादिक अपने-अपने विमानोंपर बैठकर आये और अनेक प्रकारके बाजे बजा-बजाकर श्रीवैकुण्ठविहारीके उत्तम-उत्तम चरित्र गाने लगे, अप्सरायें भांति-भांतिके नृत्यकरने लगीं, देवता आकाशसे पुष्प वर्षाने लगे। उस समय देवता, गन्धर्व, जो ताल स्वर सहित गाते थे, उसीमें मुरलीमनोहर अपनी मुरलीकी तान मिलाते थे और जब कालियके शिरोंपर ठुमक-ठुमक पग धरते थे और नूपुरोंका शब्द बाजोंमें मिल रहा था, उन नूपुरोंकी झनकारकी ध्वनि सुनकर पवन-पानी भी बहनेसे बन्द हो गये, उस समयका आनन्द वर्णन करनेमें ब्रह्मादिक देवता भी चकित होते हैं फिर और किसी दूसरेका क्या सामर्थ्य

कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ॥ दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥ ३१ ॥ तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ॥ साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥

है जो उस आनंदका वर्णन कर सके? जब त्रिभुवनपतिने त्रिभुवनका भार कालियके शिरपर रक्खा तब उसके सब अङ्ग शिथिल हो गये, मुखोंसे रक्तकी फुहारें निकलने लगीं, देह थककर जब मृतक समान हो गया और सब अभिमान जाता रहा, उस समय अपने जीवनकी आशा छोड़ फणोंको पृथ्वीपर पटकने लगा, मस्तकपर चरणारविन्दोंके चिह्न हो गये, उस समय कालियकी दुर्दशा देखकर वस्त्र-आभूषण जिनके अस्तव्यस्त हो गये, केश खुल गये, ऐसी कालियकी पत्नी पतिके शीशोंको छत्रके समान टूटे देखकर हृदयमें करा-घात करती हुई नारायणकी शरण आयी ॥ ३१ ॥अत्यन्त व्याकुल जिनके मन अपने-अपने छोटे-छोटे बच्चोंको आगे करके नागकी पतिव्रता स्त्रियां अत्यन्त पीड़ित हो प्रथम पृथ्वीपर पड़कर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और अपने पतिके पाप छुटानेके लिये

श्रीकृष्ण भगवान्के चरण-शरणमें आयीं ॥ ३२ ॥ नागपत्नियाँ बोलीं-कि हे नाथ ! इस अपराधीको आपने दण्ड दिया वह अच्छा किया, क्योंकि आपका अवतार दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये है, शत्रु और मित्रोंको आप एकसा समझते हो, इसलिए आपका नाम समदर्शी है, दुष्टको विचार कर दण्ड देते हो और मित्रोंको मित्र समझकर उनपर अनुग्रह करते हो। दुष्टोंको दण्ड देते हो यह आपकी कुछ विषमता नहीं है ॥ ३३ ॥ इस सर्पको आपने दण्ड दिया सो इसके ऊपर बड़ा अनुग्रह किया क्योंकि आपके दण्ड देनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं। जिस अपराधसे इसकी सर्पयोनि हुई, वह अपराध दूर हो गया, इसलिए आपका क्रोध भी कृपारूप ही है ॥ ३४ ॥ इस हमारे पतिने पूर्वजन्ममें ऐसा क्या तप किया है ? जिससे सबके प्राणदान देनेवाले आप इसपर सन्तुष्ट हुए। इस मान

नागपत्न्य ऊचुः ॥ न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय ॥ रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयं भवता कृतो हि नो दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ॥ यद् दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥३४॥ तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन ॥ धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥३५॥ कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ॥ यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽचरत् तपो विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥ ३६ ॥ न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

रहित हमारे पतिने अपना मान तजकर औरोंका मान किया और सब लोगोंपर दया ही करता रहा, नहीं तो ऐसे क्रूरबुद्धि सर्पपर आप क्यों अनुग्रह करते ? ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशवान् ! यह सर्प आपके चरणारविन्दके रजके स्पर्श करनेका अधिकारी हुआ, सो कौनसी तपस्याका ऐसा श्रेष्ठ फल है ? यह हम नहीं जानतीं, जिन चरणारविन्दोंके स्पर्शके लिये लक्ष्मीजीसी उत्तम स्त्रीने सब कामनाओंको तजकर व्रतको धारण करके बहुत वरसोंतक तप किया ॥ ३६ ॥ जिन पुरुषोंने आपके चरणारविन्दकी रजकी शरण ली है वे पुरुष न तो स्वर्गकी, न चक्रवर्ती राज्यकी, न शिवलोककी, न इन्द्रलोककी, न ब्रह्मलोककी, न पातालकी, न योगकी, न सिद्धियोंकी और न मोक्षकी चाहना करते

हैं ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! लक्ष्मीजी आदि से लेकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको आपके चरणारविन्दकी रज महादुर्लभ है, उस रजको क्रोधके वश तमोगुणसे उत्पन्न विषवाले सर्पोंका राजा कालिय विना उपाय ही प्राप्त हो गया, क्योंकि अपने कर्मोंके वशसे संसारचक्रमें भ्रमते हुए तुम्हारे चरणारविन्दके रजकी शरण चाहनेवाले शरीरधारियोंको मनमानी सम्पत्ति मिलती है ॥ ३८ ॥ छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त सर्वदेहोंमें अन्तर्यामी, रूप से रहित उनमें विराजमान रहते हो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंचभूतोंके आश्रयरूप, सबके आदिकरण, आप कारण से रहित ऐसे परमकारण परमात्माको हम बारम्बार नमस्कार करती हैं॥३९॥ आप ज्ञान विज्ञान अर्थात् चैतन्यशक्ति करके परिपूर्ण हो, व्यापक हो, अनंत शक्तिमान्, त्रिगुण, निर्विकार, मायाके प्रवर्त्तक हो, हम बारंबार आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४० ॥ आप काल-

तदेष नाथाप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ॥ संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्यात् विभवः समक्षः ॥३८॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ॥४०॥ कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ॥ विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ॥ त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥ नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ॥ नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥

रूप हो, कालशक्तिके आश्रय हो, कालके अंगोंको देखनेवाले हो, विश्वरूप हो, विश्वके देखनेवाले हो और विश्वके कर्त्ता हो और विश्वके कारण हो, तुमको वारंवार नमस्कार है ॥ ४१ ॥ पृथ्वी, जल, वायु, शब्द, आकाश, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और दश इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त इनके रूप हो, त्रिगुण अहंकारसे अपने अंशरूप जीवोंके स्वरूपका आच्छादन करनेवाले आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४२ ॥ आप अहंकारसे आच्छादित नहीं इससे अनन्त हो, दृष्टिगोचर नहीं इससे सूक्ष्म हो, एवं उपाधियोंका विकार नहीं इससे निर्विकार हो। कोई कहता है सर्वज्ञ हो, कोई कहता है सर्वज्ञ नहीं हो, कोई कहता है चिन्तनीय हो, कोई कहता है अचिन्तनीय हो, कोई

कहता है बद्ध हो, कोई कहता है मुक्त हो, कोई कहता है एक हो, कोई कहता है अनेक हो इत्यादि जो अनेक प्रकार के झगड़े हैं उनमें मायासे जो जैसे कहते हैं उस समय वैसे ही हो जाते हो, नाम नामी यह जो शक्तिका भेद इससे अनेक रूप करके प्रतीक्षा करने योग्य जो तुम हो ऐसे आपको बारम्बार हमारा नमस्कार है ॥ ४३ ॥ आप नेत्रों आदिसे लेकर सब इंद्रियोंके प्रकाश करनेवाले हो, स्वतः सिद्ध ज्ञानके विषयी हो, वेदके कारण हो, वेद आपके श्वासोंसे हुए हैं, प्रवृत्तिके प्रतिपादक वेदरूप आपको हम नमस्कार करती हैं ॥ ४४ ॥

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥ ४४ ॥ नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥ नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ॥ गुण-वृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

शुद्ध अन्तःकरणके प्रकाश करनेवाले; भक्तोंके रक्षक, रामकृष्णरूप वसुदेवतनय, प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्धरूप आपको हमारा नमस्कार है ॥४५॥ सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणके, प्रकाशक, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके प्रकाश करनेवाले अर्थात् इनके अधिष्ठाता हो, तीन गुणोंसे उपासकको चित्र-विचित्र फल देनेके लिए अपने आत्माको ढककर अनेक रूपसे भासते हो और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारसे चैतन्य निश्चय आदिको लेकर वृत्तिसे जाननेमें आते हो। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके साक्षी व अगोचर आपको नमस्कार करती हैं ❋ ॥ ४६ ॥

❋ दृष्टान्त--एक धनाढच ब्राह्मण कृष्णके भक्त थे । परंतु भोलेभाले भी बहुत थे । लोगोंने धोखा दे दिलाकर और कुछ धन लेकर उनका एक चण्डालकी कन्याके साथ विवाह कर दिया। एक दिन वह कन्या खिड़कीमें बैठी थी। अकस्मात् उसके देशके वहां आ निकले, वह देखकर बोले अरी नत्थनकी बेटी ! तू यह कैसे आगयी ? लोगोंने पूछा कि तुम इसको क्या जानो ? वह बोले कि हमारे गांवकी जन्मी, हमारे सामने उत्पन्न हुई नत्थन भंगीकी बेटी है, तब तो वह ब्राह्मण बहुत घबड़ाये और पंडितोंको बुलाकर पूछा कि हमको क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ? ब्राह्मणोंने कहा कि, सूखे हुए पीपलके वृक्षके खखोडलमें जलो तो पापां छूटेगा । तब ब्राह्मण पीपलका खखोडल देखकर उसमें माला लेकर बैठ गये और लोगोंने उसमें आग लगादी, जब सब पीपलकी लकड़ी जलकर भस्म हो गयी । ब्राह्मण बैठे माला फेरते रहे तब सब लोग उन ब्राह्मण देवताको दण्डवत् प्रणाम कर बोले कि उठो अब प्रायश्चित्त हो चुका, ब्राह्मण बोले कि अब वह स्त्री क्या करे । लोग बोले कि उसको बिरादरीको दे दो । ब्राह्मणने चाण्डालोंसे कहा कि इस स्त्रीको तुम ले जाओ । चाण्डाल बोले कि जब यह ब्राह्मणके घरमें रही तो अब हमारे किस कामकी है । लोगोंने कहा–तुम ही रहने दो। ब्राह्मण बोले कि, तुम मुझसे फिर प्रायश्चित्त कराओगे ? लोग बोले नहीं,अलग एक कोठरीमें रख देना, दो रोटी दूरसे दे दिया करना दैव योगसे चांडालीका देह छूट गया । तब वह ब्राह्मण चाण्डालोंसे बोले कि इसको उठा ले जाइये । तब चाण्डाल बोला–इसे उठानेसे हमको बिरादरीमें रोटी देनी पड़ेगी । अतः हम इसको नहीं उठा सकते तुम ही उठाओ । ब्राह्मण बोला– मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ऐसे ही शोच-विचार करते दो घड़ी दिन रह गया । तब ब्राह्मण ही उसको उठाने चले । उसका वस्त्र उघाड़कर देखा तो उसके समीप, फल बहुतसे पड़े हैं और पार्षदोंके पदोंके चिह्न लग रहे हैं । वहां न कोई चांडालिनी न कोई मृतक है; अर्थात् वह सदेह परमधामको चली गयी । देखिये सत्संगतिकी ऐसी उत्तम महिमा है ।

आपकी महिमा विचारनेमें नहीं आती, परंतु सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति प्रकाश करनेके कारण जाननेमें आते हो, इंद्रियोंके प्रेरक, आत्मामें रमण करनेवाले सत्स्वभाव आपको हम वारंवार नमस्कार करती हैं ॥ ४७ ॥ स्थूल सूक्ष्म सबकी गतिके जाननेवाले हो; सम्पूर्ण विश्वके साक्षी हो, विश्व आपके स्वरूपमें नहीं और विश्वके स्वरूपमें आप नहीं, आप विश्वके निषेधकी अवधि हो, जैसे सर्पके प्रकाशका आश्रय रस्सी है वैसे आप विश्व प्रकाशनेके आश्रय हो, आरोप और निषेधके साक्षी आप हो, विश्वका आरोप और निषेधके ज्ञान-अज्ञानके कारण हो; जहांतक विश्वज्ञान है वहांतक जाननेमें आते हो अर्थात् विद्यासे और अविद्यासे अपवाद और अध्यासके हेतु आपको प्रणाम

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ॥ हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ॥ अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥ त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृत कालशक्तिधृक् ॥ तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥ तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ॥ शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्म परीप्सयेहतः ॥ ५० ॥

है ॥४८॥ हे प्रभो ! अब चेष्टा रहित हो कालशक्तिको धारण करके सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करते हो । हे अमोघविहार ! अर्थात् सफल विहार (क्रीडा) करनेवाले ! आप अपनी इच्छासे उन संस्काररूपसे वर्तमान स्वभावोंको प्रतिबोधन करते हुए क्रीडा करते हो ॥४९॥ त्रिलोकीमें शांतस्वभाव, अशान्तस्वभाव घोरस्वभाव, मूढस्वभाव इस प्रकार सत्त्वगुण रजो-गुण, तमोगुणकी प्रधानतासे तीन स्वभावके प्राणी आपके खेलनेके लिए खिलौना हैं। साधुओंकी रक्षा करनेके लिये कटिबद्ध होकर

अवतार धारण करते हो, इसलिये आपको शांतस्वभाव प्राणी ही प्रिय हैं, क्योंकि सज्जनोंके धर्म पालनेकी इच्छासे प्रवृत्ति करते आपने अभी उनकी रक्षाके लिये अवतार लिया है ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! अब हम अबलाओंपर कृपा कीजिये नहीं तो यह कालिय सर्प प्राण छोड़ देता है, सत्पुरुषोंके शोचनीय हम दीन अबलाओंपर अनुग्रह करके पतिरूप प्राणदान दीजिये

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः ॥ स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५१ ॥
अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ॥ क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५२ ॥
विधेहि ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ॥ यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥

॥ ५१ ॥ स्वामीका यही धर्म है कि एकबार जो अपनी प्रजासे अपराध हो जाय उस अपराधको क्षमा कर दें। हे शान्तस्वरूप ! इस अज्ञानी कालियका अपराध अब क्षमा करो * ॥ ५२ ॥ हम आपकी दासी हैं कुछ आज्ञा करनी हो सो आज्ञा कीजिये, हम आपकी आज्ञाको श्रद्धापूर्वक करेंगी । हे नाथ जो आपकी आज्ञाको हितचित्तसे करते हैं, उनके सम्पूर्ण भय छूट जाता

* दृष्टान्त–जैसे एक राजाने किया, कि आधी रातके समय वेष बदलकर नगरकी सैरको निकला कि देखें कोतवाल और चौकीदार रातमें पहरा देते हैं वा नहीं देते । चौकीदारने पूछा कौन ? राजाने कुछ उत्तर न दिया, तब चौकीदारने पकड़ लिया और उनकी पगड़ी उतारकर उसी से उसके हाथ बांध लिये और बहुत मारा, परंतु राजा तो भी न बोले, तब चौकीदारने और मारा और कहा कि, अरे दुष्ट ! तूही रोज चोरी करके ले जाता था । आज बहुत दिनोंमें पकड़ा है, राजा तो भी न बोले, तब चौकीदारने हवालातमें पकड़कर बैठा दिया । जब दिन निकला और लोग इधर-उधरसे आने-जाने लगे, देखे तो राजा हवालातमें बैठे हैं, तब तो लोगोंने बड़ा आश्चर्य माना कि यह क्या बात है ? चौकीदारने सब वृत्तांत सुनाया और राजाके चरणोंमें गिर गया कि मेरा अपराध क्षमा कीजिये और राजाके हाथ-पांव खोल दिये, परंतु मनमें डरता रहा कि न जाने राजा क्या दंड दें । राजा चुपचाप उठकर मंदिरमें चले गये और स्नान पूजा कर राजदरबारमें आये और चोबदारसे कहा कि जो चौकीदार रात गोपालगंजमें पहरा देता था उसको इसी समय हमारे पास लाओ । वह चौकीदार डरता-कांपता राजाके सम्मुख आया । राजाने प्रसन्न होकर सौ १०० अशरफी पारितोषिकमें उसे दीं और एक गांव उसकी सन्तानके वास्ते दिया । मंत्रीने हाथ जोड़कर पूछा कि इसकी क्या वीरता लिखी जायगी । राजाने अपना देह उघाड़कर दिखाया और रातका सब वृत्तान्त सुनाया । मंत्रीने कहा कि इसको शूली देनी चाहिये थी; राजा बोला-आप नहीं समझे, यह अपने काममें बहुत सावधान है, क्योंकि जो मुझसे ही न चूका, तो फिर यह औरसे कभी नहीं चूक सकता । देखिये-अपने काममें सावधान रहने वालेको सदा परमानन्द प्राप्त होता है ।

हैं ॥५३॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जब इस प्रकार नागपत्नियोंने श्रीकृष्णचंद्र महाराजकी स्तुति की, तब भगवान्‌ने मूर्च्छित पड़े हुए उस भग्नमस्तक कालिय नागको चरणकी ठोकरसे प्रहार कर छोड़ दिया ॥ ५४ ॥ सहजही में वह दीन कालिय सचेत होकर लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगा और हाथ जोड़कर भगवान्‌से निवेदन करने लगा ॥ ५५ ॥ हे नाथ ! जबसे हम उत्पन्न हुए हैं तबसे ही हम दुष्ट हैं, तामसी हमारा स्वभाव है, बड़ाभारी हमारा क्रोध है, लोगोंका खोटा आग्रहरूप स्वभाव नहीं छूटता ॥ ५६ ॥ हे सम्पूर्ण जगत्‌के रचनेवाले। सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे आपने अनेक प्रकारका विश्व रचा है और जिसके स्वभाव, शक्ति,बल,बीज, योनि,संस्कार और आवृत्तियाँ, ये सब ही पृथक्-पृथक् प्रकारके हैं, यह विश्व आपका ही रचा हुआ है ॥५७॥ हे भगवन् ! उस विश्वमें हमें

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान् समभिष्टुतः ॥ मूर्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥ ५४ ॥ प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ॥ कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥ कालिय उवाच ॥ वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ॥ स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥ ५६ ॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातुर्गुणविसर्जनम् ॥ नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥ ५७ ॥ वयं च तत्र भगवान् सर्पा जात्युरुमन्यवः ॥ कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥ भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः ॥ नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ॥ ६० ॥

सर्प बनाये, जन्मसे ही हमारे हृदयमें अधिक क्रोध बढ़ा और हम आपकी ही मायासे मोहित हो रहे हैं, अतः आपसे मोहित हुए हम आपकी मायाको कैसे छोड़ सकते हैं ? ॥५८॥ सम्पूर्ण भेदोंके जाननेवाले जगत्‌के ईश्वर आप ही हो अतः आप मायाके छुड़ानेके कारण हो, जो काम आपने हमको सौंपा, उसपर हम ऐसे दुष्ट रहे कि आपसे भी न चूके । यह मानकर चाहे हमारे ऊपर कृपा करो, चाहे दण्ड दो। आप परमेश्वर हो, सब काम करने योग्य हो॥ ५९ ॥ हे राजन् ! जब दीनदयालु दीनानाथने व्यालको अत्यन्त बेहाल देखा, तब उसका श्रम दूर कर चतुर्भुज रूप दर्शन दिया। इस प्रकार कालियकी मीठी वाणी सुनकर दीनबन्धु भगवान्‌ने कहा कि मैंने तेरे मस्तकमें

अपने चरणसरोज छुवा दिये, अब तुझको किसी प्रकारका शोक-सन्ताप न होगा, परंतु अब तू इस कुण्डका वास छोड़कर रमणकद्वीपको चला जा ॥ ६० ॥ और अपनी जातिके सर्प और बाल-बच्चे, स्त्रियोंको भी साथ ले जा, क्योंकि अब मैं यहां जलक्रीड़ा किया करूँगा और गाय-बछड़े और ग्वालबाल यहांका जल पिया करेंगे, आजसे इसका नाम 'कालियकुण्ड' होगा। जो पुरुष प्रातःकाल उठकर अथवा सन्ध्या समय इस चरित्रका पाठ करेगा उसको सर्प का भय न होगा यह कालियदह स्थान मेरे विहार करनेका है, जो पुरुष इसमें स्नान कर इस जलसे पितृदेवताका तर्पण करेगा ॥६१॥६२॥ वा व्रत और मेरा पूजन करेगा उसको अश्वमेध यज्ञ का पुण्य होगा और अन्तसमय परमधामको जायगा अर्थात् फिर इस असार संसारमें जन्म नहीं लेगा जिस गरुड़के भयसे रमणकद्वीपको छोडके तूने

स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ॥ य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥ ६१ ॥ कीर्तयन्नुभयोः संध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ योऽस्मिन् स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ॥६२॥ उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ॥ यद्भयात् स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥ दिव्याम्बर-स्रङ्मणिभिः परार्घ्यैरपि भूषणैः ॥ दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥ ६५ ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुड-ध्वजम् ॥ ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवाद्य तम् ॥ ६६ ॥

इस दहमें आयके वास किया है गरुड़ तुझको अब न खायगा, क्योंकि तेरे मस्तकपर मेरा चरणचिह्न है ॥ ६३ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि अद्भुत लीलावाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब यह बात कही, तब नाग और नागकी स्त्रियाँ अत्यन्त आनंद सहित श्रीकृष्ण भगवान्की पूजा करने लगीं ॥ ६४ ॥ दिव्य वस्त्र, माला, मणि, अमूल्य आभूषण और दिव्य सुगन्ध केशर, कस्तूरी, चन्दन आदिका लेपन और बड़ी-बड़ी कमलकी मालाओंसे ॥६५॥ गरुड़ध्वज भगवान्की पूजा की और कालिय सर्पने भगवान्की आज्ञा मान उसी समय परिक्रमा दे दण्डवत् प्रणाम कर ॥ ६६ ॥

अपने कुटुम्ब समेत अपने उरगद्वीपको चला गया, उस समय देवता आकाशमें जय-जयध्वनि कर कहने लगे कि हे शरणागतवत्सल ! धन्य है आपको, जो कालियको अपने चरणशरणमें रख लिया और उसके फणपर चरणचिन्ह लगाकर गरुड़की कठिन त्राससे बचा दिया वृन्दावनविहारी, विहारार्थ मनुजरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे यमुनाजीका जल अमृतके समान निर्मल हो गया, लेशमात्र भी विष न रहा ॥६७॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कालियनिर्यापणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ दोहा-सत्रहवें कालीयको, भेजो रमणकद्वीप। बंधु बचाये अग्नितें, भेजे कमल महीप ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने पूछा कि हे भगवन्! ऐसे परमोत्तम रमणकद्वीपको छोड़कर कालियनाग यमुनामें क्यों आया ? और क्या कारण जो अकेले कालियने ही गरुड़का अप-

सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ॥ तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाऽभवत् ॥ अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० कालियदमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ नागालयं रमणकं कस्मात् तत्याज कालियः ॥ कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपाहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः ॥ वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥ २ ॥ स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि ॥ गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥ विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ॥ कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन् भगवान् भगवत्प्रियः ॥ विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

राध किया ? इसका सब वृत्तांत विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाबाहु राजा परीक्षित् ! गरुड़ नित्यप्रति रमणक द्वीपमें सर्पोंको भक्षण करनेको आता था तब सम्पूर्ण सर्पोंने आपसमें विचार कर मासमासको अपना दुःखनिवृत्त करनेके लिए वृक्षकी जड़में एकांत गरुड़की भेंट रखनेका निश्चय कर दिया ॥ २ ॥ सब सर्प अपनी बारीसे पीपलके वृक्षपर गरुड़जीकी भेंट रख दिया करते थे, कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये ॥ ३ ॥ अपने विषके और पराक्रमके घमण्डमें अभिमानी कद्रूका पुत्र कालिय गरुड़को कुछ वस्तु न समझकर सर्पान्न गरुड़के भागको एक दिन आप ही खा गया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! भगवान्के प्यारे भगवान् गरुड़जीने जब यह बात सुनी

कि हमारे भागका भोजन कालिय नाग खा गया, उसी समय क्रुद्ध होकर कालियके मारनेके लिये अत्यन्त वेगसे कालियके पीछे झपटे ॥ ५॥ विष ही जिसका शस्त्र वह कालियनाग ऊपर को फण उठा दौड़कर गरुड़जीके सम्मुख आया, दन्तआयुध भयानक जीव पलक जिसमें लगे नहीं ऐसे भयङ्कर नेत्रवाला कालिय दांतोंसे गरुड़ को काटने लगा॥६॥तब तो ताक्ष्र्यके पुत्र गरुड़जी बड़े क्रोधसे अपने अङ्ग को छुड़ाया और सुवर्ण केसे प्रकाशवाले अपने पंखोंसे और चोंचसे कद्रूके पुत्र कालियको मारकर गिरा दिया ॥७॥ गरुड़जी जिस समय पंख प्रहार करते थे तब पंखोंमेंसे वेदोंकी ध्वनि निकलती थी, उनके प्रहारसे और स्वरोंकी गुंजारसे सर्प व्याकुल होते जाते थे और कालिय भी अत्यन्त व्याकुल हो गया तो मनमें विचार करने लगा कि अब गरुड़से मैं किसी प्रकार न जीतूंगा । हारकर यह सोचा कि अब

तमापतन्तं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः ॥ तद्भिः सुपर्णं व्यदशद्ददायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥६॥ तं ताक्ष्यंपुत्रः स निरस्य मन्युमान् प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः ॥ पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥७॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ॥ ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८॥ तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ॥ निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥ ९॥ मीनान्सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ॥ कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१०॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति ॥ सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥

वहां चलना चाहिये जहां सौभरिऋषिने गरुड़को शाप दे रखा है कि यहां गरुड़ न आ सके, दूसरे जलमें गरुड़का पराक्रम भी न चलेगा इस प्रकार अपना बचाव समझकर वृन्दावनके निकट यमुनाके कुण्डमें जाकर निवास किया ॥ ८ ॥ क्योंकि उस दहमें एक समय गरुड़जी मछलियाँ खानेकी इच्छासे आये, तब सौभरिऋषिने गरुड़को रोका कि, भाई ! यह हमारे तपस्या करनेका स्थान है, यहां मछली मत मारो, परन्तु क्षुधार्थी गरुड़जीने ऋषीश्वरका वचन न माना ॥९॥ जब मछलियोंका पति एक बड़ा मत्स्य गरुड़जीने मारा तब मछलियोंको दीन और व्याकुल देखकर उनके बचानेके लिए सौभरिऋषिने महाक्रोधित होकर यह शाप गरुड़को दिया ॥ १० ॥ इस ह्रदमें गरुड़ आकर

जो मछलियोंको खायेगा तो उसी समय गरुड़का देहान्त हो जायगा। यह बात मैं सत्य कहता हूँ, इस प्रकार प्राणीमात्रकी रक्षा करनेवाले सौभरिऋषिने गरुड़को यह शाप दिया ॥ ११ ॥ यह बात कालिय भली-भांति जानता था और किसीको यह सुधि नहीं थी कि गरुड़को सौभरिऋषिका शाप है। इस भयसे उस कुण्डमें कालिय वास करता था, श्रीकृष्णचन्द्रने उस कुण्डसे निकालकर उसके प्राचीन स्थान रमणकद्वीपको भेज दिया * ॥ १२ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन कुण्डमें सुन्दर माला पहने हुए, केशरचन्दन चर्चित वस्त्र धारण किये, मणि रत्नोंसे दीप्त सुवर्णके गहने पहने दहमेंसे निकले ॥ १३ ॥ तब ब्रजविहारीको देखकर सब ब्रज-

तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ॥ अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥ कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम् ॥ महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ॥ प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे ॥ १४ ॥ यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव ॥ कृष्ण समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्धमनोरथाः ॥ १५ ॥ रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यनुभाववित् ॥ नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥

वासी खड़े हो गये, जैसे मृतक शरीरमें प्राण आनेसे इन्द्रियां चैतन्य हो जाती हैं उसी प्रकार आनंदसे पूर्णचित्त हो दौड़कर सब ब्रजवासी हृदयसे लगा-लगाकर मिले और विरहानलका जो ताप हृदयमें भड़क रहा था, वह सब शान्त हो गया ॥ १४ ॥ कुरुवंशावतंस राजा परीशित्! यशोदाजी, रोहिणी, नन्दजी तथा गोप गोपियोंको श्रीकृष्ण चन्द्रको आये हुए देखिके ऐसा आनंद हुआ कि मानो गये हुए प्राण फिर चले आए ॥१५ श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलरामजी घनश्यामको छातीसे लगाकर हँसकर मिले और गाय,

---

* शंका—क्या उस कुंडको कालिय नाग ही जानता था और कोई दूसरा सर्प कुंडको नहीं जानता था? इसका क्या कारण?

उत्तर—कालिय नाग नारदजीका चेला था, इसलिये नारदजीने कालियको कुंड बताया था कि तुझको कभी विपत्तिकाल पड़े तो तू कुंडमें चला जाना। उस कुंडमें गरुड़का बल नही चल सकेगा। इसलिये केवल कालियको ही उस कुंडका वृत्तान्त विदित था।

बछरे, बैलोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए जो और वृक्ष सूख गये थे वे सब हरे हो गये। तब सब ब्रजवासी बोले कि भाई बलराम ! तुम भी अपने वचनके पूरे ही निकले जो तुमने कहा था वैसे ही हुआ, अब घर चलनेकी क्या इच्छा है ? ॥ १६ ॥ उसी समय गुरु, पुरोहित, ब्राह्मण अपनी-अपनी पत्नियों सहित नन्दरायजी कहने लगे कि परमेश्वरने बड़ा अनुग्रह किया जो कालियनागका डँसा हुआ तुम्हारा पुत्र बच गया। यह बड़े मंगलका समय है ॥१७॥ इनके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको मणि रत्न आभूषण सहित गोदान दीजिये। हे राजन् ! उस समयकी बधाईमें नन्दरायजीने प्रसन्न होकर गायें और सुवर्णका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥ १८ ॥ धर्मशीला यशोदाजी भी बड़ी भाग्यवान् है, जिसका पुत्र कालके गालमें जाकर लौट आया, उसने अपने पुत्रको पाकर हृदयसे लगाय गोदमें बैठाकर वारंवार नेत्रोंसे

नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ॥ ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥ १७ ॥ देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ॥ नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदाऽदिशत् ॥ १८ ॥ यशोदाऽपि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ॥ परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकला मुहुः ॥ १९ ॥ तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्शिताः ॥ ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥ २० ॥ तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ॥ सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥ तत उत्थाय सम्भ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः ॥ कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥ ॥ २२ ॥

आंसू बहाने लगी ॥१९॥ हे राजन् ! भूख-प्याससे पीड़ित ब्रजवासी नष्ट हुए पुत्रको प्राप्त करके गौओं समेत संपूर्ण रात यमुनाके किनारे रह गये॥२०॥ गरमीकी ऋतु थी, आधीरातका समय था ठण्ढी-ठण्ढी पवन जो लगी तो सब ब्रजवासी पड़कर सो गये। तब सूखे वनको उस दावानल दैत्यने अग्निरूप बनकर जलाना आरंभ कर दिया और महाक्रोध करके सब ब्रजवासियोंको चारों ओरसे घेर लिया। उस समय पवनके वेगसे अनलकी ऐसी ज्वाला भड़कने लगी मानो चारों ओर सुमेरु पर्वत दिखाई दे रहा है॥ २१ ॥ सब पृथ्वी और आकाश लाल-लाल दीखने लगा, पशु-पक्षी व्याकुल होकर भागने लगे। जब महाकुलाहल हुआ तो सब ब्रजवासी घबड़ाकर जाग उठे

और पुकार-पुकारकर कहने लगे ॥२२॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे राम ! हे अत्यन्त पराक्रमी ! आप शीघ्र हमारी सहायता कीजिये, यह महाभयानक कृशानु हमको भस्म किये डालता है । हे संकटमोचन ! शीघ्र हमारी सहायता कीजिये; क्योंकि जब-जब हम लोगोंपर भारी भीड़ पड़ती है, तब-तब तुम ही सहायता किया करते हो। जैसे तृणावर्त, शकटासुर, बकासुर और अघासुरको मार हमारी रक्षा की वैसे ही अब भी हमारी रक्षा करो, हम सब आपके ही हैं ॥२३॥ हे प्रभो ! इस महाघोर कालरूप अग्निसे हम लोगोंको बचाओ। हे मित्र ! इस भयंकर अग्निमें जलनेसे भी नहीं डरते, केवल आपके चरणारविन्दके वियोगसे डरते हैं, उस आपके निर्भयपदको हम नहीं त्याग सकते ॥२४॥ इस प्रकार जगन्नाथ जगदीश्वर अनन्त शक्तिधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रजवासियों को व्याकुल देख उस भयानक

कृष्णकृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ॥ एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ॥ २३ ॥ सुदुस्तरान्नः स्वान् पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ॥ न शक्तुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४ ॥ इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥ तमग्निमपिबत् तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महा० दशमस्कन्धे पू० कालियनिर्यापणदावाग्निपानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥ अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥ १ ॥ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ॥ ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥ २ ॥

अग्नि को पान कर गये ॥२५॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां दावाग्निमोचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥ दोहा—अष्टादशमें ग्रीष्मसे, लक्षित सुखद वसन्त । हरिकी पाय सहाय कछु, हत्यो प्रलम्ब अनंत॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नरेन्द्र ! अग्निका पान किये पीछे श्रीवृन्दावनविहारी मनमें प्रसन्न होकर अपनी जातिके सब ब्रजवासियोंको साथ लिये ब्रजवासी जिनके चरित्र गाते चले आते थे, ऐसे श्यामसुन्दर गायोंके समूहोंसे शोभित ब्रजकी ओर पधारे॥१॥ गायोंके चरानेके बहानेसे अनेक प्रकारकी माया करके दोनों भाई ब्रजमें विहार करते थे, उसी अवसरमें ग्रीष्मऋतु आ गयी । यद्यपि वह समय देहधारियोंके लिये सुखदायक नहीं है ॥ २ ॥

परंतु तो भी वह ग्रीष्मऋतु भी वृन्दावनके गुणोंसे वसन्तऋतुके समान जान पड़ती थी, क्योंकि जहां साक्षात् श्रीवृन्दावनविहारीश्रीकृष्ण चंद्र भगवान् बलरामजीके साथ विराजते थे फिर भी वहां वसन्त न रहे ! बड़े आश्चर्यकी बात है । वहां तो सदा वसन्त रहना चाहिये वृक्षोंपर बारहों मास फल-फूल खिलते रहे, त्रिविध बयारि झकोरती रहे,आमोंकी डालियोंपर कोकिला कूकती रहे, भांति-भांतिके पक्षी मन भावनी सुहावनी बोलियाँ बोलते रहें, मोर शोर कर-कर चारों ओर झिगारते रहे और अनेक-अनेक प्रकारकी शोभा नित्यप्रति बनी रहे तो क्या आश्चर्य है ? क्योंकि जहां त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी विहार करें वहां भी यह शोभा न हो तो फिर कहां हो ॥ ३ ॥ जहां जलके झरनोंका ऐसा गम्भीर शब्द हो रहा था उस शब्दके सामने झींगरोंका शब्द सुनायी नहीं देता था और सदा झरनोंकी छींटोंसे

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः ॥ यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ॥ शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्द्रुममण्डलमण्डितम् ॥ ४ ॥ सरित्सरः प्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा ॥ न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥५॥ अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ॥ न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ॥ गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाणस्तत्र कृष्णो भगवान्बलसंयुतः ॥ वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥

हरे-हरे वृक्षोंके समूहोंसे वृन्दावन अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ॥४॥ वहां हरी-हरी घास ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी मानो हरे मखमलका बिछौना बिछ रहा है।उस वृन्दावनमें कहार, कञ्ज और उत्पल ये जो भांति-भांतिके कमल हैं,उनकी सुगन्धयुक्त नदी, सरोवर, झरनोंसे स्पर्श करके जो ठण्ढी-ठण्ढी पवन आती थी उससे वृन्दावनवासियोंको ग्रीष्मकी अग्नि और मार्त्तण्डका प्रचण्ड ताप नहीं सताता था ॥५॥ जहां अनेक नदियाँ हैं, जिनके तटपर पहुँचते ही जलकी तरंगोंसे टापुओंकी और किनारोंकी भूमिमें सजलताई आती है, उस पृथ्वीकी सजलताई और हरियालीको विषके समान भयंकर सूर्यकी किरणें नहीं सुखा सकती थीं॥६॥अनेक प्रकारके फूल जहां-तहां फूल रहे हैं, नाना प्रकारके जीव-जन्तु, पक्षी मीठी-मीठी बोलियाँ बोल रहे हैं ॥७॥ उस अनुपम वनमें श्रीकृष्णचंद्र भगवान् बलदेवजीको और

ग्वालबालोंको साथ लेकर बाँसुरी बजाते विहार करनेके लिये गाय बछड़ों सहित वृन्दावनको चले ॥ ८ ॥ बलराम श्रीकृष्णादिक ग्वालबाल, पत्र,मोरपुच्छ,गुच्छक माला, धातु अर्थात् गेरू, खड़िया, मनशिल हरतालसे शृङ्गार करके कभी नाचते थे,कभी गाते थे, और कभी परस्पर युद्ध मचाते थे ॥९॥ श्रीकृष्णचंद्र जब युद्ध करते थे और नृत्य करते थे उस समय कितने बांसुरी, करताल और शृङ्गी बजाते थे और कितने नयी-नयी रागिनी गाते थे, कितने उनके नाचकी बड़ाई करते थे ॥१०॥ हे राजन् ! देवता लोग गुप्त हो गोपोंका रूप धारण कर-कर श्रीकृष्ण और बलरामकी वारंवार इस प्रकार प्रशंसा करते थे, जैसे नट नटकी बड़ाई करते हैं ॥११॥ सब शिरपर बाल धारण किये श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई कभी चाई-माई खेलते, कूदते, कभी धक्का-मुक्की करते, कभी तालियां ठोंकते, कभी खैंचातानी करते और

प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ॥ रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ॥ वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥ गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः ॥ ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥ भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ॥ चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥ १२ ॥ क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ॥ शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥ १३ ॥ क्वचित् बिल्वैः क्वचित्कुम्भैः क्वचामलकमुष्टिभिः ॥ अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥

कभी मल्लयुद्ध करते इस प्रकार एकसे एक अद्भुत लीला करते थे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! कभी और दूसरे ग्वालबाल नाचते थे तो कृष्ण बलदेव दोनों भाई आप गाते थे और बाँसुरी बजाते थे और फिर उनकी प्रशंसा करते थे कि तुमने भला नृत्य किया ॥१३॥ कभी बेलके फल हाथमें लेकर दो-दो चार-चार एक साथ ही उछालते, कभी कुंभी वृक्षके फलोंको फेंकते थे, कभी आंवलेके फल मुरलीमें रख-रखकर फेंकते थे, कभी छोटे-छोटे फल हाथमें लेकर पूछते थे,जो बतला देते तो फल ले लेते और जो नहीं बतला सकते थे, तो वह फल हार जाते थे। पहले तो बलरामने श्यामसुन्दरके नेत्र बन्द किये, सब सखा भागकर चारों ओर छिप गये, तब बलदेवजीने कृष्णको छोड़ दिया और उनकी आंखे खोल दी जिसको कृष्ण पकड़कर लाते थे। बलदेवजी उसकी ही आंखें मीचते थे, कभी कुरंगके संग दौड़ते, कभी विहंगके

ढंगपर चलते थे ॥ १४ ॥ कभी सरिताओंके सोतेमें मेंढककी नाई कूदते और जो कोई कूदनेके समय पानीमें रपटकर गिर पड़ता तो सब सखा मिलके उसका हास्य करते थे। कभी वृक्षोंकी शाखाओंको पकड़-पकड़ कर झूलते थे और सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंके आभूषण बना-बनाकर पहनते थे, कोई-कोई सखा कहते थे भाई ! हमारी तो यह इच्छा है कि बलरामको तो राजा बनायें और घनश्यामको मन्त्री बनायें और हम सब प्रजागण बने और श्रीदामादिक ग्वालबालोंको सिपाही बनायें और जो-जो ग्वालिनी इस मार्गको दधि लेकर निकलें उनसे दान लें ॥१५॥ इस प्रकार राम-कृष्ण दोनों भाई जगतमें जो-जो खेल विख्यात हैं उन खेलोंको खेलकर प्रसन्न होते थे। कभी यमुनाजी

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ॥ कदाचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥१६॥ पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ॥ गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥ तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान् सर्वदर्शनः ॥ अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥१८॥ तत्रोपाहूयगोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित् ॥ हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥१९॥

नहाते, कभी गोवर्द्धनकी कन्दराओंमें घुस जाते, कभी कुञ्जोंमें विचरते फिरते थे। कभी वनमें आकर छिप-छिपकर विचरते, कभी सरोवरमें जलविहार करते और कभी कमल कुमुदिनीके फूल तोड़-तोड़कर कानोंमें पहनते थे ॥१६॥ इस प्रकार दोनों भाई ग्वालबालोंके संग वृन्दावनमें गायें चराते थे। कृष्ण बलदेवके हरनेके लिये कंसने प्रलम्बासुरको भेजा, उसने इनको सखाओंके साथ खेलता हुआ देख अपना रूप भी गोपका ही बनाकर इन ग्वालोंमें आ मिला ॥ १७ ॥ सर्वांतर्यामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जान लिया कि यह असुर आया और अपने मनमें उसके मारनेकी चिन्ता की, परंतु तो भी उसको मित्र बनाकर उसकी प्रशंसा की और कहा कि मित्र ! आप भले खेलके समय आ गये ❋ ॥ १८ ॥ आप तो सब खेल जानते ही हो। फिर सब सखाओंको बुलाकर कहा कि हे मित्रो ! हम बराबरकी दो टोली

❋ शंका–रावणादिक अनेक राक्षसोंको भगवान्ने मारा परंतु किसी राक्षसके मारनेमें ऐसी चिंता नहीं की जैसी छोटेसे प्रलम्बासुरके मारनेमें चिंता की। क्या कारण है जो उसके मारनेमें इतनी चिंता की।
उत्तर–प्रलम्बासुरकी मृत्यु ब्रह्माने शेषजीके हाथसे लिखी थी कि तू शेषके हाथसे मरेगा और किसी दूसरेके हाथसे नहीं मरेगा इस बातको भगवान् भली प्रकार जानते थे और यह भी जानते थे कि शेषके मनमें बड़ी दया है

बनाकर खेल खेलेंगे ॥ १९ ॥ बलराम और घनश्यामको दोनों टोलियोंका मुखिया बनाया और सबको यह वचन पुकार कर सुना दिया ॥ २० ॥ कि जो जीते वह हारेकी पीठपर चढ़े और हारा हुआ उसको अपनी पीठपर चढ़ाकर भाण्डीरवन तक उसी समय पहुँचा दे इस प्रकार चढ़ने-चढ़ानेवाले कई खेलोंको प्रारम्भ किया और परस्पर यह बात स्वीकार करली ॥ २१ ॥ इस प्रकार चढ़ते-चढ़ाते गायोंको चराते श्रीकृष्ण अपने थोकको लेकर भाण्डीरवनमें पहुँचे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जब बलरामजीकी ओर श्रीदामा और वृषभादिक जीत गये तब श्रीकृष्णचन्द्रकी ओरके उनको अपनी पीठपर चढ़ाकर ले गये ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब हार गये तब श्रीदामाको अपनी पीठपर

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ॥ कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन्रामस्य चापरे ॥ २० ॥ आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ॥ यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥ २१ ॥ वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ॥ भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥ रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ॥ क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥ उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ॥ वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः ॥ वहन् द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥ २५ ॥ तमुद्वहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः ॥ स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥ २६ ॥

चढ़ाया, भद्रसेनने वृषभको चढ़ाया और प्रलम्बासुरने रोहिणीनन्दन बलरामजीको अपनी पीठपर चढ़ा लिया ॥ २४ ॥ जब कि उस प्रलम्बासुरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बलवान् समझा तो बलदेवको ही भाण्डीरक वनकी ओरको लेकर अत्यन्त शीघ्रता सहित झपटा चला गया ॥२५॥ जब वह असुर पर्वतके समान बलदेवजीका भारी भार न उठा सका और पराक्रम उसका शिथिल हो गया तब इसने अपना असुरदेह धारण कर लिया, उस समय वह दैत्य सुवर्णके गहने पहने ऐसा शोभायमान दिखाई देता था जैसा चन्द्रमा सहित बादलमें बिजली

और उनके हृदयमें नम्रता है, कदाचित् दया करके शेषजी उसको न मारें और इस दुष्टको मारना अवश्य है. क्योंकि जो यह बच गया तो ग्वालबालेंको बहुत दुःख देगा, इसलिये अधिक चिन्ता की ।

दमक जाती है और बलदेवजी उस दैत्यके काले शरीरपर कैसे दिखायी देते थे जैसे कालीघटामें चन्द्रमा, बलदेवजीके कानोंके कुण्डल कभी-कभी दामिनीके समान दमक जाते थे। गलेका दुपट्टा जो झटका खाकर नीचेको लटक गया था वह ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्रका धनुष तन रहा है, गरमीके कारण उसकी देहसे स्वेद जो टपक रहा था वह ऐसा ज्ञात होता था मानो आकाशसे बुन्दधारा पड़ रही है ॥ २६ ॥ आकाशतक प्रकाशमान ऊँचे जिनके महाविकराल कालके समान लाल-लाल नेत्र मानो तत्काल ही ज्वालाको उगलेंगे, महा भयंकर बाढ़े-दाढ़े मानो धरी हुई बरछी है। बाल तांबेके सदृश लाल-लाल, भय कारीदोनों भुजदण्ड मानो ब्रह्माण्डके तोड़नेवाले हैं, कानोंमें कनककुण्डल, मस्तकपर मुकुटकी अद्भुत शोभा और उस असुरकी मनोहर कांति देखकर हल मूसलके धारण करनेवाले बलदेवजी अपने

निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे रत् प्रदीप्तदृग् भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ॥ ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥ २७ ॥ अथागतस्मृतिरभयो रिपुंबलो विहायसाऽर्थमिव हरन्तमात्मनः ॥ रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥ स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ॥ महारवं व्यसुरपतत् समीरयन् गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना ॥ गोपाः सुविस्मिता आसन् साधु साध्विति वादिनः ॥ ३० ॥

मनमें कहने लगे कि कैसा गोप है ? मेरा जी डरता है ॥ २७ ॥ पहले तो कुछ भयमाना परंतु पीछे सुध आ गयी कि यह तो असुर है, फिर भय त्याग बलदेवजीने जाना कि हमारे गोपोंसे अलग कर बलात्कार हमको लिये जाता है, तब तो अविनाशीने महाक्रोध करके इसके शीशमें एक मुष्टिक मारा, जैसे इन्द्रने वज्रसे पर्वतको मारा है ॥ २८ ॥ मुष्टिके लगते ही उसका शिर कच्चे भांडकी नाईं फूट गया, दांत टूट गये, मुखसे रक्तका वमन होने लगा, मानो रुधिरकी धारा बह रही है जिह्वा और नयन निकलकर बाहर आ पड़े, हाथ-पांव पसार दिये और बड़ा घोर शब्द कर मुख फैलाकर पृथ्वीपर गिर गया, जैसे इंद्रके वज्रके मारे पहाड़ पृथ्वीपर गिरते हैं ॥ २९ ॥ महाबलवान् बलदेवजीके

हाथसे प्रलम्बासुरको मरा हुआ देखकर विस्मित हो ग्वाल बाल कहने लगे हे भाई ! तुम दोनों बड़े वीर हो, हमसे तुम्हारी बड़ाई नहीं हो सकती, जहां-जहां हमपर विपत्ति पड़ती है, वहीं-वहीं आप सहायता करते हैं। भाई !तुम इस समय यदि न होते तो यह एक न एक लड़केको पकड़कर अवश्य ले जाता, ॥३ ॥ इतनी कथा कहकर श्रीशुकदेवजी बोले कि उस समय सब ग्वाल बाल और नंदलाल मिलकर बलदेवजीको आशीर्वाद देने लगे कि चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो, फिर प्रशंसा योग्य बलदेवजीकी प्रशंसा करने लगे और जैसे कोई मर कर लौट आता है, ऐसे बलदेवजीसे मिलकर प्रेममें मग्न हो गये ॥ ३१ ॥ पापी प्रलम्बासुरके मरनेसे देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ।

आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ॥ प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥३१॥ पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥ अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥३२॥ इति श्रीभा० म० द० पू० प्रलम्बासुरवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥ स्वैरं चरन्तो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम्॥१॥अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम् ॥ इषीकाटवीं विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ॥२॥

बलदेवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की और धन्यवाद देने लगे॥३२॥इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां प्रलम्बासुर वधनिरूपणं नाम अष्टादशोऽध्यायः॥१८॥दोहा-उन्निसवें अध्यायमें, मुञ्ज विपिनमें जाय । गोप गाय सब अग्निसे, क्षणमें लियो बचाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जब सब ग्वालबाल खेलमें लग गये तब उनकी गायें, बछड़े अपनी इच्छासे चरते-चरते हरी-हरी घासकी लालचमें आकर सघन वनमें चले गये ॥ १ ॥ वह अजा * अर्थात् ओसर गायें भैंसे उस वनसे चरती-चरती आगे धेनुकवनमें

---

* शंका-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको बकरीका पालना तथा भैंसका पालना अयोग्य है और शास्त्रमें भी इनका पालना अनुचित है, फिर कृष्णने बकरी और भैंसें क्यों पाली ? उत्तर-पंडित लोग बकरीका नाम अजा कहते हैं, परंतु गायकी बछियोंको भी कहते हैं और ओसर भी कहते हैं और मुनियोंने अजाका ऐसा अर्थ किया है कि, -बालक जिसके न हुए हो उसका नाम अजा है और एक बार ब्याई हुई गौको महिषी कहते हैं और इनसे अतिरिक्तका नाम गाय है । श्रीकृष्ण भगवान् सब बछिया और वृद्ध, युवा गायोंका पालन किया करते थे, कुछ बकरी भैंसोंका पालन श्रीकृष्णचन्द्र नहीं करते थे ।

चली गयीं और उसके आगे महाघोर मुञ्जवन है वहां चली गयीं क्योंकि वनमें चारों ओर दव जो लग रही थी उसकी गर्मीसे प्यासकी मारी घबड़ा रही थीं ॥ २ ॥ जब बलराम कृष्णादिक ग्वालबालोंने पशुओंको नहीं देखा तो मनमें अत्यन्त दुःखी हुए और जहां-तहां खोजने लगे परंतु पता कहीं नहीं लगा ॥ ३ ॥ फिर परस्पर विचार कर सब ग्वालबाल गायोंके खुरोंके चिह्नको और जो गायोंके दाँतोंसे कटा हुआ घास था, उसको देखते-देखते जहां-जहां होकर गायें गयी थीं वहां पहुँचे ॥ ४ ॥ मुञ्जवनमें घुस गये वहां जाकर मार्ग भूल गये। सीधा मार्ग अग्निसे रुक गया था, तब दुःखित हुई कुछ थोड़ीसी गायोंके समूहको देखा। भूखे और प्यासे ढूँढ़नेके खेदसे और भी घबड़ा गये, उन्होंने अपनी गायोंको घेरकर पीछेको लौटे ॥ ५ ॥ जो गायें इधर-उधर रह गयीं और दूर-दूर चरती थीं उनको मेघके

तेऽपश्यन्तः पशून् गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ॥ जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम् ॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् ॥ मार्गमन्वगमन् सर्वे नष्टाऽऽजीव्या विचेतसः ॥ ४ ॥ मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् ॥ संप्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥ ५ ॥ ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा ॥ स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥ ततः समन्ताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत क्षयकृद्वनौकसाम् ॥ समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान् महान् ॥ ७ ॥ तमापतन्तं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ॥ ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥

समान गंभीर वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उनका नाम लेलेकर बुलाया॥६॥तब सब गायें अपने-अपने नाम सुनकर हर्षित होकर रम्भाईं, इससे यह सूचित किया कि हम तुम्हारी मनोहर वाणीको सुनती तो हैं परंतु मार्गमें आग जो लगी है इसलिए तुम्हारे समीप आ नहीं सकतीं, मार्ग बड़ा विकट है ॥ ७ ॥ वहां बड़ी धूमधामसे धूमध्वजावाला अग्नि चारों ओर वनवासी जीवोंका जलानेवाला लग रहा था और पवनके वेगसे प्रचण्ड हो रहा था और महाप्रबल लपटोंसे चराचरको भस्म करता चला जाता था और धुँएके धुन्धकारसे सर्वत्र वनमें महाघोर अन्धकार छा गया था जीव, जन्तु, पशु-पक्षी, धुँएसे अन्धे होकर जहांके तहां जल-जलकर रह जाते थे। कोई

किसीको पूछता नहीं था। तब सब ग्वाल मृत्युके भयसे दुःखित हो बलदेवजी सहित श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर विनय करने लगे ॥ ८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण! हे महाबलवान् ! हे राम ! हे अनन्त पराक्रमवाले ! यह वनकी अग्नि हमको भस्म किये डालती है, अब शरणागतोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥९॥ हे कृष्ण ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हम तुम्हारे मित्र हैं, हमको ऐसा कठिन कष्ट दिखाना नहीं चाहिये क्योंकि हम इतने कष्ट सहने योग्य नहीं हैं, आप ही हमारे अधिष्ठाता हो और आपका ही हमको आश्रय है ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सब दुख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मित्रोंके दीनवचन सुनकर कहने लगे कि हे मित्रो ! भयभीत मत हो, अपनी अपनी आँखे मींच

कृष्ण कृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम ॥ दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥ नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसीदितुम् ॥ वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य कृपण बन्धूनां भगवान् हरिः ॥ निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥ तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ॥ पीत्वा मुखेन तान्न कृच्छ्राद् योगाधीशो व्यमोचयत् ॥१२॥ ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ॥ निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥ १३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायानुभावितम् ॥ दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम्॥१४॥गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः॥वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः॥१५॥

लो ॥ ११ ॥ उसी समय श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार सबने अपने-अपने नेत्र मूँद लिए, तब योगेश्वर भगवान्‌ने उस महाभयंकर अग्निको पानकर अपने प्यारे मित्रोंको महाकष्टसे बचाया ॥१२॥ जब उन्होंने नेत्र खोले तो फिर भांडीरवनमें आ गये और अपने आपको और गायोंको अग्निसे छूटा देखकर बहुत विस्मित हुए कि यह क्षणमात्रमें ही क्या अचम्भा हो गया ? ॥ १३ ॥ योगमाया का प्रभाव प्रगट दिखानेवाली अग्निके बचानेसे श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको देखकर सब गोप कहने लगे कि श्रीकृष्ण हमारे समान मनुष्य नहीं हैं, देवता जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ जब जाना कि सन्ध्या समय हुआ तब बलरामजी सहित श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन मंद-मंद

भा०द.पू.
॥८३॥

चालसे गायोंको लिए बांसुरी बजाते गोपोंसे स्तुति कराते व्रजमें आये॥ १५ ॥ जब ग्रामके समीप आ गये तब मुरलीधरने मुरली बजायी, मुरलीकी ध्वनि सुनते ही सब व्रजरानी अपने-अपने घरोंका काम तजकर मार्गमें आकर खड़ीं हो गयीं और गोपीवल्लभका दर्शन करते ही गोपियोंको परमानन्द प्राप्त हुआ और हृदयमें ठण्डक हो गयी, क्योंकि विना श्यामसुन्दरके देखे एक-एक क्षण सौ-सौ युगके समान व्यतीत होता था॥१६॥इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां दावाग्निपानं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥ दोहा–कहौं बीस अध्यायमें, पावस शरदानन्द। जो जो कछु लीला करी, राम गोप नँदनंद॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र बलरामने अग्निसे जो सब ग्वालबालोंको बचाया और प्रलम्बासुरको मारा; यह अद्भुत कर्म गोपोंने स्त्रियोंसे कहा॥१॥ और

गोपीनां परमानन्दः आसीद् गोविन्ददर्शने॥ क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत्॥ १६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे श्रीकृष्णकृतदावाग्निपानं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ ॥१९॥ श्रीशुक उवाच॥ तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः॥ गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च॥१॥ गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः॥ मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ॥ २॥ ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा॥ विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला॥ ३॥ सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः॥ अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ॥ ४॥ अष्टौ मासान्निपीतं यद् भूम्याश्चोदमयं वसु॥ स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते॥५॥

बड़े-बड़े वृद्ध गोप, गोपी यह बात सुनकर आश्चर्य करने लगे और श्रीकृष्णको मुख्य देवता समझा॥ २ ॥ जब ग्रीष्मऋतुने संसारके जीवोंको अधिक सताया, जब संसारीजीवोंको दुःखी देख पावस प्रचण्ड अपने बलके घमण्डमें भरा, मार्तंडके प्रकाशको दबाता, चारों ओर धूम धाम मचाता, मेघोंका धौंसा बजाता, बादलका दल संग लिये युद्धका सामान किये चढ़ आया। आकाशमें गड़गड़ाहट शब्द होने लगा॥ ३ ॥ दामिनी दमकने लगी, बादल गर्जने लगे, घनमें श्याम घटा छा गयी, सूर्य चन्द्रमा तारागणोंका प्रकाश आच्छादित हो गया। उस समय आकाश ऐसा शोभायमान जान पड़ता था, जैसे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जीव आच्छादित हो रहा है। यह त्यागनेके योग्य दृष्टांत है, प्राणीको ऐसा नहीं चाहिये कि गुणोंसे आवृत हो जाय॥ ४ ॥ जैसे आठ महीने तक पृथ्वीका जलरूप द्रव्य

भा० टी०
अ० २०

सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे सोखते हैं और वर्षाऋतु आने पर बरसाते हैं, ऐसे ही राजाको भी चाहिये कि सुकालमें प्रजासे करले और अकालमें उनको अन्न धन देकर पालन करे। यह ग्रहण करने योग्य दृष्टांत है, राजाको ऐसा ही करना योग्य है ॥ ५ ॥ प्रबल पवनकी झकोरसे बड़े-बड़े मेघ बिजली जिनमें चमकें; विश्वको तप्त देख पुष्टि करनेवाले जीवन (जल) बरसाने लगे। जैसे दयावान् पुरुष दुःखी जनोंको देखकर उनको सुखी करनेके लिये दया करके अपने प्राणतक दे देते हैं, वैसे ही बड़े मेघ अपने बिजली रूप नेत्रोंसे संतप्त विश्वको देखकर पवनसे चलायमान हो जल बरसाते हैं, यह ग्रहण करने योग्य दृष्टांत है, महात्मा पुरुषोंको ऐसा ही करना चाहिये ॥ ६ ॥ पृथ्वी ग्रीष्मऋतुकी धूपसे अत्यन्त तप्त होकर जो सूख गयी थी, इन्द्रने जल वर्षाकर उसको सींचा तो फिर वर्षाऋतुमें फूली और वृक्षोंपर भांति-भांतिके फूल खिल आये और फल लग गये, ऐसे ही सकाम पुरुष धनकी अथवा पुत्रकी इच्छा करके तप करता है,

तडित्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः ॥ प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥६॥ तपः कृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही ॥ यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ॥७॥ निशामुखेषु खद्योतास्तमसाभान्ति न ग्रहाः ॥ यथा पापेन पाषण्डा नहि वेदाः कलौयुगे ॥८॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः ॥ तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्-ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥

तब पहले तो उसका देह दुर्बल हो जाता है फिर तपका फल मिलनेसे उसका शरीर जैसेका तैसा हो जाता है। यह त्यागने योग्य दृष्टांत है, पुरुषको उचित है कि, सकाम तप न करे ॥७॥ वर्षाऋतुमें सन्ध्या समय खद्योत (पटबीजन) प्रकाश करते हैं, तारागण प्रकाश नहीं करते। जैसे कलियुगमें पापके प्रभावसे पाखंडमार्ग चमकते रहते हैं, और वेदमार्ग अस्त हो जाते हैं, यह त्याज्य दृष्टांत है, चतुर पुरुषोंको ऐसा नहीं चाहिए जो पाखंडमार्गमें प्रवृत्त हों॥ ८ ॥ वर्षाऋतुमें मेघका गर्जना सुनकर मेंढक बोलने लगते हैं जैसे विद्यार्थी गुरुके सम्मुख मुख बन्द किये चुप बैठे रहते हैं। जब नित्य नैमित्तिक कर्मसे निश्चिन्त होकर बोलते हैं, तब शिष्य अपना पाठ लेकर पढ़ते हैं यह ग्राह्य दृष्टांत है कि विद्यार्थियोंको यही चाहिए कि गुरु जब अपने कार्यसे निश्चिन्त हो जाय और वह कहे तब आप अपना पाठ पढ़ें॥९॥

क्षुद्र नदियां जिनका जल थोड़े ही दिनोंमें सूख जाता है, वर्षाऋतुमें जब अधिक जल वर्षता है तब अपनी मर्यादाको छोड़-छोड़कर वे चारों ओरको उफनने लगती हैं, जैसे अजितेंद्रिय पुरुष का मन, धन और ऐश्वर्य पाकर खोटे मार्गोंकी ओरको चलता है और सब ठौरको पांव फैलाता है । यह त्याज्य दृष्टांत है ऐसा नहीं चाहिए जो कुमार्गमें अपने मनको लगावे ॥ १० ॥ वर्षाऋतुमें हरी-हरी घास उत्पन्न होनेसे लाल-लाल वीरबहूटियोंके फिरनेसे उच्छिलीन्ध्र (छत्रिका) जो चौमासेमें छत्रके आकार पृथ्वीमें उत्पन्न होती हैं, उनके फूलनेसे और सुन्दर सुन्दर वृक्षोंसे पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी जैसे राजाकी सेना चित्र-विचित्र रंगसे सजी हुई छत्रछायावाली दिखायी देती है । यह ग्राह्य दृष्टांत है, राजाओको ऐसा ही चाहिए, जो हरे लाल मखमलके नये-नये बिछौने बिछायें और

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ॥ पुंसो यथाऽस्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः ॥ १० ॥ हरिता हरिभिः शष्पै रिन्द्रगोपैश्च लोहिता ॥ उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥ ११ ॥ क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ॥ धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥१२॥ जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ॥ अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥१३॥ सरिद्भिः संगतः सिन्धुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ॥ अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥१४॥

श्वेत-श्वेत डेरे तम्बू तान दें । ॥ ११ ॥ वर्षाऋतुमें हरे-हरे धानोंके खेतोंको देख-देखकर किसानोंका चित्त आनंदित होता था और लाभ हानि दैवाधीन है, इस बातको असत्य समझकर जिन लोगोंने अन्नसंग्रह किया था, उनको क्लेश हुआ । यह त्याज्य दृष्टांत है,क्योंकि ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जिसमें सबका बुरा चिन्तन करना पड़े ॥ १२ ॥ वर्षाऋतुमें जलाशयके रहनेवाले जीव नये जलके सेवन करनेसे सुन्दर स्वरूपवान् हो जाते हैं, जैसे हरिभगवान्‌का सेवन करनेसे हरिजन सुन्दर स्वरूपको पाते हैं। यह ग्राह्य दृष्टांत है, मनुष्यको ऐसा ही चाहिये॥१३॥वर्षाऋतुमें समुद्रमें नदी आकर मिल गयीं और पवनके चलनेसे तरंगें उठने लगीं उस समय समुद्रका जल चलायमान हो गया जैसे चित्त विषयवासनामें और काममें चलायमान हो जाता है। यह त्याज्य दृष्टांत है, योगियोंको ऐसा नहीं

चाहिये, जो विषयवासनामें चलायमान हो जायँ ॥ १४ ॥ वर्षाऋतुमें मेघोंकी बुंदधार पड़नेसे पर्वत किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं मानते; वरन् धुलधुल कर उनकी शिलायें स्वच्छ और उज्ज्वल हो जाती हैं। जैसे जिन मनुष्योंके मन भगवान्में लग रहे हैं, उनके ऊपर कैसा भी कष्ट पड़े अर्थात् पुत्र मर जाय, धन लुट जाय, तनु दुर्बल हो जाय, परन्तु वह कष्टको कुछ नहीं मानते, बरन् यह कहते हैं कि विपक्षियोंसे पीछा छुटा, यह ग्राह्य दृष्टांत है। ऐसे ही मनुष्योंको चाहिये कि विपत्तिमें व्याकुल न हों ॥ १५ ॥ वर्षाऋतुमें तृण और घासके बढ़ जानेसे मार्ग ढक गये और संदिग्ध (सन्देह युक्त) होगये, अर्थात् यह न जान पड़ता था किस ग्रामका कौनसा मार्ग है, जैसे कि ब्राह्मण एक वार वेद पढ़कर पुस्तक बांधकर रख देते हैं और अभ्यास छोड़ देते हैं फिर बहुत दिन उपरांत पुस्तकको खोलकर देखते हैं तो

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ॥ अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥१५॥ मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ॥ नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥ १६ ॥ लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ॥ स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥

उनको अनेक प्रकारके सन्देह उत्पन्न होते हैं। यह त्याज्य दृष्टांत है कि ब्राह्मणोंको ऐसा नहीं चाहिए, जो पढ़नेका अभ्यास छोड़ दें, नहीं प्रातःकाल उठकर अपना नित्यकर्म करें ॥१६॥ लोगोंके परमहितकारी मेघ हैं, उनमें चलायमान चपला क्षणमात्रको स्थिर नहीं रहती, कभी किसी बादलमें चमकती है, कभी किसी बादलमें चमकती है, जैसे ज्ञानी पुरुषोंमें व्यभिचारिणी स्त्री स्थिर होकर नहीं बैठती; कभी किसीके घर कभी किसीके घर, अर्थात् एक पुरुषके घर नहीं ठहरती। यह ग्राह्य दृष्टांत है कि कभी भूलकर भी व्यभिचारिणी स्त्रीका विश्वास न करे

* शंका—संसारमें जो गुणी जन हैं; सो अब अपनी स्त्रियोंके संग दुःख सुख गृहस्थीमें भोगते हैं परंतु ऐसा किसी गुणीको नहीं सुना कि, उसको त्याग दिया हो ! फिर शुकदेवजीने क्यों कहा कि, गुणी प्राणीमें स्त्री बहुत समयतक नहीं ठहरती, जैसे आकाशमें बिजली अधिक कालतक नहीं ठहरती यह शंका है।

उत्तर—"स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः" इसः श्लोकमें शास्त्रके जाननेवाले मुनियोंने कामिनीका स्त्री अर्थ नहीं किया, संसार के सुखकी तृष्णाकी जो अधिक प्रीति है सोई कामिनी है सो तृष्णाकी बहुत प्रीतिरूप कामिनी गुणी पुरुषों में बहुत कालतक नहीं ठहरती, बहुत कालतक मूर्खोंमें ठहरती है, ऐसा अर्थ श्रीशुकदेवजीने किया है।

॥ १७ ॥ वर्षाऋतुमें गर्जन शब्दके गड़गड़ाहटवाले बादल आकाशमें प्रत्यञ्चा (रोदा) विना इन्द्रका धनुष शोभायमान दिखाई देता है, जैसे गुणोंके गम्भीर शब्दवाले प्रपञ्चमें आत्मा निर्गुण है तो भी अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता है। यह ग्राह्य दृष्टान्त है, पुरुषको चाहिये कि ऐसे सुन्दर निर्गुण पुरुषका ध्यान करे ॥१८॥ वर्षाऋतुमें अपनी चांदनीसे प्रकाशमान जो मेघ है, उनसे आवृत होकर चन्द्रमा शोभाय मान नहीं दीखता, अर्थात् मलिनसा दिखाई देता है, जैसे आत्मासे प्रकाशमान अभिमानसे आच्छादित पुरुप अपने मनमें कहता है कि मैं ही ज्ञानी हूँ, मैं ही दानी हूँ, मैं ही शूरवीर हूँ, मैं ही रणधीर हूँ, मैं पंडित हूँ, मैं ही सर्वज्ञ हूँ, यही उसमें मलिनता है, यह त्याज्य दृष्टांत है पुरुषको चाहिये कि अहंकार न करे ॥ १९ ॥ वर्षाऋतुमें ग्रीष्मके तपे हुए मोर मेघोंका शुभागमन देख उनकी प्रशंसामें मनोहर शब्द करते थे जैसे घरमें सन्तप्त हुए वैराग्यवान् पुरुष महात्मा पुरुषोंके आनेसे हर्षित हो मनोहर वाणीसे उनका

धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ॥ व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान् पुरुषो यथा ॥ १८ ॥ न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ॥ अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः ॥ गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनागमे ॥२०॥ पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन् नानात्ममूर्तयः॥ प्राक् क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया॥ २१ ॥ सरस्स्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरङ्गापि सारसाः ॥ गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥

आदर-सत्कार करते हैं। यह नहीं कि हम ही भूखे मरते हैं, इनके लिये कहांसे लायें ॥२ ॥ वर्षाऋतुमें गरमीसे तपे हुए देवतालोग वृक्षरूप धारण किये अपनी मूलसे जल पी-पीकर प्रफुल्लित हो हरे-हरे लाल-लाल नवीन पल्लवोंसे समृद्धिमान् हो रहे हैं, जैसे तपस्या करनेसे मनुष्योंका देह प्रथम तो दुर्बल हो जाता है फिर सुन्दर सुख भोग करनेसे और पुष्टिकारक भोजन मिलनेसे उनका शरीर लाल हो जाता है,यह त्याज्य दृष्टान्त है। मनुष्योंको चाहिये कि खाने-पीनेके लिये तप न करें ॥ २१ ॥ वर्षा ऋतुमें कांटे और कीचमें संयुक्त किनारेवाले घरोंमें चकवी चकवे और सारस वास करते हैं, जैसे अनेक प्रकारके कर्म करनेकी पीड़ासे घरोंमें विषयी पुरुष वास करते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्त है। मनुष्यको ऐसा नहीं चाहिये कि जो सदा घरमें ही शिर दिये पड़ा रहे नहीं, कुछ-कुछ भगवान

वासुदेवका भी भजन करे, जिसमें लोक और परलोक दोनों सुधरे ॥ २२ ॥ वर्षाऋतुमें जैसे इन्द्रके जल बरसानेसे नदियोंके जलका प्रवाह पुलोंको तोड़ता-फोड़ता चला जाता है और खेतोंकी मर्यादा भी टूट गयी, जैसे पाखण्डियोंके शब्द सुनकर कलियुगमें वेदमार्ग टूट जाते हैं। और धर्म-कर्म दूर हो जाते हैं। यह त्याज्य दृष्टान्त है मनुष्य पाखंडियोंके शब्द सुनकर वेदमार्गको न त्याग दे ॥ २३ ॥ वर्षाऋतुमें मेघगण पवनकी प्रेरणासे प्राणियोंपर अमृतके तुल्य जल बरसा रहे थे, जैसे समय-समयपर राजा पुरोहितकी प्रेरणासे दान-पुण्य करते रहते हैं। यह ग्राह्य दृष्टान्त है, पुरोहित गुरुजनोंको ऐसा ही चाहिये कि जो प्रेरणा करके यजमान और शिष्योंसे दान करायें और दीन पुरुषोंकोदिलायें॥ २४ ॥ इस प्रकार चारों ओर जहाँ आम, जामुन, खजूर जिस वृन्दावनमें पक रहे थे और उनकी शाखायें पृथ्वीकी ओर ऐसी झुक रही थीं जैसे परोपकारी पुरुष धन पाकर नीचेको झुकते हैं और फूलजो टपक-टपककर सुधासम वसुधापर गिरते थे

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे॥ पाषण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥ व्यमुञ्चन् वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः ॥ यथाऽऽशिषो विश्पतयः कालेकाले द्विजेरिताः ॥२४॥ एवं वनं तद् वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् ॥ गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥२५॥ धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ॥ ययुर्भगवताऽऽहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥ २६ ॥ वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ॥ जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥२७॥

ऐसा जान पड़ता था मानो दानी द्रव्यका दान कर रहे हैं और खजूरके वृक्ष ऊँचे-ऊँचे ऐसे विदित होते थे जैसे रणभूमिमें शूर खड़े हैं, ऐसे शोभायमान वनकी शोभा देखकर श्रीकृष्ण बलरामसमेत ग्वालबालोंको संग ले उस वनमें गायें चरानेके लिये गये ॥ २५ ॥ बड़े-बड़े आयनोंके भारी-भारी भारसे हौले-हौले चलनेवाली गायें जब श्रीकृष्णचन्द्रने नाम ले-लेकर प्रीतिसे बुलायीं, तब स्तनोंसे जिनके दूध टपक रहा है वे सब गायें दौड़कर वृन्दावनविहारीके सन्मुख आकर खड़ी हो गयीं ॥ २६ ॥ वनवासियोंको श्रीकृष्णने देखा, मधु और मकरन्द टपकानेवाली वृक्षोंकी लताओंमेंसे रस टपकता था। गोवर्धन पर्वतसे जलकी धारायें बहती थीं। कहीं-कहीं झरनोंसे जो पानी गिरता था उस पानीके शब्दसे ऐसा ज्ञात होता था मानो वृक्ष परस्पर बातें कर रहे हैं। निकटही गुफायें थीं उनको देख-देख ग्वालबाल और नन्दलाल

प्रसन्न होते थे ॥ २७ ॥ कहीं-कहीं ऐसी वृक्षोंकी खखोडल और पर्वतकी कन्दरा थी कि जिनमें पानीकी बूँद भी नहीं जाती थी, जब भारी वर्षा होती थी तो उन्हींमें घुसकर बैठ जाते थे और वनके फल-फूल खा-खाकर प्रसन्न होते थे ॥ २८ ॥ इतनेमें यशोदाने दोपहरका समय देख अपने मनमें समझा कि मोहन प्यारेको भूख लगी होगी, यह विचार कई एक ग्वालिनियोंके हाथ दही, भात, माखन मिश्री और अनेक प्रकारके व्यञ्जन थालोंमें धर-धरकर श्रीकृष्ण बलरामके पास भेज दिये, सो श्रीकृष्ण सखाओं समेत यमुनाके निकट ऐसे रमणीक घाटपर गये जहां शिलाके ऊपर ही भात धरकर भोजन करने योग्य गोपोंको और बलदेवजीको संग लेकर भोजन करने लगे और उसके स्वादकी सराहना कर करके कभी सखाओंको देते थे और कभी उनके हाथमेंसे ले लेते थे ॥ २९ ॥ उस समय बैल बछड़े पेट भर

क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ॥ निविश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥ २८ ॥ दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिकं॥संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः ॥२९॥ शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ॥ तृप्तान् वृषान् वत्सतरान् गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥३०॥ प्रावृट्छ्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् ॥ भगवान् पूजयांचक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवं निवसतोस्तस्मिन् रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शरत् समभवद् व्यभ्रा स्वच्छयाम्ब्वपरुषानिला ॥३२॥ शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ॥ भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥३३॥

जानेसे हरी-हरी घास पर बैठे आँखें मीचे जुगाल कर रहे थे और गायें भी दूधके भारसे थककर बैठी जुगाल कर रही थीं रामकृष्ण उन गायोंको देख-देखकर प्रसन्न होते थे और भोजन करते जाते थे और वारंवार परस्पर कहते थे कि पावसके समान संसारमें सुख देनेवाली और दूसरी ऋतु नहीं है ॥ ३० ॥ सब प्राणियोंकी आनन्दकारी और प्रेम प्रीतिकी बढ़ानेवाली पावसमें वृन्दावनकी शोभा और अपनी शक्तिसे युक्त वर्षा ऋतुको देखकर वृन्दावनविहारी वृन्दावनकी प्रशंसा करने लगे कि देखो ! वृन्दावनमें वर्षाऋतु कैसी अनुपम शोभा दे रही है॥ ३१ ॥ इस प्रकार ब्रजमें श्यामसुन्दर और बलरामके वास करते-करते बादलोंसे रहित निर्मल जल बहानेवाली और मन्द-मन्द त्रिविध पवन चलानेवाली परम सुखदाई शरद ऋतु आगयी ॥ ३२ ॥ शरदऋतुमें कमल उत्पन्न होनेसे जल निर्मल और शीतल

हो गया, जैसे योगीजनोंके चित्त योगसे भ्रष्ट होकर फिर योगका अभ्यास करनेसे शुद्ध हो जाते हैं। यह ग्राह्य दृष्टांत है, कि योगियोंको यही चाहिए कि चित्तको शुद्ध करके योगाभ्यास करें ॥ ३३ ॥ वर्षाऋतुमें आकाशमें मेघ रात-दिन गर्जते रहते हैं, शरदऋतुमें उनका गर्जना बंद हो गया। वर्षाऋतुमें बहुतसे मनुष्य मिलकर एक स्थानमें रहते हैं, शरदऋतुमें सब अलग-अलग हो गये। वर्षाऋतुमें ठौर-ठौर कीच होती है, शरदऋतुमें सब भूमि सुहावनी हो गई। वर्षा ऋतुमें जल गँदला और मैला हो जाता है, शरदऋतुमें जल स्वच्छ और शीतल हो गया। जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी इन चारों आश्रमोंके भगवान्की भक्ति होनेसे सब क्लेश दूर हो जाते हैं। ब्रह्मचारियोंके लिए शिष्य तब ही तक जल भरा करते हैं, जबतक भक्ति प्राप्त नहीं होती। भक्ति होनेके पीछे जल भरनेका परिश्रम नहीं रहता। जब शिष्यको भक्ति प्राप्त हो जाती है तब उससे गुरु भी सेवा नहीं कराते। इस प्रकार बादलका गर्जना शरदऋतुमें बंद हो गया। गृहस्थके

व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ॥ शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ॥ ३४ ॥ सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ॥ यथा त्यक्तैषणः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥ गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ॥ यथा ज्ञानमृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥

हृदयमें जबतक भक्ति उदय नहीं होती तबतक अपनी सन्तानादिकमें मोह ममता रखता है और भक्ति होनेके पीछे एकांत वास करनेकी इच्छा करता है और सबका सङ्ग छोड़ देता है; ऐसे ही प्राणियोंका जो एक स्थानपर वास है, वह छूट गया। वानप्रस्थको जबतक भक्ति प्रकट नहीं होती तबतक उसका मन मलिन रहता है, भक्ति होनेके पीछे जैसे उसकी मलिनता दूर हो जाती है ऐसे ही पृथ्वीकी कीच सूख गयी और सुहावनी हो गयी। संन्यासीका कामवासनारूप मल श्रीकृष्ण वासुदेवमें भक्ति होनेसे दूर हो जाता है, ऐसे ही शरदमें जलका मल दूर हो गया ॥ ३४ ॥ शरदऋतुमें मेघ अपना सर्वस्व त्याग श्वेत-श्वेत रुईके फाहासे दिखायी देते हैं, जैसे धन, दारा, पुत्र और विषय वासनाके दूर होनेसे शांतस्वभाव मुनीश्वरलोग शोभायमान जान पड़ते हैं। यह ग्राह्य दृष्टांत है; मुनिलोगोंको यही चाहिए कि सब वासनाओंको दूर करें ॥ ३५ ॥ पर्वत अपना कल्याणरूप निर्मल जल कहीं-कहीं को तो झरनोंसे बहाते हैं और कहीं को नहीं भी

बहाते, जैसे ज्ञानी पुरुष समय-समयपर अपना ज्ञानरूप अमृत सुपात्रको देखकर देते हैं, और कुपात्रको नहीं देते। यह ग्राह्य दृष्टान्त है, विवेकी पुरुषको यही चाहिये कि सुपात्र कुपात्रको देखकर उपदेश करे ॥ ३६ ॥ शरदऋतुमें सरोवरमें थोड़े जलके रहनेवाले जीव-जन्तु नित्य-नित्य घटते जलको नहीं जान सके, जैसे अज्ञानी कुटुम्बी पुरुष घरोंमें रहकर अपनी नित्य क्षीण होती हुई आयुर्बलको नहीं जानते। यह त्याज्य दृष्टान्त है, कुटुम्बी लोगोंको चाहिये कि अचेत न हो कुछ परमेश्वरकी ओरका भी चिन्तन करें ॥ ३७॥ शरदऋतुमें थोड़े जलमें रहनेवाले जलचर सूर्यके तेजसे जल गरम होनेसे दुःखी हो गये, जैसे कुटुंबी पुरुष इन्द्रियोंके वशमें न रहनेसे दरिद्रता और कृप-णतासे रहकर कष्ट भोगते हैं। यह त्याज्य दृष्टान्त है, जो घरमें क्लेश हो तो उस घरको त्याग दे ॥ ३८ ॥ शरदऋतुमें सहज-सहजमें

नैवाविदन् क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ॥ यथाऽऽयुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥३७॥ गाधवारिचरास्तापम-विन्दन् शरदर्कजम् ॥ यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ शनैश्शनैर्जहुः पंकंस्थलान्यामं च वीरुधः॥ यथाऽहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥ निश्चलाम्बुरभूत तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ॥ आत्मन्युपरते सम्यग् मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥ केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः ॥ यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजांस्तापान्भूतानामुडुपोऽहरत् ॥ देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥

सब स्थानोंकी कीच सूख गयी, लताओंका सब कच्चापन जाता रहा। जैसे मिथ्या देह गेहमें सज्जन पुरुष सहज-सहजमें मायाकृत अहंता ममताको त्याग देते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, ज्ञानी पुरुषको यही चाहिये कि अभिमानका त्याग कर दे ॥३९॥ शरदऋतुके आनेसे समु-द्रका जल निर्मल हो गया, जैसे आत्मज्ञान होनेसे महात्मा मुनियोंका पढ़ना-लिखना सब छूट जाता है। यह ग्राह्य दृष्टान्त है, आत्माके जाननेके पीछे लिखने-पढ़नेका क्या प्रयोजन ? ॥४०॥ शरदऋतुमें खेतवाले किसान लोगोंने जहां-तहां भारी-भारी मेंड़े बाँध-बाँध कर पानी रोक लिया जैसे योगिराज इंद्रियरूप द्वारसे जाते हुए ज्ञानको रोक लेते हैं इंद्रियोंको रोककर फिर मनको रोकते हैं। यह ग्राह्य दृष्टान्त है, योगियोंको यही चाहिये कि ज्ञानको हृदयसे निकलने नहीं दें, अर्थात् इंद्रियोंको रोककर रखें ॥४१॥ शरदऋतुमें सूर्यकी

किरणोंके तापको रात्रिके समय चन्द्रमाने उदय होकर दूर कर दिया जैसे ज्ञान होनेके पीछे देहके अभिमानरूप तापको शांतिरूप चन्द्रमा उदयहोकर हर लेता है, ऐसे ही ब्रजवासियोंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र मुकुन्दने दूर कर दिया ॥४२॥ शरदऋतुमें मेघ दूर हो गये, आकाश निर्मल हो गया, तारागणोंके प्रकाशसे आकाश शोभा पाने लगा, जैसे वेदके अर्थको दिखानेवाले सत्त्वगुणी चित्तके शुद्ध होनेपर शोभायमान जान पड़ते हैं। यह ग्राह्य दृष्टांत है, वही चित्त सुन्दर और शोभायमान है जिसमें वेदके अर्थका ज्ञान है ॥ ४३ ॥ शरदऋतुमें समस्त मण्डलसे चन्द्रमा आकाशमें तारागणसहित शोभा देता है, जैसे पृथ्वीमें यदुपति श्रीकृष्णचन्द्र यादवों समेत शोभायमान जान पड़ते हैं, यह ग्राह्य दृष्टांत है, मनुष्योंको चाहिये कि जैसे चन्द्रमा आकाशमण्डलको प्रकाशित करता है, ऐसे ही शांतिरूप चन्द्रमासे

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ॥ सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥ अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ॥ यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥४४॥ आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम्॥ जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥४५॥ गावो मृगाः खगाः नार्यः पुष्पिण्यः शरदाऽभवन् ॥ अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥ उदहृष्यन् वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ॥ राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून् विना नृप ॥ ४७ ॥

हृदयको प्रकाशित करें ॥ ४४ ॥ शरदऋतुमें पुष्पवाटिकाओंके पुष्पोंका स्पर्श करके जो पवन चलता है, उसके स्पर्श करनेसे सब प्राणियोंके तनुका ताप दूर हो जाता है; जैसे गोपियोंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके स्पर्शसे दूर हो जाता है ! यह ग्राह्य दृष्टांत है, मनुष्योंको यही चाहिये कि भगवान्‌का स्पर्श करके सांसारिक तापोंको त्याग दें ॥ ४५ ॥ शरदऋतुमें गायें, हरिणी, पक्षिणी और स्त्रियाँ पुष्पवती हुई, उनके पति उनके पीछे-पीछे कामातुर हो फिर रहे थे, जैसे ईश्वरकी प्रसन्नताके लिए पुरुष योग, यज्ञ, जप, तप करते हैं, उनके पीछे फल आपसे आप लगे फिरते हैं ॥४६॥ शरदऋतुमें कुमुदिनीके सिवाय और सब प्रकारके कमल सरोवरोंमें फूलते हैं, जैसे चोरोंके सिवाय सब प्रजागण राजाके उदय होनेसे प्रफुल्लित रहते हैं। यह ग्राह्य दृष्टांत है, ऐसा कौनसा मनुष्य है, जो अपने स्वामीको देखकर

प्रसन्न न हो ॥ ४७ ॥ शरदऋतुमें ग्राम और नगरोंमें नवीन अन्नके भोजनसे वैदिक उत्सवसे और इंद्रियोंके पुष्टताकारक विवाहादिक लौकिक उत्सवसे तथा श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके क्रीडा करनेसे पृथ्वी अत्यंत शोभायमान दृष्टि आती थी ॥ ४८ ॥ वर्षाऋतुके थँमनेसे वणिक्, मुनीश्वर, राजा, ब्रह्मचारी ये शरदऋतुमें अपने-अपने कार्यमें लग गये, बनियें अपने-अपने व्यापारके लिये देश देशांतरोंको जाने लगे, साधु संन्यासी तीर्थयात्राओंके जानेका प्रबन्ध करने लगे, राजा लोग अपनी चतुरंगिणी सेना ले शत्रुओंके विजय करनेको चल दिये, ब्रह्मचारी विद्या पढ़नेके लिये पाठशालाओंको चलने लगे, जैसे मन्त्र और योगादिसे सिद्ध महात्मा आयुके बन्धनसे रुक रहे हों वह समय आनेपर दिव्य देह पाते हैं ॥४९॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां वर्षाशरदृतुवर्णनं नाम

पुरग्रामे ष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च महोत्सवैः ॥ बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥४८॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे ॥ वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० म० दश० पू० प्रावृट्शरद्वर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ॥ न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरस्सरिन्महीध्रम् ॥ मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥२॥ तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ॥ काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥

विंशोऽध्यायः ॥२०॥ दोहा–इक्किसमें वृन्दाविपिन, गये श्याम सुखधाम । वेणुगीत गोपीनको, वर्णत शालिग्राम ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! शरदऋतुमें निर्मल कमलोंकी सुगन्धयुक्त पवनवाले वृन्दावनमें, गाय-बछड़े और ग्वालबालोंको संग ले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनमें गये ॥१॥ फूली हुई वनकी पंक्तियोंके सौरभसे मतवाले भौंरे और पक्षियोंके समूहके शब्दसे सरोवर, नदी, पर्वत, गूँज रहे थे, ऐसे सुन्दर मनोहर वृन्दावनमें बलराम और ग्वालबालोंसहित जाकर मुरली बजाने लगे और गायें-बछरे चरनेको छोड़ दिये ॥२॥ प्रमादात्मक कामका प्रकाश करनेवाला वंशीका शब्द सुनकर कई एक ब्रजबाला श्रीकृष्णके पीछे अपनी सखियोंके सामने उनकी

प्रशंसा करने लगीं ॥३॥ हे महाराज ! जिस समय कुछ कहनेका प्रारम्भ किया, उसी समय मनमोहनी मनमोहनकी छबिका स्मरण हो गया । उस छबिका स्मरण होते ही कामदेवने उनके मन व्याकुल कर दिये, इसलिये उनसे श्यामसुन्दरकी कीर्तिका कुछ वर्णन नहीं हो सका ॥४॥ मोर पुच्छोंका मुकुट शीशपर धरके कछनी काछके कानोंमें कनेरके पुष्प धारण करके सुवर्णके सदृश पीतपट ओढ़कर कण्ठमें वैजयन्ती और वनमाला धारण कर नटवररूप बनाकर बांसुरीके छिद्रोंको अपने अधरामृतसे पूर्ण करते गोपोंके समूह जिनकी कीर्ति वर्णन करते हैं, वे श्रीवृन्दावनविहारी अपने चरणारविन्दोंके चिह्नसे रमणीक वृन्दावनमें गये ! नटवर वेष बनानेका आशय यह है कि तुमको नृत्य दिखानेके लिये मैंने यह वेष बनाया है और कनेरपुष्प कानमें धरनेका कारण यह है कि जब गोपियोंकी बात कानमें सुनाई

तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ॥ नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ॥ रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यंस्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥ इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ॥ श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥

न आये तो कानोंमें अत्यन्त सन्ताप होगा तब कानोंको शीतल करनेके लिये पुष्प धारणकिये हैं और पीताम्बर धारण करनेका कारण यह है कि राधा प्यारीका शरीर ऐसा ही पीतवर्ण है; इसको देखकर प्रीतमप्यारीके शरीरकी सुधि आती रहेगी । दूसरे प्यारीकासा पीतरंग मेरे हृदयसे लगा रहेगा और वैजयन्ती और मनमाला हृदयपर पड़े रहनेका अभिप्राय यह है कि प्यारीके वियोगका जो विरहानल है, उसे शान्त करती रहे, गोपियोंने चरणचिह्नयुक्त मनोहर बृन्दावन जाकर बृन्दावनमें प्रवेश किया ऐसा सुन्दर मनमोहनका मनमोहनरूप देख धैर्य धर जैसे-तैसे कर एकसे एक कहने लगीं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार सब जीवोंके मनको मोहनेवाली मनमोहनकी बांसुरीकी टेर सुनकर ब्रजबाला परस्पर उसकी प्रशंसा करने लगीं । प्रशंसा करती ही करती परमानन्द रूपके सागरमें मग्न हो मुरली मनोहरका मनसे

आलिंगन करती थीं ॥ ६ ॥ गोपी कहने लगीं-हे सखियो ! उन्हीं नेत्रवान् पुरुषोंके नेत्र संसारमें धन्य हैं और हम दूसरेको धन्यवाद नहीं दे सकतीं, जिन्होंने सखाओंसमेत गायोंको चराते, मुरली बजाते, प्रेम भरे कटाक्ष चलाते श्रीकृष्ण बलदेवका मुखारविन्द देखा है॥७॥ दूसरी सखी बोली कि, आमके पल्लव मोरपुच्छ फूलोंके गुच्छे (उत्पल) कमलोंकी मालाओंसे देदीप्यमान नीलांबर पीतांबरोंसे चित्र विचित्र वेष धारण किये, श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई ग्वालमण्डलीमें गाते हुए ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे जैसे रंगभूमिसे दो नर नाटक कर रहे हैं॥८॥ तीसरी गोपी बोली कि, हे सखियो ! इस बांसुरीने ऐसा कौनसा तप किया है ? कि जिसके पुण्यके प्रभावसे हमारे पीने योग्य अधरामृतके रसको यह आप ही अपनी इच्छा पूर्वक पी रही है । जिन सरोवरोंके जलसे इस बांसुरीके बांसोंको सींचा है,

गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ॥ वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालाऽनुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ॥ मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥८॥ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ॥ भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥ ९ ॥ वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ॥ गोविंदवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥

उन सरोवरोंमें कमल नहीं फूलते, मानो आनन्दसे रोमांच हो आये हैं और जिन वृक्षोंके वंशमें इस बांसुरीके बांस उत्पन्न हुए हैं, इनवृक्षोंमें मद नहीं टपकता, मानो आनन्दके आंसू बहाते हैं । क्यों ? वह अपने आपको धन्यवाद देते हैं कि धन्य हमारे भाग्य जो हमारे वंशके बासोंमें ऐसी बांसुरी उत्पन्न हुई कि जो आठों पहर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके मुखारविन्दसे लगी रहती है । जैसे श्रेष्ठ मनुष्य अपने कुलमें सुपुत्रको भगवान्‌का भक्त देखकर आनन्द मान नेत्रोंसे आंसू बहाते हैं, ॥ ९ ॥ चौथी सखी बोली कि, हे आली ! यह वृन्दावन सुरपुरसे भी अधिक पृथ्वीका यश विस्तार कर रहा है, धन्य है ! यह पृथ्वी, जिसपर ऐसा परमानन्ददायक वृन्दावन परमधाम है, जिसकी देवकीनन्दन श्रीकृष्णके चरणारविन्द धरनेसे और भी अधिक शोभा प्राप्त हुई । और इस वृन्दावनमें जिस समय

मुरलीमनोहरकी मुरलीका शब्द होता है, उसको मन्द गर्जनेवाली श्यामघटा जानकर मोर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं, उनका अनुपम नाच देखकर सब जीव-जन्तु निश्चल होकर बैठ जाते हैं, ऐसा परमानन्द किसी और दूसरे लोकमें भी सुना है ? कहीं नहीं, यह पूर्णानन्द वृन्दावनमें ही है ॥ १० ॥ पांचवीं सखी बोली कि, हे सजनी ! यह पशु जाति मूर्ख हरिणी भी धन्य हैं ? कि जो मुरलीका शब्द सुन अपने पतिके संग विचित्र वेष किये वृन्दावनविहारीके स्नेहकी चितवनसे सम्मान करती है और हमारे पति तो ऐसे निर्दयी हो गये कि हमको उनका दर्शन भी नहीं करने देते ॥११॥ छठी सखी बोली कि, हे प्यारी ! यह अद्भुत बात भी तो सुनो, कि स्त्रियोंके आनंदका देनेवाला श्यामसुन्दरका मनोहर रूप देखकर और उनकी बजाई बांसुरीकी मनोहर ध्वनि सुनकर विमानोंमें बैठ गमन करती हुई देवताओंकी स्त्रियाँ यद्यपि अपने पतियोंकी गोदीमें बैठी हैं, तो भी कामदेवके बाणोंके लगनेसे ऐसी व्याकुल हो गयीं कि उनके शिरके

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ॥ आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥ कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपवेषं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् ॥ देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूष-मुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ॥ शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशन्त्यः॥१३॥ प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ॥ आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥

बालोंमेंसे पुष्प गिरे जाते हैं और नीवी खुली जाती हैं, जब देवांगना ही मनमोहनके स्वरूपको देखकर मोहित हो गयीं तो फिर हम मोहित हो गयीं तो क्या आश्चर्यकी बात है ? ॥१२॥ श्रीकृष्ण प्यारे के मुखसे निकलते हुए बांसुरीके गीतरूप अमृतको गायें-बछड़े कानरूप पात्रोंसे ऊपरको उठाकर पीते हैं और श्रीकृष्णचन्द्रको दृष्टिसे आलिंगन करते, प्रेमके आंसू बहाते, चित्रके समान लिखेसे खड़े हैं बछड़ोंके मुखमें दूधके थन और गायोंके मुखमें घासके तृण मुखके मुखमें ही रह जाते हैं । ॥१३॥ हे माता ! इस वनमें जो पक्षी हैं, वे सब मुनीश्वर हैं, मनोहर पत्रवाले वृक्षकी शाखाओंपर बैठकर नेत्रोंको मुँह मौन साध श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहनप्यारेका दर्शन करते हैं और बांसुरीके मनोहर गीतोंको सुनते हैं क्योंकि मुनिलोग भी भगवान्के दर्शनके लिये काम कर्मको त्याग वेदकी शाखाओंके आश्रित

हो उनके विशालरूप कर्मोंका गुण ग्रहण कर सुखी हो मौन साध भगवान्‌के गुणानुवाद सुना करते हैं, इससे उनकी समतावाले ये पक्षी मुनिजन ही जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ चैतन्य जीवोंकी दशा जो कुछ थी वह तो थी ही, परंतु मुकुन्द भगवान्‌की बांसुरीकी टेर सुनकर नदियोंमें भी भँवर पड़ते हैं। उनसे यह सूचित होता है कि यह भ्रमर नहीं पड़ते, हमारे हृदयमें कामदेवके गढ़े पड़ते हैं, मानो जल स्तंभित हो आलिंगन करके आच्छादन करता है। ऐसे ही लहररूप हाथोंसे कमलके पुष्प भेंट ले लेकर मुरारी श्रीकृष्णचन्द्रके

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ॥ आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥१५॥ दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सहरामगोपैः संचारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम् ॥ प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाऽम्बुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥

चरणारविन्दको समर्पण करते हैं ❋ ॥ १५ ॥ बलदेवजीको और ग्वालबालोंको सङ्ग लेकर धूपमें ब्रजकी गायोंको चराते, मुरली बजाते, अपने प्यारे मित्र घनश्यामको देख श्याम घन उनपर छत्र छायाकर, नन्हीं-नन्हीं बूंदोंकी वर्षा करने लगे। क्योंकि सच्चा मित्र श्यामसुन्दर का मेघ ही है। देखो कृष्णका भी श्याम रंग और मेघोंका भी श्यामरंग, कृष्णके भी पीत वस्त्र और मेघोंके भी पीत बिजली, कृष्णके मुक्तामाल और मेघोंके बगपाँति, कृष्णकी मुरली गर्जे और मेघ आपही गर्जें, कृष्ण अमृतकी वर्षा करें, और मेघ जलकी वर्षा करें, कृष्ण

❋ दृष्टांत—चार भंगेड़ी नशेमें चूर होकर आपसमें कहने लगे कि राजाके आदमी कितने होंगे। एक रणधीरसिंह बोला-फलाने परगनेमें राजाके आदमी एक लाख हैं। दूसरा व्रजपालसिंह बोला—फलाने परगनेमें पन्द्रह लाख आदमी हैं। तीसरा सरदारसिंह बोला—कि फलाने परगनेमें राजाके पच्चीस लाख आदमी हैं। फिर चौथा बलवन्तसिंह बोला—फलाने परगनेमें पचास लाख आदमी हैं और नौलाख यहां हैं, सब एक करोड़१००००००० हुए। अब इनका खर्च विचारो। कि सालभरमें कुछ खजानेमें बचता है या नहीं ? एक बोला—पचास लाख तो फौजका खर्च होता है, दूसरा बोला—पच्चीस लाख महलमें खर्च है, तीसरा बोला—दश लाख इमारतमें उठता है, चौथा बोला—पन्द्रह लाख वस्त्र आभूषणमें खर्च होता है इस हिसाबसे खजानेमें कुछ नहीं बचता। यह बात राजाके दूत सुन रहे थे। राजकाजकी बात सुन राजाको परचा लिख दिया। राजाने मन्त्रीको बुलाकर खर्चका हिसाब पूछा तो सब उन्हींके कहनेके अनुसार ठीक निकला राजाने उनचारों भङ्गेड़ियोंको बुलाकर पूछा कि हमारे घरकी बात तुमने कैसे जानी ? हमको ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम हमारे खजाञ्चीसे मिले हुए हो। भङ्गेड़ी बोले कि, न हम चोर न आपके भंडारीसे मिले हैं। हम तो भंगके नशेमें अपनी बातें कर रहे थे, आप ही विधि मिल गयी होगी। देखो चार कौड़ीकी भंगके नशेमें राजाके घरका बंदोबस्त बांध दिया।

वनमें घूमे और मेघ आकाशमें घूमे, कृष्णपर भौंहोंके धनुष हैं, मेघोंपर इन्द्रका धनुष है, कृष्णके और मेघके सब लक्षण एकसे मिलते हैं। ॥१६॥फिर दूसरी सखी बोली—आली ! हमसे तो यह वनकी भीलनी धन्य हैं, क्योंकि प्रियाके स्तनोंमें जो चर्चित केशर, कस्तूरी जब रतिके समय कृष्णचंद्रके चरणोंमें लग गयी है और वह चरण अरुणाई लिए जब मनमें विहार करते समय घासमें लगे हैं, उनको देख कामातुर भीलनी उस केशर और कस्तूरीको घासपरसे लेकर अपने मुख और स्तनोंपर लगा-लगाकर कामाग्निके तापको शान्त करती हैं, हे सखी ! हमारे भाग्यमें तो इतना भी नहीं; जो किसी प्रकार अपनी कामाग्निको शान्त करें ॥ १७ ॥ एक गोपी और बोली कि हे अबलाओ ! हे सहेलियो! यह गोवर्द्धन पर्वत भगवान्‌के भक्तोंमें कोई परमभक्त जान पड़ता है, क्योंकि इसके ऊपर बलराम और घनश्यामके चरणारविन्द लगनेसे तृणादिक जो उपजते हैं वे तृणादिक नहीं हैं, किंतु मेरी समझमें ऐसा आता है कि उसके रोम खड़े हो रहे हैं,

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन दयितास्तनमण्डितेन ॥ तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७ ॥ हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ॥ मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥ १८ ॥ गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥ अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥

और अपने आनंदमें मग्न है कृष्ण बलरामको अपने ऊपर आता देख उनको शीतल जल, हरी घास, कन्द-मूल-फल भेंट करके उनका आदर-सत्कार करता है ॥ १८ ॥ एक और सखी बोली कि, हे सखियो ! ग्वालबालोंको सङ्ग लेकर कृष्णचन्द्र बलराम जब वृन्दावनमें गायें चराते हैं और सब त्रिलोकीके मोहने वाली मुरलीको मधुर स्वरसे बजाते हैं, तब उस मनोहर बांसुरीका शब्द सुनकर सब जंगम स्थावर की नाईं स्थिर हो जाते हैं, अर्थात् जहांके तहां खड़ेके खड़े रह जाते हैं, अपने आनंदमें मग्न है और वृक्षोंकी जंगमोंकीसी गति है, अर्थात् उनके रोमांच हो जाते हैं। हे सखी ! यह अद्भुत आश्चर्य है, न आज तक कहीं आँखोंसे देखा और न कानोंसे सुना, परन्तु इतनेपर भी बलराम और नंदलाल अपना ग्वालपन दर्शा रहे हैं, कैसे ? गायदोहनके समय गायोंकी बांधनेकी रस्सी शिरसे बांध रहे हैं और पांशी

कन्धे पर धर रहे हैं, उस समयका कुंजविहारीलालकी शोभा वर्णन करनेकी किसका सामर्थ्य है ? ॥१९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण ! इस प्रकार वृन्दावनमें विहार करनेवाले वृन्दावनविहारीके चरित्रोंका गोपियां परस्पर वर्णन करती-करती कृष्णमय हो गयीं ॥२०॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां वेणुगीतवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥दोहा—बाइसवें अध्यायमें, वरणौं चीरचरित्र । गोपिनको वरदान दे, कीन्हों यज्ञ पवित्र ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! हेमन्तऋतुमें पहला जो अगहन है उसमें सोलह सहस्र गोप कुमारी कन्यायें मूंग भातका भोजन करके कात्यायनी देवीका व्रत करना आरंभ किया ॥ १ ॥ और व्रत

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ॥ वर्णयन्तो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे श्रीकृष्णवेणुगीतवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ॥ चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलांते चोदितेऽरुणे ॥ कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥ २ ॥ गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ ऊच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ॥ नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ ४ ॥ इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ॥ ५ ॥ भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥ उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योऽन्याबद्धबाहवः ॥ ६ ॥

करके सूर्योदयके समय यमुनाजलमें स्नान कर तटपर बैठ बालूकी कल्याणी देवीकी प्रतिमा बनाकर ॥ २ ॥ चन्दन, सुगन्ध, फूल, फल, धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत और अन्य सामग्रियोंसे देवीकी पूजा करती थीं ॥३॥ हे कात्यायनी देवि ! हे महामाये ! हे महायोगिनि ! हे अधीश्वरि ! देवि ! नन्दराय गोपके सुतको हमारा पति बना, हम वारंवार तुमको नमस्कार करती हैं ॥ ४ ॥ वह सब गोपकुमारिका इस मंत्रका जप करके पूजा किया करती थीं । इसी प्रकार उनको पूजन करते-करते एक महीना व्यतीत हो गया और श्रीमनमोहनमें उनका मन दिनरात लगा रहता था ॥५॥ और नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर यही वर मांगती थीं कि हमको नन्दकुमार श्यामसुन्दर वर मिलें

इस प्रकार एक-एकका नाम ले पुकार-पुकार कर परस्पर हाथ पकड़-पकड़ कर ॥६॥ उच्चस्वरसे अपने प्राणप्यारे यशोदानन्दनका नाम लेतीं और गुणानुवाद गातीं यमुनाजीपर स्नान करनेको जाया करती थीं ॥७॥ पहलेकी नाईं एक दिन यमुनाके किनारे पर अपने-अपने वस्त्र उतारकर सबने धर दिये और श्रीकृष्णचन्द्रके गुणगान कर करके यमुनाजलमें विहार करने लगीं, तब योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान्श्रीकृष्ण चन्द्र उनके मनोरथ जानकर ॥ ८ ॥ अपनी मण्डलीके सखाओंको संग लेकर उनकी मनः कामना सिद्ध करनेके लिये यमुनाके किनारे पर पहुँचे और उन कन्याओंके वस्त्र लेकर झटपट कदंबपर चढ़ गये ॥९॥ और बालकों समेत आप ठट्ठे मार-मार कर हँसने लगे और अनेक

कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ॥ नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निःक्षिप्य पूर्ववत् ॥ ७ ॥ वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ८ ॥ वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ॥ ९ ॥ हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् ॥ १० ॥ सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद् यूयं व्रतकर्शिताः ॥ न मयोदित पूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ॥११॥ एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥ तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ॥१२॥ व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योऽन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥ एवं ब्रुवति गोविन्देनर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः ॥ आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥

प्रकारकी मसखरी बातें करने लगे कि अबलाओ! हमारे समीप आवो और अपने वस्त्र ले जाओ ॥ १० ॥ इस समय मैं ठठोलीसे नहीं कहता सत्य कहता हूँ, तुम व्रत करनेसे बहुत दुर्बल हो गई हो, इस बातको मेरे सखा सबप्रकारसे जानते हैं ॥११॥ मुझे कुछ दुर्भाव और आग्रह नहीं है, तुम एक-एक मेरे सम्मुख आती जाओ और अपने-अपने वस्त्र लेती जाओ, चाहे सब मिलकर एकबार ले जाओ और जबतक तुम ऐसा नहीं करोगी, मुझे अपने बाबा नंदकी सौगन्ध है तुम्हारे वस्त्र कभी न दूँगा ॥१२॥ मनमोहन प्यारेकी मीठी-मीठी बातें सुनकर गोपियां प्रेममें मग्न हो गयीं और लज्जित हो परस्पर देख-देखकर हँसने लगीं कि विना वस्त्र नंगी किस प्रकार जलसे बाहर निकलें? यह

शोच-विचार कण्ठतक शीतलजलमें जाड़ेकी मारी खड़ी-खड़ी कांप रही थीं ॥ १३ ॥ मनहरण प्यारे कृष्णचन्द्रका! ऐसी अनीति मत करो,तुम नंदरायके पुत्र ब्रजमें प्रशंसा करने योग्य हो । तुमको हमारी इतनी दया नहीं आती कि ये जलमें खड़ी-खड़ी ठिठर रही हैं ? अब कृपा करके हमारे वस्त्र दे दीजिये ॥१४॥ हे श्यामसुन्दर प्यारे ! हम तुम्हारी दासी हैं, जो तुम कहोगे वही करेंगी, परन्तु हमारी लाजके ग्राहक मत बनो, जब लाज ही जाती रही तो फिर शेष क्या रहा ! हम आपके सामने निर्लज्ज होना नहीं चाहतीं, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, वस्त्र हमारे दे दो, नहीं तो हम नन्दरायसे अथवा राजा कंससे जाकर कहेंगी॥१५॥ गोपियोंकी रस भरी बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि जो तुम मेरी दासी हो और मेरा कहना तुमको अंगीकार है तो हे मन्दमुसकानवालियो ! तुम यहां आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ ।

माऽनयं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् ॥ जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥१४॥ श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ॥ देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ॥ अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥ ततो जलाशयात् सर्वा-दारिकाः शीतवेपिताः ॥ पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥ भगवानाह तां वीक्ष्य शुद्धभावप्र-सादितः ॥ स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १८ ॥ यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत् तदु-देवहेलनम् ॥ बद्ध्वाऽञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहस कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥

॥ १६ ॥ जब कछु उपाय न चल सका तब हारकर शरदीसे कांपती हुई सँकोच करती सम्पूर्ण गोपिकायें दोनों हाथोंसे अपने कुच और योनिको ढक जलसे बाहरको आयीं, तब श्यामसुन्दर बोले कि दोनों हाथ जोड़कर सूर्यनारायणको प्रणाम करो ॥ १७ ॥ उनके शुद्धभावको देखकर श्रीकृष्णमहाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनको शुद्ध कन्याकुमारी देखकर उनके वस्त्र कन्धोंपर धर मंदमन्द मुसकानसे प्रीतिपूर्वक बोले ॥ १८ ॥ कि हे शशिवदनियो ! तुमने जो व्रत करके नंगी हो यमुनाजलमें स्नान किया यह वरुणदेवताका अपराध हुआ, उस पापको दूर करनेके लिये हाथ जोड़ माथेसे लगाकर पृथ्वीमें प्रणाम करके अपने-अपने वस्त्र पहन लो ॥ १९ ॥

व्रजबालाओंने भगवान् श्रीकृष्णकी ये बातें सुन वस्त्र त्यागके नग्न स्नान करनेका व्रत खण्ड करनेवाला मानकर उसके पूर्ण करनेके लिये व्रतके और सब कर्मोंके फलदायक श्रीकृष्णभगवान्‌को नमस्कार किया, क्योंकि वही सर्व पापोंके दूर करनेवाले हैं ॥२०॥ देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अधीनता करनेवाली गोपियोंको देखकर उनके वस्त्र दे दिये ॥ २१ ॥ उनके संग बहुत छल किया, लाज उनकी छुड़ायी, हँसी उनकी की, खिलौनेकी नाईं उन्हें खिलाया, वस्त्र उनके चुरा लिये, तो भी उन गोपियोंने कृष्णको दोष नहीं दिया, क्योंकि उनको अपना प्राणनाथ समझकर उनके संग परमानंद मान रही थीं ॥ २२ ॥ अपने-अपने वस्त्र पहनकर प्यारेके संग ऐसी वशीभूत

इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् ॥ तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्य-मृग्यतः ॥२०॥ तास्तथाऽवनता दृष्ट्वा भगवान् देवकीसुतः ॥ वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ २१ ॥ दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ॥ वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन् प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥ २२ ॥ परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसङ्गमसज्जिताः ॥ गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥ तासां विज्ञाय भगवान् स्वपादस्पर्शकाम्यया ॥ धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४ ॥ संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ॥ मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥ न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ॥ भर्जिताःक्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते ॥ २६ ॥

हो गयीं और उनके चित्त हर गये कि श्रीकृष्णकी ओर खड़ी-खड़ी देखती ही देखती विकल हो गयीं, अतः उन लोगोंका वहांसे चलनेतक का सामर्थ्य न रहा ॥२३॥ श्रीकृष्णचन्द्र सर्वांतर्यामी भगवान् दामोदरने उन अबलाओंके व्रतका संकल्प जान लिया कि इन गोपिका-ओंने मेरे चरणस्पर्शकी चाहनासे यह व्रत किया है ॥ २४ ॥ तब श्रीकृष्णभगवान् बोले कि हे सुशीलाओ ! जिसलिये तुमने मेरा व्रत किया है उस मनोरथको लाजके कारण तुम नहीं कहती, परन्तु तो भी मैंने तुम्हारे मनोरथको जान लिया और मैंने तुम्हारे मनोरथका अनुमोदन किया, इसलिये तुम्हारा मनोरथ सत्य होगा ॥ २५ ॥ हे मनोरंजनी ! अपने-अपने घर जाओ, मुझमें मन लगानेवालोंकी

कामना विषयभोगके लिये नहीं होती, जैसे भुना हुआ अन्न दूसरी बार उपजनेके योग्य नहीं रहता ॥ २६ ॥ हे पूर्णव्रत करनेवालियो ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा । हे पतिव्रताओ ! जिस प्रयोजनके लिये तुमने यह व्रत किया और कात्यायनी देवीकी आराधना की वह मैंने जान लिया । अब जब शरदऋतुकी रात्रि आयेगी तब तुम सब मेरे संग बिहार करियेगा और तुम इस समय अपने-अपने घरको जाओ ॥२७॥ इतनी कथा, कह श्रीशुकदेवजी बोले कि जिन गोपियोंकी मनःकामना पूर्ण हो गयी, वे गोपी भगवान्‌की आज्ञा मान और उनके चरणकमलका ध्यान करती हुई अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने-अपने घरोंको चली गयीं और उसी दिनसे आठों पहर यही मनाती थीं कि वनमालीके सङ्ग परमसुख देनेवाली शरदऋतु कब आयेगी ॥ २८ ॥ तब देवकीनन्दन श्रीकृष्ण भी ग्वालबालोंको सङ्ग ले गायें चराते

याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ॥ यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्या-
दिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ॥ ध्यायन्त्यस्तत्पदांभोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥२८॥ अथ गोपैः परिवृतो
भगवान् देवकीसुतः ॥ वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः ॥२९॥ निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ॥
आतपत्रायितान् वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥३०॥ हे स्तोक कृष्ण हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन॥ विशालर्षभ तेजस्विन्
देवप्रस्थवरूथप॥३१॥पश्यतैतान्महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान् ॥ वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः ॥३२॥
अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ॥ सुजनस्यैव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥३३॥

बलदेवजी सहित वृन्दावनसे भी और आगे बढ़ गये ॥ २९ ॥ बड़ी तीक्ष्ण ग्रीष्मकी धूपमें अपनी छायासे छाया करनेवाले सघन वृक्षोंको देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मित्रोंसे कहा कि ॥३०॥ हे स्तोक कृष्ण ! हे अंशो ! हे श्रीमन् ! हे अर्जुन ! हे विशाल ! हे ऋषभ ! हे तेज-स्विन् ! हे देवप्रस्थ ! हे वरूथप ! ॥ ३१ ॥ इन बड़भागी वृक्षोंको देखो तो, यह कैसे भाग्यशाली हैं और सदा परोपकारके लिये एकांतमें वास करते हैं । पवन, वर्षा, शीत, घाम, आप सहते हैं और हमको इनसे बचाते हैं ॥ ३२ ॥ अहो ! इन वृक्षोंका जन्म धन्य है, जिनसे हम सब लोग सुख पाते हैं और इनसे प्राणियोंकी जीविका है, जैसे किसी मनुष्यके पाससे याचक विमुख नहीं जाता ऐसे ही इन वृक्षोंके समीप

आकर प्राणी विमुख नहीं जाता ॥ ३३ ॥ इस संसारमें ये पत्र, फल, फूल, छाया, जड़, वल्कल, लकड़ी, सुगन्ध, गोंद, भस्म, कोयला, कोंपल आदिसे, सब प्राणियोंकी इच्छा पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ इस संसारमें उन्हीं देहधारियोंका जन्म सफल है जो कि प्राण, धन, बुद्धि और वाणीसे परायेका भला करते हैं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार हरे-हरे पात, गुच्छे, फल, फूल, कोंपलोंके समूहोंसे जिनकी शाखा झुक रही हैं, उन वृक्षोंके बीचमें होकर श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाकी ओरको गये ॥३६॥ हे राजन् ! उस यमुनाके तीर ग्वालबालोंने निर्मल जल मङ्गलरूप गायोंको पिलाया और आप भी पिया ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! उस यमुना महारानीके किनारेपर गायोंको चराते-चराते जब ग्वाल

पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ॥ गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान् वितन्वते ॥ ३४ ॥ एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ॥ प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा ॥ ३५ ॥ इति प्रबालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः ॥ तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥ ३६ ॥ तत्र गाः पाययित्वाऽपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ॥ ततो नृप स्वयं गोपा कामं स्वादुः पपुर्जलम् ॥ ३७ ॥ तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून्नृप ॥ कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥ श्रीभाग० म० दश० पू० श्रीकृष्णकृतगोपीवस्त्रापहरणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ गोपा ऊचुः ॥ राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान् देवकीसुतः ॥ भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ सत्रमांगिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥

बालोंको क्षुधा लगी तब घनश्याम बलरामजीके पास आकर यह बात कहने लगे ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कात्यायनीव्रतनिरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ दोहा—तेइसवें अध्यायमें, मांगो हरि यश जन्य । विप्रनने दीनों नहीं, दियो नारि ते धन्य ॥ हे राम ! हे राम ! हे महापराक्रमी ! हे कृष्ण ! हे दुष्टोंके संहार करनेवाले ! अब भूख हमको बहुत सताती है, आप इसके शांत करनेका उपाय करो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! गोपोंने जब श्रीकृष्णसे इस प्रकारकी प्रार्थना की तब देवकीनन्दन भगवान्‌ने अपनी भक्तिमती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके ऊपर प्रसन्न होकर यह कहा ॥ २ ॥ हे सखाओ ! वेदके पढ़नेवाले मथुरा

वासी ब्राह्मण स्वर्गकी इच्छा करके आंगिरस नाम यज्ञ कर रहे हैं, देवताओंका पूजन जहां हो रहा है, वहां जाओ ॥३॥ हे गोपो !यहां उस यज्ञमें जाकर भोजन मांग लाओ और यदि तुमको भोजन मांगते लज्जा लगती हो तो तुम मेरा और मेरे भाई बलरामका नाम लेना कि उनके भेजे हुए हम तुम्हारे पास भोजन मांगने आये हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान्‌की आज्ञा मानकर वे ग्वालबाल वहां जाकर भोजन मांगने लगे और ब्राह्मणोंको हाथ जोड़ पृथ्वीमें पड़कर दण्डवत् कर कहा ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! हमारी बात सुनो, श्रीकृष्णमहाराजकी कृपासे सदा आपके यहां ऐसा ही मङ्गल होता रहे हम श्रीकृष्णके आज्ञाकारी हैं और जातिके गोप (अहीर) हैं, श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार बलदेवजीके भेजे हुए हम आपके पास आये हैं, आप उनको जानते ही होंगे ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई

तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ॥ कीर्त्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥४॥ इत्यादिष्टा भगवता गत्वाऽयाचन्त ते तथा ॥ कृताञ्जलिपुटा विप्रान् दण्डवत् पतिता भुवि ॥ ५ ॥ हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ॥ प्राप्ताञ्जानीत भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥ ६ ॥ गाश्चारयन्ताववदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ॥ तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥ दीक्षायाः पशुसंस्थाया सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ॥ अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥ ८ ॥ इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ ९ ॥

गायें चरानेको आपके निकट ही आये हैं और इस समय उनको भोजनकी इच्छा है और अधिक भूखे हैं, इसलिये आपसे भोजनकी चाहना करते हैं । हे ब्राह्मणो ! हे धर्मके जाननेवालोंमें उत्तम ! यदि आपकी श्रद्धा हो तो मांगनेवाले कृष्ण बलरामको भोजन दे दीजिये ॥७॥ हे श्रेष्ठब्राह्मणो ! तुम चुप क्यों हो रहे ? जो तुम कहो कि हम यज्ञ करनेवाले दीक्षित हैं, उनको हमारा भोजन करना नहीं चाहिये तो वहां यह विचार है कि दीक्षाके आरम्भसे लेकर पशुके हिंसनसे पहले सौत्रामण्य यज्ञसे और ठौर दीक्षावालेके अन्नखानेसे कुछ दोष नहीं लगता, सो पशुका हिंसन तुम्हारे यहां हो चुका है, सौत्रामण्य यज्ञ आपके है ही नहीं, वह आपके अन्न-भोजनमें हमको किसी प्रकारका दोष नहीं है ॥८॥ इस प्रकार गोपोंने उनको शास्त्रानुसार समझाया भी, परन्तु तो भी वे ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी बातको सुनी

अनसुनी कर गये, क्योंकि वे ब्राह्मण तो क्षुद्रफलवाले स्वर्गके जानेकी इच्छा कर रहे थे। वह क्लेशकारी कर्ममें अपनी मूर्खतासे लग रहे थे और अपने आपको बड़ा ज्ञानी और महात्मा जानते थे ॥ ९ ॥ देश, काल, अलग-अलग चरु पुरोडाशादिक सामग्री, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ धर्मफल ये सब कृष्णमय हैं ॥ १० ॥ इंद्रियोंसे परे साक्षात् परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको उन कुत्सित बुद्धिवाले मूर्खदेहाभिमानी देहको ही आत्मा माननेवाले ब्राह्मणोंने अज्ञानवश हो उनको कुछ भी नहीं पहचाना अतः मनुष्य ही जानकर अवज्ञा की ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परंतप ! उन ब्राह्मणोंने चुप साध ली, न तो अपने मुखसे हां की और न ना की तब गोप निराश होकर लौट आये और श्रीकृष्ण बलरामके पास आकर कहा कि भले ब्राह्मणोंके पास भेजा उन्होंने कुछ

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥१०॥ तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम् ॥ मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥११॥ न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परंतप ॥ गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥१२॥ तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ व्याजहार पुनर्गोपान् दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥१३॥ मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ॥ दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥ गत्वाऽथ पत्नीशालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलंकृताः ॥ नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥

भी नहीं दिया देखो हमारा अपमान भी हुआ और भोजन भी नहीं मिला, अब क्या उपाय करें ? भूखके मारे तो प्राण निकले जाते हैं ॥ १२ ॥ जगदीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् इस बातको सुनकर हँसे और फिर गोपोंसे कहा कि कार्यवालेको निराश होना नहीं चाहिये और मांगनेवालेको मान कहां ? क्योंकि उनका मान तो सदैव ही भंग रहता है। लौकिकरीति दिखलानेके लिये फिर श्रीकृष्णचन्द्रने गोपोंसे कहा कि ॥ १३ ॥ अब तुम फिर जाओ और उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे कहो कि कृष्ण बलदेव दोनों भाई गायें चराते-चराते यहां आ गये हैं और भूखे हैं, वे तुमको मुँहमांगा भोजन देकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगी; क्योंकि वह शरीरसे तो घरमें बास करती हैं, परंतु उनका मन मुझमें ही लगा रहता है, इसीसे मुझमें उनका बड़ा प्यार है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर ग्वालबाल फिर गये, देखा तो

पत्नीशालामें सब ब्राह्मणी शृंगार किये बैठी थीं, उनके पास जाकर गोपोंने नमस्कार कर अधीनतासे यह वचन कहा ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणकी भार्याओ ! तुमको नमस्कार है, तुम हमारी एक बात सुनो ! श्रीकृष्णचन्द्र आपके समीप ही आ गये हैं, उन्होंने हमको तुम्हारे पास भेजा है ॥१६॥ ग्वालबाल और बलदेवको संग लेकर गायें चराते-चराते इतनी दूर चले आये हैं और इस समय वे भूखे हैं और उनके मित्र हम भी भूखे हैं, वे कुछ भोजन चाहते हैं तुम कृपा करके हमको दो ॥ १७ ॥ नित्य श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहने वाली और कृष्णचन्द्रकी कथामें तन, मन, धन लगानेवाली वे ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ व्रजभूषणका आना सुनकर अत्यन्त हर्षवती हुई, क्योंकि उनका मन तो पहले ही श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लग रहा था ॥१८॥ बड़े थालोंमें सुन्दर सुगंधयुक्त चार प्रकारका भोजन भक्ष्य, भोज्य,

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ॥ इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥१६॥ गाश्चारयन्स गोपालः सरामो दूरमागतः ॥ बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥१७॥ श्रुत्वाऽच्युतमुपायान्तं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसम्भ्रमाः ॥१८॥ चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ॥ अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥१९॥ निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ॥ भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥२०॥ यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते ॥ विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥ श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ॥ विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥

लेह्य, चोष्य (चने, चबैना, रोटी, पूरी यह भक्ष्य), (दाल, भात, इत्यादि भोज्य), (कडी, क्षीर इत्यादि लेह्य), (ऊख, आम, नींबू इत्यादि चोष्य) ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ अपने मनमोहन प्यारेके लिये भोजन ले-लेकर ऐसे धायीं जैसे नदियाँ समुद्रमें जाती हैं ॥ १९ ॥ उनके पति, भाई, बन्धु, पुत्रोंने बहुतेरा रोका परन्तु वे न रुकीं, क्योंकि उनके मन तो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें बरसोंसे लग रहे थे तब उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने ॥२०॥ उसी अशोकवृक्षके नवपल्लवोंसे शोभायमान यमुनाके निकट उपवनमें ग्वालबालोंको संग लिये भाई बलराम समेत मनमोहन प्यारेको फिरते देखा ॥ २१ ॥ श्यामरूप, पीतवसन धारण किये, वनमाला पहने, मोरपुच्छका मुकुट शीशपर

धरे, खरियागेरूके छाप लगाये, धातु मूँगा पहने, नटवर वेष बनाये, सखाके कण्ठमें भुजा डाले, दूसरे हाथमें कमलके फूलको घुमाते कानोंमें कमलके फूल लटकाये, कपोलोंपर अलकें छिटकाये, मन्द-मन्द मुसकाते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा॥२२॥ हे राजन् ! जैसे-जैसे गुण कृष्ण प्यारेके अपने कानोंसे सुनकर देखनेकी अत्यन्त अभिलाषा थी वैसे ही प्रत्यक्ष जाकर अपने नेत्रोंसे देखे और अपने आपको परमबड़भागिनी समझकर उस ब्रजराजके अनूप स्वरूपको नेत्रोंके द्वारा हृदयमें ले जाकर बहुत देरतक आलिंगन किया और मनमोहन प्यारेको वहीं रहनेका स्थान दे सर्वत्र तापको त्याग दिया। जैसे अहंकार वृत्तियां सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षी हैं, उनको आलिंगन करके और उनमें ही लीन होकर सब तापको त्याग देती हैं ॥२३॥ पुत्रादि गृहादिककी सब आशा छोड़ कर मेरा दर्शन करनेके लिये आयी हैं, उन ब्रह्मपत्नियोंको देखकर सबकी बुद्धिकी परीक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचंद्र मुसकुराकर बोले ॥२४॥ कि हे बड़भागिनियो ! तुमने बहुत अच्छा

प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः ॥ अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथा-ऽभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र ॥ २३ ॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ॥ विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसि-ताननः ॥२४॥ स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ॥ यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥ नन्वद्धा मयि कुर्वन्त कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ॥ अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥

किया जो यहां आयीं। आओ, हमारे समीप बैठो, इस समय हम तुम्हारी क्या शुश्रूषा करें ? हमारे लिये क्या आज्ञा है ? हमारा दर्शन करनेके लिये आयी हो, तुमको योग्य है, तुम हमको भूखा समझकर इस महानिर्जन वनमें भोजन लेकर आयीं, इससे अधिक और कुछ दया है ? इसके बदले हम तुम्हें क्या दें ? जो इस समय हमारा घर निकट होता तो कुछ पान-फूल तुम्हारे आगे धरते, वह हमारा बृन्दावन भी यहांसे बहुत दूर है, हमसे आपकी कुछ भी सेवा न बन पड़ी, इस बातका बड़ा पछतावा है और हमारा मुख नहीं जो आपके प्रेमकी और परिश्रमकी प्रशंसा कर सके; इस समय हम सब प्रकारसे लाचार हैं॥ २५ ॥ अपने स्वार्थके देखनेवाले ज्ञानी पुरुष आत्मारूप प्रिय जो मैं हूँ, वह मुझमें फलकी अनिच्छा करके निरन्तर यथार्थ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥ २६ ॥

परंतु आत्मा सबसे अधिक प्रिय है। विचार लो प्राण, बुद्धि, मन, तनु, स्त्री, पुत्र आदिक सब वस्तु जिस आत्माके सम्बन्धसे प्रिय लगते हैं फिर भला उस आत्मासे बढ़कर और कौनसी वस्तु प्रिय है ? ॥२७॥ इसलिये हे सुशीलाओ ! अब तुम अपनी यज्ञशालामें जाओ तुम कृतार्थ हो गयीं, पति तुम्हारे गृहस्थ हैं, जबतक तुम न जाओगी, तबतक यज्ञ पूर्ण न होगा, क्योंकि विना स्त्रीके यज्ञ पूरा नहीं होता इसलिये वे लोग यज्ञको तुम्हारे साथ ही पूरा करेंगे ॥ २८ ॥ हे नाथ ! आपको अपने कोमल मुखारविन्दसे ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिये, क्योंकि आपने ही गीतामें कहा है, " न मे भक्तः प्रणश्यति " अर्थात् मेरे भक्तोंका नाश नहीं होता " न स पुनरावर्तते " अर्थात् मुझमें प्राप्त होकर फिर लौट नहीं आता, यह आपकी ही आज्ञा है, फिर आप प्रतिज्ञाको सत्य क्यों नहीं करते ? इधर-उधर क्या

प्राणबुद्धिमनस्स्वात्मदारापत्यधनादयः ॥ यत्संपर्कात् प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥ तद् यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ॥ स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥२८॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ॥ प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदाऽवसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ॥ २९ ॥ गृह्णन्ति नो न पतयः पितरो सुता वा न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ॥ तस्माद् भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्यां भवेद्गतिररिन्दम तद् विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन् पितृभ्रातृसुतादयः ॥ लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥

देख रहे हो ? तुमने अपने चरणसे जो तुलसीकी माला ठुकरा दी है उसको बड़े आदर-सत्कारसे शिरपर चढ़ानेके लिये अर्थात् आपके चरणारविन्दकी सेवा करनेके लिये आपकी शरण आयी हैं अब सब बन्धुजनोंको त्यागकर आपके चरण शरण हैं ॥ २९ ॥ हे दीन दयालु ! हम यही चाहती हैं कि आपके ही चरणारविन्दमें हमारे देह पड़े रहें, स्वर्गादिकका सुखभोग हम नहीं चाहतीं, हमको तो अपना दासभाव ही अच्छा है ॥ ३० ॥ द्विजपत्नियोंकी प्रेम-प्रीतिभरी मधुर वाणी सुनकर मनहरण प्यारे स्नेहयुक्त मनोहर वचन बोले कि, तुम निःसन्देह अपने घर जाओ। तुम्हारे पति, पिता, तात, माता, भ्राता, पुत्र तुम्हारी कुछ निन्दा न करेंगे और संसारमें भी कोई मनुष्य

तुमको दोष न लगायेगा देवताओंको साक्षात् दिखलाकर कहा कि सब देवता और मनुष्योंको मेरा कहना स्वीकार है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें शरीरके स्पर्श होनेसे प्रीति नहीं रहती और अनुराग भी नहीं बढ़ता इसलिये तुम घरमें रहकर मुझमें मन लगाओ तो बहुत शीघ्र मुझको पाओगी ॥३२॥ मेरा स्मरण, दर्शन, ध्यान, कीर्तन करनेसे जैसा भाव मुझमें होता है वैसा समीप रहनेसे नहीं होता, इसलिये तुमको उचित है कि शीघ्र अपने मखभवनको जाओ ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार जब श्रीकृष्णने द्विजपत्नियोंको समझाया, वे द्विजांगना यज्ञशालामें पहुँचीं और ब्राह्मणोंने कुछ अपराध उनको न लगाया, निर्दोष समझकर अपनी स्त्रियोंके साथ आनन्दपूर्वक यज्ञ समाप्त किया ॥ ३३ ॥ जिस समय सब स्त्रियाँ श्रीकृष्णके पास भोजन लेकर चलीं उस समय एक स्त्रीके पतिने अपनी स्त्रीको आनेसे

न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिव ॥ तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥३२॥ (स्मरणाद्दर्शनाद्ध्या
नान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥) श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता मुनि पत्न्यस्ता
यज्ञवाटं पुनर्गताः ॥ ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३३ ॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम्॥
हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् ॥ चतुर्विधेनाशयित्वा
स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३५ ॥ एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ॥ रेमे गोगोपगोपीनां रमयन्रूपवाक्कृतैः ॥३६॥
अथानुस्मृत्य विप्रास्तेअन्वतप्यन् कृतागसः ॥ यद् विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडम्बयोः ॥ ३७ ॥

रोक लिया था उसने जैसा श्रीकृष्णका रूप, रंग, स्वभाव कानोंसे सुन रखा था उसी रूपका ध्यान कर हृदयमें आलिंगन करके कर्मोंके अधीन जो देह था उसको त्यागकर चैतन्य स्वरूप भगवद्रूपमें लय हो गयी ॥ ३४ ॥ और जो-जो पकान्न मिठाई द्विजपत्नियाँ लायी थीं उन चार प्रकारके व्यञ्जनोंको यमुनाके निकट कुञ्जोंकी छायामें बैठ, अतिप्रसन्न हो श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी अपने हाथसे भोजन कराते थे और सब सखा उस भोजनकी प्रशंसा कर करके प्रेमसे भोग लगा रहे थे। जब सखा भोजन कर चुके तो पीछे अपने आप भी भोजन करके ब्राह्मणियोंकी बड़ी सराहना की ॥३५॥ इस प्रकार मनुष्यरूप धारण कर लीला करके लोगोंके सदृश गोप गोपियोंको आनन्द देके आप भी उनके साथ रमण करते भये ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत वह ब्राह्मण अपने भोजन न देनेके अपराधको स्मरण करके

दुःख पाते भये क्योंकि श्रीकृष्ण और बलदेवको सामन्य मनुष्य समझके अन्न नहीं दिया ॥ ३७ ॥ उन अपनी पत्नियोंकी श्रीकृष्ण भगवान्में अलौकिक प्रीति देखकर और अपने आपको भक्तहीन समझकर अत्यन्त दुःखी हो वारंवार अपने आपको धिक्कार दे देकर अपनी निन्दा करते थे ॥३८॥ शुद्ध माता-पितासे, सावित्री यज्ञोपवीत हुए से, यज्ञकी दीक्षा लिएसे यह तीन प्रकारका हमारा जन्म है, इसको, हमारी विद्याको, हमारे कर्मको और हमारी चतुराईको वारंवार धिक्कार है, हमारे व्रत करनेको धिक्कार है, हमारे अनेक शास्त्रके पढ़नेको धिक्कार है, हमारे कुलको धिक्कार है, क्योंकि हम जगदीश्वर भगवान्से विमुख हुए। धिक्कार है धिक्कार है, इस हमारी अधम बुद्धिको ॥३९॥ निश्चय है कि भगवान् वासुदेवकी माया योगियोंको मोह उपजानेवाली है, इस मायासे मनुष्योंके गुरु-ब्राह्मण जो

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ॥ आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥ ३८ ॥ धिग् जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ॥ धिग् कुलं धिक् क्रिया दाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ॥ यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४० ॥ अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ॥ दुरंतभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान् ॥ ४१ ॥ नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ॥ न तपो नात्ममीमांसा न शोचं न क्रियाः शुभाः ॥ ॥ ४२ ॥ अथापि ह्युत्तमश्लोकेकृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥ ४३ ॥ ननु स्वार्थ विमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ॥ अहो न स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥४४॥ अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्या द्याशिषां पतेः ॥ ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥४५॥

हम हैं, स्वार्थमें मोहित हो रहे हैं, हाय ! अहो ! बड़े आश्चर्यकी बात है, देखो, जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रमें स्त्रियोंकी कैसी अलौकिक भक्ति है; देखो ! जिस भक्तिके गृहरूप मृत्युकी फांसियोंको काट दिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ विचार तो करो यह स्त्री जाति कैसी अशुद्ध है, न तो इनके उपवीतसंस्कार है, न गुरुके समीप वास है, न तप है, न जप, है, न आत्माका विचार है, न पवित्रता है, न सुकर्म है ॥ ४२ ॥ तो भी योगेश्वरोंके ईश्वर पर पुरुष श्रीकृष्ण भगवान्में जैसी इन अबलाओंकी अचल भक्ति है ऐसी हम स्नान, सन्ध्या, जप, तप करनेवालोंकी भी नहीं तो धिक्कार है हमारे इस संस्कार और यज्ञव्यवहारको ॥४३॥४४॥ हम लोग कुछ भी अपने अर्थको नहीं पहचानते, घरके

व्यवहारमें भूल रहे हैं और ऐसे अचेत हैं कि आगे-पीछेकी कुछ भी सुधि नहीं। महात्माओंके आनंददेनेवाले श्रीकृष्ण भगवान्ने गोपोंके वचनोंसे हमें सचेत किया, हाय ! तो भी हम मूर्ख न चेते, इसमें किसीका कुछ दोष नहीं, यह सब हमारे कर्मोका फल है पूर्ण जिनका मनोरथ, मोक्षादिक सब मनोरथोंके अधीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं, उनको हमसे मायाके वशीभूत पामर जीवोंसे क्या प्रयोजन था ? केवल भातका मांगना तो ईश्वरका कौतुक था॥४५॥ देखो ! त्रिभुनेश्वरी लक्ष्मी, ब्रह्मादिक देवता और सब संस्कारोंको छोड़कर चरणारविंदके स्पर्शकी चाहना करके अपना चञ्चलपना और दोष दूर करनेके लिए जिनका दिन-रात भजन करते हैं। उन श्रीकृष्णका मांगना केवल हम लोगोंको मोहका उत्पन्न करनेवाला है ॥ ४६ ॥ देशकाल अलग-अलग चरु पुरोडाशादिक द्रव्य, मंत्र, तन्त्र, ऋत्विज, अग्नि,

हित्वाऽन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत् ॥ आत्मदोषापवर्गेण यद्याच्ञा जनमोहिनी ॥४६॥ देशः काल पृथक् द्रव्यं मन्त्रतंत्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥४७॥ स एष भगवान्साक्षाद् विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः॥ जातो यदुष्वित्यशृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ॥ ४८ ॥ अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ॥ भक्त्या यासां मतिर्जाता ह्यस्माकं निश्चला हरौ ॥४९॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ यन्मायामोहितधियो भ्रमामःकर्मवर्त्मसु ॥५०॥ स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ॥ अविज्ञातानुभावानांक्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम्॥५१॥

देवता, यजमान यज्ञ, धर्म, यह सब श्रीकृष्णका रूप है ॥४७ ॥ साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान् विष्णु योगेश्वरोंके ईश्वरने यदुकुलमें आकर जन्म लिया है, यह बात हमने पंडित लोगोंके मुखसे सुनी थी, परंतु तो भी हम जान-बूझकर मूर्ख अज्ञानी हो गये ॥ ४८ ॥ कोई-कोई ब्राह्मण कहने लगे कि अहो ! हम बड़े धन्य हैं, क्योंकि हमारी ऐसी भक्तिमती स्त्री हुई कि जिनकी भक्तिके प्रभावसे श्रीकृष्ण भगवान्में हमारी भी दृढ़ भक्ति हुई ॥ ४९॥ अकुण्ठबुद्धि जो आप श्रीकृष्ण भगवान् हैं, आपके लिए वारंवार नमस्कार है, जिसकी मायासे मोहित बुद्धि हो हम कर्ममार्गमें भटकते फिरते हैं ॥५०॥ संसारकी मायासे हमारा चित्त मोहित हो रहा है और आपकी महिमाको नहीं जानते,

ऐसे जो हम अज्ञानी लोग हैं, हे दीनदयालु ! हमारा अपराध क्षमा कीजिये ॥ ५१ ॥ हे श्रीकृष्णचन्द्र भगवन् ! हम जो आपके अपराधी ब्राह्मण हैं, अपने अपराधको स्मरण करके हमारी कृष्ण बलदेवके दर्शनकी इच्छा हुई, परंतु कंसके भय से नहीं जा सके ॥५२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा–चौबिसवें अध्यायमें, इन्द्र यज्ञको त्याग । गोवर्द्धन पूजन कियो, सबन सहित अनुराग ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पृथ्वीनाथ ! श्रीकृष्ण भगवान् अपने बड़े भाई बलदेवजी सहित सुखसे रहते थे कि इन्द्रके यज्ञकी तैयारी होती देखते भये ॥ १ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा भगवान् सर्व व्यापक सब बातोंके जानने वाले, जानते भी थे इन्द्रके यज्ञका प्रबन्ध हो रहा है, तो भी नन्दरानीसे पूछने लगे कि माताजी ! आज क्या है ?

इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ॥ दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाचलन् ॥५२॥ इति श्री० म० द० पू० यज्ञपत्न्युद्धरणदीक्षितानुतापनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ॥ अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥१॥ तदभिज्ञोऽपि भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ प्रश्रयावनतोऽपृच्छद् वृद्धान्नंदपुरोगमान् ॥ २ ॥ कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः ॥ किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥ एतद् ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ॥ नहि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥

जो घर-घर पकवान मिठाई बन रही है और तुम भी बड़ी धूमधाममें हो ? मुझे समझाकर कहो कि यह क्या भेद है? जिससे मेरे मनका संशय मिटे । यशोदा बोली कि पुत्र ! इस समय मुझको अवकाश नहीं, यह सब वृत्तान्त तुम अपने पितासे जाकर पूछो, वह तुम्हारा सब सन्देह दूर कर देंगे । यह सुन नन्दजीके पास जाकर श्रीकृष्ण बोले ॥ २ ॥ कि पिता ! आज क्या है जो सब व्रजमें कड़ाही खटक रही है और अनेक-अनेक प्रकारसे व्यञ्जन बन रहे हैं, सब ठौर-ठौर कोलाहल मच रहा है और ग्वाल बाल चारों ओर भागे-भागे फिरते हैं, क्या उत्सव है ? किस देवताके नामका यज्ञ है ? क्या इसका फल है ? कौनसे देवताका पूजन है ? क्या-क्या उसमें गुण हैं? कौन इसका अधिकारी है ? किस-किस वस्तुसे यज्ञ होता है॥३॥ हे पिता ! मुझे इस बातके सुननेकी बड़ी अभिलाषा है, सज्जन पुरुष सब प्राणियोंमें और स्थानोंमें आत्मा

को देखते हैं, उनसे कोई कर्म छिपा नहीं है और छिपानेके योग्य भी नहीं है॥४॥साधु पुरुष अपना बिराना कुछ नहीं समझते, उनकी समदृष्टि है, मित्र, उदासीन वा वैरी भी उनका कोई नहीं होता, उदासीन तो शत्रुके सदृश वर्जित है,सुहृद आत्माके समान मानना चाहिये, इससे उसको अवश्य सम्मतिमें साथ कर ले ॥५॥ यह प्राणी जानकर भी कर्म करता है और विना जाने भी कर्म करता है, परन्तु जानकर जो करता है उसका फल तत्काल मिलता है और जो विना जाने कर्म करता है उसका कार्य किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता ॥ ६ ॥ आपने जो यह यज्ञका अनुष्ठान कर रक्खा है वह शास्त्रकी रीतिसे किया है अथवा लोकरीतिसे किया है और यह रीति आपके यहां परम्परासे चली आयी है या आज किसीने नयी-नयी बतायी है। यह आपसे मेरा निवेदन है कि आप कृपाकर मुझसे कहो ? ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णके

अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ॥ उदासीनोऽरिवद् वर्ज्य आत्मवत् सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ॥ विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात् तथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ ॥ तत्र तावत् क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ॥ अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥ नन्द उवाच ॥ पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ॥ तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥ तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ॥ द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ॥ पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥

गम्भीर वचन सुनकर नन्दरायजी बोले कि बेटा ! क्या यह वृत्तान्त तुमने आजतक नहीं सुना ? मेघरूप भगवान् इन्द्र हैं और मेघ ही उनकी प्यारी मूर्ति है, वही प्राणियोंके प्राणकी रक्षा करनेवाला है और सन्तोष देनेवाले जलकी वर्षा करता है ॥८॥ मेघोंका राजा भगवान् इंद्र है उसको हम भी और संसारके दूसरे पुरुष भी उसी मेघपतिके बरसाये जलसे उत्पन्न हुआ जो अन्न है उसीसेये यजन करते हैं, उसके करनेसे देवता, पितृ प्रसन्न होते हैं, अनेक प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धि उत्पन्न होती हैं, वन फूलते हैं तृण-घास उत्पन्न होता है, उसीसे पशु, पक्षी, जीव, जन्तु आनंद पाते हैं और उस यजन करनेके उपरांत जो शेषान्न रह जाता है उसीकी प्राप्तिके लिये अपनी जीविका

करके धर्म करते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका सेवन करते हैं ॥९॥ १० ॥ हे पुत्र ! यह इंद्रयज्ञकी रीति हमारे यहां परम्परासे चली आयी है, कुछ आज ही किसी पंडितने नयी नहीं बतायी जो धर्म परम्परासे चला आया है और जो मनुष्य काम, लोभ, भय, द्रोहसे उसको छोड़ देते हैं, उन पुरुषोंका कभी कल्याण नहीं होता ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! नन्दराय और वृद्ध-वृद्ध ब्रजवासियोंके ऐसे वचन सुनकर इंद्रके ऊपर अत्यन्त क्रोध करके उसका मान घटानेके लिये श्रीकृष्णभगवान्ने अपने पिता नन्दादिकसे कहा ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पिताजी ! कर्मसे ही प्राणी जन्म लेता है और कर्मसे ही देहका त्याग करता है। सुख, दुःख, भय, कल्याण, कुशल ये सब कर्मके ही अधीन हैं ॥ १३ ॥ कोई-कोई मतवाले ऐसा कहते हैं कि, ईश्वर प्राणियोंके किये हुए कर्मोंके

य एवं विसृजेद् धर्मं पारम्पर्यागतं नरः ॥ कामाल्लोभाद्भयाद् द्वेषात् स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य नन्दस्य तथाऽन्येषां व्रजौकसाम् ॥ इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते॥१३॥अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम् ॥ कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥१४॥ किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ॥ अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥१५॥ स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ॥ स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥

फलका देने वाला है, इससे तो यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर कर्मोंके वशीभूत है, जैसा कर्म जिसने किया वैसा ही फल मिला; ईश्वर अपनी ओरसे कुछ नहीं कर सकता, इस बातसे यह निश्चय हुआ कि फलकी सिद्धि देनेवाला कर्म ही प्रधान रहा, इसलिये कर्म ही जब मुख्य ठहरा तो फिर ईश्वर क्या वस्तु है ? उसे तो ऐसा समझो कि जैसे बकरीके कण्ठके स्तन ॥ १४ ॥ जब कर्म ही प्रधान ठहरा तो इंद्रसे क्या प्रयोजन ? जब सब प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार भोग भोगते हैं, पूर्व जन्मके संस्कार जन्य जो कर्म हैं, उनको इंद्र भी किसी प्रकार नहीं घटा-बढ़ा सकता ॥१५॥ प्राणी स्वभावके वशीभूत हैं और स्वभावको वर्तें हैं। देवता, असुर, मनुष्य ये सब स्वभावके ही वशमें हैं और कर्मकी प्रवृत्ति भी स्वभावके अधीन है, तो फिर उस प्रवृत्तिमें ईश्वरकी कुछ आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥

यह जीव कर्मसे ही छोटे बड़े देहको पाता है और त्यागता है, कर्म ही शत्रु है, कर्म ही मित्र है, कर्म ही गुरु है, कर्म ही ईश्वर है॥१७॥इस लिये स्वभावमें स्थित होकर अपने कर्मोंका अनुष्ठान करे यही मुख्य है। यद्यपि देवताके नामसे यज्ञ, व्रत, पूजन, हवन क्रिया सब उसे करनेका ही नाम कर्म है, यद्यपि तुमको यह सन्देह हो कि विना देवताके हमारा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, देवता ही हमारा कार्य करता है, तो भी देवता कर्मके ही अधीन ठहरा, देखो! तुम किसी देवताका नाम लेकर अग्निपर दूधका पात्र रख दो, वह दूध औट जायगा और देवताका नाम नहीं भी लो तो भी औट जायगा, परंतु विना अग्निपर धरे किसी प्रकार नहीं औट सकता;तो मुख्य कर्म ही ठहरा, क्योंकि विना कर्म कुछ नहीं हो सकता.अनायासपूर्वक कर्मकी पूजा करे और जिससे जिस पुरुषका निर्वाह हो वही उसका देवता है॥१८॥ जो पुरुष एक पदा

देहानुच्चावचाञ्जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥ तस्मात् संपूजयेत्कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत्॥अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ १८ ॥ आजीव्यैकतरं भावंयस्त्वन्यमुपजीवति॥ न तस्माद्विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ १९ ॥ वर्त्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्योरक्षया भुवः ॥ वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाः कुसीदं तुर्यमुच्यते ॥ वार्त्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥ २१ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ रजसोत्पद्यते विश्वमन्योऽन्यं विविधं जगत् ॥ २२॥

र्थका सेवन करके दूसरे पदार्थका सेवन करते हैं वे पुरुष कभी कल्याणको नहीं पाते. जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषका सेवन करके कल्याणको नहीं पाती॥१९॥ हे पिता! चारों वर्णोंको चाहिये कि अपने अपने धर्मपर आरूढ रहें. ब्राह्मणको चाहिये वेद पढ़े और उसीसे अपनी आजीविका करे, क्षत्रियको चाहिये कि पृथ्वीकी रक्षा करे, वैश्य व्यापारादिसे अपना उदर पूर्ण करे और शूद्रको चाहिये कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवा करके अपना उदर पूर्ण करे॥ २०॥ खेती, वाणिज्य, गोरक्षा और व्याज लेना यह चार प्रकारकी वैश्यकी जीविका है. ॥ २१ ॥ हे पिता! ऐसा कभी मत समझना कि हमारी गायोंकी वृद्धि और आजीविका इन्द्रके ही आधीन है, क्योंकि सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन्हीं तीन गुणोंसे विश्वका पालन उत्पत्ति नाश होता है, इस रजोगुणसे स्त्री पुरुष मिलके त्रिविध जगत् उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥

रजोगुणकी प्रेरणासे मेघ सर्वत्र स्थानोंपर जल वर्षाते हैं, उसी जलसे प्रजाका जीवन होता है, इन्द्र इसमें क्या कर सकता है ? ॥ २३ ॥ हमारे तो पुर, देश, नगर, ग्राम, घर कुछ भी नहीं है. हे तात ! केवल वन ही हमारा घर है और सदा वन और पर्वतोंमें हमारा वास है ॥ २४ ॥ इसलिये गौ, ब्राह्मणकी सेवा करनी उचित है और पर्वतोंका पूजन करना चाहिये जिससे हमारी गायोंका और हमारा पालन पोषण हो । सो हमारे समीप सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोवर्द्धन पर्वत है, उसीके यज्ञका आरम्भ करो, जो इन्द्रके यज्ञके लिये सामग्री इकट्ठी की उसी सामग्रीसे गोवर्द्धनके यज्ञका प्रारम्भ करो ॥ २५ ॥ खीरसे आदि लेकर दालतक अनेक अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाओ, गेहूँकी पूरी कचौरी, उड़द, मूँगकी दाल, कढ़ी, पकौरी, रायता, चुनौरी, शाक, वासमतीके चावलोंका भात, दूध,दही, रबड़ी, मलाई और सब गायोंका

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः॥प्रजास्तैरेव सिद्ध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥ २३ ॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ॥ वनौकसस्तात नित्यं वनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥ तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ॥ य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥ पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ॥ संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥ हूयन्तामग्नयः सम्यग्ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ अन्नं बहुगुणं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ॥ यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥ स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ॥ प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥ २९ ॥ एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ॥ अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥

दूध इकट्ठा करो ॥ २६ ॥ वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर हवनकी सामग्री मँगाकर अग्निमें होम कराओ और उन ब्राह्मणोंको भांति भांतिके अन्न गोदान दक्षिणा दो और अलंकार पहिनाओ ॥ २७ ॥ और दीन भिखारी कुत्ते चांडालसे आदि लेकर पतिततकको यथायोग्य भोजन कराओ, गायोंको घास दो, गोवर्द्धन पर्वतको बलिदान दो ॥ २८ ॥ अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण पहिन चन्दनका तिलक लगाय नये नये वस्त्र धारण करके श्रृङ्गार बनाओ; गौ, ब्राह्मण, अग्नि, पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥ २९ ॥ हे पिता ! मेरा तो यह मत है आगे आपकी इच्छा हो सो कीजिये । यह गौ, ब्राह्मण और गोवर्द्धन पर्वतका यज्ञ मुझको तो अत्यन्त प्रिय है ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् इन्द्रका गर्व दूर करनेके लिये कालरूप भगवान्का वचन सुनकर नन्दादिकगोपोंने और सब ब्रजवासियोंने परस्पर कहा कि,हे पुत्र! मैं तेरा वचन किसी प्रकार नहीं फेर सकता और न कोई और फेर सके, जो बात तुझको अच्छी लगे हम सब उसीमें प्रसन्न हैं, इस बातको सुनकर बड़े बड़े जो वृद्ध गोप थे, वे कहने लगे कि,कृष्ण सत्य कहता है, हमारा इन्द्रसे क्या प्रयोजन है? हमको तो नदी,पहाड़,वन सदा बने रहें॥३१॥हे राजन्! जैसे जैसे मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा उसी प्रकार सब ब्रजवासी प्रातःकाल ही उठ अपनी अपनी पूजनकी सामग्री थालों परातोंमें धर धरकर अच्छे अच्छे वेदपाठी ब्राह्मणोंको बुलाय गायोंको आगे कर स्वस्तिवाचन कराये नन्दरायजी भी कराय गायोंको हरी हरी दूब डलवाय पर्वतके चारों ओर अगर, तगर, चन्दन, कपूर, केशर, कस्तूरी जलमें मिलाय गिरिराजपर छिड़कवाय फिर गिरिराज गोवर्द्धनकी परिक्रमा करते भये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ फिर धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन,

श्रीशुक उवाच ॥ कालात्मना भगवता शक्रदर्पजिघांसया ॥ प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥३१॥
तथा च व्यदधुः सर्वं यथाऽऽह मधुसूदनः ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥ ३२ ॥ उपहृत्य बलीन्
सर्वानादृता यवसं गवाम् ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥ अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य
स्वलङ्कृताः ॥ गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्विजाशिषः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं
गतः॥ शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥ ३५ ॥

अक्षत, पान, सुपारी गिरिराजके आगे धर आरती कर मिष्टान्नके ढेरके ढेर चढ़ाने लगे । इतनी मिठाई चढ़ी कि सम्पूर्ण पर्वत ढक गया और दूध, दही, घृत इतना चढ़ाया कि नदियें बहने लगीं और जहां तहां अनेक रंगके थानके थान तान दिये, उस समय गिरिराज ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे, मानो भगवान विराट् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलनेको आये हैं, उस अद्भुत शोभाको देखकर ब्रजवासी प्रसन्न हो होकर गिरिराजकी प्रदक्षिणा देने लगे उस समय सुन्दर गोपोंकी स्त्रियें कोमलाङ्गी जिनसे पांवों नहीं चला जाता था वह गाड़ियों, रथोंमें विराजमान थीं और बड़े बड़े चलनेवाले बैल उन रथ और गाड़ियोंमें जुत रहे थे और वह श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्र गाती चली जाती थीं और जहां कहीं मार्गमें ब्राह्मण मिल जाते थे उनको दक्षिणा दे देकर आशीर्वाद लेती थीं ॥ ३४ ॥ वहां ब्रजवासियोंकी प्रतीति

रजोगुणकी प्रेरणासे मेघ सर्वत्र स्थानोंपर जल वर्षाते हैं, उसी जलसे प्रजाका जीवन होता है, इन्द्र इसमें क्या कर सकता है ? ॥ २३ ॥ हमारे तो पुर, देश, नगर, ग्राम, घर कुछ भी नहीं है. हे तात ! केवल वन ही हमारा घर है और सदा वन और पर्वतोंमें हमारा वास है ॥ २४ ॥ इसलिये गौ, ब्राह्मणकी सेवा करनी उचित है और पर्वतोंका पूजन करना चाहिये जिससे हमारी गायोंका और हमारा पालन पोषण हो । सो हमारे समीप सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोवर्द्धन पर्वत है, उसीके यज्ञका आरम्भ करो, जो इन्द्रके यज्ञके लिये सामग्री इकट्ठी की उसी सामग्रीसे गोवर्द्धनके यज्ञका प्रारम्भ करो ॥ २५ ॥ खीरसे आदि लेकर दालतक अनेक अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाओ, गेहूँकी पूरी कचौरी, उड़द, मूँगकी दाल, कढ़ी, पकौरी, रायता, चुनौरी, शाक, वासमतीके चावलोंका भात, दूध,दही, रबड़ी, मलाई और सब गायोंका

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः॥प्रजास्तैरेव सिद्ध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥ २३ ॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ॥ वनौकसस्तात नित्यं वनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥ तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ॥ य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥ पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ॥ संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥ हूयन्तामग्नयः सम्यग्ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ अन्नं बहुगुणं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ॥ यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥ स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ॥ प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥ २९ ॥ एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ॥ अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥

दूध इकट्ठा करो ॥ २६ ॥ वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर हवनकी सामग्री मँगाकर अग्निमें होम कराओ और उन ब्राह्मणोंको भांति भांतिके अन्न गोदान दक्षिणा दो और अलंकार पहिनाओ ॥ २७ ॥ और दीन भिखारी कुत्ते चांडालसे आदि लेकर पतिततकको यथायोग्य भोजन कराओ, गायोंको घास दो, गोवर्द्धन पर्वतको बलिदान दो ॥ २८ ॥ अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण पहिन चन्दनका तिलक लगाय नये नये वस्त्र धारण करके शृङ्गार बनाओ; गौ, ब्राह्मण, अग्नि, पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥ २९ ॥ हे पिता ! मेरा तो यह मत है आगे आपकी इच्छा हो सो कीजिये । यह गौ, ब्राह्मण और गोवर्द्धन पर्वतका यज्ञ मुझको तो अत्यन्त प्रिय है ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् इन्द्रका गर्व दूर करनेके लिये कालरूप भगवान्का वचन सुनकर नन्दादिकगोपोंने और सब ब्रजवासियोंने परस्पर कहा कि,हे पुत्र! मैं तेरा वचन किसी प्रकार नहीं फेर सकता और न कोई और फेर सके, जो बात तुझको अच्छी लगे हम सब उसीमें प्रसन्न हैं, इस बातको सुनकर बड़े बड़े जो वृद्ध गोप थे, वे कहने लगे कि,कृष्ण सत्य कहता है, हमारा इन्द्रसे क्या प्रयोजन है? हमको तो नदी,पहाड़,वन सदा बने रहें॥३१॥हे राजन्! जैसे जैसे मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा उसी प्रकार सब ब्रजवासी प्रातःकाल ही उठ अपनी अपनी पूजनकी सामग्री थालों परातोंमें धर धरकर अच्छे अच्छे वेदपाठी ब्राह्मणोंको बुलाय गायोंको आगे कर स्वस्तिवाचन कराये नन्दरायजी भी कराय गायोंको हरी हरी दूब डलवाय पर्वतके चारों ओर अगर, तगर, चन्दन, कपूर, केशर, कस्तूरी जलमें मिलाय गिरिराजपर छिड़कवाय फिर गिरिराज गोवर्द्धनकी परिक्रमा करते भये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ फिर धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन,

श्रीशुक उवाच ॥ कालात्मना भगवता शक्रदर्पजिघांसया ॥ प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥३१॥ तथा च व्यदधुः सर्वं यथाऽऽह मधुसूदनः ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥ ३२ ॥ उपहृत्य बलीन् सर्वानादृता यवसं गवाम् ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥ अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलङ्कृताः ॥ गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्विजाशिषः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः॥ शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥ ३५ ॥

अक्षत, पान, सुपारी गिरिराजके आगे धर आरती कर मिष्टान्नके ढेरके ढेर चढ़ाने लगे। इतनी मिठाई चढ़ी कि सम्पूर्ण पर्वत ढक गया और दूध, दही, घृत इतना चढ़ाया कि नदियें बहने लगीं और जहां तहां अनेक रंगके थानके थान तान दिये, उस समय गिरिराज ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे, मानो भगवान् विराट् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलनेको आये हैं, उस अद्भुत शोभाको देखकर ब्रजवासी प्रसन्न हो होकर गिरिराजकी प्रदक्षिणा देने लगे उस समय सुन्दर गोपोंकी स्त्रियें कोमलाङ्गी जिनसे पांवों नहीं चला जाता था वह गाड़ियों, रथोंमें विराजमान थीं और बड़े बड़े चलनेवाले बैल उन रथ और गाड़ियोंमें जुत रहे थे और वह श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्र गाती चली जाती थीं और जहां कहीं मार्गमें ब्राह्मण मिल जाते थे उनको दक्षिणा दे देकर आशीर्वाद लेती थीं ॥ ३४ ॥ वहां ब्रजवासियोंकी प्रतीति

करानेके लिये श्रीकृष्णने नया कौतुक एक और किया, अपना दूसरा रूप और प्रगट किया कि मैं ही हूँ गोवर्द्धन पर्वत, अतिशय बृहद्व शरीर, बड़ी लम्बी लम्बी भुजायें, बड़ा चौड़ा लम्बा मुख, अखण्ड प्रकाश, महास्थूल जङ्घा और जानू और शैलके शिखरके समान शीश, रत्नजटित मुकुट धरे, आभूषण पहिरे, कंठमें वनमाला पीतांबर धारण किये गिरिराजकी कन्दरामेंसे निकलकर बोले ॥ ३५ ॥ फिर तो सब गोप गोपी भोजनके थाल और परातें उठा उठा गिरिराजको पकड़ाते जाते थे और वह प्रसन्न हो हो खाते थे और प्रत्येक भोजनकी प्रशंसा भी करते थे,निदान जो कुछ पकवान मिठाई नन्दादिक ब्रजवासी ले गये थे उस सबको निर्वार प्रसादमात्र छोड़ दिया, तब तो श्रीकृष्णचन्द्र सबसे पुकार कर कहने लगे कि हे पिता ! भ्रातृगण ! देखो गिरिराजने आज कैसा प्रत्यक्षरूपसे दर्शन दिया और

तस्मै नमो व्रजजनैः स चक्रे आत्मनाऽऽत्मने ॥ अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥ ३६ ॥ एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः ॥ हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥३७॥ इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥ यथा विधायते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० इन्द्रमखभङ्गो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तदाऽऽत्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥ गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥

तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, देखा आपने गिरिराजका कौतुक ? कभी इन्द्रने भी इस प्रकार प्रगट होकर दर्शन दिया था और अपने हाथसे इस प्रकार भोजन किया था ? ॥ ३६ ॥ यह गोवर्द्धननाथ अपने पूजनेवालोंपर सदा दयादृष्टि रखते हैं और जो कोई वनवासी इनका तिरस्कार करनेवाले हैं उनको सिंह सर्पादिक रूपसे कालकौर कर लेते हैं इसलिये अपने और गायोंके मङ्गलार्थ इनको वारंवार नमस्कार और दण्डवत् करो ॥ ३७ ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण गोप वासुदेव भगवान्‌की आज्ञासे भलेप्रकार यज्ञ करके श्रीकृष्णचन्द्रको सङ्ग लेके गोवर्द्धनसे ब्रजको आगये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ दोहा–पच्छिसमें ब्रजपर चढो, इन्द्र खायकर खार । हरि ब्रजकी रक्षा करी, करपर गिरिवर धार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! इन्द्रने

ब्रजमें अपनी पूजाका लोप देखकर श्रीकृष्ण भगवान् ही जिनके नाथ हैं उन नन्दादिक ब्रजवासियोंको अपना शत्रु समझ अत्यन्त कोप किया कि क्या कारण मेरी पूजा छोड़कर गोवर्द्धनकी पूजा की * ॥ १ ॥ उसी समय प्रलय करनेवालोंमें मुख्य सांवर्तक नाम गणको बुलाकर आज्ञा दी "मैं ही इन्द्र हूँ" ऐसे अभिमानी इन्द्रने महाक्रोध करके अत्यन्त कठोर वचन कहा ॥ २ ॥ "अहो ! बड़े आश्चर्यकी बात है, वनके रहनेवाले गँवार गायोंके चरानेवाले, जातिके ग्वालियोंको लक्ष्मीका कैसा मद हुआ है, जिन्होंने मनुष्य कृष्णका आश्रय लेकर (मैं सुराधीश इन्द्र हूँ) मेरा अपराध किया और कुछ आगा पीछा न विचारा सत्य है मूर्ख कहीं ज्ञान सिखानेसे ज्ञानी हो सकता

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम् ॥ इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥ यथाऽदृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नाम नौनिभैः ॥ विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥ येषां श्रियाऽवलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ॥ धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून्नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥

है ? ॥ ३ ॥ जो दृढ़नाम करके नौकाके सदृश यह कर्ममय यज्ञ है, इससे आत्माका कल्याण होता है, उस आत्मविद्याको छोड़कर हठकी करनीपर बैठ इस संसारसमुद्रके पार होना सहजमें ही चाहता है ॥ ४ ॥ वह वाचाल, मूर्ख, अज्ञानी किसीकी बातको नहीं मानता और अपने आपको बड़ा पंडित और ज्ञानी जानता है और ऊंच नीचको कुछ नहीं पहिचानता । ऐसे छोटी अवस्थावाले मूर्ख मनुष्य श्रीकृष्णका आश्रय ले उन गँवार ग्वालिनियोंने सब संसारमें मेरी अवज्ञा की ॥ ५ ॥ लक्ष्मीके मदके मतवाले गोप कृष्णके सिखाने बुझानेसे हमें इन

---

* **शंका**--इन्द्रकी विनयसे भगवान्ने पृथ्वीमें अवतार लिया था सो इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों की ?

उत्तर--भगवान्की प्रिया जो देवी थी उसका अनादर इन्द्र अपने अभिमान और अज्ञानसे नित्य किया करता था, उस अपने इन्द्रके किये अनादरको स्मरण करके और अपना पक्षपाती श्रीकृष्णको समझकर प्रथम इन्द्रका उपद्रव देवीने नहीं किया, उस समय तो सहन कर लिया फिर पीछे श्रीकृष्णका पक्षपात कर देवीने इन्द्रको मोहित कर लिया, मोहको प्राप्त होकर इन्द्र उन्मत्त हो भगवान्को भूल गया और ब्रजके ऊपर प्रलयके करनेवाले मेघोंको भेजकर मूसलधार जल वर्षाया, यह कारण था ॥

गँवारोंने कुछ न समझा और हमारा तिरस्कार करके यज्ञभाग पर्वतको दिया, उस नाचनेवाले कृष्णका भरोसा करके अपने प्राणोंका कुशल चाहें तो तुम सबके गर्वका और गायोंका नाश करो ॥ ६ ॥ और ठौर वर्षनेका कुछ काम नहीं, केवल चौरासी कोस ब्रजपर ही ऐसी वर्षा करो कि गोवर्धन पहाड़का खोजमात्र भी न रहे,और गाय बछड़ोंका तो ऐसा विनाश करना कि उनका कोई नामलेवा और पानीदेवा भी न रहे, लाख वे हाय हाय करें परन्तु तुम कुछ दया चित्तमें मत लाना, क्योंकि जैसा उन्होंने किया है उस अपनी करणीका फल तो भोगें, तुम किसी प्रकारका सन्देह मत करना, मैं भी तुम्हारे पीछे २ ऐरावत हाथीपर चढ़ देवताओंकी सेना समेत और सब प्रलय करनेवाले मेघोंको और उनचास ४९ मरुद्गण पवनोंको भी साथ लाऊंगा, ब्रज तो क्या वहांकी भूमितक बहा दूँगा फिर देखूँ जगत्में किसका सामर्थ्य है जो

अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ॥ मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं मघवता ऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ॥ नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥ विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ॥ तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥ स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ॥ जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नता ॥ १० ॥ अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ॥ गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ११ ॥

ब्रजवासियोंकी रक्षा करें ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! मेघोंने इसप्रकार इन्द्रकी आज्ञा पाय मुक्तबंध हो नंदरायके गोकुलपर बलसे बड़ी वर्षा करनेलगे ॥ ८ ॥ चारों ओरसे घटा घिर आयी, बिजली चमकने लगी, बादलोंके गर्जनेका गम्भीर शब्द होने लगा, तीव्र मरुद्गणोंने मेघोंको चलायमान कर ओलोंकी झड़ी लगा दी और मूशल धार वर्षा होने लगी ॥ ९ ॥ वर्षाकी धारा हाथीके शुण्डके समान मोटी बादलोंमेंसे अखण्ड गिरती थी, जिससे समस्त ब्रजमण्डल जलमें डूब गया और चारों ओरसे बादलोंके समूहके समूह उमड़ते चले आते थे, ऊँचे नीचे गाढ़ गढ़ोल और पृथ्वी कहीं नहीं दिखायी देती थी ॥ १० ॥ बड़े वेगकी वर्षासे और महाप्रचण्ड पवनसे पशु पक्षी सब थर थर कांपने लगे और गोप गोपी जाड़के मारे अत्यन्त दुःखी हो हाय हाय ! करते थर थर कांपते श्रीगोविन्द कृष्णकी शर

णमें गये ॥ ११ ॥ मूसलधार जो जल वर्षा तो उससे पीड़ित होकर गायें अपना शिर नीचे किये बछड़ोंको नीचे लिये थर थर कांपती थीं और गोपियें गिरती पड़ती भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट जाकर बोलीं ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे सामर्थ्यवान ! हे भक्तहितकारी ! हे गोकुलनाथ ! इस महाक्रोधी इंद्रसे इस अपने गोकुलकी और हमारी रक्षा करो ॥ १३ ॥ जब बड़ी बड़ी शिलायं ओलोंकी आकाशसे गिरने लगीं, उनसे बेसुध और व्याकुल गोकुलवासियोंको देखा, तब सबके दुःख दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने जाना कि यह सब कौतुक उसी महाक्रोधी इन्द्रके हैं ॥ १४ ॥ विना वर्षाऋतुके जो यह महाभयानक शिलाओंकी वर्षा हो रही है और महाप्रलयकीसी प्रचण्ड पवन चल रही है, केवल इसका यही कारण है कि मैंने जो इसके यज्ञको भङ्ग कर दिया और इसकी

शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ॥ वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ॥ त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३ ॥ शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ॥ निरीक्ष्य भगवान् मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥ १४ ॥ अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ॥ स्वयागे निहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥ तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ॥ लोकेशमानिनां मौढ्याद् हरिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥ नहि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः॥मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥

पूजा व्रजसे उठा दी इसीसे इन्द्र हमारे विनाशके लिये मूसलधार पानी वर्षा रहा है ॥ १५ ॥ इस कारण अब मैं अपने सामर्थ्यसे इस महाघोर वर्षाका उपाय करूँगा और उस अज्ञानी लोकपाल और अभिमानी इन्द्रादिक देवताओंको जो लक्ष्मीका मद हो गया है उस मदको हरूँगा ॥ १६ ॥ मेरी भक्ति अथवा सत्त्वगुण जिन देवताओंके हृदयमें व्याप रहा है और मैं ही उनका ईश्वर हूँ । इसलिये उन देवताओंको अपने पराक्रमका और बलका गर्व किसी प्रकार होना नहीं चाहिये क्योंकि अभिमानमें भक्ति और प्रेम कहां ? इसलिये जब तक उन अभिमानियोंका मानखण्डन न होगा तबतक वह मेरा मान न करेंगे और मेरा मान किये विना उनका कल्याण कहां ?॥१७।

इससे वह उपाय करूँ जो वे मेरी शरण आवें, क्योंकि मेरा नाम गोकुलनाथ है,जब मैं ही गोकुलका नाथ होकर गोकुलकी रक्षा न करूँगा तो और कौन रक्षा करने आवेगा ? क्योंकि सब गोकुलवासी मुझको ही अपना प्राणआधार समझते हैं और मुझको ही अपना तन, मन, धन जानते हैं। यह सब मेरे ही दर्शनकी अभिलाषा करते रहते हैं, मेरे समान और किसी दूसरेको नहीं मानते ॥ १८ ॥ यह कह नटवर रूप धर लीलामात्र एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड़ बायें करकी कनअँगुलीपर धर, ऊपरको उठाकर ब्रजमण्डलपर छत्रके समान तान दिया, जैसे कोई बालक छत्राकको उखाड़कर ऊपरको उठा लेता है (यह वह छत्राक है जिसको बालक सांपकी छत्री कहते हैं) ॥ १९ ॥ जब भगवान्‌ने पर्वतको उठा लिया तब पीछे गोपोंसे कहा कि हे भैया ! हे पिता ! हे ब्रजवासियो ! अपनी अपनी गाय

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्॥गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः॥१८॥इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्॥दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः॥१९॥अथाह भगवान् गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः ॥ यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥२०॥ न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ॥ वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥ २१ ॥ तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ॥ यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः॥ २२ ॥ क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ॥ वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥ २३ ॥

बछड़े बाल बच्चोंसमेत सुखसे इस पर्वतके नीचे आ जाओ ॥२०॥ हे ब्रजवासियो ! अपने मनमें यह मत समझना कि कृष्णके हाथसे गिरि गिर जायगा, यह सब बाबा नन्दका प्रभाव है, इसमें मेरा कुछ पराक्रम नहीं है, यहां पवन पानीका कुछ खटका नहीं, अपने मनमें पूर्ण विश्वास करके गिरिकी छायामें चले आओ, मैंने तुम लोगोंकी रक्षा करनेके लिये गोवर्द्धनको हाथपर उठा लिया है; जबतक बहुत वर्षा हो तबतक इसके नीचे सुखसे वास करो ॥ २१ ॥ जिन लोगोंको श्रीकृष्णके बलवीर्यका पूरा भरोसा था उन्होंने गाय बछड़े गाड़ी पुरोहितादिक जिसको पाया उसको अपने सङ्ग ले नन्द उपनन्द आनन्दपूर्वक पर्वतके नीचे गढ़ेलेमें घुस गये, उस समय सब श्रीकृष्णके मुखकी ओरको निहार रहे थे, न किसीको भूख थी न प्यास थी ॥ २२ ॥ उस दिन ब्रजवासी भूख प्यास तज चकोरकी नाईं श्रीकृष्ण

चन्द्रके चन्द्रमुखको ही देखते रहे और श्यामसुन्दर भी सात दिनतक पर्वतको धारण किये एक ही ठौर जहांके तहां खड़े रहे, एक तिलभर भी चरणको नहीं सरकाया ॥ २३ ॥ और मेघ उसी प्रकार मूशलधार जल बरसाता रहा, ओले पड़ते रहे, चपला चमकती रही परंतु ब्रजका कुछ नाश नहीं हुआ, यह बात सुन इन्द्र चकित हो गया और कृष्णके योगबलका प्रभाव देख अपने मनमें बड़ा आश्चर्य मानने लगा और अपनी प्रतिज्ञाकी अवज्ञा देख अत्यन्त व्याकुल हुआ और सब अज्ञान अभिमान धूलमें मिल गया, मेघोंको वर्जने लगा कि अब तुम्हारा बल यहां नहीं चलेगा ॥ २४ ॥ जब आकाशमें बादल छिन्न भिन्न हो गये, सूर्यनारायण उदय हुए, भयानक वर्षा और पवन चलनेसे बन्द हो गयी, तब गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्णमुरारीने गोपोंसे कहा कि ॥ २५ ॥ हे गोपो ! स्त्री, बालक, गाय, बछड़ोंको लेकर

कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ॥ निस्स्तम्भो भ्रष्टसंकल्पः स्वान्मेघान् स न्यवारयत् ॥ २४ ॥ खंव्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ॥ निशाम्योपरतं गोपान् गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ॥ उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ॥ शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७ ॥ भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ २८ ॥ तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः ॥ गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः ॥ कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥ ३० ॥

तुम इस पर्वतके नीचेसे बाहर निकलो, डरो मत । अब पवन, वर्षा थम गयीं, नदियोंका जल भी उतर गया ॥ २६ ॥ तब बांकेविहारीकी मधुरवाणी सुन सब गोप अपने अपने बाल बच्चे और गायोंके समूहोंको ले लेकर और गाड़ियोंमें सब वस्तु धर धरकर स्त्री, बालक, वृद्ध सब सहज सहजमें निकले ॥ २७ ॥ सर्व सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सब ब्रजवासियोंके सम्मुख पर्वतको जहांका तहां रख दिया ॥ २८ ॥ प्रेममें प्रफुल्लित हो सब ब्रजवासी परस्पर आकर यथायोग्य मिलने लगे और स्नेहभरी गोपियें आनन्दपूर्वक दही, अक्षत, जलसे पूजन कर मांगलिक आशीर्वाद देने लगीं ॥ २९ ॥ यशोदा, रोहिणी,नन्दराय और बलियोंमें बलवान् श्रीबलदेवजी महाराज श्रीकृ

ष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर स्नेहमें मग्न होकर वारंवार आशीर्वाद देते थे ॥ ३० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! अन्तरिक्षमें देवताओंके समूह, साध्यगण, सिद्ध, गंधर्व, चारण सन्तुष्ट हो हो स्तुति पढ़ पढ़ फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! स्वर्गमें देवता शंख और दुन्दुभी बजाने लगे। तुम्बुरु आदि गंधर्वपति श्रीमुकुन्द भगवान्‌के गुणानुवाद गाने लगे ॥ ३२ ॥ फिर नन्द उपनन्द बलराम सहित मनमोहनप्यारे मित्रोंको संग ले ब्रजमें आये और गोपी परमानन्द देनेवाली वनमाली श्रीकृष्णकी मनोहर लीला गातीं चली आती थीं। इस प्रकार आनन्दसहित सब अपने अपने घर आये ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दश

दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः॥ तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव॥३१॥ शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः॥ जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥३२॥ ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्स्वगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः॥ तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥३३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० गोवर्द्धनोद्धरणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते॥ अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै॥ कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ॥ कथं बिभ्रद् गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥ ३ ॥

मस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोकुलरक्षानिरूपणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ दोहा–छब्बिसमें हरिके चरित, विस्मय युक्त निहार। नन्द गर्गके वचन कह, वरणों यश विस्तार॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! गोपोंने गोवर्द्धन उठाना और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अनेक अनेक कर्म और प्रभाव देख बड़ा आश्चर्य मान नन्दरायजीके पास आकर कहा ॥१॥ कि इस बालकके बड़े अद्भुत चरित्र हैं, इन्हें देखकर हमको संदेह होता है कि अपने स्वरूपके अयोग्य इस ग्रामके रहनेवाले पुरुषोंमें इनका जन्म होना कैसे सम्भव है ? ॥ २ ॥ क्योंकि जो सात वर्षके बालकने एक हाथसे लीलापूर्वक जिस प्रकार हाथी कमलको उठा लेता है, उसी प्रकार पर्वतको उठा लिया ॥ ३ ॥

और नेत्र मूँदे हुए अति छोटी अवस्थामें इस बालकने बड़े वेगवाली पूतनाके स्तनोंको प्राणसहित पान किया था, जैसे काल जीवन अथवा आयुर्बलको पीता है ॥ ४ ॥ देखो ! गाड़ीके नीचे पालनेमें सोते हुए रोते रोते जो इस तीन महीनेके बालकने ऊपरको पांव उछाले तो चरणकी ठोकर लगकर गाड़ी उलटकर कैसी गिरी थी ? ॥ ५ ॥ और देखो ! जब एक ही वर्षका श्रीकृष्ण आंगनमें बैठा खेल रहा था, तब आकाशमें दैत्य तृणावर्त्त इसे हरकर ले गया, उस दैत्यका गला घोटकर इसने कैसा मारा ? ॥ ६ ॥ और देखो ! कभी जब कृष्णने माखन चुराया था, तब यशोदाजीने इसे ऊखलसे बांध दिया और इसने वृक्षके बीचमें जाकर हाथोंसे उनको कैसा उखाड़ डाला? ॥७॥

तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ॥ पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥ ४ ॥हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक ॥ अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥ एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ॥ दैत्येन यस्तृणावर्तमहन् कण्ठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥ क्वचिद्धैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ॥ गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥ ७ ॥ वने संचारयन् वत्सान् सरामो बालकैर्वृतः ॥ हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥ वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया ॥ हत्वा न्यपातयत् तेन कपित्थानि च लीलया ॥ ९ ॥ हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः ॥ चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रलम्बं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ॥ अमोचयद्व्रजपशून् गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥ ११ ॥ आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ॥ प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥

और देखो ! जब वनमें बलदेवजी सहित बछरे चराते थे उस समय बकासुर इनके मारनेको आया, उसको दोनों हाथोंसे चोंच पकड़ कैसे चीर डाला ? ॥ ८ ॥ देखो ! बछड़ोंमें बछड़ेका रूप धरकर मारनेकी इच्छासे आये हुए वत्सासुरको मार उसकी देहको लीलापूर्वक कैथके वृक्षपर कैसा पटका था ? और लीलासे ही वह वृक्ष भी गिर गया ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त बलदेवजी सहित धेनुकासुरको मार और उसके संगियोंको भी मार फल जिसमें पक रहे, उस तालवनको निर्भय कर दिया ॥ १० ॥ फिर महाबलवान् बलदेवजीसे अत्यन्त भयानक प्रलम्बासुर दैत्यको मरवाया और ब्रजमें जो अग्नि लगी थी, उससे पशु तथा गोपोंको छुड़ा दिया ॥ ११ ॥ फिर देखो ! इसी कृष्णने अतिभया

नक विषवाले कालियनागको दण्ड दे उसके मदको दूर कर बलात्कार दहमेंसे निकाल यमुनाको निर्विष कर दिया ॥ १२ ॥ हे नन्द ! हम सब व्रजवासियोंका इनमें बड़ा अनुराग है, अर्थात् इतना प्यार हो गया है कि छुटायेसे छूटना अत्यन्त कठिन है और इन श्रीकृष्णका भी हममें स्वाभाविक प्यार है, अर्थात् यह श्रीकृष्ण सबके आत्मा हैं, यह शंका होती है ॥ १३ ॥ क्योंकि सात वर्षका बालक इतना बड़ा भारी पर्वत उठा ले; यह बड़ा ही आश्चर्य है ? इसलिये हे व्रजनाथ ! तुम्हारे पुत्रमें हमको शंका उत्पन्न होती है कि कदाचित् परमेश्वर न हों ? इस कारण हम इसका विचार करेंगे कि तुम्हारे कैसा पुत्र हुआ है ॥१४॥ इस प्रकार गोपोंकी बातें सुनकर नंदजी बोले कि

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ॥ नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥ १३ ॥ क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ॥ ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥ १४ ॥ नन्द उवाच ॥ श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके ॥ एनंकुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥ १५ ॥ वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १६ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥१७॥ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥

संदेह करनेकी कुछ बात नहीं है,मैं इस बालककी जन्मपत्री लाता हूँ, जो कि गर्गाचार्यने बनायी है यह कहकर जन्मपत्री ले आये, और बोले कि हे गोपो! मेरी बात सुनो;जिससे इस बालकमेंसे तुम्हारी शंका मिट जायगी। गर्गाचार्यने इस बालकका नाम धरकर मुझे जो जो गुण बताये हैं सो श्रवण करो ॥ १५ ॥ इस बालकके तीन वर्ण हैं और युग युगमें देह धारण करता है, प्रथम इसका श्वेत वर्ण था, फिर रक्त और श्याम वर्ण हुआ और अब इसने कृष्णरूप धारण किया है ॥ १६ ॥ इस तुम्हारे पुत्रने पहले कभी वसुदेवके यहां जन्म लिया है, इसलिये जाननेवाले इसको श्रीमान् वासुदेव कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके नाम और रूप बहुत हैं, इसलिये जैसे जैसे इसमें गुण होंगे वैसे वैसे

कर्म करेगा और उन्हींके अनुसार नाम होंगे ॥ १८ ॥ ये तुम्हारा कल्याण करेंगें और गोप तथा गायोंको आनन्द देंगे, अधिक क्या कहें ? इस कृष्णकी सहायतासे तुम सम्पूर्ण कष्टोंसे सहजमें ही छूट जाओगे ॥ १९ ॥ हे ब्रजराज ! पहले तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्णने राजा सहित पृथ्वीमें चोरोंसे पीड़ित साधुओंकी रक्षा की थी, तब साधुओंने वृद्धिको प्राप्त हो चोरोंको जीत लिया था॥ २० ॥ जो बड़भागी पुरुष इन कृष्णसे प्रीति करते हैं, उनको वैरी सन्ताप नहीं देते; जिस प्रकार विष्णुभगवान्‌से रक्षित देवताओंको असुर नहीं सता सकते

एष वः श्रेय आधास्यत् गोपगोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेनव्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥ २० ॥ य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिंकुर्वन्ति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्याऽनुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥२३॥ इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ॥ दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः ॥ मुदिता नन्दमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः ॥ २४ ॥

॥२१॥ इस कारण हे नंद ! तुम्हारा यह पुत्र गुण, शोभा, कीर्ति, प्रभाव इत्यादिमें नारायणके समान है, अतः इसके कर्मोंमें आश्चर्य मत मानना ॥२२॥ इस प्रकार साक्षात् गर्गाचार्य मुझसे कहकर अपने घर को चले गये, उसी दिनसे बड़े-बड़े कार्य करनेवालोंमें श्रीकृष्णको मैं नारायणका अंश मानता हूँ ॥ २३ ॥ इस प्रकार ब्रजवासियोंने गर्गाचार्यका वचन नंदरायजीसे सुन प्रसन्न हो नंदजीकी पूजा की और

* शंका—नन्दजीसे गर्गमुनिने कहा कि, श्रीकृष्णके कर्मको हम जानते हैं संसारमें और कोई भी नहीं जानता, यह बड़े संदेहकी बात है, इससे यह ज्ञात होता है कि, गर्गमुनिने तो परम ज्ञानी थे इनके सिवाय और जो ऋषि मुनि थे, वह सब ब्राह्मण नहीं थे गर्गमुनिकी बातसे ऐसा जान पड़ता है।

उत्तर—सब ऋषि मुनियों का निरादर करके गर्गमुनि ऐसी बात कभी नहीं कह सकते, गर्गमुनिने (अहं) पदका यह अर्थ किया कि, हमारी जाति जितती है, संसारमें मुनि, ऋषि, गृहस्थ किसान सब श्रीकृष्ण भगवान्‌के कर्मको जानते हैं यह अर्थ अहंपदका किया, कुछ अपने अकेलेके लिये नहीं कहा।

श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी शंका दूर हो गई ॥२४॥यज्ञके नाशसे क्रोधित हो इंद्रने सात दिन-रात जब ब्रजपर मूसलाधार वर्षा की, उस समय ब्रजमें पत्थर पवनसे पीड़ित, ग्वालबाल पशु और स्त्रियोंको अपनी शरण आये देख जिन. भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दया आ गई और मुसकाकर जिस प्रकार बालक सर्पकी छत्रीको उखाड़ डालता है उसी प्रकार एक हाथसे गोवर्द्धनपर्वतको उखाड़ अपने हाथपर धारण कर ब्रजकी रक्षा की,वही इंद्रके मदको दूर करनेवाले गौवोंके इंद्र भगवान् वासुदेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों❋ ॥२५॥ इति श्रीभाषाभागवते महा-

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मवर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वाऽनुकम्प्युत्स्मयन् ॥ उत्पाट्यैकक-रेण शैलमबलोलीलोच्छिलीन्ध्रं यथा बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥ २५ ॥ इति श्रीभा० म० दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गर्गगीतनिरूणं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोवर्धने धृते शैले आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥ गोलोकादाव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥

पुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गर्गगीतनिरूपणं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥२६॥दोहा—सत्ताइस अध्यायमें,लख श्रीकृष्ण प्रभाव। गाय इंद्र अभिषेक पुनि, वरणों सहज स्वभाव ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर जो ब्रजकी रक्षा की थी, देवराज इंद्रने जाकर सब बात कमलयोनि ब्रह्माजीको सुनायी तब ब्रह्माजी बोले कि इंद्र ! तूने बड़ा अपराध किया पहले मैं भी उनके गोप, ग्वाल, बछड़े इत्यादि हरकर अपनी बूढ़ी दाढ़ी पर धूल डाल चुका हूँ। यह बात सुनकर स्वर्ग लोकसे सुरभी

❋ शंका—सौ १०० यज्ञ करनेवाले राजा इन्द्रका तिरस्कार करके सुरभी जो गायें हैं, इन्होंने अपना इन्द्र श्रीकृष्णको क्यों किया । इन्द्र तो तीन लोकमें एक ही है हमने आजतक दूसरा इन्द्र सुना नहीं फिर उन्होंने दूसरा इन्द्र क्यों किया ?

उत्तर—इन्द्रने गायोंका नाश करनेके लिये गोकुलमें बड़ी वर्षा की थी । गायोंको मारनेका विचार किया था इसलिये इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका विनाश हो गया । इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका नाश होनेसे सुरभियोंने अपना इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बनाया, क्योंकि गायोंने विचारा कि इन्द्र ऐसा चांडाल है जिसने अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये अपना धर्म नहीं देखा और गोहत्यासे भी नहीं डरा तो और दूसरे कामसे क्या डरेगा ? अबकी बार तो श्रीकृष्णचन्द्रने बचा लिया। यह दुष्ट ऐसा कर्म फिर कभी करेगा तो हमारी बछिया-बछरे सब विध्वंस हो जायेंगे और वंशका नाश हो जायगा, इसलिये श्रीकृष्ण भगवान्को अपना इन्द्र बनाया ।

गो और इंद्रलोकसे इन्द्र चले ॥१॥ और अपराध करनेके कारण अत्यन्त लज्जित हो इंद्रने एकांतमें आकर सूर्यके समान तेजवाले किरीटको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंसे लगाया ॥२॥ अमित तेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्रका प्रभाव जिस प्रकार कानोंसे श्रवण किया था, उसी प्रकार नेत्रोंसे देखा और उस समय 'त्रिलोकीका ईश्वर मैं हूँ।' यह मद भी जाता रहा, तब देवराज इन्द्र हाथ जोड़कर बोले ॥३॥ इन्द्रने कहा—तुम्हारा स्वरूप शुद्ध सत्त्वगुणी है अर्थात् एकरूप है, शांत-सर्वज्ञ हैं, रजोगुण-तमोगुणसे रहित है और मायाका जो कार्य अज्ञानसे जीवोंको लग रहा है, वही संसार है यह तुम्हारे स्वरूपमें नहीं है ॥ ४ ॥ हे ईश ! देहसम्बंध तुमको नहीं है, तो उस देहसम्बंधसे किये

विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः ॥ पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ॥ नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आह कृताञ्जलिः ॥३॥ इन्द्र उवाच ॥ विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ॥ मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥ कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः ॥ तथाऽपि दण्डं भगवान् बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥ पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ॥ हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥ ये मद्विधाऽज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ॥ हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥

हुए और अन्यदेहके कारण जो काम लोभादिक हैं वे कहांसे होंगे ? बहुधा ऐसे काम लोभादिक जो अज्ञानी पुरुषोंको होते हैं; तुम्हारे काम लोभादिकके तो नहीं हैं, परंतु तो भी धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका मद दूर करनेके लिए तुम दण्ड देते हो ॥ ५ ॥ तुम जगत्के पिता, गुरु और ईश्वर हो,नाश रहित दंडके ग्रहण करनेवाले कालरूप हो, जीवोंका हित करनेके लिए और अपनेको ईश्वर माननेवालोंका मान दूर करनेके लिए अपनी इच्छापूर्वक रूप धरकर लीला करते हो, तुम्हारी लीलामें ही हमारे मान दूर हो जाते हैं; लोकोंकी वाहवाहमें जीवोंका सत्यानाश हो जाता है ॥ ६ ॥ जो मुझ सरीखे अज्ञानी भी आपको जगत्का ईश्वर मानते हैं,वे भयके समय भी निर्भय आपका

दर्शन कर शीघ्र ही ईश्वरत्वका मद त्याग कर देते हैं और गर्वको छोड़कर सत्पुरुषोंकी और तुम्हारी भक्तिको करते हैं,तुम्हारी सहजकी चेष्टा है, वही दुष्टोंको दण्डवत् है ॥ ७ ॥ हे समर्थ ! ऐश्वर्यके मदमें डूबे हुए तुम्हारे प्रभावको न जान तुम्हारा अपराध करने वाले मूढ़चित्त मेरे ऊपर क्षमा करो । हे ईश्वर ! फिर मेरी ऐसी बुद्धि न हो, यही मैं प्रार्थना करता हूँ ॥८॥ हे अधोक्षज ! इस संसारमें तुम्हारा अवतार बड़ा भार जिनसे हो ऐसे सैन्य पालन करने वाले मुख्य सेनापतियोंको मारनेके कारण और तुम्हारे चरणोंका सेवन करनेवाले भक्तोंका कल्याण करनेके लिए है ॥ ९ ॥ ऐसे जो तुम भगवान् महात्मा पुरुष हो, तुम्हारे लिए नमस्कार है शुद्ध अंतःकरणके प्रकाशक

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ॥ क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ॥ चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥ स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥ मयेदं भगवन् गोष्ठनाशायासारवायुभिः ॥ चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥ त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो हतोद्यमः ॥ ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ॥ मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥

भक्तोंके रक्षक वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णचंद्र तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ १० ॥ अपने भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिए देह धरनेवाले और शुद्ध ज्ञानमूर्ति सर्वरूप सबके कारण रूप प्राणियोंके आत्मा तुमको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जब मेरा यज्ञ नाशको प्राप्त हुआ तब बड़ा क्रोध कर मुझ अज्ञानी अभिमानीने व्रजका नाश करनेके लिए वर्षा और पवन चलाकर करनेके अयोग्य कार्य किये ॥१२॥ यह आपने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया जो मेरा गर्व दूर कर दिया, उद्यम भी वृथा गया, तुम सबके ईश्वर आत्मा हो इसलिये मैं तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ ॥ १३ ॥ इस प्रकार जब देवराज इंद्रने स्तुति की तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर मेघके समान

गम्भीर वाणीसे इन्द्रके प्रति बोले ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे इन्द्र ! मैंने तेरे ऊपर अनुग्रह करनेके ही लिये यज्ञका विध्वंस किया है, क्योंकि तुम देवताओंका राज्य पाकर अचेत हो गये थे, अपना स्मरण करानेके लिये यह मैंने किया है ॥१५॥ क्योंकि ऐश्वर्यमद और धनमदसे अन्धे हुए पुरुष दंड हाथमें लिये यह मुझे नहीं देखते और जिसके ऊपर मैं कृपा करनेकी इच्छा करता हूँ उस पुरुषकी प्रथम संपत्ति हर लेता हूँ ॥ १६ ॥ इन्द्र अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, अहंकार त्याग कर मेरी आज्ञाका पालन करना और सावधान होकर अपने अधिकार पर रहना ॥ १७ ॥ इसके उपरांत जब इन्द्र स्तुति कर चुका तब उदारचित्त सुरभी गायें अपनी सन्तानसहित

श्रीभगवानुवाच ॥ मया तेऽकारि मघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्णता ॥ मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्रश्रिया भृशम् ॥१५॥ मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ॥ तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥ गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ॥ स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः ॥ १७ ॥ अथाह सुरभिः कृष्णमभिवाद्य मनस्विनी ॥ स्वसंतानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भवः ॥ भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ॥ भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥२०॥ इन्द्रं नस्त्वाऽभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा चोदिता वयम् ॥ अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः ॥ जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥ २२ ॥

आकर गोरूपी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार और सम्बोधन देकर कहा कि ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वके उत्पन्न करनेवाले ! अच्युत ! हे अखण्डरूप ! इन्द्रने तो हमें मारा ही था, परन्तु हे लोकोंके नाथ ! आपने बचाया ॥ १९ ॥ हे जगत्पति ! तुम हमारे श्रेष्ठ देवता हो और तुम्ही गौ ब्राह्मणोंके देवता हो और जो साधु हैं उनके कल्याणार्थ हमारे इंद्र होओ॥२०॥ ब्रह्माजीकी हमें आज्ञा हुई है,इस कारण इन्द्रपदवी देनेके लिये हम तुम्हारा अभिषेक करेंगी । हे विश्वके आत्मा ! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये तुमने अवतार लिया है ॥२१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुल भूषण परीक्षित् ! इस प्रकार कहकर श्रीकृष्णचन्द्रका,यह काम

धेनु अपने दुग्धसे अभिषेक करने लगी और ऐरावत हाथी की सूँड़से लाये आकाश गङ्गाके जलसे अभिषेक किया ॥२२॥ और इन्द्रने भी देवताओंकी प्रेरणासे देवर्षियोंके सहित भगवान्‌का अभिषेक किया और गोविन्द नाम धरा ॥ २३ ॥ और दशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उस समय तुंबुरू, नारदादि गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध चारण आकर लोकोंके पापोंको दूर करनेके लिये यश गाने लगे और अति आनंदित होकर देवांगनायें नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ इसके उपरांत देवताओंमें मुख्य देवता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति और अद्भुत फूलोंकी वर्षा करने लगे, उस समय तीनों लोक परम आनन्दको प्राप्त हो गये । फिर गो दुग्धसे पृथ्वीको भिगोने लगी ॥ २५ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविन्दाभिषेक किया, उस समय नदियाँ अनेक प्रकारके रसोंकी बहानेवाली हो

इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः ॥ अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥ तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुराङ्गनाः संननृतुर्मुदाऽन्विताः ॥ २४ ॥ तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो ह्यवाकिरंश्चाद्भुत पुष्पवृष्टिभिः ॥ लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन् पयोद्रुताम् ॥२५॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन् मधुस्रवाः ॥ अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥२६॥ कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन ॥ निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥ इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ॥ अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० इन्द्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

गयीं और वृक्षोंमें मदकी धारा चूने लगी बिना जोते खेत भी आप ही पकने लगे और पर्वतोंने अपनी गुफाओंमेंसे मणियोंको बाहर निकालकर धर दिया ॥ २६ ॥ हे कुरुकुलके आनन्ददाता परीक्षित् ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविन्दाभिषेक हुआ, उस समय क्रूरस्वभाववाले सिंहादिक जीवोंका भी वैरभाव दूर हो गया ॥२७॥ इस प्रकार गोकुलकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको गोविन्दाभिषेक कर वह इन्द्र देवताओंको सङ्ग ले स्वर्गको चला गया ॥२८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भा० टी० इन्द्रस्तुतिगोविन्दाभिषेक नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा-अट्ठाइसमैं नन्दको, लाये कृष्ण छुटाय ।। गोपोंको वैकुण्ठ सब, हित करि दियो दिखाय ।। श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! नन्दजीने एकादशीको निराहार व्रत करके भगवान्का पूजन किया, दूसरे दिन द्वादशी दो घड़ी थी उस समय पारण करनेके लिये अरुणोदयसे पहले रात्रिमें धर्मसत्रके बलसे स्नान करनेके कारण यमुनाको गये, तब नंदरायजीने आसुरीवेलाको न जानकर यमुनाजीमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ इसलिये वरुणका एक दैत्य सेवक उन्हें पकड़ वरुणके पास ले गया ॥ २ ॥ नंदरायजीको न देख जो गोप संग गये थे, वे हे कृष्ण! हे राम! इस प्रकार पुकारने लगे, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, पिताको वरुण ले गया यह बात

श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यांनिराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्यां द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम् ॥ अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥ चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥३॥ तदन्तिकं गतो राजन्स्वानामभयदो विभुः ॥ प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ॥ महत्या पूजयित्वाऽथ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥ वरुण उवाच ॥ अद्य मे निभृतो देह अद्यार्थोऽधिगतः प्रभो ॥ त्वत्पादभाजोभगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ॥ न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥

सुन अपने भक्तको अभयके देनेवाले वरुणके पास गये ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेसे बड़ा आनंद पाकर लोकोंके पालन करनेवाले वरुणजीने इंद्रियोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आये देख बड़ी पूजाकी सामग्रियोंसे पूजा करके कहा ॥ ४ ॥ वरुणजी बोले कि आज तुम्हारे दर्शन करनेसे मेरा जन्म सफल हुआ और आज ही मेरे मनोरथ भी सफल हुए। हे भगवन्! तुम्हारे चरणारविंदोंका भजन करते हैं, वे संसारके पार हो मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ परिपूर्णरूप, सम्पूर्ण जीवोंके साक्षी, जिनके समान

* शंका—भागवत में लिखा र कि नन्दजीने एकादशीका व्रत करके जब चार घड़ी पिछली रात रही तब भगवान्की पूजा करके यमुनामें स्नान करके गये, इसमें यह शंका होती है कि विना स्नान किये भगवान्का पूजन कैसे किया, क्योंकि, जो प्राणी विना स्नान किये भगवान्का पूजन करता है तो महादोषी होता है ?

उत्तर—महात्मा पुरुष भगवान्का पूजन ऐसे नहीं करते मानसिक पूजन करते हैं मानसिक पूजन में भगवान् प्रसन्न भी होते हैं, इसलिये नन्दजी मानसिक पूजन भगवान्का करके पीछे स्यान को गये ।

किसीका ऐश्वर्य नहीं, ऐसे भगवान्‌को नमस्कार है और जिनके स्वरूपमें लोकोंकी रचना करनेवाली माया नहीं सुनी जाती ॥ ६ ॥ धर्मकी महिमा और कार्यको नहीं जाननेवाला मूढ़ मेरा अनुचर तुम्हारे पिताको ले आया; वह अपराध क्षमा करो॥७॥हे श्रीकृष्ण ! मेरे ऊपर तुम अनुग्रह करनेके योग्य हो, हे गोविंद ! हे पितृवत्सल ! अपने पिताको तुम ले जावो ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप श्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जब वरुणजीने प्रसन्न किया तब अपने पिता और बंधु बांधवोंको आनंद देते वहांसे चले ॥ ९ ॥ जो प्रथम कभी देखनेमें न आया, ऐसा वरुणका ऐश्वर्य और श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी प्रीति देख नन्दरायजी

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ॥ आनीतोऽयं तव पिता तद् भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥ ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ॥ गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ॥ आदायागात् स्वपितरं बन्धूनां चावहन्मुदम् ॥ ९ ॥ नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ॥ कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ ते त्वौत्सुक्यधियो राजन् मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ॥ अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥ इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ॥ संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥ १२ ॥ जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ॥ उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥

अति आश्चर्य मान अपनी जातिके गोपोंसे कहने लगे कि प्रथम मुझे ले जाकर एक कोनेमें बैठा दिया । इसके उपरांत यह कृष्ण गया, तब इसे देख वरुणने नमस्कार करके पूजा की ॥१०॥ हे राजन् ! उत्कंठायुक्त बुद्धिसे ब्रजवासी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ईश्वर मान विचार कर कहने लगे कि, हे श्रीकृष्णचन्द्र ! क्या हमको वैकुण्ठधाम प्राप्त कराओगे ? ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रह्मस्वरूपका दर्शन करावेंगे ॥११॥ इस प्रकार सबके देखनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रजवासियोंका मनोरथ जान उसे पूर्ण करनेके लिये कृपा करके यह विचार करने लगे॥१२॥कि इस संसारमें प्राणी देहमें अहंकार, काम, कर्म, इत्यादिसे देवता, पशु,पक्षी आदि जो-जो योनि

हैं, उनमें भटकता फिरता है और अपना स्वरूप नहीं जानता ॥ १३ ॥ इस प्रकार करुणानिधान भगवान्‌ने विचार कर गोपादिक सब व्रजवासियोंको ब्रह्मस्वरूप दिखाया और इसके उपरांत मायासे परे जो वैकुण्ठधाम है उसका दर्शन कराया ॥ १४ ॥ अब ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करते हैं, सत्य अर्थात् बाधारहित ज्ञानस्वरूप है, अनन्त अर्थात् देखनेमें न आवे, ज्योति अर्थात् स्वयंप्रकाश है, गुणोंके निषेधमें सावधान मुनीश्वररूप उस रूपको देखते हैं ॥ १५ ॥ वह सम्पूर्ण व्रजवासी ब्रह्मस्वरूप देहमें प्राप्त होते ही मग्न हो गये, फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कृपा कर वहांसे निकाल वैकुण्ठ लोग दिखाया, वहां प्रथम महात्मा अक्रूरजी गये थे, यहां शङ्का है कि ब्रह्ममें डूबेको वैकुण्ठलोकका दर्शन नहीं बनता तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि जिन श्रीकृष्णचद्रकी कृपासे पहले अक्रूरजीने दर्शन किया था, उन्हीं

इति संचिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ॥ दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥ १४ ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५ ॥ ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ॥ ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा ॥ १६ ॥ नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ॥ कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥ इति श्रीभा० महा० दशम० पूर्वार्धे नन्दानयनवैकुण्ठप्रदर्शनं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥ वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णकी कृपासे इन लोगोंने दर्शन किया, क्योंकि अचिंत्य ऐश्वर्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीमें कुछ यह बात अनुचित नहीं है ॥ ॥ १६ ॥ हे नृप ! वहां वेदोंसे होती हुई भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति देख और नंदादि सब व्रजवासियोंने वैकुण्ठधर्मका दर्शन कर परमानन्दसे सुखी हो बड़ा आनन्द प्राप्त किया ॥ १७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुरणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भा. टी. गर्गगीतवर्णनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ दोहा–उनतीसमें हरिने कियो, रासविलास बनाय । अन्तर्धान भये तुरत, सबन वहीं छिटकाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! गोपकन्याओंसे जिन रात्रियोंकी प्रतिज्ञा की थी जब वही शरदृऋतु आकर उपस्थित हुई कि जहां तहां चमेली खिल रही थीं, उन रात्रियोंको देख योगमायाका आश्रय ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रमण करनेका मनोरथ करने लगे ॥ १ ॥

और उसी समय सुखदायक किरणोंसे पूर्व दिशाके मुखको अरुण करते भगवान् चन्द्रमा उदय हुए, जैसे परदेशसे बहुत दिनोंमें पुरुष आकर अपनी प्यारीके मुखको केशर लगाकर लाल करता है ॥२॥ परिपूर्ण मण्डल और लक्ष्मीके मुखके समान कांति, नवीन केशरके तुल्य अरुण चन्द्रमाको देख और राकाकी कोमल किरणोंसे रँगे वृन्दावनको देख भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्त्रियोंके मन हरणकरनेवाले कलरवसे गीत गाने लगे,इस कलरवमेंसे ही बीजमंत्र 'क्लीं' निकलता है ॥३॥ प्रेमात्मक कामके बढ़ानेवाले गीतको श्रवण कर श्रीकृष्णचन्द्रने जिनके मन हर लिये हैं वे स्त्रियें जहां पति श्रीकृष्णचन्द्र थे वहां आयीं और "अरी किशोरी चलेगी?" इस प्रकार परस्पर कह अत्यन्त शीघ्रतासे चलीं, चलते

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ॥ स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् ॥ वनं च तत् कोमलगोभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ॥ आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥४॥ दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ॥ पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥५॥ परिवेषयतन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ॥ शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥६॥ लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ॥ व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥

समय उनके कानोंके कुण्डल हिलते जाते थे ॥४॥ कितनी ही गोपियें उत्कण्ठाके मारे दुहती हुई गायोंको छोड़कर चली आयीं और दूसरी चूल्हेपर चढ़े हुये दूधको वैसा ही छोड़कर चलीं, बहुत गोपियें गेहूँका पका हुआ पदार्थ चूल्हेपर ही छोड़कर चल दीं ॥५॥ कितनी ही एक पत्तल परोसती थीं वे वंशीकी ध्वनि सुनते ही छोड़कर चली आयीं और कितनी एक गोपी अपने देवर जेठके बालकोंको दूध पिलाती थीं उनको छोड़कर आयीं । कोई कोई गोपी अपने पतिकी सेवा करतेसे ही चलीं और कोई कोई भोजन करतेसे ही चली आयीं ॥ ६ ॥ कोई कोई गोपी घरोंको लीपती, कोई नेत्रोंमें अञ्जन लगाती, कोई पावोंके गहने हाथोंमें पहर और हाथोंके पावोंमें पहर, लहंगा ओढ़,ओढ़नी

पहर भगवान् मुरली मनोहरके पास आयीं ॥७॥ "यद्यपि गोपियोंके शृङ्गार उलटे पुलटे थे, परंतु तो भी योगमायाने सुधार दिये थे" ❋ यद्यपि पति, पिता, माता, भ्राता, और जातियोंने मने भी किया परंतु तो भी भगवान् केशवमूर्तिने जिनके मन हर लिये थे, उन गोपियोंने किसीका कहना नहीं माना ॥ ८ ॥ किसी गोपीको उनके पुरुषोंने घरमें बन्द कर दिया; जब निकलनेका मार्ग न मिला, तब उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इच्छा कर आंखें मूँद उनका ध्यान किया ॥ ९ ॥ सहन न किया जाय ऐसे प्यारेके विरहरूप तापसे पाप जिनके दूर हो गये, और ध्यानमें प्राप्त हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करके,सुखके पुण्यसे बन्धन जिनके दूर हो गये,ऐसे अत्यन्त

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ॥ गोविन्दाऽपहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥ अन्तर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ॥ कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥ दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रताप-धुताशुभाः ॥ ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥ तमेव परमात्मानं जार बुद्ध्याऽपि सङ्गताः ॥ जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्म तया मुने ॥ गुणप्रवा-होपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उक्तं पुरस्तादेतत् ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ॥ द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥

विरहके दुःख और श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्राप्तिके भोगसे एक संग ही सब प्रारब्धकर्म क्षीण हो जानेसे मुक्त हुई ॥ १० ॥ जारबुद्धिसे पर-मात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको पाके बन्धन जिनके कट गये, ऐसी गोपियोंने गुणोंके बने देहको तत्काल ही त्याग दिया और दिव्य देह धारण कर सबसे पहिले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं॥११॥यह सुनकर राजा परीक्षित बोले कि हे महाराज ! वह गोपियां श्रीकृष्णचन्द्रको केवल जार मानती थीं ब्रह्मपनसे उनको किंचित भी भाव नहीं था, फिर गुणमय बुद्धिवाली उन गोपियोंके गुणोंका प्रभाव संसारसे कैसे छूट गया ? ॥१२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! यह बात मैंने आपसे प्रथम ही वर्णन की थी कि जब शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे शत्रुभाव

❋ दृष्टान्त-जैसे आठ छैलोंने सैर करनेको निकल बागमें जाकर कहा कि भांग बनाओ, सो मीठी ही छानी और मिठाईके लालचसे तानकर लोटे-लोटे गड़गप्प कर गये अर्थात् पी गये । एक मित्र उनमें चतुर था, उसने मनमें विचार किया कि अभ्यास तो है नहीं और तीन-तीन लोटे चढ़ा गये हैं, जब ये बेसुध हो जायेंगे तो इन्हें कौन सँभालेगा ? उसने एक चुल्लू भर ही पी थी । अब चढ़ा जो नशा तो किसी की तो पाग गिर गयी, किसी का पटका खुल गया, किसीकी धोती खुल गयी, परंतु जिसको नशा नहीं था उसने सबको सँभाल लिया । इसी प्रकार योगमायाने सबको सुधार दिया ।

रखता हुआ भी मुक्तिको प्राप्त हुआ, तब प्रीति करनेवाली गोपियोंके तरनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥ १३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियंता श्रीकृष्णचन्द्रका जो प्रकट होना है, सो पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये है, इस कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जीवके समान कहना सम्भव नहीं ॥ ॥१४॥ काम, क्रोध, भय, स्नेह, एकभाव सौहृद जो पुरुष नित्य भगवान् वासुदेवमें करते हैं, वे पुरुष तन्मय हो जाते हैं ॥१५॥ हे राजन् ! अजन्मा योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें तुम आश्चर्य मत करो, क्योंकि उनमें

नृणां निश्श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ॥ अव्यक्तस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ॥ नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥ न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ॥ योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विमुच्यते ॥ १६ ॥ ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः ॥ अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचः पेशैर्विमोहयन् ॥१७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ॥ व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥ रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ॥ प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥१९॥ मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ॥ विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृध्वं बन्धुसाध्वसम् ॥२०॥

प्रेम करनेसे स्थावर भी संसारसे छूट जाते हैं * ॥ १६ ॥ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजकी स्त्रियोंको अपने पास आयीं देख वाणियोंके विलाससे मोहित करके कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे बड़भागिनियो ! भली आयीं आओ, मैं तुम्हारा क्या आदर करूँ ! व्रजमें तो कुशल है और यहां कैसे आयो इसका कारण कहो ॥१८॥ क्योंकि यह भयानक रात्रि है, सिंह व्याघ्रादि घोर प्राणी यहां फिरते हैं इस कारण तुम अपने घरको जाओ, हे सुमध्यमे ! स्त्री जाति होकर यहां मत रहो ॥१९॥ देखो तुम्हारे माता, पिता,

* दृष्टान्त–प्रेमसे भावसहित श्रीनारायणकी कथा सुन ले । कहीं श्रीमद्भागवतकी कथा बैठी थी । किसीने कहा–लालाजी ! सुननेको चलो । लालाजीने उत्तर दिया कि जब दशमस्कन्ध प्रारंभ होगा तब चलेंगे, फिर जब दशम होने लगा तो लालने कहा कि पंचाध्यायीमें चलेंगे, जहां श्रीकृष्णने लाखों गोपी बुलाकर उनके संग विहार किया था, हम भी वैसा ही करेंगे, जैसे वीर पुरुष कड़ावे सुनकर आगे बढ़ते हैं, उसी प्रकार विषयी विषयसे और जगह जो भाव बिगड़े तो ठिकाना लग जाय और जो साक्षात् कृष्णकांता त्रैलोक्यजननीमें भाव बिगड़ा तो उसका सत्यानाश ही हो जाता है ।

पुत्र, भ्राता, पति तुमको बिना देखे ढूँढ़ते होंगे, इसलिये बन्धुओंको घबड़ाहट मत करो ॥ २० ॥ क्योंकि फुलवारी जिसमें फूल रही, चन्द्रमाकी किरणोंसे रँगा हुआ यमुनासे लगे मन्द पवनसे हिलनेवाले वृक्षोंके पातसे शोभायमान वन तुमने भली भांति देख लिया॥२१॥ इस कारण तुम व्रजमें जाओ, अब विलम्ब मत करो, तुम पतिव्रता हो; पतियोंकी सेवा करो, क्योंकि वहां बछड़े रम्भाते होंगे, बालक रोते होंगे, जाओ ! बालकोंको दूध पिला और गायोंको दुहो ॥२२॥ अथवा मेरे स्नेहसे वशीभूत अन्तःकरणसे तुम आयीं, सो तुमको योग्य ही है, क्योंकि सब जीव मुझमें प्यार करते हैं ॥२३॥ हे मंगल रूपिणियो ! निष्कपट होकर पतियोंकी सेवा करो देवरोंकी सेवा करो और

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ॥ यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥ तद् यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ॥ क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ॥२२॥ अथवा मदभिस्नेहाद् भवन्त्यो यंत्रिताशयाः ॥ आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥ २३ ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ॥ तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥२४॥ दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ॥ पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ॥ जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियः ॥ २६ ॥ श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७ ॥

पुत्रोंको पोषण करो, यही स्त्रियोंका परमधर्म है ॥२४॥ यदि कदाचित् अपना पति खोटे स्वभावयुक्त हो, दुर्भाग्य हो अथवा वृद्ध हो, मूर्ख हो रोगी हो दरिद्री हो तो भी स्वर्गकी जिनको चाहना है, ऐसी स्त्रियोंके त्यागने योग्य नहीं है और पतित हो तो त्यागने योग्य है ॥२५॥ कलियुगकी स्त्रियोंको उपपतिके सेवन करनेसे स्वर्ग नहीं मिलता बरन् यश जाता है, इस लिये उपपतिका सेवन तुच्छ है, दुःखका देनेवाला है, और सर्वत्र निन्दाके योग्य है ॥ २६ ॥ जिस प्रकार भाव मुझमें श्रवण दर्शन ध्यान कीर्त्तनसे रहता है, वैसा पास रहनेसे नहीं होता; इसलिये अपने घरको जाओ * श्रीकृष्णचन्द्रने इस कारण गोपियोंसे जाओ जाओ कहा कि जो मैं इनसे कहूँगा तुम मेरे साथ विहार

* दृष्टान्त—देखो स्त्रियोंको पतिव्रतधर्म पालन करना चाहिये, क्योंकि पतिव्रताओंकी बड़ी महिमा है। एक स्त्रीकी, गोदीमें उसका पति शिर धरे सो रहा था, उसका बालक खेलते खेलते अग्निमें जा पड़ा, स्त्रीने यह देखा पतिकी निद्रा भंग न हो, यह विचार अपना घुटुआ न उठाया और अग्नि पतिव्रताके शापके भयसे शीतल हो गयी, यथाः—श्लोक—"सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता । अभूत्तदानीं व्रतभंगशंकया हुताशनश्चन्दनपंक-

करो तो यह गालियें देंगी और निकट भी न आवेंगी इससे प्रथम ही उनके मान खण्डन करूँ तो फिर यह आप ही मेरा पल्ला पकड़ेंगी * ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! इस प्रकार गोपियें गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अत्यन्त दुःखित हुईं और मनोरथके सिद्ध न होनेसे बड़ी चिन्ता करने लगीं ॥२८॥ चिन्ताके श्वाससे कुन्दरूके फलके समान उनके अरुण होठ सूख गये और अपने मुखोंको नीचा कर चरणके अँगूठेसे धरतीपर लिखने लगीं और रुदनके कारण नेत्रोंसे कज्जलसहित जो आंसू निकल रहे थे उनसे कुचोंकी

श्रीशुक उवाच ॥ इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविंदभाषितम् ॥ विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ ॥ २८ ॥ कृत्वा मुखान्यवशुचः श्वसनेन शुष्यद्बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ॥ अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥ प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ॥ नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥ गोप्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ॥ भक्ता भजस्व दुरवग्रहमात्यजास्मान् देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥

केशर धुल गयी, तब अत्यन्त दुःखके कारणसे गोपी चुपचाप होकर खड़ी हो गयीं ॥२९॥ जिनके लिये गोपियोंने सब घरबार छोड़ दिये उन अपने परमप्रीतम श्रीकृष्णचन्द्रके कठोर वचन सुन प्रेमभरी गोपियें रोनेके कारण आसुओंसे पूर्ण नेत्रोंको पोंछ कुछेक क्रोधित हो गद्गद कण्ठसे बोलीं ॥३०॥ कि हे समर्थ ! "जाओ जाओ" ऐसे कठोर वचन मत कहो, क्योंकि हम सब विषयोंको त्यागकर केवल तुम्हारे ही चरणोंका सेवन करती हैं । हे दुराग्रही ! हमको मत त्यागो, जैसे आदिपुरुष भगवान्की शरण सर्व त्यागकर मुमुक्षु लोग जाते हैं,

शीतलः ॥१॥" इस कारण हे सखियो ! अपने पतियोंके पास जाओ ।

* दृष्टान्त—श्रीकृष्णने बंशी तो बजा दी परंतु जब लाखों गोपियोंने आकर घेर लिया, तब बुद्धि विहारी हो गयी जैसे किसीके बालक घरमें रुईका फोहा जलाते हैं, और फिर प्रसन्न होते हैं सो बाजारमें किसी साहूकारके दूकानमें लाख रुपयेकी रुईका ढेर लगा देख उन्होंने मनमें विचार किया कि इसमें बड़ा तमाशा होगा, तो ढेरमें आग लगा दी जब तक वह ढेर थोड़ा थोड़ा जला तब तक तो ताली बजाते रहे और जिस समय आगसे भड़ककर ऊंची ऊंची लपटें निकलने लगीं तब तो घबड़ा गये । इसी प्रकार श्रीकृष्ण की दशा हुई, जब एकाध गोपीको कहीं देख पाते थे तब तो प्रसन्न होते थे, अब लाखों गोपियोंको देखा तो घबड़ाकर घर जानेको कहा ।

तो मुमुक्षु पुरुषोंको वह भजते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे लिये सर्वस्व त्यागकर हम आयी हैं, इसलिये हमारा सेवन करो, त्यागो मत॥३१॥ हे धर्मवेत्ता कृष्ण ! पति, पुत्र, सुतोंकी सेवा करो, यह स्त्रियोंका परमधर्म है, यह जो तुमने कहा सो हमारी धर्म सुननेकी इच्छा नहीं है, क्योकि हमें चाहना नहीं है, तुम धर्मके उपदेश करनेवाले नहीं हो, किन्तु देहधारियोंके प्यारे हो, आपने कहा–पति आदिकोंकी सेवा करना धर्म है; सो आत्मासहित पति आदिक प्रिय लगते हैं,स्त्रीको पति प्यारा लगता है,आत्मासे लगता है सो आत्मा जब निकल जाता है, पीछे इस देहको बांधकर ले जाते हैं, और जला देते हैं, सो सबके आत्मा तुम हो, तुम्हारे सेवन करनेसे ही हमें सब धर्म स्वयं प्राप्त हो जायँगे, क्योंकि सब उपदेशवाक्य ईश्वरकी सेवा करना ही परमधर्म बताते हैं, इस कारण तुम सब जीवोंके आत्मा होनेसे परमबन्धु ईश्वर

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ॥ अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठे भवांस्तनु-
भृतां किल बन्धुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ॥
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥ चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ॥ पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद् यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४ ॥

हो, तुमसे जो जीव बहिर्मुख हैं वे दग्ध होनेके योग्य हैं ॥३२॥ अपने आत्मा नित्य प्यारे तुम हो,अतः आपमें विवेकी पुरुष प्रीति करते हैं, दुःखके देनेवाले पति पुत्रादिकोंसे क्या प्रयोजन है ? इस कारण तुम हमपर प्रसन्न हो। हे कमलदल लोचन भगवान् ! बहुत दिनोंसे तुममें आशारूपी लता लगायी है, उसे "जाओ जाओ" ऐसे कुठारी रूप वचनसे कैसे काटते हो ? देखो ! विषके वृक्षको भी आप बढ़ाकर विवेकी पुरुष नहीं काटते हैं ॥३३॥ तुमने कहा–जाओ सो हम कैसे जायँ ? क्योंकि जो चित्त सुखपूर्वक घरमें लग रहा था, सो तुमने हर लिया और जिन हाथोंसे घरका काम करती थीं, सो तुमने हर लिये। तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि हे गोपियो ! अब तुम जाओ परसोंके दिन तुम सबके चित्त प्रसन्न कर देंगे,तो गोपियोंने कहा कि तुम्हारे चरण छोड़कर हमारे पाँव एक पग भी नहीं चल सकते, ब्रजमें कैसे जायँ ? और

जाकर हम क्या करें?॥३४॥हे सखे ! आपके हास्य,दर्शन और मधुर गीतसे उत्पन्न हुई हमारी कामाग्निको तुम अपने अधरामृतरूप पिचकारीसे शांत करो, नहीं तो हम एक तो कामकी अग्नि और दूसरी विरहकी अग्नि इन दोनोंसे दग्धशरीर हो योगी जनोंकी नाईं तुम्हारे ध्यानसे ही तुम्हारे चरणोंके निकट पहुँच जायँगी॥३५॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि तुम अपने पतियोंके पास जाओ,वही तुम्हारी कामाग्नि बुझावेंगे। इसके उत्तरमें गोपी कहती हैं कि हे कमलदललोचन ! वनवासी जिन्हें प्रिय हैं,ऐसे तुम हो और लक्ष्मी जीको किसी समय ही जिनकी सेवा प्राप्त होती है,ऐसे तुम्हारे चरणोंके तलुए हमने जबसे स्पर्श किये,उसी दिनसे उनका सुख अनुभव किया और उसी दिनसे औरके सम्मुख खड़ी भी

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ॥ नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥ यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥ अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग स्थातुं त्वयाऽभिरमिता बत पारयामः ॥३६॥ श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ॥ यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद् वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ॥ त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ ३८ ॥

नहीं हो सकतीं ॥ ३६ ॥ यद्यपि लक्ष्मीजी सदा वक्षस्थलमें रहती हैं परंतु तो भी जिसका भक्तलोग सेवन करते हैं, ऐसी तुम्हारे चरणकी रेणुको तुलसीने सौत सहित चाहना की, जिस लक्ष्मीजीकी चितवनके लिये और देवता तप करके परिश्रम करते हैं उन्हीं लक्ष्मीके समान हम भी तुम्हारे चरणकी रजको प्राप्त हुई हैं, अर्थात् शरण ली है ॥ ३७ ॥ हे दुःखको काटनेवाले ! तुम्हारे भजनमें आशा लगाये हम

* शंका—जैसे कामदेवसे पीड़ित होकर मनुष्योंकी स्त्री ओष्ठ चुम्बन करनेके लिये मनुष्योंकी विनती करती हैं और गोपी तो मोक्षकी रूप थीं परंतु कामकी शांति करनेके लिये पूर्णब्रह्म सरीखे जो श्रीकृष्ण हैं, उनसे ओष्ठ चुम्बन करनेके लिये याचना क्यों की ।

उत्तर—गोपियोंने विचार किया कि हम कुछ पढ़ी नहीं और श्रीकृष्णकी जैसे विद्वान् लोग स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, वैसी स्तुति हम भी किया चाहती हैं, परंतु विना विद्या हम कैसे स्तोत्रोंसे स्तुति करें? परंतु हमने ऐसा भी सुना है कि श्रीकृष्णके ओष्ठमें सरस्वतीका वास है, जो हमारे सबके ओष्ठमें श्रीकृष्णके ओष्ठ छू जायँगे तो हम सब विदुषी हो जायँगी, तब अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भगवान्‌की स्तुति हम भी विद्वानोंके सदृश किया करेंगी, कुछ कामदेवकी पीड़ासे कृष्णके ओष्ठोंका चुम्बन करना नहीं चाहती थीं ।

घर छोड़कर तुम्हारे चरणके पास आयी हैं तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होओ, तुम्हारी सुन्दर मुसकान चितवनसे बढ़े हुये कामदेवसे पीड़ित देहवाली हमको अपनी दासी करके कृपा कीजिये ॥ ३८ ॥ अलकावली जिस पर छूट रहीं और कुण्डलोंकी कांतिसे युक्त कपोल अमृत भरे ओष्ठमें हास्यसहित चितवनवाले तुम्हारे मुखको देख और भक्तोंको अभयदान देनेवाले तुम्हारे दोनों भुजदण्डोंको देखकर लक्ष्मीको एक ही प्रीतिके उपजानेवाले तुम्हारे वक्षस्थलको देख हम तुम्हारी दासी होती हैं ॥३९॥ हे कृष्ण ! मनोहर पदवाले बड़े बांसुरीके गीतसे मोहित होकर त्रिलोकीमें ऐसी कौन स्त्री है जो अपने धर्मसे चलायमान न हो, त्रिलोकीमें सुन्दर इस तुम्हारे रूपको देख गौ, पक्षी, मृग यह भी रोमांचित हो जाते हैं, फिर हम इस मनमोहन रूपसे मोहित हो गयीं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? तुम्हारा प्रकाशक शब्द सुनकर भी अपना

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ॥ दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥३९॥ का स्त्र्यङ्ग ते कमलपदायतवेणुगीतसंमोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम् ॥ त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्यरूपं यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ॥ तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विक्लवितं तासां श्रुत्वायोगेश्वरेश्वरः ॥ प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत ॥ ४२ ॥ ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ॥ उदारहासद्विजकुंददीधितिर्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥ ४३ ॥

धर्म त्यागना उचित है और तुम्हारे रूपके अनुभवसे त्याग करनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ४० ॥ और आपने निश्चय व्रजके भय पीड़ा दूर करनेके लिये अवतार लिया है, जैसे आदि पुरुष श्रीनारायण स्वर्गकी रक्षा करते हैं। इस कारण हे दीनबन्धो ! हम तुम्हारी दासी हैं, हमारे कामदेवसे तप्त स्तन और शिरोंपर अपने हस्तकमलको धरो ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग परीक्षित् ! इस प्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंका विलाप सुन हँसकर दयाको प्राप्त हो आत्माराम भी हैं तो भी गोपियोंके संग रमण करने लगे ॥ ४२ ॥ प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवनसे प्रफुल्लित मुखवाली इकट्ठी हुई गोपियोंके सहित उदार जिनकी चेष्टा और उदार जिनकी

हँसनिमें कुन्दकलीके समान कांतिवाले दांतोंसे श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे शोभायमान लगने लगे जैसे तारागण सहित चन्द्रमा शोभायमान लगता है ॥४३॥ गोपियां जिनका गान करें और स्त्रियोंके सैकड़ों यूथका पालन करें,ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं गान करते वैजयन्ती माला पहने वनको शोभायमान करते विहार करने लगे ॥४४॥ शीतल बालूके बिछानेवाले यमुनाजीके पुलिनमें गोपियों सहित आकर रमण करने लगे, वहां यमुनाजीकी लहरका आनन्द और कमलोंकी सुगन्ध सनी वायुसे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥४५॥ भुजाओंका पसारना; आलिंगन करना, कर, अलक, ऊरू, नीवी, स्तन इनका स्पर्श करना, परिहासके वचन कहना, नखोंके चिह्न, क्रीड़ा चितवन और हँसियोंसे व्रजसुन्दरियोंको भगवान् काम उद्दीपन कराकर रमण करने लगे ॥४६॥ इस प्रकार महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रसे मान जिन्होंने प्राप्त किया, ऐसी गोपियें मानवती होकर पृथ्वीकी स्त्रियोंमें अपनेको अधिक मानने लगीं ॥ ४७ ॥ ब्रह्मा और महादेवके वश करनेवाले भगवान्

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः ॥ मालां बिभ्रद्वैजयन्तींव्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ॥ रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥ बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभन-नर्मनखाग्रपातैः ॥ क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयांचकार ॥ ४६ ॥ एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥ तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्यमानं च केशवः ॥ प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥४८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णान्तर्धानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंको सौभाग्यके मदसे अपने अधीन देख उनका गर्व दूर करने और कृपा करनेके लिये उस रासमंडलमें ही अंतर्धान हो गये, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि अभी तो कुछ रासका प्रारंभ ही हुआ है सेरमें पौन भी नहीं और इन्हें मान हो गया, जो ऐसे लाखों गोपियोंके पांव पड़ता फिरूँ तो वर्षों लग जायँ, फिर रास कैसे होगा ! इस कारण उनका मानभङ्ग करनेको अंतर्धान हो गये । अथवा जो प्यारी थीं, उनका मान घटने लगा कि देखो हमको भी कृष्ण सबकी बराबर देखते हैं और साधारणको मान बड़ा कि प्यारी हैं इससे हमारे अधीन हैं सो दोनोंका मान समान करनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्धान हो गये ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां कृष्णान्तर्धानं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा—तीसमाहिं सब ग्वालिनी, भई हाल बेहाल। वन वन फिरत विरह दही, कहां गये नँदलाल॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रासमंडलमेंसे अंतर्धान हो गये, उस समय तत्काल ही ब्रजकी स्त्रियें तथा गोपियें उनके देखे विना अत्यन्त व्याकुल हो गयीं॥१॥ जिस प्रकार हाथीके देखे विना हथिनियें व्याकुल हो जाती हैं। श्रीकृष्णचन्द्रकी चलनि, स्नेह भरी मुसकान, विलासपूर्वक चितवन, मधुर बोलनेकी क्रीड़ाओंमें मन जिनके लग रहे हैं, ऐसी गोपियें तन्मय हो गयीं, अतः उनकी लीलाका अनुकरण करने लगीं॥ २॥ श्रीकृष्णचन्द्रका गमन, हास्य भरी चितवन और मधुर वाणियोंके विहार कर प्यारेमें आरूढ़ हो श्रीकृष्णचन्द्रका रूप बनकर कहने लगीं कि "मैं कृष्ण हूँ, मैं कृष्ण हूँ" इस प्रकार चेष्टा करने लगीं॥३॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण गोपियें मिल श्रीकृष्णचन्द्रका ऊँचे स्वरसे गान करती

श्रीशुक उवाच॥ अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः॥ अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम्॥ १॥ गत्याऽनुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः॥ आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः॥ २॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः॥ असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः॥ ३॥ गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम्॥ पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्॥ ४॥ दृष्टो वः क्वचिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः॥ नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः॥ ५॥

मतवालेके समान वन वनमें ढूँढने लगीं, सब प्राणियोंमें आकाशके तुल्य व्यापकजो श्रीकृष्णचन्द्र हैं उनको वृक्षोंसे पूछने लगीं॥ ४॥ हे पीपलके वृक्ष! हे वटके वृक्ष! नंदका पुत्र श्रीकृष्ण प्रेमभरी चितवन और हँसी करके हमारा चित्त चुराकर ले गया है, यदि आपने देखा हो तो हमको अत्यन्त दुःखी जान कृपापूर्वक बता दो, कोई बोली—अरी! यह क्या बतावेंगे, यह तो अश्वत्थ हैं इनकी तो जड़ थोड़ीसी ऊपर रही है, सो यह ऐसी चिंता किया करते हैं, कि कहीं ऐसी पवन न आ जाय जो हमें उखाड़कर फेंक दे। कोई बोली—अरी! यही पीपल नारायणका रूप है, नारायण भक्तोंके कार्यमें मग्न रहते हैं, सो हमें क्या बतावेंगे! न्यग्रोध शिवका रूप है सो यह योगमें मग्न रहते हैं

हमको क्या बतावेंगे * ॥५॥ हे कुरबक ! हे अशोक ! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे केशर ! हे चम्पे ! हे मालती ! गर्व हरनेवाली जिसकी मुसकान ऐसा बलरामका छोटा भाई (कृष्ण) कहीं तुमने देखा ? फिर रामानुजियोंसे कहा कि कहीं बड़े भाईका प्रसाद भांगके चुल्लूमें तो नहीं पी गये ? जो हमारी यह रक्षा करते फिरते थे। कोई बोली—अशोकसे क्या पूछती हो यह तो आप अशोच है, सो पराये शोचको क्या जाने ? ॥६॥ कोई वनमें कहती है कि हे तुलसी ! कल्याणरूपिणी ! गोविन्दके चरणोंकी अत्यन्त प्यारी और भौंरे जिसमें गुन्जार करते हैं ऐसी तुम्हारी मालाको पहने, तुमने अपने अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको कहीं देखा हो तो बता दो ॥ ७ ॥ हे मालती ! हे मल्लिके !

कच्चित् कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः ॥ रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥ कच्चित् तुलसिकल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ॥ सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥ मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ॥ प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥ चूतप्रियालपनसासनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ॥ येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥ किं ते कृतं क्षितितपो बत केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ॥ अप्यङ्घ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥ १० ॥

हे यूथिके ! हे जाति ! क्या आपने कहीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ? क्या हाथके छूटनेसे तुम्हारी प्रीति उत्पन्न करते इसी मार्गसे गये हैं ? ॥ ८ ॥ हे आम ! हे चिरौंजी ! हे कटहर ! हे विजयसार ! हे कचनार ! हे जामन ! हे बेल ! हे मौलसिरी ! हे सफरी ! और हे लोटन कदम्ब ! तुम परोपकारी यमुनातीरवासी हो, इस कारण हमें बता दो कि तुमने कहीं श्रीकृष्णचन्द्रको जाते देखा है ? ॥ ९ ॥ जब किसीने उत्तर न दिया तो एक गोपी बोली कि पृथ्वीसे पूछोकि हे पृथ्वी ! ऐसा तूने क्या तप किया, जो केशव भगवान्‌का चरण

* शंका—वृक्षोंमें गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रजीको पूछा और वृक्ष जानते थे कि इसी मार्ग होकर श्रीकृष्णचन्द्र गयेहैं फिर वृक्षोंने गोपियोंसे क्यों नहीं कहा कि हमने श्रीकृष्णको देखा अथवा नहीं देखा, चुप क्यों हो गये ?

उत्तर-जैसे कृष्णके प्रेममें गोपी उन्मत्त हो रही थीं ऐसे ही कृष्णके ध्यानमें वृक्ष भी मतवाले हो रहे थे अर्थात् वृक्षोंको तो अपनी देहका अथवा और किसी दूसरी वस्तुका ध्यान ही नहीं था और कुछ स्मरण भी नहीं था, क्योंकि भगवान्‌में मन लगा रहे थे इसलिये उत्तर नहीं दिया ।

स्पर्श हुआ ? जिससे तुझे आनन्दसहित रोमांच हुए हैं, जिसके कारण तू सुन्दर लगती है, यह आनन्द प्यारेका चरण लगनेके कारण हुआ है, अथवा वामनजीने तुझे तीन पैग नापी है अथवा उससे पहिले वाराहजी तुझे दाढ़पर रखकर ले आये हैं तबका आनन्द है ? परन्तु वह आनन्द तो पुराने पड़ गये, अभी प्यारेका चरणारविन्द तूनें स्पर्श किया है और तूने निश्चय देखा है सो हमें बता दे ॥१०॥ हे सखी ! हरिणकी स्त्री ! अच्युत श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीको सङ्ग लिये अपने अंगोंसे तुम्हारी दृष्टिको आनन्द देते यहां आये हैं ? क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रकी प्यारी जो अङ्गके संग है इसी कारण कुचोंकी केशरसे रंगी हुई कुन्दकी मालाकी सुगन्ध यहां आती है"हे मृगनयनी ! हमारी बातका ऐसा अनादर कि इस ओरसे दृष्टि भी फेर ली । फिर बोले कि तुम्हारा कुछ अपराध नहीं, जब विधाता वाम होता है

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ॥ कान्ताङ्गसङ्गकुचकुंकुमरंजितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गंधः ॥ ११ ॥ बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ॥ अन्वीयमान इव वस्तरवः प्रणामं किं वाऽभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥ पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ॥ नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ॥ लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४ ॥

तो सब ठौर अपमान ही अपमान होता है" ॥ ११ ॥ आगे बढ़कर वृक्षोंसे कहने लगीं कि हे वृक्षो ! प्यारीके कन्धेपर भुजाको धारण किये और दूसरे हाथमें कमल लिये यहां फिरते, तुलसी–सम्बन्धी मदोन्मत्त भौंरे जिनके पीछे जाया करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्नेह भरी चितवनसे क्या तुम्हारी दण्डवत् यहां आकर कर ली है ? ॥ १२ ॥ कोई बोली कि अहो ! यह लतायें श्रीकृष्णचन्द्रसे अवश्य मिली होंगी, क्योंकि यह अपने पति वृक्षकी शाखारूप बांहोंका आश्रय कर रही हैं इससे ज्ञात होता है कि अवश्य हमारे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रके नख इनमें लगे हैं इस कारण रोमाञ्च हो आये हैं, वृक्षोंके समागममें ऐसे रोमांच नहीं होते ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार मतवालेकी भांति पूछती हुई श्रीकृष्णमें तन्मय और उनके ढूँढ़नेसे विह्वल होकर गोपियां

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ❀ ॥१४॥ इसके उपरांत कोई गोपी पूतना बनी कोई गोपी कृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी और कोई गोपी बालक बन रोती हुई शकटासुर बनी और अन्य जो कोई गोपी है वह पांवकी ठोकर मारने लगी ॥ १५ ॥ एक गोपी तृणावर्त्त दैत्य बनकर कृष्णके बालरूपको धरे जो और गोपी है उसे हरकर ले गयी और एक गोपी घुंघुरू बांध पांवोंको घसीटती घुटुओं चलने लगी ॥ १६ ॥ दो गोपियां कृष्ण बलदेव बनीं, और कोई गोपी गोप बनी और कोई वत्सासुर बन उसको मारने लगी। एक गोपी बकासुर बनी, उसे और गोपीने मार दिया ॥१७॥ जैसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूर चरती हुई गायोंको बुलाते थे

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णयन्त्यपिबत् स्तनम् ॥ तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् ॥ १५ ॥
दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् ॥ रिङ्गयामास काऽप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिस्स्वनः ॥ १६ ॥ कृष्णरा-
मायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ॥ वत्सायन्तीं हंति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥ आहूय दूरगा यद्वत्
कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ॥ वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसति साध्विति ॥ १८ ॥ कस्यांचित् स्वभुजं न्यस्य
चलंत्याहापरा ननु ॥ कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १९ ॥ मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं
मया ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २० ॥

उसी प्रकार एक गोपी गायोंको बुलाकर श्रीकृष्णका अनुकरण करने लगी, एक बांसुरीको बजाकर क्रीड़ा करती थी, और गोपियें धन्यवाद देती थीं ॥ १८ ॥ एक गोपी गोपीके कन्धेपर हाथ धरकर कहने लगी कि मेरी मनोहर नृत्यलीलाको तुम देखो, इस प्रकार कह श्रीकृष्णचन्द्रमें जाकर उनका मन लग गया ॥ १९ ॥ कोई गोपी "पवन वर्षासे भय मत करो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा" इस प्रकार कह एक हाथसे यत्न कर जैसे गोवर्द्धन पर्वत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उठाया था उसी प्रकार अपनी ओढ़नीको ऊँची उठा लिया ॥ २० ॥

* दृष्टांत—एक बड़ा गवैया था, सो वह अपनी खुशीसे गाता ओर किसीके कहनेसे नहीं गाता था, एक भले आदमीका मन उसका गाना सुननेका चाहा तो उसने क्या चतुराई की कि उसीकी तानमें गाऊं, क्योंकि मुझसे ठीक बनेगी नहीं, इस कारण यह अपनी तान सुधारने को आप ही गावेगा, सो गाने लगा तो तान वैसी न आयी, तब गवैयेने अपने मनमें कहा कि यह मेरी तान गा रहा है, परंतु बिगड़ी जाती है, तब आप भी गाने लगा और उससे कहा कि ऐसे गाओ इसी प्रकार गोपियोंने विचारा कि हम श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला करें और हमसे ठीक बनेगा तो है ही नहीं, इस कारण उसके बतानेको श्रीकृष्ण स्वयं ही आ जायंगे ।

हे नृप ! एक गोपी और गोपीके ऊपर चढ़ पांवशिर ऊपर धर एक गोपीसे कहने लगी कि रे दुष्ट सर्प ! तू यहांसे निकल जा, क्योंकि मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला उत्पन्न हुआ हूँ ॥२१॥ उस समय एक गोपी बोली कि हे गोपियो ! इस वनमें अत्यन्त भयानक अग्नि लगी है,इसे देखो और शीघ्र नेत्र बन्द कर लो; मैं इस अग्निको बुझाऊँगी तथा अनायास देखे विना कल्याण करूँ ॥ २२ ॥ कोई एक दुर्बल अङ्गकी गोपी मालासे ऊखलमें बांध दी तब वह डरकर सुन्दर नेत्रवाले मुखको ढँक डरनेका अनुकरण करने लगी, जब लीला करते करते रासलीला करने लगीं,तब ज्यों ही श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तर्धान होनेकी लीला आयी तभी श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण कर व्याकुलहृदय हो ढूंढने लगीं॥२३॥

आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ॥ दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥२१॥ तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ॥ चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥ बद्धाऽन्यया स्रजा काचित् तन्वी तत्र उलूखले ॥ भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ २३ ॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ॥ व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥ पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ॥ लक्ष्यंते हि ध्वजाम्भोजवज्रांकुशयवादिभिः ॥ २५ ॥ तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ॥ वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याः पदानि चैतानि याताया नंदसूनुना ॥ अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥ अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ यन्नो विहाय गोविंदः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ २८ ॥

इस प्रकार वृन्दावनकी लता और वृक्षोंसे पूँछती पूँछती आगे वनमें जाकर परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका चिह्न देखा ॥ २४ ॥ ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश आदि इन चिह्नोंसे महात्मा नन्दजीके बेटेका यह चरण निश्चय है, इस प्रकार खोज लगता है ॥ २५ ॥ इस प्रकार अबला गोपी चरणोंके खोजसे श्रीकृष्णचन्द्रके जानेका मार्ग ढूंढने लगी, आगे जाय श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके खोजमें प्यारीके चरणोंका खोज देख दुःखी हो यह कहने लगी ॥ २६ ॥ कि श्रीकृष्णचन्द्रके संग यह कौन गयी है, किसके चरण हैं, जिसने श्रीकृष्णके कन्धेपर अपना हाथ धरा है, जिस प्रकार हाथी हथिनियोंके ऊपर सूँड़ धर लेता है ॥२७॥ निश्चय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका

इसने आराधना किया है जिस कारण हम सबको त्याग प्रसन्न हो श्रीगोविंद इसे एकांतमें ले गये ॥ २८ ॥ हे सखियो ! इस गोविंदकी चरणरेणुको ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी सम्पूर्ण अपने पाप दूर करनेके लिये माथेपर चढ़ाते हैं यह बड़ी धन्य है, जो इसे शिरपर धारण करोगी तो भगवान् मिल जायँगे ॥ २९ ॥ उस प्यारीके पांवके खोज हमको अत्यन्त व्याकुल करते हैं। देखो ! हम सबको त्याग अकेली एकांतमें ले जाय श्रीकृष्णचन्द्रका अधरामृत भोग करती है ॥३०॥ आगे बढ़कर बोली कि यहां तो उसके चरण नहीं दिखायी देते, परन्तु इसका कारण यह विदित है कि जब तृणके अंकुरोंसे उसका कोमल चरणतल पीड़ित हो गया है, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी प्रिय-

धन्या अहो अमी आल्यो गोविंदाङ्घ्र्यब्जरेणवः ॥ यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥ तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत ॥ यैकाऽपहृत्य गोपीनां रहो भुंक्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः ॥ खिद्यत्सुजातांघ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३१ ॥ (इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ॥ गोप्याः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥ अत्रावरोपिता कांता पुण्यहेतोर्महात्मना ॥) अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ॥ प्रपदाक्रमणे एते पश्यताऽसकले पदे ॥ ३२ ॥ केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ॥ तानि चूडयता कांतामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः ॥ कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥

तमाको कन्धेपर चढ़ा लिया होगा ॥३१॥ (हे वीर ! जिस समय कृष्णने प्यारीको उठाया तो उन कामके रसिया श्रीकृष्णचन्द्रके चरण पृथ्वीमें धस गये, देखो ! यह फूलोंके लिये अवश्य सखीको उठाया है) हे सखी ! यह देखो ! प्यारेने प्यारीके कारण फूल तोड़े हैं इस स्थानमें चरणोंको उचकाकर खड़े होनेसे थोड़ा चिह्न दिखायी देता है ॥ ३२ ॥ कामासक्त श्रीकृष्णचंद्रने कामिनीके केश बांधकर सुधारे हैं, प्यारीको बैठाकर केश गुहते समय प्यारा इस स्थानमें निश्चय बैठा होगा ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! यद्यपि श्रीकृष्णचंद्र आत्मरत आत्माराम स्त्रियोंके विलासोंसे अखण्डित हैं,परन्तु तो भी उन्होंने कामी मनुष्योंकी दीनता और

स्त्रियोंका दुष्टपन दिखलानेके लिये उनके साथ रमण किया ॥३४॥ इस प्रकार वे सब गोपियें अचेत हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ढूँढनेका विचार करने लगीं, अब श्रीकृष्णचन्द्र और स्त्रियोंको वनमें त्याग जिस स्त्रीको संग ले गये थे ॥३५॥ वह गोपी सब स्त्रियोंमें अपने आप को श्रेष्ठ मानने लगी कि देखो चाहना करनेवाली गोपियोंको छोड़ श्रीकृष्णचन्द्र मेरे संग आनन्द कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत वह गोपी गर्वित होकर केशव श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगी कि मुझसे चला नहीं जाता, जहां तुम्हारा मन हो वहां चलो, तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि प्यारी ! दश पैग और चलो, तब किशोरीजी फिर बोली, हां जी, जैसे तुम चार पहर गायोंके पीछे फिरते हो उसी प्रकार सबको जानते हो, हम तो कभी महलके बाहर भी नहीं निकलीं, मैं कैसे चलूँ ? ॥३७॥ इस प्रकार जब प्यारीने कहा तब श्रीकृष्णचन्द्रने अपने

इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ॥ यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥३५॥ सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ॥ हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥३६॥ ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ॥ नपारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥३७॥ एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति ॥ ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३८ ॥ हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ॥ दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः ॥ ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥४०॥ तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ॥ अपमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥४१॥

कन्धेपर चढ़नेको कहा, यह सुनकर ज्योंही राधिका चढ़ने लगी कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्धान हो गये तब तो यह अत्यन्त घबड़ा गयी ॥३८॥ और कहने लगी कि हा नाथ ! हे रमण करनेवाले ! हे महाभुज ! तुम कहां हो ? कहां हो ? हे सखे ! तुम्हारी दासी कृपण मैं हूँ, उसको समीप आकर अपना दर्शन दो ॥३९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! उन सब इकट्ठी गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दूरसे मार्ग ढूँढ़ते ढूँढ़ते प्यारेके वियोगमें मोहित और अति दुःखित उस स्त्रीको देखा ॥ ४० ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रथम मान मिला, फिर गर्व होनेसे अपमान मिला यह बात उस स्त्रीके मुखसे श्रवण कर सब गोपियां बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुई ॥ ४१ ॥

और निशानाथ चन्द्रमाकी चांदनीका प्रकाश जहांतक था वहांतक गोपियोंने ढूँढ़ा, आगे वृक्षोंकी छायाका अँधेरा देखकर लौट आयीं॥४२॥ वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये कृष्णसम्बंधी बातें और उन्हींकी लीला करतीं तन्मय हो उन्हींके गुणगान कर रही थीं कि कृष्ण वियोगमें उन्हें अपने घरकी भी सुध न रह गयी ॥४३॥ इसके उपरांत सब लौट यमुनाजीके पुलिनमें आकर भगवान्में जिनकी भावना लग रही उनके आनेका पैंड़ा देख सम्पूर्ण गोपियां मिल कर श्रीकृष्णचन्द्रके गुण गाने लगीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां कृष्णान्वेषणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ दोहा-इकतिसमाहिं निराश हो, बहुरि यमुन तट आय । करत प्रार्थना प्रेमसों, प्रगट होहु यदुराय ॥ इसके उपरांत सम्पूर्ण गोपी कहने लगीं कि प्रीतम ! तुम्हारे जन्म लेनेसे यह ब्रज

ततोऽविशन् वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ॥ तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥४२॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ॥ तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४३॥ पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ॥ समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥४४॥ इति श्रीभाग० महापु० दशम० पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णने कृष्णान्वेषणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ गोप्य ऊचुः ॥ जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इंदिरा शश्वदत्र हि ॥ दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ॥ सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥ विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद्वैद्युतानलात ॥ वृषमयात्मजाद् विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥

अत्यन्त शोभायमान लगता है और आपके प्रकट होनेके कारण यहां लक्ष्मीजी सदा वास करती हैं इस प्रकार सब ब्रजमें आनन्द हो रहा है। हे प्यारे ! तुम्हारे ही लिये प्राण धारण किये तुम्हारी दासियां तुम्हें ढूँढती फिरती हैं ॥ १ ॥ हे सुरतनाथ ! शरदऋतुके सरोवरमें भले प्रकार उपजे श्रेष्ठ कमलके भीतरकी शोभाको चुरानेवाले तुम्हारी दृष्टिकी विना मोलकी हम दासी हैं, सो उनको तुम क्यों मारते हो; यदि तुम कहो कि हम क्या मारते हैं ? तो क्या शस्त्रसे ही मारते हैं, दृष्टिसे नहीं मारते ? क्या इसीसे तुमने दृष्टिसे हमारे प्राण हर लिये हैं, उनके देनेके कारण शीघ्र हमें दर्शन दो ॥ २ ॥ इसी प्रकार हमारे नेत्र चोर तेरी रूपमाधुरीकी लूटमें पड़े हैं,

पैर आप ही बँध गये, कपोलोंको देख फिर उससे भी सुन्दर नासिकामें लगे, फिर अधर चिबुकमें गये; सब अंग एकसे सुन्दर हैं, हम भले प्रकार देखने भी न पायीं, अब तो हमारे नेत्र तुम्हारे रूपमें बँध गये हैं, इस कारण छूट नहीं सकते। हे लाल! आपने बारंबार मृत्युसे रक्षा की, अब क्यों कामदेवको भेजकर दृष्टिसे मारते हो? क्योंकि विषके जलसे मृत्यु थी, उससे रक्षा की, फिर अघासुरसे बचाया, इन्द्रने महाघोर वर्षा और पवन चलाया उससे रक्षा की, बिजलीकी आग तथा वृषासुरसे बचाया; मयके पुत्र व्योमासुरसे और अन्य समस्त भयसे बचाया; फिर अब किस लिये हमको छोड़ते हो॥३॥ तुम यशोदाके पुत्र नहीं हो, क्योंकि यशोदाके पुत्र होते तो "मापर पूत पितापर घोड़ा। बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा" कुछ तो अपनी जाति का पक्ष आता। सब देहधारियोंकी बुद्धिके साक्षी हो,ब्रह्माने विश्व रचनेको जब प्रार्थना की

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ॥ विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥ विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ॥ करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥ व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥ भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ॥ फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥ ७ ॥

तब हे कृष्ण! तुम यादवोंके कुलमें प्रकट हुए और जब ब्रह्माजीने आपको रक्षा करनेके लिये कहा तब उसने यह कह दिया होगा कि सबकी तो रक्षा करनी और गोपियोंको जला जलाकर मारना सो ब्रह्मा तो ब्राह्मण है इस कारण वह ऐसा अधर्म क्यों बतावेगा?॥४॥ हे यादवश्रेष्ठ कान्त! संसारके भयसे तुम्हारे चरण सेवन करनेवाले जो पुरुष हैं, उनको अभयदाता, कामनाओंके देनेवाले और लक्ष्मीका हाथ पकड़नेवाला जो तुम्हारा हस्तकमल है सो हमारे माथेपर धरो ॥५॥ हे सखे!हे वीर! हे ब्रजवासियोंका दुःख हरने वाले! अपने जनोंका गर्व दूर करनेवाली तुम्हारी मुसकानकी हम दासी हैं, उनका सेवन करो, क्योंकि पहली स्त्रियां हम हैं, उनको अपना मुखकमल दिखाओ ॥६॥ प्रणत अर्थात् नम्र देहधारियोंके पापोंको दूर करनेवाले, गायोंके पीछे चलनेवाले, शोभाके स्थान, कालीके फणपर नृत्य करनेवाले

आपके चरणकमल हैं, उनको कृपापूर्वक हमारे कुचोंपर धरकर कामकी व्यथा दूर करो + ॥ ७ ॥ हे कमलदललोचन ! हे वीर ! सुन्दर वाक्यवाली गम्भीर वाणीसे मोहित हुई हम दासियोंको अधरामृत पिलाकर जीवनदान दो ॥८॥ आपके विरहमें हमारे प्राण जा चुके हैं, परंतु आपके कथामृतको पान करते हुये सुकृती जनोंने हमें बचा लिया, क्योंकि संसारमें तृप्त पुरुषको जिलानेवाले ब्रह्मादिक जिसकी स्तुति करें, ऐसे पापोंको दूर करनेवाले मंगलरूप शान्त तुम्हारी कथारूप अमृतको जो पुरुष पृथ्वीमें कहते हैं वे बड़े दाता हैं। जब तुम्हारी

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ॥ विधिकरीरिमा वीरमुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥८॥
तव कथाऽमृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥ श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥९॥
प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ॥ रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि
॥१०॥ चलसि यद्व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ॥ शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः
कान्त गच्छति ॥ ११ ॥

कथा कहनेवाले धन्य हैं, तो जो तुम्हारा दर्शन करते हैं उनका तो कहना ही क्या है ? इससे अब दया करके दर्शन दो ॥९॥ हे सौम्य ! हे कपटी ! तेरा मुसकानसहित मुख प्रेमभरी चितवन और ध्यानमें मंगल रूप तुम्हारा विहार, हृदयको स्पर्श करनेवाली एकान्तकी बातें हमारे मनको क्षोभ करती हैं ॥ १० ॥ हे नाथ ! जिस समय गौ चरानेको आप ब्रजसे जाते हो, तब तुम्हारे कमलके तुल्य सुन्दर चरण

+ शंका–स्त्रियोंके स्तनोंको पुरुष हाथसे स्पर्श करता है तो स्त्रीको सुख होता है, कुछ पुरुषके चरण स्पर्शसे सुख नहीं होता ? तब गोपियोंने कृष्णके चरण अपने स्तनपर स्पर्श होनेकी क्यों याचना की ? महाराज! आप अपने चरण हमारे सबके स्तनोंपर अर्पण करो, जो कोई कहे गोपी कामसे आतुर थीं उनको पदका और हाथका स्मरण न रहा,इसलिये चरणकी याचना की थी तो फिर कृष्णके दूसरे अंगकी याचना क्यों नहीं की ? अकेले चरणोंकीही सब देहमेंसे याचना क्यों की ?

उत्तर—गोपियोंने सुना था और देखा भी था कि श्रीकृष्णके चरणोंके स्पर्शसे कालियनागका जहर नष्ट हो गया,कालियनाग निर्विष हो गया इससे जो हमारे सबके स्तनोंपर श्रीकृष्ण के चरणोंका स्पर्श हो जाय तो हम सबके कामदेवका नाश हो जाय, क्योंकि कालियके गरलसे काम बड़ा नहीं है, कामदेवका नाश होने से सब संसारकी बाधायें छूट जायेंगी । इसलिये गोपियोंने श्रीकृष्णके चरणोंको अपने स्तनोंसे स्पर्श करने की याचना की, क्योंकि गोपी तो वेदोंकी ऋचा हैं ।

कांकरी तृण अंकुर लगकर कष्ट पाते हैं, इसलिये हे कान्त ! हमारा मन चंचल होता हैं, सो इस प्रकार प्रेम रखनेवाली दासियोंपर भी आप दया नहीं करते ? ॥ ११ ॥ संध्यासमय नील केशसे ढके गोरजसे धूसरित कमलके समान मुखको धारणकर बेर बेर दिखाके हे वीर ! हमारे मनमें कामदेवको उत्पन्न करते हो परंतु संग नहीं देते, यही तुम्हारा निश्चय कपट है ॥१२॥ हे कामकी पीड़ाको दूर करनेवाले ! आप नम्र देहधारियोंको कामनाओंके देनेवाले, जिनका ब्रह्माजीने पूजन किया, पृथ्वीको शोभायमान करनेवाले, आपत्तिमें ध्यानसे ही पीड़ा दूर करनेवाले, सेवामें सुखरूप, ऐसे अपने चरणकमलोंको हमारे कुचोंपर धरिये ॥१३॥ हे वीर ! कामको बढ़ानेवाला, शोकको दूर करनेवाला, स्वरभरी बजती हुई बांसुरी भले प्रकार चुम्बित, मनुष्योंके चक्रवर्ती आदि सुखका भुलानेवाला, एवं सुखदायक आपका अधरामृत है, सो हमारे रोग शांत करनेको दीजिये। हे कृष्ण ! यह औषध मिलनेसे हम भली हो जावेंगी और जो तुम दवाका मोल

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ॥ घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥ प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ॥ चरणपङ्कजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाऽऽधिहन् ॥ १३ ॥ सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ॥ इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥ अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥ कुटिल कुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥

मांगो तो दमड़ीकी बांसकी वंशी, जिसे दिन रात मुखपर धरे रहते हो, वह तुम्हें क्या मोल देती है ? और जो तुम कहो कि तुम कुपथ्य करती हो अर्थात् तुम अभी गैया, मैया, भाई और पत्यादिकोंकी वासनाका कुपथ्य करती हो अतः कुपथ्य करनेवालेको दवा न देनी चाहिये, सो हे प्यारे ! तुम्हारी औषधि यह सब दूर कर देगी तुम हमें पिलाओ तो सही ॥१४॥ जब तुम दिनके समय बनमें जाते हो तब तुम्हारे देखे विना आधा क्षण युगके समान व्यतीत होता है, यह तो विना देखेका दुःख कहा और जब घुँघुरारे केशोंसे युक्त तुम्हारे मुख कमलका दर्शन करती है, उस समय पलकोंका बनानेवाला ब्रह्मा हमें मूर्ख विदित होता है, क्योंकि पलकोंसे दर्शनमें बाधा होती है, यह दर्शनमें दुःख है और छः वर्षकी हमारी ननँद जब अपनी माँसे जाकर कहती है कि देख री मा ! भावी उस नंदके पुत्रको देखने गई है,

तब सास त्रास दिखाती, है, दूसरे ब्रह्मा वैर पड़ा है, अपनी आठ आंखे बनायीं, हमारी दो ही और उसपर भी पलक लगा दिये हैं ॥१५॥ पति, पुत्र और वंशके बंधु बांधवोंको त्याग तुम्हारे गीतसे मोहित होकर हम तुम्हारे पास आयीं थीं और गानकी गतोंको और हमारे आगमनको जाननेवाले हे अच्युत ! हम तुम्हारे निकट आयी हैं, सो हे कपटी ! रात्रिमें आयी हुई स्त्रियोंको तुम विना ऐसा कौन है जो त्यागेगा ? ॥१६॥ कामदेवका प्रकट करनेवाला एकांतका संकेत देख और हँसीसहित मुख तथा प्रेमकी चितवन देख और लक्ष्मीके रहनेका स्थान तुम्हारा वक्षस्थल देखकर हमको बड़ी चाहना हुई है; एवं हमारा मन भी मोहित हो गया है॥१७॥ अङ्ग अर्थात् हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारा प्रकट होना व्रजवासी और वनवासियोंके दुःखका दूर करनेवाला है तथा अतिशय करके विश्वका मंगलरूप है इस कारण तुम्हारे दर्शन

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽत्यच्युतागताः ॥ गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥ रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ॥ बृहदुरःश्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥ व्रजवनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ॥ त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥ यत् ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥ तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपिकागीतं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

विना व्याकुल हमें अपने भक्तजनोंके मनकी पीड़ा दूर करनेवाली गुप्त ओषधि दो, कृपणता मत करो । यह हम जानती हैं कि इस ओषधिको तुम ही जानते हो ॥१८॥ कठोर स्तनोंपर तुम्हारे चरणकमलोंको हम भयसे धीरे धीरे धारण करती हैं, क्योंकि कहीं कोमल चरणोंमें गढ़े न पड़ जायँ और तुम उन चरणोंको वनमें उठा उठाकर फिरते हो, क्या चरणोंमें कांटे कंकडी लगकर खेद नहीं होता ? जब यह विचार करती हैं, तो तुम्हें अपना जीवनधन माननेवाली हमारी बुद्धि मोहित हो जाती है, परंतु जब पुकारकर इतना तो कह दो कि अरी गोपियो ! तुम कहां हो, मैं तो पुलिनमें लताओंके नीचे सुखपूर्वक बैठा हूँ ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां गोपीगीतं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दोहा—बत्तिसमाहिं वियोगते, द्रवीभूत भो हीय। प्रगट भये तुरतहि हरी, अति प्रसन्न भईं तीय॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ राजा परीक्षित्! इस प्रकार गान और चित्रविचित्र विलाप करती हुईं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी इच्छासे वे गोपियें बड़े स्वरसे रोदन करने लगीं॥ १॥ उसी समय मुसकानयुक्त मुखकमल, पीतांबर धारण किये, वनमाला पहने हुए, साक्षात् कामदेवका मन मोहित करनेवाले, दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके बीचमें प्रकट होकर बोले॥ २॥

श्रीशुक उवाच॥ इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा॥ रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः॥ १॥ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान मुखाम्बुजः॥ पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥ २॥ तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः॥ उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम्॥ ३॥ काचित् कराम्बुज शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा॥ काचिद् दधार तद्बाहुमंसे चन्दनभूषितम्॥ ४॥

तब प्रीतिपूर्वक प्रसन्न और प्रफुल्लित सम्पूर्ण अबलायें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया देख, इस प्रकार उठकर खड़ी हुईं कि जैसे देहमें प्राण आनेसे हाथ पांव एक सङ्ग उठने लगते हैं॥ ३॥ और किसी गोपीने तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका बड़े आनन्द पूर्वक हस्तकमल पकड़ लिया और कोई चन्दनसे शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको कन्धेपर ही धरने लगी *॥ ४॥

* "काचित् करांबुज" यहां शुकदेवजीने "काचित्" कहा, नाम नहीं लिया, उसका कारण यह है कि, नाम श्रीशुकदेवजीका परम इष्ट है दो अक्षर मंत्ररूप हैं, सो जपमंत्रका प्रकाश करना भला नहीं, अथवा भगवान् महादेवजीने शुकदेवसे तत्त्वज्ञान कहा, परंतु, नामके दो अक्षर प्रकाश नहीं किये, रा रा कहा करते हैं, दूसरा अक्षर नहीं कहते, कदाचित् कोई चुराकर ले जाय? एकवार तो तत्त्वज्ञान खोया जिसकी कथा वर्णन करते हैं। एक समय नारदजीने कैलासपर आकर विचारा कि, यहां कुछ आग लगानी चाहिये, सो पार्वतीसे कहा तुम्हें महादेवजी कुछ प्यार भी करते हैं? पार्वती बोलीं कि, कुछ अंतर नहीं रखते, तब नारदजी बोले कि तुम पूछियो कि आपके गलेमें मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है यह कह नारदजी चले गये, जब वर्ष दिन पीछे महादेवजी समाधिसे जागे तो पार्वती बोली कि, महाराज यह मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है? बताओ यह सुनकर शिवजी बोले कि, जब तुम्हारा शरीर छूट जाता है, तब धारण कर लेता हूं पार्वती बोलीं 'मेरे तो सैकड़ों जन्म हुए, औरतुमने ऐसी अमरौती खाई है, जो तुम अमर हो,' शिवजी अपने मनमें कहा कि किसीने भली आग लगाई, फिर बोले मुझे तत्त्वज्ञान है, पार्वतीने कहा, वह तत्त्वज्ञान मुझे बताओ! अब शिवजीने स्नेह हटाय एक चुटई बजाई, कि उस स्थानके सब पक्षी उड़ गये, फिर एक चुटकी बजाई बच्चोंके पंख जमि आये, फिर बजाई, सब बच्चे उड़ा दिये उसी समय शुकीके गर्भमें शुकदेवजी आये थे, सो एक चुटकीसे बाहर आये दूसरीसे अंडा फूटा और तीसरीसे पर निकले, सो एक वृक्षकी डालीपर जा बैठे तब महादेवजी पार्वतीसे कहने लगे-पार्वती हुंकार देती सोगई यह तोता हूं हूं करने लगा और महादेवजी ब्रह्मानंदमें मग्न नेत्र मीचे संपूर्ण कथा कह गये, जब नेत्र खोलकर देखा तो—

और किसी कृश अङ्ग वाली गोपीने श्रीकृष्णचन्द्रके मुखमेंसे तांबूलका बीड़ा अपने हाथमें ले लिया और कामसे कम्पायमान कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके चरणकमल अपने स्तनोंपर धरने लगी ॥ ५ ॥ एक गोपी अपनी भौंहें चढ़ाकर कोपके आवेशसे विकल हो अपने होठोंको दांतोंसे दाब कटाक्षरूपी बाणोंसे मारतीसी देखने लगी ॥ ६ ॥ हे राजन्! और गोपियें निमेषरहित दृष्टिसे श्रीकृष्णचन्द्रका मुखकमल भले प्रकार देखती भी हैं, परंतु तो भी बेर बेर देखकर तृप्त नहीं हुईं, जिस प्रकार साधुपुरुष श्रीकृष्णचंद्रके

काचिदञ्जलिनाऽगृह्णात्तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ॥ एका तदङ्घ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥ एका भ्रुकुटिमाबध्यप्रेमसंरम्भविह्वला ॥ घ्नन्तीवैक्षत् कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥ अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ॥ आपीतमपि नातृप्यत् सन्तस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥ तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदि कृत्य निमील्य च ॥ पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसंप्लुता ॥ ८ ॥ सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ॥ जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ॥ ९ ॥ ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ॥ व्यरोचताधिकं तात पुरुषश्शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥

चरणारविंदके दर्शन करनेसे तृप्त नहीं होते ॥७॥ और कोई गोपी नेत्रोंके छिद्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयमें धारण कर नेत्र मूँद उन्हें आलिंगन कर रोमांचितशरीर हो योगीजनोंके समान महान् आनन्दमें मग्न हो गयी ॥८॥ और केशवमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करके आनन्दसे सुखी हो सम्पूर्ण गोपियोंने विरहके तापको त्याग दिया, जैसे ईश्वरको पाकर मुमुक्षुजन ताप छोड़ देते हैं ॥ ९ ॥ हे परीक्षित! उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन दुःखरहित गोपियोंके मध्यमें इस प्रकार शोभायमान होने लगे, जैसे परमात्मा सब

पार्वती सो गई और हूँ हूँ तोतेने करी यह जान झट उसके मारनेको त्रिशूल चलाया और पीछे दौड़े, तोता भागा, तो व्यासजी की स्त्री कोठेपर खड़ी थी उसने जो जंभाई ली, सो उसके उदरमें प्रवेश कर गये, शिवजीने व्यासजीसे कहा कि तुम्हारी स्त्रीमें हमारा चोर है, उसे निकालो; व्यासजी बोले की आपके पास से क्या इसने चुराया है शिवजी बोले कि तत्त्वज्ञान, जिससे अमर होते हैं, वह इसने चुराया है, व्यासजी बोले, कि इसीसे आप भोलानाथ कहलाते हो, भला विचारो तो सही जिसने तत्त्वज्ञान सुना, वह त्रिशूलसे कैसे मरेगा। महादेवजी हँसकर कैलासको चले गये, और उसी-दिनसे रा रा कहते हैं, पूरा नाम नहीं लेते शुकदेवजी संपूर्ण ही गुप्त रखते हैं इसी कारण राधिकाका कहीं नाम नहीं लिया ।

शक्तियोंसे और उपासक पुरुष ज्ञान बल वीर्यादि जो शक्ति हैं, उनसे शोभायमान लगता है ॥१०॥ इसके उपरांत उन गोपियोंको सङ्ग ले फूले हुए कुन्द और मंदारकी सुगन्धयुक्त पवनके कारण जहां भौंरे गुञ्जार कर रहे थे, ऐसे यमुनाके पुलिनमें सबको ले गये ॥११॥ कैसे पुलिन हैं कि शरदऋतुके चन्द्रमाकी किरणोंके समूहसे रात्रिका अन्धकार जिनमेंसे दूर हो गया है और यमुनाजीका भी उसके समान रंगोंसे कोमल बालूके बिछौने जिसमें बिछ रहे हैं ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रका दर्शन होनेके कारण आनन्दपूर्वक हृदयके रोग दूर कर रोगियोंने अपने मनोरथोंके अन्तको प्राप्त किया अर्थात् उनके मनोरथ पूर्ण हुए, जैसे ज्ञानकाण्डमें श्रुति परमेश्वरको देख आनन्दसे परिपूर्ण हो

ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ॥ विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥ शरच्चन्द्रांशुसंदोह-ध्वस्त दोषातमः शिवम् ॥ कृष्णाया हस्ततरलाऽऽचितकोमलवालुकम् ॥१२॥ तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ॥ स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३ ॥ तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वरान्तर्हृदिकल्पितासनः ॥ चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥१४॥ सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ॥ संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥

कामके सम्पूर्ण बन्धनोंका त्याग करती है और कुचोंकी केशरयुक्त अपनी ओढ़नियोंको उतार उतारकर गोपियां श्रीकृष्णचंद्रके बैठनेकी तकिया बनाने लगीं * ॥ १३ ॥ योगेश्वरोंके भीतर जिनका कल्पित आसन है, वह ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तीन लोककी शोभाका एक ही स्थान क्या तीनोंलोककी शोभा जिसमें आ रही, उसी प्रकार रूप धारण कर उस आसन पर बैठ गोपियोंसे पूजित हो उनकी सभामें शोभायमान होने लगे ॥ १४ ॥ कामदेवके बढ़ानेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी हास लीलापूर्वक चितवनसे चलायमान

* शंका—जिन गोपियोंके मित्र श्रीकृष्ण सो सब गोपी अपने पहिने हुए वस्त्रों का आसन श्रीकृष्णके बैठनेको क्यों देती थीं ? क्या गोपियां दरिद्रिनी थीं ? नया वस्त्र मँगाकर भगवान्‌के बैठनेको आसन क्यों नहीं दिया ?
उत्तर—जो प्राणी अपने काममें उन्मत्त होता है, कुछ नहीं जान पड़ता, कि यह काम अच्छा है यह काम बुरा है इसी प्रकारसे कृष्णके चरणोंमें गोपी उन्मत्त हो रही थी, उनको ज्ञात न हुआ कि वस्त्र हमारा पहिना हुआ है वा बिना पहिना है । इसलिये गोपी भगवान्‌को अपने पहिने वस्त्रको बैठनेके आसन देने लगी ।

भ्रुकुटीसे सत्कार कर गोदमें धरे हुए श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंको हाथोंसे दाबती और स्तुति करती कुछेक क्रोधसे गोपियां बोलीं ॥ १५ ॥ सब गोपी बोलीं कि महाराज! एक पुरुष तो भजते हुएको भजता है, वह कौन है? एक ऐसे हैं कि जो नहीं भजते उसको भजते हैं, वह कौन हैं? एक भजतोंको और न भजतोंको दोनोंको नहीं भजता है वह कौन है? सो हे कृष्ण! यह हमारे आगे भले प्रकार समझाकर कहो ॥१६॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे सखियो! जो पुरुष परस्पर भजते हैं अर्थात् जितना वह उनको चाहें, उतना ही वह उनको चाहें, वह पुरुष तो अप-

गोप्य ऊचुः ॥ भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ॥ नोभयांश्च भजन्त्यन्य एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते॥न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥१७॥ भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा॥ धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥१८॥ भजतोऽपि न वै केचिद् भजन्त्यभजतः कुतः ॥ आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥

स्वार्थी हैं, उस भजनमें स्नेह, सुख, धर्म कुछ भी नहीं है, वह तो केवल अपना ही भजन है॥१७॥ और जो नहीं भजतोंको भजते हैं वे पुरुष दो प्रकारके हैं, एक तो करुणावान्; दूसरे स्नेही। जैसे माता पिताको पुत्र नहीं चाहता है परन्तु वे उसके ऊपर कृपा करते हैं और इस भजनमें निर्दोष धर्म है। हे सुमध्यमाओ! दयालु होकर भजनेमें सत्य धर्म है, और स्नेहसे भजनेमें सत्य प्रेम है॥१८॥पर भजन विश्वाससे ही करना योग्यहै, * क्योंकि विश्वासमें ही भगवान् हैं और कहीं नहीं और जो पुरुष भजतोंहीको नहीं भजते तो अभजतोंको कहांसे भजेंगे? वे चार प्रकारके हैं-एक तो आत्मामें ही रमण कर रहे हैं और एक पूर्णमनोरथ हैं; जिनको किसी बातकी चाहना नहीं है और एक अकृतज्ञ हैं जो उप-

* दृष्टान्त—एक मनुष्य किसी कार्यवश भगवान्का पूजन करता था, परंतु मनमें वह विचारता कि यह पत्थरकी मूर्ति हमारा कार्य कैसे साधन कर सकेगी? इस प्रकार चल विश्वास होनेसे उसका कार्य नहीं हुआ, तब किसी ने उससे कहा कि तू श्रीभगवती दुर्गादेवीका पूजन कर, तुरंत काम सिद्ध होगा, वह मनुष्य ऊपरके आलेमें श्रीठाकुरजीकीमूर्ति रख नीचे दुर्गादेवी का पूजन करने लगा। एक दिन धूप देते समय मनमें विचारा कि धूप सीधी ऊपर ही को जाती है सोई नारायणको पहुंचती है इस कारण दुर्गादेवीको पीछे मिलने से वह प्रसन्न नहीं होती इसका यत्न करूं, यह विचार रुई ढूंढ़ भगवत्मूर्तिकी नाकमें भरने लगा जिससे कि सुगन्ध न जाय। तब भगवान् तत्काल ही मूर्तिसे प्रकट होकर हँसकर बोले कि भाई! रुई मत ठूंस, वर मांग क्या चाहिये? वह बोला कि महाराज! मुझे क्या खबर थी, कि रुई ठूसनेसे प्रसन्न होते हुं यह विधि किसी पद्धतिमें भी नहीं लिखी। भगवान् बोले, पहलेसे विश्वास नहीं था, मूर्तिको पाषाण अर्थात् पत्थर जानता था आज वह बात जाती रही, आज मूर्ति ही ईश्वर जानी, नहीं तो पत्थरमें सूंघनेकी शक्ति कहां? आज तेरा विश्वास ईश्वररूपका था।

कारको नहीं समझते और एक गुरुद्रोही हैं, अर्थात् जो उपकार करे उसीसे द्रोह करते हैं ॥१९॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे सखियो ! मैं इनमेंसे कोई नहीं, केवल दयालु और स्नेही हूँ, जो कोई प्राणी मेरा भजन करता है, उनको अपनी ओर ध्यान लगानेके लिये मैं नहीं भजता हूँ; जैसे दरिद्री पुरुषको धन मिले और वह धन जाता रहे, तब वह उसी चिन्ताका मारा भूख प्यास नहीं जानता ॥२०॥ हे बालाओ ! मेरे लिये ही लोकमर्यादा, वेदमर्यादा, पति पुत्रादिक तुमने त्याग दिये, सो तुम्हारी चित्तवृत्ति लगानेके लिये तुमको देखनेके लिये नहीं आया, तुम्हारे पास ही छिप रहा था, कुछ दूर नहीं गया था। हे प्रियाओ ! यह कृष्ण बुरा है ऐसे मुझमें दोष मत लगाओ ॥ २१ ॥ तुम निर्दूषित हो और तुम्हारे संग उपकारका बदला मुझसे यदि देवताओंके समान अवस्था हो तो भी नहीं हो सकता, क्योंकि जो

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून् भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ॥ यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयाऽन्यन्निभृतो न वेद ॥२०॥ एवं मदर्थोज्झितलोकवेद स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ॥ मया परोक्षं भजता तिरोहितं माऽसूयितुं माऽर्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥२१॥ न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषाऽपि वः ॥ या माऽभजन् दुर्जयगेह-शृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥ २२॥ इति श्रीभा० महा० दश० पूर्वार्द्धे हरिकृतविरहितगोपीसान्त्वनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचा सुपेशलाः ॥ जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥१॥ तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ॥ स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याऽऽबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

छोड़ी न जायँ ऐसी घररूप बेड़ियोंको काटकर तुमने मेरी सेवाकी, इसलिये तुम्हीं कह दो कि कृष्ण हमारा ऋणिया नहीं है, तो मेरा छुटकारा है, मुझसे तुम्हारे उपकारका बदला नहीं हो सकता ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडावर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ दोहा—नारि मण्डलीके विषे, ठाढ़े श्रीयदुराय। करत विहार प्रियान सँग, तेतिसवें अध्याय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार उन श्रीकृष्णचन्द्रके हस्त चरण आदि अंग स्पर्शकर मनोरथ पाकर गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अति कोमल वचन श्रवण कर विरह तापको छोड़ दिया ॥ १ ॥ और इसके उपरान्त गोविन्द श्रीकृष्ण भी वहां

अपनी आज्ञा करनेवाली प्रसन्न मनसे परस्पर हाथ पकड़े खड़ी हुई स्त्रियोंमें श्रेष्ठ गोपियोंको संग ले रासक्रीड़ाको आरम्भ करने लगे ॥२॥ फिर गोपियोंके समूहसे शोभायमान रासका उत्सव योगके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र रचने लगे और मण्डलाकार खड़ी हुई दो दो गोपियोंके बीचमें अपने अनेक रूप धारण कर कण्ठमें गलबांही डाल गान करते श्रीकृष्ण आप भी खड़े हुए ॥३॥ हे राजन् ! जिन श्रीकृष्णचंद्रको सब गोपियें प्यारा मेरे पास है, कोई बोली मेरे पास है इस प्रकार अपने-अपने पास जानने लगीं और रास देखनेकी इच्छासे देवता लोग भी अपनी अपनी स्त्रियोंको लेकर आये, उनके विमानोंसे आकाश छा गया ॥४॥ देवताओंके आनेके उपरान्त नगाड़े बजने लगे, फूलोंकी वर्षा होने लगी और मुख्य-मुख्य गन्धर्व अपनी-अपनी स्त्रियोंको संग ले भगवान् श्रीकृष्णका निर्मल यश गाने लगे ॥ ५ ॥ और प्यारे श्रीकृ-

रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ॥ योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥ प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥ यं मन्येरन् नभस्तावद् विमानशतसंकुलम् ॥ दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥ ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥ वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् ॥ सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः ॥ मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ ७ ॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ॥ स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥

ष्णचन्द्रके संग जो स्त्रियें थीं, उनके कंकण, नूपुर तथा किंकिणियोंका रासमण्डलमें बड़ा झनकार शब्द होने लगा ॥ ६ ॥ जैसे दो दो मणियोंके बीचमें एक एक नीलमणि सुन्दर लगती है, उसी प्रकार उस रासमण्डलमें दो-दो गोपियोंके बीचमें एक एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥७॥ पावोंका धरना, भुजाओंका हिलाना, मुसकान सहित भ्रुकुटियोंका चढ़ाना, कमरका लचकाना, कुचों और वस्त्रोंका हिलना, कपोलोंपर कुण्डलोंकी हलन, उनसे जिनके मुखपर पसीना आ गया, चोटियोंके नारोंकी गांठ जिनकी खुल गयीं, ऐसी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी वधू गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रके गुणानुवाद गान करतीं; जैसे मेघमण्डलमें बिजली

शोभायमान होती हैं उसी प्रकार शोभायमान होने लगीं ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके रंगोंसे कंठ जिनके रंग रहे, रति ही जिनको प्यारी और श्रीकृष्णचन्द्रका स्पर्श जिनको है उससे जिनको बड़ा आनन्द हो रहा है वे गोपियें नृत्य करती हुई ऊँचे स्वरसे गाने लगीं, जिनका गीत इस विश्वमें छा रहा है ॥ ९ ॥ और कोई गोपी मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रके संग उच्चस्वरोंसे आलापोंकी गतिको उठाने लगीं, कैसे स्वरोंकी जाति कि श्रीकृष्णने जो स्वर उठाया, उसमें मिलती थी। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो धन्य है, धन्य है इस प्रकार बड़ाई करने लगे। इसलिये जिन स्वरोंकी जातें ली थीं उनको ध्रुवतालमें बांधकर गाती हुई गोपियें प्रशंसा करने लगीं, तब गोपियोंको श्रीकृष्णचन्द्रने बहुत मान दिया ॥ १० ॥ कोई गोपी रासमें श्रमित हो गदा धारण करनेवाले पासमें खड़े हुए श्रीकृष्णचन्द्रके कंधेको हाथसे पक-

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ॥ कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ॥ उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधुसाध्विति ॥ तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥ ॥१०॥ काचिद् रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ॥ जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ॥ चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ १२ ॥ कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् ॥ गण्डे गण्डं सन्दधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥ १३ ॥ नृत्यन्ती गायती काऽपि कूजन्नूपुरमेखला ॥ पार्श्वस्थाऽच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताऽधात् स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥ गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् ॥ गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥ १५ ॥

ड़ने लगीं, चूरी तथा फूलोंके हार जिनके शिथिल हो गये। (यहां गदा वंशीको ही जानना, क्योंकि गोपियोंके हृदयको चूर करती है) ॥ ११ ॥ इसके उपरांत एक गोपीने रोमांच जिसके हो आये, कमलोंके समान सुगन्धवाली चन्दनसे चर्चित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको अपने कन्धेपर धरकर चुम्बन किया ॥ १२ ॥ और फिर नृत्यसे चलायमान कपोलोंको श्रीकृष्णके कपोलोंपर लगाती हुई गोपीको श्रीकृष्णचन्द्रने बीरीका जूठन दिया ॥ १३ ॥ और किसी गोपीने नूपुर करधनी जिसके बज रहे हैं नृत्य व गान करते हुए श्रम पाकर पास खड़े हुए मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हस्तकमल अपने स्तनोंपर धारण किया * ॥ १४ ॥ लक्ष्मीको अत्यन्त

* शंका—गोपीने श्रीकृष्णका हाथ अपने हृदयसे पकड़कर अपने स्तनोंपर क्यों रखा ? जैसे मनुष्यकी स्त्री कर्म करती है, ऐसा कर्म क्यों किया ?

प्यारे अच्युत श्रीकृष्णको सुन्दर पति पाकर उनकी भुजाओंसे कंठमें गलबाहीं डाल गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रका यश गाती हुई विहार करने लगीं ॥ १५ ॥ उस रासमण्डलमें स्त्रियों सहित गन्धर्व और किन्नरादिक जो बाजे बजा रहे थे तथा गवैये बनकर गा रहे थे वे सब रासरसमें मोहित होकर नृत्य करने लगे, उस समय कंकण और नूपुर बाजेका कार्य और भौंरे गवैयोंका काम कर रहे थे। रासमण्डलमें व्रजवनिता कृष्णके संग नृत्य करती हुई अत्यन्त शोभा पा रही थीं, उनके कानोंके अमल अलकोंसे युत कपोल और पसीनेके बूंदोंकी शोभा मुखपर छा रही थी और नृत्यसमयमें जो फूलोंकी माला गिरती थी उनसे ऐसी शोभा हो रही थी कि मानो तालोंकी गतिसे प्रसन्न

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ॥ गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥ एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ॥ रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥ १७ ॥ तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान् दुकूलं कुचपट्टिकां वा ॥ नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १८ ॥

होकर केश शिर हिलाकर चरणोंपर फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ १६ ॥ इस प्रकार लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आलिंगन; हाथोंका स्पर्श, स्नेहभरी चितवन और बड़े विलास हास्यसे जैसे बालक अपनी परछाहींसे खेलता है; उसी प्रकार व्रजसुन्दरियोंके संग रमण करने लगे ॥ १७ ॥ हे कुरुकुलको आनन्द देनेवाले राजा परीक्षित् ! उस समय श्रीकृष्णके अंगमें जो आनन्द है उससे जिनकी इंद्रियें विवश हो रहीं और जिन व्रजकी स्त्रियोंके माला—गहने खिसक रहे थे वे अपने केश, शरीर,कुच और वस्त्रोंके सम्हालनेको भी समर्थ न हुई ॥१८॥

उत्तर—गोपीने विचार किया कि इन्हीं श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने हस्तकमलोंको प्रह्लादके और ध्रुवके मस्तकपर रखा था तब प्रह्लाद और ध्रुव संसारके दुःखसे छूटकर भगवान्के भजनमें मग्न हो गये, इसलिये मैं भी अपने कुचोंपर भगवान्का हाथ धरके इन दोनों को भक्तजन बनाऊंगी; क्योंकि कामदेव जब कुपित होकर पुष्पधनुष संधान कर मेरे ऊपरको चढ़ता है, तो स्तनोंमें अधिक बाधा होती है, अब जो ये भक्त हो जायँ तो संसारके सब दुःखोंसे निवृत्त हो जाऊँगी और कामदेव भी मुझको नहीं सतायेगा उसकी बाधासे भी छूट जाऊंगी पुरुषकी ममता शिरपर बहुत होती है और स्त्रीकी ममता स्तनोंपर अधिक रहती है ऐसा विचार करके गोपीने कृष्णका हाथ अपने कुचपर रक्खा।

हे नृपश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ा देख आकाशमें देवांगनायें भी कामसे पीड़ित होकर मोहित हो गयीं और तारा गण-
सहित निशानाथ चन्द्रमा भी आश्चर्य मानकर चलना भूल गया, तब और ग्रह भी जहांके तहां रह गये, इससे राति जो बढ़ गयी
उससे सुखपूर्वक बिहार करने लगे ॥ १९ ॥ जितनी गोपोंकी स्त्रियें थीं उतने ही अपने रूप धर आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र
उन गोपियोंके संग लीला करने लगे ॥ २० ॥ फिर अत्यन्त विहारसे जिनको श्रम प्राप्त हुआ ऐसी गोपियोंके मुखका पसीना देख
करुणाको प्राप्त हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे उनका मुख पोंछने लगे ॥ २१ ॥ वे मानवती गोपियें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके
हस्तकमल नखस्पर्शसे महासुख पाकर प्रकाशमान सुवर्णके कुंडलसे कांतिमान कपोल तथा चितवन और मुसकानयुक्त श्रेष्ठ गुण भरे

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ॥ कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥ कृत्वा
तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ॥ रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ तासामति-
विहारेण श्रान्तानां वदनानि सः ॥ प्रामृजत् करुणः प्रेम्णा शंतमेनाङ्ग पाणिना ॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डल-
कुन्तलित्विङ्गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ॥ मानं दधत्यऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः
॥ २२ ॥ ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गवृष्टस्रजः स कुचकुङ्कुमरञ्जितायाः ॥ गन्धर्वपाऽलिभिरनुद्रुत आविशद्
वा श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥ सोंऽभस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरित-

श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके सुन्दर चरित्र गाने लगीं ॥ २२ ॥ मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब रासविलास करते
करते थक गये तब उन गोपियोंको संग ले श्रम दूर करनेके लिये जलमें घुसे, कुचोंकी केशर जिसमें लगी अंग अङ्गसे रगड़ी मालाकी
सुगंधिसे गन्धर्वोंके समान भौंरे गाते हुए उनके पीछे चले जाते थे, जैसे हथिनियोंको संग लेकर हाथी जलविहार करनेको जाते हैं
॥ २३ ॥ हे अंग ! इधर उधरसे जलमें स्त्रियोंके छींटे देते हैं, जिस समय जलविहार करते समय व्यंग्य वचन बोले कि और प्रेमपूर्वक
कृष्णको देखकर हँसती है और भगवान्को जलसे भिजोती है, विमानोंपर बैठे देवता स्तुति और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं। हाथीके समान

जिनकी लीला, ऐसे आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वहां जलमें अथवा गोपियोंके मण्डलमें क्रीड़ा करने लगे ॥ २४ ॥ जलक्रीड़ा करनेके उपरांत जल स्थलके पुष्पोंकी सुगन्धभरी पवन जिसके सब दिशाओंमें व्याप्त हो रही है, ऐसे यमुनाजीके बागमें भौंरेरूप गोपियोंके संग श्रीकृष्णचन्द्र विहार करने लगे, जैसे मदस्रावी हाथी हथिनियोंके संग विहार करता है ॥ २५ ॥ इस प्रकार सत्य संकल्प भगवान् चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभायमान उस शरदृऋतुकी रात्रिमें साहित्यकाव्योंमें जो करनेकी विधि लिखी है, उसी प्रकार वह स्नेहभरी गोपियोंके संग वीर्यको धारण करने लगे और जितनी गोपी उतने ही श्याम, उतनी ही कुञ्जोंमें फूलोंकी शय्यापर लेटे हँसते-हँसते कोमल बातें करते थे ॥२६॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे श्रीशुकदेवजी ! धर्मके स्थान पर और अधर्मका नाश करनेके लिये जगत्के

स्ततोऽङ्ग ॥ वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ २४ ॥ ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ॥ चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥ २५ ॥ एवं शशांकांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ॥ सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ॥ अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥ स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता ॥ प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥ २८ ॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम् ॥ किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ॥ तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥

ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने परिपूर्ण रूपसे अवतार लिया ॥२७॥ फिर धर्मकी मर्यादाको करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने परायी स्त्रीका स्पर्श करना यह अधर्म क्यों किया ? ॥ २८ ॥ पूर्णकाम यादवोंके पति श्रीकृष्णने यह निंदित कर्म कैसे किया, इसका क्या अभिप्राय है ? हे सुन्दर व्रतवाले शुकदेवजी ! यह हमारा सन्देह शमन करो ॥ २९ ॥ यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! सामर्थ्यवानोंका धर्मका उलांघना और साहस भी देखा है, जैसे अग्निमें भली बुरी वस्तु डाल दो उसको भस्म कर दे और उसे दोष नहीं लगता, उसी प्रकार सामर्थ्यवान् तेजस्वी पुरुषोंको भी दोष नहीं लगता, कहा भी है—"समरथको नहिं दोष गुसाईं" ॥ ३० ॥

बड़ों की रीतिमें न करे, क्योंकि उसमें पीछे पछताना पड़ता है * सामर्थ्यवान् पुरुषोंके किये हुए कर्मको मनसे भी न करे और जो कदाचित् अज्ञानसे करे तो मारा जाय, जैसे रुद्र (शिव) के विना और कोई समुद्रके विषको पान नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥ ईश्वरके वचनोंको ही सत्य माने और उनके आचरणोंको भी सत्य माने जैसा उन्होंने कहा है उसीके अनुसार बुद्धिमान् पुरुष करे । राम कृष्ण दोनों अवतार हुए हैं, श्रीरामचन्द्रने जैसा कहा वैसा ही किया, इसलिये उनका कहना करना दोनों करे और श्रीकृष्णचन्द्रने

नैतत् समचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः ॥ विनश्यत्याचरन् मौढ्याद् यथाऽरुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥३१॥ ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ॥ तेषां यत्स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत् ॥ ३२ ॥ कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ॥ विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥३३॥ किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्य दिवौकसाम् ॥ ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥

जो गीतामें कहा है, उसे करे और जो उन्होंने लीलायें की हैं उनको न करे किन्तु ध्यान करे ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! संसारमें जिनको अहंकार नहीं है, ऐसे सामर्थ्यवान् पुरुष जो अच्छा कर्म करें, उससे उनको पुण्य और निकृष्ट करनेसे पाप नहीं होता है, क्योंकि पुण्य पाप तो देहमें अहंकारके वशसे लगे हैं, इस कारण अहंकार रहित पुरुषको कुछ दोष नहीं है ॥३३॥ जब और महात्माओंको भी पाप पुण्य नहीं लगता तब समस्त प्राणी, पशु, पक्षी, मनुष्य,देवता,जीव इनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पाप पुण्य नहीं लगता है, इसमें कहना

---

* दृष्टांत–एक राजा रानीने सम्मति की कि हमारे यहां भी अनेक युद्ध हुए हैं इस कारण ऐसा महाभारत बनवाना चाहिये । यह विचार पंडितोंको बुलाकर कहा कि एक हमारे नामका भी महाभारत बनाओ और वह व्यासजीके महाभारतसे किसी प्रकार न्यून न हो चाहे बढ़ जाय, नहीं तो तुम्हें देशसे निकाल दूंगा । ब्राह्मण आपसमें सम्मतिकर राजाके पास आकर कहने लगे कि महाराज ! महाभारत बनानेकी सामग्री सब प्रस्तुत है, सब बातें अधिक ही करेंगे; पर एक बात आप बताइये । राजाने कहा क्या ? ब्राह्मण बोले–महाभारतमें द्रौपदीके पांच पति थे, आपकी रानीके उससे अधिक कितने लिखें, सो बताइये और उनके नाम वर्णन कीजिये । सुनते ही राजाकी बुद्धि लोप हो गयी और घबड़ाकर बोला—महाराज ! क्षमा करो, मुझे महाभारत लिखानेका सामर्थ्य नहीं, इसलिये बड़ोंके चरित्रोंपर शंका नहीं करनी चाहिये ।

ही क्या है ? ॥३४॥ जिनके चरणारविन्दके पराग अर्थात् मकरंदको सेवन करनेसे तृप्त होकर भक्तजन और योग प्रभावसे सम्पूर्ण कर्मबन्धन दूर कर मुनीश्वर ज्ञानी बन्धनोंसे रहित हो अपनी इच्छापूर्वक विचरते हैं तो इच्छासे शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बन्धन कहां से हो ? ॥ ३५ ॥ गोपी और उनके पतियोंके व सम्पूर्ण देहधारियोंके साक्षीरूप होकर जो देहके भीतर रहते हैं, उन श्रीकृष्ण चन्द्रने क्रीड़ा करनेके लिये देह धारण किया है, इस कारण उनमें कुछ दोष नहीं हो सकता, क्योंकि सर्वत्र वे ही रमण करते हैं और बाहर भीतर व्याप्त हैं ॥३६॥ सम्पूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्यदेह धारण करके ऐसी मनुष्यलीला की हैं कि जिन लीलाओंके श्रवण करनेसे मनुष्य कृष्णपरायण हो जाता है ॥ ३७ ॥ उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित ब्रजवासियोंने श्रीकृष्णचंद्रको कुछ दोष नहीं

यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ॥ स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छ-याऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ ३५ ॥ गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीड-नेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ॥ भजते तादृशीः क्रीडा याः स्मृत्वा तत्परो भवेत् ॥३७॥ नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ॥ मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकसः ॥ ॥ ३८ ॥ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ॥ अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥ विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ॥ भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहि-नोत्यचिरेण धीरः॥४०॥इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

लगाया और अपनी-अपनी स्त्रियोंको अपने-अपने पास जाना ॥ ३८ ॥ इसके उपरांत ब्राह्ममुहूर्त्त अर्थात् चार घड़ी रात रहे श्रीकृष्णच-न्द्रकी आज्ञानुसार घर आनेकी जिनकी इच्छा नहीं ऐसी प्यारी गोपियें अपने-अपने घर आयीं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका परम कौतुक जो ब्रजवधू गोपियोंके संग रासलीला है इसे जो पुरुष श्रद्धासहित श्रवण और कथन करेंगे, वे पुरुष भगवान्में परमभक्ति प्राप्त कर थोड़े ही दिनोंमें धीर होकर शीघ्र ही हृदयके कामरूप रोगोंका त्याग कर देते हैं।परमेश्वरके चरित्र बड़े भाग्यसे सुननेको मिलते हैं * ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

* दृष्टांत--एक बुढ़िया बड़ी कहा सुनीसे कथा सुनने गयी, पीछेसे कटोरा जाता रहा, दूसरे दिन कथामें न आयी, लुगाइयोंने कहा बुढ़िया ! तू कथा सुनने क्यों नहीं आयी ? वह बोली कि खर्च बहुत पड़ता है; पहिले-

दोहा—चौंतिसमें नँदरायको, निगल गयो इक नाग। शंखासुरको वध कियो, कृष्ण सकल भय त्याग॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! एक समय अत्यन्त उत्साहसे सब ब्रजवासी देवीकी यात्रा करनेके लिए बैलोंको जोत गाड़ियोंपर बैठकर देवीके वनमें गये॥१॥ हे राजन्! वहां पहुँच सरस्वती नदीमें स्नान कर फिर महादेवजीका भलीभांति पूजन कर अम्बिका देवीका पूजन किया॥२॥ सम्पूर्ण ब्रजवासी महादेव

श्रीशुक उवाच॥ एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः॥ अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम्॥ १॥
तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम्॥ आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृप तेऽम्बिकाम्॥ २॥
गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति॥ ३॥ ऊषुः सरस्वती
तीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः॥ रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः॥ ४॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽति
बुभुक्षितः॥ यदृच्छयाऽऽगतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत्॥ ५॥ स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम्॥
सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय॥ ६॥

हमारे ऊपर प्रसन्न हों, इसलिये मधुयुक्त मधुर अन्न और गौ ब्राह्मणोंको दान किया॥३॥ और बड़े भाग्यवान् नन्दादिकों और सब ब्रजवासियोंने उस दिन रात्रिको जलका आचमन कर तथा तीर्थव्रत करके सरस्वतीके किनारे ही वास किया॥४॥ हे नृप! उस वनमें कोई अत्यन्त भूखा सर्प रहता था, उसने अकस्मात् आकर नन्दरायजीको ग्रसा *॥५॥ सर्पसे ग्रस्त होकर नन्दजी पुकारने लगे कि हे कृष्ण! हे कृष्ण!

—दिन तो कटोरा गया, अबकी सुनूंगी तो थाली लोटे परात सब खो बैठूंगी, इस कारण मेरी तो कथाको दूरसे ही दण्डवत् है।

* शंका—सब सर्प प्राणियोंको काटते हैं परंतु अपनी भूखकी शांतिके लिये नहीं काटते केवल प्राणियोंको डसना (काटना) सर्पोंका स्वभाव है, भागवतमें लिखा है कि भूंखे सर्पने नन्दजीको ग्रस लिया ऐसा क्यों लिखा?

उत्तर—जिस सर्पका भागवतमें इतिहास है, वह सर्प पूर्वजन्मका देवता था। जब मुनीश्वरने उसको शाप दिया था तब इससे कह दिया कि जिस समय श्रीकृष्णका चरण तेरी देहसे छू जायगा तब तेरा मोक्ष होगा, उस सर्पको वहाँ आशारूपी क्षुधा थी, उसीसे दुःखी होकर सर्पने नन्दजीको ग्रसा।

यह अत्यन्त भयानक सर्प मुझको निगले जाता है, हे पुत्र ! मैं तेरी शरण हूँ, तू मुझे छुड़ा ॥ ६ ॥ इस प्रकार नन्दजीकी पुकार सुन घबड़ाहटसे ब्रजवासी शीघ्र ही उठे, देखा कि नन्दजीको सर्प निगले जाता है तो सुलगती लकड़ियोंसे उसको मारने लगे ॥७॥ यद्यपि ब्रजवासियोंने सुलगती लकड़ियोंसे उसे मारा परन्तु तो भी उस सर्पने नंदजीको न छोड़ा, तब भक्तोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस सर्पको अपने चरणकी ठोकर मारी ॥ ८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी ठोकर लगते ही उसके सब पाप दूर हो गये और उस सर्पने सर्पदेहको त्यागकर विद्याधर जिसका पूजन करें, ऐसे स्वरूपको धारण किया ॥९॥ इसके उपरांत प्रकाशमान रूप धारण

तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ॥ ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ आलातैर्हन्यमानोऽपि नामुञ्चत् तमुरङ्गमः ॥ तमस्पृशत पदाऽभ्येत्य भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ८ ॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ॥ भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ॥ दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ १० ॥ को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ॥ कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच ॥ अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः ॥ श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेनाचरं दिशः ॥ १२ ॥ ऋषीन् विरूपाङ्गिरसःप्राहसं रूपदर्पितः ॥ तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥ शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ॥ यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ १४ ॥

किये सुवर्णकी माला पहने खड़े हुए उस पुरुषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूछने लगे कि ॥ १० ॥ परम शोभायमान अद्भुत दर्शन तुम कौन हो ? और विवश होकर यह सर्पकी योनि तुमको कैसे मिली ? ॥ ११ ॥ यह सुनकर सर्प बोला कि महाराज ! मैं सुदर्शन नाम करके विख्यात कोई गन्धर्व था, संपत्ति और शरीरकी सुन्दरतासे गर्वित हो विमानमें बैठकर दिशाओंमें विचरता था ॥ १२ ॥ एक समय मैंने रूपके मदसे मत्त होकर कुरूप अंगिरा ऋषियोंकी हँसी की, तब उन्होंने शाप दिया, जिससे मेरी सर्पयोनि हो गयी ॥ १३ ॥ करुणावान् ऋषीश्वरोंने कृपा करनेके ही लिये मुझे शाप दिया था; जिस कारण त्रिलोकीके गुरु आपके चरणारविन्दका स्पर्श करनेसे सब पाप छूट

गये और यदि वे शाप न देते तो तुम्हारे चरण मेरे कैसे लगते ? ॥ १४ ॥ संसारसे डरकर शरण आये हुए पुरुषका भय दूर करनेवाले
आप हैं मुझसे क्या पूछते हो ? हे पापनाशक ! तुम्हारे चरणस्पर्शसे मेरे सब पाप दूर हो गये ॥ १५ ॥ हे महायोगिन् ! हे महापुरुष !
हे महासाधुओंके पति ! हे प्रकाशमान ! हे सब लोकोंके ईश्वर ! हे ईश्वरके ईश्वर ! तुम्हारी मैं शरण आया हूँ सो मुझे आज्ञा दो ॥ १६ ॥
हे अच्युत ! तुम्हारा दर्शन करके मैं शीघ्र ही ब्राह्मणोंके शापोंसे छूट गया, क्योंकि जिनका नाम ही उच्चारण करके वक्ता और श्रोता
अपनेको पवित्र करते हैं ॥ १७ ॥ फिर तुम्हारे चरणोंसे मैं पवित्र हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? इस प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न

तं त्वाऽहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ॥ अपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥ १५ ॥ प्रपन्नोऽस्मि महायो-
गिन् महापुरुष सत्पते ॥ अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥ १६ ॥ ब्रह्मदण्डाद् विमुक्तोऽहं सद्य तेऽच्युत दर्श-
नात् ॥ यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ॥ १७ ॥ सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ इत्य-
नुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च ॥ सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥ १८ ॥ निशाम्य कृष्णस्य
तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ॥ समाप्य तस्मिन् नियमं पुनर्व्रजं नृपाऽऽययुस्तत् कथयन्त आदृताः
॥१९॥ कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥२०॥ उपगीयमानौ
ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः ॥ स्वलंकृतानुलिप्तांगौ स्रग्विणौ विरजोऽम्बरौ ॥ २१ ॥ निशामुखं मानयन्तावुदितो-
डुपतारकम् ॥ मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥ २२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा ले, परिक्रमा दे, प्रणाम कर वह सुदर्शन स्वर्गको चला गया और नन्दजी कष्टसे छूट गये ॥१८॥ इसके
उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वैभव देख आश्चर्यको प्राप्त हो व्रजवासी तीर्थमें नियमको पूर्ण कर बड़े आन्दपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्र
का चरित्र कहते हुए व्रजमें आये ॥ १९ ॥ किसी समय एक यात्राके उपरांत गोविन्द और अद्भुत पराक्रमवाले बलराम दोनों भाई वनके बीच
रात्रिमें व्रजवासियोंके मध्यमें विहार करते थे॥२०॥स्नेहसे बद्ध होनेके कारण ललित स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णके चरित्र गा रही थीं और दोनों
भाई सुन्दर आभूषण धारण किये, केशर चन्दन लगाये, वनमाला और निर्मल वस्त्र पहने हुए॥२१॥रात्रिके प्रारम्भ होनेसे तारगण और

चन्द्रमाका उदय हो रहा था, चमेलीकी सुगन्धसे मत्त होकर भौंरे गुंजार कर रहे थे, फूली कुमोदिनीसे लगकर पवन चला रहा था॥२२॥ उसकी सराहना करते सब प्राणियोंके मन और कानोंके आनंददायक स्वरके सङ्ग मण्डलोंकी मूर्च्छना करते हुए गाने लगे ॥२३॥ हे राजा परीक्षित् ! श्रीकृष्ण बलदेवका गाना सुनकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गोपियोंके वस्त्र ढीले पड़ गये और चोटियाकी गांठ खुल गयीं कि जिनसे फूलोंकी माला गिर गयी, अधिक क्या कहें उन्हें अपने आपकी भी सुध न रही ॥ २४ ॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार कृष्ण बलदेव दोनों भाई मतवालेके समान क्रीड़ा और गान कर रहे थे कि इतनेमें ही शङ्खचूड़ नाम एक कुबेरका टहलुआ आया ॥२५॥ हे राजा परीक्षित् ! कृष्णबलदेवके देखते देखते निर्भय हो शंखचूड़ जब उन गोपियोंके समूहको जिसके स्वामी कृष्ण बलदेव हैं, लेकर उत्तरकी ओर

जगतुः सर्वभूतानां मनश्श्रवणमङ्गलम् ॥ तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वरमण्डलमूर्छितम् ॥ २३ ॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन् नृप ॥ स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥ २४ ॥ एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत् ॥ शंखचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥ २५ ॥ तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् ॥ क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः ॥ २६ ॥ क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् ॥ यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥ २७ ॥ मा भैष्टेत्यभयाऽऽरावौ शालहस्तौ तरस्विनौ ॥ आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥ स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ॥ विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥ तमन्वधावद् गोविन्दो यत्रयत्र स धावति ॥ जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥

चला, उस समय वे गोपियें पुकारने लगीं ॥ २६ ॥ जैसे सिंहकी पकड़ी गौ पुकारती है उसी प्रकार हे कृष्ण ! बलदेव ! इस प्रकार पुकार करती गोपियोंको देख कृष्ण बलदेव दोनों भाई शंखचूड़के पीछे दौड़े ॥२७॥ मत डरो ऐसे भयके दूर करनेवाले वचन कह शालका वृक्ष हाथमें लिये शीघ्रतासे कृष्ण बलदेव दौड़कर गुह्यकगणमें अधम शङ्खचूड़के पीछे गये ॥ २८ ॥ काल (मृत्यु) के समान पीछे दौड़े चले आते श्रीकृष्ण बलदेवको देख स्त्रियोंको छोड़ मूढ शङ्खचूड़ अपने प्राण बचानेके लिये भागा ॥ २९ ॥ जहां जहां शङ्खचूड़ भागकर गया, वहां वहां गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र उसके शिरकी मणि लेनेके लिये उसके पीछे दौड़े और बलदेवजी स्त्रियोंकी रक्षाके लिये वहीं रहे॥३०॥

हे राजा परीक्षित् ! थोड़ी दूर पर जाकर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने दुष्टमनवाले शंखचूड़के मुष्टिक मार शिरसहित उसके माथेकी मणि ले ली ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार शंखचूड़ दैत्यको मार प्रकाशमान् मणि लेकर सम्पूर्ण स्त्रियोंके देखते देखते प्रसन्नतापूर्वक अपने बड़े भाई बलदेवजीको दे दी ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां शंखचूडवधनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशतमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ दोहा–पैंतिसमें हरि वन गये, पीछे गोकुल नारि । वेणु गीत ही गाकर, दियो कष्ट सब टारि ॥

अविदूर इवाभ्येत्याशिरस्तस्य दुरात्मनः ॥ जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥ शंखचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥ अग्रजायाददत् प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥ कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुंदः ॥ २ ॥ व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ॥ काममार्गणसमर्दितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वनमें गये तब श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये गोपियें विरहमें उनकी लीलाको गा गाकर अत्यन्त कष्टसे दिन व्यतीत करने लगीं ॥ १ ॥ गोपियें परस्पर बोलीं कि हे सखियो ! बाईं भुजापर बायें कपोलको धर भ्रुकुटियोंको चढ़ाकर मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी अधरके ऊपर बांसुरीको धर और अपनी कोमल अंगुलियोंसे उसके छिद्रोंको दाब जिस समय बजाते हैं ॥ २ ॥ उस समय आकाशमें गमन करनेवाली देवताओंकी स्त्रियें अपने पतियोंसहित बांसुरीको सुन

---

* शंका—श्रीशुकदेवजीने परीक्षित्से कहा कि, हे राजन् ! श्रीकृष्ण जिस दिन गौवें चराने जाते थे, तब विनाकृष्णको देखे अलग होकर गोपी बहुत दुःखसे दिन काटती थीं, इस वचनसे जान पड़ता है कि सब गोपी गोकुलमें रात्रिके समय श्रीकृष्णके पास सभा बनाकर रहती होंगी प्रातःकाल होते ही ब्रजविहारी फिर गाय चराने चले जाते होंगे, तब फिर सब गोपी उसी प्रकार व्याकुल हो जाती होंगी ।

उत्तर—व्याकरणके पढ़नेवाले जो विद्वान् पुरुष हैं वह (निन्युर्दुःखेन वासरान) इस श्लोकमें वासरका अर्थ दिनका नहीं करते वास, सब वस्तुके प्रमाणका नाम है उसी वासको जो, ग्रहण करे उसका नाम वासर है, व्याकरणके पढ़नेवाले विद्वानोंके वासरका अर्थ निमेष किया है इसी निमेषको गोपी बड़े दुःख से बिताती, आँखोंके पलकें उघड़नेका नाम निमेष है ।

प्रथम आश्चर्य मान लाजसहित कामके बाणोंसे परवश हो मन हर जानेके कारण नारोंकी भी जिनके सुध न रही इस प्रकार मोहको प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥ हे अबलाओ ! यह आश्चर्य सुनो, हारके समान निर्मल जिसकी हँसनि, बांसुरी बजाते समय नीचा करके जो हँसते हैं, तो उसकी हारोंमें प्रकाशित हँसनि होती है अथवा हारके तुल्य छातीमें शोभायमान जिसकी हँसनि है और छातीमें बिजलीके तुल्य प्रकाशमान स्थिर लक्ष्मी जिसके हृदयमें वास करती है, पीड़ित जनोंको सुख देनेवाला वह नन्दका पुत्र जिस समय बांसुरी बजाता है ॥ ४ ॥ तब दूरसे बांसुरीका शब्द सुन हर गये हैं मन जिनके ऐसे गौ, बैल और हिरणोंके समूहके समूह दांतोंसे कौर काटकर उसे पकड़ने लगे; कानोंको ऊँचाकर सोतेसे चित्र लिखेके समान खड़े हो गये, बड़ा आश्चर्य है कि पशु पक्षियोंकी भी यह दशा

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ॥ नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥ वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ॥ दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥ बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ॥ कर्हिचित्सबल आलि सगोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुंदः ॥ ६ ॥ तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ॥ स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥ अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः ॥ वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥ वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ॥ प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥ ९ ॥

है ॥५॥ हे सखी ! मोरपुच्छ, खड़िया; गेरु, मनसिल, पात इनसे मल्लोंके समान स्वरूपसे कभी बलदेव भाईसहित और गोपियोंसहित जो मुकुन्द जिस समय बांसुरी बजाकर गौओंको बुलाते हैं, उस समय बांसुरी का शब्द सुनकर नदियोंका प्रवाह बहनेसे रुक जाता है और पवनसे उड़कर गयी हुई उनके चरणोंकी रजको हमारे तुल्य आकांक्षा करते हैं और हमारे तुल्य उनके उत्कृष्ट पुण्य नहीं हैं, इसलिये वह नदियोंको नहीं मिलती, प्रेमसे जिनकी लहर कांपती है, जल जिनके निश्चल हो जाते हैं ॥ ६ ॥७॥ गोप, ग्वाल और देवता जिनके निर्मल यशको गाते हैं, नारायणके तुल्य सदा स्थिर लक्ष्मीवाले, वनके विचरनेवाले कृष्ण जिस समय गोवर्द्धन पर्वतके शिखरपरसे

चरती हुई गौओंको बांसुरी बजाकर बुलाते हैं उस समय फूल, फल जिनमें लग रहे हैं उनके बोझसे शाखा जिनकी झुक रहीं, प्रेमसे हर्षित चित्त, वनके लता, वृक्ष अपनेमें विष्णुको प्रकट करते मकरन्दकी धारा बहाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुन्दरोमें सुन्दर अति अथवा सुन्दर देखने योग्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्याम ललाटमें केशरका तिलक लगाये, वनमाला पहने, जिसकी दिव्य गन्ध और तुलसीके मकरंदसे मत्त हो भौंरे उनके उच्च और अनुकूल गानेको मान देते हैं, ऐसे भगवान् जब अधरके ऊपर बांसुरीको धरके बजाते हैं उस समय सरोवरोंमें सारस, हंस और पक्षी गानसे मोहित चित्त हो उस स्थानमें आंखें मूँदे मौन धारण किये चित्त रोके कृष्णके निकट बैठे रहते हैं ॥१०॥ ११॥ हे गोपियो ! मालाओंसे व कानोंमें कुण्डलसे शोभायमान, आनन्दको प्राप्त बलदेव भाई सहित कृष्ण जब सब विश्वको

दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः॥अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन् यर्हि संधितवेणुः१०॥सरसि सारसहंसविहङ्गाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य ॥ हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥ सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ॥ हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥१२॥ महदतिक्रमणशङ्कितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः॥सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभिश्छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥१३॥ विविध गोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ॥ तव सुतस्सति यदाऽधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः॥१४॥सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ॥ कवय आनतकंधरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥

आनंद दे बांसुरीके शब्दसे पूर्ण करते हैं, उस समय इन महान् कृष्णका अपराध न हो, इस प्रकार मेघ मनमें शङ्का मान मुरलीके शब्दके पीछे मन्द मन्द गर्जते हैं और अपने मित्र श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हैं छत्रसे छाया करते हैं, सो वह मेघ इनका सच्चा मित्र है, क्योंकि यह भी सांवरा और वह भी सांवरा ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे यशोदा ! अनेक प्रकारके गोपोंके खेलोंमें निपुण तुम्हारा पुत्र अधरके ऊपर बांसुरी धरकर अपने आप ही सीख गये, क्योंकि षड्ज, निषाद, ऋषभ, गांधारादि स्वरोंके अलापनेके भेद वह स्वयं ही उठा लेते हैं ॥१४॥ उस समय इन्द्र, शिव, ब्रह्मा यह जिनमें मुख्य हैं, ऐसे बुद्धिमान् देवता मन्द मध्य तारसे बांसुरीको

सुनकर मोहित हो गये और नीचेको मुख करके कौन स्वरको गाते हैं यह भी निश्चय नहीं कर सके ॥१५॥ ध्वजा, यव, अंकुश, कमल इनके चित्र विचित्र चिह्नवाले अपने चरणकमलसे ब्रजभूमिको गायोंके खुर पड़नेसे जो खेद है उसको शांत किया और मतवाले हाथीके समान चलनेवाले श्रीकृष्ण बांसुरीको बजाकर जिस समय चलते हैं उस समय विलासपूर्वक चितवनसे कामदेवके वेगमें भरी हमें वृक्षोंके तुल्य जड़ होकर चोटी और वस्त्रोंकी भी सुध नहीं रहती है ॥ १६ ॥ १७ ॥ प्यारी सुगन्धवाली तुलसीकी मालाको पहने मणियोंकी सुमिरणी हाथमें लेकर गायोंको गिनते हुए,प्यारे मित्रके कन्धे पर हाथ रखकर जिस समय गाते हैं उस समय बजती हुई बांसुरीका शब्द

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजाङ्कुशविचित्रललामैः ॥ व्रजभुवश्शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥
व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः॥ कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥१७॥ मणि-
धरः क्वचिदागणयन् गा मालया दयितगन्धतुलस्याः ॥ प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥१८॥
क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ॥ गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥
॥१९॥ कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ॥ नन्दसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार
॥२०॥ मन्दवायुरनुवात्यनुकूलं मानयन् मलयजस्पर्शेन ॥ बन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥
वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ॥ कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥२२॥
उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक् ॥ दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥

सुन चित्त हर जानेसे हिरणोंकी स्त्रियें (हिरणी) गुणोंके समुद्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर गोपियोंके समान घरकी आशाओंको त्याग सेवन करने लगती हैं ॥१८॥१९॥ हे यशोदे ! गोपियोंको आनन्द देनेके लिये कुन्दकी मालाओंसे आनन्दपूर्वक शृङ्गार किये, स्नेहियोंको आनन्द देनेवाला यह तेरा पुत्र नन्दकुमार गोप गौओंको संग लिये जिस समय यमुनामें विहार करता है, उस समय चन्दनकीसी सुगंधि वाला शीतलस्पर्श पवन भी कृष्णका सम्मान करता हुआ अनुकूल मन्द मन्द चलता है और गन्धर्वादिक तथा बन्दीजनोंकी नाईं बाजे बजाता गाता फूलोंको वर्षा करके सेवा करता है ॥२०॥२१॥ देखो ब्रजमें गायोंका हित करनेवाला भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, जब इन्द्रने

वर्षा की थी, तब गोवर्द्धन उठाकर रक्षा की और बड़े-बड़े ब्रह्मादिक आकर उनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं और सन्ध्या समय जब गायोंको इकट्ठी कर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र बांसुरी बजाते और मित्रोंसे अपनी कीर्ति श्रवण करते श्रमभरी शोभासे आनंद देते, गायोंकी रज मालामें लग रही, चंद्रमाके समान प्रकाशमान देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए श्रीकृष्णचन्द्र जो हैं वे हमारा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आते हैं ॥२२॥२३॥ कुछेक मन्द मन्द नेत्र जिनके घूम रहे, अपने स्नेहियोंको मान देनेवाले, वनमाला पहने, पके बेरके समान श्यामसुख और कुण्डलोंकी कांतिसे कोमल कपोलोंको शोभायमान करते; मतवाले हाथीके समान जिनका विहार, प्रसन्न मुख, इस प्रकार यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सन्ध्या समय जिस प्रकार चन्द्रमा उदय होता है उसी प्रकार उदय होकर ब्रजकी मायारूप हमारा बहुत दिनोंका ताप

मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली ॥ बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन्कनककुंडललक्ष्म्या ॥ २४ ॥ यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ॥ मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन् व्रजगवां दिनतापम् ॥२५॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीला नु गायतीः॥रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥२६॥ इति श्रीभा० महा० दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे वृन्दावनक्रीडायां गोपिकागीतं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥ महीं महाककुत्कायः कम्पयन् खुरविक्षताम् ॥ १ ॥

दूर कर दिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें ही जिनका जीवन और अधिक वृद्धिको प्राप्त हुआ उत्सव, ऐसी व्रजबालायें श्रीकृष्णचंद्रकी लीला गा-गाकर दिन व्यतीत करने लगीं ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां गोपिकायुगलगीतवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ दोहा–कंस सुनो छत्तीसमें, मरो अरिष्ट बिसूर । रामकृष्णके लेनको, भेजो जन अक्रूर ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवशावंतस परीक्षित् ! इस प्रकार देवता गंधर्वादिक जिनका गान और नृत्य करें, बाजे बजाकर फूलोंकी वर्षा करें, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको देखकर परम उत्सव हुआ, इसके उपरांत उसी समय व्रजमें बैलका रूप बनाकर अत्यन्त विशाल देह और खुरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण और कम्पायमान करता हुआ अरि-

ष्टासुर आया ॥ १ ॥ अत्यंत रंभाता, खुरोंसे धरती खोदता, पूँछ उठाता, खेतोंकी मेड़ोंको तोड़ता ॥ २ ॥ बीच-बीचमें गोबर मूत्र करता, अत्यन्त भयानक आंखवाला इस प्रकार अरिष्टासुरके रंभानेका शब्द सुनकर गाय और स्त्रियोंके विना समय ही गर्भ गिर गये। जैसे ककुद (टांट) के ऊपर पर्वत जानकर मेघ आ बैठते हैं ❋ ॥३॥४॥ हे परीक्षित्! इस प्रकार अत्यन्त पैने सींगवाले अरिष्टासुरको देखकर सब गोप और गोपी अत्यंत भयभीत हो गये। पशु खरकोंको छोड़कर डरके मारे भाग गये। हे कृष्ण! हे कृष्ण! इस प्रकार

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन् महीम् ॥ उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥२॥ किंचित्किंचित् शकृन्मुञ्चन् मूत्रयन्स्तब्धलोचनः ॥ यस्य निर्ह्रादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥ पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै ॥ निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशंकया ॥ ४ ॥ तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ॥ पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन् संत्यज्य गोकुलम् ॥५॥ कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ॥ भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥ ६ ॥ मा भैष्टेति गिराऽऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥

पुकारने लगे और सम्पूर्ण ब्रजवासी गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी शरणमें आये। इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने डरके मारे गोकुल वासियोंको भागता देखकर "भय मत करो" इस प्रकार कह अरिष्टासुरको निकट बुलाकर कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे मूर्ख! हे असाधो! ग्वाल गायोंके डरानेसे तुझे क्या मिलेगा? मेरे सम्मुख आ, क्योंकि तुझ सरीखे मतवाले दुष्टोंका बल और मद दूर करनेको मैंने अवतार

❋ शंका—वृषभासुरके शब्दसे गायोंका और स्त्रियोंका गर्भ गिर जाता था, ऐसा भागवतमें लिखा है, तब वह दुष्टवृषभासुर तो नित्य शब्द करता रहा होगा, तब गायोंकी और स्त्रियोंकी सृष्टि का नाश क्यों नहीं हुआ? गायोंका और मनुष्योंका वंश नष्ट होना चाहिये था, सो क्यों नहीं हुआ?

उत्तर—वृषभासुरके प्रभावको जानकर भगवान्ने सुवीर्य और सुरपालक दोनों देवताओंको आज्ञा दी कि जब यह दुष्ट शब्द करने लगे तब तुम दोनों उसका कण्ठ रोक लो। ऐसी भगवान की आज्ञा पाकर वे वृषभासुरके पास रहने लगे। जब वृषभासुर गर्जन शब्द करता, तब दोनों देवता उसके कण्ठको रोक लेते थे। इसी प्रकार सब अवस्था व्यतीत हो गयी; वृषभासुरको शब्द नहीं करने दिया, जिस दिन मरनेका समय आया उस दिन महागम्भीर शब्द करके भगवान्के हाथसे मारा गया।

लिया है ॥७॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कह कर खम्भ ठोक और अरिष्टासुरको क्रोध उत्पन्न कराके,मित्रके कंधे पर सर्पाकार भुजा पसारकर खड़े हो गये ॥ ८ ॥ इस प्रकार क्रोधको प्राप्त हुआ अरिष्टासुर पूँछ उठाकर धरती खोदता हुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जीके सम्मुख आया ॥९॥ सींगोंका अग्रभाग आगे किये, पलक बिसारे,लाल लाल आँखें किये, अरिष्टासुरको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र देवराज इन्द्रके छोड़े वज्रसे भी शीघ्र उसके सम्मुख आकर उपस्थित हुए॥१०॥ और आते ही उसके सींग पकड़ जैसे हाथीको हाथी धक्का देता है,उसी प्रकार उलटे पांव करके उसे धकियाने लगे और१८कदम पीछे हटा ले गये॥११॥जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अरिष्टा-

बलदर्पहाऽहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम्॥इत्यास्फोटयाच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन्॥सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥८॥ सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टं खुरेणावनिमुल्लिखन्॥ उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥९॥ अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ॥ कटाक्षिप्याद्रवत् तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वाशृङ्गयोस्तं च अष्टादश पदानि सः ॥ प्रत्यपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥ सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः ॥ आपतत् स्विन्नसर्वांगो निश्श्वसन् क्रोधमूर्च्छितः॥१२॥ तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ॥ निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत्॥१३॥असृग्वमन् मूत्रशकृत् समुत्सृजन् क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः॥ जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥१४॥ एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः ॥ विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥ १५ ॥

सुरको ढकेल दिया, तब फिर वह उठकर पसीने चुआता अत्यन्त क्रोधित हो बड़े बड़े श्वास लेता हुआ दौड़कर आया ॥१२॥ आते ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके सींग पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा और पांवसे छाती दाबकर जैसे गीले कपड़ेको निचोड़ते हैं, उसी प्रकार उमेठ दे सींग उखाड़ उसका प्राण संहार किया ॥१३॥ उस समय उसके नेत्र चलायमान हो गये, रुधिरकी वमन और गोबर करता पावोंको पटकता अरिष्टासुर मर गया । तब देवतालोगोंने फूल वर्षाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति की ॥ १४ ॥ इस प्रकार अरिष्टासुरको

मार, मित्रोंसे सम्मानित हो गोपियोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र व्रजमें आये ॥ १५ ॥ अद्भुतकर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब अरिष्टासुरको मार डाला, तब देवताओंके समान देवर्षि नारदजीने यह वृत्तान्त कंससे जाकर कहा ॥ १६ ॥ कि हे राजन् ! यशोदाके कन्या हुई और देवकीके कृष्ण हुआ था, बलदेव रोहिणीके पुत्र हैं, तुम्हारे भयके मारे वसुदेवजी अपने मित्र नन्दजीके घर रातोंरात पहुँचा आये थे और प्रत्यक्ष देख लो कि जितने दैत्य आपने भेजे वे सब कृष्ण बलदेवने मार डाले। यह वचन नारदजीका श्रवण कर क्रोधके मारे कंस विकलेन्द्रिय हो गया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब वसुदेव जीके मारनेके लिये कंसने अत्यन्त पैनी तल-

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुत कर्मणा ॥ कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥१६॥ यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ॥ रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥ १७ ॥ न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ निशम्य तद्भोजपतिः कोपात्प्रचलितेन्द्रियः ॥ १८ ॥ निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ॥ प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥ २० ॥ प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥ ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥२१॥ अमात्यान् हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ॥ भो भो निशम्यतामेतद्वीर चाणूरमुष्टिकौ ॥ २२ ॥ नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः ॥ रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥ २३ ॥ भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः ॥ २४ ॥

वार ग्रहण की परन्तु नारदजीने निवारण कर दिया, इसके उपरांत कृष्ण–बलदेवसे अपनी मृत्यु जान ॥ १९ ॥ देवकी सहित वसुदेवके पैरोंमें बेड़ी डाल दी, नारदजीके चले जानेपर फिर कंसने केशी नाम राक्षसको बुलाकर ॥ २० ॥ कहा कि तुम ही रामकृष्णको मार आओ और फिर मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि जो मल्ल थे उन्हें बुलाया ॥२१॥ इसके उपरांत मंत्रियों और हाथियोंके महावतोंको बुलाकर भोजवंशियोंका राजा कंस बोला कि हे वीर ! हे चाणूर ! हे मुष्टिक ! मेरी बात सुनो ॥२२॥ नंदजीके गोकुलमें वसुदेवके पुत्र जो कृष्ण, बलराम रहते हैं उनके ही हाथसे निश्चय नारदजीने मेरी मृत्यु बतायी है ॥ २३ ॥ इसलिये वे जिस समय आवें

उसी समय पांवोंसे दाब मल्ललीला करके मार डालना और मल्लोंकी जो रंगभूमि है उसमें अनेक प्रकारके मञ्चान बनाओ ॥ २४ ॥ क्योंकि पुरवासी और देशवासी सम्पूर्ण उनपर बैठकर मल्लोंकी कुस्ती देखेंगे । इसके उपरांत मंगलरूप कुवलयापीड हाथीको रंगभूमिके द्वारपर खड़ा कर दो ॥ २५॥ बस, ज्योंही कृष्ण बलदेव आवें त्योंही उन्हें हाथीसे मरवा डालना और चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक धनुष यज्ञकी तैयारी करो और सम्पूर्ण कामनाओंके देनेवाले महादेवजीका पूजन करनेके लिये पवित्र पवित्र पशु लाओ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! अपने अर्थके तत्त्वको जाननेवाले राजा कंसने अपने सेवकोंको इस प्रकार आज्ञा दी। इसके उपरांत यादवश्रेष्ठ अक्रूरको बुला हाथ पकड़कर कहा ॥ २७ ॥ हे दानपति अक्रूर ! तुम एक हमारी मित्रताका कार्य करो, क्योंकि इस समय भोजवंशियोंमें तुम्हारे अतिरिक्त मेरा

पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ॥ महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम् ॥ २५ ॥ द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि ॥ विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजायमीढुषे ॥२६॥ इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७॥ भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ॥ नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ॥ यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥ २९ ॥ गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः ॥ आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम् ॥३०॥ निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ॥ तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥ घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ॥ यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥

अतिशय हितकारी कोई नहीं है ॥२८॥ हे साधो ! हे सौम्य ! जैसे इंद्रने विष्णु भगवान्का आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त किया था, उसी प्रकार अब मैं तुम्हारा आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त हूँगा, इसलिये मैंने तुम्हारा आश्रय लिया है ॥ २९ ॥ अब तुम ब्रजमें जाकर वसुदेवात्मज कृष्ण और बलदेवको शीघ्र ही रथमें बैठाकर ले आओ ॥ ३० ॥ क्योंकि विष्णुका आश्रय लेकर देवतालोगोंने मेरे मारनेके कारण कृष्ण बलदेवको उत्पन्न किया है, इसलिये तुम नंदादिक सम्पूर्ण ब्रजवासियों सहित कृष्ण बलदेवको यहां ले आओ और मेरी ओरसे कहना कि चलकर राजा कंसको भेंट दो ॥ ३१ ॥ बस, जहां कृष्ण बलदेव आये कि यहां कालके समान कुवलयापीड़ हाथी

उन्हें मार डालेगा और यदि हाथीसे भी छूट जायँगे तो बिजलीके समान मेरे मल्ल मार डालेंगे॥३२॥ फिर जहां कृष्ण बलदेव मारे गये, तब उसी समय उनके शोकसे व्याकुल वसुदेवादि बंधु बांधवोंको मार डालूंगा और इसके उपरांत वृष्णि, भोज, दाशार्हवंशमें उत्पन्न हुए सब यादवोंको भी मारूंगा ॥३३॥ यद्यपि उग्रसेन मेरे वृद्ध पिता हैं परंतु तो भी उनकी राज्यकी चाहना विद्यमान है, इसलिये इनको भी मारूंगा। अधिक कहनेसे क्या, जितने मेरे वैरी हैं, सबको ही मारूँगा। हे अक्रूर ! इसके उपरांत यह सब पृथ्वी कंटकरहित हो जायगी, फिर जरासंध है सो मेरा श्वशुर है और द्विविद मेरा प्यारा मित्र है ॥ ३४ ॥३५॥ शंबरासुर, नरकासुर, बाणासुर इत्यादिकोंने मुझमें स्नेह बढ़ा ही रखा है। बस, इनको संग लेकर जितने देवताओंकी ओरके राजा हैं, सबको मारकर आनंदपूर्वक पृथ्वीका राज्य करूंगा ॥२६॥ यह बात अपने

तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् ॥ तद्बन्धून् निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ॥ तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम॥३४॥ततश्चैषामही मित्र भवित्री नष्टकण्टका ॥ जरासन्धो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥ ३५ ॥ शम्बरोनरको बाणोमय्येव कृतसौहृदाः ॥ तैरहं सुरपक्षीयान्हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥३६॥ एतज्ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ॥ धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम्॥३७॥ अक्रूर उवाच ॥ राजन् मनीषितं सम्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ॥ सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥ मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ॥ युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९ ॥

मनमें गुप्त रखकर कृष्णबलदेवको शीघ्र ही लिवा लाओ और मेरी ओरसे कहना कि तुम्हारे मामाने धनुषयज्ञ किया है, उसको चलकर देख आओ, इसमें तुम्हें यादवोंकी पूरी मथुराकी शोभा भी देखनेको मिल जायगी ॥३७॥ यह सुनकर अक्रूरजी बोले कि हे राजन् ! तुमने भला विचार किया, तुम्हारी मृत्युको दूर करने वाली यही उपाय है, परन्तु होने और न होनेमें ईश्वर जाने, क्योंकि जो प्रारब्ध है वही फलका दाता है ॥ ३८ ॥ यह पुरुष बड़े बड़े मनोरथ करता है परन्तु जब दैव हत कर देता है तो दुःखी होता है, जो मनोरथ पूर्ण हो जाय तब तो मनमें हर्ष माने और न हो तो शोक करे। इससे क्या ध्वनि निकली कि तुम कहते हो कि कृष्ण बलदेवको मरवाऊंगा, क्या जानें

वे ही तुम्हें मार डालें, पर तो भी तुम्हारी आज्ञा करूंगा ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा कंस अक्रूरजीको ऐसी आज्ञा दे मंत्रियोंको बिदा कर अपने महलमें चला गया और अक्रूरजी भी अपने घरको चले गये * ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामक्रूरप्रेषणं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३६॥ दोहा—सैंतिस केशी मरणको, नारद कियो बखान ! व्योमासुर मारो यथा, सो सब सुनो सुजान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण राजा परीक्षित् ! मनसे भी अधिक वेगवान्

श्रीशुक उवाच ॥ एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ॥ प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे अक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन् मनोजवः ॥ सटावधूताऽभ्रविमानसंकुलं कुर्वन् नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥ (विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाघनोपमः ॥ दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नन्दस्य जगाम कम्पयन्) ॥ तं त्रासयन्तं भगवान् स्वगोकुलं तद्धेषितैर्बालविघूर्णिताम्बुदम् ॥ आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणीरुपाह्वयत् स व्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥ २ ॥

कंसका जो भेजा केशी दैत्य बड़े घोड़ेका रूप धर टापोंसे पृथ्वीको खोदता, फुरहरी लेता, अपने कन्धोंसे इधर उधर विमानको चलायमान करता और हींसनेसे संपूर्ण विश्वको डराता हुआ आया ॥ १ ॥ (बड़ी आंखोंवाला, विकट मुख विवर वाला, बड़ी लम्बी गर्दनवाला, महान् काले बादलके समान, दुष्टहृदयवाला और कंसका हित करनेकी इच्छावाला वह (केशी) नंदजीके व्रजको कँपाता हुआ

* दृष्टान्त—यदि कोई कहेकि अक्रूरजी कंसके पास रहनेसे महात्मा कैसे रहे ? उसपर यह दृष्टान्त है कि महात्मा कुसङ्गतिसे भी महात्मापन नहीं त्यागते । एक बाबाजी आधीरातको कहीं जा रहे थे, मार्गमें चोर मिले और चोर बोले—तू कौन ? बाबाजी बोले—जो तुम सो हम ! चोर बोले—कहां जाते हो ? बाबाजीने कहा जहांको तुम जाते हो । चोरोंने जाना यह चोर है, सङ्ग ले लिया । बाबाजीने भी जाना कि यह चोर हैं । चोरोंने किसीके घरमें सेंध दिया और चोरी करने लगे, बाबाजी भी घुसे । एक बर्तन जो उघाड़ा तो इमरती रक्खी थी । बाबाजी सारे दिनके भूखे थे, झट ठाकुरजीका बटुआ निकाल ठाकुरजीके सामने भोग रख शंख बजाया, शंख बजते ही घरके लोग जाग गये और चोरोंके सङ्ग बाबाजी भी पकड़े गये । बाबाजी तो वृत्तान्त सुनाकर छूट गये, चोरोंको दण्ड हुआ । सो साधु पुरुषोंको कुसङ्गतिका फल नहीं व्यापता, इसी प्रकार अक्रूरजीको कुसंगति अर्थात् कंसकी संगतिका फल नहीं व्यापा, किन्तु चोरोंकी नाई कंसको ही मरवाया ।

आया)॥ कठोर हींसनेसे गौओंके समूहको बिडलाता, पुच्छ हिलाता, बादर चलायमान करता, युद्ध करनेकी इच्छासे श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढता हुआ आया। तब केशी दैत्यको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आगे निकलकर अपने पास बुलाया, तब वह दैत्य इनको देख सिंहके समान गर्जने लगा॥२॥केशी दैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर मुखसे मानो आकाशको पी जायगा,इस प्रकार मुखको फैलाकर दौड़ता हुआ सम्मुख आया, जो किसीके जीतनेमें न आवे, अत्यन्त वेगवान् ऐसा केशी दैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पिछले पांवोंकी दुलत्ती मारने लगा॥३॥ जिनमें इंद्रियोंकी पहुँच नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस दैत्यकी दुलत्ती बचाकर अत्यन्त क्रोधित हो

स तं निशम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवत्यमर्षणः॥ जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः॥३॥ तद्वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः॥ सावज्ञमुत्सृज्य धनुश्शतान्तरे यथोरगं ताक्ष्र्यसुतो व्यवस्थितः॥४॥ स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽऽपतद्धरिम्॥ सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन् प्रवेशयामास यथोरगं बिले॥५॥ दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयःस्पृशो यथा॥ बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथाऽऽमयः संववृधे उपेक्षितः॥६॥

अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों पांव पकड़ फिराकर जैसे गरुड़ सर्पको फेंक देता है, उसी प्रकार अवज्ञा करके (१००) धनुषपर फेंककर आप खड़े रहे॥४॥ इसके उपरांत जब चेत हुआ तब केशी दैत्य फिर उठकर क्रोधयुक्त हो दौड़कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हँसकर उस दैत्यके मुखमें अपना बायां हाथ जैसे सर्प बिलमें घुसता है उसी प्रकार डाल दिया॥५॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगते ही केशीके दांत ऐसे गिर गये जैसे तपे हुए लोहेके लगनेसे गिर जाते हैं और ओषधि न करनेसे जैसे जलंधर रोगसे उदर बढ़ जाता है उसी प्रकार केशी दैत्यके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजा बढ़ने लगी ❋॥६॥

शंका—शत्रुके मारनेके लिये शास्त्रमें और लोकमें अनेक उपाय लिखे हैं, परंतु केशीको मारनेके लिये सब उपाय त्यागकर श्रीकृष्णने अपनी भुजा केशीके मुखमें क्यों दे दी।

उत्तर—केशीको ब्रह्माने यह बरदान दिया था कि हमारे हाथकी बनायी हुई सृष्टिसे तेरी मृत्यु न होगी, जब श्रीकृष्ण अपनी बाहु तेरे मुखमें डालेंगे तब तेरी मृत्यु होगी। इसलिये केशीके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजा प्रवेश कर दी थी।

बढ़ती हुई कृष्णचन्द्रकी भुजासे उसका श्वास रुक गया, अंगमें पसीना आ गया, नेत्रोंके तारे निकल आये, इस प्रकार केशी दैत्य पाओंको पटकता, लीद करता प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७ ॥ प्राणमुक्त उस दैत्यको पकड़कर फटी हुई ककड़ीके समान मुखसे महाभुज श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी बांह निकाल ली। यद्यपि इन्होंने शत्रुको अनायास मारा, परंतु तो भी भगवान्ने कुछ गर्व न किया, तब आश्चर्य मान भगवान्ने श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूल वर्षाकर देवता लोग स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इसके उपरांत भक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजीने क्लेशरहित कर्मवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर कहा कि ॥९॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण!

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ॥ प्रस्विन्नगात्रःपरिवृत्तलोचनः पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः ॥७॥ तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद् व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ॥ अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥ ८ ॥ देवर्षिरुपसङ्गम्य भागवतप्रवरो नृप ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ॥ वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥ १० ॥ त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ॥ गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ ११ ॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ॥ तैरिदं सत्यसङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥ स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ॥ अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥ १३ ॥

हे अप्रमेयात्मन! हे योगके ईश! हे जगत्के ईश्वर! हे वासुदेव! हे जगदीश्वर! हे विश्वके साक्षी! हे अखिलावास! हे सात्वतां प्रवर! हे प्रभो! ॥ १० ॥ तुम जैसे काष्ठमें ज्योति रहती है उसी प्रकार सब प्राणियोंमें व्यापक गूढ़ अर्थात् सबमें रहते हो। परन्तु उनको दिखाई नहीं देते, क्योंकि बुद्धिके परे हो, साक्षी हो और आपका स्वरूप देखनेमें नहीं आता; महापुरुष ईश्वर हो इस कारण जीव आपके स्वरूपको नहीं जान सकते ॥ ११ ॥ तुम स्वतन्त्र हो इसलिए तुम्हें साधनकी अपेक्षा नहीं हैं क्योंकि तुम तो अपनी मायाशक्तिसे ही गुणोंको बनाते हो, व उन्हींसे सत्यसंकल्प ईश्वर आप इस जगत्को रचते हो पालते हो और फिर संहा कर भीर देते हो॥१२॥सो तुमने

राजारूप दैत्य और राक्षसोंका नाश करनेके लिए और धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेके लिए अवतार लिया है ॥ १३ ॥ यह बहुत ही उत्तम हुआ जो इस घोड़ेरूप दैत्यको लीलापूर्वक ही आपने मार डाला, जिसके हींसनेका शब्द सुनते ही भयके मारे देवता क्षणमें स्वर्ग त्यागकर भाग जाते थे ॥१४॥ हे विभो ! परसोंको तुम्हारे हाथोंसे चाणूर, मुष्टिक और मल्लोंको तथा कुवलयापीड हाथी व राजा कंसको मरा हुआ देखूँगा ॥ १५ ॥ कंसके मारनेके उपरांत शंखासुर, कालयवन, मुरदैत्य, नरकासुर इनका वध और स्वर्गसे देवराज इन्द्रको जीतकर जो कल्पवृक्ष लाओगे उसे देखूंगा ॥ १६ ॥ जिनका पुरुषार्थ ही मूल्य है ऐसी राजकन्याओंका विवाह और हे जगत्पत्ति !

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः ॥ यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥ १४ ॥ चाणूरं
मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ॥ कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १५ ॥ तस्यानुशङ्खयवनमुराणां
नरकस्य च ॥ पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥ १६ ॥ उद्वाहं वीरकन्यानां वीरशुल्कादिलक्षणम् ॥ नृगस्य
मोक्षणं शापाद्द्वारकायां जगत्पते ॥ १७ ॥ स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य
स्वधामतः ॥ १८ ॥ पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात् काशिपुर्याश्चदीपनम् ॥ दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ
॥ १९ ॥ यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन् भवान् ॥ कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २० ॥
अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ॥ अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २१ ॥ विशुद्धविज्ञानघनं
स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् ॥ स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायया गुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥ २२ ॥

द्वारकामें जाकर जो नृग राजाको पाससे छुड़ाओगे सो देखूंगा ॥ १७ ॥ जांबवतीके साथ स्यमन्तमणिका पीछे लाना और सांदीपन गुरुके महाकालपुरसे मरे पुत्र सजीव लाकर दोगे सो देखूंगा ॥१८॥ फिर मिथ्यावासुदेवका मारना, काशीपुरको जलाना, दन्तवक्रका मारना और राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें शिशुपालका मारना देखूंगा ॥ १९ ॥ और भी द्वारकामें वास करके तुम जो जो लीला करोगे, उन लीलाओंका कवि लोग पृथ्वीपर गान करेंगे ॥२०॥ इसके उपरांत काल रूप तुम इस पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिये अर्जुनके रथवान् होकर सेनाओंका संहार करोगे सो सब हम देखेंगे ॥ २१ ॥ केवल ज्ञानमूर्ति अपनी पूर्णानन्द स्थितिसे पूर्णकाम सत्यसंकल्प और अपनी

चैतन्य शक्ति अपने तेजसे नित्य मायासे निवृत्ति और हम छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त तुम्हारी शरण प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ ईश्वर स्वतन्त्र अपनी मायासे सब प्रकारसे विशेषोंकी कल्पना करनेवाले क्रीडाके लिये अभी मनुष्यदेह धारण करनेवाले, यदु, वृष्णि, सात्वतोंमें अग्रणीय आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! भक्तोंमें श्रेष्ठ मननशील भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे प्रसन्न हो नारदजी इस प्रकार यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर और आज्ञा ले चले गये ॥२४॥ व्रजवासियोंको सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र युद्धमें केशीको मारकर ग्वालबालोंसहित पशुओंका पालन करने लगे ॥ २५ ॥ एक समय गायोंके पालन

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ॥ क्रीडार्थमद्याऽऽत्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ॥ प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २४ ॥ भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे ॥ पशूनपालयत् पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २५ ॥ एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु ॥ चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चौरपालापदेशतः ॥ २६ ॥ तत्रासन् कतिचिच्चौराः पालाश्च कतिचिन्नृप ॥ मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २७ ॥ मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ॥ मेषायितानपोवाह प्रायश्चौरायितो बहून् ॥ २८ ॥ गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः ॥ शिलया पिदधे द्वारं चतुष्पञ्चावशेषिताः ॥ २९ ॥ तस्य तत् कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ॥ गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥

कर्त्ता ग्वालबाल गोवर्द्धनपर्वतके शिखरपर गायोंको चराते हुए चौर पालनका मिसकर छिपाछिपी खेल करने लगे ॥२६॥ हे राजन् ! उस खेलमें कितने ही बालक चोर बने और कितने ही रखवाले बने, और कितने ही भेड़ बने, इस प्रकार निर्भय होकर खेलने लगे ॥२७॥ इतनेमें ही मय दैत्यका पुत्र अत्यन्त मायावी व्योमासुर नामक दैत्य ग्वालका रूप धारण कर, चोर बन जो बालक चोर बने थे, उनको चुराकर ले जाने लगा ॥२८॥ वह दुष्ट दैत्य उनको ले ले जाकर पहाड़की गुफामें डाल शिलासे गुफाका मुँह बन्द कर देता था। जब केवल चार पांच ग्वाल शेष रह गये ॥ २९ ॥ तब साधु पुरुषको शरण देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें विचार किया हमने तो खेल

किया है, यह सच्चा ही चोर आ पहुँचा क्या ? इस कारण उस दुष्टका छल जान गोपोंको ले जाते व्योमासुरको, जैसे सिंह बलपूर्वक व्याधको पकड़ लेता है उसी प्रकार पकड़ लिया ॥३०॥ उस बलवान् दैत्यने अपना शरीर पर्वतके समान धारण कर लिया और छुड़ानेके लिये बहुतेरा यत्न किया, परन्तु पकड़नेसे आतुर हो गया, इसलिये कृतकार्य न हुआ ॥ ३१ ॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्योमासुरकी दोनों भुजा पकड़ पृथ्वीमें पटक कर देवताओंके देखते देखते श्वास घोटकर मार डाला ॥ ३२ ॥ इसके उपरांत गुफाका ढकना तोड़ गोपोंको कष्टसे बाहर निकाल देवता और गोप जिनकी स्तुति करें, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोकुलमें आये ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते

स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली ॥ इच्छन् विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद् ग्रहणातुरः ॥३१॥ तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ॥ पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३२ ॥ गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान् निस्सार्य कृच्छ्रतः ॥ स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे केशिव्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥ उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥ गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे ॥ भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥ २ ॥ किं मया चरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ॥ किं वाऽथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥३॥ ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥

महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां केशिव्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।३७। दोहा—अड़तीसमें अक्रूर मन, जैसो कियो विचार। तैसो ही अक्रूरको, कियो कृष्ण सत्कार ॥ इतनी कथा सुनाकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! बड़े बुद्धिमान् अक्रूरजी भी उस रात मधुपुरीमें वासकर प्रातः होते ही रथमें चढ़कर नन्दजीके गोकुलको चले ॥१॥ महाभाग अक्रूरजी मार्गमें जाते कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त हो यह विचार करने लगे ॥ २ ॥ कि मैंने ऐसा कौन मंगलकर्म, अथवा तप वा सत्पात्रोंको दान किया था, जिसके प्रभावसे ब्रह्मा, महादेवके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका आज दर्शन करूँगा ॥३॥ मैं जानता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका

दर्शन होना अत्यन्त दुर्लभ है, जैसे जिसका विषयोंमें मन, *शूद्रकुलमें जन्म है ऐसे पुरुषको वेदका उच्चारण दुर्लभ है॥४॥अथवा ऐसे कहीं मुझ अधमको भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन हो जायँ, कारण कि जिस प्रकार नदीमें बहते हुए तृणसे कदाचित् कोई तीरपर भी पहुँच जाय वैसे ही कर्मवशसे कालसे ले गये हुए जीवोंमें से भी कभी कोई तिर जाय ॥ ५ ॥ मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिवानेको चला हूँ, इस लिये अब मेरा मंगल हुआ, जन्म सफल हुआ, क्योंकि योगीजन जिनका ध्यान धरते हैं उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंमें आज नमस्कार करूँगा ॥ ६ ॥ अहो ! बड़ा आश्चर्य है, दुष्ट कंसने आज मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, जिसके भेजनेसे मुझको अवतार

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ॥ ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित् तरति कश्चन ॥ ५ ॥ ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ॥ यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥६॥ कंसो बताद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ॥ कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन् यन्नखमण्डलत्विषा ॥ ७ ॥ यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ॥ गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद् गोपिकानां कुचकुंकुमाङ्कितम् ॥८॥ द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ॥ मुखं मुकुंदस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥९॥

धरे हुए हरि भगवान्का दर्शन होगा, जिनके नखमण्डलकी कांतिसे अम्बरीष आदि सब दुरत्यय सागरको तर गये ॥७॥ जो चरणारविन्द-ब्रह्मा महादेवादि देवता लोगोंने प्रकाशमान लक्ष्मी तथा मुनीश्वरोंने और भक्तोंने पूजे हैं और गाय चरानेके लिये जो चरणारविन्द ग्वाल बालोंके संग वनमें फिरे हैं और जिन चरणारविन्दोंमें गोपियोंके कुचोंकी केशर लगी है, उन्हीं चरणारविन्दोंका आज दर्शन करूँगा ॥ ८ ॥ सुन्दर कपोल, नासिका और मुसकानयुक्त चितवन, लाल कमलके तुल्य नेत्र घूमघुमारी अलकोंसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका

* शंका—वेदका कीर्तन करना, श्रवण करना और पढ़ना शूद्रके लिये वर्जित है, चाहे विरक्त होवे चाहे गृहस्थ होवे, तो फिर अक्रूरने क्यों कहा कि विषयमें रमित शूद्र उसको वेदका कीर्तन आदि महादुर्लभ है, इस वाक्यसे विदित होता कि गृहस्थ शूद्रके लिये वेदका कीर्तन आदि दुर्लभ है, तो भी विरक्त शूद्रको दुर्लभ नहीं हैं ।

उत्तर—आदि (शूद्रजन्म) इस शब्दका शूद्र अर्थ कभी मत समझना, शूद्रजन्मा इसका अर्थ यह है कि शूद्र सरीखे जिसका जन्म हो उसको शूद्रजन्मा जानना चाहिये, जन्म तो हुआ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके कुलमें परंतु भ्रष्ट लोगोंके सदृश काम करे । सज्जनों ! जान लेना इस अर्थको में गुप्त लिखता हूँ एक भ्रष्ट दूसरे विषयसे निन्दनीय लक्षणों करकेसंयुक्त जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य उनको वेदका कीर्तन आदि महादुर्लभ है, ऐसा अक्रूरजीने कहा था, शूद्रको नहीं कहा था ।

आज निश्चय दर्शन करूँगा, क्योंकि हिरण भी मेरे दाहिनी ओर आये हैं ॥९॥ पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपनी इच्छासे अब मनुष्य रूप धारण करनेवाले, शोभाके धाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमान रूपका जब दर्शन करूँगा, तब मेरे नेत्र सफल होंगे ॥ १० ॥ तीन लोकके कार्यरूप जगत् और कारणरूप महदादिक तत्त्वको यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चितवनसे ही करते हैं, परन्तु तो भी उनको अहंकार नहीं है, अपने तेजसे अज्ञानके भेद भ्रमसे रहित हैं अपने अधीन मायाकी ओर चितवन करके अपने रचे जीव वृन्दावनके वृक्षोंके नीचे और गोपियोंके घरोंमें लीलापूर्वक वृद्धिसे दिखाई देते हैं ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके अहंकार नहीं एवं जो आत्मा राम हैं उन्हें लीला करना कैसे संभव है ? इसपर कहते हैं कि भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये लीला करते हैं। सबके पापोंको दूर

अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ॥ लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं मह्यं न न स्यात्फलमञ्जसा दृशः ॥ १० ॥ य ईक्षिताऽहं रहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसाऽपास्ततमोभिदाभ्रमः ॥ स्वमाययाऽऽत्मन् रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥ यस्याखिलाऽमीवहभिः सुमंगलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्म जन्मभिः ॥ प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनंति वै जगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥ १२ ॥ स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ॥ यशो वितन्वन् व्रज आस्त ईश्वरो गायन्ति देवा यदशेषमंगलम् ॥ १३ ॥ तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ॥ रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममाऽसन्तुषसः सुदर्शनाः ॥ १४ ॥

करनेवाले, सुन्दर, मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गुण जन्म, कर्मसे मिली वाणी जगत्को जिलानेवाली है और शोभायमान करती है; पवित्र करती है और जिन वाणियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला, गुण, जन्म, कर्म नहीं गाये गये हैं, उनको जो कहते हैं और श्रवण करते हैं वे अपवित्र हैं, जैसे मृत्युको प्राप्त हुआ शरीर अपवित्र है ॥ १२ ॥ यादवोंके कुलमें जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार लिया है वे अपनी मर्यादाओंको पालन करनेवाले लोकपालोंको सुख देनेवाले लीलापूर्वक यश विस्तार करते व्रजमें रहते हैं और सबको मंगलकारी, उनके यशको देवता लोग गाते हैं ॥ १३ ॥ महत्पुरुषोंको सुन्दर गति देनेवाले, गुरु, त्रिलोकीमें सुन्दर नेत्रवाले पुरु-

षोंको आनन्द देनेवाले, लक्ष्मीके निवासस्थान, सुन्दर रूप धारण किये श्रीकृष्णचन्द्रका आज मैं निश्चय ही दर्शन करूँगा, क्योंकि आज प्रातःकालके समय मुझे श्रेष्ठ शकुन हुए हैं ॥१४॥ दर्शन करनेके उपरांत उसी समय रथसे उतर उन प्रधान पुरुष कृष्ण बलरामके चरण, जिनका योगी पुरुष भी स्वरूपकी प्राप्तिके लिये केवल बुद्धिसे ही ध्यान करते हैं उनको मैं साक्षात् प्रणाम करूँगा और फिर इन सहित ब्रजवासी सखाओंको भी प्रणाम करूँगा ॥ १५ ॥ चरणोंमें पड़े हुए मस्तकपर सामर्थ्यवान् भगवान् अपना हाथ धरेंगे, जो हाथ काल रूप सर्पके वेगसे डरे हुए व शरणचाहनेवाले मनुष्योंको अभयका देनेवाला है ॥ १६ ॥ जिस भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके

अथावरूढः सपदीशयो रथात्प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ॥ धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन् वनौकसः ॥ १५ ॥ अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपंकजम् ॥ दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥ समर्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम् ॥ यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥ १७ ॥ न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ॥ योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८ ॥ अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ॥ सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीतविशंक ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥

इन्द्रने इन्द्रता पायी और ऐसे ही राजा बलिने संकल्प करके त्रिलोकीकी इन्द्रता प्राप्त की और रासक्रीड़ामें ब्रजकी स्त्री गोपियोंके श्रमके पसीनेको श्रीकृष्णने जिस हाथसे पोंछा था और जिन हाथोंमें कमलके समान सुगन्धि आती है वही हाथ मेरे मस्तकपर धरेंगे ॥ १७ ॥ यद्यपि मैं राजा कंसका भेजा दूत हूँ, परन्तु तो भी श्रीकृष्णचन्द्र मुझपर यह शत्रुका दूत है ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे, क्योंकि वे अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र मेरे चित्तकी बाहर भीतरकी चेष्टाको नित्य देखते हैं, मैं ऊपरसे तो कंसका भेजा हुआ जाता हूँ, परंतु भीतरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका ही ध्यान लग रहा है, इस बातको नित्यज्ञान द्वारा भलीभांति श्रीकृष्णचन्द्र जानते हैं ❋ ॥१८॥ चरणारविंदमें

दृष्टान्त—कृष्ण अन्तर्यामी हैं, इस कारण कपट प्रीति सबकी जानते हैं। एक बड़े भारी ठग थे, सो एक दिन बड़ी ऐंठमा पाग बांधकर चले तो लोग बोले कहां चले ? तो उत्तर दिया कि सबको तो हमने ठगा, परंतु जो परमेश्वर को ठगकर लावें तो हमारा नाम ठग है। ऐसा कह चले, परंतु थोड़ी ही दूर जाकर लौट आये । लोग बोले—क्यों भाई ! लौट कैसे आये ? यह बोले—भाई ! क्या कहें, उन्हें ठगते तो सही, परंतु वे तो अन्तर्यामी हैं, हमारे मनका कपट जान जायेंगे, अतः उनपर हमारा छापा नहीं लग सकता ।

गिरे, हाथ जोड़े मुझे मुसकाकर करुणाभरी दृष्टिसे जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र देखेंगे, उसी समय पाप और भय दूर हो जाने से आशङ्काओंसे रहित हो मैं परमानन्दको प्राप्त हो जाऊँगा ॥ १९ ॥ जिनके अत्यन्त हितकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और कोई देवता नहीं, वह भगवान् जिस समय अपनी जाति और कुटुम्बी जान मुझे भुजा पसार छातीसे लगावेंगे उसी समय यह देह पवित्र हो जयगा और इस देहके कर्मरूप बन्धन भी छूट जायँगे ॥ २० ॥ जब मैं भगवान् श्रीकृष्णसे मिल, मस्तक झुका हाथ जोड़ खड़ा हूँगा, तब हे काका अक्रूर ! इस प्रकार बड़े यशस्वी श्रीकृष्ण मुझसे कहेंगे, उस समय हमारा जन्म सफल हो जायगा, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिस पुरुषका आदर सम्मान नहीं करते, उस पुरुषको धिक्कार है ॥ २१ ॥ यद्यपि उनको न तो कोई प्रिय है, न सुहृद है न

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ॥ आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥२०॥ लब्ध्वाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ॥ तदा वयं जन्मभृतो महीयसा यो नैवादृतो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥ न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ॥ तथाऽपि भक्तान् भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥ २२ ॥ किं चाऽग्रजो माऽवनतं यदूत्तमः स्मयन् परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ ॥ गृहं प्रवेश्याप्तसमस्त सत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संचिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ॥ रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४ ॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः ॥ २५ ॥

कुप्यारा है और न उदासीन है परन्तु तो भी भगवान् भक्तको भजते हैं, जैसे कल्पवृक्षकी जो सेवा करे वह उसीको फल देता है ॥२२॥ जब मैं नमस्कार कर हाथ जोड़ूँगा, तब मेरी भुजा पकड़ हास्यपूर्वक छातीसे लगा गृहमें ले जाकर भलीभांति आदर सत्कार करेंगे फिर बड़े भ्राता बलरामजी अपने बन्धु यादवोंमें कंसके कर्त्तव्यको पूछेंगे ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार श्वफल्कके पुत्र अक्रूर मार्गमें श्रीकृष्णकी चिन्ता करते रथमें बैठे हुए गोकुलमें पहुँचे, कि इतनेमें ही भगवान् सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ समस्त लोकोंके पालन करनेवाले ब्रह्मादिक देवता अपने मुकुटोंके ऊपर जिनके चरणोंकी रेणुकाको धारण करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण-

चन्द्रके चरणोंके चिह्न महात्मा अक्रूरजीने ब्रजमें देखे, जो पृथ्वीके गहनेरूप थे और जिनमें कमल, यव, अंकुश आदि चिह्न प्रतीत होते थे ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणचिह्नके दर्शनके आनंदसे सम्भ्रम और प्रेमसे रोमांच हो आये, नेत्रोंमें आंसू भर आये सो अक्रूरजी रथसे उतर, अहो! यह मेरे प्रभुके चरणोंकी रज है इस प्रकार कहते कहते चरणोंके चिह्नोंमें लोटने लगे ॥ २६ ॥ देहधारियोंका इतना ही पुरुषार्थ है, जो कंसका सन्देशा ले दंभ भय, शोच त्याग श्रीकृष्णचन्द्रके चरणचिह्नका दर्शन व श्रवणादिकसे अक्रूरको प्रेम उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ इसके उपरांत ब्रजकी गोशालामें गाय दुहनेको जाते हुए श्रीकृष्णचंद्र और बलरामजीको महात्मा अक्रूरजीने देखा, जो पीतांबर और नीलांबर धारण कर रहे हैं और जिनके शरदऋतुके कमलसे नेत्र हैं ॥२८॥ किशोर अवस्था, श्याम और गौर स्वरूप,

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः ॥ रथादस्वकन्द्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥२६॥ देहंभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ॥ संदेशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥२७॥ ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ॥ पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥ २८ ॥ किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ॥ सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥२९॥ ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम् ॥ शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥ उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ॥ पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥ प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ॥ अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥ दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया ॥ यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥ ३३ ॥

लक्ष्मीके शोभाके स्थान, लम्बी भुजा, सुन्दरमुख, स्वरूपवानोंमें अत्यंत शोभायमान, हाथीके बालकके समान पराक्रमवाले ॥ २९ ॥ ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुशके चिह्नवाले चरणोंसे भूमिको शोभायमान करते, जिन महात्माका अनुकंपाजन्य जो मन्द मुसुकान व चितवन ॥३०॥ एवं जिनकी उदार रुचिरक्रीड़ा हैं, वे मोतियोंके हार और वनमाला पहने, पवित्र चन्दन और केशर लगाये, स्नान किये, निर्मल वस्त्र पहने ॥३१॥ प्रकृतिपुरुषरूप आदिकारण जगत्के पालन करनेवाले, पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलराम केशवमूर्ति दो रूप धरके अवतार लिये हैं ॥ ३२ ॥ हे राजन्! अपने तेजसे दिशाओंका अंधकार दूर करते हुए जैसे सुवर्णसे नीलमणिका पर्वत अथवा रूपेका पर्वत

जगमगाता है, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीके रूपको निहार ॥ ३३ ॥ स्नेहसे विह्वल हो महात्मा अक्रूरजीने शीघ्र रथसे उतर रामकृष्णके चरणोंमें दण्डवत् की ॥ ३४ ॥ हे महाराज परीक्षित ! श्रीकृष्णचंद्रके दर्शनके आनंदसे आंखोंमें आंसू आ गये, उत्कंठासे अङ्गमें रोमांच हो गये और प्रेमके मारे अपना नाम बतानेको भी समर्थ न हुए ॥ ३५ ॥ हित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अक्रूरका अभिप्राय जान चक्रकी रेखावाले अपने हाथसे पकड़ प्रसन्न हो छातीसे लगाकर मिले। यहां मिलनेका तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्णने कंसके मारनेका सामर्थ्य जताया ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत उदार मन बलरामजी दण्डवत् करते हुए अक्रूरजीको छातीसे लगाया, अपने हाथोंसे उनके दोनों हाथ पकड़ श्रीकृष्णसहित घरमें लिवाकर ले गये ॥ ३७ ॥ और "भले आये" इस प्रकार कुशल

रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ॥ पपात चरणोपान्ते दण्डवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ पुलकांचिताङ्ग औत्कण्ठ्यात्स्वाख्यानेनाशकन्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथाङ्गाङ्कितपाणिना ॥ परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥ सङ्कर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत्सानुजो गृहम् ॥ ३७ ॥ पृष्ट्वाऽथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ॥ प्रक्षाल्यविधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ॥ ३८ ॥ निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः ॥ अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥ तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ॥ मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥ ४० ॥ पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे ॥ कसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥

पूछ अक्रूरजीके लिये आसन बिछाकर, विधिपूर्वक चरण पखार मधुपर्क (दधि, घृत, मधु) दे पूजा करने लगे ॥३८॥ विधिपूर्वक पूजा कर अक्रूरजी को गौदान दी, फिर मार्गमें परिश्रम पाये अक्रूरजीके चरणारविंद आदरसहित दबाके गुणभरी पवित्र अन्नकी सामग्री भोजनार्थ अतिश्रद्धासे अक्रूरजीके आगे निवेदन की ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत जब अक्रूरजी भोजन कर चुके तब परमधर्मके जानने वाले बलदेवजी बीड़ा, चंदन, केशर, अतर और फूलोंके हार इत्यादिकोंसे उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥ ४० ॥ सम्मान करनेके पीछे अक्रूरजीसे नंदरायजी कहने लगे कि निर्दयी कंसके जीते हुए हे अक्रूरजी ! तुम्हारा जीवन किस प्रकार होता है, कसाईके घर रहती भेड़के

समान तुम कैसे रहते हो ? ॥४१॥ प्राणोंका पोषण करनेवाले दुष्ट कंसने विलाप करती जब अपनी बहिनके ही पुत्र मार डाले, तो उस दुष्टकी प्रजा तुम हो सो तुम्हारा क्या कुशल पूछें ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जब मधुर वचनसे पूछ नन्दरायजीने सत्कार किया तब महात्मा अक्रूरजीने मार्गके श्रमको त्याग दिया ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामक्रूरागमनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ दोहा--उनतालिसमें नन्दसुत, मथुरा कियो पयान । यमुनामें अक्रूरने, लखो भवन भगवान् ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! शय्याके ऊपर आनंदपूर्वक विराजमान श्रीकृष्ण बलदेवसे बड़ा सत्कार पाकर, अक्रूरजीने मार्गमें जो जो मनोरथ किये थे सो

योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः ॥ किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥ इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ॥ अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥४३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशम० पू० अक्रूरागमनं नामाऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखोपविष्टः पर्यंके रामकृष्णोरुमानितः॥ लेभे मनोरथान् सर्वान्पथि यान्सचकार ह ॥१॥ किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ॥ तथापि तत्परा राजन् नहि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥२॥ सायन्तनाशनं कृत्वा भगवान्देविकीसुतः ॥ सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यचिकीर्षितम् ॥३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तात सौम्यागतः कच्चित् स्वागतं भद्रमस्तुवः ॥ अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥४॥ किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ॥ कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥ ५ ॥

सो सब पूर्ण हुए ॥ १ ॥ क्योंकि छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त परिपूर्ण शोभाके स्थान भगवान् श्रीकृष्ण ही जब प्रसन्न हो गये तब किस वस्तुकी कमी रहे । हे राजा परीक्षित् ! कृष्णपरायण भक्त किसी वस्तुकी चाहना नहीं करते ॥ २ ॥ इसके उपरांत देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सन्ध्यासमयका भोजन कर अपने यादवोंसे जैसे कंसका बर्ताव है, सो अक्रूरजीसे पूछने लगे और जो कुछ करनेका विचार है, उसको भी पूछा ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे सौम्य ! भला तुम्हारा आगमन कुशल क्षेमसे तो हुआ है ? तुम्हारा कल्याण तो है, जातिके बंधु बांधव तो सुखसे और आरोग्य हैं ? किसीको कुछ दुःख तो नहीं है ? ॥ ४ ॥ हे अक्रूरजीको ! मामा कंस तो हमारे कुलका

रोग बढ़ा है, फिर अपने बन्धु बांधव और प्रजाकी क्या कुशल पूछें ? ॥ ५ ॥ देखो—हमारे निरपराध माता पिता अत्यन्त कष्ट हुआ, हमारे लिये उनके पुत्र मारे गये और हमारे ही लिये वह बन्दी हुए ॥ ६ ॥ हे साधु ! बहुत दिनोंसे तुम्हारे दर्शनोंकी अलिलाषा लग रही थी सो आकर हमको दर्शन दिया, यह बड़ा ही अनुग्रह किया । हे तात ! अब यह बताइये कि आपका आना कैसे हुआ ? ॥७॥ श्रीशु-

अहो अस्मदभूद् भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ॥ यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥ ६ ॥ दिष्ट्याऽद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम् ॥ सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ॥ वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेव वधोद्यमम् ॥८॥ यत्सन्देशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ॥ यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥

कदेवजी बोले कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर महात्मा अक्रूरजीने जब वृत्तांत वर्णन कर दिया कि कंस यादवोंसे शत्रु भाव रखता है और वसुदेवजीके मारनेका भी उद्योग उसने किया था ॥ ८ ॥ और जो संदेशा लाये थे, व जिस लिये स्वयं उनको दूत बनाकर भेजा था और देवर्षि नारदजीने जो कहा कि श्रीकृष्ण वसुदेवके पुत्र हैं सो सब कह सुनाया * ॥ ९ ॥

---

* शंका—व्रजमें नन्दादिकोंने अक्रूरसे पूछा कि आप किस कामके लिये व्रजमें आये हो ? तब अक्रूरने कृष्ण चन्द्रसे कहा कि आपको और बलदेवजीको मारनेके लिये यज्ञ देखनेके बहाने कंसने बुलाया है, ऐसा कहा तब स्वामीका विश्वासघातकपनका पाप लगेगा, क्योंकि यह बात गुप्त करके कंसने अक्रूरका विश्वास मानके कही थी कि अक्रूर किसीसे नहीं कहेगा और जो कंस सरीखे कपट करके कहें कि महाराज आपका मामा है और कंस राजा भी है, सो यज्ञका कौतुक देखनेको बुलाया है, तब भगवान्की ओर कपटका पाप भोगेंगे ?

उत्तर—जब श्रीकृष्णने अक्रूरसे पूछा कि आपका आना व्रजमें कैसे हुआ ? तब अक्रूरने अपने मनमें बड़ा दुखःमाना कैसा दुःख माना ? जैसे एक लकड़ी दोनों ओरसे जलती हो तो उस लकड़ीको कोई पुरुष हाथसे नहीं छू सकता क्योंकि जो इस लकड़ीको पकड़ता है तो दोनों हाथ जलते हैं और हाथोंके बचानेका उपाय करता है तो लकड़ी हाथसे जाती है, ऐसे ही अक्रूर होगये—कंस का पक्ष करते हैं तो भगवान्का द्रोही होना पड़ता है और भगवान्का पक्ष करते हैं तो कंसका द्रोही होना पड़ता है, तब प्राणत्यागनेका विचार किया फिर श्रीकृष्ण भगवान्का ध्यान किया, उस ध्यानमें श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरको आज्ञा दी कि तुम क्यों इतना कष्ट सहते हो ? कंसका कपट हो सो आप प्रगट मत करो, हमारी ओरसे कपटमें तुमको कुछ दोष नहीं होगा, फिर भगवान्ने कहा—हमारी ओरसे कपटकी त्रास त्याग दो, क्योंकि हम सब संसारका कर्म जानते हैं, मनुष्योंकी नाईं हम नहीं हैं, इस प्रकार भगवान्की आज्ञा पाकर अक्रूरने कंसके कपटरूप वचन कृष्णसे कहे, भगवान् तो सब जानते ही हैं, फिर क्यों गुप्त रखकर दोषका भागी बनूं इसलिये कह दिया कि तुम दोनों जनोंको यज्ञ देखनेके लिय कंसने बुलाया है ।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बड़े बड़े शत्रुओंका पराजय करनेवाले बलरामजीने महात्मा अक्रूरका वचन श्रवणकर कुछेक मुसकाते हुए नन्दजीसे राजा कंसका सन्देशा कहा ॥ १० ॥ यह सुनते ही उन्होंने गोप लोगोंको आज्ञा दी कि दही, दूध संग लेके हमारे साथ चलनेके वास्ते गाड़ियें जोड़ो ॥ ११ ॥ कल मथुराको चलकर राजा कंसको गोरस देंगे और बड़ा भारी उत्सव देखेंगे । देखो ! यह सब देशवासी जाते हैं इस प्रकार नन्दजीने गोकुलमें ढँढ़ोरा पिटवा दिया ॥ १२ ॥ इसके उपरांत सम्पूर्ण गोपियां इस समय अपने जीवन श्रीकृष्ण बलरामको मथुराको ले जानेको ब्रजमें अक्रूर आये हैं, यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखी हुई ॥ १३ ॥ बहुत गोपियोंकी तो यह दशा

श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ॥ प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥ गोपान् समादिशत्
सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ॥ उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥ ११ ॥ यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो
नृपते रसान् ॥ द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्व यांति जानपदाः किल ॥ एवमाघोषयत् क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥
गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥ रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित् तत्कृतहृ-
त्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ॥ स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्चकाश्चन ॥ १४ ॥ अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ॥
नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥ स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ॥ हृदिस्पृशश्चित्रपदा
गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥ १६ ॥ गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ॥ शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामच-
रितानि च ॥ १७ ॥

हुई कि उसके सुननेसे जो हृदयमें ताप हुआ उससे गोपियोंके मुख कुम्हला गये और वस्त्र, कंकण, केशोंकी ग्रंथि सब शिथिल हो गई ॥ १४ ॥ और बहुत स्त्रियोंकी यह दुर्दशा हुई कि श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानसे सब इंद्रियोंकी वृत्तियें जाती रहीं, वे मुक्त होनेपर जैसे देहका भान जाता रहता है, वैसे ही देहका भान भूल गईं ॥ १५ ॥ बहुतसी गोपियें स्नेहसे मुसकाय हृदयको आनन्ददायक, चित्र विचित्र बोलनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके वचनोंका स्मरण कर मोहित हो गयीं ॥ १६ ॥ बहुतसी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मनोहर चलन, स्नेहभरी चितवन, शोकको दूर करनेवाली बोल इत्यादि चेष्टा और बड़े बड़े चरित्रोंको स्मरण करने लगीं ॥ १७ ॥

यह अवश्य ही जायँगे इस भयसे विरहमें कातर आंसू बहाती भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये हजारों गोपियोंके झुण्डके झुण्ड मिलकर संपूर्ण परस्पर यह कहने लगीं ॥ १८ ॥ गोपियें कहने लगीं कि हे विधाता ! तुझे कुछ भी दया नहीं है, क्योंकि जीवोंका परस्पर मिलाप व प्रेम बँधाकर उनके पूरे सुख भोगनेपर भी वृथा वियोग कर देता है, इसीसे तेरी क्रीड़ा बालकोंके समान है, अर्थात् तू मूर्ख है ॥१९॥ जो तू श्याम अलकोंसे आच्छादित सुन्दर कपोल, ऊँची नासिकावाला, शोच मिटाने वाले मंद हास्यके लेशमात्रसे भी शोभायमान श्रीकृष्णचंद्रके मुखका एक बार दर्शन कराकर पीछे छिपा लेता है, हमने तेरा क्या अपराध किया है ? ॥ २० ॥ दान करके लेता है, इसलिये तू बड़ा कठोर है, (अक्रूर लिये जाता है मैं तो नहीं ले जाता, यदि विधाता यह कहें तो इसके उत्तरमें गोपियें कहती हैं कि)

चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य लीला विरहकातुराः ॥ समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्याप्रणयेन देहिनः ॥ तांश्चाकृतार्थान् वियुनक्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥ यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं मुकुंदवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ॥ शोकापनोदस्मितलेशसुंदरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥ २० ॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ॥ येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥ न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ॥ विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥ २२ ॥ सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ॥ याः सम्प्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥

अरे विधाता ! निर्दयी अक्रूर नाम धरकर तू ही आया है सो अपने दिये हुए कृष्णरूप नेत्र अज्ञानीके समान करके लिये जाता है; जिस तेरी दी हुई आंखसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके एक एक अंगमें तेरी संपूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता हम देखती हैं ॥ २१ ॥ अरे ! रे ! क्षणभंग स्नेहवाले नन्दके पुत्रकी मुसकानसे मोहित हुई घरमें बन्धु और पुत्र पतियोंको छोड़ हम साक्षात् उनकी दासी हुई परंतु बड़े आश्चर्यकी बात है कि वह हमारी ओरको दृष्टि उठाकर देखता भी नहीं, जान पड़ता है कि उसे नित्यप्रति नये नये प्यारे लगते हैं ॥ २२ ॥ मथुराकी स्त्रियोंको इस रातका सबेरा अच्छा होगा, क्योंकि उनके मनोरथ निश्चय सच्चे होंगे, देखो जो स्त्रियें मथुरामें पधारे भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्रका मुख जो कि कटाक्षसे वृद्धिगण और मुसकानरूप जिसमें रस ऐसे सुन्दर रसका पान करेंगी ॥२३॥ हे बालाओ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि माता, पिता आदिके पराधीन हैं और धीर हैं, परन्तु तो भी उन स्त्रियोंके मधुके समान मीठे भाषणोंसे इनका चित्त हरण हो जायगा, व उन स्त्रियोंके लजीले मंद हास्य व विलासोंसे भ्रम जायँगे, इस लिये जो अपने गांवकी रहनेवाली हैं, उनके निकट पीछे किस प्रकार आवेंगे ॥ २४ ॥ आज तो मथुरामें दाशार्हवंशी, भोजवंशी और अन्धवंशी यादवोंकी आंखोंको निश्चय आनंद होगा, क्योंकि लक्ष्मी संग रमण करनेवाले सम्पूर्ण गुणयुक्त देवकीनंदन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको जो पुरुष मार्गमें देखेंगे उनके नेत्रोंको निश्चय ही बड़ा आनंद होगा ॥ २५ ॥ ऐसे क्रूर कर्म करनेवाले निर्दयीका अक्रूर नाम किसने रखा है, जो यह निर्दयी बहुत दुःखित

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान् मनस्व्यपि ॥ कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥ अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् ॥ महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५ ॥ मैतद्विधस्याकरुणस्य नामभूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ॥ योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥ अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ॥ गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥ निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः ॥ मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद् दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥

हमारे विना पूछे प्राणोंसे प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको हमारी आंखोंसे दूर लिये जाता है ॥ २६ ॥ देखो ! यह कठोरबुद्धि कृष्ण रथमें जा बैठे, उस पर भी, यह अभागे ग्वाल गाड़ीको शीघ्र ही हांकनेकी चेष्टा करते हैं, ऐसी अनीतिको होती हुई देखकर कोई बड़ा बूढ़ा भी मने नहीं करता, इस समय किसी गोपको विघ्न हो जाता तो बुरा शकुन विचारकर श्रीकृष्ण नहीं जाते, हाय ! हाय ! ! आज दैव ही हमारे प्रतिकूल चेष्टा करता है ॥ २७ ॥ फिर गोपियें बोलीं कि सखी ! हम सब चलकर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको मने करेंगी और उनके रथके आगे जाय आड़ी पड़कर कहेंगी कि यदि आप जाते ही हैं तो हमारी छातीपर रथका पहिया उतारकर चले जाओ और हमारे

कुलके बड़े बूढ़े भी क्या करेंगे ? क्योंकि जो अर्धक्षणको भी नहीं छूट सकते, उन्हीं मुकुन्दका वियोग कर दैवने हमारे चित्त दीन कर दिये हैं ॥ २८ ॥ हे गोपियो ! और देखो, सखी ! उन्हीं कृष्णकी स्नेहभरी मनोहर मुसकान मनोहर लीलापूर्वक चितवन आलिंगनसे रासकी सभामें अत्यन्त बड़ी रात्रियें एक क्षणके समान बीत गयी थीं, अब विना श्रीकृष्णचन्द्र आनँदकन्दके विरहरूपी दुःखके समुद्रको कैसे तरेंगी ? ॥ २९ ॥ सन्ध्या समय बलदेवजीके संग ग्वालबालोंसे वेष्टित हो बांसुरी बजाते जिनके बाल और माला गायोंके खुरोंकी धूरिसे परिपूर्ण रहते थे, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वनमें आनेके समय कुछेक हँसते हुए कटाक्ष सहित दृष्टिसे हमारे चित्तको हर लेते थे, उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना अब हम किस प्रकार जीवन धारण करेंगी ? ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित ! इस

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम् ॥ नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥ २९ ॥ योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् ॥ वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ॥ विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ३१ ॥ स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ ॥ अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥ गोपास्तमन्वसज्जन्त नंदाद्याः शकटैस्ततः ॥ आदायोपायनं भूरि कुम्भान् गोरससंभृतान् ॥३३॥ गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः ॥ प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥

प्रकार अत्यन्त विरहमें व्याकुल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये गोपियें लज्जा त्याग हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! इस भांति पुकार पुकारकर रोने लगीं ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार गोपियें विलाप कर रही थीं, कि इतनेमें ही भगवान् सूर्य उदय हो गये, इसके उपरांत महात्मा अक्रूरजीने संध्योपासन कर रथ हांका, (तब गोपियें हाहाकार कर रोने लगीं; केशवमूर्तिके वियोगमें यशोदा व गोपियें इस प्रकार व्याकुल हो हाहाकार करने लगीं) ॥ ३२ ॥ इसके उपरांत नन्दादिक सम्पूर्ण ब्रजवासी ग्वालबाल दूध दही माखनसे भरे कलशोंको ले गाड़ियोंमें बैठकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सङ्ग चले ॥ ३३ ॥ और कृष्णमें आसक्त मन गोपियें श्रीकृष्णके पीछे

जाके कदाचित् श्रीकृष्ण लौट आवें इस प्रकार पैंड़ा देखने लगीं, ॥३४॥ यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चलनेके समय उन गोपियोंको व्याकुल देख "शीघ्र ही आऊँगा" ऐसे प्रेम सहित वचन दूतसे कहलाकर शान्त किया ॥३५॥ हे परीक्षित् ! जहां तक रथकी ध्वजा देखी, तहांतक तो रथकी धूल उड़ती देखी और तबतक गोपियें भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये चित्रकी नाईं लिखीसी खड़ी रहीं ॥ ३६ ॥ परन्तु जब जाना कि अब मुरलीमनोहर नहीं आवेंगे, तब वे गोपियें अत्यन्त व्याकुल हो लौटीं (और शोक प्रकाश कर परस्पर कहने लगीं) हे राजन् ! इस भांति वे गोपियें विलाप करती हुई ब्रजमें लौट आयीं और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंको गाय-गाय शोक

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ॥ सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपतस्थिरे ॥ ३६ ॥ ता निराशा निववृतुर्गोविंदविनिवर्तने ॥ विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७ ॥ भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ॥ रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ॥ वृक्षखण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥ अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि ॥ कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥ निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनम् ॥ तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥ तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः ॥ तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥ ४२ ॥

त्यागती दिनोंको बिताने लगीं ॥३७॥ उधर पवनके तुल्य वेगवाले रथमें बैठे बलदेव अक्रूर सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली यमुनाके निकट पहुँचे ॥३८॥ वहां पहुँच हाथ पांव धो आचमन कर, निर्मल मीठा जल पी, फिर बगीचेमें आकर बलराम सहित रथमें बैठ गये ॥३९॥ इसके उपरांत महात्मा अक्रूरजी भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलरामजीको रथमें बैठाकर और उनसे आज्ञा मांग विधिपूर्वक स्नान करने लगे ॥४०॥ और जलमें गोता मार कर गायत्रीकी जप करते-करते महात्मा अक्रूरजीने कृष्णबलदेवको देखा ॥ ४१ ॥ फिर अक्रूरजीको भ्रम हुआ कि रामकृष्णको तो मैं रथमें बैठाकर आया था सो यहां कैसे आये ? कदाचित् रथमेंसे उतर तो

न आये हों इसलिये निकलकर देखूँ इस प्रकार विचार करने लगे ॥ ४२ ॥ फिर अक्रूरजीने निकलकर देखा कि पहलेके समान कृष्णबल-
देव रथमें विराजमान हैं, उस समय अक्रूरजी महाविस्मयको प्राप्त होकर कहने लगे कि जलके भीतर जो मुझे दर्शन हुआ, सो मिथ्या है,
॥ ४३ ॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर फिर गोता मारा तो सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवता, नर्त्तक स्तुति कर रहे हैं और भगवान् शेषजी
विराजमान हैं ऐसा देखा ॥४४॥ जिसके सहस्र शिर मुकुटोंसहित सहस्र ही फग नीले वस्त्र धारण किये कमलनालके तुल्य श्वेतवर्ण कैला-
सके समान प्रकाशमान शेषजीको देखा ॥ ४५ ॥ कुण्डलसे विराजमान उनके ऊपर श्याम और पीत वस्त्रोंको धारण किये चार भुजा

तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ॥ न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानमहीश्वरम् ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४ ॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ॥ नीलाम्बरं बिसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्योत्संगे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नचारुवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ॥ सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ॥ ४७ ॥ प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ॥ कम्बुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८ ॥ बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ॥ चारुजानुयुगं चारुजंघायुगलसंयुतम् ॥ ४९ ॥ तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ॥ नवांगुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपंकजम् ॥ ५० ॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकाङ्गदैः ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥ ५१ ॥

शांतस्वरूप पुरुष कमलके पत्तोंके समान अरुण नेत्र ॥४६॥ सुन्दर प्रसन्न मुख, सुन्दर हास्यभरी चितवन, सुन्दर भ्रुकुटी और शोभायमान
नासिका, सुन्दर कर्ण, सुन्दर कपोल और अरुण ओष्ठ ॥४७॥ लंबी मोटी भुजा, विशाल हृदयमें लक्ष्मी विराजमान, गोल, शंखसी ग्रीवा,
तीन वली जिसमें पड़ रहीं ऐसे शोभायमान जिनकी नाभि पीपलके पत्तेके समान चिकना उदर ॥ ४८ ॥ पतली कमर और बृहत् श्रोणीसे
शोभायमान दोनों जङ्घा ॥४९॥ लंबायमान दोनों गुल्फ, लाल नखोंके समूहकी कांतिसे वेष्टित कोमल अंगुली, सुन्दर चरणकमल ॥५०॥
बहुत मोलके मणियोंसे जटित किरीट, कड़े, बाजूबन्द और कमरकर्धनी, यज्ञोपवीत, मोतियोंके हार, चरणोंमें नूपुर तथा कानोंमें कुण्डल॥५१॥

जो पहन रहे हैं, उनसे अत्यन्त ही प्रकाशमान हैं कमल और शङ्ख, चक्र गदाको धारण किये, भृगुलताका चिह्न जिनकी छातीमें प्रकाशमान, कौस्तुभमणिकी जिनके धुगधुगी ॥५२॥ सुनन्दर नन्द जिनमें मुखिया ऐसे पार्षद, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और ब्रह्मा, महादेवादि देवता, मरीच्यादि जो ब्राह्मण, प्रह्लाद, नारद, वसु जिनमें मुख्य इस प्रकार उत्तम भक्त अलग-अलग भावसे उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और श्री, पुष्टि, वाणी, कांति, कीर्ति, तुष्टि, इला, उर्ज्जा, विद्या-अविद्या, शक्ति, माया जिनका निरंतर सेवन करती हैं ॥ ५५ ॥ ऐसे परिपूर्णरूप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो परमभक्तिको प्राप्त हो देहमें रोमांच हो

भ्राजमानं पद्मकरं शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्रीवत्सवक्षसंभ्राजत्कौस्तुभं वलमालिनम् ॥ ५२ ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ॥ स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥ श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ॥ विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥ ५५ ॥ विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ॥ हृष्यत्तनूरुहो भावपरि-क्लिन्नात्मलोचनः ॥५६॥ गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्त्वतः ॥ प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ॥५७॥ इति श्रीभागव० म० द० पूर्वार्धेऽक्रूरप्रतियानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥ अक्रूर उवाच ॥ नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥ यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माऽऽविरासीद्यत एष लोकः॥१॥भूस्तो यमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि ॥ सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥ २ ॥

गये और भक्तिके कारण नेत्रोंमें आंसू भर आये ऐसे महात्मा अक्रूरजी मस्तक नवाय, प्रणाम कर, सावधान हो, हाथ जोड़, धीरेसे सत्त्वगुणका आश्रय ले गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटी-कायामक्रूरप्रतियाने भगवत्प्रयाणनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ दोहा–चालिसमें अक्रूरने, लखि हरिचरित अपार । सगुण निर्गुणकी भक्तिसे, विनवत वारंवार ॥ अक्रूरजी बोले कि, हे कृष्ण ! सम्पूर्ण कारणोंके कारण नारायण आदिपुरुष अविनाशी जिनकी नाभिमें उत्पन्न हुए कमलसे ब्रह्मा हुए और उस ब्रह्मासे यह लोक उत्पन्न हुआ, तुमको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन,

आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, पुरुष, मन, इन्द्रिय, समस्त इंद्रियोंके लिये विषयसे सम्पूर्ण देवता यह जो जगत्‌के कारण हैं सो तुम्हारे ही अंगसे हुए हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मासे आदि लेकर जड़ जो सम्पूर्ण तत्त्व हैं सो अपने स्वरूपको नहीं जानते और जीव हैं सो तत्त्वोंको जानते हैं, अपने स्वरूपको नहीं जानते, मायाके गुणोंसे बँधे हुए जीव गुणोंसे अलग तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते ॥३॥ ब्रह्माके उपासक महापुरुष ईश्वर तुम हो, तुम्हारी ही पूजा करते हैं और इंद्रिय, पञ्चभूत देवता इनके साक्षी अन्तर्यामी तुम हो, इसीलिये तुम्हारी साधुलोग पूजा करते हैं ॥४॥

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः॥ अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम् ॥३॥ त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम्॥ साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदेवं च साधवः ॥४॥ त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः ॥ यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥ एके त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ॥ ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥६॥ अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते ॥ यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥ त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ॥ बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते ॥ ८ ॥

और कोई एक कर्मोंमें निष्ठावाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदसे यज्ञोंका विस्तार करके अनेक रूप देवताओंका नाम ले लेकर पूजा करते हैं ॥ ५ ॥ और कोई-कोई ज्ञानी पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको त्याग समाधिमें आकर ज्ञानरूप तुम्हारा पूजन करते हैं* ॥६॥ और दूसरे पुरुष विष्णुकी दीक्षा लेकर नारदपञ्चरात्रमें कही पूजाकी विधिसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन भेदोंसे बहुत रूप और नारायणरूपसे एकरूप आपकी ही पूजा करते हैं॥ ७ ॥ हे भगवन् ! और कोई कोई पुरुष शिवजीके कहे शैवमार्गसे और पाशु-

* शंका—योगमें बड़े चतुर, ऐसे योगीजन सब संसारके सुखको त्याग कर जिस ब्रह्ममें मिल जाते सो ही श्रीकृष्णचन्द्र है, यह शंका हमको बारम्बार होती है ?

उत्तर—जिस ब्रह्मका मुमुक्षु लोग जाते हैं, उस ब्रह्म को योगीजन नहीं जा सकते, वह ब्रह्म बड़ा कठिन है, परंतु संसारमें अपने-अपने इष्टको ब्रह्मके स्वरूपकी नाईं बढ़ाई करके सब प्राणी वर्णन करते हैं, इसलिये अक्रूर भी कृष्णको ब्रह्मस्वरूप करके वर्णन करते हैं।

पतमार्गसे शिवरूप तुमको अनेक प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हे सर्वदेवतारूप ! हे समर्थ ! जो पुरुष और देवताओंके भक्त हैं और देवताओंमें उनके मन लग रहे हैं, वह सबके ईश्वर तुम्हारी ही पूजा करते हैं क्योंकि आप सब देवताओंके रूप हैं ॥९॥ हे प्रभो ! जैसे पर्वतोंसे निकली मेघके जलसे परिपूर्ण हो नदियें चारों ओरसे बह बहकर समुद्रमें जा मिलती हैं, उसी प्रकार सब देवताओंके मार्ग अन्तमें तुममें ही आकर मिल जाते हैं ॥१०॥ सत, रज, तम यह तुम्हारी प्रकृतिके गुण हैं, इन गुणोंमें ब्रह्मा आदि स्थावरतक सब जीव पोये हुए हैं, वे गुण प्रकृतिमें और प्रकृति तुममें ॥ ११ ॥ संसारमें अलिप्त बुद्धि जिसके आत्मा सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी तुम हो सो मैं आपको

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ॥ येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ॥ विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥ १० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तेषु हि प्राकृताः प्रीता आब्रह्मस्थावरादयः ॥ ११ ॥ तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ॥ गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२ ॥ अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ॥ द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ॥ निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥ त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसङ्कुलाः ॥ यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥

नमस्कार करता हूँ । अविद्यासे हुआ गुणका प्रभाववाला संसार देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी इनकी देहमें ही प्रवृत्त हो जाता है, इसलिये इनमें और आपमें बड़ा अन्तर है ॥ १२ ॥ अग्नि तुम्हारा मुख है, पृथ्वी तुम्हारा चरण है, सूर्य नेत्र, आकाश नाभि, दिशा कान, स्वर्ग मस्तक, देवता भुजा और समुद्र कांख है, पवन प्राणरूप तथा बलरूप कल्पना किया है ॥ १३ ॥ वृक्ष ओषधि देहमें रोम, मेघ तुम्हारे केश, पर्वत तुम्हारे हाड़ और नख हैं, रात्रि दिन पलकोंका खोलना तथा बन्द करना है, प्रजापति तुम्हारा मेढ्र है और वर्षाको तुम्हारा वीर्य कहते हैं ॥ १४ ॥ तुम अविनाशी पुरुषमें ही लोकपालोंसहित लोक स्थित हैं और वह बहुतसे जीवोंसे व्याप्त हैं, जैसे जलमें छोटे कीड़े चलते हैं,

गूलरमें भुनगे उड़ते हैं, उसी प्रकार मनकी वृत्तिसे जाननेमें आते जो तुम हो उनमें अनन्त ब्रह्मांड फिरते हैं ॥१५॥ इस संसारमें लीला करनेके लिये आप जो जो रूप धारण करते हो उनसे शोक दूर कर लोग आनंदसे तुम्हारे यशको गाते हैं ॥ १६ ॥ सत्यव्रतको माया दिखानेके लिये मत्स्यरूप धरकर प्रलयके समुद्रमें विचरनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, मधुकैटभ दैत्यको मारनेके लिये हयग्रीवरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है ॥१७॥ मन्दराचल पर्वतके धारण करनेवाले बड़े कच्छपरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, पृथ्वी लानेके लिये वाराहरूप आपको नमस्कार है ॥१८॥ साधुपुरुषोंका भय दूर करनेवाले अद्भुत नृसिंह रूप धरनेवाले आपको नमस्कार है, वामनरूप

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ॥ तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ॥ हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ॥ क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥ १८ ॥ नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ॥ वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ॥ नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ॥ म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥२२॥ भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ॥ अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ॥ भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥

होकर तीनों लोक नापनेवाले तुम्हें नमस्कार है ॥१९॥ गर्वीले क्षत्रियरूप वनको काटनेवाले भृगुवंशियोंके पति परशुराम तुमको नमस्कार है,रावणके मारनेवाले रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्ररूप आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ वासुदेवरूप तुमको नमस्कार है, संकर्षणरूप तुमको नमस्कार है, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप तुमको नमस्कार है, भक्तोंके पति तुमको नमस्कार है ॥२१॥ दैत्य दानवोंके मोहित करनेवाले शुद्ध बुद्धरूप तुमको नमस्कार है, म्लेच्छ क्षत्रियोंको मारनेवाले कल्कीरूप तुमको नमस्कार है ॥२२॥ हे भगवन् ! यह जीव तुम्हारी मायासे मोहित हो अहंता ममतारूप दुराग्रहसे कर्ममार्गोंमें भ्रमण करता है ॥२३॥ हे विभो ! मैं भी स्वप्नके समान आत्मा, पुत्र, घर, स्त्री, धन,

भाई बन्धु इत्यादि हैं उनमें मूर्खतासे सत्यबुद्धि कर भ्रमण करता हूँ ॥ २४ ॥ अनित्य आत्मा दुःखरूप हैं, उनको नित्य आत्मा सुखरूप जानता हूँ और सुख दुःखमें क्रीड़ा करनेवाले अज्ञानसे भरा मैं अपने प्रिय तुमको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सिवारसे ढके जलको छोड़ सूर्यकी किरणोंसे बालू चमकते जलके लिये जाते हैं उसी प्रकारसे ढके तुमको त्याग देहादिकोंमें मेरा मन लग रहा है ॥ २६ ॥ कृपण बुद्धि अर्थात् विषयोंमें बुद्धि लगनेसे काम्य कर्मसे क्षुभित हुए मनको रोकनेमें असमर्थ नहीं हूँ, परंतु बलवान् इंद्रियें मनको इधर उधर चलायमान कर देती हैं ॥ २७ ॥ हे परमेश्वर ! हे पद्मनाभ ! विषयी पुरुषोंको दुर्लभ मैं आपके चरणारविन्दोंकी शरण आया हूँ और तुम्हारी शरण आना यह भी आपके ही अनुग्रहसे हुआ है ऐसे मानता हूँ, क्योंकि जब पुरुषका संसार छूटने

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ॥ द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वाऽऽत्मनः प्रियम् ॥२५॥ यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ॥ अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत् त्वाऽहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ॥ रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥ सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ॥ पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ २९ ॥ नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे अक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

वाला होता है, तब हे कमलनाभ ! साधुओंकी सेवा करते हैं, उस सेवासे तुममें आकर बुद्धि लगती है, परंतु तुम्हारी कृपा विना साधुओंकी सेवा भी नहीं बनती और तुममें बुद्धि भी नहीं लग सकती ॥ २८ ॥ विज्ञानमूर्ति समस्त ज्ञानके कारण पुरुष काल एवं मायारूप ब्रह्म तुम्हीं हो, इसीलिये हे अनन्तशक्ति ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥ हे समर्थ ! हे इंद्रियोंके प्रेरक ! चित्तके अधिष्ठाता सब प्राणियोंके आश्रय तुमको मैं नमस्कार करता हूँ, तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुए मेरी रक्षा करो ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दोहा—इकतालिस अध्यायमें, मथुरा कियो प्रवेश । रजक वधो माली दियो, शुभ वरदान व्रजेश ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्तुति करते हुए अक्रूरजीको जलके भीतर अपना स्वरूप दिखलाकर फिर जैसे नट अपने स्वांगको दिखलाकर समेट लेता है; उसी प्रकार समेट लिया ॥ १ ॥ अक्रूरजी भी श्रीकृष्णचन्द्रको जलमेंसे अन्तर्धान हुआ देख अत्यंत शीघ्रतासहित जलमेंसे निकल संपूर्ण संध्योपासन कर आश्चर्य मान रथके निकट आये ॥ २ ॥ इनको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे अक्रूर ! पृथ्वीमें, जलमें, आकाशमें तुमने ऐसी आश्चर्य वस्तु क्या देखी है, क्योंकि तुम आश्चर्यरूप चकितसे दिखायी देते हो ? ॥३॥

श्रीशुक उवाच ॥ स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः ॥ भूयः समाहरत् कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ ॥ १ ॥ सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३ ॥ अक्रूर उवाच ॥ अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले ॥ त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥ यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ॥ तं त्वाऽनु पश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिवाद्भुतम् ॥५॥ इत्युक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः ॥ मथुरामनयत् रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥ ६ ॥ मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्रतत्रोपसंगताः ॥ वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः ॥ ७ ॥

तब अक्रूर जी बोले कि इस संसारमें, पृथ्वीमें, जलमें जितने आश्चर्य हैं वे सब आश्चर्य विश्वरूप आपमें विद्यमान हैं, सो आपका मैंने दर्शन किया ॥ ४ ॥ हे परमेश्वर ! आपमें ही सब आश्चर्य भरे हैं अतः जब आपका दर्शन मैंने कर लिया तो फिर पृथ्वी, आकाश और इस संसारमें क्या आश्चर्य देखना शेष रह गया ? ॥५॥ ऐसे कह गांदिनीके पुत्र महात्मा अक्रूरजीने रथ हांका और तीसरे ही पहरतक मथुरापुरीमें रामकृष्णको पहुँचा दिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मार्गोंमें ग्रामोंके मनुष्य जहां-तहां इकट्ठे हो कृष्णबलदेवका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके रूपसे अपनी दृष्टिके हटानेको भी समर्थ न हुए ॥ ७ ॥

हे महाराज ! इसी बीचमें नन्दादिक समस्त ब्रजवासी आगे आकर मथुराके बागमें कृष्ण बलदेवके आनेका पैंड़ा देखने लगे ॥ ८ ॥ इसके उपरांत जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन ब्रजवासियोंके निकट आकर नम्र हो कुछेक मुसकानसहित अक्रूरसे कहा कि ॥ ९ ॥ हे अक्रूर ! तुम आगे रथको ले जाकर पुरीमें प्रवेश करो अपने घर जाओ, हम यहां कुछ देर विश्राम लेकर मथुरापुरीको देखेंगे ॥ १० ॥ तब अक्रूरजी बोले कि हे प्रभो तुम ! विना अकेला मैं मथुरापुरी नहीं जाऊँगा हे। नाथ ! हे भक्तोंपर हित करनेवाले ! मैं तुम्हारा भक्त हूं, इसलिए मुझे मत त्यागो ॥ ११ ॥ तुम आओ, हम तुम घर चलें। हे अधोक्षज ! हे सुहृदोत्तम ! आज

तावद् व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ॥ पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥८॥ तान् समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान् प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ॥ वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥ १० ॥ अक्रूर उवाच ॥ नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ॥ त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ११ ॥ आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान् कुर्वधोक्षज ॥ सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥ पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् ॥ यच्छौचेनानुतृप्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः ॥१३॥ अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीच्छ्लोक्यो बलिर्महान् ॥ ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या ॥ १४ ॥ आपस्तेऽङ्घ्र्यवनेजन्यस्त्रीँल्लोकाञ्छुचयोऽपुनन् ॥ शिरसाऽधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥१५॥ देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥

अपने बड़े भाई बलदेवजी और ग्वालबालों सहित मेरे घर चलकर मुझे सनाथ करो ॥ १२ ॥ अपने चरणोंकी रजसे मुझ गृहस्थके घरको पवित्र करो और तुम्हारी चरणोंकी धोवनसे ही मेरे पितृ, अग्नि देवता तृप्त हो जायँगे ॥ १३ ॥ देखो ! तुम्हारे युगल चरण धोनेसे राजा बलिका कैसा पवित्र यश हुआ, कि जिससे अत्यन्त दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ और अनन्य भक्तोंको जो गति मिलती है, वही गतिं उसने पायी ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे चरणारविन्दका धोवन जल गंगारूप होकर त्रिलोकीको पवित्र करता है, उसी जलको शिवजीने अपने मस्तकपर धारण किया है और उसी जलके स्पर्शसे साठ हजार सगरके पुत्र स्वर्गको चले गये ॥ १५ ॥ हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! तुम्हारी

कथा–श्रवण और गुण-कथनसे भक्त पवित्र हो जाते हैं, ऐसे तुम पवित्र गुणयुक्त हो, सो हे नारायण ! आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि यादवोंसे द्रोह करनेवाले कंसको मार सुहृदोंका प्रिय करूँगा, इसके उपरान्त बड़े भाई बलदेवजीको सङ्ग ले मैं तुम्हारे घर आऊँगा ॥१७॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अक्रूरजी विमन हो पुरीमें जा "राम कृष्णको ले आया" ऐसे कह अपने घरको चले गये ॥१८॥ इसके उपरान्त तीसरे पहरके समय बड़े भाई बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोप ग्वालोंको संग ले मथुरापुरी देखनेके लिए चले ॥१९॥ उस पुरीकी कैसी शोभा है कि स्फटिक मणियोंके ऊंचे शहरपनाहके और घरोंके द्वार बने हुए हैं,

श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ॥ यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ॥ पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥ अथापराह्णे भगवान् कृष्णः सङ्कर्षणान्वितः ॥ मथुरांप्राविशद् गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥ ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ॥ ताम्राऽऽरकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ॥ वैदूर्यवज्राऽमलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥ २१ ॥ जुष्टेषुजालामुखरन्ध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ॥ संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतण्डुलाम् ॥ २२ ॥

उनमें बड़े बड़े सोनेके किंवाड़ चढ़ रहे हैं और ठौर-ठौर बन्दनवारें टँग रही हैं, अन्न भरनेके लिए तांबे तथा पीतलके कोठे बन रहे हैं, चारों ओर चौड़ी खाई बन रही हैं, उद्यान और उपवन आदिसे यह पुरी अत्यन्त शोभायमान हो रही है ॥ २० ॥ सुवर्णके चारों ओर मार्ग, साहूकारोंके महल और बड़े-बड़े कारीगर मनुष्योंके मकानोंसे यह पुरी शोभायमान हो रही है । वैदूर्यमणि हीरें, निर्मल नीलमणि, मूंगे, मोती इनके काम जिनमें हो रहे, ऐसे शोभायमान छज्जे हैं ॥ २१ ॥ जाली झरोखोंमें बैठे हुए मोर जहां तहां शोर कर रहे हैं, राजमार्ग व गलियोंमें छिड़काव हो रहा है, उनमें पुष्पोंकी माला, अंकुर, धानकी खीलें और चावल यह मंगल द्रव्य फैल रहे हैं ॥ २२ ॥

चन्दन दहीसे छिड़के फूल जिनपर धरे, ऊपर दीपकोंकी पंक्ति धरी, आमकी डाल जिन पर विराजमान, ध्वजा जिनपर फहरा रही है, दरियाईके कपड़े जिनकी नारिसे बँधे गहिरसहित केले व सुपारीके वृक्ष जिनके निकट लग रहे ऐसे जलके भरे कलश दरवाजोंपर रखे हैं, जिनसे वह पुरी बहुत ही शोभायमान हो रही है ॥२३॥ बराबरके मित्रोंको संग ले मथुरापुरीके बीच बाजारमें हो जिस समय वसुदेवनन्दन कृष्ण बलदेव निकले, उस समय इनको देखनेके लिये पुरीकी बहुत स्त्रियें दौड़ आयीं और बहुतसी स्त्रियें देखनेकी इच्छासे महलोंपर चढ़ गयीं ॥ २४ ॥ कोई कोई स्त्री उतावलके मारे ओढ़नियोंको पहन लहँगेको ओढ़ हाथोंके गहने पांवोंमें पहन कर चली आयीं, कोई एक स्त्री

आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ॥ सवृन्तरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलङ्कृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ ॥ तां संप्रविष्टो वसुदेवनन्दनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ॥ द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ काश्चिद् विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ॥ कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नाङ्क्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥२५॥ अश्नन्त्य एकास्तदपास्य भोजनमभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः॥ स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निस्स्वनं प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६ ॥ मनांसि तासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः ॥ जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥

अपने एक हाथ और एक पांवोंमें ही गहना पहनकर चली आयी और एक स्त्री एक कानमें कर्णफूल व एक पांवमें पायजेब पहनकर चली आयी, और कोई स्त्री एक ही आंखमें काजल लगाकर आ गयी ॥ २५ ॥ कोई कोई स्त्री भोजन करतेहीसे चली आयी और कोई कोई स्त्री अंगमें तेल मल रही थी वह विना ही स्नान किये चली आयी, कोई सोतेसे ही उठकर चली आयी, कोई स्त्री अपने बालकको दूध पिला रही थी सो सुना कि कृष्ण बलदेव आये हैं सो बालकोंको रोता ही छोड़ कर चली आयी ॥२६॥ मतवाले हाथीके समान पराक्रमवाले कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक ही हँसनि चितवनिसे उन स्त्रियोंका मन चुरा लिया और लक्ष्मीको रमण करानेवाले

रूपसे उन स्त्रियोंकी आंखोंको आनन्द देने लगे ॥ २७ ॥ बारंबार बातें सुनकर उन कृष्णमें लगे हैं चित जिनके और उनकी चितवन मुसकानरूपी अमृतका जो सींचना है उससे सत्कार पानेसे रोमाञ्च हो आये। ऐसी स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देख नेत्रद्वारा हृदयमें ले जाकर आनन्दरूप श्रीकृष्णको आलिंगन कर हे काम लोभादिकोंके दण्ड देनेवाले राजा परीक्षित् ! श्रीकृष्णके विना मिले ही कामकी पीड़ाको त्याग दिया ॥ २८ ॥ इसके उपरांत प्रफुल्लित नेत्रवाली स्त्रियें महलोंके शिखरपर चढ़ीं कृष्ण बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥ २९ ॥ फिर दही, अक्षत, जलके भरे पात्र और माला चन्दन भेंट लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रसन्न होकर कृष्ण

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ॥ आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम् ॥ २८ ॥ प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः ॥ अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः ॥ तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्रतत्र द्विजातयः ॥३०॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् ॥ या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥ रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः ॥ दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥ ३२ ॥ देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः ॥ भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ॥ साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥ ३४ ॥

बलदेवका पूजन करने लगे ॥ ३० ॥ और सम्पूर्ण मथुरावासी अत्यन्त आश्चर्य मान यह कहने लगे कि गोपियोंने ऐसा क्या उत्कृष्ट तप किया है, जो गोपी मनुष्यलोकके बड़े उत्सवरूप श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करती हैं ॥ ३१ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वस्त्रोंको धोनेवाला और रँगनेवाला मार्गमें आता हुआ एक धोबी देखा और अतिनम्रता सहित उससे अति उत्तम धुले हुए वस्त्र मांगे ॥ ३२ ॥ और कहा कि हे धोबी ! हमको हमारे योग्य वस्त्र दे दो, कारण कि हम इन वस्त्रोंके योग्य हैं और हमें वस्त्र देनेसे तेरा कल्याण होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥३३॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार सब ओरसे परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धोबीसे वस्त्र मांगे तब

अत्यन्त क्रोधित हो, कंसका सेवक अतिघमण्डी डाटकर बोला कि ॥ ३४ ॥ नित्य पर्वत और वनके फिरनेवाले ऐसे ही कपड़े पहनते हो ? हे उद्धत ! तुम राजाके वस्त्रोंके लिए क्यों मन ललचाते हो ॥ ३५ ॥ हे मूर्खो ! यदि अपना जीना चाहो तो तुम शीघ्र ही यहांसे निकल जाओ, फिर मत मांगना,क्योंकि राजा कंसके बहुत सेवक फिरते हैं और जो धूम मचाता है, उसे वे मारते हैं,लूटते हैं, बांधते हैं॥३६॥ हे राजन् ! इस प्रकार बकवाद करते हुए उस धोबीका शिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने महाक्रोधित हो अपने हाथके थापसे काट डाला ॥३७॥ जब मुख्य धोबी मारा गया, तब उसके टहलुए धोबी वस्त्रोंको पटक पटक चारों ओरको भाग गये, उस समय श्रीकृष्ण और बल-

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ॥ परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥ याताशु बालिशा-मैवं प्राथ्यं यदि जिजीविषा ॥ बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥ एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ॥ रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७ ॥ तस्यानुजीविनः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै ॥ दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥३८॥ वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा ॥ शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ॥ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ॥ विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥४०॥ नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ॥ स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥

रामजी मनमानते वस्त्रोंको पहनकर बाकी जो रहे सो गोप ग्वालोंको दे दिये, और जो रहे सो वहीं छोड़ दिये * ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! इसके उपरांत जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और ग्वालबाल सब वस्त्र पहनकर चले उसी समय प्रसन्नमन एक दर्जी आया, उसने आते ही रामकृष्णके लाल, हरे, पीले जो वस्त्र थे, उनके माला, चपकली, बाजूबन्द और अनेक प्रकारके आभूषण बनाकर शोभायमान पोषाक बना दी ॥ ४० ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी दोनों भाई अनेक प्रकारसे दर्जीके बनाये वस्त्रोंके

* शंका—तीन लोकके पति भगवान् दूसरे दुष्ट जीवोंका उच्छिष्ट अर्थात् पहिरा कपड़ा आप क्यों पहिरते हुए,यह बड़ी शंका है ?

उत्तर—धर्मशास्त्रमें यह लिखा है, कि मामाका पहिरा वस्त्र तथा कुमारी लड़कीका पहिरा वस्त्र तथा ब्रह्मचारीका पहिरा वस्त्र इन वस्त्रोंको पहिर लो दोष नहीं और कटिभागसे पहिरा वस्त्र मामा कन्या ब्रह्मचारीका भी धारण न करना और दूसरे पुरुषकी तो क्या बात है ? श्रीकृष्णने अपने मामाका वस्त्र जानकर उच्छिष्ट वस्त्र धारण किया ।

आभूषणोंसे ऐसे शोभायमान लगने लगे, जैसे पर्वमें सांवरे, गोरे शृङ्गार किये हाथीके छौना शोभायमान लगते हैं ॥ ४१ ॥ फिर उस दर्जीके ऊपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी सारूप्य मुक्ति दी और इस लोकमें सम्पत्ति, बल, ऐश्वर्य स्मरण तथा इन्द्रिय-शक्ति प्रदान की ॥ ४२ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम सुदामा मालीके घर गये, उसने इनको देखते ही पृथ्वीमें शिर लगाय प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ और आसन दिया, पाद्यार्घ्य इत्यादि पूजाकी सामग्रियोंसे दोनों भाइयोंका पूजन किया। फिर पीछे पानकी बीड़ी और चन्दन इत्यादि अर्पण किया ॥ ४४ ॥ फिर बोला कि हे प्रभो ! आज आपके आनेसे हमारा

तस्य प्रसन्नोभगवान् प्रादात् सारूप्यमात्मनः ॥ श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥४२॥ ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ॥ तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यं चार्घ्यार्हणादिभिः ॥ पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ॥ पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥४५॥ भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ॥ अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥४६॥ नहि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ॥ समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि ॥४७॥ तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ॥ पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥ इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः ॥ शस्तैस्सुगन्धैः कुसुमैर्माला विरचिता ददौ ॥ ४९ ॥ ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ॥ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥

जन्म सफल तथा कुल पवित्र हुआ और हमारे पितृ, देवता ऋषि सभी सन्तुष्ट हो गये ॥४५॥ आप निश्चय इस संसारके परमकारण हो और जगत्के कल्याण और वृद्धिके लिए ही आपने अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ जगत्के हितकारी आत्मा आप ही हो, आपकी विषम दृष्टि नहीं है, सब प्राणियोंमें समवर्ती हो और जो आपका भजन करता है उसको आप भी भजते हो ॥ ४७ ॥ अब आप दासको आज्ञा करो मैं आपकी क्या पूजा करूँ ? क्योंकि पुरुषोंको जो आपका दर्शन होता है, यही बड़ा अनुग्रह है ॥४८॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्रसन्नमन सुदामा मालीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको शोभायमान सुगंधित फूलोंकी माला समर्पित की ॥४९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस

मालाको पहनकर मित्रोंके सहित प्रसन्न हो सुदामा मालीको वरदान दिया ॥५०॥ और सुदामा मालीने भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यही वर मांगा कि सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति बनी रहे और आपके भक्तोंमें स्नेह और जीवमात्रमें दया रहे ॥५१॥ इस प्रकार उस मालीको मनोवांछित वरदान दे और उसके वंशमें सदा रहनेवाली सम्पत्ति दे तथा बल, आयु, यश, शोभा दे, बलदेवजीको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके घरमेंसे निकले ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां पुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ दोहा—कुब्जाको सीधी कियो, कियो शराशन भङ्ग । देखो परमोत्सव तहां, बयालीस भू-रंग ॥ श्रीशुकदेवजी

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ॥ तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥ इति तस्मै वरान् दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥ बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० पुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ व्रजन् राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम् ॥ विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥१॥ का त्वं वरोर्वेतदुहानुलेपनं कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः ॥ देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते न चिराद्भविष्यति ॥ २ ॥ सैरन्ध्र्युवाच ॥ दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ॥ मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥३॥ रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ॥ धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥

बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इसके उपरांत सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजमार्ग बाजारमें आकर ग्रहण किये चन्दनका पात्र, शोभायमान मुखवाली सामने तरुण कुबरी स्त्रीको देख हँसकर पूछा ॥१॥ कि, हे सुन्दर जङ्घावाली ! तू कौन है ? और यह चन्दन किसका है, यह हमारे सम्मुख भले प्रकार समझाकर कहो, क्योंकि जो यह उत्तम चन्दन हमको दो तो तुम्हारा अभी कल्याण होगा ॥ २ ॥ यह सुनकर कुबरी बोली कि हे सुन्दर ! मेरा नाम कुबरी है और कंसकी दासी हूँ और नित्यप्रति चन्दन घिसना यही मेरा काम है, क्योंकि मेरा घिसा चन्दन राजा कंसको अच्छा लगता है, परन्तु अब आपके विना इस चन्दनके लगानेका कोई पात्र नहीं है ॥ ३ ॥ इस प्रकार

सुन्दररूप सुकुमारी और रसिकता, हँसनि, बोलनि तथा चितवनसे मोहित हो कुबरीने श्रीकृष्ण-बलदेवके चन्दन लगाया ॥ ४ ॥ केशर मिला हुआ चन्दन सांवरे अंगमें जिस समय भगवान् श्रीकृष्णने लगाया और कस्तूरी मिला हुआ चन्दन गोरे अंगमें जिस समय बलदेवजीने लगाया उस समय दोनों भाई अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ५ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त प्रसन्न हो अपने दर्शनका फल दिखानेके लिये सुन्दरमुखी तीन स्थानसे टेढ़ी कुबरीको सूधी करनेका विचार किया ॥ ६ ॥ और फिर कुबरीके पांवोंको अपने चरणोंसे दाब दो अँगुली जिसमें ऊँची की ऐसे हाथको ठोड़ीके नीचे लगाय श्रीकृष्णने कुब्जाके देहको सूधा कर दिया॥७॥

ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना॥संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ ॥५॥ प्रसन्नो भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचि-
राननाम् ॥ ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥६॥ पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यङ्गुल्युत्तानपाणिना ॥ प्रगृह्य
चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥ सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ॥ मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रम-
दोत्तमा ॥८॥ ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् ॥ उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥९॥ एहि वीर
गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥१०॥ एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो
रामस्य पश्यतः ॥ मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥

उस समय सूधे बराबर हैं अंग जिसके, बड़े नितम्ब और स्तनवाली, ऐसी कुब्जा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हाथका स्पर्श होनेसे एक सुंदर स्त्री हो गयी ॥ ८ ॥ इसके उपरांत आप ही रूप, गुण, उदारता यह सब कुब्जामें आ गये, तब कामदेवसे पीड़ित हो वह कुब्जा दुपट्टेका छोर पकड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगी ॥ ९ ॥ कि हे वीर ! हे पुरुष श्रेष्ठ ! तुम मेरे संग चलकर मेरा भवन पवित्र करो, क्योंकि अब मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती और तुमने मेरा मन चलायमान किया है, इस लिये मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ १० ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार जब कुब्जाने कहा, तब उसी समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी और अपने मित्रोंका मुख देख कुछेक मुसकाते

हुए कुब्जासे बोले ॥ ११ ॥ कि हे सुन्दरभ्रुकुटियोंवाली ! तुम्हारी भ्रुकुटी हमारे मनको खींचती है तुम हमारा दुपट्टा क्यों खींचती हो ? मैं कंसको मार अपने सुहृदोंका कार्य सिद्ध कर मनका दुःख दूर करनेवाले तुम्हारे घर आऊँगा । क्योंकि मैं तो बालब्रह्मचारी हूँ, किसीसे जान पहिचान नहीं और हमारा यहां घर नहीं, हमें तो केवल तुम्हारा ही आश्रय है, जब तुम्हारे ही यहां न आवेंगे तो और जायँगे कहां ? ॥ १२ ॥ इस प्रकार मीठे मीठे वचन कह और कुब्जाको वहीं छोड़ आगे चले। तब बनियोंने पान, माला, चन्दन इत्यादि भेंट ले बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ १३ ॥ हे महाराज ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके कारण उत्पन्न हुए कामदेवके

एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ॥ साधितार्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ॥ १२ ॥ विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन् मार्गं वणिक्पथैः ॥ नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः ॥ १३ ॥ तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः ॥ विस्रस्तवासः कबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥१४॥ ततः पौरान् पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ॥ तस्मिन् प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ॥ वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥ १६ ॥

क्षोभसे मथुरापुरीकी स्त्रियां विह्वल हो गयीं, अर्थात् वस्त्र खुल गये, चोटी खुल गयीं, चूड़ी खिसक आयीं और जैसे कोई चित्र खैंचकर खड़ा कर देता है, उसी प्रकार खड़ी रह गयीं ॥ १४ ॥ इसके उपरांत अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मथुरावासियोंसे पूछते पूछते धनुषशालामें गये और वहां जाकर इन्द्रके धनुषके समान धरा हुआ धनुष देखा ॥ १५ ॥ हे महाराज ! यद्यपि बड़े-बड़े बलवान् पुरुष उसकी रक्षा कर रहे थे, पूजा हो रही थी, अत्यन्त जिसकी शोभा थी, परन्तु तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लोगोंके मने करने पर भी उसे

* शंका—बड़े आश्चर्यकी बात है कि, मथुराकी स्त्रियें कृष्णको देखकर कामदेवसे विह्वल हो गई और ऐसी विह्वल हो गई कि, तन मनकी कुछ भी सुधि न रही, परंतु परपुरुषको देखकर विह्वल हो जाना यह गृहस्थ स्त्रियोंका धर्म नहीं, यह धर्म तो व्यभिचारिणी स्त्रियोंका है ।

उत्तर—ब्रजमें कृष्णने गोवर्धनको उठाया उस सरीखे और बहुत काम किये उन सब कामोंको सुनकर स्मरण करके त्रास मानकर विह्वल हुई कामदेव करके विह्वल नहीं हुई मथुराकी स्त्रियां ऐसी नहीं जो पर पुरुषको देखकर विह्वल हो जातीं ।

उठा लिया ॥ १६ ॥ और लीलापूर्वक एक ही हाथसे उठाकर पलभरमें मनुष्योंके देखते-देखते बीचमेंसे खैंचे जैसे मतवाला हाथी गन्नेको तोड़ डालता है उसी प्रकार तोड़ डाला ॥१७॥ हे राजन्! जिस समय धनुष टूटा उस समय महा गम्भीर शब्द हुआ, उस शब्दसे पृथ्वी, आकाश, एवं स्वर्ग और सब दिशायें व्याप्त हो गयीं और उस शब्दको सुनकर कंसका हृदय भी अत्यन्त भयभीत हुआ ॥ १८ ॥ इसके पीछे उस धनुषके रक्षकोंने अत्यन्त क्रोधित हो अपने अपने अनुचरोंसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको "पकड़ लो पकड़ लो" इस प्रकार कहते चारों ओरसे घेर लिया ॥ १९ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी इन असुरोंको अपने मारनेके लिये आया देख

करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ॥ नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥ धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ॥ पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥ तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः ॥ ग्रहीतुकामा आववुर्गृह्यतां बध्यतामिति ॥ १९ ॥ अथ तान् दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ ॥ क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥ बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात् ततः ॥ निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसंपदः ॥ २१ ॥ तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः ॥ तेजः प्रागल्भ्यरूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ॥ कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥ २३ ॥ गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन ॥ संपश्यतां पुरुष भूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान् नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥ २४ ॥

क्रोधित हो धनुषका एक टुकड़ा हाथमें ले उन पुरुषोंको मारने लगे ॥ २० ॥ फिर कंसकी भेजी हुई सम्पूर्ण सेना मार धनुषशालासे बाहर निकल मथुरापुरीकी सम्पदा देख हर्षित होकर घूमने लगे ॥ २१ ॥ मथुरावासी नरनारियोंने भगवान् कृष्णबलदेवका अद्भुत पराक्रम और धृष्टता देख अपने मनमें जाना कि ये कोई उत्तम देवता हैं ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित! इस प्रकार कृष्ण बलदेव विचार रहे थे कि इतनेमें भगवान् सूर्य अस्त हो गये और सन्ध्या हो गयी, तब भगवान् श्रीकृष्ण बलदेव गोपोंसहित मथुरापुरीसे बाहर निकले और जहां गाड़ियें छूटी थीं वहां पहुँचे ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको व्रजसे चलते समय गोपियोंने विरहमें व्याकुल

होकर जो-जो बातें कही थीं वे सब ही श्रीकृष्णचन्द्रके अङ्गकी शोभा देख मथुरावासियोंने सत्य जानी, क्योंकि लक्ष्मीजी भी अपने भजनेवाले ब्रह्मादिकोंको छोड़ इसी रूपकी चाहना करती हैं ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त चरण धो रामकृष्ण दूध भातका भोजन कर कंसका विचार जान उस रात्रिको सुखपूर्वक वहीं रहे ॥ २५ ॥ कंस धनुषका टूटना, रक्षकोंका मारना और अपनी सेनाका वध सुनकर कि यह कृष्णका केवल खेल है, कुछ पराक्रम नहीं है ॥२६॥ ऐसा विचार कर मारे भयके उसे नींद नहीं आयी, अर्थात् महाभयभीत हुआ तब वह दुष्टबुद्धि कंस मृत्युके जतानेवाले जागतेमें सोतेमें बहुतसे खोटे स्वप्न देखने लगा ॥२७॥ दर्पण और जलमें मुख देखनेपर उसको अपना

अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ॥ ऊषतुस्तां सुखरात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥ २५ ॥ कंसस्तु धनुषो भंगं रक्षिणां स्वबलस्य च ॥ वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम् ॥ २६ ॥ दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ॥ बह्वन्याचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥२७॥ अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि ॥ असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥ २८ ॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ॥ स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विषादनम् ॥ यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥३०॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ॥ पश्यन् मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया ॥३१॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ॥ कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥

शिर नहीं दीखे, चन्द्रमा सूर्य दो दो रूप नहीं हैं, परन्तु उसे दो दो दिखायी दिये ॥२८॥ अपनी परछाहींमें छिद्र दिखे, अँगुली देकर कानमें देखा तो घू घू शब्द भी सुनायी नहीं आया, वृक्ष सोनेकेसे दिखाई देने लगे और कीच व रेतमें अपने पांवके चिह्न भी न देखे ॥ २९ ॥ इसके उपरांत यह स्वप्न देखा कि भूत प्रेत छातीसे लगाकर मिलते हैं और गधेपर चढ़ा, गुड़हरके फूलोंकी माला पहरे अकेला तेलमें भीजा, जहर खाता, नग्न वेष किये मैं दक्षिण दिशाको चला जा रहा हूँ ॥ ३० ॥ इस प्रकार स्वप्नमें और जागतेमें खोटे-खोटे शकुन देख मृत्युसे डरे कंसको रातभर चिन्ताके मारे नींद न आयी ॥ ३१ ॥ हे कुरुवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इस भांतिसे ज्यों त्यों वह रात्रि व्यतीत

हुई, प्रातःकाल हुआ, जलमें सूर्य निकला उस समय राजा कंसने मल्लोंकी कुस्ती लड़वानेके लिए बड़ा उत्सव कराया ॥ ३२ ॥ पुरुष रंगभूमिकी पूजा करने लगे, उसी समय भेरी बजने लगी, माला, पताका और वस्त्रोंकी बन्दनवारीसे मञ्चान सजाये गये ॥ ३३ ॥ और मञ्चानोंके ऊपर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जिनमें मुख्य पुरवासी तथा देशवासी थे, सुखपूर्वक आकर बैठ गये ॥ ३४ ॥ इसके उपरांत राजा कंस भी अपने प्रधान मन्त्रीको सङ्ग ले अखण्डमण्डलवाले राजाके बीचमें एक राजमञ्चान था, उसके ऊपर आकर बैठा, परंतु भयके मारे हृदय कांप रहा था ॥ ३५ ॥ नगारोंके बजते ही झटपट मल्ल खम्भ ठोक, जांघिये पहन, सिंदूरकी बिन्दी लगा, धूरी मल, छोटी-छोटी

आनर्चुः पुरुषा रंगं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ मञ्चाश्चालंकृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥३३॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ॥ यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥ ३४ ॥ कंसस्तु संवृतोऽमात्यै राजमञ्च उपाविशत् ॥ मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च ॥ मल्लाः स्वलंकृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समागताः ॥ ३६ ॥ चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च ॥ त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ॥ निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन् मञ्च आविशन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभाग० म० द० पू० कुब्जोन्नमनादिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप ॥ मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥

चुटियें, बड़े गर्व भरे अपने-अपने उस्तादोंको सङ्ग लेकर रंगभूमिमें आये ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल ये अखाड़ेमें आये और मनोहर बाजोंका शब्द सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥३७॥ इसके उपरान्त कंसके बुलाये नन्द आदिक सम्पूर्ण गोप भी राजा कंसको भेंट दे एक मञ्चानपर आकर बैठ गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कुब्जास्वरूपदानमल्लरंगोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ दोहा–मारि कुवलयापीड गज, रंगभूमि हरि जाय । वचन कहे चाणूरसों, तैंतालिस अध्याय ॥ शुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित ! श्रीकृष्णभगवान्‌ने विचार किया कि यद्यपि हमने धोबीको मार धनुष तोड़ अपना

ऐश्वर्य जताया, परन्तु तो भी हमारे माता पिताको नहीं छोड़ता और हमको मारना चाहता है, इसलिये इस मामाके मारनेमें हमें कुछ दोष नहीं है, इस प्रकार दोषके दूर करनेका विचार कर कृष्ण बलदेव दोनों भाई, जहां मल्ल खम्भ ठोक रहे थे, नगाड़े बज रहे थे, उनका शब्द सुन देखनेको गये ॥ १ ॥ फिर श्रीकृष्णने रंगभूमिके द्वारपर जाकर देखा कि कुवलयापीड़ हाथी खड़ा है और महावत उसे आगेको पेल रहा है ॥२॥ यह देखते ही शूरवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण फेंट बांध मुखपर छुटी हुई कुटिल अलकोंको सम्भाल, गलेकी लम्बी मालाको जनेऊके समान कन्धेपर डाल, मेघके तुल्य गर्जकर अत्यन्त गम्भीर वाणीसे बोले ॥ ३ ॥ हे महावत ! हाथीको हटाकर हमको शीघ्र मार्ग दे और जो नहीं हटावेगा तो अभी हाथीसहित तुझको मार यमलोकको भेज दूँगा ॥ ४ ॥ हे महाराज ! यह सुनते ही काल

रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ॥ अपश्यत् कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥२॥ बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ॥ उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥ अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् ॥ नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम् ॥४॥ एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ॥ चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम् ॥ ५ ॥ करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत् ॥ कराद् विगलितः सोऽमुं निहत्यांघ्रिष्वलीयत ॥६॥ सङ्क्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ॥ परामृशत् पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७ ॥ पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् ॥ विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ८ ॥ स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ॥ बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ९ ॥

(मृत्यु) के समान क्रोधित हो महावतने हाथीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर हूल लिया ॥ ५ ॥ हाथीने अत्यन्त शीघ्रतासे आते ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी सूँड़में पकड़ लिया, परंतु श्रीकृष्णचन्द्र भी उसकी सूँड़मेंसे फिसल और उसके मस्तकमें मुष्टिक मार पिछले पावोंमें छिप गये ॥ ६ ॥ और फिर जिस समय श्रीकृष्णको देख क्रोधित हो सूँघा सांघीकी दृष्टिवाले हाथीने इनके पकड़नेको सूँड चलायी, उस समय सूँड पकड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके पिछले पावोंसे निकल गये ॥७॥ अत्यन्त बलवान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हाथीकी पूँछ पकड़ जैसे गरुड़ सर्पको घसीटता है, उसी प्रकार पच्चीस धनुषतक लीलापूर्वक ही घसीटा ॥८॥ पूंछ पकड़े हुए श्रीकृष्णचंद्रको

पकड़नेके लिए जब दाहिनी ओर हाथी आता, तब श्रीकृष्ण उसे बांई ओर ले जाते और बांई ओर आता तो दाहिनी ओर ले जाते, अधिक क्या कहें ! जैसे गायोंके बछड़ोंके संग बालक फिरते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हाथीके पीछे फिर रहे थे ॥९॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सम्मुख आकर थप्पड़ मार दौड़कर उस हाथीको पटक दिया ॥ १० ॥ जब उसे गिरा दिया श्रीकृष्णचन्द्र भी लीलापूर्वक पृथ्वीपर गिरके अत्यन्त शीघ्रतासे खड़े हो गये, तब श्रीकृष्णचन्द्रको गिरा जान वह हाथी दांतोंसे पृथ्वीको खोदने लगा॥ ११॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जब हाथीका बल घट गया तब हाथीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और महावतने जिस समय अंकुश मारा तब वह हाथी श्रीकृ-

ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम् ॥ प्राद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदेपदे ॥ १० ॥ स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ॥ तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत् क्षितिम् ॥ ११ ॥ स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः ॥ चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद् रुषा ॥ १२ ॥ तमापतन्तमासाद्य भगवान् मधुसूदनः ॥ निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥ पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया ॥ दन्तमुत्पाटय तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् ॥ असंन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ॥ विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ ॥ १५ ॥ वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ॥ रंगं विविशतू राजन् गजदंतवरायुधौ ॥ १६ ॥

ष्णचन्द्रपर फिर झपटा ॥ १२ ॥ मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सम्मुख आते ही हाथीकी सूँड़ पकड़ पृथ्वीमें पटक दिया ॥ १३ ॥ और सिंहके समान गर्जते हुए हाथीको पावोंके नीचे दाब लीलापूर्वक उसके दांत उखाड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन दांतोंसे महावतको मारा ॥ १४ ॥ जब हाथी मर गया, तब श्रीकृष्णबलदेवजी उसे वहीं छोड़ हाथमें हाथीके दांत ले कन्धेपर धारण कर वहांसे आगे चले, उस समय रुधिर और मदकी बूँदे उनके लग रही थीं ॥ १५ ॥ और हे राजन् ! कुछेक पसीना भी उनके

* शंका—जो कोई दरिद्री भी राजाकी सभामें जाता है, तव अपने वित्तानुसार वस्त्राभूषण पहिर जाता है और शास्त्रमें तथा लोकमें इसको भी बहुत निन्दित कर्म कहते हैं कि, रक्त देहमें लगा राजाकी सभामें जाना, सो श्रीकृष्ण जगत्के ईश्वर होकर अपने देहमें रक्तके विन्दु लगाकर कंसकी सभामें क्यों आये ?

मुखकमलपर आ रहा था, इस प्रकार शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोप ग्वालोंको संग लिये हाथी दांतके शोभायमान शस्त्र धारण किये कृष्ण बलदेव दोनों भाई रंगभूमिमें पहुँचे ॥ १६ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र मल्लोंको मल्लोंके समान दृष्टि आये, मनुष्योंको अत्यंत सुंदर जान पड़े और स्त्रियोंने साक्षात् कामदेव स्वरूप समझा, दुष्ट राजाओंको कालके समान दिखायी दिये, वसुदेव देवकीने पुत्रके समान देखा, भोजपति कंसने तो यही देखा कि साक्षात् मेरी मृत्यु चली आती है, अज्ञानियोंको भयङ्कर रूप दृष्टि पड़े और ज्ञानियोंको परमतत्त्वरूप दृष्टि आये यादवोंको परम देवतारूप जान पड़े, अधिक क्या कहें जैसी जिसकी भावना थी, उसे उसी प्रकार

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ॥ मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः॥१७॥ हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ॥ कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥१८॥ तौ रेजतू रंगगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ ॥ यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥ निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम्॥ २० ॥

दिखायी दिये ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीको संग लेकर रंगभूमि पहुँचे ॥१७॥ हे राजा परीक्षित् ! कुवलयापीड हाथीको मरा देख जो किसीके जीतनेमें न आवें, ऐसे कृष्ण बलदेवको देख अत्यन्त धैर्यवान् राजा कंस भी डर गया ॥१८॥ बड़ी भुजा, विचित्र वेष, आभूषण,माला इत्यादि वस्त्रोंको धारण किये भगवान् कृष्ण बलदेव रंगभूमिमें जाकर ऐसे शोभायमान लगने लगे जैसे उत्तम रूप धारण करनेवाला नट शोभायमान लगता है, इस प्रकार अपनी कांतिसे देखनेवाले पुरुषोंके मनको चुराते थे॥१९॥ हे राजन् ! मञ्चानोंके ऊपर बैठे पुरवासी देशवासी जन पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बलदेवको देख आनन्दके वेगसे प्रफुल्लितमुख हो गये और अपने नेत्रोंसे उनके मुखकी शोभा

उत्तर–सत्य है कि जिसके शरीरमें रक्त लगा रहता है, उस पुरुषको लोकमें; शास्त्रमें और वेदमें भ्रष्ट कहते हैं,परंतु श्रीकृष्ण कंसका नाश करनेसे लिये विचारके उन्मत्त प्रमत्तकी नाई मथुराको चले गये और शूरवीरोंका शरीरमें रक्त लगाकर सभामें जाना कुछ दोष नहीं है इसलिये जगदीश्वर शरीरमें रक्त लगाकर सभामें गये ।

देखकर तृप्त न हुए ॥ २० ॥ इस प्रकार नेत्र चलाने लगे कि मानो रूपको पी जायँगे, जीभ ऐसी चलाते थे मानो चाट जायँगे, नासिका ऐसी चलाते हैं मानो सूँघ लेंगे, भुजा ऐसी चलाते हैं मानो लिपट जायँगे । जैसा श्रीकृष्णचन्द्रका रूप कानोंसे सुना था, उसी प्रकार आंखोंसे देखकर उनके रूप, गुण, माधुर्य्य, ढिठाईसे बुद्धि जिनके हो गयी, ऐसे पुरुष जैसा सुने वैसा ही आपसमें कहने लगे ॥२१॥२२॥ कि ये जो कृष्ण बलदेव हैं सो साक्षात् भगवान् हरि नारायण हैं और अपने अंश सहित इस संसारमें वसुदेवके घर अवतार लिया है॥२३॥ देखो, यह जो सांवरा बालक है, इसने देवकीसे जन्म लिया था और अबतक छिपा रहा, क्योंकि पिताने गोकुल पहुँचा दिया था, इस

पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥ जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥ २१ ॥ ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥२२॥ एतौ भगवतः साक्षाद् हरेर्नारायणस्य हि ॥ अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥२३॥ एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ॥ कालमेतं वसन् गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि॥२४॥पूतनाऽनेन नीतान्तं चक्रवातश्च दानव ॥ अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥२५॥ गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः ॥ कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ॥ वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥२७॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसित प्रेक्षणं मुखम् ॥ पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमं मुदा ॥२८॥ वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ॥ श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २९ ॥

लिए नन्दजीके घर वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इसी कृष्णने पूतना मारी और बगलेका स्वरूप धरे हुए बकासुर दैत्यको मारा, यमलार्जुन वृक्ष उखाड़े और केशी, अघासुर इत्यादिक बहुतसे दानव मारे ॥ २५ ॥ देखो जब वनमें अग्नि लगी थी, तब इसी कृष्णने गौ, ग्वाल बचाये थे, काली सर्पको दण्ड दिया और इन्द्रका मद दूर किया ॥ २६ ॥ यही सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको हाथमें लिए रहा, वर्षा, पवन, वज्रपातसे गोकुलकी रक्षाकी ॥ २७ ॥ गोपियें इस कृष्णका नित्य प्रसन्न हँसन चितवनयुक्त श्रमरहित मुख देखकर अनेक तापोंको दूर करती हैं ॥ २८ ॥ अधिक क्या कहें, इस कृष्णसे यह यदुवंश बहुत विख्यात हो सम्पत्ति, यश, बड़ाई पावेगा और इसी

कृष्णसे सज्जनोंकी रक्षा होगी, इस प्रकार वे मनुष्य परस्पर बातचीत करने लगे ॥ २९ ॥ कमलके समान नेत्र स्वरूपवान् इस कृष्णके बड़े भाई बलरामजीने प्रलम्बासुर धेनुकासुर मारे। क्यों जी! मारे तो कृष्णने, बलदेवका नाम क्यों लेते हो? देखी सुनी बातोंमें भी भेद हो जाता है ॥३०॥ हे महाराज! सब मनुष्य इस प्रकार कह रहे थे और नगाड़े बज ही रहे थे कि इतनेमें चाणूर नामक बलवान् श्रीकृष्ण बलदेवको सम्बोधन देकर बोला ॥३१॥ कि हे नन्दके पुत्र! हे राम! तुममें बल अधिक है और कुस्ती लड़ना भी भले प्रकार जानते हो यही सुनकर राजा कंसने तुम्हें बुलाया है ॥ ३२ ॥ क्योंकि प्रजा मन, कर्म, वचनसे राजाका प्रिय करे तो कल्याण प्राप्त होता है और

अयं चास्याग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः ॥ प्रलम्बो निहतो येनवत्सको ये बकादयः ॥ ३० ॥ जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ॥ कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥ हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसंमतौ॥ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२ ॥ प्रियं राज्ञः प्रकुर्वन्त्यश्श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः ॥ मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥ नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ॥ वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥ ३४ ॥ तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे ॥ भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥ ३५ ॥ तन्निशम्याब्रवीत् कृष्णो देशकालोचितं वचः ॥ नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च ॥ ३६ ॥ प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ॥ करवाम प्रियं नित्यं तन्न परमनुग्रहः ॥ ॥ ३७ ॥ बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ॥ भवेन्नियुद्धं माऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥ ३८ ॥

जो विपरीत करते हैं उनका कल्याण नहीं होता ॥ ३३ ॥ और यह बात भी प्रकट है कि प्रतिदिन बछड़ोंके चरानेवाले गोप प्रसन्न होकर ब्रजमें कुन्तीका खेल करके गाय चराते हैं ॥ ३४ ॥ इस कारण हम तुम कुस्ती लड़कर राजा कंसका प्रिय करें तो राजा कंस प्रसन्न होंगे और फिर सब प्राणी हमारे ऊपर प्रसन्न होंगे॥ ३५ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चाणूरका वचन सुनकर और कुस्ती लड़ना अपने योग्य जान बड़ाई करके उस समयके उचित वाक्य कहने लगे ॥ ३६ ॥ कि जिस कंसकी तुम प्रजा हो, उसी कंसकी हम वनमें रहनेवाली प्रजा हैं, इसलिए राजा कंसका नित्य प्रिय करे इसीमें हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥ परंतु देखो हम बालक हैं इसलिए हम अपने

समानके बालकोंसे कुस्ती लड़ेंगे, जैसा उचित हो उसी रीतिसे कुस्ती लड़ो; क्योंकि मल्लोकी सभामें अधर्म नहीं होना चाहिए ॥३८॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर चाणूर बोला कि तुम बालक नहीं हो और बलियोंमें बलवान् हो, बलदेव भी बालक नहीं हैं, किशोर नहीं हो क्योंकि हजार हाथियोंका बल रखनेवाला कुवलयापीड हाथी तुमने लीलापूर्वक ही मार डाला ॥३९॥ इसलिए हमारे संग तुम कुस्ती लड़ो, यह अनीति नहीं है। हे वृष्णिवंशमें जन्मे कृष्ण! मेरी तुम्हारी और बलराम मुष्टिककी कुस्ती हो ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम० पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कुवलयापीडवधो, रंगभूमिप्रवेशनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥दोहा—कंसादिकको वध कियो, माइन

चाणूर उवाच ॥ न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ॥ लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥ ३९ ॥ तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै ॥ मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं चर्चित संकल्पो भगवान् मधुसूदनः ॥ आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥ हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः ॥ विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥ अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ॥ शिरःशीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः ॥ उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥ ४ ॥

ज्ञान बताय। दश किये पितु मातुको, चौंवालिस अध्याय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित्! इस प्रकार निश्चय संकल्प कर नीलाम्बर पीतांबरके कच्चे नांध, खम्भे ठोंककर खड़े हो गये। इसके उपरांत मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण जो चाणूरके सम्मुख हुए और रोहिणीनन्दन बलरामजी मुष्टिकसे जुटे ॥ १ ॥ हाथोंसे हाथ, पांवसे पांव मिलाय परस्पर जीतनेकी इच्छासे एक एकको बलात्कार खैंचने लगे ॥२॥ अरत्निमें अरत्नि[1] मिलाय, घुटुंएसे घुटुएं मिलाय, शिरसे शिर, छातीसे छाती मिलाकर कृष्ण और चाणूर दोनों परस्पर कुस्ती लड़ने लगे ॥ ३ ॥ चारों और घूमना, धक्का देना, परिरम्भण अर्थात् हाथसे बिडारना, अपवातन अर्थात्

१ अरत्ति–समुष्टि हस्त अर्थात् कोहनीसे बीच की अंगुलीतक।

नीचे पटक देना, उत्सर्पण अर्थात् छोड़कर पीछेसे आगे जाना, अपसर्पण अर्थात् पीछे जाकर खड़ा होना, इस प्रकार दाव पेंच कर करके लड़ने लगे ॥ ४ ॥ उत्थापन अर्थात् पांव और घुटुएं मिलाकर गिरते हैं, उनका उखाड़ देना, चालन अर्थात् बँधे दावको दूर करना, स्थापन अर्थात् हाथ पांव पकड़कर मिला देना, इस प्रकार परस्पर देहको पीड़ा देने लगे ॥ ५ ॥ इस प्रकार इनका युद्ध देखकर वहांकी बैठी हुई स्त्रियें परस्पर कहने लगीं कि देखो यह कृष्ण तो निर्बल है और चाणूर सबल है, यह विचार वे स्त्रियें अत्यन्त दयाको प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥ इन राजसभामें बैठनेवालोंको बड़ा अधर्म होगा क्योंकि राजाके देखनेको कहीं निर्बल सबलकी कुस्ती कराई जाती है ! ॥ ७ ॥

उत्थांपनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ॥ परस्परं जिगिषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥ तद्बलाबलवद् युद्धं समेताः सर्वयोषितः ॥ ऊचुः परस्परं राजन् सानुकम्पा वरूथशः ॥ ६ ॥ महानयं बताऽधर्म एषां राजसभासदाम् ॥ ये बलाबलवद् युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥ क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ ॥ क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥ धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ॥ यत्राधर्मस्समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥९॥ न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ॥ अब्रुवन् विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम् ॥ वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥ ११ ॥

भला विचारो तो सही, कि कहां तो वज्रसे कठोर अङ्गवाले पर्वतके समान ऊँचे ऊँचे सब मल्ल और कहां अति सुकुमार कोमल अङ्ग जिनकी यौवन अवस्था भी अभी प्राप्त नहीं हुई ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र ? ॥ ८ ॥ इस सभामें इस समय निश्चय धर्मनाश हो रहा है, इस कारण इस सभामें बैठना उचित नहीं क्योंकि जहां धर्मका नाश हो वहां कभी न बैठे ॥९॥ विवेकी पुरुषको ऐसी सभामें जाना योग्य नहीं है, क्योंकि दोषोंको स्मरण कर बातको जानकर जो चुप बैठा रहे तो दोष लगे और किसीकी झूठी सच्ची कहे तो दोष लगे, अथवा हम किसीकी भली जाने न बुरी ऐसे कहे तो भी दोषका भागी हो इस कारण सभामें जाना योग्य नहीं है॥१०॥ सत्य बोलनेवालेको दुःख नहीं होता, सत्ययुक्त

पुरुषको कोई विघ्न दोष नहीं सता सकते * शत्रुके चारों ओर दौड़ धूप करते श्रीकृष्णके मुखकी शोभा देखो, कुस्तीमें जोर करनेसे इनके मुखपर पसीनेकी बूँदें आ रही हैं, जैसे कमलकोशके ऊपर ओसकी बूँदें पड़ती हैं ॥ ११ ॥ अरुण नेत्र बलदेवजीके मुखकी शोभा देखो, मुष्टिकके ऊपर क्रोध आ रहा है तो भी मुसकान सहित है इसलिए सुन्दर लगते हैं ॥१२॥ भूमिमें व्रजभूमि परमपवित्र है, क्योंकि जिसके वनके चित्र विचित्र फूलोंको धारण किये पुराणपुरुष भगवान श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके सहित मनुष्यरूपमें छिपकर गौवोंको चराते

कि न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ॥ मुष्टिकं प्रतिसामर्ष हाससंरम्भशोभितम् ॥ १२ ॥ पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिंगगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ॥ गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयाञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥ १३ ॥ गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ॥ दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुरापमेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ १४ ॥ या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेंखेंखनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ॥ गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५ ॥

समय बांसुरी बजाते खेलते फिरते हैं, जिनके चरणोंका महादेव और लक्ष्मीजी भी पूजन करती हैं ॥ १३ ॥ बड़ा आश्चर्य है, गोपियोंने ऐसा क्या तप किया है, जिस कारण जिससे श्रेष्ठ कोई नहीं, और जिसके समान कोई नहीं जिससे अधिक कोई नहीं, एवं जो आभूषण वस्त्र विना ही सुन्दर लगता है, यश लक्ष्मी ऐश्वर्य इनका एकान्त स्थान, अर्थात् सर्वदा जिसमें बास करें ऐसे प्यारेके स्वरूपको दृष्टिसे देखती हैं ॥ १४ ॥ हे सखियो ! ब्रजबालायें धन्य हैं ! जो गोपी गाय दुहाने के समय, धान छरते समय, दूध बिलोते समय, बालकोंको झुलाते

* दृष्टांत—एक राजाने एक बाजार बनवाया और कहा कि जो वस्तु यहां वेचनेको लावेगा और सन्ध्यातक न विकेगी उसे में स्वयं ले लूंगा। इस प्रकार वह बाजार विख्यात हो गया। एक दिन एक लुहार लोहेकी शनैश्चरकी मूर्ति वनाकर लाया, एक लाख रुपया उसका मोल मांगा और कहा कि जिसके यहां यह मूर्ति रहेगी उसके यहां द्रव्यादिकुछ न रहेगा। अब उस अनिष्ट कारक मूर्तिको किसीने न लिया। सन्ध्या समय राजाने देखा कि बड़ी भीड़ हो रही है, कारण पूछते ही राजाने विचारकर उस मूर्तिको ले लिया और लाख रुपये दे दिये। जब राजाने घरमें मूर्ति रक्खी तो पहले लक्ष्मी राजासे बोली—महाराज ! मैं जाती हूँ। राजा बोला क्यों ? लक्ष्मी बोली— जहां शनैश्चर देव रहते हैं वहां हमारा क्या काम ? राजाने कहा—जाओ। इसी प्रकार नीति, साम, दान, दण्ड, भेद सब रूप धर कर आये और राजाने जाने दिया। पीछेसे जब सत्यदेव आये तो राजासे कहकर जब जाने लगे तब राजाने हाथ पकड़कर कहा—कि आपके रखनेको तो हम शनैश्चर देवको लाये हैं, तुम कैसे जाते हो ? सत्यदेवसे कुछ उत्तर न बन पड़ा और रह गये, अतः सत्यके रहनेसे नीति, लक्ष्मी आदि सब लौट आये और सत्यके प्रभावसे शनैश्चर राजाका कुछ भी बिगाड़ न कर सके।

समय और चुपाते समय, घरोंका काम काज करते समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त होकर उनके गुण गाती हैं, उस समय उनका मन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें ही लग जाता है और प्रेमानंदसे उनके नेत्रोंमें आंसू आ जाते हैं ॥१५॥ प्रातःकाल जब ब्रजसे गौ चरानेको जाते हैं और सन्ध्या समय जब गायोंको ले बांसुरी बजाते हुए आते हैं, उस समय वे महाभाग्यवती गोपियें बांसुरीका शब्द सुन शीघ्र अपने घरसे निकल मार्गमें आये, सुन्दर मुसकान दयापूर्वक चितवनयुक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका दर्शन करती हैं ॥ १६ ॥ हे भरत

प्रातर्व्रजाद् व्रजत आविशतश्च सायं गोभिस्समं क्वणयतोऽस्य निशाम्य वेणुम् ॥ निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरि पुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥१६॥ एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ॥ शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान् भरतर्षभ ॥ १७ ॥ सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ ॥ पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८ ॥ तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युततरौ ॥ युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ १९ ॥ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ॥ चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥ २० ॥

वंशावतंस परीक्षित् ! इधर तो स्त्रियें परस्पर इस प्रकार बातें कर रही थीं और उधर योगके ईश्वर सबका दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शत्रुओंके मारनेका विचार करने लगे ॥ १७ ॥ भयसहित स्त्रियोंकी बातें सुनकर पुत्रोंमें स्नेहके शोकसे व्याकुल और पुत्रोंके बलको नहीं जाननेवाले माता पिता वसुदेव देवकी अत्यन्त दुःखित हुए ॥ १८ ॥ अनेक प्रकार कुस्तीके दांव पेचोंसे जैसे श्रीकृष्ण और चाणूर लड़ते थे उसी प्रकार महात्मा बलदेव और मुष्टिक लड़ने लगे ॥ १९ ॥ वज्रपातके समान कठोर भगवान्के अंगके प्रहारसे

शंका—जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हुए उसी समय वसुदेव देवकीको ज्ञान दिया और वसुदेव देवकी श्रीकृष्णके समुद्र सरीखे चरित्र और कर्मोंको जानते थे और सुन भी रक्खा था, फिर वसुदेव देवकी जानबूझकर क्यों अज्ञानी हो गये ?

उत्तर—श्रीकृष्णके माता पिता अज्ञानी-नहीं हुए, पुत्रके मोहमें व्याकुल हो गये, पुत्र की मोहरूप अग्निसे भस्म हो गये; इसलिये अज्ञानियोंकी नाईं हो गये क्योंकि संसारमें पुत्रका मोह बड़ा भारी है, पुत्रके मोहमें बुद्धि ठिकाने नहीं रहती ।

चाणूरका अंग चुरकुट हो गया जिससे वह बहुत दुःखित हुआ ॥ २० ॥ इसके उपरांत शिकरेके वेगके सामान चाणूरने दोनों हाथकी मुष्टि बांध क्रोधमें भर, ऊपरको उछल भगवान् वासुदेवकी छातीमें एक घूँसा मारा ॥ २१ ॥ हे राजन्! जिस प्रकार हाथी फूलोंकी मालाके लगनेसे नहीं चलायमान होता, वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्र उसकी मुष्टिकसे चलायमान न हुए, इसके उपरांत अत्यन्त क्रोधित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चाणूरके दोनों हाथ पकड़ अनेक वार घुमाकर बड़े वेगमे पृथ्वीपर पटक दिया, गिरते ही उसके प्राण निकल गये और गहने, केश माला इत्यादि सब बिखर गये। गिरते समय ऐसा शब्द हुआ कि मानो इन्द्रध्वज गिरा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसी प्रकार मुष्टिक, कि जिसने पहले बलदेवके मुष्टिक प्रहार किया था, उसे बलदेवजीने थाप मारकर गिरा दिया ॥२४॥ मुष्टिक, कंपित हो मुखसे रुधिरको

स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ॥ भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥ २१ ॥ नाचलत् तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ॥ बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन् हरिः ॥ २२ ॥ भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ॥ विस्रस्ताऽऽकल्पकेशस्रगिंद्रध्वज इवापतत् ॥ २३ ॥ तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ॥ बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दित ॥ व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तो रामः प्रहरतां वर ॥ अवधील्लीलया राजन् सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६ ॥ तर्ह्येव हि शलः कृष्णप्रपदाहतशीर्षकः ॥ द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥२७॥ चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ॥ शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥

वमन करता पीड़ित हो प्राण निकल जानेसे जैसे पवनका मारा वृक्ष उखड़कर गिर पड़ता है, उसी प्रकार गिर गया ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित! इसके उपरांत दौड़ते हुए कूट मल्लको मारनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने लीलापूर्वक तिरस्कार कर बाई मुष्टिसे मार डाला ॥२६॥ शल, तोशलने अपने मनमें विचार किया कि दण्डवत्‌के बहाने चरण पकड़कर पटक देंगे, परंतु भगवान् तो सबके बाहर भीतरकी जाननेवाले हैं, यह जिस समय दण्डवत् करनेको आये; उस समय बलवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एक लात ऐसी मारी जिसके लगनेसे शिर फट गया, इस प्रकार शल, तोशल दो खण्ड विदीर्ण होकर दोनों पृथ्वीपर गिर गये ॥ २७ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, इत्यादि मुख्य

मुख्य मल्ल जब मारे गये, तब वहां और जो मल्ल उपस्थित थे, वे अपना प्राण बचानेके लिए भाग गये ॥२८॥ बराबरके गोपोंको अखाड़ेमें खैंच श्रीकृष्ण बलदेव उनके सङ्ग विहार करने लगे, उस समय बाजे बज रहे थे और श्रीकृष्णचन्द्रने नूपुर नृत्य करनेसे परम सुहावन बन रहे थे ॥२९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीके चरित्र देख कंसके विना सब मथुरावासी प्रसन्न हो गये, मुख्य मुख्य ब्राह्मण तथा सज्जन पुरुष "साधु साधु" ऐसे कहकर स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ जब बड़े बड़े मल्ल मर गये, और कितने ही भाग गये तब भोजवंशियोंके-राजा कंसने नगाड़े बन्द करा दिये ॥ ३१ ॥ और क्रोधित होकर कहने लगा कि कुटिलकर्मा वसुदेवके पुत्रोंको पुरसे निकाल दो और

गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ ॥ २९ ॥ जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ॥ ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधुसाध्विति ॥३०॥ हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ॥ न्यवारयत् स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥ निस्सारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ॥ धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ॥ उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ॥ लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥ ३४ ॥ तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ॥ मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥३५॥ तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे ॥ समग्रहीद् दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥

इनका धन छीन लो, कुटिलबुद्धि वसुदेवको बांध लो ॥३२॥ खोटी बुद्धिवाले वसुदेवको जल्दी मारो और इसके उपरांत शत्रुसे मिलनेवाले पिता उग्रसेनको भी अनुचरोंसहित बांध लो ॥३३॥ इस प्रकार जब राजा कंस बकने लगा, तब अत्यन्त क्रोधित हो अव्यय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र धीरेसे उछल ऊँचे मञ्चानपर चढ़ गये॥३४॥तब धैर्यवान् अत्यन्त अभिमानी राजा कंसने अपने मृत्युस्वरूपको आता हुआ देख आसनसे उठकर ढाल तलवार ग्रहण की ॥३५॥ तलवार हाथमें ले आकाशमें जैसे शिकरा पक्षी फिरता है, उसी प्रकार दाईं बाईं ओर जल्दी जल्दी फिरनेवाले कंसको असह्य और उग्र तेजवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, तार्क्ष्यका पुत्र गरुड़ जैसे सर्पको पकड़ लेता है उसी प्रकार पकड़

लिया ॥३६॥ फिर उसकी फेंट तथा केश पकड़ ऊँचे मञ्चानपरसे रंगभूमिमें पटक दिया और इसके ऊपर सब जगत्के आश्रय और स्वतन्त्र कमलनाभ भगवान् स्वयं कूद पड़े ! केश पकड़नेका कारण यह है कि कंसने देवकीके केश पकड़े थे, इसलिए उसका बदला लिया (हे राजा परीक्षित् ! तीनों लोकोंका एक मात्र निवासस्थान और स्वाधीन श्रीकृष्णजीके द्वारा नीचे गिरा कर दबाये जानेपर कंसने भी निमेषमात्रमें प्राण त्याग दिये) ॥ ३७ ॥ इसके उपरांत सिंह जैसे हाथीको खींचता है, उसी प्रकार जब जगत्के देखते मृतक हुए कंसको पृथ्वीमें घसीटने लगे। हे नरेंद्र ! उस समय समस्त प्रजामें बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ ॥३८॥ कंस प्रतिदिन चलायमान

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रंगोपरि तुङ्गमञ्चात् ॥ तस्योपरिष्टात् स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥ ३७ ॥ (कंसोऽपि कृष्णेन जगत्त्रयैकनिवासभूतेन निपात्य सोऽधः ॥ तेनात्मतन्त्रेण निपीडितोऽसुं तत्याज राजन्निमिषान्तरेण ॥) तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेमं जगतो विपश्यतः ॥ हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥ स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपञ्श्वसन् ॥ ददर्श चक्रायुधमग्रतो यतो तदेव रूपं दुरवापमाप ॥ ३९ ॥ तस्याऽनुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः ॥ अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥ तथाऽतिरभसांस्तांस्तु संयत्तान्रोहिणीसुतः ॥ अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥ ४१ ॥ नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ॥ पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीत्या शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥

चित्तसे जल पीते, बात कहते, चलते, सोते, और श्वास लेते चक्र आयुधवाले भगवान्का शत्रु भावसे ध्यान करता था, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत उस कंसके कंक, न्यग्रोधस आदि लेकर छोटे आठ भाई अत्यन्त क्रोधित हो कंसका बदला लेनेके लिए दौड़कर आये ॥४०॥ उसी समय रोहिणीके सुत बलरामजीने क्रोधित हुए हाथोंमें शस्त्र लेकर आये हुए कंसके भाइयोंको सिंह जैसे पशुओंको मारता है उसी प्रकार परिघ उठाकर मार डाला ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें नगाड़े बजने लगे और भगवान्की विभूति जो ब्रह्मा महादेवादिक देवता हैं, सो प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे, स्त्रियें

नृत्य करने लगीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! इसके उपरांत पतिके मरणसे अत्यन्त दुःखित हो नेत्रोंमें आंसू भर कंसकी स्त्रियें शिर पीटती जहां उसकी लोथ पड़ी थी, वहां आयीं ॥४३॥ वीरशय्यामें पड़े पतिका आलिंगन कर शोकातुर स्त्रियें बारंबार नेत्रोंसे आंसू बहाय बहाय पुकार पुकारकर विलाप करने लगीं ॥४४॥ हा नाथ ! हे प्राणपति ! हे धर्मके जाननेवाले ! हे करुणानाथ ! हा दीन वत्सल ! तुम आप मरकर घर बारसहित और बालकों सहित हमको क्यों मार गये ॥४५॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम विना हम विधवा होकर शोभायमान नहीं लगतीं उसी प्रकार तुम्हारे विना मथुरापुरी भी शोभा नहीं पाती, क्योंकि सम्पूर्ण मङ्गल उत्सव इसमेंसे दूर हो गये ॥४६॥ निरपराध प्राणियोंसे तुमने

तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ॥ तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ शयानान् वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः ॥ विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथ वत्सल ॥ त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ॥ न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥ ४६ ॥ अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहमुल्बणम् ॥ तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम् ॥४७॥ सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ॥ गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित् सुखमेधते ॥४८॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ॥ यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥ ४९ ॥ मातरं पितरं चैव मोचयित्वाऽथ बंधनात् ॥ कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसाऽऽस्पृश्य पादयोः ॥ ५० ॥

बड़ा द्रोह किया, इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई जो मरे पड़े हो। प्राणियोंसे वैर करके कौन पुरुष सुख पाता है ? ॥ ४७ ॥ क्योंकि इस संसारमें समस्त प्राणियोंके उत्पत्ति, पालन और नाशकर्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं, इसलिए जो इनकी अवज्ञा करता है; वह कभी सुख नहीं पाता ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा कंसकी स्त्रियोंका समाधान कर कंसकी दाहादिक क्रिया करायी ॥ ४९ ॥ इसके उपरांत माता पिता देवकी वसुदेवको कंसके बन्दीखानेसे छुड़ाया

और रामकृष्ण दोनों भाइयोंने माता पिताके चरणोंमें शिर लगा कर प्रणाम किया ॥५०॥ माता पिता, देवकी वसुदेव प्रणाम करते पुत्रोंको जगत्के ईश्वर जान भयभीत होकर उनसे नहीं मिले ॥५१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कंसादिवधवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥ दोहा–पितु नन्दादिक शान्तकर, उग्रसेन दियो राज। बहुरि गये गुरुके भवन, पैंतालिस सुखसाज ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप श्रेष्ठ परीक्षित्! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने माता पिताको ज्ञान प्राप्त हुआ जान विचारा कि यह ज्ञान अभी ठीक नहीं, इसलिए सब लोगोंको मोहित करनेवाली अपनी माया फिर फैलायी॥१॥यादव श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी को

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥ कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शंकितौ ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥ माभूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥ उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः ॥ प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥२॥ नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि ॥ बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥३॥ न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदंतिके ॥ यां बालाः पितृगेहस्था विदन्ते ललिता मुदम् ॥ ४ ॥ सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः ॥ न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ॥ वृत्तिं न दद्यात् तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥ ६ ॥

संग लेकर माता पिताके पास आये और विनयपूर्वक नम्र हो, हे माता! हे पिता! इस प्रकार आदरपूर्वक प्रसन्न होकर कहने लगे ॥२॥ हे पिता! सर्वदा तुम्हें चाहना ही बनी रही और हम पुत्रोंसे बाल्य अवस्था, पौगण्ड अवस्था तथा किशोर अवस्थाका सुख कभी तुमको न हुआ ॥३॥ दैवके मारे तुम्हारे निकट वास भी न कर सके, पिताके घर बालक रहते हैं और उनका लालन पालन होता है, आनन्द पाते हैं, हमको कुछ भी प्राप्त न हुआ ॥४॥ धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष सर्व पदार्थ जिससे हों ऐसा यह देह जिन माता पिताने उत्पन्न किया उनकी यह मरणधर्मा मनुष्य सौ वर्षतक सेवा करे, तो भी उनसे उऋण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ जो पुत्र समर्थ होकर देहसे अथवा धनसे माता, पिताको जीविका

नहीं देता, उसे परलोकमें यमके दूत उसका मांस उसे ही काट काटकर भक्षण कराते हैं ॥६॥ माता, पिता, वृद्ध, सुशीला स्त्री, पुत्र, बालक, गुरु, ब्राह्मण अथवा और कोई शरण आवे इनका जो मनुष्य भरण पोषण न करे, तो वह मृतकके समान है ❋ ॥ ७ ॥ असमर्थ और कंसके भयके मारे नित्य चंचल मन होनेके कारण तुम्हारी सेवा बिना किये हमारे दिन व्यर्थ बीत गये ॥ ८ ॥ हे पिता ! हे माता ! पराये अधीन होनेके कारण हमसे तुम्हारी सेवा न बनी और दुष्ट हृदय कंससे अत्यन्त दुःखित रहे इसलिये अब हमपर तुम क्षमा करनेके योग्य

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ॥ गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन् मृतः ॥ ७ ॥ तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ॥ मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसाः वामनर्चतोः ॥ ८ ॥ तत् क्षंतुमर्हथस्तात मातर्नो परतन्त्रयोः ॥ अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुहृदा भृशम् ॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ॥ मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥ सिञ्चन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ॥ न किंचिद्रूचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान् देवकीसुतः ॥ मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥

हो, सो क्षमा कीजिये ॥९॥ इस प्रकार मायासे मनुष्य रूपधारी विश्वके आत्मा हरिके वचनसे मोहित होकर देवकी, वसुदेव पुत्रोंको गोदमें बैठाय परमानन्दको प्राप्त हुए ॥१०॥ हे राजा परीक्षित ! स्नेहके पाशसे बँधे (मोहित) देवकी वसुदेव आंसूकी धाराओंसे कृष्ण बलदेवको भिजोते हुए कुछ भी न बोले ॥११॥ देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार माता पिताको सावधान कर नाना उग्रसेनको याद-

---

शंका—श्रीकृष्णने कहा कि, वृद्ध पिताकी सेवा करना चाहिये, परंतु शास्त्रमें ऐसा कहीं नियम नहीं है कि, वृद्धपिताकी सेवा करना और युवक पिताकी सेवा न करना, श्रीकृष्णके वचनसे ऐसा जान पड़ता है कि, समर्थ भी हो तो भी युवा पिताकी सेवा न करना, समर्थ हो व असमर्थ हो वृद्ध पिताका सेवा करना ऐसा भगवान्के वचनसे विदित होता है, फिर भगवान्ने ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर—"मातरं पितरं वृद्धम्" इस श्लोकमें वृद्धका अर्थ बूढ़ेपनका नहीं है, वृद्ध बूढ़ेका नाम है, वृद्धका अर्थ श्रीकृष्णने ऐसा किया है कि, सर्वधर्मसे पिता वृद्ध कहिये श्रेष्ठ अथवा पंडित और धर्मशास्त्र भी धर्मोंसे पिताको बड़ा कहते हैं, पितासे माता बड़ी है, ऐसा धर्मशास्त्रका मत जानकर श्रीकृष्णचन्द्रने वृद्ध पिताका पूजन करनेके लिये कहा था, यह नहीं कहा था कि, बूढ़े पिताका सेवन करना और युवा पिताका सेवन न करना।

वोंका राजा बनाया ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि हे महाराज ! हम तुम्हारी प्रजा हैं, सो हमें तुम आज्ञा करनेके योग्य हो और यदुवंशियोंको ययातिका शाप है, इस कारण यादवोंका सिंहासन पर बैठना और राज्य करना योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ मैं सेवकके समान तुम्हारे निकट सदा उपस्थित रहूँगा, बड़े बड़े देवादिक तुमको भेंट देंगे और राज्य देंगे, इसमें कहना ही क्या है ॥ १४ ॥ और कंसके डरके मारे जो अपनी जातिके यदु, वृष्णि, अधक, मधु दाशार्ह कुकुरादिक भाग गये ॥ १५ ॥ उनको बुलाकर और विदेशमें वसनेके कारण जो यादव कृश हो रहे थे, उनका सत्कार कर बहुतसा धन दे तृप्त कर सब विश्वके कर्त्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने अपने घरोंमें बसाया ॥ १६ ॥ कृष्ण

आह चास्मान् महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ॥ ययातिशापाद्यदुभिर्नाऽऽसितव्यं नृपासने ॥१३॥ मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ॥ बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १४ ॥ सर्वान्स्वज्ञातिसंबन्धान् दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ॥ यदुवृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥ सभाजितान् समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ॥ न्यवासयत् स्वगेहेषुवित्तैः सन्तर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥ कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ॥ गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥ वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् ॥ नित्यं प्रमुदितं श्रीमत् सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥ तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः ॥ पिबन्तोऽक्षमुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥ अथ नन्दं समासाद्य भगवान् देवकीसुतः ॥ संकर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ॥ पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥ २१ ॥

बलदेवकी भुजासे रक्षित हो पूर्ण मनोरथ पाके पापोंको दूर कर वे यादव घरोंमें निवास करने लगे ॥ १७ ॥ और नित्य आनन्दसे पूर्ण शोभायुक्त दयासहित मंदहास्यपूर्वक चितवनयुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलका दर्शन करके परमानन्दित होते थे ॥१८॥ हे राजन् ! भगवान् मुकुन्दके मुखकमलके अमृतको पीकर उस समय वृद्ध भी तरुणावस्थाको प्राप्त हो अत्यन्त बलवान् हो गये ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इसके उपरांत भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी नन्दरायके पास आकर मिले और यह वचन बोले ॥ २० ॥ हे पिता ! तुम स्नेहियोंने हमारा पोषण किया, बहुत लाड़ प्यार किया अधिक क्या कहें, माता पिताकी अपने पुत्रोंमें अधिक प्रीति होती है, सो

तुमने उनसे भी अधिक प्रीति की॥ २१ ॥ वही पिता है, वही माता है, जो पराये पुत्रको अपने पुत्रके समान पोषण करे और पोषण करनेमें जिनका सामर्थ्य न हुआ ऐसे हमारे माता पिताने हमको बालकपनसे ही छोड़ दिया ॥ २२ ॥ हे पिता ! अब तुम ब्रजको जाओ, हम भी बन्धु बांधवोंका प्रिय करके स्नेहसे दुःखी जातिवाले और तुम्हारे देखनेको पीछेसे आवेंगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रने ब्रजवासियोंसहित नन्दरायजीको समझाकर और अनेक भांतिके वस्त्र आभूषण तथा सोने, चांदीके वर्त्तन देकर बड़े आदरपूर्वक उनका पूजन किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुन नन्दरायजी कृष्ण बलदेवको छातीसे लगा, प्रेमसे व्याकुल

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ॥ शिशून् बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥ यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ॥ ज्ञातीन् द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥ २३ ॥ एवं सान्त्वय्य भगवान् नन्दं सव्रजमच्युतः ॥ वासोऽलंकारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ॥ पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥२५॥ अथ शूरसुतो राजन् पुत्रयोः समकारयत् ॥ पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्द्विजसंस्कृतिम् ॥२६॥ तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः ॥ स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौम मालिनीः ॥ २७ ॥ या कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ॥ ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ २८ ॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ॥ गर्गाद्यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥

हो, नेत्रोंमें आंसू भर, सम्पूर्ण ब्रजवासियोंको सङ्ग ले ब्रजको चले ॥ २५ ॥ इसके उपरांत हे राजन् ! शूरसेनके पुत्र वसुदेवजीने ब्राह्मण पुरोहितको बुलाकर पुत्रोंका यथायोग्य द्विजन्मा संस्कार कराया ॥२६॥ फिर श्रृंगार की हुई रेशमी झूल व सुवर्णकी माला पहने अनेक गायें बछड़ों सहित ब्राह्मणोंको दान कीं ॥ २७ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने राम कृष्णके जन्म नक्षत्रके समय जिन गायोंका मनमें संकल्प किया था और कंसने अधर्मसे हर ली थीं उतनी ही गौ स्मरण करके ब्राह्मणोंको दान कीं ॥ २८ ॥ और सुव्रती कृष्ण बलदेव द्विजन्मा संस्कार पाकर यदुकुलके पुरोहित गर्गाचार्यसे गायत्रीका उपदेश ले ब्रह्मचर्य व्रतमें रहने लगे ॥ २९ ॥ यद्यपि

सम्पूर्ण विद्या जाननेवाले सर्वज्ञ अर्थात् सब बातके जाननेवाले कृष्ण बलदेव सब जगत्के ईश्वर थे परन्तु तो भी स्वतःसिद्ध निर्मल ज्ञानको मनुष्योंके समान चेष्टा करनेके कारण गुप्त रखते थे ॥ ३० ॥ इसके उपरांत कृष्ण बलदेव गुरुकुलमें वास करनेकी इच्छासे कश्यप गोत्री उज्जैनपुरीके वासी सांदीपनि गुरुके पास गये, जो प्रकाश्य नामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ ३१ ॥ जितेंद्रिय कृष्ण बलदेव भले प्रकार गुरुके पास आकर बड़े आदर सत्कारसे भक्तिपूर्वक जैसे नारायणकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार गुरुकी सेवा करने लगे ॥ ३२ ॥ शुद्ध भक्तिपूर्वक सेवासे सन्तुष्ट हुए द्विजन्माओंमें श्रेष्ठ गुरुजीने श्रीकृष्ण बलदेवको शिक्षादिक छः अंग और उपनिषदोंसहित समस्त वेद पढ़ाये ॥ ३३ ॥ तथा मन्त्र

अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ॥ काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥ यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ॥ ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच वेदानखिलान् सांगोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥ सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा ॥ तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ३४ ॥ सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ॥ सकृन्निगदमात्रेण तौ सञ्जगृहतुर्नृप ॥ ३५ ॥ अहोरात्रैश्चतुष्षष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः ॥ गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥ द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम् ॥ संमन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयां बभूव ह ॥ ३७ ॥

और देवताके ज्ञानसहित शस्त्र चलाना, धनुर्वेद और धर्मशास्त्र, राजनीति, मीमांसादिक, तर्कविद्या तथा शत्रुसे मिलाप करना, युद्ध करना, उसके ऊपर चढ़ जाना, निकट जाकर रहना, अपनी ओर तोड़ लेना, मेल करना यह छः प्रकारकी राजनीति पढ़ायीं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! सब मनुष्योंमें तथा उत्तमोंमें उत्तम सब विद्याओंके चलानेवाले सावधान कृष्ण बलदेवने गुरुके विना बताये ही सम्पूर्ण विद्या सीख ली ॥ ३५ ॥ चौंसठ रात्रियोंमें गाना, बजाना, नृत्य करना आदि चौंसठ कला सीखीं । हे राजन् ! जब विद्या पढ़ चुके तब कृष्ण बलदेव दोनों भाई गुरुजीसे "गुरुदक्षिणाकी आज्ञा करो" इस प्रकार कहने लगे ॥ ३६ ॥ तब सांदीपनिने कृष्ण बलदेवकी अद्भुत महिमा देख, कि

मनुष्योंमें ऐसी चमत्कारी कहां ? स्त्रीसे परामर्श कर प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें डूबकर जो पुत्र मर गये थे, सो स्त्रीके कहनेसे उनको ही मांगा ॥ ३७ ॥ " तथास्तु " इस प्रकार कह अत्यन्त पराक्रमी, बड़े रथी कृष्ण बलदेव रथमें बैठ प्रभासक्षेत्रमें पहुँच समुद्रके किनारे जाकर एक क्षण बैठ रहे, तब समुद्र कृष्ण बलदेवको आया जान उनकी पूजा लेकर आया ॥ ३८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस समुद्रसे कहने लगे कि जो हमारे गुरुके बालक तूने यहां बड़ी लहरोंसे डुबा लिये हैं, वे गुरुके पुत्र लादे ॥ ३९ ॥ तब समुद्र बोला कि हे देव ! मैंने तो तुम्हारे गुरुके पुत्र नहीं डुबाये, वरन् मेरे भीतर रहनेवाला शत्रुरूप धारण किये एक बड़ा दैत्य है ॥

तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ॥ वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिन्धुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥ ३८ ॥ तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ॥ योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥ ३९ ॥ समुद्र उवाच ॥ नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ॥ अन्तर्जलचरः कृष्ण शंखरूपधरोऽसुरः ॥४०॥ आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ॥ जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥ तदङ्गप्रभवं शंखमादाय रथमागमत् ॥ ततः संयमिनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥ ४२ ॥ गत्वा जनार्दनः शंखं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ शंखनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥ ४३ ॥ तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ॥ उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ॥ लीला मनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥

॥ ४० वह हर ले गया है और निश्चय उसके पास है । यह सुनते ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शीघ्रतासे जलमें घुस पञ्चजन दैत्यको मार डाला, परन्तु उसके पेटमें बालक नहीं देखा ॥ ४१ ॥ इसके उपरांत उस दैत्यके अंगमेंसे शङ्ख ले श्रीकृष्णचन्द्र रथपर आये और वहांसे यमराजकी अति प्यारी संयमनीपुरीमें आये ॥ ४२ ॥ और वहां जाकर बलदेवजीसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शङ्ख बजाया, तब प्रजाका दण्ड देनेवाला धर्मराज शङ्खका शब्द सुन ॥ ४३ ॥ कृष्ण बलदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करने लगा और सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे हाथ जोड़कर बोला कि हे विष्णु भगवन् ! लीलापूर्वक आपने मनुष्यका रूप

धारण किया है, सो तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? ॥ ४४ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे महाराज ! यहां जो आप गुरुपुत्र ले आये हैं सो ला दीजिये । तब यमराजने कहा कि वह अपने कर्मोंसे बँधे पड़े हैं, कैसे लाऊँ ? तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि उन्हें मेरी आज्ञा हुई है कुछ मेरी आज्ञासे कर्म बलवान् नहीं है ॥ ४५ ॥ तब 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर यमराजने गुरुपुत्र ला दिये; इसके पीछे यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्ण बलदेव उन्हें ले अपने गुरुको देकर बोले कि और वर मांगो ॥४६॥ तब गुरु कहने लगे कि हे पुत्र ! तुमने गुरुसेवा भलीभांति की और तुम सरीखों का जब मैं गुरु हुआ तब मेरे कौन बातकी चाहना शेष रही ? ॥४७॥ हे वीर ! अब तुम अपने घरको जाओ, इस लोक और

श्रीभगवानुवाच ॥ गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् ॥ आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥ तथेति तेनोपनीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ॥ दत्त्वास्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥ सम्यक् संपादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ॥ को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥४७॥ गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ॥ छन्दांस्ययया तयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥ ४८ ॥ गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ॥ आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥ समनन्दन्प्रजा सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ अपश्यन्त्यो बह्वहानि नेष्टलब्धधना इव ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दादिसान्त्वनोग्रसेनाभिषेकगुरुकुलवासगुरुपुत्रानयनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥ शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

परलोकमें तुम्हारी पवित्र कीर्ति हो, तुम्हारे वेद नवीन पढ़े हुएके समान बने रहें ॥४८॥ हे नृप श्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार गुरुसे आज्ञा पाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भाई पवनके समान शीघ्रगामी मेघके तुल्य गर्जनेवाले रथमें बैठ अपने घरको आये ॥ ४९ ॥ बहुत दिनोंसे नहीं देखनेके कारण राम कृष्णका दर्शन कर प्रजा बड़े आनन्दको प्राप्त हुई, जैसे गया हुआ धन मिलनेसे आनन्द होता है ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गुरुपुत्रानयनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ दोहा—छियालीस अध्यायमें उद्धव ब्रजहि पठाय । शोक यशोदा नन्दको, मेटो ज्ञान सिखाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! यादवोंमें श्रेष्ठ

श्रीकृष्णके प्रिय मन्त्री सखा अर्थात बृहस्पतिके शिष्य बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ जो उद्धवजी थे ॥ १ ॥ उन्हें शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एकांतमें बुला हाथ पकड़कर कहा ॥ २ ॥ हे उद्धव हे साधु ! तुम व्रजको जाओ, हमारे माता पिताको प्रसन्न करो और गोपियोंको जो मेरे बिछुड़नेमें कष्ट हुआ है सो उसे मेरा सन्देशा ले जाकर दूर करो ॥ ३ ॥ मुझमें जिनके मन और प्राण लग रहे हैं, मेरे लिये पति पुत्रादिक त्याग दिये हैं, मैं ही प्यारा जिनके आत्मा हूँ सो मुझमें मन लगाकर रहती हैं, मेरे लिये जिन्होंने इस

तमाह भगवान् प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥ गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ॥ गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ ३ ॥ ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ॥ ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥ मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ॥ स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहोत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥ ५ ॥ धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथंचन ॥ प्रत्यागमन संदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥

लोक तथा परलोकके जितने सुखके उपाय हैं, सब त्याग दिये हैं, सो उनको मैं सुख देता हूँ ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! उनका प्यारा मैं जबसे दूर आया तबसे वह गोकुलकी स्त्रियें मेरी सुधि करके बिरहसे मेरी चाहके कारण विवश हो मोहित हो जाती हैं * ॥ ५ ॥ क्योंकि जब मैंने उनसे कह दिया था कि मैं शीघ्र ही आऊँगा, इस कारणसे उसी प्रकार वे गोपियें प्राण धारण किये रहीं सो भी महाकष्टसे, यदि उनका

* शंका—व्रजसे गोकुलसे मथुरापुरीका चार कोशका अन्तर है और मथुरासे व्रज भी चारही कोश है, परन्तु व्रजको श्रीकृष्ण कभी नहीं गये और गोपी भी मथुराको कभी नहीं गई गोपियें दही, छांछ, माखन बेचनेको भी मथुरा पुरीको कभी नहीं गई। छाछ बेचनेको आती तो भी मोहन प्यारेकी मुलाकात हो जाती, हे स्वामिन् ! परस्पर मित्रसे मिलनेके लिये स्त्री या पुरुष हजारों कोश चले जाते हैं और कृष्ण और गोपियोंकी ऐसी परम मित्रता थी फिर चार कोशके अन्तर मिल भेंटें क्यों नहीं ? इसका क्या कारण ! इधर तो कृष्णके मनमें मोहकी ज्वाला भड़क रही थी और उधर गोपियोंके हृदय में मोहकी ज्वाला भड़क रही थी फिर क्या कारण जो कोई न तो मथुरासे गया, न कोई गोकुलसे आया ! यह बड़ा सन्देह है ?

उत्तर—श्रीकृष्ण लोकनिन्दासे डरे। व्रजमें जो लीला हमने करी तब हम बालक थे। अब हमारी युवा अवस्था हुई जो गोपी व्रजसे हमारे पास आवेंगी अथवा व्रजको हम जायंगे तो पहिले के समान चरित्र मथुरामें तथा व्रजमें करने पड़ेंगे और वह चरित्र हम यहां करें तो संसार में निंदा होगी, इस बातका डर करके मायासे गोपियोंको मोहित कर दिया। जब गोपी मोहको प्राप्त हो गईं तो मनही मनमें विना कृष्ण प्यारेके मनमें परिताप तो किया पर मथुराकी ओरको पांव न रक्खा और भगवान् लोकलाजसे गोकुलको नहीं गये ।

आत्मा उनके शरीरमें रहता तो दग्ध हो जाता, वह तो मुझमें लीन है इसी लिये वह प्राण धारण कर रही है ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब उद्धवजी बड़े आदरपूर्वक स्वामीके सन्देशेको ले रथमें बैठ नन्दरायजीके गोकुल को चले ॥ ७ ॥ और सूर्यके छिपते ही शोभायमान नन्दरायजीके गोकुलमें पहुँचे, तब सन्ध्या समय आती हुई गायोंके खुरोंकी रेणुसे उद्धवजीका रथ ढक गया ॥ ८ ॥ पुष्पवती गायोंके लिये चारों ओरसे मतवाले बैलोंके युद्धका शब्द वहां हो रहा था और ऐनोंके भारसे व्यायी हुई गायें दौड़ दौड़कर अपने बछड़ोंके पास आती थीं ॥ ९ ॥ जहां तहां सफेद गायें, गायोंके बछड़े कूदते फांदते फिरते हैं, गायोंके दुहनेका शब्द जहां तहां हो रहा है, कोई कहता था "लाओ" कोई कहता था "देओ" ऐसा कोलाहल जहां तहां मच रहा

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त उद्धवो राजन् संदेशं भर्तुराहृतः ॥ आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥ प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ ॥ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥ वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः ॥ धावन्तीभिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥ इतस्ततो विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः ॥ गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निस्स्वनेन च ॥ १० ॥ गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ॥ स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥ ११ ॥ अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ॥ धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥ सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मखण्डैश्च मंण्डितम् ॥ १३ ॥ तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ॥ नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियाऽर्चयत् ॥ १४ ॥

था और बांसुरी बजानेका भी शोर हो रहा था ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीके मंगलरूप कर्मोंको बनी ठनी गोपियें गाती हुई अत्यन्त शोभायमान लगती थीं ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, अभ्यागत, गौ, ब्राह्मण, पितर, देवता इनके पूजनकी सामग्री जहां तहां धरी थी, धूप हो रही थी, दीपक जल रहे थे, फूल धरे थे, गोपोंके घरोंमें पूजा होनेसे यह व्रज मनोहर हो रहा था ॥ १२ ॥ सब ओरसे फुलवारी फूल रही थी, पक्षी बोल रहे थे, भौंरे गुञ्जार रहे थे, राजहंस और कारण्डव पक्षी जहां तहां बैठे थे, ऐसे कमलोंके समूहसे वह व्रज शोभायमान हो रहा था ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्रिय मित्र उद्धवजीको आया जान नन्दरायजी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक

मिले और श्रीकृष्णचन्द्रके पाससे आये हैं यह जानकर ईश्वरबुद्धिसे पूजन किया ॥ १४ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त श्रेष्ठ सामग्रियोंका भोजन कराके शय्यापर सुखपूर्वक पौढ़ाय चरण दाब मार्गका खेद मिटाय उद्धवजीसे नन्दरायजी बोले ॥ १५ ॥ हे बड़भागी उद्धव ! कहो शूरसेनके पुत्र, हमारे सखा वसुदेवजी पुत्रोंसहित कुशलपूर्वक हैं ? कंसके बन्दीखानेसे छूटे हैं ? भाई बन्धु हितकारियोंसहित प्रसन्न हैं ? ॥ १६ ॥ और पापी कंस समस्त सेवकोंसहित मारा गया यह बड़ा ही मङ्गल हुआ, क्योंकि वह कंस धर्म स्वभाववाले यादवोंसे सदा वैर करता था ॥ १७ ॥ हे उद्धवजी ! और यह भी कहो कि वे कृष्ण भी कभी हमारी और अपनी माताकी सुधि करते हैं तथा सुहृद्, सखा,

भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ॥ गतश्रमं पर्यपृच्छत् पादसंवाहनादिभिः ॥१५॥ कच्चिदंग महाभाग सखा नः शूरनंदनः ॥ आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥१६॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना॥ साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ १७ ॥ अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ॥ गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥१८॥ अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान् सकृदीक्षितुम ॥ तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥ दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ॥ दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥२०॥ स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम् ॥ हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः॥२१॥सरिच्छैलवनोद्देशान् मुकुन्दपदभूषितान् ॥ आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥ २२ ॥

एवं गोपियोंकी सुध करते हैं और जिसके आप ही रक्षक हैं ऐसे ब्रजकी भी कभी सुध करते हैं ? और गौ, ब्राह्मण, गोवर्द्धनपर्वतकी भी कभी सुध करते हैं ? ॥ १८ ॥ गायोंके हित करनेवाले श्रीकृष्ण जब कभी अपने भाई बन्धुके देखनेके लिये आवेंगे तब सुन्दर नासिका सुन्दर मुस्कान चितवनयुक्त उनके मुखका दर्शन करेंगे ॥१९॥ दावाग्निसे, पवनसे, इन्द्रकी वर्षासे, विषयुक्त सर्पसे, अघासुरसे एवं बड़े बड़े मृत्युओंसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने हमारी रक्षा की ॥ २० ॥ हे उद्धवजी ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रम और लीलापूर्वक कटाक्षभरी चितवन, हँसन और बोलने की सुध करते हैं, तब हमारी सम्पूर्ण क्रिया शिथिल हो जाती हैं ॥२१॥ मुकुन्दके चरणोंके चिह्नयुक्त पर्वत, नदी, वन और

उनके खेलनेके स्थानोंको जब देखते हैं तब हमारा मन कृष्णमय हो जाता है ॥ २२ ॥ देवताओंका कार्य करनेके लिये इस संसारमें कृष्ण अवतार लेकर आये हैं, उन्हें मैं देवताओंमें उत्तम मानता हूँ और मैंने बड़ा गम्भीर गर्गाचार्यका वचन भी ऐसे ही सुना है ॥२३॥ दश हजार हाथियोंका बल रखनेवाले कंस और मल्लोंको वैसे ही कुवलयापीड हाथीको सिंह जैसे पशुओंको मारता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक ही मार डाला ॥ २४ ॥ फिर बड़ा भारी तीन तालके समान धनुष एक हाथसे उठाकर जैसे हाथी लठियाको तोड़ डालता है उसी प्रकार तोड़ डाला और सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको बायें हाथकी अँगुलीपर धारण किया ॥ २५ ॥ प्रलम्बा-

मध्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ॥ सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २३ ॥ कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ॥ अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥ तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ॥ बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५ ॥ प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ॥ दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ॥ अत्युत्कण्ठोऽभवत् तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥ यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ॥ शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८ ॥ तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ॥ वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥ उद्धव उवाच ॥ युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ॥ नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥

सुर, धेनुकासुर, तृणावर्त्त, बकासुर आदि और भी जो जो सुर असुरोंके जीतनेवाले दैत्य थे; उन्हें श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक ही मार डाले ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कृष्णमें प्रेमबुद्धिवाले नन्दरायजी इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सुधि करके आंखोंमें आंसू भर गद्गदकण्ठ प्रेमके भावमें व्याकुल होकर चुप हो गये ॥ २७ ॥ यशोदाने जो ऐसे वर्णन किये जाते श्रीकृष्णके सुन्दर चरित्र श्रवण किये तो स्नेह स्तनोंमें दूध उमड़ आया और नेत्रोंसे आंसू बहने लगे ॥ २८ ॥ इस प्रकार नन्दराय और यशोदाका भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परम अनुराग देख उद्धवजी नन्दजीसे बोले ॥ २९ ॥ कि हे मान देनेवाले नन्दजी ! इस संसारमें देहधारि-

योंके मध्यमें निश्चय तुम प्रशंसाके योग्य हो, क्योंकि जो सबके गुरू नारायण हैं, उनमें ऐसी बुद्धि लगायी है ॥३०॥ यह जो कृष्ण बलदेव हैं सो विश्वके लिये उपादान कारण हैं; इसीसे पुरुष प्रकृतिरूप हैं, सब प्राणियोंमें प्रवेश करके अनेक प्राणियोंके अनेक प्रकारके ज्ञानके साक्षी और अनादि हैं ॥ ३१ ॥ प्राण छूटते समय यह पुरुष क्षणभर शुद्ध मनको जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लगा शीघ्र ही कर्मोंकी वासनाओंको छोड़ सूर्यके समान प्रकाशवान ब्रह्मरूप होकर परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ जब सबके आत्मा कार्य और कारणसे मनुष्यरूप धरे परिपूर्ण नारायणमें अतिशय करके तुम भक्ति करते हो, तो फिर तुमको क्या करना शेष रहा ? ॥ ३३ ॥ अच्युत भग-

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ॥ अन्वीय भूतेषुः विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् ॥ निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥३२॥ तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ॥ भावं विधत्तां नितरां महात्मन् किं वाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ॥ प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान् सात्वतां पतिः ॥३४॥ हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रदीपं सर्वसात्वताम् ॥ यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥ मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके ॥ अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः ॥ नोत्तमो नाधमो वाऽपि स मानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७ ॥ न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ॥ नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥३८॥

वान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्र ही व्रजको आवेंगे, क्योंकि वे भक्तोंका पालन करनेवाले हैं इस लिये तुम्हें और यशोदाको वे थोड़े ही दिनोंमें आकर आनंद देंगे ॥३४॥ सब यादवोंके वैरी कंसको रंगभूमिमें मार तुम्हारे पास आकर श्रीकृष्णचन्द्रने जो वचन कहा था, उसे अवश्य सत्य करेंगे ॥३५॥ हे बड़भागियो ! अब तुम कुछ खेद मत करो, कृष्णको अपने पास ही देखोगे, क्योंकि जैसे लकड़ीमें ज्योति रहती है उसी प्रकार सब प्राणियोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रहते हैं ॥३६॥ श्रीकृष्णचन्द्रको न कोई प्यारा है, न कोई कुप्यारा है, न कोई उत्तम है, न कोई अधम है, न कोई समान है, न विषम है और न उन्हें अभिमान है किन्तु वे तो समदृष्टि हैं ॥३७॥ न उनके माता है, न पिता है, न स्त्री है,

भा. द. पू. न पुत्रादिक हैं; न उनके देह हैं और उनका जन्म भी नहीं है ॥३८॥ इन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म भी नहीं हैं, क्योंकि वह तो संसा-
॥१६६॥ रमें देव, मनुष्य, नृसिंहादिकोंकी जो जोनि हैं, उनमें खेलनेके लिये और साधु पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये प्रकट होते हैं॥ ३९ ॥ निर्गुण भगवान् सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीन मायाके गुणोंको अंगीकार करते हैं और निर्गुणसे अलग अजन्मा भगवान् क्रीड़ा करके विश्व को उत्पन्न, पालन तथा संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे बालक चाईं माईं खेलता फिरता है तब उसकी दृष्टि फिरती है और उससे पृथ्वी फिरती सी दिखलाई देती हैं इसी प्रकार चित्त जो कर्त्ता है उनमें अहंकारसे आत्मा भी कर्त्तासा दिखाई देता है ॥४१॥ यह भगवान् श्रीकृष्ण-

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ॥ क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ ४० ॥ यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ॥ चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥ युवयोरेव नैवायमात्मनो भगवान् हरिः ॥ सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥४२॥ दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत स्थानुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ॥ विनाऽच्युताद् वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ ४३ ॥ एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नंदस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ॥ गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥ ४४ ॥ ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजूरज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः ॥ चलन्नितम्बस्तनहारकुंडलत्विषत्कपोलारुणकुङ्कुमाननाः ॥ ४५ ॥

भा॰ टी॰ चन्द्र तुम्हारे ही पुत्र नहीं हैं, वरन् सबके पुत्र हैं, आत्मा हैं पिता हैं माता हैं और ईश्वरोंके ईश्वर हैं ॥४२॥ जो कुछ दीखता है और जो कुछ
अ॰ ४६ हो चुका और जो होता है और जो होगा और जो स्थावर जंगम हैं, जो कुछ बड़ा छोटा है सो सब श्रीकृष्णचन्द्रके विना अतिशय करके कहनेके योग्य नहीं है । परमार्थरूप श्रीकृष्ण हैं, वे ही सर्वरूप हैं ॥४३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुल भूषण परीक्षित् ! इसी प्रकार वार्ता करते करते सब रात्रि बीत गयी और गोपियें प्रातःकालको उठ, दीवे बाल, देहलियोंका पूजन कर दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥ दीवोंसे प्रकाशमान् मणियोंके जड़ाऊ गहनोंसे उस समय वे गोपियें अत्यन्त शोभायमान लगने लगीं, नेतियोंके खैंचनेसे भुजाओंके चूड़ी

कंकड़ हिल रहे हैं नितम्ब हिलते जाते हैं, स्तनोंपर हार भी हिलता है, कुण्डलोंसे प्रकाशमान कपोल और अरुण केशरकी खौर मुखपर लगी है ॥ ४५ ॥ कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र जब ब्रजबालाओंने गाया, तब वह गीत स्वर्गतक पहुँच गया और दहीके मथनेका शब्द भी उस गीतमें मिल रहा था, उन गोपियोंके गीतोंसे दिशाओंके सब अमंगल दूर हो जाते थे ॥ ४६ ॥ भगवान् सूर्यके उदय होनेपर नन्दरायजीके दरवाजेपर सुनहरी साजका रथ खड़ा देखकर यह किसका रथ है " इस प्रकार ब्रजवासी नर नारी कहने लगे ॥ ४७ ॥ कि क्या कंसके कार्यका साधक अक्रूर आया है ? जो कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मथुरा ले गया है, फिर अपने स्वामीको मरवाकर अब क्यों आया ? अब क्या हमें ले जाकर हमारे मांसके पिंड बनाकर देगा ? इस प्रकार गोपियें आप-

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद् ध्वनिः ॥ दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥४६॥ भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः ॥ दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥४७॥ अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ॥ येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥४८॥ किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम् ॥ इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात् कृताह्निकः ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ॥ पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं परिमृष्टकुण्डलम् ॥१॥ शुचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ॥ इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥२॥

समें बातें कर ही रही थीं कि इतनेमें ही उद्धवजी संध्योपासनादि नित्यकर्म करके आये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां नन्दशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ दोहा—उद्धव सैंतालीसमें, पाय कृष्ण आदेश । गोपिनको जाके दियो, तत्त्वज्ञान उपदेश । श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! लम्बी भुजा, नवीन कमलसे नेत्र, पीतांबर पहने कमलकी माला धारण किये, प्रकाशमान मुखारविन्द, स्वच्छ कानोंमें कुण्डल पहने, कृष्णके अनुचर उद्धवजीको देख ब्रजकी स्त्रियोंको आश्चर्य प्राप्त हुआ और परस्पर कहने लगीं ॥ १ ॥ कि सुन्दररूप यह कौन है ? कहांसे आया है ? भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकासा वेष

है, वैसे ही गहने पहन रहा है, इस प्रकार सब गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका भक्त जान उद्धवजीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २ ॥ और अत्यन्त अधीनतासे नम्र हो लाजभरी हँसन, चितवन तथा मीठी वाणीसे सत्कार कर एकांत आसनपर बैठे उद्धवजीको श्रीकृष्णचन्द्रके पाससे संदेशा लेकर आये जान वह गोपियें पूछने लगीं ॥ ३ ॥ कि हमें जान पड़ता है कि तुम श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक हो और माता पिताके प्रसन्न करनेको तुम्हें श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है ॥ ४ ॥ क्योंकि इस ब्रजमें और कोई ऐसा नहीं है, जो उन्हें स्मरण आवे और माता पिताका तो स्नेह बड़े वैराग्यवान् पुरुषपर भी नहीं छूट सकता ॥ ५ ॥ इसी कारण औरोंसे यहां अपने कार्यके लिये मित्रता जनायी, जबतक काम रहा तबतक तो मित्रता रखी, जैसे पुरुष स्त्रियोंसे प्यार करता है और भौंरा फूलोंसे प्यार रखता

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ॥ रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ॥ भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥ अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ॥ स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥ अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् ॥ पुंभिः स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥ निस्स्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ॥ अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७ ॥ खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ॥ दग्धं मृगास्तथाऽरण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥८॥ इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ॥ कृष्णदूते व्रजंयाते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥

है, यह स्वार्थकी प्रीति है ॥ ६ ॥ यद्यपि उन श्रीकृष्णचन्द्रने हमसे प्रीति की थी, परंतु तो भी दरिद्री पुरुषको जैसे वेश्या त्याग देती है, प्रजा असमर्थ राजाको त्याग देती है और दक्षिणा पाकर पुरोहित जैसे यजमानको त्याग देता है ॥ ७ ॥ पक्षी जैसे फलरहित वृक्षको छोड़ देते हैं, अभ्यागत भोजन करके जैसे गृहको त्याग देते हैं जार पुरुष भोग करके जैसे स्त्रीको त्याग देता है उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमको त्यागकर चले गये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दूत उद्धवजी जिस समय ब्रजमें आये उसी समय गोपियोंकी वाणी, देह, मन इत्यादि गोविन्दमें जा लगे, अधिक क्या कहें लौकिक व्यवहार खानपानादिक

भी सब छूट गये ॥ ९ ॥ अपने प्यारके कर्मोंको गाने लगीं और भगवान् केशवमूर्तिकी बाल अवस्था तथा तरुण अवस्थाके जो चरित्र थे, उनको यादकर, लाज त्याग, रोती हुई उद्धवजीसे पूछने लगीं ॥ १० ॥ और कोई एक गोपी उद्धवजीका स्वरूप देख, श्रीकृष्णके संगका ध्यानकर भौंरेको देख, उसे प्यारेका भेजा हुआ दूत जान यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगी, अर्थात भौंरेके बहाने उद्धवजीसे कहने लगी ॥ ११ ॥ गोपी बोली कि हे मधुप ! हे कपटी मित्र ! हमारे चरणोंका स्पर्श मत कर, क्योंकि भौंरों का देह तो काला और मुख पीला होता है और तेरे तो सौतके कुचोंसे लगी पुष्पोंकी मालाकी केशर डाढ़ी मूछोंमें लगी है, जो तू स्पर्श करेगा तो हमें स्नान करना पड़ेगा । यदि कहो कि मुझे तो तुम्हारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है, सो तुम जाकर मथुराकी ही स्त्रियोंको प्रसन्न करो, जैसे तू

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः ॥ तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययो ॥ १० ॥ काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ॥ प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ गोप्युवाच ॥ मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ॥ वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥ सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ॥ परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ॥ विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥

हमारे पास आया है, इसी प्रकार यादवोंकी स्त्रियोंके पास भी गया होगा, परंतु यादवोंकी सभामें इस बातकी हँसी हुई होगी कि कृष्णका दूत ऐसा निर्लज्ज है ॥ १२ ॥ जैसा तू है वैसाही तेरा स्वामी है; जैसे तू फूलोंकी सुगन्ध ले उसी समय उनको छोड़ देता है; उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी मोहित करनेवाला अपने अधरोंका अमृत एक बार पिलाकर हमको त्याग दिया । परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि लक्ष्मी उनके चरणकमलका कैसे सेवन करती हैं ? अनुमान होता है कि श्रीकृष्णके मीठे-मीठे वचनोंसे उनका चित्त हर गया होगा, इसलिये वे पड़ी रहती हैं ॥ १३ ॥ हे भ्रमर ! तू हमारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्ण चरित्र क्यों गाता है, हमने तो घर इत्यादि भी

त्याग दिया है, श्रीकृष्णकी सखी मथुराकी जो स्त्रियें हैं उनके आगे उनका प्रसंग गा, जिनकी कामाग्नि वे शांत करते हैं, वे प्यारी सखियें तुझे रीझकर कुछ देंगी ॥ १४ ॥ हे कपटी ! कपटभरी रुचिर हँसीवाले श्रीकृष्णचन्द्रकी भ्रुकुटीकी मरोड़ ऐसी है कि स्वर्ग, पृथ्वी और पातालकी स्त्रियें भी उन्हें दुर्लभ नहीं हैं । लक्ष्मीजी जिनके चरणकी सेवा करती हैं, वहां हमारी क्या चल सकती है परन्तु तो भी हमने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उत्तमश्लोक नाम सुना है, सो जब हम गरीबिनियोंकी सुध लेंगे, तब वह नाम रहेगा, नहीं तो जाता रहेगा ॥ १५ ॥ अपने शिरको मेरे पांवोंसे उठा ले, क्यों कि मैं तेरी सम्पूर्ण बात जानती हूँ, तू मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे दूतकर्म सीखकर चतुर हो गया है देखो हमने इस संसारमें श्रीकृष्णचन्द्रके लिये पति, पुत्र, लोक, परलोक सब छोड़ दिया और हमें वे छोड़कर चले गये । अब उनसे हमें क्या मेल मिलाप करना ? इस प्रकार गोपियें कहने लगीं ॥ १६ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पहले कर्मोंकी सुध करके कहने लगीं कि

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ॥ चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥ विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात ॥ स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥ १६ ॥ मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ॥ बलिमपि बलिमत्त्वाऽवेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथाऽर्कः ॥ ॥ १७ ॥

हमको श्रीकृष्णसे भय लगता है; क्योंकि पहले अयोध्यामें राजा दशरथके पुत्र रामचन्द्र हुए तो सुग्रीवकी ओर होकर वधिकके समान वालिको मारा, व्याध तो मांस खानेके लिये मारता है परन्तु इन्होंने तो व्यर्थ ही मारा, बन्दरका कोई मांस नहीं खाता है, दुर्वादलश्यामके सुंदर रूपपर रीझकर रावणकी बहन शूर्पणखा आयी तो लक्ष्मणको सिखा स्त्रीके वश हो उसके नाक कान कटवा लिये । फिर वामन अवतार लेकर काकके समान आचरण कर राजा बलिकी भेंट पूजा ले उसीको बांध दिया । इस कारण इस कालेकी मित्रतासे अघा गयीं, अब कभी भूलकर भी कालोंसे मित्रता न करेंगी । तब उद्धवजी बोले कि मैं जिस समयमें आया हूँ, तुम उनकी ही बातें कर रही हो, तो गोपी बोली कि जैसे उनमें गुण हैं उसी प्रकार यह अवगुण है, यद्यपि उनको दुःखदायी जानती हैं, परंतु तो भी उनकी बातोंका छूटना तो

हमसे महाकठिन है ॥ १७ ॥ जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लीलाचरित्ररूपी अमृतका कानोंसे एक कणका भी स्वाद लिया है, वे राग, द्वेष त्याग असत्यके तुल्य हो दुखःरूप पुत्र पौत्रादिकोंको त्याग भोगोंको छोड़ पक्षीके समान घर घर भीख मांगते फिरते हैं ॥ १८॥ जैसे अज्ञानी कृष्णसार हरिणीकी बधिकके गीतसे मोहित होकर घायल हो जाती हैं, उसी प्रकार हमने कपटी श्रीकृष्णका वचन सत्य मानकर यह देखा, जिनके नखोंके स्पर्शसे हमें भी कामदेवकी पीड़ा उत्पन्न हुई, इसलिये हे दूत ! उस कपटीकी बात जाने दे और बात कह ॥ १९ ॥ हे प्यारे सखा ! क्या तू फिर आया ? तुझे प्यारे कृष्णने भेजा है, इस कारण हे दूत ! तू पूजा करनेके योग्य है और जो

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनिष्टाः ॥ सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इव विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥ १८ ॥ वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ॥ ददृशुरसकृदेतत् तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥ प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ॥ नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥ अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ॥ क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ॥ सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥

तुझे इच्छा हो सो वर मांग, क्या लक्ष्मीका सङ्ग न छोड़नेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास हमें ले चलना चाहता है ? परन्तु कैसे ले जायगा ? क्योंकि उनके वक्षस्थल में तो लक्ष्मीजी सङ्ग ही रहती हैं, इसलिये हमारा क्या प्रयोजन है ? ॥ २० ॥ हे सौम्य ! भला श्रीकृष्णचन्द्र तो अभी मथुरामें वास करते हैं, कभी उन्हें अपने माता पिता नन्द यशोदा आदिका भी स्मरण आता है और कभी अपने बंधु बांधवोंकी भी याद करते हैं, कभी गोपियोंका भी स्मरण करते हैं और कभी हमारी बात भी चलाते हैं, अगरके समान सुगन्धवाली भुजा कभी हमारे शिर पर भी आकर धरेंगे ? ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेव जी बोले कि हे 'राजा परीक्षित् ! इस प्रकार उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहना

गोपियोंकी सुन भगवान् श्री कृष्णचन्द्रके सन्देशोंको समझाने लगे ॥ २२ ॥ उद्धवजी बोले कि हे गोपियो ! तुमने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाया है इसलिये तुम निश्चय कृतार्थ हो गयीं और सम्पूर्ण लोकोंमें तुम्हारा यश होगा ॥ २३ ॥ क्योंकि दान, व्रत, तप होम, जप, यज्ञ; वेद-पाठ, इंद्रियोंका रोकना, और अनेक प्रकारके कल्याणके उपाय सब करनेका फल यही है, जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति हो ॥ २४ ॥ बड़े मुनीश्वरोंको दुर्लभ भक्ति तुमने उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें की, यह बड़ा ही मङ्गलरूप है ॥२५॥

उद्धव उवाच ॥ अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ॥ वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २३ ॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ॥ भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥ दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान्स्वजनान् भवनानि च ॥ हित्वावृणीत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥ सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ॥ विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥ श्रूयतां प्रियसंदेशो भवतीनां सुखावहः ॥ यमादायागतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः ॥ २८ ॥

पति, पुत्र, देह, भाई बन्धु और घरोंको त्याग परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको तुमने अपना पति बनाया यह बहुत बड़ा मंगल हुआ ॥२६॥ हे बड़भागिनियो ! इद्रियोंकी जिनमें गम नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें विरहसे एकान्तभक्ति तुम्हें उत्पन्न हुई; यह तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया ॥ २७ ॥ हे मङ्गलरूपिणियो ! तुमको सुख देनेवाले प्यारेका सन्देशा कहता हूँ सो सुनो, श्रीकृष्ण

* शंका–गोपियोंने क्या बड़ी भक्ति कृष्णमें की थी कि, जिस भक्तिकी प्रशंसा उद्धवजीने करी, क्या ऐसी भक्ति योगीलोग नहीं कर सकते ? यद्यपि कोई कहें कि पति आदि सब परिवारसे कपट करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रीति गोपियोंने करी, तो कुटुंबसे कपट करना यह कौनसा उत्तम कर्म है ? कपटको तो मुनि लोग क्या सब ही लोग बुरा कहते हैं ?

उत्तर–कपट करके जो ऊपरसे नवधा भक्ति भी करे सो भक्ति नहीं, वह तो धर्मके काटनेके लिये कतरनी हैं,मनुष्यके ऊपर तो भक्तिका लक्षण एक भी नहीं दीख पड़ै और मनमें सब भक्तिके लक्षण होंय वह भक्ति मुक्तिको देनेवाली है, गोपियोंने ऊपरसे तो निन्दारूप कर्म किये और मनमें भक्तिका लक्षण करती थीं, इसलिये उद्धवने कहा कि, गोपियोंने जो भक्ति भगवान् की है सो भक्ति मुनिजनोंको दुर्लभ है।

चन्द्रके रहस्यकार्यके करनेवाले सन्देशेको लेकर मैं आया हूँ ॥ २८ ॥ उद्धवजी गोपियोंसे भगवान्‌ने जो श्रीमुखसे वचन कहे थे सो कहने लगे । श्रीभगवान्‌ने उपदेश किया है कि सबका उपादानकारण मैं हूँ, सो मुझसे तुम कभी दूर नहीं हो, जैसे आकाश, पवन जल, पृथ्वी, तेज ये पञ्चतत्त्व समस्त प्राणियोंकी देहमें रहते हैं उसी प्रकार मन, बुद्धि, प्राण, इंद्रिय और गुण इनका आश्रय मैं हूँ, ॥ २९ ॥ अपनेमें अपनेसे अपनेको उत्पन्न करता हूँ और अपनी मायाके प्रभावसे पञ्चभूत इंद्रियें, तीनों गुण इनरूप जो अपनपो है इसी लिये सृष्टिको उत्पन्न, पालन और नाश करता हूँ ॥ ३० ॥ यहां यह शंका है कि आत्मा पञ्चभूतरूप हो तो उसे पञ्चभूतोंके संग दोष लगाता है. इसका उत्तर देते हैं कि आत्मा तो शुद्ध है, क्योंकि मायाके गुणोंमें जाता है, सबसे अलग और ज्ञानरूप है; अहंकारके कारण जाननेमें नहीं आता,

श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित् ॥ यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ॥ तथाऽहं च मनः प्राणभूतेन्द्रियगुणात्मना ॥ २९ ॥ आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ॥ आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥ ३० ॥ आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तो गुणान्वयः ॥ सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ ३१ ॥ येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत मृषास्वप्नवदुत्थितः ॥ तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥ एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् ॥ त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥ ३३ ॥ यत् त्वहं-भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ॥ मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥

आत्माकी न्यारी अवस्था है, शुद्धता कैसे ? तो कहते हैं, सुषुप्ति–स्वप्न, जाग्रत ये जो मनकी वृत्ति हैं उनसे प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥ जैसे जागता हुआ मनुष्य स्वप्नको झूठा ही जानता है उसी प्रकार पंडितजन जिनको झूँठा मानते हैं ऐसे विषयोंका जिनसे चिंतवन किया जाता और चिंतवन करते हैं उन्हीं लोगोंपर असर पड़ता है, उस मनको आलस्य त्यागकर रोकना ॥ ३२ ॥ चाहिये जब जिस मनु-ष्यका मन रुक जाता है तब वह पुरुष कृतार्थ हो जाता है और यह कहते हैं कि वेद पढ़नेका, अष्टांगयोग करनेका, अनात्माके विचार करनेका त्याग, सब इंद्रियोंका जीतना, सत्य बोलना, इत्यादि कर्मोंसे विवेकी पुरुषोंसे मन रुकता है, यही फल है, जैसे नदियोंका अन्त समु-

द्रमें होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जैसे दूर रहे प्यारेमें स्त्रीका मन लगा रहता है और जो सदा नेत्रोंके आगे रहता उसमें चित्त नहीं रहता ॥३५॥ यदि संपूर्ण वृत्ति त्याग मनको मुझ (कृष्ण) में लगाकर नित्य मेरा ध्यान करती रहोगी तो शीघ्र मुझे प्राप्त होगीं ॥ ३६ ॥ हे मङ्गल रूपिणियो ! जिस समय मैंने रात्रिके समय वृन्दावनमें रासक्रीड़ा की थी, उस समय जिन गोपियोंको उनके स्वामियोंने रोक लिया था इसी कारण वह रासक्रीड़ामें न आ सकीं, तब वह मेरी लीलाओं का ध्यान करके मुझे ही प्राप्त हुईं ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार अपने प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उपदेशको सुनकर ब्रजकी गोपियें प्रसन्न हो उनका स्मरण कर उद्धवजीसे बोलीं

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ॥ स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥३५॥ मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ॥ अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥ या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः ॥ अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ॥ ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्संदेशाऽऽगतस्मृतीः ॥ ३८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ॥ दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ३९ ॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ॥ प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ॥ नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥ ४१ ॥ अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् ॥ गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥ ४२ ॥

॥ ३८ ॥ सब गोपियें कहने लगीं कि यादवोंको दुःख देनेवाला अपने भृत्योंसहित राजा कंस मारा गया, यह बड़ा मङ्गल हुआ और पूर्ण मनोरथको प्राप्त हो अपना हित करनेवालोंसहित श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हैं, यह भी बड़ा मङ्गल है ॥ ३९ ॥ हे साधु उद्धव ! रामका छोटा भाई कृष्ण हमसे जो प्रीति करता था सो प्रीति क्या अब मथुराकी स्त्रियोंसे करता है ? वह लाज भरी हँसनि और उदार चितवनिसे उनका सत्कार करते हैं ? ॥ ४० ॥ रतिविशेषके जाननेवाले प्यारे कृष्ण मथुरा की स्त्रियें वचनोंसे विलासोंसे जब सत्कार करेंगी तब कैसे बँधेंगे ॥ ४१ ॥ हे साधु उद्धव ! भगवान गोविन्द प्रसंग पाय मथुराकी स्त्रियोंकी सभामें बैठ जब कभी बातें करते हैं, तब हमारा भी कभी

स्मरण करते हैं ? ॥ ४२ ॥ हे उद्धवजी ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको कभी उन रात्रियोंका स्मरण आता है कि जिनमें कुमोदिनी कुन्द फूल रहे थे, और चन्द्रमाकी चांदनीसे रमणीय वृन्दावनमें पांवोंमें नूपुर बजते जाते थे, और हमारे संग रमण करते थे, और हमने उनकी स्तुति की थी, अब वह कभी हमें याद करते हैं या नहीं ? ॥ ४३ ॥ जैसे ग्रीष्मऋतुसे दग्धवनके सींचनेको इन्द्र आता है, उसी प्रकार कृष्णके लिये शोकसे जली हुई हमको हाथके स्पर्शसे जीवन देने दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र कभी यहां आवेंगे कि नहीं ? ॥ ४४ ॥ अब श्रीकृष्णचन्द्र यहां क्यों आवेंगे, क्योंकि अब उन्हें राज्य मिल गया, शत्रु मारे गये, राजाओंकी कन्या ब्याह लीं, सब मित्र उनके

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये ॥ रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ॥ संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥ ४४ ॥ कस्मात् कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ॥ नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥ किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ॥ श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेताऽर्थः कृतात्मनः ॥ ४६ ॥ परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला ॥ तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्याशा दुरत्यया ॥ ४७ ॥ क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् ॥ अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गान्न च्यवते क्वचित् ॥४८॥ सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ॥ संकर्षणसहायेन कृष्णेनाऽऽचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥

पास हैं, इसलिये वे वहां ही प्रसन्न हैं; यहां आकर क्या करेंगे ? ॥ ४५ ॥ लक्ष्मीजीके पति पूर्णकाम श्रीकृष्णको वनकी रहनेवाली हमसे और राजाओंकी कन्याओंसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ४६ ॥ आशाका त्याग ही बड़ा सुख है, यह पिंगला वेश्याने (एकादश स्कन्धमें) कहा है कि निराशाके समान सुख नहीं है यद्यपि हम यह सब जानती हैं, परन्तु तो भी हमारी आशा छूटनी अत्यन्त कठिन है ॥४७॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एकान्तकी बातें कौन त्यागनेको समर्थ है ? यद्यपि उनके रखनेकी इच्छा नहीं, परन्तु तो भी लक्ष्मी अंगसे अलग नहीं होती है ॥ ४८॥ हे उद्धव ! बलदेवजीके संग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिनमें विचरण करते थे वे नदियें, पर्वत, वनके प्रदेश, गौ,

बांसुरीका शब्द ॥ ४९ ॥ ये सब बार बार श्रीकृष्णके चरित्रोंको याद दिलाते रहते हैं, लक्ष्मीके आस्पद उनके चरणचिह्न देख हम भी विस्मरण नहीं कर सकतीं ॥ ५० ॥ मनोहर चलन, उदार हँसनि, लीलापूर्वक चितवनि, मनोहर वचन इनसे जिन्होंने हमारी बुद्धि हर ली उन श्रीकृष्णचन्द्रको हम कैसे भूल सकती हैं ? ॥ ५१ ॥ इसके उपरांत वे बस गोपियें मथुराकी ओर को हाथ उठाकर पुकारने लगीं कि हे रमानाथ ! हे ब्रजनाथ ! हे दुःख हरनेवाले ! हे गोविन्द ! यह नाम तो गायोंका पालन करोगे तभी रहेगा, नहीं तो इस नामसे हाथ धो बैठोगे और आपको स्मरण होगा कि इन्द्रने जब वर्षा की थी तो तुमने संकल्प किया था कि मैं अपने ब्रजकी रक्षा करूँगा सो अब तो तुम्हारे

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्द गोपसुतं बत ॥ श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥ ५० ॥ गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ॥ माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥ ५१ ॥ हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ॥ मग्नमुद्धर गोविंद गोकुलं वृजिनार्णवे ॥ ५२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततस्ताः कृष्णसन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः ॥ उद्धवं पूजयाञ्चक्रुर्ज्ञात्वाऽऽत्मानमधोक्षजम् ॥ ५३ ॥ उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदञ्छुचः ॥ कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥ यावन्त्यहानि नन्दस्य व्रजेऽवात्सीत् स उद्धवः ॥ व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन् कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५ ॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् ॥ कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥

ही विरहरूपी समुद्रमें संपूर्ण गोकुल डूबा जाता है, इसका शीघ्र आकर उद्धार करो ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! श्रीकृष्णके संदेशसे विरहताप मिटाकर उन गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको परमेश्वर जान और परमेश्वरको अपना आत्मा निश्चय कर उद्धवजीकी पूजा की ॥ ५३ ॥ गोपियोंका शोक दूर करनेके लिये कितने ही मास उद्धवजीने ब्रजमें वास किया और श्रीकृष्णकी लीला कथाओंको गागाकर ब्रजवासियोंको परमानन्द दिया ॥ ५४ ॥ जितने दिनोंतक उद्धवजीने ब्रजमें वास किया वे दिन ब्रजवासियोंको श्रीकृष्णकी लीला गानसे क्षणके समान बीत गये ॥ ५५ ॥ नदी, पर्वत, वन, गुफा, पुष्पित वृक्ष इत्यादिकोंको देख हरिदास उद्धवजी ब्रजवासियोंको श्रीकृ-

ष्णचन्द्रका स्मरण कराने लगे ॥५६॥ गोपियोंके चित्तको इस प्रकार श्रीकृष्णमें लीन होनेसे व्याकुल देख परमप्रसन्न हो गोपियोंको दण्डवत् कर कहने लगे ॥ ५७॥ इन गोपोंकी स्त्रियोंका पृथ्वीपर जन्म सफल है, क्योंकि सबके आत्मा गोविन्दमें इनका अत्यन्त प्रेम हुआ है, जिस प्रेमका संसारसे भयभीत मुमुक्षु पुरुष और मुक्त और हम भक्त इच्छा करते हैं। श्रीकृष्णचन्द्रकी कथामें जिसका अत्यन्त अनुराग है उसे ब्रह्मजन्मसे क्या प्रयोजन है ? अथवा एक तो शुद्ध माता पितासे, द्वितीय गायत्री उपदेशसे, तृतीय यज्ञदीक्षासे जो ब्राह्मणके तीन जन्म हैं उनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ५८ ॥ वृन्दावनकी विचरनेवाली व्यभिचार दृष्टिसे दूषित गोपी स्त्रियें कहां और परमात्मा श्रीकृष्ण-

दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णाऽऽवेशात्मविक्लवम् ॥ उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७ ॥ एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ॥ वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्म जन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥ ५८ ॥ क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ॥ नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥ नायं श्रियोऽङ्ग उनितान्तरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ॥ रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकंठ लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६० ॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥ या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१ ॥ या वै श्रियाऽर्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ॥ कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ६२ ॥

चन्द्रमें आरूढ़ भाववाले मन कहां ? क्योंकि निरंतर भगवान्को स्मरण कर अज्ञानी पुरुष भी कल्याण प्राप्त करता है जैसे अमृतका सेवन करनेवाला पुरुष अमर हो जाता है॥ ५९ ॥ सर्वकाल अंगमें रहनेवाली लक्ष्मीपर भी यह प्रसन्नता न हुई और कमलके गन्धकीसी कांतिवाली देवांगनाओंको भी जो प्रसाद नहीं मिला वह रासके उत्सवमें श्रीकृष्णचन्द्रके भुजदंडोंमें गलबांहीं डाल व्रजसुन्दरियोंको मिला ॥ ६० ॥ गोपियोंके चरणरजका सेवन करनेवाले वृन्दावनमें गुल्म, लता, ओषधियोंमें कुछ भी मेरा जन्म हो, जो गोपियें दुस्त्यज अपने भाई, बंधु, बड़ोंके मार्गको त्याग वेदगम्य मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रके मार्गका सेवन करती हैं॥ ६१ ॥ जो लक्ष्मीसे पूजित पूर्णकाम, ब्रह्मादिक देवता

और योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिंतवन करते हैं उन श्रीकृष्णके चरणारविंदोंको राससभामें स्तनोंके ऊपर धर आलिंगन कर जिन गोपियोंने तापको दूर किया ॥ ६२ ॥ नंदके व्रजकी स्त्रियोंके चरणकी रजको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ, जिन गोपियोंकी गायी हरि कथा तीनों लोकोंको पवित्र करती है ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! इसके उपरांत उद्धवजी गोपियोंसे, यशोदासे और नन्द आदिक सब व्रजवासियों से आज्ञा मांग गमनसमय अपने रथमें जा बैठे ॥ ६४ ॥ उद्धजीके बिदा होनेके समय नंद आदिक सब व्रजवासी अनेक प्रकारकी भेंट हाथमें ले उद्धवजीके पास आकर स्नेहसे नेत्रोंमें आंसू भर कहने लगे ॥ ६५ ॥ कि हमारे मनकी वृत्ति

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ॥ यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च ॥ गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४ ॥ तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ॥ नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ॥ ६५ ॥ मनसो वृत्तयो न स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ॥ वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥६६॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ॥ मङ्गलाचरितैर्दानैर्मतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ॥ उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥ कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥ वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भ्रमरगीतोद्धवप्रतियानं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदमें लगी रहे और हमारी वाणी उनका नाम जप करती रहे और हमारा शरीर उन श्रीकृष्णको प्रणाम करता रहे ॥ ६६ ॥ अपने कर्मानुसार ईश्वरेच्छासे जिस किसी योनिमें हम जायँ, तो जो कुछ हमने मंगलरूप कर्म किये है अथवा दान किये हैं उनका फल यही मांगती हैं कि श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति बनी रहे ॥ ६७ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार गोपियोंने श्रीकृष्णकी भक्तिसे उद्धव जीका सत्कार किया, तब उद्धवजी उनसे बिदा हो कृष्णपालित मथुरापुरीमें आये ॥ ६८ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम कर व्रजवासियोंकी भक्तिकी अधिकता वर्णन की, इसके उपरांत वासुदेव और बलदेवजीको प्रणाम करके राजा उग्रसेनको भेंट दी ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां भ्रमरगीतोद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

दोहा–अड़तालिस अध्याय हरि, कुबरी रमण कराय । हस्तिनपुर अक्रूरको, दीन्हों कृष्ण पठाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरांत सबके आत्मा और सबके देखनेवाले छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कामसे पीड़ित कुब्जाका प्रिय करने के लिये उसके घर गये ॥ १ ॥ कैसा वह घर है कि जहां अनेक प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुयें धरी हैं; कामके उद्दीपन करनेवाले जिसमें चित्र लिखे हैं, मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं, पताकायें फहरा रही हैं चन्दावे तन रहे हैं, शय्या तथा शोभायमान आसन बिछ रहे हैं, सुगन्धकी धूप लग रही है दीपक प्रज्वलित हो रहे हैं, और माला, अतर, अरगजा आदिसे वह घर अत्यन्त शोभायमान हो रहा है ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने घरमें आया देख कुब्जा अति शीघ्रतासे आसनपरसे उठ, घबड़ाहटको प्राप्त हो

श्रीशुक उवाच ॥ अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥१॥ महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ॥ मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनादिभिः ॥ धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम् ॥ २ ॥ गृहं तमायान्तमवेक्ष्य साऽऽसनात् सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा ॥ यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं सभाजयामास सदासनादिभिः ॥३॥ तथोद्धवः साधु तयाऽभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ॥ कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥४॥ सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ॥ प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥ आहूय कान्तां नवसंगमह्रिया विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे ॥ प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥

सखियोंको संग लिये श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर सुन्दर आसन बिछाके चरण धो सत्कार करने लगी ॥ ३ ॥ उसी प्रकार भलीभांति पूजित हो, उद्धवजी आसन स्पर्शकर पृथ्वीमें बैठ गये और लौकिक लीलाओंके करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्रतासे सुन्दर बिछी हुई शय्यापर पहुँचे॥४॥ इसके उपरांत कुब्जा भी स्नान कर, चन्दन लगाय, वस्त्र पहन, गहने, माला, अतर, अरगजा, तांबूल और अमृतके समान मादक वस्तुसे अपनेको बनाय, ठनाय लाजभरी लीलापूर्वक मुसकान, कटाक्षभरी चितवनसे मोहित हुई श्रीकृष्णचन्द्रके पास आयी ॥ ५ ॥ नवीन समागमकी लज्जासे शङ्कासहित कुब्जाको बुलाकर कङ्कणसे शोभायमान हाथको पकड़कर शय्यापर बैठाकर भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्र उसके साथ रमण*करने लगे। अहो? कुब्जा भाग्य, जिसने चन्दन लगानेके अतिरिक्त दूसरा कोई पुण्य नहीं किया था ॥६॥ कामदेवसे पीड़ित कुच और छाती तथा नेत्रोंके तापको अनन्त श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें लगाकर और उन चरणारविन्दको सूंघ स्तनोंके मध्यमें प्राप्त हुए सुन्दर आनन्दमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रको भुजाओंसे आलिंगन कर बहुत दिनोंसे बढ़े तापको त्याग दिया ॥ ७ ॥

सानङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती ॥ दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्तमानन्द-मूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ॥ अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥ आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ॥ रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥ ९ ॥ तस्यै काम-वरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः ॥ सहोद्धवेन सर्वेश स्वधामागमदर्चितः ॥ १० ॥

चन्दनके अर्पण करनेसे मोक्षके देनेवाले दुर्लभ श्रीकृष्णको पाकर अभागिनी कुब्जाने यह मांगा ॥८॥ अहो प्यारे! यहाँ कुछ दिनों तक रहकर मेरे सङ्ग रमण करो। हे कमलनेत्र! मैं तुम्हें त्याग नहीं सकती ॥ ९ "एक बार तुम्हारे यहां नित्य आया करूँगा" इस प्रकार कुब्जाको कामवर दे उसका सम्मानकर मान देनेवाले ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजी को सङ्ग लेकर अपने घर आये॥ १० ॥

---

* शंका—कुबरी और कृष्णका रमण सुन हमारे मनमें बड़ा भ्रम हुआ, क्या कारण जो जगत्के ईश्वर होकर कुब्जाके सङ्ग रमण किया?

उत्तर—चाहे संन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य हो, चाहे पतित हो, चाहे नपुंसक हो, चाहे सब कर्मसे भ्रष्ट हो, चाहे स्त्री या पुरुष हो परन्तु जो भगवान्की सेवा करे वही भगवान्को प्यारा है, सब कर्ममें नीच हो तो कुछ भगवान् बुरा नहीं मानते और बड़ा उत्तम हो और भगवान्की प्रीति न करे तो उसको भगवान् शत्रु समान मानते हैं। भगवान् भक्तजनोंकी प्रेमरूप रस्सीमें बँधे हुए हैं, अतः जैसा नाच भक्तजन भगवान्को नचाते हैं, वैसा नाच भगवान् नाचते हैं, जैसे काष्ठकी पुतली नचानेवाले पुरुषके अधीन है, ऐसे ही भगवान् भी भक्तोंके अधीन हैं और जैसे बैलको नाकमें नाथ डालके मनुष्य जहांको चाहे वहांको ले जाता है और वेदरूप कृष्ण, वेदकी ऋचारूप कुब्जा भगवान्की दासी थी, इसलिये जैसी कुब्जाने इच्छाकी वैसीही भगवान्ने उसकी अभिलाषा पूर्ण की। अथवा कहीं ऐसा भी लिखा है कि पुष्पांगी नाम एक वेश्या थी परन्तु भगवान्में भक्ति करनेवाली थी; उसने यह सुना कि रामचन्द्र बनको गये, तब पीछेपीछे वह भी चल दी।वनमें जाकर उसको भगवान्का दर्शन हुआ और देखकर मोहित हो गयी और यह चाहा कि रामचन्द्रके साथ रमण करूं एक समय रामचन्द्रको अकेला पाकर उनकी कुटीमें जा बैठी, पीछेसे सीताजी भी वहां आगयीं और उस वेश्याको वहां पर बैठी देखा तो बड़ा क्रोधकर सीताने शाप दिया की अगले जन्ममें तेरे सब अङ्ग भंग होंगे, अर्थात् तू कुबरी होगी और राक्षसकी दासी होगी। तब श्रीरामचन्द्रजीने वेश्यासे कहा कि जब मैं कृष्णावतार लूंगा तो तेरा मनोरथ पूर्ण करूंगा अब तू जा। तब तो उस पुष्पांगी वेश्याने शापके भयसे बड़ी स्तुतिकी, तब भगवान्ने वर दिया कि जिस समय मेरा दर्शन तुझको होगा, उसी समय तेरा देह परमोत्तम हो जायगा और एक दिन तेरे घरमें वास करूंगा, उस समय तेरी सब कामना पूरी होगी।

सम्पूर्ण ईश्वरके ईश्वर, दुःखसे आराधन करनेमें आवें ऐसे विष्णु भगवान्‌को प्रसन्न करके जो पुरुष विषयोंका वर मांगे वह बड़ा कुबुद्धि है, क्योंकि विषय तुच्छ हैं ॥ ११ ॥ बलदेव उद्धवजीको संग लेकर समर्थ श्रीकृष्णचन्द्र कुछ कार्य करानेके लिये और अक्रूरका भला करनेके लिये उनके घर आये ॥ १२ ॥ अक्रूरजी मनुष्योंमें श्रेष्ठ अपने बन्धु श्रीकृष्ण बलदेवको दूरसे देख प्रसन्न हो मिलकर अत्यानन्दको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ तब श्रीकृष्ण बलदेव और उद्धवजीने उन्हें नमस्कार किया । इसके उपरांत अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको प्रणामकर और आसनपर बैठाकर उनकी पूजा की ॥ १४ ॥ हे राजन् ! फिर कृष्ण बलदेवके चरणोंको धोकर उस जलको अपने मस्तकपर चढ़ाय और दिव्य चन्दन,

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ॥ किंचिच्चिकीर्षयन् प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥ स तान् नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबान्धवान् ॥ प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ १३ ॥ ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ॥ पूजयामास विधिवत् कृतासनपरिग्रहान् ॥ ॥ १४ ॥ पादावनेजनीरापो धारयञ्छिरसा नृप ॥ अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वा शिरसाऽऽनम्य पादावङ्कगतौ मृजन् ॥ प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥१६॥ दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ॥ भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद्दुरन्ताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥ युवांप्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ भवद्भ्यां न विना किंचित परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदंविश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ॥ ईयते बहुधा ब्रह्मञ्छ्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥

माला, वस्त्राभूषण इत्यादि भेंट दे नमस्कार किया और गोदमें चरणोंको धरके दाबने लगे इसके उपरांत अधीनतापूर्वक नम्र हो अक्रूरजी कृष्ण बलदेवसे कहने लगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ कि मन्त्रियोंसहित पापी कंसको मार बड़े कष्टसे आपने इस अपने कुलका उद्धार किया और कुलकी वृद्धिका यह बड़ा ही मंगल हुआ ॥ १७ ॥ तुम प्रकृतिरूप हो, जगत्‌के कारण हो, जगन्मय हो, तुमसे पृथक कुछ कार्य कारण नहीं है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम अपने विश्वमें अपनी शक्तियों सहित प्रवेश करके श्रवण करने देखनेमें बहुत प्रकारके प्रतीत होते हो ॥ १९ ॥

जैसे स्थावर, जंगम देहमें पृथ्वी आदि पञ्चभूत हैं, उनमें अनेक प्रकारसे प्रकाशते हो, उसी प्रकार अपने अधीन अकेले तुम आपही अपने कार्य पञ्चभूत और पंचभूतोंके बने देहमें बहुतरूपसे प्रकाशते हो ॥ २० ॥ रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण तुम्हारी शक्तियां हैं, उनकेही द्वारा विश्वकी उत्पन्न, पालन और संहार करते हो। गुण और उत्पत्त्यादिक कर्मोंसे बँधे नहीं हो, ज्ञानरूपहो, तुम्हें बांधनेवाली कोई अविद्या नहीं है ॥२१॥ तुम्हारे तो बंधनकी शङ्का संभव ही कहां ? पर विद्योपाधि जीवात्माके भी वस्तुतः जन्म तथा जन्ममूलक भेद नहीं है क्योंकि देहादि उपायका किसी प्रकार निरूपण होना सम्भव नहीं, अविद्यारहित होनेसे न तो आपके बन्धन है और न मोक्ष है, जो हमें बन्धन

यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना ॥ एवं भवान् केवल आत्मयोनिष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥ २० ॥ सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं रजस्तमस्सत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ॥ न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥ २१ ॥ देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात् ॥ अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥ त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदायदा वेदपथः पुराणः ॥ बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भिस्तदा भवान् सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥ २३ ॥ स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णःस्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ॥ अक्षौहिणीशत वधेन सुरेतरांशराज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४ ॥ अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ॥ यत्पादशौचसलिलं त्रिजगद् पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥

मोक्ष दिखायी देते हैं वे केवल अज्ञान से ही हैं ॥ २२ ॥ जगत्का कल्याण करनेके लिये तुम्हारा कहा हुआ सनातन वेदमार्ग जिस समय असाधुओंके पाखण्डमार्गसे बाधित होता है उस समय सगुणरूप धारण करते हो ॥२३॥ हे प्रभो ! तुमने इस संसारमें पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंश बलदेव सहित वसुदेवजीके घर जन्म लिया है जिससे दैत्योंके अंशरूप राजाओंकी अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करोगे और यदुकुलके यशको बढ़ाओगे ॥ २४ ॥ हे ईश ! आज हमारा घर निश्चय बड़भागी है। सब देवता, पितृ, मनुष्य, प्राणी, देवरूप तुम्हारे चरणारविन्दका धोवन जल गंगारूप होकर तीनों लोकोंको पवित्र करता है, सो तुम जगत्के गुरु अधोक्षज भगवान् हमारे घरमें आये हो,

इसलिये हमारा घर बड़भागी है ॥ २५ ॥ हे प्रभो! भक्तवत्सल, सत्यवक्ता, सबके हितकारी, कृतके जाननेवाले आपको त्यागकर कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो औरकी शरण ले, भजन करनेवालेको तुम संपूर्ण कामना देते हो और अपना आत्मातक भी दे देते हो और तुम्हारे यह उत्तम है, यह नीच है यह भेद नहीं है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन! आपने मेरे घर आकर दर्शन दिया यह बड़ा मंगल हुआ, योगेश्वर और देवता भी तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते हैं। पुत्र, स्त्री, धन, हितकारी और देहादिकोंमें मोहकी रस्सीरूप जो तुम्हारी माया है सो हमें लिपट रही है, इसे शीघ्र ही काटो ॥ २७ ॥ भक्त अक्रूरजीने इस प्रकार जब पूजन और स्तुति की तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वाणीसे मोहित

कः पंडितस्त्वदपरं शरणं समीयाद् भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ॥ सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामाना-त्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥ दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ॥ छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥ इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान् हरिः ॥ अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बंधुश्च नित्यदा ॥ वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥ भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ॥ श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ३० ॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ३१ ॥ स भवान् सुहृदां वै नः श्रेयाञ्छ्रेयश्चिकीर्षया ॥ जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥

करते हुए मुसकाकर बोले ॥२८॥ श्रीभगवान् बोले कि आप हमारे गुरु हो इस कारण नित्य स्तुति करने योग्य हो, हम तुम्हारे लड़के हैं हमारी रक्षा करो, पोषण करो और हमपर कृपा करो ॥ २९ ॥ हे पूज्योंमें श्रेष्ठ! तुम्हारे समान बड़भागी कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंसे नित्य सेवा करने योग्य हैं, देवता स्वार्थी हैं, साधु महात्मा स्वार्थी नहीं होते ॥ ३० ॥ क्या कहीं जलमय तीर्थ नहीं है? और मृत्तिका शिलाओंके देवता नहीं हैं? किंतु वह सब बहुत दिनतक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं और साधुपुरुष तो दर्शनसे ही पवित्र करते हैं ॥ ३१ ॥ हे अक्रूरजी! तुम हमारे सुहृदोंमें उत्तम हो, इस कारण पाण्डवोंका कल्याण करनेके लिए हस्तिनापुरको जाओ ॥ ३२ ॥

पिता पांडुके मरनेके पीछे माता कुन्तीसहित दुःखित पांडव बालकोंको धृतराष्ट्र अपने पुरमें ले आया है, वे उसके पास रहते हैं ॥ ३३ ॥ लुब्धबुद्धि अम्बिकाका पुत्र राजा धृतराष्ट्र भाईके पुत्र पाण्डवोंमें समता नहीं रखता और दुष्ट दुर्योधनादिके वशमें हो रहा है और उसकी दृष्टि भी अंधेरी हो रही है ॥ ३४ ॥ इसलिये तुम अब हस्तिनापुरको जाओ और बुरी भली उनकी सब खबर लाओ, जब हमें वहांका भेद विदित हो जायगा, तो जिसमें पाण्डवोंको सुख होगा, वही उपाय करेंगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अक्रूरजीसे कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव और उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥३६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कुब्जा-

पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ॥ आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥ तेषु राजाम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ॥ समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥३४॥ गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ॥ विज्ञाय तद् विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥ इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान् हरिरीश्वरः ॥ संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कुब्जारमणादिनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥ श्रीशुक उवाच ॥ स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोङ्कितम् ॥ ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥१॥ सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ॥ कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान् सुहृदोऽपरान् ॥२॥ यथावदुपसंगम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः ॥ संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥३॥ उवास कतिचिन्मासान् राज्ञो वृत्तविवित्सया ॥ दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

रमणादिनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥ दोहा—उनञ्चास अक्रूरजी, हस्तिनपुरमें जाय । विषम दृष्टि लखि भ्रातसुत, फिरो धरो नहिं पाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! पुरुवंशी राजाओंके यशसे शोभायमान हस्तिनापुरमें जाकर अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको अक्रूरजीने देखा और भीष्मपितामह, विदुर, कुन्ती तथा सोमदत्त, पुत्रसहित बाह्लीक, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पांचों पाण्डव और भी जो सुहृद थे उन सबको देखा ॥१॥२॥ गांदिनीके पुत्र अक्रूरजी बन्धु बांधवोंके संग यथायोग्य मिलकर वे सुहृदोंकी वार्ता अक्रूरजीसे पूछने लगे और अक्रूरजी भी उनसे कुशलक्षेम पूछने लगे ॥ ३ ॥ दुष्ट पुत्र और अल्पबुद्धि दुष्ट कर्णादिकोंके कहनेमें रहने

वाले धीरता रहित राजा धृतराष्ट्रका वृत्तान्त जाननेके लिए कितने एक महीनेतक अक्रूरजीने वहां बास किया ॥४॥ तेज अर्थात् प्रभाव, ओजबल अर्थात् शस्त्र चलानेकी निपुणता, वीर्य अर्थात् शूरता, पाण्डवोंमें प्रजाका स्नेह, वीरता आदि जो अच्छे गुण है उन्हें न सहकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी और जो कुछ आगे करनेकी इच्छा है उसे ॥ ५ ॥ और जो धृतराष्ट्रके पुत्रोंने विष देना आदि अन्याय किया था, सो सम्पूर्ण वार्त्ता विदुरजीने अक्रूरजीसे कह दी ॥ ६ ॥ कुन्ती भाई अक्रूरको आया सुन मिलकर और अपने जन्मस्थानका स्मरण करके

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ॥ प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् ॥ आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥६॥ पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ॥ उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकुलेक्षणा ॥ ७ ॥ अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ॥ भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥८॥ भ्रात्रेयो भगवान् कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ पैतृष्वसेयान् स्मरतिरामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥ सपत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीमिव ॥ सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥१०॥

नेत्रोंसे आंसू बहाती अक्रूरजीसे बोली ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! मेरे माता पिता कभी मेरा स्मरण करते हैं ? और मेरे भाई, बहन, भतीजे, कुलस्त्री, सखी यह सब कभी मेरी सुध करते हैं ? ॥ ८ ॥ शरणागतोंका पालक, भक्तोंका हितकारी, भाईके पुत्र श्रीकृष्ण कभी अपनी फूफीके पुत्रोंकी भी सुध करते हैं ? कमलके समान नेत्रवाले बलरामजी भी कभी हमारा स्मरण (याद) करते हैं ? ॥ ९ ॥ मैं तो जैसे व्याघ्रोंके बीचमें हरिणी घिर जाती हैं, इसी प्रकार वैरियोंके बीचमें घिरकर शोच करती हूँ सो क्या मुझे

* शंका—बड़े आश्चर्यकी बात है, वसुदेवजी बन्दीगृहसे छूट गये और अनेक प्रकारके मंगल वसुदेवजीके घर हुए, तो भी कुन्तीको न बुलाया, लोकशास्त्रको रीति है बहिन अथवा लड़कीको माता, पिता, भाई अपने घर वर्ष दो वर्षमें बुलाते रहते हैं,परंतु अपने घर उत्सवमें अथवा उसके दुःखमें तो अवश्य ही बुलाते हं या आप जाकर ले आते हं क्योंकि पिताके घर आनेसे बेटीका चित्त सावधान हो जाता है फिर वसुदेवजीके घर उत्सव भी हुआ और बन्दीसे भी छूटे, फिर वसुदेवजीने कुन्तीको अपने घर क्यों नहीं बुलाया इसका क्या कारण ?

उत्तर—कुन्ती सातद्वीपके राजा पांडुकी स्त्री थी और पतिके वियोगमें महादुःखी थी तो भी कुन्तीको वसुदेवजी अपने घर ले आनेको समर्थ न हुए, क्योंकि वसुदेवजी दीन और द्रव्यहीन थे और वह कुन्ती दुःखी भी थी तो भी सात द्वीपके नरेशकी रानी थी, इसलिये वसुदेव कुन्तीको अपने घर न लाये क्योंकि हजारों तो दासी उसके संग आतीं और सेनाका तो ठिकाना ही क्या था फिर कुन्तीको अपने घर रखनेकी वसुदेवजीकी सामर्थ ही क्या है ?

और पिताहीन मेरे बालकोंको श्रीकृष्ण तुम्हारे वचनोंसे समझावेंगे ? ॥ १० ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वके आत्मा ! हे सबके अन्तर्यामी ! हे विश्वके पालनकर्त्ता ! हे गोविन्द ! बालकोंके सहित दुखित होकर मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ, सो मेरी रक्षा करो ॥११॥ मृत्युरूपी संसारके भयभीत मनुष्योंके ईश्वर तुम हो और मोक्षके देनेवाले तुम्हारे चरणकमलके विना मुझे और कोई शरण देनेवाला नहीं दीखता ॥१२॥ शुद्ध अर्थात् धर्मात्मा ब्रह्म अपरिच्छिन्न अर्थात् ढकनेमें नहीं आवें, परमात्मा अर्थात् जीवके सखा, योगेश्वर अर्थात् अणिमादिक शक्तियुक्त योग, अर्थात् ज्ञानरूप ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र तुम हो सो तुन्हें नमस्कार और तुम्हारी ही मैंने शरण ली है ॥१३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार जगत्के ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णकी याद करके तुम्हारी परदादी कुन्ती दुःखित

कृष्णकृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ॥ प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥ ११ ॥ नान्यत्तव पदाम्भोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् ॥ बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्याऽऽपवर्गिकात् ॥१२॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥१३॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ॥ प्रारुदद्दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही॥१४॥समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः॥सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥१५॥ यास्यन् राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ॥ अवदत् सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥ अक्रूर उवाच ॥ भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन॥ भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥ १७ ॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाशीलेनरञ्जयन् ॥ वर्तमानः समःस्वेषु श्रेयःकीर्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥

होकर रोने लगी ॥१४॥ अक्रूर और बड़े यशस्वी विदुर कुन्तीको समझाने लगे कि तुम्हारे पुत्र धर्म, पवन, इन्द्र इत्यादिकोंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, तुम इतना शोच क्यों करती हो, इस प्रकार समझाने लगे ॥१५॥ चलते समय अपने पुत्रोंमें स्नेह और भतीजोंमें विषमता करनेवाले राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर सुहृदोंके बीचमें जो रामकृष्णने वचन कहे थे वह अक्रूरजी कहने लगे ॥ १६ ॥ अक्रूरजी बोले कि हे धृतराष्ट्र ! कौरवोंकी कीर्तिके बढ़ानेवाले भाई पांडुके मरनेके उपरांत राजसिंहासनपर बैठे हो सो ठीक है ॥१७॥ बहुत उत्तम राज्य करो, धर्मसे पृथ्वीका पालन करो, क्योंकि अपनी प्रजाको सुखपूर्वक आनंद रखोगे, अपने बांधवोंमें समान दृष्टि रखोगे तो तुम्हारा कल्याण और

जगत्‌में यश होगा ॥ १८ ॥ और जो विषमता रखोगे तो संसारमें निन्दा होगी और अन्तमें नरकको जाओगे, इस कारण पांडवोंमें और अपने पुत्रोंमें समता रखो ॥ १९ ॥ हे राजन् धृतराष्ट्र ! इस संसारमें सदा किसीका संग नहीं रहता और अपना देह भी सदा नहीं रहता, विचार करके देखो कि स्त्री पुत्र ये सदा नहीं रहेंगे ॥ २० ॥ जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्युको प्राप्त होता है अकेलाही पुण्यके फल (सुख) को भोगता है और अकेला ही पापका फल (दुःख) भोग करता है ॥ २१ ॥ अज्ञानी पुरुषोंने जो पाप करके धन सञ्चय किया है उसे स्त्री पुरुष भाई बन्धु होकर लेते हैं, जैसे जलकी रहने वाली मछलियोंका जीवन जल है और जब उसको उसके पुत्र पी लेते हैं तब उसे कष्ट होता है ॥ २२ ॥ पाप करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है और जिन्हें अपना समझ अधर्मसे पोषण

अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ॥ तस्मात् समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥१९॥ नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित् केनचित्सह ॥ राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥२०॥ एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥ एको नु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२१॥ अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः ॥ सम्भोजनीयापदेशैर्जला-नीव जलौकसः ॥ २२ ॥ पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपंडितम् ॥ तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ॥ असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥ तस्मा-ल्लोकमिमं राजन् स्वप्नमायामनोरथम् ॥ वीक्ष्याऽऽयम्यात्मनात्मानं समः शान्तो भव प्रभो ॥२५॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ॥ तथाऽनया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम् ॥ २६ ॥

करता है, वह प्राण, धन और पुत्रादिक उस पोषण करनेवाले मूर्ख पुरुषको भोगका सुख प्राप्त न हुआ हो, तब उसे पहिले ही त्याग देते हैं ॥ २३ ॥ जब स्त्रीपुरुषादिक इसको त्याग देते हैं तब यह सच्चे स्वार्थको न जानकर और प्रयोजन नष्ट होनेसे निज धर्मसे विमुख हो सबके पापको अपने शिरपर धर वही पूर्ण नरकमें गिरता है ॥ २४ ॥ इस कारण हे समर्थ राजा धृतराष्ट्र ! जैसे स्वप्न और बाजीगरकी माया तथा मनका विचार यह सब तुमको मिथ्याभूत दिखायी देता है उसी प्रकार इस संसारको मिथ्याभूत समझ आप भी अपने मनको रोककर समता रक्खो और शान्त हो ॥ २५ ॥ तब राजा धृतराष्ट्र बोले कि हे अक्रूर । यह जो तुमने कल्याणकारक श्रेष्ठ वचन

कहे, उनको श्रवण करते करते मेरा मन तृप्त नहीं हुआ; जैसे मनुष्य अमृत पीनेसे तृप्त नहीं होता ॥ २६ ॥ परन्तु तो भी हे अक्रूर! मेरा चञ्चल पुरुषोंमें स्नेह है, इसलिये विषम हृदयमें तुम्हारी प्यारी बात नहीं ठहरती, जैसे स्फटिक मणिके सुदामापर्वतपर बिज़ली चमक कर स्थिर नहीं रहती ॥ २७ ॥ भगवान्‌की इच्छाका कौन पुरुष खण्डन कर सकता है ? अर्थात उनकी इच्छाके प्रतिकूल कुछ नहीं होता, सब उनकी इच्छानुसार ही होता है । जिन ईश्वरने पृथ्वीका भार उतारनेके कारण यदुकुलमें आकर अवतार लिया है ॥ २८ ॥ जो ईश्वर विचारनेमें न आवें वे अपनी मायासे उत्पन्न होकर अर्थात् उसमें प्रवेश कर कर्म तथा कर्मोंके फलको अलग-अलग कर

तथापि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ॥ पुत्रानुरागविषमे विद्युत् सौदामिनीं यथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ॥ भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥ यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं दृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः ॥ तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ॥ सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥३०॥ शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥ पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पाण्डववृत्तनिरूपणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

॥ ❃ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ समाप्तोऽयं दशमस्कंधपूर्वार्धः ॥ ❃ ॥

जीवोंको देते हैं । जाननेमें न आवें ऐसे लीलासे रचे हुए संसारचक्रके घुमानेवाले उन परमेश्वरको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार यदुवंशोत्पन्न अक्रूरजी धृतराष्ट्रका अभिप्राय जान सुहृदोंसे आज्ञा ले मथुरामें आये ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! बलदेव श्रीकृष्ण ने आप जिस कारण अक्रूरजीको पाण्डवोंके पास भेजा था सो अक्रूरजीने सब धृतराष्ट्रजीकी कही वार्त्ताका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीसे कह दिया ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां पाण्डववृत्तनिरूपणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ समाप्तोऽयं भाषाटीका सहितः दशमस्कन्धपूर्वार्द्धः ॥

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धपूर्वार्द्धः समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धोत्तरार्धः प्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

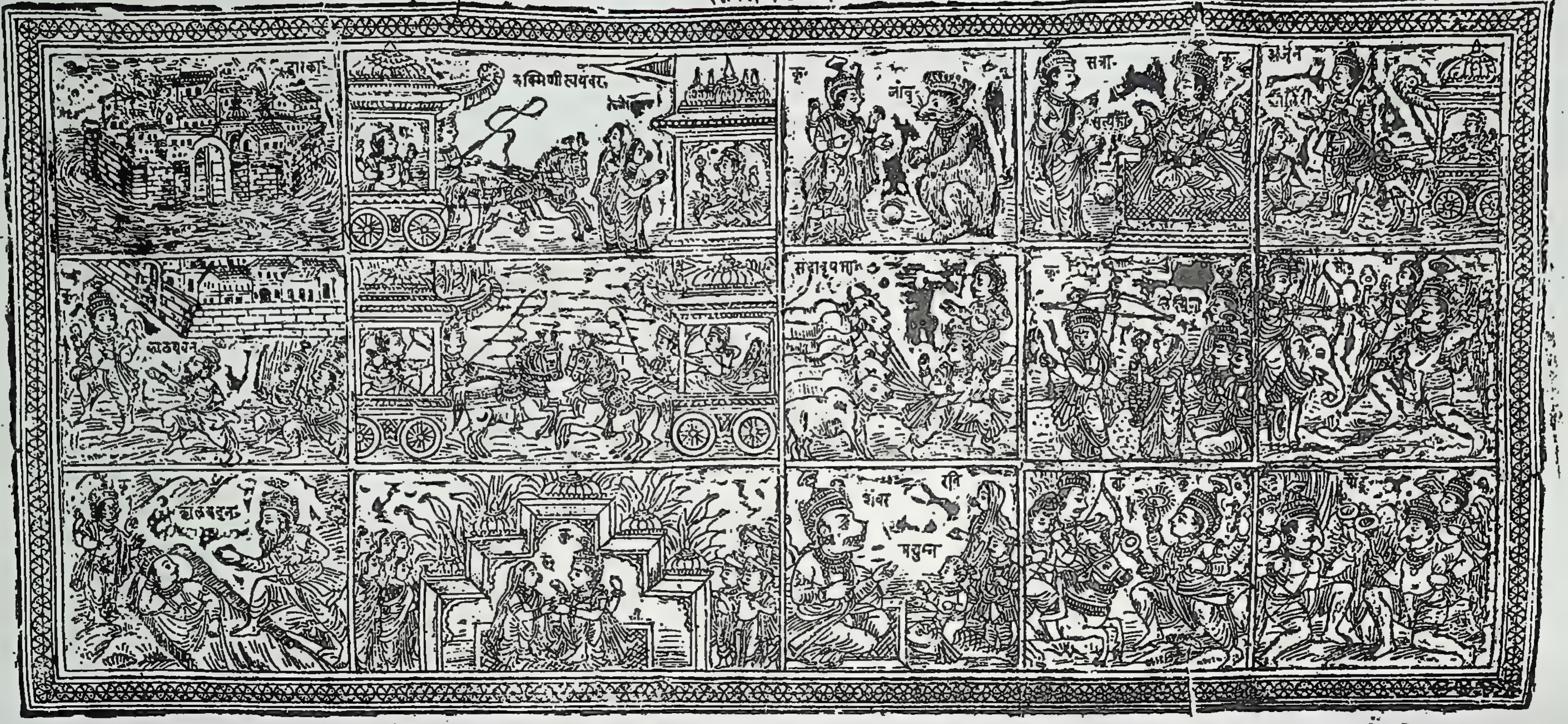
रुक्मिणी स्वयंवर
कृ
जांबु
सत्रा
अर्जुन
शंबर
रति
प्रद्युम्न

दोहा—उत्तरार्द्ध प्रारंभमें, ब्रजपति चरित ललाम । कह पचास अध्यायमें, जरासन्ध—संग्राम ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अब पूर्वार्द्धके उपरांत इकतालीस (४१) अध्यायमें जो कथा हैं, सो हम वर्णन करते हैं कि जरासन्धके भयसे ही मानों समुद्रमें किला बनाकर श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको उसमें ले गये । व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! 'अस्ति' और 'प्राप्ति' ये दोनों कंसकी रानियां अपने पति कंसके मरनेसे अत्यन्त दुःखी होकर अपने पिताके घर चली आयीं ॥ १ ॥ अपने स्वामीके मरनेसे शोकाकुल अस्ति प्राप्ति दोनों बहनोंने अपने पिता मगधदेशके राजा जरासन्धसे जाकर सब वृत्तांत कहा ॥ २ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यह बात सुनते ही जरासन्ध अतिक्रोध कर अपने जामाताका शोक न सहकर पृथ्वीको यादवरहित करनेका उपाय करने लगा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥ मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते ॥ वेदयांचक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥२॥ स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ॥ अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्यातिसृभिश्चापि संवृतः ॥ यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत् सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य तद् बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ॥ स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥ चिंतयामास भगवान् हरिः कारणमानुषः ॥ तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामि बलं ह्येतद् भुवि भारं समाहितम् ॥ मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ और तेइस अक्षौहिणी सेनाको साथ लेकर जरासन्धने यादवोंकी राजधानी मथुरापुरीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥ जिस प्रकार अपनी मर्यादा त्यागकर समुद्र उमड़ता चला आता है उसी प्रकार जरासन्धकी सेनाको आती हुई देखकर और सेनासे मथुरापुरीको ग्रस्त जान, अपने सुहृद यादवोंको व्याकुल देख ॥ ५ ॥ दुःखोंके नाशक, भूभार उतारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उस समय देशकालके योग्य अपने अवतारका कारण देखकर विचार करने लगे ॥६॥ कि पहले इस समस्त सेनाको संहार करूँ ? या जरासन्धको वधकर इसकी सब सेना अपने अधीनमें करूँ ? अथवा सैन्यसहित जरासंधका प्राणसंहार करूँ । ऐसे तीन प्रकारके मनमें संकल्प विकल्प कर प्रथम

विचार सैन्यवधका निश्चय किया, क्योंकि पृथ्वीका भाररूप यह सेना ही है, इसलिए प्रथम इसका ही मारना उचित है और इस समय सम्पूर्ण राजाओंकी सेनाओंको इकट्ठी कर ले आया है, फिर बारंबार ऐसा अवसर नहीं मिलेगा ॥ ७ ॥ पहिले पैदल, अश्व, हस्ती और चतुरंगिणी अनेक अक्षौहिणी * सेनाको ही मारना योग्य है, जरासन्धको मारना योग्य नहीं, क्योंकि इससे अभी बहुत कार्य सिद्ध होंगे, यह सम्पूर्ण राक्षसोंको समेटकर ले आवेगा, मैं कहां कहां ढूँढता फिरूँगा ॥ ८ ॥ भूमिका भार उतार साधु पुरुषोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाश करनेके लिए ही मैंने अवतार लिया है ॥९॥ जब जब पृथ्वीपर अधर्म बढ़ता है, तब तब ही उस अधर्मको नष्ट करने और धर्मकी

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः ॥ मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥ एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ॥ संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥ अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ॥ विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥१०॥ एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ ॥ रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११ ॥ आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ॥ दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ॥ एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥ यानमास्थाय जह्येतद् व्यसनात् स्वान् समुद्धर ॥ एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥ १४ ॥

रक्षा करनेके लिए मैं अवतार लेता हूँ ॥१०॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विचार कर ही रहे थे कि उसी समय सूर्यके समान ध्वजा कवचसे सुसज्जित सारथिसहित दो रथ शीघ्र ही आकाशसे उतरे ॥ ११ ॥ तब अकस्मात् आये दिव्य शस्त्रोंसे सुसज्जित रथोंको देखकर हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदेवजीसे बोले कि ॥१२॥ हे आर्य ! हे श्रेष्ठ ! तुम जिनकी रक्षा करते हो, आज उन्हीं यादवोंको आकर दुःख उपस्थित हुआ है और इसलिए यह रथ और वीरघाती शस्त्र आये हैं ॥ १३ ॥ रथमें बैठ सब सेनाका संहार कर अपने यादवोंका

* अक्षौहिणीका प्रमाण—इक्कीससहस्र आठसौ सत्तर २१८७० रथ, इक्कीस सहस्र आठसौ सत्तर २१८७० गजपति, पैंसठ सहस्र छःसौ दश ६५६१० अश्वपति, एक लाख नौसहस्र तीनसौ पचास १०९३५० पैदल इसका नाम अक्षौहिणी " है ।

कष्ट दूर करो। हे ईश ! साधुलोगोंके कल्याणार्थ ही संसारमें आपका जन्म हुआ है ॥ १४ ॥ तेईस अक्षौहिणी सेना आकर उपस्थित हुई है और इसीका पृथ्वीपर बोझ है, इसको दूर करो। इस प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीने विचार कर, कवच पहन, सुन्दर शस्त्रोंको ले और कुछ थोड़ीसी सेनाके साथ पुरके बाहर निकल दारुक सारथीको लिये शंखध्वनि की ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसके उपरांत जरासन्धकी सेनाके हृदय भयभीत हो कम्पायमान होने लगे, तब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीको रणभूमिमें खड़ा देख जरासन्ध कहने लगा ॥ १७ ॥ हे अधम ! मुझे तेरे साथ युद्ध करनेमें अत्यन्त लज्जा आती है, क्योंकि तू बालक है, इसलिये तेरे संग युद्ध नहीं करूँगा।

त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ॥ एवं संमन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥ १५ ॥ निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽऽवृतौ ॥ शंखं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभूत् परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ॥ तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥ १७ ॥ न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ॥ गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥ १८ ॥ तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ॥ हित्वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ॥ न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसाऽऽवृणोत् ॥ ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥

रे मूर्ख ! तू गुप्त रहनेवाला अत्यन्त छली है, इसलिये तेरे साथ युद्ध करना उचित नहीं ॥ १८ ॥ हे राम ! जो तुझमें सामर्थ्य हो तो धैर्य धरके युद्ध कर और मेरे बाणोंसे कटे हुए देहको त्याग स्वर्गको जा, या संग्रामके बीचमें मेरा प्राण ले ॥ १९ ॥ हे परीक्षित ! ऐसे जरासन्धके वचन सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे जरासन्ध ! शूरवीर व्यर्थ बकवाद न कर अपने पुरुषार्थको दिखाते हैं और तुम्हारी मृत्यु निकट आ गयी है, इसलिये मैं तुम्हारे वचनोंपर अधिक ध्यान नहीं देता हूँ ॥ २० ॥ जैसे पवन, बादल, धूरि ये सूर्य और अग्निको घेर लेते हैं- इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके निकट जाकर जरासन्धने उनको अपनी बलवती सेना, प्यादे, रथ, ध्वजा, घोड़े और रथवानों

सहित घेर लिया ॥ २१ ॥ जब गरुड़ और तालकी ध्वजाके चिह्नवाले राम कृष्णके रथ युद्धमें नहीं दीखे, तब पुरीकी नारियां अटारी महल और द्वारोंपर खड़ी हुई शोकसे व्याकुल हो मोह करने लगीं ॥ २२ ॥ शत्रुकी सेनारूप बादलोंसे बारम्बार बाणोंकी भयंकर वर्षासे अपनी सेनाको पीड़ित देखकर श्रीकृष्णचन्द्र देवता व असुरोंसे पूजित उत्तम शार्ङ्गधनुषमें टंकार करने लगे ॥२३॥ तरकससे तीर निकालकर शीघ्र प्रत्यञ्चामें लगाके प्रत्यञ्चाको खींचकर तीक्ष्णबाणोंके समूहोंसे रथ, घोड़े, हाथी, पैदल मारकर जैसे सुलगती लकड़ीके घुमानेसे चक्र बँध जाता है, उसी प्रकार बाणोंके पीछे बाण मारने लगे ॥ २४ ॥ मस्तक कटनेसे हजारों हाथी, नाड़ी काटनेसे घोड़े पृथ्वीपर गिरने लगे। रथोंकी ध्वजा कट गयीं और रथवान् गिर गये, भुजा गर्दन कटनेसे पैदल गिर गये ॥ २५ ॥ युद्धमें पैदल,

सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथावलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे ॥ स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २२ ॥ हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ॥ स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २३ ॥ गृह्णन् निषंगादथ संदधच्छरान्विकृष्य मुञ्चञ्छितबाणपूगान् ॥ निघ्नन् रथान् कुञ्जरवाजिपत्तीन् निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥२४॥ निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतु रनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ॥ रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ॥ भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसंकुलाः ॥ अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २७ ॥

हाथी कटकर गिरने लगे तब उनके शरीरसे लोहूकी नदियें बहने लगीं, जिनमें भुजायें सर्पके सदृश दृष्टि आती थीं, मनुष्योंके शिर कच्छपसे जान पड़ते थे, मृत्युको प्राप्त हुए हाथी टापूके समान दीखते थे और रुधिरकी नदीमें घोड़े ग्राहसे पड़े थे ॥२६॥ भुजा व ऊरू मछलीके समान, मनुष्योंके केश सिवारके समान थे और नदीमें जो तरंगे उठती हैं, वही रुधिरकी नदीमें धनुषोंके समान हैं। नदीमें झाड़ झंकाड होते हैं, रुधिरकी नदियोंमें जो शस्त्र पड़े हैं वे ही झाड़ झंकाड़के समान हैं। नदीमें भँवर पड़ते हैं, सो रुधिरकी नदियोंमें ढालें मानो अति भयंकर भँवर पड़ रहे हैं। नदियोंमें कङ्कर पत्थर इत्यादि होते हैं, रुधिरकी नदियोंमें मणि गहने कंकण पत्थरके तुल्य हैं ॥ २७ ॥

हे राजन् ! महातेजस्वी बलदेवजीने संग्रामके बीच मतवाले शत्रुओंको मुसलायुधसे मार मार कर रुधिरकी नदियें बहा दीं, जो कि कायर पुरुषोंको भयकी देनेवाली और वीर पुरुषोंको आनन्दकी देनेवाली हैं ॥ २८ ॥ हे परीक्षित् ! दुर्मद वैरियोंको मूसलसे मार सागरके समान दुस्तर और भयंकर उस जरासन्धपालित सेनाको महापराक्रमी श्रीकृष्णबलदेवने मार मार कर नाश कर दिया । वसुदेवके पुत्र जगत्के ईश्वर कृष्ण बलदेवको सेनाको नाश करना एक साधारण बात है, कुछ पराक्रम नहीं है ॥२९॥ अनन्तगुणधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीलासे ही तीनों लोकोंका उत्पादन, पालन और संहार करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रको जरासन्धकी सेनाका मारना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, तो भी मनुष्योंके अनुकरण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके आश्चर्यमय कर्म तुमसे वर्णन करता हूँ ॥ ३० ॥

प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ॥ विनिघ्नताऽरीन् मुसलेन दुर्मदान् संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥२८॥ बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ॥ क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥२९॥स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया॥न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राह विरथं रामो जरासन्धं महाबलम् ॥ हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥ बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ॥ वारयामासगोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः ॥ तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥३३॥ वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ॥ स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३४ ॥

सेनाके नष्ट होने और रथ टूट जानेसे जब प्राणमात्र ही अवशेष रहा, तब बलवान् जरासन्धको जैसे सिंह सिंहको पकड़ता है उसी प्रकार बलपूर्वक बलदेवजीने पकड़ा ॥ ३१ ॥ शत्रुओंके मारनेवाले जरासन्धको वरुणपाश और मनुष्यपाशसे जब बलदेवजी बांधने लगे तब श्रीकृष्णचन्द्रने उसको छुड़ा दिया और कहा कि अभी जरासन्धसे और कुछ काम लेना है ॥ ३२ ॥ शूरवीरोंमें माननीय जरासन्धको त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण बलदेवने जिस समय छोड़ दिया, तब वह मनमें लज्जित होकर विचार करने लगा कि वनमें जा कर तप करना उचित है, घर जाकर क्या करूँगा ? तब मार्गमें जाते हुए राजाओंने निवारण किया ॥ ३३ ॥ धर्मके उपदेश करनेवाले

पदयुक्त नीतिके तुष्टिकारक वचन कहकर जरासन्धको समझाने लगे कि हे राजन् ! कोई तुम्हारा बड़ा ही दुष्कर्म आकर प्राप्त हुआ जो तुच्छ यादवोंने तुम्हें परास्त किया, अब तुम कुछ लाज मत करो ॥ ३४ ॥ जिस समय समस्त सेना नष्ट हो गई और श्रीकृष्णचन्द्रने छोड़ दिया, तब वह बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध अत्यन्त उदास होकर मगधदेशको चला गया ॥ ३५ ॥ शत्रुकी सेनारूप सागरसे तरकर और अपनी अक्षत सेना सङ्ग लिए जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रजीने मथुरापुरीमें प्रवेश किया, तब देवताओंने आकाशसे फूल वर्षाये और प्रशंसापूर्वक उनकी स्तुति की ॥३६॥ तब श्रीकृष्णचन्द्र अपनी मथुरापुरीमें आकर खेदरहित प्रसन्नमन पुरवासियोंसे मिले। सूत, मागध,

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ॥ उपेक्षितो भगवता मगधान् दुर्मना ययौ ॥ ३५ ॥ मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ॥ विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३६ ॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ॥ उपगीयमानविजयः सूतमागधबन्दिभिः ॥ ३७ ॥ शंखदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ॥ वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥३८॥ सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलङ्कृताम् ॥ निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥३९॥ निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ॥ निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ॥ यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत् प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ॥ युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४२ ॥

बन्दीजन उनके विजयके यशगान करने लगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र मथुरापुरीमें आये तब शंख, नगाड़े अनेक भेरी, तुरही, वीणा, बांसुरी और मृदंग यह सब बाजे बजने लगे ॥३८॥ मार्गमें छिड़काव हो रहा है, पताकायें लगायी गयी हैं और वेदध्वनिसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके शुभागमनसे घर घर बन्दनवारोंसे परिपूर्ण इस प्रकार मथुरापुरीकी शोभा हुई ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर स्त्री, पुरुष पुष्प, दधि, अक्षत और अंकुरोंकी वर्षा करने लगे। स्त्रियें, स्नेहसे प्रफुल्लित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखने लगीं ॥४०॥ शूरवीर राजाओंकी शोभा करनेवाले रणभूमिमें पड़े बहुत धन लाकर श्रीकृष्णचन्द्रने यादवराज उग्रसेनको दे दिया ॥४१॥ इसी प्रकार जरासन्ध

उतनी ही अक्षौहिणी सेना साथ ले लेकर सत्रह बार चढ़ आया और श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित यादवोंसे उसने युद्ध किया ॥४२॥ हे राजा परीक्षित् ! यादवगण श्रीकृष्णचन्द्रके तेजसे जरासन्धकी समस्त सेनाका संहार करने लगे, सम्पूर्ण सेना जब कट गयी और शत्रुने छोड़ दिया, तब जरासन्ध फिर अपने देशको चला गया ॥ ४३ ॥ अठारहवीं बार जरासन्ध तो आनेवाला था ही कि उसके पहले ही देवर्षि नारदजीका भेजा हुआ वीर कालयवन आकर दिखायी दिया ॥ ४४ ॥ संसारमें जिसके समान कोई योद्धा नहीं, ऐसा कालयन

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ॥ हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥ अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदन्तरा ॥ नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥ रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ॥ नृलोके च प्रतिद्वन्द्वो वृष्णीञ्श्रुत्वाऽऽत्मसंमितान् ॥४५॥ तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत् कृष्णः संकर्षणसहायवान् ॥ अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४६ ॥

यादवोंको अपने समान जान, उसने तीन करोड़ महाम्लेच्छ अतिभयावने इकट्ठे किये, जिनकी मोटी भुजा, बड़े गले, मैले दांत, भूरे केश घूँघचीके समान लाल लाल नयन उन्हें साथ ले डंका दे मथुरापुरीपर चढ़ आया और चारों ओरसे घेर लिया, क्योंकि देवर्षि नारदजीने इससे कहा था कि यादव लोग तुम्हारे समान हैं, इसलिए उनसे युद्ध करो ॥ ४५ ॥ उस समय श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवसहित इस दुरात्मा कालयवनको आया हुआ देखकर विचार करने लगे कि यादवोंको दोनों ओरसे कष्ट आकर उपस्थित हुआ है, बड़े ही आश्चर्यकी बात

+ शंका—तेइस अक्षौहिणी सेनाको जरासन्ध अपने संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये चढ़ आया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनाको मार डाला, बड़े आश्चर्यकी बात है कि, इतनी सेना जरासन्ध कहांसे ले आया ! पृथ्वीपर सेना तो बहुत थी परंतु दुष्ट सेना इतनी किधर थी, जिसको जरासन्ध सत्रह १७ बार बटोर बटोर कर ले आया और तेईस २अक्षौहिणीसेना सत्रह बार श्रीकृष्णने मार डाली, सब जोड़कर तीन सहस्र आठसौं ग्यारह ३८११ अक्षौहिणी हुई बड़े अचंम्भेकी बात है, कि इतनी सेनामें कोई भी शूरवीर नहीं था । जब श्रीकृष्ण ने मारा तो क्या जान पड़ा क्योंकि श्रीकृष्णके सामने शूरवीरको क्या सामर्थ्य थी और मर्यादा पालन करनेवाले श्रीकृष्णका अवतार भी हुआ फिर वीरोंकी मर्यादा क्यों बिनाश करी ?

उत्तर—जरानामक राक्षसीने जरासन्धको वरदान दिया था कि, तू जितनी सेना बनाना चाहेगा, उतनी सेना बिना लेगा इसलिये जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना बनाके श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये ले आया । मर्यादा पुरुषोत्तम मर्यादाके पालन करनेवाले श्रीकृष्णने विचार लिया कि, इस सेनामें शूरवीर नहीं हैं इसलिये जरासन्धकी सेनाका विनाश किया, मर्यादाका नाश नहीं किया ।

है ॥४६॥ क्योंकि अब तो यह महाबली हमको कालयवन घेर रहा है और फिर जरासन्ध आज या कल अथवा परसोंतक अवश्य ही आवेगा ॥ ४७ ॥ यदि इस समय हम इससे युद्ध करें और बीचमें जरासन्ध आ गया तो अवश्य ही हमारे बांधवोंका प्राणसंहार करेगा और जो न मारेगा तो बांधकर अपने पुरमें ही ले जायगा, क्योंकि वह बलवान् है ॥४८॥ इसलिए जहां मनुष्य न प्रवेश कर सकें ऐसा एक किला बनाकर उसमें अपनी जातिके यादवोंको रख फिर कालयवनका बध करूँ ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार मनमें विचार कर अड़तालीस कोस (बारह योजनका) समुद्रके बीचमें एक दुर्ग (किला) और उस किलेके बीचमें एक महा-अद्भुत आश्चर्यमय नगर बनाया ॥ ५० ॥ इस कारीगरीमें सब विश्वकर्माकी कारीगरी दिखाई देती है, राजाओंके जाने योग्य बड़े बड़े

यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ॥ मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥ ४७ ॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः ॥ बन्धून् वधिष्यत्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४८ ॥ तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ॥ तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४९ ॥ इति संमन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् ॥ अन्तस्समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥ ५० ॥ दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ॥ रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥ ५१ ॥ सुरद्रुमलतोद्यान विचित्रोपवनान्वितम् ॥ हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥५२॥ राजताऽऽरकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलङ्कृतैः ॥ रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥ वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ॥ चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥

बाजार, गली और चौक बन रहे हैं ॥ ५१ ॥ बीच बीचमें स्थान बनानेके लिए जगह छोड़ दी गयी हैं, कल्पवृक्ष और लतावाले फूलोंके बगीचे चित्र विचित्र फुलवारी, सुवर्णशिखरसे आकाशको स्पर्श करनेवाले ऊँचे ऊँचे स्फटिकमणिके अंटा बन रहे हैं और ऊँचे ऊँचे किलेके द्वार बन रहे हैं ॥५२॥ घोड़ोंके बांधने और अन्न भरनेके लिए लोहे और पीतलके स्थान बने हैं; उनके ऊपर सुवर्णके कलशे विराजमान हैं जिनसे इस नगरीकी अत्यन्त ही मनोहर शोभा हो रही है। जिनके पद्मरागमणिके शिखर और महामरकत मणिकी जिसमें पृथ्वी, इस प्रकार शोभायमान सुवर्णके गृह जहां तहां बन रहे हैं ॥५३॥ देवताओंके मंदिर और चित्र विचित्र चित्रसारी बन रही हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

एवं शूद्र ये वर्ण जिसमें वास करते हैं, यादव और देवराज उग्रसेनके महल तो अत्यन्त ही शोभायमान हैं॥५४॥देवराज इंद्रने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिए सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष भेजे, जो मनुष्य इस सभामें वास करता है, उसको भूख प्यास, शीत, गरमी, शोक और मोह इत्यादि कुछ भी नहीं सताते॥५५॥वरुणजीने श्यामकर्ण,श्वेतवर्ण,मनके समान वेगवान् घोड़े भेजे, पालन करनेवाले कुबेरजीने पद्म,महापद्म, मत्स्य,कूर्म, कुन्द, नील-कुमुद,शङ्ख,खर्व,यह आठ विभूतियां भेजी॥५६॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ परीक्षित्! भगवान् वासुदेवने इन देवता लोगोंको अपने अपने अधिकारकी सिद्धिके लिये जो कुछ सम्पदायें दी थीं, वे सब वस्तु जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीपर आये, उन्होंने लाकर अर्पण कर दीं ॥५७॥ उस द्वारिकापुरीमें योगके प्रभावसे सब यदुवंशियोंको पहुँचाकर श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीसे कहने लगे कि हे

सुधर्मां पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ॥ यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥ ५५ ॥ श्यामैककर्णान् वरुणो हयाञ्छुक्लान् मनोजवान् ॥ अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालो निजोदयान् ॥ ५६ ॥ यद्यद् भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ॥ सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५७ ॥ तत्र योगप्रभा वेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ॥ प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ॥ निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः ॥ ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥ दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभाऽऽमुक्तकन्धरम् ॥ पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥ २ ॥

वीर ! तुम यहां मथुरापुरीमें रहकर शेष प्रजाकी रक्षा करो, इस प्रकार बलदेवजीसे आज्ञा कर कमलनयन भगवान् कमलोंकी माला धारण किये शस्त्ररहित मथुरापुरीके दरवाजेसे बाहर निकले ॥५८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥ दोहा–कालयवन मुचुकुन्दकी, दृष्टि परत भो क्षार । जब हरिकी विनती करी, फिर इक्यावन बार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण ! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रजी रेशमी वस्त्र पहने हुए पुरसे बाहर निकले तो उनकी ऐसी शोभा हुई कि मानो निशानाथ चन्द्रमा उदय हुये ॥१॥ छातीमें भृगुलताका चिह्न, कण्ठमें कौस्तुभमणि धारण किये, चतुर्भुज, नवीन कमलके समान

अरुण नेत्र ॥२॥ नित्य प्रसन्न, शोभायमान और सुन्दर मुसकान, मकराकृति कुण्डलसे देदीप्यमान मुखारविंद ॥३॥ इस प्रकार मनोहर मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रकी देखकर कालयवन अपने मनमें विचार करने लगा कि ठीक कृष्ण यही है॥४॥क्योंकि देवार्षि नारदजीने जो जो लक्षण बताये थे सो सब इसमें पाये जाते हैं, इसके अतिरिक्त और कोई वासुदेव नहीं है और यह अकेला शस्त्ररहित चला जाता है, इसलिए मैं भी शस्त्ररहित पैदल होकर इसके सङ्ग युद्ध करूँ॥५॥ हे महाराज! इस प्रकार कालयवन मनमें निश्चय करके पराङ्मुख होकर भागते हुए योगीजनोंके भी हाथ न आवें,ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रके पकड़नेको पीछे दौड़ा*॥६॥पग पग पर"अब पकड़ा अब पकड़ा"ऐसे अपने आपको दिखाते-दिखाते-

नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ वासुदेवो ह्ययमिति पुमाञ्श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ॥ निरायुधश्चलन् पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥ इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् ॥ अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥ हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदेपदे ॥ नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥ ७ ॥ पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ॥ इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥ ८ ॥ एवं क्षिप्तोऽपि भगवान् प्राविशद् गिरिकन्दरम् ॥ सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ॥ इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥

म्लेच्छराज कालयवनको श्रीकृष्णचन्द्र बड़ी दूर पर्वतकी गुफामें ले गये ॥७॥ "यादवोंके कुलमें तू जन्मा है, इसलिए तेरा भागना उचित नहीं है" इस प्रकार आक्षेप करता हुआ महावेगसे दौड़ने लगा, परंतु पापी होनेके कारण श्रीकृष्णको न पकड़ सका, क्योंकि विना पाप नष्ट हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति नहीं होती है ॥८॥ हे परीक्षित्! जब म्लेच्छराज कालयवनने श्रीकृष्णचन्द्रपर दुर्वाक्यरूपी बाणोंका आक्षेप किया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफामें घुस गये, कालयवन भी दौड़ता हांफता इनके पीछे पीछे उस गुफामें घुस गया, वहां एक पुरुष और सो रहा था, उसे देख कालयवन विचार करने लगा ॥९॥ कि यह दुष्ट मुझे इतनी दूर लाकर यहां साधुकी नाईं

* शंका—कालयवनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान् क्यों भाग गये, इसका क्या कारण ?

शयन कर रहा है, इस प्रकार कालयवनने निश्चय कर उस सोते हुए पुरुषको कृष्ण जानकर एक लात मारी ॥१०॥ वह पुरुष बहुत दिनोंका सोया हुआ था, इसलिये धीरे धीरे नेत्र खोल चारों ओर देख उसने कालयवनको देखा ॥ ११ ॥ हे भरतवंशी राजा परीक्षित् ! उसी समय क्रोधी मुचुकुन्दके देखनेसे कालयवनके शरीरसे ऐसी अग्नि प्रकट हुई कि जिससे उसका शरीर क्षणभरमें जल भुनकर भस्म हो गया ॥ १२ ॥ यह सुन राजा परीक्षित् पूछने लगे कि हे ब्रह्मन् ! जिसने अपनी क्रोधाग्निसे कालयवनका प्राण-संहार किया, उसका क्या नाम और वह कौन पुरुष है ? उसने किसके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, क्या उसका प्रभाव है, किसका पुत्र है ? और किसलिये इस गुफामें

**स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ दिशो विलोकयन् पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥
स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ॥ देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥१२॥ राजोवाच ॥ को नाम
स पुमान्ब्रह्मन्कस्य किंवीर्य एव च ॥ कस्माद् गुहां गतः शिश्ये किंतेजो यवनार्दनः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स
इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान् ॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥१४॥ स याचितः सुरग-
णैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे ॥ असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥ लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथा-
ब्रुवन् ॥ राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥ १६ ॥**

सोता था ? सो सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मुझे सुनाइये ॥१३॥ तब श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित् ! इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न मान्धाताका पुत्र गुणवान् ब्राह्मणोंका भक्त मुचुकुन्द नाम राजा था ॥१४॥ एक समय असुरोंसे भयभीत होकर इन्द्रादिक देवताओंने अपनी रक्षा करनेके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की तो इन्होंने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा की ॥ १५ ॥ इसके उपरांत स्वर्गके पालन करनेवाले स्वामिकार्तिकजीको आया हुआ देखकर सब देवता इनसे कहने लगे कि हे राजा मुचुकुन्द ! हमारी रक्षा करनेमें जो कुछ कष्ट आपको

उत्तर—एक समय यदुवंशी अपनी सभामें अपने कुलकी कन्याके वचनोंका स्मरण कर गर्गाचार्यको हँसने लगे,गर्गाचार्य तो श्रीभगवान्के पूजनमें रात दिन रहते थे और स्त्रीसे प्रीति कम रखते थे इससे उनकी स्त्रीने अपने यादवोंसे कहा कि गर्गमुनि नपुंसक हैं—इससे यदुवंशी उक्त मुनिकी हँसी किया करते थे, इसलिये गर्गने यादवोंका नाश करनेके लिये एक पुत्र उत्पन्न करके उसी पुत्रको वरदान दिया कि हे पुत्र ! युद्धमें यदुवंशी तेरे कुलके सामने अथवा तेरे सामने जो खड़े होंगे तो उसी समय भाग जायँगे श्रीकृष्णचन्द्र इस बातको जानकर भाग गये हैं ।

हुआ है, इससे निवृत्त होकर आराम करो ॥ १६ ॥ हे वीर ! तुमने मनुष्यलोकके निष्कंटक राज्यको त्यागकर हमारी रक्षा की है, इससे तुम्हारे विषयके भोग छूटे ॥ १७ ॥ और तुम्हारे पुत्र, रानी जातिके बन्धु बान्धव दीवान, मन्त्री, राज्यकी प्रजा इसमेंसे अब कोई शेष नहीं है; सबका कालने संहार कर दिया ॥ १८ ॥ काल बलवान्से बलवान् है, भगवान्की शक्ति है, समर्थ, अविनाशी है और जिस प्रकार पशुओंका पालन करनेवाला ग्वालिया पशुओंको चराता है, उसी प्रकार आप क्रीडा करके सब प्रजाको इधर उधर चलाता है ॥ १९ ॥ सब देवता कहने लगे कि हे राजा मुचुकुन्द ! तुम्हारा कल्याण हो, मोक्षके अतिरिक्त और जो इच्छा हो सो वर मांगो,

नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकम् ॥ अस्मान्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥१७॥ सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः ॥ प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना सन्ति कालिताः ॥ १८ ॥ कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ प्रजाः कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १९ ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ॥ एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ ॥ २० ॥ एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ॥ निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्शितः ॥ २१ ॥ यः कश्चिन्मम निद्राया भंगं कुर्यात्सुरोत्तमाः ॥ स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा ॥ २२ ॥ अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत् त्वामचेतनः ॥ स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥२३॥ यवने भस्मसान्नीते भगवान् सात्वतर्षभः ॥ आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥ २४ ॥

क्योंकि मोक्षके दाता तो केवल एक विष्णु भगवान् ही हैं ॥ २० ॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार देवतालोगोंने कहा तब महायशस्वी राजा मुचुकुन्दने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा करनेसे श्रमित होनेके कारण यह वर मांगा कि मैं सोता ही रहूँ और जो कोई मेरी निद्रा भंग करे, वह उसी समय भस्म हो जाय, यह वर मांगा। देवताओंने कहा कि ऐसा ही होगा, तब राजा मुचुकुन्द देवताओंकी आज्ञा पाकर पर्वतकी गुफामें जाकर सो रहा ॥ २१ ॥ २२ ॥ इससे देवताओंने कह दिया था जो तुम्हारी निद्रा भग करेगा वह तत्काल ही जलके भस्म हो जायगा ॥२३॥ जब कालयवन जलके भस्म हो गया, तब चतुर्भुज रूप होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा मुचुकुन्दको

अपना दर्शन दिया ॥ २४ ॥ मेघके समान श्यामवर्ण, पीत वस्त्र धारण किये, हृदयमें प्रकाशमान भृगुलताका चिह्न और कौस्तुभमणि धारण करनेसे अत्यन्त ही देदीप्यमान हो रहे थे ॥२५॥ चतुर्भुज, वैजयन्ती मालासे सुशोभित और दमकते हुए मकराकृति कुण्डलोंसे शोभायमान हो रहे थे ॥२६॥ देखने योग्य प्रेमभरी मुसकानसहित विलक्षण और नवीन अवस्थायुक्त मतवाले सिंहके समान पराक्रमी ॥२७॥ इस प्रकार श्रीकृष्णका तेज देखते ही भयभीत होकर राजा मुचुकुन्द धीरे धीरे पूछने लगा ॥ २८ ॥ राजा मुचुकुन्द बोला कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कौन हो ? कमलके समान कोमल आपके चरण हैं और इस पर्वतकी गुफामें किसलिये आये हो ? जो कांटोंके वनमें

तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ २५ ॥ चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ २६ ॥ प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ॥ अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २७ ॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ शङ्कितः शनकै राजादुर्धर्षमिव तेजसा ॥ २८ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ को भवानिह संप्राप्तो बिपिने गिरिगह्वरे ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥२९॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान् वा विभावसुः ॥ सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालोऽपरोऽपि वा ॥३०॥ मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ॥ यद्बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥ ॥ ३१ ॥ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ॥ स्वजन्मकर्मगोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥ ३२ ॥ वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ॥ मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥ ३३ ॥

विचरते फिरते हो ? ॥ २९ ॥ क्या आप तेजस्वी भगवान् अग्नि हैं वा सूर्य हैं अथवा चन्द्रमा हैं या इन्द्र हैं किंवा समस्त लोकपालोंके कर्त्ता या देवता हैं ? ॥३०॥ अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओंमेंसे कोई हो ? मुझे जान पड़ता है कि आप विष्णु भगवान् हैं क्योंकि जैसे दीपक अपने प्रकाशसे अन्धकारका नाश कर देता है, वैसे ही आपने अपने तेजसे इस गुफाका अन्धकार नष्ट कर दिया ॥३१॥ यह सुन श्रीभगवान् बोले कि हे वीर ! हमें आपका जन्म कर्म व गोत्र सुननेकी अत्यन्त अभिलाषा है, सो प्रसन्नतापूर्वक हमें सुनाइये ॥३२॥ तब मुचुकुन्दने कहा कि हे पुरुषसिंह ! मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ, मान्धाताका पुत्र और मुचुकुन्द मेरा नाम

है ॥ ३३ ॥ मैं बहुत दिनोंमें जागा हूँ, इसलिये मुझे खेद प्राप्त हुआ है और नींदके मारे मेरी इंद्रियें चलायमान हो रही हैं, क्योंकि मैं इच्छानुसार इस वनमें सो रहा था और अभी किसीने आकर जगा दिया ॥ ३४ ॥ और जिसने मुझे आकर जगाया, वह पुरुष उसी समय जलकर भस्म हो गया, उसके पीछे आपके दर्शन हुये ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा असह्य तेज बहुत कालतक हम नहीं देख सकते, क्योंकि आप देहधारियोंके माननीय हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जब राजा मुचुकुन्दने प्रार्थना की तब सम्पूर्ण प्राणियोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहने लगे ॥ ३७ ॥ कि हे मुचुकुन्द ! मेरे जन्म, कर्म और नामका

चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयापहतेन्द्रियः ॥ शयेऽस्मिन्विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३४ ॥ सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ॥ अनन्तरं भवाञ्श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३५ ॥ तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ॥ हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥ ३६ ॥ एवं संभाषितो राज्ञा भगवान् भूतभावनः ॥ प्रत्याह प्रहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधाननि संति मेऽङ्ग सहस्रशः ॥ न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥ ३८ ॥ क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ॥ गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३९ ॥ कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ॥ अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥४०॥ तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ॥ विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराऽहं धर्मगुप्तये ॥ भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥ ४१ ॥

अन्त नहीं है, इसलिये मैं भी उनकी गणना नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥ अनेक जन्म धारण करके कदाचित् मनुष्य पृथ्वीके रजःकणोंकी तो गणना कर सकता है परंतु मेरे गुण कर्म, जन्म, नामकी गिनती नहीं कर सकता ॥ ३९ ॥ हे राजा मुचुकुन्द ! भूत, भविष्य, वर्त्तमान मेरे जन्मोंकी गणना करते करते बड़े बड़े ऋषि, मुनि भी पार न पा सके ॥ ४० ॥ तो भी हे अङ्ग ! अभीके जो मेरे नाम कर्म हैं सो मैं कहता हूँ, तुम श्रवण करोः—पृथ्वीका भार उतारने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्रथम कमलयोनि ब्रह्माजीने मेरी प्रार्थना

की थी ॥ ४१ ॥ इस कारण यदुवंशमें वसुदेव के गृह मैंने जन्म लिया, इसलिये मेरा नाम वासुदेव प्रसिद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ हे मुचुकुन्द ! साधुद्वेषी कालनेमि कंस इत्यादिकका मैंने वध किया और यह जो कालयवन है, सो आपकी तीक्ष्ण दृष्टिसे भस्म हो गया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! पहले आपने मेरी प्रार्थना की थी, इसलिये मैं तुमपर अनुग्रह करनेके लिये इस गुफामें आया हूँ ॥ ४४ ॥ हे मुचुकुन्द ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, वर मांगो, क्योंकि मेरी शरण आनेसे मनुष्यको फिर किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब प्रसन्न हो गर्गाचार्यके वचन स्मरण कर उन्हें साक्षात

अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ॥ वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥ ४२ ॥ कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्द्विषः ॥ अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४३ ॥ सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ॥ प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाऽहं भक्तवत्सलः ॥ ४४ ॥ वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान् कामान् ददामि ते ॥ मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ॥ ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४६ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ॥ सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ॥ ४७ ॥ लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथंचिदव्यंगमयत्नतोऽनघ ॥ पादारविन्दं न भजत्यसन्मतिर्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४८ ॥ ममैषकालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ॥ मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥ ४९ ॥

परिपूर्ण भगवान् जान प्रणाम करके राजा मुचुकुन्दने कहा ॥ ४६ ॥ कि हे ईश ! तुम्हारी मायासे ये लोग मोहित होकर अनर्थ (जगत्) की ओर दृष्टि लगाकर सुखके लिये दुःखमूल घरोंमें रहकर क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी ठगकर मोहित हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ जैसे कच्चा घड़ा क्षणभरमें फूट जाता है, बालूकी भी (दीवार) जैसे क्षणभरमें गिर जाती है, ऐसे ही इस शरीरका भी विश्वास नहीं, इस शरीरका मैंने इतना अभिमान किया है कि रथ, घोड़े, हाथी, पैदल, सेना और मुख्य मुख्य सेनाध्यक्षको साथ लेकर पृथ्वीपर विचरता रहा, परंतु काल-

रूप आपका स्मरण कभी न किया, इसलिये मेरा इतना समय व्यर्थ गया ॥४८॥४९॥ अमुक अमुक कार्य इस रीतिसे करना, ऐसे संदेहोंमें प्रमत्त रहने वाले, मनोरथ पूर्ण होनेसे भी इच्छावाले और इच्छानुसार कार्य पूरा होनेपर भी लोभ और लालच जिसका बढ़ जाता है, ऐसे मनुष्यको मुखसे जिस प्रकार गलाफू चाटता सर्प उन्दर (मूसा) को पकड़ लेता है, उसी प्रकार अप्रमत्त (सावधान) कालस्वरूप आप झपट लेते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मनुष्यदेव अर्थात् राजा यह नाम धरकर जो सुवर्णके बने रथोंपर बैठकर चलते हैं, सो देह दुरत्यय काल करके मरे पीछे कुत्ते सियार यदि भक्षण कर लें तो विष्ठा हो जाय, पड़ा रहे तो कृमि पड़ जायँ और अग्निमें जला दिया तो भस्म हो जाय, इस प्रकार तीन नामोंको धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ हे भगवन् ! जिस पुरुषने सम्पूर्ण दिशाओंको जीत लिया है, जिसको संग्राममें कोई शेष

कलेवरेऽस्मिन् घटकुडयसंनिभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ॥ वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वाऽगणयन् सुदुर्मदः ॥ ५० ॥ प्रमत्तमुच्चैरिति कृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषुलालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ५१ ॥ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन् मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ॥ स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५२ ॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवन्दितः ॥ गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥ ५३ ॥ करोति कर्माणि तपस्सु निष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाऽऽददत् ॥ पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ५४ ॥ भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ॥ सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥ ५५ ॥

नहीं रहा और जिसे सब बराबरके राजा प्रणाम करते हैं, ऐसे उत्तम सिंहासनपर विराजमान चक्रवर्ती राजा भी मैथुन करनेके लिये घरोंमें क्रीड़ामृगके समान स्त्रियोंसे नाच नचाये जाते हैं, जैसे बाजीगर बन्दरको नचाता है ॥५३॥ प्रथम यह पुरुष सब विषयोंको त्यागके तपमें बड़ी श्रद्धा कर पृथ्वीमें शयन करता है और ब्रह्मचर्य रहकर विषय भोगनेके लिए दान पुण्य करता है और फिर विचार करता है कि इस जन्ममें तप कर चक्रवर्ती राजा हो तपस्याके प्रभावसे फिर इंद्र हो जाऊँगा, इस प्रकार तृष्णाके बढ़नेसे उस पुरुषको कभी सुख नहीं होता ॥५४॥ हे भगवन् ! इस संसारमें जन्म मरण प्राप्त हुए जीवको जिस समय आपके अनुग्रहसे संसारका अन्त होता है, उस समय आपके भक्तोंका सत्संग हो तो सब सङ्गको त्यागकर कार्य कारणके नियन्ता आपमें जो भक्ति करते हैं, वे संसारके बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥५५॥

हे ईश्वर ! यह आपने बड़ा ही अनुग्रह किया, जो मैं अकस्मात् राज्यबंधनोंसे छूट गया, यह मैं मानता हूँ, राज्य छूटनेके लिये अकेला होकर वनमें जानेकी इच्छा करनेवाले चक्रवर्ती राजा भी प्रार्थना करते हैं कि हमारा किसी प्रकार राज्यबंधन छूट जाय, जिसमें स्वाधीन होकर वनमें जा बैठें ॥ ५६ ॥ हे समर्थ ! निष्किंचन साधुसे पूजित तुम्हारे चरणारविंदोंका सेवन करनेसे मैं और किसी वरकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि साक्षात् मोक्षके देनेवाले तुम्हारा आराधन करके ऐसा कौन विवेकी पुरुष है आत्माका बन्धनरूप वर मांगेगा ? ॥ ५७ ॥ हे ईश ! इसी लिये सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, इनके बन्धन और ऐश्वर्य, अथवा शत्रुका विनाश और धर्मादिक मनोरथको त्याग ज्ञानघन, निरंजन, उपाधिरहित, निर्गुण, अद्वैत ईश्वर मैं आपकी शरण आया हूँ ॥ ५८ ॥ हे अच्युत ! मैं इस संसारमें बहुत दिनोंसे

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ॥ यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥ ५६ ॥ न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिंचन प्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ॥ आराध्यकस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥ ५७ ॥ तस्माद् विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमस्सत्त्वगुणानुबंधनाः ॥ निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ चिरमिहवृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथंचित् ॥ शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽपन्नमीश ॥ ५९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ॥ वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ६० ॥ प्रलोभितो वरैर्यस्त्वमप्रमदाय विद्धि तत् ॥ नधीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥ ६१ ॥

मनुष्य मुखसे जिस प्रकार गलाफू चाटता सर्प उन्दर (मूसा) को पकड़ लेता है, उसी प्रकार अप्रमत्त (सावधान) कालस्वरूप आप कर्मफलोंके कारण दुःखी हूँ कर्मोंकी वासनाओंसे पीड़ित हूँ और तृष्णा सहित जो ये छः इंद्रियरूप शत्रु मेरे पीछे पड़े रहे हैं इस लिये मुझे किसी प्रकारसे शांति नहीं है, अब मैं जैसे तैसे शोकरहित भयके दूर करनेवाले तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण आ गया हूँ, सो मेरी रक्षा करो ॥ ५९ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे राजन् ! तुम्हारी बुद्धि बड़ी निर्मल और उदार है, क्योंकि मैंने वर देनेके लिये कहकर तुम्हें लोभ उत्पन्न किया, तो भी कामना करके तुम्हारी बुद्धि चलायमान न हुई॥ ६० ॥ मैंने वर देनेके लिये कहकर जो लोभ उत्पन्न

किया, सो तुझे सचेत किया है और हे राजन् ! यह तू निश्चय जान कि मेरे भक्तोंको कदाचित् दुःख आकर प्राप्त हो तो भी उनकी बुद्धि चलायमान नहीं होती ॥ ६१ ॥ हे मुचुकुन्द ! जो मेरे भक्त नहीं हैं, वे प्राणायामादि साधनोंसे मनको वश करते हैं तो भी उनका मन विषयोंके लोभमें जाता हुआ दीखता है; क्योंकि उनकी वासना क्षीण नहीं हुई ॥ ६२ ॥ हे वीर ! मुझमें मन लगाकर जहां आपकी इच्छा हो वहां विचरण करो और तुम्हारी भक्ति नित्यप्रति मुझमें रहेगी ॥ ६३ ॥ क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर शिकार खेलकर जो जीवोंकी हिंसा की है सो जब सावधान होकर मेरा आश्रय लेकर तप कर, जिससे तेरे सब पाप छूट जायँ ॥ ६४ ॥ हे राजा मुचुकुन्द ! दूसरे

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ॥ अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥६२॥ विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ॥ अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६३ ॥ क्षात्रधर्म स्थितो जन्तून्न्यवधीर्मृगयादिभिः ॥ समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६४ ॥ जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥ भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीभाग० महापु० दशमस्कन्धे उत्त० मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥१॥ स वीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ॥ मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतो धीरो निस्सङ्गो मुक्तसंशयः ॥ समाधाय मनःकृष्णे प्राविशद् गन्धमादनम् ॥ ३ ॥

जन्ममें सब प्राणियोंके हित करनेवाले शुद्ध रूप मुझे प्राप्त होंगे ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मुचुकुन्दस्तुतिर्नाम एक पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ दोहा–बावनवें अध्यायमें, रुक्मिणिको सन्देश । द्विजवर लेगो द्वारका, जहँ श्रीकृष्ण ब्रजेश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णसे अनुगृहीत होके इक्ष्वाकुनन्दन मुचुकुन्द श्रीकृष्णकी परिक्रमा दे नमस्कार कर गुफासे बाहर निकल आये ॥ ॥ १ ॥ राजा मुचुकुन्द मनुष्य, पशु, लतादिक और छोटे छोटे वृक्षोंको देखकर "अब कलियुग आ गया" इस प्रकार निश्चय कर उत्तर दिशाको चले गये ॥ २ ॥ वहांसे फिर श्रद्धापूर्वक सब संग त्याग संदेहरहित हो राजा

* श्रीकृष्णजी मर्त्यलोकमें विराजते थे; फिर उनके सामने पृथ्वीपर मनुष्य, पशु, वृक्ष, पर्वत आदि लेके जो सब वस्तु प्रथम बड़ी-बड़ी थी, सो वस्तु छोटी-छोटी क्यों हो गई ? यह बड़ा आश्चर्य है ! क्योंकि कृष्ण भगवान्–

मुचुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाकर गंधमादन पर्वत पर चले गये ॥३॥ हे नृपोत्तम ! फिर नरनारायणके स्थान बदरिकाश्रममें जाकर समस्त द्वन्द अर्थात् सुख, दुःख, भूख, प्यास, शीत, उष्णादि सहकर शान्तस्वरूप मुचुकुन्द तप करके भगवान् वासुदेवकी आराधना करने लगा ॥ ४ ॥ फिर इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रने म्लेच्छोंसे घिरी मथुरापुरीमें आकर म्लेच्छोंकी सब सेनाका संहार किया और उनका सब धन लेकर द्वारकापुरीको भेज दिया ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा पाते ही मनुष्य बैलोंके ऊपर धन लादकर जब ले चले तब जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर फिर चढ़ आया ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी शत्रुकी सेना को देख मनुष्यावतारके

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ॥ सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥४॥ भगवान् पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ॥ हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥ नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ॥ आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥ विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ॥ मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन् दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥ विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥ पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ॥ अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥ प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम् ॥ प्रवर्षणाख्यं भगवान् नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥

कारण शीघ्र ही उठकर भागे ॥७॥ यद्यपि इन्हें किसीका डर नहीं था तो भी बहुत भयभीत हो गये, इसलिए बहुतसे धन मार्गमें छोड़ कमलसे कोमल चरणोंसे बहुत दूरतक कोसों भागे चले गये ॥ ८ ॥ तब जरासन्ध बोला–"काहे डरके भागे जाते । ठाढ़े रहो करो कुछ बातें ॥ परत उठत कंपित अति भारी । आई है ढिग मीचु तुम्हारी॥" मगधदेशके राजा जरासन्ध कृष्ण बलदेवको भागता हुआ देख हँसकर आप भी उनके पीछे दौड़ने लगा ॥ ९ ॥ बहुत दूरतक भागनेके कारण श्रमित होकर श्रीकृष्ण और बलरामजी प्रवर्षणनाम

-मृत्युलोकमें बैकुण्ठको चले जातें तब बड़ी वस्तु छोटी छोटी हो जाती तो शंका न होती, श्रीकृष्णके सामने विपरीत होनेका क्या कारण ?

उत्तर—द्वापरयुगमें जैसी प्रजा ब्रह्माने बनाई थी, वैसे ही प्रजा मर्त्यलोकमें उसी समय थी, न तो तिल समान कम और न तिल समान अधिक, परंतु राजा मुचुकुन्दने श्रीकृष्णके दर्शनकी प्रीतिसे प्रसन्न होकर पर्वतसे भी छोटा समझा और पदार्थोंकी तो क्या बात है इसका यह अर्थ कि, कृष्णके दर्शनसे सब वस्तुको राजासे छोटा समझा, एक कृष्णके स्नेही ही को बड़ा समझा ।

पर्वतपर चढ़ गये, जिसपर देवराज इंद्र नित्य जल वर्षाते रहते थे ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! जरासन्धने कृष्ण बलरामको पर्वतपर चढ़ा जान उनको बहुत ढूँढ़ा परंतु कहीं पता न लगा तब उस पर्वतके चारों ओर आग लगा दी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जब पर्वत जलने लगा तब श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव दोनों भ्राता उस ४४ चवालिस कोस ऊँचे पर्वतके शिखरसे उछलकर पृथ्वीपर कूद पड़े ॥१२॥ हे महाराज ! सेवकों सहित जरासन्धसे अलक्षित यादवोंमें श्रेष्ठ कृष्ण बलराम समुद्रकी खाईसे युक्त द्वारकापुरीमें चले आये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जब समस्त पर्वत जलकर भस्म हो गया तब मगध देशके राजा जरासन्धने विचार किया कि कृष्ण बलदेव भी इसीके सङ्ग ही जल कर भस्म हो गये, इसीलिए अपनी सब सेना साथ लेकर मगधदेशको चला गया ॥ १४ ॥ यद्यपि अब श्रीकृष्णचन्द्रके विवाहकी कथा

गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप ॥ ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥ तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ॥ दशैकयोजनोतुङ्गान्निपेततुरधो भुवि ॥ १२ ॥ अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ॥ स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १३ ॥ सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ॥ बलमाकृष्य सुमहन्मगधान् मागधो ययौ ॥ १४ ॥ आनर्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रेवतीं सुताम् ॥ ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद् बलायेति पुरोदितम् ॥ १५ ॥ भगवानपि गोविंद उपयेमे कुरूद्वह ॥ वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥ ॥ १६ ॥ प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ॥ पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ॥ राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥ १८ ॥

करनेके लिए प्रथम (नवमस्कन्धमें) बलदेवजीके विवाहकी कथा वर्णन कर आये हैं, तो भी फिर एक श्लोकमें वर्णन करते हैं। हे परीक्षित् ! आनर्त्तदेशके राजा रैवतने कमलयोनि ब्रह्माजीके कहनेसे अपनी पुत्री रेवतीका बलदेवजीसे विवाह कर दिया, यह पहले कह चुके हैं॥१५॥हे भरतवंशावतंस परीक्षित्।भगवान् वासुदेव भी स्वयंवरमें जाकर लक्ष्मीजीके अंशसे विदर्भ देशमें उत्पन्न हुई भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको विवाह लाये ॥ १६ ॥ शाल्व और शिशुपालादिक राजाओंकी सेनाको जीत सब लोकोंके देखते हुए जैसे देवताओंको जीतकर गरुड़जी अमृत ले आते हैं इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणिजीको ले आये ॥१७॥ इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित बोले कि

हे ब्रह्मन्! अत्यन्त स्वरूपवान् राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको युद्धमेंसे हरके श्रीकृष्णचन्द्रने व्याहा, यह वार्ता हमने आपके मुखसे सुनी है ॥ १८ ॥ हे व्यासनन्दन! जरासन्ध, शाल्व इत्यादि राजाओंको जीतकर जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीको लाये वह चरित्र सुननेकी मेरी अत्यंत अभिलाषा है सो प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये ॥१९॥ हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्णचन्द्रकी कथा अत्यन्त पवित्र और मनोहर समस्त लोकोंके पापोंका नाश करनेवाली है, नित्य नवीन सुननेके सारको जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष है जो ऐसी कथायें सुनकर तृप्त हो? ॥ २० ॥ जब राजाने यह वचन कहे तब श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्! विदर्भदेशका पालन करनेवाला महा-यशस्वी भीष्मक नाम राजा था, उसके पांच पुत्र और परमस्वरूपवती एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ उन पुत्रोंमें सबसे बड़ा रुक्मी,

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः ॥ यथा मागधशाल्वादीञ्जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्यामाध्वीर्लोकमलापहाः ॥ को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजाऽऽसी-द्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ॥ तस्य पञ्चाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥ रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ॥ रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥ २२ ॥ सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुण श्रियः ॥ गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥ २३ ॥ तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ॥ कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥ २४ ॥ बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ॥ ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत ॥ २५ ॥

उससे छोटा रुक्मरथ, उससे छोटा रुक्मबाहु, उससे छोटा रुक्मकेश और रुक्ममकेशसे छोटा रुक्ममाली, ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए और पांचोंकी बहन परम सुशील पतिव्रता रुक्मिणी हुई ॥ २२ ॥ घरमें आये हुये देवर्षि नारदजीके मुखसे श्रीकृष्णचन्द्रका गुणानुवाद सुनकर श्रीरुक्मिणीजीने अपने समान जान विवाह करनेके लिए प्रतिज्ञा की ॥ २३ ॥ और इधर सुन्दर बुद्धि, उदारता, रूप, पराक्रम, शोभायुक्त रुक्मिणीके गुण सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने समान स्त्रीको ब्याहनेका अभिलाष किया ॥ २४ ॥ हे राजन्! माता, पिता भ्राता आदि सबकी यही इच्छा थी कि रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णचन्द्रके साथ करेंगे, परन्तु श्रीकृष्णचंद्रका शत्रु रुक्मी "हम

अपनी बहनका विवाह कृष्णके साथ नहीं करेंगे" इस प्रकार निषेधकर 'रुक्मिणीके योग्य वर शिशुपाल है' यह निश्चय मनमें किया ॥ २५ ॥ सुन्दर कटाक्षवाली विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीने सुना कि श्रीकृष्णके साथ मेरा भाई ब्याहनेको निषेध करता है, यह जान बहुत उदास होकर उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाकर श्रीकृष्णचन्द्रके लिवा लानेके लिए भेजा ॥२६॥ हे राजन् ! वह ब्राह्मण जिस समय द्वारकापुरीमें पहुँचा उसी समय द्वारपालोंने इसे भीतर पहुँचाया, वहां इसने सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान आदि पुरुष भगवान् वासुदेवके दर्शन किये ॥२७॥ गौ ब्राह्मणोंके पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उस ब्राह्मणको देखते ही सिंहासनपरसे उतर पड़े और ब्राह्मण को सिंहासनपर बिठाकर जिस प्रकार कोई अपने देवताकी पूजा करता है उसी प्रकार पूजा करने लगे ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् !

तदवेत्यासितापांगी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ॥ विचिन्त्याऽऽप्तं द्विजं कञ्चित्कृष्णाय प्राहिणोद्द्रुतम् ॥ २६ ॥ द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं काञ्चनासने ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ॥ उपवेश्यार्हयाञ्चक्रे यथाऽऽत्मानं दिवौकसः ॥ २८ ॥ तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः ॥ पाणिनाऽभिमृशन् पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥ कच्चिद् द्विजवर श्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसम्मतः ॥ वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥ ३० ॥ संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ॥ अहीयमानः स्वाद्धर्मात् स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥ असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ॥ अकिञ्चनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्ज्वरः ॥ ३२ ॥

जब ब्राह्मण भोजन कर चुका और मार्गकी थकावट दूर हो गई, तब सत्पुरुषकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके निकट जा अपने

हाथोंसे उसके चरण दाबते दाबते यह पूछा ॥२९॥ कि हे द्विजश्रेष्ठ ! वृद्धसम्मत तुम्हारा धर्म बहुत कठिनतापूर्वक तो नहीं चलता है ? सदा तुम्हारे मनमें संताप तो वर्त्तमान है ? ॥३०॥ जिस किसी प्रकारसे ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर वर्तें अर्थात् जो वस्तु मिले उसीमें सन्तोष रखे, स्वधर्मसे च्युत न हो तो यही उसको समस्त फलके देनेवाला है ॥ ३१ ॥ और जिसके मनमें सन्तोष नहीं है वह ब्राह्मण यद्यपि इंद्र हो जाय तो भी सब लोकोंमें घूमता फिरता है, तृष्णाके मारे एक स्थानपर स्थिर नहीं रहता। हे ब्राह्मण ! प्रारब्ध ही तो मनुष्यको राजा रंक

करता है * और जिसके पास कुछ भी नहीं है और मनमें सन्तोष है, वह ब्राह्मण सब खेदको त्यागकर आनंदपूर्वक सोता है ॥३२॥ जो द्विज आप ही मिली वस्तुमें संन्तोष करता है, अपने धर्ममें निष्ठ है और समस्त जीवोंकी रक्षा करता है, शान्तस्वभाव, अहंकार रहित है; उसको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस राजाके देशमें तुम वास करते हो, वह राजा तो तुमपर प्रसन्न है ?

विप्रान् स्वलाभसंतुष्टान्साधून् भूतसुहृत्तमान् ॥ निरहङ्कारिणः शान्तान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥ ३३ ॥ कच्चिद् वः कुशलं ब्रह्मन् राजतो यस्य हि प्रजाः ॥ सुखं वसन्ति विषये पाल्यमाना स मे प्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ॥ सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत् किं कार्यं करवाम ते ॥ ३५ ॥

क्योंकि जिस राजा के देशमें भलीभांति गौ ब्राह्मणका पालन होता है, वह राजा मुझे अत्यन्त प्यारा लगता है ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तम ! समुद्रको उल्लंघन कर जिस कार्य करनेकी इच्छासे आप यहांपर आये हैं, जो कहने योग्य वार्त्ता हो तो हमारे सम्मुख कहो, जिससे उस

---

* दृष्टान्त—एक घोड़ोंके व्यापारीके घोड़ेसे राजाके पुत्रका कोई रोग जाता रहा तब राजाने व्यापारीसे कहा कि इस घोड़ेकी कीमत ले ली। व्यापारी ने कहा—महाराज ! यह घोड़ा कुमारके चढ़नेको मैंने वैसे ही दिया और मुझे द्रव्यकी इच्छा नहीं। जब उसने ऐसा कहा तब राजाने उसका बहुत आदर सम्मान कर विदा किया और कहा कि यहां आते जाते रहियेगा। अब कुछ वर्ष उपरान्त व्यापारीका प्रारब्ध बिगड़ गया, अतः धन सब चोरी हो गया घोड़े सब मर गयेऔर जब कुछ उपाय न चला तो राजाके पास आया। राजाने यह समाचार सुन, उसे एक मकान मे टिका दिया और कुछ दिन पीछे उससे भेंटकर पूछा कि तुमको क्या बनाना आता है ? व्यापारी बोला कि मैं चाबुक बनाना जानता हूँ। राजाने उस समय पांच रुपये देकर कहा कि इसीसे चाबुक बनाओ और बेचो, रहनेके लिये मकान तुम्हें दे ही दिया है, तो व्यापारी चाबुक बनाने लगा, कुछ दिन उपरान्त उसमें भी घाटा हुआ और पांचों रुपये व्यय हो गये, तो फिर राजाने पांच रुपये दे दिये और फिर घट गये। इसी प्रकार पांच पांच रुपये सात वर्षतक राजाने दिये, परंतु जमा घटती ही गयी। जब आठवां वर्ष प्रारंभ हुआ तो एक रुपया बढ़ा। अर्थात् पांच रुपये के छः रुपये हो गये। तब यह देखकर राजाने दश रुपये दिये, फिर अधिक उन्नति हुई और द्रव्य बढ़ने ही लगा। राजाने फिर घोड़े लिवा दिये, उसमे फिर बहुत द्रव्य उपार्जन किया, जब पहले के समान द्रव्य हो गया, तब व्यापारीने विचारा कि जितना कुछ राजाका द्रव्य हमने लिया है, सो दे देना चाहिये,यह अपने मनमें निश्चय कर राजासे मिलने गया। उस दिन राजाने उसका बहुत सत्कार किया और कहा कि मेरा आधा तू ले ले, तब व्यापारी क्रोध करके बोला कि जब मेरे पास कुछ नहीं था तो पांच रुपयेसे अधिक नहीं दिये, न मुझसे अच्छे प्रकार मिले और अब आधा राज्य देते हो। तब राजा बोले कि उस समय तेरा प्रारब्ध बिगड़ रहा था, यदि मै अपना सारा राज्य भी तुझको दे देता तो भी तेरे पास कुछ न रहता, इसलिये थोड़े ही द्रव्यसे तेरा ग्रह टाल दिया, प्रारब्धके बली होनेसे और बल हीन हो जाते हैं।

कार्यके करनेका उपाय किया जाय ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! श्रेष्ठ आसन पर विराजमान, लीलासे ही जिन्होंने मनुष्य देह धारण किया है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पूछनेपर वह ब्राह्मण बोला कि ॥ ३६ ॥ हे मधुसूदन ! रुक्मिणीने आपको एकान्तमें यह पत्री दी है । तब श्रीकृष्णचन्द्रजीकी आज्ञासे उस प्रेमके चिह्नवाली पत्रीको खोलकर वह ब्राह्मण सुनाने लगा । रुक्मिणीने लिखा है कि "हे त्रिलोकीमें सुन्दर ! हे अच्युत अर्थात् अखण्डरूप ! जबसे श्रवण करनेवाले पुरुषोंके कर्णोंके छिद्रों द्वारा हृदयमें प्रवेश कर शोकसंताप दूर करनेवाले आपके गुण और दृष्टिवालोंकी दृष्टिके सकल मनोरथोंका लाभरूप श्रीमान्का रूप सुना है,

एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ॥ लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ॥ रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताऽऽविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥ का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ॥ धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम् ॥ ३८ ॥ तन्मे भगवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ॥ मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥३९॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः ॥ आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥

तभीसे मेरा मन आपमें लग रहा है ॥ ३७ ॥ हे मुकुन्द ! हे पुरुषशार्दूल ! कौन बलवान् उदारगुणयुक्त धैर्यवान् कन्या तुम्हें, जो कि मनुष्यलोकके अतिप्रिय कुल, शील, रूप, विद्या, अवस्था, धन, घर इन सबमें तुम्हारे ही समान हो, उसे विवाहके समयमें पति स्वीकार न करे ? ॥३८॥ हे समर्थ ! इस कारण मैंने अपना पति आपको वरण किया है और अपनी देह अर्पण कर दी है, मुझे अपनी दासी अर्थात् भार्या बनाओ । हे कमलदललोचन ! मैं आपका भाग हूँ, उसे जैसे सिंहके भागको सियार ग्रहण नहीं कर सकता, इसी प्रकार शिशुपाल आकर मुझे स्पर्श न करे ॥ ३९ ॥ बावली, कुआं, तालाब, बाग, यज्ञ, दान, नियम, तीर्थ, देवता, ब्राह्मण, गुरु इनकी पूजा करनेसे भगवान्

वासुदेव प्रसन्न होते हों, तो श्रीकृष्णचन्द्र मेरा हाथ पकड़के ले जायँ और शिशुपालादि कोई राजा न आने पावें ॥ ४० ॥ हे अजित ! कल्ह ही विवाहका दिन है इसलिये तुम गुप्त वेषसे विदर्भदेशमें आओ, परंतु अकेले मत आना, पीछे सेना भी साथमें लेते आना । शिशुपाल और मगधदेशमें राजा जरासन्धकी सब सेनाको मथन कर उस पराक्रमके मोलमें मुझ अपनी दासीके संग आसुरविधिसे विवाह कर लो ॥ ४१ ॥ कदाचित् कहो कि तुम तो पुरके भीतर रहती हो, तुम्हारे बंधु बांधवोंके मारे विना कैसे विवाह करूँ, यह संदेह मनमें कभी मत करो, क्योंकि हमारे कुलमें विवाहसे प्रथम दिन बड़ी कुलदेवी अम्बिकाकी यात्रा होती है, सो यात्रा करनेके लिये और देवीकी पूजा करनेको नववधू कन्या बाहर जाती हैं, वहांसे मेरा ले जाना अतिसहज है, जैसे पार्वतीको महादेवजी ले गये ॥ ४२ ॥ जिनके चरणार-

श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ॥ निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥ अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ॥ पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥ यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजस्स्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ॥ यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाहृताः ॥ विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभाग० महा० दश० उत्तरा० कृष्णं प्रति रुक्मिणीसंदेशप्रेषणं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः ॥ प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

विन्दोंकी रजसे स्नान करनेको बड़े बड़े साधु महात्मा अपना महान् अज्ञान दूर करनेके लिये इच्छा करते हैं । हे कमलदललोचन ! जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न न होंगे, तो व्रत कर करके प्राण त्याग कर दूंगी । यदि कहो कि प्राण त्यागनेसे क्या होगा ? तो उत्तर यह है कि बार बार त्याग करूँगी तो सौ जन्ममें तो प्रसन्न होंगे ? ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे द्वारकानाथ ! यह जो मैं गुप्त संदेशा लेकर आया हूँ, यदि यह करने योग्य कार्य हो तो शीघ्रता करनी चाहिए, विलम्ब करना उचित नहीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिण्युद्वाहे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ दोहा–तिरपनमें निजप्रियाहित, हरि विदर्भ पग दीन ।

छीन लीन वैरीनसों, अपनी प्रिया प्रवीन ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! यदुवंशियोंको आनन्दके देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीका इस प्रकार सन्देशा सुनकर ब्राह्मणका हाथ हाथमें पकड़कर कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि जैसा रुक्मिणीका चिह्न मुझमें लगा है, ऐसा ही मेरा चिह्न भी रुक्मिणीमें लग रहा है और चिंताके मारे रातको नींद भी नहीं आती, मैं जानता हूँ कि रुक्मने द्वेष करके मेरे विवाहको मना कर दिया है ॥२॥ दुष्ट राजाओंको जीतकर दोषरहित अंगवाली अनन्यगति रुक्मिणीको जिस प्रकार काष्ठके मथनेसे मनुष्य अग्नि निकाल लेते हैं वैसे ही ले आऊँगा ॥३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! मुर दैत्यके मारनेवाले भगवान् रुक्मिणीके विवाहका नक्षत्र जान रथवान्से बोले कि रथवान् ! शीघ्र ही रथ जोतकर लाओ ॥ ४ ॥ शैव्य,

श्रीभगवानुवाच ॥ तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ॥ वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥ तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान् मृधे ॥ मत्परामनवद्यांगीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ॥ रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥४॥ स चाश्वैः शैब्यसुग्रीववमेघपुष्पबलाहकैः ॥ युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥ आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ॥ आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥६॥ राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः ॥ शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन् कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ॥ चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलङ्कृतम् ॥ ८ ॥

सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक घोड़ोंको रथमें जोत श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख ला सारथि हाथ जोड़कर कहने लगा—रथ उपस्थित है ॥५॥ रथको देखते ही शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने प्रथम ब्राह्मणको चढ़ाकर पीछे आप चढ़ शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा आनर्त्तदेशसे चलकर एक ही रातमें विदर्भ देश पहुँचे ॥ ६ ॥ अपने पुत्र रुक्मके स्नेहवश होकर और उसकी आज्ञानुसार चलने वाला कुंडिनपुरका राजा भीष्मक शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिए पुरकी शोभा और पितृदेवताओंके पूजनादि कर्म कराने लगा ॥७॥ इसके उपरांत राजा भीष्मक अपने पुरको शोभायमान करनेके लिए राजमार्गमें झाड़ू बुहारी लगवाकर छिड़काव कराया । चित्र विचित्र ध्वजा पताका और

बन्दनवारोंसे अपने पुरको अत्यन्त शोभायमान किया ॥ ८ ॥ माला, चन्दन, फूलोंके गहने और स्वच्छ वस्त्रोंसे शोभायमान स्त्री, पुरुष धाराप्रवाहकी भांति इधर उधर फिर रहे थे और सब मंदिर अगरकी सुगंधसे सुगंधित थे ॥९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! पितृदेवताओंका पूजन करके और विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन जिमाकर राजा भीष्मकने रुक्मिणीका यथावत् स्वस्तिवाचन कराया ॥१०॥ फिर कन्याको भले प्रकार स्नान कराया, कौतुकसे उसके हाथमें विवाहका कङ्कण बांध उत्तम नवीन वस्त्र पहनाकर अनेक अलंकारोंसे सुशोभित किया॥११॥ तब द्विजोत्तम ब्राह्मण सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मन्त्रोंको पढ़कर श्रीरुक्मिणीकी रक्षा करने लगे और अथर्ववेदके

स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोऽम्बरभूषितैः ॥ जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥ पितॄन् देवान समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ॥ भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥१०॥ सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम् ॥ अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥ चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ॥ पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥ १२ ॥ हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ॥ प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥ १३ ॥ एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ॥ कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥१४॥ मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः ॥ पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुंडिनं ययौ ॥१५॥ तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ॥ निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥

मन्त्रोंको जाननेवाले पुरोहितने सूर्यादि ग्रहोंकी शांति करनेके लिए होम किया ॥ १२ ॥ हे राजन् ! विधि जाननेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको सुवर्णरूपी वस्त्र और तिल मिलाकर गुड़ व दूधवाली बहुत सी गायोंका दान किया ॥१३॥ जिस प्रकार राजा भीष्मकने अपनी कन्याका मंगल कराया उसी प्रकार चन्देलेके राजा दमघोषने अपने पुत्र शिशुपालके सब मंगल कर्म मन्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे कराये ॥१४॥ मतवाले हथियोंके समूह, रथ, पैदल घोड़े इत्यादि चतुरंगिणी सेनाको साथ लेकर राजा दमघोष कुंडिनपुरमें पहुँचा ॥ १५ ॥ समाचार सुनते ही विदर्भदेशके राजा भीष्मकने अगौनीकर एक सजे हुए स्थानमें उन्हें जनवासा दिया ॥ १६ ॥

भा. द. उ.
॥१९०॥

वहां शाल्व, जरासन्ध दन्तवक्र, विदूरथ, शिशुपाल और पौंड्रक आदि सहस्रों राजा शिशुपालकी ओरके आये ॥१७॥ यह समस्त कृष्ण बलदेवके शत्रु सजकर शिशुपालको कन्या दिलाने आये थे और मनमें प्रथम ही निश्चय कर लिया था कि कदाचित् बलदेव व समस्त यदुवंशियोंको साथ ले श्रीकृष्ण आकर रुक्मिणीको हरेगा तो उसके संग युद्ध करेंगे। इस प्रकार मनमें विचार अच्छे अच्छे बलवान् सिपाही घोड़े हाथियोंको संग लेकर सम्पूर्ण राजा आये ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलदेवजी भी शत्रु शिशुपालकी ओरके राजाओंका साहस सुनकर कहने लगे कि "रुक्मिणीके लेनेके लिए भाई श्रीकृष्ण अकेला गया है, इस कारण लड़ाई अवश्य होगी" यह मनमें

तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्रो विदूरथः ॥ आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः ॥ १७ ॥ कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ॥ यद्यागत्य हरेत् कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥ योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ॥ आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतद्भगवान् रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ॥ कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशंकितः ॥ २० ॥ बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ॥ त्वरितः कुंडिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ २१ ॥ भीष्मकन्या वरारोहा काङ्क्षन्त्यागमनं हरेः ॥ प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा ॥ २२ ॥ अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ॥ नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २३ ॥ सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्सन्देशहरो द्विजः ॥ अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किञ्चिज्जुगुप्सितम् ॥ मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥ २४ ॥

भा० टी०
अ० ५३

निश्चय कर श्रीकृष्णके स्नेहसे हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे इत्यादि समस्त चतुरंगिणी सेनाको लेकर कुंडिनपुर पहुँचे ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रेष्ठ जङ्घाओंवाली भीष्मककी कन्या रुक्मिणी श्रीमोहन प्यारेकी पैड़ा देख देख "ब्राह्मण पत्री लेकर गया है वह अभी लौटकर नहीं आया" इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥२२॥ मुझ मन्दभागिनीके विवाहमें अब एक ही रात्रि शेष रही है और कमल नयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अभी तक न आये और ब्राह्मण जो मेरा संदेश ले गया है वह अभीतक लौटकर नहीं आया, नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है ? ॥ २३ ॥ फिर कहने लगी कि निर्दोष श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे पाणिग्रहणका उपाय तो निश्चय किया होगा, परंतु कन्या "अभीसे

पत्री लिख लिख कर भेजती है" यह दोष विचार कर नहीं आये ॥ २४ ॥ मुझ अभागिनीके विधाता ईश्वर और देवी पार्वती अनुकूल नहीं हैं ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके न आनेसे दुःखी हो समयकी जाननेवाली रुक्मिणी आंसुओंसे व्याकुल हुए नेत्रोंको बंद करके बैठ गयी ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके आनेका मार्ग जोहती रुक्मिणीके बायें अंग, ऊरू भुजा और नेत्र ये अंग फड़कने लगे, क्योंकि स्त्रियोंके बायें अंग फड़कनेसे शुभदायक और प्यारी बातके जाननेवाले होते हैं ॥ २७ ॥ इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि हे द्विजोत्तम ! आगे जाकर खबर करो, श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे ब्राह्मणने अन्तःपुरमें व्याकुल-

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ॥ देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥२५॥ एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृतमानसा ॥ न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥२६॥ एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृपं ॥ वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ॥ अंतः पुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥ २८ ॥ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ॥ आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत् प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् ॥ उक्तं च सत्यवचनमात्मनोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥ तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ॥ न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ ३१ ॥

तासे दौड़ती हुई राजकुमारी रुक्मिणीको देखा ॥२८॥ पतिव्रता रुक्मिणी प्रसन्नवदन और स्वस्थरीतिसे ब्राह्मणको आता हुआ देखकर अपने मनमें "यह कार्य कर आया है" ऐसा निश्चय कर और उसके लक्षणोंसे पहँचानकर पूछने लगी ॥ २९ ॥ हे राजन् ! तब रुक्मिणीजीसे "श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं ?" यह ब्राह्मणने कहा और श्रीकृष्णचन्द्रने जो कहा था कि "राजाओंको जीतकर रुक्मिणीको ले आऊँगा" यह भी सब वृत्तांत उनको सुनाया ॥३०॥ श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ जान हर्षित मनसे राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी विचार करने लगी कि इस समय ब्राह्मणको सर्वस्व दूँ तो भी थोड़ा है, जब ब्राह्मणके देने योग्य कोई वस्तु न देखी, तब केवल प्रणाम करके बहुतसा

धन्यवाद दिया * ॥ ३१ ॥ कन्याका विवाह देखनेके लिये श्रीकृष्ण बलदेवको आया सुन नगाड़े बजाता हुआ और बहुतसी पूजाकी सामग्रियाँ लेकर राजा भीष्मक श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख गया ॥ ३२ ॥ मधुपर्क लाकर आगे धर सुन्दर वस्त्र और अनेक प्रकारकी भेंट देकर विधिपूर्वक राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवका पूजन करने लगा ॥३३॥ अत्यन्त बुद्धिमान् राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवको उत्तम स्थानमें टिकाकर सेना सेवकों सहित यथायोग्य आतिथ्य करने लगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जो राजा इकट्ठे हुऐ थे उनमें जैसा जिसका

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ॥ अभ्ययात् तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥ मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि च ॥ उपायनान्यभीष्टानि विधिवत् समपूजयत ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ॥ ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे तथा ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ॥ यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५ ॥ कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ॥ आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ॥३६॥ अस्यैव भार्या भवितुंरुक्मिण्यर्हति नापरा ॥ असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥ ३७ ॥ किञ्चित् सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ॥ अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥

पराक्रम, अवस्था, बल और धन था उसके अनुसार सब राजाओंका सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भनगरके पुरवासी श्रीकृष्णचन्द्रका आगमन सुनकर नेत्ररूप अंजलियोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलको पान करने लगे ॥३६॥ और सब नर नारी विचार करने लगे कि दोष रहित रुक्मिणी श्रीकृष्णचन्द्रके ही योग्य है, एवं श्रीकृष्णचंद्र भी रुक्मिणीके पति होने योग्य हैं, इस प्रकार परस्पर कहने लगे ॥३७॥ कि जो कुछ हमने पुण्य किये हैं, उनके प्रभावसे प्रसन्न होकर ईश्वर हमारे ऊपर अनुग्रह करें कि जिससे श्रीकृष्णचंद्र रुक्मिणीका

* शंका—ब्राह्मणोंको देनेके योग्य कोई वस्तु त्रिलोकीमें रुक्मिणीने नहीं देखी कि यह वस्तु ब्राह्मणको देनी चाहिये इसलिये हार मानकर केवल नमस्कारही किया, यह बड़ी शंका है, क्योंकि उसको तो जो वस्तु देनी वही ले लेता, उस ब्राह्मणको तो धन आदिकलेके जो वस्तु संसारमें हैं सब वस्तुके लेनेकी इच्छा थी, फिर रुक्मिणीने धनादिक वस्तु क्यों नहीं दी, कोरा नमस्कारही क्यों किया।

उत्तर — ब्राह्मणने जो महत्त्वपूर्ण उपकार किया या उसके बदलेमें देने योग्य कोई वस्तु उनके पास नहीं थी, इसीसे कुछ नहीं दिया, केवल नमस्कार ही किया।

पाणिग्रहण करें ॥२८॥ हे राजन ! इस प्रकार प्रेममें मग्न होकर जिस समय सब पुरवासी कहने लगे, उसी समय बहुतसी सखियोंके साथ श्रीरुक्मिणीजी पुरसे बाहर अम्बिकादेवीका पूजन करनेके लिये चलीं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके चरणकमलोंका भले प्रकार ध्यान करते करते श्रीरुक्मिणी अंबिकादेवीका दर्शन करनेके लिये पैरों ही गयीं ॥ ४० ॥ हे परीक्षित् ! श्रीरुक्मिणीजीके संग मौन धारण किये पुरोहितानी और सखी सहेली जिस समय चलीं, उस समय कवच पहन कर और अस्त्र हाथोंमें ले लेकर महाबलवान् राजाके सिपाही उनकी रक्षाके लिये संग हो लिये और उस समय मृदंग, शंख, ढोल, तुरही,भेरी, रणसिंहादिक अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे ॥ ४१ ॥

एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः॥ कन्या चान्तःपुरात् प्रागाद् भटैर्गुप्ताम्बिकालयम् ॥३९॥ पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ॥ सा चाऽनुध्यायती सम्यङ् मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥४०॥ यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ॥ गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ मृदङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ ४१॥ नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः ॥ स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलङ्कृताः ॥ ४२ ॥ गायन्तश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः ॥ परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः ॥ ४३ ॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ॥ उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेशाम्बिकांतिकम्॥४४॥तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ॥ भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥४५॥ नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम्॥ भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम्॥४६॥

संगीतविद्यामें अतिनिपुण सहस्रों वेश्यायें संगमें नाचती हुई चली जाती थीं और माला, चंदन, वस्त्र, आभूषणोंसे श्रृंगार करके और अनेक प्रकारकी सामग्री भेंट लेके ब्राह्मणोंकी स्त्रियें सँग गयीं ॥ ४२ ॥ गाने और बजानेवाले सूत, बन्दीजन श्रीरुक्मिणीजीको बीचमें करके चले जारहे थे ॥ ४३ ॥ हाथ पांव धोके, आचमन कर पवित्र हो; देवीके मन्दिरमें जाकर रुक्मिणी अम्बिकादेवीके निकट गयीं ॥ ४४ ॥ विधिपूर्वक वृद्धब्राह्मणोंकी स्त्रियें रुक्मिणीजीसे महादेवजी–सहित भवानीकी पूजा करने लगीं ॥ ४५ ॥ जब पूजा कर चुकीं तब रुक्मिणीजीने मनमें कहाकि हे अंबिका पार्वती ! तुम्हारे सन्तानसमेत मंगलरूपिणी मैं तुम्हें वारंवार प्रणाम करके वर मांगती हूँ, कि

श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों, इस प्रकार मस्तक नवाकर रुक्मिणीजीने प्रार्थना की ॥४६॥ हे राजन् ! इसके उपरांत जल, चन्दन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, फल, आभूषण और अनेक प्रकारकी भेंटसे अलग-अलग दीपकोंकी पंक्तियोंसे देवकी पूजा करने लगीं ॥ ४७ ॥ इसके पीछे उसी प्रकार रुक्मिणी नमकीन, पूए, पान, लावा, सुपारी, गन्ने आदिसे सौभाग्यवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका पूजन करने लगीं ॥ ४८ ॥ फिर श्रीरुक्मिणीजीने अंबिका देवी और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको नमस्कार कर उनसे प्रसाद और आशीर्वाद लिया ॥ ४९ ॥ फिर मौनव्रतको त्याग जड़ाऊ मुँदरीसे शोभायमान श्रीरुक्मिणीजी अपनी दासीका हाथ पकड़ मंदिरसे बाहर निकलीं ॥ ५० ॥ ईश्वरकी मायाके

अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासस्स्रङ्माल्यभूषणैः ॥ नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥ ४७ ॥ विप्रस्त्रियः पतिमती-
स्तथा तैः समपूजयत् ॥ लवणापूपताम्बूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥ तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ॥
ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥४९॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकागृहात् ॥ प्रगृह्य पाणिना भृत्यां
रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तां देवमायामिव वीरमोहनीं सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् ॥ श्यामां नितम्बार्पित
रत्नमेखलां व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ॥५१॥ शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युति शोणायमानद्विजकुन्दकुड्मल-
लाम् ॥ पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं शिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ५२॥ विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यश-
स्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥५३॥ यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ॥ पेतुः क्षितौ
गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ ५४ ॥

तुल्य बड़े बड़े शूरवीर राजाओंको मोहित करनेवाली, सुन्दर कटिवाली, कुण्डलोंसे शोभायमान मुखवाली रुक्मिणी रत्नजड़ित जड़ाऊ करधनी नितम्बोंमें पहने, स्तनोंकी प्रकटता और केशोंकी शोभासे चलायमान नेत्रवाली ॥ ५१ ॥ सुन्दर मुसकान, कुन्दरुके फलके तुल्य होठोंकी कांतिसे कुंदकी कलीके समान दंत-पांतिपर अरुणाई छायी हुई, राजहंसके समान गतिसे और झनकार शब्द करते नूपुरोंकी प्रभासे शोभित चरणोंसे गमन करती हुई रुक्मिणीको देखे संगमें जो बड़े बड़े तेजस्वी शूरवीर योद्धा आये थे, वे सबके सब कामदेवसे पीड़ित हो मोहित हो गये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! उन रुक्मिणीजीकी उदार हँसन और लज्जापूर्वक चितवनसे

समस्त राजाओंके मन हर गये और वे अस्त्र शस्त्रोंको छोड़कर रथ घोड़े इत्यादिसे मूढ़ होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार चलायमान कमलकोशके समान कोमल चरणोंसे धीरे-धीरे चली, उस समय श्रीकृष्णचन्द्रके आनेका मार्ग देखती हुई रुक्मिणीजीने बांयें हाथके नखोंसे अलकोंको उठाकर सब आये हुए राजाओंको देख, सम्मुख खड़े हुए वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दको देखा ॥ ५५ ॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी ज्यों ही रथपर चढ़ने लगी त्यों ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे हरणकर अपने गरुड़--चिह्नवाले रथमें चढ़ाकर क्षत्रियोंकी सेनाका तिरस्कार कर उसे इस प्रकार निकालकर ले गये जैसे सियारोंके बीचमें अपने भागको लेकर सिंह बेधड़क होकर चला जाता है, फिर बलरामादि सब यदुवंशियों सहित रुक्मिणीको लेकर

सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ॥ उत्सार्य वामकरजैरलकानपांगैः प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान् ददृशेऽच्युतं सा॥५५॥तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ॥ रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ॥ ततो ययौ रामपुरोगमः शनैः शृगालमध्यादिव भागहृद् हरिः ॥ ५६ ॥ तं मानिनः स्वाभिभवं यशः क्षयं परे जरासन्धवशा न सेहिरे ॥ अहो धिगस्मान् यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥५७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ॥ स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥

धीरे-धीरे चलने लगे ॥ ५६ ॥ हे नृपोत्तम ! महाअभिमानी जरासन्धादि राजा, यशका नाश करनेवाला यह अपना अपमान न सह सके और बोले कि अहो ! हमको धिक्कार है, जिस प्रकार केशरीके भागको कुत्ता चुराकर ले जाता है, वैसे ही हम धनुषधारियोंके यशका नाश कर यह गँवार ग्वालिया राजकुमारी रुक्मिणीको चुराकर लिये जाता है ॥५७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ दोहा-चौवनमें रिपुपक्षके, सब राजनको जीति । रुक्मिणिको ले द्वारका, करी ब्याहकी रीति ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सब राजा अत्यन्त क्रोधित होकर कवच पहनकर

अपने अपने बाहनोंपर चढ़कर श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे दौड़े ॥ १ ॥ हे परीक्षित् ! जब यादवोंके सेनाध्यक्षने इनकी सेनाको आती हुई देखा तो वह लोग भी अपने धनुषकी टङ्कार करके उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥२॥ युद्धविद्यामें अत्यन्त प्रवीण वे राजा लोग घोड़े, हाथी और रथोंपर बैठकर जिस प्रकार मेघ पर्वतोंपर जल वर्षाते हैं उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥३॥ सुन्दर कटि भागवाली रुक्मिणी अपने स्वामी कृष्णचन्द्रकी सब सेनाको बाणोंसे ढकी हुई देख अति भयभीत और विह्वलनेत्र हो लाजसहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुख देखने लगी॥४॥ तब भगवान् वासुदेव रुक्मिणीको डरी हुई जान कहने लगे कि हे वामलोचने ! हे सुनयनी ! तुम कुछ भय मत करो, क्योंकि हमारे ओरके

तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ॥ तस्थुस्तत्संमुखा राजन् विस्फूर्ज्य स्वधनूंषिते॥ २ ॥ अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थे च कोविदाः ॥ मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥ प्रत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ॥ सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४ ॥ प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ॥ विनङ्क्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ॥ अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान् रथान् ॥ ६ ॥ पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ॥ सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥ हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः ॥ अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८ ॥ हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः ॥ राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरस्सराः ॥९॥ शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् ॥ नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ १० ॥

यादव इनकी समस्त सेनाको क्षणभरमें विध्वंस कर देंगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! गद, संकर्षणादि शूर वीर उन राजाओंका पराक्रम न सह सके और उनके घोड़े, हाथी और रथोंको महातीक्ष्ण बाणोंसे नाश करने लगे ॥ ६ ॥ रथी, घुड़चढ़े और हाथियोंपर विराजमान योद्धाओंके पगड़ियोंसहित सहस्रों शिर कटकर गिरने लगे ॥ ७ ॥ तलवार, गदा और धनुषसे हाथ कट कटकर गिरने और करभके समान जङ्घायें कट कटकर गिरने लगीं, अनेक घोड़े, खच्चर, हाथी, गधे, मनुष्य इनके शिर कटकर पृथ्वीपर गिर गये ॥८॥ हे भारत ! जीतनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंने जब इस प्रकार शत्रुसेनाका संहार किया तब अत्यन्त डरकर जरासन्धादि राजा रण छोड़कर भाग गये॥९॥जब स्त्री हर

जानेसे व्याकुल, तेजहीन, उत्साहरहित शिशुपालका मलिन मुख हो गया, तब सब राजा उसके पास आकर समझाने लगे ॥१०॥ कि हे पुरुषसिंह ! तुम अपने मनकी उदासीको छोड़ दो, क्योंकि देह धारण करनेवालोंको सुख और दुःख सर्वदा नहीं रहते हैं ॥ ११ ॥ जिस प्रकार काठकी पुतली नचानेवालेकी इच्छासे नाचती है, ऐसे ही ईश्वरके अधीन जीवोको सुख दुःख होता है ॥१२॥ जरासन्ध बोला कि हे शिशुपाल ! देखो ! इसी कृष्णसे मैंने सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध किया, परंतु मेरी हार ही हुई और कुछ शोच न हुआ, केवल एक बार जीता, उसका कुछ हर्ष भी न हुआ, देवके वश कालने समस्त जगत् चलायमान किया है ऐसा मेरा निश्चय

भो भो पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ॥ प्रियाप्रिययो राजन् निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥ यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ॥ एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ॥ त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥ १३ ॥ तथाऽप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ॥ कालेन दैवयुक्तेन जानन् विद्रावितं जगत् ॥१४॥ अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ॥ पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥१५॥ रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ॥ तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥१६॥ एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात् सानुगः पुरम् ॥ हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥ १७ ॥ रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन् स्वसुः ॥ पृष्ठतोऽन्वगमत् कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥

है ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! यद्यपि बड़े बड़े शूरवीर यूथनाथोंके पतियोंके भी हम पालन करनेवाले थे, तो भी थोड़ी सेनावाले कृष्णपालित यदुवंशियोंसे हार गये ॥ १५ ॥ जान पड़ता है कि इस समय उनके दिन अच्छे हैं, इसी कारण उन्होंने हम ऐसे बलवान् शत्रुओंको जीत लिया, जब हमारे दिन भले आवेंगे तो हम भी जीतेंगे ॥ १६ ॥ हे महाराज ! जब इसी प्रकार अनेक राजाओंने शिशुपालको समझाया तब अपने बचे बचाये नौकर चाकर और सेनाको लेकर शिशुपाल अपने देशको चला गया और मरनेसे बचे बचाये राजा भी अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥ १७ ॥ इधर एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्णका शत्रु रुक्मी अपनी बहनके हरनेका अपराध न सहकर

श्रीकृष्णके पीछे दौड़ा ॥ १८ ॥ और अत्यन्त क्रोधित हो कवच पहन धनुष ग्रहण कर सब राजाओंके सामने महाबलवान् रुक्मीने यह प्रतिज्ञा की ॥ १९ ॥ कि युद्धमें श्रीकृष्णको मारे विना और रुक्मिणीको लाये विना मैं कुँडिनपुरमें नहीं आऊँगा ॥२०॥ इस प्रकार रुक्मी प्रतिज्ञा कर रथमें चढ़ सारथीसे बोला कि जहां कृष्ण हैं वहां शीघ्र ही घोड़ोंको हांककर ले चलो, क्योंकि मुझे उससे युद्ध करना है ॥२१॥ मैं आज उस मन्दबुद्धि ग्वालके पराक्रमका मद अपने तीक्ष्ण बाणोंसे चूर्ण करूँगा, जो मेरी बहन रुक्मिणीको बलात्कार हरके ले गया है ॥ २२ ॥ खोटी बुद्धिवाला रुक्मी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके बलको न जान कटुवाक्य कहता हुआ अकेला रथ दौड़ाकर चला और

रुक्म्यमर्षी सुसंरब्ध शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥१९॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ॥ कुंडिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ॥ चोदयाश्वान् यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥ २१ ॥ अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ॥ नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥ २२ ॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ॥ रथेनैकेन गोविन्द तिष्ठतिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥२३॥ धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ॥ आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥ २४ ॥ कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वांक्षवद्धविः ॥ हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ॥ २५ ॥ यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकाम् ॥ स्मयन् कृष्णो धनुश्छित्त्वा षडभिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥ २६ ॥

अतिशीघ्र उन श्रीकृष्णके निकट पहुँचकर बोला "खड़ा रहु खड़ा रहु" इस प्रकार भगवान् वासुदेवको पुकारने लगा ॥ २३ ॥ इसके उपरांत अपने दृढ़ धनुषको खींचकर रुक्मीने श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा कि हे यादवकुलकलंक ! एक क्षण मात्र खड़ा होकर मुझसे युद्ध कर ॥२४॥ अरे दुष्टबुद्धि ! जिस प्रकार होमकी सामग्रीको कौवा ले जाता है इसी प्रकार तू मेरी बहनको कहां चुराकर लिये जाता है ? अरे कपटयुद्ध करनेवाले छली ! तेरे घमण्डको मैं अभी चूर्ण करता हूँ ॥२५॥ और तेरे भले दिन हैं तो मेरे बाणोंसे पीड़ित होकर युद्धक्षेत्रमें मत सो और रुक्मिणीको छोड़कर अति शीघ्र हमारे सामनेसे भाग जा । तब श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें मुसकाकर उसके धनुषको

काट छः बाणोंसे रुक्मीको छेदन किया ॥ २६ ॥ आठ बाणोंसे रथके घोड़ोंको, दो बाणोंसे रथावान्‌को बींध डाला और तीन बाणोंसे ध्वजा काट डाली। फिर रुक्मीने और धनुष लेकर पांच बाण श्रीकृष्णके शरीरमें मारे ॥ २७ ॥ तब भगवान् वासुदेवने उसका वह धनुष भी काट डाला, फिर रुक्मी और धनुष ले आया, उसको भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय काट दिया ॥ २८ ॥ रुक्मीने जो जो परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल, तलवार, बरछी, भाले हाथमें लिये वह सब भगवान् देवकीनन्दनने काट गिराये ॥२९॥ हे राजन् ! इसके उपरांत रथसे कूदकर और हाथमें तलवार लेकर मारनेकी इच्छासे,जिस प्रकार पतंग अग्निके सम्मुख झपटता है उसी प्रकार रुक्मी श्रीकृष्ण-

अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ॥ स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः ॥ २७ ॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ॥ पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८ ॥ परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ॥ यद्यदायुधमादत्त तत सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९ ॥ ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम् ॥ ३० ॥ तस्य चापततः खड्गंतिलशश्चर्म चेषुभिः ॥ भित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वाभ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ॥ पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥ ३२ ॥ योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते ॥ हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तया परित्रासविकम्पिताङ्गया शुचाऽवशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ॥ कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥ ३४ ॥

चन्द्रके ऊपर झपटा ॥ ३० ॥ झपटते हुए उस रुक्मीकी ढाल तलवारको तिल तिलभर बाणोंसे काटकर पैनी धारकी तलवार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मीका प्राण संहार करनेको उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ भाई के मारनेकी इच्छा देख भयसे व्याकुल होकर पतिव्रता रुक्मिणी नेत्रोंमें आंसू भरके श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंपर गिरकर करुणा भरे वचन कहने लगी ॥ ३२ ॥ हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे देवदेव ! हे जगत्पालक श्रीकृष्णचन्द्र ! हे महाभुज ! मेरे भाईको तुम मत मारो; क्योंकि यह तुम्हारे मारने योग्य नहीं है॥३३॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! त्राससे कम्पायमान सब अंग, शुष्क मुख गद्गद कण्ठ, कि जिसकी व्याकुलतासे सुवर्णकी माला गिरी जाती थी

इस प्रकार रुक्मिणीको अपने चरणोंपर गिरी हुई देख करुणावश हो श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ३४ ॥ वरन् उस दुष्ट कर्म करनेवाले रुक्मीको वस्त्रसे बांध और मूछोंसहित शिर मूँड़ अभद्र कर अपने रथके पीछे बांध लिया कि इस बीचमें ही सब यदुवंशियों सहित बलराम सुखधामने रुक्मीकी सेनाको जिस प्रकार हाथी कमलनियोंको मर्दन करता है उसी प्रकार मर्दन किया ॥ ३५ ॥ उसके उपरान्त रुक्मीकी समस्त सेनाको संहार कर बलदेवजीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर रुक्मीको देखा कि उसका शिर मुंड़ गया है और मृतकके समान रथके पीछे बँधा हुआ देखकर सामर्थ्यवान् बलभद्रजीने उसे छोड़ दिया ॥ ३६ ॥ और अत्यन्त झुंझुलाकर कहा कि हे कृष्ण ! आपने यह बड़ा निन्दित कर्म किया, जो सालेको पकड़ बांधा, हमारी इसमें बहुत निन्दा होगी, क्योंकि शिर, मूँछ दाढ़ी मुँड़वाकर

चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन् व्यरूपयत ॥ तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥ ३५ ॥ कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ॥ तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा सङ्कर्षणो विभुः ॥ विमुच्य बद्धं करुणो भगवान् कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ॥ वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥ ३७ ॥ मैवास्मान् साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ॥ सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान् ॥ ३८ ॥ बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बंधोर्वधमर्हति ॥ त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥ भ्राताऽपि भ्रातरं हन्याद् येनघोरतमस्ततः ॥ ४० ॥

विरूप कर देना यही अपने नातेदारका मारना है ॥३७॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि हे सुशीले ! तुम्हारे भाईके कुरूप होनेमें हमारा कुछ दोष नहीं है क्योंकि यह पुरुष अपने कर्मोंका फल भोगता है; सुख दुःखका देनेवाला और कोई नहीं है ॥ ३८ ॥ इसके उपरांत बलदेवजी श्रीकृष्णको समझाने लगे कि भाई ! अपने नातेदारका मारना अपराध करनेपर भी उचित नहीं, उसको अपराधी जानकर छोड़ देना चाहिये, क्योंकि वह तो अपने पहले ही दोषोंसे मर रहा है, फिर उसको मारनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ३९॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि हे सुमुखि ! क्षत्रियोंका यही धर्म विधाताने बनाया है कि जिस धर्मके कारण भाई भाईका प्राण संहार कर देता है फिर साले श्वशुरोंकी

तो बात ही क्या है ? इसलिये हमारा क्या दोष है ?॥ ४०॥ फिर श्रीकृष्णसे बोले कि हे कृष्ण ! राज्य, पृथ्वी, धन, स्त्री, प्रतिष्ठा, तेज और और वस्तुके हेतु श्रीमदान्ध अभिमानी राजा लड़ते हैं, परन्तु हमको यह बात उचित नहीं ॥ ४१ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि सब प्राणियोंमें दुष्टहृदय, अर्थात् सब बातका बुरा विचारनेवाला जो शिशुपाल उसका बुरा और अपने भाईका भला चाहती हो यह बात तुमको उचित नहीं । हे रुक्मिणी ! तुम्हारी विषम बुद्धि है, जैसी कि अज्ञानी पुरुषोंकी होती है, इसीलिये तुम्हारा भाई जो सब जीवोंका शत्रुरूप है, उसका तुम अज्ञानी पुरुषोंके समान भला चाहती हो, सो यह तुम्हारी बुद्धिकी भूल है, क्योंकि उसका भला चाहनेसे और सम्बंधियोंका बुरा होगा ॥ ४२ ॥ यह हमारा मित्र, यह शत्रु और यह समान है, इस प्रकार देहाभिमानी पुरुषोंको मोह उत्पन्न हो जाता है, ॥ ४३ ॥

राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः ॥ मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि ॥ ४१ ॥ तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ॥ यन्मन्यसे सदाऽभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेष कल्पते देवमायया ॥ सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥ ४३ ॥ एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥ ४४ ॥ देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ॥ आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥ नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति ॥ तद्धेतुत्वात् तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥ जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ॥ कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥

जैसे जलभरे घड़ेमें एक ही सूर्यके अनेक प्रतिबिंब दीखते हैं, आकाश एक ही है, परन्तु तो भी घट आदिमें बहुतसे दीखते हैं, उसी प्रकार संपूर्ण देह धारियोंमें एक ही है, शुद्ध आत्मा है, उसीको अज्ञानी पुरुष अनेक रूपसे मानते हैं ॥ ४४ ॥ यह जो द्रव्य अर्थात् अधिभूत, प्राण, इन्द्रिय और आध्यात्मिक गुण अधिदैव इतने स्वरूप आत्माके अविद्याने रचे हैं, वे देहधारियोंको संसारमें भटकाते हैं, ॥ ४५ ॥ हे पतिव्रता रुक्मिणी ! मिथ्या देहसे आत्माका संयोग नहीं है और इस देहसे वियोग भी नहीं है । यदि कोई कहे कि देह मिथ्या कैसे ? तो इसका उत्तर यह है कि जैसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाशक सूर्य है उसी प्रकार देहका प्रकाश आत्मासे होता है ॥४६॥ जन्म मरणादि छः विकार देहके हैं, आत्माके कदाचित् नहीं हैं जैसे चन्द्रमाकी कला घटती बढ़ती है, चन्द्रमा कभी नहीं घटता बढ़ता क्योंकि वह तो

पूर्णरूप है और जैसे अमावास्याके दिन चन्द्रमाकी कला घटनेसे चन्द्रमाका नाश मानते हैं उसी प्रकार देहके नाश (तिरोभाव) से आत्माका नाश कहनेमें आता है ॥ ४७ ॥ जैसे स्वप्नावस्था में पुरुष अपने आपको विषयके भोगनेके सुखका मिथ्या भोग करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष संसारको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ हे सुहागिनी ! इसलिये तुम अज्ञान से उत्पन्न हुए आत्माको क्लेश और मोह देने-वाले शोकका तत्त्वज्ञानसे त्याग करो और स्वस्थ होओ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् बलदेवजीने जब समझाया तब सुकुमारी श्रीरुक्मिणीजीने मनकी उदासी त्याग बुद्धिसे मनको सावधान किया ॥ ५० ॥ राजन् ! शत्रुसे छूटा,

यथा शयान आत्मानं विषयान् फलमेव च ॥ अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥ तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ॥ तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता तन्वी रामेण प्रति बोधिता ॥ वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥ ५० ॥ प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हत-बलप्रभः ॥ स्मरन् विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥ चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत्पुरम् ॥ ५१ ॥ अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ॥ कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद् रुषा ॥ ५२ ॥ भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ॥ पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥५३॥ तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहेगृहे ॥ अभूदनन्य-भावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥

हतसैन्य, केवल प्राण ही जिसको शेष रहे हैं, प्रभाव और मनोरथ रथहीन, मुण्डित शिर दुष्टबुद्धि रुक्मी विचार करने लगा कि मैं प्रतिज्ञा करके आया था कि कृष्णको विना मारे और विना रुक्मिणीको लाये कुण्डिनपुर नहीं आऊँगा, सो अब क्या करूँ ? यह विचार वहां ही भोजकट पुर बसाकर रहने लगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार समस्त राजाओंको जीतकर राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीको द्वारकापुरीमें लाकर विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ५३ ॥ हे महाराज परी-क्षित् ! उस समय द्वारकापुरीमें घर घर बड़ा उत्सव होने लगा, क्योंकि यदुवंशियोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी अनन्य भक्ति थी ॥५४॥

आनन्दमें मग्न, उज्ज्वल उज्ज्वल मणियोंके जड़ाऊ गहने पहने हुए स्त्री पुरुष चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये कृष्ण रुक्मिणी के देनेके लिये सुन्दर सुन्दर वस्तु लाने लगे ॥ ५५ ॥ ऊँची ऊँची ध्वजा और चित्र विचित्र माला, वस्त्र, रत्नोंकी बन्दनमालाओंसे और द्वार द्वारपर धानकी खीलें अंकुर, फूल और जलके भरे कलश और अगर व धूप, दीप इत्यादिकोंसे द्वारकापुरी अत्यन्त शोभायमान होने लगी ॥ ५६ ॥स्थान स्थानपर छिड़काव हो रहा है, दरवाजोंपर केले सुपारियोंके घने वृक्ष लग रहे हैं और जो सुहृद् राजा बुलाये गये हैं, उनके मद झरते हाथियोंसे ऊँचे उठाये सुपारी और केलोंके वृक्षोंसे बड़ी शोभा हो रही है ॥ ५७ ॥ अत्यन्त प्रसन्नताके मारे द्वारकावासी दौड़े दौड़े फिरते हैं और बीचमें कुरुदेश, संजयदेश केकयदेश और विदर्भदेशके राजा भी विवाहमें मिलकर आनन्द

नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुंडलाः ॥ पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥ ५५ ॥ सा वृष्णिपुर्युत्तभितेन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः ॥ बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलैरापूर्णकुम्भाऽगुरुधूपदीपकैः ॥५६ ॥ सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ॥ गजैर्द्वाःसु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥ कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः ॥ मिथो मुमुदिरे तस्मिन् संभ्रमात् परिधावताम् ॥ ५८ ॥ रुक्मिण्याहरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ॥ राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥ द्वारकायामभूद् राजन् महामोदः पुरौकसाम् ॥ रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६० ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशम० उत्त० रुक्मिण्युद्वाहोत्सवो नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥ श्रीशुक उवाच ॥ कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना ॥ देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

प्राप्त करने लगे ॥ ५८ ॥ हे राजन् इसी प्रकार जहां तहां रुक्मिणी हरके ले जानेके चरित्रको श्रवण कर राजा और राजाओंकी कन्या बड़ा आश्चर्य मानने लगीं ॥ ५९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! द्वारकापुरीमें पुरवासियोंको लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रका लक्ष्मीसहित दर्शन कर बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिण्युद्वाहोत्सवे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ दोहा—पचपनमें प्रद्युम्नको, भयो जन्म उत्साह । शंबासुर हर ले गयो, ताहि मारि किय ब्याह ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! वासुदेव का अंश जो कामदेव था सो प्रथम महादेवजीके क्रोधसे भस्म हो गया था, वही अब फिर देह पानेके लिये वासु-

देवके यहां आया है ॥१॥ और वही कामदेव श्रीकृष्णचन्द्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें जन्म ले प्रद्युम्ननामसे विख्यात हुआ, जोकि अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्र से किसी प्रकार न्यून नहीं था ॥२॥ हे राजन् ! एक शम्बरनाम दैत्य उसे अपना वैरी जान दश दिनके भीतर कुमार प्रद्युम्नको हरण कर समुद्र में डाल अपने घरको चला गया * ॥ ३ ॥ एक बड़ा बलवान् मत्स्य इस बालकको निगल गया, उस मत्स्यको धीवरोंने बड़ा जाल डालकर और मछलियों सहित पकड़ा ॥ ४॥ उस बड़े मत्स्यको लाकर धीवरोंने शंबरासुरकी भेंट की और शंबरासुरने रसोई

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ॥ प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥२॥ तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ॥ स विदित्वाऽऽत्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यागाद् गृहम् ॥३॥ तं निर्जगार बलवान् मीनः सोऽप्यपरैः सह ॥ वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम् ॥ सूदा महानसं नीत्वावद्यन् स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ॥ नारदोऽकथयत् सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः ॥ बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

बनानेवाले को दिया । उन्होंने रसोईसे लाकर छूरीसे इस अद्भुत मत्स्यका हृदय विदीर्ण किया ॥ ५ ॥ तो उस मत्स्यके पेटमें बालकको निहार उन्होंने मायावतीको दे दिया । तब मायावतीको अत्यन्त शंका हुई , तब देवर्षि नारदजीने आकर उससे सब वृत्तांत कहाकि यह बालक तेरा स्वामी कामदेव हैं और श्रीकृष्णचन्द्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें उत्पन्न हुआ है । इस प्रकार उत्पत्ति और शंबरासुर जैसे समुद्रमें

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रकी बसायी हुई द्वारिकापुरीमें कपट करके कोई प्राणी यहां नहीं जा सकता था और कपट वेषधारी जो कोई द्वारकाके भीतर चला भी जाय तो वह उसी समय भस्म हो जाय, क्योंकि क्षण क्षणमें द्वारकापुरीके चारों ओर सुदर्शनचक्र घूमता रहता था, वही द्वारिकापुरीकी रात दिन रक्षा करता था, ऐसी कठिन द्वारकापुरीमें शम्वर नाम दैत्य कैसे चला गया ! और भगवान्के पुत्रको कैसे हर ले गया यह महाआश्चर्यकी बात है ?

उत्तर–जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीको बसाया था उस समय यह आज्ञा दी थी कि हे सुदर्शनचक्र ! तुम रात दिन द्वारकापुरीके चारों ओर घूमते रहना, और रक्षा करते रहना परंतु ब्राह्मणवंश चाहे तो उसको पुरीमें जानेके लिए मत रोकना और ब्राह्मण कपटरूप धारण करके आवे तो उसको भी मत रोकना । इस प्रकारकी श्रीकृष्णकी आज्ञाको शंबरासुर जानके ब्राह्मणका रूप बनाकर द्वारिकापुरीमें चला गया और श्रीकृष्णके पुत्रको चुराकर ले आया ।

डाल आया था, वहां जिस प्रकार इसे मत्स्य निगल गया सो सब कह सुनाया ॥ ६ ॥ " शिवजीने जब कामदेवको भस्म किया था, तब रतिके विलाप करनेपर उसे समझाकर कहा था कि तू शंबरासुरके यहां जाकर वास कर । वहां तेरा पति तुझे रसोईघरमें मिलेगा "तू उसे पाल लीजियेगा, मछलीके उदरसे प्राप्त होगा, तबसे रति रूप छिपाये वहां रहती थी" वह जो कामदेवकी स्त्री थी, सो बड़ी पतिव्रता और उसका नाम रति था, उसने अपने पति कामदेवका जो देह भस्म हो गया था सो उसके उत्पन्न होनेके लिये प्रतीक्षा कर रही थी ॥ ७ ॥ वह मायावती कामदेवकी स्त्रीको शंबरासुरने दाल भात करनेके लिये अपने पास रखा था, सो वह बालकको कामदेव जान उससे अत्यन्त स्नेह करने लगी ॥ ८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! थोड़े ही दिनोंमें यौवन अवस्थाको प्राप्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रका पुत्र प्रद्युम्न देखने

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ॥ पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदनसाधने ॥ कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदाऽर्भके ॥८॥ नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः ॥ जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥ सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम् ॥ सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः ॥ १० ॥ तामाह भगवान् कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ॥ मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान् नारायणसुतः शम्बरेणाहृतो गृहात् ॥ अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान् प्रभो ॥ १२ ॥ एष त्वाऽनिर्दशं सिन्धावक्षिपच्छम्बरोऽसुरः ॥ मत्स्योऽग्रसीत् तदुदरादिह प्राप्तो भवान् प्रभो ॥ १३ ॥

वाली स्त्रियोंको मोह उत्पन्न करने लगा ॥ ९ ॥ कमलदलसे बड़े नेत्र, भ्रुकुटीसे देख प्रीति लोकमें सुन्दर ऐसे अपने पति प्रद्युम्नको लाज भरी मुसकान और उठी भ्रुकुटीसे देख प्रीति करके सुरतसम्बन्धी जो भाव हैं उनसे वह रति सेवन करने लगी ॥ १० ॥ तब श्रीकृष्ण-चन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीने कहाकि हे माता ! जान पड़ता है कि तुम्हारी मति और प्रकार की हो गयी है, इसलिये मातृभावको त्यागकर स्त्रीके समान आचरण करती हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर रतिने कहा कि तुम भगवान् वासुदेवके पुत्र हो, शंबरासुर तुम्हें चुराकर ले आया है, मैं तुम्हारी स्त्री हूँ, रति मेरा नाम है, आप कामदेव हो ॥ १२ ॥ तुम जब दश दिनके भी नहीं थे, तब शंबरासुर समुद्रमें डाल आया

था और वहां तुम्हें एक मत्स्य निगल गया, हे प्रभो! यहां आप मत्स्यके पेटमें आये हैं॥ १३॥ तुम्हारा शत्रु शंबरासुर बड़ा मायावी है, सैकड़ों माया जानता है इसलिये असह्य और दुर्जय है, उसको मोहनादि मायासे आप मारिये॥ १४॥ क्योंकि तुम्हारे ढूँढ़नेके लिये स्नेहसे अतिव्याकुल परमदीन तुम्हारी माता टिटहरीके समान सोचकर रही हैं और विना बछड़ेके गौके समान आतुर है॥ १५॥ इस प्रकार मायावती स्त्रीने कह सब मायाओंको नाश करनेवाली महामाया महात्मा प्रद्युम्नजीको दी॥ १६॥ प्रद्युम्नजीने शंबरासुरके पास आकर और उसको असह्य वचनोंसे तिरस्कार कर कलह उत्पन्न करके युद्ध करनेके लिये बुलाया॥ १७॥ हे राजन्! खोटे वचनोंसे तिरस्कार

तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः॥ मायाशतमिदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः॥ १४॥ परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजाः॥ पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा॥ १५॥ प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने॥ मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम्॥ १६॥ स च शम्बरमभ्येत्यसंयुगाय समाह्वयत्॥ अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्संजनयन् कलिम्॥ १७॥ सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदाहत इवोरगः॥ निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात् ताम्रलोचनः॥ १८॥ गदामाविध्यतरसा प्रद्युम्नाय महात्मने॥ प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम्॥ १९॥ तमापतन्तीं भगवान् प्रद्युम्नो गदया गदाम्॥ अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप॥ २०॥ स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम्॥ मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः॥ २१॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः॥ सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम्॥ २२॥

पाकर शंबरासुर जिस प्रकार ठोकर लगनेसे सर्प फुंकार मारता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधित हो लाल लाल नेत्र किये और गदा हाथमें लेकर निकला॥ १८॥ इसके उपरांत शंबरासुरने गदाको फिराकर महात्मा प्रद्युम्नजीके ऊपर डालकर वज्रपातके समान कठोर शब्द किया॥ १९॥ हे परीक्षित्! भगवान् प्रद्युम्नजीने अपने ऊपर आती हुई उस गदाको चूर्ण कर और महाक्रोधित हो एक गदा शंबरासुरको मारी॥ २०॥ तब शंबरासुर मय दैत्यकी बतायी हुई मायाका आश्रय ले आकाशमें जाकर श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा॥२१॥ उन पत्थरोंकी वर्षा से पीड़ित होकर कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने सब मायाओंको नष्ट करनेवाली अपनी सत्त्वगुणी मायाको

बुलाया ॥ २२ ॥ इसके उपरांत शंबरासुरने गुह्यक, गंधर्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंकी सहस्रों माया छोड़ी, परन्तु कृष्णकुमार प्रद्युम्न जीने उसी समय सब मायाओंका नाश कर दिया ॥ २३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! महात्मा प्रद्युम्नजीने महातीक्ष्ण पैनी धारकी तलवार लेकर कुण्डल, किरीट और दाढ़ी मोछों सहित शंबरासुर का मस्तक काट लिया ॥ २४ तब आकाशसे देवतालोगोंने फूल वर्षाये और स्तुति की और फिर आकाशमें विचरनेवाली स्त्रियोंने आकाश मार्गमें होकर महात्मा प्रद्युम्नजीको द्वारकापुरीमें पहुँचा दिया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! सहस्रों स्त्रियोंसे सुशोभित अन्तःपुरमें आकाशसे उतरकर बिजली सहित जैसे मेघ आता है उसी प्रकार आये ॥ २६ ॥ वर्षा

ततो गौह्यकगान्धर्वपैशाचोरगराक्षसीः ॥ प्रायुङ्क्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २३ ॥ निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् ॥ शम्बरस्य शिरः कायात् ताम्रश्मश्र्वोजसाऽहरत् ॥ २४ ॥ आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ॥ भार्ययाम्बरचारिण्या पुरीं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥ अन्तःपुरवरं राजँल्ललनाशतसङ्कुलम् ॥ विवेश पत्न्या गगनाद् विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥ तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥२७॥ स्वलङ्कृतमुखाम्भोजं नीलवक्रालकालिभिः ॥ कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥ २८ ॥ अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषिताः ॥ उपजग्मुः प्रमुदितः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥ अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ॥ अस्मरत् स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ॥ धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ ३१ ॥

की घटाओंके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीतवस्त्र धारण किये लम्बी भुजा, अरुणनेत्र, सुंदर मुसकान, मनोहर मुख, नीली टेढ़ी अलकावलीसे शोभायमान मुखारविंदवाले प्रद्युम्नजीको देखकर "श्रीकृष्ण आये" यह जान स्त्रियें लज्जित होकर जहां तहां छिप गयीं ॥२७॥ ॥ २८ ॥ और कुछ एक स्त्री कोई न्यूनाधिक बात देखकर "यह कृष्ण नहीं है" यह निश्चय कर प्रसन्न हो आश्चर्य मान स्त्रियोंमें श्रेष्ठ रति सहित कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीके पास आयी ॥ २९ ॥ इसके उपरांत स्नेहसे जिनके स्तनोंसे दूध चू रहे हैं नील कटाक्ष और मनोहर वचनवाली राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी अपने नष्ट हुए पुत्रका स्मरण करके कहने लगी ॥ ३० ॥ कि मनुष्योंमें श्रेष्ठ कमलके समान नेत्र-

वाला यह बालक किसका है ? और किस स्त्रीने इसे गर्भमें धारण किया है ? और इसे यह स्त्री किसकी मिली है ? ॥ ३१ ॥ मेरा भी पुत्र नष्ट हो गया है और सूतिकागृहसे ही उसे कोई ले गया है, जो कदाचित जीवित होगा तो इसीके समान बड़ा और ऐसाही उसका स्वरूप होगा ॥ ३२ ॥ परंतु यह बड़ा आश्चर्य है कि (शार्ङ्ग) धनुषधारी श्रीकृष्णचन्द्रके समान रूप इसने कैसे पाया ? इसका स्वरूप और हाथ पांव चलाना, बोलना, हँसना, चितवन इत्यादि भी सब श्रीकृष्णचन्द्रके ही समान हैं ॥३३॥ जान पड़ता है कि जो बालक मैंने गर्भमें धारण किया था, वह निश्चय यही है, क्योंकि प्रतिक्षण इसमें मेरी प्रीति बढ़ती ही जाती है और मेरी बाईं भुजा भी फड़क रही है ॥ ३४ ॥ हे राजा परीक्षित् ! विदर्भदेशके राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी बैठी हुई इस प्रकार चिन्ता कर रहीं थी कि इतनेमें ही उत्तम यशवाले भगवान्

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ॥ एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ ३२ ॥ कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ॥ आकृत्याऽवयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥ ३३ ॥ स वा भवेन्नूनं यो मे गर्भेधृतोऽर्भकः ॥ अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥ ३४ ॥ एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ॥ देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपि भगवान् तूष्णीमासीज्जनार्दनः ॥ नारदोऽकथयत सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥३६॥ तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः ॥ अभ्यनन्दन् बहूनब्दान् नष्टं मृतमिवागतम् ॥ ३७ ॥ देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ॥ दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥ ३८ ॥ नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ॥ अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाऽब्रुवन् ॥ ३९ ॥

देवकीनन्दन श्रीकृष्ण चन्द्र वसुदेव देवकीको संग लेकर वहां आये ॥ ३५ ॥ यद्यपि श्रीकृष्णचंद्र यह स्वयं जानते थे कि पत्नी सहित पुत्र आया है परंतु तो भी चुप रहे,इतनेमें ही देवर्षि नारदजीने आकर जिस प्रकार इनको शम्बरासुर चुरा ले गया और समुद्रमें डाल गया, वहां मछली निगल गयी वह सब वृत्तांत सुनाया ॥ ३६ ॥ कृष्णके अन्तःपुरमें वास करनेवाली स्त्रियें बहुत कालके पीछे जैसे मृत शरीरमें प्राण आते हैं, उसी प्रकार प्रद्युम्नजीको आया हुआ श्रवण कर बड़ा आश्चर्य मान उनकी बड़ाई करने लगीं ॥ ३७ ॥ हे परीक्षित् ! वसुदेव देवकी और कृष्ण बलदेव तथा रुक्मिणीजी एवं और स्त्री पुरुष प्रद्युम्नजीसे मिलकर आनन्दमें मग्न हो गये ॥३८॥ उस समय सब द्वार-

कावासी प्रद्युम्नजीको आया हुआ सुन "अहो बड़ा आश्चर्य है" मृतकके तुल्य यह बालक आया है, इस प्रकार कहने लगे ॥ ३९ ॥ अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रके समान स्वरूपवान्, प्रद्युम्नजी हमारे पुत्र हैं, यह विचार एकान्तमें अत्यन्त प्रेमसे प्रद्युम्नकी माता रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी रानी भ्रांत हो प्रद्युम्नजीकी सेवा करने लगीं, सो यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्ण चन्द्रजीके पुत्र कामदेवका स्मरण करते ही मन चलायमान हो जाता है, फिर साक्षात् मूर्तिका दर्शन करते यदि स्त्रियें सेवा करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां द्वारवत्यां प्रद्युम्नागमनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ दोहा—छप्पनमें हरिको वृथा, मणिको लगो कलंक । सत्राजित को मणि दई, लई सुता सुमयंक ॥ इसके उपरांत

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः ॥ चित्रं न तत् खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे समुद्रक्षिप्तप्रद्युम्नप्रत्यागमनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥ स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सत्राजितः किमकरोद् ब्रह्मन् कृष्णस्य किल्बिषम् ॥ स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद् दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आसीत् सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ॥ प्रीतिस्तस्मै मणिं प्रादात् सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! अब सत्राजित्की कथा वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर श्रवण कीजिये, कि प्रथम अपराध करके सत्राजित्ने अपने पापकी निवृत्तिके लिये पीछे अपनी कन्याको स्यमन्तकमणिके साथ श्रीकृष्णचन्द्रको देनेके उपाय किया था ॥ १ ॥ तब राजा परीक्षित् कहने लगे कि हे योगीश्वर शुकदेवजी ! सत्राजित्ने श्रीकृष्णचन्द्रका क्या अपराध किया और स्यमन्तकमणि उसने कहांसे पायी ? और पीछे किसलिये अपनी कन्या श्रीकृष्णचन्द्रको दी ? यह सब हमारे आगे विस्तारसहित वर्णन करो ॥ २ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! सत्राजित् भगवान् सूर्यनारायणका परमभक्त और मित्र था,

इसलिये प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्‌ने सत्राजित्‌को स्यमन्तकमणि दी ॥ ३ ॥ हे महाराज ! सत्राजित् उस मणि को कण्ठमें पहनकर सूर्यके समान प्रकाशमान हो द्वारकापुरीमें आया। उस समय उसके तेजसे यह ज्ञात नहीं होता था कि यह सत्राजित् आ रहा है ॥ ४ ॥ तेजकी चकाचौंधके कारण दृष्टि चौंध जानेसे मनुष्य सत्राजित्‌को दूरसे आता हुआ देखकर उग्रसेनकी सभा में चौपड़ खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे " यह सूर्यभगवान् आ रहे हैं " इस प्रकार कहने लगे ॥ ५ ॥ हे नारायण ! हे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले ! हे दामोदर ! हे कमलनेत्र ! हे गोविंद ! हे यादवोंके आनन्ददायक ! श्रीकृष्णचन्द्रजी ! आपको नमस्कार है ॥६॥ हे जगत्पति ! तुम्हारे

स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ॥ प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तं विलोक्य जना दूरात् तेजसा मुष्टदृष्टयः ॥ दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥ ५ ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु शंखचक्रगदाधर ॥ दामोदरारविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ॥ मुष्णन् गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥७॥ नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ॥ ज्ञात्वाऽद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥८॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ॥ प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥९॥ सत्राजित् स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् ॥ प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ १० ॥

दर्शन करनेके लिये सूर्य भगवान् अपनी तीक्ष्ण किरणके समूहसे मनुष्योंके नेत्रोंको चुराते हुए चले आते हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! त्रिलोकीके देवताओंमें श्रेष्ठ देवता भी आपका मार्ग ढूँढ़ते हैं और इसीलिये यादवोंसे छिपा जान आपके ढूँढ़नेको सूर्य भगवान् आ रहे हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कमलदलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अज्ञानी पुरुषोंकी यह बात सुन हँसकर कहने लगे कि यह सूर्य देव नहीं हैं, मणि करके प्रकाशमान सत्राजित आ रहा है ॥ ९ ॥ इसके उपरांत सत्राजित्‌ने अपने घरमें मांगलिक कर्म कर-

वाय और देवमंदिरमें ब्राह्मणोंसे पूजा कराय वहां उस मणिको स्थापित किया * ॥१०॥ हे भारत ! वह मणि नित्यप्रति (चार मनका भार) आठ भार सुवर्ण उगलती थी, मणिमें एक यह भी प्रभाव था कि जहां वह मणि रहे, उस देशमें कभी दुर्भिक्ष न पड़े, अकालमृत्यु तथा अरिष्ट न हो, सर्प नहीं काटे, मनुष्यके देहमें दुःख न हो, अशुभ दृष्टि न आवे और मायावी पुरुष अर्थात् माया जाननेवाले भी उस देशमें वास नहीं कर सकते थे ॥११॥ एक समय श्रीकृष्णचन्द्रने वह मणि राजा उग्रसेनके लिए सत्राजित्से मांगी परंतु सत्राजित्ने लोभके वश होकर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रको नहीं दी और अपने मनमें "श्रीकृष्णको कैसे मना करूँ" यह भी विचार न किया ॥ १२ ॥

दिनेदिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ॥ दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ॥ न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥ ११ ॥ स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ॥ नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ॥ प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥ प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ॥ गिरिं विशन् जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥ सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ॥ अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित् पर्यतप्यत ॥१५॥ प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ॥ भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णेकर्णेऽजपन् जनाः ॥ १६ ॥

इसके उपरांत कुछ समय व्यतीत होनेपर सत्राजित्का भाई प्रसेन उस महा प्रकाशवाली मणिको कण्ठमें पहन घोड़ेपर चढ़कर वनमें शिकार खेलनेको गया॥१३॥कि वहां पर एक सिंह घोड़ेसहित प्रसेनको मार मणि लेकर पर्वतकी कंदरामें जाने लगा, उसी समय मणि लेनेकी इच्छा से जाम्बवान् ऋच्छने उसे मार डाला ॥१४॥ और अपने विलमें जाकर उस मणिको पुत्रीका खिलौना किया। इधर सत्राजित् अपने भाई प्रसेनको शिकार खेलकर वनसे न आया हुआ जान चिन्ता करने लगा ॥ १५ ॥ कि मणि कण्ठमें धारण करके मेरा भाई वनमें शिकार

* शंका–सत्राजित्ने यादव देवताके मंदिरमें ब्राह्मणोंसे क्यो स्थापना कराया ! देव मंदिरमें उस मणिको आपही आप क्यों स्थापन नहीं किया ।

उत्तर–सूर्यने सत्राजित्को मणि देके पीछेसे सत्राजित्से कहा कि, इस मणिको रात दिन धारण मत करना, जो तुम्हारी अग्निहोत्रकी कोठरी है उसमें इस मणिको रख देना, सत्राजित् सूर्य का ऐसा वचन सुनके अपने घरको आया और विचार किया कि, बिना दूसरा स्नान किये देवमंदिरमें कैसे जाऊं, ऐसा विचार करके जबतक स्नान करने की तैयारी की, तबतक ऋषिलोगोंने मणिको रखायके आप स्नान कर तब अग्निहोत्रकी कोठरीमें होम करने गया, इसलिये देवमंदिरमें ब्राह्मणों करके सत्राजित्ने मणिका स्थापन किया ।

खेलने गया है और उस मणिपर कृष्णका दांत है, इसलिए जान पड़ता है कि भाईको कृष्णने मार डाला। इस बातको सत्राजित्‌ने अपनी स्त्रीसे कहा तो उसके मुखसे सुनकर मनुष्यगुप्त रीतिसे बातें करने लगे * ॥१६॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यह यशका नाश करनेवाला कलंक लगा सुन और बहुतसे द्वारकावासियोंको संग ले प्रसेनके ढूँढ़नेको चले ॥ १७ ॥ हे राजन्! वनमें सिंहसे मारे गये प्रसेन व घोड़ेको देख और आगे पर्वतके ऊपर ऋच्छसे मारे हुये सिंहको सब द्वारकावासी देखने लगे ॥१८॥ बड़े अँधेरे भयानक ऋच्छराज जाम्बवान्‌के

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥ १७ ॥ हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ॥ तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥ १८ ॥ ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसावृतम् ॥ एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥ १९ ॥ तत्र दृष्ट्वा मणिं श्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ॥ हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नव-तस्थेऽर्भकान्तिके ॥ २० ॥ तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥ तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत् क्रुद्धो जाम्बवान् बलिनां वरः ॥ २१ ॥ स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनाऽऽत्मनः ॥ पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥ २२ ॥

बिलपर सब प्रजाको बाहर खड़ा करके आप अकेले ही उसके भीतर गये ॥ १९ ॥ वहां उस मणिसे बालकको खेलता हुआ देख मणि लेनेकी इच्छासे आप भी बालकके समीप ही खड़े हो गये ॥२०॥ प्रथम कभी न देखनेके कारण मनुष्यरूप श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर डर-पोककी नाईं धायी पुकारने लगी। तब महा बलवान् जाम्बवान् धायीका पुकारना सुन क्रोधित हो सामने दौड़कर आया ॥२१॥ क्रोधी जाम्बवान् श्रीकृष्णके प्रभावको न जान और उनको साधारण पुरुष जान अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करने लगा ॥ २२ ॥

* यद्यपि सत्राजित्‌ने स्त्रीसे कहा कि घरकी बात किसी स्त्रीसे कहना नहीं तो भी उसने अपने स्वाभाविक गुणके कारण दूसरेसे कह दी। इस पर एक दृष्टांत है:— एक बनिया था, सो दिशा को गया, वहां उसने दोनों घोटोंके बीचमें नीचे कौवेका पंख पड़ा देखा तो उसे यह वहम हुआ कि हमारे पेटसे निकला है, सो घर आकर अपनी स्त्रीसे बोला कि आज हमारे पेटसे कौवेका पंख निकला है न जाने क्या रोग हो गया, उसने टहलनियोंसे कही; टहलनियां औरके घर जाकर बोलीं कि फलाने शाहजीके पेटमेंसे पांच कौवे निकले, हमने यह अपनी आंखोंसे देखा है। उस स्त्रीने औरसे कहा कि शाहजीके पेटमेंसे पचास कौवे रोज निकलते हैं। उसने औरसे पांचसौ कहे, कहांतक कहें, जब वह लाला बाहर निकलें, तो लोग कहने लगे कि जब यह लाला दिशाको जाते हैं, तो इनके पेटमेंसे दो दो हजार कौवे निकलते हैं। सारांश-स्त्रीसे बात कहनेमें यह दोष है कि "निकली होठों, चढ़ गयी कोठें।"

परस्पर जीतनेकी इच्छासे श्रीकृष्ण और जाम्बवान्का शस्त्र, पत्थर, वृक्ष और भुजाओंसे महाघोर संग्राम होने लगा, जिस प्रकार मांसके लिए दो शिकारी पक्षी लड़ते हैं ॥२३॥ वज्रपातके समान कठोर दृष्टिसे खेदरहित अट्ठाईस दिनरात परस्पर युद्ध हुआ॥२४॥ जब श्रीकृष्णके मुष्टिकके प्रहारसे उसके सब अंग शिथिल हो गये, बल घट गया और पसीना आ गया, तब जाम्बवान् महा आश्चर्य मानकर कहने लगा ॥२५॥ कि समस्त प्राणियोंके प्राणमें जो बल है और सहोबल अर्थात् इंद्रिय, हृदय, देह इत्यादिकोंका बल आप ही हो और विष्णुभगवान् पुराणपुरुष कृपालु सबके ईश्वर आप ही हो॥२६॥ विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकके तुम निश्चय निमित्त कारण हो और उत्पत्तिके योग्य

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ॥ आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३ ॥ आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ॥ वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टांगोरुबन्धनः ॥ क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥ २५ ॥ जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ॥ विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ॥ कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथाऽऽत्मनाम् ॥ २७ ॥ यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिंगलोऽब्धिः ॥ सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षश्शिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ ॥ इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ॥ व्याजहार महाराज भगवान् देवकीसुतः ॥ २९ ॥ अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शङ्करेण तम् ॥ कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥ ३० ॥

पदार्थके उपादान कारण हो और समस्त प्रेरणावालोंके ईश्वर तुम कालरूप हो तथा आत्मा जीवके उत्कृष्ट आत्मा हो ॥ २७ ॥ विष्णु पुराण हो, इसीलिये मेरे इष्टदेव रघुनाथ हो, जिन रघुनाथजीके कुछेक क्रोधसे लेके कटाक्षपातसे मगर और बड़े बड़े ग्राह दुःखित हो गये, तब समुद्रने मार्ग दिया और जिन श्रीरामचन्द्रजीने अपना यश प्रकट करनेके लिये पुल बांधा, लङ्का जलायी, महातीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसराज रावणके शिर काटकर पृथ्वीमें डाले, सो मुझे निश्चय विदित होता है कि आप मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्र ही हैं ॥ २८ ॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार जाम्बवान्को ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उससे कहने लगे॥२९॥कमलनेत्र श्रीकृष्णचंद्र सुखके

देनेवाले अपना हाथ परम कृपा कर अपने भक्त जाम्बवान्के ऊपर धर प्रेमगर्भित वाणीसे कहने लगे ॥ ३० ॥ हे ऋच्छराज जाम्बवान् ! हम मणि लेनेके लिये यहां तेरे बिलमें आये हैं, क्योंकि हमें एक मिथ्या कलंक लगा है, उसे मणि ले जाकर दूर करेंगे ॥३१॥ यह वचन सुनते ही जाम्बवान्ने बड़े आनन्दपूर्वक मणिसहित अपनी कन्या जाम्बवती सेवा करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रको दी ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जिन द्वारकावासियोंको श्रीकृष्णचन्द्र बिलके बाहर खड़ा कर गये थे, उन्हें श्रीकृष्णका मार्ग देखते जब बारह दिन हो गये, तब उन्होंने जाना कि श्रीकृष्ण अब नहीं निकलेंगे, इसलिए सब दुःखित होकर द्वारकापुरीको चले गये ॥ ३३ ॥ बिलमेंसे श्रीकृष्णचन्द्र नहीं निकले, यह बात द्वारकावासियोंके मुखसे श्रवण कर देवकी, रुक्मिणी, वसुदेव और सुहृद्जन तथा जातिके मनुष्य सबही अत्यन्त चिंता

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ॥ मिथ्याऽभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनाऽमुना ॥ ३१ ॥ इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा ॥ अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥ ३२ ॥ अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ॥ प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिता स्वपुरं ययुः ॥३३॥ निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ॥ सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन् बिलात् कृष्णमनिर्गतम् ॥ ३४ ॥ सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ॥ उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥ तेषां तु देव्युपस्थानात् प्रत्यादिष्टाशिषा स च ॥ प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन् हरिः ॥ ३६ ॥ उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ॥ सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ॥ ३७ ॥ सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ॥ प्राप्तिं चाख्याय भगवान् मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥

करने लगे॥३४॥और सब द्वारकावासी दुःखित होकर सत्राजित्के दुर्वाक्य कहते श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनेके लिये महामाया दुर्गादेवीकी पूजा करने लगे ॥३५॥ जब देवीकी पूजा करनेसे "श्रीकृष्णको देखोगे" इस प्रकार द्वारकावासियोंको देवीने आशीर्वाद दिया तब उसी समय सिद्ध मनोरथ श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकावासियोंको आनन्द देते स्त्री सहित आये ॥३६॥ हे राजन् ! जिस प्रकार कोई मृतक पुरुष फिर लौट आवे, उसी प्रकार मणि पहने हुये स्त्रीको लिये श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख समस्त द्वारकावासी परम आनन्दित हुए ॥३७॥ इसके उपरांत सभामें राजा उग्रसेनके पास सत्राजित्को "बुलाकर जाम्बवान् ऋच्छसे मणि लाये हैं" यह कहकर मणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजि-

त्को दे दी ॥ ३८ ॥ सत्राजित् मणि ले अत्यन्त लज्जित हो और मुख नीचा कर पछताता हुआ घरको चला गया ॥ ३९ ॥ महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे विरोध हुआ जान व्याकुल हो सत्राजित् अपने पूर्व अपराधको वारंवार स्मरण करके यह पाप कैसे दूर हो और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कैसे प्रसन्न हों ? इस प्रकार चिंता करने लगा ॥ ४० ॥ अब मैं क्या कर्म करूँ कि जिससे मेरा कल्याण हो ? क्योंकि मैंने विना विचारे श्रीकृष्णचन्द्रको दोष लगाया, मैं अत्यन्त कृपण, मंदबुद्धि और द्रव्यका लोभी हूँ, इसलिये अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे मनुष्य मुझे बुरा न कहें ॥ ४१ ॥ हे भरतवंशावतंस ! इस प्रकार सत्राजित्से विचार करके यह निश्चय किया कि श्रीकृष्णचन्द्रको मैं अपनी कन्या ब्याह दूँगा और पीछेसे दहेजमें मणिभी दे दूँगा यही उपाय अच्छा है, इसके अतिरिक्त और उपायसे मेरा अपराध दूर न होगा ।

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वाऽवाङ्मुखस्ततः ॥ अनुतप्यमानो भवनमगमतस्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ॥ कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद् वाऽच्युतः कथम् ॥४०॥ किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद् वा जनो यथा ॥ अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥ ४१ ॥ दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ॥ उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ॥ मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥४३॥ तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ॥ बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥४४॥ भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥ तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे जाम्बवतीविवाहो नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार बुद्धिसे स्थिर करके सत्राजित्ने मंगलरूप अपनी कन्या और मणि स्वयं ही प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रको अर्पण की ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने भी सुन्दर स्वभाव रूप उदारतादि गुण युक्त सत्यभामाका पाणिग्रहण किया, जिसको पहले कृतवर्मादि कई यादव मांग चुके थे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित् ! तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्से कहा कि यह मणि हमको नहीं चाहिये, क्यों कि तुम सूर्यके भक्त हो, इसलिये यह मणि तुम्हारे ही पास रहेगी और इससे जो सुवर्ण होगा सो हमारे यहां भिजवा देना, कारण यह कि तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है इस कारण तुम्हारा जो धर्म है सो हमारा ही है, यह भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रका गूढ़ अभिप्राय था ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

भा.द.उ. ॥२०३॥ दोहा–शतधन्वाके हतनको, जो कुछ लगो कलंक । मणि मँगाय अक्रूरसे, मेट सतावन अंक ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! यद्यपि पांडवगण बिलमें होकर लाक्षाभवनसे बाहर निकल गये और यह बात आप भलेप्रकार जानते थे, परंतु तो भी पाण्डव और कुन्तीको जला हुआ सुन कुलोचित व्यवहार करनेके लिये बलरामजीको संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्र कुरुदेशको गये ॥१॥ भीष्मपितामह, विदुर सहित कृपाचार्य, गान्धारी, द्रोणाचार्य इनसे श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हाय ! पांडव जल गये और बड़ा ही कष्ट उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ हे राजन् ! कुछ दिनोंके पीछे अक्रूर और कृतवर्मा ये दोनों अवसर पाकर शतधन्वासे कहने लगे कि इस समय सत्राजित्से मणि क्यों नहीं छीन लेता ? क्योंकि जिस सत्राजित्ने अपनी कन्यारत्न हमको देनी स्वीकार कर फिर कृष्णको ब्याह दी, वह सत्राजित् अपने भाई प्रसेनके पीछे

श्रीशुक उवाच ॥ विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ॥ कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च ॥ तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥ २ ॥ लब्ध्वैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः ॥ अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥ ३ ॥ योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः ॥ कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद् भ्रातरमन्वियात् ॥४॥ एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः॥ शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥५॥ स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत् ॥ हत्वा पशून् सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥६॥ सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचाऽर्पिता ॥ व्यलपत् ताततातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ॥ कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताऽचख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥

भा० टी० अ० ५७ क्यों न जाय अर्थात मरे क्यों नहीं ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ इस प्रकार अक्रूर और कृतवर्माके बहँकानेसे बुद्धिहीन और क्षीणजीवन हो पापी असाधु शतधन्वाने शयन करते सत्राजित्का शिर काट लिया ॥ ५ ॥ कसाई जिस प्रकार पशुका वध करता है, ऐसे ही सत्राजित्को जब शतधन्वा मारकर चला गया तब सत्राजित्की स्त्री अनाथके समान पुकार-पुकार कर रोदन करने लगी ॥ ६ ॥ इसके पीछे अपने पिता सत्राजित्को मारा हुआ देख सत्यभामा "हाय पिता ! हाय पिता !" कहकर अत्यन्त विलाप करने लगी ॥ ७ ॥ फिर मृतक पिताकी देहको तिलकी कोठरीमें रखकर सत्यभामा हस्तिनापुरको चली गयी । यद्यपि शतधन्वाने सत्राजित्को मारा है यह बात अन्तर्यामी श्रीकृष्ण-

चन्द्रने प्रथम ही जान ली थी, परन्तु तो भी सत्यभामा "मेरे पिताको शतधन्वाने मार डाला" यह बात दुःखित होकर कहने गयी ॥ ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी सत्राजित्का मरण सुन और अपने मनुष्यावतारका कारण जान "हमको महाकष्ट उपस्थित हुआ है" इस प्रकार कह और आंखोंमें आंसू भरकर विलाप करने लगे ॥९॥ इसके उपरांत सत्यभामा और अपने भाई बलदेवजीको साथ लेकर श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरसे द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वाके मारने और उससे मणि लेनेका उपाय करने लगे ॥१०॥ यहां शतधन्वाने सुना कि श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे मारनेका उपाय किया तब वह अत्यन्त भयभीत होकर प्राण बचानेके लिए कृतवर्मासे सहायके निमित्त कहा, तब कृतवर्माने उत्तर दिया ॥११॥ कि भाई ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेवजीका

तदाकर्ण्येश्वरो राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ॥ अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥ आगत्य भगवांस्तस्मात् सभार्यः साग्रजः पुरम् ॥ शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥१०॥ सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया॥ साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत सचाब्रवीत् ॥ ११ ॥ नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ॥ को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥१२॥ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात् त्याजितः श्रिया ॥ जरासन्धः सप्तदश संयुगान् विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ॥ सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च॥चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥ १५ ॥

अपराध मैं कभी न करूँगा, क्योंकि उनका अपराध करके किसका कल्याण होगा ? ॥ १२ ॥ देखो इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे द्वेष करके कंस लक्ष्मीसे भ्रष्ट होकर अपने भाइयोंसहित मारा गया और मगधदेशके राजा जरासन्धने तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर सत्रह बार युद्ध किया, परंतु युद्धमें हार अन्तको विरथ होकर चला गया ॥१३॥ जब कृतवर्मासे कोरा जवाब पाया तब यह निपट उदास हो अक्रूरजीके पास जाकर कहने लगा, तब अक्रूरजीने कहा कि भाई ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पराक्रम जान लेनेपर कौन पुरुष उनसे विरोध करेगा ? ॥ १४ ॥ जो ईश्वर लीलापूर्वक इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करता है, उसकी मायासे मोहित

होकर उसकी चेष्टाको ब्रह्मादिक भी नहीं जानते ॥१५॥ देखो सात वर्षकी ही अवस्थामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन पर्वत उखाड़कर जिस प्रकार बालक छत्राकको उठाता है, उसी प्रकार उठा लिया ॥ १६ ॥ उन्हीं अद्भुतकर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिए नमस्कार है और जो सबके आदिकारण, निर्विकार सबके आत्मा हैं, उन्हें हम केवल नमस्कार करते हैं ॥ १७ ॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार जब अक्रूरजीने भी सूखा उत्तर दिया, तब शतधन्वा अत्यन्त घबड़ाकर मणि अक्रूरके पास रख, चारसौ कोस चलनेवाले घोड़े पर चढ़कर भाग गया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार शतधन्वा भागा तब राम कृष्ण गरुडध्वजवाले रथमें बैठ शीघ्र-

यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ॥ दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे॥अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥१७॥ प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ॥ तस्मिन् न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ॥ अन्वयातां महावेगैरश्वैः राजन् गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥ मिथिलाया उपवने विसृज्य पतितं हयम् ॥ पद्भ्यामधावत् संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ॥ चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् ॥ वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ॥ कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥

गामी घोड़ोंसे श्वशुरके मारनेवाले शतधन्वाके पीछे दौड़े ॥१९॥ जब शतयोजनसे अधिक घोड़ेसे न चला गया और मिथिलापुरीके बागमें गिर पड़ा, तब शतधन्वा उस घोड़ेको छोड़ भयभीत हो पांवप्यादे भागने लगा और श्रीकृष्ण भी अत्यन्त क्रोधित होकर उसके पीछे दौड़ने लगे ॥२०॥ इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रने शतधन्वाको पकड़ और अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले चक्रसे उसका शिर काट वस्त्रोंमें मणि ढूँढ़ने लगे ॥ २१ ॥ जब शतधन्वाके वस्त्रोंमें मणि न निकली, तब श्रीकृष्णचन्द्रने बलदेवजीसे आकर कहा कि देखो भाई शतधन्वाको वृथा ही मारा और उसपर मणि न निकली ॥२२॥ इसके पीछे बलदेवजी कहने लगे कि शतधन्वा और किसीके पास मणिधर आया

है,इस कारण उस पुरुषको ढूँढ़नेके लिए तुम द्वारका जाओ ॥२३॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र सब बातको जानते हैं, परन्तु तो भी "मणिका मुझसे छिपाव किया है" यह मनमें निश्चयकर बलदेवजी क्रोध करके कहने लगे, (तात्पर्य यह है कि द्रव्य ऐसा निषिद्ध पदार्थ है, जिसके लिए कृष्ण बलदेवका भी मन बिगड़ गया, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ?) कि मेरा परमप्यारा विदेह देशका राजा बहुलाश्व है, उसके देखनेको मेरा चित्त बहुत भटक रहा है, इसलिए मैं वहां जाऊँगा, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रसे कह यादवोंके आनंददायक महात्मा बलदेवजीने मिथिलापुरीमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥ प्रसन्न मन मिथिलापुरीका राजा बलदेवजीको आया हुआ देख शीघ्र उठ पूजन करनेके योग्य बलदेवजीकी पूजा करनेकी सामग्रियोंसे पूजा करने लगा, तब सामर्थ्यवान् बलदेवजी कितने एक वर्ष तक वहां रहे ॥२५॥ प्रीति-

अहंविदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ॥ इत्युक्त्वा मिथिलां राजन् विवेश यदुनन्दनः ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ॥ अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥ उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ॥ २५ ॥ मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ॥ ततोऽशिक्षद् गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ २६ ॥ केशवो द्वारका-मेत्य निधनं शतधन्वनः ॥ अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद् विभुः ॥ २७ ॥ ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ॥ साकं सुहृद्भिर्भगवान् या याः स्युः साम्परायिकाः॥२८॥अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ॥ व्यूषतुर्भयवित्रस्तो द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥ अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन् वै द्वारकौकसाम् ॥ शारीरा मान-सास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥

युक्त महात्मा जनकजीसे सत्कार पाकर धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन वहां आके महात्मा बलदेवजीसे गदा चलानेकी विद्या सीखने लगा॥२६॥ इसके उपरांत प्रिय कार्य करनेवाले सामर्थ्यवान् भगवान् केशवमूर्तिने द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वाका नाश और मणिका न मिलना अपनी प्यारी भार्या सत्यभामासे कहा ॥ २७ ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने सुहृदोंको संग लेकर मृतक सत्राजित्के पर-लोक साधनकी क्रिया कराने लगे ॥ २८ ॥ सत्राजित्से मणि छीन लेनेकी शिक्षा देनेवाले अक्रूर कृतवर्मा और शतधन्वाका मरण सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रसे अत्यन्त भयभीत होकर भाग गये ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! जब द्वारकापुरीसे अक्रूरजी चले गये तब द्वारका-

वासी मनुष्योंके मनमें ताप और अरिष्ट बारम्बार होने लगे ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कितने एक ऋषि जिन्होंने प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमा वर्णन की है; वे श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूलकर ऐसा कहते हैं, क्योंकि मुनियोंके निवास श्रीकृष्णके विद्यमान रहते अरिष्ट किस प्रकार हो सकते हैं ? ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दूषित करके फिर और ऋषियोंका मत वर्णन करते हैं; कोई कोई ऋषि कहते हैं कि एक समय जब इन्द्रने जल नहीं वर्षाया तब काशीके राजानें अपनी कन्या गांदिनीको ले पुरीमें आये हुए श्वफल्कको दी, तब काशीके सम्पूर्ण देशमें खूब वर्षा हुई ॥ ३२ ॥ पिता श्वफल्कके समान प्रभावशाली अक्रूरजी जहां वास करते हैं, उस देशमें खूब वर्षा होती है और

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ॥ मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्ट दर्शनम् ॥३१॥ देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ॥ स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात् ततोऽवर्षत् स्म काशिषु ॥ ३२ ॥ तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह ॥ देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥३३॥ इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ॥ इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥३४॥ पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ३५ ॥ ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ॥ स्यमन्तको मणिः श्रीमान् विदितः पूर्वमेव नः ॥३६॥

महामारी इत्यादि किसी प्रकारका खेद प्राणियोंको नहीं होता है * ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वृद्ध पुरुषोंका वचन सुनकर "केवल अक्रूर ही यहांसे गया है और मणिको भी वही ले गया है" यह बात निश्चय करके अक्रूरको काशीसे बुलानेके लिए श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥३४॥ उसके पीछे आप ही अक्रूरकी पूजा कर हे काका अक्रूर ! इस प्रकार सम्बोधन देकर प्यारी-प्यारी बात कह सब विश्वके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरके मनकी बात जान मुसकाकर कहने लगे॥३५॥कि हे पूज्यतम ! अक्रूरजी ! हम निश्चय जानते हैं कि स्यमंतकमणि शतधन्वा

* शंका--बड़े आश्चर्यकी बात है, कि जिस जिस गांवमें अक्रूर वास करता है, उसी गांवमें इन्द्र जलकी वर्षा करता है, फिर उस गांवमें महामारीकी बीमारी नहीं होती थी जो अक्रूर मथुरा छोड़के द्वारकामें वास किया, दूसरे गांवमें वास नहीं किया फिर सातों द्वीपोंमें तो अक्रूर नहीं हैं, तब सातों द्वीपोंमें इन्द्र जलकी वर्षा क्यों करता है ?

उत्तर—अक्रूरकी माता गांदिनीने ब्रह्माका तप करके ब्रह्मासे यह वरदान लिया कि जिस स्थानपर तू (गांदिनी) या तेरा पति अथवा तेरा पुत्र निवास करेगा और अपने मनमें जब वर्षनेकी इच्छा करेगा, उसी समय जिस स्थान पर चाहेगा वर्षा बहुत होगी और जब अपने मनमें अभिमान करके प्रजाकी बुराई विचारेगा, और वर्षा होनेकी इच्छा नहीं करेगा उसी समय तुम्हारा प्राण छूट जायगा, इसलिये बुद्धिमान् अक्रूर रात दिन प्रजाको सुखी होनेके लिये अपने मनमें रातदिन वर्षा होनेकी इच्छा करते रहते थे।

तुम्हारे पास रख गया है और वह तुम्हारे पास है ॥ ३६ ॥ सत्राजितके कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उसे पिंड, जलदान और ऋण चुकाकर जो शेष धन रहेगा उसे शास्त्रानुसार उसकी कन्याके पुत्र लेंगे ॥३७॥ हे अक्रूर ! यद्यपि तुम हमसे कहो मत, परंतु तो भी हम जानते हैं कि मणि तुम्हारे अतिरिक्त और किसीके पास नहीं रह सकती, क्योंकि आप सुन्दर व्रत धारण करनेवाले हैं। तब अक्रूरजीने कहा कि अच्छा मेरे पास सही, तुम्हें क्या प्रयोजन है ? यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले, बड़े भाई बलदेवजी इस मणिके पीछे मेरा विश्वास नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥ हे बड़भागी अक्रूर ! तुम मणि दिखाकर शीघ्र ही मेरे भाईको शान्त करो और मेरे पास मणि नहीं है यह मत कहो, यदि कदाचित् मणि तुम्हारे पास न होती तो सुवर्णकी वेदी बनाकर काशीमें जाकर अखण्ड यज्ञ कैसे करते ? ॥ ३९ ॥ जब इस प्रकार साम

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ॥ दायं निनीयापः पिण्डान् विमुच्यर्णं स च शेषितम् ॥३७॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ॥ किन्तु मामग्रजः सम्यङ्न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥ दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह ॥ अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥ एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ॥ आदाय वाससाच्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥ स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ॥ विसृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ॥ आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शांतिम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे स्यमन्तकोपाख्यानं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

भेद कर समझाया, तब अक्रूरजीने सूर्यके समान तेजवाली, वस्त्रसे ढकी हुई वह मणि निकालकर श्रीकृष्णचन्द्रको दे दी ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्यमन्तकमणि अक्रूरजीसे लेकर जातिके बन्धुबांधवोंको दिखाकर अपना मिथ्या कलंक दूर कर फिर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरजीको समर्पण कर दी ॥ ४१ ॥ परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका कहा हुआ मनुष्योंके दुःखोंको हरनेवाला, सुन्दर मङ्गलरूप इस स्यमन्तकमणिके प्रसंगको जो कोई पुरुष पढ़ेगा वा श्रवण करेगा अथवा स्मरण करेगा वह कुत्सित पापोंके कलंकको दूर कर कल्याणको प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

दोहा–सत्या भद्रा लक्ष्मणा, मित्रवृन्द कालिन्द। अट्ठावन अध्यायमें, वरी सकल गोविन्द ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! लाक्षागृहमें पाण्डव जल गये यह बात होनेपर फिर द्रुपदराजाके यहां पीछे दिखायी दिये, इस प्रकार पाण्डवोंकी खबर पाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदि यादवोंको संग ले एक समय इन्द्रप्रस्थ गये ॥ १ ॥ सबके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखते ही जिस प्रकार मृतक शरीरमें प्राण आनेसे इंद्रियें चैतन्य हो जाती हैं, उसी प्रकार बलवान् पाण्डव उठ खड़े हुए ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलकर पापरहित होनेके कारण वीर पांडव स्नेहभरी मुसकान सहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द देखकर परमानन्दको

श्रीशुक उवाच ॥ एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः ॥ इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान् युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥ दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ॥ उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणं मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥ परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः ॥ सानुराग स्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवंदितः ॥४॥ परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिंदिता ॥ नवोढा व्रीडिता किञ्चिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥ तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभि वंदितः ॥ निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासिताः ॥ ६ ॥ पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाऽभिरम्भितः ॥ आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः ॥ ७ ॥

प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्र युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें नमस्कार करके फिर अपने समान अर्जुनसे मिले। इसके उपरांत छोटे नकुल और सहदेवने श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार किया ॥ ४ ॥ फिर श्रेष्ठ आसनपर विराजमान श्रीकृष्णचंद्रको नवविवाहिता निन्दारहित, लज्जावती द्रौपदीने आकर धीरे धीरे प्रणाम किया ॥ ५ ॥ उसी प्रकार सात्यकीको भी पांडवोंने आकर पूजन कर आसनपर बैठाया, फिर और मनुष्योंका भी आदर सम्मान किया ॥६ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्रने कुन्तीके पास आकर प्रणाम किया तो कुंतीने भी स्नेहभरी चितवनसे आलिंगन किया, फिर श्रीकृष्णचंद्रने पिता व बहनकी कुशल कुंतीसे पूछी और इसके उपरांत कुंती श्रीकृष्णचंद्रसे

भाइयोंकी कुशल पूछने लगी ॥७॥ प्रेमकी व्याकुलतासे गद्गदकण्ठ हो नेत्रोंमें आंसू भर, कौरवोंके दिये कष्टकी सुध करके कुन्ती भक्तोंके क्लेशोंको नष्ट करनेवाले श्रीकृष्णचंद्रसे कहने लगी ॥८॥ कि हे कृष्ण ! जातिके बन्धु हमको स्मरण करके जिस समय तुमने मेरे भाई अक्रूरको खबर लेने भेजा, उस समय हमारी सब कुशल हो गयी और तुमने हमको सनाथ कर दिया ॥ ९ ॥ यद्यपि उस विश्वके हितकारी आत्मा तुम "यह अपना है, यह पराया है" इस भ्रमसे रहित हो परंतु तो भी जो कोई तुम्हारा सर्वदा स्मरण करता है, तुम उसके हृदयमें स्थित होकर समस्त क्लेशोंका नाश कर देते हो ॥ १० ॥ राजा युधिष्ठिर कहने लगे कि हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! नहीं ज्ञात होता

तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना ॥ स्मरन्ती तान् बहून् क्लेशान् क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥ तदेव कुशलं नोऽभूत् सनाथास्ते कृता वयम् ॥ ज्ञातीन् नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥ न तेऽस्ति स्वपरभ्रांतिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ॥ तथापि स्मरतां शश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वरः ॥ योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥ इति वै वार्षिकान् मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ॥ जनयन्नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥ एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम् ॥ गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥ साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं गहनं वनम् ॥ बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत् परवीरहा ॥ १४ ॥ तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान्रुरून् ॥ शरभान्गवयान्खड्गान्हरिणाञ्शशशल्लकान् ॥ १५ ॥

कि मैंने क्या कल्याणकारी कार्य किया है, क्योंकि योगेश्वरोंको जिनका दर्शन होना महाकठिन है, उनका हम सरीखे कुमतियोंको दर्शन हुआ ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिरके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्णचंद्र इंद्रप्रस्थ–निवासियोंके नेत्रोंको आनन्द देते हुए वर्षाकालतक वहीं विराजमान रहे ॥ १२ ॥ एक समय महाबलवान् शत्रुओंका मारनेवाला अर्जुन कपिध्वजवाले रथमें चढ़कर गांडीव धनुष और बाणोंसे भरा तरकस ले, कवच पहन बहुत सर्प और मृगवाले बड़े वनमें श्रीकृष्णचन्द्रके सङ्ग शिकार खेलनेको गया ॥ १३ ॥ १४ ॥ और उस वनमें पहुँचकर व्याघ्र, सूकर भैंसा, रुरु अर्थात् हरिण, शरभ, रोज, गौड़ा मृग और खरहा

भा. द. उ.
॥२०७॥

इनको अपने तीक्ष्णबाणोंसे छेदन करने लगा ॥ १५ ॥ हे राजन् ! अमावास्या पौर्णमासी यह पर्व जब आकर प्राप्त हुए तब सेवकलोग पवित्र पशु राजा युधिष्ठिरके पास लाये और जब अर्जुनको प्यास लगी तो थका हुआ यमुनाजीपर आया ॥ १६ ॥ महारथी अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाके निर्मल जलका आचमन कर और जल पीकर जब खड़े हुए तब इन्होंने एक सुन्दर कन्या बैठी देखी ॥ १७ ॥ सुन्दर जंघा, श्रेष्ठ दांत, मनोहर मुख, ऐसी प्रेमदा कन्याके पास श्रीकृष्णका भेजा हुआ अर्जुन जाकर पूछने लगा ॥१८॥ कि हे सुश्रोणि ! तुम कौन हो ? और किसकी पुत्री हो, कहांसे आयी हो और तुम्हारे मनमें क्या करनेकी इच्छा है ? सो सब वृत्तांत कहो । मुझे निश्चय

तान् निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान् पर्वण्युपागते ॥ तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ॥ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥ तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ॥ पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥१८॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ॥ मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥ १९ ॥ कालिन्द्युवाच ॥ अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ॥ विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥२०॥ नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ॥ तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥ कालिंदीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ॥ निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथाऽवदद् गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ॥ रथमारोप्य तद् विद्वान् धर्मराजमुपागमत ॥ २३ ॥

भा॰ टी॰
अ॰ ५८

जान पड़ता है कि तुम्हारे पति करनेकी इच्छा है ॥१९॥ इतना पूछनेपर कालिंदीने कहा कि मैं सूर्यदेवकी पुत्री हूँ, कालिन्दी मेरा नाम है और वरको देनेवाले विष्णुभगवान्को पति करनेकी इच्छासे तप कर रही हूँ ॥२०॥ हे वीर ! अत्यन्त स्वरूपवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और किसीको मैं नहीं वरूंगी । वह अनाथके आश्रय मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ मैं कालिंदी नामसे विख्यात हूँ और मेरे पिता सूर्यदेवने यमुनाजलमें स्थान बना दिया है, इसलिए जबतक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन न होगा तबतक यहां वास करूंगी ॥२२॥ यह सुन अर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्रके पास जाकर कालिंदीके सब वचन कहे । तब कालिन्दी मेरे लिए तप करती है यह बात

जान श्रीकृष्णचंद्र कालिंदीको रथमें बैठाकर धर्मराज राजा युधिष्ठिरके पास आये ॥ २३ ॥ उस समय पांडवोंकी आज्ञासे श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके कारीगर विश्वकर्मासे कहकर पांडवोंके लिए चित्र विचित्र अद्भुत नगर बनवाये ॥ २४ ॥ पांडवोंका भला चाहनेके लिये इन्द्रप्रस्थमें वास करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् अग्निको खांडववन चरानेके लिए अर्जुनके सारथी हुए ॥ २५ ॥ हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! तब उस अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको धनुष, श्वेत घोड़े, तीरोंसे भरा तरकस और जो अस्त्रवालोंसे भी न कटे ऐसा एक कवच दिया ॥ २६ ॥ और वहां इन्होंने अग्निसे मयनामक दैत्यको बचाया, इसलिये उसने प्रसन्न होकर पांडवोंको एक सभा दी, जिस

तदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ॥ कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन् स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥ अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥ सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्श्वेतान् रथं नृप ॥ अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभि ॥ २६ ॥ मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ॥ यस्मिन् दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥ २७ ॥ स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ॥ आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ २८ ॥ अथोपयेमे कालिंदीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते ॥ वितन्वन् परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥२९॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ ॥ स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविंदां पितृष्वसुः॥ प्रसह्य हृतवान् कृष्णो राजन् राज्ञां प्रपश्यताम् ॥ ३१ ॥

सभामें जलमें स्थल और स्थलमें जल इस प्रकार देखकर दुर्योधनकी दृष्टिमें भ्रम हुआ ॥ २७ ॥ राजायुधिष्ठिरसे आज्ञा पाकर सुहृदोंमें बड़ाई पाकर श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदि यादवोंको संग लेकर फिर द्वारकापुरीमें आये ॥२८॥ इसके उपरांत सुन्दर पवित्र ऋतु नक्षत्रमें कालिन्दीका पाणिग्रहण किया और फिर अनेक प्रकारसे परमरूप श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको सुख देने लगे ॥२९॥ उज्जैनपुरीके रहनेवाले राजा विंद और अनुविंदकी बहनोंने श्रीकृष्णचन्द्रको स्वयंवरमें वरनेकी इच्छा की, परंतु उन दोनों भाइयोंने मने किया; क्योंकि वे दुर्योधनके अधीन थे ॥३०॥ हे राजन् ! वसुदेवकी बहन राजाधिदेवीकी पुत्री मित्रविंदाको श्रीकृष्णचन्द्र सब राजाओंके देखते देखते बल-

पूर्वक हरण करके ले गये * ॥ ३१ ॥ हे राजा परीक्षित् ! अयोध्यापुरीका पालन करनेवाला बड़ा धर्मात्मा राजा नग्नजित् नामसे विख्यात था, उस राजाके प्रकाशमान सत्यानामक एक कन्या उत्पन्न हुई, कि जिसका उपनाम 'नाग्नजिती' भी प्रसिद्ध था ॥ ॥ ३२ ॥ राजाने यह प्रतिज्ञा की कि जो वीर पुरुषोंका गन्ध भी न सह सके ऐसे दुष्ट, तीखे सींगवाले, अतिदुर्धर्ष सात बैलोंको जो जीते वह मेरी पुत्रीसे विवाह करेगा, अनेक राजा मार खाकर फिर गये, परंतु कोई भी जीतनेको समर्थ न हुआ ॥ ३३ ॥ यह

नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद् राजातिधार्मिकः ॥ तस्य सत्याऽभवत कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥ ३२ ॥ न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ॥ तीक्ष्णशृंगान् सुदुर्धर्षान् वीरगन्धासहान् खलान् ॥३३॥ तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान् सात्वतां पतिः ॥ जगाम कौशल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥ ३४ ॥ स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासना-दिभिः ॥ अर्हणेनापि गुरुणाऽपूजयत्प्रतिनन्दितः ॥ ३५ ॥ वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ॥ भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥ ३६ ॥

यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने सुना कि जो बैलोंको जीते उससे कन्या विवाह करे, यह सुनकर बड़ी भारी सेनाको सङ्ग लेकर अयोध्यापुरीमें आये ॥ ३४ ॥ हे नृप श्रेष्ठ ! राजा नग्नजितने देखा कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं, इसलिये अत्यन्त प्रसन्न हो उठकर "भले आये महाराज !" इस प्रकार प्रशंसा करके सुन्दर आसन बिछाकर चरण धोकर पूजाकी सामग्रियोंसे उनका पूजन करने लगा ॥ ३५ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख और अपने योग्य वर जान इनकी इच्छा करके कहने

* शंका—धर्मशास्त्रमें लिखा है कि फूफीकी लड़की बहिन होती है, फिर श्रीकृष्णने फूफीकी लड़कीके साथ विवाह क्यों किया ?

उत्तर—पूर्व जन्ममें वसुदेवजी तप करते थे, तब वसुदेवजीकी जो दासी थी सो वसुदेवजीकी सेवामें लग रही थी, जब भगवान्‌ने वसुदेवको वरदान दिया कि हम तुम्हारे पुत्र होंगे, तब लक्ष्मी जीने भी वसुदेवजीकी दासियोंको वरदान दिया कि हे दासियो ! तुम्हारी सबकी हम बहुतसी कन्या होवेंगी, इस प्रकार भगवान् और लक्ष्मीके वचनसे प्रथमकी जो वसुदेवजीकी दासी थीं सो सब इस जन्ममें वसुदेवजीकी बहिनें हुईं उन वसुदेवकी बहिनकी पुत्री—लक्ष्मी हुई; अपने वचनके प्रमाणसे, लक्ष्मीरूप जो वसुदेवकी बहिनकी लड़की हैं उनका भगवान्‌के बिना दूसरा पुरुष कैसे विवाह करेगा । इसलिये भगवान्‌ने विचार किया कि साक्षात् यह ही है, अतः इसके साथ विवाह कर लेने से कुछ पाप न होगा ।

लगी कि जो मैंने श्रद्धासहित व्रत किये हैं तो कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों और मेरा मनोरथ सत्य हो ॥ ३६ ॥ जिन भगवान्के चरणकमलकी रजको लक्ष्मी और कमलयोनि ब्रह्मा व महादेव और लोकपाल सम्पूर्ण शिरपर धारण करते हैं और जो अपनी बँधी हुई मर्यादा पालनेकी इच्छासे समयानुसार लीलापूर्वक नृसिंहादि अवतार धारण करते हैं, भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ इसके उपरांत भलीभांति विधिपूर्वक पूजा करके राजा नग्नजित् कहने लगा कि हे नारायण ! जगत्पते ! हे आनन्दसे पूर्ण ! आपकी मैं तुच्छ क्या पूजा करूँ ? ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! आसनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुस-

यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः ॥ लीलातनूः स्वकृतसेतुपरिप्सयेशः काले दधत् स भगवान् मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥ अर्चितं पुनरित्याह नारायणजगत्पते ॥ आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥३८॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाह भगवान् तुष्टः कृतासनपरिग्रहः ॥ मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नरेन्द्र याञ्चा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः ॥ तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां नहि शुल्कदा वयम् ॥४०॥ राजोवाच ॥ कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ॥ गुणैकधाम्नो यस्यांगे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥ किं त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ ॥ पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥४२॥ सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ॥ एतैर्भग्ना सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥४३॥

काते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे राजा नग्नजित्के प्रति कहा ॥ ३९ ॥ हे राजन् नग्नजित् ! विद्वान पुरुष कहते हैं कि मांगना अत्यन्त बुरा है, तो भी स्नेहके वश होकर मैं आपकी कन्या मांगता हूँ, कुछ मूल्यके देनेवाले हम नहीं हैं ॥ ४० ॥ राजा नग्नजित्ने कहा कि हे नाथ ! सब गुण जिनमें विद्यमान और लक्ष्मी सदा जिनके अङ्गमें वास करे ऐसे सर्वगुणालंकृत तुमसे अधिक संसारमें कौन वर है, जिसको मैं अपनी कन्या दूँगा ? ॥ ४१ ॥ हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! पुरुषोंमें पराक्रमकी परीक्षा लेनेके कारण और कन्याके वरकी परीक्षाके लिये हमने प्रथम एक प्रतिज्ञा की है ॥ ४२ ॥ हे वीर कृष्ण ! इन शिक्षारहित और पकड़नेमें न आवें, ऐसे बैलोंको जो जीते, वह कन्याको वरे, यह

बात सुन बहुतसे राजपुत्र यहां आये, परन्तु इनसे अपना शरीर जर्जरित ही कराकर चले गये ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन ! हे लक्ष्मीपति ! जो तुम इन बैलोंको जीत लो तो निश्चय मेरी कन्याका विवाह करो ॥ ४४ ॥ सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार राजा नग्नजित्का वचन सुनकर फेंट बांध अपने सात रूप धारण कर लीलापूर्वक ही बैलोंको पकड़ने लगे ॥ ४५ ॥ गर्व और शक्ति नाश करके उन बैलोंको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने रस्सियोंसे बांधकर जैसे बालक काष्ठके बैलको खींचता है, ऐसे ही खींचने लगे ॥ ४६ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त आश्चर्य मान राजा नग्नजित् प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी कन्या देनेके उद्योग करने लगा और सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने

यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन ॥ वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते॥ ४४ ॥ एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ॥ आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥ ४५ ॥ बद्ध्वा तान् दामभिः शौरिर्हितदर्पान् हतौजसः ॥ व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान् यथा ॥ ४६ ॥ ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ॥ तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान् सदृशीं विधिवत् प्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ॥ लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शंखभेर्यानकानेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ॥ नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासस्स्रगलङ्कृताः ॥ ४९ ॥ दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः ॥ युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥ ५० ॥ नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान् ॥ रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान् नरान् ॥ ५१ ॥

समान कन्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ४७ ॥ राजा नग्नजित्की रानी अपनी कन्याके प्रिय पति श्रीकृष्णको वर पाकर परम आनंदित हुई और बड़ा उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी, नगाड़े बजने लगे, गीतोंका शब्द सुनायी दिया, ब्राह्मणोंने अनेक अशीर्वाद दिये, सुन्दर वस्त्र मालोंसे शोभायमान सब नारी नर प्रसन्न हो गये ॥ ४९ ॥ सामर्थ्यवान् राजा नग्नजित्ने यौतुकमें दश हजार गौवें दीं और धुकधुकी कण्ठमें पहने हुई सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान तीन हजार दासियें दीं ॥ ५० ॥ नौ हजार हाथी और हाथियोंसे सौगुने अर्थात् नौ लाख रथ, रथोंसे सौगुने अर्थात् नौ करोड़ घोड़े दिये और घोड़ोंसे सौगुने अर्थात् एक अर्ब मनुष्य दिये ॥ ५१ ॥

स्नेहसे व्याप्त हृदय कोशल देशका राजा नग्नजित् अपनी कन्या-सहित श्रीकृष्णको रथमें बैठाकर और बहुतसी सेनायें संग लेकर पहुँचाने चला ॥ ५२ ॥ जिनका पुरुषार्थ प्रथम यादव और बैलोंसे भंग हो गया था वे राजा यह बात सुनकर न सह सके और कन्याको ले जाते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मार्गमें रोक लिया ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्यार करनेवाले गांडीव-धनुषधारी अर्जुनने बाण चलाकर समस्त राजाओंको क्षणभरमें सिंह जैसे वनके छोटे-छोटे जीव व मृगोंको भगा देता है उसी प्रकार भगा दिया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दहेज लेकर द्वारकापुरीमें आकर सत्या रानीसे रमण करने लगे ॥ ५५ ॥ वसुदेवकी बहन श्रुतिकीर्तिकी पुत्री

दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ॥ स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोशलः ॥५२॥ श्रुत्वैतद् रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम् ॥ भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ५३ ॥ तानस्यतः शरव्रातान्बन्धुप्रियकृदर्जुनः ॥ गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५४॥ पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ॥ रेमे यदूनामृषभो भगवान् देवकीसुतः ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ॥ कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः सन्तर्दनादिभिः ॥५६॥ सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ॥ स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥ ५७ ॥ अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन् सहस्रशः ॥ भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ राजोवाच ॥ यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ॥ निरुद्धाएतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥

केकयदेशोत्पन्न भद्राको संतर्दनादि भाइयोंके देनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने व्याहा ॥ ५६ ॥ सुन्दर लक्षणवाली मद्रदेशके राजाकी कन्या लक्ष्मणाको गरुड़ जैसे अमृत लाता है; उसी प्रकार अकेले श्रीकृष्णचंद्र हरकर ले आये ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! भौमासुरके बंदीखानेसे छुड़ाई हुई सुंदर स्वरूपवती हजारों स्त्रियां और भी थीं ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामष्टमहिष्युद्वाहवर्णनं नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥ दोहा-उनसठवें अध्यायमें, भौमासुरको मार। इंद्र पराभव करि हरी, कन्या वरीं हजार॥राजा परीक्षित्ने कहा कि हे व्यासपुत्र शुकदेवजी! श्रीकृष्णचन्द्रने जिस प्रकार भौमासुरको मारा और जैसे भौमासुरने वे स्त्रियें रोकीं यह

भा. द. उ. सम्पूर्ण कथा और शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पराक्रम हमारे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज!
॥२१०॥ जब देवराज इन्द्रने श्रीकृष्णचन्द्रसे आकर कहा कि हे भगवन्! मेरा छत्र, अदितिके कुण्डल भौमासुर हरकर ले गया है और अमरादि सुमेरुके मणिपर्वत स्थानमें उसने अपना अधिकार कर लिया है और हमें अत्यन्त ही दुःखित कर दिया है। देवराजकी यह बात सुनकर ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचंद्र पक्षिराज गरुड़पर सवार हो सत्यभामा रानीको संग ले प्राग्ज्योतिष नामक भौमासुरके नगरमें गये जहां पर्वत, शस्त्र, जल, अग्नि और पवनके किले हैं, जिनमें कोई प्रवेश न कर सके ऐसा भयानक गढ़ और मुरदैत्यकी हजारों दृढ़ फांसियों करके चारों ओरसे व्याप्त

श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रेण हृतछत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना ॥ हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ॥ २ ॥ सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ गिरिदुर्गैश्शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ॥ मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ॥ ३ ॥ गदया निर्बिभेदाद्रीञ्शस्त्रदुर्गाणि सायकैः ॥ चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥ शङ्खनादेन-यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ॥ प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥५॥ पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्ताश-निभीषणम् ॥ मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥ ६ ॥ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगान्तसूर्यानलरो-चिरुल्बणः ॥ ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखैरभ्यद्रवत् तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥

है ॥३॥ श्रीकृष्णचन्द्रने गदासे गिरिदुर्ग तोड़ा, शस्त्रदुर्ग बाणोंसे, चक्रसे अग्निदुर्ग तोड़ा, इसके उपरांत जलदुर्ग और पवनदुर्गको तोड़ा, इसी प्रकार मुरदैत्यकी फाँसियोंको काट डाला ॥ ४ ॥ शंख बजनेके शब्दसे अनेक युद्धके यन्त्र उलटे चलने लगे और शूरबीरोंके हृदय वा मन
भा० टी० थर थर कांपने लगे, तब गदाधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बड़ी गदासे भौमासुरकी नगरीके कोट को तोड़ डाला ॥ ५ ॥प्रलयकालिक
अ० ५९ वज्रके शब्दके समान भयंकर शब्दवाले पांचजन्य शंखका शब्द सुनकर पांच मुखवाला मुरदैत्य जो जलके भीतर सो रहा था, वह उठा ॥ ६ ॥ अति खोटी दृष्टि प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान तेज,भयंकर रूपवाला मुरदैत्य त्रिशूल हाथमें ले पांचों मुख फाड़कर, मानो त्रिलोकीको निगल जायगा इस प्रकार दौड़ता हुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया, जैसे सर्प गरुडके सम्मुख जाता है ॥ ७ ॥

और बड़े जोरसे त्रिशूलको फिराकर गरुड़पर चलाया, पांचों मुख फाड़कर महाघोर शब्द किया, उस शब्दका नाद अन्तरिक्ष, पृथ्वी, संपूर्ण दिशाओंमें फैलकर ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो गया ॥ ८ ॥ उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने गरुड़के ऊपर त्रिशूल आता देखकर अपने बाणोंसे तीन टुकड़े कर दिये और मुरदैत्यके पांचों मुखोंमें पांच बाण मारे, तब मुरदैत्य अत्यन्त क्रोधित होकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर गदा चलाने लगा ॥९॥ तब भगवान्ने संग्राममें आती हुई उस गदाके हजारों टुकड़े कर डाले; उस समय भुजाओंको उठाए दौड़कर सम्मुख आये हुए मुरदैत्यका शिर श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक अपने चक्रसे काट लिया ॥१०॥ जिस प्रकार इंद्रके वज्रसे पर्वतका शिखर कटकर गिर पड़ता है, उसी प्रकार

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत् स पञ्चभिः ॥ स रोदसी सर्वदिशोऽम्बरं महानापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥८॥ तदापतद् वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ॥ मुखेषु तं चापि शरैरताडयत् तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥ तामापतन्तीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ॥ उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥१०॥ व्यसुः पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ॥ तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥११॥ ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ॥ पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन् धृतायुधाः ॥१२॥ प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन् गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ॥ तच्छस्त्रकूटं भगवान् स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १३ ॥ तान् पीठमुख्याननयद् यमालयं निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः ॥ स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान् नरको धरासुतः ॥१४॥

मस्तक कटने पर प्राण मुक्त हो वह जलमें गिर गया, उसके जो अतिबलवान् सात पुत्र थे, वे पिताके दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो, महाक्रोध कर बदला लेनेके लिये आये ॥ ११ ॥ ताम्र, अंतरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और सातवां अरुण, यह सब पीठनाम सेनापतिको आगे कर भौमासुरकी प्रेरणासे शस्त्र ले लेकर रणभूमिमें आये ॥१२॥ अत्यन्त क्रोध करके भयानक मुरदैत्यके पुत्र आकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर बाण, तलवार, गदा, बर्छी, गुर्ज और त्रिशूल इत्यादि शस्त्र चलाने लगे, तब महापराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बाणोंसे उनके चलाये हुए शस्त्रोंको क्षणभरमें तिलके समान काट डाला ॥ १३ ॥ पीठ आदि मुरदैत्यके पुत्रोंके शिर, ऊरू, भुजा, पांव,

कवच इत्यादि काट और उनको मारकर श्रीकृष्णचन्द्रने यमलोकको भेज दिया ॥ १४ ॥ तब पृथ्वीका पुत्र नरकासुर श्रीकृष्णचन्द्रके चक्र और बाणोंसे अपने सेनापतियोंका नाश देखकर महाक्रोधित हो समुद्रसे प्रकट हुए मद झरते हाथियोंकी सेना लेकर बाहर निकला सूर्यके ऊपर जिस प्रकार बिजली सहित मेघ आता है,उसी प्रकार गरुड़ के ऊपर सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचन्द्रको विराजमान देख भौमासुर बरछी चलाने लगा और सम्पूर्ण योद्धा भी प्रहारकरने लगे ॥१५॥ गदके बड़े भाई श्रीकृष्णचन्द्रने चित्र विचित्र पंखवाले बाणोंसे भौमासुरकी सेनाको काट फिर क्षणमात्रमें तीखे बाणोंसे भुजा, ऊरू, गर्दन और और अंग काट हाथी घोड़ोंको मार छिन्न-भिन्न कर दिया ॥१६॥

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ॥ दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात् सतडिद्घनं यथा॥ कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधांश्च सर्वे युगपत् स्म विव्यधुः ॥१५॥ तद् भौमसैन्यं भगवान् गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥ १६ ॥ यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ॥ हरिस्तान्यच्छिनत् तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ॥ गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत ॥ दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥ १९ ॥ तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ नाकम्पत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥२०॥ शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः ॥ तद्विसर्गात् पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ॥ अपाहरद् गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥

हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित् ! जो जो शस्त्र योद्धाओंने चलाये, उन सबको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने तीक्ष्ण तीन-तीन बाणोंसे एक एक टूक कर काट डाला ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णको अपने ऊपर चढ़ाये हुए गरुड़जीने भी अपनी चोंच और पंखोंसे हाथियोंको मार-मार कर व्याकुल कर दिया ॥ १८ ॥ और वे अत्यन्त पीड़ित होकर पुरमें प्रवेश कर गये, तब नरकासुरने युद्ध करते हुए गरुड़से पीड़ित अपनी सेनाको भागी हुई देखकर ॥ १९ ॥ भौमासुरने महापैनी धारवाली गरुड़जीको बरछी मारी, जिससे वज्र रुक गया था, परंतु जैसे मालाके प्रहारको हाथी कुछ नहीं गिनता, उसी प्रकार गरुड़जी उसके प्रहारसे कुछ भी व्यथित नहीं हुए ॥ २० ॥ तब भौमासुरने अपना उद्यम

वृथा देख श्रीकृष्णके मारनेको त्रिशूल हाथमें लिया; परन्तु हे परीक्षित् ! उस शूलके छोड़नेसे प्रथम ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने चक्रसे हाथीपर बैठे हुए भौमासुरका शिर काट डाला ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जिस समय कुण्डलों सहित मनोहर किरीटसे शोभायमान एवं प्रकाशमान भौमासुरका शिर कटकर पृथ्वीमें सुशोभित हुआ, उस समय दैत्य हाहाकार और ऋषि देवता धन्य धन्य कहते हुए श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥ भौमासुरके मरनेके उपरांत पृथ्वीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर तपायमान सुवर्णमें जड़े रत्नोंसे प्रकाशमान कुण्डल, वैजयन्ती-माला और प्रचेताका छत्र तथा महामणि दी ॥ २३ ॥ हे नृपोत्तम ! उस समय पृथ्वी विश्वके ईश्वर, देवताओंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मादिकोंसे पूजित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख दोनों हाथ जोड़ नम्र हो भक्ति और श्रद्धासहित स्तुति

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ॥ हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥ २२ ॥ ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे ॥ स वैजयन्त्या वनमालयाऽर्पयत् प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥२३॥ अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ॥ प्राञ्जलिः प्रणता राजन् भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ॥ भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमः पङ्कजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजाङ्घ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ॥ पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७ ॥ अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥

करने लगी ॥ २४ ॥ "पृथ्वीने पुत्रके लिये तपस्या की थी, तब देवताओंने प्रसन्न होकर पुत्र होनेका वर दिया, उसी वरके प्रभावसे भौमासुर उत्पन्न हुआ" पृथ्वीने कहाकि हे देवदेव ! हे शंखचक्रगदापद्मधारी ! हे परमात्मन् ! भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये साकार रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ जिनकी नाभिमें कमल, कमलकी माला धारण करनेवाले, कमलनेत्र और कमलके समान चरण रखनेवाले आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ भगवान् वासुदेव सम्पूर्ण प्राणी जिनमें वास करें, विष्णु अर्थात् सबके हृदयमें व्यापक, समस्त कार्योंके आदि कारण, पूर्णज्ञानस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥ आप जन्मरहित हो, इस विश्वके उत्पत्तिकर्ता हो, ब्रह्म हो, इसलिये अजन्मा

हो, अनन्तशक्तिधारी हो इसीसे विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता हो। यदि कोई कहे कि पित्रादि तो पुत्रादिकोंके उत्पत्तिकर्त्ता हैं और पित्रादिकोंके उत्पत्तिकर्त्ता उनके पूर्व पुरुष हैं और पूर्व पुरुषोंके उत्पत्तिकर्त्ता पंचभूत हैं और पञ्चभूतोंका अपने कर्मद्वारा जीव है, मैं क्या करूँ ? उसके उत्तरमें पृथ्वी कहती है कि हे कार्यकारणरूप! हे सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा! हे परमात्मन् तुम सर्वरूप हो, इसलिये आपके अर्थ नमस्कार है ॥ २८ ॥ यहां यह शंका है कि तीन गुणोंसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं तीनों गुण मायाके अधीन हैं और मायाका क्षोभ करनेवाला पुरुष है, काल निमित्त है और यह बात प्रसिद्ध है, फिर मैं क्या करता हूँ? इसके उत्तरमें पृथ्वी कहती है कि तुम आवरणरहित हो, हे समर्थ! जिस समय आप विश्वके रचनेकी इच्छा करते हो, तब रजोगुणको धारण करते हो और हे जगत्पति!

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः॥ स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः ॥२९॥ अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इंद्रियाणि ॥ कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥ ३० ॥ तस्यात्मजोऽयं तव पादपंकजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ॥ तत्पालयैनं कुरु हस्तपंकजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिभूम्यार्थितो वाग्भिर्भगवान् भक्तिनम्रया ॥ दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत् सकलर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥ तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ॥ भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥

जगत् के पालन करनेको सत्त्वगुण धारण करते हो तथा नाश करनेके लिये तमोगुणको धारण करते हो, कालरूप हो, पुरुषरूप और सबसे परे हो, इसलिये सबके उत्पन्नकर्त्ता तुम ही हो ॥२९॥ हे ईश ! मैं (पृथ्वी), ज्योति, पवन, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध, देवता, मन, इंद्रियां, अहंकार, तत्त्व और समस्त स्थावर, जङ्गम आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमसे भासते हैं ॥३०॥ हे शरणागतोंके दुःखहर्त्ता! यह भौमासुरका पुत्र भगदत्त भयभीत होकर तुम्हारे चरणोंमें आकर पड़ा है, सो तुम इसका पालन करो और सब क्लेशोंका शमन करनेवाला अपना हस्तकमल इसके मस्तकपर रखो ॥ ३१ ॥ भक्तिपूर्वक नम्र हो मधुरवाणीसे पृथ्वीने जब इस प्रकार स्तुति (प्रार्थना) की तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे अभयदान दे सर्व सम्पत्तियुक्त भौमासुरके स्थान पर गये ॥ ३२ ॥ वहां जाकर श्रीकृष्णचन्द्रने सोलह हजार

एक सौ कन्या भौमासुरके मंदिरमें देखीं, जिन्हें भौमासुर अपने पराक्रमसे बलात्कार हर लाया था ❋ ॥ ३३ ॥ इसके उपरांत बलवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख सम्पूर्ण स्त्रियें मोहित होकर दैवसे प्राप्त हुए मनोवांछित पति श्रीकृष्णचन्द्रको मनसे पतिवरण करने लगीं ॥ ३४ ॥ हे विधाता ! इन्हें ऐसी अनुमति दो कि यह हमारे पति हों । इस प्रकार सब कन्याओंने भक्तिभाव–सहित अपना अपना मन श्रीकृष्णचन्द्रमें लगाया ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें उज्ज्वल व स्वच्छ वस्त्र पहनकर पालकियोंमें बैठाकर द्वारकापुरीको

तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ॥ मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥ ३४ ॥ भूयात् पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ॥ इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥ ३५ ॥ ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः ॥ नरयानैर्महाकोशान् रथाश्वान् द्रविणं महत् ॥३६॥ ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः ॥ पाण्डुरांश्च चतुष्षष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥ ३७ ॥ गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वाऽदित्यै च कुण्डले ॥ पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च स प्रियः ॥३८॥ चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ॥ आरोप्य सेन्द्रान्विबुधान् निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ॥ अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात् तद्गन्धासवलम्पटाः ॥ ४० ॥

भेज दिये और साथ ही बड़े बड़े खजाने, रथ और घोड़ोंको भी भेजे ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत चार चार दांतके श्वेतरंग, शीघ्रगामी, चौंसठ ऐरावतकुलके हाथी श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीमें भेजे ॥ ३७ ॥ इसके पीछे जब भगवान् वासुदेवने इन्द्रलोकमें जाकर अदिति को कुण्डल दिये, तब इन्द्राणी सहित देवराज इन्द्रने सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचन्द्रकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ३८ ॥ सत्यभामाके कहनेसे श्रीकृष्णचन्द्रने कल्पवृक्षको उखाड़ गरुड़के ऊपर रख और इंद्रसहित समस्त देवताओंको जीतकर द्वारकापुरीमें ले आये ॥३९॥ और सत्यभामाके

शंका—भौमासुर तो बड़ा बुद्धिमान् था, फिर कुमारी कन्याओंको क्यों हर हर कर इकट्ठा किया ? वे तो सब लड़कियां थीं, उनका विवाह नहीं हुआ था, उनको हरकर क्यों ले गया ।

उत्तर—राजाओंका अभिमान भञ्जन करनेके लिये सब राजाओंकी कन्याओंको हरकर वह अपना विवाह करनेके लिये लाया था और राजा लोग उसका कुछ भी नहीं कर सके । तब नारद मुनिने विचार किया कि यह सब कन्या तो भगवान्की स्त्री होंगी, ऐसा विचारके भौमासुरको मने कर दिया कि हे भौमासुर । बिना हमारी आज्ञा लिये इन कन्याओंके संग अपना विवाह मत करना ऐसे विचारके भौमासुरको विवाह करनेकी आज्ञा नहीं दी, उन लड़कियोंके संग विवाह करनेको चाहते ही चाहते भौमासुरको श्रीकृष्णने मार डाला और कन्याओंको अपने आप वर लिया, इसलिये भौमासुर राजकन्याओंका हरण किया था ।

बगीचेको शोभायमान करनेके लिये कल्पवृक्ष उसके बगीचेमें लगाया, उसकी सुगन्धके मदके लोभी भौंरे स्वर्गसे पीछे पीछे चले आये ॥ ४० हे राजन् ! प्रथम तो देवराज इन्द्रने कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने किरीटोंके अग्रभाग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगा नमस्कार करके उनकी प्रार्थना की और कार्य सिद्ध होनेपर उनसे विरोध किया, अहो ! देवताओंको बड़ा क्रोध आता है, धनिकताको ही धिक्कार है ॥ ४१ ॥ इसके उपरांत एक मुहूर्तमात्रमें सोलह हजार एकसौ आठ महलमें सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जितनी स्त्रियें थीं उतने ही स्वरूप धारणकर सबका यथायोग्य पाणिग्रहण किया ॥ ४२ ॥ जिनके घरके समान और कोई घर नहीं है इस प्रकार उन रानियोंके घरोंमें सदा पूर्ण आनन्दस्वरूप रहते भी औरोंके समान गृहस्थधर्म करते अचिंत्य कार्य-कर्त्ता अविनाशी भगवान् लक्ष्मीके

**ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ॥ सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो-
धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥ अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः ॥ यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥
गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ॥ रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधि-
कांश्चरन् ॥ ४३ ॥ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमे-
धितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमजल्पलज्जाः ॥ ४४ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्ध-
माल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महा-
पुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नरकवधपारिजातहरणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥**

अंशरूप स्त्रियोंके साथ विहार करते थे ॥४३॥ हे परीक्षित् ! ब्रह्मादिक देवता जिनके मार्गको नहीं जानते, उन लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको पति पाकर वे स्त्रियां उनको निरन्तर बढ़ी हुई प्रीति और स्नेहभरे हास्यपूर्वक अवलोकन करती थीं और आनन्दपूर्वक नवीन नवीन भाषण और लज्जाका सेवन करती थीं ॥ ४४ ॥ यद्यपि एक एक रानीके पास सौ सौ दासी हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं परन्तु तो भी सामने जाकर लिवा लाना, आसन बिछाना, सुन्दर पूजा करनी, चरण धोना, बीड़ा लगाना, चरण दाबना, पंखा करना, अतर लगाना, फूल चढ़ाना, केशोंका सँभालना, शय्या बिछाना स्नान कराना और भेंट देना, यह सब सेवा भले प्रकार आपही करती थीं ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां पारिजातहरणनरकवधवर्णनं नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

दोहा—साठ हँसीसे कुछ कही, हरि रुक्मिणिसों बात । रूठ गई तब रुक्मिणी, कृष्ण मनावन जात ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! किसी समय सुखपूर्वक शय्यापर बैठे हुए जगद्गुरु अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रकी रुक्मिणी सखियों सहित चमर डुलाती हुई सेवा करने लगीं ॥ १ ॥ जो जन्मरहित भगवान् लीलापूर्वक इस विश्वका उत्पन्न; पालन और संहार करते हैं वे ही भगवान् अपनी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें आकर प्रकट हुए हैं ॥२॥ वहां गृहोंके भीतर अत्यन्त देदीप्यमान मालायें लटक रही थीं, अत्यन्त शोभायमान छत बँधी थीं और मणिमय दीपक जगमगा रहे थे॥ ३ ॥ मधुमल्लिकाके पुष्पोंकी मालाओंपर भौंरोंके झुण्डके झुण्ड गूँज रहे थे और झरोखोंकी जालियोंमें होकर चन्द्रमाकी निर्मल किरणें झिलमिला रही थीं ॥ ४ ॥ कल्पवृक्षके वनकी सुगंध लिये उद्यानसे सुगंधसनी वायु चल रही

श्रीशुक उवाच ॥ कर्हिचित सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ॥ पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥ यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ॥ स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥२॥ तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राज-न्मुक्तादामविलम्बिना ॥ विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥ मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ॥ जाल रन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥४॥ पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ॥ धूपैरगुरुजै राजन् जालरन्ध्रविनि-र्गतैः ॥५॥ पय फेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे ॥ उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥६॥ वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् ॥ तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेऽङ्गु-लीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ॥ वस्त्रान्तगूढकुचकुंकुमशोणहारभासा नितम्बधृतया च पराध्यर्कान्च्या ॥ ८ ॥

थी । हे राजन् ! झरोखोंकी जालियोंमेंसे अगर तगरके धूपका धुवां निकल रहा था ॥ ५ ॥ उस मन्दिरके भीतर शय्या बिछी थी, उसपर दूधके फेनके समान कोमल श्वेत बिछौना बिछ रहा था, उसके ऊपर सुख पूर्वक बैठे हुए जगत्के ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी रुक्मिणी सेवा करती थीं ॥ ६ ॥ हीरेकी दंडीवाला चमर सखीके हाथमेंसे लेकर उससे पवन करती रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी ओर देख रही थीं ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट मणियोंकी जड़ाऊ नूपुरोंका शब्द करती अत्यन्त शोभायमान लगती थीं, कैसी रुक्मिणी हैं, उंग-लियोंमें मुँदरी पहने, कलाइयोंमें चूड़ी व कंकण पहने और हाथमें बीजना ले रहे हैं; सारीके छोरसे ढके जो स्तन उनकी केशरसे रंगा हुआ

भा. द. उ.
॥२१४॥

अरुण जो मोतियोंका हार और कटिमें पहने हुए जो अमूल्य मेखला उससे शोभायमान हो रही थीं ॥८॥ लीलापूर्वक देह धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके ही योग्य जिसका रूप है और श्रीकृष्णके विना जिसका कोई आश्रय नहीं है, ऐसी रूपवती साक्षात् लक्ष्मीके समान रुक्मिणीजीको देखकर, कि जिसकी अलकें कुण्डल धुकधुकी युक्त कण्ठसे शोभायमान मुखारविन्दमें मंद मुसकानरूप अमृत झलक रहा था, उसे देख प्रसन्न हो हँसकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥९॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजपुत्री ! लोकपालोंके समान ऐश्वर्यवाले महानुभाव लक्ष्मीवान् रूप उदारता और बलसे बढ़े हुए राजा तुम्हारी चाहना करते थे ॥१०॥ और कामदेवके मदसे व्याकुल शिशुपालादि राजा तुम्हारे लेनेके लिये, आये जिन्हें तुम्हारे पिता दे भी चुके थे, फिर तुमने किस कारण उन्हें छोड़कर हमें जो तुम्हारी बराबरके भी नहीं हैं वरण

तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ॥ प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ॥ महानुभावैः श्रीमद्भीरूपौदार्यबलोर्जितैः ॥ १० ॥ तान् प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ॥ दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥११॥ राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ॥ बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥१२॥ अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ॥ आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥१३॥ निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ॥ तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥ १४ ॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ॥ तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥

भा॰ टी॰
अ॰ ६०

किया ? ॥११॥ हे सुन्दर भ्रुकुटियोंवाली ! बहुधा राजाओंसे डरकर तो हमने समुद्रकी शरण ली है और बलवानोंके साथ विरोध होनेसे ही हमने राजगद्दी त्यागकर रखी है ॥१२॥ हे सुभ्रु ! जिनके आचरणकी खबर नहीं और जो स्त्रियोंके कहेमें न चलें, जिनका मार्ग जगत् से निराला है, ऐसे पुरुषोंका जो स्त्रियें अनुसरण करती हैं, वे बहुधा क्लेश और कष्ट पाती हैं ॥१३॥ और हम निष्किंचन हैं, जो निष्किंचन है वह जन हमें अत्यन्त प्रिय है, इसलिये हे सुमध्यमे ! धनवान् पुरुष कहते हैं कि हम दरिद्री हो जायँगे इस भयसे बहुधा मेरा भजन नहीं करते ॥ १४ ॥ जिनके बराबर धन, बराबर जन्म, बराबर ऐश्वर्य और बराबरकी रूप, जाति हैं और सदा जिनका एकसा निर्वाह होता है, उन्हींसे

विवाह और मित्रता होती हैं, छोटे बड़ोंकी कदापि नहीं हो सकती ॥१५॥ हे राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी ! तुमने कुछ विचार न किया और बराबरका सम्बन्ध होता है, यह बात जाने विना गुणहीन हमको भिक्षुकके सराहनेसे भूलकर वर लिया ॥१६॥ हे सुन्दरी ! अब भी तुम अपनी बराबरका क्षत्रिय देखकर उसका हाथ पकड़ लो तो उस क्षत्रियसे इस लोक और परलोकके मनोरथोंको प्राप्त होगी * ॥१७॥

वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया ॥ वृत्ता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥ अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ॥ येन त्वामाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥ चैद्यशाल्वजरासन्धदन्तवक्त्रादयो नृपाः ॥ मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥१८॥ तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ॥ आनीताऽसि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥ १९ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ॥ आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥

तब रुक्मिणीने कहा कि आप मुझे क्यों ले आये ? श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि वामोरु ! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्रादि समस्त राजा हमसे शत्रुता रखते हैं और तेरा भाई रुक्मी भी वैर करता है॥१८॥ हे मङ्गलरूपिणी ! पराक्रमके मदसे अंध गर्ववाले राजाओंका गर्व दूर करनेके लिए और दुष्टोंका तेज हरण करनेके लिए मैं तुम्हें हर लाया था ॥ १९ ॥ हम घर और देहमें उदासीन हैं, हमको स्त्री पुत्रोंकी

---

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने रुक्मिणीसे कहा कि, तुम हमको छोड़कर और कोई दूसरा पति करलो ऐसा मूर्खों और अज्ञानियोंकी नाई कुवाक्य भगवान् तो अपनी लक्ष्मीको कभी नहीं कह सकते न कभी–कहा, फिर इस अवतारमें क्यों कहा । जो कोई कहे कि, रुक्मिणीका मानभंग करनेके लिये यह वचन श्रीकृष्णने कहा नो कृष्णके सामने तो रुक्मिणीने कभी मान भी नहीं किया, फिर ऐसा खोटा भगवान्ने रुक्मिणीसे क्यों कहा ?

उत्तर—श्रीकृष्णने समझा कि, कलियुगका राज्य थोड़े ही दिनों में आनेवाला है, यह जान कर संसारके कल्याणार्थ और कलियुगकी स्त्रियोंके मानभंग करनेके लिये रुक्मिणीसे ऐसा अनुचित वाक्य कहा कि, स्त्रीका अभिमान भंजन करनेवाले मेरे इस वचनको कलियुगमें जो कोई स्त्री पुरुष सुनेंगे वह स्त्री भी डरेगी और वह पुरुष भी डरेगा और कहेंगे, स्त्री पुरुषका प्रेम सबसे बड़ा है, देखो तुच्छ बातपर रुक्मिणीको भगवान्ने त्यागनेके लिये हँसी की थी तो भी रुक्मिणी प्राण त्यागनेके लिये उपस्थित हुई ऐसा विचार करके स्त्री तो अपने पतिसे प्रेम करे और पुरुष स्त्रीसे प्रेम करे, इस धर्मसे दूसरा कोई भी बड़ा धर्म नहीं है, कलियुगके जीव ऐसा मान लेंगे इसलिये कृष्णावतारमें लक्ष्मीजीको कुवाक्य श्रीकृष्णने कहा कुछ छलसे नहीं कहा ॥

चाहना नहीं है, क्योंकि आत्माके आनन्दसे सदा परिपूर्ण हैं और ज्योतिके समान साक्षीमात्र क्रिया रहित वर्त्तते हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! रुक्मिणीका मन हरनेवाले और जो आपसे कभी अलग न हो, इसलिए आपको अपना प्राणवल्लभ जाननेवाली रुक्मिणीका गर्व दूर करनेके लिए इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चुप हो गये ॥ २१ ॥ इस प्रकार त्रिलोकीके ईश्वर, पालन करनेवाले अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रका जो पहले कभी न सुना था, ऐसा कटु वाक्य सुनकर हृदयमें रुक्मिणीजी कांपने लगीं और भयभीत हो रुदन करके बड़ी चिंता करने लगीं ॥२२॥ नखकी अरुण कांतिवाले सुकुमार चरणोंसे पृथ्वी लिखने लगीं, आंखोंमें अञ्जन लगनेके कारण श्याम आंसू बहने लगे, उनसे केशरयुक्त स्तनोंको भिजाती, नीचेको मुख किये, अत्यन्त दुःखित हो, वाणी रुकनेसे

श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ॥ मन्यमानामविश्लेषात् तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥२१॥ इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्य श्रुतपूर्वमप्रियम् ॥ आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥ पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ॥ आसिञ्चती कुङ्कुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥ तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ॥ देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन् रम्भेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥ २४ ॥ तद् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् ॥ हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥२५॥ पर्यंकादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ॥ केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना ॥ २६ ॥

रुक्मिणी व्याकुल होकर चुप हो गयीं ॥ २३ ॥ अप्रिय वचन सुननेके कारण अत्यंत दुःख और त्याग करनेकी आशङ्काके शोकसे बुद्धि रहित होकर रुक्मिणी व्याकुल हो गयीं, तब उनके हाथसे पङ्खा गिर गया, कङ्कण शिथिल हो गिरने लगे और महाव्याकुलतासे मोहित हो पवनसे गिराई हुई कदलीके समान रुक्मिणी मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी और उस समय उनके केश भी खुल गये ॥ २४ ॥ हास्यकी गंभीरता न जाननेवाली अपनी प्यारी रुक्मिणीका प्रेमबन्धन देख करुणा कर श्रीकृष्णचन्द्र द्रवीभूत हो गये ॥ २५ ॥ और चार भुजा धारण कर शीघ्र पलँगसे नीचे उतर दो हाथोंसे रुक्मिणीको उठाकर एक हाथसे उसके केशोंको सँभालकर, कमलके

समान मुखको कोमल कमलसी भुजासे पोंछने लगे ॥२६॥ हे परीक्षित् ! आंसूभरे नेत्र और शोकसे ताड़ित स्तनोंको पोंछ अनन्य आश्रय पतिव्रता रुक्मिणीको भुजाओंसे आलिंगन कर ॥ २७ ॥ हँसीसे चलायमान चित्त और कठोर हँसीके अयोग्य दीन रुक्मिणीको साधु पुरुषोंकी गति, सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र समझाने लगे ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे रुक्मिणी ! तुम मुझसे ईर्षा मत करो और यह बात मैं निश्चय जानता हूँ कि मेरे अतिरिक्त तुम और किसीको नहीं जानती हो । हे सुन्दरी ! तुम क्या कहोगी, यह जानने के लिए मैंने हँसी की थी ॥२९॥ स्नेहके कोपसे फड़के हैं अधर जिसमें और चलायमान अरुण कटाक्षसे टेढ़ी भ्रुकुटीवाले मुखकी

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ॥ आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥ सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपयाऽकृपणां प्रभुः ॥ हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा मां वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ॥ त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ॥ २९ ॥ मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ॥ कटक्षेपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥ अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरुभामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सैवं भगवता राजन् वैदर्भी परिसान्त्विता ॥ ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२ ॥ बभाषे ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् ॥ सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापांगेन भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ नन्वेवमेतदरविन्दलोचनाऽऽह यद् वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ॥ क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥

शोभा देखनेके लिए हँसी की थी ॥ ३० ॥ हे भीरु प्रिये ! अपनी प्राणप्यारीके संग हँसी करके समय व्यतीत करना गृहस्थोंके घरमें यही लाभ है ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब शांत की, तब रुक्मिणीने "प्यारेने मुझसे हँसी की है" यह बात जानकर त्यागनेके भयको छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित ! लाजभरी मधुर मुसकान और शोभायमान स्निग्ध कटाक्षोंसे सुन्दर मुख देखती हुई रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगी ॥३३॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि तुम हमारे समान नहीं हो फिर हमारा हाथ क्यों पकड़ा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणी बोली कि हे कमलदललोचन ! तुम्हारे समान मैं नहीं

हूं, छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त आपकी बात सत्य है, अपनी महिमासे आवृत तीनों ब्रह्मादिकोंके ईश्वर आप कहां ? और सकाम पुरुषोंने जिसके चरण पकड़े ऐसी सत्त्वगुणी रजोगुणी तमोगुणी रूववाली मैं माया कहां, मुझमें और आपमें बड़ा अन्तर है॥३४॥ और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि राजाओंके डरके मारे समुद्रमें आकर रहे हैं, इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि हे उरुक्रम ! यह सत्य है, सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण ही राजा हैं उनके भयसे ही मानो सागरके समान अगाध विषयोंसे अक्षोभित हृदयमें चैतन्यघन तुम निश्चलतासे प्रकाश करते हो। और बलवानोंसे हमने वैर किया है, यह बात जो आपने कही, सो भी सत्य है; क्योंकि विषयमें जिनकी इंद्रियें लग रही हैं ऐसे पुरुषोंने तुमसे विरोध किया है, सो उनमें तुम्हारी अप्रीति है और जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि हमको राज्याधिकार नहीं है; उसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि महाअविवेकका स्थान राज्य है; इसलिए तुम्हारे सेवकलोग भी उसको छोड़ देते हैं फिर आपने छोड़

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः शेते समुद्र उपलम्भन मात्र आत्मा ॥ नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥ ३५ ॥ त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ॥ यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥३६॥ निष्किञ्चनो ननु भवान् न यतोऽस्ति किंचिद् यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ॥ न त्वा विदन्त्यसुतृपान्तकमाढ्यतान्धाः प्रेष्ठो भवान् बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥

दिया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि हमारा मार्ग जाननेमें नहीं आता और स्त्रीके वशमें नहीं हूँ, इसके उत्तरमें रुक्मिणीने यह कहा कि तुम्हारे चरणारविन्दमकरन्दका सेवन करनेवाले मुनि लोगोंका आचरण भी पशुतुल्य मनुष्योंकी समझमें नहीं आता यदि तुम्हारा मार्ग जाननेमें न आवे तो इसमें क्या आश्चर्य है। क्योंकि तुम्हारे अनुवर्ती भक्तोंकी और तुम्हारी चेष्टा अलग है, फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ३६ ॥ और निष्किंचन पुरुषोंके हम प्रिय हैं और धनवान् पुरुष यह समझकर कि हम दरिद्री हो जायँगे, इस डरके मारे हमारा भजन नहीं करते, यह वार्त्ता जो श्रीकृष्णचन्द्रने कही थी उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि आपसे भिन्न कुछ नहीं; इसलिए तुम निष्किंचन हो, दरिद्रतारूपी निष्किंचनता तुमसे नहीं बनती है, प्रजा लोगोंसे भेंट लेनेवाले ब्रह्मा

दिक देवता आप को भेंट देते हैं और जो आपने कहा कि, हम निष्किंचनोंके प्यारे हैं, और वे मुझको प्रिय हैं, सो भी सत्य है, क्योंकि जिसको किंचित् भी देहाभिमान नहीं है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मादिकोंको आप प्यारे हैं, वे आपके प्रिय हैं और जो आपने कहा कि धनवान् होकर हमारा भजन नहीं करते यह बात भी सत्य है, क्योंकि धनपात्रताके अभिमानसे अंधे लोग कालस्वरूप आपको नहीं जानते, इसलिये वे इन्द्रियोंको तृप्त करते हैं आपका भजन कैसे करें ? ॥३७॥ जिनका बराबरका जन्म है, उनसे विवाह और मित्रता होती है यह जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था सो इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहने लगी कि हे पूर्णस्वरूप ! तुम सम्पूर्ण पुरुषार्थ और परमानन्दरूप हो, सुन्दर बुद्धिवाले मनुष्य तुम्हारी प्राप्तिके लिये सब वस्तु त्याग देते हैं, हे प्रभो ! उन पुरुषोंका और तुम्हारा सेव्य सेवकभाव है, सुख दुःखसे व्याकुल व परस्पर प्रीतिकी ग्रंथि बाधे हुए पामर स्त्री पुरुषोंके योग्य नहीं ॥ ३८ ॥ और भिक्षुकोंने झूठी बड़ाई की है, यह जो श्रीकृष्ण-

त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् ॥ तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥ ३८ ॥ त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ॥ हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन् कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥ जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान् विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ॥ सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून् स्वभागं तेभ्यो भयाद् यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥ ४० ॥

चन्द्रने कहा था, उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि सबको अभयदान देकर सन्यासी और मुनिजन आपकी सराहना करते हैं और यह जो आपने कहा कि तुमने विना जाने हमें वरा सो यह ऐसे नहीं है, क्योंकि आपको जिसके लिये सब वस्तु प्रिय लगती है, उस जगत्के आत्मारूप और अपना स्वरूप देनेवाले आप हो, इसलिये आपको वरा और भूलकर वरा यह आपका कथन ठीक नहीं, क्योंकि औरोंकी तो बात ही क्या है ? ब्रह्मा और इंद्रादिक देवताओंको भी, कि जिनका, आपकी भ्रुकुटीसे प्रेरित कालके वेगसे सुखका नाश होता है, यह विचार उन्हें छोड़ मैंने आपको वरण किया, इस कारण जो आपने मुझपर अविचारताका दोष लगाया, सो ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! अपने अज्ञानको दूर करके और पुरुषोंकी बड़ाईसे क्रोधित हो, श्रीकृष्णचन्द्रसे रुक्मिणी कहने लगी कि

हे गदाग्रज ! तुमने शार्ङ्ग–धनुषके शब्दसे जरासन्धादिक राजाओंको भगाकर जिस प्रकार सिंह पशुओंको भगाकर अपना बलि लाते हैं, उसी प्रकार आप अपना भागरूप मुझे ले आये, इसलिये उन राजाओंसे डरकर हम समुद्रमें आकर रहे हैं, यह भी आपका कहना नहीं बनता, ॥४०॥ आपने कहा कि जो हमारे चरणोंमें पड़ते हैं, वे दुःख पाते हैं सो भी नहीं बनता, हे कमलदललोचन ! तुम्हारे भजनकी इच्छासे राजाओंके मुकुटमणि राजा अंग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि चक्रवर्ती राजा राज्यको त्यागकर वनको चले गये, तुम्हारा भजन करनेवाले राजाओंको कहां दुःख हुआ है ? किन्तु सुख ही हुआ और वैकुण्ठ धामकी प्राप्ति हुई है ॥ ४१ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड़ लो, इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि साधुओंसे वर्णित जनोंको मोक्षका

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्यजायन्तनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ॥ राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदंति तेऽनु पदवीं त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥ कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगंधमाघ्राय सन्मुखरितं जनताऽपवर्गम् ॥ लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्त दृष्टिः ॥ ४२ ॥ तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ॥ स्यान्मे तवाङ्घ्रिशरणं सृतिभिर्भ्रमन्त्याः यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥४३॥ तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ॥ यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद् युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥ ४४ ॥

देनेवाला और लक्ष्मी जिनका सेवन करें, ऐसे गुणोंकी खानि तुम्हारे चरणारविन्दको सूँघकर फिर त्याग सके, ऐसी मरणधर्मिणी कौन विवेकिनी स्त्री है जो सदा मृत्युसे डरनेवाले पुरुषोंकी सेवा करेगी ? इसलिये मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा है ॥४२॥ हे जगदीश्वर ! आत्मारूप भजन करनेवालोंको इस लोक और परलोकमें कामनाओंके पूर्ण करनेवाले अपने योग्य तुम्हारा ही मैंने सेवन किया है, चाहे अनेक प्रकारकी योनियोंमें मेरा जन्म हो, परन्तु उन जन्मोंमें भी मिथ्या संसारके भयका नाश करनेवाले और भक्तोंको अपनानेवाले तुम्हारे चरणोंकी शरण मुझे प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ ४३ ॥ हे शत्रुदमन ! हे अखण्डरूप ! आपने कहा कि बड़े बड़े वैभववाले राजा आपकी इच्छा करते थे, सो उन्हें किस लिये छोड़ दिया ? यह आपका कहना असंगत है, क्योंकि आपने जो राजा बताये हैं वे कैसे हैं; कि जो स्त्रियोंके गृहोंमें

गधेके समान केवल भार उठानेवाले बैलके तुल्य सर्वदा केश उठानेवाले श्वानकी नाईं अपमान पानेवाले बिडालके समान, कृपण और क्रूर सेवककी भांति पराधीन हैं वे तो उस मंदभागिनी स्त्रीको पति मिलने चाहिए, कि जिसके कानमें शंकर और ब्रह्माजीकी सभाओंमें गायी जाती आपकी कथा न आयी हो अर्थात् जिसने तुम्हारे गुण न सुने हों, वे तो कदाचित् भूल जायँ, परंतु मैंने तो प्रथम ही आपके गुणानुवाद सुन लिए थे ॥४४॥ और जिस स्त्रीने तुम्हारे चरणारविन्दकी सुगंधि नहीं सूँघी है वह स्त्री जीवित ही मृतक पुरुषको पति मान कर भजे, जो कि बाहर तो चर्म, नख और केश इनसे ढका है और भीतर मांस, हाड़, रुधिर, कीड़े, विष्ठा, कफ और वात, पित्तसे भरा है उसे अपना पति मानकर कौन सेवन करे ? ॥४५॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि हम घर और देहमे उदासीन हैं, रुक्मिणीने कहा कि हे कमलदललोचन ! तुम अपने स्वरूपमें रमण करते हो, और मुझमें आसक्त नहीं हैं दृष्टि जिनकी अर्थात् मेरी चाहना नहीं है, तो भी

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ॥ जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥ अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन् रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ॥ यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदु ह नः परमाऽनुकम्पा ॥४६॥ नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ॥ अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाःस्याद् रतिः क्वचित् ॥ ४७ ॥ व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ॥ बुधोऽसतीं न बिभृयात् तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥

तुम्हारे चरणारविन्दोंमें मेरा स्नेह हो । तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि स्नेह होनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि तुम्हारे चरणारविंदोंमें अनुराग होना ही बड़ा लाभ है और जिस समय इस विश्वको बढ़ानेके लिए गुरुको ग्रहण कर मुझे मायाकी ओर देखोगे, वही बड़ा अनुग्रह है ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो बातें कहीं उन सबका यथायोग्य उत्तर देकर रुक्मिणी बोला कि हे मधुसूदन ! आपने कहा कि अपने समान क्षत्रियको अब भी हाथ पकड़ लो, यह मैं झूठ नहीं मानतीं, जैसे काशीके राजाकी पुत्री अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका इन तीनों कन्याओंमेंसे अम्बा कन्याकी शाल्व राजासे जैसी प्रीति हुई, उसी प्रकार मेरी प्रीति आपमें हुई है ॥ ४७ ॥ और हे अच्युत विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्रीके

मन नवीन पुरुषोंमें जाते हैं, ऐसी बहुत कथाएँ हैं, विवेकी पुरुष इस प्रकारकी खोटी स्त्रियोंको अपने घरमें नहीं रखते हैं, यदि रक्खें भी तो इस लोक और परलोकसे भ्रष्ट हो जायँ ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे रुक्मिणी ! तुम्हारी बात सुननेके लिए मैंने ऐसी बातें कही थीं और मेरे वचनका जो जो उत्तर तुमने दिया सो सब सत्य है ॥ ४९ ॥ हे भामिनी ! हे मङ्गलरूपिणी ! जिस जिस वस्तुकी तुम चाहना करती हो सो सो मुझमें एकांत भक्ति होनेसे तुमको प्राप्त ही हैं । हे कल्याणि ! मुक्तिपर्यन्त तुम्हारे सब मनोरथ प्राप्त होंगे ॥५०॥ हे निष्कलंक रुक्मिणी ! तुम्हारा पतिपर प्रेम और पतिव्रतापन हमने भले प्रकार जान लिया, क्योंकि हमने यद्यपि वचन कहकर तुमको

श्रीभगवानुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रिप्रलम्भिता ॥ मयोदितं यदन्वात्थ सर्व तत्सत्यमेव हि ॥ ४९ ॥ यान्यान् कामयसे कामान् मय्यकामाय भामिनि ॥ सन्ति ह्येकांतभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥ ५० ॥ उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ॥ यद् वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया ॥ कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥ मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वाञ्छन्ति ये संपद एव तत्पतिम् ॥ ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ॥ ५३ ॥ दिष्टया गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ॥ सुदुष्कराऽसौ सुतरांदुराशिषो ह्यसुम्भराया निकृतिं जुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥

चलायमान भी किया, परंतु तो भी तुम्हारी बुद्धि मुझसे चलायमान नहीं हुई ॥५१॥ विषयोंमें आत्मा और मन लगाये जो पुरुष तपस्या और ब्रह्मचर्य करके स्त्री पुरुष भोगार्थ सुखके लिए मेरा भजन करते हैं, वे मेरी मायासे मोहित होकर भूल रहे हैं ॥ ५२ ॥ हे भामिनी ! मोक्ष सहित सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका दाता मुझे पाकर भी जो विषयोंकी चाहना करते हैं और मेरी चाहना नहीं करते, वे पुरुष अभागे हैं, क्योंकि विषयोंका सुख तो कुत्ते और शूकरोंकी योनिमें भी मिल जाता है, विषयोंमें मन रहनेसे नरक होता है ॥५३॥ हे घरकी महारानी ! संसार की छुड़ानेवाली चाहना रहित मनकी वृत्ति जो तूने मुझमें लगायी, यह भली बात है, खोटे अभिप्राय और अपने प्राणोंका भरण पोषण

कर औरको ठगने वाली स्त्रीके मनकी वृत्ति मुझमें नहीं लगती है, ॥५४॥ हे प्राणेश्वरी ! सोलह हजार एकसौ आठ महलोंमें तुम्हारे समान प्यार करनेवाली मैं और स्त्री नहीं देखता, क्योंकि विवाह के समय आये हुए राजाओंको त्यागकर मेरी ओर देख पाती लिखकर मेरे पास ब्राह्मणको भेजा ॥ ५५ ॥ युद्धमें तुम्हारे भाईको जीत उसका शिर मूँड़कर विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहमें चौपड़ खेलते खेलते उसे मार डाला, यह भाईका दुःख हमारे त्यागनेके भयसे तुमने सहन कर लिया और मुझसे कुछ न कहा, ऐसी तुम्हारी बातोंने हमको वश कर लिया है ॥५६॥ हे प्राणवल्लभे ! मेरे बुलानेके लिये सबसे छिपाकर दूतको मेरे पास भेजा और जब मुझे आनेमें विलम्ब हुआ तब इस विश्वको शून्यमानकर "और राजा मेरे योग्य नहीं हैं" यह निश्चय कर शरीर त्यागनेकी इच्छा करने लगी यह बात तुम्हारे

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यथा स्वविवाहकाले ॥ प्राप्तान् नृपानविगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥ भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ॥ दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥५६॥॥ दूतस्त्वयाऽऽत्म-लभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ॥ मत्वा जिहास इदमङ्गमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत् त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौरतसंलापैर्भगवान् जगदीश्वरः ॥ स्वरतो रमया रेमे नरलोके विडम्बयन् ॥ ५८ ॥ तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥ अस्थितो गृहमेधीयान् धर्माँल्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

अतिरिक्त और किसीसे हो सकती है ? हम तुम्हारी क्या प्रशंसा करें ? ॥५७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार जगत् के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मनुष्यलोककी लीलाका अनुकरण कर हास्यकी बातें करके रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ रमण करते थे ॥ ५८ ॥ सामर्थ्यवान् सम्पूर्ण लोकोंके गुरु सबका दुःख हरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र इसी प्रकार और रानियोंके महलोंमें भी रहकर गृहस्थाश्रमके धर्म सिखाते थे ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां कृष्णरुक्मिणी संवादवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

दोहा–इकसठमें परिवार हरि, वरणों सब सन्तान। विवाहमें अनिरुद्धके, हनो रुक्मि बलवान् ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एक एक रानीने श्रीकृष्णचन्द्रके ही समान रूप, गुणवाले दश दश पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ घरसे कहीं बाहर न जायँ अपने पास ही रहें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर राजाओंकी पुत्री "श्रीकृष्ण आत्माराम हैं" इस बातको न जान अपना प्यारा मानने लगीं ॥ २ ॥ व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने कमलकोशके समान सुकुमार मुख, बड़ी भुजा, बड़े नेत्र और प्रेम सहित मन्द मुसकान, रसभरी चितवन, मनोहरवाणी इत्यादिकोंसे मोहित होकर जो स्त्री अपने अपने अनेक विलासोंसे पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण-चन्द्रका मन मोहित करनेको समर्थ नहीं हुई ॥३॥ गूढ़ हास्ययुक्त कटाक्षसे जताये अभिप्रायसे मनके हरनेवाले भ्रुकुटीरूप मण्डल प्रेरित जो

श्रीशुक उवाच ॥ एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान् दशदशाबलाः ॥ अजीजनन्ननवमान् पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥ १ ॥ गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ॥ प्रेष्ठं न्यमंसत स्वंस्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥ चार्वब्जकोशव-दनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ॥ संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन् वनिता विभूम्नः ॥ ३ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्ग बाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥ ४ ॥ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥ ५॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौच-ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशताअपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ६ ॥

सुरतसम्बन्धी विचार उनमें प्रगल्भ जो मन्मथ (कामदेव) के बाण और दूसरे भी कामशास्त्रमें प्रसिद्ध जो उपाय , उनसे यह सोलह हजार एकसौ आठ, स्त्रियें भगवान् वासुदेवका मन वश करनेको समर्थ न हुई ॥४॥ ब्रह्मादिक देवता भी जिनके मार्गको नहीं जानते, ऐसे लक्ष्मी-पति श्रीकृष्णचन्द्रको इस प्रकार पति पाकर यह स्त्रियें निरंतर बड़े आनन्दसे स्नेहभरी हँसनि, चितवन और हास्य चितवनपूर्वक नवीन संगम उस नवीन संगममें बोलना इत्यादि विलाससमूहोंका सेवन करती थीं ॥५॥ यद्यपि एक एक रानीके सम्मुख सौ सौ दासी हाथ जोड़े रहती थीं, परंतु तो भी सम्मुख जाकर लिवालाना आसन बिछाना, पूजन करना, चरण धोना, बीरा लगाना,चरण दाबना, पंखा करना,अतर लगाना,

पुष्प चढ़ाना, केश सुधारना, शय्या बिछाना स्नान कराना और भेंट देना इत्यादि यह श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा आप ही करती थीं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! दश दश पुत्रोंवाली श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियें थीं । उनमें आठ पटरानी प्रथम वर्णन कर आये हैं, उनके प्रद्युम्नादि पुत्रोंके नाम तुमसे वर्णन करता हूँ ॥ ७ ॥ यथा–प्रद्युम्न, चारुदेष्णं, सुदेष्णं, बलवान् चारुदेह, सदारु, चारुगुप्त, भद्रचारु ॥ ८ ॥ चारुचन्द्र, विचारु और चारु यह दश पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रके रुक्मिणीसे उत्पन्न हुए ॥९॥ भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु ॥१०॥ श्रीभानु और प्रतिभानु यह दश पुत्र सत्यभामाने उत्पन्न किये और साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, शतजित, सहस्रजित् ॥११॥ विजय, चित्रकेतु

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ॥ अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥ ७ ॥ चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ॥ सुचारुश्चारुगुप्तश्चभद्रचारुस्तथापरः ॥ ८ ॥ चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ॥ प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥ भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ॥ चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः ॥ १० ॥ श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ॥ साम्बः सुमित्रः पुरजिच्छतजिच्च सहस्रजित ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः ॥ जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसंमताः ॥१२॥ वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेग ॥ वान्वृषः आमः शंकुर्वसुः श्रीमान् कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥१३॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ॥ शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ॥ माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥ वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च ॥ महाशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥१६॥

वसुमान, द्रविड़ और क्रतु यह साम्बसे आदि लेकर श्रीकृष्णचन्द्रके समान गुणवाले दशपुत्र जाम्बवतीके उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ और वीर चन्द्र, अश्वसेन, चित्र, वेगवान्, वृष, आम, अंकु, शोभायमान, बस और कुंति यह दश नाग्नजितीके पुत्र उत्पन्न हुये॥१३॥ श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शांति, दर्श, पूर्णमास और इन सबसे छोटा सोमक यह दश पुत्र कालिन्दीके हुए ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह ओज, और अपराजित इन दश पुत्रोंने लक्ष्मणसे जन्म ग्रहण किया ॥१५॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन,

उन्नाद, महांश, पर्वन, वह्नि, और क्षुधि यह दश पुत्र मित्रविन्दासे जन्मे ॥ १६ ॥ संग्रामजित, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक यह दश पुत्र भद्रा नाम रानीसे उत्पन्न हुए ॥१७॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आठ रानियोंके पुत्रोंका वर्णन किया, अब बलदेवजीकी रानी रेवतीके दीप्तिमान् ताम्रतप्तादि पुत्र उत्पन्न हुए जैसे रुक्मिणी आदिके पुत्र कहे, इसी प्रकार और सोलह हजार रानियोंको भी दश दश पुत्र उत्पन्न हुए भोजकट पुरवासी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीमें प्रद्युम्नजीसे महाबलवान् अनिरुद्धनाम पुत्र उत्पन्न हुआ हे परीक्षित् ! यह जो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र और उनके पुत्र और नाती करोड़ों हुए और श्रीकृष्ण चन्द्रसे उत्पन्न हुए पुत्रोंकी सोलह हजार माताएँ हुईं॥१८॥१९॥राजा परीक्षितने कहा कि हे भगवन् ! रुक्मिणीने अपने वैरीके पुत्रको अपनी

संग्रामजिद् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ॥ जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ॥ प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद् रुक्मवत्यां महाबलः ॥ १८ ॥ पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन् नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥ मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥१९॥ राजोवाच ॥ कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद् दुहितरं युधि ॥ कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ॥ २० ॥ एतदाख्याहि मे विद्वन् द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥ अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ॥ विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः स्वयंवरे साक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया ॥ राज्ञः समेतान् निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥२२॥

कन्या कैसे व्याही वह तो युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे पराजित् होकर उनके मारनेका उपाय देख रहा था, ॥ २० ॥ हे विद्वन् ! इन दोनों शत्रुओंके बीचमें विवाहका सम्बन्ध कैसे हुआ, यह विस्तारसहित हमारे आगे वर्णन कीजिए कदाचित् आप कहें कि हम इस बातको क्या जानें तो इसका उत्तर यह है कि योगीश्वर तो भूत, भविष्य, वर्तमान, इंद्रियोंसे अगम्य दूर अथवा किसीके ओटमें हो, उसे भी योगीजन भले प्रकार जानते हैं ॥२१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत परीक्षित् ! रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीने साक्षात् मूर्तिमान् कामदेवके अवतार प्रद्युम्नको स्वयंवरमें वर लिया, तो वह युद्धमें इकट्ठे हुए राजाओंको एक ही रथसे जीत उसे हरण करके ले गये ॥२२॥

यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णचंद्रके तिरस्कारका वैर स्मरण रखता था परंतु तो भी बहनको प्रसन्न करनेके लिये भानजेको अपनी कन्या दी ॥२३॥ हे महाराज परीक्षित्! सुन्दरबुद्धि, विशालनेत्रवाली रुक्मिणीकी चारुमती पुत्रीका बलवान् कृतवर्माके पुत्रने पाणिग्रहण किया ॥२४॥ यद्यपि रुक्मी वैर बांध रहा था, परन्तु तो भी अपनी बहनको राजी करनेके लिये श्रीकृष्णकी नाती अपने दौहित्र अनिरुद्धको अपनी

यद्यप्यनुस्मरन् वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ॥ व्यतरद् भागिनेयाय सुतां कुर्वन् स्वसुः प्रियम् ॥ २३ ॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन् कृतवर्मसुतो बली ॥ उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥ २४ ॥ दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ॥ रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ ॥ पुरं भोजकटं जग्मुः साम्बप्रद्युम्नकादयः ॥ २६ ॥ तस्मिन् निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥

पोती रोचना नामक कन्या दी। शत्रुके साथ सम्बन्ध करना अयोग्य है, इस बातको स्वयं रुक्मी जानता था, परन्तु स्नेहके पाशसे बँध कर विवाह कर दिया ॥२५॥ हे राजा परीक्षित्! उस अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें रुक्मिणी, श्रीकृष्ण, बलदेव और साम्ब प्रद्युम्नको आदि लेकर सब यादव भोजकटपुरको बारातमें गये ॥२६॥ जब विवाह हो चुका, तब कलिंगदेशके राजाको आदि ले घमंडी राजा रुक्मीसे

* शंका—भागवतसे लिखा कि, राजा रुक्मी जानता था कि, फूफीकी लड़कीके साथ विवाह करनेका तथा मामाकी लड़कीके साथ विवाह करनेका महादोष है, इस धर्मको बिना जाने जो विवाह करेगा तो पाप होगा और जो जानबूझकर करेगा तो उसको महापाप होगा फिर जानबूझकर अपने पुत्रकी लड़कीको अनिरुद्धके संग क्यों विवाह दी ? क्योंकि वह कन्या अनिरुद्धके मामाकी थी और जो कोई कहे कि रुक्मीने श्रीकृष्णचन्द्रजीके स्नेह करके अधर्मरूप कन्यादान किया है तो भी यह बात ठीक है, परंतु जिस स्नेहसे संसारमें निन्दा हो और मृत्यु होनेके पीछे प्राणीको रौरवनरकमें जाना पड़े, ऐसे स्नेहकी मुनिलोग प्रशंसा नहीं करते।

उत्तर राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मैं अपने लड़केकी लड़कीको श्रीकृष्णके पोतेको विवाह दूंगा तो श्रीकृष्ण मेरे ऊपर बहुत प्रसन्न होंगे, ऐसा विचारके अपने ऊपर श्रीकृष्णका स्नेह समझकर अधर्मरूप विवाह किया और लोककी निन्दा और नरककी त्रास दोनोंका त्यागकर अपनी पोतीका विवाह श्रीकृष्णके पोतेके संग कर दिया। राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मेरे ऊपर कृष्ण प्रसन्न रहेंगे तब लोकमें मेरी निन्दा कौन कर सकता है। और नरकमें भी कृष्णके सामने मुझे कौन डाल सकता है। ऐसा विचारके रुक्मीने अधर्मरूप विवाह किया था।

कहने लगे कि हे रुक्मी ! बलदेवजीको जुएमें जीत लो ॥ २७ ॥ हे राजा रुक्मी यह बलदेव पांसेका खेल नहीं जानता, परंतु इनको खेलनेका व्यसन बड़ा है, यह सुनते ही रुक्मी बलदेवको बुलाकर उनके सङ्ग जुवा खेलने लगा ॥ २८ ॥ बलरामजीने वहां प्रथम सौ, फिर हजार, इसके पीछे दश हजार रुपयेका दांव लगाया, परंतु वह दांव रुक्मी ही धाँधलबाजी करके जीत गया। उस समय कलिंगदेशका राजा दांत दिखाकर बलदेवजीकी बहुत हँसी करके कहने लगा कि रे ! जुँवाका खेल और पाशोंकी सार तुम गँवार क्या जानोगे, क्योंकि जुँवा खेलना और युद्ध करना तो राजाओंका काम है । तुम गोपग्वाल तो गौवोंको पहचानते हो । ऐसे सुन सब बलदेवजी उस हँसीको सहन न कर सकें ॥ २९ ॥ इसके उपरांत रुक्मीने एक लाख मोहरोंका दांव लगायो, उसे बलदेवजी जीते, परंतु उस समय कपट करके

अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ॥ इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ॥ तं तु रुक्म्यजयत् तत्र कालिङ्गः प्राहसद् बलम् ॥ दन्तान् संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत् तद्धलायुधः ॥ २९ ॥ ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद् ग्लहं तत्राजयद्बलः ॥ जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव पर्वणि ॥ जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तं चापि जितवान् रामो धर्मेण च्छलमाश्रितः ॥ रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥ ३२ ॥ तदाऽब्रवीन्नभो वाणी बले नैव जितो ग्लहः ॥ धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदतिवै मृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ॥ संकर्षणं परिहसन् बभाषे कालचोदितः ॥ ३४ ॥

"मैंने जीता" इस प्रकार रुक्मी कहने लगा ॥ ३० ॥ जिस प्रकार अमावस व पूर्णमासीको समुद्र क्षोभयुक्त होता है उसी प्रकार श्रीमान् बलदेवजी अत्यन्त क्रोधसे क्षुभित हो गये और स्वभावसे ही जिनके अरुण नेत्र हैं ऐसे बलदेवजीने अति क्रोध कर दश करोड़का दांव लगा दिया ॥ ३१ ॥ और वास्तवमें बलदेवजी वह दांव जीत गये, तब फिर रुक्मीने कपट करके कहा कि मैं जीता हूँ इस विषयमें यह जो सभासद उपस्थित हैं, इनसे पूछ लो । इस प्रकार बलदेवजी और रुक्मीका विवाद हो रहा था कि, इतनेमें ही आकाशवाणी हुई कि बलदेवजी जीते हैं और रुक्मीका वचन मिथ्या है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय आकाशवाणीका निरादर करके दुष्ट राजाओंका सिखाया

रुक्मी महात्मा बलदेवजीकी हँसी करता कालसे प्रेरित होकर यह वचन कहने लगा कि ॥३४॥ तुम गौओंको चरानेवाले तुम पांसे खेलना नहीं जानते, पांसोंसे और बाणोंसे तो राजा लोग खेलते हैं, आप सरीखे पांसे खेलना क्या जानें ? ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार रुक्मीने अनादर और राजाओंने हँसी की, तब महाबलवान् बलरामजीने अत्यन्त क्रोधित हो परिघ उठाकर मंगलसभामें रुक्मीका संहार कर दिया और कहा ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! जब बलरामजीने सब राजाओंके देखते-देखते रुक्मीको मार डाला, उस समय कलिंग देशका राजा अत्यन्त भयभीत होकर भागा, तब झुंझुलाकर बलरामजीने उसे दश ही पगपर पकड़ लिया और जौनसे दांत फाड़कर वह हँसा था वह दांत तोड़ दिये ॥३७॥ और राजा भी बलदेवजीके परिघसे पीड़ित हो डरकर भाग गये जिनके हाथ जङ्घा और शिर टूट गये थे

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ॥ अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥३५॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ॥ क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥ कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ॥ दन्तानपातयत् क्रुद्धो योऽहसद् विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥ अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ॥ राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥ रुक्मिणीबलयो राजन् स्नेहभङ्गभयाद् हरिः ॥ ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥ रामादयो भोज कटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥४०॥ इति श्रीभाग० महापु० दशमस्कन्धे उ० अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

और रुधिरसे उनका शरीर भीज रहा था ॥३८॥ हे परिक्षित् ! जब श्रीकृष्णका साला रुक्मी मारा गया, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने न तो अच्छा कहा, न बुरा कहा, क्योंकि जो अच्छा कहते तो रुक्मिणी अप्रसन्न होती और बुरा कहते तो बलदेवजी अत्यन्त बुरा मानते, इसलिये कुछ न कहा चुपचाप रहे ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत दुलहिनके साथ अनिरुद्धजी को रथमें बिठाकर बलरामादि सब यादव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका आश्रय पाकर सब मनोरथ सिद्ध कर भोजकटपुरसे चल द्वारकापुरीमें आये ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नाम एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

दोहा—बासठवें अध्यायमें, बाणासुर बलवान् । बांध लियो अनिरुद्धको, सो सब कहों बखान ॥ राजा परीक्षित् पूँछने लगे कि, हे योगिन् ! बाणासुरकी पुत्री ऊषाने अनिरुद्धके साथ विवाह किया, इसमें श्रीकृष्णका और महादेवजीका बड़ा युद्ध हुआ उस कथाको कहिये ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! भगवान् विष्णुने जब वामनरूप धारण करके राजाबलिसे पृथ्वी मांगी तब सब पृथ्वी जिसने दान कर दी ॥१॥ ऐसे महात्मा राजा बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें ज्येष्ठ पुत्र भगवान् महादेवजीका अत्यन्त भक्त, सबका मान्य, ज्ञानवान्, बुद्धिमान्, सत्यसंकल्प, दृढव्रत, बाणासुर नामसे प्रसिद्ध था ॥ २ ॥ ३ ॥ और शोणितनाम रमणीकपुरमें राज्य करता था उस बाणा-

राजोवाच ॥ बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥ तत्र युद्धमभूद् घोरं हरिशङ्करयोर्महत् ॥ एतत्सर्वं महायोगिन् समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ॥ येन वाम नरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥ २ ॥ तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ॥ मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसन्धो दृढव्रतः ॥ ३ ॥ शोणिताख्यपुरे रम्ये स राज्यमकरोत् पुरा ॥ तस्य शम्भोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः ॥ सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥ भगवान् सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ वरेणच्छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥ स एकदाऽऽह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ॥ किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥ ६ ॥ नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ॥ पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥ ७ ॥ दोस्सहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ॥ त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥

सुरके सम्मुख भगवान् महादेवजीकी कृपासे सम्पूर्ण देवता सेवकोंकी भांति खड़े रहते थे । एक समय ताण्डवनृत्यमें हजार भुजाओंसे बाजे बजाय भोलानाथको बाणासुरने प्रसन्न किया, तब सब प्राणियोंके ईश्वर भक्तवत्सल भगवान् महादेवजी बाणासुरको वर देनेकी इच्छा करने लगे, तब शिवजीसे "मेरे पुरकी तुम रक्षा करो" यह बाणासुरने वर मांग ॥ ४ ॥ ५ ॥ पराक्रमसे दुर्मदसे बाणासुर अपने पास रहनेवाले शिवजीके चरणारविंदोंको सूर्यके तेजके समान किरीटसे स्पर्श करके एक समय कहने लगा ॥६॥ कि हे सब लोकोंके गुरु महादेव ! जिनके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए हैं, तुम उन पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हो, इसलिये आपको नमस्कार है ॥७॥ और हे देव ! आपने

जो कृपा करके हजार भुजा मुझे दीं, सो इनका अबतक केवल बोझ ही हुआ है, इसलिए त्रिलोकोंमें तुम्हारे विना और कोई मुझे बराबर का युद्ध करनेवाला नहीं मिलता ॥ ८ ॥ हे आदिपुरुष ! जब मेरी भुजाओंमें बहुत खुजली उठी, तब मैं युद्ध करनेके लिए पर्वतोंको तोड़ता-फाड़ता दिग्गजोंके पास गया, परन्तु वह भी मेरे भयसे भीत हो दिशाओंको छोड़कर भाग गये, इस कारण कृपा करके आप मुझसे युद्ध कर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये ॥९॥ हे राजन् ! इस प्रकार बाणासुरका वचन सुन भगवान् महादेवजी अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे कि हे मूढ़ ! जिस समय मेरी दी हुई ध्वजा तेरे महलपरसे टूटकर गिर पड़ेगी, उस समय तेरी बराबरीके बलवान्से तेरा युद्ध होगा और तेरा गर्व भी उसी समय चूर्ण हो जायगा ॥१०॥ हे परीक्षित् ! जब भगवान् भूतनाथ महादेवजीने इस प्रकार कहा तब कुबुद्धि बाणा-

कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ॥ आद्याऽयां चूर्णयन्नद्रीन् भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ॥ त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ १० ॥ इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ॥ प्रतीक्षन् गिरिशादेशं स्ववीर्यनाशनं कुधीः ॥११॥ तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ॥ कन्याऽलभत कान्तेन प्राग्दृष्टश्रुतेन च ॥ १२ ॥ सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेतिवादिनी ॥ सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ १३ ॥ बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ॥ सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥ १४ ॥ कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ॥ हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥

सुर शिर नवाय अपने घरको चला गया और अपने बल, बुद्धि, पराक्रमके नाश करनेवाली महादेवजीकी आज्ञाका पैंडा देखने लगा ॥११॥ हे राजन् ! इस बाणासुरकी एक ऊषानामक कन्या थी, उसके पहले कभी जिसको न देखा और न कभी सुना ऐसे सुन्दर अनिरुद्धके साथ स्वप्नमें समागम हुआ ॥१२॥ इसके उपरांत जागनेपर वहां अनिरुद्धको न देख अत्यन्त लज्जित हो, हे कान्त ! तुम कहां गये ? इस प्रकार पुकारती-पुकारती विह्वल होकर सखियोंके बीचमें गिर पड़ी ॥ १३ ॥ तब बाणासुरके मन्त्री कुम्भांडकी पुत्री चित्ररेखा आश्चर्य मानकर अपनी प्रिय सखी ऊषासे पूछने लगी ॥१४॥ कि हे सुभ्रु ! हे प्यारी ! ऊषे ! तू किसे ढूँढ़ती है और तेरा क्या मनोरथ है ?

हे राजकुमारी! अभी तो तेरा विवाह भी नहीं हुआ है, फिर किस प्रकार पति-पति पुकारती फिरती है? ॥१५॥ इस प्रकार चित्ररेखाका वचन सुनकर ऊषा बोली कि श्यामस्वरूप, कमलके समान नेत्र, पीताम्बर धारण किये, बड़ी भुजा और स्त्रियोंके मनको मोहित करनेवाला ऐसा पुरुष मैंने स्वप्नमें देखा है ॥१६॥ मैं उसी प्रीतमको ढूँढ़ रही हूँ, वह मुझे अधरामृत पिलाय मुझ अभिलाषिणीको दुःखके समुद्रमें पटककर कहीं चला गया ॥१७॥ यह वचन सुनकर चित्ररेखा बोली कि हे ऊषा! तेरा दुःख मैं दूर करूँगी, जिस पुरुषने तेरा चित्त चुराया है, यदि वह त्रिलोकीमें कहीं होगा, तो ढूँढ़कर ले आऊँगी, परन्तु उसे बता दे ॥१८॥ इसके उपरांत चित्ररेखा देवता, गंधर्व, सिद्ध

ऊषोवाच ॥ दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ॥ पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयङ्गमः ॥ १६ ॥ तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाऽधरं मधु ॥ क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ १७ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ॥ तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् ॥ दैत्यविद्याधरान् यक्षान्मनुजांश्च यथाऽलिखत् ॥ १९ ॥ मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरमानकदुन्दुभिम् ॥ व्यलिखद् रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥ २० ॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषाऽवाङ्मुखी ह्रिया ॥ सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ॥ ययौ विहायसा राजन् द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता ॥ गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥

चारण और पन्नग इनके चित्र लिखकर फिर दैत्य, विद्याधर, यक्ष, मनुष्य इन सबके चित्र लिखने लगी ॥१९॥ मनुष्योंमें भी वृष्णि और वृष्णिमें भी शूरसेन, वसुदेव, राम, कृष्ण और प्रद्युम्नका चित्र लिखा उसको देखते ही "यह श्वसुर हैं" ऐसा समझकर लज्जित हो गयी ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पृथ्वीपति! ऊषा अनिरुद्धका चित्र देखकर अत्यन्त लाजसे नीचेको मुख किये "मेरा चित्तचोर यही है" ऐसे मुसकाकर सखीसे कहने लगी ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! योगकी ज्ञाता चित्ररेखा उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पौत्र जान आकाशमार्गसे होकर कृष्णपालित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहां उस समय अनिरुद्धकुमार पलँगपर शयन कर रहे थे, उन्हें योगके

बलसे उठाय शोणितपुरमें आयी और सखी ऊषाको दर्शन कराया * ॥ २३ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान् सुन्दर वर अनिरुद्धजीको देख प्रसन्न मुख ऊषा, पुरुषोंके देखनेमें न आवे इस प्रकार अपने घरमें अनिरुद्धके संग रमण करने लगी ॥२४॥ और बड़े मोलके वस्त्र, माला, सुगंधि, धूप, दीप, आसन इत्यादि और पीनेकी सामग्री तथा भोजन, भक्ष्य, वचनोंसे उनकी पूजा करने लगी ॥ २५ ॥ अत्यन्त बढ़ा है स्नेह जिसका ऐसी ऊषाने हरी हैं इंद्रियें जिनकी ऐसे अनिरुद्धजीको मोहित होकर वास करते कितने ही दिनरात बीत गये, परंतु उन्हें

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना ॥ दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुंभी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥ परार्ध्यवासस्स्रग्गन्ध धूपदीपासनादिभिः ॥ पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥ २५ ॥ गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्धस्नेहया तया ॥ नाहर्गणान् स बुबुधे ऊषयाऽपहृतेन्द्रियः ॥२६॥ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ॥ हेतुभिर्लक्षयाञ्चक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥ २७ ॥ भटा आवेदयाञ्चक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ॥ विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥ २८ ॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ॥ कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥ २९ ॥

कुछ सुधि न हुई ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! यादवोंमें वीर अनिरुद्धजीके भोग करनेसे जिसका कन्यापनका व्रत दूर होगया तब उस अत्यन्त प्रसन्नमन ऊषाको गुप्त न रहनेवाले लक्षणोंसे पहरेदारोंने पहिचान लिया और उसी समय बाणासुरसे आकर कहा कि हे राजन् ! जिस प्रकार कुलको कलंक लगे ऐसी तुम्हारी कन्याकी कुचेष्टा हमको दीख पड़ती है ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे समर्थ बाणासुर ! हम लोग तो घरका अखंड पहरा देते हैं और राजकुमारी ऊषाकी रक्षा करते हैं, इसे कोई मनुष्य देख भी नहीं सकता, इतनेपर भी कन्याको यह दूषण कहांसे

---

* शंका— श्रीकृष्णके तेजसे रची हुई द्वारकापुरी जिसके चारों ओर समुद्र, रात दिन सुदर्शन चक्र घूमता रहे ऐसी अद्भुत द्वारकापुरीमें जो कोई पुरुष कपटवेष धारण करके उस पुरी में जानेकी इच्छा करना चाहे तो कभी नहीं जा सकता, जो ब्रह्मदेवके बनाये जीव है उनको तो सामर्थ्य ही नहीं जो कपट करके भीतर जा सकें, फिर क्या कारण जो चित्ररेखाने रक्षा करनेवाले प्राणियोंकी आज्ञा नहीं ली बिना पूछे कपट करके द्वारकामें जाकर सोते हुए, अनिरुद्ध कुमारको पलङ्गसहित उठाकर बड़े सुखसे लेकर चली गयी, कोई दूसरा यादव नहीं, वह स्वयं श्रीकृष्णके पोतेको ही हरले गयी ?

उत्तर—बाणासुरकी मृत्युका उपाय भगवान्ने विचार कर और उसकी कन्याके संग अपने पोतेका विवाह विचारकर, सुदर्शनचक्रको आज्ञा दी कि द्वारकापुरीको चित्ररखा राक्षसी आवेगी, उसको तुम द्वारकाके भीतर जानेसे मत रोकना, एक बार द्वारकासे बाहरको जाय तो चली जाने देना और भीतर कोई वस्तु बाहरको ले जाय तो ले जाने देना वर्जना मत, ऐसी भगवान्की आज्ञाको मानकर सुदर्शनचक्रने चित्ररेखाको नहीं रोका, इसलिये चित्ररेखा अनिरुद्धको हरकर ले गयी ।

लग गया । सो हम नहीं जानते ॥२९॥ इस प्रकार कन्याका दोष सुन अत्यन्त दुःखी हो बाणासुरने शीघ्र ही कन्याके घरमें जाकर यादवोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको देखा ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! कामदेवका पुत्र त्रिभुवनमें एक सुन्दर, श्यामस्वरूप पीताम्बर धारण किये, कमलके समान नेत्र, बड़ी भुजा, कानोंमें दीप्तिमान् कुण्डल और केशोंकी कांति व मुसकानपूर्वक चितवनसे शोभायमान मुख ॥ ३१ ॥ और सब मङ्गलरूप प्यारीके साथ पांसोंसे खेलता उस प्यारीके अङ्गसङ्गसे जिसमें स्तनोंकी केशर लग रही थी, ऐसी मनोहर जो वसन्त ऋतुकी मालती है, उसके पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण किये कामदेवके पुत्र अनिरुद्धजीको ऊषाके निकट बैठा देखकर बाणासुर अत्यंत आश्चर्य करने लगा ॥ ३२ ॥ शत्रुओंको संग लिये अनेक पैदलोंसहित बाणासुरको मंदिरमें आता देखकर मधुवंशोत्पन्न अनिरुद्धजी लोहेका परिघ

ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ॥ त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद् यदूद्वहम् ॥ ३० ॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् ॥ बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाऽभिनृम्णया तदङ्गसङ्गस्तनकुंकुमस्रजम् ॥ बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ३२ ॥ स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनेकैरवलोक्य माधवः ॥ उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथान्तको दण्डधरो जिघांसया ॥ ३३ ॥ जिघृक्षया तान् परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् ॥ ते हन्यमाना भवनाद् विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥ तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह ॥ ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥३५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे अनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

उठाय मारनेके लिये दंड धारण करके कालके समान खड़े हो गये ॥३३॥ पकड़नेके लिए चारों ओरसे चले आते सूकरोंके यूथका पालन करनेवाले मुख्य सूकर जैसे कुत्तोंको मारता है, उसी प्रकार मारने लगे और मार पड़नेके कारण शिर, हाथ, पांव टूटनेसे वह सिपाही घरमेंसे निकलकर भाग गये ॥३४॥ राजा बलिका पुत्र बली बाणासुरने क्रोध करके अपनी सेनाको मारते हुए अनिरुद्धकुमारको नागफांससे बांध लिया, उस समय अनिरुद्धजीको बाँधा देखकर शोक और खेदसे व्याकुल हो नेत्रोंमें जल भरकर ऊषा रोने लगी ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

दोहा-तिरसठमें यादवन अरु बाणासुरको युद्ध । सहजभुजा तेहि काटि हरि, वरो बहुरि अनिरुद्ध ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! अनिरुद्धजीको देखे विना बन्धु बांधवोंको शीच करते वर्षाऋतुके चार महीने व्यतीत हो गये ॥ १ ॥ हे राजन् ! जिस समय सब यदुवंशी शोकसागरमें निमग्न पड़े थे, उसी समय देवर्षि नारदजीने आकर अनिरुद्धके बँधनेका सब समाचार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा, सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र बहुतसे यादवोंको साथ ले बाणासुरके शोणितपुरको गये ॥२॥ प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्रादि राम कृष्णके आज्ञाकारी मुख्य-मुख्य यादवोंको श्रीकृष्णचन्द्रने सङ्ग ले बारह अक्षौहिणी सेनासे बाणासुरके नगरको चारों ओरसे घेर लिया ॥३॥४॥ हे परीक्षित् ! यादवोंसे अपने पुरके बाग, परकोटे, अटारी द्वार आदि टूटे देख अत्यंत क्रोधित

श्रीशुक उवाच ॥ अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ॥ चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारदात् तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ॥ प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः ॥ नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतो दिशम् ॥ रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात् सात्वतर्षभाः ॥४॥ भज्यमानपुरोद्यान प्राकाराट्टालगोपुरम् ॥ प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥ बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ॥ आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥६॥ आसीत् सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ कृष्णशङ्करयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ॥ साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥

हो बारह अक्षौहिणी सेना लेकर बाणासुर पुरसे बाहर निकला ॥५॥ इसके उपरांत अपने भक्त बाणासुरपर विपत् पड़ी जान अपने पुत्र स्कन्द और बहुतसे भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी इत्यादि साथ ले नन्दीश्वरपर चढ़कर कृष्ण बलदेवसे युद्ध करनेके लिये भगवान् महादेवजी रणभूमिमें आकर सुशोभित हुए ॥६॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्, अब वहां परस्पर बड़ा अद्भुत व भयानक जिसको देखते ही रोमांच खड़े हो जायँ, इस प्रकार युद्ध होने लगा—श्रीकृष्णचंद्र महादेवजीके सम्मुख, प्रद्युम्न स्वामी कातिकजीके सम्मुख ॥७॥ कुम्भांड और कूपकर्णका युद्ध बलदेवजीसे होने लगा, सांबका बाणासुरके पुत्रके संग और बाणासुरका युद्ध सात्यकीके साथ होने लगा ॥ ८ ॥

देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक और मुनि, सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष, ये सब विमानोंपर चढ़कर युद्ध देखनेकी इच्छासे आये ॥ ९ ॥ उस समय भगवान् भूतेश्वरके अनुचर भूत प्रेत, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वैताल, विनायक ॥ १० ॥ प्रेत मातृ पिशाच, कूष्मांड और ब्रह्मराक्षस इन सबको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र पैनी धारके भालोंसे मार-मारकर भगाने लगे ॥ ११ ॥ पिनाक धनुषधारी महादेवजी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर अलग ही अस्त्र, शस्त्र चलाने लगे, परन्तु आश्चर्यरहित श्रीकृष्णचन्द्रजीने उन सब अस्त्र-शस्त्रोंको शांत कर दिया ॥ १२ ॥ श्रीभोलानाथने ब्रह्मास्त्र चलाया, उसे श्रीकृष्णजीने ब्रह्मास्त्रसे शांत कर दिया इसके उपरांत जब महादेवजीने वायु देवताका अस्त्र चलाया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतदेवताका अस्त्र छोड़ा उस समय पर्वतसे रुककर पवनास्त्र थम गया, इसके पीछे महाक्रोधित हो शिवजीने

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ॥ गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥ शङ्करानुचराञ्शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ॥ डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥ १० ॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् ॥ द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥११॥ पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ॥ प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ॥ आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥ मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ॥ बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४॥ स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ॥ असृग्विमुञ्चन् गात्रेभ्यः शिखिनाऽपाक्रमद्रणात् ॥१५॥ कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ॥ दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥

अग्निदेवताका अस्त्र चलाकर आग लगादी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय मेघास्त्र छोड़कर क्षणमात्रमें सब अग्निको शांत कर दिया। फिर भगवान् भूतनाथने अपना पाशुपत अस्त्र चलाया, उसको श्रीकृष्णचंद्रने अपने नारायणास्त्रसे काट डाला ॥१३॥ फिर भगवान् वासुदेवने जृम्भणास्त्र चलाया, उससे शिवजी जँभाई लेने लगे इस प्रकार उन्हें मोहित करके बाणासुरकी सेनाको तलवार, गदा और बाणोंसे मारने लगे ॥१४॥ हे राजन् ! प्रद्युम्नजीके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर स्वामिकार्तिकजीके अंगोंमेंसे रुधिर बहने लगा, तब वह समर छोड़ मोरपर चढ़कर भाग गये ॥१५॥ कुम्भांड और कूपकर्ण मूसलके लगनेसे पृथ्वीपर गिर गये, तब स्वामीके गिर जानेसे उसकी सम्पूर्ण सेना चारों

ओर को भाग गयी ॥१६॥ हे महाराज ! इस प्रकार अपनी सेनाको जहां-तहां भागते देख बड़ी असहनतासे बाणासुर संग्राममें सात्यकी यादवको छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥ १७ ॥ और रणमें बड़े गर्वसे बाणासुरने एक संग पांचसौ धनुष खींच एक-एक धनुषमें दो-दो बाण लगाये ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय बाणासुरके वह पांचसौ धनुष काट डाले, फिर सारथी और घोड़ोंको मार रथको चूर्णकर शंखध्वनि की ॥ १९ ॥ उस समय कोटरानाम बाणासुरकी माता अपने बालोंको खोल, नग्न हो, पुत्रके प्राण

विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पञ्च शतानि वै ॥ एकैकस्मिञ्छरौ द्वौ द्वौ संदधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥ तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपद्धरिः ॥ सारथिं रथमश्वांश्च हत्वाशंखमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ॥ पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥२०॥ ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन् गदाग्रजः ॥ बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत् पुरम् ॥ २१ ॥ विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ॥ अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥ अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३ ॥

बचानेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आकर खड़ी हो गयी * ॥ २० ॥ हे राजन् ! नंगी स्त्रीको देखना शास्त्रकी आज्ञा नहीं है, इसी लिए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुख फेरकर खड़े हो गये, इस बीचमें जिसका रथ टूट गया, धनुष कट गया, ऐसा बाणासुर रणभूमि छोड़ पुरमें भाग गया ॥२१॥ भूतोंके गण जिस समय भाग गये, तब तीन शिर और तीन पांवका ज्वर दशों दिशाओंको जलाता हुआ शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥ २२ ॥ जब नारायणदेव श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीके ज्वरको आया देख अपना शीतज्वर छोड़ा,

* शंका—अपने पुत्रकी रक्षा करनेके लिये बाणासुरकी माता नगी होकर श्रीकृष्णके सामने क्यों खड़ी हो गयी ? नग्न होकर खड़ी होनेसे क्या जान पड़ता है, जैसे किसी कामीके सामने स्त्री नग्न होकर खड़ी हो जाय तो वह कामी स्त्रीको देखकर मोहित हो जाय तो स्त्री जो कुछ आज्ञा करे सो-सो आज्ञा वह कामी पुरुष उसे पूर्ण किया करे वही काम बाणासुरकी माताने किया यह शंका भारी है ।

उत्तर—ब्रह्माने वरदान दिया था कि हे कोटरे ! तीन लोकमें जो पुरुष हैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव और चौरासीलक्ष योनिके पुरुषमात्र तुमको नंगी देखेंगे तब उसी समय भस्म हो जायेंगे, केवल एक तेरा पति ही भस्म न होगा और सब जल्दी भस्म होंगे । कोटराने ऐसा जानकर श्रीकृष्णको भस्म करनेके लिये सम्मुख खड़ी हुई ।

उसके उपरांत शिवजीका ज्वर और भगवान्‌का ज्वर दोनों परस्पर मिलकर युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥ जब विष्णुके ज्वरने शिवजीके ज्वरको बलपूर्वक दबा लिया, तब अत्यन्त पीड़ित होकर पुकारने लगा और अपनी रक्षाके लिये कोई निर्भय स्थान न पाया, तब हाथ जोड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगा ॥२४॥ ज्वर बोला कि अनंत शक्ति ब्रह्मादिकोंके ईश्वर, सबके आत्मा, शुद्ध, चैतन्यघन जगत्‌की, उत्पत्ति, स्थिति, और संहारके कारण, वेदसे गम्य, शांतमूर्ति, ब्रह्म जो आप हैं, सो मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म, जीव स्वभाव, द्रव्य, शरीर, प्राण, अहंकार, विकार और मन अर्थात् ग्यारह इंद्रियें और पंचमहाभूत अर्थात् पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इन तत्त्वोका बना यह देह जैसे बीजसे अंकुर और अंकुरसे फिर बीज होता है, इसी प्रकार कर्मोंसे देह, फिर

माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेन बलार्दितः ॥ अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलिः ॥ २४ ॥ ज्वर उवाच ॥ नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ॥ विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत् तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम्॥२५॥कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ॥ तत्संघातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधंप्रपद्ये ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधून् लोकसेतून् बिभर्षि ॥ हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत् ते भारहाराय भूमेः ॥२७॥ तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ॥ तावत् तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन् यावदाशाऽनुबद्धाः ॥ २८ ॥

देहसे कर्म फिर कर्मसे देह ऐसे जलकासा प्रवाह चला जाता है, बस यही तुम्हारी माया है, तुम उनके निषेधके अवधि हो, इसलिए मैं आपकी शरण आया हूँ ॥ २६ ॥ यदि कहो कि मैं देवकीका पुत्र हूँ सो यह मुझसे कैसे बन सकता है ? इसका उत्तर यह है कि आप लीलापूर्वक मत्स्यादि अवतार धारण करके देवताओंका पालन और वर्णाश्रमके धर्मकी रक्षा करते हो और धर्म करनेवाले साधु लोगोंका पालन व हिंसासहित पापमार्गका नाश करते हो, इस कारण पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिए तुम्हारा जन्म है ॥२७॥ आपके उत्पन्न किये दुःसह भयंकर उग्र शीतज्वरसे मैं तपायमान हुआ हूँ, क्योंकि देहधारियोंको तबतक ही ताप है जबतक आशा बांधकर आपके चरण

कमलोंका सेवन न करें ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जब इस प्रकार शिवज्वरने भगवान् वासुदेवकी स्तुति की तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे तीन शिर के ज्वर ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हुआ हूँ और मेरे ज्वरसे जो तुझे भय हुआ है वह डर निवृत्त हो, परंतु जो पुरुषगण इस संवादका स्मरण करें उनको तू मत व्यापना ॥२९॥ इस प्रकार जब कहा तो शिवज्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके चला गया इसके उपरांत बाणासुर रथमें चढ़ श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये आया ॥३०॥ हे महाराज ! हजार भुजाओंमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारण कर बाणासुर अत्यन्त क्रोधित हो चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥ निरंतर शस्त्रोंको चलाते बाणासुरकी भुजाओंको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने छूरीके समान पैनी धारके चक्रसे जैसे माली वृक्षोंको काटता है उसी

श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद् भयम् ॥ यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यन् जनार्दनम् ॥ ३० ॥ ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ॥ मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥ तस्याऽस्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषु च्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः ॥ भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ॥ यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरंघ्रिरुर्वी ॥ चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥ ३५ ॥

प्रकार काट डालीं ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! जब बाणासुरकी भुजा कट गयीं, तो उस समय भक्त बाणासुर पर कृपा करनेवाले भगवान् भूतनाथ आकर चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ महादेवजीने कहा कि हे परब्रह्म ! आपके विना जाने इस बाणासुरने युद्ध किया है, इसमें आश्चर्य नहीं; इस कारण वाणीमय वेदमें तुम छिपे हुए परब्रह्म हो और ज्योति सूर्यादिकोंके तुम प्रकाशक हो, इसलिये किसीके जाननेमें नहीं आते, यदि कहो कि प्रतीत कैसे हो ? इसके उत्तरमें शिवजी कहते हैं कि निर्मल मन, बुद्धि वाले पुरुष आकाशके समान निर्लेप निर्गुण तुम्हें देखते हैं ॥३४॥ निर्गुण ज्ञानकी बात तो एक ओर है, परंतु तुम्हारी लीलाका आश्रय ब्रह्मांड भी जाननेमें

नहीं आता, जैसे गूलरफलके भीतरके जीव गूलरके फलको नहीं जानते उसी प्रकार इस अभिप्रायसे ब्रह्माण्डरूप करके शिवजी स्तुति करते हैं कि आकाश आपकी नाभि, अग्नि मुख, जल वीर्य, स्वर्ग मस्तक, दिशा कान,पृथ्वी चरण, चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र, मैं (शिव) अहंकार, समुद्र उदर, इन्द्र भुजा ॥ ३५ ॥ ओषधी रोम, मेघ केश, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति लिंग और धर्म हृदय है। लोकोंकी कल्पनासे विराट् पुरुष तुम हो ॥३६॥ सो हे अखण्डरूप ! यह तुम्हारा अवतार धर्मकी रक्षा और जगत्का कल्याण करनेके लिये हुआ है और हम सब लोकपाल आपसे ही रक्षित होकर सब लोकोंका पालन करते हैं ॥३७॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थामें पुरुषके आप कारण हो और शुद्ध हो इसलिये अद्वितीय पुरुष हो और सब विश्वके कारण हो, स्वयं कारणरहित हो परंतु तो भी संपूर्ण विषय प्रकाश करनेके लिये अपनी

रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ॥ प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान् पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६ ॥ तवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ॥ वयं च सर्वे भवताऽनुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७ ॥ त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ॥ प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥३८॥ यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च संचकास्ति ॥ एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥ ३९ ॥ यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ॥ उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥४०॥ देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ॥ यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥ ४१ ॥

मायासे जो देह धारण किया है, उसमें ऐसे ही प्रतीत होते हो ॥३८॥ जैसे सूर्य अपनी मेघरूपी छायासे ढका हुआ होने पर भी बादलोंको प्रकाशित करता है और बादलोंके बाहर भी रूपको प्रकाशमान करता है उसी प्रकार हे भूमन्! स्वयंप्रकाश आप जीवकी दृष्टिमें अपने कार्य रूप अहंकारसे ढके हुए प्रतीत होनेपर भी सत्त्व, रज, तम गुण—रूप उपाधि और उनके जीवोंको भी प्रकाशित करते हो ॥३९॥ तुम्हारी मायासे मोहित होकर स्त्री, पुत्र और घर आदिमें लगे हुए लोग दुःखमय संसार सागरमें ऊँच नीच योनियोंको पाते हैं ॥४०॥ भगवान्की दी हुई मनुष्य देहको पाकर जिसने अपनी इंद्रियोंको नहीं जीता और जिस पुरुषने तुम्हारे चरणोंका भलीभांति पूजन नहीं किया उस

पुरुषको शोच करने योग्य और आत्माका ठगनेवाला समझना चाहिए ॥ ४१ ॥ प्यारे पुत्रादिकोंके लिए जो पुरुष प्रियआत्मा आपका त्याग करता है वह पुरुष मानो अमृत छोड़कर विष पीता है ॥ ४२ ॥ मैं (शिव)ब्रह्मा और देवता निर्मल अन्तःकरणवाले मुनि भी प्रिय ईश्वर और आत्मरूप आपका ही भजन करते हैं ॥ ४३ ॥ जगत्के उत्पत्ति, पालन और नाशके कारण सबमें समान, शांतस्वरूप, हितकारी, आत्मा, ईश्वर अनन्य और दूसरा जिनके समान बड़ा नहीं, जगत्के आत्मा आश्रयदेव तुम हो; सो उन्हें संसार त्यागनेके लिए हम भजते हैं ॥ ४४ ॥ हे प्रकाशमान ! यह बाणासुर मेरा अत्यन्त प्रिय और इष्ट भक्त है, इस कारण मैंने इसे अभयदान दिया है, जैसे

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ॥ विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥ ४२ ॥ अहं ब्रह्माऽथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ॥ सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥ तं त्वां जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम्॥अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥४४॥ अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तममुष्य देव ॥ संपाद्यतां तद् भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव ॥ भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥ अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ॥ प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥ दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ॥ सूदितं च बलं भूरि यच्च भारयितं भुवः ॥ ४८ ॥ चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यन्त्यजरामराः ॥ पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥

आपने प्रह्लादपर दया की, उसी प्रकार इस पर भी दया करनी चाहिए ॥ ४५ ॥ यह प्रार्थना सुनकर भगवान् वासुदेवने कहा कि हे भगवन् ! आपने जिस प्रकार कहा मैं वैसे ही आपको प्रसन्न करूँगा, आपने जिस बातका विचार किया है, मैं उसमें भली-भांति सम्मति देता हूँ ॥४६॥ विरोचनके पुत्र राजा बलिका बेटा यह बाणासुर है; इसलिये मारने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दिया है कि जो तेरे वंशमें उत्पन्न होगा, मैं उसको नहीं मारूंगा ॥४७॥ अभिमान दूर करनेके लिए मैंने इसकी सहस्र भुजायें काटी हैं और जो पृथ्वी पर भारी बोझ हो रहा था उसको भी मैंने उतार दिया ॥ ४८ ॥ कटनेसे इनकी जो चार भुजा शेष रह गयी हैं सो अजर अमर होंगी और

यह दैत्य बाणासुर भयरहित तुम्हारे पार्षदोंमें मुख्य पार्षद होगा ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! इस प्रकार अभय पाकर बाणासुरने श्रीकृष्णचन्द्रको बारम्बार प्रणाम करके ऊषासहित अनिरुद्धको रथमें बैठालकर बिदा कर दिया ॥५०॥ और बाणासुरकी दी हुई एक अक्षौहिणी सेना सङ्ग लिए सुन्दर वस्त्रालंकारोंसे शोभायमान स्त्रीसहित प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको आगे कर शिवजीसे अनुमोदन पाकर श्रीकृष्णचन्द्रने वहांसे पयान किया ॥५१॥ नगरके मनुष्य, सम्बन्धी और ब्राह्मण प्रसन्न हो गये और श्रीकृष्णचन्द्रने शंख,आनक, नगाड़े बजाते तोरण व ध्वजाओंसे शोभायमान मार्गमें जहां छिड़काव हो गया है, ऐसी अपनी नगरी द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥५२॥

इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः ॥ प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥५०॥ अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासः समलङ्कृतम् ॥ सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥५१॥ स्वराजधानीं समंगलकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ॥ विवेश शंखानकदुन्दुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥ ५२ ॥ य एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगम् ॥ संस्मरेत् प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात् पराजयः ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे बाणनिग्रहो नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजन् जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥ विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः ॥ जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥ कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ॥ तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥

हे राजन् ! यह श्रीकृष्णचन्द्रकी जीत और श्रीकृष्णका शिवजीसे युद्ध जो पुरुष प्रातःकाल उठकर स्मरण करेंगे, उनकी कभी हार न होगी ॥५३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामूषाचरित्रवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ दोहा–चौसठमें श्रीकृष्णने, नृगको शाप छुटाय। ब्रह्म अंशकी लगनको, सब फल दियो दिखाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित ! सांब, प्रद्युम्न, चारुभानु, गद इत्यदि यादवोंके पुत्र विहार करनेके लिए वनको गये ॥१॥ उस वनमें बहुत देरतक क्रीड़ा करते रहे, जब प्याससे पीड़ित हो यादवोंके पुत्रोंने जलको ढूँढा तब विना जलके कुएंमें एक अद्भुत जीव पड़ा देखा ॥२॥ पर्वतके समान करकेटा देख-देख

आश्चर्ययुक्त मनसे कृपायुक्त हो यादवोंके बालक उसके निकालनेका यत्न करने लगे ॥ ३ ॥ हे राजन्! वे बालक उस करकेटेको चाम और सूतके रस्सोंसे बांधनेपर भी निकालनेको नहीं समर्थ हुए, तब उत्कण्ठायुक्त बालक श्रीकृष्णचन्द्रसे आकर कहने लगे ॥ ४ ॥ तब विश्वके उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वहां आकर लीलापूर्वक ही बायें हाथसे उस करकेटेको निकाल लिया ॥ ५ ॥ उत्तमश्लोक श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगते ही वह करकेटाका रूप त्याग तप्त सुवर्णके समान सुन्दर वर्ण, अद्भुत आभूषण और वस्त्र मालाओंको धारण किये, देवस्वरूपको प्राप्त हो गया ॥ ६ ॥ मुक्ति देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि उसके करकेटा होनेका कारण जानते भी

चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ॥ नाशक्नुवन् समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान् विश्वभावनः ॥ वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥ स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ॥ सन्तप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालंकरणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥ पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ॥ कस्त्वंमहाभागवरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥ दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ॥ आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्म राजा संपृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना ॥ माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच ॥ नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ॥ दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥

थे परन्तु तो भी सबको दिखानेके लिए पूछने लगे कि हे बड़भागी! सुन्दरस्वरूपवान् आप कौन हो? मुझे तुम देवताओंमें उत्तम देवता जान पड़ते हो ॥ ७ ॥ हे मङ्गलरूप! इस योग्य तुम नहीं हो, किस अपराधसे तुम्हें यह करकेटेकी योनि प्राप्त हुई, जो हमसे कहने योग्य हो तो हमारे सम्मुख अपना सब वृत्तांत वर्णन करो ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! जब अनन्तमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार पूछा तब राजा नृग सूर्यके समान तेजवाले किरीटोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके कहने लगा ॥ ९ ॥ राजा नृगने कहा कि हे समर्थ! मैं इक्ष्वाकुका पुत्र नृग नाम राजा हूँ, जब कभी दानी राजाओंकी बात चली होगी, तो मेरा नाम भी आपके सुननेमें आया होगा॥१०॥

हे नाथ ! सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी और सर्वान्तर्यामी आप हैं, सो आप क्या नहीं जानते ? और कालसे तुम्हारे ज्ञानका नाश नहीं होता, तो आपने जो पूछा है, सो आपकी आज्ञानुसार मैं वर्णन करता हूँ ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जितनी पृथ्वीकी रेणुका और जितने आकाशमें तारे अथवा जितनी वर्षाकी बूंदें हैं उतनी ही गायोंका मैंने दान किया ॥ १२ ॥ दूध देनेवाली तरुण अवस्थाशील

किं नु ते विदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ॥ कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥ यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ॥ यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददां स्म गाः ॥ १२ ॥ पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः ॥ न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥ स्वलङ्कृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ॥ तपः श्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥ १४ ॥

स्वभाव रूप गुणसे भरी कपिला और नीतिपूर्वक संचय की सुवर्णसे सींग, रूपेसे खुर मढ़े बछड़े साथ और वस्त्र, माला गहने पहनाकर ऐसी गायें मैंने दान की थीं ॥ १३ ॥ भले प्रकार शोभायमान गुण, शीलयुक्त, दूध विना दुःखित कुटुम्बी पांखण्डरहित आचारवाले,

---

* शंका—जो वचन श्रीकृष्णसे राजा नृगने गोदान देनेवाले कहे थे, उन वचनोंको सुनकर हमारे सबका मन कांपता है, ऐसे मूर्खोंके समान राजा नृगने वचन क्यों कहे, भला रेतेके कणका क्या प्रमाण ? एक मूठीभर रेता हाथमें ले तो दश वीस कोटि कण मूठीभर रेतामें होंगे, फिर गंगा आदि नदियों में अथवा रेतवाले देशमें रेतके सिवाय और दूसरी मृत्तिका ही नहीं वहां कणकी क्या गणना है, फिर तारा भी गणनासे हीन हैं, वर्षाकी धारा पृथ्वीपर पड़ती है उनकी भी गिनती नहीं है, ऐसा वचन बड़ा अयोग्य है ?

उत्तर—मेदिनीकोशमें सत्रह १७ श्लोकसे लेकर बयालिस श्लोकतक भूमिका और द्वीप आदिका, पर्वतोंका नाम लिखा है, 'सिकता, सात द्वीपका नाम लिखा है, और 'तारका बड़ी बड़ी नदियोंका नाम लिखा। 'आदिव, मर्त्यलोकका नाम लिखा है। मर्त्यलोकमें भरतखंडका नाम भी अदिव है वर्ष धार, पर्वतका नाम लिखा है और राजा नृग भरतखंडमें बसता था इसलिये भरत खंडकी नदियोंके, पर्वतोंके सात द्वीपोंके बहानेसे गोदान करनेकी गिनती श्रीकृष्णसे गुप्त रीतिसे बतायों थी, कि सबको प्रकट होनेसे पुण्यका नाश हो जाता है पंचमस्कन्धके उन्नीसवें अध्यायमें लिखा है कि मर्त्यलोकमें पर्वतोंमें श्रेष्ठ २७ पर्वत हैं और नदियोंमें श्रेष्ठ नदी ४५ हैं, और पंचमस्कन्धके प्रथम अध्यायमें लिखा है कि पृथ्वीमें सात द्वीप हैं, इसलिये गुप्त करके श्रीकृष्ण से राजा नृगने कहा था कि महाराज ! जितने भूमिके सिकता कहिये द्वीप हैं उतनी गायें मैंने दी हैं और भरतखंडमें जितनी तारका अर्थात् बड़ी बड़ी नदी हैं उतनी गायें मैंने दी हैं और जितने वर्षधार कहिये पर्वत मर्त्यलोकके भरतखंडमें हैं उतनी गाय ब्राह्मणोंको दी हैं। सब गायोंकी संख्या कितनी हुई विद्वान् लोग विचार लें, अंककी उलटी रीतिसे प्रथम सात ७, दूसरे ४५, तीसरे सत्ताईस सब जोड़कर २७४५७ सत्ताईस सहस्र चारसौ सत्तावन गाय देनेको श्रीकृष्ण से राजा नृगने कहा था, कुछ रेतके कण, आकाशके तारे, जलवृष्टिकणिकाके लिये नहीं कहा था।

तपस्या करके प्रसिद्ध, वेदपाठी, तरुण अवस्थावाले द्विजोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करके दी थीं ॥१४॥ गो, पृथ्वी, सुवर्ण, महल, हाथी, घोड़े इत्यादि दान कर और दासियोंसहित कन्या दान की। तिल, रूपा, शय्या, वस्त्र, रत्न और आच्छादनके श्रेष्ठ वस्त्र और रथोंका दान किया, यज्ञ किये। कुआँ, तालाव, सरोवर बनाये ॥ १५ ॥ ऐसा मैं दानी था, परन्तु मुझे एक संकट आकर प्राप्त हुआ सो सुनो, किसी एक अयाचक ब्राह्मणको गौ भागकर मेरी गायोंमें मिल गयी, वह गाय विना जाने मैंने ब्राह्मणको दान कर दी ॥१६॥ उस गौ का स्वामी गौको ले जाता देखकर "यह गौ मेरी है" इस प्रकार कहने लगा, दूसरा ब्राह्मण बोला कि भाई! यह गौ मुझे राजा नृगने दान करके दी है ॥ १७ ॥ हे दीनबन्धो! इस प्रकार आपसमें विवाद कर अपने-अपने प्रयोजनको सिद्ध करनेवाले दोनों ब्राह्मण मेरे निकट आये

गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ॥ वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥१५॥ कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ॥ संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ ॥ १६ ॥ तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ॥ ममेति प्रतिग्राह्याय नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥ विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ॥ भवान् दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥ अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ॥ गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवन्तावनुगृह्णीतां किङ्करस्याविजानतः ॥ समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ॥ नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥

तब जिस ब्राह्मणको गौ दान करके दी थी वह बोला कि हे राजन्! इस गायके आप ही दाता हैं और जिसकी गाय थी, वह बोला कि यह क्या दाता है, जो पराई गौका दान करता है, हे भगवन्! यह बात सुनकर मुझे अत्यन्त भ्रम हुआ ॥ १८ ॥ इसके उपरांत धर्मसे कष्टित मैंने उन दोनों ब्राह्मणोंसे बहुत विनती करके कहा कि हे महाराज! इस गौके बदलेमें सुन्दर-सुन्दर एक लाख गौ दूँगा, यह गौ दे दीजिये ॥ १९ ॥ मैं तुम्हारा दास हूँ, मैंने यह नहीं जाना कि यह गौ तुम्हारी है सो मेरे ऊपर अनुग्रह करके घोर नरकमें गिरते हुए मेरी रक्षा करो ॥ २० ॥ तब ब्राह्मण बोला कि हे राजा नृग! तेरी लाख गौकी मुझे आवश्यकता नहीं है, जो दान करके दी है, वही लूँगा।

यह कहकर जिस ब्राह्मणको गौ दी थी, वह उस गौको त्यागकर घरको चला गया ॥२१॥ हे देवदेव ! इसके उपरांत जब मेरा देहान्त हुआ, तब यमदूत आकर यमराजके पास मुझे ले गये । वहां धर्मराजने मुझसे पूछा कि ॥ २२ ॥ हे राजा नृग ! मैं तुम्हारे दान और धर्मका लोकके प्रकाशकोंमें अन्त नहीं देखता, परंतु यत्किंचित् तुम्हारा पाप भी है और सम्पूर्ण शुभ है सो प्रथम तुम पाप भोगोगे अथवा पुण्य ॥ २३ ॥ इस प्रकार जब धर्मराजने कहा तब 'प्रथम पाप भोगूंगा' ऐसा मैंने कहा, उसी समय धर्मराजने आज्ञा दी कि इसको करकेटेकी योनिमें गिरा दो । हे प्रभो ! तब मैंने गिरते ही अपनेको करकेटेके रूपमें देखा ॥ २४ ॥ हे केशव ! ब्राह्मणोंके भक्त और दाता तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा अबतक मुझे लग रही थी, क्योंकि आपकी कृपासे स्मृतिका नाश नहीं हुआ था ॥ २५ ॥ हे योगेश्वर ! देवरूप नेत्र

एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतोयमक्षयम् ॥ यमेन पृष्टस्तत्राऽहं देवदेव जगत्पते ॥ २२ ॥ पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्षे उताहो नृपते शुभम् ॥ नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥२३॥ पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः ॥ तावद्द्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन् प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ॥ स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥२५॥ स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः॥ साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥ २६ ॥ देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ॥ नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥२७॥ अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ॥ यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥ नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥ २९ ॥

करके निर्मल हृदयमें जिनको भावना करें और इंद्रियोंकी जिनमें पहुँच नहीं ऐसे परमात्मा तुम अति दुःखोंसे अन्धी बुद्धिवाले मुझे कैसे दिखायी दिये, क्योंकि इस संसारमें जिस मनुष्यका संसार छूटनेवाला होता है उसको ही आपके दर्शन मिलते हैं ॥ २६ ॥ हे देवदेव ! हे जगत्के नाथ ! हे गोविंद ! हे पुरुषोत्तम ! हे नारायण ! हे इंद्रियोंके प्रेरक ! हे पवित्र यशस्वी ! हे श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अखण्डरूप ! हे अविनाशी ! ॥२७॥ हे कृष्ण ! हे समर्थ ! अब मैं स्वर्ग जाऊँ, मुझे आज्ञा दो और जहां कहीं मैं रहूँ वहां मेरा चित्त तुम्हारे चरणोंमें लगा रहे ॥ २८ ॥ आप सब कार्योंके उत्पन्न करनेवाले विश्वके कर्त्ता और विकाररहित हो, अनन्त मायाशक्तिमान् वासुदेव अर्थात् सब प्राणियोंके

आश्रय कृष्ण अर्थात् सर्वदा आनन्द रूप, वेदोंके कहे जो यज्ञादिक कर्म और स्मृतियोंके कहे जो कुँआ,बावली,तालाब इत्यादि कर्मोंके फल-दाता आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ राजा नृग इस प्रकार कह श्रीकृष्णचन्द्रजीकी परिक्रमा दे अपने मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श कर, आज्ञा ले सब प्राणियोंके देखते-देखते विमानपर बैठकर स्वर्गको चला गया ॥३०॥ ब्राह्मणोंके भक्त, धर्मात्मा देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र क्षत्रियोंकी शिक्षाके लिये अपने कुटुम्बी यादवोंसे कहने लगे ॥३१॥ कि देखो अग्निके समान तेजस्वी पुरुषोंको भी ब्रह्मअंश नहीं पचता और अपनेको ईश्वर माननेवाले राजाओंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३२ ॥ मैं विषको हलाहल नहीं मानता, क्योंकि उसके दूर करनेकी औषधी

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ॥ अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥ ३० ॥ कृष्णः परिजनं प्राह भगवान् देवकीसुतः ॥ ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥ दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ॥ तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥ नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ॥ ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥३३॥ हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ॥ कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥३४॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् ॥ प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दशपूर्वान् दशापरान् ॥३५॥ राजानो राजलक्ष्म्याऽन्धा नात्मपातं विचक्षते ॥ निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥

है, परन्तु ब्रह्मअंश विषसे भी अधिक विष है और इस पृथ्वीमें ब्रह्मअंशके दूर करनेका कोई उपाय नहीं है ॥३३॥ विष तो केवल खानेवालेको ही मारता है और अग्नि भी जलसे शांत हो जाती है, व अग्निके जलानेमें जड़ बाकी रह जाती है, परन्तु ब्रह्मअंशरूप लकड़ीमेंसे उत्पन्न हुई अग्नि मूलसहित कुलको भस्म कर डालती है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणकी पूरी आज्ञा लिये विना उसका धन खाया जाय तो तीन पीढ़ी नरकमें गिरता है और हठसे व राजा आदि की सहायतासे भक्षण किया जाय तो दश प्रथम और दश पीछेकी पीढ़ियोंको और एक अपनी, इस प्रकार इक्कीस पीढ़ीको नरकमें डालता है ॥ ३५ ॥ इसलिये ब्राह्मणका पूजन ही करे, इस कथापर एक दृष्टांत भी लिखते हैं *

* दृष्टांत—एक राजा परदेसी ब्राह्मण जो द्वारपर आता उसे लाख रुपया दिया करते थे, तो एक दरिद्री ब्राह्मणकी स्त्रीने यह सुनकर अपने पतिको इस राजाके नगरमें भेजा, वह चले, राजा शिकार खेलकर आ रहे थे, मार्ग में ब्राह्मणसे भेंट हुई। राजाने कहा कि महाराज। आप कहांसे आये और कहां जाओगे ? ब्राह्मणने कुछ उत्तर न दिया। तब राजाने प्रार्थना कर चरण पकड़कर पूछा कि क्या काम है ? कहो तो, तब यह बोले कि हम पंडित हैं और काशीजीसे आये हैं इस राजाके शिरपर पनही मार लाख रुपये ले जायेंगे। राजाने कहा कि ब्राह्मण बुरे, जो लाख रुपये ले जायें और पनही मारें। सो महलोंमें जाकर ड्योढ़ीवानोंसे कहा कि किसी ब्राह्मणको भीतर मत आने

जो कि लक्ष्मीसे अन्धे हुए राजा हैं, सो अपना नरकमें गिरना नहीं देखते और जो पुरुष ब्रह्मअंशपर मन ललचाते हैं वे नरकमें जानेकी इच्छा करते हैं ॥३६॥ कुटुम्बी उदारजीविका हर जानेसे वे ब्राह्मण रुदन करते हैं, उनके नेत्रोंसे आंसुओंकी बूंद गिरकर जितनी पृथ्वीकी रेणुका भीजती हैं, उतने वर्षतक ब्राह्मणका धन हरण करनेवाले निरंकुश राजा और उनके मन्त्री तथा प्रधान टहलुए कुम्भीपाक नरकमें गिरते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जो पुरुष अपनी दान की हुई अथवा औरकी दी हुई ब्राह्मणोंकी जीविका हरते हैं, वे पुरुष साठ सहस्र वर्षतक

गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ॥ विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥ ३७ ॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान् निरंकुशाः ॥ कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद् यद् गृद्ध्वाल्पायुषो नराः ॥ पराजिताश्च्युता राज्याद् भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥४०॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ॥ घ्नन्तं बहुशपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥ यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ॥ तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥ ४२ ॥

विष्ठाका कीड़ा होते हैं ॥३९॥ जिस राजाके घरमें ब्राह्मणका धन आता है उस धनके लोभसे राजा अल्प आयुष्यवाले पराजयको प्राप्त और राज्यसे भ्रष्ट होकर मनुष्योंको भय देनेवाले सर्प हो जाते हैं ॥४०॥ हे मित्र ! जो ब्राह्मण अपराध करे, मारता ही जावे और गालियें भी बहुत दे ऐसे ब्राह्मणसे भी द्रोह करना उचित नहीं, बरन् उसको नित्य प्रति नमस्कार ही करना चाहिये ॥४१॥ जैसे सावधान होकर समय

द्वो । अब उन पंडितजीकी यहां तक दशा हुई कि थाली कटोरा बेचकर खा गये, परंतु भीतर न घुस सके, तब फिर लौटकर अपने घर जाकर सब समाचार सुनाये । यह राजा वैष्णव था, और कृष्ण, बलदेवका पूजन करता था, एक दिन अकस्मात् बलदेवजी सिंहासनपरसे गिर पड़े, यह देख राजा अत्यन्त भयभीत हुआ । उसी समय ब्राह्मणोंको बुला कर पूछा कि क्या उत्पात होगा ? कोई कुछ कोई कुछ कहने लगे, परंतु यथार्थ उत्तर कोई न दे सका, तब राजाने ढँढोरा पिटवाया कि जो समाधान करेगा, उसे बड़ा द्रव्य मिलेगा, इसके उपरांत फिर उस ब्राह्मणकी स्त्रीने प्रार्थना की, तब वह ब्राह्मण राजाके प्रश्नका उत्तर देनेको आये और बोले कि राजा । तू कुछ मत डर, कुछ उत्पात नहीं होगा, जगन्नाथजी गिरते तो उत्पात होनेकी संभावना थी और बलदेवजी तो नित्य वारुणी पिये उन्मत्त रहते हैं, इनके गिरनेका क्या आश्चर्य है । तब राजाने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणको लाख रुपये दे दिये और कहा कि ब्राह्मणको आनेसे कोई मत रोकना,वह पनही मारकर ही द्रव्य लेते हैं, यदि यह ब्राह्मण न होता तो मेरे प्रश्नका उत्तर कौन देता ?

समयपर ब्राह्मणोंको मैं नमस्कार करता हूँ,उसी प्रकार तुम भी नमस्कार करो और जो कोई मेरी इस आज्ञाका उल्लंघन करेगा, वह पुरुष मुझसे दंड पावेगा ॥४२॥ ब्राह्मणका धन हरनेवाला नरकमें गिराया जाता है, इस बातको कोई मिथ्या मत समझना, क्योंकि जैसे विना जाने नृग राजाने ब्राह्मणकी गाय यद्यपि ब्राह्मणको ही दान कर दी थी, परन्तु तो भी नरकमें गिरा, इसी प्रकार और भी जो ब्रह्मअंश लेते हैं, उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है ॥ ४३ ॥ (श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन !) सब लोगोंको पवित्र करनेवाले मुकुन्द भगवान् इस प्रकार द्वारकावासी यदुवंशियोंको समझाकर अपने मंदिरमें चले गये ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषा-टीकायां नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ दोहा–पैंसठमें बलरामने, वृन्दावनमें आय। रास रचो यमुना निकट, सबको

ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ॥ अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥ एवं विश्राव्य भगवान् मुकुन्दो द्वारकौकसः ॥ पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ॥ सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥ परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ॥ रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥ चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः ॥ इत्यारोप्याङ्कमालिंग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥३॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद् यविष्ठैरभिवन्दितः ॥ यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥

ताप मिटाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण ! एक समय भगवान् बलदेवजी अपने सुहृदोंके देखनेके लिए रथमें चढ़कर गोकुलको गये ॥ १ ॥ और बहुत दिनोंसे आशा लगाये हुए गोप गोपियोंसे मिले। इसके उपरांत बलदेवजीने पिता माताको प्रणाम किया, तब उन्होंने इनको आशीर्वाद दिया ॥२॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न जगदीश्वर ! छोटे भाई कृष्णसहित तुम हमारी बहुत कालतक रक्षा करो, इस प्रकार गोदमें बैठाकर छाती से लगा, नेत्रोंके आंसुओंसे बलदेवजीको भिजाने लगे ॥३॥ विधिपूर्वक वृद्ध गोपोंको प्रणाम करके छोटे गोपोंने इनको प्रणाम किया, इस प्रकार बलदेवजी जैसी जिसकी अवस्था और जैसी जिससे मित्रता, जैसा जिससे सम्बन्ध था ॥ ४ ॥

उसी प्रकार उनको प्राप्त होकर हास्य और हाथसे पकड़ गोपोंसे मिलकर जब बलरामजी विश्राम ले चुके, तब सुखपूर्वक बैठे और कुशल पूछी ॥ ५ ॥ उस समय सब गोप, कि जिन्होंने कमललोचन श्रीकृष्णके लिए सब विषय त्याग दिये हैं, वे सब बलदेवजीके निकट आकर चारों ओर बैठ गये और प्रेमसे गद्गदवचनसे अपने बन्धु यादवोंकी कुशल पूंछने लगे॥ ६ ॥ कि हे राम ! हमारे सब बन्धु तो कुशल हैं ? स्त्री और पुत्र सहित तुम हमारी भी कभी सुध करते हो ? ॥ ७ ॥ यह बड़ी प्रसन्नताकी बात हुई जो महादुराचारी पापी कंस मारा गया और यह भी बहुत अच्छा हुआ जो सुहृद लोग बन्दीखानेसे छूट गये, फिर वैरियोंका नाश कर समुद्रमें द्वारकापुरी बसायी, यह भी

समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः ॥ विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥ पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा ॥ कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥ कच्चिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते ॥ कच्चित् स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥ ७ ॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ॥ निहत्य निर्जित्य रिपून् दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छुः रामसंदर्शनादृताः ॥ कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरति वा बन्धून् पितरं मातरं च सः ॥ अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥ अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन् पतीन् पुत्रान् स्वसॄरपि ॥ यदर्थेऽजहिम दाशार्ह दुस्त्यजान् स्वजनान् प्रभो ॥ ११ ॥ ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः ॥ कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥ १२ ॥

अत्यन्त मंगलकी बात है ॥ ८ ॥ बलरामजीके दर्शनसे गोपियें प्रसन्न हो हँसकर पूछने लगीं कि जिनको नगरकी स्त्रियें अत्यंत प्यारी हैं, वे श्रीकृष्ण तो अच्छे हैं ? ॥९॥ वे श्रीकृष्ण कभी अपने बन्धु बांधवोंकी भी सुधि करते हैं ? क्या अपनी माताका दर्शन करनेको एक बार वे यहां आवेंगे ? और बड़ी भुजावाले श्रीकृष्णचन्द्र कभी हमारी भी सुधि करते हैं ॥ १० ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न समर्थ बलदेवजी ! जिनके कारण हमने दुस्त्यज माता, पिता, भाई, पति, पुत्र, बहन और सुहृद यह सब त्याग दिये ॥ ११ ॥ वे हम सबको त्याग शीघ्रही चले

गये और स्नेह तोड़ दिया, परन्तु उनके वैसे मनोहर कहनेपर कौन स्त्री भरोसा न करे ॥ १२ ॥ हमें अचम्भा होता है कि कृतघ्न और जिसका मन स्थिर नहीं, ऐसे श्रीकृष्णके कहनेको बुद्धिमान् द्वारकाकी स्त्रियें किस प्रकार स्वीकार करती होंगी ? परंतु हम कल्पना करती हैं कि चित्र विचित्र कथावाले श्रीकृष्णचंद्रके शोभायमान हास्यपूर्वक भौंहें चलानेसे बढ़ा जो कामदेव उससे आतुर हो स्वीकार करती होंगी * ॥ १३ ॥ और गोपियें बोलीं कि उनकी बातसे हमें क्या काम ? और बात क्यों नहीं कहती,

कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ॥ गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥१३॥ किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ॥ यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥ इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ॥ गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥१५॥ संकर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयङ्गमैः ॥ सान्त्वयामास भगवान् नानाऽनुनयकोविदः ॥ १६ ॥ द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ॥ रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥

क्योंकि हमारे विना जैसे उनका समय व्यतीत होता है, उसी प्रकार उनके विना हमारा काल भी व्यतीत होता है, उनका सुखसे बीतता है हमारा दुःखसे, अन्तर इतना ही है ॥ १४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी हँसनि बोलनि सुन्दर चितवन शोभायमान चलना और प्रेमपूर्वक आलिंगन इन बातोंका स्मरण कर सब गोपियें रोने लगीं ॥ १५ ॥ अनेक प्रकारसे समझानेमें निपुण, भगवान् संकर्षण श्रीकृष्णचन्द्रके सन्देशको कहकर समझाने लगे ॥ १६ ॥ इसके उपरांत भगवान् बलदेवजीने उस व्रजमें गोपियोंको अनेक प्रकार

---

* दृष्टांत—एक लालाने बिल्ली पाली थी और उसको नित्यप्रति दूध मलाई खिलाते थे । एकदिन लाला कार्यवश बिल्लीको डोरीसे खम्भेमें बांध गांवको गये और उसका स्मरण न रहा और कई दिन लग गये । बिल्लीका भूखके मारे प्राणान्त होने लगा इसके पीछे घरमें कहीं दल्लानके कोने में एक रुईका गाला धरा था, सो बिल्लीने जाना कि यह घीका लोदा है सो उछल उछलकर बिल्ली उस रुईके गालेपर जाय परंतु वह हाथ न आये, 'अब लिया अब लिया' इसी आशामें अठारह दिन व्यतीत हो गये । इधर लाला अठारह दिनके उपरांत आप आकर कहने लगे कि हरे राम ! बिल्लीकी तो इतिश्री हो गयी होगी । ताला खोलकर देखे तो अभी जीवित है, यह विचार ज्यों ही उसकी डोरी खोली कि वह झपटकर रुईके गालेपर गिरी परंतु वह तो रुई ही थी इसलिये निराश हो झट बिल्लीके प्राण निकल गये । इसलिये "जियै आशा मरै निराशा" यह बात सत्य है ।

आनंद देते चैत्र और वैशाख दो महीने तक वास किया ॥ १७ ॥ पूर्ण चन्द्रमाकी कलासे शोभायमान कुमुदिनियोंकी सुगन्धयुक्त पवन जहां आ रही थी, इस प्रकार शोभायमान यमुनाजीके बागमें स्त्रियोंको संग लेकर बलदेवजी रमण करने लगे ॥ १८ ॥ उस समय वरुणजीकी भेजी वारुणी मदिरा वृक्षोंकी खोतरियोंमें से गिरकर सब वनको अपनी गन्धसे सुगन्धित करने लगी ॥ १९ ॥ पवनसे प्राप्त मधुधाराकी सुगन्ध सूँघकर बलदेवजी वहां आकर स्त्रियोंके साथ मदिरापान करने लगे ॥ २० ॥ स्त्री जिनके चरित्र गान कर रहीं हैं और हलायुध धारण करनेवाले मतवाले अमलसे विह्वल नेत्र हो बलदेवजी अपने मनमें विचार

पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना ॥ यमुनोपवने रेमे सेवते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ॥ पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥ तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ॥ आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥ उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ॥ वनेषु व्यचरत् क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥ २१ ॥ स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया ॥ बिभ्रत्स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ ॥ स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ॥ निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥२३॥ पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता ॥ नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २४ ॥ एवं निर्भर्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ॥ उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥ २५ ॥

करने लगे ॥ २१ ॥ वनमाला और कानोंमें कुण्डल पहने मतवाले वैजयन्तीमाला धारण किये इससे अधिक शोभायमान और पसीने की बिन्दुसे सुन्दर मन्द मन्द हास्ययुक्त, कमलरूप मुख धारण किये ॥ २२ ॥ जलक्रीड़ा करनेके लिये सामर्थ्यवान् बलदेवजी यमुनाको बुलाने लगे "ये मतवाले हैं" इसलिये बलदेवजीके वचनका अनादर करके यमुना नहीं आयी, तब भगवान् बलदेवजीने अत्यन्त क्रोधित हो, हलके अग्रभागसे खींच लिया ॥ २३ ॥ और बोले कि रे पापिनि ! मैंने तुझे बुलाया और तू न आयी, इसलिये स्वच्छन्द फिरनेवाली तुझको मैं हलके अग्रभागसे खण्डित कर दूँगा * ॥२४॥ हे परीक्षित ! जब इस प्रकार बलदेवजीने कहा तब यमुना

* शंका—शेषावतार बलदेवजीका मुनियोंने वर्णन किया है, सो बलदेवजीने बड़े कामीकी नाई यमुनाको क्यों खींचा ? मर्यादाको भी नष्ट किया, यह बड़ी शंका है ।

अत्यन्त भयभीत और चकित हो उनके चरणोंमें गिरकर कहने लगी ॥ २५ ॥ हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! मैं तुम्हारा पुरुषार्थ नहीं जानती, जिन आपके अंश शेषजीने संपूर्ण पृथ्वीको सहस्र फणोंमेंसे एक फणपर धारण कर रखा है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! मैं आपके श्रेष्ठ प्रभावको नहीं जानती, परंतु आपकी शरण आयी हूँ, सो आप क्या मुझे छोड़नेके योग्य हो ? ॥२७॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! जब इस प्रकार प्रार्थना की तब प्रसन्न होकर भगवान् बलदेवजीने यमुनाजीको छोड़ दिया और जिस प्रकारे हाथी हथिनियोंके सङ्ग विहार करता है उसी प्रकार यमुनामें गोपियोंके साथ विहार करने लगे ॥२८॥ इच्छापूर्वक बिहार करके जब बलदेवजी जलमेंसे बाहर निकले तब लक्ष्मी

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ॥ यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २६ ॥ परं भावं भगवतो भगवन् मामजानतीम् ॥ मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन् प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २७ ॥ ततो व्यमुञ्चद् यमुनां याचितो भगवान् बलः ॥ विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ २८ ॥ कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासिताम्बरे ॥ भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥ २९ ॥ वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य काञ्चनीम् ॥ रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥ ३० ॥ अद्यापि दृश्यते राजन् यमुनाकृष्टवर्त्मना ॥ बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ ३१ ॥ एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥ रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥३२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

जीने इनको दो नीलाम्बरी वस्त्र, अमूल्य आभूषण और शोभायमान माला दी ॥२९॥ बलरामजी भी नीलवस्त्र पहन और सुवर्णकी माला धारण कर, अच्छे प्रकार चंदन लगाकर इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान शोभायमान होने लगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! महावीर्यवान् भगवान् बलरामजीने यमुनाजीको खींचा, इस कारण वह स्थान अबतक अनंतपराक्रम बलरामजीके पराक्रमको जताता है, क्योंकि अब भी वैसे ही देखनेमें आता है ॥ ३१ ॥ व्रजकी स्त्रियोंके संग विलास करके चलायमानचित्त बलदेवजीको व्रजमें

उत्तर—श्रीकृष्णने जब यमुनासे कालियनागको बाहर निकाल दिया तब यमुना बहुत अभिमान करने लगी, विना ही वर्षाके मर्यादाको छोड़कर चढ़ने लगी, मुनिजन मथुराको और वृन्दावनको आते जाते तो रात दिन भरी पाते, नौकाको चलने नहीं दे; इस प्रकार यमुनाको उन्मत्त जानकर जलक्रीडाके मिष करके बलदेवजीने यमुनाको दण्ड दिया ।

रमण करते एक रात्रिके समान सम्पूर्ण रात्रियें व्यतीत हो गयीं ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां उत्तरार्द्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ दोहा—छासठ कासी जाय हरि, पौंड्रकनृपको मार । मित्र सुदक्षिण सहित सब, हनो तासु परिवार ॥ इतनी कथा सुनाकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब बलरामजी नन्दरायके ब्रजमें आये तब अज्ञानी करूषदेशके राजा पौंड्रकने "मैं वासुदेव हूँ" इस प्रकार मनमें विचारकर श्रीकृष्णचन्द्रके पास दूत भेजा ॥ १ ॥ आप जगत्पति भगवान् वासुदेव प्रकट हुए हो ऐसे मूर्ख मनुष्योंकी प्रशंसासे उत्साह दिलानेपर उसने अपने आपको वासुदेव समझ लिया ॥२॥ अचिन्त्य मार्गवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास द्वारकापुरीमें अज्ञानी पौंड्रकने दूत भेजा, जैसे खेलके बालक एक बालकको राजा बना देता है और वह अप-

श्रीशुक उवाच॥नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप॥वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत्॥१॥त्वं वासुदेवोभगवानवतीर्णो जगत्पतिः ॥ इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम्॥२॥दूतं च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने॥ द्वारकायां यथा बालो नृप बालकृतोऽबुधः ॥३॥ दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ॥ भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याऽभिधां त्यज ॥५॥ यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद् बिभर्षि सात्वत ॥ त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच॥ कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ॥ उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तथा ॥ ७ ॥

नेको राजा मानता है, उसी प्रकार अपने आपको पौंड्रक वासुदेव मानने लगा ॥३॥ कमलपत्रके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णचन्द्रको दूत सभामें बैठा देखकर राजा पौंड्रकका सन्देशा कहने लगा ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेके लिये मैं एक ही वासुदेव उत्पन्न हुआ हूँ, दूसरा नहीं है, इस कारण तूने जो अपना मिथ्या नाम वसुदेव धर रखा है उसे त्याग दे ॥५॥ हे यादवमूढ़ ! तूने मेरे चिह्न गदा पद्मादि जो धारण कर रखे हैं, उन्हें शीघ्र ही त्यागकर मेरी शरणमें आ और जो इन्हें त्याग न दे और मेरी शरण न आवे तो मुझसे युद्ध करनेके लिए तैयारी कर ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार मन्दबुद्धि पौंड्रकका सन्देशा सुन उग्रसेनादि सब सभासद इस बातको

असत्य जानकर हँसने लगे ॥७॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर दूतसे कहने लगे कि हे मूर्ख ! कृत्रिम सुदर्शनादि चिह्नोंसे तू अपनी ऐसी बड़ाई करता है, उन चिह्नोंको मैं तुझपरसे छुड़ा दूँगा ॥८॥ हे अज्ञानी ! जिस समय तू अपने मुखको ढककर और काक, गृध्र, बगलोंसे घिरकर मरके सोवेगा, उस समय तू कुत्तोंकी शरण लेगा अर्थात् वे तुझको भक्षण करेंगे ॥९॥ उस समय जो श्रीकृष्णचन्द्रने अनादर करके कहा, सो उसी प्रकार दूतने अपने स्वामी मिथ्या वासुदेवसे आकर सब कहा और श्रीकृष्णचन्द्र भी रथमें चढ़कर काशी पुरीको गये,क्योंकि उस समय पौंड्रक भी अपने मित्र काशीनरेशके यहां आया था, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र भी वहां पहुँचे ॥१०॥ हे राजा

उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु ॥ उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखं तदपिधायाज्ञ कंकगृध्रवटैर्वृतः ॥ शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥ इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ॥ कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥ १० ॥ पौण्ड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ११ ॥ तस्य काशीपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ॥ अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत् पौण्ड्रकं हरिः ॥१२॥ शंखार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ॥ बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ॥ अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ॥ यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥

परीक्षित् ! उस समय महारथी पौंड्रक भी श्रीकृष्णचन्द्रके युद्धका उद्यम जान, दो अक्षौहिणी सेना संग लेकर शीघ्रही काशीपुरीसे बाहर निकला ॥ ११ ॥ उस पौंड्रकका मित्र काशीनरेश मित्रकी सहायता करनेके लिये पीछेसे आया, तब तीन अक्षौहिणी सेना संग लिये पौंड्रकको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देखा ॥१२॥ जो शंख, चक्र, तलवार, गदा, धनुष, भृगुलता आदि चिह्नयुक्त और कौस्तुभमणि धारण किये वनमालासे देदीप्यमान॥१३॥ रेशमी पीली धोती, उपरना पहने, गरुड़ध्वज, बड़े मोलका मुकुट और आभूषण पहने, मकराकृत कुण्डलोंसे प्रकाशमान है ❋ ॥१४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित ! जैसे रंगभूमिमें वेष बनाकर नट आता है, उसी

* शंका—योगियोंको बड़े दुःखसे प्राप्त होने योग्य जो भगवान् वासुदेवका रूप, उस रूपको पौंड्रक नाम राजा क्यों प्राप्त हुआ ? उत्तर—पूर्वजन्ममें पौंड्रकनाम राजाने भगवान्का बड़ा भारी तप किया था, तब भगवान्

प्रकार अपने समान वेष बनाये मिथ्या वासुदेवको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र हँसने लगे, क्योंकि नकलीने ज्योंकि त्यों नकल उतारी थी ॥१५॥ इसके उपरांत शत्रुलोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर त्रिशूल, गदा, बेड़े, बर्छी, गुर्ज, नेजा, तलवार, पटा बाण आदि अस्त्र चलाने लगे ॥ १६ ॥ जैसे प्रलयाग्नि जरायुज, स्वेदज, अंडज, पिंडज, इन चार प्रकारके प्राणियोंको पीड़ा देती है, उसी प्रकार भगवान् वासुदेव मिथ्यावासुदेव और काशीनरेश व उनके हाथी, घोड़े, प्यादे इत्यादि सम्पूर्ण चतुरंगिणी सेनाको गदा, तलवार, चक्र और बाण आदिसे पीड़ा देने लगे ॥ १७ ॥ हे महाराज ! चक्रसे कटे हुए रथ, घोड़े, हाथी और प्यादे जिसमें पड़े, वह भूमि उस समय भगवान् भूतनाथकी

शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ॥ असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥ कृष्णस्तु तत् पौण्ड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् ॥ गदासिचक्रेषुभिरर्दयद्भृशं यथा युगान्ते हुतभुक्पृथक्प्रजाः ॥ १७ ॥आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणावखण्डितैः ॥ बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥ १८ ॥ अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भो पौण्ड्रक यद्भवान् ॥ दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥ त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत् त्वयाऽज्ञ मृषा धृतम् ॥ व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥ इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ॥ शिरोऽवृश्चद्रथाङ्गेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥

क्रीड़ाभूमिके समान भयंकर लगने लगी, जिसको देखकर वीर पुरुषोंके हृदयमें अति आनन्द प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ सेना मारनेके उपरांत शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र क्रोधित होकर पौंड्रकसे कहने लगे कि हे पापिष्ठ ! जो तूने दूतसे कहलाया था, वह शस्त्र अब तुझपर ही छोड़ता हूँ ॥ १९ ॥ अरे अज्ञानी ! जो तूने हमारा मिथ्या नाम वासुदेव रख लिया है यह तेरा नाम शीघ्र ही छूट जायगा और यदि तेरे सम्मुख युद्ध न करूँ तो तेरी शरण लूंगा ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तिरस्कार कर अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले बाणोंसे पौंड्रकका रथ तोड़ जिस

सन्न होकर वर देनेको आये, तब उसने यह वरदान मांगा कि आपका स्वरूप बनानेकी बुद्धि मुझको दीजिये और आपके ही हाथसे मेरी मुत्यु हो। तब भगवान्ने यह वरदान दिया, इसलिये पौंड्रकने भगवान्का रूप बनाया था।

प्रकार देवराज इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतका शिखर काटते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथ्यावासुदेव पौंड्रकका शिर काट डाला ॥२१॥ इसके उपरांत हे परीक्षित् ! काशीनरेशका बाणोंसे शिर उखाड़ काशीपुरीमें ऐसे पटक दिया कि जिस प्रकार कमलकोशको पवन पटक देता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार मित्रसहित मिथ्यावासुदेवको मार सिद्धोंसे गायी हुई अपनी कीर्तिको श्रवण करते हुए भगवान् वासुदेव द्वारकापुरीमें आये ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सदा भगवान्का ध्यान करनेके कारण कट गये हैं सब बन्धन जिसके, ऐसा

तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः ॥ न्यपातयत् काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः ॥ द्वारकामाविशत् सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥२३॥ स नित्यं भगवद्ध्यान प्रध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ बिभ्राणश्च हरे राजन् स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ॥ किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशयिरे जनाः ॥ २५ ॥ राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः ॥ पौराश्च हा हता राजन् नाथनाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥

वह मिथ्यावासुदेव पौंड्रक श्रीकृष्णचन्द्रका रूप धारण किये तन्मय हो गया॥२४॥ हे महाराज ! काशीके राजद्वारपर कुण्डलों सहित पड़े शिरको देखकर यह क्या है ? किसका शिर है ? इस प्रकार मनुष्य संदेह करने लगे ॥२५॥ हे कुरुकुलके शोभारूप परीक्षित् ! पीछे काशी पुरीके राजाका शिर जानकर रानी, पुत्र, भाई और पुरवासी 'हे नाथ ! हे नाथ ! हम मरे' इस प्रकार कहकर रुदन करने लगे *इसपर एक

---

* दृष्टांत—एक बनियेंने देखा देखी अपनी दण्डी तोलनी छोड़ दी और चोरोंके साथ रह कमर बांध चोरी करने लगा। अपने मनमें विचार किया कि भला रोजगार है, घड़ी भरमें ही हजारों का माल मिल जाता है। सो कहीं किसी चोरोंके सङ्गकूमल (सेंध) दे भीतर घुसे तो जाग हो गयो, राजाके सिर ही दौड़ पड़े, सो वह चोर तो सङ्गके सब रफूचक्कर हो गयें । परंतु इस बनियेंसे न भागा गया, तब निकट ही एक तालाबमें तलवार डाल वह बनिया जलमें घुसा, अब सिपाहियोंको चोर तो मिले नहीं और प्यास लगी तो वह तालाबके निकट आये, सो वहां लालाको देखकर पकड़ा कि तुम यहां कैसे आये ! बनियां बोला कि महाराज ! मैं शौचके लिये यहां आया था, सो चोरोंको देख डरके मारे तालाबमें घुस गया, फिर आपसे डरा कि कहीं चोर जानकर मुझे भी न पकड़ लें और चोरोंको मैंने पहचान लिया है, जिनके नाम भी आपको बतलाता हूं, परसा, सेहू, रामसहा, फकीरा, ऊधा, लल्ला, बांकेशंकर, सिपाहीलाल; ज्ञानी, बाबूसिंह, मुन्नालाल, चोखे, गौरी और मक्खन इत्यादि पचास आदमियों के नाम लिखवाकर सबको पकड़वा दिया और अब बनियेंपर भी गंगाराम घूमें, इसलिये अपना छोड़कर पराया काम नहीं करना चाहिये, देखो पराया काम करनेसे पौंड्रक मारा गया।

दृष्टांत है ॥ २६ ॥ काशीनरेशका सुदक्षिण नाम पुत्र अपने पिताके मरनेसे अत्यन्त शोकाकुल हो "पिताके मारनेवाले कृष्णको मार कर पिताका ऋण चुकाऊँगा" ॥२७॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय करके उपाध्यायों सहित सुदक्षिण परमसमाधि लगाकर भगवान् महादेव जीका पूजन करने लगा ॥२८॥ विशेष करके मुक्त भगवान् भूतेश्वर प्रसन्न होकर "सुदक्षिण ! वर मांग" इस प्रकार कहने लगे,तब सुदक्षिणने "पिताके मारनेवालेके मारनेका उपाय बताओ" यह वर मांगा ॥२९॥ तब भगवान् भोलानाथ बोले कि तू ब्राह्मणोंके संग ऋत्विक्के समान आज्ञाकारी दक्षिणाग्निका मारणकी विधिसे पूजन कर, वह अग्नि प्रमथोंके साथ तेरे सब मनोरथोंको पूर्ण करेगा ॥३०॥ परंतु यह

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ॥ निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७ ॥ इत्यात्मनाऽभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ॥ सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥ २८ ॥ प्रीतो विमुक्तो भगवांस्तस्मै वरमदाद् भवः ॥ पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ॥ अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥ साधयिष्यति संकल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ॥ इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन् व्रती ॥ ३१ ॥ ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥ दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदंडकठोरास्यः स्वजिह्वया ॥ आलिहन् सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलन् ॥ ३३ ॥

प्रयोग ब्राह्मणकी भक्तिसे रहित पुरुषपर चलावेगा, तो तेरा सङ्कल्प सिद्ध होगा, अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रपर चलावेगा तो उलटा पड़ेगा क्योंकि वह तो ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले और उनके अत्यन्त प्रिय हैं, इस प्रकार आज्ञा पाकर नियम ग्रहण कर सुदक्षिण श्रीकृष्णकी घात और उनके मारनेके लिए जैसे शिवजीने आज्ञा दी थी उसी प्रकार करने लगा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! तब कुण्डमेंसे अत्यन्त भयानक मूर्तिमान् अग्नि निकला, जिसकी तप्त ताम्रके समान शिखा और दाढ़ी मूछें थीं, नेत्र और मुखसे अंगारे उगलता था ॥३२॥ जिसका मुख, दाढ़ और

बड़ी तीक्ष्ण भ्रुकुटी दण्डसे विकराल हैं, इस प्रकार अपनी जीभसे होठोंको चाटता, नग्न और देदीप्यमान त्रिशूलको घुमाता ॥ ३३ ॥ बड़े तालके समान लम्बे पावोंसे पृथ्वीको कम्पायमान और दशों दिशाओंको चलाता, भूत प्रेतोंको संग लिये वह अग्नि द्वारकापुरीमें पहुँची ॥३४॥ वनके जलनेसे मृग जैसा त्रास पाते हैं ऐसी कृत्याग्निको देखकर उसी प्रकार सब द्वारकावासी लोग त्रास पाने लगे ॥ ३५ ॥ और वे सब भयभीत हो सभामें पासोंसे खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर कहने लगे, कि हे त्रिलोकीनाथ ! अग्निसे सब पुरी भस्म हुई जाती है, इसकी रक्षा करो ॥३६॥ मनुष्योंकी अधिक व्याकुलता सुन और अपने पुरवासियोंकी घबड़ाहट देखकर, शरणागतोंके रक्षक श्रीकृष्ण-

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम् ॥ सोऽभ्यधावद् वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन्दिशः ॥ ३४ ॥ तमाभिचार-दहनमायान्तं द्वारकौकसः ॥ विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ३५ ॥ अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः ॥ त्राहित्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ॥ शरण्यः संप्रहस्याह मा भैष्टेत्यविताऽस्म्यहम् ॥ ३७ ॥ सर्वस्यान्तर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ॥ विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ३८ ॥ तत् सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ॥ स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाऽग्निमार्दयत् ॥ ३९ ॥ कृत्यानलः प्रतिहतः स रथांग-पाणेरस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ॥ वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽ-भिचारः ॥ ४० ॥

चन्द्र हँसकर "भय मत करो, मैं रक्षा करूँगा" इस प्रकार कहने लगे ॥३७॥ सबके भीतर बाहरके देखनेवाले सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे श्रीमहादेवजीकी कृत्याग्नि जान उसका नाश करनेके लिए समीप ही खड़े हुए चक्रसे आज्ञा करने लगे ॥ ३८ ॥ करोड़ सूर्यके समान तेजस्वी प्रलयकालकी अग्निके तुल्य कांतिमान् अपने तेजसे आकाश, दिशा, स्वर्ग, और पृथ्वीको प्रकाशमान करता भगवान्का अस्त्र सुदर्शनचक्र उस अग्निको पीड़ा देने लगा ॥ ३९ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! श्रीकृष्णचन्द्रके अस्त्रके तेजसे प्रतिहित और भग्नमुख होकर वह अग्नि पीछेको लौट गयी और काशीमें आकर यज्ञ करानेवाले ऋत्विजोंसहित सुदक्षिणको जलाने लगी क्योंकि अपना किया व्यभिचार

है, इसका यही स्वभाव है कि जो शत्रुपर चल जाय तो चल जाय , नहीं तो जो चलावे उसको ही भस्म करे, सो सुदक्षिणको क्षण मात्रमें भस्म कर दिया ॥ ४० ॥ उस अग्निके पीछे पीछे आकर श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रने मश्चान सहित सभा, हवेली, दूकान, पुरके दरवाजे और खजाने सहित अटारी (कोठे), घोड़े, अन्न इनकी शालावाली काशीपुरीको क्षणमात्रमें भस्म कर दिया ॥ ४१ ॥ सरलकर्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका सुदर्शनचक्र संपूर्ण काशीको भस्मकर फिर निकट आकर खड़ा हो गया ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत परीक्षित् ! उत्तम श्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह पराक्रम जो मनुष्य सावधान होकर श्रवण करते हैं अथवा औरको श्रवण कराते हैं

चक्रं च विष्णोस्तदनु प्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ॥ सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुला सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥ ४१ ॥ दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥ भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत् कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥४२॥ य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥ समाहितो वा शृणुयात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे पौण्ड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ राजोवाच ॥ भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ॥ अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नरकस्य सखा कश्चिद् द्विविदो नाम वानरः ॥ सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥ सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन् वानरो राष्ट्रविप्लवम् ॥ पुरग्रामाकरान् घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥

वे संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां पौंड्रकादिवधवर्णनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ दोहा—सरसठमें बलरामजी, रैवत गिरिपरं जाय । नारिन सँग क्रीड़ा करत, हनो द्विविद कपिराय ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! अद्भुतकर्मा अनन्त अप्रमेय बलदेवजीने जो जो चरित्र किये उनके सुननेकी फिर मेरी अभिलाषा है, सो कृपा करके मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! नरकासुरका मित्र, सुग्रीवका मंत्री और मयंदका भ्राता बड़ा पराक्रमी कोई वानर द्विविद नामसे प्रसिद्ध था ❋ ॥ २ ॥ सो अपने मित्र नरकासुरका ऋण चुकानेके लिए इस बन्दरने पुर, ग्राम, खानि,

* शंका—द्विविद नाम वानर श्रीकृष्णका बड़ा प्यारा था, तब सब वानर तो त्रेतामें स्वर्ग को चले गए और द्विविदको श्रीराघवजी स्वर्ग क्यों नहीं ले गये ?

खिरक, छपरोंका और देशोंका नाश कर दिया ॥ ३ ॥ कभी वह बन्दर पर्वतोंको उठाकर उनसे देशोंको चकनाचूर कर देता था और विशेष करके आनर्त्तदेशों को महाकष्ट देने लगा, क्योंकि नरकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्ण वहीं विराजते थे ॥ ४ ॥ दश हजार हाथीके बलवाला द्विविद बन्दर समुद्रके बीचमें खड़ा होकर भुजाओंसे जलको उछालता समुद्रके तटपर जो देश थे, उनको डुबाने लगा ॥ ५ ॥ वह दुष्ट वानर बड़े बड़े ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर वृक्षोंको तोड़, मल, मूत्र करके यज्ञकी अग्निको दूषित करने लगा ॥ ६ ॥

क्वचित् स शैलानुत्पाटच तैर्देशान् समचूर्णयत् ॥ आनर्तान् सुतरामेव यत्रास्तेऽमित्रहा हरिः ॥ ४ ॥ क्वचित् समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ॥ देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥ ५ ॥ आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ॥ अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान्खलः ॥ ६ ॥ पुरुषान्योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः ॥ निःक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥ एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ॥ श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ॥ सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥ गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ॥ विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ १० ॥

महाघमण्डी वह बन्दर स्त्री और पुरुषोंको पकड़ पकड़कर पर्वतोंकी गुफा व कंदराओंमें रखकर जैसे भ्रमरी कीड़ोंको मूँद देती है उसी प्रकार मूँद देता था ॥ ७ ॥ इस प्रकार वह बन्दर देशोंमें उपद्रव करता और कुलकी स्त्रियोंको दोष लगाता हुआ मनोहर गीत सुनकर रैवत नाम पर्वतपर चला गया ॥८॥ वहां जाकर यादवोंके पालन करनेवाले, कमलकी माला धारण किये, सुन्दर अंगवाले स्त्रियों के बीचमें बैठे बलरामजीको देखा ॥ ९ ॥ वारुणी मदिरा पीकर गान करते, मदसे विह्वल नेत्र, मतवाले हाथियोंके समान शरीरसे प्रकाशमान हैं ॥ १० ॥

उत्तर—रामचन्द्र और रावणका युद्ध होता था, उस समय अर्द्धरात्रि थी, द्विविद नामक वानर रामचन्द्रसे बिना पूछे अपनी सेना लेकर रावणके मंदिरमें घुस गया और बहुतसी रावणकी रानियोंको पकड़कर नंगी कर दिया और मारा भी। कुछ देर पीछे श्री मर्यादापुरुषोत्तम जो श्री रघुनाथजी थे, उनको यह खोटा कर्म द्विविदने किया, ऐसा जान पड़ा तब उसी समय श्री रघुनाथजीने अपनी सेनासे उसको निकाल दिया। द्विविदने पीछेसे अपने मोक्ष होनेके लिये श्री रघुनाथजीसे विनय की तब रामचन्द्रजीने कहा द्वापरमें तेरी मुक्ति होगी, शेषजी तुझको द्वापर में मारेंगे तब तेरी मुक्ति होगी, इसलिये द्विविदको बलदेवजीने मारा और त्रेतामें स्वर्ग को नहीं गया।

दुष्ट शाखामृग बन्दर वृक्षकी शाखाओंपर चढ़कर उनको हिलाता हुआ आपको दिखाकर किचिर शब्द करने लगा ॥ ११ ॥ उस बंदरकी धृष्टता देख, स्वभावसे चञ्चल, हास्यप्रिय बलदेवजीके संगकी स्त्रियें भी हँसने लगीं ॥ १२ ॥ वह बन्दर भ्रुकुटी चढ़ाकर सामने ही घुड़ककर स्त्रियों को अपनी गुदा दिखलाकर बलदेवजीके देखते ही स्त्रियोंकी अवज्ञा करने लगा ॥ १३ ॥ प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ बलदेवजीने क्रोधित होकर उस बंदरके पत्थर मारा, परंतु वह धूर्त बंदर पत्थरको बचाकर मदिराके कलशको ॥ १४ ॥ लेकर हँसकर बलदेवजीको क्रोध उत्पन्न कराके अवज्ञा करने लगा, इसके पीछे वह धृष्ट बन्दर मदिराके कलशको फोड़ स्त्रियोंके वस्त्रोंको खींचकर

दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् ॥ चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥ ११ ॥ तस्य धार्ष्ट्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ॥ हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥ ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः सम्मुखादिभिः ॥ दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥ १३ ॥ तं ग्राव्णा प्राहरत क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ॥ वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन् हसन् ॥ निर्भिद्य कलशं धृष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ॥ १५ ॥ कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥ तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥ क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया ॥ १६ ॥ द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ॥ अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥ तं तु संकर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा ॥ प्रतिजग्राह बलवान्सुनन्देनाहनच्च तम् ॥ १८ ॥ मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ॥ गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ॥ १९ ॥

फाड़ने लगा। बड़ा बलवान मदसे उद्धत बंदर बलदेवजीकी कदर्थना करके दुःख देने लगा ॥ १५ ॥ उस बंदरकी अनम्रता देख और उसका किया देशोंमें उपद्रव देख अत्यन्त क्रोधित हो बलदेवजी उस बैरीको मारने के लिये अपने हाथमें हल, मूसल ग्रहण किया ॥ १६ ॥ हे राजन्! उस बड़े पराक्रमी बंदरने भी हाथसे शालवृक्षको उखाड़ और शीघ्रतासे निकट आकर उस वृक्षकी चोट भगवान् बलरामजीके माथेमें मारी ॥ १७ ॥ पर्वतके समान माथेपर पड़ते हुए शालवृक्षको भगवान् बलरामजीने बलपूर्वक पकड़ लिया और अपने मूसलको घुमाकर उस बंदरको मारा ॥ १८ ॥ मूसलसे उस बंदरका शिर फूट गया, तब जलप्रवाहके समान रुधिरकी धार बहने लगी, जिससे वह

गेरू निकलते पर्वतके समान शोभायमान होने लगा और उस प्रहारको कुछ न विचारकर उस बन्दरने ॥ १९ ॥ अत्यन्त क्रोधसे फिर बलपूर्वक और वृक्षको उखाड़ उसके सब पत्तोंको छुड़ाकर बलदेवजीको मारा, बलदेवजीने उसी समय उस वृक्षके टुकड़े टुकड़े कर दिये, इसके उपरांत इस बंदरने और वृक्षको उखाड़ महावीर्यवान् बलदेवजीके ऊपर प्रहार किया, परंतु बलदेवजीने उसके भी सौ खण्ड कर दिये इस प्रकार भगवान् बलदेवजीके साथ युद्ध करके बारंबार जब वृक्ष कट गये तब यह चारों ओरसे वृक्षोंको उखाड़कर निर्वृक्ष वन करने लगा ॥ २० ॥ २१ ॥ इसके उपरांत असहनतासे वह बंदर महात्मा बलदेवजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा, तब मूसलधारी बलदेवजीने लीलापूर्वक ही बंदरके वर्षाये पत्थरोंको चूर्ण कर दिया ॥ २२ ॥ बन्दरोंके स्वामी इस बंदरने तालवृतके समान बड़ी

पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्या निष्पत्रमोजसा ॥ तेनाहनत सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाऽच्छिनत् ॥ एवं युध्यन् भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ॥२१॥ आकृष्य सर्वतो वृक्षान् निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ॥ तत् सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥ २२ ॥ स बाहू तालसङ्काशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ॥ आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ २३ ॥ यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललाङ्गले ॥ जत्रावभ्यर्दयत् क्रुद्धः सोऽपतद् रुधिरं वमन् ॥ २४ ॥ चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ॥ पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥ २५ ॥ जयशब्दो नमः शब्दः साधुसाध्विति चाम्बरे ॥ सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत् कुसुमवर्षिणाम् ॥ २६ ॥

भुजाओंकी मुट्ठी बांध, रोहिणीके पुत्र बलरामजीके पास जाकर उनकी छातीमें एक घूसा मारा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यादवोंके इंद्र बलरामजी भी हल मूसलको छोड़ और अत्यन्त क्रोधित होकर भुजाओंसे उसके कण्ठको मर्दन करने लगे, उस समय वह बंदर रुधिरको वमन करता हुआ पृथ्वीमें गिरकर मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ हे कुरुशार्दूल ! जिस समय वह बंदर गिरा तब जैसे जलमें नाव कांपती है, उसी प्रकार टंक और वृक्षोंसहित वह पर्वत कांपने लगा ॥ २५ ॥ आकाशमार्गमें देवता, सिद्ध मुनीश्वर फूलोंकी वर्षा कर 'जय शब्द

और नमः शब्द और भले भले' शब्द करने लगे ॥ २६ ॥ इस प्रकार जगतके नाश करनेवाले बन्दरोंको मार और जनोंसे स्तुतिको प्राप्त होकर ऐसे भगवान् बलदेवजी अपनी पुरी द्वारकामें आये ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां द्विविद-वधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥ दोहा-अड़सठमाहिं साम्बको, कौरव कीन्हों बन्द । हलधर गजपुर उलटकर, आये सुत निरद्वन्द ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप श्रेष्ठ परीक्षित् ! युद्धमें जीतनेवाला जाम्बवतीका पुत्र साम्ब दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको जब स्वयंवरमेंसे हर लाया उस समय सम्पूर्ण कौरव क्रोधित होकर कहने लगे कि यह बालक बड़ा अनम्र है क्योंकि हमारा अनादर करके इच्छा न

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥ संस्तूयमानो भगवान् जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिंजयः ॥ स्वयंवरस्थामहरत् साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥ कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतो ऽयमर्भकः ॥ कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद् बलात् ॥ २ ॥ बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ॥ ३ ॥ निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः ॥ भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥ इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ॥ साम्बमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानु-मोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान् महारथः ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥

करती हुई हमारी कन्याको बलात्कार हरण किया ॥ १ ॥ २ ॥ इसलिए इस अनम्र बालकको पकड़कर बांध लो, यादव हमारा क्या करेंगे, क्योंकि वह तो हमारी ही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुये हैं और हमारी ही दी हुई पृथ्वीका भोग करते हैं ॥ ३ ॥ यदि इस बालकको बँधा सुनकर जो यहां यादव आवेंगे, तो जैसे प्राणायाम करनेपर इंद्रियें शांत हो जाती हैं, उसी प्रकार गर्व भञ्जन होने पर शांतिको प्राप्त होंगे ॥४॥ हे महाराज ! इस प्रकार भीष्मजीकी सम्मतिसे कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधन ये बांधनेका उपाय करने लगे॥५॥ महारथी साम्ब पीछे आते हुए धृतराष्ट्रके छः अनुयायियोंको देखकर सुन्दर धनुष हाथमें ले सिंहके समान अकेला ही खड़ा हुआ ॥ ६ ॥

इसके उपरांत कर्णादि धनुषधारी वीर क्रोधमें भर साम्बको पकड़नेके लिये "खड़ा रह, खड़ा रह" इस प्रकार कहते हुए निकट आकर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! यदुवंशियोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र साम्बके जब कौरवोंने बाण मारे तब वह क्षुद्र पशुओंके पराक्रमकी सिंह जैसे सहन नहीं करता है उसी प्रकार साम्ब उनका बल नहीं सह सके ॥८॥ इसके पीछे वीर सांबने मनोहर धनुष चढ़ाकर कर्णादिक छः वीरों को छः बाणोंसे एक सङ्ग बींध डाला ॥९॥ चार बाणोंसे रथके चारों घोड़ोंको और एक बाणसे रथवानको बींध डाला, तब बड़े बड़े धनुषधारी छः रथी सांबके पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ उन कौरवोंमेंसे चार

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठतिष्ठेतिभाषिणः ॥ आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥ सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ॥ नामृष्यत् तदचिन्त्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥ विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान् विव्याध सायकैः ॥ कर्णादीन् षड्रथान् वीरस्तावद्भिर्युगपत् पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ॥ रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥१०॥ तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ॥ एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥ ११ ॥ तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ॥ कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन् संजातमन्यवः ॥ कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥ सान्त्वयित्वा तु तान् रामः सन्नद्धान् वृष्णिपुङ्गवान् ॥ नैच्छत् कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥ १४ ॥ जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥

जने तो सांबके चारों घोड़ोंको और एक जनेने रथवानको मारा, एकने धनुषको तोड़ दिया । इस प्रकार मिलकर सांबको विरथ करने लगे ॥११॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित ! कौरववीर युद्धमें बालक सांबको विरथ कर उन्हें बांध जीतके अपनी कन्या ले अपने पुरमें चले गये ॥१२॥ हे नृपोत्तम ! देवर्षि नारदजीके मुखसे सांबको बँधा सुन यादव अत्यन्त क्रोधित हो, राजा उग्रसेनकी आज्ञा पाकर कौरवोंसे लड़नेका उद्यम करने लगे ॥ १३ ॥ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाले बलदेवजी, कौरव और यादवोंका विरोध न हो, यह विचार कवच पहन, हथियार बांध, यादवोंको समझाकर ॥१४॥ सूर्यके समान प्रकाशमान रथमें बैठ, ब्राह्मण और कुलवृद्ध पुरुषोंको सङ्ग लेकर

जैसे ग्रहोंसहित चन्द्रमा जाता है, उसी प्रकार हस्तिनापुरको चले गये ॥ १५ ॥ हे महाराज ! महाबलवान् बलरामजीने हस्तिनापुरमें पहुँच और पुरके बाहर बगीचेमें ठहरकर कौरवोंके अभिप्राय जाननेके लिये धृतराष्ट्रके पास उद्धवजीको भेजा ॥ १६ ॥ उद्धवजीने अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको प्रणाम कर भीष्मजी और बाह्लीक सहित द्रोणाचार्य व दुर्योधनको विधिपूर्वक प्रणाम करके "बलदेवजी आये हैं" यह कहा ॥१७॥ अत्यन्त हितकारी बलरामजीको आया हुआ सुन सब कौरव अति प्रसन्न हो उद्धवजीका पूजन कर और भेंट हाथमें ले ले भगवान् बलरामजीके सम्मुख गये ॥ १८ ॥ और संपूर्ण कौरवोंने यथायोग्य बलदेवजीसे मिलकर गौ और धन दिया और कौरवोंमें

गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ॥ उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥ सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ॥ दुर्योधनं च विधिवद् राममागतमब्रवीत् ॥१७॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ॥ तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मङ्गलपाणयः ॥१८॥ तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ॥ तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥ १९ ॥ बन्धून् कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ॥ परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥२०॥ उग्रसेनः क्षितीशेशो यद् आज्ञापयत् प्रभुः ॥ तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलम्बितम् ॥२१॥ यद् यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ॥ अबध्नीताथ तान्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥ २२ ॥ वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ॥ कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥

बलरामजीके प्रभावको जाननेवाले इन्हें शिर नवाकर प्रणाम करने लगे ॥१९॥ समस्त बन्धु बांधवोंकी कुशल श्रवण कर, परस्पर कुशल क्षेम पूछ, इसके पीछे जिनके सुननेसे व्याकुलता उत्पन्न हो ऐसा वचन बलरामजी कहने लगे ॥ २० ॥ बलरामजीने कहा कि सामर्थ्यवान् पृथ्वीके ईश्वर राजा उग्रसेनने जो तुम्हें आज्ञा की है, उसे एकाग्र चित्तसे श्रवण कर शीघ्र उसका पालन करो ॥ २१ ॥ राजा उग्रसेनने यह कहा कि तुम बहुत जनोंने जो अधर्म कर उस धर्मात्मा बालकको बांध लिया है, यह तुम्हारा अपराध भाइयोंकी परस्पर एकता रहे विरोध न हो, इसलिये हमने सहनकर लिया; अब तुम शीघ्र सांबको लाकर हमें अर्पण करो ॥२२॥ इस प्रकार पराक्रम, शूरता,

बलयुक्त और अपने सामर्थ्यके समान बलरामजीके वचन सुन अत्यन्त कुपित होकर कौरव कहने लगे ॥२३॥ कि अहो ! बड़े आश्चर्यकी बात है देखो ! कालकी गति बड़ी दुरत्यय है; जो मुकुटके सेवा करने योग्य मस्तकपर जूती अपना अधिकार करना चाहती है ॥२४॥ इनके यहांसे जबसे पृथाको ब्याह कर लाये तबसे ही यादवोंसे संबन्ध हुआ और हमने ही पलँगपर सुला,संग बिठा, भोजन करा,राज्यसिंहासन दे यादवोंको अपने समान कर लिया है ॥२५॥ चँमर, पंखा, श्वेत छत्र, किरीट, आसन और शय्या इत्यादि हमारी दी हुई वस्तु यादवलोग भोग करते हैं ॥२६॥ जैसे कोई सर्पोंको दूध पिलाता है और वह पिलानेवालेको ही काटते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हमारे साथ वर्त्ताव किया

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया॥ आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥ एते यौनेन संबद्धाः सह-शय्यासनाशनाः ॥ वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥ २५ ॥ चामरव्यजने शंखमातपत्रं च पाण्डुरम् ॥ किरीटमासनं शय्यां भुञ्जत्यस्मदुपेक्षया ॥२६॥ अलं यदूनां नरदेवलाञ्छनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥ २७ ॥ कथमिन्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ॥ अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥२८॥ श्रीशुक उवाच ॥ जन्मबंधुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ॥ आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वा वाच्यानि चाच्युतः ॥ अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्य प्रहसन् मुहुः ॥ ३० ॥

ऐसे यादव राज्यकी वस्तु छत्र, चामरादि परिपूर्ण हो और हमारी ही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुये अब हमको ही आज्ञा करते हैं बड़े कष्टकी बात है कि इन्हें लज्जा भी नहीं आती, इसलिए यादव बड़े निर्लज्ज हैं॥२७॥भीष्म, द्रोण और अर्जुन आदि कौरवोंकी न दी हुई वस्तु क्या इंद्र भी ले सकता है ? कभी नहीं, जिस प्रकार सिंहकी वस्तु उसके दिये विना भेड़ नहीं ग्रहण कर सकती है ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार जन्मबन्धु और लक्ष्मी मदोन्मत्त वह असभ्य कौरव बलरामजीसे दुर्वचन कहकर हस्तिनापुरको चले गये ॥२९॥ कौरवोंकी दुष्टता देख और न कहने योग्य वचन सुन अत्यन्त क्रोधित हो देखनेमें न आवे इस प्रकार बलरामजी वारंवार हँसकर

कहने लगे ॥३०॥ कि अनेक प्रकारके मदसे मर्यादारहित असाधु कौरव निश्चय ही शांति नहीं चाहते, पशु जैसे लाठीसे ही शांत होते हैं उसी प्रकार दुष्टोंके शांत करनेका उपाय दण्ड ही है ॥ ३१ ॥ अत्यन्त क्रोधी यादवोंको धीरे धीरे समझाकर और क्रोध भरे श्रीकृष्णको समझाकर इन कौरवोंका मिलाप करानेके लिए मैं यहां आया हूँ ॥३२॥ और यह मन्दबुद्धि कलहप्रिय, दुष्ट, अभिमानी कौरवोंने मेरा अपमान करके मुझे निन्दित वचन कहे ॥३३॥ भोज, वृष्णि और अंधक कुलके ईश्वर, उग्रसेनकी आज्ञाको इन्द्रादि बड़े बड़े लोकपाल भी मानते हैं; सो क्या वे कौरवोंको आज्ञा करनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रने देवराज इन्द्रकी सभाको पांवोंसे खूंद

नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्तिं नेच्छन्त्यसाधवः ॥ तेषां हि प्रशमो दंडः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१ ॥ अहो यदून् सुसंरब्धान् कृष्णं च कुपितं शनैः ॥ सान्त्वयित्वाऽहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥ त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः ॥ तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान् मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ॥ शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ३४ ॥ सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः ॥ आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ॥ स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥ यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ॥ ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ ३७ ॥ भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल ॥ उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥ ३८ ॥

और देवताओंका कल्पवृक्ष लाकर अपने महलके बगीचेमें लगाया, वे क्या समर्थ नहीं हैं ? ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण जगत्की ईश्वरी लक्ष्मी साक्षात् जिनके चरणारविंदोंका सेवन करें, वे लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र क्या राजाओंकी वस्तुके योग्य नहीं हैं ? ॥ ३६ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदोंकी रज सब लोगोंका पालन करनेवाले ब्रह्मादिक अपने मुकुटयुक्त माथेपर धारण करते हैं और जो गंगा तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाली हैं, जिनके अंशके अंश ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी और हम संपूर्ण बहुत दिनों तक चरणारविंदोंकी रज माथे पर धारण करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख राजसिंहासन क्या पदार्थ है ? ॥ ३७ ॥ कौरवोंने पृथ्वीके खण्ड कर दिये हैं, उसका यादव

भोग करते हैं और हम पांवकी जूती और कौरव शिर ठहरे ॥३८॥ अहो ऐश्वर्यसे मतवालोंको समान अभिमानी कौरवोंके कर्कश टेढ़े वचनोंको सुनकर दण्डका देने वाला कौन पुरुष सह सकेगा ? ॥३९॥ इसलिये अब कौरवोंसे रहित पृथ्वी करूँगा । इस प्रकार भगवान् बलदेवजी मनमें निश्चय कर हल हाथमें ले मानों त्रिलोकीको भस्म कर देंगे ऐसे अत्यन्तक्रोधित हो खड़े हो गये ॥४०॥ असहनतासे बलदेवजीने हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको उखाड़कर नाश करने के लिये गंगाजीकी ओरको खींचा ॥ ४१ ॥ नौकाके समान भ्रमण करके गङ्गाजीमें

अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ॥ असम्बद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥३९॥ अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ॥ गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥४०॥ लाङ्गलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ॥ विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥ जलयानमिवाघूर्णं गंगायां नगरं पतत ॥ आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः ॥ ४२ ॥ तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीषवः ॥ सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥ ४३ ॥ राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ॥ मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ॥ लोकान् क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥ ४५ ॥

गिरते नगरको देख अत्यन्त भ्रमित हो कौरव लक्ष्मणासहित साम्बको आगे कर हाथ जोड़ कुटुम्बसहित जीवनकी इच्छा करके सामर्थ्यवान् भगवान् बलरामजीकी शरणमें आये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ और आकर कहने लगे कि हे राम ! हे सबके आश्रय ! हम तुम्हारा प्रभाव नहीं जानते थे इसलिये हमारे ऊपर तुम क्षमा करने योग्य हो ॥ ४४ ॥ स्थिति, उत्पत्ति और नाश इनके तुम निराश्रय कारण हो । हे ईश !

---

* शंका—हस्तिनापुरमें अनेक प्रकारके प्राणी तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, साधु, संन्यासी, गाय पशु और अनेक जातिके पशु बसते थे, ऐसे हस्तिनापुरको जलमें डुबानेके लिये बलदेवजी उपस्थित हुए, इस पापसे नहीं डरे कि, हस्तिनापुरको जलमें डुबावेंगे तो असंख्य जीवोंकी हत्या होगी यह विचार क्यों नहीं किया ? अकेले कौरवोंको डुबानेकी क्यों नहीं इच्छा की, सब पुरवासियोंने क्या अपराध किया था, अपराध तो कौरवोंने किया था ?

उत्तर—कौरवोंने उग्रसेनको और यदुवंशियोंकी निन्दा की । तब बलदेवजी अपने बड़ोंकी और सब कुलकी निन्दा सुनकें बड़े क्रोधित हुए, उसी क्रोधसे व्याकुल होकर जीवोंकी हत्याको भूल गये ।

यह लोक तुम्हारी लीला करनेका खिलौना है ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! हे सहस्रमूर्द्धन् ! तुम इस भूमण्डलको लीलापूर्वक ही मस्तकपर धारण करते हो और अन्तसमय सब विश्वको उदरमें धरकर शेषशय्यापर शयन करते हो, इसलिए आप अद्वितीय ब्रह्म हो ॥४६॥ हे भगवन् ! सत्त्वगुणी तुम्हारा क्रोध सबको शिक्षा देनेके लिए है, कुछ द्वेष और मत्सरता नहीं । हे राम ! विश्वकी स्थिति और पालन करना कोपका तात्पर्य है ॥४७॥ हे संपूर्ण प्राणियोंके आत्मा ! हे सम्पूर्ण शक्तिके धारण करनेवाले आपको नमस्कार है । हे विश्वके धारण करनेवाले ! हम आपकी शरण आये हैं ॥४८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! उद्वेगयुक्त शरण आये कौरवोंने कि जिनका नगर कम्पित

त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ॥ अन्ते च यः स्वात्मनिरुद्धविश्वः शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥ कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ॥ बिभ्रतो भगवन् सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय ॥ विश्वकर्मन् नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ॥ प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥४९॥ दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान् षष्टिहायनान् ॥ ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरंगमान् ॥ ५० ॥ रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ॥ दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान् सात्वतर्षभः ॥ ससुतः सस्नुषः प्रायात् सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः ॥ शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥

हो रहा था, जब इस प्रकारसे भगवान् बलरामजीको प्रसन्न किया, तब बलरामजीने प्रसन्न होकर उनको "भय मत करो" यह अभय दान दिया ॥४९॥ इसके उपरांत राजा दुर्योधनने अपनी कन्याके दहेजमें साठ साठ वर्षकी अवस्थाके बारह सहस्र हाथी और बारह हजार घोड़े दिये ॥ ५० ॥ हे राजन् सुवर्णके साजसे शोभायमान, सूर्यके समान चमचमाहट ऐसे छः हजार रथ दिये और पुत्रीपर प्यार अधिक होनेके कारण दुर्योधनने धुकधुकी कण्ठमें पहिने हजार दासी दीं ॥ ५१ ॥ यादव श्रेष्ठ बलदेवजीने सम्पूर्ण दहेज ग्रहण कर और बेटा बहूको सँग ले कौरवोंका अभिवादन ग्रहण कर वहांसे प्रस्थान किया ॥५२॥ हे नृप ! सम्पूर्ण कौरवोंसे बिदा हो हलधारी बलदेवजी अपने पुरमें

आकर स्नेहभरे चित्तसे सब बन्धु बान्धवोंसे मिल, उत्तम यादवोंकी सभामें बैठ कौरवोंने जो जो बातें की थीं सो सब कहने लगे ॥५३॥ हे राजा परीक्षित् ! इस कारण अबतक हस्तिनापुर बलरामजीके पराक्रमकी सूचना कराता हुआ दक्षिण दिशाकी ओरसे गङ्गाजीमें झुका हुआ दिखायी देता है ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां हस्तिनापुरकर्षण-संकर्षणविजयवर्णनं नाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥ दोहा—उनहत्तरवें देखकर, घर घर कृष्ण विहार । अति विस्मित भये देवऋषि, पुनि सब मिटो विकार ॥

अद्यापि च पुरं ह्येतत् सूचयद्रामविक्रमम् ॥ समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनुदृश्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे हास्तिनपुरकर्षणरूप संकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥ श्रीशुक उवाच ॥ नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ॥ कृष्णेनैकेन बह्वीनांतद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥ चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक् ॥ गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥ इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ॥ पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥ उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! नरकासुरको वधकर अकेले भगवान्ने बहुत स्त्रियोंके साथ विवाह किया यह बात सुन देखनेकी इच्छासे देवर्षि नारद द्वारकापुरीमें आये * ॥१॥ नारदजी विचार करने लगे कि बड़े आश्चर्यकी बात है, कि एक देहसे एक सङ्ग अलग अलग घरोंमें सोलह सहस्र स्त्रियोंका श्रीकृष्णचन्द्रने एक ही साथ पाणिग्रहण किया ॥२॥ इस प्रकार उत्कण्ठासे नारदजी द्वारकापुरीमें आये, जिस द्वारकापुरीमें फूली फुलवारी और बागमें पक्षी तथा भौंरोंके झुण्ड गुंजार रहे थे ॥ ३ ॥ फूले हुए इन्दीवर, अम्भोज, कह्लार

---

* शंका—मुनीश्वर नारदकी बुद्धि क्या भ्रष्ट हो गई । त्रिलोकी नाथको षोडश सहस्र १६०० स्त्रियोंके संग क्रीड़ा सुनके आश्चर्य मानना विना प्रयोजन दुःखी होना यह काम साधुलोगों का नहीं है; यह काम तो मूर्खोंका है. जो कोई कहे कि नारदको माया ग्रसित कर रही है, तो यह बात वृथा है, माया तो बारबार ग्रसित नहीं करती है ?

उत्तर—जो कोई प्राणी भूलकर थोड़ासा भी पाप कर लेता है, फिर वह पाप करनेसे नहीं डरता ऐसे ही बहुत से जीवोंको बिना विचार किये नारदने शाप दे दे कर दुःख दिया उन्हीं पापोंसे भक्तवत्सल श्रीकृष्ण भगवान्ने दुष्टबुद्धि- करने लगे, पापके कारण मूर्ख हो गये थे ।

कुसुद और उत्पलोंसे सरोवर व्याप्त थे, उनमें उच्च स्वरसे हंस, सारस बोल रहे थे, उनका शोर हो रहा था ॥४॥ स्फटिकमणि और महामणियोंसे प्रकाशमान सुवर्णके रत्नोंकी सामग्रीसे युक्त नौलाख महल बन रहे थे ॥ ५ ॥ अलग अलग राजमार्ग और गली, कूचे, बाजार, शाला, सभा और देवतालोगोंके मंदिर बन रहे थे, उनसे वह पुरी अत्यन्त शोभायमान लगती थी, मार्ग, आंगन, गली और देहलियोंमें छिड़काव हो रहा था, छोटी छोटी पताका और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंके फहरानेसे वहां धूप नहीं आती थी ॥ ६ ॥ इस द्वारकापुरीमें संपूर्ण लोकपालोंसे पूजित श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तःपुरकी रचना में विश्वकर्माने अपनी संपूर्ण चतुराई दिखायी थी ॥ ७ ॥ इस प्रकार सोलह हजार

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ॥ महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ॥ संसिक्तमार्गाङ्गणवीथिदेहलो पतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥ तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ॥ हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलङ्कृतम् ॥ विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैडूर्यफलकोत्तमैः ॥ इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाऽहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रामुक्तादामविलम्बिभिः ॥ दान्तैरासनपर्यङ्कैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥ दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलङ्कृतम् ॥ पुंभिः सकञ्चुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११ ॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वान्तं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनोऽङ्ग ॥ नृत्यन्ति यत्र विहितागुरुधूममक्षैर्निर्यान्तमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥ १२ ॥

महलोंसे शोभायमान अन्तःपुरसे श्रीकृष्णचन्द्रकी रानीके एक भवनमें देवर्षि नारदजी गये ॥ ८ ॥ वह भवन कैसा है जहां मूँगोंके खम्भ लग रहे थे और वैदूर्य मणियोंके फलकोत्तम अर्थात् खम्भ धरनेकी चौकियें बन रही थीं, इन्द्रनीलमणियोंकी भीतें और अत्यन्त शोभायमान नीलमणिकी भूमि बन रही थी ॥९॥ मोतियोंकी झालर जिनमें लगी, ऐसे विश्वकर्माके बनाये चँदोवेसे वह भवन अधिक शोभायमान था, मणियोंसे शोभायमान हाथीदांतकी चौकी और पलंग बिछ रहे थे, उनकी अलग ही शोभा हो रही थी ॥१०॥ धुकधुकी कण्ठमें पहने सुन्दर वस्त्र धारे दासियोंसे शोभायमान, जामा, पगड़ी पटका और मणियोंके कुण्डलोंको पहने पुरुषोंसे शोभायमान था ॥११॥ हे राजा परीक्षित!

रत्नोंके दीपकोंकी पंक्ति लग रही थीं, उनके प्रकाशसे उस भवनमें अन्धकार नहीं था और घरोंके भीतर अगर की धूपका धुआं जाली झरोखोंमें होकर निकल रहा था, उसे देख बादल आये जान मोर शब्द करके भवनके चित्र विचित्र छज्जोंके ऊपर नृत्य कर रहे थे ॥ १२ ॥ उस महलमें रूप, गुण, अवस्थामें अपने समान गहना पहिने सहस्र दासियोंके संग सदा सुवर्णकी दण्डीका चँवर, पंखा लिये रुक्मिणी यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर चँवर कर रही थीं, इस प्रकार नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥१३॥ सब धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने नारदजीको देख, पलँगपरसे शीघ्र उठ किरीटयुक्त शोभायमान शिरसे चरणोंमें नमस्कार कर हाथ जोड़ उन्हें अपने आसनपर बैठाकर ॥ १४ ॥ जगत्के अतिशय गुरु साधुओंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि नारदजीके

तस्मिन् समानगुणरूपवयः सुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ॥ विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥ १३ ॥ तं संनिरीक्ष्य भगवान् सहसोत्थितः श्रीपर्यङ्कतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ॥ आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोऽपि सतां पतिर्हि ॥ ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥ संपूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ॥ वाण्याभिभाष्य मितयाऽमृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवामहे किम् ॥ १६॥ नारद उवाच ॥ नैवाद्भुतं तव विभोऽखिललोकनाथ मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ॥ निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥

चरण धो, चरणामृत अपने मस्तकपर चढ़ाया, जिन श्रीकृष्णका चरणोदक गंगा सबको पवित्र करती हैं उनमें ब्रह्मण्यदेव यह गुणयुक्त नाम ज्योंका त्यों बनता है ॥१५॥ नरके सखा, ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण नारदजीका शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पूजन कर अमृतके तुल्य प्रमाणीभूत मधुर वाणीसे कहने लगे कि हे नारदजी ! आपके आनेसे बड़ा ही मंगल हुआ । हे समर्थ भगवन् ! हम तुम्हारा क्या पूजन करें ? यह कहने लगे ॥१६॥ नारदजी बोले कि हे समर्थ भगवन् ! हे उरुगाय ! आप सब जीवोंसे मित्रता रखाते हो और दुष्टोंको दण्ड देते हो, सो यह आपमें कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि जगत्की स्थिति और रक्षासहित कल्याण करनेके लिये अपनी इच्छानुसार अवतार लेते

हो, यह मैं भली भांति जानता हूँ, कि दुष्टोंको दण्ड और साधुओंका सत्कार करना, यही आपका मुख्य कार्य है ॥ १७ ॥ मनुष्योंको मोक्षके देनेवाले और बड़े ज्ञानी, ब्रह्मादिक देवता जिनका हृदयमें ध्यान धरते हैं, जो संसाररूपी कूपमें पड़े जीवोंको निकालनेके आश्रयभूत आपके चरणारविन्दोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ, अब ऐसी कृपा करी कि, 'मुझे सदा आपका स्मरण बना रहे' और आपके चरणारविन्दोंका ध्यान करता हुआ सुखसे विचरूं ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार कह नारदजी योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमाया जाननेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रकी और रानियोंके महलमें गये ॥ १९ ॥ उस महलमें भी प्यारी सत्यभामाके संग और उद्धव जीके संग चौपड़ खेलते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने देखा। इनको देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र परम भक्तिपूर्वक उठकर आसन बिछा

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ॥ योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया ॥१९॥ दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ॥ पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥ पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति ॥ क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन् जन्मैतच्छोभनं कुरु ॥ स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥ २२ ॥ तत्राप्याचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुताञ्छिशून् ॥ ततोऽन्यस्मिन् गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २३ ॥ जुह्वतं च वितानाग्नीन् यजन्तं पञ्चभिर्मखैः ॥ भोजयन्तं द्विजान् क्वापि भुञ्जानमवशेषितम् ॥ २४ ॥

और अर्घ्य देकर पूजन करने लगे ॥ २० ॥ "आप कब आये" इस प्रकार अज्ञानीके समान श्रीभगवान् नारदजीसे पूछने लगे, पूर्ण स्वरूप आपका हम अपूर्ण क्या पूजन करें ॥२१॥ हे ब्रह्मन् ! हम पूर्ण नहीं हैं परन्तु तो भी हमसे कुछ आज्ञा कर हमारा जन्म सार्थक करो। यह सुन नारदजी आश्चर्य मानकर वहांसे और मंदिरमें गये ॥ २२ ॥ उस महलमें भी छोटे-छोटे बालकोंको खिलाते श्रीकृष्णचन्द्रजीको देखा। इसके उपरांत और महलोंमें जाकर देखें तो स्नानका उपाय कर रहे हैं ॥ २३ ॥ किसी महलमें श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्निहोत्र कर रहे हैं, किसीमें पञ्चयज्ञ कर रहे और किसी महलमें ब्राह्मणोंको भोजन जिमाकर उनका बचा हुआ प्रसाद आप भोजन कर रहे हैं,

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ २४ ॥ किसी महलमें सन्ध्या कर रहे हैं और किसीमें मौन होकर गायत्री जप रहे हैं, एक महलमें ढाल तलवार लेकर फिर रहे हैं, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ ॥ २५ ॥ किसी महलमें घोड़े, हाथी, रथोंपर चढ़कर फिर रहे हैं और किसी महलमें शयन कर रहे हैं, बन्दीजन स्तुति कर रहे हैं, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका नारदजीने दर्शन किया ॥२६॥ किसी महलमें उद्धवादिक मंत्रियोंके सङ्ग विहार करते देखा और किसी महलमें मुख्य-मुख्य वरांगना स्त्रियोंके सङ्ग जलमें विहार करते श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥२७॥ किसी महलमें शृङ्गार करके ब्राह्मणोंको गो-दान कर रहे हैं और किसी महलमें इतिहास, पुराण,

कापि संध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम् ॥ एकत्र चासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥२५॥ अश्वैर्गजे रथैः कापि विचरन्तं गदाग्रजम् ॥ कचिच्छयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च बन्दिभिः ॥ २६ ॥ मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चो-द्धवादिभिः ॥ जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याऽबलावृत्तम् ॥ २७ ॥ कुत्रचिद् द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलङ्कृताः ॥ इतिहासपुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥ २८ ॥ हसन्तं हासकथया कदाचित् प्रियया गृहे ॥ क्वापि धर्मं सेवमान-मर्थकामौ च कुत्रचित् ॥२९॥ ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ शुश्रूषन्तं गुरून् क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥ ३० ॥ कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित् सन्धिं चान्यत्र केशवम् ॥ कुत्रापि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥ ३१ ॥ पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् ॥ दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥ ३२ ॥

मङ्गलरूपी वाक्य श्रवण करते श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन किये ॥२८॥ किसी महलमें हँसीकी बात कहकर श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीके सङ्ग हँस रहे हैं किसी महलमें अपने धर्मकी सेवा करते हैं और किसी महलमें अर्थ और कामका सम्पादन कर रहे हैं ॥ २९ ॥ किसी महलमें मायासे अतीत परब्रह्मका एकासनपर बैठे ध्यान कर रहे हैं और किसी महलमें काम, भोग, पूजन इत्यादिसे गुरुकी शुश्रूषा कर रहे हैं ॥ ३० ॥ किसी महलमें वियोग और किसीमें मिलापकी बातें कर रहे और किसी महलमें बलदेवजीके संग साधुओंके सुखार्थ यत्न कर रहे हैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ ३१ ॥ किसी महलमें पुत्रका समयपर सदृश स्त्रियोंको देखकर विवाह करते हैं और किसी महलमें

अपनी कन्याके समान वर देख द्रव्योंकरके विवाह करते हैं ॥ ३२ ॥ किसी महलमें कन्या और जमाईको विदा कर रहे हैं और किसी महलमें पुत्रोंको ससुराल भेजकर उनकी स्त्रियोंको बुलाते हैं, इस प्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोंका बड़ा उत्सव देख लोग आश्चर्यको प्राप्त हो गये ॥ ३३ ॥ किसी महलमें बड़े यज्ञोंसे अपनी कला देवताओंका पूजन कर रहे हैं और किसी महलमें अमुक रास्तेमें कुआं बनाओ, बाग लगाओ और नवीन मंदिर बनवाओ, इस प्रकार धर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने देखा ॥३४॥ किसी महलसे सिंधदेशके घोड़े पर चढ़ यादवोंको संग ले शिकार खेलनेको जा रहे हैं, वहां चित्र-विचित्र पशुओंको मारते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ ३५ ॥ किसी महलमें अपना रूप छिपाकर अन्तःपुरके भीतर गृहादिमें प्रजाका अभिप्राय जाननेके लिये विचरते

प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् ॥ वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥ यजन्तं सकलान् देवान् क्वापि क्रतुभिरूर्जितैः ॥ पूर्तयन्तं क्वचिद्धर्मं कूपाराममठादिभिः ॥ ३४ ॥ चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम् ॥ घ्नन्तं ततः पशून् मेध्यान् परीतं यदुपुङ्गवैः ॥३५॥ अव्यक्तलिङ्गं प्रकृतिष्वन्तः पुर गृहादिषु ॥ क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥ अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ॥ योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥ ३७ ॥ विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ॥ योगेश्वरात्मन् निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान् ॥ पर्यटामि तवोद्गायँल्लीलां भुवनपावनीम् ॥३९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताऽहं कर्ता तदनुमोदिता ॥ तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥

योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मनुष्यदेहको प्राप्त हुये श्रीकृष्णचन्द्रकी योग मायाका वैभव देख सम्पूर्ण लीला देखनेके उपरांत नारदजी हँसकर कहने लगे ॥ ३७ ॥ हे योगेश्वर ! आपके चरणारविंदोंकी सेवा करके मेरे मनमें प्रकाशमान आपकी योगमाया ही केवल हम जानते हैं और आपका सत्यरूप नहीं जानते ॥ ३८ ॥ हे देव ! आपके यशसे व्याप्त लोकमें सब लोकोंमें पवित्र करनेवाली आपकी लीला मैं गाता फिरूँ, यह आज्ञा आप मुझे दें, इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ३९ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं धर्मका कहनेवाला हूं और दूसरेको धर्म करता देखकर प्रशंसा करता हूँ; इस कारण सब लोकोंके सिखानेके लिये मैं कर्म

करता हूँ इसलिये हे अङ्ग ! तुम अपने मनमें खेद मत करो ॥४०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार गृहस्थ पुरुषोंके पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ धर्मके कर्त्ता अकेले श्रीकृष्णचंद्रको सब घरोंमें नारदजीने देखा ॥४१॥ अत्यन्त पराक्रम श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका बड़ा उदय वारंवार देखकर लीलापूर्वक ही नारदजीको बड़ा आश्चर्य प्राप्त हुआ ॥४२॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें श्रद्धासहित मन लगाये श्रीकृष्णचन्द्रसे भले प्रकार पूजित होकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रको मनमें स्मरण करते चले गये ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मनुष्योंका मार्ग चलनेवाले, सब जीवोंका कल्याण करनेके लिये अनेक मूर्ति धारण करनेवाले श्रीकृष्णचंद्र सोलह

श्रीशुक उवाच ॥ इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेधिनाम् ॥ तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥ कृष्णस्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ॥ मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥ ४२ ॥ इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ॥ सम्यक्सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४३ ॥ एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ॥ रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवराङ्गनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥ यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ॥ यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥४५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उ० कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनं नाम एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान् कूजतोऽशपन् ॥ गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

हजार श्रेष्ठ स्त्रियोंके बीचमे लाजभरी स्नेहकी चितवन हँसन इनसे सेवित होकर रमण करते थे ॥४४॥ हे परीक्षित् ! विश्व की प्रलय और उत्पत्तिके कारण हरि भगवान्के दूसरोंको अगम्य साधारण कर्म इस संसारमें जो पुरुष गावें अथवा सुनें या बड़ाई करें उन पुरुषोंको मोक्षके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ दोहा—सत्तरमें गोविंदको, भारी परो विचार । इतते आयो दूत इक, उत नारद अविकार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! स्वामियोंके गलेमें भुजा डाले हृदयसे चिपटाये श्रीकृष्णचन्द्रकी स्त्रियें प्रातःकालके समय

भा.द.उ. अरुण शिखाओंका (मुर्गोंका) शब्द सुन "श्रीकृष्णचन्द्र जाग उठेंगे" इस प्रकार जानकर विरहसे आतुर हो उन मुर्गोंसे क्रोधकर कहने लगीं
॥२४६॥ कि अरे अभागे ! तुम अभीसे बोलने लगे, श्रीकृष्णचंद्र प्रातःकाल जानकर कहीं उठ न बैठें ? ॥१॥ इसके उपरांत प्रातःसमय सब पक्षी
नींदको त्याग बोलने लगे, और कल्पवृक्षकी पवन सूँघकर भौंरे गुञ्जार करने लगे, उनके मनोहर शब्दकी ऐसी शोभा होती थी कि मानो
बन्दीजन श्रीकृष्णको जगा रहे हैं ॥ २ ॥ अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाओंके बीचमें प्राप्त हुई रुक्मिणीने आलिंगनका वियोग
देख अति सुन्दर प्रातःकालके समयको सहन न किया ॥ ३ ॥ प्रसन्न इंद्रिय मधुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्म मुहूर्त्त अर्थात् सूर्योदयसे

वयांस्यरूरुवन् कृष्णं बोधयन्तीव बन्दिनः ॥ गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥ २ ॥ मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ॥ परिरम्भणविश्लेषात प्रियबाह्वन्तरं गता ॥ ३ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ॥ दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥ एकं स्वयं ज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ॥ ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ॥ ५ ॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापे परिधाय वाससी ॥ चकार सन्ध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥ उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वाऽऽत्मनः कलाः ॥ देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥ धेनूनां रुक्मशृङ्गीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ॥ पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ८ ॥

दो तीन घड़ी पहले उठ जलका आचमन कर मायासे परे अपने स्वरूपका ध्यान करने लगे ॥ ४ ॥ कैसे स्वरूपका ध्यान किया सो
भा० टी० कहते हैंः—एक अखण्ड स्वयं ज्योतिस्वरूपका उपाधिरहित अविनाशी सर्वकाल अविद्यारहित ब्रह्म विश्वकी उत्पत्ति और नाशके कारण
अ० ७० अपनी शक्तिसे देखनेमें आवे सत्तामात्र आनन्दरूप ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसके उपरांत निर्मल जलमें स्नान कर धोती पहन श्रीकृष्णचन्द्र
सन्ध्योपासनादि कर्म और अग्निहोत्र कर मौन हो गायत्रीका जप करने लगे, फिर सूर्यनारायणको अर्घ्य दे अपने अंशके जो देवता,
ऋषि, पितृ थे उनका तर्पण करके ज्ञानवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्मणोंका पूजन करने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

सुवर्णसे सींग मढ़े अत्यन्त सूधी मोतियोंकी माला पड़ी दूध देनेवाली और एक ही बारकी ब्याई शोभायमान बछड़ों सहित सुन्दर वस्त्र उढ़ाकर ॥८॥ रूपेसे खुरोंके अग्रभाग मढ़े ऐसी तेरह हजार चौरासी १३०८४ गौ एक-एक महलमेंसे प्रतिदिन शोभायमान सत्पात्र ब्राह्मणोंको रेशमी वस्त्र, मृगछाला और तिलसहित दान करते थे ॥९॥ अपनी विभूति गो ब्राह्मण देवता और वृक्षोंको नमस्कार करके मंगल वस्तु कपिलादि गौ का स्पर्श करते थे ॥१०॥ और नरलोकका भूषणरूप अपने शरीरको वस्त्र और चन्दन इत्यादिसे शोभायमान करते थे ॥११॥ घीमें मुख देख व कांचन, गौ, वृषभ अथवा देव लोगोंका दर्शन कर पीछे नगरनिवासी व सब प्रजागणकी अभिलाषा सिद्ध कर फिर

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ॥ अलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वंबद्वं दिनेदिने ॥ ९ ॥ गोविप्रदेवतावृद्ध गुरून् भूतानि सर्वशः ॥ नमस्कृत्यात्मसंभूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥ आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ॥ वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥ अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः ॥ कामांश्च सर्ववर्णानां पौरान्तः पुरचारिणम् ॥ प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥ १२ ॥ स विभज्याग्रतो विप्रान् स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥ सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥ १३ ॥ तावत् सूत उपानीय स्यन्दनं परमाद्भुतम् ॥ सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणि सारथेस्तमथारुहत् ॥ सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥ १५ ॥ ईक्षितोऽन्तः पुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ॥ कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः ॥ १६ ॥

मन्त्री और प्रधानोंका मनोरथ पूर्ण व प्रसन्न कर उनका यथायोग्य आदर सत्कार करते थे, फिर कुछ और कार्यको देखते थे ॥ १२ ॥ पहले विप्र, फिर मित्र और कार्याधीश व स्त्रियें इनको पान पुष्प और अरगजा दे; सबसे पीछे उन वस्तुओंको आप अंगीकार करते थे ॥१३॥ हे राजन्! इतनेमें ही सारथीने सुग्रीवादि घोड़े जोत परम अद्भुत रथ ला प्रणाम करके सम्मुख खड़ा कर दिया ॥१४॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे रथवान्का हाथ पकड़ सात्यकी और उद्धवको संग ले जैसे सूर्यनारायण सुमेरु पर्वतके ऊपर चढ़ते हैं, उसी प्रकार रथमें चढ़ गये ॥१५॥ लाजभरी प्रेमकी चितवनसे अन्तःपुरकी स्त्रियोंके देखनेसे मुसकाते श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त कष्टसे उनको छोड़

और उनके मन हरकर बाहर निकले ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब घरोंसे अलग-अलग निकल, पीछे सब एकरूप हो सब यादवोंको साथ ले भगवान् वासुदेव सुधर्मा सभामें गये। हे राजन् ! उस सुधर्मा सभामें बैठे हुए पुरुषोंको क्षुधा, पिपासा, शीत, गर्मी, शोक और मोह इत्यादि बाधा नहीं व्यापती है * ॥१७॥ उस सभामें यादवोंसे वेष्टित व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासनपर बैठ अपनी कांतिसे सब दिशा-

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ॥ प्राविशद्यन्निविष्टानां न सन्त्यङ्ग षडूर्मयः ॥ १७ ॥ तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ॥ वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥ १८ ॥ तत्रोपमन्त्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् ॥ उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्ताण्डवैः पृथक् ॥ १९ ॥ मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ॥ ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवन्दिनः ॥ २० ॥

ओंको प्रकाशमान करने लगे, जैसे तारागणोंके बीचमें निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है उसी प्रकार यादवोंके बीचमें बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा होने लगी ॥१८॥ हे राजा परीक्षित् ! उस सभामें भाट अनेक प्रकारसे हँसीकी बातें कर श्रीकृष्णचन्द्रका सेवन करते थे और नटोंमें मुख्य और नृत्य करनेवाली स्त्रियें अलग ही अपने-अपने गवैयोंको संग ले सम्मुख खड़ी हुई थीं ॥१९॥ इसके उपरांत

* शंका—सुधर्मा सभामें बैठनेवाले जीवोंके हृदयमें काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर छः वैरी उत्पन्न नहीं होते थे, फिर श्रीकृष्णके हृदयमें वही छहों वैरी क्यों उत्पन्न हुए, जिन छः वैरियोंको ग्रहण करके श्रीकृष्णजीने बड़े बड़े दुष्टोंको मारा ! यह बड़ी शंका है।

उत्तर—तीन लोकमें इस लोकका काम तथा परलोकका काम बिना काम आदि छहों वैरियोंका सेवन किये, कभी भी सिद्ध नहीं होगा, इसलिये कामादिक छः शत्रुओंका सेवन अवश्य करना चाहिये, परंतु विचार करके सेवन करना, क्योंकि यह छः शत्रु सुंदर काममें भी हैं, सो सुंदर काममें छहोंको ग्रहण करना, जैसे सुन्दर कामकी इच्छामें लाभ इसी प्रकारसे जान लेना चाहिये, और बुरे काममें त्यागना चाहिये। सुधर्मा सभामें बुरे कामवाल छः शत्रु नहीं थे, सुन्दर कामवाले कामादिक छः वैरी थे, इसलिये सुन्दर कामोंके छहों वैरियोंको श्रीकृष्णचन्द्रने ग्रहण किया और बुरे कामवालोंको त्याग कर दिया, क्योंकि यह कामादिक छः वैरी सुन्दर कर्म में सुन्दर फल देते हैं, बुरे कर्ममें बुरा फल देते हैं, इसलिये कृष्णने सुधर्मा सभामें बैठकर छहों वैरियोंको ग्रहण करके दुष्टोंको जीता और मारा।

मृदंग, वीणा, मुरज, बांसुरी, झांझ, शंख इत्यादि बजाकर नृत्य करने लगे और सूत, मगध, बन्दीजन श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ उस समय कोई चतुर ब्राह्मण वेदकी ऋचा पढ़कर व्याख्या देने लगे और कोई-कोई ब्राह्मण पवित्र वंशवाले राजाओंकी कथा कहने लगे ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस समय एक अजान मनुष्य उस स्थानपर कहींसे आया, तब ड्योढ़ीवानोंने श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर खबर की, श्रीकृष्णने आज्ञा दी कि जाओ उसे लिवा लाओ, तब उस मनुष्यको सभाके भीतर पहुँचाया ॥२२॥ ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख उस पुरुषने हाथ जोड़ नमस्कार करके जरासन्धके कैद किये हुए बीस हजार आठ सौ राजाओंका

तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ॥ पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन्कथाः ॥ २१ ॥ तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ॥ विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ २२ ॥ स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ॥ राज्ञामावेदयद् दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥ ये च दिग्विजये तस्य सन्नतिं न ययुर्नृपाः ॥ प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥ २४ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभञ्जन ॥ वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥ २५ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ २६ ॥ लोके भवाञ्जगदिनः कलयाऽवतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ॥ कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥ २७ ॥

दुःख कहा ॥ २३ ॥ जब जरासन्धने दिग्विजय किया था उस समय जिन राजाओंने आकर भेंट नहीं दी थी इसलिए उन बीस हजार आठ सौ राजाओंको पकड़ गिरिव्रज नाम किलेमें कैद कर दिया है ॥२४॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे शरणागतका भय काटनेवाले ! इस संसारमें भयभीत तुमसे प्रेम करनेवाले हम आपकी शरण आये हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि ये लोग अतिशय पापकर्ममें लग रहे हैं, सो आपके बताये हुए कल्याणरूप पूजन सेवनरूप कर्ममें भूल रहे हैं। इस संसारमें जीनेकी आशा काटनेवाले सामर्थ्यवान् कालरूप आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! जगत्के ईश्वर आपने इस संसारमें साधु पुरुषोंकी रक्षा और दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देनेके लिये

अपने अंशसे अवतार धारण किया है और आपके विद्यमान रहते भी जरासन्ध सरीखा बलवान् तुम्हारी आज्ञाको नहीं मानता, आपकी रक्षामें रहे जीव अपने कर्मजनित दुःखोंको प्राप्त होते हैं वह किसलिये होते हैं सो हम नहीं जान सकते हैं ॥ २७ ॥ हे ईश ! यह राज्यके सम्बन्धका सुख विषयसाध्य है, इसीसे परतन्त्र है, इसी लिये यह सुख स्वप्नके समान है और यह शरीर भी सदैव भयसे युक्त मृतकके समान है परंतु तो भी हम इस शरीरसे केवल भार्या सन्तानादिकी चिंता करते रहते हैं, निष्काम भक्त जिस स्वतः सुखको आपसे प्राप्त होते हैं, उसे त्याग अत्यन्त कृपण बनें आपकी मायासे दुःख पाते हैं, क्योंकि पहले निष्काम हो आपके चरणोंकी शरण नहीं ली ॥२८॥ इसलिये दुःखी पुरुषोंका शोक हरनेवाले जिनके चरणकमल हैं, ऐसे आप हम बँधे हुओंको जरासन्धरूपी कर्मबन्धनसे छुड़ाओ ! दश

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ॥ हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥ २८ ॥ तन्नो भवान्प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मो बद्धान्वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ॥ यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको बिभ्रद् रुरोध भवने मृगराडिवाऽवीः ॥ २९ ॥ यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ॥ जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥ ३० ॥ दूत उवाच ॥ इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥३१॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ॥ बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥ ३२ ॥

हजार हाथियोंका बल धारण करनेवाले इस जरासन्धने सिंह जिस प्रकार भेड़ोंको घेर लेता है, उसी प्रकार अपने दुर्गमें हम राजाओंको रोक रखा है ॥२९॥ हे चक्रधर ! हे कृष्ण ! आपसे अठारह बार जरासन्धने संग्राम किया और सत्रह बार आपने हरा दिया, परंतु अठारहवीं बार संग्राममें आप मनुष्यलीला कर रण छोड़ गये, आपको यह एकबार जीत महागर्वको प्राप्त हुआ है, इसलिये आपकी प्रजा हमको बहुत दुःख दे रहा है, अब जो आप उचित समझो सो करो ॥३०॥ दूत बोला कि इस प्रकार जरासन्धके रोके आपके दर्शनकी अभिलाषा किये राजा लोग आपके चरणकमलकी शरण लिये हुए इन दीनोंका बहुत शीघ्र उद्धार करना चाहिए ॥ ३१ ॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार राजा-

ओंका दूत कह ही रहा था कि इतनेमें ही श्रेष्ठ कांतिवाले, पीली जटायें धारण किये श्रीमन्नारदजी सूर्यके समान वहां आकर प्रकट हुए ॥३२॥ सब लोकोंके महान् ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र नारदजीको आया देख अपने सभासदोंसहित शिर नवाकर प्रणाम करने लगे ॥३३॥ आसन पर विराजमान नारदजीका विधिपूर्वक सत्कार करके श्रद्धासहित मधुर-मधुर वचनोंसे भगवान् तृप्त करने लगे ॥३४॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि नारदजी ! त्रिलोकीमें कहीं भय तो नहीं है ? लोकोंमें तुम्हारे भ्रमण करनेसे बड़ा लाभ है, क्योंकि घर बैठे ही सब समाचार मिल जाते हैं ॥ ३५ ॥ ईश्वरके बनाये लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसको तुम न जानो, इसलिये हम तुमसे पूछते हैं कि पाण्डवोंकी क्या

तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥ ३३ ॥ सभाजयित्वा विधिवत् कृतासनपरिग्रहम् ॥ बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदद्य लोकानां त्रयाणा-मकुतोभयम् ॥ ननु भूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥ ३५ ॥ नहि तेऽविदितं किंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ॥ अथ पृच्छामहे युष्मान्पाण्डवानां चिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥ नारद उवाच ॥ दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः ॥ भूतेषु भूमंश्च रतः स्वशक्तिभिर्वह्नेरिवच्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः ॥ यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्य यः संसरतोऽविमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ॥ लीलावतारैः स्वयशः प्रदीपकं प्राज्वा-लयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥

करनेकी इच्छा है ? ॥३६॥ यह सुनकर नारदजीने कहा कि हे समर्थ ! आप अपनी मायासे ब्रह्माको भी मोहित करते हो और अपनी अचिन्तनीय शक्तिसे प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे रहनेपर भी काष्ठमें रहे अग्निके समान गुप्त प्रकाशवाले हो, आपकी माया मैंने कई बार अवलोकन की है इसलिये यह आपका चरित्र कुछ अद्भुत विदित नहीं होता ॥३७॥ यह संसार जो कि मिथ्या होनेपर भी आपकी मायासे विद्यमान प्रतीत होता है, इसके उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले आपके अभिप्रायको कौन पुरुष भलीभांतिसे जान सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं जान सकता, ऐसे अचिन्त्यस्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ जिन आपने बहुत प्रकार जन्म, मरण

पाते और विविध अनर्थकारक शरीरसे मुक्त होनेका उपाय न जाननेवाले जीवोंका अज्ञानरूपी अंधकारको मिटानेवाला अपना यशरूपी दीपक लीलासे अवतार प्रकट किया है, ऐसे आपकी शरण मैं प्राप्त हुआ हूँ ॥ ३९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मनुष्यके अनुकरण करनेवाले आपसे आपकी फूफी पुत्र भक्त राजा युधिष्ठिर जो कुछ करना चाहते हैं सो मैं कहकर सुनाता हूँ ॥ ४० ॥ पाण्डुका पुत्र चक्रवर्ती राज्य करनेकी इच्छा करनेवाले राजा युधिष्ठिर यज्ञराट् राजसूययज्ञ करके तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं यह आप अनुमोदन करो ॥४१॥ हे देव ! उस यज्ञमें तुम्हारा दर्शन करनेके लिये इन्द्रादिक देवता आवेंगे और बड़े-बड़े यशस्वी राजालोग तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे आवेंगे ॥ ४२ ॥ हे ईश्वर ! ब्रह्मरूप तुम्हारी कथाओंके श्रवण करनेसे और तुम्हारा ध्यान करनेसे चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं, और जो तुम्हारे दर्शन

अथाप्याश्रावये ब्रह्मन्नरलोकविडम्बनम् ॥ राज्ञः पैतृष्वसेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥ ४० ॥ यक्ष्यति
त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः ॥ पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥ ४१ ॥ तस्मिन्देव क्रतुवरे
भवन्तं वै सुरादयः ॥ दिदृक्षवः समेष्यन्ति राजानश्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात्पूयन्तेऽन्तेव-
सायिनः ॥ तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥ ४३ ॥ यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवन-
मङ्गलदिग्वितानम् ॥ मन्दाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो गंगेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम् ॥ ४४ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया ॥ वाचः पेशैः स्मयन्भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥ ४५ ॥

करनेसे ही पवित्र हो जायँ तो इसमें कहनेकी बात ही क्या है ? ॥४३॥ हे त्रिलोकीके मंगलरूप ! आपका निर्मल यश स्वर्ग, रसातल और सम्पूर्ण पृथ्वीमें फैल रहा है और दिशाओंको चँदोवेके समान शोभायमान कर रहा है। स्वर्गमें मंदाकिनीरूप, पातालमें भोगवतीरूप और इस संसारमें आपका चरणोदक गंगारूप होकर सब विश्वको पवित्र कर रहा है, इसलिये आपके चलते ही यज्ञमें बड़ा मंगल होगा ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार देवर्षि नारदने जब कहा तब उस सभामें अपनी ओरके यादवोंने जरासन्धके जीतनेकी इच्छासे जब यज्ञमें जानेकी अनुमति न दी, तब मनोहर वचनोंसे कुछेक मुसकाते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धव

जीसे बोले ॥४५॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि हे उद्धव ! तुम हमारे परममित्र और परमहितकारी हो और गुह्य बातोंके अभिप्रायको भलीभांति जानते हो, इस कारण इस विषयमें हमको क्या करना चाहिए ? सो कहो, उसको हम श्रद्धापूर्वक करेंगे ॥ ४६ ॥ सब बातके जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मानो कुछ नहीं जानते, इस कारण अनजानके समान जब पूछा, तब उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा शिरपर धारणकर बोले ॥४७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ दोहा—इकहत्तर उद्धव चतुर, हरिकी सम्मति मान। इन्द्रप्रस्थ गवने तुरत, पांडव बुद्धिनिधान ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार बड़ी बुद्धिवाले उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन और नारदजीकी सम्मति यज्ञमें जानेकी जान और सभामें बैठनेवाले

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ तथाऽत्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥ ४६ ॥ इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ॥ निदेशं शिरसाऽऽधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥ इति श्रीभा० महा० दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ॥ सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया ॥ कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥ यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ॥ अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥ अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति ॥ यशश्च तव गोविन्द राज्ञो बद्धान्विमुञ्चतः ॥ ४ ॥

यादवोंकी सम्मति राजाओंकी रक्षा करनेकी देख और श्रीकृष्णचन्द्रकी इच्छा दोनों कार्य करनेकी देख कर कहने लगे ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि हे प्रकाशमान श्रीकृष्ण ! देवर्षि नारदजीने जो कहा कि राजा युधिष्ठिर आपका पूजन करना चाहते हैं, सो उनकी भी सहायता करनी योग्य है और शरणागत राजाओंकी भी रक्षा करनी योग्य है ॥ २ ॥ हे समर्थ ! सम्पूर्ण दिशाओंके राजाओंका जीतनेवाला राजसूय यज्ञ करके पूजन होगा, इस कारण जरासन्धको भी अवश्य जीतना पड़ेगा; इसमें दोनों कार्य सिद्ध हो जायँगे, यज्ञ भी हो जायगा और शरणागत राजाओंकी रक्षा भी हो जायगी ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! यज्ञमें आप चलेंगे तो हमारे मनोरथ इसीसे सिद्ध हो जायँगे और

हे गोविन्द ! बँधे हुए राजाओंको जो छुड़ाओगे इसमें आपका बड़ा ही यश होगा ॥ ४ ॥ बड़ी चाहनासे जरासन्धके मारनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंको देखकर कहते हैं कि जरासन्धके समान बलवान् भीमसेनके विना दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाला जरासन्ध और राजाओंसे नहीं जीता जायगा, क्योंकि भीमसेनके हाथसे ही विधाताने उसकी मृत्यु रची है॥५॥द्वन्द्वयुद्धसे जरासन्ध जीता जायगा और सेनाको सङ्ग लेकर जो पुरुष उसके जीतनेकी आशा करे सो यह आशा कदापि फलवती न होगी। वह जरासन्ध ब्राह्मणोंका भक्त है, इस कारण भीमसेन ब्राह्मणका रूप धरकर जो उससे द्वन्द्वयुद्ध मांगे तो आशा है कि वह निषेध नहीं करेगा ॥ ६ ॥ वृक नामा अग्नि जिसके उदरमें रहे सो भीमसेन ब्राह्मणका वेष धारण कर जरासन्धसे युद्धकी भिक्षा मांगे कि तुम्हारे साथ मैं द्वन्द्वयुद्ध करूँगा, तुम निकट

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ॥ बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥ ५ ॥ द्वैरथे स जेतव्यो मा शताक्षौहणीयुतः ॥ ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥ ६ ॥ ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ॥ हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव सन्निधौ ॥ ७ ॥ निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ॥ हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥ गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ॥ गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥ ९ ॥

रहो तो भीमसेन जरासन्धको अवश्य मारेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ प्राकृत रूपरहित तुम ही तो उत्पन्न पालन और संहार करते हो, ब्रह्मा और महादेव तो नाममात्र हैं, इसलिए तुम ही पास रहकर जरासन्धका संहार करोगे, भीमसेनका तो केवल नाम ही होगा ॥८॥ बन्दी हुए राजाओंकी रानियें तुम्हारे निर्मल यशको गाती हैं और जब उनके बालक रोते हैं, तब वे कहती हैं कि हे पुत्र ! तुम किसलिये रोते हो ? जो कोई अनाथ हो वह रोवे, तुम्हारे शिरपर तो द्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र विद्यमान हैं, तुम मत रोओ, जैसे गोपी शङ्खचूड़का मारना और अपना छूटना गाती है और गजराजका छूटना व ग्राहकी मृत्यु गाती है और जनकनंदिनी जानकी का छूटना व रावणका मरना जैसे गाती हैं और माता पिताका छूटना, कंसका मारना शरणागत मुनि और हम भक्त गान करते हैं उसी प्रकार जरासंधका मरन॰

और अपने पतियोंका छूटना राजाओंकी स्त्रियें वारंवार गाती हैं ॥९॥ हे कृष्ण ! जरासन्धके मरनेसे बड़ा कार्य सिद्ध होगा और फिर यज्ञ हो यह आपकी इच्छा है ही, राजा युधिष्ठिरके पास जानेसे सब काम बन जायगा ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सब ओरसे मंगलरूप बड़ी युक्तिसहित उद्धवजीका वचन सुन नारदजी बड़ाई करने लगे, इसके उपरांत मुख्य यादव और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी प्रशंसा करने लगे ॥ ११ ॥ इसके पीछे देवकीनन्दन सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चलनेके लिये सेवक दारुक रथवान् और हाथियोंके महावत व वसुदेव इत्यादि यादवोंसे आज्ञा करने लगे ॥ १२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! पुत्र दासी, दास और सामग्रियों सहित प्रथम अपनी

जरासन्धवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ॥ प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धववचो राजन् सर्वतोभद्रमच्युतम् ॥ देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥ ११ ॥ अथादिशत् प्रयाणाय भगवान् देवकीसुतः ॥ भृत्यान् दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून् विभुः ॥ १२ ॥ निर्गमय्यावरोधान् स्वान् ससुतान् सपरिच्छदान् ॥ संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ॥ सूतोपनीतं स्वरथमारुहद् गरुडध्वजम् ॥ १३ ॥ ततो रथद्विपभटसादिनायकैः करालया परिवृत आत्मसेनया ॥ मृदङ्गभेर्यानकशंखगोमुखैः प्रघोषघोषितककुभो निराक्रमत् ॥ १४ ॥ नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः ॥ वराम्बराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥ १५ ॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनः करेणुभिः परिजनवारयोषितः ॥ स्वलङ्कृताः कटकुटिकम्बलाम्बराद्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥ १६ ॥

रानियोंको भेज बलराम और राजा उग्रसेनसे आज्ञा ले श्रीकृष्णचन्द्र सारथीके लाये हुए गरुड़ध्वज रथमें चढ़े ॥ १३ ॥ इसके उपरांत रथ, हाथी, प्यादे और महातीव्र सवारोंकी सेना ले मृदंग, भेरी, नगाड़े, शङ्ख और रणसिंहोंके शब्दसे शब्दायमान दिशामें से भगवान् निकले ॥ १४ ॥ सुन्दर वस्त्र, गहने और चन्दन, माला धारे, ढाल तलवार हाथमें लिये, दोनों ओर सिपाहियोंसे रक्षित रथ और पालकियोंमें बैठ, पतिव्रता कृष्णकी रानियें अपने पुत्रोंको साथ ले अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे चलीं ॥ १५ ॥ नौकरोंकी स्त्रियें और वेश्या शृंगार कर चटाइयोंके बने घर तथा कम्बल और बनातोंके डेरे तम्बू इत्यादि सब वस्तुको मनुष्य, ऊँट, भैंसे, गधे, खच्चर, गैंडें व हाथियों पर

लादकर चले ॥ १६ ॥ बड़े शब्दवाली सेना, बड़ी बड़ी ध्वजाओंके वस्त्र, छत्र, चामर और सुन्दर हथियार, पहने, किरीट इत्यादिकोंकी चमकसे और सूर्यकी किरणोंसे जैसे समुद्र क्षुभित हुए मत्स्यों और कलोलोंसे शोभायमान होता है उसी प्रकार शोभा देती थी ॥ १७ ॥ इसके उपरांत यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे सत्कार पाकर पूजा ले, श्रीकृष्णके दर्शनसे सुखी हो नारदमुनि श्रीकृष्णको प्रणाम कर उनके निश्चयको सुन और श्यामस्वरूपको हृदयमें धारण कर आकाशमार्गमें होकर चले गये ॥१८॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र दूतको प्रसन्न करनेके लिए बोले कि हे दूत ! तुम सब राजाओंसे जाकर कह दो कि किसी प्रकारका भय मत करो, क्योंकि मैं शीघ्र ही जरा-

बलं बृहद् ध्वजपटच्छत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ॥ दिवांऽशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथार्णवः क्षुभिततिमि-
ङ्गिलोर्मिभिः ॥१७॥ अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा ॥ निशम्य तद्व्यवसितमा-
हृतार्हणो मुकुन्दसंदर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥ १८ ॥ राजदूतमुवाचेदं भगवान् प्रीणयन् गिरा ॥'मा भैष्ट दूत भद्रं वो घात-
यिष्यामि मागधम् ॥१९॥ इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ॥ तेऽपि सन्दर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन्यन्मुमुक्षवः ॥
॥ २० ॥ आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः ॥ गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥ ततो दृषद्वतीं
तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम् ॥ पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्द-
र्शनं नृणाम् ॥ अजातशत्रुर्निरगात् सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥ २३ ॥ गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ अभ्य-
यात् स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवादृतः ॥ २४ ॥

सन्धको मार तुम्हारा कल्याण करूँगा ॥१९॥ जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा, तब दूत वहांसे चल राजाओंके पास आकर कहने लगा कि किसी प्रकारका भय मत करो, श्रीकृष्णचन्द्र आते हैं, तब वे छूटनेकी इच्छासे भगवान्के आनेका पैंड़ा देखने लगे ॥२०॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनर्त, सौवीर, मरुदेशको पीछे दे कुरुक्षेत्र, पर्वत, नदियें, पुर, गांव, ब्रज और खानोंके देशोंको लांघकर दृषद्वती व सरस्वतीके पार उतर पांचाल तथा मत्स्य देशको छोड़ इंद्रप्रस्थ पहुँचे ॥२१॥२२॥ मनुष्योंको जिनका दर्शन दुर्लभ है, ऐसे श्रीकृष्ण-चन्द्रका आगमन सुन प्रसन्न हो अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर उपाध्यायोंको सङ्ग ले पुरके बाहर निकले ॥ २३ ॥ गाते बजाते और भारी

वेदध्वनिके साथ राजा युधिष्ठिर जैसे आदर युक्त इंद्रके प्राण लेनेको आवें उसी प्रकार श्रीकृष्णके सम्मुख लिवानेको आये * ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके दर्शन कर आर्द्रहृदय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर बहुत दिनोंमें देख अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचंद्रको बारम्बार आलिङ्गन किया ॥ २५ ॥ लक्ष्मीके रहनेका निर्मल स्थान श्रीकृष्णचन्द्रके अङ्गको भुजाओंसे आलिंगन कर पाप रहित, प्रसन्नवदन, नेत्रोंमें अश्रुयुक्त सब लौकिक व्यवहार बिसार राजा युधिष्ठिर अत्यन्त सुख पाने लगे ॥२६॥ मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन कर प्रसन्न भीमसेन प्रेमके

दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः ॥ चिराद् दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः॥२५॥दोर्भ्यां परिष्वज्य रमाऽमलालय मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ॥ लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ २६ ॥ तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो भीमः स्मयन् प्रेमजवाकुलेन्द्रियः ॥ यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७ ॥ अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ २८ ॥ मानितो मानयामास कुरुसृञ्जयकैकयान् ॥ सूतमागधगन्धर्वान् वंदिनश्चोपमन्त्रिणः ॥ २९ ॥

वेगसे आकुल इंद्रिय हो गया, इसके उपरांत बड़े बड़े नेत्रोंमें आंसू भरे नकुल, सहदेव और किरीटधारी अर्जुन यह सब अत्यन्त हितकारी श्रीकृष्णचंद्रको आनन्दपूर्वक आलिंगन करने लगे ॥२७॥ हे राजन् अर्जुन बराबरका होनेके कारण श्रीकृष्णको छातीसे लगाकर मिले और नकुल सहदेवने नमस्कार किया, पीछे यथायोग्य ब्राह्मण और वृद्धोंको नमस्कार करके ॥ २८ ॥ मानने योग्य कुरुदेश और सृंजय

---

* शंका—हस्तिनापुरमें श्रीकृष्णका और पांडवोंका मिलाप हुआ, तब उस समय शूद्र, अन्त्यज, चर्मकार आदि और सब नीच जाति तथा म्लेच्छ तमासा देखने के लिये तथा अनेक प्रकारके सांसारिक काम करनेके लिये उस सेनामें रहते थे, उन सबको सुना कर ब्राह्मणों ने ब्रह्म अर्थात् वेदोच्चारण क्यों किया ?

उत्तर—वेदको श्रवण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके सिवाय दूसरेको नहीं करना चाहिये, परंतु वेदका पाठ कोई भी नहीं उस समय सुनता था, क्योंकि जब श्रीकृष्णचन्द्र और पांडवोंका मिलाप हुआ तब मनुष्योंका परस्पर ऐसा शब्द होने लगा कि उस कुलाहलमें तोपका शब्द तो किसीको सुनायी ही नहीं पड़ता था तब वेदपाठ कैसे लोगों को सुनायी दे ? किसीको भी कुछ सुनायी नहीं पड़ा, इसलिये ब्राह्मणोंने वेदपाठ किया ।

देशके राजा और सूत, मागध, गंधर्व, भाट, बन्दीजनोंका सत्कार करने लगे ॥२९॥ मृदंग, शंख, ढोल, वीणा नगाड़े, बांसुरी इनको बजाकर ब्राह्मण स्तुति करने लगे और नाचने लगे ॥ ३० ॥ इस प्रकार सुहृदोंको संग ले पुण्ययश युधिष्ठिरादिकोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सबसे स्तुति और सत्कार पाकर शोभायमान राजा युधिष्ठिरके पुरमें प्रवेश किया ॥३१॥ हाथियोंके मद और सुगन्धयुक्त जलसे जिनमें छिड़काव हो रहा ऐसे मार्ग और चित्रविचित्र ध्वजाओंसे सुवर्णके तोरण और जलसे पूर्ण कलश तथा नवीन वस्त्र, गहने, माला, केशर,अतर, अरगजा लगाये स्त्री पुरुषोंसे शोभायमान कौरवोंके राजा युधिष्ठिरको देखा ॥३२॥ कैसा महल है कि जहां प्रकाशमान

मृदङ्गशंखपटहवीणापणवगोमुखैः ॥ ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥ ३० ॥ एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ॥ संस्तूयमानो भगवान्विवेशालङ्कृतं पुरम् ॥ ३१ ॥ संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः ॥ मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥ ३२ ॥ उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्मजालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् ॥ मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥ ३३ ॥ प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः ॥ सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ॥ ३४ ॥ तस्मिन्सुसंकुल इभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ॥ नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥

दीपकोंकी पंक्ति और महलके झरोखोंमेंसे निकली धूपकी सुगन्धसे शोभायमान हो रहा है और प्रकाशमान पताका तथा रूपेके शिखरोंके ऊपर सुवर्णके कलश संयुक्त कौरवराज युधिष्ठिरके महल देखे ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके नेत्रोंका सौन्दर्यरूपी अमृत पीनेके पात्र श्रीकृष्णचन्द्रको आया श्रवण कर उत्कण्ठासे जिनके केश और वस्त्रोंके बन्धन ढीले हो गये, वे स्त्रियें घरोंके कार्योंको शीघ्र त्याग और शय्याओंके ऊपर पतियोंको त्याग देखनेके लिए राजमार्ग बाजारमें आयीं ॥३४॥ हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी भीड़से युक्त राजमार्गमें रानी सहित श्रीकृष्णचन्द्रको देख कोठोंके ऊपर चढ़ी स्त्रियें फूल वर्षाकर मनसे आलिंगन कर मुसकानपूर्वक चितवनसे देखकर "भले आये" इस प्रकार कहने

लगीं ॥३५॥ जैसे चन्द्रमा सहित तारागण, उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंको मार्गमें देख "इन रानियोंने क्या पुण्य किया है, जिनके नेत्रोंको पुरुषोंमें मुकुट समान श्रीकृष्णचन्द्र उदारहास्य लीलापूर्वक अवलोकनकी कलासे आनन्द देते हैं" इस प्रकार सब स्त्रियें कहने लगीं ॥३६॥ पापरहित पुरवासी पान, सुपारी, बतासे और नारियल इन सब मंगल वस्तुओंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करने लगे ॥ ३७ ॥ प्रफुल्लित नेत्र खुशीके मारे घबराहटसे अन्तःपुरके वासियोंने प्रीतिपूर्वक सम्मुख आकर जब सत्कार किया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र राजाके मन्दिरमें चले गये ॥३८॥ त्रिलोकीके ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णचन्द्रको देख प्रसन्नमन कुन्ती अपनी बहू द्रौपदी

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यभूमिः ॥ यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोककलयोत्सवमातनोति ॥ ३६ ॥ तत्रतत्रोपसंगम्य पौरा मङ्गलपाणयः ॥ चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३७ ॥ अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः ॥ ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमन्दिरम् ॥ ३८ ॥ पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥ ३९ ॥ गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः ॥ पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ४० ॥ पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ॥ स्वयं च कृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवन्दितः ॥ ४१ ॥ श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ॥ आनर्च रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा ॥ ४२ ॥ कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैव्यां नाग्नजितीं सतीम् ॥ अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासः स्रङ्मण्डनादिभिः ॥ ४३ ॥

सहित पलँगपरसे उठकर श्रीकृष्णचन्द्रसे मिली ॥ ३९ ॥ देवोंके देव और ब्रह्मादिकोंके ईश्वर गोविंद श्रीकृष्णचन्द्रजीको घरमें ला आनन्दसे सुधि बिसार राजा युधिष्ठिर पूजा करनेकी विधि भी भूल गये ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! द्रौपदी और बहन सुभद्राके प्रणाम करने पर श्रीकृष्णचन्द्रने पिता वसुदेवकी बहन कुन्ती, और बड़े पुरुषोंकी स्त्रियोंको प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ सास कुन्तीकी आज्ञा पाकर द्रौपदी संपूर्ण श्रीकृष्णचंद्रकी रानी रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती इत्यादिकोंका पूजन करने लगी ॥४२॥ तथा कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा और पतिव्रता नाग्नजिती इनकी और अन्य जो सङ्ग आयी थीं उनकी वस्त्र, माला, अतर, अरगजा

चन्दन, इत्यादिकोंसे पूजा करने लगीं ॥४३॥ धर्मराज राजा युधिष्ठिर भी सेना सहित मंत्री तथा सेवक और रानियों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको नित्यप्रति नये सुखमें रखने लगे ॥४४॥ जब अर्जुन सहित श्रीकृष्णचन्द्र खांडववनसे अग्निको तृप्त करके मयनामा दैत्यको बचाया था, तब उसने राजायुधिष्ठिरको दिव्य सभा बनाकर अर्पण की थी ॥ ४५ ॥ रथमें बैठे अर्जुन तथा योद्धाओंको सङ्ग ले विहार करते श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिए कितने ही दिनतक इन्द्रप्रस्थमें रहे ॥४६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥ दोहा–जरासन्धकी विजय लखि, कृष्ण बहत्तर अंक । भीमसेनको सैन दे, करवाये

सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ॥ ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥ ४४ ॥ तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ॥ मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥४६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु सभामध्ये आस्थितोः मुनिभिर्वृतः ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥ शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥२॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ क्रतुराजेन गोविंदराजसूयेन पावनीः ॥ यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्सम्पादय नः प्रभो ॥ ३ ॥ त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति ॥ विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥

द्वै फंक॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत परीक्षित् ! एक समय मुनीश्वर, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भाई, आचार्य और कुलमें वृद्ध तथा जातिके सम्बन्धी बांधव इन सहित सभामें बैठे हुए राजा युधिष्ठिर इन सबके सुनते हुए हे श्रीकृष्ण ! हे भक्तवत्सल ! इस प्रकार सम्बोधन देकर बोले ॥ १ ॥ २ ॥ कि हे समर्थ ! यज्ञोंका राजा राजसूय यज्ञ करके मैं पवित्र कर्मवाले आपका पूजन करूँगा, इस कारण आप इस कार्यको सिद्ध करो ॥३॥ अभद्रके नाश करनेवाली आपकी चरणपादुकाका जो पुरुष सेवन, ध्यान और पवित्र होकर वाणीसे नाम लेते हैं, हे कमलनाभ ! वही पुरुष संसारसे छूट जाते हैं और जो चाहना करते हैं, वह मनोरथ भी उनके सिद्ध हो जाते हैं और कैसा ही चकवर्ती

क्यों न हो विना भक्तिके कुछ नहीं होता ॥४॥ इस कारण हे देवदेव ! यह लोग इस संसारमें आपके चरणारविन्दकी सेवाके प्रभावको देखें, हे समर्थ ! कितने ही कुरु व सृञ्जयवंशी लोग, जो कि कर्मादिकको प्रधान मानकर आपकी भक्तिको उत्तम नहीं समझते, उनका अज्ञान दूर करनेको जो आपका भजन करते हैं और जो नहीं करते उन दोनोंकी स्थिति दिखाओ ॥ ५ ॥ सबके आत्मा, समदर्शी, आत्मसुख, अनुभवरूप ब्रह्म आप हो, आपको अपना बिराना यह भेदबुद्धि कुछ नहीं है, जैसे कल्पवृक्षका जो सेवन करे उसीको फल प्राप्त हो उसी प्रकार जो आपका सेवन करे तो उसीपर आप प्रसन्न हो जाते हो. जो जैसी सेवा करे उसे वैसा ही फल देते हो , इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥६॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजा युधिष्टिर ! हे शत्रुनाशक ! तुमने यह भला निश्चय किया है, क्योंकि इस यज्ञके करनेसे सब लोगोंमें

तद्देवदेव भवतश्चरणारविन्दसेवाऽनुभावमिह पश्यतु लोक एषः ॥ ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ५ ॥ न ब्राह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ॥ संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग् व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शिन ॥ कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥७॥ ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ॥ सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥ विजित्य नृपतीन् सर्वान् कृत्वा च जगतीं वशे ॥ संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥ एते ते भ्रातरो राजन् लोकपालांशसम्भवाः ॥ जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥ ॥ १० ॥ न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ॥ विभूतिभिर्वाऽभिभवेद् देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥

तुम्हारी मंगलरूप कीर्ति फैलेगी ॥७॥ हे समर्थ राजा युधिष्टिर ! यह सम्पूर्ण यज्ञोंका राजा राजसूय यज्ञ तुमने करना विचारा है, सो ऋषीश्वर और पितृ तथा देवता और सुहृद तथा हम और समस्त प्राणियोंको प्यारा है॥८॥ संम्पूर्ण राजाओंको जीत और संम्पूर्ण पृथ्वीको वशमें कर और सब सामग्रियें इकट्ठी करके तुम इस यज्ञ को करो ॥९॥ हे राजा युधिष्टिर ! यह तुम्हारे भाई लोकोंका पालन करनेवाले देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं और जिनको अजितेन्द्रिय पुरुष कभी वशमें नहीं कर सकते, तुम्हारे जितेन्द्रियपनसे तुम्हारे वशमें हूँ इसलिये शीघ्र ही यज्ञ पूर्ण होगा ॥१०॥ मेरे आश्रयवाले पुरुषोंको लोकमें तेज, वैभव, सेनासे कोई देवता भी पराभव नहीं कर सकते हैं, तो राजा क्या कर

सकते हैं ? ॥११॥ श्रीशुकदेवजीसे मुनि बोले कि हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन प्रसन्नतासे प्रफुल्लितवदन राजा युधिष्ठिरने भगवान्के तेजसे बढ़े हुए अपने भ्राताओंको दिशाओंके जीतनेको भेजा ॥१२॥ सृञ्जय देशके राजाओंको संग करके दक्षिण देशके राजाओं को जीतने के लिये सहदेवको आज्ञा दी । हे परीक्षित् ! सहदेव, अर्जुन, नकुल, और भीमसेनने संम्पूर्ण दिशाओंके राजाओंको बलपूर्वक जीत यज्ञ करने की इच्छावाले अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको बहुत द्रव्य लाकर दिया ॥१३॥१४॥ सब दिशाओं के राजा तो जीते गये परन्तु पूर्व दिशाका राजा जरासन्ध जीतनेमें नहीं आया, इस बातको श्रवण कर अत्यन्त चिन्ताको प्राप्त हुए राजा युधिष्ठिरसे जो उपाय उद्धवजीने

श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः ॥ भ्रातॄन् दिग्विजयेऽयुङ्क्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥१२॥ सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सह सृञ्जयैः ॥ दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ॥ प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ॥१३॥ ते विजित्य नृपान् वीरा आजह्रुर्दिग्भ्य ओजसा ॥ अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥ १४ ॥ श्रुत्वाऽजितं जरासन्धं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ॥ आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥ १५ ॥ भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिङ्गधरास्त्रयः ॥ जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥ ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ॥ ब्रह्मण्यं समयाचेरन् राजन्या ब्रह्मलिंगिनः ॥ १७ ॥ राजन् विद्ध्यतिथीन् प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ॥ तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद् वयं कामयामहे ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णको बताया था, वही उपाय श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥ हे राजन् ! तब तो भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र तीनों ब्राह्मणका वेष धारण कर जहां बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध गिरिव्रजनाम किलेमें रहता था वहां गये ॥१६॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये इन क्षत्रियोंने भिक्षुकोंके आनेके समय ब्रह्मभक्त गृहस्थ घरमें स्थित राजा जरासन्धसे भिक्षा की प्रार्थना की ॥१७॥ कि हे राजा जरासन्ध! हम बहुत दूरसे अतिथि आये हैं सो तुम जानो और जिस वस्तुकी हम चाहना करते हैं वह वस्तु हमको दो, जिसमें तुम्हारा कल्याण * होगा ॥१८॥

* शंका—श्रीकृष्णने ब्राह्मणका रूप धारणकर जरासन्धसे कहा कि हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण होगा फिर उसी समय में युद्धकर कुछ दिन पीछे अमंगलरूप मरणको क्यों प्राप्त हुआ । जब भगवान्ने अपने मुखसे मंगल होना कहा फिर वह एक महीने भी जीता न रहा यह कैसा मंगल ?

उत्तर—शूरवीर योद्धा युद्धमें मरनेको अशुभ और अमंगल नहीं समझते, युद्धमें मरणको ही अपना बड़ा कल्याण मानते हैं, इसलिये श्री कृष्णके वाक्य के प्रमाणसे युद्धमें मरणरूप कल्याण जरासन्धको प्राप्त हो गया ।

सहनशील पुरुष क्या नहीं कर सकते हैं और देवताओंको कौन वस्तु देने योग्य नहीं है और समदर्शियोंका कौन दूसरा शत्रु है ? इसलिये नाम लेनेसे क्या प्रयोजन ? जो मांगे सो दो ॥ १९ ॥ साधुओंसे गाने योग्य नित्य यशको जो पुरुष अनित्य देहसे आप समर्थ होकर नहीं करे, वह पुरुष निन्दा और शोच करने योग्य है ॥२०॥ राजा हरिश्चन्द्र तथा रंतिदेव और मुद्गल ऋषि, राजा शिबि तथा बलि आदि अनेक महात्मा अनित्य देहसे ध्रुव यशको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जरासन्ध कर्कश बोलना और स्वरूप तथा धनुषके प्रत्यंचाके गड्ढेके चिह्नवाले पहुँचोंको देखकर यह "क्षत्रियोंमें नीच हैं" यह जानकर द्रौपदीके स्वयंवरमें मैंने

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ॥ किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥ योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ॥ नाचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥२०॥ हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः ॥ व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥२१॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ॥ राजन्यबन्धून् विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत ॥ २२ ॥ राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिंगानि बिभ्रति ॥ ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥२३॥ बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्वितता दिक्ष्वकल्मषा ॥ ऐश्वर्याद् भ्रंशित-स्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥ श्रियं जिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ॥ जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमा-णोऽपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीविता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबंधुना ॥ देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥ २६ ॥

पहले देखे हैं, यह विचार करने लगा ॥ २२ ॥ यद्यपि ये क्षत्रियोंमें नीच हैं, परंतु तो भी ब्राह्मणोंका वेष धारण किया है, इसलिये अदेय अपनी आत्मा भी यदि यह मांगे तो इनको भिक्षा दूँगा ॥२३॥ विष्णु भगवान्‌ने ब्राह्मणका स्वरूप वामन अवतारमें धर दैत्यराज बलिका ऐश्वर्य भ्रष्ट किया, परंतु उसकी निर्मल कीर्ति पृथ्वीपर अबतक श्रवणगोचर होती हैं ॥ २४ ॥ देवराज इन्द्रकी शोभा हरनेके लिए ब्राह्मणका रूप धरके आये हुए विष्णु भगवान्‌को यद्यपि जानता भी था, कि मेरे छलनेके लिए आये हैं और शुक्राचार्यने मने भी किया, परंतु तो भी दैत्योंके राजा बलिने वामनजीको पृथ्वीका दान दिया ॥ २५ ॥ एक दिन तो अवश्य ही यह देह पतित होगा, फिर जीवित ही क्षत्रियके

भा. द. उ. ॥२६८॥

देहसे ब्राह्मणके लिए निर्मल यशको न करें तो इस देहसे प्रयोजन ही क्या है? ॥ २६ ॥ इस प्रकार निश्चय करके उदारबुद्धि जरासन्ध श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहने लगा कि हे ब्राह्मणो! जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो, तब श्रीकृष्णचन्द्र फिर पक्की करते हैं, कि हे राजन्! हम जो मांगेंगे सो दोगे? तब जरासन्ध बोला कि वारंवार क्यों कहते हो? यदि आपको मेरे शिरकी भी आवश्यकता होगी, तो वह भी काटकर समर्पण करूँगा ॥२७॥ तब तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे राजाओंके इन्द्र राजन् जरासन्ध! यदि तुम्हारे मनमें आवे तो द्वन्द्वयुद्ध हमको दो और युद्धके लिये ही हम क्षत्रिय तुम्हारे पास आये हैं, अन्नके लेनेवाले हम ब्राह्मण नहीं हैं ॥२८॥ तब जरासन्धने पूछा तुम कौन हो? यह सुन श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि वृकनामा अग्नि जिसके उदरमें रहती है ऐसा यह भीमसेन है इसका भाई

इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ॥ हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे ॥ युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकाङ्क्षिणः ॥२८॥ असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम् ॥ अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥ २९ ॥ एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः ॥ आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥ ३० ॥ न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा ॥ मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥ ३१ ॥ अयं तु वयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ॥ अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमतुल्यबलो मम ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ॥ द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥ ३३ ॥

भा० टी० अ० ७२

यह अर्जुन है और इनके मामाका पुत्र तेरा पहला वैरी मैं कृष्ण हूँ, सो मुझे तो तुम भलीभांति जानते होगे ॥ २९ ॥ इस प्रकार सुनकर मगधदेशका राजा जरासन्ध बहुत हँसा। इसके उपरांत क्रोधमें भरकर हे मूर्खो! मैं तुमको युद्ध दूँगा, इस प्रकार कहने लगा ॥३०॥ अरे डरपोक कृष्ण! व्याकुलचित्त तेरे सङ्ग मैं युद्ध नहीं करूँगा, क्योंकि मेरे डरसे तो तू प्रथम ही मथुरापुरीको त्याग समुद्रमें जाकर बसा है ॥३१॥ अर्जुन मुझसे युद्धमें न्यून है और न मेरे समान बलवान् है, इसलिए अर्जुन योद्धा नहीं है। हां, भीमसेन कुछेक मेरे समान बलवान् है, इसके संग युद्ध करूंगा ॥३२॥ इतनी बात कह जरासंध भीमसेनको बड़ी गदा दे और आप दूसरी गदा लेकर पुरके बाहर निकला ॥३३॥

इसके उपरांत हे परीक्षित्! बड़ा मदवाला भीमसेन और जरासन्ध परस्पर मिलकर रणभूमिमें वज्रके समान गदाका प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥ रंगभूमिमें प्राप्त हुए नटोंके समान बायें दायें विचित्र मण्डलमें फिरते इन दोनोंका युद्ध अत्यन्त शोभायमान लगने लगा ॥३५॥ हे महाराज परीक्षित् ! दांतवाले हाथियोंका जैसा शब्द होता है उसी प्रकार इन दोनों वीरोंके गदा चलानेका वज्र जैसे पिसे ऐसे ही शब्द होने लगा ॥ ३६ ॥ युद्ध करनेसे बढ़ा है क्रोध जिनका ऐसे हाथियोंकी लड़ाईमें आकड़ी जैसे चूर्ण हो जाती है, उसी प्रकार भुजाओंके वेगसे आपसमें बड़ा क्रोध कर लड़नेवाले हाथियोंके शरीर पर पछाड़कर जैसे आककी गुद्दियां टूट जाती हैं उसी

ततः समे खले वीरौ संयुक्ता वितरेतरौ ॥ जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥ मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ॥ चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रंगिणोः ॥ ३५ ॥ ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः ॥ गदयोः क्षिप्तयो राजन् दन्तयोरिव दन्तिनोः ॥ ३६ ॥ ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योऽन्यतोंऽसकटिपादकरोरुजत्रून् ॥ चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथाऽर्कशाखे संयुध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्य्वोः ॥ ३७ ॥ इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयः स्पर्शैरपिष्टाम् ॥ शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥ ३८ ॥ तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ॥ निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥ एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ॥ दिनानि निरगंस्तत्र सुहृदन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४० ॥

प्रकार बाहोंके वेगसे चलायमान गदा कन्धा, कमर, पांव, हाथ, जंघा इनसे लगकर चूर्ण हो गयीं ॥३७॥ इस प्रकार जब दोनों वीरोंकी गदा टूट गयीं, तब क्रोधी मनुष्योंमें वीर भीमसेन और जरासन्ध लोहेके समान स्पर्शवाले घूसोंकी मार शरीरमें मारने लगे, हाथियोंके समान आपसमें मारते जरासन्ध व भीमसेनके प्रहारसे उठा शब्द जैसे विना बादल वज्रपातका शब्द होता है, उसी प्रकार कठोर शब्द होने लगा ॥ ३८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! नहीं घटा है बल जिनका और बराबर है दांव, पेच, बल, प्रभाव जिनका इसी प्रकार घूंसोंकी मारसे भीमसेन और जरासन्धका बराबर युद्ध होने लगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! इस प्रकार दिनमें तो युद्ध करें और रातकों

मित्रके समान एक स्थान पर रहें ऐसे जरासन्ध और भीमसेन दोनों वीरोंको युद्ध करते सत्ताइस दिन बीत गये ॥ ४० ॥ हे राजा परीक्षित् ! एक समय मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रसे भीमसेनने कहा कि हे माधव ! युद्धमें जरासन्धको मैं नहीं जीत सकता ॥ ४१ ॥ यह बात भीमसेनकी सुनकर "जरासन्धका दो भाग होकर जन्म हुआ है और उन दो खण्डोंको जरा नाम राक्षसीने जोड़ दिया है, इस कारण यह दो खण्ड होनेसे ही मरेगा" इस बातके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने भीमसेनको अपने तेजसे बढ़ाया और जरासन्धके चीरनेका विचार किया ॥४२॥ सफलज्ञान श्रीकृष्णचन्द्र वैरी जरासन्धके मारनेका चिंतवन कर तिनुका चीरकर भीमसेनको सैनसे जताया, कि जैसे मैंने

एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः ॥ न शक्तोऽहं जरासन्धं निर्जेतुं युधि माधव ॥ ४१ ॥ शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितं च जराकृतम् ॥ पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाऽचिन्तयद् हरिः ॥ ४२ ॥ सञ्चिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ॥ दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥४३॥ तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः ॥ गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४४ ॥ एकं पादं पदाऽऽक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः ॥ गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥४५॥ एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ॥ एक बाह्वक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥ ४६ ॥ हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ॥ पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥ ४७ ॥

तिनुका चीरा उसी प्रकार तू इसको चीर डालो ॥ ४३ ॥ मारनेवालोंमें श्रेष्ठ महाबलवान् भीमसेन श्रीकृष्णचन्द्रके संकेतको जान वैरी जरासन्धका पांव पकड़कर पृथ्वीमें पटक दिया ॥४४॥ हे महाराज ! जैसे बड़ा हाथी वृक्षकी शाखाको पकड़कर चीर डालता है, उसी प्रकार अपने पांवसे उसके एक पांवको दाब और दूसरे पांवको भुजाओंसे पकड़ गुदाके बीचसे चीर डाला ॥४५॥ एक एक पांव जंघा, अण्डकोष कमर, पीठ, स्तन, कंधा, एक एक भ्रुकुटी और कान ऐसे दो खण्ड कियेसब प्रजाने देखा ॥४६॥ मगध देशका राजा जरासन्ध जिस समय मारा गया, उस समय महा हाहाकार शब्द होने लगा, इसके पीछे अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र भीमसेनका आलिंगन करके पूजा करने लगे ॥४७॥

अप्रमेयस्वरूप समर्थ, सब प्राणियोंके पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगधदेशका राज्यतिलक दिया, इसके उपरांत जरासन्धने जो बीस हजार आठसौ राजाओंको बन्दी कर लिया था उन्हें भी वंदीखानेसे छुड़ा दिया ॥४८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां जरासन्धवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥ दोहा–तेहत्तर हरि बन्दिसे, सब नृप दिये, छुड़ाय । भोग्य योग्य बहु वस्तु दे, दिये घरन पहुँचाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! मलिनरूप क्षुधासे कृश, सूखे मुख ऐसे बीसहजार आठसौ राजा जो गिरिद्रोणी नाम दुर्गमें कैद थे उन्हें लीलापूर्वक ही छुड़ा दिया, तब उन सब राजाओंने बन्दीखानेसे बाहर निकलकर मेघके समान श्यामरूप, पीले वस्त्र धारण किये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा॥१॥२॥ अब जैसे स्वरूपसे श्रीकृष्ण-

सहदेवं तत्तनयं भगवान् भूतभावनः ॥ अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ॥ मोचयामास राजन्यान् संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे जरासन्धवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ॥ ७२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ॥ ते निर्गता गिरिद्रोण्या मलिना मलवाससः ॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ॥ ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशंखरथाङ्गैरुपलक्षितम् ॥ किरीटहारकटककटिसूत्राङ्गदाचितम् ॥ ४ ॥ भ्राजद्वरमणिग्रीवं विनीतं वनमालया ॥ पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥५॥ जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभिः । प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥

चन्द्रका दर्शन किया सो वर्णन करते हैं, तुम श्रवण करोः–हृदयमें शोभायमान भृगुलताका चिह्न, चार भुजा और कमलके गर्भके समान अरुणनेत्र, सुन्दर प्रसन्न मुख और प्रकाशमान मकराकृत कुण्डल धारण किये, कमल हाथमें लिये विराजमान्, शंख, चक्र, गदा धारण किये और किरीट, हार, कड़ा, करधनी व बाजूबन्द पहने ॥३॥४॥ प्रकाशमान सुन्दर मणि ग्रीवामें धारण किये तथा गलेसे पांवतक वनमालासे शोभायमान इस प्रकार रूपको देखकर राजाओंमें लूटसी पड़ गयी और नेत्रोंको ऐसे चलाने लगे, मानो रूपको पी जायँगे॥५॥ जीभ ऐसी चलाते हैं मानों चाट जायँगे, नाक ऐसी फुलाते हैं, मानों सूँघ जायँगे, भुजा ऐसे चलाते हैं मानो स्वरूपको आलिंगन कर लेंगे इस प्रकार पाप दूर होनेसे वे राजा मस्तक झुकाकर भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम करने लगे ॥ ६ ॥

हे राजन्! इन राजा लोगोंके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण बन्दीखानेके सब क्लेश मिट गये, तब ये सब राजा हाथ जोड़ हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर वाणीसे स्तुति करने लगे॥७॥राजा लोग कहने लगेकि हे देव-देव हे शरणागतका कष्ट हरनेवाले। हे अविनाशी। हे कृष्ण। इस घोर संसारसे दुःखी हुए और आपकी शरणमें आये हुए हमारी रक्षा करो॥८॥हे नाथ। हे मधुसूदन! हम लोग जरासंध को दोष नहीं लगाते, क्योंकि हे प्रभो! राजाओंका जो राज्य भ्रष्ट हो जाय तो वह आपका अनुग्रह समझना चाहिए, क्योंकि राज्य सम्बंधी ऐश्वर्यसे

कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ॥ प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयो नृपाः ॥ ७ ॥ राजान उचुः ।* नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ॥ प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान् घोरसंसृतेः ॥ ८ ॥ नैनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन ॥ अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥९॥ राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः ॥ त्वन्माया मोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः ॥१०॥ मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम् ॥ एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥ ११ ॥ वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयाऽस्या इतरेतरस्पृधः ॥ घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाऽविगणय्य दुर्मदाः ॥१२॥ त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रिया ॥ कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥ १३ ॥

मदमत्त राजा आपकी मायासे मोहित होकर अनित्य पदार्थोंको स्थिर मानते हैं, और इसीसे कल्याणको प्राप्त नहीं मानते॥९॥१०॥जैसे अज्ञानीपुरुष सूर्यकी किरणोंसे चमकते हुए बालूके जलको सरोवर मानते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष नानासृष्टि असद्रूपी जो माया है, उसको सत्य मानते हैं ॥११॥ हे समर्थ। हम लक्ष्मीके मदसे अन्धे होकर इस पृथ्वीके जीतनेकी इच्छासे परस्पर द्वेष करते हुए मृत्युके समान शिरपर खड़े कालरूप आपको नहीं गिनते थे और मदसे उन्मत्त हो निर्दयीपनसे अपनी प्रजाको महाकष्ट देते थे ॥१२॥ हे कृष्ण। गंभीर वेग और बड़े पराक्रमवाली

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धका वध करके बीस सहस्र २०००० राजाओंको कारागारसे छुटाया तो सब राजा भगवान्को हे कृष्ण ! कहकर क्यों पुकारे ! जैसे कोई मनुष्य अपने बराबरवालेको पुकारते हैं इस प्रकार क्यों पुकारा ? यह बड़ा अयोग्य वचन कहा ! राजाओंको ऐसा वचन कहना नहीं चाहिए था, उसको इस प्रकार कहना चाहिये था कि, हे महाराज ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे दीनपालक ! हे दीनदयालु हे करुणासागर ! हे भक्तवत्सल ! ऐसे वाक्योंसे और अनेक प्रकारका दुलार करके श्रीकृष्णको पुकारना चाहिये था ? उत्तर—राजालोग प्रथम तो अपने-अपने राजसिंहासनपर बैठे थे तब तो अभिमानसे सत्संग न किया इस कारण मूर्ख तथा गँवार हो गये, पीछे जब जरासन्ध पकड़कर लाया और बेड़ी पहराकर बन्दीगृहमें डाल दिया तब दुःखी होकर सुधि बुधि भूल गए, दोनोंभांतिसे उनको बोलनेकी चतुराई न आई, वे बिना सींगके पशु हैं, इसलिए उन राजाओंके मुखसे जो वचन निकले सोई अच्छे हैं, क्योंकि दुःखी और अभिमानी जो न कहै सो थोड़ा है । जैसे एक ब्राह्मणको किसी प्रेमीने बड़ी शुश्रूषासे न्योता और अनेक प्रकारके भोजन जिमाये जब पेट भरगया तब वह बोला बड़े सत्यानाशीके यहां भोजन किया इससे मूर्खोंके दुर्वाक्योंपर ध्यान न करे ।

आपकी कालमूर्तिने हमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट कर दिया, परंतु अब तुम्हारी कृपासे गर्वरहित होकर आपके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं ॥१३॥ इसके उपरांत नित्य आयु जिसकी क्षीण हो और एक न एक रोग जिसमें उत्पन्न हो, ऐसे देहसे मृगतृष्णारूप मिथ्या राजकी हम इच्छा नहीं करते, केवल राज्यकी इच्छा नहीं करते इतना ही नहीं, वरन् परलोकमें क्रियाके फलरूप कर्णप्रिय स्वर्गादिक भोग भी नहीं चाहते ॥ १४ ॥ और हे भगवन् ! इस संसारमें भूले हुए हम राजा लोग किसी योनिमें भी तुम्हारे चरणारविंदोंको न भूलें ऐसा उपाय बताओ ॥ १५ ॥ भक्तोंके क्लेशको दूर करनेवाले, शुद्ध अन्तःकरणके प्रकाशक हरि परमात्मा और अपने भक्तोंके क्लेश काटनेवाले, गोविंद आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जरासन्धके बन्दीखानेसे छूटे हुए राजाओंने जब इस

अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत् पतता रुजां भुवा ॥ उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥ १४ ॥ तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः ॥ स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसारतामिह ॥१५॥ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ॥ प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तूयमानो भगवान्राजभिर्मुक्तबन्धनैः ॥ तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥ १७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्य प्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ॥ सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥ १८ ॥ दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्त ऋतभाषिणः ॥ श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥ १९ ॥ हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे ॥ श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥

प्रकार स्तुति की तब शरणके देनेवाले करुणावान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मनोहर वाणीसे राजाओंसे कहा ॥१७॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजाओ ! जैसे तुमने चाहना की उसी प्रकार सबका ईश्वर और आत्मा जो मैं हूँ, सो मुझमें तुम्हारी आजसे दृढ भक्ति हुई ॥ १८ ॥ हे राजालोगो ! सत्यवादी तुमने मेरा भजन करना, यह भला सत्य संकल्प निश्चय किया है, क्योंकि मनुष्य धन और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो इच्छानुसार विचरते देखे जाते हैं ॥१९॥ कृतवीर्यका पुत्र चक्रवर्ती राजा सहस्रबाहु एक समय जमदग्नि ऋषिकी गौ हरके ले आया तब उसका परशुरामजीने पुत्रोंसहित संहार किया और राजा नहुष मदोन्मत्त होकर इन्द्राणीके पास जानेके लिये ब्राह्मणोंको पालकीमें

जोतकर चला, तब ब्राह्मणोंने उसे ऐश्वर्यभ्रष्ट करके सर्प कर दिया और राजा वेनने मदोन्मत्त होकर ब्राह्मणोंका तिरस्कार किया, तब ब्राह्मणोंने अत्यन्त क्रोधित होकर हुंकार शब्दसे उसका प्राण संहार किया और राक्षसराज रावणने सीताकी आकांक्षा की, तब महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने उसका वध किया और दैत्यराज नरकासुरने जब अदितिके कुण्डल हर लिये तब उसे मैंने ही मारा और कितने ही देवता और राजा धनके मदसे स्थानभ्रष्ट हो गये ॥ २० ॥ और तुम समस्त उत्पन्न देहादिकसे नाश हो गये, यह जान सावधान हो यज्ञ करके मेरा पूजन और प्रजाकी रक्षा करो ॥ २१ ॥ पुत्रादिकोंको उत्पन्न करो और जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख जो प्राप्त हो उसका सेवन करो और मुझमें चित्त लगाकर विचरो ॥ २२ ॥ आत्मामें रमण करते व्रत धारण किये देह और घरोंमें उदासीन होकर भले प्रकार मुझमें मन

भवन्त एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमन्तवत् ॥ मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥ २१ ॥ सन्तन्वन्तः प्रजातन्तून् सुखं दुःखं भवाभवौ ॥ प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥ २२ ॥ उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यङ् मामन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥२३॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य नृपान् कृष्णो भगवान् भुवनेश्वरः ॥ तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान् स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥ सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ॥ नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥२५॥ भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान् समलङ्कृतान् ॥ भोगैश्च विविधैर्युक्तान् ताम्बूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६ ॥ ते पूजिता मुकुन्देन राजानो मृष्टकुण्डलाः ॥ विरेजुर्मोचिताः क्लेशात् प्रावृडन्ते यथा ग्रहाः ॥ २७ ॥ रथान् सदश्वानारोप्य मणिकाञ्चनभूषितान् ॥ प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्ययापयत् ॥ २८ ॥

लगाओगे तो अन्तमें परब्रह्मरूप मुझे प्राप्त होगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भारत ! त्रिलोकीके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार राजाओंको आज्ञा कर और उनको उबटन, स्नान और क्षौर इत्यादि कर्म करानेके लिये स्त्री पुरुषोंको भेजा ॥ २४ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! राजाओंके स्नान कर चुकनेपर जरासन्धके पुत्र सहदेवसे राजाओंके भोग्य वस्त्र, आभूषण, माला और चन्दनादिकसे उनकी पूजा कराने लगे ॥ २५ ॥ सुन्दर स्नान कर वस्त्र आभूणोंसे शोभित और अनेक प्रकारके भोगोंसे युक्त राजाओंको श्रेष्ठ अन्न भोजन कराकर राजाओंके योग्य तांबूलादिक देने लगे ॥ २६ ॥ मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे पूजित और प्रकाशमान कुण्डलोंको पहने बन्दीखानेके क्लेशसे छूटे हुए राजा वर्षाऋतुके पीछे आकाशमें तारागणोंके समान शोभायमान लगने लगे ॥२७॥ मणि और सुवर्णके गहनोंसे

शोभायमान राजाओंको सुन्दर घोड़े जुते रथोंमें चढ़ाकर और मनोहर वचनोंसे प्रसन्न कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हे अपने देशोंको भेज दिया ॥२८॥ हे महाराज ! इस प्रकार जगत्पति महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके छुड़ाये हुए कष्टमुक्त राजालोग भगवान्का और उनके चरित्रोंका ध्यान करते हुए अपने अपने नगरको चले गये ॥२९॥ वे समस्त राजा जैसे महापुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने छुड़ाये थे और जैसे पूजा करायी थी उसी प्रकार वह सब वृत्तांत अपनी प्रजाके सम्मुख वर्णन किया और जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने शिक्षा दी थी, उसी प्रकार आलस्य छोड़कर वर्तने लगे ॥३०॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार भीमसेनके हाथसे जरासन्धको मरवाकर और सहदेवसे अपना पूजन कराके भीम और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थ आये ॥ ३१ ॥ दुष्टहृदय शत्रुओंको दुःख देनेवाले और अपने सुहृदोंको आनन्द देनेवाले श्रीकृष्ण,

त एवं मोचिताः कृच्छ्रात् कृष्णेन सुमहात्मना ॥ ययुस्तमेव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥२९॥ जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ॥ यथाऽन्वशासद्भगवांस्तथा चक्रुरतन्द्रिताः ॥ ३० ॥ जरासन्धं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ॥ पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात् सहदेवेन पूजितः ॥३१॥ गत्वा ते खाण्डवप्रस्थं शंखान् दध्मुर्जितारयः ॥ हर्षयन्तः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थनिवासिनः ॥ मेनिरे मागधं शान्तं राजा चाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥ अभिवन्द्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ॥ सर्वमाश्रावयाञ्चक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् ॥ आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ॥३५॥ इति श्रीभा० महा० दशमस्कन्धोत्तरार्धे कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

भीम, अर्जुन, जरासन्धको मार इन्द्रप्रस्थमें आकर शङ्खध्वनि करने लगे ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! शङ्खका शब्द सुन प्रसन्नमन इन्द्रप्रस्थनिवासी "जरासन्धकी मृत्यु हुई" यह जान गये और धर्मराज राजा युधिष्ठिरके मनोरथ पूर्ण हो गये ॥३३॥ इसके उपरांत भीम, अर्जुन, और श्रीकृष्णचन्द्रने आकर राजा युधिष्ठिरको प्रणाम कर, आपने जो कुछ कहा सो सब किया ॥३४॥ धर्मराजके पुत्र राजा युधिष्ठिर ब्रह्मा महादेवके वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो कार्य किया उसे सुन नेत्रोंसे आनन्दके आंसुओंकी धार बहाते प्रेमसे विह्वल हो कुछ न बोले ॥३५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

दोहा–चौहत्तरमें राजसूय, कियो युधिष्ठिर यज्ञ । तबहिं हनो शिशुपाल नृप, कृष्णचन्द्र सर्वज्ञ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर जरासन्धका वध और श्रीकृष्णका प्रभाव सुन अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले कि ॥१॥ जो पुरुष त्रिलोकीके गुरु हैं सब लोकोंमें बड़े ईश्वर हैं, वे भी दुर्लभ मानकर आपकी आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं ॥ २ ॥ हे व्यापक कमलनयन ! आप हम दुःखी और सामर्थ्यपनका अभिमान रखनेवालोंकी आज्ञाको शिरपर धारण करते हो यह बिडम्बनामात्र है, वास्तवमें आपको यह बात संभव नहीं हो सकती ॥ ३ ॥ एक अद्वितीय अर्थात कोई जिनके बराबर नहीं और कोई जिनसे बड़ा नहीं ऐसे परमात्मा आप हो, आपका तेज परोपकारके लिये कर्मोंसे भी न्यून नहीं होता, जैसे सूर्यका उदय और अस्तमें तेज बढ़ता ही

श्रीशुक उवाच ॥ एवं युधिष्ठिरो राजा जरासन्धवधं विभोः ॥ कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ॥ वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥ स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ॥ धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥३॥ न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥ न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ॥ त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ॥५॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान् स ऋत्विजः ॥ कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ॥६॥ द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोऽसितः ॥ वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ॥ पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च ॥ ८ ॥

है घटता नहीं ॥४॥ यदि कहो कि मैं परमेश्वर हूँ सो सबकी आज्ञा माननी, यह मन्द कर्म करना योग्य नहीं है सो कहते हैं कि हे यदुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अजित ! जैसे अज्ञानी पुरुषोंके देहमें अहंकार और देहके संगमें ममता रहती है, उसी प्रकार आपके भक्तोंके " तू और तेरा, मैं और मेरा" यह बुद्धि नहीं होती ॥५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यह वचन कह और उनकी सम्मति ले यज्ञ करनेके योग्य वसंतादि कालमें वेदके पढ़नेवाले योग्य ब्राह्मणोंको होता, उद्गाता, अध्वर्यु, इत्यादिकोंमें वरण किया ॥ ६ ॥ द्वैपायन, भरद्वाज, सुमन्त, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित ॥७॥ विश्वामित्र,

वामदेव, सुमति, जैमिनि, ऋतु, पैल, पराशर गर्ग, वैशंपायन ॥ ८ ॥ अथर्व, काश्यप, धौम्य, परशुराम, भार्गव, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्द, वीरसेन, अकृतव्रण ॥ ९ ॥ इसी प्रकार बुलाये हुए ऋषि तथा द्रोणाचार्य, भीष्मजी, कृपाचार्यादि आये। तब पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र और बड़े बुद्धिमान् विदुरजी भी आकर सुशोभित हुए ॥१०॥ हे राजन् ! और भी यज्ञ देखनेके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, व सब राजा और उनके प्रधान दीवान आये ॥११॥ इसके उपरांत ब्राह्मण लोग यज्ञ करनेकी भूमिमें सुवर्णका हल चलाकर भूमि शोधन कर राजा युधिष्ठिरको यज्ञ दीक्षा देने लगे ॥१२॥ जैसे पहले वरुणके यज्ञमें सुवर्णकी सामग्री और सुवर्णके पात्र थे उसी प्रकार इस यज्ञमें

अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ॥ वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥ उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ॥ धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥१०॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ॥ तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥११॥ ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः ॥ कृष्ट्वा तत्र यथाऽऽम्नायं दीक्षयाञ्चक्रिरे नृपम् ॥ १२ ॥ हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ॥ इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चिभवसंयुताः ॥१३॥ सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥१४॥ राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ॥ राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै ॥ १५ ॥ मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ॥ अयाजयन् महाराजं याजका देववर्चसः ॥ १६ ॥ राजसूयेन विधिवत् प्राचेतसमिवामराः ॥ सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान् सदसस्पतीन् ॥ अपूजयन्महाभागान् यथावत् सुसमाहितः ॥ १७ ॥

भी थे और ब्रह्मा, महादेव तथा इन्द्रादिक देवताओंको संग लेकर लोकपाल भी आये ॥ १३ ॥ गणोंसहित सिद्ध, गंधर्व विद्याधर और बड़े बड़े सर्प, मुनीश्वर, यक्ष, राक्षस खग, किन्नर, चारण इनके समूहके समूह आये ॥ १४ ॥ और आये हुए राजाओंकी सब स्त्रियें भी पांडुपुत्र राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आयीं ॥१५॥ हे महाराज ! इस बातको कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि हरिभक्तकी सब वार्ता सिद्ध हो सकती हैं, इसी लिये इन्होंने युधिष्ठिरके यज्ञमें विस्मय नहीं किया, जैसे देवताओंने वरुणका यज्ञ कराया था उसी प्रकार देवताओंके समान कांतिवाले ऋत्विज राजसूय यज्ञ करके विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरसे यजन कराने लगे ॥१६॥ अतिशय करके सावधान पृथ्वीका

पालन करनेवाले राजा युधिष्ठिरने जिस दिन सोमवल्ली कूटी गयीं, उस दिन यज्ञ करानेवालोंका तथा बड़भागी जो सभामें मुख्य थे उनका पूजन किया ॥१७॥ सभाके बैठनेवालोंमें प्रथम किसकी पूजा करनी चाहिये ? यह विचार करते करते एककी अपेक्षा एक बड़ा है, इस कारण जब किसीका निश्चय न हुआ तब युधिष्ठिरके भाई सहदेवने कहा * ॥१८॥ भक्तोंका पालन करनेवाले अखण्डरूप समस्त देवता व देश-काल धनादिकरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही इस यज्ञमें पूजा करनेके योग्य हैं ॥१९॥ यह सब विश्व कृष्णका ही रूप है और यज्ञादिक

सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः ॥ नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात् सहदेवस्तदाऽब्रवीत् ॥ १८ ॥ अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान् सात्वतां पतिः ॥ एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥ यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ॥ अग्निराहुतयो मन्त्राः साङ्ख्यं योगश्च यत्परः ॥ २० ॥ एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदंजगत् ॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ २१ ॥ विविधानीह कर्माणि जनयन् यदवेक्षया ॥ ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥ तस्मात् कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ॥ एवं चेत् सर्वभूताना-मात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥ २३ ॥

भी कृष्णरूप ही हैं और अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान, उपासनादि भी सब कृष्णपरायण हैं ॥ २० ॥ हे सभाके बैठनेवालो ! अजन्मा एक अद्वितीय ये कृष्ण हैं; सो अपने स्वरूप विश्वको अपने आत्मासे ही दूसरेकी सहायता विना उत्पन्न, पालन और नाश करते हैं ॥२१॥ सब जनोंके अनुग्रहसे इस संसारमें अनेक प्रकारके तप योगादिक कर्म करके धर्मादिक रूप कल्याणको करते हैं और अनेक प्रकारके सब कर्मोंके फल भी सब कृष्णके अधीन ही हैं ॥ २२ ॥ इसलिये सबसे बड़े भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी ही पहले पूजा करनी योग्य है और इनकी

* शंका—पृथ्वीपर युधिष्ठिरने कुछ पहिले यज्ञ नहीं किया, यज्ञ तो सत्ययुगसे अनेक राजा करते चले आये हैं, फिर युधिष्ठिरकी यज्ञमें पहिले पूजन करनेके लिये देवताका विचार क्यों किया ? कुछ ब्राह्मण भी प्रथम ही यज्ञ करानेके लिये नहीं आये थे पहिले सत्ययुगमें ब्राह्मण सहस्रों यज्ञ करा चुके थे, फिर धर्मराजके यज्ञमें इतना विचार क्यों किया ?

उत्तर—सब ब्राह्मण भगवान्को भूल नहीं गये थे,सब जानते थे कि यज्ञमें भगवान्का पूजन पहले करना चाहिये,ऐसा सब जानते थे परंतु दैवयोगसे शिशुपालने कालवश मुनियोंको और यज्ञको सभामें बैठनेवाले प्राणियोंको मोहित कर लिया, काल करके सब मुनिजन मोहित हो गये, क्योंकि जो यज्ञमें पहिले पूजन करने योग्य कौन है ऐसा विवाद न होता तो शिशुपाल श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों करता ? और विना निन्दा किये भगवान् उसको क्यों मारते ? शिशुपालके काल करके मोहित मुनि और सब सभाके बैठनेवाले प्रथम पूजन करने योग्यका विचार करने लगे ।

पूजा करनेसे सब प्राणियोंकी पूजा हो जायगी ॥ २३ ॥ और जो कोई पूजाके योग्य होगा उसकी भी पूजा हो जायगी, इस कारण जो पुरुष पूजाके अनन्तफलकी चाहना करे वह पुरुष सब प्राणियोंके आत्मा भेदभावरहित और शांतिपरिपूर्ण भगवान् वासुदेवकी पूजा करे ॥ २४ ॥ हे महारज ! इतनी बात कह श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको जाननेवाला सहदेव चुप हो गया और उस समय सब श्रेष्ठ पुरुष सहदेवका वचन सुनकर "सत्य कहा ! सत्य कहा ! !" इस प्रकार कहकर बड़ाई करने लगे ॥ २५ ॥ स्नेहसे विह्वल और प्रसन्न हो राजा युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंके कहे हुए वचन सुन और सभामें बैठे हुए पुरुषोंके हृदयका अभिप्राय जान इंद्रियोंकी प्रेरणा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रका पूजन किया ॥२६॥ स्त्री, भाई, मंत्री और सब कुटुम्बके पुरुषोंसहित राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंको धोये, सब

सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ॥ देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत तूष्णीं कृष्णानुभाववित ॥ तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधुसाध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥ श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ॥ समर्हयद् हृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥२६॥ तत्पादाववनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ॥ सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बोऽवहन्मुदा ॥२७॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ॥ अर्हयित्वाऽश्रुपूर्णाक्षो नाशकत् समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥ इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्राञ्जलयो जनाः ॥ नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥ इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्ण गुणवर्णनजातमन्युः ॥ उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन् भगवते परुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥

लोकोंके पवित्र करनेवाले चरणारबिन्दका धोवन जल अपने मस्तकपर चढ़ाया ॥२७॥ पीले रेशमी वस्त्र और बहुत मोलके आभूषणोंसे भी पूजा कर आंसू भरे नेत्रोंसे राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करनेको समर्थ न हुए ॥२८॥ इस प्रकार जब राजा युधिष्ठिरने पूजा की, तब श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर सब लोग हाथ जोड़ "नमोनमः" और "जय जय" शब्दसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके फूलों की वर्षा करने लगे ॥ २९ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा हुई, तब उस समय दमघोषका पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंका वर्णन सुन अत्यन्त क्रोधित हो भुजा उठाकर ईर्षापूर्वक निर्भय हो श्रीकृष्णचन्द्रको कठोर वचन सुनाकर

यह कहने लगा ॥ ३० ॥ नाशरहित श्लाघ्य सामर्थ्यवान् काल बड़ा प्रबल है, वास्तवमें यह वेदकी श्रुति सत्य है, क्योंकि कालसे ही वृद्ध वृद्ध सभामें बैठनेवालोंकी बुद्धि इस बालक सहदेवके कहनेसे चलायमान हो गयी॥ ३१॥ हे पात्रके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सभापतियो ! भला यह कृष्ण पूजाके योग्य है, कदापि नहीं । इस कारण इस बालकका वचन मानना उचित नहीं ॥३२॥ क्योंकि तप करनेवाले विद्वान्, व्रती, ज्ञानी, पापरहित, ब्रह्मनिष्ठ और लोकपालोंसे पूजित ब्रह्मर्षि ॥३३॥ इस सभामें विराजमान हैं, इन सबको त्याग गायोंका चरानेवाला और कुलको दोष लगानेवाला पूजाके योग्य कैसे हो सकता है ? क्योंकि यज्ञमें देवताओंके योग्य बलिको कौआ कैसे ग्रहण करनेके योग्य है ? ॥३४॥ न

ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ॥ वृद्धानामपि यद् बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥३१॥ यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम् ॥ सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत संमतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥ तपोविद्याव्रतधरान् ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ॥ परमर्षीन् ब्रह्मनिष्ठान् लोकपालैश्च पूजितान् ॥ ३३ ॥ सदसस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ॥ यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥ ३४ ॥ वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥ ३५ ॥ ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ॥ वृथा पानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षिसेवितान् देशान्हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ॥ समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ॥ ३७ ॥ एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः ॥ नोवाच किञ्चिद् भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम् ॥ ३८ ॥ भगवन्निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ॥ कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ॥ ३९ ॥

जिसका कोई वर्ण, न आश्रय और न कोई कुल है; संपूर्ण धर्मसे बहिष्कृत, जैसे मनमें आवे वैसे ही करे, गुणहीन ऐसा कृष्ण कैसे पूजाके योग्य हो सकता है?॥३५॥राजा ययातिने इसके कुलको शाप दिया और सत्पुरुषोंने जातिबहिष्कृत किया और सर्वदा वृथा मदिरापान करनेवाला इसका कुल है, फिर इस कुलमें आज कृष्ण कैसे पूजाके योग्य हो सकता है ? ॥३६॥ ब्रह्मर्षि सेवित देशोंको त्याग ब्रह्मतेजरहित समुद्रके किलेका आश्रय लेकर यादवोंमें चोरके समान बाधा देता है ॥३७॥ हे भूपाल ! नष्टमंगल शिशुपाल और भी अनेक प्रकारके अमंगल वचन कहता रहा; परन्तु जैसे सिंह सियारोंके बोलनेपर ध्यान नहीं देता है उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुछ न बोले ॥३८॥ सभासद दुस्सह भगवान्

श्रीकृष्णचंद्रकी इस प्रकार निंदा सुन कर्ण मूंदकर अत्यन्त क्रोधित हो शिशुपालको गाली देने लगे॥३९॥ क्योंकि भगवान्‌की निंदा अथवा भगवत्परायण पुरुषोंकी निंदा सुनकर जो पुरुष उस स्थानसे न उठ जायँ वे पुरुष अपने पुण्यसे भ्रष्ट होकर नरकमें गिरते हैं ॥४०॥ इसके उपरांत हे परीक्षित! क्रोधसे पांडुके पुत्र और मत्स्यदेश व सृञ्जय देशके राजा अपने-अपने शस्त्रोंको उठाकर शिशुपालके मारनेको उपस्थित हुए ॥४१॥ हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित ! इसके पीछे घबड़ाहट रहित शिशुपालने श्रीकृष्णचन्द्रके पक्षवाले राजाओंको मारनेके लिये ढाल और अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली तलवार ग्रहण की ॥ ४२ ॥ 'यह मेरा पार्षद है और मेरे समान बलवान् है, यह सबको मारेगा इससे मैं ही इसको

निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ॥ ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥ ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृञ्जयाः ॥ उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥ ४१ ॥ ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रान्तो जगृहे खड्गचर्मणी ॥ भर्त्सयन् कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ॥ ४२ ॥ तावदुत्थाय भगवान् स्वान् निवार्य स्वयं रुषा ॥ शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहारापततो रिपोः ॥ ४३ ॥ शब्दः कोलाहलोऽप्यासीच्छिशुपाले हते महान् ॥ तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥ ४४ ॥ चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ॥ पश्यतां सर्वभूताना-मुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥ ४५ ॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ॥ ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥ ४६ ॥

मारूँ' यह विचार उसी समय उठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी ओरके राजाओंको निवारण करके सम्मुख आते अपने वैरी शिशुपालका शिर छूरेके समान पैनी धारवाले चक्रसे काट लिया ॥ ४३ ॥ उस समय बड़ा कोलाहल शब्द हुआ और शिशुपालके पिछलगू राजा जीनेकी इच्छा करके भाग गये ॥४४॥ उस समय शिशुपालके देहमेंसे निकली हुई ज्योति सब प्राणियोंके देखते देखते श्रीकृष्णचन्द्रमें इस प्रकार मिल गयी, जिस प्रकार आकाशसे गिरे तारे पृथ्वीमें मिल जाते हैं ॥४५॥ पहले जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप हुए, दूसरे जन्ममें रावण कुम्भकर्ण हुए, तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दंतवक्त्र हुए, इस प्रकार तीन जन्मके चले आये वैरसे तन्मय बुद्धिसे रूपका ध्यान

करते करते उसी रूपको प्राप्त हुए, अर्थात् पार्षद हो गये, क्योंकि जैसी जो भावना करता है, वैसा ही उसका जन्म होता है ॥ ४६ ॥ इसके उपरांत चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिरने यज्ञके करानेवाले ब्राह्मणोंको और बड़े सभामें बैठनेवालोंको बड़ी दक्षिणा दी और विधिपूर्वक सबका पूजन करके यज्ञांतस्नान किया ॥ ४७ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने राजा युधिष्ठिरका यज्ञ सिद्ध करके और सुहृदोंकी विनयसे कितने ही मास पर्यन्त वहां वास किया ॥४८॥ इसके उपरान्त जाने देनेकी इच्छा न करनेवाले राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा मांग सामर्थ्यवान् भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र अपने स्त्री पुत्रोंको संग लेकर द्वारका–पुरी चले आये ॥४९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित!

ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ॥ सर्वान् संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥ साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ उवास कतिचिन्मासान् सुहृद्भिरभियाचितः ॥ ४८ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः ॥ ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥ ४९ ॥ वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ॥ वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥ ५० ॥ राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ॥ ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥ ५१ ॥ राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ॥ कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ॥ यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य ताम् ॥ ५३ ॥

वैकुण्ठके वास करनेवाले जय विजय पार्षदोंको सनकादिकका शाप लगा, इस कारण बारम्बार जन्म हुआ। प्रथम यह कथा तुम्हारे आगे विस्तार सहित वर्णन कर चुके हैं ॥ ५० ॥ राजसूय यज्ञ कर चुकनेके पीछे स्नान कर राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण और क्षत्रियोंके मध्यमें बैठे हुए इंद्रके समान सभामें शोभायमान होने लगे ॥५१॥ राजा युधिष्ठिरसे सत्कार पाकर सब देवता और आकाशके विचरनेवाले मनुष्य, प्रथमगण, श्रीकृष्णचन्द्र और सभा तथा यज्ञ इनकी प्रशंसा करते आनन्दपूर्वक अपने अपने लोकोंको चले गये ॥ ५२ ॥ परंतु कौरवोंके कुलमें कलियुगरूप कुलका नाशक धर्मद्वेषी दुर्योधन पांडुपुत्र महाराज युधिष्ठिरकी बड़ी शोभाको देख अपने मनमें बहुत कुढ़ा ॥ ५३ ॥

शिशुपालके वध आदिक जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म बीस हजार आठ सौ राजा कैदसे छुटाये और राजा युधिष्ठिरका यज्ञ कराया, इस प्रसंगको जो पुरुष कहें अथवा सुनेंगे वे सब पापोंसे छूट जायँगे ॥५४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटी॰ शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥ दोहा—पिचहत्तर अ्रममें पड़ो, अवभृथको अस्नान । दुर्योधनको क्षमा बिनु, भयो मान अपमान ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी ! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी बड़ी शोभा देखकर जो राजा आये थे, वे सब प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ और सम्पूर्ण देवताओंने भी आनन्द पाया, केवल दुर्योधन ही आनन्दसे वञ्चित रहा, यह हमने आपके ही मुखसे सुना, सो दुर्योधनको आनन्द क्यों न हुआ ? इसका कारण कृपा करके मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥२॥ तब श्रीशुक-

य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥ राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ राजोवाच ॥ अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥ सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ॥ इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ॥ बान्धवाः परिचर्यायां तस्यासन् प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥ भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः ॥ सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥४॥ गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ॥ परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानो विकर्णश्चहार्दिक्यो विदुरादयः ॥ बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च सन्तर्दनादयः ॥ ६ ॥

देवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! महात्मा तुम्हारे दादे राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें सब बन्धुबांधव प्रेमवश होकर सबकी ही टहल करते थे ॥३॥ किसने कौन काम किया सो कहते हैं, भीमसेनको रसोईका अधिष्ठाता, दुर्योधनको खर्च करनेका स्वामी अर्थात् कोशाध्यक्ष किया, क्योंकि यह हमको शत्रु जानकर बहुत द्रव्य उठावेगा तो इसमें हमारा यश होगा, सहदेवको आये गयेकी पूजा करनेका काम सौंपा और नकुलको अनेक प्रकारकी सामग्रियोंका सम्पादक बनाया॥४॥ साधुओंकी सेवा अर्जुन करता था और श्रीकृष्णचन्द्र यज्ञमें आनेवालोंके पांव धोकर पोंछ देते थे,परोसा परोसीमें द्रौपदी लग रही थी,उदार मनवाले कर्ण दान देनेकी टहलमें लग रहा था॥५॥हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् !

सात्यकी विकर्ण, हार्दिक्य, विदुरादिक, भूरिश्रवादि बाह्लीक राजाके पुत्र और सन्तर्दन आदि उस बड़े यज्ञमें अनेक प्रकारके कामोंमें लगा दिये गये, उस समय वे सब महाराज युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये प्रवृत्त हो गये ॥ ६ ॥ ऋत्विक् और सभासद् तथा विवेकी सुहृज्जनोंने सुन्दर मनोहर वचन, गहने और दक्षिणासे पूजित होकर शिशुपालको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्राप्ति होनेके उपरांत स्वर्गनदी गंगामें यज्ञकी समाप्तिका स्नान किया ॥७॥८॥ यज्ञकी समाप्तिके उत्सवमें, मृदंग, शङ्ख, ढोलक, खञ्जरी, नगारे, गोमुख, नरसिंहादिक चित्र विचित्र बाजे, बजने लगे ॥९॥ नाचनेवाली नाचने लगीं और आनन्दपूर्वक गवैयोंके झुण्डके झुण्ड गाने लगे, उनके वीणा, वेणु और हथेलीका शब्द स्वर्गतक

निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ॥ प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥७॥ ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ॥ चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥ मृदङ्गशंखपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः ॥ वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥ नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ॥ वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः ॥ स्वलङ्कृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥ यदुसृञ्जयकाम्बोजकुरुकेकयकोसलाः ॥ कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥१२॥ सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ १३ ॥ स्वलङ्कृता नरा नार्यो गन्धस्रग्भूषणाम्बरैः॥विलिम्पन्त्योऽभिषिञ्चन्त्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥१४॥ तलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुङ्कुमैः ॥ पुंभिर्लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥ १५ ॥

व्याप्त हो रहा था ॥ १० ॥ विचित्र छत्र, ध्वजा, पताका जिनके ऊपर ढकी, ऐसे बड़े बड़े रथ, हाथी और घोड़ोंपर चढ़ सुवर्णकी माला पहने हुए सेनाको संग लेकर राजा निकले ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरको आगे किये यदु, सृञ्जय, कांबोज, कुरु, कैकय और कौशल देशके राजा पृथ्वीको कम्पायमान करते सेनासहित चले ॥ १२ ॥ सभासद, ऋत्विज तथा ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करते चले और ऋषि, पितृ, गंधर्व पुष्पोंकी वर्षा करते स्तुति करते थे ॥ १३ ॥ चन्दन, माला, गहने और वस्त्रोंसे शृङ्गार कर स्त्री पुरुष अनेक प्रकारके दूध, दही आदि रसोंका लेपन करते और छिड़कते थे ॥ १४ ॥ तेल और माखन सुगंधित जल हरदी व केशर इत्यादिकोंको लेपन करते और

छिड़कते परस्पर विहार करते थे ॥ १५ ॥ इस उत्सवको देखनेके लिये जैसे उत्तम विमानोंपर बैठकर देवांगनायें आयी हों उसी प्रकार वीर और रावतोंसे रक्षित हो राजा युधिष्ठिरकी रानियें रथ और पालकियोंमें बैठकर निकलीं, यह रानियें मामाके पुत्रोंसे और सखियोंसे भियोगी हुई लाजभरी मुसकान व प्रफुल्लित मुखसे शोभायमान हो रही थीं ॥१६॥ भीजनेसे और शरीरमें चिपटनेसे उन स्त्रियोंके अङ्ग, कुच जङ्घा और मध्यभाग स्पष्ट दिखायी देते थे, उत्सुकतासे चोटी शिथिल होनेके कारण उससे फूल बिखर रहे थे, देवर और सखिजन उन्हें डोलचियोंसे भिगो रहे थे, उनकी लीला देखकर मलीनमन कामीजनोंके चित्त अत्यन्त क्षुभित होते थे ॥ १७ ॥ सुव-

गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः ॥ ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥ १६ ॥ ता देवरानुत सखीन् सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नाम्बरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ॥ औत्सुक्यमुक्तकबराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥ १७ ॥ स सम्राड् रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ॥ व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥ १८ ॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ॥ आचान्तं स्नापयाञ्चक्रुर्गङ्गायां सह कृष्णया ॥ १९ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥२०॥ सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ॥ महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥२१॥

र्णकी माला पहने और सुन्दर घोड़े जुते रथमें बैठे राजा युधिष्ठिर जैसे क्रियाओं सहित यज्ञ सुन्दर लगता है उसी प्रकार स्त्रियों सहित शोभायमान लगने लगे * ॥१८॥ ऋत्विजोंने वे पत्नीसंयाज और आवभृथ्य नाम दो यज्ञांग करके गंगामें द्रौपदीसहित आचमन करा राजा युधिष्ठिरको स्नान करवाया ॥ १९ ॥ देवता तथा मनुष्योंके नगाड़े बजने लगे और देवता ऋषि पितृ मनुष्यादि फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥२०॥ वर्णयुक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारों वर्ण और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन चार आश्रमोंने भी

* शंका—शास्त्रमें और लोकमें भी ऐसा सुना गया है कि राजा युधिष्ठिरने एक स्त्रीके सिवाय दूसरे स्त्रीके संग अपना विवाह नहीं किया, फिर यज्ञमें बहुत स्त्रियोंकरके शोभायमान युधिष्ठिर क्यों हुआ ?

उत्तर—द्रौपदीने युधिष्ठिरकी सेवा ऐसी की; जो सेवा करोड़ों स्त्रियोंके करनेसे नहीं हो सकती । ऐसी द्रौपदीके पतिव्रतको युधिष्ठिरने देखकर मनमें जाना कि हमारे करोड़ों स्त्री हैं और व्यासजीने भी युधिष्ठिरकी मनकी बात जानकर कहा कि युधिष्ठिर मनकी बहुतसी स्त्रियों करके अपने यज्ञमें शोभित हुए ।

गङ्गामें स्नान किया, क्योंकि इस गंगामें स्नान करनेसे महापापी पुरुष भी शीघ्र पापसे छूट जाते हैं ॥२१॥ स्नान करनेके उपरांत राजा युधिष्ठिर नवीन रेशमी धोती पहन भले प्रकार शोभायमान होकर ऋत्विज, सभासद् और ब्राह्मणादिकोंकी वस्त्रसहित पूजा करने लगे ॥२२॥ नारायणके आश्रयी राजा युधिष्ठिरने भाई बन्धु, जातिके राजा, मित्र, सुहृद और भी सब मनुष्योंका वारम्वार पूजन किया ॥२३॥ देवताओंके समान कांतिवाले, मणियोंके जड़ाऊ कुण्डल, माला, पगड़ी, जामा, पटुका और बड़े मोलके हार पहने हुए पुरुष और दोनों कुण्डल अलकोंके समूहसे शोभायमान मुखवाली स्त्रियें सुवर्ण की कौंधनी पहने सब शोभायमान लगती थीं ॥२४॥ हे राजन् ! स्नान किये

अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलङ्कृतः ॥ ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ॥ २२ ॥ बन्धुज्ञातिनृपान् मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः ॥ अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥ २३ ॥ सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस्रग्गुष्णीषकञ्चुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ॥ नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४ ॥ अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ॥ ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥ २५ ॥ देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ॥ पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ॥ नैवातृप्यन् प्रशंसन्तः पिबन् मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ॥ प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥ २८ ॥ भगवानपि तत्राङ्ग न्यवात्सीत् तत्प्रियङ्करः ॥ प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च साम्बादींश्च कुशस्थलीम् ॥ २९ ॥

पीछे राजा युधिष्ठिरसे पूजित हो शीलस्वभाववाले ऋत्विज, सभासद्, वेदपाठी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और राजा ॥२५॥ देवता, ऋषि, पितृ, सब प्राणी अनुचरों सहित लोकपाल राजा युधिष्ठिरसे पूजन कराके आज्ञा मांग अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २६ ॥ हरि भगवान्‌के भक्तोंमें राजर्षि राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी बड़ी शोभाकी प्रशंसा करते करते तृप्त नहीं हुए, जिस प्रकार मनुष्यका चित्त अमृत पीते पीते तृप्त नहीं होता ॥ २७ ॥ सुहृद, सम्बन्धी, बन्धु और श्रीकृष्णचन्द्रके बिछुड़नेसे कायरमन हो राजा युधिष्ठिरने प्रेमसे रखा ॥२८॥ हे नृपोत्तम परीक्षित ! उन राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये सांब आदि पुत्र और यादवोंमें शूरवीरोंको द्वारकामें भेज आप

श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रहने लगे ॥ २९ ॥ धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरने दुस्तर मनोरथरूपी बड़ा समुद्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सहायतासे तरकर सब खेद दूर किया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! एक समय भगवद्भक्त राजा युधिष्ठिरके रनवासकी लक्ष्मी व राजसूय यज्ञकी महिमा देखकर दुर्योधन सन्ताप करने लगा ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरका अन्तःपुर, कि जहां मयदैत्यरचित नरपति, दैत्यपति और देवपतियोंकी नाना प्रकारकी विभूतियां प्रकाशमान हो रही थीं और जहां उन विभूतियोंके साथ द्रौपदी अपने स्वामियोंकी सेवा करती थी उसे देख दुर्योधनका मन अत्यन्त तापको प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ राजा युधिष्ठिरके अन्तःपुरमें उस समय मधुपति श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके समूह नितम्बोंके

इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथ महार्णवम् ॥ सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद् गतज्वरः ॥ ३० ॥ एकदान्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ॥ अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन् नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मीर्नाना-विभान्ति किल विश्वसृजोपक्लृप्ताः ॥ ताभिः पतीन् द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥ यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैःक्वणदङ्घ्रिशोभम् ॥ मध्ये सुचारुकुचकुंकुमशोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुन्तलाढ्यम् ॥ ३३ ॥ सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ॥ वृतोऽनुजैर्बन्धुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनः काञ्चने साक्षादासने मघवानिव ॥ पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च बन्दिभिः ॥ ३५ ॥ तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ॥ किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन् रुषा ॥ ३६ ॥

भारसे धीरे-धीरे चलनेमें बजते हुए नूपुरोंसे शोभित चरण, कुचोंकी केशरसे अरुण हार धारण किये चञ्चल कुण्डल और केशपाशसे युक्त सुंदर मुख रमणीय कटिसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रकी सहस्रों रानियें वहां फिरती थीं ॥ ३३ ॥ मयदैत्यकी बनायी हुई सभा, उसमें किसी समय अपने आज्ञाकारी भाई बन्धु सहित और हित अहितके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसहित धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥ साक्षात् सिंहासनपर जैसे इंद्र विराजमान होता है, उसी प्रकार सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान होकर राज्यकी शोभासे सेवित और बन्दीजनोंसे स्तुति पाय शोभायमान होने लगे ॥ ३५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! उसी समय भाइयोंको संग ले किरीट धारण किये, माला पहने और हाथमें

तलवार लिये क्रोधकर द्वारपालोंको डाटता हुआ अभिमानी दुर्योधन सभामें आया ॥३६॥ वहां मयदैत्यकी बनायी सभामें सूखेमें जल दीखे और जलमें सूखा दीखे, ऐसी मयरचित सभामें मयदैत्यकी मायासे मोहित होकर दुर्योधनने भ्रमसे सूखेमें जल जान अपना जामा उठाया और सूखा जानकर जलमें छोड़ दिया और जलमें गिर गया ॥३७॥ हे राजा परीक्षित् ! दुर्योधनको गिरा देखकर भीमसेन व सब स्त्रियें हँसने लगीं । यह देख राजा युधिष्ठिरने यद्यपि मने भी किया, परन्तु तो भी श्रीकृष्णचन्द्रकी सैन पानेसे पहिले भीमसेन हँसे, फिर पीछे सब राजा हँसने लगे ॥३८॥ इन राजाओंको हँसता देख दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हो नीची गर्दन कर क्रोधाग्निसे भभकता हुआ सभासे निकल चुपचाप हस्तिनापुरको चला गया, उस समय साधुओंके बीच बड़ा हाहाकार शब्द हुआ और अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर

स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ॥ जले च स्थलवद् भ्रान्त्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥ जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ॥ निवार्यमाणा अप्यङ्ग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥ ३८ ॥ स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन् निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ॥ हाहेति शब्दः सुमहानभूत् सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ॥ बभूव तूष्णीं भगवान् भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥ ३९ ॥ एतत्तेऽभिहितं राजन् यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उ० दुर्योधनमानभङ्गो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥ क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥

उदास हो गये, जिनकी दृष्टिसे सब जगत् भ्रमण करता है वह भगवान् तो चुप होकर बैठ गये, क्योंकि उनकी इच्छा पृथ्वीका भार उतारनेकी थी, कि किसी न किसी प्रकार यह पृथ्वीका भार उतरे, सो यह समागम सहजमें बन गया । प्रथम यही भारतका बीज जमा ॥ ३९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जो आपने प्रश्न किया था कि राजसूय यज्ञमें दुर्योधन कैसे कुढ़ा सो उसका उत्तर मैने सब आपके सम्मुख वर्णन कर दिया ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां दुर्योधन मानभङ्गो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ दोहा—युद्ध छिहत्तरमें भयो, यादव शाल्व अपार । घूमत गदा प्रहारसे, गये प्रद्युमन हार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरांत क्रीड़ासे ही मनुष्यशरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके और भी अद्भुत कर्म हैं,

जिस प्रकार सौभविमानके पति शाल्व को मारा, सो श्रवण करो ॥ १ ॥ शिशुपालका मित्र शाल्व रुक्मिणीके विवाहमें आया था, तब उसको संग्राममें यादवोंने जीत लिया और उसी प्रकार जरासन्धादि राजा भी जीते ॥ २ ॥ सब राजाओंको सुनाकर राजा शाल्वने यह प्रतिज्ञा की कि सम्पूर्ण पृथ्वी यादवकुलरहित करूँगा, अब तुम सब मेरे पराक्रमको देखो ॥३॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार मूर्ख शाल्व प्रतिज्ञा कर केवल धूलकी एक मुष्टी फांकता हुआ पशुपति शिवजीकी आराधना करने लगा ॥ ४ ॥ शीघ्र सन्तुष्ट होनेवाले शिवजी श्रीकृष्णके द्वेषी शाल्वको वर देना निष्फल जान शीघ्र प्रकट न हुए,परन्तु शरण आये शाल्वसे एक वर्ष पीछे यह कहने लगे कि वर मांग ॥ ५ ॥ उस

शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः ॥ यदुभिर्निर्जितः सङ्ख्ये जरासन्धादयस्तथा ॥ २ ॥ शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥ इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् ॥ आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद् ग्रसन् ॥४॥ संवत्सरान्ते भगवानाशुतोष उमापतिः ॥ वरेणच्छन्दयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥५॥ देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥६॥ तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरञ्जयः ॥ पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात् सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥ स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् ॥ ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥८॥ निरुध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ ॥ पुरीं बभञ्जोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥

समय देवता, असुर, मनुष्य, गंधर्व, सर्प, राक्षस इनसे न टूटे और जहांकी इच्छा हो वहां पहुँचावे यादवोंको भयका देनेवाला ऐसा विमान दो, यह वर मांगा ॥६॥ तब ऐसा ही होगा, यह कहकर भगवान् महादेवजीने मय दानवको आज्ञा दी, उसने झट वैरियोंके पुत्रको जीतनेवाला सौभनाम लोहेका बना विमान शाल्वको दिया ॥ ७ ॥ अन्धकारका घर, दुष्प्राप्य और इच्छानुसार चलनेवाला विमान पाकर वह शाल्व कृष्णके वैरका स्मरण करके द्वारकापुरीकी ओरको चला ॥८॥ हे राजन् ! शाल्व बड़ी सेनासे द्वारकापुरीको घेरकर सम्पूर्ण

फूलोंके बाग और उद्यानोंको तोड़ने लगा ॥ ९ ॥ गोपुर, दरवाजे, महल, अटा, उनकी भीतें व विहारस्थान तोड़ने लगा और उस उत्तम विमानपरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥१०॥ और शिला, वृक्ष, बिजली, सर्प, ओले बरसने लगे और प्रचण्ड पवन चलनेके कारण सम्पूर्ण दिशायें आच्छादित हो गयीं ॥ ११ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सौभके विमानसे पीड़ित श्रीकृष्णचन्द्रकी द्वारकापुरी जैसे त्रिपुर दैत्यसे पृथ्वी दुःखी हुई थी, उसी प्रकार दुःखी हो गयी, सुखका कहीं लेश भी न रहा ॥ १२ ॥ बड़े यशस्वी महारथी भगवान् प्रद्युम्न अपनी प्रजाको दुखी देखकर "भय मत करो" इस प्रकार कहकर सम्मुख आये ॥ १३ ॥ और सात्यकी, चारुदेष्ण, सांब और छोटे

सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः ॥ विहारान् स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥ शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ॥ प्रचंडश्चक्रवातोऽभूद् रजसाऽऽच्छादिता दिशः ॥ ११ ॥ इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ॥ नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥ १२ ॥ प्रद्युम्नो भगवान् वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः ॥ मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥१३॥ सात्यकिश्चारुदेष्णश्च साम्बोऽक्रूरः सहानुजः ॥ हार्दिक्यो भानुविन्दश्च गदश्च शुकसारणौ ॥१४॥ अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः ॥ निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥१५॥ ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह ॥ यथाऽसुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १६ ॥ ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ॥ क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७ ॥ विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैरयोमुखैः ॥ शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥

भाई अक्रूर तथा हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुकसारण ॥१४॥ बड़े धनुषधारी महारथी योद्धा कवच पहनकर रथ, हाथी, घोड़े और पैदल इत्यादिकोंको सङ्ग लेकर निकले ॥ १५ ॥ इसके उपरांत हे राजन् ! असुरोंका जैसे देवताओंके सङ्ग युद्ध हुआ था, उसी प्रकार रोमांचकारक महाभयानक युद्ध शाल्वकी सेनाका यादवोंके सङ्ग होने लगा ॥ १६ ॥ जैसे रात्रिके अन्धकारको भगवान् सूर्य दूर कर देते हैं वैसे ही रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने सौभ-विमानके पति शाल्वकी मायाओंका क्षण भरमें नाश कर दिया ॥ १७ ॥ सोनेके पुंख, लोहेकी

भाली और छोटी छोटी गांठवाले पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको शीघ्र बींध डाला ॥ १८ ॥ इसके उपरांत भगवान् प्रद्युम्नजीने सौ बाण शाल्वके और एक एक बाण प्यादोंके तथा दश दश बाण सारथी और तीन तीन बाणोंसे घोड़े हाथियोंको बींध डाला ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्नजीका यह अद्भुत पराक्रम देखकर अपनी परायी सेनाके योद्धा सब प्रद्युम्नजीकी बड़ाई करने लगे * ॥२०॥ मय दैत्यका बनाया वह मायामय विमान कभी तो नानारूपसे और कभी एकरूपसे दिखायी देता कभी बिलकुल दीखता ही नहीं, इसलिये शत्रु जो यादव उनको उसका तर्क करना महा कठिन हो गया ॥२१॥ वह विमान कभी भूमिपर, कभी आकाशमार्गमें, कभी पर्वतके शिखर पर

शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् ॥ दशभिर्दशभिर्नेतॄन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥ तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥ २० ॥ बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते ॥ मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत्॥२१॥क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ॥ अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तद्दुरवस्थितम् ॥ २२ ॥ यत्रयत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः ॥ शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चञ्छरान्सात्वत यूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ॥ पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः ॥ २४ ॥

और कभी जलमें अलातचक्रके समान भ्रमण कर रहा था, इस कारण इसकी व्यवस्थाका ठिकाना लगना अत्यन्त कठिन हो गया ॥ ॥ २२ ॥ विमान और सेनासहित जहां जहां शाल्व दिखायी देता था, वहां वहां यादवोंमें मुख्य वीरगण बाणोंको छोड़ते थे ॥ २३ ॥ अग्नि सूर्यके समान गरम स्पर्शवाले विषके तुल्य असह्य वैरियोंके चलाये बाणोंसे शाल्वकी सेना अत्यन्त पीड़ित हो गयी और शाल्व

* शंका—प्रद्युम्नने बाणोंसे शाल्व और शाल्वकी सेनाको मूर्छित कर दिया तब प्रद्युम्नके ऐसे पराक्रमको देख कर शाल्वकी सेना और प्रद्युम्नकी सेनाने आश्चर्य माना ? प्रद्युम्नका क्या नवीन कर्तव्य था ? ऐसा कर्तव्य तो प्रद्युम्नने अनेक बार किया था ।

उत्तर—शाल्वको ब्रह्माने किसी समय वर दिया था कि तुझको और तेरी सेनाको संग्राममें श्रीकृष्ण मूर्छित करेंगे और त्रिलोकीमें कोई प्राणी तुझको और तेरी सेनाको दुःखित नहीं कर सकेगा । जब प्रद्युम्नने शाल्वको और उसकी सेनाको मूर्छित कर दिया तब ब्रह्मादिक सब देवता आश्चर्य मानने लगे और प्राणियोंने आश्चर्य माना तो क्या बड़ी बात है ?

भी व्याकुल हो गया ॥ २४ ॥ शाल्वकी सेनाके शस्त्रोंके समूहसे अत्यन्त पीड़ित होकर भी लोक परलोकके जीतनेकी इच्छावाले यादव शूरवीरोंने अपनी अपनी युद्धभूमिको नहीं छोड़ा ॥ २५ ॥ प्रद्युम्नके पहले गदा प्रहारसे पीड़ित हुआ शाल्वका बली द्युमाननाम मन्त्री लोहेकी गदा छातीमें मारकर पुकारने लगा ॥ २६ ॥ वैरीको शान्त करनेवाले प्रद्युम्नजीका वक्षस्थल गदाके लगनेसे विदारित हो गया तब धर्मका जाननेवाला दारुकका पुत्र सारथी प्रद्युम्नजीको लेकर रणभूमिसे बाहर निकल आया ॥२७॥ दो घड़ीमें चैतन्य हो श्रीकृष्ण-चन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजी सारथीसे बोले कि अहो रथवान् ! तू रणमेंसे जो मुझे भगाकर ले आया, यह बुरा काम किया ॥२८॥ व्याकुल चित्त-

शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः ॥ न तत्यजू रणं स्वंस्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥ २५ ॥ शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक्प्रपीडितः ॥ आसाद्य गदयामौर्व्यां व्याहत्य व्यनदद्बली ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षस्थलमरिन्दमम् ॥ अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥ २७ ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ॥ अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥२८॥ न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः ॥ विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥ २९ ॥ किं नु वक्ष्येऽभिसंगम्य पितरौ रामकेशवौ ॥ युद्धात्सम्यगपक्रान्तः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥ व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यो भ्रातृजामयः ॥ क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥ ३१ ॥ सारथिरुवाच ॥ धर्मं विजानताऽऽयुष्मन्कृत मेतन्मया विभो ॥ सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ ॥

वाले तुझ रथवान्ने मुझे कलंक लगाया, क्योंकि मुझे विना यादवोंके कुलमें जन्म ले रणमेंसे भागा और किसीकी नहीं सुना, परन्तु मेरा इसमें क्या दोष है, यह कलंक तो सारथीने लगाया ॥ २९ ॥ पिता राम कृष्णसे मिलूँगा तो क्या कहूँगा ? वे पूछेंगे तब युद्धमेंसे भागकर निकला हुआ मैं अपनी योग्यताके विषयमें किस प्रकार निवेदन करूँगा ?॥३०॥ भाइयोंकी स्त्रियें भाभी कहेंगी कि हे वीर ! युद्धमें शत्रुओंके सम्मुखसे नपुंसक हो कैसे आज भाग आये ? हमसे तो कहो, इस प्रकार हँसकर मुझसे कहेंगी ॥ ३१ ॥ यह सुनकर रथवान् बोला हे चिरंजीवी ! हे समर्थ ! धर्मका ज्ञाता मैं तुम्हें रणमेंसे निकाल लाया, क्योंकि धर्ममें ऐसा ही कहा है, रथमें बैठनेवालेको कष्ट आकर उपस्थित

हो तो रथवान रक्षा करे और सारथीके ऊपर कष्ट आवे तो बैठनेवाला उसकी रक्षा करे ॥३२॥ हे वीर ! शत्रुने आपके गदा जो मारी तो आप अति पीड़ित होकर मूर्छित हो गये इसलिये धर्म जानकर मैं तुम्हें रणसे निकाल लाया ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायामुत्तरार्द्धे शाल्वयुद्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ दोहा—सतहत्तर अध्यायमें, शाल्ववीरको मार । तोरो सौभ विमान पुनि, यदुपति परम उदार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरांत प्रद्युम्नजीने हाथ पांव धो कवच पहन और धनुष हाथमें लेकर कहा कि हे रथवान् ! वीर द्युमानके पास मुझे ले चल ॥ १ ॥ रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने मुसकाकर उसकी सेनाके योद्धा-

एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् ॥ उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे शाल्वयुद्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ॥ नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥ विधमन्तं स्वसैन्यानि द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः ॥ प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्वयम् ॥ २ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्सूतमेकेन चाहनत् ॥ द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥ गदसात्यकिसाम्बाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ॥ पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकन्धराः ॥ ४ ॥ एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत् तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥ इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ॥ राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥

ओंको मारते हुए द्युमानको अत्यन्त तीक्ष्ण आठ बाण मारे ॥ २ ॥ चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको, एक बाणसे रथवान्को मारा, दो बाणोंसे धनुष और ध्वजाको काट डाला और एक बाणसे महारथी प्रद्युम्नजीने द्युमान का शिर काट लिया ॥ ३ ॥ गद, सात्यकी और सांब आदि यादव विमानका पालन करनेवाले शाल्वकी सेनाको मारने लगे और शिर कटनेसे संम्पूर्ण विमानके बैठनेवाले समुद्रमें गिर गये ॥ ४ ॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार २७ दिनतक यादव और शाल्वकी सेनाका महाभयानक युद्ध हुआ ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरके बुलाये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें गये थे, वहां जब राजसूय यज्ञ हो चुका और

शिशुपाल मर चुका ॥ ६ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कौरवोंमें वृद्धोंसे और मुनियोंसे और पुत्रोंसहित कुन्तीसे आज्ञा मांग मार्गमें कुत्सित शकुन देख द्वारकापुरीको प्रस्थान किया॥७॥और मार्गमें खोटे शकुन देखकर विचार करने लगे कि बड़े भाई बलदेवजी सहित मैं यहां यज्ञमें आया हूँ, इससे शिशुपालकी ओरके राजा निश्चय मेरी पुरीका नाश करते होंगे ॥८॥ अपने यादवोंका कष्ट देख बलदेवजी को द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिये कहकर सौभ विमानमें बैठे हुए शाल्वको देख केशव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्से कहने लगे कि ॥ ९ ॥ हे रथवान् ! शीघ्र मेरे रथको शाल्वके समीप पहुँचा दे और इस विमानका राजा शाल्व बड़ा मायावी है इससे तू घबड़ाना मत

कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन् द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥ आह चाहमिहा यात आर्यमिश्राभिसंगतः ॥ राजन्याश्चैद्यपक्षीयानूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥ वीक्ष्य तत् कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ॥ सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥ ९ ॥ रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यान्तिकमाशु वै ॥ संभ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥ १० ॥ इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः ॥ विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥ ११ ॥ शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः ॥ प्राहरत् कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥ १२ ॥ तामापतन्तीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ॥ भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाऽच्छिनत् ॥ १३ ॥ तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् ॥ अविध्यच्छरसन्दोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥ १४ ॥ शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ॥ बिभेद न्यपतद् हस्ताच्छार्ङ्गमासीत् तदद्भुतम् ॥ १५ ॥

॥१०॥ इस प्रकार वचन सुन रथवान् रथपर बैठकर रथको हांकने लगा और अपनी परायी सेनाके लोगोंने रथकी ध्वजामें गरुड़को आता देखा ॥११॥ शाल्वकी बहुतसी सेना नाश हो गयी थी, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको युद्धमें आया देखकर शाल्वने उनके सारथी पर अत्यन्त भयंकर वेगवाली शक्ति फेंकी ॥ १२ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दिशाओंको प्रकाश करती बड़े तारेके समान आकाशमें चली आती बरछीको अपने बाणोंसे सौ खण्ड कर दिये ॥१३॥ और अत्यन्त कुपित हो सोलह बाणोंसे शाल्वको बींध डाला, फिर आकाशमार्गमें भ्रमण करनेवाले विमानको सूर्यकी किरणोंसे बिंधे हुए आकाशके समान बाणोंके समूहोंसे बेध दिया ॥ १४ ॥ शार्ङ्गधनुषधारी

शौरी श्रीकृष्णचन्द्रको धनुष सहित वाम भुजाको शाल्वने बींध दिया, तब श्रीकृष्णचन्द्रके हाथसे धनुष गिर गया, यह बड़ी ही आश्चर्यकी बात हुई ॥१५॥ हाथसे धनुष गिरा देख प्राणियोंमें बड़ा हाहाकार शब्द हुआ और उसी अवसरमें विमानका राजा शाल्व अत्यन्त ऊँचे स्वरसे गर्जनाकर श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि ॥ १६ ॥ हे मूर्ख ! जो तू हमारे भाई अथवा सखा शिशुपालकी स्त्रीको हमारे देखते ही हरकर ले गया और सभाके बीच असावधान विराजमान तूने हमारे सखाको मारा ॥ १७ ॥ अपनेको अजित माननेवाला तू जो आज मेरे सम्मुख खड़ा रहेगा तो निश्चय यमलोक पहुँचा दूँगा ॥१८॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे अधम ! तू वृथा बकवाद करता

हाहाकारो महानासीद् भूतानां तत्र पश्यताम् ॥ विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६ ॥ यत् त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् ॥ प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥ १७ ॥ तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजित-मानिनम् ॥ नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृथा त्वं कत्थसे मंद न पश्यस्यन्ति-केऽन्तकम् ॥ पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥१९॥ इत्युक्त्वा भगवान् शाल्वं गदया भीमवेगया ॥ तताड जत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन्नसृक् ॥ २० ॥ गदायां संनिवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत ॥ ततो मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसाऽच्युतम् ॥ देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥२१॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल ॥ बद्धाऽपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥ २२ ॥

है और निकट ही जो तेरी मृत्यु उपस्थित है उसे नहीं देखता । शूरवीर बहुत बकते नहीं, अपना पुरुषार्थ दिखाते हैं और जो बहुत बकते हैं वे कुछ पराक्रम नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने क्रोध करके बड़े वेगकी गदा उसके कण्ठके नीचे हाड़में मारी कि जिसके लगनेसे शाल्व रुधिर वमन करता हुआ कांपने लगा ॥२०॥ और तत्काल ही शाल्व अन्तर्धान हो गया, फिर दो घड़ी पीछे एक पुरुष आकर शिर झुका श्रीकृष्णचंद्रको नमस्कार कर रोता हुआ "मुझे देवकीने भेजा है" यह कहने लगा ॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! हे पिताका हित करनेवाले ! जैंसे कसाई पशुको बांधकर ले जाता है उसी प्रकार शाल्व तुम्हारे पिताको

बांधकर ले गया ॥ २२ ॥ ऐसा अप्रिय वचन सुन मनुष्य-स्वभावमें प्राप्त दयावान् श्रीकृष्णचन्द्र विमन होकर प्राकृत मनुष्यके समान कहने लगे ॥ २३ ॥ कि संभ्रमरहित, देवता असुरोंके अजेय बलदेवजीको जीतकर तुच्छ शाल्व मेरे पिताको कैसे बांधकर ले गया ? विधाता बलवान् है, कदाचित् ले गया होगा ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचंद्र इतना कहते ही थे कि इतनेमें मायाके वसुदेवको लेकर शाल्व आया और श्रीकृष्णचंद्रसे बोला कि हे नीच ! यह तेरा उत्पन्न करनेवाला पिता है, जिसके लिये तू जीवित है सो अभी तेरे देखते इसे मारूंगा

निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ॥ विमनस्को घृणी स्नेहाद् बभाषे प्राकृतो यथा ॥ २३ ॥ कथं राममसंभ्रान्तं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः ॥ शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान् विधिः ॥ २४ ॥ इति ब्रुवाणे गोविन्दे सौभराट् प्रत्युपस्थितः ॥ वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥ एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ॥ वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत् पाहि बालिश ॥ २६ ॥ एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेनानकदुन्दुभेः ॥ उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥ २७ ॥ ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः स्वबोध आस्ते स्वजनानुषङ्गतः ॥ महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायां स शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥ २८ ॥

यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य हो तो इसकी रक्षा कर * ॥२५॥२६॥ मायावी शाल्वने इस प्रकार श्रीकृष्णचंद्रको कटुवाक्य कह तलवारसे वसुदेवजीका मस्तक काट डाला और उस मस्तकको ले आकाशमें स्थित सौभ विमानमें पहुँचा ॥२७॥ स्वतः सिद्ध ज्ञानवाले श्रीकृष्णचन्द्र अपने जनोंके सङ्ग दो घड़ीतक मनुष्योंके स्वभावसे शोकमें डूबे रहे, फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मयदैत्यकी प्रकट की हुई शाल्वकी

* शंका—शाल्वने माया करके वसुदेवजीकी मूर्ति साक्षात् बना ली यह बड़ी शंका है, क्या माया रात दिन सबकी बुद्धि भ्रमाती है ? क्योंकि राक्षस मायाके द्वारा अनेक प्रकारकी वस्तु बना लेते हैं, परंतु शास्त्रोंमें लिखा है कि वसुदेव सरीखे तपधारी और श्रीकृष्णभगवान् हितकारी वैकुण्ठनायसे जिनके पुत्र ऐसे धर्मात्माकी मूर्तिको मायासे क्षुद्रराक्षसने बना लिया, यह महा आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर—ब्रह्माने किसी समय शाल्वको वर दिया था कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकी मूर्ति तो तुझसे बनेंगी नहीं और त्रिलोकीमें जिसकी मूर्ति बनाना चाहेगा उसकी बना लेगा और ब्रह्माने वरदानके देते समय शाल्वसे यह भी कहा था कि जब तू वसुदेवकी मूर्ति बनावेगा उसी समय तू मारा जायेगा, उस ब्रह्माके वचनको कालवश होकर भूल गया और वसुदेवकी मूर्ति बनायी। उसी समय वृन्दावन-विहारी श्रीगोवर्धनधारीने शाल्वको मार डाला। देखो, जब मृत्युके दिन आते हैं, तब परमेश्वर वैसा ही बना देता है, इसलिये शाल्वने वसुदेवकी मूर्ति क्या बनायी थी ? अपना काल बुलाया था।

चलायी आसुरी मायाको जान लिया ॥२८॥ जब इस प्रकार चेते तो जैसे जागता हुआ पुरुष स्वप्नके पदार्थको न देखे उसी प्रकार रणभूमिमें श्रीकृष्णचन्द्रने न तो दूतको देखा और न पिताके देहको देखा वरन् सौभ विमानमें विराजमान आकाशमें भ्रमण करते हुए शत्रुको देखकर उसके मारने का उपाय करने लगे॥२९॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे महाभागवत परीक्षित्! पूर्वापरका अनुसन्धान न रखनेवाले कितने एक ऋषि लोग यह कहते हैं पर वह अपनी वाणीमें जो विरोध आता है उसका ध्यान नहीं करते, उन्होंने पहले कहा कि " बलदेवजी आज्ञा ले और उन्हें हस्तिनापुरमें छोड़ आप इन्द्रप्रस्थ गये" इसके उपरांत कहते हैं कि "इंद्रप्रस्थसे आ शाल्वको युद्ध करता देख बलदेव जीको द्वारकाकी रक्षा करनेके लिये भेजा" यह उनके वचनमें ही भेद होता है, सो शुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! यह हमारा मत नहीं

न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ॥ स्वाप्नं यथा चाम्बरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥ एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः केचनान्विताः ॥ यत स्ववाचो विरुध्येत नूनं तन्नः स्मरन्त्युत ॥ ३० ॥ क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसंभवाः ॥ क्व चाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखंडितः ॥ ३१ ॥ यत्पादसेवोर्जितयाऽऽत्मविद्यया हिन्वन्त्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ॥ लभन्त आत्मीयमनन्तमैश्वरं कुतो न मोहः परमस्य सद्गतेः ॥ ३२ ॥ तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ॥ विद्ध्वाऽच्छिनद् वर्म धनुः शिरोमणि सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥ ३३ ॥ तत कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा ॥ विसृज्य तद् भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद् द्रुतम् ॥ ३४ ॥

है और ऋषियोंका है ॥ ३० ॥ शोक, मोह, स्नेह, भय यह कहां ? और अखण्ड विज्ञान ऐश्वर्य देवता जिनकी स्तुति करें ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहां ! ॥ ३१ ॥ जिनके चरणारविंदकी सेवासे पुष्ट हुई आत्मविद्याके प्रभावसे सज्जन पुरुष अनादिकालकी देहात्मबुद्धिको त्याग अनन्त ईश्वरसम्बन्धी पद आत्माको पाते हैं उन सर्वोत्तम शरणागतपालक श्रीकृष्णचन्द्रमें कदाचित् मोह नहीं हो सकता ॥३२॥ यही यथार्थ है कि बड़े पराक्रमी शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने बलपूर्वक शस्त्रोंके प्रहारसे शाल्वको वेध उसका कवच, धनुष और उसके शिरकी मणि काटकर उसके विमानको गदासे चूर्णकर दिया ॥ ३३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके हाथसे चलायी हुई गदासे हजारों खण्ड होकर वह विमान चूर्णी-

भूत हो पृथ्वीमें गिर गया, उस समय शाल्व विमान छोड़, गदा हाथमें ले श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपरको दौड़ा ॥ ३४ ॥ दौड़ते हुए शाल्वके गदा भाले सहित हाथ काटकर उसके मारनेके लिये प्रलयकालके सूर्यके समान सुदर्शनचक्रको ग्रहणकर उदयाचल पर्वतपर सूर्यके समान भगवान् श्रीकृष्णचंद्र शोभायमान लगने लगे ॥३५॥ जैसे देवराज इंद्रने वज्रसे वृत्रासुरका माथा काटा था, उसी प्रकार अत्यन्त मायावी शाल्वका कुण्डलोंसहित शिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काट लिया, उस समय मनुष्योंमें हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३६ ॥ इतनी कथा सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! जिस समय गदासे विमान टूटा और अत्यन्त पापी दुराचारी शाल्व पृथ्वीमें गिर पड़ा, तब स्वर्गमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे, इसके उपरांत मित्र शिशुपाल और शाल्व तथा पौंड्रक इनका ऋण चुकानेके लिये क्रोधित हो

आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाऽथ रथाङ्गमद्भुतम् ॥ वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद् बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥३५॥ जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः ॥ वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥३६॥ तस्मिन् निपतिते पापे सौभे च गदया हते ॥ नेदुर्दुन्दुभयो राजन् दिवि देवगणेरिताः ॥ सखीनामपचितिं कुर्वन् दन्तवक्रो रुषाऽभ्यगात् ॥ ३७ ॥ इति श्रीभा० म० द० उत्त० सौभशाल्ववधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः ॥ परलोकगतानां च कुर्वन् पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥ एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकम्पयन् ॥ पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥ २ ॥ तं तथाऽऽयान्तमालोक्य गदामादाय सत्वरः ॥ अवप्लुत्य रथात् कृष्णः सिन्धुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥

दंतवक्र आया ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां शाल्ववधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ दोहा–दन्तवक्र हरि मारि पुनि, हनो विदूरथ वीर। रोमहर्ष हलधर वधो, अठहत्तर रणधीर ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! परलोकमें प्राप्त हुए शिशुपाल और शाल्व तथा पौंड्रकके परोक्षमें मित्रताका जाननेवाला दुष्टबुद्धि दंतवक्र क्रोधकर अकेला ही पांव प्यादा महाबलवान् गदा हाथमें लिये पृथ्वीको कम्पायमान करता अत्यन्त शीघ्रतासे आता हुआ दिखायी दिया ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकार दंतवक्रको आता हुआ देख भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गदा हाथमें ले रथसे उतर समुद्रको जैसे किनारे रोकते हैं, उसी प्रकार दन्त-

वक्त्रको रोक दिया ॥३॥ दुर्मद करूषदेशका राजा दन्तवक्त्र मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि तू जो मेरे नेत्रोंके सम्मुख आया यह बड़ा ही मङ्गल हुआ ॥ ४ ॥ हे कृष्ण ! तू हमारे मामाका पुत्र और हमारे मित्रका मारनेवाला है और मुझे भी मारना चाहता है, इसलिये हे मूर्ख ! वज्रके समान इस गदासे तेरा प्राण संहार करूँगा ॥५॥ हे अज्ञानी ! देहमें रहे रोगको जिस प्रकार नाश करते हैं, उसी प्रकार बन्धुरूप वैरी जो तू है, उसे मारूँगा, तब मित्रवत्सल मैं मित्रोंके ऋणसे उऋण हूँगा ॥ ६ ॥ इस प्रकार कठोर वाक्य कह श्रीकृष्णचन्द्रके माथेमें गदा मारकर सिंहके समान दन्तवक्त्र गर्जने लगा, जैसे हाथीके अंकुश लगे ऐसे ही वह गदा लगी ॥७॥

गदामुद्यम्य कारूषो मुकुन्दं प्राह दुर्मदः ॥ दिष्ट्यादिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥४॥ त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ्मां जिघांससि ॥ अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥ तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ॥ बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥ एवं रूक्षैस्तुदन् वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम् ॥ गदयाऽताडयन् मूर्ध्नि सिंहवद् व्यनदच्च सः ॥ ७ ॥ गदयाऽभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ॥ कृष्णोऽपि तमहन् गुर्व्या कौमोदक्या स्तनान्तरे ॥ ८ ॥ गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन् रुधिरं मुखात् ॥ प्रसार्य केशबाह्वङ्घ्रीन्धरण्यां न्यपतद्व्यसुः ॥ ९ ॥ ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिकृष्णमाविशदद्भुतम् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥ १० ॥ विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥ तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥ १२ ॥

संग्राममें गदा लगनेसे भी श्रीकृष्णचन्द्र न गिरे, इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने कौमोदकी बड़ी गदाको ले दन्तवक्त्रकी छातीमें मारी ॥ ८ ॥ अत्यंत वेगवान् गदा पड़नेके कारण हृदय विदीर्ण होनेसे दन्तवक्त्र मुखसे रुधिरका वमन करता हुआ प्राणोंको छोड़ केश, हाथ, पांव फैलाकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ९ ॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरांत दन्तवक्त्रके शरीरसे अद्भुत सूक्ष्मज्योति निकलकर सब प्राणियोंके देखते शिशुपालके वधके समान श्रीकृष्णचन्द्रमें प्रविष्ट हो गयी ॥१०॥ इसके उपरांत भाई दंतवक्त्रके शोकसे व्याकुल विदूरथ ढाल, तलवार ले श्रीकृष्णचंद्रको मारनेके लिये बड़े-बड़े श्वास लेता हुआ आया ॥११॥ हे परीक्षित् ! विदूरथको इस प्रकार आता हुआ देख

मुकुट और कुण्डलोंसहित उसका शिर छुरेके समान धारवाले चक्रसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काट लिया ॥१२॥ इस प्रकार सौभ विमान और शाल्व तथा भ्राताओंसहित दंतवक्रको जब भगवान् वासुदेव मार चुके, तब देवता और मनुष्य स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ मुनीश्वर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और बड़े सर्प, अप्सरा, पितरोंके गण, यक्ष किन्नर, चारण ॥१४॥ यह सब कोई श्रीकृष्णचन्द्रकी विजय गाते हुए फूल बरसाकर चले गये । इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्र सब यादवोंको संग ले शोभायमान द्वारका पुरीको गये ॥१५॥ इस प्रकार योग और जगतके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा जयको ही प्राप्त करते हैं, पशुओंके समान दृष्टिवाले अज्ञानी पुरुषोंको जरासन्धसे हारे-जीते प्रतीत

एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्रं सहानुजम् ॥ हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥ मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ॥ अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥१४॥ उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ॥ वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालङ्कृतां पुरीम् ॥ १५ ॥ एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥१६॥ श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः ॥ तीर्थाभिषकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥ १७ ॥ स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् ॥ सरस्वतीं प्रति स्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥ १८ ॥ पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ॥ विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९ ॥ यमुनामनु यान्येव गंगामनु च भारत ॥ जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥ २० ॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ॥ अभिवन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥ २१ ॥

होते हैं ॥ १६ ॥ पीड़ित कौरवोंको एक तुल्य माननेवाले बलदेवजी उनके युद्धका उद्यम सुनकर तीर्थयात्राका बहानाकर द्वारकासे चले गये, क्योंकि यहां रहनेसे जिसकी ओर न रहूंगा, वही बुरा मानेगा ॥ १७ ॥ प्रभास तीर्थमें स्नान कर देवता ऋषि, पितृ, मनुष्योंका तर्पण कर और ब्राह्मणोंको संग ले सरस्वतीके प्रवाहके सम्मुख महात्मा बलदेवजी चले गये ॥ १८ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! पृथूदक, विंदुसरोवर, त्रितकूप, सुदर्शन तीर्थ, विशाल ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती व यमुनाके तीर्थ, गंगाके तीर्थ और जहां ऋषि यज्ञ करते थे उस नैमिषारण्यमें बलदेवजी गये ॥ १९ ॥ २० ॥ बड़े यज्ञवाले मुनि बलदेवजीको आया

हुआ देख प्रशंसा करते हुए शीघ्र उठ प्रणाम कर यथायोग्य उनका पूजन करने लगे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंसहित पूजित हो आसन पर बैठ महात्मा बलदेवजीने वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षणको बैठा देखा ॥ २२ ॥ यह सूतजाति होकर उन सब ब्राह्मणोंसे ऊँचे आसनपर विराजमान था, न तो उसने प्रत्युत्थान किया और न विनय की और न हाथ जोड़कर स्तुति की, तब उसको देखकर भगवान् बलरामजीको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥२३॥ और अपने मनमें विचार करने लगे कि यह प्रतिलोम जाति होकर इन ब्राह्मणों और धर्मपालक हमसे भी ऊँचे आसन पर विराजमान है, इस अपराधसे यह दुर्बुद्धि मार डालने के योग्य है ॥ २४ ॥ क्योंकि भगवान् वेदव्यासजीका शिष्य

सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ॥ रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥ २२ ॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम् ॥ अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥ २३ ॥ कस्मादसाविमान्विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ॥ धर्मपालस्तथैवास्मान्वधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४ ॥ ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योधीत्य बहूनि च ॥ सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥ अदान्तस्याविनीतस्य वृथापण्डितमानिनः ॥ न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥२६॥ एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ॥ वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥ २७ ॥ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि ॥ भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥ हाहेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः ॥ ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥

होकर इतिहास और पुराणोंसहित धर्मशास्त्र पढ़कर यह सूत ऐसा आचरण रखता है ॥२५॥ सत्य है जो नट के समान वेष धारण करनेवाले अजितेन्द्रिय, अजितमन, विनयरहित, वृथा पंडिताभिमानी पुरुष हैं उनको शास्त्राभ्यास भी गुणकारक नहीं होता ॥ २६ ॥ इस लोकमें मैंने इसलिये अवतार लिया है कि ऐसे धर्मध्वजी पुरुषोंका विनाश करना, क्योंकि वे सबसे अधिक पापी होते हैं ॥ २७ ॥ हे राजन्! यद्यपि महात्मा बलरामजीने दुष्टोंको मारना छोड़ दिया था परन्तु तो भी होनी ऐसी ही थी, इस कारण इतना कहकर उन्होंने हाथमें स्थित डाभके अग्रसे उसको मार डाला * ॥ २८ ॥ तब उसके मरते ही सब मुनिलोग महा हाहाकार करने लगे

* शंका—भावी प्राकृत जीवोंके लिये है उन्हींसे भला बुरा कर्म करा सकती है; कुछ भगवान्के ऊपर भावी नहीं चल सकती फिर भगवान् शेषजी ही तो बलदेवजी थे सो भावीके वश कैसे हो गये, जो सूतजीको मार डाला,

और खेदको प्राप्त होकर बलरामजीसे बोले कि भगवन् ! यह आपने बड़ा अधर्म किया ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! जबतक यज्ञ सम्पूर्ण हो, तबतक हमारे पास पुराणोंकी कथा कहने के लिये हम लोगोंने इस सूतको ब्रह्मासन दिया था और शरीर खेदित न हो ऐसी आयु दी थी, परन्तु आपने विना जाने यह ब्रह्महत्याकासा कार्य किया ॥ ३० ॥ हे लोकपावन बलरामजी ! तुम योगेश्वर हो इस कारण आपको वेदमें कहीं ब्रह्महत्याका भी दोष नहीं लग सकता, परन्तु तो भी आप स्वयं इस ब्रह्महत्याके समान पापका प्रायश्चित करोगे तभी संसार की मर्यादा रहेगी ॥३१॥ यह सुनकर बलरामजीने कहा, जगत् की मर्यादाकी रक्षा करने के लिये प्रायश्चित करूँगा इस कारण

अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दनः ॥ आयुश्चात्माऽक्लमं तावद्यावत्सत्रं समाप्यते ॥ अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ॥ ३० ॥ योगेश्वरस्य भवतो नाम्ना योऽपि नियामकः ॥ यद्येतद् ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ॥ चरिष्यति भवान् लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ॥ नियमः प्रथमे कल्पे यावान् स तु विधीयताम् ॥ ३२ ॥ दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च ॥ आशासितं यत् तद् ब्रूत साधये योगमायया ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ॥ यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ॥ तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिन्द्रिय सत्त्ववान् ॥ ३५ ॥

मुख्य जो नियम हो वह मुझे बताओ ॥ ३२ ॥ इस रोमहर्षणकी दीर्घ आयु, बल, इंद्रिय और सामर्थ्य होनेमें जो तुम्हारी अभिलाषा हो सो वर्णन करो, क्योंकि जैसी आप आज्ञा करेंगे वैसा ही मैं योगमायाके प्रभावसे करूँगा ॥ ३३ ॥ तब मुनि बोले कि हे राम ! जिस प्रकार तुम्हारे अस्त्रकी, पराक्रमकी और मृत्युकी सत्यता हो और तुमने जो वचन हमसे कहा है वह भी सत्य हो जाय उसी प्रकार करो ॥ ३४ ॥ बलरामजी बोले कि "पिता ही पुत्ररूप उत्पन्न होता है" इस प्रकार वेदकी आज्ञा है, सो इसका पुत्र उग्रश्रवा तुम्हें पुराण श्रवण

यह बड़ी शंका है ?

उत्तर—ब्रह्मा, विष्णु, महेशके ऊपर भावी कुछ भी नहीं कर सकती तो भी भावीकी मर्यादा पालन करनेवाले तीनों देव संसारमें भावीके वश होकर अनेक प्रकारका काम करते हैं, इसलिये अनन्तरूप बलदेवजीने मायाके वशीभूत हो सूतको मार डाला ।

करावेगा और आयुष्य, इंद्रियशक्ति व शरीरके बलसे परिपूर्ण होगा ॥ ३५ ॥ हे मुनिजनो ! आपको दूसरी किस बातकी अभिलाषा है ? सो हमसे कहो, आप जो कहेंगे सो मैं करूँगा, हे बुधलोगो ! मैं प्रायश्चित्त नहीं जानता, इस कारण उसका भी विचार करो ॥ ३६ ॥ तब ऋषीश्वर बोले कि हे राम ! घोर रूप इल्वलका पुत्र बल्वल नाम दानव अमावस पूनोंको आकर हमारे यज्ञको भ्रष्ट करता है ॥ ३७ ॥ सो हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलदेवजी ! पीब, रुधिर, मूत्र, विष्ठा, मदिरा और मांस इनकी वर्षा करनेवाले पापी बल्वलको मारो, यही हमारी सेवा है ॥ ३८ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त सावधान होकर काम क्रोधादिकोंको त्याग भरतखण्डकी परिक्रमा कर,

किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ॥ अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥ ३६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः ॥ स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥ ३७ ॥ तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ॥ पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३८ ॥ ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥ चरित्वा द्वादशान्मासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचंडः पांसुवर्षणः ॥ भीमो वायुरभूद्राजन् पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥ ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ॥ अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥ तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥

जब एक वर्षतक तीर्थोंमें स्नान करोगे तब शुद्ध होगे ॥३९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥ दोहा—उन्नासी अध्यायमें, बल्वलको वधि राम । बहुरि तीर्थयात्रा करी, जहां जहां शुभ धाम॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! इसके उपरान्त जब अमावस्या वा पूर्णमासी पर्व आया तो धूरिवर्षा सहित अत्यन्त भयानक प्रचण्ड पवन चलने लगा और चारों ओरसे राधकीसी दुर्गन्ध आयी ॥१॥ इसके पीछे बल्वल दैत्यकी की हुई विष्ठा और मूत्रकी वर्षा यज्ञशालामें होने लगी, फिर त्रिशूल हाथमें लिये वह बल्वल भी दीख पड़ा ॥ २ ॥ टूटे हुए अंजनके ढेरके समान बड़े शरीरवाला

तपे तांबेसी लाल शिखा, डाढ़ी, मूँछवाला और भ्रुकुटीसे डरावने मुखवाले उस दैत्यको देखकर बलदेवजीने॥३॥ शत्रुकी सेनाके विदीर्ण करनेवाले मूसलको स्मरणकर दैत्योंको मारनेवाले हलका स्मरण किया। इसके उपरान्त पार्षदरूप हल मूसल आप ही आकर उपस्थित हो गये ॥४॥ आकाशमें विचरनेवाले बल्वलको हलके अग्रभागसे खींचऔर अत्यन्त क्रोधमें भरकर महात्मा बलदेवजीने ब्रह्मद्रोही बल्वलके माथेमें मूसल मारा ॥५॥ उसके लगते ही माथा फूटनेसे बल्वल रुधिर वमन करता हुआ वज्रके मारे गेरूके पर्वत समान पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥६॥ तब मुनीश्वरोंने बलदेवजीकी स्तुति कर सफल आशीर्वाद दे, जैसे बड़भागी देवतालोगोंने वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रका अभिषेक

सस्मारः मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ॥ हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥ तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ॥ मुसलेनाहनत क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥ सोऽपतद् भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक् समुत्सृजन् ॥ मुञ्चन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥ संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः ॥ अभ्यषिञ्चन्महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥ ७ ॥ वैजयन्तीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपङ्कजाम्॥रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥ ८ ॥ अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ॥ स्नात्वा सरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥ अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः ॥ स्नात्वा संतर्प्य देवादीञ्जगाम पुलहाश्रमम् ॥ १० ॥ गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः ॥ गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ११ ॥

किया था, उसी प्रकार बलदेवजीका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ लक्ष्मीके निवास कोमल कमलोंकी वैजयन्ती माला और दिव्य नीलाम्बर (धोती, उपरना) और अनेक प्रकारके आभूषण उन मुनियोंने महात्मा बलदेवजीको दिये ॥८॥ इसके उपरान्त मुनियोंसे आज्ञा पाकर बलदेवजी ब्राह्मणोंको संग ले कौशिकी नदीमें आके स्नान कर जिस सरोवरसे सरयू निकली है, वहां गये ॥ ९ ॥ और सरयू प्रवाहके किनारे-किनारे हो प्रयागमें आकर स्नान व देवादिकोंका तर्पण कर पुलहऋषिके आश्रम हरिक्षेत्रको गये ॥ १० ॥ वहांसे गोमती और गण्डकी तथा विपाशा व शोण नदीमें स्नान कर बलदेवजी गया तीर्थमें गये और वहांसे पितरोंका पूजन कर गंगा और समुद्रके

संगममें पहुँचे ॥ ११ ॥ इसके उपरांत महेंद्राचल पर्वतमें भृगुवंशावतंस परशुरामजीका दर्शन व प्रणाम कर सप्तगोदावरी, वेणा तथा पंपामें जाकर भीमरथीमें गये ॥१२॥ इसके उपरांत स्वामिकार्तिकका दर्शन कर जहांपर भगवान् महादेवजी विराजते हैं, ऐसे श्रीशैलपर्वतको गये और द्रविड़ देशोंमें परमपवित्र वेंकट पर्वतका दर्शन कर कामकोष्णी पुरीमें गये फिर कावेरीमें स्नान कर बड़े पवित्र और जहां नित्य हरि विराजते हैं, ऐसे श्रीरंग नाम विख्यात् स्थानको गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहांसे ऋषभादि पर्वत हरिक्षेत्रमें आकर, दक्षिण मथुरामें

उपस्पृश्य महेन्द्राद्रौ रामं दृष्ट्वाऽभिवाद्य च ॥ सप्तगोदावरीं वेणां पम्पां भीमरथीं ततः ॥१२॥ स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ॥ द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाऽद्रिं वेङ्कटं प्रभुः॥१३॥कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं कावेरीं च सरिद्वराम् ॥ श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ॥ सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥१५॥ तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ॥ कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलाचलम् ॥१६॥ तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ॥ योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ॥ दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥ १७ ॥

जाकर फिर बड़े पापोंके नाश करनेवाले सेतुबंधु रामेश्वर को गये ॥ १५ ॥ वहां जाकर हलायुध धारण करनेवाले बलदेवजीने दश हजार गायें ब्राह्मणोंको दान किया, पीछे कृतमाला और ताम्रपर्णी नदियोंमें होकर मलयाचल, पर्वतोंपर गये ॥ १६ ॥ वहां जाकर विराजमान अगस्त्यमुनिकी नमस्कारपूर्वक स्तुति की; फिर अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और आज्ञा पाकर बलदेवजीने दक्षिणदेशमें समुद्रके तटपर

* शंका—बलदेवजी सब तीर्थोंमें गये, परंतु काशीको और उज्जैनको क्यों नहीं गये ? काशी और उज्जैनके जो आस-पास तीर्थ उनको गये फिर क्या कारण जो दोनों मोक्षदायक तीर्थोंको छोड़ दिया ?

उत्तर—शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि विना स्त्रीके जो मनुष्य अकेला इन तीर्थोंमें जाय और उनका दर्शन करे तो उसको आधा फल मिलता है ! (शंका) आधे फलमें क्या हानि थी, वहांका तो किंचित् फल परमानन्दका देनेवाला है ! (उत्तर) वहां जानेसे सब तीर्थोंका आधा फल रह जाता इसलिये नहीं गये, क्योंकि यह अकेले ही गये थे, स्त्री संग नहीं थी, बलदेवजीने विचारा कि स्त्रीको संग लेकर आवेंगे तो उस समय काशी और उज्जैनका दर्शन करेंगे, इसलिये काशी और उज्जैनको नहीं गये ।

जाकर कन्या नाम दुर्गादेवीका दर्शन किया ॥ १७ ॥ इसके पीछे फाल्गुन--अनन्तपुरमें जाकर, जहां विष्णु भगवान् सदा विराजते हैं ऐसे श्रेष्ठ पञ्चाप्सरस नाम सरमें स्नान कर दशहजार गायोंका संकल्प किया ॥ १८ ॥ वहांसे चलकर भगवान् बलदेवजी केरल और त्रिगर्त देशमें हो धूर्जटी शिरसे नित्य सन्निहित गोकर्ण नाम शिवक्षेत्रमें गये ॥ १९ ॥ वहां से आर्यद्वीपवासिनी देवीका दर्शन कर शूर्पारक क्षेत्रमें आये, वहांसे ताप्ती और पयोष्णी नदीमें हो दण्डकारण्यमें आये ॥२०॥ जहां माहिष्मती पुरी है, वहां पहुँच रेवा नदीपर गये। फिर मनुतीर्थमें आचमन कर प्रभासक्षेत्रमें आये ॥ २१ ॥ तब कौरव और पांडवोंके संग्राममें सब क्षत्रियोंका नाश हो गया यह

ततः फाल्गुनमासाद्य पञ्चाप्सरसमुत्तमम् ॥ विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वाऽस्पर्शद् गवां युतम् ॥ १८ ॥ ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्तकान् ॥ गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥ १९ ॥ आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः ॥ तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथ दण्डकम् ॥ २० ॥ प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी ॥ मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥२१॥ श्रुत्वा द्विजः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे ॥ सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥ २२ ॥ स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे ॥ वारयिष्यन् विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ॥ अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः ॥ २४ ॥ गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ॥ मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताविदमब्रवीत्॥२५॥ युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर ॥ एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाऽधिकम् ॥ २६ ॥

ब्राह्मणोंका वचन सुन बलदेवजीने अपने मनमें जान लिया कि पृथ्वीका भार उतर गया ॥ २२ ॥ यादवोंको आनन्द देनेवाले बलदेवजी संग्राममें गदाओंसे युद्ध करते भीमसेन और दुर्योधनको समझानेके लिये कुरुक्षेत्रको गये ॥ २३ ॥ राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और श्रीकृष्णचन्द्र व अर्जुन बलदेवजीको आया हुआ देख प्रणाम कर पूछने लगे कि हे बलदेवजी ! आप कहां कहां हो आये ? यह कहकर चुप हो गये ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त क्रोधमें भरे एकको एक जितना चाहे, चित्रविचित्र मण्डलोंमें फिरते भीमसेन और दुर्योधनको देख बलदेवजी कहने लगे ॥ २५ ॥ हे राजा दुर्योधन ! और भीमसेन ! तुम दोनों शूरवीर हो और समान तुम्हारा बल है;

भीमसेनमें कुछ बल अधिक है, दुर्योधनमें दांव पेंच अधिक है, यह मैं जानता हूँ ॥२६॥ इसलिये बराबर पराक्रमवाले तुम दोनोंके बीचमें एककी कभी जीत हार न होगी, इस कारण इस निष्फल युद्धको शान्त करो ॥ २७ ॥ हे राजन् ! परस्पर कुत्सित वचनोंको स्मरण कर वैरमें भरे भीमसेन और दुर्योधनने बलरामजीके प्रयोजन भरे वाक्यको नहीं माना ॥ २८ ॥ भीमसेन और दुर्योधनका पिछला कर्म ऐसा ही है यह जानकर बलदेवजी द्वारकापुरीमें आये और वहां प्रसन्नमन हो उग्रसेन आदि यादवोंसे मिले ॥ २९ ॥ समस्त विरुद्धरहित यज्ञमूर्ति भगवान् बलदेवजी फिर नैमिषारण्यमें आये, तब उन्हें आनन्दपूर्वक सब ऋषीश्वरोंने यज्ञोंसे यजन करवाया ॥३०॥ तब सामर्थ्यवान् भगवान् बलदेवजीने उन ब्राह्मणोंको विशुद्ध ज्ञान दिया, जिस ज्ञानसे आत्मामें विश्व और विश्वमें पुरुष आत्माको जानता है॥३१॥

तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः॥ न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥२७॥ न तद् वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरो नृपार्थवत् ॥ अनुस्मरन्तावन्योऽन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥ २८ ॥ दिष्टं तदनु मन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ॥ उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥ तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन् मुदा ॥ क्रत्वङ्गं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥ तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान् व्यतरद्विभुः ॥ येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥ स्वपत्न्यावभृथस्नातो ज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः ॥ रेजे स्वज्योत्स्नयेवेन्दुः सुवासाः सुष्ठ्वलङ्कृतः ॥ ३२ ॥ ईदृग्विधान्यसङ्ख्यानि बलस्य बलशालिनः॥अनन्तस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति हि ॥ ३३ ॥ योऽनुस्मरत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥ सायं प्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥३४॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

यज्ञ करनेके पीछे स्नान कर सुन्दर वस्त्र आभूषणोंसे अलंकृत ज्ञाति बन्धु सुहृदोंको संग ले अपनी चांदनीसे शोभित चन्द्रमाके समान बलदेवजी अपनी स्त्रियों सहित अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए ॥३२॥ बलवान् अनन्त अप्रमेय अर्थात् प्रमाण करनेमें न आवें, मायासे मनुष्य रूप धारण करनेवाले बलदेवजीके अनेक लीला और चरित्र हैं ॥ ३३ ॥ हे भारत ! अद्भुत कर्मकारी अनन्त बलदेवजीके कर्मोंको जो पुरुष सायंकाल अथवा प्रातःकालके समय स्मरण करेगा वह श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त प्यारा होगा ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

दोहा—अस्सीमें धन लोभसे, विप्र सुदामा रंक। गयो द्वारका कृष्णपे, धोवन हेत कलंक ॥ राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले कि हे भगवन्! समर्थ अनन्त पराक्रम मुक्तिके देनेवाले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रमको और भी सुननेकी मेरी अभिलाषा है॥१॥हे श्रीशुकदेवजी! उत्तमयश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विषयमें वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली जो मनोहर कथा है, उसको निरन्तर सुनकर कामके बाणोंसे खेदित हो त्रास पावें ऐसे सारके जाननेवाले कौन पुरुष हैं जो श्रवण न करें? ॥ २ ॥ जिस वाणीमें भगवान्के नाम और गुण निकलें वही वाणी सफल है और जिन हाथोंसे भगवान् वासुदेवकी सेवा पूजाका कर्म बने वे ही हाथ सफल हैं और स्थावर जंगम जीवोंमें अन्तर्यामीरूप होकर बसे भगवान्का जो स्मरण करे वही मन सफल है और जिन कानोंसे भगवान् हरिकी पवित्र कथा सुने वे ही कान

राजोवाच ॥ भगवान् यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥१॥ को नु श्रुत्वा सकृद्ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ॥ विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥ सा वाग्यया तस्य गुणान्गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ॥ स्मरेद्वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥३॥ शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमानमेत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ॥ अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बादरायणिः ॥ वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ॥ ॥ ६ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ॥ तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथा विधा ॥ ७ ॥

सफल हैं ॥ ३ ॥ स्थावर जंगम सब भगवान्के रूप हैं यह जानकर जो पुरुष शिरसे प्रणाम करे वही शिर धन्य हैं, जिन नेत्रोंसे देखे वे ही नेत्र धन्य हैं मैं और भगवान् अथवा भक्तजनोंके चरणोंका धोवन जल नित्य जिन अंगोंमें लगे वही अंग धन्य हैं ॥४॥ श्रीसूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहने लगे कि विष्णुरात राजा परीक्षितके यह प्रश्न करनेपर वासुदेव भगवान्में निमग्न हृदय हो वेदव्यासके पुत्र श्रीशुकदेवजी बोले ॥ ५ ॥ कि हे परम भागवत राजा परीक्षित्! कोई एक ब्राह्मण ब्रह्मके जाननेवालोंमें उत्तम, विषयोंमें वैराग्यवान् शान्तमन, जितेंद्रिय श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र था ॥ ६ ॥ वह गृहस्थाश्रममें रहता था और जो कुछ अनायास प्राप्त हो उसीसे अपना निर्वाह करता था,

जीर्ण वस्त्रको धारण किये उसी प्रकार उसकी स्त्री भी थी। क्षुधाके मारे पीड़ित होनेसे समस्त अंगोंसे कृशित और जो अन्न प्राप्त हो उसे पतिको परोस दे आप भूखी रह जाय ॥७॥ बहुत दुःखित और भयके मारे थरथर कांपती वह पतिव्रता स्त्री दरिद्री पतिके समीप बोली ॥८॥ हे ब्राह्मण! मैंने सुना है कि साक्षात् लक्ष्मीके पति ब्रह्मभक्त शरणागतके पालक यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे सखा हैं ॥९॥ अहो! बड़भागी साधुओं के परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास तुम जाओ, दुःखित कुटुम्बी तुमको वे बहुत सा धन देंगे ॥१०॥ भोज, वृष्णि, अन्धक यह यादवोंके गोत्र हैं, उनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अब द्वारकापुरीमें विराजते हैं, वे अपने चरणकमलोंके

पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा ॥ दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाऽभिगम्य च ॥८॥ ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः ॥ ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥ तमुपेहि महाभाग साधूनां च परायणम् ॥ दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ॥ स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥ ११ ॥ किंत्वर्थकामान्भजतो नात्यभीष्टाञ्जगद्गुरुः ॥ स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदुः ॥ १२ ॥ अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ इति संचिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे ॥ अप्यांस्त्युपायनं किञ्चिद् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥ १३ ॥ याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतण्डुलान् ॥ चैलखण्डेन तान्बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥

स्पर्श करनेवालोंको आत्मा तक दे देते हैं ॥ ११ ॥ जगत्के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको भजन करनेवाले अपने भक्तोंको परिणाममें दुःखरूप धन और विषयका देना कुछ बहुत नहीं है, इस प्रकार कोमलवचनोंसे स्त्रीने बहुत प्रार्थना की ॥ १२ ॥ तब तो सुदामा ब्राह्मण उत्तम यशवाले श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होगा, यह बड़ा लाभ है, इस प्रकार मनमें विचार कर जाने की इच्छा करने लगे और स्त्रीसे बोले कि हे मंगलरूपिणी! तेरे घरमें कुछ भेंट देनेको हो तो ला ॥१३॥ यह सुन सुदामा की स्त्री किसी पड़ोसी ब्राह्मणके घरसे चार मूठी चावल मांग लायी और सुदामा के कपड़ेमें बांधने लगी। हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको भेंट देकर सुदामा को बिदा किया ॥ १४ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठ सुदामा चावलोंको ले " श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन मुझे कैसे होगा ? " ऐसा विचार करता हुआ द्वारकापुरीमें पहुँचा ॥ १५ ॥ सुदामा ब्राह्मण तीन चौकी और तीन डचौढ़ीको उल्लंघन कर कृष्णके धर्मचारी और अगम्य अंधक और वृष्णियोंके घरोंके बीचमें हो ॥ १६ ॥ उन घरोंके बीचमें सोलह हजार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके घरमें एक अत्यन्त सुन्दर घरमें सुदामाने प्रवेश किया, उस समय ब्रह्मकी प्राप्तिके समान आनन्द पाया ॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! प्यारी रुक्मिणीकी शय्यापर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णने द्वारपालके मुखसे यह सन्देशा सुन और निकट खड़े अपने प्राचीन मित्र सुदामाको देख शीघ्र उठ भुजा पसारके हर्षसे

स तानादायविप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल ॥ कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिन्तयन् ॥ १५ ॥ त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः ॥ विप्रोऽगम्यान्धकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६ ॥ गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ॥ विवेशैकतमं श्रीमद्ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥ १७ ॥ तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यङ्कमास्थितः ॥ सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः ॥ प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥१९॥ अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम् ॥ उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥ २० ॥ अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवान् लोकपावनः ॥ व्यलिम्पद् दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंकुमैः ॥ ॥ २१ ॥ धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा ॥ अर्चित्वाऽऽवेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् ॥ देवी पर्यचरच्छैव्या चामरव्यजनेन वै ॥ २३ ॥

मिले ॥१८॥ हे नृपश्रेष्ठ ! अपने अत्यन्त प्यारे मित्र सुदामा ब्राह्मणके मिलनेसे अति आनन्दित और प्रसन्न हुए,कमलदललोचन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंसे आंसुओंकी बूँदें टपकने लगीं ॥१९॥ हे राजन् ! लोकोंके पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुदामासे मिल और उनको पलँगपर बैठाकर भेंट दे, उस चरणका धोवन जल अपने मस्तकपर चढ़ाया और दिव्य गन्ध, अतर, चन्दन, केशर, इत्यादि सुदामाजीके लगाया ॥२०॥२१॥ श्रेष्ठ गंधयुक्त धूप दी और बराबर दीपक जलाकर धर दिये और बड़े आनन्दसे मित्र सुदामाकी पूजा कर ताम्बूल दे सम्मुख खड़े हो गये "मित्र भले आये" इस प्रकार कृष्ण कहने लगे ॥२२॥ फटे मलिन वस्त्र पहने और दुर्बलताके कारण जिनके

अंगोंकी नसें निकल रहीं, ऐसे सुदामा ब्राह्मणकी साक्षात् देवी रुक्मिणी चमर ढोर पखा इत्यादि से सेवा करने लगीं ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार निर्मल कीर्त्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब सत्कार किया तब अवधूत सुदामाको देख सब द्वारकावासी जन आश्चर्य मानने लगे * ॥२४॥ और कहने लगे कि भिक्षा मांगनेवाले दरिद्री निंदित अधम फटे वस्त्रवाले इस सुदामाने ऐसा क्या पुण्य किया है ? ॥२५॥ क्योंकि जैसे बड़े भाई बलदेवजीसे मिलें उसी प्रकार त्रिलोकीके गुरु लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णचन्द्र शय्याके ऊपर बैठी

अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना ॥ विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥ २४ ॥ किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ॥ श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ॥ २५ ॥ योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः ॥ पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥२६॥ कथयाञ्चक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः ॥ आत्मनोर्ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपि ब्रह्मन् गुरुकुलाद् भवता लब्धदक्षिणात् ॥ समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥ २८ ॥ प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा ॥ नैवातिप्रीयसे विद्वन् धनेषु विदितं हि मे ॥ २९ ॥

अपनी प्रियतमा रुक्मिणीको त्यागकर इससे मिले ॥२६॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरांत सुदामा और श्रीकृष्णचन्द्र परस्पर हाथ पकड़कर जब गुरु कुलमें वास किये थे तबकी बात कहने लगे ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे धर्मके जाननेवाले ब्राह्मण ! दक्षिणा दे गुरुके पाससे जब हम तुम विद्या पढ़कर आये तबसे तुमने घर आकर अपने योग्य स्त्रीसे विवाह किया या नहीं ? ॥२८॥ हे विवेकी मित्र सुदामा ! मैं निश्चय जानता हूँ कि तुम्हारा चित्त विषयोंमें बहुत चलायमान नहीं है और घरमें वस्त्रादिकोंसे भी तुम प्रसन्न नहीं हो, विवेकी हो, तुमको

* शंका—श्रीकृष्ण भगवान्के द्वारपर मूर्ख लोग रहते थे; क्योंकि जो मूर्खलोग पहरा नहीं देते होते तो भगवान्ने सुदामाका पूजन किया तो उन लोगोंने आश्चर्य क्यों माना ? क्योंकि सज्जन लोग तो जानते हैं कि भगवान् तो सदा ब्राह्मणोंका पूजन करते थे, वह आश्चर्य क्यों मानते ?

उत्तर—श्रीकृष्णके स्थानपर मूर्ख लोग नहीं रहते थे, गोलोकवासी थे, उन लोगों की यह प्रतिज्ञा थी कि, त्रिलोकीमें श्रीकृष्णसे बड़ा कोई नहीं है, सर्वोपरि श्रीकृष्णचन्द्रको जानते थे ब्रह्मादिक देवताओंको तथा योगियोंको ब्राह्मणोंको भी श्रीकृष्णचन्द्रसे बड़ा नहीं जानते थे इसलिये सुदामाका पूजन जब श्रीकृष्णजीने किया तो सब आश्चर्य मानने लगे कि इनसे बड़ा यह कौन आया जिसका पूजन आप श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् त्रिलोकीनाथ करते हैं ?

ऐसा ही योग्य है ॥ २९ ॥ यदि कहो कि चाहना नहीं तो घरमें रहनेसे क्या प्रयोजन है ? उसके उत्तरमें श्रीकृष्ण कहते हैं कि जैसे मैं ईश्वर हूं उसी प्रकार ईश्वरकी मायासे रची विषय वासना त्यागकर कितने एक पुरुष मेरे समान लोकमर्यादाके लिये विषयोंमें आसक्त न होने पर भी कर्म करते हैं ॥३०॥ हे ब्राह्मण ! हम तुम जब गुरुके घरमें जाकर रहे थे तबकी भी कुछ याद है कि नहीं ? जिन गुरुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जानने योग्य आत्माका स्वरूप जानकर संसार से छूट जाता है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें तीन गुरु हैं—जन्मदाता पिता, दूसरा यज्ञोपवीतकर सन्ध्या गायत्री वेद पढ़ावे, सुन्दर कर्म सिखानेवाला और तीसरा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन चारों आश्रमोंको ज्ञान देनेवाला गुरु है, इसमेंसे प्रथम गुरु पूज्य है, दूसरा तेरे बराबर पूज्य और तीसरा गुरु साक्षात् मेरा ही स्वरूप है ॥ ३२ ॥

केचित् कुर्वन्ति कर्माणिकामैरहतचेतसः ॥ त्यजन्तः प्रकृतीर्दैवीर्यथाऽहंलोकसंग्रहम् ॥ ३० ॥ क्वचिद् गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः ॥ द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥ ३१ ॥ स वै सत्कर्मणां साक्षाद् द्विजातेरिह संभवः ॥ आद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाऽहं ज्ञानदो गुरुः ॥३२॥ नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन् वर्णाश्रमवतामिह ॥ ये मया गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम् ॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च ॥ तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४ ॥ अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ ॥ गुरुदारैश्चोदितानामिन्धनानयने क्वचित् ॥ ३५ ॥

हे ब्राह्मण । जो पुरुष मनुष्यरूप धारण करके गुरुरूपसे संसाररूपी समुद्रके पार लगते हैं, वे पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंमें और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी इन चारों आश्रमोंमें चतुर हैं ॥ ३३ ॥ ज्ञानके देनेवाले गुरुसे अधिक और सेवा योग्य कोई नहीं है इसलिये उन गुरुके सेवनसे और कोई अधिक धर्म नहीं है, सब प्राणियोंका आत्मा मैं जैसा गुरुकी सेवासे प्रसन्न होता हूँ वैसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वानप्रस्थ गृहस्थ और संन्यास धर्मसे भी प्रसन्न नहीं होता ॥३४॥ हे ब्राह्मण ! हम और तुम जब गुरुके घर रहा करते थे उस समय हमें तुम्हें गुरुकी स्त्रीने लकड़ी काटनेको वनमें भेजा, (वहां दैवइच्छासे जो कुछ हुआ वह तुम्हें स्मरण है ?) ॥ ३५ ॥

हे मित्र ! लकड़ी लेनेको हम तुम एक महावनमें गये, यद्यपि वहां वर्षाऋतु नहीं थी परन्तु तो भी महातीव्र पवनके साथ वर्षा होने लगी और अत्यन्त घोर कठोर गर्जना हुई ॥ ३६ ॥ इतनेमें ही भगवान् सूर्य अस्त हो गये और सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धेरा छा गया, सब स्थलमें जल ही जल दृष्टि आने लगा, इस कारण ऊँचा नीचा कुछ दिखायी न दिया ॥३७॥ उस समय उस वनमें अति प्रचण्ड वायु तथा वर्षासे हम तुम दोनों पीड़ाको प्राप्त हुए, दिशाओंकी कुछ सुधि न रही, तब आतुर हो आपसमें हाथ पकड़ मस्तकपर लकड़ोंके बोझोंको धरकर फिरने लगे ॥३८॥ हे ब्राह्मण ! जब गुरुजीको इस बातकी खबर हुई तब सूर्योदय होते ही सांदीपन गुरु हमें तुम्हें ढूँढ़ते ढूँढ़ते आये

प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद् द्विज ॥ वातवर्षमभूत तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥ सूर्यश्चास्तं गतस्तावत तमसा चावृता दिशः ॥ निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ३७ ॥ वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभिर्निहन्यमाना मुहुरम्बुसंप्लवे ॥ दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ ३८ ॥ एतद् विदित्वा उदिते रवौ सान्दीपनिर्गुरुः ॥ अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥ ३९ ॥ अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः ॥ आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥ एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ॥ यद् वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥४१॥ तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः ॥ छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥४२॥ इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु॥गुरोरनुग्रहेणैव पुमान् पूर्णः प्रशान्तये ॥४३॥

और आतुर अपने शिष्योंको बैठा देखा ॥३९॥ और उस समय कृपा करके तीन श्लोक कहे, जिनसे हम कृतार्थ हो गये। हे पुत्रो ! तुम हमारे लिये बहुत दुःखित हुए क्योंकि प्राणियोंको देह बहुत प्यारा है, उसका निरादर करके तुमने हमारी सेवा की थी ॥ ४० ॥ सत्पात्र शिष्योंको इसी प्रकार गुरुकी सेवा करनी योग्य है। शुद्ध भावना करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चारों पदार्थ जिससे प्राप्त हों ऐसे देहको गुरुके लिये अर्पण करदे ॥४१॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हुआ हूँ, तुम्हारे मनोरथ सब सत्य हों, तुमने मुझसे जो वेद पढ़े हैं सो इस लोक और परलोक में सार भरे नवीन पढ़ेके समान याद बने रहें ॥ ४२ ॥ "श्रीभगवान्ने कहा कि हे मित्र ! कलियुगमें चेले गुरु दोनों

लोभी लालची होते हैं" यहां एक दृष्टान्त है * । गुरुके घर जब हम रहते थे, तबसे ऐसे अनेक चरित्र हैं, वह आपको याद है ? गुरुओंकी कृपासे ही मनुष्य पूर्णमनोरथ होकर शांतिको प्राप्त होता है॥४३॥ तब सुदामा बोले कि हे देवदेव ! हे जगत्के गुरु ! सत्यसंकल्प तुम्हारे संग हमारा गुरुके पास वास हुआ था, फिर हमको कौन वस्तुकी प्राप्ति न हुई अर्थात् सब वस्तु पा चुके ॥४४॥ हे समर्थ ! सम्पूर्ण कल्याणदायक छन्दोमय वेद आपकी मूर्ति है, ऐसे आपने गुरुके यहां वास किया यह तो लीलामात्र है ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते

ब्राह्मण उवाच ॥ किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ॥ भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥४४॥ यस्यच्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो ॥ श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीभा० म० द० उ० श्रीसुदामाचरिते अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन् हरिः॥सर्वभूतमयोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥ ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् ॥ प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन्खलु सतां गतिः ॥ २ ॥

महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रीसुदामाचरितेऽशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥ दोहा—इक्यासी हरि विप्रके, तन्दुल भोग लगाय। किये समर्पण लोक द्वै, तौहू रहे लजाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सब प्राणियोंके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र द्विजोंमें मुख्य सुदामाके सङ्ग बातें करते मुसकाकर बोले ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले साधु पुरुषोंकी गति भगवान्

* दृष्टान्त एक चेला गुरुजीके पास आया और सेवा करने लगा,सेवा तो करनी पड़ी पर माल भी बहुत मिलते थे,नया जानकर पुराने चेलाने सब कामधन्धा उसी पर डाल दिया, एक दिन उसने गुरुजीसे कहा कि महाराज ! एक बात कहता हूं । गुरुजी बोले कह, चेलेने कहा कि हे महाराज! ऐसा भी कोई उपाय है कि जो मैं गुरु हो जाऊं और तुम्हारे समान गद्दीपर बैठ हलुआ पूरी उड़ाऊं, चेलोंसे काम कराऊं । गुरुजीने सुनते ही क्रोध कर उसे निकाल दिया और फिर अपने यहां न आने दिया । चेलेको तो चोट लग रही थी; एक दिन एक पल्लेदारको बुला दो पैसे दे उससे कहा कि पल्लेमें रेता भरकर ले चलो, उसने पल्ला भर लिया । यह गुरुजीके दरवाजेपर पहुंच खबर दी कि चेला आया है, गुरुजी बोले कि हम दर्शन नहीं देंगे, तब चेलेने कहा कि महाराज ! एक पल्लेमें कुछ लाया भी है जाने बूरा या खांड है, इससे बुला लो, फिर भगा देना ; गुरुजी बोले तो बुला लो । चेला सुनते ही बुलाने गया; उसने आते ही आंगनमें पल्ला गिरवाया और गुरुजीकी ओर चरण कर पल्लेको दण्डवत् की ? गुरुजी बोले कि मूर्ख ! यह क्या करता है ? चेलेने कहा कि महाराज ! मुझे तो यह पल्ला ही लाया है, यह कहकर भाग गया । गुरुजी उसके अन्दर रेता देख अत्यन्त लज्जित हुए । भाइयो ! कलियुगमें गुरु चेले बहुधा ऐसे ही हते हैं ।

श्रीकृष्णचन्द्र प्रेमभरी चितवनसे देखते और हँसते हुए ब्राह्मण सुदामासे बोले कि ॥ २ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम मेरे लिये क्या भेंट लाये हो ? क्योंकि भक्ति प्रेमपूर्वक जो मुझे थोड़ीसी भेंट देता है, सो बहुत हो जाती है और जो भक्ति विना मुझे बहुत भी दे, तो उससे मुझे सन्तोष नहीं होता ॥ ३ ॥ जो पुरुष भक्ति करके पत्र, पुष्प, फल मुझे देते हैं, सो भक्तिसे भेंट करनेके कारण मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक भोजन करता हूँ ॥४॥ हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार भगवान्‌ने जब कहा तो भी लज्जाके मारे नीचेको मस्तक कर विराजमान सुदामाने लक्ष्मी-पति श्रीकृष्णचन्द्रको तन्दुल नहीं दिये ॥ ५ ॥ हे राजन् ! साक्षात् सब प्राणियोंके साक्षी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाके आनेका विचार करने लगे कि धनकी चाहना करके इस सुदामाने मेरा भजन नहीं किया ॥ ६ ॥ पर अभी अपनी पतिव्रता स्त्रीको प्रसन्न करनेके

श्रीभगवानुवाच॥किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात्॥ अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥३॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥४॥ इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मैव्रीडितःपतये श्रियः ॥ पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥ सर्वभूतात्मदृक् साक्षात् तस्यागमनकारणम् ॥ विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माऽभजत्पुरा ॥ ६ ॥ पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया॥प्राप्तो मामस्य दास्यामि संपदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥ इत्थं विचिन्त्यवसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ॥ स्वयं जहार किमिदमितिपृथुकतण्डुलान् ॥८॥ नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ॥ तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥९॥ इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे॥तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥

लिये मेरे पास आया है, इसलिये जो सम्पत्ति देवताओंको भी दुर्लभ है, सो इसे दूँगा ॥७॥ इस प्रकार विचार कर चीरमें बँधे हुए चावलोंको "यह क्या है" ऐसे कह वह चावल सुदामाके वस्त्रमेंसे आपही ले लिये ॥ ८ ॥ और एक मुट्ठी चावल खाकर केशवमूर्ति बोले कि हे मित्र सुदामा ! यह जो तुम चावल लाये हो सो मुझे अत्यन्त प्यारे लगे हैं, इनको थोड़ा मत जानो, यह चावल मेरे सब विश्वका पेट भर देंगे ॥ ॥९॥ ऐसे कह एक मुट्ठी चावलोंका भोजन कर और दूसरी मुट्ठी खाकर जब तीसरी मुट्ठी खाने लगे, तब कृष्णपरायण रुक्मिणी परमेष्ठी श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ पकड़कर कहने लगी कि मित्रके घरकी सब वस्तु आप ही भोजन कर जाओगे या कुछ हमको भी रहने दोगे ? एक तो

इसलिये आकर हाथ पकड़ा, दूसरा कारण आगे कहते हैं ॥१०॥ रुक्मिणी बोली कि हे विश्वके आत्मा ! एक मुट्ठी चावल भोजन करके तो सब विश्वकी संपत्ति इनको दे चुके अब तीसरी मुट्ठी भोजन करके क्या मुझे भी दे दोगे ? क्योंकि इस लोक और परलोकमें तुम्हारे सन्तुष्ट होनेसे ही सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥११॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! ब्राह्मण सुदामाने उस रात्रिको श्रीकृष्णचन्द्रके मन्दिरमें रह भोजन कर, जल पी स्वर्गकी प्राप्तिके समान सुख पाया ॥१२॥ जब प्रातःकाल हुआ तो विश्वके पालन करनेवाले आत्माके आनन्दमें मग्न श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाको प्रणाम कर मार्गमें पहुँचानेको पीछे पीछे संग आये और बोले कि मित्र सुदामा ! तुमने भला दर्शन दिया और इस प्रकार स्वाधीन वचनोंसे आनन्द हो सुदामा अपने घरको चला ॥ १३ ॥ हे नृप ! न तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसे धन दिया और उसने

एतावताऽलं विश्वात्मन् सर्वसंपत्समृद्धये ॥ अस्मिँल्लोके तथाऽमुष्मिन् पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमन्दिरे॥भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखे नाभिवन्दितः ॥ जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दितः ॥१३॥ स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् ॥ स्वगृहान्व्रीडितोगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥ अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ॥ यद्दरिद्रतमोलक्ष्मी माश्लिष्टो विभ्रतोरसि ॥ १५ ॥ क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ॥ ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥१६॥निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरो यथा ॥ महिष्या वीजितः श्रान्तो वालव्यजनहस्तया ॥१७॥

लाजके मारे मांगा, श्रीकृष्णके दर्शनसे ही सुख पाकर अपने घरकी ओरको चला ॥१४॥ चलते समय चित्तमें शोचने लगा कि अहो ! ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवालोंके देव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति मैंने देखी, क्योंकि लक्ष्मीको छातीमें धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अतिदरिद्री मुझ सुदामाको छातीसे लगाकर मिले ॥ १५ ॥ कैसा आश्चर्य है कि दरिद्री पापी ब्राह्मण मैं कहां ? और लक्ष्मी जिनके अंगमें बास करें ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहां ? मुझमें उनमें बड़ा अन्तर है, सो भुजा पसार कर मुझसे मिले ॥ १६ ॥ अपनी प्रिय भार्याके सेवा करने योग्य शय्यापर जैसे अपने भ्राता बलदेवजीको बैठालते थे, उसी प्रकार मुझे बैठाला और मार्गकी थकावट दूर होनेको श्रीकृष्णचन्द्रकी

भार्या रुक्मिणीने चमर हाथमें लेकर मेरे पवन की है ॥ १७ ॥ बड़ी सेवा अर्थात् पावोंका दाबना, धोना, पोंछना इत्यादि सत्कार करके देवोंके देव ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने देवताओंके समान मेरी पूजा की ॥१८॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी शोभा मनुष्योंको स्वर्ग मोक्ष और पाताल, पृथ्वीकी सम्पत्ति तथा सर्व सिद्धियोंका कारण है, परन्तु तो भी ॥१९॥ दरिद्री सुदामा धनको पाकर बहुत मतवाला होकर मुझे भूल जायगा, इस कारण करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुझे यत्किंचित् भी धन नहीं दिया ॥ २० ॥ हे महाराज ! इस प्रकार सुदामा मन ही मनमें विचार करता हुआ अपने नगर में पहुँचा तो क्या देखता है कि-सूर्य, अग्नि, चन्द्रमाके समान प्रकाशमान चारों ओर वितान शोभित हो रहे हैं ॥२१॥ जहां चित्र विचित्र बगीचे शोभायमान हैं उनमें पक्षियोंके झुंडके झुण्ड बोल रहे हैं

शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ॥ पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदाम् ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥ अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ॥ इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददात् ॥२०॥ इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम् ॥ सूर्यानलेन्दुसंकाशैर्विमानैः सर्वतोवृतम् ॥२१॥ विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः ॥ प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥ जुष्टं स्वलंकृतैः पुंभिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ॥ किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥ एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः ॥ प्रत्यगृह्णन्महाभागं गीतवाद्येन भूयसा ॥ २४ ॥ पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसंभ्रमा ॥ निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥

और कुमुद, अम्भोज, कह्लार, उत्पलसे शोभायमान सरोवर भर रहे हैं ॥२२॥ शृंगार किये पुरुष और हरिणके तुल्य नेत्रवाली स्त्रियें जहां तहां फिर रही हैं, ऐसी शोभा और विमानोंका प्रकाश देख आश्चर्य मान "यह क्या है ? किसका स्थान है ? फिर अपने मनमें विचार किया कि यह तो हमारे ही रहनेका स्थान है, ऐसा कैसे हो गया ! ॥२३॥ इस प्रकार बड़भागी सुदामाको देवताओंके समान शोभावाले स्त्री पुरुष गाते बजाते सम्मुख लिवानेको आये ॥२४॥ पतिका आगमन सुन आनन्द और घबड़ाहटसे सुदामा की स्त्री साक्षात् कमलवनमेंसे रूप धरे लक्ष्मीके समान शीघ्र ही घरसे बाहर निकली। श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गको सुदामाके महलमें लाये थे, इसलिये सुदामा और सुदामा की स्त्री

दोनों देवस्वरूप हो गये॥२५॥ प्रेम और उत्कण्ठासे नेत्रोंमें आंसू भरे पतिव्रता सुदामाकी स्त्रीने पतिको आया देख नेत्र मूँद बुद्धिसे विचार मनसे आलिंगन कर नमस्कार किया ॥ २६ ॥ जैसे विमानमें बैठी देवी प्रकाशमान होती है, उसी प्रकार धुकधुकी कंठमें धारण किये दासियोंके मध्यमें प्रकाशमान अपनी स्त्रीको देख सुदामाजीने बहुत आश्चर्य माना ॥२७॥ और प्रसन्न हो अपनी स्त्रीके साथ अपने घरमें गये जहां सहस्रों मणियोंके खम्भ लग रहे थे, मानो इन्द्रभवन है ॥२८॥ दूधके श्वेत झागोंके समान कोमल श्वेत बिछौने बिछ रहे, हाथी दांत व सुवर्णके पलँग जिस मंदिरमें बिछ रहे और सुवर्णकी ही डण्डीके चमर पंखे धरे हैं ॥ २९ ॥ कोमल कोमल पथरनोवाले सुवर्णके सिंहा-

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाश्रुलोचना॥ मिलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे॥२६॥ पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव ॥ दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥ २७ ॥ प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमन्दिरम् ॥ मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥ २८ ॥ पयः फेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ॥ पर्यङ्काः हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥ आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ॥ मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥ ३० ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नदीपान्भ्राजमानाल्लँलनारत्नसंयुतान् ॥ ३१ ॥ विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसंपदाम् ॥ तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥ ३२ ॥ नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ॥ महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥३३॥ नन्वब्रुवाणो दिशतेऽसमक्षं याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ॥ पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥

सन और मोतियोंके झालरीदार प्रकाशमान चँदोवे तन रहे थे ॥३०॥ और निर्मल स्फटिकमणियोंकी भीतोंमें महामरकत मणियोंकी तथा स्त्री सहित मंदिरमें रत्नोंके दीपक प्रकाशमान हो रहे थे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उस मंदिरमें सम्पत्तियोंकी वृद्धि देख स्थिर हो "अकस्मात् इतनी सम्पत्ति कहां से आयी" ऐसे सुदामाजी विचार करने लगे॥३२॥ सदाके दरिद्री भाग्यहीन मुझे बड़े ऐश्वर्यवान् यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवन विना निश्चय और कोई इस सम्पत्तिका कारण नहीं है ॥३३॥ जिस प्रकार समुद्रको पूर्ण करनेवाला महाउदार मेघकिसी

समय अधिकतर वृष्टिको भी सूक्ष्म जानकर मानो लज्जित होता हो ऐसे समक्षमें नहीं बरसता, रात्रिको नगरके लोगोंके सो जानेपर उनके खेतोंको जलसे पूर्ण करता है, उसी प्रकार मेरे सखा पूर्णकाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी भक्तको देनेके लिये इन्द्रादिक पदको भी तुच्छ और उसके लिये भजनको अधिक मानकर समक्षमें न कहते हुए सब सम्पदायें प्रदान करते हैं ॥३४॥ आप बहुत दें उसे थोड़ा मानें और सुहृदोंके थोड़े दियेको भी बहुत मानते हैं, क्योंकि मैं एक मुट्ठी चावलोंको ले गया था उसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर लिया ॥ ३५ ॥ मुझे जन्म जन्ममें उन्हींके विषयमें प्रेम हितेच्छता, मैत्री व दासपन प्राप्त हो और महानुभाव व गुणोंके धाम भगवान् वासुदेवमें आसक्ति हो, एवं उनके भक्तोंका सत्संग प्राप्त हुआ करे यही उनसे विनय है ॥ ३६ ॥ धनी पुरुषोंके धनके अभिमानसे नीच

किंचित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारि ॥ मयोपनीतां पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥ ३५ ॥ तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्रीदास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ॥ महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥ ३६ ॥ भक्ताय चित्रा भगवान् हि संपदो राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः ॥ अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥ ३७ ॥ इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने ॥ विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन्बुभुजे नातिलम्पटः ॥ ३८ ॥ तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ॥ ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥ ३९ ॥ एवं स विप्रो भगवत्सुहृत् तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ॥ तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ॥ ४० ॥

जन्म होते देखकर विवेकसे श्रीकृष्णचन्द्र अपने अज्ञानी भोरे भक्तोंको विचित्र सम्पदा और राज्यके ऐश्वर्य नहीं देते, किन्तु दृढ़ भक्ति देते हैं। मुझे भक्ति नहीं थी, इससे सम्पदाका सुख मिला। परंतु अब भक्तिकी ही प्रार्थना करता हूँ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त भक्त सुदामा विषयोंका धीरे धीरे त्याग करता अति आसक्त न होकर स्त्रीके साथ विषयोंका सेवन करने लगा ॥ ॥ ३८ ॥ देवदेव तथा यज्ञपति इन प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके ब्राह्मण ही प्रभु और इष्टदेवता हैं, इन ब्राह्मणोंसे अधिक और कोई देवता नहीं है ॥ ३९ ॥ हे राजन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र वह ब्राह्मण सुदामा उस समय अजित भगवान्को भी भक्तोंके सम्मुख

पराजित होते देखकर उनके ध्यानके वेगसे अहंकार दूर कर शीघ्र ही सत्पुरुषोंके शरणरूप श्रीकृष्णचन्द्रके धामको चला गया ॥ ४० ॥ जो पुरुष ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्रकी व ब्राह्मण की गुरुता प्रतिपादन करनेवाली यह लीला मन लगाकर सुनते हैं वे भगवान् वासुदेवकी भक्तिको प्राप्त होकर कर्मबन्धनसे छूट जाते हैं ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां पृथुकोपाख्यानं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ दोहा–अंक बयासीमें भयो, कुरुक्षेत्र रविपर्व । मिले प्रेम अरु प्रीतिसों, यादव औ नृप सर्व ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप श्रेष्ठ परीक्षित् ! इसके उपरांत द्वारकापुरीमें वास करते रामकृष्णको एक समय प्रलयकालके समान बड़ाभारी

एतद् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥ लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद् विमुच्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवत महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे पृथुकोपाख्यानं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ॥ सूर्योपरागः सुमहानासीत् कल्पक्षये यथा ॥१॥ तं ज्ञात्वा मनुजा राजन् पुरस्तादेव सर्वतः ॥ स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥२॥ निःक्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः ॥ नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ३ ॥ ईजे च भगवान् रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ॥ लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योऽघापनुत्तये ॥ ४ ॥ महत्यां तीर्थयात्रायां तत्रागन् भारतीः प्रजाः ॥ वृष्णयश्च तथाऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥ ययुर्भारत तत् क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ॥ गदप्रद्युम्नसाम्बाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ॥ आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ६ ॥

सूर्यग्रहण आया ॥ १ ॥ हे महाराज ! ज्योतिषियोंसे उस ग्रहणको पहले ही जानकर मनुष्य सब ओरसे दान, पुण्य, स्नान करनेके लिये कुरुक्षेत्रको जाने लगे ॥ २ ॥ जहां शास्त्रके धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ महात्मा परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीस वार निःक्षत्रिय करके राजाओंके रुधिर समूहसे कुण्ड भर दिये थे ॥३॥ यद्यपि पापरहित हैं, परन्तु तो भी समर्थ भगवान् परशुरामजी अपने पास दूर करनेके लिये अज्ञानी पुरुष के समान सब लोगोंको शिक्षा देनेके कारण जाकर कुरुक्षेत्रमें यज्ञ किया ॥४॥ बड़ी तीर्थयात्रामें सम्पूर्ण भरतखण्डकी प्रजा आयी; उसी प्रकार वृष्णि, अक्रूर, वसुदेव, राजा उग्रसेनादि यादव ॥ ५ ॥ अपना अपना पाप दूर करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें आये ! गद,

प्रद्युम्न, सांबादि श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र आये, परन्तु सुचन्द शुकसारण सहित अनिरुद्ध और कृतवर्मा ये दोनों द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिये रह गये ॥६॥ बड़े तेजस्वी सुवर्णकी माला और दिव्य फूलोंकी माला वस्त्र कवच धारण किये यादव देवताओंके विमानोंके समान प्रकाशमान और जलतरंगके समान चञ्चल घोड़े और बादलोंकीसी कांति ऐसे हाथियोंके ऊपर विद्याधरोंकीसी कांतिवाले सिपाहियों सहित यादव मार्गमें जाते हुए देवांगनासहित देवताओं के समान शोभायमान होने लगे ॥७॥८॥ बड़े भाग्यवान् बहुत सावधान यादवोंने कुरुक्षेत्रमें व्रत स्नान कर वस्त्र और फूल सुवर्णकी माला पहनाकर गौ ब्राह्मणोंको दान करके दीं ॥९॥ इसके उपरांत यादवोंने परशुरामजीके

ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥ गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ॥७॥ व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चनमालिनः ॥ दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥८॥ तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ॥ ९ ॥ रामह्रदेषु विधिवत् पुनराप्लुत्य वृष्णयः ॥ ददुः स्वन्नं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥१०॥ स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायाङ्घ्रिपाङ्घ्रिषु ॥ ११ ॥ तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्संबन्धिनो नृपान् ॥ मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् ॥ १२ ॥ काम्बोजकैकयान् मद्रान् कुन्तीनानर्तकेरलान् ॥ अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान् परांश्च शतशो नृप ॥ नन्दादीन् सुहृदो गोपान् गोपीश्चोत्कण्ठिताश्चिरम् ॥१३॥ अन्योऽन्यसंदर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ॥ आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥ १४ ॥

सरोवरमें मुक्तस्नान कर "श्रीकृष्णचन्द्रमें हमारी भक्ति हो" यह संकल्प करके ब्राह्मणोंको बहुतसा सुवर्ण दान दिया ॥ १० ॥ इसके उपरांत उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा पाकर यादव आप यथेच्छ भोजन कर शीतल छायायुक्त वृक्षोंके नीचे बैठ गये ॥११॥ हे परीक्षित् ! वहां मत्स्य, उशीनर, कोशल, विदर्भ, कुरु,सृञ्जय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त्त, केरल देश के वासी अपने मित्र बांधव व राजा और दूसरे भी अपने पक्षके और परपक्षके सैकड़ों मनुष्य और नन्द आदि अपने प्रिय स्नेही ग्वाल व बहुत दिनोंकी उत्कण्ठावाली गोपियें प्रभृति जो आये उन सबको देखा ॥१२॥१३॥ परस्पर दर्शनसे उत्पन्न हुए आनन्दके वेगसे प्रफुल्लित हृदय और कमलसा मुख शोभायमान, पुलकित शरीर,

प्रेमसे रुद्ध कंठ, नेत्रोंसे जल बहाते परस्पर आलिंगन करते यादव और दूसरे लोग बड़े आनंद मग्न हो गये ॥१४॥ अत्यन्त स्नेहभरी मुसकान, निर्मल कटाक्षयुक्त दृष्टि और स्नेहके आंसू नेत्रोंमें भरे स्त्री स्त्रियोंको देख केशर लगे स्तनोंको स्तनोंसे लगाकर भुजा पसार परस्पर मिलने लगीं ॥१५॥ छोटी अवस्थावाले बड़ोंको प्रणाम करके वह यादव वृद्धोंको प्रणाम कर "भले आये, प्रसन्न हो !" इस प्रकार कुशल पूछकर आपस में कृष्ण कथाओं को पूछने लगे॥१६॥कुन्ती भाई, बहन, भतीजे, माता, पिता और भाइयोंकी बहुओंको देख तथा मुकुन्द श्रीकृष्ण-चन्द्रको देख आपसमें प्रेमकी बातचीत कर नेत्रोंमें आंसू बहाने लगी ॥ १७ ॥ कुन्ती बोली कि हे आर्य ! मैं अपनेको अपूर्णमनोरथ

स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामलापाङ्गदृशोऽभिरेभिरे ॥ स्तनैः स्तनान् कुंकुमपङ्करूषितान् निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥ १५ ॥ ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैरभिवन्दिताः ॥ स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथां मिथः ॥ १६ ॥ पृथा भ्रातॄन् स्वसुर्वीक्ष्य तत्पुत्रान् पितरावपि ॥ भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दं च जहौ संकथया शुचः ॥ १७ ॥ कुन्त्युवाच ॥ आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ॥ यद्वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ॥ १८ ॥ सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि ॥ नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ १९ ॥ वसुदेव उवाच ॥ अम्ब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान् नरान् ॥ ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥ २० ॥ कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशो दश ॥ एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ॥ आसन्नच्युतसंदर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥ २२ ॥

मानती हूँ, क्योंकि जब मुझपर विपत्ति पड़ती है तो श्रेष्ठ लोग मेरी बातको स्मरण भी नहीं करते॥१८॥जिससे दैव रुष्ट हो जाता है, उसको कोई भी सम्बन्धी अर्थात् जातिवाले, पुत्र, भाई, माता, पिता ये स्मरण नहीं करते ॥१९॥ वसुदेवजी बोले कि हे बहन ! दैव के खिलौने ऐसे हम मनुष्योंको दोष मत लगाओ, क्योंकि लोक ईश्वर के अधीन होकर कर्म करता है और ईश्वरही कर्म कराता है ॥२०॥ प्रथम हम कंससे अत्यन्त दुःखित हो सब दिशाओंमें चले गये थे दैवकी इच्छासे अभी अपने स्थानपर आये हैं ॥२१॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि हे राजा परीक्षित् ! वसुदेव उग्रसेनादिक यादवोंसे पूजित हो वे राजालोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर सुखपूर्वक परमानन्दमें मग्न हो गये ॥२२॥

हे राजाओंके इन्द्र राजा परीक्षित ! भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्र, पुत्रोंसहित गान्धारी, स्त्रियोंसहित पाण्डव, कुन्ती, सञ्जय, बुद्धिमान् विदुर, कृपाचार्य ॥ २३ ॥ कुंतिभोज, राजा विराट्, भीष्मक और नग्नजित्, पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, काशीनरेशसहित धृष्टकेतु, बड़े नेत्रवाला राजा दमघोष, मिथिला देशका राजा, मद्रदेशका राजा और कैकय देशका राजा युधामन्यु, सुशर्मा और पुत्रों सहित बाह्लीकादिक महाराज युधिष्ठिरके आज्ञाकारी सम्पूर्ण राजा रानियोंसहित अत्यन्त शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका रूप देखकर परम आश्चर्य मानने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ दर्शन करने के उपरांत रामकृष्णसे भले प्रकार सत्कार

भीष्मो द्रोणोऽम्बिकापुत्रो गान्धारी ससुता तथा ॥ सदाराः पाण्डवाः कुन्तीः सृञ्जयो विदुरः कृपः ॥२३॥ कुन्तिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ॥ पुरुजिद् द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः स काशिराट् ॥ २४ ॥ दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ ॥ युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥२५॥ राजानो ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरमनुव्रताः ॥ श्रीनिकेतं वपुःशौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥२६॥ अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्त समर्हणाः ॥ प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन् कृष्णपरिग्रहान् ॥ २७ ॥ अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ॥ यत्पश्यथासकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥ २८ ॥ यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ॥ भूः कालभर्जितभगाऽपि यदङ्घ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ २९ ॥

पाकर राजा लोग श्रीकृष्णचन्द्रादिक यादवोंकी प्रशंसा करने लगे ॥२७॥ "अहो ! महाराज उग्रसेन ! यहां मनुष्योंमें जन्म तो आपका ही सफल है, क्योंकि जिनके दर्शन योगीजनोंको भी दुर्लभ हैं उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आप नित्यप्रति दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ वेद जिनकी स्तुति कीर्ति वर्णन करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका धोवन गंगाजल और मुखारविन्दका वचनरूप वेद इस विश्वको अत्यन्त पवित्र करते हैं और कालसे दग्ध माहात्म्य जाननेवाली पृथ्वी भी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलके स्पर्शसे शक्तिमती हो हमारी

---

* शंका—मुनिसत्तम युधिष्ठिरकी आज्ञा करनेवाले राजा श्रीकृष्णको स्त्रीसहित देखकर विस्मयको क्यों प्राप्त हुए ?

उत्तर—सब शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके वचनको राजा लोग मुनियोंके मुखसे सुनते थे कि स्त्री सदा नरककी देनेवाली है, जो कोई प्राणी मोक्षकी अभिलाषा करे वह स्त्रीकी संगति न करे, फिर स्त्रियों सहित श्रीकृष्णको देखकर राजाओंने कहा कि जिस-जिस कामको श्रीकृष्ण बुरा कहते हैं उसी कामको आप करते हैं; इस प्रकार स्त्रियोंके वश हुए श्रीकृष्णको देखकर राजा लोगों ने बड़ा संदेह किया ।

चारों ओरसे सम्पूर्ण कामना पूर्ण करती है ॥२९॥ उन श्रीकृष्णचन्द्रके संग दर्शन, स्पर्श, अनुसरण, आसन, गोष्ठी, पलंग, भोजन, विवाह और सपिंडताके सम्बन्धसे बँधे हुए हो और आप यद्यपि नरकके मार्गरूप गृहमें वास करते हो परन्तु तो भी तुम्हारे घरमें स्वर्ग व मोक्षकी तृष्णा निवृत्त करनेवाले विष्णु भगवान् आप ही प्रकट हुए हैं इसलिये तुम्हारा जन्म सफल है" ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित ! नन्दरायजी कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णचन्द्रादि यादवों का आगमन जान गोपों सहित और गाड़ियोंमें लदी वस्तुसहित देखनेके लिये यादवोंके पास आये ॥ ३१ ॥ बहुत दिनोंसे जिनका दर्शन नहीं हुआ ऐसे कायरचित्त यादव नन्दरायजीको देख अत्यन्त

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसपिण्डबन्धः ॥ येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्तत्र यदून् प्राप्ताञ्ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ॥ तत्रागमद् वृतो गोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः ॥ परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥ ३२ ॥ वसुदेवः परिष्वज्य संप्रीतः प्रेमविह्वलः ॥ स्मरन् कंसकृतान् क्लेशान् पुत्रन्यासं च गोकुले ॥३३॥ कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ॥ न किंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह ॥ ३४ ॥ तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥ ३५ ॥ रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ॥ स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ॥ ३६ ॥

प्रसन्न हो जैसे प्राण देहमे आनेसे इंद्रियें उठकर सम्मुख होती हैं उसी प्रकार सम्मुख जाकर चिरकालसे दर्शन न पानेसे उत्कंठित हो गाढ़ा आलिंगन कर परस्पर मिले ॥ ३२ ॥ वसुदेवजी नन्दरायजीसे मिल प्रसन्न हो प्रेममें विह्वल हो गये और कंसके दिये कष्टको गोकुलमें जैसे कृष्णको पहुँचा आये थे, उसका स्मरण किया ॥३३॥ हे राजन् ! कृष्ण बलदेव माता पिता नन्द व यशोदासे मिलकर प्रणामकर ऐसे प्रेममें विह्वल हो गये कि आंसुओंसे कंठ रुक गये, इसलिये कुछ भी न बोला गया ॥ ३४ ॥ महाभाग यशोदा और नन्दजी कृष्ण बलदेवको अपने आसनपर बैठाकर भुजाओंसे आलिंगन कर नेत्रोंसे आंसू बहाने लगे ॥ ३५ ॥ पीछे रोहिणी और देवकी ब्रजकी रानी यशो-

दासे मिल व यशोदा की मित्रताका स्मरण कर आंसू भर यह कहने लगी ॥३६॥ कि हे ब्रजकी महारनी ! जिसका बदला न हो सके, ऐसी तुम्हारी मित्रताको कौन भूल सकता है ? और देवराज इन्द्रका ऐश्वर्य पाकर भी इस संसारमें तुम्हारी मित्रता का बदला नहीं हो सकता ! हे यशोदे ! जिन्होंने अपने माता पिताको नेत्रोंसे नहीं देखा, ऐसे कृष्णबलदेवका माता पितारूप तुम्हारे पास रखे, तब तुमसे लालन, पालन, पोषण, वृद्धि पाकर निर्भय तुम्हारे पास वास करने लगे, जैसे पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं उसी प्रकार तुमने इनकी रक्षा की यह तुमको योग्य ही है, क्योंकि साधुओंको अपना बिराना इस प्रकार बुद्धि नहीं होती ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जिसके दर्शन में पलकोंकी ओट पड़नेसे पलकोंके रचनेवाले विधाता को गालियां देती हैं, क्योंकि वह अतिप्यारे श्रीकृष्णचन्द्र

का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ॥ अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥ ३७ ॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ॥ प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्ताव कुत्र च भयौ न सतां परः स्वः ॥३८॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्म कृतं शपन्ति ॥ दृग्भिर्हृदि कृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ३९ ॥ भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः ॥ आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४० ॥ अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ॥ गतांश्चिरायिताञ्शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥४१॥ अप्यवध्यायथाऽस्मान्स्विदकृतज्ञा विशङ्कया ॥ नूनं भूतानि भगवान्युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४२ ॥

बहुत दिनोंमें दृष्टिगोचर हुए,इसीलिये नेत्रद्वारा उन्हें हृदयमें स्थापितकर समाधिनिष्ठ योगियोंको भी जिसकी प्राप्ति बहुत कठिन है उन श्रीकृष्णचन्द्रके भाव (अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रके रूप) को उन गोपियोंने प्राप्त किया ॥३९॥ इसी प्रकार प्रेमभरी गोपियों के पास एकान्तमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जाकर आलिंगन कर कुशल पूछ मुसकाकर यह वचन बोले कि ॥ ४० ॥ हे सखियो ! हम अपने बांधवोंके कार्य करनेकी कामनासे गये थे और वहां वैरियोंके पक्षका नाश करनेमें लग गये जिससे बहुत दिनों तक रुक गये, सो तुमने हमारा भी कभी स्मरण किया ? ॥ ४१ ॥ "यह कृतघ्नी है" क्या ऐसे तुमको हमपर कुछ क्रोध तो नहीं उत्पन्न होता ? हां,हमको त्यागकर आप चले गये

इससे यह बात सत्य है, इस प्रकार गोपियोंकी ओरसे संभावना करके कहते हैं कि दैव ही प्राणियोंको मिलता है और वही वियोग करा देता है ॥ ४२ ॥ जैसे वायु बादलोंके समूहको, तृणोंको, रुईको और धूलिको उड़ाकर संयोग करता है फिर वियोग करता है उसी प्रकार सब प्राणियोंका उत्पत्तिकर्त्ता ईश्वर सबको मिलता है और फिर अलग अलग कर देता है इसमें मेरा क्या दोष है ? ॥४३॥ प्राणियोंकी मुझमें भक्ति ही जन्म और मृत्युसे छुड़ाती है, तुम्हारा मुझमें स्नेह हुआ है इसलिये मुझे प्राप्त होगी यही बड़ा मंगल है ॥४४॥ कैसे तुम हो, जिन्हें स्नेह करके हम पावेंगी ऐसी इच्छा सब गोपियोंकी हुई तो अपना रूप कहते हैं कि हे गोपियो ! जैसे पञ्चभूतोंके बने घटादिकके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकश ये, आदिमें भी और अंतमें भी हैं, इसी प्रकार जरायुज, मनुष्य तथा पशु आदि और अण्डोंसे जन्म पानेवाले पक्षी इत्यादिक और पसीनेसे जन्मवाले खटमल जुँये इत्यादि और उद्भिज्ज अर्थात् वृक्षादि चार प्रकारके आदिमें भी मैं हूँ और अन्तमें भी

वायुर्यथा धनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ॥ संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत ॥ ४३ ॥ मयि भक्तिर्हि-भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥४४॥ अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ॥ भौतिकानां यथा खं वा भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥ ४५ ॥ एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः ॥ उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥ ४६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ॥ तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥ ४७ ॥

मैं हूँ । भीतर बाहर होनेके कारण व्यापक हूँ ऐसे मुझे तुम प्राप्त हुई हो ॥४५॥ यहां एक शंका है कि चार प्रकार के प्राणियोंका भोक्ता आत्मा आदि, अन्तमें है और व्यापक आत्मामें सब प्राणी वास करते हैं फिर तुम्हारी प्राप्ति हमे कैसे हुई ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि मृत्तिका घटादिके आदिमें भी है और अन्तमें भी ऐसे चार प्रकार के प्राणी अपने कारणसे भूतोंमें वर्तमान कहते हैं भोक्ता आत्मामें नहीं रहता है, आत्मा देहमें भोक्तारूपसे व्यापक है। पंचभूतरूप देहरूप भोग करने योग्य पदार्थ और भोग करनेवाले आत्मा परिपूर्णरूप मुझमें प्रकाशित देखो ॥४६॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपका उपदेश कर गोपियोंको समझाया तब श्रीकृष्णचन्द्रके स्मरणसे उनके लिंगदेह छूट गये, उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति की ॥ ४७ ॥

गोपी बोलीं कि हे कमलनाभ श्रीकृष्ण ! बड़े ज्ञानी योगीश्वरोंके ध्यान करने योग्य और संसाररूपी कुएँमें गिरे प्राणियोंके निकालनेका आश्रय तुम्हारे चरणकमल घरमें रहनेपर भी सदा हमारे मनमें स्मरण बना रहे, यही वर मांगती हैं ॥४८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ दोहा–कही नारियोंकी कथा, सकल तिरासी अंक । पाणिग्रहण जैसे कियो, श्रीब्रजचन्द निशंक ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशीय राजा परीक्षित् ! गोपियोंके गुरु और शरण-

आहुश्च ते नलिननाभं पदारविन्दं योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहं-जुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तथानुगृह्य भगवान् गोपीनां स गुरुर्गतिः ॥ युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्चसुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥ त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ॥ प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥ कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ॥ पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ ३ ॥

दायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोपियोंपर अनुग्रह करके पीछे राजा युधिष्ठिरसे और सब सुहृदोंसे कुशल पूछी * ॥ १ ॥ इस प्रकार लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कुशल पूछने और सत्कार करनेसे भगवान्के चरणकलके दर्शनसे पापरहित हो वे सब लोग प्रसन्न होकर कहने लगे ॥२॥ हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्दका रस, जो कि अभी महात्मा लोगोंके मन द्वारा प्रकट हुआ है और जो देह धारण

* शंका—वेद, शास्त्र, पुराणोंका यह प्रमाण है कि तीन लोकमें जो चराचर जीव हैं उन सब जीवोंके भगवान् गुरु हैं और गति भी हैं, फिर व्यासजीने सब जीवोंको त्यागके भगवान्को गोपियोंका ही गुरु तथा गति क्यों कहा !

उत्तर—"गोपीनां गुरुर्गतिः" इस श्लोकमें व्यासजी ब्रजकी गोपी जो श्रीकृष्णकी प्यारी थीं उनको गोपी नहीं कहे थे, इस श्लोकका अर्थ तो व्यासजीने ऐसा किया है कि गो शब्दको संसार भी कहते हैं, शास्त्रोंमें ऐसा कहा है गो कहिये चराचर संसार उसका जो पालन करे उसका नाम गोप है। गोप भगवान् हैं तथा गोपी भगवान्की माया है वही मायारूप लक्ष्मी हैं, ऐसा अर्थ गोपीका व्यास भगवान्ने किया है। मायाके और जगत्के पति जो भगवान् हैं सो श्रीकृष्ण होकर पृथ्वीमें विराजमान थे, इसलिये मायाके पति और गुरु भी भगवान् हैं, क्योंकि मायारूप संसार है इसलिये श्रीकृष्णको गोपीपति और गुरु व्यासजीने कहा था, अकेले ब्रजवासियोंके पति व गुरु नहीं कहा था।

करनेवालोंके देहमें अभिमान उत्पन्न करनेवाली अविद्याको काटता है, उसे जो कर्णरूप दोनाओंसे पान करते हैं उन पुरुषोंके अमंगल कहां ? ॥ ३ ॥ स्वरूपके प्रकाशसे बुद्धिकृत जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था दूर होनेके कारणसे सम्पूर्ण आनन्दके समूहरूप, आवरणरहित, अकुण्ठ चैतन्य, शक्तिमान् कालसे नष्ट हुए वेदकी रक्षा करनेके लिये योगमायाको अंगीकार कर मनुष्यदेह धारण करनेवाले और परमहंसकी प्राप्तिके योग्य तुमको हम बारंबार नमस्कार करते हैं ॥४॥ योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार निर्मलकीर्ति पुरुषोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लोग प्रशंसा कर रहे थे कि इतनेमें अन्धक और कौरवोंकी स्त्रियें एकत्र हो परस्पर भगवत्स-

हित्वाऽऽत्मधामविधुतात्मकृतत्र्यवस्थामानन्दसंप्लवमखण्डमकुण्ठबोधम् ॥ कालोपसृष्ट निगमावन आत्तयोगमाया-कृतिं परमहंसगतिं नताः स्मः ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ॥ समेत्य गोविन्दकथा मिथो गृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जाम्बवति कौसले ॥ हे सत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥ हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान् स्वयम् ॥ उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन् स्वमायया ॥ ७ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः ॥ निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥

म्बन्धी जो बातें करती थीं, जो त्रिलोकीमें गायी हैं वही कथा तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ५ ॥ द्रौपदी बोली कि हे रुक्मिणि हे भद्रे ! हे जाम्बवती ! सत्यभामा ! हे सत्या ! हे कालिन्दि ! हे मित्रविंदा ! हे रोहिणी ! हे लक्ष्मणा ! और हे सोलह सहस्र श्रीकृष्णकी रानियो ! स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी मायासे मनुष्य लीला कर जैसे तुम्हारे साथ विवाह किया सो सब बातें हमारे सम्मुख कहो ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणी बोली कि जरासन्धादिक राजाओंके संग जब धनुष उठाकर शिशुपाल मुझे व्याहनेके लिये आया तो अजित योद्धाओंके मस्तकपर चरण धरे जैसे भेंड़ बकरियोंके समूहमेंसे सिंह अपने बलिको बेखटके ले जाता

है, उसी प्रकार मुझे ले आये, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र लक्ष्मीनिवासके चरणोंकी मैं पूजा करती हूँ ॥ ८ ॥ इसके उपरांत सत्यभामा अपने विवाहकी बात कहने लगी कि भ्रातृवधके परितापसे दुःखितहृदय मेरे पिता सत्राजित्‌ने मिथ्या कलंक लगाया, उसको मिटानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ऋच्छराज जाम्बवान्‌को जीत मणि लाकर मेरे पिताको दी तो मिथ्या कलङ्क लगानेसे मेरे पिताने भयभीत हो अक्रूरादिको देना स्वीकार करके भी मुझे श्रीकृष्णचन्द्रको ही दिया ॥ ९ ॥ जाम्बवतीने कहा—मेरे पिताने इन वासुदेवको "यह अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं, ऐसे न जानकर इनसे सत्ताइस दिनतक संग्राम किया" इसके उपरांत "यह अपने स्वामी साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी हैं" इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय होनेपर मेरे पिताने चरणोंमें गिरकर भेंटकी नाईं मणिसहित मुझे भी अर्पण कर दिया; यह सुन

सत्यभामोवाच ॥ यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ॥ जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात् स तेन भीतः पिताऽदिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥ जाम्बवत्युवाच ॥ प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदेवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्ययुध्यत ॥ ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाऽहममुष्य दासी ॥ १० ॥ कालिन्द्युवाच ॥ तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया ॥ सख्योपेत्याग्रहीत् पाणिं योऽहं तद्‌गृहमार्जनी ॥११॥ मित्रविन्दोवाच ॥ यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान् निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः ॥ भ्रातॄंश्च मेऽपकुरुतःस्वपुरं श्रियोकस्तस्यास्तु मेऽनुभवमङ्‌घ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥ सत्योवाच ॥ सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान् पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ॥ तान् वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन् बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥

कर द्रौपदीने कहा तुम बड़ी श्रेष्ठ हो, इसके उत्तरमें जाम्बवती बोली कि मैं तो इनकी दासी हूँ ॥ १० ॥ कालिन्दी बोली कि मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणस्पर्शकी आशासे तप कर रही थी, भगवान्‌ने अर्जुनसहित आकर मेरा हाथ पकड़ लिया, उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं बुहारी देनेवारी हूँ ॥ ११ ॥ मित्रविंदा बोली—लक्ष्मीके वक्षनिवास भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयंवरमें जा राजाओंको जीत और उनका तिरस्कार कर मेरे भाइयोंको भी जीत हाथियोंका शत्रु सिंह जैसे कुत्तोंके बीचमेंसे अपने भक्ष्यको ले आता है उसी प्रकार मुझे अपने पुरमें ले आये, उन श्रीकृष्णचन्द्रके चरण धोनेकी सेवा मुझे जन्म जन्ममें प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ १२ ॥ सत्या बोली कि बड़े बलवान् परा-

क्रमी बड़े पैने सींगवाले और शूरवीरोंके घमण्डको चूर्ण करनेवाले राजाओंकी परीक्षा लेनेके कारण मेरे पिताके पाले हुए सात बैलोंको पकड़ जैसे बालक काष्ठकी बकरियोंके बच्चोंको बांधता है, उसी प्रकार भगवान्ने बांध लिये ॥१३॥ पराक्रम ही है मोल जिसका ऐसी मुझे हाथी, घोड़े, प्यादों सहित व दासियों सहित मार्गमें क्षत्रियोंको जीत श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार लाये, उनकी मैं सदा दासी रहूँ, यही प्रार्थना है ॥१४॥भद्रा बोली कि हे द्रौपदी! मेरा मन श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त जान मेरे पिताने मेरे मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाकर मुझे अक्षौहिणी सेना सहित दे दिया ॥१५॥ अनेक कर्मोंसे भटकनेवाली मुझेजन्म-जन्ममें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त हो, जिन चरणारविन्दोंके स्पर्शसे मोक्षनाम कल्याण मुझे प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥१६॥ लक्ष्मणा बोली कि हे रानी द्रौपदी! वारंवार देवर्षि नारदजीके गाये हुए

य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरङ्गिणीम् ॥ पथि निर्जित्य राजन्यान् निन्ये तद्दास्यमस्तु मे॥१४॥भद्रोवाच ॥ पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान् ॥ कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥१५॥ अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥ १६ ॥ लक्ष्मणोवाच ॥ ममापि राज्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ॥ चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥ १७ ॥ ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ॥ बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत्॥१८॥यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ॥अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥ १९ ॥

भगवान् वासुदेवके जन्म, कर्म श्रवण कर, आश्चर्य है कि लक्ष्मीजीने भी लोकपालोंको त्यागकर श्रीकृष्णचन्द्रको ही वरण किया, इस प्रकार विचार कर मेरा मन भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लग गया ॥१७॥ हे सुशीले द्रौपदी! पुत्रीपर हित करनेवाले बृहत्सेन नाम विख्यात मेरे पिताने मेरे मनकी बात जान श्रीकृष्णचन्द्रके आनेके लिये उपाय किया ॥१८॥ हे रानी द्रौपदी। जैसे तुम्हारे स्वयंवरमें अर्जुनके आनेके लिये मत्स्य रचा गया था, उसी प्रकार मेरे पिताने भी मत्स्य रचा; यह सुन द्रौपदी बोली कि फिर अर्जुनने उस मत्स्यको क्यों नहीं वेधा? इसके उत्तरमें लक्ष्मणाने कहा कि तुम्हारे स्वयंवरकी मछली बाहर ढकी थी, भीतरसे नहीं ढकी थी, इसलिये खम्भमें लगाकर ऊपरको दृष्टि करके देख-

नेसे दिखायी देती थी और मेरे स्वयंवरकी मछली ऐसे नहीं थी, किन्तु खम्भकी जड़में धरे हुए कलशके जलमें केवल परछाईं दिखायी देती थी, देखना तो नीचे जलमें और वेधना ऊपर, ऐसी मछलीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना और कौन वेध सकता ? ॥१९॥ स्वयंवर रचा है यह बात सुनकर संपूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले उपाध्याय अर्थात् सिखानेवालोंको सङ्ग ले सहस्रों राजा मेरे पिताके पुरमें आकर उपस्थित हुए, उस समय जैसा जिसका पराक्रम और जैसी जिसकी अवस्था थी उसी प्रकार उसका पूजन मेरे पिताने किया, इसके पीछे कोई भी राजा मुझमें मन लगने के कारण हाथमें धनुष उठाकर मत्स्यके वेधनेको सभामें समर्थ न हुआ ॥२०॥२१॥ बहुत से राजाओंने तो धनुष हाथमें ले पटक दिया, बहुतसे प्रत्यंचा को खींच धनुषके चपेटसे ही गिर पड़े ॥ २२ ॥ और जो शूरवीर जरासन्ध,

श्रुत्वैतत् सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ॥ सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥२०॥ पित्रा संपूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः ॥ आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥ २१ ॥ आदाय व्यसृजन् केचित् सज्यं कर्तुमनीश्वराः ॥ आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुनाहताः ॥ २२ ॥ सज्यं कृत्वाऽपरे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः ॥ भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम्॥२३॥मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ॥ पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत् पस्पृशे परम् ॥२४॥ राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ॥ भगवान् धनुरादाय सज्यं कृत्वाऽथ लीलया ॥२५॥ तस्मिन् संधाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ॥ छित्त्वेषुणाऽपातयत् तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥ २६ ॥

अम्बष्ठ, चन्देलीका राजा, भीम, दुर्योधन कर्ण ये लोग भी अपने अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर मछली कैसे लगी है ? यह भी जाननेको समर्थ न हुए ॥ २३ ॥ इसके उपरांत जलमें मछलीकी परछाईं देख ऐसे मछली लगी है, सो जान उपाय करनेवाले अर्जुनने बाण चलाया वह बाण मछलीसे स्पर्श तो हो गया परन्तु मछली कटी नहीं ॥ २४ ॥ जब समस्त क्षत्रिय हारकर बैठ रहे तब अभिमानियोंका अभिमान दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धनुष हाथमें ले, लीला पूर्वक प्रत्यंचा चढ़ाकर, धनुषमें बाण लगा और एक ही बार मछलीको जलमें देख मध्याह्न समय अभिजित् नक्षत्रमें अर्थात् सब कार्य सिद्ध करनेवाले मुहूर्त्तमें मछलीको बाणसे काटकर पटक

दिया ॥२५॥२६॥ उस समय स्वर्गमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे, पृथ्वीमें "जय हो जय हो" इस प्रकार शब्द होने लगा और देवता लोग आनंदमें मग्न हो आकाशसे वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ हे द्रौपदी ! इसके उपरान्त लाजभरी हँसनयुक्त मुख और चोटी में पुष्पमाला गुथे नवीन रेशमी सुन्दर धोती, चद्दर पहनकर सुवर्णकी जड़ी रत्नोंकी माला हाथमें ले और मनोहर नूपुरवाले चरणोंसे मैं रंगभूमिमें आयी ॥२८॥ और श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्तहृदय मैं बड़े केश और कुण्डलोंसे शोभायमान कपोलवाले मुखको उठा सन्तापको दूर करनेवाले हास्य–कटाक्ष–पूर्वक चितवनसे चारों ओरके राजाओंको देख धीरे धीरे जाकर मुरारि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें माला डाल

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ॥ देवाश्च कुसुमासारान् मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥ तद्रङ्गमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वलरत्नमालाम् ॥ नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदना कबरीधृतस्रक् ॥ २८ ॥ उन्नीय वक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड्गण्डस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ॥ राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥ २९ ॥ तावन्मृदङ्गपटहाः शंखभेर्यानकादयः ॥ निनेदुर्नटनर्तक्यो नन्नृतुर्गायका जगुः ॥३०॥ एवं वृते भगवति मयेशे नृपयूथपाः ॥ न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥ मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् ॥ शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥ ३२ ॥ दारुकश्चोदयामास काञ्चनोपस्करं रथम् ॥ मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥ ३३ ॥

दी ॥२९॥ उस समय मृदंग, शङ्ख, भेरी, नगाड़े आदि बाजे बजने लगे, नट और नृत्यकारी नाचने लगे और गाने लगे ॥ ३० ॥ हे यज्ञसेन की पुत्री द्रौपदी ! इस प्रकार मैंने जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने वशमें किया तब ईर्षा और कामसे आतुर राजाओंके यूथने यह बात नहीं सहन की ॥ ३१ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त शोभायमान चार घोड़े जुते रथमें उस समय मुझे बैठालकर शार्ङ्गधनुष को ले कवच पहने चार भुजायुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र खड़े हो गये ॥ ३२ ॥ हे रानी द्रौपदी ! तब रथवान्ने सुनहरी साजका रथ हांक दिया और जैसे मृगोंके देखते सिंह चला जाता है, उसी प्रकार राजाओंके बीचमेंसे उनके देखते ही चले आये ॥ ३३ ॥

इनको जाता देखकर बड़े बड़े क्षत्रिय राजा पकड़नेके लिये पीछे पीछे दौड़े और कोई राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके रोकनेको आगे जाकर धनुषको ऊँचा उठा. जैसे सिंहके रोकनेको कुत्ता खड़ा होता है, उसी प्रकार मार्गमें सावधान होकर खड़े हो गये ॥ ३४ ॥ शार्ङ्ग-धनुषके छूटे हुए बाणोंके समूहसे भुजा, पांव, नार कटनेसे अनेक क्षत्रिय युद्धमें गिर गये और बहुतसे संग्रामको छोड़कर भाग गये ॥३५॥ इसके उपरांत यादवोंके पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शोभायमान सूर्यका आवरण करनेवाली ध्वजाके वस्त्रोंसे शोभित, और चित्रविचित्र बन्दनवार माला बँधी, स्वर्ग, और पृथ्वीमें जिसकी स्तुति हो ऐसी द्वारका पुरीमें अस्ताचलमें सूर्यके समान प्रवेश किया ॥३६॥

तेऽन्वसज्जन्त राजन्या निषेद्धुं पथि केचन ॥ संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥ ३४ ॥ ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ॥ निपेतुः प्रधने केचिदेके संत्यज्य दुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ ततः पुरीं यदुपतिरत्यलङ्कृतां रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ॥ कुशस्थलीं दिविभुवि चापि संस्तुतां समाविशत् तरणिरिव स्वकेतनम् ॥ ३६ ॥ पिता मे पूजयामास सुहृत्संबन्धिबान्धवान् ॥ महार्हवासोऽलङ्कारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥ ३७ ॥ दासीभिः सर्वसंपद्भिर्भटेभरथवाजिभिः ॥ आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥ ३८ ॥ आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ॥ सर्वसंगनिवृत्त्याऽद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽथ नः क्षिति जये जितराजकन्याः ॥ निर्मुच्य संसृतिविमोक्षमनुस्मरन्तीः पादाम्बुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥ ४० ॥

इसके उपरांत मेरे पिताने सुहृदयतासे गोत्री और बन्धुओंका बड़े मोलके वस्त्र, गहने, शय्या, आसन और साजसे पूजन किया ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण सम्पत्तिमान् दासी और प्यादे, रथ, हाथी, घोड़े और बहुत मोलके वस्त्रों सहित मुझे मेरे पिताने परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रको दिया ॥ ३८ ॥ ये आठों हम आत्मामें रमण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सब संग त्याग अपने धर्मसे साक्षात् घरकी दासी हुई हैं ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त सोलह हजार एकसौ रानियां कहने लगीं कि भौमासुरकी दिग्विजयमें जिन हम राजकन्याओंको जीतकर रोक रखा था, उन्हें संसारसे छुड़ानेवाले अपने चरणारविंदका स्मरण करते जान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं पूर्णकाम रहते भी संग्राममें भौमा-

सुर और उसके कुटुम्बको मार हमारे साथ विवाह किया ॥ ४० ॥ हे द्रौपदी ! हम चक्रवर्ती राज्य और इन्द्रपदके भोगका भोगना नहीं चाहतीं और अणिमादिक सिद्धि, ब्रह्मलोग, मोक्ष तथा वैकुंठधामकी भी चाहना नहीं करतीं, किन्तु गदाके धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके लक्ष्मीके कुचोंकी केशर लगे सुन्दर चरणारविन्दोंकी रज अपने माथेके ऊपर चढ़ानेकी चाहना करती हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ महात्मा होते हुए भी गाय चराते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणरजको जैसे गोप, गोपियें, भीलनियें तृण और लतायें चाहना करती हैं उसी प्रकार हम भी उनकी चाहना करती हैं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भोज्यमप्युत ॥ वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥ ४१ ॥ कामयामह एतस्य श्रीमतत्पादरजः श्रियः ॥ कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥ ४२ ॥ व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ॥ गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ ४३ ॥ इति श्रीभाग० महापु० दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ॥ कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥ इति संभाष्यमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ॥ आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥ द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ॥ विश्वामित्रः शतानन्दो भारद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ३ ॥ रामःसशिष्यो भगवान्वसिष्ठो गालवो भृगुः ॥ पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥

दोहा—भयो समागम मुनिनसों, चौरासी अध्याय । संस्कार वसुदेवको, कियो सबनि सुख पाय ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी, सुभद्रा, राजाओंकी स्त्रियें और भक्त गोपियोंने सबके महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें रानियोंका इस प्रकार प्रेम सुन नेत्रोंमें आंसू भर बड़ा आश्चर्य माना ॥१॥ उस कुरुक्षेत्रमें इस प्रकार स्त्रियोंके संग स्त्री, पुरुषोंके संग पुरुष बातचीत करते ही थे कि इतनेमें श्रीकृष्ण—बलदेवका दर्शन करनेको मुनिलोग आये ॥ २ ॥ उनके नाम यह हैं, यथा—वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज और गौतम ॥ ३ ॥ शिष्यों सहित भगवान् परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि,

मार्कंडेय, बृहस्पति ॥ ४ ॥ द्वित, त्रित एकत तथा ब्रह्माके पुत्र अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य तथा वामदेवादि और मुनि भी आये ॥ ५ ॥ विश्वपूजित ऐसे मुनियोंको आया देख राजा आदि जो प्रथम बैठे थे और पांडव अर्थात् राजा युधिष्ठिरादि तथा कृष्णबलदेवने शीघ्र उठकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इसके उपरांत इन मुनियोंका यथायोग्य सब जनोंने पूजन किया और बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र 'भले आये' इस प्रकार मुनियोंसे कह आसन दे अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप और चन्दन इत्यादिसे पूजा करने लगे ॥ ७ ॥ चुपचाप हो सम्पूर्ण जिसमें बैठे ऐसी सभामें धर्मकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक बैठे ब्राह्मणोंसे कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि अहो ! बड़ा आश्चर्य है, आज हम सफलजन्म हुए और सब जन्मका साफल्य हमको प्राप्त हुआ, क्योंकि जिनका

द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथाङ्गिराः ॥ अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥५॥ तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ॥ पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ॥ ६ ॥ तानानर्चुर्यथा सर्वे सह रामोऽच्युतोऽर्चयत् ॥ स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥ उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः ॥ सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् ॥ देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥ किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥११॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ् मनः ॥ उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं विपश्चितोघ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥ १२ ॥

दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ है उन योगीश्वरोंका दर्शन हुआ ॥९॥ हम लोग केवल तीर्थस्नानादिकोंको तप जानते हैं, प्रतिमाको ही देवता स्वरूप मानते हैं, परन्तु आप सरीखे मनुष्योंका दर्शन, स्पर्शन व वार्त्तालाप, प्रश्न, नमस्कार, चरणपूजा आदिकी प्राप्ति कहां से हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती ॥१०॥ जलमय तीर्थ नहीं है सो नहीं हैं, मृतिका शिलाओंके देवता नहीं हैं सो नहीं हैं, क्योंकि जब बहुत दिनोंतक देवताओंकी पूजा करे तब वे पवित्र करते हैं और साधु महात्मा लोग तो केवल दर्शनसे ही पवित्र कर देते हैं ॥११॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, पवन, वाणी, मन यदि इनकी भलीभांतिसे उपासना की जाय, तो भेदबुद्धिके कर्त्ता होने से पुरु-

षके अज्ञानको दूर कर सकते हैं और विवेकी पुरुष तो केवल दो घड़ीकी सेवा करते ही अज्ञानको दूर कर देते हैं ॥१२॥ जो पुरुष वात-पित्त-कफमय देहको ही आत्मरूप समझते हैं और स्त्री पुत्रादिको ही अपना मानते हैं व मूर्त्तिको ही पूज्य समझते हैं और जलको ही तीर्थ जानते हैं और विवेकी पुरुषोंको आत्मरूप व पूज्य तीर्थ इत्यादि नहीं समझते वे गायोंका चारा ढोनेवाले बैल और गधेके समान हैं ॥१३॥ "यहां साधुओंकी महिमा दिखानेका तात्पर्य है, मूर्ति तथा तीर्थका निषेध नहीं और विशेष करके यह दिखाया है कि तीर्थके

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ॥ यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमेधसः ॥ वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्धियः ॥ १४ ॥ चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ॥ जनसंग्रह इत्यूचुःस्मयन्तस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥

जानेमें बहुतेरा द्रव्य उठावें, पूजामें घण्टों बैठें, परन्तु महात्मा और हरिभक्तोंको देखतेही दुर्वाक्य कहें उन्हें अन्न तो क्या जलभी न दें, ऐसे भेदबुद्धिवालोंके लिये यह वाक्य है, ज्ञानी पुरुष तो सबमें ही उसका प्रकाश देखते हैं" श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर चकित बुद्धि हो वे सब ब्राह्मण चुप हो गये ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कर्मोंमें अधिकार बहुत देरतक विचार करके समझा कि लोकोंको शिक्षा देने के कारण हमारी स्तुति करते हैं।

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणोंसे कुरुक्षेत्रमें कहा कि भौम जो प्रतिमा देवताओंकी होती है, उसमें जो प्राणी देवता मानते हैं कि इस प्रतिमामें भगवान् बसे हैं, वे प्राणी नहीं हैं, ऐसा माननेवाले प्राणी बैल वा गधा ही हैं, तथा जलमें तीर्थ मानते हैं कि मैंने इस तीर्थमें स्नान किया मेरी मुक्ति होगी नहीं तो कभी मोक्ष न होगा वह बैल गधा ही होगा,मुझको यह बड़ा आश्चर्य है कि भगवान्ने वेद और शास्त्रके विरुद्ध वचन क्यों कहे ? प्रतिमाकी तथा गंगादिक तीर्थोंकी निंदा क्यों की ? यह बड़ा भारी संदेह है ।

उत्तर—वेदमें और शास्त्रमें दो मार्ग हैं—एक कर्म मार्ग, दूसरा मोक्षमार्ग ! संसारी जीव दोनों मार्गोंका सेवन करते हैं, जो जीव कर्ममार्गका सेवन करता है, जैसे गृहस्थादिक प्राणी प्रतिमामें देवताको मानते हैं तब सेवन करते हैं जो पुरुष प्रतिमामें देवताको जानेंगे तथा प्रतिमाका पूजन करेंगे या जलमें स्नान किये से मोक्ष होना मानेंगे तब निश्चयसेकर्म करनेवाले मनुष्यको गिनतीसे हीन सुख होगा और जो प्राणी प्रतिमाको वेदस्वरूप और जलको मोक्षरूप मान तो वह प्राणी बैल गधा है, श्रीकृष्णने कर्ममार्ग सेवन करनेवाले जीवके लिये यह वचन नहीं कहा, जो जीव संसारके कर्मत्यागकर ईश्वरका भजन करता है उसके लिये वचन कहा है, श्री कृष्ण के वचनमें भ्रम नहीं है ।

इस प्रकार मुनीश्वर लोग बुद्धिसे निश्चय कर कुछेक मुसकाकर जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले ॥ १५ ॥ कि हे तत्त्वके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! हम और विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक जिनकी मायासे मोहित हुए हैं, क्योंकि जिस मायासे आप मनुष्यलीला करनेको गूढ़ रहकर मुनीश्वरके समान चेष्टा करते हो, इसलिये आपकी लीला बड़ी विचित्र है ॥१६॥ चेष्टारहित और एक होकर भी तुम अपने आत्मासे इस विश्वको बहुत प्रकार पालन, उत्पत्ति और क्षय करते हो, जैसे पृथ्वी घटादि विकारोंसे बहुत नामकी होती है । यदि तुम कहो कि मैं कैसे उत्पत्ति, पालन व संहार करता हूँ ? मैं तो वासुदेवका पुत्र हूँ, इसके उत्तरमें कहते हैं कि परिपूर्णरूप तुमने वसुदेवके घर जन्म लिया है, यह विचित्र लीलामात्र है, सत्य नहीं है ॥ १७ ॥ समयपर अपने भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये और दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये आप शुद्ध तत्त्व

यन्माययातत्त्वविदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ॥ यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम्॥१६॥अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा ॥ भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ १७ ॥ अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च ॥ स्वलीलयावेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥१८॥ ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥ १९ ॥ तस्माद् ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ॥ सभाजयसि सद्धाम तद् ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥ अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ॥ त्वया संगम्य सद्गत्या यदन्तःश्रेयसां परः॥२१॥

गुण रूपको धारण करते हो और अपनी लीलासे सनातन वेदमार्गको प्रवृत्त करते हो, यद्यपि तुम किसीके पुत्र नहीं हो, परंतु तो भी चार वर्ण और चार आश्रमके आत्मा परमपुरुष तुम हो, इसी लिये ब्राह्मणोंका बहुत सत्कार करते हो ॥१८॥ शुद्ध वेद तुम्हारा भीतरका रूप है, क्योंकि तप करना, वेद पढ़ना इंद्रियोंका रोकना इन कार्य और कारण दोनोंसे परे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! वेदके कारण आत्मा तुम हो और अपने बतानेवाले ब्रह्मकुलका पूजन करते हो और इसीलिये ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो ॥ २० ॥ इस कारण ईश्वर होकर जो तुम हमारा सत्कार करते हो सो पुरुषोंको शिक्षा करनेके लिये है और हम तुम्हारे संगसे कृतार्थ हुए । साधुओंकी

गति आपका संग हुआ इसलिये हमारे जन्म, विद्या, तप, दृष्टि, यह सम्पूर्ण सफल हुए, क्योंकि तुम सब कल्याणकी अवधि हो ॥ २१ ॥ अकुण्ठित बुद्धि और अपनी योगमायासे गूढ़ महिमावाले परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ मायारूपी चित्रसे ढके, सृष्टि इत्यादिकोंके कारण ईश्वर आत्मा आपको आपके साथ एक ही स्थानमें रहनेवाले यह यादव और राजा लोग नहीं जानते हैं ॥ २३ ॥ जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें मिथ्या पदार्थको सत्य मानता है, मनसे सिंह व्याघ्रादिरूप आप बन जाता है और जाग्रत् अवस्थाके स्वरूपको नहीं जानता ॥ २४ ॥ उसी प्रकार स्वप्नादि तुल्य विषय पदार्थमें इंद्रियोंकी प्रवृत्तिरूप मायासे चला-

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे॥स्वयोगमायया छन्नमहिम्ने परमात्मने॥२२॥न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः॥मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम्॥२३॥यथा शयानःपुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ॥ नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेदरहितं परम् ॥ २४ ॥ एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया ॥ मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥ तस्याद्य ते ददृशिमाङ्घ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ॥ उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा आपुर्भवद्गतिमथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ॥ राजर्षे स्वाश्रमान्गन्तुं मुनयो दधिरे मनः ॥ २७ ॥

यमान चित्त पुरुष विवेकके नाशसे आपको नहीं जानता ॥ २५ ॥ पापोंके समूहोंको दूर करनेवाले गङ्गारूपी तीर्थ जिसमेंसे प्रकट हुआ और दृढ़ योगवाले योगीजन भी जिनका केवल हृदयमें ध्यान करते हैं परन्तु उनको भी तुम दिखायी नहीं देते और तुम्हारे चरणारविन्दोंका हमने प्रत्यक्ष दर्शन किया, इसलिये हमें भक्ति करनेका अनुग्रह करो। यदि कहो कि भक्ति करके क्या करोगे ? पहलेके समान तप करते जाओ, इसका उत्तर देते हैं कि वृद्धिको प्राप्त हुई भक्तिसे जिनके लिंग शरीरका नाश हो गया है, वही पुरुष तुम्हारे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं और नहीं ❋ ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! इस प्रकार मुनीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और राजा धृतराष्ट्र तथा

* दृष्टांत—एक महात्माने कृष्ण नामकी बहुत प्रशंसा की, कि एकवार नाम लेनेसे अनेक पाप दूर हो जाते हैं। चेले बोले महाराज ! फिर यह मनुष्य तो दिनरात नामका स्मरण करते हैं, यह क्यों दुःख पाते हैं ? गुरुजी बोले—महिमा नहीं जाननेसे यह दशा है। चेला मनमें संदेह करने लगा तो बाबाजीने अपने पाससे एक अमूल्य रत्न दे चेलेसे कहा, कुंजड़ीसे पूछ, इसका कितना शाक देगी चेलेने जाकर पूछा, उसने सेरभर शाक देनेको कहा;

युधिष्ठिरसे आज्ञा मांग अपने अपने आश्रमोंमें जानेकी इच्छा करने लगे ॥२७॥ तब महायशस्वी वसुदेवजी उन मुनियों को जाते देखकर उनके समीप आकर सावधानीके साथ कहने लगे ॥२८॥ वसुदेवजी बोले कि सम्पूर्ण देवतारूप तुम हो, सो आपको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ, हे ऋषीश्वरो ! मेरी एक आप से प्रार्थना है सो कृपा करके सुनिये, जिन कर्मोंके करनेसे कर्मोंका नाश होता है, सो हमे बताओ ? ॥२९॥ श्रीकृष्णचन्द्रको छोड़कर हमसे कल्याण पूछने आये हैं, इस प्रकार आश्चर्य मान नारद जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! जो वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र जाननेके कारण अपना कल्याण हमसे पूछते हैं यह आश्चर्य नहीं है ॥ ३० ॥ क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रको

तद वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ॥ प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयन्त्रितः ॥२८॥ वसुदेव उवाच ॥ नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ नाति चित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ॥ कृष्णं मत्वाऽर्भकं यन्नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥३०॥ सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् ॥ गाङ्गं हित्वा यथाऽन्याम्भस्तत्रत्यं याति शुद्धये ॥३१॥ यस्यानुभूतिकालेन लयोत्पत्त्यादिनाऽस्य वै ॥ स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥ तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ॥ प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥

बालक मानना अविद्यासे है। इस संसार में मनुष्योंके पास रहनेसे अनादर होता है, जैसे गंगातटका रहनेवाला पुरुष गंगाको छोड़ शुद्ध होनेके लिये और जलमें स्नान करनेको जाता है ॥३१॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रका ज्ञान किसी कारणसे भी नष्ट नहीं होता वही कहते हैं, जैसे कालसे कांकरी फट जाती है और इस विश्व को उत्पन्न कर पालन और नाश करनेसे भी तुम्हारा ज्ञान नहीं जाता है और जैसे विजली चमककर बिला जाती है और जिस प्रकार गुणोंसे पूर्वरूपका नाश और रूपान्तर की प्राप्ति होती है उस प्रकार नहीं है ॥३२॥ ऐसे जो कृष्ण

—फिर गुरुजीने सराफपर भेजा, उसने बीस रुपये कहे, फिर गुरुजीने जौहरीके पास भेजा उसने करोड़ रुपये कहे, फिर गुरुजीने सबसे बड़े जौहरीके पास रत्न लेकर भेजा, तब उसने कहा—मेरे यहां असंख्य द्रव्य है, परंतु यह तो इस द्रव्यके ब्याजमें है, मेरे यहां इसका मूल्य देनेको द्रव्य नहीं, यह अमूल्य है । चेलेने गुरुजीसे यह सब वृत्तान्त कहा तब गुरुजी बोले—इसी प्रकार कृष्ण नामकी महिमा है । जो जानते हैं, वे संसार सागरसे पार हो जाते हैं और जो नहीं जानते वे कर्म भोगते रहते हैं ।

अद्वितीय ईश्वर और अखंडित ज्ञानरूप हैं उन्हें और मनुष्य जैसे रविमण्डलको बालक राहु वा हिमसे आच्छादित माने उसी प्रकार क्लेश कर्म सुख दुःख गुणोंका प्रवाह और अपने कार्यरूप प्राणादिकसे आच्छादित माने तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इसके उपरांत वह मुनि सब राजा और श्रीकृष्ण बलदेवके सुनते वसुदेवजीको सम्बोधन देकर बोले ॥ ३४ ॥ मुनि बोले कि सब यज्ञोंके ईश्वर विष्णु भगवान्का यज्ञों द्वारा श्रद्धासहित यजन करना यही सर्वोत्कृष्ट कर्मसे कर्म मिटाने का उपाय कहा है ॥ ३५ ॥ पंडित लोगोंने शास्त्ररूप नेत्रोंसे चित्तोपसम और मोक्षका उपाय व शनैः शनैः अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला सुगम स्वधर्म यही

अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदन्दुभिम् ॥ सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥ ३४ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः ॥ यच्छ्रद्धया यजेद् विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥३५॥ चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिःशास्त्रचक्षुषा ॥ दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥ ३६ ॥ अयं स्वस्त्ययनाः पन्थाः द्विजातेर्गृहमेधिनः ॥ यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥३७॥ वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् ॥ आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ॥ ३८ ॥ ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितॄणां प्रभो ॥ यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन् पतेत् ॥ ३९ ॥

दिखाया है ॥ ३६ ॥ गृहस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको यही कल्याणका मार्ग है कि निष्काम होकर प्राप्त हुए शुद्ध द्रव्यसे ईश्वरका भजन करे, क्योंकि महात्मा पुरुषोंकाही द्रव्य यज्ञादिकोंमें लगता है और लोभियोंका धन वृथा जाता है ॥ ३७ ॥ हे वसुदेवजी ! बुद्धिमान्को उचित है कि धनके फलरूप यज्ञ और दान करके धनकी इच्छाका त्याग करे, घरके भोग भोगकर स्त्री पुत्र की तृष्णा त्याग और संसारको नाशवान् जानकर अपनी प्रतिष्ठा और स्वर्गादिक की कामना त्यागे * ॥ ३८ ॥ ग्राममें रहना त्यागकर समस्त वीर पुरुष तप

* दृष्टांत—एक पीपलसाहके छप्पन कोटि द्रव्य था, परंतु रहे बड़े सूम। बेटे कहें कि पिताजी ! गंगापुष्करस्नान करनेको चलो,पुण्य करो, तो वे कहें कि पुण्य करनेसे कुछ नहीं होता है ? और जो हम चलें तो पीछे घर चोर लूटकर ले जायँगे, रास्तेमें लुटे जाओगे। बेटोंने कहा—हम तो जायँगे, संतोंके दर्शन करेंगे। तब वे बोले तुम मेराधन लुटानेको फिरते हो। तब बेटे बोले—हम भीख मांगते चले जायँगे, वे बोले—तो मेरा नाम डुबाओगे, अर्थात् मेरी हँसी कराओगे क्या ? अच्छा यदि तुम्हारे जानेकाही विचार है तो एक काम करो कि गहना कपड़ा सब उतार कर घर दो, मैले कपड़े पहन लो तो जाओ उन्होंने वैसा ही किया तो इन्होंने भोजनमात्र खर्च दिया और यह कह दिया कि—

करनेके लिये वनको चले गये। हे वसुदेवजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, देव, ऋषि, पितृ इन तीनों ऋणोंसे इस जन्ममें उद्धार हो, यज्ञ करके देवताओंका ऋण और विद्या पढ़कर ऋषियोंका ऋण तथा पुत्र उत्पन्न करके पितरोंका ऋण चुकावे। इन ऋणोंके चुकाये विना जो कर्मोंका त्याग करे तो वह पुरुष नरकमें गिरता है ॥ ३९ ॥ हे मतिमान् वसुदेव ! अब तुम दो ऋणसे तो छूट गये, विद्या पढ़े इसलिये ऋषियोंके ऋणसे उद्धार हो गये और पुत्र होनेके कारण पितरोंके ऋणसे उद्धार हो गये, अब यज्ञ करके देवताओंके ऋणसे उद्धार हो तो गृहको त्याग

त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ॥ यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव॥४०॥ वसुदेव भवान् नूनं भक्त्या परमया हरिम् ॥ जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद् वां पुत्रतां गतः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः ॥ तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नानम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥ त एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् ॥ तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥ ४३ ॥ तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः ॥ स्नाताः सुवाससो राजन् राजानः सुष्ठ्वलङ्कृताः ॥ ४४ ॥

संन्यास ग्रहण करो ॥४०॥ और हे वसुदेवजी ! तुमने बड़ी भक्तिसे जगत्के ईश्वर हरि भगवान्का भजन किया था, इसीलिये स्वयं भगवान् हरिने आकर तुम्हारे यहां अवतार लिया ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! उदारमन वसुदेवजी इस प्रकार ब्राह्मणोंका वचन सुन मस्तक नवाके नमस्कार कर उन ऋषियोंसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विजजनोंका वरण करने लगे ॥४२॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! धर्मसे वरणोंको प्राप्त हो ऋषि महात्माओंने वसुदेवजीको कुरुक्षेत्रमें उत्तम सामग्रियोंसे यजन कराया ॥४३॥ हे राजन् ! जिस समय वसुदेवजीको

—पुण्य घत करना और जल्दी आइयेगा। वे सब स्त्री वालक गये, पीछे इन्होंने गढ़ा खोद सब गहना द्रव्य गाड़ दिया। जब वे स्नान कर आये तब यह बोले—तुम नहाने गये पीछे चोरी हो गयी, अब बनियेसे उधार लेकर खाते हैं, हमारे पास कुछ नहीं रहा ऐसा कह बागमें जा बैठे। अब यह विलाप करने लगे कि परमेश्वर भले स्नान करनेको गये कि भोजनसे भी हाथ धो बैठे रहे सन्ध्या समयतक रोते रहे, उस समय महादेवजी सैरको आये और इनको देखकर बोले कि द्रव्य तो कोठेमें दब रहा है, यह कह गये, उन्होंने झट गढ़ा खोद सब धन निकाल लिया और बांटने लगे। पीछेसे पीपलसाह बोले—अरे दुष्टो ! जल्दी किवाड़ खोलो, नहीं तो इसी जगह अपना मस्तक फोड़कर मर जाऊंगा। उन्होंने किवाड़ खोलनेमें देर किया, उन्होंने जाना कि सब धन लुट गया सो शिर फोड़कर मर गये।

यज्ञदीक्षा दी गयी, उस समय कमलोंकी माला पहने हुए यादव स्नान कर शोभायमान वस्त्र धारण कर शृंगार किये हुए बहुतसे राजा आये ॥४४॥ और कण्ठमें धुकधुकी व सुन्दर वस्त्र पहने, केशर चन्दन लगाये राजाओंकी स्त्रियें पूजा सामग्री हाथमें लिये यज्ञशालामें आयीं ॥ ४५ ॥ मृदंग, ढोल, शङ्ख, भेरी नगाड़े आदि बाजे बजने लगे, नट और नृत्य करनेवाली नाचने लगीं, सूत तथा जगा स्तुति करने लगे और स्वरीले कण्ठवाली गन्धर्वपत्नियें अपने पति सहित सुन्दर गीत गाने लगीं ॥ ४६ ॥ नेत्रोंमें अञ्जन लगाये हुए शरीरमें मक्खन मले वसुदेवजीका विधिपूर्वक अठारह स्त्रियों सहित ऋत्विजोंने अभिषेक किया, जैसे तारागणोंसहित चन्द्रमा अभिषेक करते

तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककण्ठयः सुवाससः ॥ दीक्षाशालामुपाजग्मुरलिप्ता वस्तुपाणयः ॥ ४५ ॥ नेदुर्मृदङ्गपटहशंखभेर्यानकादयः ॥ ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ॥ जगुः सुकण्ठयो गन्धर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिञ्चन् विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ॥ पत्नीभिरष्टादशभिः सोम राजमिवोडुभिः ॥ ४७ ॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः॥स्वलङ्कृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥ तस्यार्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ॥ ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥४९॥ तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बन्धुभिरन्वितौ ॥ रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥ ईजेऽनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः ॥ प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥

हैं ॥४७॥ हे राजन् ! उस समय वस्त्र, कङ्कण, हार, नूपुर, कुण्डल पहने स्त्री सहित दीक्षा लिये मृगछाला ओढ़े वसुदेवजी अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! रत्नोंके गहने और वस्त्र धारण किये वसुदेवजी यज्ञ करनेवाले तथा सभामें बैठे पुरुषों सहित वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रके समान शोभाको प्राप्त हुए॥४९॥ भगवान् कृष्ण बलदेवजी भी सम्पूर्ण जीवोंके ईश्वर, अपने अपने बांधवोंको संग लिये और अपने अपने पुत्र स्त्रियों सहित अपने अपने ऐश्वर्यसे सुन्दर लगने लगे ॥ ५० ॥ यज्ञमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रादि प्रकृति और विकृतिरूप यज्ञ अर्थात् समस्त अंगसे ज्योतिष्टोम, दर्शपौर्णमास आदि यज्ञ और थोड़े अंगवाले शौर्यसत्रादिक अर्थात् सांकल्य मन्त्र

कर्मसे ईश्वर भगवान्का पूजन् करने लगे ॥ ५१ ॥ इसकेउपरांत वसुदेवजीने समयपर आभूषणोंसे शोभायमान यज्ञ करनेवाले ऋषियोंको आभूषणोंसे शोभायमान कर गौ पृथ्वी कन्या और बड़े धनकी बड़ी दक्षिणा वेदविधिसे दी ॥ ५२ ॥ इसके उपरांत पत्नीसंयाजावभृथ्य यज्ञांग कराकर बड़े ऋषि ब्राह्मणोंने यजमान वसुदेवजीको आगेकर रामह्रदमें स्नान कराया ॥ ५३ ॥ स्नानकर वसुदेव और उसी प्रकार उनकी स्त्रीने बन्दीजनोंको अपने अंगके आभूषण इत्यादि दिये । इसके उपरांत वसुदेवजीने और आभूषण पहन चारो वर्णोंको दान देकर पूजन किया और जीवोंमें श्वानको भी अन्न दिया ॥ ५४ ॥ इसके उपरांत स्त्री पुत्रों सहित अपने बन्धुओंकी बहुत द्रव्यसे पूजाकी । फिर

अथर्त्विग्भ्योऽददात् काले यथाऽऽम्नातं स दक्षिणाः ॥ स्वलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो गोभूकन्या महाधनाः ॥ ५२ ॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ॥ सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसरा ॥ ५३ ॥ स्नातोऽलंकारवासांसि बन्दिभ्योऽदात तथा स्त्रियः ॥ ततः स्वलंकृतो वर्णानाश्वभ्योऽन्नेनऽपूजयत् ॥५४॥ बन्धून् सदारान् ससुतान् पारिबर्हेण भूयसा ॥ विदर्भकोसलकुरून् काशिकेकयसृञ्जयान् ॥ ५५ ॥ सदस्यर्त्विक्सुरगणान् नृभूतपितृचारणान् ॥ श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥५६॥ धृतराष्ट्रोऽर्जुनः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ॥ नारदो भगवान् व्यासः सुहृत्संबन्धिबान्धवाः ॥ ५७ ॥ बंधून् परिष्वज्य यदून् सौहृदाक्लिन्नचेतसः ॥ ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥ ५८ ॥ नन्दस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः ॥ कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद् बन्धुवत्सलः ॥ ५९ ॥

विदर्भ, कोशल, कुरु, केकय इन देशोंके राजा और सभासद तथा यज्ञ करनेवाले देवतागण, मनुष्य, भूत, पितर; चारणगणका पूजन किया और फिर सब राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको सम्बोधन दे, यज्ञकी प्रशंसा कर अपने अपने देशोंके जाने की इच्छा करने लगे ॥५५॥ ॥ ५६ ॥ इसके उपरांत धृतराष्ट्र, विदुर, पृथाके पुत्र–युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कुन्ती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यासजी और सुहृद, उनके तथा नाति-गोतेवाले बन्धु यादव सबसे मिल स्नेह कर, विरहके कष्टसे खेदित अपने-अपने देशोंको चले गये और जो मनुष्य वहां पर थे वे भी अपने अपने देशोंको चले गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ राम कृष्ण उग्रसेनादिक यादवोंसे बड़ी पूजा

भा.द.उ. ॥२९३॥

और सत्कार पाकर गोप ग्वालों सहित नन्दरायजीने बन्धुबांधवोंके निकट स्नेहके कारण कुछ दिनतक वहीं वास किया ॥५९॥ अनायाससे मनोरथरूप महासागरको पार उतर प्रसन्नचित्त और सम्बन्धी लोगोंसे आवृत वसुदेवजी हाथ पकड़ नन्दजीसे बोले ॥ ६० ॥ कि हे भाई नन्दजी ! मनुष्योंको स्नेहरूपी फांसी ईश्वरने रची है, इस कारण इसे शूरवीर बलसे और ज्ञानी ज्ञानसे भी नहीं काट सकते ॥ ६१ ॥ तुमसे महात्माने जो अकृतज्ञ हमारे साथ मित्रता की है, उसका पलटा हम किसी प्रकार नहीं दे सकते तो भी वह सदा एकरूप बनी रहती है, कभी निवृत्त नहीं होती ॥६२॥ हे नन्दरायजी ! पहले हम असमर्थ थे, इसलिये तुम्हारा कुछ उपकार न कर सके और अब

वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ॥ सुहृद्वृतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ॥६०॥ वसुदेव उवाच ॥ भ्रातरीश कृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ॥ तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ६१ ॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताऽज्ञेषु सत्तमैः ॥ मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥ ६२ ॥ प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि ॥ अधुना श्रीमदान्धाक्षा न पश्यामः पुरः सतः ॥ ६३ ॥ मा राज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ॥ स्वजनानुत बन्धून् वा न पश्यति ययान्धदृक् ॥६४॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः ॥ रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः॥६५॥ नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविन्दरामयोः ॥ अद्य श्व इति मासांस्त्रीन्यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥ ६६ ॥ ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः ॥ परार्घ्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥

भा० टी० अ० ८४

धनसे अन्धे हो सम्मुख बैठे हुए तुमसे महात्माओंकी ओरको देखते भी नहीं ॥६३॥ हे मान देनेवाले भाई नन्दजी ! कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले मनुष्योंको राजलक्ष्मी न मिले तभी अच्छा है, क्योंकि इससे अन्धा होकर पुरुष अपने आश्रित तथा बन्धु बांधवोंको भी नहीं देखता ॥६४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार स्नेहसे शिथिलचित्त आंसू नेत्रोंमें भरे वसुदेवजी नन्दजीकी मित्रताको स्मरण कर रोने लगे ॥ ६५ ॥ नन्दरायजी यादवोंसे मान पाकर अपने मित्र वसुदेवजीको प्रसन्न करते भगवान् कृष्ण बलदेवजीके प्रेमसे "आज कल आज कल" करते तीन महीनेतक वहीं रहे ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त बड़े मोलके आभूषण, रेशमी, वस्त्र तथा अनेक

प्रकारके बड़े मोलकी वस्तुसे व्रजवासियों सहित नन्दरायजीको पूर्ण कर दिया ॥ ६७ ॥ और वसुदेव, उग्रसेन तथा कृष्ण बलदेवादि यादवोंकी दी हुई सामग्रीको प्रीति सहित ग्रहण कर जिस समय नन्दरायजी बिदा हुए; उस समय यादवौंने इसके सङ्ग एक बड़ी भारी सेना कर दी ॥ ६८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लगे मनको हटानेमें असमर्थ नन्दरायजी व गोप गोपियें मथुराको चले ॥६९॥ बन्धु लोगोंके जानेपर श्रीकृष्णचन्द्रको इष्टदेव माननेवाले यादव वर्षा ऋतु निकट आयी देख पीछे द्वारकापुरीको चले गये ॥७०॥ और जाकर सब यादव वसुदेवजीका यज्ञ और कुरुक्षेत्रकी यात्रामें सुहृदोंका विलाप यह सब प्रजासे कहा ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवते

वासुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ॥ दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥६८॥ नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे ॥ मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥ ६९ ॥ बन्धुषुप्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥ ७० ॥ जनेभ्यः कथयाञ्चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ॥ यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ श्रीबादरायणिरुवाच ॥ अथैकदाऽऽत्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ॥ वासुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥ मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ॥ तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥ कृष्णकृष्ण महायोगिन्संकर्षण सनातन ॥ जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥

महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ दोहा—विनय पचासीमें करी, कृष्ण और बलराम। मरे पुत्र मातहि दिये, पितुहि ज्ञान सुख धाम ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनेके उपरांत एक समय वसुदेवजी आकर चरणोंमें प्रणाम और रामकृष्णकी प्रशंसा कर प्रीतिपूर्वक कहने लगे ॥१॥ पुत्रोंके प्रभावको जाननेवाला जो मुनियोंका कहा वचन कि तुम्हारे पुत्र परमेश्वर हैं, उन श्रीकृष्ण बलरामका पराक्रम देख विश्वासयुक्त वसुदेवजी संबोधन देकर बोले ॥२॥ कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे राम ! हे महायोगिन् ! हे संकर्षण ! हे सनातन ! इस विश्वके कारण प्रकृति पुरुषके भी कारण साक्षात

ईश्वर तुम हो यह मैं जानता हूँ ॥ ३ ॥ जिसमें जिस साधनेमे, जिससे जिस कारणसे, जिसका जिसके लिये, जिसको जो जैसे और जब यह संसार स्थित है और स्थित किया जाता है उस सब भोग और भक्तोंके नियंता साक्षात् आप ही हो ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज ! आप जो अजन्मा हो, सो अपने रचे हुए इस अनेक प्रकारके जगत्में अपने रूपसे प्रवेश कर क्रियाशक्ति और ज्ञान शक्तिरूप होकर उसका पोषण और भरण करते हो ॥५॥ पृथक्-पृथक् शक्तिवाले प्राणादिक इस विश्वके कारण जाननेमें न आवें परमेश्वरको कारणरूपसे सर्वरूप कैसे कहते हो ? यह शंका जब हुई तो उसका समाधान यह है कि प्राणादिकोंमें जो शक्ति है और ईश्वरके शरीरवाले प्राण आदि तत्त्वमें जो शक्ति है वह परमकारण ईश्वर की ही है, क्योंकि प्राण आदिक ईश्वरके अधीन हैं और जैसे तीरमें वेधनेकी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा ॥ स्यादिदं भगवन्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥ एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षजं ॥ आत्मनाऽनुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो बिभर्ष्यजः ॥ ५ ॥ प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्यताः ॥ पारतन्त्र्याद्वैसादृश्याद्द्वयोश्चेष्टैवचेष्टताम् ॥ ६ ॥ कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् ॥ यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥ तर्पणं प्राणनमपां देवत्वं ताश्च तद्रसः ॥ ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वरः ॥ ८ ॥ दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ॥ नादो वर्णस्त्वमोङ्कार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥

किन्तु पुरुषकी शक्तिसे वेधता है उसी प्रकार प्राणादिकोंमें ईश्वरकी शक्ति है। प्राणादिक जड़ हैं और ईश्वर चैतन्य हैं और जड़ पदार्थको चैतन्यकी अधीनता योग्य ही है। यहां ऐसा कहते हैं कि प्राणादिकोंमें शक्ति नहीं है तो क्रिया कैसे करते हैं ? उसका उत्तर यह है कि चेष्टा करनेवाले प्राणादिककी चेष्टा यहां कुछ शक्ति नहीं है जैसे पवनकी शक्तिसे तृण हिलते हैं उसी प्रकार क्रिया करते हैं ॥ ६ ॥ चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, नक्षत्र व बिजलियोंकी स्फुरसत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता और पृथ्वीकी आधारता तथा गंध ये संपूर्ण तुम्हारी ही शक्तियें हैं ॥७॥ हे देव ! जल उसकी तृप्ति करनेकी शक्ति जीवित करने की शक्ति व उसका रस यह सब तुम ही हो हे ईश्वर ! वायुके जोओज, सह बल, चेष्टा, और गति है वह सब तुम्हारा ही रूप है ॥ ८ ॥ दिशाओं में जो खालीपन और दिशायें

समस्त तुम्हारे ही रूप हैं और आकाश तथा आकाशमें शब्दरूप गुण सब तुम्हारे ही रूप हैं, वाणी आकर और नाम रूप कहनेमें न आवें सो सब तुम ही हो ॥९॥ नेत्रोंमें दर्शन शक्ति और कानोंमें श्रवणशक्ति तथा जिह्वामें रसकी ग्रहण शक्ति इत्यादि इंद्रियोंमें विषयोंके ग्रहण करनेकी शक्ति तुम ही हो और इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवता तुम ही हो। देवता इंद्रियोंको प्रेरणा करते हैं, यह तुम्हारी शक्ति है, बुद्धिमें निश्चय करने की शक्ति तुम ही हो। और जीवोंको श्रेष्ठवार्ता जो स्मरण रहती है, यह तुम्हारी ही शक्ति है ॥ १० ॥ पञ्चभूतका कारण, तामसाहंकार, इंद्रियोंके देवताओंका कारण सात्त्विकाहंकार इंद्रियोंका कारण राजसाहंकार और जीवोंके संसार का कारण प्रधान यह सब तुमही हो ॥११॥ नाशवान् पदार्थमें जो शेष रहे अर्थात् जिसका नाश न हो वह तुम ही हो, जैसे मृतिका, सुवर्णके बने घड़े,

इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः॥अवबोधो भवान् बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती॥१०॥भूतानामसि भूतादिरिन्द्रियाणां च तैजसः ॥ वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥११॥ नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ॥ यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥ १२ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ॥ त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥ तस्मान्न सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ॥ त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाऽव्यावहारिकः ॥ १४ ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ॥ गतिं सूक्ष्मावबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः ॥ ॥ १५ ॥ यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ॥ स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥ १६ ॥

मुँदरी कड़े इत्यादि सब नाशवान् हैं मृत्तिका सुवर्णका नाश नहीं होता ॥१२॥ सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण की वृत्ति साक्षात् परब्रह्ममें योगमायासे कल्पित हैं ॥ १३ ॥ इसी कारण ये पदार्थ आपसे अलग नहीं हैं। जब ये पदार्थ कल्पना किये जाते हैं तभी तो प्रतीतिमात्र से आपमें हैं और आप कारणतासे उनमें अनुगत हो और जब कल्पना नहीं किये जाते, तब निर्विकल्प आपही अवशेष रहते हो ॥ १४ ॥ यह जो गुणोंका प्रवाहरूप संसार है, उसमें सबके आत्मा तुम्हारी संसारसे अलग गतिको नहीं जाननेवाले अज्ञानी पुरुष देहमें अभिमानसे किये हुए कर्मसे इस संसारमें जन्मे हैं ॥ १५ ॥ हे ईश्वर ! शोभायमान हाथ, पांव, नाक, कान, सब इंद्रिययुक्त बहुत दुर्लभ देहको इस

संसारमें कोई एक पुण्यके फलसे पाकर स्वार्थमें भूलकर मैंने अपनी अवस्था तुम्हारी माया से वृथा ही गँवायी ॥१६॥ मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, इस प्रकार देह में अभिमान और इस देहके सम्बन्धी स्त्री पुत्रादिक मेरे हैं, इस अभिमानसे स्नेहकी रस्सीसे यह जगत् तुमने बांध रखा है ॥ १७ ॥ हम तुम्हारे पुत्र हैं, तुम क्यों हमारी स्तुति करते हो ? उसके उत्तरमें वसुदेवजी कहते हैं कि तुम हमारे पुत्र नहीं हो, किन्तु प्रधान पुरुष ईश्वर हो और पृथ्वी के भार रूप क्षत्रियोंके नाश करनेको आपने अवतार धारण किया है, क्योंकि आप ऐसे ही हैं ॥१८॥ हे दीनबन्धु ! हे शरण प्राप्त हुए पुरुषके संसारी भयको दूर करनेवाले! मैं तुम्हारे चरणारविंदकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ " तुम तो बड़े सुखी हो, वृथा क्यों खेद करते हो" ऐसे जो कदाचित् श्रीकृष्ण कहें तो इसके उत्तरमें वसुदेवजी कहते हैं कि विषयकी लालसा इतनी ही है कि

असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ॥ स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान् सर्वमिदं जगत् ॥१७॥ युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ ॥ भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथाऽऽत्थ ह ॥ १८ ॥ तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्दमापन्न-संसृतिभयापहमार्तबन्धो ॥ एतावताऽलमलमिन्द्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥ सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ॥ नानातनूर्गगनवद् विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान् सात्वतर्षभः ॥ प्रत्याह प्रश्रयानम्रः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ॥ यन्नः पुत्रान् समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥ २२ ॥

मरणधर्मा शरीर की आत्मा माना और तुम परमेश्वरको पुत्र माना ॥१९॥ तुमने सूतिकागृहमें ही हमसे कहा था कि पहले तुम सुतपा और पृश्नि व कश्यप, अदितिरूप दंपती थे और अभी वसुदेव देवकी रूप दंपती हो, मैं अजन्मा प्रथम निज धर्मकी रक्षाके लिये आपसे प्रकट हुआ और अब भी प्रकट हुआ हूँ"आप असंग रहकर भी अनेक अवतार धारण करते हो और छोड़ते हो, सर्वव्यापक आपकी विभूतिरूप मायाको कौन जान सकता है ? ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार पिताके वचन सुन अधीनतापूर्वक नम्र हो मनोहर वाणीसे कहा ॥ २१ ॥ श्रीभगवान् बोले हे पिता ! हम पुत्रोंके विषयमें आपने जो तत्त्वसमू-

हका भलीभांति निरूपण किया सो तुम्हारे वचन को हम यथार्थ मानते हैं ॥ २२ ॥ हे यदुश्रेष्ठ पिता ! तुम और बड़े भ्राता बलदेवजी तथा सब द्वारकावासी यादव और स्थावर जंगम जगत्को ब्रह्मरूप जानों ॥२३॥ यहां एक शंका है कि नाना विकारवान्को ब्रह्मरूपता कैसे बन सकती है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि आत्मा एक स्वयंप्रकाश नित्य सबसे पृथक् निर्गुण है, अपने रचे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे उत्पन्न देहमें बहुत प्रकार प्रतीत होता है फिर जैसी देह है उसमें वैसा ही प्रतीत होता है जैसे आकाश, पवन, ज्योति, जल, पृथ्वी ये पञ्चभूत घट पटादि पदार्थोंमें कहीं प्रकट, कहीं अन्तर्धान, कहीं थोड़े, कहीं बहुत प्रतीत होते हैं, ऐसे एक आत्मा ब्रह्मस्वरूप अनेक रूपसे प्रतीत

अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ॥ सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥ आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ॥ आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते॥२४॥खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम्॥ आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजन् वसुदेव उदाहृतः ॥ श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतिमना अभूत् ॥ २६ ॥ अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ॥ श्रुत्वाऽऽनीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥ २७ ॥ कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान् कंसविहिंसितान् ॥ स्मरन्तीं कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥ देवक्युवाच ॥ रामरामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर ॥ वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरादिपूरुषौ ॥ २९ ॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् ॥ भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥ ३० ॥

होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन भेदभाव त्याग प्रसन्नमन हो वसुदेवजी चुप हो गये ॥२६॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! फिर अपने पुत्र, गुरुपुत्रको पीछे ले आये, यह वृत्तान्त सुन अत्यन्त आश्चर्य मान कंसके मारे पुत्रोंकी सुधि करके सब जगत्की देवतारूप देवकी व्याकुल हो नेत्रों में आंसू भर श्रीकृष्ण बलदेवको बुलाकर इस प्रकार दीन वचन कहने लगी ॥२७॥२८॥ देवकी बोली कि हे राम ! हे राम ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे कृष्ण ! हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! आप विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकोंके ईश्वर और आदि पुरुष हो, तुमको मैं जानती हूँ ॥२९॥ कालसे सत्त्वगुणका नाश होनेपर शास्त्रकी मर्यादा त्यागने-

वाले पृथ्वीपर भाररूप राजाओंका नाश करनेके लिये तुम मेरे यहां आकर प्रकट हुए हो ॥ ३० ॥ हे सबके कारण ! हे विश्वके आत्मा ! तुम्हारा अंश पुरुष है, उसका अंश माया, उस मायाके अंश सत्त्व, रज तम इन तीनों गुणोंके परमाणुमात्र लेशसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और प्रलय होती है, ऐसे तुम हो सो मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ ॥ ३१ ॥ हे योगेश्वर ! चिरकालसे मरे हुए पुत्रको लानेके लिये गुरुने आज्ञा की तब तुमने यमराजके लोकमें से उस पुत्रको लाकर गुरुको गुरुदक्षिणारूप अर्पण किया, उसी प्रकार मेरी कामना भी पूर्ण करो अर्थात् कंसके मारे हुए पुत्रोंको मैं यहां देखना चाहती हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ॥ भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाऽद्याहं गतिं गता ॥ ३१ ॥ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल चोदितौ ॥ आनिन्यथुः पितृस्थानाद् गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ॥ भोजराजहतान् पुत्रान् कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संचोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ॥ सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥३४॥ तस्मिन् प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड् विश्वात्मदैवं सुतरां तथात्मनः ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥ ३५ ॥ तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ॥ दधार पादाववनिज्य तज्जलं सवृन्द आब्रह्म पुनाद्यदम्बु ह ॥ ३६ ॥ समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥

माता देवकीने इस प्रकार कहा, तब रामकृष्ण योगमायाका आश्रय ले सुतल लोकमें गये ॥ ३४ ॥ वहां दैत्यराज बलिने विश्वके आत्मा देवता अपने इष्टदेव और कृष्ण बलदेवको सुतललोकमें आया देख और उनके दर्शनसे आनंदित हो परिपूर्ण अन्तःकरणसे परिवार सहित शीघ्र उठकर नमस्कार किया ॥ ३५ ॥ और प्रीतिसहित आसन लाकर उन महात्माओंको आसनपर बैठाकर, फिर चरण पखार ब्रह्म पर्यन्त जगत्को पावन करनेवाला जल दैत्यराज बलिने और उसके परिवारने अपने मस्तकपर चढ़ाया ॥ ३६ ॥ उत्तम वस्त्र, आभूषण लेपन, तांबूल, दीप अमृतसे भोजन आदि अनेक वैभवसे उनकी पूजा की और अपना तन, मन, धन, कुटुम्ब सब अर्पण किया ॥३७॥

हे नृप ! राजा बलि भगवान्के चरणारविन्दको बारम्बार मस्तकपर धर प्रेमसे द्रवीभूत हुई बुद्धिसे आनन्दके आंसू नेत्रोंमें भरे पुलकित शरीर हो इस प्रकार कहने लगे ॥ ३८ ॥ राजा बलि बोले कि समस्त विश्व फणके ऊपर धारण करनेवाले शेषरूप तुमको प्रणाम है और सब जगत्के रचनेवाले तुमको नमस्कार है, सांख्यशास्त्र योगशास्त्रके विस्तार करनेवाले ब्रह्म परमात्मा तुमको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ योगीश्वरोंको भी तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है, सो हमको हुआ, यह आश्चर्य नहीं है, यद्यपि प्राणियोंको तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है, परंतु तो भी तुम्हारी कृपासे किसी किसीको सुलभ हो जाता है, इसलिये रजोगुणी तमोगुणी स्वभाववाले हम असुरोंकी अकस्मात् आपने दर्शन

स इन्द्रसेनो भगवत्पदाम्बुजं बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ॥ उवाच हाऽनन्दजलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा नृपगद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥ बलिरुवाच ॥ नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ साङ्ख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ॥ रजस्तमः स्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥४०॥ दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ॥ यक्षरक्षः पिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥ विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ॥ नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः ॥ न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥ इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ॥ न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥ ४४ ॥ तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात् ॥ निष्क्रम्य विश्वशरणाङ्घ्र्युपलब्धवृत्तिः शान्तो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥ ४५ ॥

दिया ॥४०॥ बड़ा आश्चर्य है, हम शत्रु सत्त्वगुणी भक्तोंसे भी बड़भागी हैं। दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत और प्रमथोंमें मुख्य हैं ॥४१॥ हम और हमसे दूसरे लोगोंने शास्त्रके रक्षा करनेवाले सत्त्वगुणी स्वभाव तुमसे नित्य शत्रुता कर रखी है उन्हें भी आपका दर्शन प्राप्त हो जाता है ॥४२॥ कोई एक (शिशुपालादि) वैर भक्तिसे तुमको जैसे पा गये और गोपी आदिकोंने काम भक्तिसे जैसे तुम्हे पाया, ऐसे ही सत्त्वगुणसे देवता तुमको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! इस प्रकार तुम्हारी योगमायाको जब योगेश्वर भी नहीं जानते तो हम असुर क्या जान सकते हैं ॥४४॥ इसलिये हमपर आप ऐसी दया करो कि जिससे निष्काम पुरुषोंके ढूंढ़ने

योग्य तुम्हारे चरणारविन्दका आश्रम ले चरणारविन्दसे अलग घररूप कुएँसे निकालकर विश्वकी रक्षा करनेवाले वृक्षकी जड़ोंमें आपसे ही गिरे फल फूलको भोजन कर मैं शान्तचित्त होकर अकेला विचरूं अथवा सबके सहाय करनेवाले महात्मा पुरुषोंके संग विचरूं ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! सब जीवोंके स्वामी ! हमें शिक्षा देकर पापरहित करो, जिस शिक्षाको श्रद्धापूर्वक पालनेसे पुरुषोंके विधिनिषेधरूप बन्धन छूट जाते हैं ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि इस स्वयंभुव मन्वन्तरमें मरीचि प्रजापतिकी ऊर्णा स्त्रीमें छः पुत्र हुए । एक समय देवतारूप छहों पुत्र अपनी कन्याके पीछे भागे ब्रह्माजीको देखकर हँसे ॥ ४७ ॥ इस पापकर्मसे असुरयोनिको प्राप्त हुए, फिर उन्होंने हिरण्यकशिपुसे

शाध्यस्मानीशितव्येशनिष्पापान् कुरु नः प्रभो ॥ पुमान् यच्छ्रद्धया तिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसन्मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे ॥ देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥ तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा ॥ हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥ देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः ॥ सा ताञ्शोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥ ४९ ॥ इत एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ॥ ततः शापाद् विनिर्मुक्ता लोकं यास्यन्ति विज्वराः ॥ ५० ॥ स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः पतङ्गः क्षुद्रभृद् घृणी ॥ षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तान्समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ ॥ पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वा बालकान्देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ परिष्वज्याङ्कमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्षणशः ॥ ५३ ॥

जन्म लिया, वे ही छहोंने हिरण्यकशिपुके यहांसे योगमायाकी प्रेरणासे ॥४८॥ देवकीके उदरमें जन्म लिया, जो कंसके हाथसे मारे गये, सो अब तुम्हारे पास हैं, इन्हें देवकी अपना पुत्र मानकर शोच करती है ॥ ४९ ॥ माता देवकीके शोक दूर करनेके लिये यहांसे इन छहों पुत्रोंको ले जायँगे, इसके उपरान्त शापसे छूट खेदरहित होकर यह देवलोकमें जायँगे ॥ ५० ॥ स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभुक् और घृणी ये जो छः पुत्र हैं सो मेरे प्रसादसे मुक्त हो जायँगे ॥५१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार जब कहा तब राजा बलिसे पूजित हो श्रीकृष्ण बलदेव उन पुत्रोंको संग ले द्वारकापुरीमें आकर माता देवकीको दे दिये ॥ ५२ ॥ पुत्रोंके स्नेहसे जिसके स्तनोंमें दूध

चूवे ऐसी देवकी उन बालकोंको देख गोदमें बैठाकर छातीसे लगाया और बाम्बार माथा सूँघने लगी ॥ ५३ ॥ सृष्टिको उत्पन्न करनेवाली विष्णुभगवान्‌की मायासे मोहित और पुत्रोंको छातीसे लगानेके कारण मग्न देवकी प्रसन्न होकर पुत्रोंको स्तन पिलाने लगी ॥ ५४ ॥ गदाके धारण करनेवाले भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके पीनेसे बचा अर्थात् भगवान्‌का प्रसाद वह अमृतरूप देवकीका दुग्ध पान

अपाययत्स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता ॥ मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥ ५४ ॥ पीत्वाऽमृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ॥ नारायणाङ्गसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम् ॥ मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥ तद् दृष्ट्वा देवकीदेवी मृतागमननिर्गमम् ॥ मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥ एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानि भारत ॥ ५८ ॥

कर और श्रीकृष्ण के अंग स्पर्श करनेसे "हम देवता हैं" यह ज्ञान होनेसे वह देवता गोविन्द श्री कृष्णचन्द्र और देवकी तथा वसुदेवजीको नमस्कार कर सब प्राणियोंके देखते देवताओंके धाम देवलोकमें चले गये * ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित ! मरे हुए पुत्रोंका आगमन और फिर गमन देखकर विस्मित देवकीने जान लिया कि यह सब श्रीकृष्णकी रची हुई माया है ॥ ५७ ॥ अनंतशक्ति

---

* शंका—देवकीके सब बालकोंको श्रीकृष्णने ला दिया, तबसे सब बालक देवकीके स्तनका दूध पीने लगे। परंतु पहिले तो भगवान्‌ने देवकीके स्तनोंका दूध पिया था और जो दूध शेष रहा । उसको देवकीके और बालकोंने पिया, अब यहां मुझको यह संदेह है कि श्रीकृष्ण तो जन्म लेते ही गोकुल चले गये, देवकीका दूध नहीं पिया, फिर व्यासजी क्यों कहते हैं, देवकीके स्तनों का दूध भगवान्‌ने पिया और जो बाकी रहा उसको और पुत्रोंने पिया ।

उत्तर—शास्त्रमें लोकमें तीन प्रकारका कर्म वर्णन होता है, एक वचनसे कर्म होता है दूसरा मनसे कर्म होता है तीसरा शरीरसे कर्म होता है । इन तीनों कर्मोंमें कोई कर्म छोटा नहीं है, और कोई बड़ा भी नहीं है अर्थात् ये तीनों कर्म समान हैं देवकीके दूधको भगवान् सदा मनसे पीते रहे, जो मनसे दूध पिया तो वचन तथा शरीरसे दूधका पीना सत्य हो गया, इसलिये व्यासजीने देवकीके दूधको कहा ।

परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे ऐसे आश्चर्ययुक्त अनंत चरित्र हैं ॥५८॥ सूतजी बोले कि हे शौनकादिक ऋषिश्वरो ! व्यासनन्दन महात्मा शुकदेवजीके कहे हुए और सब जगत्के पापोंके दूर करनेवाले भक्तोंको आनन्ददायक अमृतरूपी कीर्ति मुरारि भगवान्के चरित्रोंको भगवान्में चित्त लगाकर जो पुरुष श्रवण करे अथवा श्रवण करावे वह पुरुष काल और मायासे रहित होकर भगवान्के परमधामको प्राप्त होता है ॥५९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मृताग्रजानयनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥ दोहा–हरण सुभद्राको कियो, छयासी अर्जुन धीर । कियो सुखी श्रुतदेव को,अरु द्विजको यदुवीर॥ राजा परीक्षित् पूछने लगे कि हे योगीश्वर श्रीशुकदेवजी ! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रकी भगिनी सुभद्रा जो मेरी दादी थी, उसके संग अर्जुनने जिस प्रकार विवाह किया, सो मेरी

सूत उवाच ॥ य इदमनुश्रृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥ जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे मृताग्रजानयनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ॥८५॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ॥ यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ॥ गतः प्रभासमश्रृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥ दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ॥ तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥ एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् ॥ श्रद्धयोपाहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥

सुनने की इच्छा है ॥१॥ यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्! एक समय सामर्थ्यवान् अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिये पृथ्वीपर भ्रमण करता करता प्रभास तीर्थमें पहुँचा ॥ २ ॥ वहां जाकर अपने मामा की पुत्री सुभद्राको बलदेवजी दुर्योधनको ब्याह देंगे और वसुदेवादिकोंकी इसमें सम्मति नहीं है,यह बात सुन उस सुभद्राको लेनेकी इच्छा से अर्जुन संन्यासी बन तीन दण्ड धारण कर द्वारकापुरीमें आया ॥३॥ अपने कार्यको सिद्ध करने की इच्छासे अर्जुनने वर्षाऋतुके चार महीने द्वारका पुरीमें बिताये, पर वहांके मनुष्योंको और बलरामजीको भी इस छलकी खबर न हुई; इस कारण वे उसका नित्यप्रति सम्मान करते थे ॥ ४ ॥ एक दिन संन्यासीभावसे अर्जुनको

निमन्त्रण कर घरमें बुला श्रद्धापूर्वक बलदेवजीने जो भोजन परोसा सो अर्जुनने भोजन किया ॥ ५ ॥ वहां शूरवीरोंके मानको हरनेवाली एक अत्यन्त सुन्दर कन्या अर्जुनने देखी, जिसपर दृष्टि पड़ते ही उसके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित हो गये और रतिके अभिप्रायसे चलायमान मन सुभद्रामें लग गया ॥६॥ स्त्रियोंका मन हरनेवाले अर्जुनको देख सुभद्राने भी अपना मन अर्जुनमें लगाया और लाजभरे नेत्रोंसे कटाक्षसहित उसकी ओर देखने लगी ॥ ७ ॥ बड़े बलवान् कामदेवसे चलायमान चित्त अर्जुनने केवल सुभद्राका ध्यान और हरण करनेका अवसर देखते बलदेवजीके किये सम्मानसे कुछ सुख नहीं पाया ॥ ८ ॥ इसके उपरांत बड़ी देवीकी यात्रामें रथमें बैठकर निकली सुभद्राको माता, पिता, देवकी, वसुदेव और श्रीकृष्णकी सम्मतिसे महारथी अर्जुनने हरण किया ॥ ९ ॥ रथमें बैठ धनुष हाथमें ले अर्जुन चारों ओरसे

सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ॥ प्रीत्युत्फुल्ले क्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥ साऽपि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयङ्गमम् ॥ हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥७॥ तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः ॥ न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥ महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ॥ जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥ रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुन्धतो भटान् ॥ विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ॥ गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥ ११ ॥ प्राहिणोत् पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ॥ महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीद् द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः ॥ कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शांतः कविरलम्पटः ॥ १३ ॥

रोके प्यादोंको भगाकर उनके पुकारते ही जैसे सिंह अपने भागको ले जाता है उसी प्रकार ले गया ॥ १० ॥ अर्जुन सुभद्राको ले गया, यह बात श्रवण कर जैसे पूर्णमासीको समुद्र उमड़ता है, उसी प्रकार क्रोधित हुए बलदेवजीको सुहृदों सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शान्त किया ॥ ११ ॥ फिर बलदेवजीने अति आनन्दपूर्वक दहेजमें उन दूलह दुलहिनके लिये अमूल्य सामान, हाथी, घोड़े, रथ, दास और दासियें आदि भेजे ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे महाराज परीक्षित ! श्रीकृष्णचन्द्रकी एक भक्तिसे सम्पूर्ण मनोरथ, शान्तस्वभाव, विवेकी, विषयोंमें अनासक्त एक श्रुतदेव नाम प्रसिद्ध ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था ॥ १३ ॥

बिना उपाय किये ही मिले हुए भोजनसे निर्वाह करके अपने कर्मोंको करे, ऐसा गृहस्थी ब्राह्मण विदेहदेशकी मिथिलापुरीमें वास करता था ॥ १४ ॥ जितनेमें शरीरका निर्वाह हो उतना भोजन प्रतिदिन अकस्मात् उसके लिये आ जाता था और अधिक नहीं, परन्तु उतनेमें ही सन्तोष करके यथायोग्य सन्ध्योपासनादि कर्म करता था ॥ १५ ॥ हे परीक्षित् ! जैसा श्रुतदेव ब्राह्मण भक्त था उसी प्रकार मिथिला देशका पालन करनेवाला जनकके वंशमें हुआ निरभिमान बहुलाश्व नामसे विख्यात राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था, ब्राह्मण और राजा ये दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके प्यारे थे ॥ १६ ॥ उन दोनों भक्तोंके ऊपर प्रसन्न हुए सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्के

स उवाच विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ॥ अनीहयाऽऽगताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥ यात्रा मात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत ॥ नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥ तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः ॥ मैथिलो निरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥ तयोः प्रसन्नो भगवान् दारुकेणाहृतं रथम् ॥ आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान् प्रययौ प्रभुः ॥ १७ ॥ नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ॥ अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥ १८ ॥ तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप ॥ उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥ १९ ॥ आनर्तधन्वकुरुजाङ्गलकङ्कमत्स्यपाञ्चालकुन्तिमधुकेकयकोसलार्णाः ॥ अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥ २० ॥ तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ॥ शृण्वन् दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥ २१ ॥

लाये रथमें बैठ मुनियोंको संग ले विदेहदेशको चले गये ॥ १७ ॥ तब नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, अरुणी, मैं (शुकदेवजी), बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय और च्यवन आदि ऋषि भी संग गये थे ॥१८॥ हे राजन् ! मार्गमें मुनियोको संग लिये श्रीकृष्णचन्द्र जहां-जहां गये वहां-वहां पुरवासी उनके लिये अर्घ्य हाथमें लेकर उनकी स्तुति करते थे जैसे ग्रह उदय होकर सूर्यको अर्घ्य देते हैं ॥ १९ ॥ आनर्त्तदेश, धन्व, कुरु, जांगल कङ्क, मत्स्य, पांचाल कुंति, मधु, केकय, कोशल, अर्ण इन देशोंके वासी स्त्री पुरुष उदार हँसनियुक्त स्नेहभरी चितवनवाले श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द दृष्टि भरकर देखने लगे ॥२०॥ अपनी कृपादृष्टिसे अज्ञान दूर कर पुरुषोंकी दृष्टिको कल्याण

और तत्त्वज्ञान देते, दिशाओंके अन्ततक व्याप्त पापनाशक देवता और मनुष्योंसे गाये अपने यशको श्रवण करते त्रिलोकीके गुरु श्रीकृष्णचन्द्र धीरे-धीरे विदेहके देशमें पहुँचे ॥ २१ ॥ हे राजा परीक्षित् ! वह सम्पूर्ण पुरवासी देशवासी जन श्रीकृष्णचन्द्रको आया सुन हर्षित हो पूजाके योग्य सामग्रियोंको हाथमें ले सम्मुख आये ॥२२॥ उत्तम यशस्वी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर प्रफुल्लित मुख और

तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ॥ अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ॥ कैर्धृताञ्जलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन् ॥ ॥ २३ ॥ स्वानुग्रहाय संप्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥२४॥ न्यमन्त्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत् संहताञ्जली ॥ २५ ॥

अन्तःकरणवाले पुरुष हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर नमस्कार करने लगे और उक्त मुनियोंको भी प्रणाम किया ॥२३॥ जगत् के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये आये हैं, इस प्रकार बुद्धिसे निश्चयकर मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें आकर गिर पड़े ॥२४॥ मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेवजी इन दोनोंने एक संग हाथ

---

* शंका—मुनीश्वर लोग विदेह राजाके नगरको सदा आते थे और नगरमें कुछ दिन वास करके अपने-अपने आश्रमोंको चले जाते थे जब कि, जनकपुरमें बड़े-बड़े महात्मा और प्रजागण बसते थे तब वह पुरवासी प्रजागण और महात्माजन मुनियोंको देखते थे, फिर व्यासजीने क्यों कहा कि, प्रथम जिन मुनियोंको सुन रक्खा था उन मुनियोंका पूजन किया, इस बातसे यह जान पड़ता है कि, नारदादि मनि जनकपुरीको कभी भी नहीं गये, नये-नये कृष्णके साथ गये हैं इसलिये व्यासजी कहे हैं कि, जनकपुरवासी प्रजाने देखे नहीं थे परन्तु सुने तो थे कि, अमुक अमुक मुनि पृथ्वीपर हैं यह शंका बड़ी भारी है ।

उत्तर—"श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान्" इस श्लोकमें विद्वान पुरुष सब दिन तथा वर्षको तथा बहुत दिनको बहुत पहले नहीं मानते थे, बहुत दिन तथा वर्षसे तो पुरवासी प्रजा सब मुनियोंको जानते थे परन्तु जब श्रीकृष्णके साथ सब मुनि आये तब सब मुनियोंको पुरवासी प्रजाने देखा, उस समय से पहिचान और पहलेसे तो सुन रक्खा था, ऐसा अर्थ है क्योंकि जनकपुरमें बड़ा कोलाहल मच गया था कि, श्रीकृष्णचन्द्र जनकपुरको आते हैं उनके संग अमुक-अमुक मुनि लोग भी आते हैं, ऐसा पुरवासियोंने सुना था सो अब आ गये, उन सबका यथायोग्य पूजन किया—"श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान्" का अर्थ व्यासजीने ऐसा किया और ऐसा नहीं किया कि कभी देखे नहीं थे सुने ही थे ।

जोड़ ब्राह्मणोंसहित श्रीकृष्णचन्द्रका आतिथ्यभाव कर निमन्त्रण किया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दोनोंका निमन्त्रण मान उनका प्रिय करनेके लिये ब्राह्मणोंसहित दो रूप धर दोनोंके घर गये। उस समय राजा और ब्राह्मणोंने यह नहीं जाना कि इन्होंने दो रूप कर लिये हैं ॥ २६ ॥ उदारमन बड़ी भक्तिसे हृदयमें हर्ष, नेत्रोंमें आंसू भरे जनकवंशी राजा बहुलाश्वने असत् पुरुषोंके सुननेमें भी न आवें, ऐसे भगवान्को अपने घर लाकर सुखासनपर सुखसे बैठाला और वे सुखसे योग्य आसन पर बैठे ॥ २७ ॥ इसी प्रकार मुनियोंको नमस्कार कर उनके चरणोंको धोकर लोकोंको पवित्र करनेवाले चरणोंका जल ॥ २८ ॥ कुटुम्बसहित राजा बहुलाश्वने अपने माथेपर चढ़ाकर ईश्वर और ईश्वरके समान ब्राह्मणों का गंध, पुष्प, माला, वस्त्र, आभूषण, धूप, दीप, अर्घ्य, गौ, बैल इन सामग्रियोंसे पूजन किया ॥ २९ ॥

भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ॥ उभयोराविशद् गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥ २६ ॥ श्रोतुमप्यसतां दूराज्जनकः स्वगृहागतान् ॥ आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामनाः ॥२७॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः ॥ नत्वा तदङ्घ्रीन् प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥२८॥ सकुटुम्बो वहन् मूर्ध्ना पूजयाञ्चक्र ईश्वरान् ॥ गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् ॥ पादावंकगतौ विष्णोः संस्पृशन् शनकैर्मुदा ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भवान् हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ॥ अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१॥ स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ॥ यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तः श्रीरजः प्रियः ॥ ३२ ॥ को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवंविद् विसृजेत् पुमान् ॥ निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥

भोजन कर तृप्त हुए उन ब्राह्मणों व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रसन्न करता गोदमें धरे श्रीकृष्णके चरण धीरे-धीरे दाबता हुआ वह यह कहने लगा ॥३ ॥ राजा बहुलाश्वने कहा कि हे समर्थ ! सब प्राणियोंके आत्मा साक्षी स्वयंप्रकाश तुम्ही हो, इसलिये तुम्हारे चरणारविन्दका स्मरण करनेवाले मुझे तुमने दर्शन दिया ॥ ३१ ॥ "मेरे एकान्त भक्तसे बढ़कर शेषजी, लक्ष्मीजी और ब्रह्माजी भी प्यारे नहीं हैं" यह जो तुमने कहा सो अपना वचन सत्य करनेके लिये आपने हमको दर्शन दिया ॥ ३२ ॥ भक्त तुम्हें प्रिय हैं, इस प्रकार जानकर कौन पुरुष तुम्हारे चरणारविन्दका त्याग करेगा ? निष्किंचन अर्थात् जिनके पास कुछ नहीं है, शान्तशील-स्वभाव मुनियोंको तुम

अपना पद दे चुके हो ॥ ३३ ॥ ऐसे तुम यदुवंशमें अवतार लेकर संसारी जीवोंके संसार छुड़ानेके लिये त्रिलोकीका दुःख दूर करनेवाले यशका विस्तार करते हो ॥ ३४ ॥ ऐसे अकुंठबुद्धि शान्त तप करनेवाले नारायण ऋषि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे व्यापक ! सब ब्राह्मणों सहित कुछ काल हमारे घरमें वास कर अपने चरणकमलकी रजसे इस निमि राजाके कुलको पवित्र करो ॥३६॥ राजा बहुलाश्वने जब इस प्रकार बहुत प्रार्थना की तब लोकोंके पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथिलापुरीके पुरुष स्त्रियोंका कल्याण करनेके लिये कुछेक दिनतक वास किया ॥३७॥ जैसे जनकवंशोत्पन्न बहुलाश्व राजाको प्राप्त हुए, उसी प्रकार श्रुतदेव ब्राह्मण भी

योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ॥ यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप इयुषे॥३५॥दिनानि कतिचिद् भूमन् गृहान् नो निवसद् द्विजैः॥ समेतःपादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥ ३६ ॥ इत्युपामन्त्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ॥ उवाच कुर्वन् कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥ ३७ ॥ श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहाञ्जनको यथा ॥ नत्वा मुनीन् सुसंहृष्टो धुन्वन् वासो ननर्त ह ॥ ३८ ॥ तृणपीठबृसीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः ॥ स्वागतेनाभिनन्द्याङ्घ्रीन्सभार्योऽवनिजे मुदा ॥ ३९ ॥ तदम्भसा महाभाग आत्मानं स गृहान्वयम् ॥ स्नापयाञ्चक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥ ४० ॥ फलार्हणोशीरशिवामृताम्भसा मृदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः ॥ आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्वविवर्धनान्धसा ॥ ४१ ॥

आया देख श्रीकृष्णचन्द्र तथा मुनियोंको नमस्कार कर अत्यन्त हर्षित हो नाचने लगा ॥३८॥ तृण पत्र लाकर बिछा और कुशाके आसन पर ब्राह्मणों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको बैठाकर "भले आये" इस प्रकार बड़ाई कर स्त्रीसहित श्रुतदेव ब्राह्मण उनके चरण धोने लगा ॥३९॥ और अति प्रसन्नतासे पूर्णमनोरथ हो बड़भागी श्रुतदेव ब्राह्मणने चरणारविन्दके धोवन जलसे आत्मासहित संपूर्ण कुलको पवित्र किया ॥ ४० ॥ आमले आदि फलोंसे और मंगलरूप अमृतके समान मधुर जलसे तथा सुगन्धयुक्त मृत्तिका, तुलसी, कुश और अनायासलब्ध पूजाकी सामग्रीसे सत्त्वगुणको बढ़ानेवाले शुद्ध अन्नसे श्रुतदेव ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करके आराधना करने लगा ॥४१॥

जिनकी चरणरेणु सर्वतीर्थरूप ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र उनके रहनेके स्थान ब्राह्मणोंका संग घररूप अँधेरे कुएँमें पड़े मुझे किस कारणसे प्राप्त हुआ ? इस प्रकार ब्राह्मण तक करने लगा ॥ ४२ ॥ आतिथ्य कर भलीभांति विराजमान ब्राह्मणोंके निकट स्त्री कुटुम्ब और पुत्र सहित उपस्थित हो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका स्पर्श करता हुआ श्रुतदेव यह वचन कहने लगा ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव बोला कि जिस समय शक्तिसे इस विश्वको रचकर अपनी सत्तासे इसमें प्रविष्ट हुए, उसी समय तुम परमपुरुष हमको प्राप्त हुए, परन्तु इस सांवरे स्वरूपका दर्शन अभी प्राप्त हुआ ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार सोते हुए पुरुषने अपनी अविद्यासे स्वप्नमें मनसे ही दूसरे शरीरको रचकर उसमें मानो प्रवेश किया हो, उसी प्रकार तुमने भी इस संसारको निर्माणकर मानो इसमें घुसे हो, मुझको ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ जो तुम्हारी कथाओंको श्रवण

स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद् गृहान्धकूपे पतितस्य संगमः ॥ यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥ सूपविष्टान् कृतातिथ्यान् श्रुतदेव उपस्थितः ॥ सभार्यः स्वजनापत्य उवाचाङ्घ्र्यभिमर्शनः ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ॥ यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ॥ सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ॥ ४५ ॥ शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाऽभिवन्दताम् ॥ नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥ हृदिस्थोप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ॥ आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ॥ सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे स्वमाययाऽसंवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥

करे, तुम्हारे नामका कीर्त्तन करे, सदा तुम्हारी पूजा करे, तुमको प्रणाम करे; उन शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंको भी आप हृदयमें ही दर्शन देते हो, परन्तु मुझे तो आपने प्रत्यक्ष ही दर्शन दिया इस कारण मुझे जान पड़ता है कि मैं सबसे बढ़कर आज दिन भाग्यशाली पुरुष हूँ ॥ ४६ ॥ कर्मोसे चलायमानचित पुरुषोंके हृदयमें भी स्थित हो, परन्तु अति दूर हो और तुम्हारी कथाको सुनने और तुम्हारे नाम लेनेसे जिनके निर्मल अन्तःकरण हो गये हैं, उन पुरुषोंके तुम सदा समीप रहते हो ॥ ४७ ॥ देह और गेहमें अभिमानरहित पुरुषोंको मोक्ष देनेवाले और देहगेहमें अभिमानी पुरुषोंको आप संसार देते हो, कार्य महदादिक और कारण माया इन दोनों उपाधियोंको सेवन करते हो।

अपनी मायासे आप ढके नहीं हो, ऐसे जीवोंका ज्ञान मायासे आच्छादित करनेवाले आपको मैं ॥४८॥ प्रणाम करता हूँ, हम भक्तोंको आज्ञा दो, आपका क्या पूजन करें ? जबतक तुम नेत्रोंके सम्मुख नहीं आते तबतक ही मनुष्यको क्लेश रहता है ॥४९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार श्रुतदेव ब्राह्मणका वचन सुनकर शरणागतोंके दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड़ हँसकर यह वचन बोले ॥५०॥ श्रीभगवान् बोले कि हे ब्राह्मण ! ये मुनिलोग तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये यहां आये हैं यह तुम निश्चय जानो, क्योंकि यह पुरुष अपने चरणारविन्दकी रजसे मनुष्योंको पवित्र करते मेरे साथ भ्रमण किया करते हैं

स त्वं शाधि स्वभृत्यान् नः किं देव करवामहे ॥ एतदन्तो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान् प्रणतार्तिहा ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन् ॥ संचरन्ति मया लोकान्पुनन्तः पादरेणुभिः ॥ ५१ ॥ देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ॥ शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥ ५३ ॥ न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥ दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः ॥ गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥ ५५ ॥ चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ॥ मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥

॥ ५१ ॥ देवता, क्षेत्र तीर्थ ये दर्शन, स्पर्शन, अर्चन करनेसे बहुत कालमें धीरे-धीरे पवित्र करते हैं, सो भी महात्माओंकी इच्छा हो तो और ब्राह्मण तो शीघ्रही पवित्र कर देते हैं ॥ ५२ ॥ इस संसारमें समस्त प्राणियोंकी अपेक्षा ब्राह्मण जन्मसे श्रेष्ठ है और जो तप करके श्रेष्ठ हो तो इसमें कहना ही क्या है ? ॥ ५३ ॥ यह मेरा चतुर्भुजरूप भी मुझे ब्राह्मणोंसे विशेष प्यारा नहीं है क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और देवतारूप मैं हूँ और देवताओंकी सिद्धि वेदके अधीन होनेसे ब्राह्मण मुझे इस रूपसे भी अधिक प्रिय हैं॥५४॥ दुष्ट बुद्धि जन ऐसा न जानकर दोष को देखते हैं, उत्तम बुद्धिवाले मेरा गुरु, ब्राह्मण और आत्माका पूजन करते हैं ॥५५॥ स्थावर जङ्गमरूप यह विश्व और विश्वके कारण

महदादिक पदार्थ सब ईश्वररूप ही हैं,इस प्रकारसे ब्राह्मण सब ओर अपनी दृष्टिसे देखते हैं ॥५६॥ हे ब्राह्मण श्रुतदेव ! जैसी श्रद्धा मुझमें है, इसी प्रकार श्रद्धा सहित ब्रह्मर्षियोंका पूजन करो, मुझमें इनमें एकसा भाव करोगे तो मेरी साक्षात् पूजा हो जायगी और जो भेदभावसे बहुतसी संपत्तियोंसे भी मेरी पूजा करोगे तो भी प्रसन्न न हूँगा ॥५७॥ इतनी कथा सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाकर श्रुतदेव ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रसहित सब ब्राह्मणोंका एकभावसे आराधना कर सुन्दर गतिको प्राप्त हुआ और मिथिलापुरीके राजाने भी सुन्दर गति पायी ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार भक्तोंपर प्रीति करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपने भक्त बहुलाश्व और श्रुतदेवके यहां वासकर सन्मार्ग अर्थात् उपासनाकांड, ज्ञानकांड, कर्मकांड इन तीनोंका उपदेश कर फिर द्वारकापुरीमे आकर सुशोभित हुए ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रुतदेवा-

तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान् ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयाऽर्चय ॥ एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टः सहकृष्णान् द्विजोत्तमान् ॥ आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥ ॥ ५८ ॥ एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् ॥ उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥ कथं चरंति श्रुतयः साक्षात् सदसतः परे ॥ १ ॥

नुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥ दोहा–सत्तासी अध्यायमें, नारद हरि सुखधाम । परब्रह्म निश्चय कियो, वेदस्तुति परिणाम ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! पहले अध्यायके अन्तमें भगवान् वेदका अर्थ ब्रह्मपर है इस प्रकार उपदेश करके द्वारकाको चले गये, परन्तु,शब्दरूप वेदोंका ब्रह्मपरत्व नहीं बनता,क्योंकि मुख्या,लक्षणा और गौणी इन तीन प्रकारकी वृत्तियोंसे शब्दकी प्रवृत्ति होती है। मुख्या वृत्ति भी दो प्रकार की है–रूढ़ि और योग। जो वस्तु स्वरूप, जाति अथवा क्रियासे वा गुणसे निर्देश की जाय उसमें रूढ़िकी प्रवृत्ति होती है जिसका स्वरूप जाति, क्रिया, गुणसे निर्दिष्ट न हो उसमें यह सम्भव नहीं हो सकता । सो ब्रह्म तो जाति, गुण क्रिया, अथवा स्वरूपसे निर्दिष्ट नहीं होता, इसमें ब्रह्ममें रूढ़िकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती और कार्य कारणसे परे तथा असंग होनेसे योगवृत्तिका भी सम्भव नहीं हो सकता

और लक्षणमें सम्बन्धकी आवश्यकता है, ब्रह्म सब सम्बन्धसे रहित है, इस लक्षणवृत्तिका भी संभव नहीं हो सकता और जो श्रुति गुणका निरूपण करे तो ब्रह्म स्वयं निर्गुण है, इससे गौणीवृत्तिसे ब्रह्मका निरूपण नहीं हो सकता, फिर ब्रह्मको श्रुति किस प्रकारसे प्रतिपादन करती है? ॥१॥ राजा परीक्षितका यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! नित्यमुक्त सर्वशक्तिमान् ईश्वरने प्रलयकालमें अपने लीन हुए प्राणियोंके विषयभोगरूप अर्थ, जन्मसे कर्म पर्यन्तरूप धर्म परलोकमें उनके सुख भोगरूप काम और कल्पनादि वृत्तिरूप मोक्ष, पुरुषार्थ, देनेके लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राण इनकी रचना की है। यदि यह न हो तो अर्थ, धर्म, कामकी प्राप्ति नहीं हो सकती और जो स्वरूपका विचार न हो तो मोह भी नहीं मिल सकता है, "यः सर्वज्ञः सर्व शक्तिमान्" इस लक्षणका निरूपण करनेवाली श्रुति सगुणब्रह्मका निरूपण करती है और जीवोंकी संसारनिवृत्तिके लिये "तत्त्वमसि" (वह तू है) यह वाक्य ईश्वरकी ईश्वरता प्रतिपादन करता है, इससे नित्यमुक्त ईश्वरका वाचक 'तत्' शब्द और संसारी जीवका वाचक त्वंपदका समानाधिकरण्य प्रतीत होता है।

श्रीशुक उवाच ॥ बुद्धीन्द्रियमनःप्राणाञ्जनानामसृजत्प्रभुः ॥ मात्राऽर्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ॥ २ ॥
सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता ॥ श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिञ्चनः ॥ ३ ॥

सो यह जहदजहत्स्वार्था लक्षणासे अथवा भागत्याग-लक्षणासे बन सकते हैं। तत्पद तो सर्वज्ञादि गुणवाले ईश्वरका और त्वंपद अल्पज्ञादि गुणवाले पदार्थका वाचक है, इन परस्पर विरुद्ध गुणवाले शब्दोंमेंसे परस्पर विरुद्धरूप अंशका त्याग करनेसे दोनोंमें प्राप्त चैतन्यरूपका समान अंश ग्रहण करके "तत् त्वं" यह दोनों पद ब्रह्मरूप एक अर्थके प्रतिपादक होकर एकताका निरूपण कर शुद्ध ब्रह्मको कथन करते हैं और 'स्थूलमनण्वह्रस्वम्' इत्यादि निषेधका निरूपण करनेवाली श्रुति तत्पदार्थके शोधन करनेमें चरितार्थ हो उपाधिके निषेधसे साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममें पर्यवसान होती है, उत्पत्ति, पालन और प्रलयकी प्रतिपादक श्रुति भी आवागमनरूप सृष्टिका निरूपण कर उसीसे वैराग्यरूप ज्ञानके साधनोंका उपदेश करती ज्ञानके परम्परा सम्बन्धसे ब्रह्मको ही प्रतिपादन करती है। उपासनाकी निरूपण करनेवाली श्रुति उपासना द्वारा अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञानसाधनाका उपदेश देती ज्ञानद्वारा ब्रह्मका ही प्रतिपादन करती है इस कारण सर्वथा श्रुति ब्रह्मको ही प्रतिपादन करती है, यह अभिप्राय है ॥२॥ यह जो ब्रह्मपर उपनिषद है, सो प्रथम हुए सनकादिकोंने पहले धारण किये हैं, जो

पुरुष निष्किंचन होकर श्रद्धापूर्वक उन्हें धारण करेंगे वे मोक्षको प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम ! यहां तुम्हें नारायणसम्बन्धी गाथा हम सुनाते हैं, जिसमें नारदजी और ऋषि नारायणजीका संवाद है ॥ ४ ॥ एक समय भगवान्के प्यारे नारदजी समस्त लोकोंमें घूमते घूमते सनातन ऋषिको देखनेके लिये नारायणके आश्रम बदरिकाश्रममें आये ॥ ५ ॥ जो नारायण भरतखण्डमें लोकोंके कारण क्षेम और मंगलके लिये धर्म ज्ञानसे युक्त कल्पपर्यंत तप करते हैं ॥ ६ ॥ वहां कलाप ग्रामके वासी ऋषियों सहित विराजमान नारायणजीसे नम्र होकर पूछने लगे ॥ ७ ॥ उस समय जनलोक निवासी सनकादिकोंमें जो ब्रह्मविचार हुआ था वही भगवान् नव ऋषियोंके श्रवण करते नारदजीसे कहने लगे

अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ॥ नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥ एकदा नारदो लोका-
न्पर्यटन्भगवत्प्रियः ॥ सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥५॥ यो वै भारतवर्षेऽस्मिन् क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् ॥
धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥ तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ॥ परीतं प्रणतोऽपृच्छदि-
दमेव कुरूद्वह ॥ ७ ॥ तस्मै ह्यवोचद्भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् ॥ यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ स्वायंभुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत्पुरा ॥ तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥
श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ॥ ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ॥ यत्र हाऽयमभूत् प्रश्नस्त्वं मां
यमनु पृच्छसि ॥ १० ॥ तुल्य श्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः ॥ अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥११॥

॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे नारदजी ! पहले जनलोकमें ब्रह्माके मनसे उत्पन्न हुए नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादिक मुनियोंका ब्रह्मसूत्र अर्थात् ब्रह्मविद्याका विचार हुआ था ॥ ९ ॥ परन्तु हे नारद ! उस समय श्वेतद्वीपके ईश्वर अनिरुद्धमूर्तिके देखनेके लिये श्वेतद्वीपमें तुम गये थे, तब ब्रह्मवाद हुआ था, उस ब्रह्मवादमें श्रुति भगवान्का प्रतिपादन करती है, वहां यही प्रश्न हुआ जो तुमने मुझसे पूछा है ॥१०॥ यद्यपि श्रवण, तप, शील, शास्त्राभ्यास, मित्र, शत्रु, मध्यमें इस सबमें सनकादिक समान ही हैं परंतु तो भी एककी वक्ता बनाकर सम्पूर्ण श्रोता हो

* शंका—बदरिकाश्रममें नारायणनाम मुनि मनुष्यके कल्याणके लिये बहुत युग कल्प कल्पांतसे तप करते हैं सो उस तप करनेसे मनुष्योंका क्या कल्याण होता है ?

उत्तर—सब जीवोंके इंद्रियोंको विषयसुख अलग-अलग सब लोकमें हैं, परंतु नारायणनाम मुनि भरतखण्डमें तप करते हैं, इस लिए मनुष्योंको ज्ञानका सुख तथा मोक्षरूप कल्याण ज्ञानसे होना सिवाय भरतखण्डके दूसरे द्वीप तथा और लोकमें नहीं है, हे श्रोताओ ! ज्ञानसे अधिक दूसरा कल्याण मनुष्योंको कोई भी नहीं है इसलिये मनुष्यों के कल्याण होने के कारण नारायण मुनि तप करते हैं ऐसा लिखा है ।

गये ॥११॥ सनन्दनजी बोले कि अपने निर्माण किये इस संसारका नाश कर अपनी शक्तिसहित सोये हुए भगवान्‌को प्रलयके अन्त समयमें ब्रह्मके प्रतिपादक वचनोंसे श्रुतियें जगाने लगीं ॥१२॥ जैसे रात्रिके सोये हुए चक्रवर्ती राजा को प्रातःकालको राजोपजीवी बन्दीजन उठ उसके पराक्रमके सुन्दर यशको वर्णन करके जगाते हैं ॥ १३ ॥ श्रुतियें बोलीं कि हे सर्वविजयी ईश्वर ! तुम्हारी जय हो, आप अपने वैभवको प्रकट करो और इस घोर निद्राको त्यागकर हमारा प्रतिपालन करो, जिस प्रकार स्त्री दूसरे पुरुषको छलनेके लिये अनेक प्रकारके रूप और गुण धारण करती है उसी प्रकार आनन्दादिकका आवरण करनेके लिये गुण ग्रहण करनेवाली स्थावर और जङ्गम शरीराश्रित जीवोंकी अविद्याका नाश करो, क्योंकि अनादिकालसे यह अविद्या संसारके जीवोंको मोहित करके अनेक प्रकारके दुःख दिखाती है, इसी कारण प्राणियोंको अनेक योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है, यह सब अविद्याका ही प्रभाव है, क्योंकि यह अविद्या महाबलवान् है, मनु-

सनन्दन उवाच ॥ स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः॥ तदन्ते बोधयाञ्चक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥१२॥ यथा शयानं सम्राजं बन्दिनस्तत्पराक्रमैः ॥ प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः ॥ १३ ॥ श्रुतय ऊचुः ॥ जयजय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ॥ अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥ १४ ॥

ष्योंका तो क्या सामर्थ्य है ? देवताओंके मनको भी मोहनेवाली है, वे भी इसके दूर करनेका सामर्थ्य नहीं रखते, आप ही इसको दूर कर सकते हो, क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी और मायासे रहित हो और महागम्भीर संसार सागरसे पार उतार मोक्षके देनेवाले आपही हो, इसी लिये वारंवार आपसे यह निवेदन है कि आप इन जीवोंपर अनुग्रह करके इस महाप्रबल अविद्याका नाश करो, क्योंकि माया आपके वश होनेसे सब ऐश्वर्य आपको स्वरूपसे ही प्राप्त है, इसी कारण अविद्या आपमें किसी प्रकारका दोष नहीं लगा सकती और आप सनातन धर्म पालने और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये जगत्‌में अनेक अवतार धारण करते हो । हे सर्व प्राणियोंके बोध करनेवाले परमेश्वर ! सृष्टिके आदि समयमें माया करके क्रीड़ा करते हो और आनन्द स्वरूप आत्मा करके वर्तमान आपका वेद प्रतिपादन करता है और आपही सम्पूर्ण शक्तियोंके जाननेवाले हो, आप अखण्डविभव और ज्ञानशक्तिसे जीवोंका अज्ञान दूर करते हो, इस विषयमें हम (श्रुति) ही प्रमाण

हैं ॥१४॥ (१) यदि कहो कि मन्त्रोंमें अग्नि आदि देवताओंका प्रतिपादन देखनेमें आता है, वे भी सब तुम्हारे ही रूपके हैं, ऐसा ज्ञानी जानते हैं, क्योंकि यह जो कुछ दृश्यमान है इसके न होनेपर आप ही अवशेष रहते हो, इस सब जगत्की उत्पत्ति नाश आपमें ही होते हैं, जैसे घटादिकोंका उदय, अस्त मृत्तिकामें होता है, मन्त्रदृष्टा ऋषियोंके मन और वचनका तात्पर्य तुम्हारे विषय हैं, अन्यमें नहीं, जैसे मनुष्य अपने चरण मृत्तिका, पाषाण, ईंट इनके ऊपर धरता है, परन्तु भूमिसे पृथक् नहीं है, उसी प्रकार जो कुछ विचार है सो सब तुम्हींसे हुआ है, सर्वकारण परमार्थरूप तुम हो; इस प्रकार हम (वेद) प्रतिपादन करते हैं ॥ १५ ॥ (२) हे त्रिगुण मायामृगीके नचानेवाले ! विवेकी पुरुष तुम्हारे अखिल लोकोंमें मल नाश करनेवाले कथारूपी अमृतके समुद्रको सेवन करके पाप और दुःखोंको त्याग देते हैं । जब तुम्हारी कथामात्रसे ही पापोंका नाश हो जाता है तब फिर स्वरूपका स्मरण कर अन्तःकरणके गुण रागादिक और कालके गुण जरादिक जिनके

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदिवाविकृतात् ॥ अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथाभवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥१५॥ इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ॥ किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाःपरम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥ ॥ १६ ॥ दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोऽण्डमसृजन् यदनुग्रहतः पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥ १७ ॥

निवृत्त हो गये। इसमें क्या आश्चर्य है ? और हे प्रभो ! तुम्हारे परम अखण्ड आनन्द अनुभव स्वरूपका भजन करके दुःखोंको त्यागे तो इसमें कहना ही क्या है ? ॥१६॥ (३) जो पुरुष तुम्हारा भजन नहीं करते उनकी निन्दा है और जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करते हैं, उनका जन्म सफल है, इस प्रकार स्तुति करते हैं, अथवा जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करके श्वासोंको पूर्ण करते हैं, वे ही सफलजन्मा हैं, और जो विना भजन किये श्वास लेते हैं, वह लुहारकी धौकनीके समान वृथा श्वास हैं, तुम्हारे भजनके विना कृतघ्नियोंको फलकी सिद्धि नहीं होती, फिर जिसके अनुग्रहसे महत्तत्त्व अहंकारादिक तत्त्व इस प्रकार देहको रचते हैं, उस देहमें अन्नमय, मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय कोश जो देह, प्राण, मन, बुद्धि और ज्ञान कहलाते हैं उनमें प्रवेश करके उन आकारोंसे चेतन करनेवाले तुम्हीं हो, इस प्रकार

वेदने अन्तमें वर्णन किया है। अन्नमयादिकोंके आकारवाला पुरुष अन्नमयादिकोंमें मिल रहा है, यद्यपि यह बात सत्य है, परन्तु तो भी तुम्हारा असंगत्व नहीं मिटता तो अन्नमयादिकोंके अन्तमें ही इसलिये पुच्छसे वर्णन करते हैं। स्थूल सूक्ष्मसे परे हो और इनमें अविशेष रूप हो, इस कारण सत्य हो, शाखाचन्द्रके तुल्य शुद्धरूप दिखानेके लिये अन्नमयादिकोंमें सम्बन्ध कहा है, जैसे शुद्ध चन्द्रमाके दिखानेको वृक्षकी शाखाका अवलम्बन करते हैं उसी प्रकार ब्रह्मके दिखानेको कोशादिका अवलंबन है ॥१७॥ (४) हे अनन्त! जो मनुष्य ऋषिवर्त्म अर्थात् वेदोक्त कर्ममार्गमें स्थित होकर वेदके उदररूपी कर्मकी उपासना करते हैं अर्थात् अग्निहोत्र त्याग करते हैं, भगवद्दर्शनमें रुचि नहीं करते वे कूपसदृश हैं अर्थात् उनके नेत्रोंमें धूरि पड़ी हुई है, इसलिये सूक्ष्म वस्तुका दर्शन नहीं कर सकते "यज्ञो वै विष्णुः" इस श्रुतिके अनुसार वे भी भगवदुपासक ही हैं और योगीजन नाड़ियों द्वारा हृदयमें भगवदुपासना करते हैं, इसलिये वे आरुणी अर्थात् अरुणोदयमें

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ॥ तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥१८॥ स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्स्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः ॥ अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥१९॥ स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंशकृतम् ॥ इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥ २० ॥

थोड़ा प्रकाश हो जाता है, उसी प्रकार इनकी उपासना है और आपकी प्राप्तिका स्थान सुषुम्ना नाड़ी जो मूलाधारसे हृदयमें हो ब्रह्मरन्ध्र तक गयी है, जिसको पाकर फिर प्राणी संसारमें नहीं आते उसीका नाम मुक्ति है ॥ १८ ॥ (५) तुम सबके उपादान कारण हो, इसलिये प्रथम ही सबमें वर्तमान हो। यद्यपि तुम्हारे निर्मित किये ऊँच, नीच मध्य देहोंमें तुम्हरा प्रवेश होना संभव नहीं तो भी जैसे उनमें प्रवेश किये हो, उसी प्रकार देहादिकोंका अनुसरण करते न्यूनाधिक प्रतीत होते हो, जैसे अग्नि तारतम्यरहित है परन्तु काष्ठमें व्याप्त होनेसे उसीके समान प्रतीत होती है, उसी प्रकार आपको सब उपाधिसे रहित, समान, एकरस जानकर दोनों लोकके कर्मफलरहित उज्ज्वल बुद्धिवाले मनुष्य असत्य देहादिमें सत्य मानकर आपकी ही उपासना करते हैं ॥ १९ ॥ (६) अपने कर्मोंसे प्राप्त हुए नरकादिक देहमें यह

जीव भोक्तृत्वसे वर्तमान है और भीतर बाहर आवरणरहित संपूर्ण शक्तियोंके धारण करनेवाले तुम्हारा अंश ही है । इस प्रकार पंडित जीवकी गति विचार वेदोंके उत्पत्तिस्थान और संसारसे छुड़ानेवाले तुम्हारे चरणोंकी उपासना करते हैं । इसी प्रकार विश्वासपूर्वक अर्चन, वन्दन करना यही मर्त्यलोकमें उचित है ॥२०॥ (७) हे ईश्वर ! दुर्बोध आत्मतत्त्वके जाननेके लिये अवतार धारण करनेवाले तुम्हारे चरित्र-रूपी अमृतसमुद्रमें अवगाहन कर श्रमरहित हो कोई एक तुम्हारे चरणकमलमें अवगाहन कर हंसके भक्त मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते और तुम्हारे समान रमण करते हैं; ऐसे भक्तोंके संगके लिये घर भी उन्होंने त्याग दिये हैं, जब गृहादिका त्याग कर दिया तो परलोकके सुखकी क्या कथा है ? इसलिये आपकी भक्ति मुक्तिसे भी अधिक है ॥ २१ ॥ (८) तुम्हारी सेवाका साधक यह शरीर यद्यपि आत्मा

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ॥ न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥ २१ ॥ त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ॥ न बत रमन्त्यहो असदुपासनयाऽऽत्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥२२॥ निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ॥ स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्ड-विषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ॥ २३ ॥

सुहृद् और प्रियके समान स्वाधीन हैं, तो भी सम्मुख स्थित हितकारी प्यारे आत्मारूप आपका साक्षात् भावसे भजन नहीं करते और देहा-दिके लालन पालन करनेमें पड़े रहते हैं, यह बड़े कष्टकी बात है । मिथ्याभूत देहादिकोंके सेवनसे असत् उपासनामें वासनावाले नीच देहको धारण करनेवाले बड़े भयरूप संसारमें भ्रमण करते हैं, इसलिये वे आत्मघाती हैं ॥ २२ ॥ (९) प्राण, मन, इंद्रिय जीतकर दृढ़ योगके करनेवाले मुनिलोग हृदयमें जिसकी उपासना करते हैं वे जिस तत्त्वको योगद्वारा प्राप्त हुए हैं,उसी प्रकार शत्रु भी तुम्हारे स्मरणसे तुमको प्राप्त हुए हैं तथा शेषके शरीरके तुल्य तुम्हारे भुजदण्डमें आसक्तबुद्धि स्त्रियें भी तुमको प्राप्त हुई हैं। इसी कारण हम कहते हैं कि आपकी कृपादृष्टि सबपर समान है और हम तुम्हें देशकाल परिच्छेद रहित देखते हैं । तुम्हारा प्रताप ऐसा है कि जो जिस भावसे आपका ध्यान

करे, सबको तुम्हारे चरणकमलकी प्राप्ति होती है ॥२३॥ (१०) हे भगवन् ! इस संसारमें पूर्वसिद्ध तुमको आधुनिक उत्पत्ति विनाशसे युक्त पुरुष कैसे जानेंगे ? अर्थात् नहीं जानेंगे । तुमसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है, ब्रह्माके पीछे आध्यात्मिक आधिदैविक देवताओंके गण उत्पन्न हुए, इसके पीछे सब चराचर उत्पन्न हुए, इसलिये इन सबका वृत्तांत आप भली भांति जानते हो, क्योंकि आप तो सबसे पूर्व अनादि हैं, फिर आपको पीछे उत्पन्न होनेवाला और नाशवान् कौन मूर्ख कह सकता है ? जिस समय तुम सबका संहार करके शयन करते हो, उस समय जीवोंको ज्ञान साधन नहीं रहता, प्रलयके समय स्थूल आकाशादि नहीं तथा स्थूल सूक्ष्मसे आरब्ध शरीर भी नहीं और शरीरका कारणरूप कालका विषयभाव भी नहीं रहता, इस समय इंद्रिय प्राणादिक कुछ नहीं और सबका जाननेवाला पुरुष भी नहीं रहता । तात्पर्य यह है कि पूर्वकालके पुरुष अपने पीछे हुओंके वृत्तांतको जानते हैं परन्तु पीछे उत्पन्न हुए पूर्वजोंका चरित्र नहीं जान सकते, जिस प्रकार

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यतउदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये ॥ तर्हि न सन्न चासदुभयं न च काल-
जवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा॥२४॥जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां विपणमृतं स्मर-
न्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः॥त्रिगुणमयः पुमानितिभिदा यदबोधकृता त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥२५॥

पिता तो पुत्रके वृत्तांतको भले प्रकार जानता है, क्योंकि उसके सामने उसका जन्म और सब कार्य हुए परन्तु पुत्र पिताका वृत्तांत किसी रीतिसे नहीं जान सकता, क्योंकि जब उसका जन्म कर्म ही उसके आगे नहीं हुआ, फिर उसके भेदभावको वह कैसे जान सकता है ? इसी प्रकार आपके पीछे हुए सब प्राणी आपको नहीं जान सकते, इससे आपका भजन ही करना उचित है ॥२४॥ (११) मिथ्याभूत जगत्की उत्पत्ति है, अर्थात् यह पहले कुछ नहीं था, इस प्रकार वैशेषिकादिक आचार्य कहते हैं और जीवोंमें ब्रह्मत्व नहीं है, परन्तु योग साधनसे हो जाता है, यह योगशास्त्रवाले कहते हैं और इक्कीस प्रकारके दुःखोंका नाश मोक्ष है, इस प्रकार नैयायिक कहते हैं और सांख्याचार्य आत्मामें भेदभाव मानते हैं और कर्म फलके व्यवहारको मीमांसक सत्य कहते हैं, सो सम्पूर्ण आरोपित भ्रमसे ही उपदेश करते हैं, तत्त्व दृष्टिसे उपदेश नहीं करते, वास्तवमें वह पुरुष त्रिगुणमय हो तो इनका कहना सत्य है, सो नहीं, त्रिगुणमय पुरुष यह भेद तुम्हारे विषे अज्ञा-

नसे किया है, तुम अज्ञानसे परे संगरहित ज्ञानघन हो, इसलिये तुममें अज्ञानका होना संभव नहीं ॥ २५ ॥ (१२) जो असत् नहीं उपजे और त्रिगुणमयपुरुष नहीं है तो इससे यह विदित हुआ कि यह सब प्रपञ्च और पुरुष सम्पूर्णतः तुमसे भिन्न नहीं हैं सो उनके स्वरूपसे सत्यकी प्रतीति कैसे संभव है ? मनोमात्र विलसित, त्रिगुणात्मक प्रपञ्च मिथ्या ही हैं तो सत्य कैसे प्रतीत हो सकता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं, तुम अधिष्ठान हो इस कारण तुम्हारी सत्तासे सत्यता प्रतीत हो सकता है, यह केवल निषेधसे प्रतीत हुआ है, अर्थात् अभिप्रायसे मनुष्यसे पुरुषकी भिन्न जो सत्त्व प्रतीत होती है, सो मनोमात्रका विलास है, आत्माके जाननेवाले इस भोक्ता और भोग्यरूप जगत्को स्थिर हुए आत्माकी सत्ता से ही सत्तावाला कहते हैं, आत्मासे भिन्न सत्तावाला नहीं मानते । आत्माका कार्य है इसलिये भिन्न नहीं हैं, जैसे स्वर्गके विकार कुण्डलादिक आभूषणोंको स्वर्गके लेनेवाले त्याग नहीं करते, किन्तु जैसे स्वर्ग ही जानकर ग्रहण करते हैं इसी कारण

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात् सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयाऽऽत्मविदः ॥ न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ॥२६॥ तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया त उत पदाऽऽक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः ॥ परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥ २७ ॥ त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयाऽनिमिषाः ॥ वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो विदधाति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥ २८ ॥

अपने किये विश्वमें प्रविष्ट पुरुषरूप जीव भी आत्मा ही है, यह निश्चय है ॥ २६ ॥ (१३) परमात्माको सर्वत्र जान लेना और भक्ति न करना यह बात नहीं किन्तु उसकी सदा भक्ति करनी, क्योंकि जो आपको संपूर्ण पदार्थोंमें स्थित जानकर तुम्हारी सेवा करते हैं वे संसारको तिरस्कार कर मृत्युके मस्तकपर चरण धर मुक्त हो जाते हैं और जो तुमसे विमुख हैं और तुम्हारे अभक्त हैं, उन्हें पशुओंके समान वाणीसे तुम बांधते हो और जिनने आपसे प्रेम किया है वह निश्चय अपनेको और दूसरोंको पवित्र कर सकते हैं ॥ २७ ॥ (१४) हे प्रभो ! तुम इंद्रियोंके संबन्धसे रहित हो और समस्त प्राणियोंको इंद्रियोंकी शक्तियोंको प्रवृत्त करते हो, अपने स्वरूपसे ही प्रकाशमान हो, स्वतः सिद्ध ज्ञानशक्ति होनेसे तुमको इंद्रियोंकी अपेक्षा नहीं है, इसी कारण विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक और इंद्रादिक देवता संपूर्ण

मायासहित तुम्हारी पूजा करते हैं और मनुष्योंका दिया हव्य कव्यादिक बलि भक्षण करते हैं, जैसे संपूर्ण पृथ्वीके ईश्वर चक्रवर्ती राजाको खण्ड मण्डलोंके राजा भेंट देते हैं और आप अपनी प्रजासे भेंट लेते हैं उसी प्रकार ब्राह्मणादिक तुमको भेंट देते हैं और जिन्हें आपने अधिकार दे रखा है, उसी अधिकारको तुम्हारे भयसे पूर्ण करते हैं ॥ २८ ॥ (१५) हे नित्यमुक्त ! जिस समय मायासे तुम्हारा विहार होता है, उसी समय आपकी दृष्टिसे प्रकट हुए कर्म अथवा कर्मयुक्त लिंगशरीरसे स्थावर जंगम जातिके जीव उत्पन्न होते हैं । यदि उत्तम, मध्यम, अधम सृष्टि होने में उन जीवोंके पूर्व कर्म निमित्त न माने तो मन वाणीसे परे शून्यभावसे बराबरीके करनेवाले आकाशके सदृश सम्पूर्णमें सम भाव और परमदयाल आपमें विषमताका लेश भी नहीं है, क्योंकि तुम्हारी दृष्टिमें कोई अपना पराया नहीं है इसलिये आपका भजन ही मुख्य है ॥ २९ ॥ (१६) जो जीव अनंत और रूपसे नित्य है और सर्वव्यापी है तो यह पक्ष हमारा नहीं क्योंकि यदि जीव

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ॥ न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवाऽपदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥ २९ ॥ अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ॥ अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥ ३० ॥ न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्‌बुदवत् ॥ त्वयि त इमे ततो विविध नामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥ ३१ ॥

वास्तवमें अनन्त नित्य और उसी रूपसे व्यापक हो तो वे व्यापकतादि गुणोंसे आपके समान हो गये जब समान हुए तो आप उनके नियन्ता नहीं हो सकते, जो यह न मानें तो आपसे उनका नियम संभव न हो, क्योंकि जो वस्तु उपाधिसे जिस पदार्थका विकाररूप है वह पदार्थ उस वस्तुका निश्चय नियन्ता होगा, क्योंकि उसमें अनुस्यूत रहा, वह पदार्थ कारणतासे उस वस्तुका त्याग नहीं करता, तुम्हारे स्वरूपसे "यत्, तत्" शब्दके अतिरिक्त कुछ भी कहा जाय ऐसे नहीं हैं, क्योंकि हम ब्रह्मको जानते हैं, इस प्रकार जो कहते हैं वे ब्रह्म स्वरूपको कुछ भी नहीं जानते, क्योंकि ब्रह्म किसीका विषय नहीं और जो जाननेमें आता है वह अनात्म पदार्थ है ॥ ३० ॥ (१७) प्रकृति और पुरुषका जन्म संभव नहीं, क्योंकि प्रकृति पुरुष अजन्मा हैं इसलिये प्रकृति पुरुषके सम्बन्धसे जीव जन्म लेता

है, जैसे जलमें बबूला केवल जलसे और केवल पवनसे ही नहीं उत्पन्न होता किन्तु दोनोंसे उत्पन्न होता है । तुम कारणरूप ईश्वर ही, तुम्हारे विषे अनेक नाम रूप गुण सहित जीव लीन होते हैं, जैसे शहदमें सम्पूर्ण वनस्पतियोंके रस लीन होते हैं, जैसे मधुमें सम्पूर्ण फलोंके रस विशेषतासे दृष्टि नहीं आते परन्तु सामान्य रूप से दीख सकते हैं, वैसे ही निद्रामें और प्रलयकालमें आपमें लय हुए जीव विशेषरूपसे नहीं रहते और मुक्त तो आपके निरुपाधिक रूपमें लीन होते हैं, जैसे समुद्रमें सम्पूर्ण नदी लीन होती हैं,ऐसे वह मुक्तिदशामें आपसमें लीन हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ (१८) जीवोंके विषे तुम्हारा मायासे वारंवार जन्म मरण रूप यह भ्रमण जानकर सुबुद्धि पुरुष संसारसे निवृत्त करनेवाले तुम्हारे विषे भावना करते हैं और जो तुम्हारी शरण होकर भजन करते हैं, उनको संसारका भय नहीं होता, क्योंकि शीत, ऊष्ण, वर्षावाला संवत्सररूपी काल तुम्हारा भ्रूभंगरूप है और जो तुम्हारे शरण नहीं है उनके रक्षक नहीं, किन्तु भयकारक

नृषु तव मायया भ्रममभीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्॥कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद् भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम्॥३२॥विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः ॥ व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाऽज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ ॥३३॥ स्वजनसुतात्मदारधनधामधराऽसुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ॥ इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां मुखयति को न्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥ ३४ ॥

हो इसलिये बुद्धिमान् पुरुष तुममें भाव करते हैं ॥ ३२ ॥ (१९) हे अजित ! मनके निग्रह करनेसे ऐसा सेवन बन सकता है, परमदेव गुरुके चरणकी शरण लिये विना जो इन्द्रिय प्राणोंको जीतकर अतिचञ्चल दुर्जेय मनरूपी घोड़ेके जीतनेका यत्न करते हैं वे उपायसे खेद पाते हैं और विघ्नोंसे व्याकुल होते हैं, क्योंकि मनका जीतना गुरुकी कृपासे ही होता है, जैसे जो व्यापारी मल्लाह नहीं रखते, वह समुद्रमे पड़े दुःख पाते हैं ॥ ३३ ॥ (२०) जो प्राणी आपका आश्रय लेते हैं उनको सर्वसुखके स्थान आत्मरूप आपके होते सुजन, पुत्र, देह, घर, पृथ्वी, प्राण, रथ इत्यादि वस्तुसे क्या प्रयोजन ? जो पुरुष आत्माका सेवन करता है, उसका इन तुच्छ पदार्थोंसे क्या प्रयोजन ? सत्य परमार्थ सुखको न जान स्त्री पुरुष मिलकर रतिके लिये विचरते हैं, उनको इस संसारमें तुम्हारे सिवाय

कौन सुख है ? अर्थात् कोई नहीं। यह संसार मिथ्याभूत और साररहित है इसलिये तुम्हारा भजन करना उचित है ॥३४॥ (२१) अहंकारको त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दको हृदयमें धारण करना तुम्हारे भक्त ऋषि मुनि कि जिनके चरणोंका जल स्वतः पापनाशक है, परन्तु तो भी इस पृथ्वीमें आपका भजनरूप महापुण्य करनेवाले महात्माजनोंके आश्रमोंका और अतिपावन तीर्थ क्षेत्रोंका सेवन करते हैं और पुरुषोंके ज्ञान वैराग्यके नाश करनेवाले गृहादिकोंका सेवन नहीं करते, जिन्हें गुरुकी कृपासे तत्त्वज्ञानकी प्रतीति और संसारकी मिथ्या प्रतीति हो गयी है वह महात्माओंकी संगति करते हैं, क्योंकि जिसे एक बार भी आत्माके सुखका अनुभव हुआ है वह कदाचित् गृहमें आसक्त नहीं होता, तब उत्तम पुरुष किस प्रकारसे घरमें आसक्त हो सकते हैं ॥ ३५ ॥ (२२) यह जगत् सत्यसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये सत्य है, जैसे सुवर्णसे उत्पन्न हुए कुण्डलादि सुवर्ण ही हैं, इस प्रकार मानोगे तो

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उरुभवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदङ्घ्रिजलाः ॥ दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ ३५ ॥ सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक् ॥ व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया भ्रमयति भारतीत उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥

व्यभिचार प्राप्त होगा, जैसे पितासे पुत्र होता है, सो प्रथम क्यों मर जाता है तथा पृथ्वीसे उत्पन्न हुए घटादिक क्यों फूट जाते हैं ? इससे यह जगत् मिथ्या हैं तो कहते हैं कि उत्पन्न नाम उपादान कारण नहीं है, निमित्त कारण है, इससे कुछ दोष नहीं; इसमें दोष देकर समाधान करते हैं, कि जो वस्तु जिस उपादानसे हुई हो वह वस्तु उस उपादानसे भिन्न नहीं होती, यह भी नियत नहीं, क्योंकि रज्जुरूप उपादान से हुआ सर्प रज्जुसे पृथक् होता है, रज्जु सत्य और सर्प मिथ्या होता है। यदि सर्प सत्य हो तो जिस प्रकार कुण्डलका बाध नहीं होता उसी प्रकार सर्पका भी बाध न होना चाहिये। शंका—रज्जुमें हुए सर्पमें केवल रज्जु ही उपादान कारण नहीं, किन्तु अज्ञान भी उपादानका कारण है, इस प्रकारके उपादान कारणसे हुई वस्तुका मिथ्यापन बन सकता है, जो केवल सत्य उपादानकारणसे उत्पन्न हो उसका मिथ्यापन सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिये द्वैत असत्य नहीं। उत्तर—यह द्वैत भी सत्यरूप ब्रह्म और उसके साथ अज्ञानरूप उपादान

कारणसे हुआ है। शंका—जो इस प्रकार जगत् नित्य कहा है तो मिथ्या किस प्रकार है ? समाधान—कर्मफलको नित्य कहना वेदका तात्पर्य नहीं, किन्तु उन वाक्योंसे कर्मकी स्तुति की है, यदि वेद कर्मफलको नित्य मानता तो जैसे यहां परिश्रमसे उत्पन्न किये पदार्थ कालान्तरमें क्षीण हो जाते हैं उसी प्रकार परलोकमें पुण्यका सुख कालान्तरमें नष्ट हो जाता है "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" इस कारण कर्मश्रद्धाके भारसे जिनकी बुद्धि मन्द हो गयी है, उन्हें वेदवाणी गौणी और लक्षणा वृत्तिमें डालकर भ्रमयुक्त कर देती है, इससे वह यथार्थ वेदके तात्पर्यको न जानकर कर्मफलको नित्य मानते हैं, कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, इस बातको नहीं जानते। आशय यह है कि जैसे मकरी अपनेमेंसे तन्तु निकाल फिर आप ही ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार ईश्वर जगत्को उत्पन्न कर अपनेमें लय कर लेता है, वास्तवमें शुद्ध है, इस लिये अद्वैत सिद्ध है, मिथ्यासे द्वैत भासता है ॥ ३६ ॥ (२३) हम और कारणसे सत्य कहेंगे जगत सत्य है, क्योंकि अर्थ कियाका करनेवाला है। यदि न हो तो सीपींमें रूपेकी प्रतीति कैसे होती है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि व्यवहारके लिये अर्थ, क्रियाके

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे ॥ अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥ ३७ ॥

लिये भ्रम इष्ट है, जैसे खोटे रुपयेसे व्यवहार खो जाता है, तो कहते हैं कि जो एक ठौर सत्य है उसको और भ्रम होता है, यह प्रसिद्ध है, अत्यन्त झूठा प्रपंच हो तो भ्रम न हो इससे सत्य है, तो कहते हैं सत्य नहीं है, किन्तु अन्धपरंपरासे भ्रम किया है, वहां वेद कर्मफलकी सत्यताका प्रतिपादन करता है कि "चातुर्मासके पूजन करनेवालोंको अक्षय पुण्य होता है और अमृतपान करेंगे" इत्यादि वचनसे कर्म फलको यह द्वैत सृष्टिसे पहले भी नहीं था और आगे भी न होगा, मध्यमें आपके शुद्ध अद्वैत रूपमें मिथ्या ही प्रतीत होता है, यह निश्चय है। इसी कारण मृत्तिका सुवर्ण और लोहा आदि पदार्थोंके घट, कुण्डल, परशु आदि निर्माण किये हुए आकारसे नाममात्र ही हैं, उनके कारण मृत्तिका, सुवर्ण, लोहादि सत्य हैं, इसलिये पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाशादि कार्य नाममात्र हैं, उनका कारण ब्रह्म सत्य है, इस कारण द्वैतकी सत्यतामें कुछ प्रमाण नहीं, मनके विलाससे इस मिथ्याभूत अद्वैतको जो सत्य मानते हैं, वह अज्ञानी हैं ॥ ३७ ॥ (२४)

जब द्वैत कोई वस्तु नहीं तो इसमें चैतन्यका सम्बन्ध लेशमात्र भी न होना चाहिये, फिर जीव किस अपराधसे जन्म, मरण, सुख, दुःखकी प्राप्ति करते हैं और ईश्वर नित्य मुक्त किस प्रकार है? कर्मकाण्ड किस कारण है? इसपर कहते हैं कि जीव मायामें पड़े अविद्याका आलिंगन करते हैं, इसलिये देह इन्द्रियादिकोंका सेवन करते, उन्हें अपना ही स्वरूप मानते हैं, इसीलिये देह और इन्द्रियोंके धर्मसे युक्त हो आनन्दादि गुणोंके आवरणसे जन्म मरणकी प्राप्ति करते हैं, यह सब काण्ड अविद्यायुक्त जीवमें हैं और आप तो मायाकी असत्यता जानते हो; जैसे सर्प केंचुलीको सत्य नहीं समझता और उसे त्याग देता है उसी प्रकार आप मायाको त्याग देते हो, इस कारण तुम नित्य अखण्ड ऐश्वर्ययुक्त अप्रमेय अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यवान् अपनेमें आप ही विराजते हो ॥ ३८ ॥ (२९) हे भगवन् ! जो संन्यासी (यती) अपने हृदयमें स्थित कामकी वासनाओंको नहीं उन्मूलित करते उन असाधुओंके हृदयमें तुम स्थित होकर भी नहीं मिलते, जैसे स्मृति न

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्भजति सरूपतां तदनुमृत्युमपेतभगः ॥ त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥ ३८ ॥ यदि न समुद्धरति यतयो हृदि कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः ॥ असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥ त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः ॥ अनुयुगमन्वहं सगुणगीतपरम्परया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ ४० ॥

रहनेपर कण्ठस्थित मणि नहीं मिलती उन दुष्ट असाधुओंको आपकी प्राप्ति नहीं होती। इतना ही नहीं, किन्तु जो इन्द्रियके तृप्त करनेवाले हैं उनको इस लोक तथा परलोकमें दुःख ही होता है, क्योंकि लोकोंको प्रसन्न करना; धनसंचय करना, भोग करना, गुप्त कार्य करना इत्यादिमें यहां दुःख होता है और आपकी प्राप्तिके लिये संन्यास लेनेपर यदि आपकी प्राप्ति न हुई और धर्मका अतिक्रमण किया तो तुम्हारे दण्डरूप नरककी प्राप्ति हुई, इससे परलोकमें भी सुख नहीं; वे दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुए ॥ ३९ ॥ (२६) हे भगवन् ! जिन भक्तोंको तुम्हारा ज्ञान हो गया वे आपसे प्रकट हुए अपने प्राचीन पुण्य पापोंके फलरूप दुःखसुखके सम्बन्धको कुछ नहीं समझते और देहाभिमानियोंके सम्बन्धी प्रवृत्तिनिवृत्ति करनेवाले विधिनिषेधके वचनोंके नहीं सुनते, देहाभिमानरहित हो जानेसे कार्याकार्यका संबंध नहीं रहता ।

हे ऐश्वर्यवान् । आप प्रत्येक युगमें अवतार धारण करके सन्मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको, जो प्रतिदिन तुम्हारे चरित्र श्रवणकर हृदयमें धारण करते हैं उन्हें श्रेष्ठ गति देते हो,जब ऐसे पुरुषोंको भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं रहती तो तत्त्ववेत्ताओंक कर्म की शंका भी नहीं हो सकती और जो पुरुष कपट प्रबन्ध कर इंद्रियोंका भोग से पूजन करते हैं वे इस लोक और परलोकमें दुःख पाते हैं ॥४०॥ (२७) हे भगवन् ! स्वर्गलोकादिकोंके पति ब्रह्मादिक तुम्हारे प्रतापके अन्तको नहीं पाते और आप भी अपने अन्तको नहीं पाते तो ब्रह्मादिक आपके अन्तको नहीं जाने इसमें क्या आश्चर्य है ? अपने अन्तको न जाननेसे आपकी सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता नष्ट नहीं हो तो जैसे शशकके सींग न मिलनेसे सर्वज्ञका सर्वज्ञपन नहीं जाता, क्योंकि शशकके सींग हैं ही नहीं, फिर मिले कहांसे ? इसी प्रकार आपका अन्त जब है ही नहीं तो कोई जाने कहाँ से ? क्योंकि तुम्हारे स्वरूपमें आकाशमें रजःकणके सदृश दश दश गुण उत्तर अधिक सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डोंके

द्युपतय एव त न ययुरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननुसावरणाः ॥ ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ ४१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्येतद् ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् ॥ सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥४२॥ इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः॥समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥ ४३ ॥ त्वं चैतद् ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् ॥ धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥ ४४ ॥

समूह कालचक्रसे भ्रमण करते हैं, इस कारण श्रुति तात्पर्यसे आप ही प्रतिपादन करती है साक्षात् नहीं कह सकती । सगुण स्वरूपके तो गुण अपार हैं और निर्गुणमें वाणीकी गति नहीं इस कारण तुम्हारा संपूर्ण और साक्षात् निरूपण नहीं हो सकता । अनात्म पदार्थोंका निषेध कर अन्तमें हम श्रुति आपका ही वर्णन करती है, क्योंकि अविद्याके विना निषेध नहीं हो सकता, इस कारण निषेधकी अवधिरूप आपमें ही हम वेदोंका तात्पर्य निकलते हैं ॥ ४१ ॥ (२८)श्रीभगवान् बोले कि हे नारदजी ! इस प्रकार ब्रह्माके पुत्र सनकादिक वेदोंकी स्तुति सुनकर आत्माकी गति जान सनंदनजीकी पूजा करने लगे॥४२॥इस प्रकार आकाशमें गमन करनेवाले सृष्टिमें प्रथम उत्पन्न हुए महात्मा सनकादिकोंने समस्त वेद, पुराण और उपनिषद्का सार उद्धृत किया है ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्माके पुत्र नारदजी ! तुम श्रद्धापूर्वक आत्माके

अनुशासनको धारण करके पृथ्वीमें यथेच्छ विचरो, यह आत्मानुशासन मनुष्योंकी विषयवासनाका नाश करनेवाला है ॥४४॥ इतनी कथा सुनकर योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीनारायणके उपदेशको सुनकर कृतार्थ नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रुतियोंके धारण करनेवाले नारदमुनि कहने लगे ॥४५॥ श्रीनारदजी बोले कि जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संपूर्णभूतोंके कल्याणके लिये सुन्दर अवतार धारण करते हैं उन निर्मलकीर्ति श्रीकृष्णचन्द्र के अर्थ नमस्कार है ॥ ४६ ॥ उदारमन नारद आदि ऋषि नारायण और उनके शिष्योंको नमस्कार कर साक्षात् मेरे पिता व्यासदेवके आश्रममें गये ॥ ४७ ॥ व्यासदेवने सम्मान कर आसन दिया; उसको ग्रहण कर नारदजीने नारायणके मुखसे जो श्रवण किया था वह सब व्यासजीसे वर्णन किया ॥४८॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जो तुमने पूछा था सो हमने वर्णन किया,

श्रीशुक उवाच ॥ एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान् ॥ पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥४५॥ नारद उवाच ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्तये ॥ यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥ ४६ ॥ इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ॥ ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥ ४७ ॥ सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः ॥ तस्मै तद् वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥ इत्येतद् वर्णितं राजन् यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ॥ यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि श्रुतिश्चरेत् ॥४९॥ योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥ यं संपद्य जहात्यजामनुशयि सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभा० म० द० उ० नारायणनारदसंवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

जैसे अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्ममें श्रुतियें प्रवृत्त होती हैं ॥४९॥ मायाके दूर करनेवाले भक्तोंके भयनाशक नारायण, जो कि अपने स्वरूपमें शयन करते जीवोंके पुरुषार्थ सिद्ध करनेके लिए सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं जो इस संसारके आदि, मध्य और अन्तमें भी रहते हैं, जो प्रकृति पुरुषके भी उपादान कारण हैं और जो इस जगत्को उत्पन्न करके जीवके साथ ही प्रवेश कर रहे हैं, जिन्होंने जीवोंको भोग देनेके लिए पृथक् पृथक् शरीर बनाये हैं, जो जीवोंको अनेक भाग देके शरीरोंका पालन करते हैं और प्रणामादिक भक्ति करनेवाले जीव उन्हें प्राप्त होकर जैसे सुषुप्तिमें सोता हुआ शरीरके सम्बन्धसे रहित होता है उसी प्रकार देहादिरूप अविद्याका त्याग करते हैं, उन्हीं नारायणका भजन करना चाहिये ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां नारायणनारदसंवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

दोहा–विष्णुभक्तिसे मुक्ति है, अन्यदेवसे भोग । अट्ठासी अध्यायमें, कहौं भक्तिके योग ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! देवता, असुर, मनुष्योंमें जो भोगसुखके तिरस्कार करनेवाले शिवका भजन करते हैं वे धनवान् होते हैंऔर लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भजन करने वाले नहीं सो क्यों ? यह जानने की हमारी इच्छा है, शिव और विष्णुके भजन करनेवालोंको सम्पूर्णतः विरुद्ध फल मिलते हैं, क्योंकि जो शिव विभूति लगा श्मशानमें वास करनेवाले अमंगलरूप, पासमें कुछ नहीं, उनका जो पुरुष भजन करें वे लक्ष्मीवान् हों और भोग भोगें और जो लक्ष्मीपति अच्छे भोग भोगें, सुन्दर वस्त्र पहनें ऐसे श्रीकृष्णका जो भजन करें वे दरिद्री हों ? यह स्वामियोंकी गति और है, सेवकोंकी गति और है । उचित तो यह है जैसा स्वामी हो उसी प्रकार सेवक हो ॥ १ ॥ २ ॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले

राजोवाच ॥ देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ॥ प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥ एतद् वेदितुमिच्छामः संदेहोऽत्र महान् हि नः ॥ विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥२॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिवः शक्तियुतः शश्वत त्रिलिंगो गुणसंवृतः ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकारा अभवन् षोडशामीषु कञ्चन ॥ उपधावन् विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥४॥ हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत ॥ ५ ॥ निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मतपितामहः ॥ शृण्वन् भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥

कि हे भारत ! शिवमें शक्ति रहती है, गुणोंके परस्पर जो आपसमें संघर्षणसे तमोगुण तीन प्रकारका है, सात्त्विक अहंकार, राजस अहंकार और तामस अहंकार । ऐसे तीन प्रकारके अहंकारके अधिष्ठानसे विष्णु, ब्रह्मा, शिव ये तीन रूप धारण करते हैं ॥३॥ उस अहंकारसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पञ्चभूत और दश इंद्रियें तथा एक मन सोलह विकार हुए । इन विकारोंमें कोई एक विकारवान् उपाधिरूप विकारका भजन करनेसे सम्पत्ति मिलती है और उपाधिवालेका भजन करनेसे उपाधि मिलती है ॥४॥ निर्गुण साक्षात् मायासे परे सबके देखनेवाले साक्षीभूत हरि भगवान्का जो पुरुष भजन करे वे निर्गुण होते हैं ॥५॥ अश्वमेध यज्ञ जब पूर्ण हो चुका तब तुम्हारे दादा

राजा युधिष्ठिरने वैष्णव धर्मको श्रवण कर पीछे श्रीकृष्णचन्द्रसे यही बात पूछी थी ॥६॥ तो मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये यदुकुलमें अवतारधारी समर्थ भगवान् श्रीष्णचन्द्र प्रसन्न हो राजा युधिष्ठिरसे कहने लगे॥७॥ श्रीभगवान् बोले कि जिस पुरुषके ऊपर मैं कृपा करता हूँ उसका धन धीरे धीरे हर लेता हूँ, इसके उपरांत जब दरिद्री होजाता है तब दुःखीके तुल्य और निर्धन जानकर उसे उसके भाई बन्धु सब त्याग देते हैं ॥८॥ यह भक्त भाई लोगोंके आग्रहसे धन उपार्जन करनेका फिर उद्योग भी करे, परंतु मेरे अनुग्रहसे उसके सब उद्योग व्यर्थ हो जाते हैं और जब उसमें प्रबलवैराग्य उत्पन्न होता है तो वह भक्त मेरे और भक्तोंके संग मित्रता करता है, तब उस पुरुषके ऊपर मैं असाधारण अनुग्रह करता हूँ ॥९॥ मेरी कृपासे उसे परब्रह्म सूक्ष्म चैतन्य सर्वव्यापी नाश रहित आत्माका ज्ञान होता है, इसी लिये मेरा आराधन बहुत कठिन

स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ॥ नृणां निश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ॥ ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ॥८॥ स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया ॥ मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥९॥ तद् ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम्॥ अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान् भजते जनः ॥१०॥ ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ॥ मत्ताः प्रमत्ता वरदान् विस्मरन्त्यवजानते ॥११॥ श्रीशुक उवाच ॥ शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥ १२ ॥ अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाऽऽप संकटम् ॥ १३ ॥ वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् ॥ दृष्ट्वाऽऽशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥ १४ ॥

है और इसी कारण मुझे त्यागकर वह पुरुष और देवताको भजता है ॥ १० ॥ सेवन करनेसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले देवताओंसे राज्य और धनप्राप्ति होनेसे उद्धत मतवाले उन्मत्त होकर वे प्राणी वरके देनेवाले देवताओंको भूलकर अवज्ञा करते हैं ॥११॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे श्रेष्ठ ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादिक देव शाप और अनुग्रह करनेसे समर्थ हैं। शिव, ब्रह्मा दोनों शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ही शाप देते हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्र प्रसन्न नहीं होते और जिसपर प्रसन्न होते हैं फिर उसे शाप नहीं देते ॥१२॥ इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है सो वर्णन करते हैं, जैसे शिवजीने वृकासुरको वर देकर कष्ट पाया ॥ १३ ॥ दुष्टबुद्धि शकुनीका पुत्र वृकासुर मार्गमें

देवर्षि नारदजीको देख ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इन तीनों देवताओंमें शीघ्र कौन प्रसन्न होता है, यह पूछने लगा ॥१४॥ तब देवर्षि नारदजी ने कहा कि तू भगवान् भूतनाथ महादेवजीकी पूजा कर, उनका पूजन करनेसे शीघ्र तेरा मनोरथ सिद्ध होगा, क्योंकि शिवजी थोड़े ही गुणोंसे शीघ्र प्रसन्न और थोड़े ही दोषसे क्रोधित होते हैं ॥१५॥ बंदीजनोंके समान स्तुति करनेवाले राक्षसराज रावण और बाणासुरके ऊपर प्रसन्न होकर शिवजीने बड़ा ऐश्वर्य दे फिर उन असुरोंसे आप ही कष्ट पाया। रावणने तो कैलास उखाड़ लिया और बाणासुरने कहा मेरे पुरकी रक्षा करो ॥ १६ ॥ इस प्रकार जब देवर्षि नारदजीने कहा तो उसी समय वृकासुर शिवजीका सेवन करने लगा। इसके उपरांत केदार तीर्थमें शिवजीके लिये अपने शरीरका मांस काटकर अग्निमें हवन करने लगा ॥१७॥ जब महादेवकी प्राप्ति न हुई तो सातवें दिन

स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिध्यति ॥ योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥ दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्बन्दिनोरिव ॥ ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसंकटम् ॥१६॥ इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत् स्वगात्रतः ॥ केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥ १७ ॥ देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात् सप्तमेऽहनि ॥ शिरोऽवृश्चत् स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम्॥१८॥तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात्॥ निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोन्यवारयत्तत्स्पर्शनाद् भूय उपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥ तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ॥ प्रीये यतो येन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयाऽऽत्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥२०॥ देवं स वव्रे पापीयान् वरं भूतभयावहम् ॥ यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥ २१ ॥

तीर्थमें स्नान करनेसे भीजे केशवाले शिरको छुरी लेकर काटने लगा ॥ १८ ॥ उस समय अत्यन्त करुणानिधान शिवजी हेमसरीखे मूर्तिमान् अग्निके समान प्रकाशयुक्त अग्निके कुण्डमेंसे निकल, हाथोंसे असुरकी भुजा पकड़, जैसे कोई दुःखके मारे मरनेको आवे उसे मने करे उसी प्रकार मने करने लगे और शिवजीका हाथ लगते ही उसका देह ज्योंका त्यों हो गया ॥१९॥ वृकासुरसे शिवजी बोले कि हे वृकासुर! तू तप करके पूर्ण हो गया, अब वर मांग, जो तेरी इच्छा हो वही वर दूंगा क्योंकि जो मनुष्य मेरी शरण आते हैं, उनके ऊपर जलमात्रके चढ़ाते ही मैं प्रसन्न हो जाता हूँ। बड़ा आश्चर्य है, तूने वृथा ही अपने शरीरको कष्ट दिया ॥२०॥ तब वृकासुरने *'जिस जिस पुरुषके शिरपर मैं हाथ धरूं,*

वह पुरुष उसी समय मर जावें इस प्रकार संम्पूर्ण प्राणियोंको भयका देनेवाला वर मांगा ॥२१॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित ! इस प्रकार वृकासुरका वचन सुन उदासीनसे हो "अच्छी बात है" इस प्रकार शिवजीने मुसकाकर सर्प को दूध पिलानेके समान वृकासुरको वर दे दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार सुनते ही जगज्जननी पार्वतीके लेनेकी चाहनासे वह असुर वर मिथ्या है वा सत्य है, यह परीक्षा लेनेके लिये महादेवजीके माथेपर हाथ धरनेका उपाय करने लगा, उस समय अपने कर्त्तव्यसे भयभीत होकर भगवान् शिवजी भागने लगे ॥२३॥ असुर जिनके पीछे लगा, ऐसे शिवजी डरकर स्वर्गतक भागे और पृथ्वीका जहां तक अन्त है,वहांतक भागे, फिर उत्तर दिशामें भाग

तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रो दुर्मना इव भारत ॥ ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥२२॥ इत्युक्तः सोऽसुरोनूनं गौरीहरणलालसः ॥ स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः ॥ २३ ॥ स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत् स्वकृताच्छिवः ॥ तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावत् सवेपथुः ॥ यावदन्तं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥२४॥ अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन् सुरेश्वराः ॥ ततो वैकुण्ठमगमद् भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः ॥ शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥२६॥ तं तथाव्यसनं दृष्ट्वा भगवान् वृजिनार्दनः ॥ दूरात् प्रत्युदियाद् भूत्वा बटुको योगमायया ॥ २७ ॥ मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् ॥ अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥

कर गये ॥ २४ ॥ उस समय उपायको न जान संपूर्ण देवता चुप हो गये, इसके उपरान्त प्रकाशमान् मायासे परे वैकुण्ठधाममें शिवजी गये ॥२५॥ जिस वैकुण्ठधाममें शान्तस्वभाव और कालके दंडरहित संन्यासियोंकी परमगति अर्थात् प्राप्त होने योग्य नारायण विराजमान हैं ॥२६॥ दुःखोंके दूर करनेवाले भगवान् नारायण शिवजीके पीछे दौड़े चले आते वृकासुरको दूरसे देख अपनी योगमायासे ॥२७॥ ब्रह्मचारीका वेष धर मूँजकी करधनी मृगछाला दण्ड मालाओंको पहन तेजसे अग्निके समान प्रकाशमान कुश हाथमें लिये भगवान् नम्र

हो अभिवादन कर उनसे बोले * ॥२८॥ श्रीभगवान् बोले कि हे शकुनीके पुत्र ! तुझे निश्चय खेद है तू इतनी दूर क्यों आया ? थोड़ी देर विश्राम ले, क्योंकि समस्त कामनाओंका देनेवाला यह देह है,इसे पीड़ा मत दे ॥२९॥ हे समर्थ ! जो तुम्हारा अभिप्राय हमारे आगे सुनाने योग्य हो तो कहो, क्योंकि बहुधा दूसरोंकी सहायतासे पुरुष अपना कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार अमृतरूप वचनसे जब भगवान्ने पूछा, तब खेदरहित वृकासुरने अपना सब वृत्तान्त सुना दिया ॥३१॥ तब श्रीभग-

श्रीभगवानुवाच ॥ शाकुनेय भवान् व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः ॥ क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक् ॥ २९ ॥ यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो ॥ भण्यतां प्रायशः पुंभिर्धृतैः स्वार्थान् समीहते ॥३०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता पृष्टो वचसाऽमृतवर्षिणा ॥ गतक्लमोऽब्रवीत् तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं चेत् तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ॥ यो दक्षशापात् पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥ ३२ ॥ यदि वस्तत्र विश्रम्भो दानवेन्द्र जगद्गुरौ ॥ तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥ ३३ ॥ यद्यसत्यं वचः शम्भोः कथंचिद् दानवर्षभ ॥ तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ॥ ३४ ॥ इत्थं भगवतश्चित्रवचोभिः स सुपेशलैः ॥ भिन्नधीर्विस्मितः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥

वान् बोले कि शिवने तुमको वर दिया है तो शिवके वचनको हम सत्य नहीं मान सकते क्योंकि यह शिव दक्षके शापसे पिशाचोंकी दशाको प्राप्त हुआ है और प्रेत पिशाचोंका राजा है ॥३२॥ हे दानवेन्द्र वृकासुर ! यदि शिवके वचनमें तुझे विश्वास है तो तू शीघ्र अपने मस्तक पर हाथ धर परीक्षा ले ले ॥३३॥ हे दानवश्रेष्ठ ! इस महादेवका वचन कैसे सत्य होगा, यह तो मिथ्यावादी है, पीछे जो किसी प्रकार भी महादेवका वचन असत्य विदित हो तो महादेवको मार जो फिर कभी मिथ्या न बोले ॥ ३४ ॥ इस प्रकार भगवान्के मनोहर विचित्र

* शंका–वृकासुरको छलनेके लिये परमेश्वरने ब्रह्मचारीका स्वरूप क्यों धारण किया ? क्योंकि वेदमें ब्रह्मचारीके लिये झूंठ बोलना बुरा लिखा है, इसलिये और अनेक रूप भगवान्के बनाये संसारमें बहुत हैं, दूसरा रूप धारण करके छल करना था, ब्रह्मचारी बनकर क्यों छला ?

उत्तर–वृकासुरको त्रिलोकीमें किसीका विश्वास नहीं था, क्योंकि वह बड़ा धूर्त था और उसको अपने बलका बड़ा घमंड था, परंतु त्रिलोकीमें उसको दो जनोंका विश्वास था एक नारद मुनि और दूसरे ब्रह्मचारी वेषका। भगवान्ने विचारा कि इस दैत्यने नारद मुनिकी आज्ञा मानके यह कर्म किया है, इसलिये ब्रह्मचारीका रूप धर भगवान्ने सब काम किये ।

वचनोंसे भ्रष्टबुद्धि हो कुबुद्धि वृकासुरने भूलकर अपने ही शिरपर अपना हाथ रख दिया ॥३५॥ हे महाराज ! शिरपर हाथ धरते ही वज्रके मारेके समान क्षणभरमें शिर फूटनेसे वह वृकासुर गिर गया, उस समय स्वर्गमें जय जय और नमः नमः तथा साधु शब्द होने लगा ॥३६॥ जिस समय पापात्मा वृकासुर मर गया उस समय देवता, पितृ, ऋषि, गन्धर्व फूलोंकी वर्षा करने लगे और भगवान् महादेवजीको भी कष्टसे छुड़ा दिया ॥ ३७ ॥ जब शिवजी कष्टसे छूट गये तो श्रीपुरुषोत्तम भगवान् बोले कि अहो देव ! महादेव ! यह वृकासुर पापी अपने ही पापसे मरा है ॥३८॥ ईश्वर और बड़ोंका अपराध करनेसे कौन पुरुष कल्याणको प्राप्त हो सकता है ? देखो विश्वके ईश्वर, जगत्के गुरु

अथापतद्भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् ॥ जयशब्दो नमः शब्दः साधुशब्दोऽभवद् दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥ ३७ ॥ मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥३८॥ हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्बिषः ॥ क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात् परमात्मनो हरेः ॥ गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे रुद्रमोक्षणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सरस्वत्यास्तटे राजन् ऋषयः सत्रमासत ॥ वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥

तुम्हारा अपराध करनेसे कदापि भला नहीं होगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार वाणीके अगोचर अनन्त शक्ति, साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीको कष्टसे छुड़ाया, यह चरित्र जो पुरुष कहते और सुनते और उनपर भरोसा करते हैं, वे संसार तथा शत्रुओंसे छूट जाते हैं ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां वृकासुरवधोरुद्रमोक्षणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ दोहा—तीन देवमें को बड़ो, सबको यही विचार । भृगुमुनिने सबसे कह्यो, विष्णु जगत आधार॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! एक समय सरस्वती नदीके तटपर ऋषि यज्ञ कर रहे थे, वहां ब्रह्मा, विष्णु शिव इन तीनों देवताओंमें कौन बड़ा है ? इस प्रकार परस्पर झगड़ा होने लगा ॥१॥

हे राजन् ! इनमें कौन बड़ा है ? इसकी परीक्षा करनेके लिये ब्रह्माके पुत्र भृगुको भेजा, सो भृगु परीक्षाके कारण ब्रह्माकी सभामें गये* ॥ २ ॥ भृगुजीने ब्रह्माके स्वभावकी परीक्षा लेनेके लिये स्तुति प्रणाम कुछ भी नहीं किया, तब ब्रह्माजीने अपने क्रोधसे प्रज्वलित हो भृगुके उपर अत्यन्त क्रोध किया ॥३॥ परन्तु ब्रह्मा अपने पुत्रके लिये चित्तमें उठे क्रोधको आप ही शान्त करने लगे जैसे अपने कारण जलसे अग्नि शान्त होती है और अग्निके शान्त करनेमें जैसे अग्निसे उत्पन्न जलकाम आता है उसी प्रकार ब्रह्माका क्रोध शांत करनेमें उन्हींसे उत्पन्न

तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ॥ तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद् ब्रह्मणः सभाम् ॥ २ ॥ न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ॥ तस्मै चुक्रोध भगवान् प्रज्वलन् स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥ स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः ॥ अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणाऽऽत्मभूः ॥ ४ ॥ ततः कैलासमगमत् स तं देवो महेश्वरः ॥ परिरब्धुं समारेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥५॥ नेच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ॥ शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः॥६॥पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्वयामास तं गिरा ॥ अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः॥७॥

हुए भृगुजी काम आये॥४॥ वहांसे भृगुजी कैलास पर्वतपर शिवजीके पास गये, उस समय शिवजी भाई भृगुसे प्रीतिपूर्वक उठकर मिलनेको उद्यत हुए ॥ ५ ॥ तब भृगुजीने महादेवजीसे मिलनेकी इच्छा न की और कहा—तुम कुमार्गमें चलते हो; तुमसे नहीं मिलेंगे। यह सुनते ही महादेवजी क्रोधसे लाल नेत्र कर हाथमें त्रिशूल ले मारनेको प्रस्तुत हुए ॥६॥ उस समय पार्वती महादेवजीके चरणोंमें गिरकर बोलीं कि महाराज ! तुम्हारा भ्राता है, इसे कैसे मारते हो ? इस प्रकार वाणीसे शान्त करने लगीं, इसके उपरांत भृगु वैकुण्ठमें गये जहां जनार्दन

* शंका—तीनों देवताओंमें बड़ा देवता कौन हैं ? ब्रह्मा बड़े हैं, कि विष्णु बड़े हैं, कि शिव बड़े हैं, ऐसा विचार मुनि लोगोंने क्यों किया ? क्योंकि ऐसा विचार तो अत्यन्त अज्ञानी तथा बालक और बड़े बड़े मूर्ख किया करते हैं' मुनि लोग ऐसा विचार कभी नहीं करते, फिर उन लोगोंने क्यों किया ?

उत्तर—सारस्वत मुनिके वंशमें जो जन्म लिये ब्राह्मण हैं सो सब ब्रह्मकर्ममें बड़े निपुण होते थे, ऐसा ब्रह्मकर्मका अभिमान करके सब देवताओंका और मुनिओंका अनादर करने लगे। ऐसा सारस्वत ब्राह्मणोंका अभिमान जानकर विचार किया कि ऐसा अभिमान करके सब सारस्वत ब्राह्मण नरकमें पड़ेंगे, क्योंकि हमें आदि लेके जितने देवता हैं तथा ब्राह्मण हैं उन सबको यह ब्राह्मण कुछ भी नहीं जानते, ऐसा विचार करके उन्हीं ब्राह्मणोंके यज्ञमें कृपा करके उन्हीं ब्राह्मणोंकी बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया, तब उन ब्राह्मणोंने ज्ञान त्याग दिया और मूर्ख हो गये और उस मूर्खतासे भस्म होने लगे, तब कालोपरांत भगवान्का चरित्र भृगुजी ने वर्णन किया तब सारस्वत ब्राह्मण अभिमान रहित हो गये, इसलिये सारस्वत ब्राह्मणोंको ऐसा संदेह हुआ था।

भगवान् वास करते हैं ॥७॥ लक्ष्मी की गोदीमें शयन करते हुए विष्णु भगवान्के हृदयमें भृगुने जाकर लात मारी, तदनन्तर साधुओंकी गति विष्णु भगवान्ने लक्ष्मीसहित पलँगपरसे उठ पृथ्वीमें मस्तक धर भृगुजीको प्रणाम किया॥८॥और कहने लगे कि हे ब्राह्मन् ! तुम भले आये, आसन ग्रहण करो । हे समर्थ ! आपके आनेको हमने नहीं जाना सो अपराध क्षमा करो ॥९॥ हे तात! हे महामुनि ! तुम्हारे चरण कोमल हैं और मेरी छाती अत्यन्त कठोर है, तुम्हारे चरणोंमें चोट लगी होगी, इस प्रकार कहकर अपने हाथोंसे ब्राह्मणके चरण सहलाने लगे ॥१०॥ गंगादिक तीर्थोंको पवित्र करनेवाले अपने चरणोंके जलसे मुझे और मुझमें अधिष्ठित लोग और लोकपालोंको पवित्र

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत् ॥ तत उत्थाय भगवान् सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ॥ ८ ॥ आह ते स्वागतं ब्रह्मन् निषीदात्रासने क्षणम् ॥ अजानतामागतान् वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥ अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ॥ इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥१०॥ पुनीहि सहलोकं मां लोक पालांश्च मद्गतान् ॥ पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ ११ ॥ अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् ॥ वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा ॥ निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ १३ ॥ पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ॥ स्वानुभूतमशेषेण राजन् भृगुरवर्णयत् ॥ १४ ॥ तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ॥ भूयांसः श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥ १५ ॥

करो ॥११॥ हे ब्राह्मण ! अब मैं लक्ष्मीके वास करनेका अत्यन्त पात्र हुआ और तुम्हारे चरणस्पर्शसे पाप दूर हुए, इसलिये मेरी छातीमें सदा लक्ष्मी वास करेगी ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीनारायणकी कही हुई मनोहर वाणीसे तृप्त होकर भक्तिसे आनन्दमें मग्न हो भृगुजी नेत्रोंमें आंसू भरकर चुप हो गये ॥१३॥ हे राजन् ! भृगुजीने फिर अपने यज्ञमें आकर वेदपाठी मुनियोंसे तीनोंकी जो बात देखकर आये थे, सो कही ॥१४॥ भृगुजीकी बात सुन आश्चर्यको प्राप्त हो सन्देहको त्याग मुनियोंने कहा कि

इतना उनका अपराध किया परन्तु क्रोध न आया तो विष्णु भगवान्में ही शांति है और किसी देवतामें नहीं, इसलिये सबसे बड़े विष्णु भगवान् ही हैं, यह निश्चय है ॥१५॥ साक्षात् धर्म और धर्मके लिये ज्ञान तथा वैराग्य और आठ प्रकारके ऐश्वर्य और आत्माके मलोंका दूर कनेवाला यश यह सब भगवान्में ही विद्यमान हैं ॥ १६ ॥ कालदंडके भयसे रहित, शांतस्वभाव और समान चित्त निष्किंचन अर्थात् किसी वस्तुकी जिनमें चाहना नहीं, साधु मुनियोंको जिन भगवानकी परमगति कहते हैं ॥१७॥ सत्त्वगुण भगवान्का प्यारा रूप है और ब्राह्मण भगवान्के इष्ट देव हैं, शांत और निष्काम बड़ी बुद्धिवाले जिनका भजन करते हैं वे ही सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ जिन भगवान्ने अपनी माया से सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, तीन प्रकारके देवता, असुर राक्षस बनाये हैं, सबही उनका रूप हैं, परन्तु उनमें सत्त्वगुणी

धर्मः साक्षाद् यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ॥ ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद् यशश्चात्ममलापहम् ॥ १६ ॥
मुनीनां न्यस्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् ॥ अकिञ्चनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ॥ १७ ॥
सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ॥ भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः ॥ १८ ॥ त्रिविधाकृतयः
स्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ॥ गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत् तीर्थसाधनम् ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं
सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ॥ पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गति गताः ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतन्मुनितनया
स्यपद्मगन्धपीयूषं भवभयभित् परस्य पुंसः ॥ सुश्लोकं श्रवणपुटः पिबत्यभीक्ष्णं पान्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति
॥२१॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ॥ जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥२२॥

रूप कल्याण देनेवाला है ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेव बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सरस्वतीके तीरवासी ब्राह्मण मनुष्योंका संदेह दूर करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दकी सेवा करके श्रीकृष्णचन्द्रकी गतिकोही प्राप्त हुए ॥२०॥ सूतजी बोले कि हे ऋषिश्वरो! व्यासदेवके पुत्र शुकदेवजीके मुखकमलकी सुगंधिसे युक्त, अमृतके समान, संसारके भयका काटनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका यश कानरूपी दोनोंमें भरकर जो श्रेष्ठ पुरुष पान करेगा, वह संसारके आवागमनके परिश्रममें छूट जायगा ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस चरित्रमें श्रीकृष्णचन्द्रका उत्कर्ष कहा, फिर उत्कर्षकारक श्रीकृष्णचन्द्रका ही और चरित्र वर्णन करते हैं। हे राजन् ! एक समय

द्वारकामें एक स्त्रीके पुत्र उत्पन्न होकर पृथ्वीका स्पर्श करते ही मर गया ॥२२॥ वह ब्राह्मण मरे पुत्रको लेकर राजा उग्रसेनकी ड्योढीपर धर विलाप कर आतुर दीनमन होकर कहने लगा ॥ २३ ॥ ब्राह्मणोंका द्वेषी शठबुद्धि लोभी विषयोंमें आसक्त मन क्षत्रियोंमें अधम इस राजाके दोषसे ही मेरा पुत्र मरा है, मेरा कुछ दोष नहीं ॥ २४ ॥ हिंसा करनेवाले दुःस्वभाव अजितेंद्रिय राजाके सेवन करनेसे प्रजा दुःखी और दरिद्री होती है ॥ २५ ॥ इसी प्रकार वह ब्राह्मण दूसरे पुत्रको, फिर तीसरे पुत्रको लेकर राजाके द्वारपर धरकर यही कहने लगा, कि मेरा कुछ दोष नहीं है, इस राजाके दोषसे यह सब मेरे पुत्र मरे हैं ॥२६॥ किसी समय अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रके निकट ब्राह्मणकी

विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ॥ इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २३ ॥ ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ॥ क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात् पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥ २४ ॥ हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् ॥ प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥२५॥ एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ॥ विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥ २६ ॥ तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित् केशवान्तिके ॥ परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥ २७ ॥ किंस्विद् ब्रह्मंस्त्वन्निवास इह नास्ति धनुर्धरः ॥ राजन्यबन्धुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥ २८ ॥ धनदारात्मजापृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः ॥ ते वै राज्यन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुम्भराः॥२९॥ अहं प्रजा वां भगवन् रक्षिष्ये दीनयोरिह ॥ अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥ ३० ॥

बात श्रवण कर नवम बालक जब मर चुका तब ब्राह्मणसे कहने लगा ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मण ! तू किसलिये रुदन करता है, क्या तेरे रहनेके स्थान-द्वारकामें धनुषका धारण करनेवाला कोई क्षत्रिय नहीं है ? धन, स्त्री और पुत्रोंमें आसक्त यह यादव तो यज्ञमें भोजनको आये हुए ब्राह्मणके समान बैठे हैं ॥ २८ ॥ क्षत्रियोंके जीवित रहते भी धन, स्त्री, पुत्र संयुक्त ब्राह्मण जहां शोच करते हैं वे उदरपोषक क्षत्रिय और उनके वेषसे नट ही जीते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम दीन हो, इसलिये तुम्हारे पुत्रकी मैं रक्षा करूंगा और जो मुझसे रक्षा न होगी अर्थात् मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न होगी तो ब्राह्मणकी प्रीतिसे पापरहित हो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगा ॥ ३० ॥

ब्राह्मण बोला कि हे महाराज ! संकर्षण, वासुदेव और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नजी तथा जिनके समान कोई योद्धा नहीं ऐसे अनिरुद्ध ये सभी मेरे बालकोंकी रक्षा करनेको समर्थ न हुए ॥ ३१ ॥ जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी जिस कर्मको न कर सके, हे अर्जुन ! उस कर्मको तू कैसे कर सकेगा ? तू अज्ञानसे करना चाहता है, इस कारण तेरी बातका मुझे विश्वास नहीं होता ॥ ३२ ॥ अर्जुन बोले कि हे ब्राह्मण ! मैं संकर्षण, कृष्ण अथवा प्रद्युम्न नहीं हूँ, गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन नामक क्षत्रिय हूँ ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मण ! तू मेरा अपमान मत कर, महादेवका प्रसन्न करनेवाला मेरा पराक्रम है, हे समर्थ ब्राह्मण ! संग्रामके

ब्राह्मण उवाच ॥ संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥ अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ॥ ३१ ॥ तत् कथं नु भवान् कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ॥ चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात् तन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥ ३२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नाहं संकर्षणो ब्रह्मन् न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ॥ अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥ ३३ ॥ माऽवमंस्था मम ब्रह्मन् वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम् ॥ मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥ ३४ ॥ एवं विश्रम्भितो विप्रः फाल्गुनेन परन्तप ॥ जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३५ ॥ प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ॥ पाहिपाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥३६॥ स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे॥३७॥न्यरुणत् सूतिकाऽगारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः॥तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्जरम्॥३८॥

बीच मृत्युको जीतकर तेरे पुत्र ला दूँगा ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित ! इस प्रकार धृष्टताके वचनोंसे विश्वासको प्राप्त हो वह ब्राह्मण अर्जुनके पराक्रमको श्रवण कर प्रसन्न हो अपने घर चला आया ॥ ३५ ॥ जब स्त्रीके प्रसूतिकालका समय आया, तब ब्राह्मण पुत्रकी "मृत्युसे रक्षा कर" इस प्रकार बारंबार आतुर हो अर्जुनसे कहने लगा ॥ ३६ ॥ उस समय अर्जुनने पवित्र जलका स्पर्श कर, हाथ, पांव धो, आचमन कर, शिवजीको नमस्कार करके दिव्य शस्त्रोंका स्मरण कर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर गाण्डीव धनुषको हाथमें लिया ॥ ३७ ॥ अनेक शस्त्रोंमें मिलाये बाणोंसे सावरके घरका पिंजरा बना दिया, तिरछे बाण चलाय ऊपरको चलाये और नीचेको चलाकर

घरके ऊपर बाणोंका पिंजरा कर दिया ॥३८॥ उनके उपरांत ब्राह्मणकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ बालक बारंबार रुदन कर शीघ्रही शरीरसहित आकाशमार्गमें होकर चला गया । और बार तो देह पड़ा रहता था, अबकी बार देह भी न रहा॥३९॥उस समय ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रके निकट ही अर्जुनकी निन्दा करके यह कहने लगा कि मेरी मूढ़ता देखो, मैंने इस नपुंसक अर्जुनका कहना सत्य माना ॥ ४० ॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलदेवजी और श्रीकृष्णचन्द्र ये सब मिलकर भी जिसकी रक्षा न कर सके, उसकी रक्षा करनेको और कौन समर्थ है ? ॥ ४१ ॥ मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है, इस अपनी श्लाघा करनेवाले अर्जुनके धनुषको धिक्कार है, यह दुर्बुद्धि दैवके विनाश किये पदार्थको मूर्ख-

ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः ॥ सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३९ ॥ तदाऽऽह विप्रो विजयं विनिन्दन्कृष्णसन्निधौ ॥ मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥ ४० ॥ न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ॥ यस्य शेकुः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥ धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ॥ दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥ ४२ ॥ एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः ॥ ययौ संयमिनीमाशु यत्रास्ते भगवान् यमः ॥ ४३ ॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात् पुरीम् ॥ आग्नेयीं नैर्ऋतिं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ॥ रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४४ ॥ ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ॥ अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥ ४५ ॥ दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मानमात्मना ॥ ये ते हि कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयन्ति नः ॥ ४६ ॥

तासे बचाना चाहता है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जब ब्राह्मणने खोटा वचन कहा तब अर्जुनने योगविद्याको धारण कर यमराज भगवान्की संयमनीपुरीमें शीघ्र प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ वहां यमराजकी पुरीमें पुत्रोंको न देखा, तब वहांसे अर्जुन इन्द्रकी पुरीमें गया, फिर अग्निकी पुरीमें गया, वहांसे कुबेरकी पुरीमें गया, वायु तथा वरुणकी पुरीमें गया, इसके उपरांत रसातल और स्वर्गमें गया, फिर धनुषको लेकर और स्थानोंको गया ॥ ४४ ॥ सब स्थान ढूँढ़े परन्तु कहीं ब्राह्मणके पुत्रका पता न मिला; तब प्रतिज्ञासे अर्जुन अग्निमें प्रवेश करनेकी इच्छा करने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे मने करके बोले ॥ ४५ ॥ कि ब्राह्मणके पुत्रको मैं ला दूंगा, तू अग्निमें मत जल, जो

निन्दा करते हैं वे ही तुम्हारी निर्मल कीर्तिको हमारे साथ पृथ्वीपर निरन्तर गान करेंगे, कि अन्तमें श्रीकृष्णके साथ अर्जुनने ब्राह्मणके
पुत्रोंको ला ही दिया ॥४६॥ सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार कह और अर्जुन को संग ले अलौकिक अपने रथमें चढ़ पश्चिम
दिशा को गये ॥४७॥ और सात सात पर्वतके सात द्वीप उल्लंघनकर तथा सात समुद्रोंको और लोकालोक पर्वतका उल्लंघन कर बड़े अन्ध-
कार में घुसे ॥४८॥हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! उस अन्धकारमें शैव्य, सुग्रीव,मेघपुष्प, बलाहक इन रथोंके घोड़ोंकी गति शिथिल हो गयी॥४९॥
महायोगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने घोड़ोंकी शिथिल गति को देख हजार सूर्यके तेजवाले अपने सुदर्शन चक्रको रथके आगे

इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ॥ दिव्यं स्वस्थमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥ ४७ ॥ सप्तद्वीपान्सप्तसिन्धू-
न्सप्तसप्तगिरीनथ ॥ लोकालोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ ४८ ॥ तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघ पुष्पबलाहकाः ॥
तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥ तान् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ॥ सहस्रादित्यसंकाशं
स्वचक्रं प्राहिणोत् पुरः ॥ ५० ॥ तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्विदारयद् भूरितरेण रोचिषा ॥ मनोजवं निर्विविशे
सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥ ५१ ॥ द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमः परं परं ज्योतिरनन्तपारम् ॥ समश्नु-
वानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणी उभे ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद्बृ-
हदूर्मिभूषणम् ॥ तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्महाभीममनन्तम-
द्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ॥ विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ॥ ५४ ॥

चलने की आज्ञा दी ॥ ५० ॥ अति घोर सघन प्रकृतिके परिमाणरूप अन्धकारको अपनी उत्कृष्टकांतिसे विदीर्णकर मनके तुल्य वेगवान्
सुदर्शन चक्रने प्रत्यञ्चासे सेनापर श्रीरामचन्द्रके बाणके समान प्रवेश किया ॥५१॥ चक्रके पीछे गमन करके उस अन्धकारसे परे वर्तमान
श्रेष्ठ व्यास भगवान्का प्रकाशरूप देख चकाचौंधीसे अर्जुनने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये ॥५२॥ इसके उपरांत बड़े पवन चलनेसे उठी लह-
रोंसे शोभायमान जलमें वह रथ गया, उस जलमें प्रकाशमान् वस्तुमें श्रेष्ठ और दीप्तिमान् सहस्रों मणियोंके खम्भ लग रहे हैं उनसे शोभाय-
मान अद्भुत भवन देखा ॥५३॥ उस भवनमें बड़ी देहवाले अद्भुत सहस्र मस्तकोंमें मणियोंकी कांतिसे प्रकाशमान दो सहस्र नेत्रोंसे शोभा-

यमान स्फटिकमणिके श्वेतपर्वतके तुल्य कांति और श्यामकण्ठ तथा जिह्वा संयुक्त शेषनागको अर्जुनने देखा ॥ ५४ ॥ उन शेषनागके देहका सुखदायक आसन बनाये बड़े प्रभाववाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ उत्तम भूमा पुरुषको शयन करते अर्जुनने देखा, जिनकी वर्षाऊ मेघके समान कांति, सुन्दर पीत वस्त्रोंको धारण किये, मुख प्रसन्न मनोहर और बड़े-बड़े नेत्र हैं ॥५५॥ जिनके केश बड़े मणियोंसे जटित किरीट और कुण्डलोंकी कांतिसे शोभायमान, लम्बी सुन्दर आठ भुजा, कौस्तुभमणिको धारण किये और भृगुलताके चिह्न संयुक्त वनमाला पहन रहे थे ॥५६॥ सुन्दर, नन्द मुख्य अपने पार्षद और मूर्तिमान् चक्रादिक अपने शस्त्र और पुष्टि, श्री, कीर्ति, माया तथा समस्त अणिमादिक विभूतियोंसे

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ॥ सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥ ५५ ॥ महामणिव्रातकिरीटकुण्डलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ॥ प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्म्या वनमालया वृतम् ॥ ५६ ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ॥ पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाऽखिलार्द्धिभिर्निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥ ५७ ॥ ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ॥ तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धाञ्जली सस्मितमूर्जया गिरा ॥ ५८ ॥ द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ॥ कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरये तमन्ति मे ॥ ५९ ॥ पूर्णकामावपि युवां नरनारायणवृषी ॥ धर्ममाचरतां स्थित्यै वृषभौ लोकसंग्रहम् ॥ ६० ॥ इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ॥ ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥ ६१ ॥

सेवित ब्रह्मादिकोंके पालन करनेवाले॥५७॥इस प्रकार अनन्त भूमा भगवान्के दर्शन कर सब लोगोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपको प्रणाम किया और भयभीत अर्जुनने भी प्रणाम किया।इसके उपरांत श्रीकृष्ण और अर्जुनको हाथ जोड़े खड़ा देख वह पुरुष गम्भीर वाणीसे मुसकाते हुए बोले ॥५८॥ कि तुम्हारे देखनेके लिये ब्राह्मणके सुपुत्रोंको मैं ले आया हूँ, पृथ्वीमें मेरी कलासे अवतीर्ण हुए तुम पृथ्वीके ऊपर बोझरूप असुरोंको मार शीघ्र मेरे पास आ जाओ ॥५९॥ तुम दोनों पूर्णमनोरथ महाश्रेष्ठ नर नारायण ऋषि हो तो भी लोकोंको शिक्षा करनेके लिये धर्म करते हो ॥६०॥ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान भगवान् भूमापुरुषने जब इस प्रकार आज्ञा दी तो श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनने धर्म

भूमापुरुषको प्रणामकर ब्राह्मणके बालकोंको सङ्ग ले अपने धाम (द्वारकापुरी) में आकर ब्राह्मणको उसी अवस्था और रूपवाले पुत्र दे दिये ॥६१॥६२॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्रभाव देख अर्जुनने महा आश्चर्य मानकर पुरुषमें जो कुछ पराक्रम है सो श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे ही है यह निश्चय किया ॥६३॥ इस प्रकार अनेक पराक्रम इस संसारमें दिखाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जगत्के विषयोंको भोग किया और बड़े यज्ञोंसे यजन किया ॥ ६४ ॥ समयके अनुसार धर्ममार्गमें स्थित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणसे आदि ले सब प्रजाके मनोरथको जैसे इन्द्र वर्षासे पृथ्वीको पूर्ण करते हैं उसी प्रकार पूर्ण किया ॥ ६५ ॥ अधर्मी राजाओंको मारकर और कितनोंको अर्जुन

न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतम् ॥ विप्राय ददतुः पुत्रान् यथारूपं यथावयः ॥६२॥ निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः ॥ यत्किंचित् पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकम्पितम् ॥६३॥ इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ॥ बुभुजे विषयान् ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥ ६४ ॥ प्रववर्षाखिलान् कामान् प्रजासु ब्राह्मणादिषु ॥ यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवान् श्रैष्ठ्यमास्थितः ॥६५॥ हत्वा नृपानधर्मिष्ठान् घातयित्वार्जुनादिभिः ॥ अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उ० द्विजकुमारानयनं नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखं स्वपुर्यां निवसन् द्वारकायां श्रियः पतिः ॥ सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥१॥ स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभिः ॥ कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभिः ॥२॥ नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतङ्गजैः ॥ स्वलङ्कृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥

भीमसेनादिकोंके द्वारा घात कराया, धर्मपुत्र युधिष्ठिरादि धार्मिक राजाओंके द्वारा अनायास संसारमें धर्म प्रवृत्त किया ॥ ६६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां द्विजकुमारानयनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥ दोहा–नब्बेके अध्यायमें, यदुकुलको विस्तार। हरिलीला संक्षेपसे, वरणों बारम्बार ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे भरी और श्रेष्ठ यादवोंसे सेवित द्वारकापुरीमें ॥ १ ॥ जहां नवयौवनकी शोभासे शोभायमान और बिजलीके समान कांतिवाली स्त्रियें महलोंमें गेंदकी क्रीड़ा कर रही हैं और शृङ्गारसे मनोहर वेष धारण कर रही हैं ॥ २ ॥ जहांके मार्गोंमें मद चुआते हाथी और उत्तम वेष

किये योद्धा, घोड़े और सुवर्णसे दीप्तिमान् रथोंकी सदा भीड़ बनी रहती है ॥ ३ ॥ जहां फूलोंसे संयुक्त अत्यन्त शोभायमान बगीचे लग रहे हैं और फूले वृक्षोंकी पंक्तियोंमें चारों ओरसे भौंरे और पक्षी निरन्तर गुञ्जार कर रहे हैं ॥ ४ ॥ ऐसी द्वारकापुरीमें सोलह सहस्र पत्नियोंके प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र स्त्रियोंके जितने सम्पन्न महल हैं, उनमें उतने ही विचित्ररूप धारण कर उनके संग रमण किया * ॥ ५ ॥

उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पित द्रुमराजिषु ॥ निर्विशद् भृङ्गविहगैर्नादितायां समन्ततः ॥ ४ ॥ रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ॥ तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदाम्भोजरेणुभिः ॥ वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥ ६ ॥ विजहार विगाह्याम्भो ह्रदिनीषु महोदयः ॥ कुचकुङ्कुमलिप्ताङ्ग परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥ उपगीयमानो गन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् ॥ वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधबन्दिभिः ॥ ८ ॥ सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिः स्म रेचकैः ॥ प्रतिषिञ्चन् विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥

उन घरोंमें फूले हुए उत्पल, कह्लार, कुमुद, अम्भोजके परागकी सुगंधियुक्त निर्मल जलवाले सरोवरोंमें पक्षियोंके समूह शब्द कर रहे हैं ॥६॥ स्त्रियोंके आलिंगनसे कुचोंकी केशर जिनके लग रही,ऐसे महाप्रतापी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सरोवरोंके भीतर विहार करते हैं॥७॥ मृदंग ढोलक आदि बाजे और वीणाओंको गन्धर्वगण बजा रहे हैं और सूत, मागध, बन्दीजन, स्तुति कर रहे हैं ॥८॥ हँसती हुई स्त्रियें अपनी-अपनी

---

* शंका—श्रीकृष्ण भगवान् अपनी स्त्रियोंके साथ मनुष्योंके समान क्रीड़ा क्यों करते थे ?

उत्तर—श्रीकृष्णने विचार किया कि अब कलियुगके आनेके थोड़े ही दिन और रहे हैं, जब कलियुग आवेगा तो बड़े-बड़े दुष्ट अधर्मी मनुष्य जन्मेंगे और अपनी स्त्रियोंको छोड़कर दूसरी स्त्रियोंसे मन लगावेंगे और उन्हींको अनेक-अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषण पहिनावेंगे और अपनी स्त्रियोंको भर-पेट रोटी भी न देंगे और हरेक वस्तुको तरसावेंगे और बात बातमें लात और घूसोंसे मार लगावेंगे तब वेदमें जो विवाहिता स्त्री पुरुषोंका धर्म लिखा है सो सब नष्ट हो जायगा। सनातनधर्म नष्ट होनेसे पीछे सब प्रजा वर्णसंस्कर हो जायगी, पृथ्वी रसातलके जानेकी इच्छा करेगी तब मुझको अवतार लेना पड़ेगा, ऐसा भगवान् विचारके कलियुगके मनुष्योंको सिखानेके लिये और स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी स्त्रियोंके साथ अत्यन्त क्रीड़ा और विहार करते थे, श्रीकृष्णने विचारा कि अपनी स्त्रियोंके संगक्रीड़ाको कलियुगके मनुष्य सुनके जारकर्म छोड़के अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ इसी प्रकार विहार करेंगे और आदर सत्कार सहित उनका प्यार करेंगे अपनी स्त्री में ही रति परमोत्तम है, क्योंकि श्रीकृष्णने भी उनके साथ अत्यन्त प्रीति की थी उसी प्रकार हम भी प्यार करें और जो परमोत्तम न होतीं तो श्रीकृष्ण अपनी स्त्रियोंका सम्मान क्यों करते ? इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा की थी; कुछ कामदेवके वश होकर नहीं की थी।

पिचकारियोंसे भिजोती और श्रीकृष्णचन्द्र भी स्त्रियोंको छिड़कते यक्षराज कुबेरके समान क्रीड़ा करने लगे ॥ ९ ॥ भीगे वस्त्रोंसे उर कुच प्रकट होने और ढीली चोटियोंसे फूल गिरनेसे स्त्रियें पिचकारीसे बचनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करते ही कामदेवके उत्सवसे प्रकाशमान मुखवाली हो गयीं और भगवान्को भिगोती हुई शोभा पाने लगीं ॥१०॥ स्त्रियोंके स्तनोंकी केशरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी माला भर गयी और हथिनियोंके संग विहार करनेवाले हाथीके समान शोभायमान होने लगे ॥११॥ नट और नाचनेवालियोंको, गीत गाने तथा बाजे बजाकर जीविका करनेवालोंको श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी स्त्रियोंने क्रीड़ा करनेके अलंकार और

ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाःसिञ्चन्त्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ॥ कान्तं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥१०॥ कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुङ्कुमस्रक् क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः ॥ सिञ्चन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥ ११ ॥ नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ॥ क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात् तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥ कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ॥ नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥ १३ ॥ ऊचुर्मुकुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ॥ चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ॥ वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

वस्त्र दिये ॥ १२ ॥ इस प्रकार विहार करते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी चलन, बोलन, मुसकान और हास्यकी वार्त्ता क्रीड़ा आलिंगनसे स्त्रियोंकी बुद्धि हर गयी थी ॥ १३ ॥ हे राजन्! मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें बुद्धिवाली स्त्रियोंने पहले चुप हो, फिर भगवान् वासुदेवका ध्यान कर उन्मत्त हो जड़की नाईं जो वचन कहे थे, उन वचनोंको मैं वर्णन करता हूँ तुम सुनो ॥ १४ ॥ स्त्रियें बोलीं कि हे टिटहरी! संसारमें गुप्तबोध भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो शयन कर रहे हैं और तू निद्रा रहित हो विलाप करके उनकी नींदमें बाधा देती है, शयन नहीं करती सो यह ठीक नहीं। हे सखी! क्या हमारी ही नाईं कमलने श्रीकृष्णचन्द्रके हास्य लीलापूर्वक चितवनसे तेरा भी चित्त बँध गया

है, जिससे पुकारती है ? ॥ १५ ॥ हे चकवी ! तूने क्यों नेत्र मूँद लिये हैं ? रात्रिमें पतिको न देखनेसे करुणाके मारे रुदन करती है अथवा दास्यभावको प्राप्त हुई हमारे समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्रसादी माला अपनी चोटीपर चढ़ाने की इच्छा करती है, जिसलिये रोती है ? ॥ १६ ॥ हे समुद्र ! निद्राके न आनेसे क्या तुझे भी प्रजागर हो गया, जो सदा चिल्लाता रहता है, अथवा हमारी सी दशा तेरी भी है ? जैसे भोगसे मुकुन्दने हमारे कुचोंकी केशर ले ली है, क्या इसी प्रकार तुझे भी मथकर तुझमेंसे लक्ष्मी और कौस्तुभमणि निकाल ली है ? ॥१७॥ हे चन्द्रमा ! जान पड़ता है कि तुझे वलिष्ठ क्षयीके रोगने ग्रहण कर लिया है, इसी कारण तू क्षीणताको प्राप्त हुआ है, अपनी किरणोंसे अन्धकारको दूर नहीं करता, हमारे ही समान मुकुन्दकी रहस्य वार्त्ताओंको भूल उसी चिन्ताके मारे

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ॥ दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥ भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ॥ किं वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥ त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इन्दो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ॥ कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ १८ ॥ किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ॥ गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः ॥ अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः ॥ २० ॥

क्षीण हो गया है और हमें निश्चय है कि तेरी वाणी भी हमारे समान बन्द हो गयी है ॥ १८ ॥ हे मलयाचलके पवन ! हमने ऐसा तेरा क्या अप्रिय कार्य किया है, जिससे तू गोविंदके अंगमें लगकर हमारे हृदयमें कामाग्निको प्रकट करता है ? ॥१९॥ हे मेघ ! हे श्रीमान् ! हम जानती हैं तू यादवोंके इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्यारा मित्र है, इसलिये जो ताप दूर करनेको भगवान्‌का गुण है, सो तुझमें भी है, हमारे समान भगवान्‌के प्रेममें बँधकर तू भी नारायणका चिन्तन करता है, क्योंकि तेरे हृदयमें जो अति उत्कण्ठा है इससे भृगुलताके चिह्नवाले श्रीकृष्णका स्मरण कर अश्रुकी धारा बहाता है। तेरा हृदय भी श्याम हो रहा है, तूने उनके सङ्ग मित्रता क्यों कि ?

उनका संग तो दुःखदायी है ॥ २० ॥ हे शोभायमान कण्ठवाले कोकिल ! मृतकको जिलानेवाली कोमलवाणीसे प्यारी बातें करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वचन कहती है, तेरा मैं क्या प्रिय करूँ ? सो मुझसे कह ॥२१॥ हे उदार बुद्धे ! हे पर्वत ! तू चलता और बोलता भी नहीं है और बड़ी चिंता करता है, जैसे वसुदेवनन्दनके चरण हम अपने हृदयमें धरनेकी चाहना करती हैं, उसी प्रकार तू भी अपने शिखरपर धरने की इच्छा करता है ? यदि धरेगा तो हमारी सी दशा तेरी भी होगी ॥२२॥ हे समुद्रपत्नियो नदियो ! इस समय ग्रीष्मके आनेसे मेघद्वारा समुद्रका जल न पानेसे दुर्बल, सूखे ह्रद और कमलोंकी शोभासे हीन हो गयी हो, धारा वर्षाकर तुम्हें आनन्द नहीं देता यह बड़ा कष्ट है, इसीसे तुम्हारे हृदय सूखकर लट गये हैं, जैसे वांछित पति यदुपति, श्रीकृष्णचन्द्रकी स्नेहभरी चितवनके पड़े

प्रियरावपदानि भाषसेऽमृतसञ्जीविकयाऽनया गिरा ॥ करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥ २१ ॥ न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम् ॥ अपि बत वसुदेव नन्दनाङ्घ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥ २२ ॥ शुष्यद्ह्रदाः कृशतरा बत सिन्धुपत्न्यः संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ॥ यद्वद्वयं यदुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्मः ॥ २३ ॥ हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ॥ किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद् भजामो वयं क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥ २४ ॥

बिना हृदय चुराये जानेसे हम दुर्बल हो गयी हैं ॥ २३ ॥ अकस्मात् आये हुए हंसको दूत कल्पना करके कहती हैं कि हे हंस ! तुम अच्छे आये आओ विराजो, पयपान करो श्रीकृष्णचन्द्रकी वार्त्ता कहो, तुम दूत बनकर आये हो सो हमको विदित है श्रीकृष्णचन्द्र भले प्रकार तो हैं अधिक शांति रखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आपही हमसे जो कुछ कह गये थे उसका किसी समय स्मरण करते हैं ? हे दूत ! हमारे भगवान् वासुदेवसे क्या अर्थ ? जो हमें कामके सुखके लिये बुलाते हो तो उन्हींको हमारे निकट बुलाकर ले आ । परंतु बात यह है कि लक्ष्मी हमसे छलकर श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा करती हैं, इस कारण लक्ष्मीसहित श्रीकृष्णचन्द्रको ही बुलाकर ला । 'कमला एकनिष्ठा-

वाली है सो उसको किस प्रकार छोड़ा जाय !' यदि तेरे मनमें यह बात हो तो क्या स्त्रियोंमें केवल लक्ष्मी ही निष्ठावाली है, हम वैसी नहीं हैं ? ॥ २४ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें इस प्रकार भाव कर श्रीकृष्णचन्द्रकी स्त्रियें वैष्णव गतिको प्राप्त हुईं ॥२५॥ जो श्रीकृष्णचन्द्र कीर्त्तन करने और श्रवण करनेसे ही स्त्रियोंके मनको हर लेते हैं, वे यदि दर्शन करनेवालियोंका मनको हर लें तो क्या आश्चर्य है ? ॥ २६ ॥ हे राजन् ! जो स्त्री जगतके गुरु श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पति मान प्रेमपूर्वक उनकी चरणसेवा, आदि करती थीं उनका तप और भाग्य कहांतक वर्णन करें ? ॥२७॥ इस प्रकार साधुओंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वेदविहित धर्मका अनुष्ठान कर

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥२५॥ श्रुतमात्रोऽपि यःस्त्रीणां-प्रसह्याकर्षते मनः ॥ उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥ २६ ॥ या संपर्यचरन् प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ॥ जगद्गुरुं भर्तृबुद्धया तासां किं वर्ण्यते तपः ॥ २७ ॥ एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः ॥ गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत् पदम् ॥२८॥ आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ॥ आसन् षोडशसाहस्रं महिष्योऽष्टशताधिकम् ॥२९॥ तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ॥ रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥ ३० ॥ एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ॥ यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥ ३१ ॥ तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ॥ आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥

घरमें रह धर्म, अर्थ विषय सेवन करनेवाले संसारी पुरुषोंको वारंवार दिखाया ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गृहस्थियोंके उत्तम धर्मका पालन करते थे उस समय भगवान्‌के सोलह हजार एकसौ आठ (१६१०८) रानियें थीं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! स्त्रियोंमें रत्नके समान सोलह हजार एकसौ आठ रानियोंमें रुक्मिणी आदि आठ पटरानी थीं, जिनके पुत्रोंके नाम भी पहले वर्णन कर चुके हैं ॥ ३० ॥ अप्रमेय गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके जितनी भार्या थीं उन एक-एक भार्यामें दश-दश पुत्र उत्पन्न हुए, वे सब मिलकर एक लाख इकसठ हजार और अस्सी १६१०८० हुए ॥ ३१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! उनमें बड़े पराक्रमी उदार यशस्वी अठारह महारथी हुए, उनके नाम सुनो ॥ ३२ ॥

यथा–प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, वृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण ॥३३॥ पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनंदन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सब पुत्रोंमें रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजी श्रीकृष्णचन्द्रके समान गुणी हुए ॥३५॥ महारथी प्रद्युम्नजीने रुक्मीकी पुत्रीसे विवाह किया, उन प्रद्युम्नजीसे रुक्मिणीकी पुत्रीमें दशहजार हाथियोंके बलवाले अनिरुद्ध पुत्र हुए ॥ ३६ ॥ अनिरुद्धने रुक्मीकी पोती रोचनाको ब्याहा, उस रोचनामें अनिरुद्धके वज्रनाम पुत्र हुआ, जो वज्र प्रभासक्षेत्रकी मुसललीलामें शेष रहा ॥ ३७ ॥ उस वज्रके प्रतिबाहु पुत्र हुआ, प्रतिबाहुके सुबाहु हुआ, सुबाहुके शांतसेन हुआ,

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान् भानुरेव च ॥ साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्पकरो देवबाहुश्च श्रुतदेवः सनन्दनः ॥ चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥ ३४ ॥ एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः ॥ प्रद्युम्न आसीत् प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ॥ तस्मात् सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥ ३६ ॥ स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ॥ वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥ ३७ ॥ प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चात्मजः ॥ सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तुतत्सुतः ॥३८॥ न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः ॥ अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥ यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ॥ संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥ ४० ॥ तिस्रः कोटयः सहस्राणमष्टाशीतिशतानि च ॥ आसन् यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥४१॥ संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ॥ यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥ ४२ ॥

शांतसेनके शतसेन हुआ ॥३८॥ इस यदुकुलमें धनहीन प्रजाहीन किसीने जन्म नहीं लिया और थोड़ी आयु, पराक्रमरहित, ब्राह्मणभक्तिहीन ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यदुवंशमें उत्पन्न हुआ विख्यातकर्मा पुरुषोंकी संख्या दशहजार वर्षोंमें भी कहनेको समर्थ नहीं हो सकते ॥ ४० ॥ क्योंकि तीन करोड़ आठ सहस्र आठ सौ ३०००८८०० यदुकुलके बालकोंको पढ़ानेवाले आचार्य नियत थे यह मैंने सुना है ॥४१॥ महात्मा यादवोंकी संख्या कौन कर सकता है ? क्योंकि जिस कुलमें हजारोंके दश हजार उनके लाख

इतने यादवोंको लेकर द्वारकापुरीमें उग्रसेनने वास किया ॥ ४२ ॥ देवता और असुर युद्धमें मरे हुए दारुण दैत्य ही मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्ववन्त होकर प्रजाको बाधा देने लगे थे ॥४३॥ हे महाभागवत परीक्षित् ! उन असुरोंको दंड देनेके लिये हरि भगवान् की आज्ञा पाकर देवताओंने यदुकुलमें अवतार लिया था ॥४४॥ उन यादवोंकी प्रभुतामें भगवान् ही प्रमाण हुए, उन श्रीकृष्णचन्द्रके आज्ञानुवर्ती सब यादव वृद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ सोते, बैठते, बोलते, क्रीड़ा, स्थान, भोजनादि कर्म करते, श्रीकृष्णचन्द्रमें चित्त लगाये यादवोंने अपने आत्माको नहीं जाना ॥ ४६ ॥ उससे प्रथम श्रीगङ्गाजी ही अधिक तीर्थ रहीं । जब यादवोंमें श्रीकृष्णचन्द्रका यशरूपी तीर्थ प्रकट हुआ तबसे अपने चरणोदकरूप गंगा तीर्थको भी न्यून करने लगे और आपही संपूर्ण तीर्थोंके ऊपर विराजने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण-

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ॥ ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥ ४३ ॥ तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले ॥ अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥ ४४ ॥ तेषां प्रमाणं भगवान् प्रभुत्वेनाभवद् हरिः ॥ ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥ शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ॥ न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥ तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वः सरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपराः श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः ॥ यन्नामाऽमङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥ जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ॥ स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितः श्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ॥ ४८ ॥

चन्द्रसे जिन पुरुषोंने वैर किया और जिसने स्नेह किया सभी तद्रूपताको प्राप्त हुए । देखो ! जिस लक्ष्मीके लिये ब्रह्मादिक उपाय करते हैं और किसीको प्राप्त न हुई वही लक्ष्मी श्रीकृष्णचन्द्रको त्यागकर कहीं नहीं जाती, जिन श्रीकृष्णचन्द्रका नाम श्रवण करने से अथवा कथन करनेसे सब पापोंका नाश कर देता है फिर उनके स्वरूपका तो कहना ही क्या है और जिन्होंने ऋषियोंके वंशमें धर्म चलाया उन कालचक्र आयुधधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दुष्टोंका मारना और पृथ्वीका बोझ उतारना, यह कुछ आश्चर्य नहीं है॥४७॥ सब जीवोंमें अन्तर्यामीरूप होकर वास करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वदा उत्कर्षतापूर्वक विराजमान हैं । देवकीमें जन्म हुआ, यह तो कथन मात्र है

श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे सेवित इच्छामात्रसे अधर्मके नाश करनेमें समर्थ हैं, परन्तु तो भी क्रीड़ाके लिये अपनी भुजाओंसे अधर्मको दूर कर स्थावर जङ्गम सब जीवोंका दुःख दूरकर सुन्दर मुसकानयुक्त अपने श्रीमुखसे ब्रजकी स्त्री (गोपिका) और मथुरा, द्वारकापुरीकी स्त्रियोंको कामदेव बढ़ानेवाले सर्वदा विराजमान रहते हैं, ऐसे सर्वोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय हो ! ॥४८॥ अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये मत्स्य कूर्मादिक अवतार धारण करनेवाले यादवोंमें उत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो रूप धरकर योग्यकर्म किये थे, उनको सुनकर पुरुष पापकर्मसे छूट जाता है ॥४९॥ तीनों कालमें बड़ी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभायमान कथाका श्रवण कीर्त्तन और विचार करके पुरुष कालकी गतिरहित भगवान्‌के धामको प्राप्त होता है यह श्रवण करके चक्रवर्ती राजाभी अपना राज्य त्याग

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ॥ कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूया-
दमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥ ४९ ॥ मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति ॥ तद्धाम
दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे श्रीकृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्तिके लिये ग्रामके बाहर वनको चले गये ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां अष्टादशसाहस्र्यां संहितायामानन्दकन्दश्रीकृष्णचन्द्रचरित्रवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ इति दशमस्कन्ध समाप्त ॥ १० ॥

दोहा–श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज गुणग्राम । विद्वत्तम उपकारचित, सकल–सुलक्षणधाम ॥१॥ कहां होत हैं जगतमें, ऐसे पुरुष उदार । देश देशमें छा रह्यो, जिनको सुयश प्रचार ॥२॥ कुटुँबसहित रक्षा करैं, जिंनकी श्रीजगदीश । बार बार यह देत हैं, शालग्राम अशीश ॥३॥ भई दशमअस्कन्धकी, भाषा पूरण आज । विरची शालग्राम कवि, सुमिरन करि ब्रजराज ॥ ४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

इति भाषाटीका दशमस्कन्ध समाप्त ।

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धोत्तरार्धः समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कन्धः प्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

यादवयुद्ध
रामः
दारुकः
श्रीकृष्ण
द्वारकावासिनः
यादवस्त्रियः
कृष्णधर्मपत्न्यः
अर्जुनः

दोहा–जय गणेश वारण-वदन, विघ्नहरण सुखमूल। अनुपम भाल विशाल मुख, सोहत हाथ त्रिशूल ॥ जय जगजननी शारदा, सुखदानी गुणखान। शीघ्र पूर्ण हो भागवत, दीजै यह वरदान ॥ जय शिव काशीनाथपद, करन अनाथ सनाथ। बारबार बर मांगहूँ तिनपर धरकर माथ ॥ सोरठा–जय हरि कृपानिधान, अधम उधारन सुखसदन। भाषत वेद पुरान, अस दयालु नहिं दूसरो ॥ प्रभुपद पोतहिं पाय अगम अथाह भवाम्बुनिधि। मोसम पतित निकाय, तरन चहत गोपद सरिस॥ दोहा–गुरुपदरज शिर धरि कहौं, एकादश असकन्ध। हरि उद्धव संवादवर, ज्ञान विराग प्रबन्ध ॥ कहों प्रथम अध्यायमें, बहु अद्भुत इतिहास। जैसे ऋषिके शापसे, यदुकुल भयो विनास ॥ पहले दशमस्कन्धमें भक्तोंका उद्धार और भूमिका भार उतारनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हुए, उनकी लीला कही, अब एकादश स्कन्धमें भक्तोंको आत्मतत्त्वका उपदेश और पूजामार्ग, भक्तिमार्ग, इनके फल निर्णय करके कहेंगे और सब भक्त पुरुषोंको अपने स्थानपर प्राप्त करेंगे, इस प्रकार इस एकादश स्कन्धमें मुक्तिलीला कहते हैं। यहां प्रथम कुरुक्षेत्रमें जैसे वसुदेवजीने नारदजीसे कर्मयोग पूछा

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः॥ भुवोऽवतारयद् भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

तो नारदजीने सब कहा, उससे सब चित्त शुद्ध हुआ तब वसुदेवजीको ज्ञात हुआ, अर्थात् राम, कृष्ण ये दोनों साक्षात् ईश्वर हैं ऐसा जाना और जब यह ब्रह्मज्ञान नहीं रहेगा ती फिर नारदजीसे पूछेंगे तो नारदजी पांच अध्यायोंमें वर्णन करेंगे। सो पहले अध्यायमें वैराग्य उत्पन्न करानेके लिये यदुकुलको ब्रह्मशापके बहानेसे विषयसुखको अनित्य कहते हैं। इसके उपरांत चार अध्यायोंमें राजा जनक और नवयोगीश्वरोंका संवाद कहेंगे, उसमें परमतत्त्व निरूपण करेंगे, फिर छठे अध्यायमें श्रीकृष्ण और उद्धवका संगम कहेंगे, इसके पीछे तेईस अध्यायोंमें उद्धवको श्रीकृष्ण परमतत्त्व निरूपण करेंगे, फिर दो अध्यायोंमें यादवोंका संहार कहेंगे, इसी प्रकार इकतीस अध्यायोंमें "एकादश स्कन्ध" वर्णन करेंगे, इसलिये पहले पूर्वस्कन्धकी कथा स्मरण करके श्रीशुकदेवजी प्रारम्भ करते हैंः–श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित! जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने और बलदेवजीने मिलकर यादवों सहित शीघ्र कलह उत्पन्न कराकर सम्पूर्ण पृथ्वीका भार उतारा सो हम तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं * ॥ १ ॥

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने त्रिलोकीके स्वामी होकर अनेक प्रकारके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र उत्पन्न करके फिर उनका विनाश क्यों किया जो कोई कहे कि कृष्णचन्द्रने विचार किया कि इन यदुवंशियोंको छोड़कर परमधामको जायेंगे तो यह सब पृथ्वीके मनुष्योंको दुःख देंगे, वे मूर्ख हैं, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र महाराज तो घट घटके जाननेवाले थे, कुछ मनुष्य नहीं थे, जानते थे कि हम वैकुण्ठ धामको जायेंगे, सर्वान्तर्यामी ईश्वर थे, विचारा कि यह हमारे अंशसे जो

जो पांडुके पुत्र शत्रुओंसे बहुत कुपित किये गये, जुआ खेलनेसे जिनका राज्य जाता रहा, अवज्ञासे द्रौपदीके केश खींचे गये, लाक्षाभवनमें बन्द करके आग लगा दी गयी, अर्थात् जहांतक हो सका वहांतक कष्टपर कष्ट दिये, उन्हींके लिये दोनों पक्षोंमें मिले राजाओंको मार पृथ्वीका भार उतारा, परन्तु तो भी विचारने लगे ॥ २ ॥ कि यद्यपि पृथ्वीका भाररूप जो राजाओंकी सेना थी सो अपनी भुजाओंसे पालित यादवोंसे नाश भी करवायी, परन्तु तो भी भार न गया, क्योंकि यदुकुल अभी अनन्त शेष हैं, जिसका पृथ्वीपर बड़ाभारी भार

ये कोपिताः सुबहु पाण्डुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ॥ कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥ भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ॥ मन्येऽवनेर्ननुगतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो ह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥ नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथंचिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ॥ अन्तः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥ एवं व्यवसितो राजन्सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ॥ शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥

है ॥ ३ ॥ जिसका मैं आश्रय हूँ, उसका पराजय तो और दूसरेसे हो ही नहीं सकता और यह सम्पूर्ण यादव वैभवसे उद्धत हो गये हैं, इसलिये विना इनका संहार किये किसी प्रकार पृथ्वीका भार उतर नहीं सकता, इस कारण इनमें परस्पर कलह उत्पन्न कराकर जैसे बांसोंमें अग्नि उत्पन्न होता है और उसीसे सम्पूर्ण वन भस्म हो जाता है उसी रीतिसे शांतिको प्राप्त हो पीछे अपने परधामको जाऊँ ॥४॥ हे राजन् ! इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर सत्यसङ्कल्प भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मशापके मिषसे अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥

-जन्मे यादव हैं सो पृथ्वीको अत्यन्त दुःख देंगे ऐसा जानते थे तो उन सबको उत्पन्न क्यों किया ? क्योंकि आप ही उत्पन्नकरके आप ही नाश करना यह बड़ा अयोग्य कर्म है । शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि,विषके खानेसे प्रानी मर जाते हैं, विष ऐसी बुरी वस्तु है,परंतु जो अपने हाथसे ऐसे विषका वृक्ष भी लगाते हैं, उसको हाथसे नहीं काटते और चेतनस्वरूपको उत्पन्न करके आपसे आप विनाश करना यह बड़ा अनिष्ट कर्म है फिर श्रीकृष्णचन्द्रने ऐसा क्यों किया ? उत्तर-श्रीकृष्णने ऐसा विचार किया कि जिस दिन हम लोकसे परलोकको जायेंगे उसी दिन महाघोर कलियुग इस मर्त्यलोकका राजा होगा और ये सब यादव हमारे अंशसे जो उत्पन्न हुए हैं,कलियुगमें सब ऐसे ही रहेंगे तो अनेक दुःख पावेंगे इस लिये इन सबका प्रबन्ध ऐसा करें कि प्रथम ही अपने लोकमें भेजकर पीछे हम जायें, क्योंकि यादवोंके नाश होनेसे दुःख तो होगा ही परंतु पीछे सुख होगा । कैसा ? कि जैसे कोई औषधि खानेके समय कड़ुआ मुख हो जाता है परंतु पीछेसे सुख होता है फोड़ोंको चीरनेके समय जीव दुःख मानता है परंतु पीछे सुख पाता है इस बातको विचारके पृथ्वीके भारके कारण अंशसे आपने जो यादव उत्पन्न किये उन सबको नष्ट करके अपने सङ्ग लेकर चले गये, कुछ निर्दयपनसे यादवोंका विनाश नहीं किया ।

जिनके समान लोकोंमें कही लावण्यता नहीं और जिनके सम्बन्धसे ही लोकोंको शोभा मिलती है इस प्रकार अपने देहसे पुरुषोंके चित्त हरकर जिससे चित्त औरको स्मरण न करे और जो चरणारविन्द देखते हैं, उनकी योग और क्रिया चरणोंके देखनेसे हर ली, फिर भक्तोंकी सब इंद्रियें वृत्तिमें और अपने संसारी जीवोंका अज्ञानरूपी अँधेरा दूर कर, उनके लिये पृथ्वीमें अति विमलकीर्ति विस्तार कर श्रीकृष्ण-चन्द्र व बलरामजी अपने धामको चले गये ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजा परीक्षित् पूछने लगे कि हे ब्रह्मन् ! यादव तो ब्राह्मणोंके भक्त, अतिदानी और नित्यप्रति वृद्धोंकी सेवा करते थे, इतने पर भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जिनके मन लग रहे थे उन्हें किस लिये ब्राह्मण लोगोंने शाप

स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ॥ गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥ आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ॥ तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगास्त्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् ॥ विप्रशापःकथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥ यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ॥ कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुन्दर-सन्निवेशं कर्माचरन्भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः ॥ आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्य शेषः ॥ १० ॥ कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ॥ कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे पिण्डारकं समगमन्मुनयो विसृष्टाः ॥ ११ ॥

दिया॥८॥हे भगवन् ! इस शापका क्या कारण है, क्यों हुआ ? और यह सब लोग एकचित्त थे; मनमें भेद क्यों उत्पन्न हुआ ? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! यह सब मुझसे कहो ॥ ९ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! प्रथम भक्तोंको सुख देनेके लिये पूर्ण शोभायमान स्वरूप धारणकर भूमिपर अत्यन्त मंगल कर्म किये और यद्यपि आप पूर्णकाम हैं तो भी फिर द्वारकापुरीमें घर बनाकर अनेक क्रीड़ाकर सब भक्तोंको सुख दिया । इसका तात्पर्य यह है कि पहले जीवोंका उद्धार करनेके लिये उदार कीर्त्तिका विस्तार किया, फिर अपने कुलके संहार करने की इच्छा करने लगे, यही काम शेष रहा था ॥ १० ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार इच्छाकी तभी ब्रह्मशापका निमित्त हुआ,

क्योंकि जो कर्म अत्यन्त पुण्यरूप मंगलरूप गानेवालोंके संपूर्ण पाप दूर करे, ऐसे कर्म करनेको जो मुनि बुलाये थे, वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे पिंडारक तीर्थ को चले गये। श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं कालरूप होनेसे वसुदेवजीके घरमें वासकर निज कुलका नाश करना चाहते थे, इसीलिये मुनिलोगोंको पिंडारक स्थानको भेजा ॥११॥ विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ और नारद आदि ऋषि श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार पिंडारक स्थानमें वास करते थे ॥१२॥ एक समय इन ऋषीश्वरोंके पास खेलते खेलते सब यदुकुमारोंने आकर नमस्कार कर, चरण पकड़ पूछा, परन्तु इन लोगोंके मनमें कपट भरा हुआ था ॥ १३ ॥ वह सब बालक जाम्बवतीके पुत्रको ऐसी सुन्दर स्त्री बनाकर मुनियोंके सम्मुख ले जाकर हाथ जोड़कर पूछने लगे कि अहो मुनीश्वरो ! तुम सर्वज्ञ

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ॥ कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥ १२ ॥ क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः ॥ उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥ ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवतीसुतम् ॥ एषा पृच्छति वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥१४॥ प्रष्टुं विलज्जती साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः ॥ प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किंस्वित्संजनयिष्यति ॥ १५ ॥ एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ॥ जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा तेऽतिसंत्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् ॥ साम्बस्य ददृशुस्तस्मिन्मुसलं खल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥ किं कृतं मन्दभाग्यैर्नः किं वदिष्यन्ति नो जनाः ॥ इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥ १८ ॥ तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः ॥ राज्ञ आवेदयाञ्चक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥

हो, यह स्त्री गर्भवती है इसको पुत्रकी इच्छा है और प्रसव होनेवाला है, तुम्हारे सम्मुख आते इसे लज्जा होती है, कारण आप कृपा करके बताइये, इसके लड़का होगा या लड़की ? ॥१४॥१५॥ हे राजन् ! इस प्रकार जब छलसे पूछा तब यादवोंके बालकोंपर अत्यन्त क्रोधित होकर मुनि बोले कि हे मूर्खो ! यह तुम्हारे कुलनाशक मूसलको उत्पन्न करेगी ॥ १६ ॥ यह सुन वह बालक अत्यन्त भयभीत हो, उतावलीसे सांबके उदरको खोल लोहे का मूसल देख भयभीत हो गये ॥१७॥ और परस्पर कहने लगे कि हमने यह क्या किया, हमको मनुष्य क्या कहेंगे, इस प्रकार विह्वल हो मूसलको ले आये ॥१८॥ जिनके मुखकी शोभा मलिन हो गयी ऐसे सब बालक उस मूसलको सभाके

बीचमें लाकर सब यादवोंके निकट राजा उग्रसेन से कहने लगे परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रसे न कहा ॥१९॥ हे महाराज परीक्षित् ! मुनियोंका अमोघ शाप श्रवण कर और मूसल देख सब द्वारकावासियोंने बड़ा आश्चर्य माना और भयभीत हो गये ॥ २० ॥ इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रके विना पूछे ही उस मूसलको राजा उग्रसेनने चूर्ण करवाकर समुद्रके जलमें बहा दिया और रेतनेसे शेष जो बचा उसे भी समुद्रके जलमें डाल दिया ॥ २१ ॥ वहां कोई मत्स्य उस लोहेको निगल गया और उसका चूरा जलकी तरंगोंसे बहता बहता समुद्रके तीरपर आ गया । उससे ही सब पटेले उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ उस मत्स्यको भी और मत्स्योंके संग धीवरोंने जालमें पकड़ा, उस मत्स्यके पेटमेंसे लोहा जो निकला उससे उसने अपने तीरकी भाल बनवायी ॥ २३ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संपूर्ण बातोंको जानते थे और सब

श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप ॥ विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥ तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः ॥ समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥२१॥ कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः ॥ उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन्किलैरकाः ॥२२॥ मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ॥ तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवान्ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ॥ कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलस्य विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ॥ अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥ को नु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ न भजेत्सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥

कुछ करनेको समर्थ थे तो भी निवारणकी इच्छा न की, विप्रशापको ही मुख्य रखा, इस कारण इस समय आपही कालरूप हैं ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलस्य विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा—दुसरेमें वसुदेव अरु, नारद प्रश्न सुस्वाद । योगेश्वर अरु जनक सों, भयो धर्म संवाद ॥ दूसरे अध्यायमें भक्तिसे पूछे वसुदेवजीको नारद जनक और नव योगियोंके संवादसे शुद्ध धर्म कहेंगे। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! गोविन्दकी भुजासे पालित द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें प्रेम करनेवाले नारदजी निरन्तर वास करते थे ॥१॥ क्योंकि ऐसा कहा भी है कि जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें मुक्त पुरुषोंको भी उत्कण्ठा होती है,

भा० ए० उनको कौन नहीं भजता, सर्वत्र मृत्युसे त्रासित इंद्रियवाला कौन पुरुष भगवान्के चरणारविन्दका भजन नहीं करेगा, जिन चरणक-
॥ ३ ॥ मलोंकी देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक सेवा करते हैं॥२॥एक दिन देवर्षि नारदजी वसुदेवजीके घर आये,तब वसुदेवजीने अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम आसनपर बैठाकर पूजा और नमस्कार करके पूछा ॥३॥ कि हे भगवन् ! जैसे हरिकी प्राप्तिका मार्गरूप महत् पुरुष हैं उनका आगमन दीनोंका कल्याण करनेके लिये है और जैसे पिता का आना पुत्रादिकोंके सुखके लिये है, उसी प्रकार आपका आगमन सब देहधारियोंके कल्याणार्थ है ॥४॥ महात्मा लोगोंको देवताओंकी उपमा भी अनुचित है, क्योंकि देवताओंका चरित्र बहुत वृष्टि आदिसे दुःख और सुख दोनों करता है, परन्तु साधुओंका चरित्र तो सदा सुख ही करता है इस कारण तुम सरीखे अच्युतरूप पुरुषोंका आगमन सुखके

तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ॥ अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् ॥ कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥ भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ॥ सुखायैव हि साधूनां त्वदृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥ भजन्ति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान् ॥ छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥ ६ ॥ ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव ॥ याञ्छ्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते विश्वतो भयात् ॥ ७ ॥ अहं किल पुरानन्तं प्रजार्थो भुवि मुक्तिदम् ॥ अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥

ही लिये है ॥५॥ यद्यपि देवतालोग सुख देते हैं परन्तु तो भी जिसने जितना भजन किया हो, उसे उस भजनके अनुसार ही सुख देते हैं,
भा० टी० क्योंकि जैसे मनुष्य जितना कार्य करे, उतना ही उसकी परछायी कार्य करे, ऐसे ही मनुष्य जैसा और जितना काम करे उसे देवता लोग
अ० २ कर्मानुसारही फल देते हैं, परंतु आप सरीखे साधु पुरुष तो दोनोंको देखते ही कृपालु हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे नारद ! यद्यपि हम तुम्हारे आनेसे ही कृतार्थ हो गये, परंतु तो भी आपसे जिन धर्मोंसे भगवान् प्रसन्न हों, उन वैष्णव धर्मोंको पूछते हैं, जिन धर्मोंको श्रद्धासहित श्रवण करनेसे मनुष्य संसारसे छूट जाता है ॥ ७ ॥ यदि तुम कहो कि भगवान्की प्रसन्नताके पात्र तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं, सो

इसका उत्तर यह है कि मुक्तिदाता अनन्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रथम मैंने पुत्र कामनासे आराधन किया था, देवमायासे मोहित हो मोक्षप्राप्तिके लिये आराधन नहीं किया, यह बात सूतिकागृह (सोवर) में ही श्रीकृष्णचन्द्रने मुझसे कही थी सो याद है ॥ ८ ॥ हे नारद ! इसलिये अनेक दुःखसंयुक्त सब ओरसे भय देनेवाले संसारसे जिसमें हम विना ही श्रमके छूट जायँ, वैसी ही तुम शिक्षा दो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार जब अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने पूछा तब भगवान्के गुणोंके स्मरण करानेसे प्रसन्न होकर

यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतो भयात् ॥ मुच्येमह्यञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ॥ प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ सम्यगेतद्व्यवसितं भवता सात्वतर्षभ ॥ यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥ श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वाऽनुमोदितः ॥ सद्यः पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥ त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥

देवर्षि नारदजी वसुदेवजीसे कहने लगे ॥१०॥ कि हे यादवोंमें श्रेष्ठ वसुदेवजी ! तुमने यह बहुत उत्तम प्रश्न किया, क्योंकि सबके चित्तको शुद्ध करनेवाला वैष्णव धर्म पूछा ॥ ११ ॥ यह धर्म सुननेसे, स्मरण करनेसे, श्रद्धापूर्वक आदरसे ध्यान करनेसे, सम्मति देनेसे समस्त विश्वके पातकी जनोंको शीघ्र पवित्र कर देता है, क्योंकि यह भगवत्सम्बन्धी धर्म है * ॥ १२ ॥ हे वसुदेव ! परमकल्याणरूप, जिनके

---

* शंका—ऐसा उत्तम कौनसा धर्म है, जो शीघ्र ही दुष्टोंको पवित्र करता है ? जो दुष्ट तीन लोककी और देवताओंकी बुराई करते हैं उनको पवित्र करना महाकठिन है,क्योंकि शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि जो प्राणी किसी दूसरेकी बुराई करेगा तो कभी पवित्र नहीं होगा, चांडालके सदृश बना रहेगा, और जो तीन लोककी तथा तीन लोकके देवताओंकी निन्दा करेगा वह कैसे पवित्र हो सकता है ?

उत्तर—जो धर्म तीन लोक अथवा सब देवताओं की निन्दा करनेवाले प्राणीको पवित्र करता है, वह धर्म यह है कि मनमें दया करके भगवान्का भजन करना । वह ऐसा सुन्दर धर्म है कि सब पापोंका नाश करता है जैसे रुईके ढेरको एक सरसों प्रमाण अग्नि भस्म कर देती है, ऐसा ही भगवान्के नामका जप है, थोड़ा भी करेगा तो अनेक जन्मके पापोंका नाश कर देगा ऐसा लिखा है ।

भा० ए०
॥ ४ ॥

श्रवण और कीर्त्तन अत्यन्त पवित्र हैं, ऐसे भगवान् नारायणका स्मरण करा कर मेरा आपने बड़ा ही उपकार किया ॥ १३ ॥ अब मैं तुमसे एक प्राचीन कथा कहता हूँ जिसमें उदारचित्त राजा जनक और ऋषभदेवके पुत्र नव योगीश्वरोंका संवाद है ॥१४॥ स्वायंभुवमनुके प्रियव्रतनाम एक पुत्र हुआ, उसके अग्नीध्र, उसके नाभि और नाभिके ऋषभदेवजी हुए ॥ १५ ॥ यह वासुदेवके अंशरूप ऋषभदेवजी मोक्षसंबन्धी धर्म कहनेकी कामनासे प्रकट हुए थे, इनके सौ १०० पुत्र हुए, सो सब वेदके जाननेवाले थे ॥१६॥ उनमें सबसे ज्येष्ठ भरतजी परमेश्वरके बड़े भक्त हुए, अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं, यह अजनाभखंड ही जिनके नामसे (भरतखण्ड) प्रसिद्ध हो गया ॥१७॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥ प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायंभुवस्य यः ॥ तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ॥ अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ॥ विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ॥ उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥ तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः ॥ कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन् महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ॥ श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ २१ ॥ एते वै भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्तो व्यचरन् महीम् ॥ २२ ॥

भा० टी०
अ० २

सो राजा भरत पृथ्वीका भले प्रकार भोग कर अंतमें पृथ्वीको छोड़ तपस्या करनेको चले गये और भगवान् हरिकी उपासना करते-करते तीन जन्ममें हरिकी पदवीको प्राप्त हुए ॥१८॥ शेष निन्नानवे पुत्रोंमें नौ पुत्र इस भरतखण्डके मध्य नवों द्वीपोंके पति हुए और इक्यासी पुत्र कर्ममार्गके प्रवर्तक ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ और जो नौ पुत्र महाभाग मुनि थे, वे परमार्थके उपदेश करनेवाले आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर दिगंबर वेषधारी आत्मविद्यामें निपुण हुए ॥ २० ॥ उनके नाम यथाकवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविहोत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ॥ २१ ॥ यह सब इस विश्वको भगवद्रूपसे देखने लगे, स्थूल सूक्ष्मको आत्मासे भिन्न देखने

लगे, अधिक क्या कहें, वे सब आत्मरूपको ही देखते संपूर्ण पृथ्वीमें फिरने लगे ॥ २२ ॥ अप्रतिहत गतिसे आसक्तिरहित ये योगीश्वर देवता, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, यक्ष मनुष्य, किन्नर नाग, मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गौओंके लोगोंमें अपनी इच्छासे विचर रहे थे ॥ २३ ॥ विचरते विचरते ये सब अपनी इच्छा से एक दिन ऋषियोंसे विस्तृत उदार चित्त अजनाभ राजा जनकके यज्ञमें आये ॥२४॥ सूर्यके समान तेजस्वी परमभागवत इन ऋषियोंको देख यजमान, अग्नि, ब्राह्मण सब उठकर खड़े हो गये ॥ २५ ॥ इसके उपरांत राजा जनक उनको नारायणपरायण जान अति प्रसन्न हो आसन दे यथायोग्य पूजा करने लगे ॥ २६ ॥ अपनी कांतिसे शोभा

अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्यगन्धर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् ॥ मुक्ताश्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥२३॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ॥ वितायमानमृषिभिरजनाभेर्महात्मनः ॥२४॥ तान् दृष्ट्वा सूर्य संकाशान्महाभागवतान्नृपः ॥ यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥ विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ॥ प्रीतः संपूजयांचक्र आसनस्थान्यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७ ॥ विदेह उवाच ॥ मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः ॥ विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरंति हि ॥ २८ ॥ दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥ अत आत्यंतिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघः ॥ संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥

संयुक्त सनकादिकोंके समान उन नव योगीश्वरोंको देख प्रसन्न हो विनय कर पूछने लगे ॥२७॥ प्रथम उनकी स्तुति की कि तुम साक्षात् मधुदैत्यके द्वेषी भगवान्के पार्षद हो; जिससे विष्णुभक्त लोकोंके पवित्र करनेको सब ठौर विचरते हो ॥२८॥ मैंने दुर्लभ वस्तु पायी है, इसलिये मेरा बड़ा भाग्य है, क्योंकि देहधारियोंको मनुष्यदेह दुर्लभ है सो भी क्षणभंगुर है, उसमें भी भगवान्के प्रिय भक्तोंका दर्शन तो अत्यन्त ही दुर्लभ है ॥२९॥ हे निष्पाप ! इसलिये मैं आपसे पूछता हूँ कि संसारमें सबसे उत्तम कल्याणका साधन क्या है क्योंकि इस

संसारमें अर्द्धक्षणका सत्संग भी मनुष्योंको बड़ी निधि है ॥ ३० ॥ इस कारण यदि आप सुननेका अधिकारी समझो तो हमसे वैष्णव धर्म कहो, जिन धर्मोंसे प्रसन्न होकर भगवान् भक्तोंको अपना आत्मातक दे देते हैं ॥३१॥ नारदजी बोले कि हे वसुदेव ! जब इस प्रकार राजा जनकने पूछा तब उन महंत ऋत्विजोंने सभासदों सहित राजा जनककी स्तुति करके प्रीतिपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ जनकजीने नौ प्रश्न किये, प्रथम वैष्णवधर्म, दूसरा परमेश्वरकी भक्ति, तीसरे माया, चौथे मायाके तरनेका उपाय, पांचवां ब्रह्म, छठा कर्म, सातवां अवतार चरित्र, आठवां भक्तिप्राप्ति, नववां युग; इन एक एक प्रश्नका उत्तर नवों मुनिश्वरोंने दिया । प्रथम अति कल्याणरूप धर्म कवि योगेश्वर बोले कि हरिके चरणारविन्दकी उपासना ही सब प्रकारके भय दूर करती है, जिसके करनेसे देहादि भिन्न पदार्थोंके गर्वसे सदा उद्वेगको प्राप्त होकर

धर्मान् भागवतान्ब्रूत यदि न श्रुतये क्षमम् ॥ यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥
एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः ॥ प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥ कविरुवाच ॥ मन्ये-
ऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ॥ उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥३३॥
ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ॥ अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हितान् ॥ ३४ ॥ यानास्थाय
नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृतस्वभावात् ॥ करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥

यह पुरुष संसारके भयसे छूट जाता है ॥३३॥ अब वैष्णव धर्मके लक्षण कहते हैं:-प्रथम मनुआदि ऋषियोंके मुखसे सब वर्णाश्रम धर्म कहते हैं, फिर अति रहस्यसे अपने मुखसे भगवान्ने अज्ञानियोंको सुखपूर्वक आत्मज्ञान पानेके जो उपाय कहे हैं, वह सब वैष्णवधर्म हैं ॥ ३४ ॥ उन धर्मोंका आश्रय कर मनुष्य कभी विघ्नोंसे पीडित नहीं होता । हे राजन् ! नेत्र बन्द करके दौड़े तो भी नहीं गिरता और यदि वर्णाश्रम धर्म बन पड़े तो भी प्रतिवादी नहीं होता और न फलसे भ्रष्ट होता है ॥ ३५ ॥ शास्त्रोक्त विधिसे बताये हुए कर्मको ही नारायणके अर्पण करे, यह नियम नहीं है, किन्तु शरीर, वाणी, मन बुद्धि, अहंकार और अध्याससे माने हुए ब्राह्मणत्वादिसे भी जो कुछ

कर्म करनेमें आवे, वह सब परमेश्वरको अर्पण करनेसे शारीरिक क्रिया सब नारायणसम्बन्धी धर्मरूप हो जाती हैं ॥ ३६ ॥ परमेश्वरसे विमुख पुरुषको ईश्वरकी मायासे भगवत्स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, बरन् उससे 'अहं देहः' मैं देह हूँ ऐसा अभिमान होता है तब दूसरेके अभिनिवेशसे भय होता है, जिस कारण कि उनकी मायासे भय होता है, इससे गुरु देवता और इष्ट माननेवाले बुद्धिमान् निश्चय करके भक्तिसहित ईश्वरको ही भजें। यहां पूर्वपक्षमें कहते हैं कि चित्त तो विषयोंसे चंचल है; फिर निश्चय भक्ति कैसे हो और भक्ति न हो तो भय कैसे जाय ? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि विषय कुछ वस्तु नहीं है, केवल मनका विलासमात्र है, इसलिये मनका निग्रह करके जो भजन करे तो अभय हो, यद्यपि यह प्रपंच सब ब्रह्मरूप ही है दूसरा कोई नहीं ॥ ३७ ॥ परन्तु तो भी अविद्यासे द्वैत भासता है, जैसे

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥ तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥ ३७ ॥ अविद्यमानोप्यवभाति हि द्वयोर्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ॥ तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात ॥३८॥ शृण्वन्सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ॥ गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥ ३९ ॥ एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ॥ हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥

ध्यान करनेवाले पुरुषको मनसे स्वप्न और मनोरथ दीखते हैं, इस कारण संकल्प-विकल्पके कर्त्ता मनको बुद्धिमान् पुरुष रोके, तब निश्चय भक्तिसे भजन करे तो अभय हो ॥ ३८ ॥ जो जगदीशके शुभजन्म कर्म हैं और जो जन्म कर्मसे हुए नाम लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उनको लज्जा छोड़ निस्पृह होकर गाता फिरे ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भजन करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तियोगको प्राप्त होनेसे उनकी संसारसे न्यारी ही गति हो जाती है, ऐसा जिसका आचरण है और भगवान् वासुदेवके नामकीर्तनसे अनुराग बढ़ने और चित्त अति कोमल होनेसे वे भक्त भगवान्को जीत लेते हैं, तब उनकी यह दशा हो जाती है कि कभी भगवान्को अपने वशमें जानकर हँसते हैं और कभी इतना समय व्यर्थ गया, यह जानकर रोते हैं, कभी अति उत्कण्ठासे पुकारते हैं, कभी आनन्दमें मग्न हो उच्चस्वरसे गाते हैं और कभी नाचते हैं, इस प्रकार अलौकिक

उन्मत्तकीसी चेष्टा करते हैं ॥४०॥ आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी, ज्योति, सब प्राणिमात्र, दिशा, वृक्ष, नदी सबको हरिका ही शरीर जाने, अनन्यचित्त होकर प्रणाम करे, यह वैष्णवोंके लक्षण हैं ॥४१॥ यदि कोई कहे कि यह धर्म तो योगेश्वरोंको भी दुर्लभ है, अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त नहीं हो सकता, तो एक नाममात्रका कीर्तन करनेसे एक ही जन्ममें कैसे हो सकता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि प्रेमलक्षणा भक्ति और प्रेमाश्रयभगवत्स्वरूपकी स्फूर्ति और गृहादिकोंमें वैराग्य; ये तीनों हरिके भजनकर्ता पुरुषको एक ही समय होते हैं, जिस प्रकार भोजन करनेसे सुख, पुष्टि, भूँखकी निवृत्ति यह तीनों एक ही कालमें ग्रासविषे होते हैं ॥४२॥ फिर भगवान्के प्रसादसे कृतार्थ होता है सो कहते हैं–इस प्रकार जब पुरुष हरिचरणारविंदका नित्य भजन करे तो उसे प्रेमलक्षणा भक्ति तथा वैराग्य और साक्षात् भगवत्स्वरूपका

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ॥ सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥ भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ॥ प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ॥ भवन्ति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् ॥ यथा चरति यद् ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥ हरिरुवाच ॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥ ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ॥ प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥४६॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ॥ तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥

ज्ञान तीनों होते हैं, तब पुरुष परमशांतिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ यह सुनकर राजा जनकने पूछा कि हे मुनिश्रेष्ठ ! वैष्णव मनुष्योंके बीचमें कैसे होते हैं, किस धर्मके विषे स्थित, कैसा स्वभाव कैसा आचरण, कैसा बोलना और कैसे चिह्न हैं, जिससे भगवान्को प्रिय होते हैं ? कृपापूर्वक सम्पूर्ण मेरे आगे वर्णन करो ॥ ४४ ॥ इसका उत्तर हरिनामा योगीश्वर तीन श्लोकोंसे देते हैं कि जो अपनेको सब प्राणिमात्रमें ब्रह्मस्वरूप स्थित देखे और ब्रह्मरूप अपनेमें सर्व प्राणिमात्रको देखे सो उत्तम भागवत है ॥ ४५ ॥ ईश्वरमें प्रेम करे भगवान्के भक्तोंसे मित्रता करे, मूर्खोंपर कृपा करे और शत्रुओंकी उपेक्षा करे वह मध्यम वैष्णव है ॥ ४६ ॥ मंदबुद्धिसे केवल प्रतिमामें ही श्रद्धा रखता है,

और जीवोंमें तथा भक्तोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं है वह प्राकृत भक्त है ॥४७॥ अब आठ श्लोकोंमें उत्तम वैष्णवोंके लक्षण कहते हैंः—जो इंद्रियोंसे विषयोंका भोग करते हैं, परन्तु न किसीसे द्वेष है, न प्रीति है, सब वस्तुमात्रको ईश्वरकी माया जानते हैं, वे भक्तोंमें उत्तम हैं ॥४८॥ देहके संसारी धर्म जन्म, मरण, इंद्रियोंको कष्ट, प्राणोंको भूख, मनको भय, बुद्धिको तृष्णा, इस संसारके धर्मोंसे जो मोह न पावें और निरन्तर भगवान् हरिका स्मरण करे वे वैष्णव भक्तोंमें मुख्य हैं ॥४९॥ जिसके मनमें काम, कर्म और वासना न उत्पन्न हो, चित्त केवल भगवान् वासुदेवके स्वरूपमें ही वसता रहे वे वैष्णवोंमें उत्तम हैं। इन तीन श्लोकोंमें भक्तोंके आचरणको उत्तम कहा ॥५०॥ जिस इस देहमें कुल, तप, वर्ण, आश्रम और जातिका अभिमान नहीं है वह भगवान्‌का अति प्यारा भक्त है ॥५१॥ जिसके चित्त और आत्मामें अपनी परायी बुद्धि नहीं और सब

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति ॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥ न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥ न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ॥ सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥ न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ॥ सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ॥ चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥ ५३ ॥ भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखानखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ॥ हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥

प्राणिमात्रमें समान दृष्टि होकर शांत हो वह वैष्णवोंमें उत्तम है ॥५२॥ त्रिलोकीके राज्यके लिये भगवान् वासुदेवमें ही जिनका चित्त है और जो देवताओंको दुर्लभ भगवान्‌के चरणकमलके भजन विना लवमात्र भी नहीं व्यतीत करते वे वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इनको ऐसा दृढ ज्ञान होता है कि भगवान् वासुदेवके चरणोंसे अधिक और कुछ सार नहीं है ॥५३॥ यदि विषयके संगसे और कामसे सन्तापित हुए भक्तोंके मन चंचल हो तो क्या ? इस पर कहते हैं कि हरिसेवामें सुख माननेवालेका तो मन नहीं चलायमान होता, परन्तु अनन्त पराक्रम भगवान् वासुदेवके चरण की शाखारूप अंगुलियोंके नखरूप मणिकी चंद्रिकासे सब कामादि ताप दूर होने से भक्तके हृदयमें ताप उत्पन्न

नहीं होता, जैसे चन्द्रमाके उदय होने से सूर्यका ताप दूर हो जाता है। और भी मुख्य लक्षण कहते हैं ॥५४॥ केवल नाम मात्रके लेते ही संपूर्ण पापोंके समूहके नाश करनेवाले साक्षात् भगवान् वासुदेवको हृदयसे न त्यागे वही वैष्णवोंमें उत्तम है, क्योंकि इसने प्रेमडोरसे हरिके चरण कमल हृदयमें बांध रखे हैं॥५५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां नारद वसुदेवसवादे जायन्तेयोपाख्याने विदेहप्रश्नवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ दोहा—माया मायासे तरन, ब्रह्म कर्म यह चार। इनको उत्तर देत अब, योगेश्वर सुविचार ॥ माया और मायासे तरनेका उपाय, ब्रह्म तथा कर्म इन चार प्रश्नोंका उत्तर ऋषभदेवके पुत्र मुनि तीसरे अध्यायमें कहेंगे। राजा जनकजी बोले कि हे भगवन्! परमात्मा ईश्वर विष्णुकी मायाको मैं जानना चाहता हूं सो कृपापूर्वक तुम मुझसे कहो, जो माया बड़े जाननेवालोंको

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥ प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभाग० म० एका० नारदवसुदेवसंवादान्तर्गतनिमिजायन्तेयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥ मायां वेदितुमिच्छामि भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ॥१॥ नानुतृप्ये जुषन् युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ॥ संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अन्तरिक्ष उवाच ॥ एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ॥ ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः ॥ एकधा दशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥ ४ ॥

भी मोहित कर लेती है ॥ १ ॥ यदि तुम कहो कि उक्त (जिसको प्रथम कह आये हैं) लक्षणवाला भक्त होकर कृतार्थ हो तो बहुत परिश्रम करनेसे क्या? इसके उत्तरमें कहते हैं कि मरण धर्म संसारके तापसे अत्यन्त ताप होता है, इसके औषध हरिकथारूप अमृतको तुम्हारे वचनों द्वारा पीनेसे मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ २ ॥ यह सुनकर अन्तरिक्षनामा योगेश्वर बोले कि हे राजन्! आदि पुरुष भगवान् सर्व प्राणिमात्रके कारण अपने अंशभूत जीवोंको मोक्षके अर्थ पञ्चमहाभूतोंकी शक्तिसे बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राण और शरीर उत्पन्न करते हैं, सो शक्ति मायाका रूप है ॥ ३ ॥ इस प्रकार पञ्चमहाभूतोंसे सृष्टि रचे सम्पूर्ण प्राणियोंके मध्यमें भगवान् अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट होकर एक

प्रकार मन और दश इन्द्रियरूपसे जीवोंको भिन्न-भिन्न विषय भोग कराते हैं ॥ ४ ॥ तब जीवात्मा अन्तर्यामीसे प्रकाशित इन्द्रियोंसे विषय भोग करते मायारचित शरीरको आत्मा मान उसी शरीरमें आसक्त होते हैं ॥५॥ यह जीव कर्मेंद्रियोंसे वासनासहित कर्म करते हैं और इन्हीं कर्मोंसे सुखदुःखस्वरूप फलको भोग करते संसारमें भ्रमण करते हैं, परंतु मुक्त नहीं होते, यह परमेश्वरकी माया है ॥ ६ ॥ इस भांति अनेक क्लेशयुक्त कर्ममार्गमें चलते जीवात्मा परवश होकर महाप्रलयतक जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ अब प्रलय कहते हैंः—पञ्चमहाभूतोंके नाशका काल जब निकट आता है तब आदि—अन्त—रहित कालमें लीन करनेको इस स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्चको खींच लेते हैं ॥८॥ अब नाशका

गुणैर्गुणान्स भुञ्जान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ॥ मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् ॥ तत्तत्कर्मफलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् ॥ आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥ धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ॥ अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥ शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि ॥ तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥ पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः ॥ दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग् वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥ सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ॥ धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ॥ अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इवानलः ॥ १२ ॥ वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते ॥ सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥

कारण कहते हैंः—पहले पृथ्वीमें सौ १०० वर्षतक अतिदारुण अनावृष्टि होगी, पीछे उस कालमें बड़ी उष्णतासे सूर्य तीनों लोकोंमें तपेगा ॥ ९ ॥ और पातालतलसे आरंभ होकर जलाता हुआ अग्नि, ऊँची शिखा किये वायुसे प्रेरा हुआ चारों दिशाओंमें बढ़ेगा ॥ १० ॥ इसके उपरांत सांवर्त्तक नाम प्रलयकालके मेघगण सौ १०० वर्षतक हाथीकी सूंड़के समान धारा वर्षेंगे, तब उस जलमें यह ब्रह्माण्ड लीन हो जायगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जैसे अग्नि काष्ठ न हो तो शुद्ध अग्निमें मिल जाती है उसी प्रकार ब्रह्माण्डरूप शरीरवाला विराट् पुरुष ब्रह्माण्डरूप अपने शरीरको छोड़कर सूक्ष्म परब्रह्ममें प्रवेश कर जाता है ॥ १२ ॥ पृथ्वीका गुण गन्ध है, पीछे उसको प्रलयाकारका पवन

हर लेता है, तब पृथ्वी गुणरहित होकर जलमें लीन हो जाती है, पीछे जलके गुण रसको वही पवन सोख लेता है, तब जल तेजमें लीन हो जाता है ॥ १३ ॥ प्रलयकालके अन्धकारसे रूपरहित हो तेज वायुमें लीन हो जाता है, पीछे आकाशसे स्पर्शगुण हर जानेसे वायु आकाशमें लीन हो जाता है, इसके उपरांत आकाशके गुण शब्दको कालरूप ईश्वर हर लेते हैं, तब आकाश तामसाहंकारमें लीन हो जाता है ॥१४॥ फिर इंद्रियें और बुद्धि राजसाहंकारमें लीन होती हैं, मन इंद्रियोंके देवताओं सहित सात्त्विक अहंकारमें लीन हो जाता है। हे राजन् ! इसी प्रकार तामस, राजस और सात्त्विक यह तीनों गुणोंका कार्य इंद्रियादिकसहित अहंकार महतत्त्वमें लीन होता है और वह महतत्त्व प्रकृतिमें लीन होता है ॥१५॥ सात्त्विक राजस तामस तीनों गुण युक्त उत्पत्ति, पालन और प्रलय करनेवाली यह भगवानकी

हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ॥ हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ॥ प्रविशन्ति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी ॥ त्रिवर्णा वर्णिताऽस्माभिर्भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ अथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ तरन्त्यञ्जः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥ प्रबुद्ध उवाच ॥ कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ॥ पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ॥ गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥ १९ ॥

माया है, सो मैंने तुमसे इसका रूप वर्णन किया; अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥१६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार अति दयायुक्त मुनिको देख इस संसारकी मायासे तरनेका उपाय राजा जनक पूछने लगे, कि हे महाऋषि ! यह ईश्वरकी माया अजितेन्द्रियोंको अति दुस्तर है, इसलिये देहाभिमानी भी जिस प्रकार इसे सुखपूर्वक तर सकें वही उपाय तुम मुझे बताओ ॥१७॥ तब प्रबुद्ध नाम चौथे योगेश्वर बोले कि हे राजन् ! भगवान् वासुदेवकी भक्ति विना मायाके तरनेका और उपाय नहीं है, यह ज्ञान साधनसहित भक्तिको वर्णन करते हैंः—पहले वैराग्यसे गुरुओंके निकट जाय, सो चार श्लोकोंमें कहते हैं। हे राजन् ! स्त्री पुरुष मिलकर अपने सुख और दुःख दूर करनेके कर्मोंका आरम्भ करते हैं और फिर उन कर्मोंके फलमें दुःख ही देखते हैं ॥ १८ ॥ कर्मके साधनसे धनादिक

मिलकर भी सुख नहीं देते, इसपर कहते हैं कि नित्य दुःखदायी, उसपर भी दुर्लभ अपनी मृत्युकारक धन, गृह, पुत्र, बन्धु और पशुओंके पानेसे क्या सिद्धि है ? यह तो सब मिथ्या है ॥१९॥ इसी प्रकार कर्मोंसे उत्पन्न हुए परलोकको भी मिथ्या जाने, जिसमें अपने समानसे ईर्षा, अधिककी निन्दा, स्वर्गसे गिरनेका भय, इतने दुःख स्वर्गके विषे भी हैं, जैसे थोड़ी भूमिके राजाओंको समान देखकर ईर्षा, अधिक की निन्दा और चक्रवर्ती राजासे भय इत्यादि दुःख होते हैं॥२०॥ इसलिये अपना उत्तम कल्याण चाहे तो भक्तिपूर्वक गुरुकी सेवा करे। गुरुके लक्षण कहते हैंः—मुख्य तो वेदका अर्थ अतिश्रेष्ठ जानता हो, जिससे कि सब सन्देह दूर कर सके और परब्रह्म भगवान्के स्वरूपको जाने। जो आप ब्रह्मको न जाने तो औरको कैसे ज्ञान देगा ? अति शान्तस्वरूप हो, क्योंकि ब्रह्मज्ञान उसे ही होगा जो पुरुष शांत

एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्म निर्मितम् ॥ सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥ शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥ तत्र भागवतान्धर्माञ्छिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः ॥ अमाययाऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मप्रदो हरिः ॥ २२ ॥ सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु ॥ दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥ शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥ सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ॥ विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येन केनचित् ॥ २५ ॥

होगा ॥ २१ ॥ भक्तोंको आत्माके देनेवाले परमात्मा भगवान् हरि जिन वैष्णवधर्मोंसे सन्तुष्ट होते हैं, गुरुको उन धर्मोंकी आत्मा और इष्ट जानकर भक्तजन उनकी निष्कपट सेवा करें॥ २२ ॥ पहले तो सम्पूर्ण वस्तुओंमें मनको चलायमान न करे, इसके उपरांत सत्संग करे, फिर सब प्राणियोंमें और दीनोंपर मन वचनसे दयायुक्त चित्तमें सबसे मित्रता करे और उत्तमोंसे नम्रता सीखे ॥२३॥ बाह्य शौच सीखे (मृत्तिकासे हाथ पांव आदि धोवे), अन्तर शौच सीखे (मनमें दम्भ अहंकार न रखे), धर्मका आचरण, क्षमा, यथायोग अध्ययन, ब्रह्मचर्य सीखे, वृथा वार्त्ता न करे, कुटिल न रहे, द्रोह न करे, सुख दुःखमें समान बुद्धि रखे ॥ २४ ॥ सब प्राणीमात्रमें समान चैतन्य

आनन्दरूपसे ब्रह्मको विचारे, नियन्ता समझकर ईश्वरको विचारे, एकान्तमें वास करे, गृहादिकोंमें अभिमान न करे, निर्जन मार्गमें पड़े हुए वस्त्र अथवा वल्कलको पहने, अधिक क्या कहें जो वस्तु प्राप्त हो उसीमें सन्तोष रखे, औरकी इच्छा न करे ॥२५॥ जो शास्त्र केवल भगवान्को ही बताते हैं, वह भागवत शास्त्र है, उसे सुननेकी श्रद्धा रखे, औरकी निन्दा न करे और मन, वचन, कर्म, इन तीनोंको दण्ड दे, मनको तो प्राणायाम करके रोके, वाणीका दण्ड यह है कि मिथ्या वचन न कहे, कर्मका दण्ड, चेष्टा न करे, सत्य वचन सीखे, अन्तःकरण और सब इंद्रियोंका निग्रह करे ॥२६॥ अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् हरिके जन्म कर्म गुणका श्रवण, कीर्तन तथा ध्यान करे, और भी जो कर्म करे सो सब भगवान् वासुदेवको अर्पण करे ॥२७॥ यज्ञ, दान, तप, सदाचार और आपको जो प्रिय वस्तु हो सो सब गन्ध पुष्पादिक

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि ॥ मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६ ॥ श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ॥ जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ॥ दारान्सुतान् गृहान्प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् ॥ २८ ॥ एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ॥ परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥ परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ॥ मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्ति-र्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥ स्मरन्तस्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ॥ भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥

और स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण यह सब परमपुरुष भगवान् वासुदेवको निवेदन करे और यह सब धर्म गुरुके पास सीखे ॥ २८ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आत्मा माननेवाले मनुष्योंसे मित्रता और स्थावर, जंगम प्राणियोंमें सेवा विशेष करके मनुष्योंकी और उनमें भी महात्मा तथा साधुओंकी सेवा करे ॥ २९ ॥ उन साधुओंका सत्संग करके भगवान् वासुदेवके पवित्र यशको परस्पर कहना सीखे, फिर ईर्षा छोड़ आपसमें प्रीति, सबसे सन्तोष, परस्पर सुख, समस्त दुःखोंकी निवृत्ति सीखे ॥३०॥ सम्पूर्ण पाप समूहके नाश करनेवाले भगवान् हरिको आप निरन्तर स्मरण करे, तथा औरोंको स्मरण करावे, तब स्मरण, कीर्तनरूप भक्तिके करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तिसे रोमांचयुक्त

शरीर हो जाता है * ॥३१॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेवका चिन्तन करनेवाले कभी रोते हैं, कभी हँसते हैं, कभी आनन्दको प्राप्त होते हैं, कभी बालकोंके समान वचन कहते हैं, कभी नाचते हैं, कभी गाते हैं, कभी भगवान्के स्वरूपकी लीला करते हैं, कभी परमसुखमें मग्न होते हैं और कभी चुपचाप रहते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यह वैष्णव धर्म सीखकर प्राप्त हुई भक्तिसे नारायण परायण होकर सुखपूर्वक दुस्तर मायासे तरे ॥३३॥ यह सुनकर राजा जनक बोले कि हे ब्रह्मन्! तुमने कहा कि नारायणपरायण होकर माया को तरे, सो नारायणके तो तीन नाम सुने हैं, एक तो नारायण, दूसरा ब्रह्म, तीसरा परमात्मा, सो इन तीनों नामोंसे निर्विशेष वस्तु कहिये अथवा इनमें कुछ भेद है ? सो विशेष

क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ॥ गायन्ति नृत्यन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्यनिर्वृताः ॥ ३२ ॥ इति भागवतान्धर्मांञ्छिक्षन्भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥ पिप्पलायन उवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ॥ देहेन्द्रियासुहृदयानि चरंति येन सञ्जीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ॥ ३५ ॥

करके मुझसे कहो, क्योंकि तुम ब्रह्मको भली प्रकार जानते हो॥३४॥ तब पांचवें पिप्पलायन ऋषि उत्तर देते हैं कि हे राजा जनक ! जो इस विश्वके उत्पत्ति पालन तथा प्रलयके कारण हैं और आप कारणरहित हैं सो नारायण हैं. वही परमतत्त्व है ; जो स्वरूप स्वप्न; जाग्रत और सुषुप्तिमें एकरस है, सो ब्रह्म है, वही परम तत्त्व है; समाधिमें जिसको मुनीश्वर देखते हैं उसीको ब्रह्म कहते हैं, वही परमतत्त्व है और जिससे देह, इंद्रिय मन, प्राण यह सब चैतन्य हो कार्यको समर्थ होते हैं सो परमात्मा है, वही भगवान्का स्वरूप है, इस प्रकार तीनों

* शंका—भक्ति करके उत्पन्न जो भक्ति है, उस भक्तिसे भगवान्के भक्तोंका रोम रोम खड़ा हो जाता है, ऐसी रोमांच हुई देहको धारण करके भक्तजन भगवान्का भजन करते हैं, ऐसी उत्तम भक्ति कौनसी है ।

उत्तर—भगवान्में बड़ी भक्ति जैसी अम्बरीष आदिक भक्त भक्ति करते थे वैसी भक्तिसे भगवान्के चरणकमलमें प्रीति उत्पन्न हो, उसी प्रीतिका नाम भक्तिसे उत्पन्न भक्ति है, ऐसी भक्ति करके भगवान्का भजन करेगा तो प्राणी-मोक्षको प्राप्त हो जायगा ।

नामोंके भेदसे एक ही तत्त्व जानना चाहिये॥३५॥ यदि तुम कहो कि इससे ब्रह्मको विषयता प्राप्त हुई है तो इसका निषेध करते हैं, कि इस ब्रह्मको वाणी, नेत्र, बुद्धि, प्राण और सब इंद्रियें स्पर्श नहीं कर सकतीं, जैसे छोटी चिनगारी महाभूत अग्निको नहीं प्रकाश कर सकती और न जला सकती है, ऐसे ही मन आदि जड़ इंद्रिय सृष्टिके प्रकाशक ब्रह्मको क्या कर सकेंगी ? यहां पूर्वपक्ष करते हैं कि अहो ! वेद गो ब्रह्म को बताते हैं तो कहते हैं, वेद भी प्रगट नहीं, कारण यह है कि वेद स्वयं ही कहता है कि वाणी मन आदिसे जो पदार्थ जाने जाते हैं; जो इनके बोधन करनेवाले हैं, वह ब्रह्मको नहीं प्राप्त हो सकते, इससे यह न समझ लेना कि वेद ब्रह्मको नहीं कहते किन्तु वेद कहते हैं, स्थूल भी ब्रह्म नहीं है, अणु भी ब्रह्म नहीं और जो वाणीसे कहा जाय सो भी ब्रह्म नहीं इत्यादि इस निषेधकी जो अवधि है, वही ब्रह्म है, विना अवधिके निषेध नहीं हो सकता ॥३६॥ फिर कहते हैं कि जो सबका प्रमाण जहां वेदकी भी गम्य नहीं तो ब्रह्म ही न होगा, इसका उत्तर देते

नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः ॥ शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यदृतेन निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदंति जीवम् ॥ ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥३७॥ नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि ॥ सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥

हैं कि 'ब्रह्म नहीं' यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जो कुछ स्थूल सूक्ष्म देखा जाता है सो सब ब्रह्म ही भासता है, इसलिये सब विश्वके कारण भगवान् वासुदेव ही हैं। यहां पूछते हैं कि एक ब्रह्म बहुविध विश्वका कारण क्यों है ! इसपर कहते हैं कि ब्रह्मकी शक्ति अनन्त सामर्थ्यसे अनंतरूप है; पहले एकरूप होकर पीछे सत्त्व, रज, तम मायाके रूप हुए, पीछे क्रियाशक्तिसे प्राणरूप हुए, फिर ज्ञानशक्तिसे महात्तत्त्व हुए, फिर अहंकाररूप हुए; जिसमें जीव बँधा है। इसके उपरांत इंद्रियरूप हुए; फिर इंद्रियोंके देवतारूप हुए, फिर कर्मोंके फल सुख दुःखरूप हुए, इस भांति सब रूप ब्रह्म ही है और सर्वरूप आपसे प्रकाशमान ब्रह्मकी स्थापनाविषे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं ॥ ३७ ॥ यहां पूर्वपक्ष करते हैं कि सम्पूर्णरूप आप ही हैं तो यह सब विश्व तो मरता है, फिर उत्पन्न होता है।इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्मका भी जन्म मरण होता होगा, इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न बढ़ता है, न क्षीण होता है; इस कारण आगमापायी

बाल्युवादिक देहोंकी अवस्थाका साक्षी है, और साक्षीको ये अवस्थायें नहीं लगतीं, केवल ज्ञानरूप हैं। यदि कोई कहें कि ज्ञान तो एक क्षणमें उत्पन्न होता है, एक ही क्षण रहता है और एक ही क्षणमें नाशको प्राप्त हो जाता है तो कहते हैं कि यह ज्ञान सदा रहता है। जो कोई कहे कि नीलज्ञान उत्पन्न हुआ पीतज्ञान गया, ऐसे ज्ञानका भी उत्पत्ति और नाश सुना है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि नील पीत इंद्रियोंकी वृत्ति उत्पन्न होती है, और वृत्तियोंका ही नाश होता है, ज्ञान तो एकरूप है, यह प्राणके दृष्टान्त कहे गये ॥३८॥ इंद्रियादि केवल हरिको ही दिखाती हैं, जैसे—पशु, पक्षी, स्वेदज, वृक्षादिकोंमें सर्वत्र जहां-जहां जीव जाता है, उसी-उसी स्थानमें संगप्राण भी जाते हैं परंतु प्राण निर्विकार है, जैसे आत्मा निर्विकार रहता है। यहां शंका है कि मनुष्यादिक देहोंमें आत्मा सब विकारसा क्यों दीखता है? तो कहते हैं कि जाग्रत्‌में इंद्रियगणके दोषसे, स्वप्नमें अहंकारसे और सुषुप्ति तो इंद्रियगण और अहंकारके लयसे विकारसा आत्मा निर्विकार है, इससे

अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावति तत्र तत्र ॥ सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥ यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्याचेतोमलानि विधमेद् गुणकर्मजानि ॥ तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद् यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥४०॥ राजोवाच ॥ कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ॥ विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥ ४१ ॥

विकारके हेतु लिंगशरीरकी उपाधिका अभाव है। यहां शंका है कि सब नष्ट होनेसे आत्मा रहता है यह कैसे जानें! तो इसका उत्तर यह है कि जब जागता है तो जो सुषुप्तिमें आत्माको सुख अनुभव हुआ है उसका स्मरण होता है—'आज मैं सुखसे सोया' यह ज्ञान अनुभवके स्मरण विना नहीं होता इसलिये सुषुप्तिमें आत्माका अनुभव निर्विकार होता है, पर विषयका सम्बन्ध नहीं इसलिये वह अनुभव प्रकट नहीं होता है ॥ ३९ ॥ फिर पूछते हैं कि इसका सुषुप्तिमें निर्विकार अनुभव हो तो संसार फिर क्यों होता है? यदि कहो इसकी अविद्या नहीं गयी उसकी वासनासे संसार होता है तो अविद्या कैसे जाय? इसके उत्तरमें कहते हैं कि जब गृह, पुत्र, धनादिकी वासना छोड़कर केवल भगवान् वासुदेवकी इच्छा करे तो भक्ति बढ़ती है, उस भक्तिसे चित्तके गुण कर्मसे उत्पन्न हुए पाप दूर हो जाते हैं, तब चित्त शुद्ध होकर प्रकट आत्मतत्त्वको प्राप्त करता है, जैसे निर्मल दृष्टि होनेसे सूर्यमंडलका प्रकाश दीखता है ॥ ४० ॥ राजा जनक बोले कि भक्ति तो

कर्मयोगके अधीन है इसलिये प्रथम मुझसे कर्मयोग कहो, जिस कर्मके करनेसे शुद्ध होकर फिर कर्मका वेग दूर करके पुरुष निष्कर्म श्रेष्ठ ज्ञान पाता है, अर्थात् जिससे सब कर्म निवृत्त हों सो कर्मयोग कहो ॥ ४१ ॥ हे महाराज ! यही प्रश्न मैंने पिताके आगे जब सनकादिक आये थे तब किया था, उन्होंने भी मुझे कुछ उत्तर नहीं दिया, इसका क्या कारण ? सो मुझसे कहो ॥४२॥ आविर्होत्र बोले कि हे राजन् ! वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है वह कम है, जिसका निषेध है वह अकर्म है और जिसके करनेकी आज्ञा है वह न करे तो विकर्म कहा जाता है, यह तीनों भेद वेदको ही गम्य हैं, इसका निर्णय मनुष्योंको अशक्य है, इससे वेद साक्षात् ईश्वररूप हैं; पुरुषके वचनमें वक्ताका अर्थ जानना अति कठिन है, यहां पंडित भी मोहको प्राप्त होते हैं, सो तुम तो बालक थे इसलिये तुमसे नहीं कहा ॥ ४३ ॥ वेदका तात्पर्य क्यों नहीं जाना जाता सो कहते हैंः—यह वेद सब परोक्षवाद हैं, अर्थात् जो अर्थ और भांति होता हो उसके छिपानेको और

एवं प्रश्नमृषीन् पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके ॥ नाब्रुवन् ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ४२ ॥ आविर्होत्र उवाच ॥
कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ॥ वेदस्य चेश्वरात्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादो वेदोऽयं
बालानामनुशासनम् ॥ कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥४४॥ नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः ॥
विकर्मणो ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५ ॥

भांति कहे, इसे परोक्षवाद कहते हैं, उसी प्रकार वेदमें कर्म छुटानेका कर्म कहा है, मूर्ख उसी कर्मको जानता है। यहां पूछते हैं कि कर्मका तो स्वर्गादिक फल सुना जाता है फिर कर्मको त्यागकर फल कैसे जाने ? इसका उत्तर कहते हैं कि यह जो कर्म कारण कहे हैं, सो मूर्खोंकी शिक्षाके लिये हैं; नहीं तो धर्ममें किसीकी भी प्रवृत्ति न हो, जैसे बालकोंको औषध खिलाना चाहे तो लड्डू दिखाइये और दीजिये, उस लड्डूके लोभसे वह बालक औषध पी लेगा। औषधका यह फल नहीं, कि लड्डू खा जाय, उसका तो यही फल है कि आरोग्य कर देगा, उसी प्रकार जीव सब विषयी हैं और लोभी हैं, उनको स्वर्गादिकका लोभ दिखाकर कर्ममें प्रवृत्त करते हैं, पीछे इससे भी निवृत्तिका फल उत्तम है, इस ज्ञानसे उनके कर्मोंको छुड़ाते हैं, यह वेदका तात्पर्य है ॥ ४४ ॥ जो कर्म त्यागना ही मुख्य है तो पहले ही कर्म त्याग कीजिये, तो कहते हैं कि स्वयं अज्ञ हो, अजितेन्द्रिय हो और वेदोक्त कर्म न करे तो कर्मके विना अधर्मसे मरकर फिर मृत्युको

ही प्राप्त होता है और सदा काल के ही सुखमें रहता है ॥४५॥ इसलिये वेदोक्त कर्म ही करे, निषिद्ध कर्म न करे और कर्मके फलकी इच्छा न रखे; जो कुछ कर्म करे, सो सब ईश्वर भगवान् वासुदेवमें ही समर्पण करे तो पुरुष मोक्षरूप सिद्धिको प्राप्त हो। यहां पूर्णपक्ष कहते हैं कि अहो! वेदविषे जो फल सुने जाते हैं, जैसे ओषधि पिलानेके लिये बालकोंको लड्डू देता है उसी प्रकार कर्म करनेसे फल अवश्य होगा? इसपर कहते हैं कि यह मत कहो, कर्मोंमें प्रीति उपजानेका फल सुनाना है जैसे औषध देनेके समय बालकोंको मीठी चीज दिखाते हैं अब वैदिककर्म कहकर आगमकी विधि कहते हैं ॥४६॥ जो कोई निर्विकार जीवके अहंकार की गांठ छुड़ाना चाहे तो वह आगम और वेदोक्तके प्रकारसे सबकी पूजा करे ॥४७॥ अब पूजाकी विधि कहते हैं:-जब इस पुरुष पर ईश्वर अनुग्रह करते हैं तो सद्गुरु मिलते हैं, फिर उन, गुरुओंसे

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ॥ नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥ य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ॥ विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन सन्दर्शितागमः ॥ महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याऽभिमतयाऽऽत्मनः ॥ ४८ ॥ शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ॥ पिण्डं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥ ४९ ॥ अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ॥ द्रव्यक्षित्यात्मलिङ्गानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ॥ हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ॥५१॥ साङ्गोपाङ्गां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥५२॥

पूजाकी विधि जाने, तब आपको जैसी मूर्ति रुचे उसी प्रकार बनाकर भगवान् वासुदेवकी पूजा करे ॥४८॥ सो विधि कहते हैं कि पहले तो स्नानादिक करके पवित्र हो और फिर उस मूर्तिके सम्मुख बैठ प्राणायाम और भूतशुद्धि कर देहको शुद्ध करे, इसके उपरांत उत्तम न्यासोंको कर अपनी रक्षा करके भगवान हरिकी पूजा करे ॥४९॥ पुष्पादिक द्रव्यके जन्तु आदि शोधन कर भूमिका संमार्जन और मन को सावधान कर मूर्तिको स्नानादिक कराकर आसनका प्रोक्षण कर प्रतिमादिक विषे अथवा हृदयमें यथाप्राप्त उपचारोंसे पूजा करे ॥ ५० ॥ पाद्य अर्घ्य इत्यादि सब विधिपूर्वक देनेके उपरांत पहले अपने हृदयमें पूजित भगवान् वासुदेवको संनिधापन मुद्रासे दृढ़ धर सावधान होकर ध्यान करे, इसके पीछे हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, मन्त्र और मूलमन्त्रसे पूजा करे ॥ ५१ ॥ इसके उपरांत हृदयादिक अंग

उपांगन्यास, सुदर्शन आदि पार्षदपरिवार, देवता सहित उस मूर्तिको पाद्य , अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण उपचार कर ॥५२॥ गन्ध, पुष्प, अक्षत, माला, धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजा करे, फिर स्तोत्रोंसे स्तुति कर नमस्कार करे और अक्षतरहित उस मूर्तिको तिलक करके पूजे, क्योंकि अक्षतसे भगवान् हरिकी और केतकीसे महादेवजीकी पूजा नहीं करनी चाहिये ॥५३॥ और फिर मूर्तिरूप भगवान् वासुदेवका ध्यान करके पूजा करे; इसके उपरांत उस निर्माल्यको मस्तकपर चढ़ा देवताका स्वरूप हृदयमें धारण कर पूजी हुई मूर्तिका विसर्जन करके अपने स्थानमें रखे ॥५४॥ इस प्रकार अग्नि, सूर्य, जल आदिमें और अतिथिमें, हृदयमें आत्मारूप ईश्वर भगवान् वासुदेवकी जो पुरुष पूजा

गन्धमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ॥ साङ्गं संपूज्य विधिवत् स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥ आत्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्तिं सम्पूजयेद्धरेः ॥ शेषामाधाय शिरसि स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥ एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ॥ यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते च सः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे वसुदेवनारदसंवादे जायन्तेयोपाख्याने विदेहप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ॥ चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

करे वह थोड़ेही कालमें संसारी बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाता है, यह आगमकी विधिवर्णन की ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां वसुदेवनारद संवादे जायन्तेयोपाख्याने विदेहप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ दोहा–इस चौथे अध्यायमें द्रुमिल नाम योगीश । लीला हरि अवतारकी, कहत चरन धर शीश ॥ राजा जनक बोले कि हे भगवन् ! आपने प्रथम कहाकि भगवान् हरिकी मूर्तिको जैसे मन माने वैसा बनाकर पूजा और स्तुति करे, सो हमको न तो मूर्तिका ज्ञान है, न गुण कर्मका ज्ञान है कि स्तुति करें इसलिये तुम उनके अवतार और कर्म कहो । भगवान् वासुदेवने जो जो जन्म लिये हैं और जो जो कर्म किये हैं और अब करते हैं और जो आगेको

करेंगे सो सब वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ राजा जनकने जब इस प्रकार पूछा तो द्रुमिल योगीश्वर बोले कि जो पुरुष अनन्तरूप भगवान् वासुदेवके चरित्रको गिनना चाहे वह अज्ञानी है, क्योंकि पृथ्वीके परमाणुओंको तो बहुत कालतक परिश्रम करके कोई बुद्धिमान् गिन भी सकता है, परन्तु अनन्तशक्तिके आश्रय भगवान् वासुदेवके गुणोंको कोई नहीं गिन सकता ॥ २ ॥ पर तो भी संक्षेपसे उनके कुछेक गुणका वर्णन करता हूँ। जब स्वयं भगवान् वासुदेव पंचमहाभूत उत्पन्न कर ब्रह्माण्डरूप नगर बनाकर उसमें लीलापूर्वक प्रविष्ट हुये तो इनका आदिदेव

द्रुमिल उवाच ॥ यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ॥ रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥ भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ॥ स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥ यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ॥ ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ॥ रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥

नारायण पुरुष नाम हुआ ॥३॥ यह तीन लोककी स्थापना जिस पुरुषको देता है और जिसकी इंद्रियोंसे सब देहधारियोंकी इंद्रियें होती हैं जिसके स्वरूपसे भूत सत्त्वगुणसे ज्ञात होता है, प्राणसे देहशक्ति और इंद्रियशक्ति तथा चेष्टा इत्यादि ये सब होती हैं, इससे ज्ञात होता है कि विश्वका कर्ता कोई है ॥४॥ प्रथम इस विश्वके उत्पन्न करनेको रजोगुणसे ब्रह्मा, सत्त्वगुणसे यज्ञके फलदाता ब्राह्मण, धर्मकी रक्षा करनेवाले विष्णु और तमोगुणसे संहार करनेको रुद्र हुए। इस प्रकार प्रजाओंके बीच जिससे निरंतर जन्म, पालन और नाश होता है वही

शंका—राजा जनक बड़े ब्रह्मके जाननेवाले थे, ऐसे ब्रह्मज्ञानी होकर ब्रह्मकी कथाको त्यागकर मुनिराजसे सगुण अवतारकी कथा क्यों बूझी ? क्यों ब्रह्मज्ञानी महात्मा पुरुष सगुणमें प्रीति नहीं करते।

उत्तर—तीन लोकमें जो चर अचर जीव हैं, उन सबका बीज विना जन्म नहीं हो सकता, किसी का जन्म आजतक बीज विना न सुना तैसे ही ब्रह्मज्ञानका बीज सगुण ब्रह्मका कीर्त्तन है, सगुणके कीर्त्तनसे ब्रह्मज्ञान होता है, इसलिये राजा जनकने ब्रह्मज्ञानी होकर सगुण भगवान्के अवतारकी कथा बूझी।

आदिपुरुष हैं ॥ ५ ॥ वही आदिदेव दक्षकी बेटी मूर्ति नाम धर्मकी स्त्रीके विषे ऋषियोंमें श्रेष्ठ अतिशांतस्वरूप नरनारायणका अवतार हुआ और जिससे कर्म नष्ट न हो, ऐसा निष्कर्म ज्ञान बताया और आपने भी उसीके अनुसार कर्म किया, ऐसे श्रेष्ठ ऋषियोंसे सेवित जिनके चरण, वे भगवान् नरनारायणरूपसे बद्रिकाश्रममें आजतक विराजमान हैं ॥६॥ हे महाराज ! इस समय एक भगवान् वासुदेवके अवतारोंका बतानेवाला, परमशक्ति दिखानेवाला इतिहास कहते हैं, सो आप मन लगाकर श्रवण करें—एक समय नारायणको परमशांत तप करते देख देवराज इंद्रने विचार किया कि यह तप करके मेरा स्थान लेना चाहते हैं, यह विचार तपस्यामें विघ्न करनेके लिये परिवारसहित कामको भेजा और भगवान् वासुदेवकी महिमाको नहीं जाननेके कारण कामदेव उनके स्थानमें अप्सराओंके गण वसंत और

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नरऋषिप्रवरः प्रशान्तः ॥ नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥ इन्द्रो विशङ्क्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुङ्क्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ॥ गत्वाप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥ विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् ॥ मा भैष्ट भो मदनमारुतदेववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ॥ नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥

मन्दवायु सहित जाकर स्त्रियोंके कटाक्षरूप बाणोंसे उनको मारने लगा ॥ ७ ॥ तब गर्वरहित नरनारायण इन्द्रका किया हुआ अपराध जान शापके भयसे कांपते हुए कामादिक देवताओंसे हँसकर बोले कि हे कामदेव ! हे देवांगनाओ ! भय मत करो हमारा आतिथ्य ग्रहण करके हमारे आश्रमको सुशोभित करो, क्योंकि जिस स्थानपर अतिथिका आदर सम्मान नहीं होता वह स्थान शून्य कहलाता है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! अभयके देनेवाले श्रीभगवान् हरिके इस प्रकार कहनेपर लज्जासहित और नम्रशिर हो, कामादिक देवता दयासंयुक्त श्रीनारायणसे बोले कि हे प्रभो ! तुम्हारा इस प्रकार कहना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं क्योंकि तुम मायासे परे हो, निर्विकार हो,

आत्माराम और धीर मुनियोंके समूह तुम्हारे चरणकमलको नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ हमारे अपराधका आचरण भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि हमारा स्वभाव ही ऐसा है । तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुष देवताओंके स्थानको उल्लंघन कर आपके जो परमधाम वैकुण्ठमें जाते हैं, उनको इंद्रादिक देवता बहुत विघ्न करते हैं, तुम्हारी सेवा नहीं करनेवाले दूसरे, पुरुष जो यज्ञमें देवताओंको उनके भागरूप कर देते हैं उनको विघ्न नहीं करते, परंतु जिसके तुम रक्षक हो वह तुम्हारा भक्त निश्चय विघ्नोंके माथेपर चरण धरकर तुम्हें प्राप्त हो जाता है॥१०॥ अभक्तोंको काम क्रोधादिक सब वशमें कर लेते हैं, उनमें जो हमारे वश होते हैं सो भोग भी करते हैं और जो क्रोधके वश हैं, वे तो अतिमूर्ख हैं । क्षुधा, तृष्णा, शर्दी, गर्मी, वर्षा, पवन, जीभका रस और शिश्नका रस ये रूप हैं, इनको लांघकर जो पुरुष निष्फल

त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते ॥ नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥ क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्वयशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ॥ क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥ इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः ॥ दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिवरूपिणीः ॥ गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ॥ आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥

क्रोधके वशीभूत हो जाते हैं वे अपार समुद्रके पार उतरकर गायोंके खुरोंके गढ़ोंमें डूब जाते हैं, ये लोग शाप आदि देकर अतिकठिन तपस्याको वृथा छोड़ देते हैं, न तो मोक्षके अर्थ न भोगके अर्थ॥११॥इस प्रकार भगवान् वासुदेवने कामादिककी स्तुति सुन अपने योगबलसे उत्पन्न अद्भुत रूपवाली सेवा करती आभूषणोंसहित सहस्रों स्त्रियां कामादिकको दिखायी॥१२॥वह देवताओंके सेवक मूर्तिमान् लक्ष्मीके समान उन स्त्रियोंको देख उनकी गन्धसे मोहित हो उनके रूप गुण उदारतासे इनकी शोभा दर्प सब जाता रहा॥१३॥तब देवोंके देव प्रभु भगवान् वासुदेव हँसकर नम्र हुए कामादिक देवताओंसे बोले कि इन स्त्रियोंमेंसे किसीको तुम वरो, यह सुनकर देवताओंने कहा कि हम तुच्छ हैं कहां ऐसी स्त्रियें, कहां हम ? तब नारायण बोले कि तुम्हारे समान जो हो उसे ग्रहण करो । तब कामादिक देवताओंने फिर कहा

भा० ए० ॥१४॥ कि हे महाराज ! इनमें हमारे समान एक भी नहीं है । भगवान्‌ने कहा कि एकतो तुम लो, तुम्हारे स्वर्गका भूषण होगी ॥१४॥ तब कामादिक देवता भगवान् नर-नारायणकी आज्ञा मान अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको ले प्रभुको नमस्कार कर स्वर्ग को चले गये ॥१५॥ स्वर्ग में जाकर देवराज इंद्रको प्रणाम कर सभामें सब देवताओंके सुनते नारायणका बल कहा, तब इंद्र अति आश्चर्य मान अत्यन्त भयको प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ इन्हीं प्रभुने हंसावतार लेकर संपूर्ण आत्मयोग कहा, फिर एक दत्तात्रेय, एक सनकादिक, एक भगवान् ऋषभदेव, हमारे पितामह सब विष्णुरूप ही अपने अंशके जगत्‌का कल्याण करनेको प्रकट हुए थे और इन्हीं विष्णुने एक समय हयग्रीव अवतार ले मधुदैत्यको मार वेदोंका उद्धार किया था ॥ १७ ॥ एक समय प्रलयके समुद्रमें मत्स्यरूप धारण कर मनु, पृथ्वी और ओषधियोंकी रक्षा

ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवन्दिनः ॥ उर्वशीमप्सरः श्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥ इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥ १६ ॥ हंसस्वरूप्यवदद‍च्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान्पिता नः ॥ विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥ गुप्तोऽप्ययं मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम् ॥ कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताच्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ॥ देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥

की थी, वाराह अवतार ले हिरण्याक्ष को मार जलसे पृथ्वीका उद्धार किया, कूर्मावतार ले अमृत मथनेको अपनी पीठपर मन्दराचल पर्वत धारण किया, इसके उपरांत दुःखित होकर शरण आये हुए गजेन्द्रको ग्राहसे छुड़ाया ॥ १८ ॥ एक समय वालखिल्य ऋषि कश्यपजीके लिये काष्ठ लेने गये, वहां गायके खुरके गढ़ेमें पानी भरा था, उसमें डूबने लगे तब इन्होंने बहुत स्तुति की, वहां से आत्मविद्यामें तत्पर ऋषियोंको छुड़ाया और वृत्रासुरके मारनेसे जो ब्रह्महत्या हुई थी उससे देवराज इन्द्रको छुड़ाया । अनाथ देवताओंकी स्त्रियें असुरोंके घरमें रुक रही थीं, उन सबोंको अनेक अवतार लेकर छुड़ाया । फिर नृसिंहरूप धारण कर भक्तोंको अभयदान देनेके लिये

हिरण्यकशिपुका वध किया ॥ १९ ॥ मन्वन्तरोंमें देवता और दैत्योंके संग्राममें देवताओंके लिये अपनी कलासे दैत्यपतियोंका संहार किया, सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाकी और वामनरूप धरकर राजा बलिने भीखके मिस इस पृथ्वीको लेकर देवताओंको दे दी ॥ २० ॥ परशुराम अवतारले इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियरहित किया, हैहयकुलके नाशक भृगुवंशमें अग्निरूप प्रकट हुए। उन्होंने ही फिर रामावतार लेकर समुद्र बांधा और लङ्कापुरीमें स्थित परिवार समेत राक्षसराज रावणका वध किया। जिनकी कीर्ति संसारके पापको नाश करती है, वे ही रघुनाथजी अब विद्यमान हैं ॥ २१ ॥ भूमिका भार उतारनेके लिये अजन्मा आप यादवकुलमें जन्म ले जो

देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे हत्वान्तरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ॥ भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याञ्चाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥ निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः ॥ सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन्सलङ्कं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥ भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ॥ वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हाञ्छूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥ एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः ॥ भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे वसुदेवनारदसंवादे जायन्तेयोपाख्याने विदेहप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ॥ तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥

देवताओंसे भी न किये जायँ ऐसे काम करेंगे, पीछे जो यज्ञादिक करनेके योग्य दैत्योंको बौद्धरूप धर मोहित करेंगे, इसके उपरान्त कलियुगके अन्तमें कल्कि अवतार लेकर शूद्रजातिके राजाओंको मारेंगे ॥ २२ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार महाभुज जगत्पति भगवान् वासुदेवके जन्म और कर्म अनन्त हैं, मैंने तो संक्षेपसे वर्णन किये ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां वसुदेवनारदसंवादे जायन्तेयोपाख्याने विदेहप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा–पञ्चम हरिकी भक्ति विन, नरकी गति है कौन। सो सब वर्णन करत हौं, पूजन सेवन जौन ॥ राजा जनक बोले कि हे ब्रह्मन् ! जिनकी कामना नहीं छूटी वह पुरुष बहुधा भगवान् वासुदेवका

भजन नहीं करते, उनकी क्या गति होगी ? कृपापूर्वक आप हमसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ तब आठवें चमस ऋषिने उत्तर दिया कि हे राजन् ! पहले परमपुरुषके मुखद्वारा सत्त्वगुणसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए, भुजाओंसे सत्त्व–रजसे क्षत्रिय हुए, उरूद्वारा रजोगुण तमोगुणसे वैश्य हुए, चरणद्वारा केवल तमोगुणसे शूद्र हुए और आश्रम सहित भिन्न भिन्न वर्ण उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ अपना जन्मदाता पुरुष ईश्वरका इन वर्णोंके मध्य जो भजन नहीं करता और जान बूझकर निरादर करता है वह पुरुष वर्ण-आश्रमसे भ्रष्ट होकर अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ कोई एक पुरुष इस प्रकारके हैं कि जिनको हरिकथा सुनना बहुत कठिन है, किसी किसीको हरिका कीर्तन बहुत कठिन है । इसी प्रकार कितने एक द्विजलोग और स्त्रियें तथा शूद्रादिक जो भगवान् वासुदेवको न जाननेसे नहीं भजते, उनके ऊपर आप सरीखे ही कृपा

चमस उवाच ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ॥ चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥ य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभावमीश्वरम् ॥ न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ ३ ॥ दूरेहरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥ विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम् ॥ श्रौतेन जन्मनाऽथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥ कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः ॥ वदन्ति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः ॥ दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥

करते हैं ॥४॥ यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यज्ञोपवीत रूप दूसरे जन्मसे और वेदाध्ययनसे हरिभजनके उत्तम अधिकारी हैं, परंतु तो भी वेदकी फल स्तुतिके वचनोंमें मोहित होकर जाननेपर भी भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते और कर्मोंमें आसक्त हो रहे हैं उन अर्द्ध-दग्ध लोगोंको सुधारनेका कोई उपाय न होनेसे आप सरीखे पुरुषोंको उनकी अपेक्षा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ कर्म करनेमें अकुशल मूर्ख अपनेको पंडित मानने वाला अनम्र ऐसी मनोहर बातें कहते हैं कि जिनसें मोह उत्पन्न हो । वह यह है कि यज्ञादिकोंका फल अक्षय होगा न स्वर्गमें शीत है, न उष्ण है, न मलिनता है, न पराजय है और वचनसे उत्कंठित होकर कहते हैं कि हम अप्सराओंसे विहार करेंगे, यह कहते हुए कर्ममें बँधे रहते हैं ॥ ६ ॥ उनको उस फलके भ्रमसे कर्ममें ही आदर होता है, उससे काम क्रोध मदादिक वृद्धिको प्राप्त होते हैं

और यह भी कहा है कि रजोगुणसे राग द्वेष उत्पन्न होते हैं, उनसे अभिचारके कर्मोंपर मन होता है, तब वे घोरसङ्कल्पी महातृष्णावाले सर्पके समान क्रोधी महाभिमानी दुष्ट स्वभाव अधजले लोग नारायणके भक्तोंको हँसते हैं ॥७॥ जो सदा स्त्रियोंकी ही सेवा करते हैं वृद्धोंकी सेवा नहीं करते और केवल मैथुनमें ही सुख माननेवाले अतिथिकी पूजारहित घरोंमें रहकर मनके मनोरथवाले लोग कहा करते हैं कि आज मैंने यह पाया, यह मनोरथ फिर प्राप्त करूँगा और जो कदाचित् किसी देवता की पूजा करें तो अपने स्वार्थके लिये पशुकी हिंसा करते हैं न कुछ विधि, न दक्षिणा, न अन्नदान करें ऐसे मूर्ख हैं जो हिंसादोषको नहीं जानते ॥ ८ ॥ धन, ऐश्वर्य, कुल, विद्या, दान, रूप, बल और कर्मोंसे उनको गर्व उत्पन्न होता है, इससे मन्दबुद्धि दुष्ट ईश्वर सहित साधु परमेश्वरके भक्तोंका निरादर करते हैं ॥९॥ वे दुष्ट पुरुष वेदके

वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यसुखेषु चाशिषः ॥ यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥ ८ ॥ श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ॥ जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान्खलाः ॥ ९ ॥ सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ॥ वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा मनोरथानां प्रवदन्ति वार्तया ॥ १० ॥ लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्नहि तत्र चोदना ॥ व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥

अर्थको नहीं जानते। वेद कहते हैं कि यद्यपि सब देहधारियों में यह आत्मा सदा आकाशकी भांति व्यापरहा है और अपने प्रिय ईश्वरको फिर वेद प्रकट बताते हैं परंतु तो भी यह मूर्ख नहीं जानते, अपने मनोरथोंकी ही बातोंमें वाद विवाद करते हैं ॥ १० ॥ यहां पूर्वपक्ष कहते हैं कि स्त्रीसंभोग तो कहा है कि रजस्वला होने पर मैथुन करे, देवताके बचे हुए मांसादिक भोजन करे फिर तुम क्यों निन्दा करते हो ! इसके उत्तरमें कहते हैं कि लोकमें स्त्रीप्रसङ्ग, मांसभक्षण और मदिराका सेवन नित्य है और विषयासक्तोंको अनुराग स्वभावसे ही प्राप्त है, फिर कुछ विधि नहीं, बस एक यही चाहिये और जहां विधि कही है वहां ऋतुकालके दिन स्त्रीसङ्ग करे, यज्ञमें भी मांस मद्य ग्रहण करे, और दिन न करे इस नियमसे करे, परन्तु दिन का निषेध किया है, ऐसे विषयी मूर्ख लोग नहीं समझते । जो कामी अरुचिसे अथवा द्वेषसे स्त्रीप्रसं-

गादिक करते हैं उनका यह नियम है और जिनके यह कामना नहीं उनका नियम नहीं। वेदका अभिप्राय तो सब दिन छुड़ानेका ही है, उसे मूर्ख नहीं समझते * ॥ ११ ॥ धर्म करना ही धनका फल है क्योंकि धर्मानुष्ठान करनेसे परोक्ष (नहीं दीखनेवाला) ज्ञान और तत्काल शांति दायक अपरोक्षज्ञान दोनों प्राप्त हो जाते हैं , ऐसे सुखदायक धनको यह पुरुष देहादिकके लिये घरोंमें वृथा खो देते हैं, न तो इसका विचार करते हैं और न शिरपर घूमती हुई मृत्युको देखते हैं ॥१२॥ और वेदका तात्पर्य नहीं जानते, कि ऋतुके दिन भी

धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति ॥ गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम् ॥ १२ ॥ यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ॥ एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ १३ ॥ ये त्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः ॥ पशून्द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान् ॥ १४ ॥

स्त्री प्रसंग गर्भाधानको ही कहा है, कुछ यथेष्ट काम भोगको नहीं कहा और सुरापान भी नहीं कहा है, आघ्राण कहा है, पशु की हिंसा देवताके लिये करे, अपने भोजनके लिये नहीं कहा। ऐसे शुद्ध धर्मको विषयकी आसक्तिसे न करे, इस बातको यह मूर्ख नहीं जानते ॥ ॥१३॥ जो इस धर्मको नहीं जानते वे असाधु एवं अनम्र हैं, परंतु अपनेको साधु करके मान लेते हैं। जो विश्वाससे पशुओंका वध करते हैं और कहते हैं कि इससे मनोरथ सिद्ध होगा, उनके लिये ऐसा कहा है कि इस जन्ममें उसका मांस यह खाते हैं, अगले जन्ममें वह

* दृष्टान्त–वास्तवमें उसका तात्पर्य यह है, जैसे किसी का लड़का खेलमें अत्यन्त मतवाला हो और वेश्याके घर दिनरात पड़ा रहता हो और पढ़नेमें उसकी रुचि न हो तो उसके पिताको कहना चाहिये कि तू प्रातःकाल उठकर तो वेश्याके घर जाया कर, फिर एक घंटाभर खेला कर और जो तू प्रातःकाल वेश्याके घर नहीं गया और एक घंटाभर न खेला तो मैं तुझको बहुत मारूंगा, क्योंकि इन दोनों कामोंसे दो घंटेमें निश्चिन्त होकर फिर अपना चित कहीं इधर उधर मत भटकाना और, जो फिर भटकावेगा तो पिटेगा, यह वाक्य निवृत्तिका निरूपण करता है इसी प्रकार वेद भी निवृत्ति निरूपण करता है प्रवृत्तिका निरूपण नहीं करता। जो मनुष्य समीप आनेपर भी ऋतुस्नान भार्यासे प्रसङ्ग न करे, तो गर्भहत्या जो महापाप होता है उस मनुष्यको लगता है। अनेक श्रुतियोंके वचन तो यह है कि मनमें कामना होनेपर भी स्त्रीके विषे अरुचि अथवा द्वेषादिक होनेसे उसके साथ प्रसङ्ग न करे, ऐसे जानना ।

इनका मांस भक्षण करेगा, अतः इसका नाम मांस है ॥१४॥ मृतक समान अपने और पुत्रादिकोंमें स्नेहसे बद्ध हो पराये भी देहोंमें विद्यमान अपने आत्मा ईश्वर हरिसे जो पुरुष द्वेष करते हैं, वे मरनेके पीछे नरकमें पड़ते हैं ॥१५॥ जो अज्ञ हैं, वे ज्ञानी पुरुषोंकी कृपासे संसारसागरको तर जाते हैं और जो मध्यवर्ती हैं वे नरकमें गिरते हैं। अधिक क्या कहें, जो जो तत्त्वज्ञानको प्राप्त नहीं हुए, मूढ़ता को ही प्राप्त हुए और अपने स्वार्थके ही लिये धर्म अर्थ कामादिक करते हैं वे पुरुष वारम्वार जन्म मरणको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष आत्मघाती व अशांत हैं,

द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ॥ मृतके सानुबन्धेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ॥ १५ ॥ ये कैवल्य-मसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ॥ त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥ १६ ॥ एत आत्महनोऽशान्ता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ सीदन्त्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥ हित्वाऽत्यायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ॥ तमो विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥१८॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशो नृभिः ॥ नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥ १९ ॥

अज्ञानको ही ज्ञान मानते हैं और कृतकृत्य नहीं हुए, वे कालसे नष्ट मनोरथ हो दुःख ही पाते हैं ॥१७॥ और जो पुरुष भगवान् वासुदेवसे विमुख हैं, वे अतिश्रमसे गृह, पुत्र, मित्र, धन सम्पूर्ण वस्तुको प्राप्त होकर इच्छा न रहनेपर भी नीच योनि अन्धतममें पड़ते हैं ॥ १८ ॥ राजा जनक बोले कि हे ब्रह्मन्! आपने जो सब त्यागकर केवल भगवान् नारायणकी भक्ति करनेको कहा सो यह भगवान् किस समयमें,

---

१ अत्र मनुः–" मांसभक्षयिता मुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।"

* शंका–राजा जनकने मुनियोंसे भगवान्का भजन और सेवन आदि सब कर्म युग युगके अलग–अलग पूछे कि, सतयुगमें किस प्रकारका भजन सेवन होता है और त्रेतामें, द्वापरमें और कलियुगमें किस प्रकारका भजन और सेवन होना चाहिये ? और मुनि भी चारों युगोंमें भिन्न–भिन्न पूजन भजन आदि करते है, यह बड़ा अनुचित कर्म है, क्योंकिशास्त्रमें भगवान् सर्वव्यापी निरञ्जन लिखे हैं, भिन्न–भिन्न कर्म तो जीवोंके लिये होते हे ईश्वरके नहीं होते यह बड़ी शंका है।

उत्तर—भगवान् तो भक्तवत्सल और दीनदयालु हैं, त्रिलोकीमें जो चराचर प्राणी हैं, उन सब प्राणियोंमें भगवान किसी युगमें भी भिन्न भाव नहीं रखते, सबको एक समान मानते हैं ऐसे कृपासिन्धु हैं परंतु मनुष्योंमें अनेक प्रकारके जीव हैं, जितने मनुष्योंके देह हैं उतने ही जीव हैं। इसलिये सब जीवोंमें भगवान्की भक्ति अलग होती है, सब युगोंमें कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है, कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है और भगवान्के नाम और-

कैसे वर्णके, केसी आकृतिके, कौनसे नामसे और किस विधिसे लोकोंमें पूजे जाते हैं ? सो मुझे भलीभांति समझाकर आप कहिये ॥१९॥
तब करभाजन ऋषीश्वर नौंवे प्रश्न का उत्तर देते हैं कि हे राजन् ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चार युगोंमें नाना वर्ण, नाम,
अकारयुक्त भगवान् केशव अनेक विधिसे पूजे जाते हैं ॥२०॥ सत्ययुगमें शुक्लवर्ण, चतुर्भुज, जटा धारण किये, वल्कल वस्त्र पहने, काले
मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्ष, दण्ड, कमण्डलु धरे ब्रह्मचारी के रूपसे दर्शन देते हैं ॥२१॥ उस युगमें मनुष्य सब शांत, निर्वैर, सुहृदय,
समदृष्टि, शम, दम और ध्यानसे देवताको पूजते हैं ॥२२॥ उस कालमें इन नामोंसे भगवान् हरि गाये जाते हैंः-हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ धर्म,

करभाजन उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ॥ नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥
कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः ॥ कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दण्डकमण्डलू ॥२१॥ मनुष्यास्तु तदा शान्ताः
निर्वैराः सुहृदः समाः ॥ जयन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥ हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरो
मनुः ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ॥ हिरण्यकेशस्त्र-
य्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् ॥ यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवा-
दिनः ॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ॥ वृषाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥ द्वापरे भगवा-
ञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः ॥ श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥

योगेश्वर, अमल ईश्वर पुरुष अव्यक्त और परमात्मा ॥ २३ ॥ नेत्रोंमें आरक्त, चार भुजा, तीन मेखला धारण किये, सुवर्णके समान
केशवाले, वेदत्रयीमयमूर्ति और स्रुक् स्रुवा आदि चिन्होंको धारण करते हैं ॥२४॥ जो अतिधर्मात्मा वेदके ज्ञाता मनुष्य हैं, वे सर्व वेदरूप
भगवान् वासुदेवका तीनों वेदोंके कर्मसे त्रेतामें पूजन करते हैं ॥ २५ ॥ और विष्णु यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त,
उरुगाय यह नाम गाये जाते हैं॥२६॥ द्वापरमें भगवान् वासुदेव श्यामसूर्ति, पीतांबर धारे; श्रीवत्सादि चिह्न और कौस्तुभादिक लक्षण धारण

-चरित्रोंका भी अन्त नहीं, जिस नाम पर जिस प्राणीकी भक्ति हुई उसी नामको जपने लगा, युग युगमें भगवान् उस अपने नाम जपनेवाले प्राणीकी रक्षा कैसे करते हें ? जैसे गाय अपने वत्सकी रक्षा करती है और राजा जनक भी भगवान्की भक्तिकी लीला करके उन्मत्त हो रहे थे, भगवान्की भक्तिकी वृद्धि होनेके लिये युग युगमें भिन्न-भिन्न भगवान्के सेवक पूछने लगे, भिन्नभाव मानकर नहीं पूछा।

करते हैं ॥२७॥ हे राजन् ! जो मनुष्य ईश्वरके जाननेकी इच्छा रखते हैं,वे मनुष्य उस समय महाराजाओंके लक्षणसंयुक्त उन महापुरुषोंकी वेदमन्त्र और आगमके मन्त्रोंसे पूजा करते हैं ॥२८॥ वासुदेव, संकर्षण; प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप भगवान्को नमस्कार करते हैं ॥२९॥ नारायणऋषि पुरुष, महात्मा, विश्वेश्वर, विश्वरूप, सर्वभूतोंके आत्माको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार द्वापरमें भगवान् वासुदेवकी स्तुति करते हैं, अब नाना आगम मार्गोंसे कलियुगमें भी जैसे पूजे जाते हैं सो सुनो ॥ ३१ ॥ कलियुगमें कृष्णवर्ण, कांतिसे अतिनिर्मल और जैसे नीलमणि होती है इसी प्रकार अङ्ग, हृदयादिक उपांग कौस्तुभ तथा सुदर्शनादि अस्त्र, पार्षद सुनन्दनादिक नामका कथन और स्तुति आदिक प्रधान पूजासे अतिबुद्धिमान् मनुष्य भगवान् हरिकी पूजा करते हैं ॥३२॥ उसके उपरांत स्तुति करते

तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ॥ यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥२८॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥२९॥ नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इतिद्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ॥ नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥ कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ॥ यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ॥ भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥ मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वन्दे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३४ ॥

है कि हे प्राणियोंके रक्षक ! हे महापुरुष ! तुम्हारे चरणारविंदको नमस्कार है, जो चरणारविंद सदा ध्यान करनेके योग्य हैं, इंद्रिय कुटुम्बके संगसे अनिष्टको दूर करते हैं, मनके अभिलाष पूर्ण करते हैं, गंगादिक तीर्थके स्नानभूत हैं शिव ब्रह्मादिक से स्तुति किये हुए हैं और जो दीन होकर शरण जाता है उसके रक्षक हैं, सेवककी पीड़ाको दूर करते हैं और संसार सागरसे तरनेको नौकारूप हैं ॥३३॥ हे धर्मात्मन् ! हे श्री रामचन्द्रजी ! आपजो देवताओंसे भी न त्यागी जाय, देवता जिसकी अभिलाषामें ही रहते हैं, ऐसी राज्यलक्ष्मी पिताकी आज्ञासे छोड़कर धर्मकी रक्षा करनेके लिए वनको चले गये और प्रिय सीताके प्रेम तथा वचनसे मायामृगके पीछे दौड़े, उन भक्तिप्रिय आपके

भा० ए० ॥१८॥

चरणारविंदोंको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजा जनक ! इस प्रकार चारों ही युगमें नामरूप भेदसे उस-उस युगके मनुष्योंसे कल्याणके देनेवाले हरि भगवान् पूजे जाते हैं ॥३५॥और चारों युगोंमें कलियुग श्रेष्ठ है, क्योंकि जो श्रेष्ठ, गुणज्ञ सारग्राही हैं वे कलियुगकी स्तुति करते हैं और युगोंमें ध्यान, यज्ञ, पूजा आदिसे जो फलहोता है, सो सब स्वार्थ कलियुगमें भगवान्के भजन कीर्तन मात्रसे ही प्राप्त हो जाते हैं ॥३६॥ यह प्राणी देहके अभिमानसे संसारमें भ्रमण करते हैं, उनको संसारमें शांति और लाभ नहीं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! सत्ययुगादिकी प्रजा कलियुगमें जन्म पावे, ऐसी इच्छा करते हैं, इस कारण निश्चय ज्ञात होता है कि कलियुगमें सब जीव नारायणपरा-

एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः ॥ मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥ कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ॥ यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥३६॥ न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ॥ यतो विंदेत परमां शान्ति नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥ कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति सम्भवम् ॥ कलौ खलु भविष्यंति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ॥ ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥ ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ॥ प्रायो भक्ता भविष्यंति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥ देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन् ॥ सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तुम् ॥ ४१ ॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ॥ विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचिद्धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥

भा० टी० अ० ५

यण होंगे ॥३८॥ हे महाराज ! कहीं कहीं महाराष्ट्र देशमें भी भक्त होंगे और द्रविड़देशमें भी बहुत होंगे, जहां ताम्रपर्णी नदी कृतमाला और पयस्विनी है ॥ ३९ ॥ हे मनुजेश्वर ! कावेरी आदि परमपवित्र नदियें हैं, जो इनका जलपान करते हैं वे मनुष्य निर्मल चित्त होकर श्रीभगवान् वासुदेवके बहुधा भक्त होते हैं ॥४०॥ जो मनुष्य सर्वथा भेद छोड़कर केवल शरणदाता मुकुन्द भगवान्के शरण जाते हैं उनपर देवता, ऋषि, भूत, कुटुम्बी मनुष्य और पितरोंका ऋण नहीं रहता । हे राजन् ! जो सर्वत्र एक हरिको ही देखते हैं उनके लिये पञ्चयज्ञादि-कोंके करनेको भी प्रबल विधि नहीं है ॥ ४१ ॥ यहां यह सन्देह राजा जनकने किया कि हे महाराज ! जो कि सब कर्म छोड़कर

केवल भजन करे तो कर्म छोड़नेका पाप लगेगा? इसका समाधान यह है कि जो सब देवादिकोंको छोड़कर एक हरिके ही चरणारविन्दोंका भजन करते हैं उनको विकर्म सर्वथा नहीं होते, जो कदाचित् प्रमादसे हो तो उसके हृदयमें भगवान् हरि बैठ जाते हैं यह यमादिकोंके भी नियन्ता हैं और उनके भी सब कर्म नाश करते हैं, इससे भगवान्को भक्त ही प्यारे हैं ॥ ४२ ॥ इन नौ योगीश्वरोंका संवाद कहकर श्रीनारदजी बोले कि हे वसुदेव ! इस प्रकार भगवद्धर्म सुन सन्तुष्ट होकर राजा जनकने अपने गुरुओंसहित जयन्तीपुत्र योगीश्वरोंकी पूजा की ॥४३॥ इसके उपरान्त वह योगीश्वर सम्पूर्ण मुनि सिद्ध लोगोंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये और राजा जनक भी उन्हीं धर्मोंके करनेसे परमगतिको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि हे महाभाग वसुदेव ! तुम भी यह वैष्णवधर्म करो, इन धर्मोंमें श्रद्धा

नारद उवाच ॥ धर्मान्भागवतान्नित्यं श्रुत्वाऽथ मिथिलेश्वरः ॥ जायन्तेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत् ॥ ४३ ॥ ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥ ४४ ॥ त्वमप्येतान् महाभाग धर्मान्भागवताञ्छ्रुतान् ॥ आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसङ्गो यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥ युवयोः खलु दम्पत्योर्यशसा पूरितं जगत् ॥ पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥ ४६ ॥ दर्शनालिंगनालापैः शयनासनभोजनैः ॥ आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥४७॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौंड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ॥ ध्यायन्त आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

करनेसे निसङ्गपरम मङ्गलको प्राप्त होगे ॥४५॥ यह तो मैंने शास्त्रादिकोंकी रीतिसे सब तुमसे कहा है, परंतु हे वसुदेवजी ! तुम तो विना ही शास्त्रके कम कृतार्थ हो, तुम दोनों स्त्री पुरुष परमभागवत हो, तुम्हारे यशसे सब जगत् पूर्ण हो रहा है, क्योंकि तुम्हारे यहां स्वयं भगवान् ईश्वरने आकर अवतार लिया है ॥४६॥ तुमको और लोगोंके समान भ्रांति, सर्व कर्म समर्पण आदि वैष्णव धर्मोंसे चित्त शुद्ध करना नहीं पड़ेगा, क्योंकि दर्शन, आलिंगन, आलाप, शयन, आसन, भोजनसे, श्रीकृष्णमें पुत्रस्नेह करनेसे तुम्हारा भगवान् ईश्वर, आत्मा पवित्र हो गया है॥४७॥शिशुपाल, पौंड्रक तथा शाल्व आदि राजा शय्या, आसन आदिमें जिसका वैरसे भी ध्यानकर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी

गति चितवन आदिसे तदाकार हुई बुद्धिसे सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हो गये तो जो पुरुष स्नेहसे इनमें चित्त रखते हैं वे सारूप्य गतिको प्राप्त हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥४८॥ अहो ! जो पुत्रस्नेह मुक्तिका कारण है तो सब ही मुक्त होने चाहिये तो कहते हैं कि हे वसुदेवजी ! तुम इन पर पुत्रबुद्धि मत रखो, यह तो सर्वात्मा ईश्वर हैं, मायासे मनुष्याकार दिखायी देते हैं, अलौकिक ऐश्वर्य इनका गुप्त है, यह श्रीकृष्णचन्द्र अविनाशी परम पुरुष हैं ॥ ४९ ॥ यह पृथ्वीका भाररूप राजाओंके मारनेको और साधु पुरुषोंकी रक्षा करनेको तथा मोक्ष देनेको अवतार लेकर लोकोंमें यश विस्तार करते हैं ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि भरतवंशावतंस राजा परीक्षित् ! यह सुन महाभाग वसुदेव देवकीने अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हो अपने आपका मोह स्नेह छोड़ दिया ॥ ५१ ॥ यह इतिहास अति पुण्यजनक है, जो पुरुष

मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ॥ मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥ ४९ ॥ भूभारासुरराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम् ॥ अवतीर्णस्य निर्वृत्त्यै यशो लोके वितन्यते ॥५०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः ॥ देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥ स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥ इति श्रीभा० म० ए० पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ॥ भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ॥ ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥ गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥

नियमसे इसे मनमें धारण करते हैं, इसी देहमें मोह दूरकर ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां वसुदेवनारदसंवादे जायन्तेयगमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ दोहा–छठयेमें ब्रह्मादिकन, विनय करी कर जोरि। मोहिं सँग लीजै हे प्रभू, उद्धव कही निहोरि॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीसे नारदजी कहकर चले गये। इसके उपरांत द्वारकामें ब्रह्मा, सनकादिक और सम्पूर्ण देवता मिलकर आये ॥ १ ॥ सृष्टभूतोंके ईश्वर महादेव भूतगणोंसे मिलकर देवराज इन्द्र आये। आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, अंगिरा, एकादश रुद्र, विश्वेदेव, साध्य ॥ २ ॥ गंधर्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर,

किन्नर ये सब श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करने को द्वारकामें आये ॥३॥ जिस देहसे भगवान्ने मनुष्य लोकमें परम सुन्दर मूर्तीसे सब लोकोंके पाप दूर करनेवाले यज्ञका विस्तार किया, उसी मूर्तिके देखनेको आये ॥ ४ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान्, धनी पुरुषोंसे अति समृद्ध द्वारकापुरीमें आकर अतृप्तरूप देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ ५ ॥ इसके उपरांत नंदनवनके फूलोंसे भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रकी पूजा और विचित्र पद तथा अर्थयुक्त वाणियोंसे जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे ॥६॥ देवता बोले कि हे नाथ ! जो जीव कर्मरूप बड़े पापसे छूटनेको बुद्धि, प्राण, इंद्रिय, मन, वचनके भावयुक्त हो जिनका हृदयमें सदा चिंतन करते हैं, परंतु तो भी दर्शन नहीं पाते और हम तुम्हारा प्रगट दर्शन कर रहे हैं, अतः हमारा अहोभाग्य है ! इसलिये हम तुम्हारे चरणारविन्दको बार बार नमस्कार करते

द्वारकामुपसञ्जग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ॥ वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥४॥ तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ॥ व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो यदूत्तमम् ॥ गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ॥ यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयाऽऽत्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः ॥ नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥८॥ शुद्धिर्नृणां नतु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपः क्रियाभिः ॥ सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

हैं ॥ ७ ॥ यहां हरि यह एक तर्क करते हैं कि मोक्षके लिये मेरे चरणारविंदका चिन्तन क्यों करते हो ? क्योंकि मैं तो अनेक दुष्ट कर्म करता हूँ, मेरा तो कर्म छूटता ही नहीं तो तुम्हारे कर्म क्या छुड़ाऊँगा ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि हे अजित ! तुम ऐसी बात मत कहो, क्योंकि जो औरों पर मनसे भी न जाने जायँ ऐसे महत्त्वादि प्रपञ्चको त्रिगुण अपनी मायासे आपमें ही उत्पन्न करते हो, पालते हो, संहार करते हो, परंतु तो भी इन कर्मोंमें लिप्त नहीं होते । तुम मायाके गुणोंमें नियंतास्वरूपसे स्थित हो, परंतु रागादिरहित हो और नित्य अपने आनन्दस्वरूप विषे मग्न रहते हो ॥८॥ तो मुझको कर्म करनेका क्या प्रयोजन है ! मैं तो आत्माराम हूँ, तो कहते हैं कि

हे स्तुति योग्य ! हे परमश्रेष्ठ देव ! विषयी पुरुषोंके चित्त, विद्या, श्रवण-अध्ययन, दान, तप और कर्म करनेसे वैसे शुद्ध नहीं होते जैसे साधु पुरुषोंके चित्त तुम्हारा यश श्रवण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं ॥९॥ अब प्रार्थना करते हैं कि तुम्हारे चरणकमल हमारी अशुभ वासना जलानेके लिये अग्निरूप हो, जिन चरणोंका सम्पूर्ण मुनि अत्यन्त प्रेमपूर्वक कोमल-हृदयहो मोक्षके कारण ध्यान करते हैं, और भक्तजन सारूप्यमुक्तिकी इच्छासे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चर्तुव्यूहसे तीन कालमें पूजा करते हैं, और उनके बीचमें भी जो ज्ञानी हैं, वे इन्हींसे स्वर्गको उल्लंघन करके वैकुण्ठ जानेके लिये पूजते हैं ॥१०॥ हे ईश ! सदा तुमको यज्ञ करनेवाले कर्ममार्गमें हाथ जोड़ यज्ञकी अग्निमें तीनों वेदकी विधिसे हविको लेकर चिंतवन करते हैं और योगिराज अध्यात्मयोगसे तुम्हारी माया अणिमादिक ऐश्वर्य जाननेका

स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः ॥ यः सात्त्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा ॥ अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ॥ यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमाददन्नो भूयात्सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥ केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ॥ स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्‌ पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥

चिंतन करते हैं और परमभक्त सर्वत्र पूजते हैं ॥ ११ ॥ हे विभो ! तुम्मारे सब अंगोंमें व्याप्त जी वनमाला उससे भगवती लक्ष्मीजी सौतके समान ईर्षा रखती हैं और यह वनमाला भक्तोंने अर्पण की है, इसी कारणसे तुम इसको धारण करते हो, उसी मालामें पूजाको ग्रहण करते हो, तुम्हारे चरण हमरी विषयवासनाके जलाने को अग्नि हैं ॥ १२ ॥ हे व्यापक ! जब आप त्रिविक्रमरूप हुए थे तब आपने बलिराजको बांधा, तब तुम्हारा एक चरण सत्यलोकमें रहा, सो वह चरण जैसे विजयपताका हो इसी प्रकार दिखायी देता था और उसी चरणसे गङ्गाके तीन प्रवाह छूटे, वह पताका हुई, चरणध्वज दण्ड हुआ, सो सुर, असुर सबकी सेनाको भय अभयका देनेवाला हुआ,

देवता और साधुओंको अभयका दाता अर्थात् स्वर्ग दिया, असुर दुष्टोंको भयदायक अर्थात् अधोगति दी, वह आपका चरण हम, जो कि भजन कर रहे हैं, उनके पाप दूर करो और हमारी रक्षा करो ॥१३॥ यदि कहो कि युद्धमें देवता दैत्य परस्पर जीतते हैं, हारते हैं मेरा वहां क्या निमित्त है ? तो कहते हैं कि ब्रह्मासे आदि लेकर देहधारी सब जगत् परस्पर युद्धसे जब पीड़ित होते हैं, तब तुम्हारे वशमें आते हैं इसलिये कालरूप तुम हो और कालके अधीन सब हैं, इससे जय, पराजय सब आपके ही अधीन हैं। जैसे नाथके अधीन बैल हैं इसी प्रकार सब तुम्हारे अधीन हैं। तुम प्रकृति पुरुषसे भी परे हो, पुरुषोत्तम हो, अतः तुम्हारे चरणकमल हमको सुखकारी हों ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! आप इस जगत्के उत्पत्ति, पालन और प्रलयके कारण हो और प्रकृति पुरुष महत्तत्त्वके भी नियन्ता हो, यह जो काल संवत्सर

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ॥ कालस्य ते प्रतिपूरुषयोः परस्य शं नस्त-नोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥ अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ॥ सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गंभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥ त्वत्तः पुमान्समधिगम्य यया स्ववीर्यं धत्तेमहान्तमिव गर्भममोघवीर्यः ॥ सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आण्डकोशं हैमं ससर्ज वहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥ तत्तस्थुषश्च जगतश्चभवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ॥ अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

है सो चक्ररूप है, इसके ग्रीष्म, वर्षा, शरद् तीन नाम हैं और सबके नाश करनेको प्रवृत्त है, इसका वेग अत्यन्त गम्भीर है सो काल तुम्हारा ही रूप हैं, इसलिये तुम उत्तम पुरुष हो ॥१५॥ अब सृष्टिका प्रकार कहते हैं:—प्रथम तुमसे सफलवीर्य एक पुरुष उत्पन्न होता है, सो तुमसे शक्तिको प्राप्त हो मायासे मिलकर विश्वका गर्भरूप महत्तत्त्व उत्पन्न करता है और वही महत्तत्त्व मायासे मिल आत्मासे यह स्वर्णमय अण्डकोश बाहरके सात आवरण संयुक्त बनाता है ॥१६॥ इसलिये सब तुमसे ही प्रकट हुआ है और इसी कारण इस स्थावर जङ्गमरूप विश्वके अधीश तुम हो। हे सम्पूर्ण स्त्रियोंके पति ! मायासे उत्पन्न हुई इंद्रियवृत्ति करके विषयभोग करते हुये भी तुम निर्लेप हो, यद्यपि योगीश्वर योगसे विषयको छोड़ देते हैं, परंतु तो भी डरते हैं, कि कदाचित् हमको विषयवासना उत्पन्न न हो जाय, क्योंकि तुम

भा० ए० ॥२१॥ प्रपञ्चसे मिल रहे हो और विषय सम्बन्ध नहीं यह तुम्हारा विशेष धर्म है ॥१७॥ क्योंकि जो सोलह हजार(१६०००)स्त्रियें अपने मन्द हास्य सहित चितवनके कटाक्षसे दिखाये अभिप्रायसे मनको हरनेवाली भूमण्डलसे प्रेरे सम्भोगमन्त्रोंके विषे निपुण, कामके बाण और कामकी कलासे भी वशमें न कर सकीं तो तुम विषयोंसे निर्लिप्त ही हो ॥ १८ ॥ इसलिये तुम्हारी अमृतरूपी कथा, कीर्तिरूप जलभरी नदी और तुम्हारे चरणोदकरूपी गंगा ये दोनों त्रिलोकीके पाप दूर करनेको समर्थ हैं। श्रवणेन्द्रियसे वेदमें गाये हुए तुम्हारे यशके सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं, गंगामें स्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं, इस प्रकार जो पुरुष धर्म जानते हैं सो इन दोनों तीर्थोंका सेवन

स्मायानलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न बिभ्व्यः ॥ १८ ॥ विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम् ॥ आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजमङ्गसङ्गैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्तउपस्पृशन्ति ॥१९॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् ॥ अभ्यभाषत गोविन्दं प्रणम्याम्बरमाश्रितः ॥२०॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो ॥ त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥२१॥ धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसन्धेषु वै त्वया ॥ कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् ॥ कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ॥ शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥ २४ ॥ यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ॥ शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥

भा० टी० अ० ६ करते हैं ॥१९॥ इस प्रकार ब्रह्मा महादेव सहित देवताओंसे मिल स्तुति और नमस्कार कर आकाशमें ही खड़े होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे बोले ॥२०॥ ब्रह्माजीने कहा कि हे प्रभो ! हे सर्वान्तर्यामी ! हमने भूमिका भार उतारनेके लिये प्रथम आपसे विनती की थी, सो भार तुमने उसी प्रकार दूर किया ॥२१॥ सन्तोंमें धर्म स्थापन किया, साधुओंमें सत्य रखा और दशों दिशाओंमें सबका पाप दूर करनेवाली कीर्तिका विस्तार किया ॥२२॥ यदुवंशमें अवतार ले उत्तम रूप धर जगत्का हित करनेके लिये अति उदार चरित्र और कर्म किये ॥ २३ ॥ हे ईश ! जिन कर्मोंको कलियुगमें साधुजन श्रवण कीर्तन करके सुखपूर्वक संसारसागरसे तरेंगे ॥ २४ ॥ हे विभो ! हे पुरुषोत्तम ! यदुवंशमें

अवतार लिये तुमको एक सौ पचीस (१२५) वर्ष बीत गये ॥२५॥ हे सर्वाश्रम ! अब तुमको कोई देवकार्य भी करना शेष नहीं है और यह तुम्हारा कुल भी ब्रह्मशापसे नष्ट हो रहा है ॥२६॥ इसलिये यदि अब आपकी इच्छा हो तो अपने वैकुण्ठधामको चलो । हे वैकुण्ठनाथ ! हम तुम्हारे किंकर हैं, लोक सहित लोकपालोंकी रक्षा करो * ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णभगवान् बोले कि हे देवताओंके ईश्वर ! तुमने जो कहा

नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ॥ कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ ॥ २६ ॥ ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ॥ सलोकांल्लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठकिङ्करान् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ॥ कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥ यदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ॥ लोकं जिघृक्षद्रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥२९॥ यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ॥ गन्तास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ॥ ३० ॥

सो मैंने मनमें धारण किया, तुम्हारा सब काम पूर्ण कर दिया और भूमिका भार उतार दिया ॥२८॥ परंतु अभी यह यादवकुल बल, शूरता और श्रीसे अति उद्धत है, लोकको ग्रसा चाहता है, उसे भी जैसे महासमुद्रको वेला (तट) रोक रखे, उसी प्रकार मैंने रोक रखा है ॥२९ जो मैं ऐसे गर्वसे उद्धत यादवके विशाल कुलका संहार किये विना अपने लोकको चला जाऊँगा तो यह लोक मर्यादारहित

* शंका—भगवान्ने अनेक अवतार धारण करके पृथ्वीपर अनेक प्रकारके चरित्र किये परंतु पृथ्वी से भगवान्-को वैकुण्ठधामके जानेके लिये किसी अवतारमें ब्रह्माने प्रार्थना नहीं की कि महाराज आप अब परमधामको चलो ! और इन्द्रको तथा ब्राह्मणोंको ब्रह्माने अपने संग लेकर वैकुण्ठको चलनेके लिये श्रीकृष्ण से याचना क्योंकी कि आप वैकुण्ठको चलो ?

उत्तर–संसारको सुख देनेके लिये भगवान्ने अनेक अवतार धारण किये, ऐसे ही पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीकृष्णरूप धरकर मर्त्यलोकमें आये,जब श्रीकृष्ण मर्त्यलोकमें आये तब तारक नामक राक्षस वैकुण्ठपुरीको भगवान्से हीन देखकर दुःख देनेका विचार करने लगा । आज दुःख दें कल दुःख दें, ऐसा विचार करते-करते एक सौ चौबीस १२४ वर्ष दश १० महीने बीत गये परंतु जिस दिन निश्चय करके दुःख देनेको चला तो कुछ थोड़ा उत्पात वैकुण्ठमें हुआ, तब सुदर्शनचक्र तारकके मारनेके लिये उसके पीछे दौड़ा, उस समय सुदर्शनके डरके मारे तारक भाग निकला । उसी दिन ब्रह्माने विचार किया कि आज दुष्ट राक्षसने वैकुण्ठमें उपद्रव किया है न जानिये क्या हो ? ऐसा विचार कर ब्रह्माने श्रीकृष्णसे वैकुण्ठ जानेके लिये प्रार्थना की ।

यदुकुलसे नष्ट हो जायगा ॥ ३० ॥ सो विप्रशापसे इस कुलके नाशका अब आरम्भ किया है । हे ब्रह्मा ! इनको संहार करके मैं वैकुण्ठ जाऊँगा । हे निष्पाप ! तुम्हारे घर आऊँगा ॥ ३१ ॥ लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इस प्रकार वाणी सुनकर स्वयंभू देव ब्रह्मा श्रीकृष्णको नमस्कार कर देवताओंसे मिल अपने धामको चले गये ॥३२॥ इसके उपरांत द्वारकापुरीमें बड़े बड़े उत्पात होने लगे, उन्हें देखकर बड़े वृद्ध यादव इकट्ठे हुए, उन यादवोंको एकत्र देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥३३॥ कि सब ओरसे यहां बड़े बड़े उत्पात उठते हैं और अपने कुलको ब्राह्मणोंका शाप भी हुआ है ॥३४॥ इसलिये हे यादवो ! जो जीने की इच्छा है तो हमको यहां रहना ही न

इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापतः ॥ यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयंभूः प्रणिपत्य तम् ॥ सहदेवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥ अथ तस्यां महोत्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् ॥ विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान् समागतान् ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता ह्युत्तिष्ठन्तीह सर्वतः ॥ शापश्च नः कुलस्यासीद् ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ॥ प्रभासं सुमहत् पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ॥ ३५ ॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद् गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ॥ विमुक्तः किल्बिषात् सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥३६॥ वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन् सुरान्॥ भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवतान्धसा ॥ ३७ ॥ तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महान्ति वै ॥ वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनन्दन ॥ गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान् समयूयुजन् ॥ ३९ ॥

चाहिये, अति पुण्य प्रभासतीर्थको आजही चलो, विलम्ब मत करो ॥३५॥ जिस तीर्थमें स्नान करके दक्षके शापसे क्षयरोगसे ग्रसा चन्द्रमा पापसे छूटा और तत्काल फिर कलाओंकी वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥३६॥ हम भी वहां स्नान और पितरोंका तर्पण कर अनेक गुणसंयुक्त अन्नसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करवावें ॥३७॥ श्रद्धासहित महान् सत्पात्रों विषे बीज बोकर उन दोनोंसे पापोंको तरेंगे, जैसे नावमें बैठकर समुद्रको तरते हैं ॥३८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी तब सब यादव भग-

वान्‌की आज्ञा मान चलनेका उद्यम करने लगे, तीर्थ जानेकी इच्छासे रथ जुतवाने लगे ॥३९॥ हे राजन् ! उस समय यादवोंके प्रभास तीर्थ जानेका उद्यम देख और श्रीकृष्णके वचन सुन और घोर उत्पातोंको देख नित्य श्रीकृष्णके निकट रहनेवाले उद्धवजी ॥ ४० ॥ एकान्तमें निकट जाकर जगत्‌के ईश्वरोंके ईश्वरको नमस्कार कर हाथ जोड़ कहने लगे ॥ ४१ ॥ हे देवदेवेश ! हे योगेश ! हे पुण्यश्रवण-कीर्त्तन ! तुम्हारी ऐसी इच्छा जानी जाती है कि इस कुलका संहार कर निश्चयसे भूलोकको छोड़ना चाहते हो। यद्यपि तुम ईश्वर सम्पूर्ण कार्य करनेको समर्थ हो, परंतु तो भी विप्रशापको निवारण नहीं किया ॥ ४२ ॥ हे केशव ! हे नाथ ! मैं तुम्हारे चरणकमल छोड़नेको

तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वा भगवतोदितम् ॥ दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥४०॥ विविक्त उपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥ उद्धव उवाच ॥ देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ संहृत्यैतत् कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान् ॥ विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन् न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ॥ त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥४३॥ तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम् ॥ कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४ ॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ॥ कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥ त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः ॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥ ४६ ॥ वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः ॥ ब्रह्माख्यं धाम ते यांति शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७ ॥

असमर्थ हूँ, अर्थात् आधे क्षणको भी नहीं छोड़ सकता, इसलिये मुझे भी अपने धामको ले चलो ॥४३॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी लीला मनुष्योंको परममंगलदायक है, श्रवणेन्द्रियका अमृतरूप है, उसका आस्वाद ले मनुष्य औरकी इच्छाको छोड़ देते हैं, हम तुम्हारे दिनरात्रिके सेवक हैं ॥४४॥ शयन, आसन, गमन, स्नान क्रीड़ा, भोजन आदि और भी क्रियाओंमें सदा संग रहे हैं, सो हम भक्तप्रिय आत्मारूप आपको कैसे छोड़ सकते हैं ? ॥ ४५ ॥ तुम्हारे समीप तुम्हारे प्रसादकी माला सुगंध चन्दन और प्रसाद वस्त्रसे चर्चित होकर बाह्य शुद्ध होते हैं, पीछे तुम्हारे उच्छिष्ट महाप्रसादके भोजन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध करके तुम्हारी मायाको जीतते हैं ॥ ४६ ॥ हे महायोगिन् !

जो केवल वायु भक्षण करके रहते हैं व दिगम्बर हैं, शमयुक्त हैं, जितेन्द्रिय हैं, संन्यासी हैं, निर्मलचित्त हैं, आत्मविद्यामें जिन्होंने श्रम किये हैं वे ऋषि अनेक क्लेशसे तुम्हारे वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं ॥४७॥ हे महायोगीश्वर! हम तो तुम्हारे भक्तोंके संग तुम्हारी ही वार्त्ता करते; सकल कर्मोंमें भ्रमते, भी तुम्हारी दुस्तर मायाको तरेंगे ॥४८॥ मनुष्यलोकको आश्चर्य दायक तुम्हारे कर्म वचनसे गाते हास्य, चितवन, हास्यकी वार्त्ता और जो कुछ मनुष्यलोकमें लीला की है, उसका स्मरण कीर्तन करेंगे, इससे ही तर जायँगे, मैं यह आपके भयसे प्रार्थना नहीं करता हूँ, परन्तु आपका संग नहीं छोड़ा जाता ॥ ४९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा

वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु ॥ त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥ स्मरन्तः कीर्तयन्तस्ते कृतानि गदितानि च ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलियन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विज्ञापितो राजन् भगवान् देवकीसुतः ॥ एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥ इति श्रीभाग० म० एका० स्क० ब्रह्मादिप्रार्थनानिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥ ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥ मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ॥ यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणाऽर्थितः ॥ २ ॥ कुलं वै शापनिर्दग्धं नंक्ष्यत्यन्योऽन्यविग्रहात् ॥ समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार उद्धवजीकी विनती सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा निकटवर्ती परमप्रिय भक्त उद्धवजीसे बोले ॥ ५० ॥ इति श्रीम-

द्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां ब्रह्मादिप्रार्थनानिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा—हरि विवेककी सिद्धिको, वरणो जस इतिहास। सो सप्तम अध्यायमें, वर्णत सहित हुलास ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले कि हे महाभाग उद्धव! तुमने जो मुझसे कहा, सो सब मुझे करना है, क्योंकि ब्रह्मा, महादेव और लोकपाल ये सब स्वर्ग जानेके लिये मेरी प्रार्थना कर गये हैं ॥ १ ॥ मैंने यहां सब देवकार्य सिद्ध किया; जिसके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे बलदेवसहित अवतार लिया था ॥ २ ॥ हमारा कुल शेष रहा है

सो भी विप्रशापसे जल रहा है, इससे निश्चय ही परस्परकी लड़ाईसे नष्ट हो जायगा और आजसे सातवें दिन इस द्वारकापुरीको समुद्र डुबावेगा ॥ ३ ॥ जिस दिन मैं इस लोकको छोडूंगा उस दिन यह मंगल नष्ट हो जायेगा । हे उद्धव ! इसके उपरांत फिर कलियुग भी प्रवृत्त होकर सब धर्मको दूर करेगा और थोड़े ही कालमें इन लोकका निरादर करेगा ॥४॥ हे उद्धव ! मेरे त्याग किये महीतल विषे तुम मत वास करना, क्योंकि कलियुगमें मनुष्योंकी प्रीति अधर्ममें होगी ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! तुम तो स्वजन, बन्धु और कुटुम्बका स्नेह छोड़ मेरे स्वरूपमें चित्त रख समदृष्टि हो पृथ्वीमें विचरण करो ॥६॥ इस संसारमें दृष्टि मत रखना, क्योंकि वचन, नेत्र, श्रवणादिक करके जो ग्रहण किया

तर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमङ्गलः ॥ भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनाऽपि निराकृतः ॥४॥ न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ॥ जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यक्समदृक् विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ॥ नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥ पुंसोऽयुक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ॥ कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो-भिदा ॥ ८ ॥ तस्माद् युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत ॥ आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञान-विज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ॥ आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥

है सो सब झूँठी मायाका रचा यह मन भी मिथ्या है, ऐसा जानो ॥ ७ ॥ विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषको वेदार्थ अनेक प्रकारसे दीखते हैं, सो भ्रमसे प्रतीत होते हैं, गुणदोषसंयुक्त हो कर्म, अकर्म, विकर्म भेद गुणदोष बुद्धिवालेको हैं, समदृष्टि आत्मज्ञानीको यह भेद नहीं है ॥८॥ इस-लिये इंद्रियोंके समूहको और चित्तको वश करके इस विशाल जगत्को अपने आपमें देखो, अपनेको परमेश्वरमें ब्रह्मरूपसे देखो ॥ ९ ॥ यदि कहो कि विघ्न बहुत हैं कैसे देखें ? इसका उत्तर यह है कि वेदके अभिप्रायोंका निश्चय और उसके अर्थका अनुभव मिलाकर आत्माके

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवसे कहा कि हम पृथ्वीको त्याग परमधामको जायेंगे तब तुम पृथ्वीपर वास मतकरना, तब श्रीकृष्णके वैकुण्ठ जानेके पीछे बदरिकाश्रममें उद्धवने वास क्यों किया ?

उत्तर—वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, नैमिषारण्य, द्वारका, काशी, वदरिकाश्रम इन सब क्षेत्रोंकी सातद्वीपोंकी पृथ्वीपर गिनती नहीं है, ऐसा शास्त्रमें लिखा है ये सब मोक्षकी भूमि हैं, सात द्वीपके सदृश भूमि नहीं, इसलिये बदरिकाश्रममें उद्धवजीने वास किया ।

ज्ञानसे ही सन्तुष्ट और दीनता आदि भी आत्मरूप जानोगे तो कोई विघ्न न होगा और जबतक आत्मज्ञानकी प्राप्ति न हो तबतक वर्णके अनुसार कर्म करे, फिर अनुभव प्राप्त होनेपर विघ्नोंसे कुछ नहीं होता ॥ १० ॥ इससे यह न समझ लेना कि "ज्ञानी मनुष्य यथेष्ट आचरण करे" क्योंकि जैसे बालक संकल्प-विकल्पसे रहित होनेपर भी कोई कर्म करता है, कोई नहीं करता, इसी प्रकार गुणबुद्धिसे रहित हुआ यह पहले कर्मोंके संस्कारसे प्रवृत्त होता है, किन्तु न दोषबुद्धि बहुधा विहित कर्मको करता है न गुणबुद्धिसे ॥११॥ सब प्राणियोंका मित्र हो ज्ञान, विज्ञानका निश्चयवाला हो, सब विश्वको मेरा ही रूप समझ कर देखेगा तो वह पुरुष फिर कभी इस संसारमें नहीं आवेगा ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत राजा परीक्षित् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने समझाया तो परम भागवत

दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ॥ पश्यन् मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ॥ उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥१३॥ उद्धव उवाच ॥ योगेश योगविन्यास योगात्मन् योगसंभव ॥ निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥ १४ ॥ त्यागोऽयं दुष्करो भूमन् कामनां विषयात्मभिः ॥ सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥ १५ ॥ सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे ॥ तत्त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाऽहं संसाधयामि भगवन् ननु शाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥

उद्धवजी प्रणाम कर तत्त्वज्ञानकी इच्छा किये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगे ॥ १३ ॥ उद्धवजी बोले कि हे योगके फलदाता ! हे योगके आधार ! हे योगरूप ! हे योगके कारण ! मोक्षके अर्थ यह संन्यासरूप त्याग मुझसे कहा सो अपनी सहज दयासे कहा, क्योंकि मैं तो ऐसा अधिकारी नहीं था ॥ १४ ॥ हे सर्वव्यापक ! हे सर्वात्मा ! मेरी बुद्धि तो ऐसी है कि जिन पुरुषोंका मन विषयोंमें लगा हुआ है, उनसे ऐसा त्याग बनना अशक्य है और जो उसमें भी तुम्हारे भक्त नहीं उनको तो बहुत ही कठिन है ॥ १५ ॥ और जो मुझसे तुम त्याग कहते हो सो महाराज ! मैं अहंता ममतासे मूढ़मति हूँ, तुम्हारी मायासे उत्पन्न हुए पुत्र, कलत्र, देह आदिमें मग्न हूँ, इसलिये

हे भगवन् ! जैसे इन्हें तुम्हारी आज्ञासे विना परिश्रम त्याग सकूं, उसी प्रकार तुम मुझे शिक्षा दो ॥ १६ ॥ हे ईश ! तुम समानरूप हो, स्वप्रकाश हो, आत्मा हो इसलिये मुझे और ऐसा वक्ता देवताओंमें भी कोई नहीं दीख पड़ता, क्योंकि ये ब्रह्मादिक देहधारी तो तुम्हारी मायासे मोहित बुद्धि हैं और बाहरके विषयोंमें इनकी अर्थबुद्धि है ॥ १७ ॥ कोई दुष्टबुद्धि हैं और कोई ऐसे हैं जो सेवा करनेपर भी फल देनेके समय नष्ट हो जाते हैं, कोई अज्ञानी हैं, कोई रक्षा करनेमें असमर्थ हैं, कोई स्थानभ्रष्ट हैं इसलिये संसारके दुःखसे अतीत नहीं। मैं अति विरक्त चित्त हूँ, इस कारण तुम्हारी शरण आया हूँ; क्योंकि तुम तो निन्दारहित हो, तुम्हारा कालसे अन्त और देशसे पार नहीं, सर्वज्ञ हो, ईश्वर हो, तुम्हारा नाशरहित वैकुण्ठस्थान है, तुम सब जीवोंके आश्रय हो, जीवके सखा हो ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि लोग तत्त्व को

सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥ १७ ॥ तस्माद् भवन्तमनवद्यमनन्तपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ॥ समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥ यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥ २० ॥ पुरुषत्वे च मां धीराः साङ्ख्ययोगविशारदाः ॥ आविस्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः ॥ बह्व्यः सन्ति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥

अतिश्रेष्ठ जानते हैं वे मनुष्य बहुधा गुरु विना ही अपने आत्माको संसारसे उद्धृत करते हैं, गुरुके उपदेशकी अपेक्षा नहीं करते ॥ १९ ॥ अपने गुरु आप ही हैं, क्योंकि विशेषकर पुरुष जो प्रत्यक्ष अथवा अनुमानसे विचारे तो आपसे ही सुख पावे और सहजमें अपने स्वरूपकी प्राप्ति हो पशुओंको अपने हित ज्ञानका कौन गुरु है, आपसे ही अपने हितमें प्रवृत्त होते हैं, इसलिये अपने आप ही गुरु हैं। अब यहां प्रत्यक्ष ज्ञान दिखलाते हैं कि जब जीव पुरुष जन्म प्राप्त करता है तब यह ज्ञानमार्गमें निपुण हो जाता है ॥ २० ॥ मनुष्यके शरीरमें आत्मा अधिक प्रत्यक्ष है, यह सांख्ययोगमें चतुरबुद्धिवाले धीर पुरुषोंका निश्चय है ॥ २१ ॥ वह शक्तियुक्त मुझे प्रत्यक्ष देखते हैं, मेरे

उत्पन्न किये बहुत रूप और बहुत शरीर हैं, कोई एकचरण हैं कोई अर्द्धचरण हैं कोई नीचे चरण हैं कोई चारचरण हैं कोई बहुतचरण हैं, कोई चरणरहित हैं, परंतु इन सबोंमें जो पुरुषरूप देह है सो मुझे अतिप्रिय है ॥ २२ ॥ इस पुरुषदेहमें जो सावधान हैं वे अहंकारादिकोंसे रहित मुझे प्रगट ढूंढ़ लेते हैं बुद्धि आदि यत्नोंको एक स्वप्रकाश आत्मा विना प्रकाश नहीं हो सकता, ऐसा अनुमान करके मुझे ढूंढ़ लेते हैं ॥२३॥ इस विषयमें एक बड़े तेजस्वी राजा यदु और अवधूतका संवादरूप प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥२४॥ अवधूत वेष किये महापंडित और सदा तरुण अवस्थावाले गुरु दत्तात्रेयजी, जो निर्भय रीतिसे संसारमें घूम रहे थे। उन्हें देखकर धर्मके ज्ञाता राजा यदुने इस प्रकार पूछा ॥२५॥ कि हे ब्रह्मन् ! अकर्त्ता तुमको ऐसी निपुण मति कहांसे प्राप्त हुई है, जिसको पाकर अवधूत पंडित तुम बालकके समान

अत्र मां मार्गयन्त्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् ॥ गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः॥२४॥अवधूतं द्विजं कञ्चिच्चरन्तमकुतोभयम्॥कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित ॥ २५ ॥ यदुरुवाच ॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ॥ यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥ २६ ॥ प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ॥ हेतुनैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥ त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥ न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाऽम्भःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥ त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् ॥ ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥ ३० ॥

इस लोकमें विचरते हो ? ॥२६॥ बहुधा मनुष्य अर्थ धर्म कामनाविषे और आत्माके विचारविषे आयु, कीर्ति और श्रीकी कामनासे प्रवृत्त होते हैं ॥२७॥ परन्तु तुम तो कुछ नहीं चाहते हो, न कोई कर्म करते हो और जड़ उन्मत्त पिशाचके समान हो और सब कार्य करनेको समर्थ और पूर्ण ज्ञानवान् हो अतिप्रवीण हो, सुन्दर हो आपकी उत्तम मधुरवाणी है॥२८॥मनुष्य काम लोभरूप दावानलसे जलता है, उसमें तुम उस तापसे संतप्त नहीं हो, जैसे अग्निसे छूटकर गंगामें खड़ा हाथी उस तापसे तप्त नहीं होता है ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम विषयभोगरहित हो, कलत्र आदिसे शून्य हो, आनन्दरूप हो इसलिये हम आपसे पूछते हैं कि तुम्हारे आनन्दका कारण क्या है ? सो हमसे कहो ॥ ३० ॥

श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! इस प्रकार जब अतिब्रह्मण्य सुबुद्धि राजा यदुने विनयपूर्वक पूजा कर पूछा तब महाभाग अवधूतजी राजा यदुसे बोले ॥३१॥ हे राजन् ! अपनी बुद्धिकरके मेरे बहुत गुरु हैं. जिनसे मैं बुद्धिपाकर मुक्त हुआ हूँ और इस लोकमें फिरता हूँ उनको सुनो ॥ ३२ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, सिन्धु, पतंग मधुकृत गज ॥ ३३ ॥ मधुहा, मृग मीन पिंगला, कुररपक्षी बालक कुमारी कंडेडी (बाणका बनानेवाला), सर्प, मकरी और मृगी ॥ ३४ ॥ हे राजा यदु ! मैंने यह चौबीस गुरु सेवन किये हैं, इनके आचरणोंसे मैंने शिक्षा ग्रहण करली है ॥ ३५ ॥ हे ययाति पुत्र ! हे पुरुषसिंह ! मैंने जाते हुए जहां जो शिक्षा

श्रीभगवानुवाच ॥ यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥ पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं नृपम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सन्ति मे गुरवो राजन्बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥ यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह ताञ्छृणु ॥ ३२ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ॥ कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ॥ कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिःसुपेशकृत् ॥ ३४ ॥ एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥ शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥ यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नहुषात्मज ॥ तत् तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसंभवः ॥ साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥ ३८ ॥

जैसे ग्रहण की है सो उसी प्रकार कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥३६॥ प्रथम भूमिसे क्षमा सीखी है सो कहते हैं कि पृथ्वीको सब प्राणी खूँदते हैं, परंतु तो भी वह अपने नियमसे चलायमान नहीं होती इसी प्रकार दैवके वशीभूत प्राणी धीर पुरुषको कष्ट दें तो भी उनके दैवाधीन पनको जाननेवाले उस पुरुषको अपने नियम से चलायमान होना उचित नहीं, यह पृथ्वीसे सीखा है ॥३७॥ पृथ्वी दो प्रकार की है—एक तो पर्वतरूपा, एक वृक्ष रूपा । यहां जो सीखा है सो कहते हैं कि पर्वतकी जो वस्तु हैं वृक्ष, तृण, झरना, फूल, ये सदा पराये अर्थ हैं और पर्वतका जन्म भी केवल पराये ही अर्थ है, अपना स्वार्थ कुछ नहीं, इसी प्रकार अपनी वस्तु और देह सब परोपकारार्थ लगा दीजिये,

यह पर्वतरूप भूमिसे सीखा है और वृक्ष भी पराये अधीन हैं, यदि इनको कोई काटे, उखाड़े तो वह सह लेते हैं और क्षमाको नहीं तजते, इसी प्रकार साधु पुरुष भी जो अपने संग भलाई बुराई करे सो उसे सहन कर लें (१) ॥३८॥ वायु भी दो प्रकारका है, एक तो प्राणरूप है, दूसरा बाहर फिरता है। सो प्राण जैसे आहारमात्रसे सन्तुष्ट रहते हैं और इंद्रियोंके भोग नहीं चाहते, इसी प्रकार मुनीश्वर भी रहें अर्थात् आहार जो न मिले तो मन वचनसे विक्षिप्त होकर ज्ञान सिद्धि न हो इसलिये एक आहारमात्रसे ही सन्तोष मान ले, इससे अधिककी चाहना न करे, यह विद्या प्राणवायुसे सीखी है ॥३९॥ जैसे पवन सब जगह चलता है, पर कहीं आसक्त नहीं होता, इसी प्रकार योगिराज भी शीत उष्ण आदि नाना धर्मवाले विषय भोग करते भी आसक्त नहीं होते, सबमें गुणदोषरहित मन हो, यह विद्या बाहरकी वायुसे सीखी है ॥४०॥ और भी एक बात पवनसे सीखी है सो कहते हैं कि यद्यपि वायु सुगन्ध मिली सी चलती है और ऐसा ही जाना

प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥ पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ॥ गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥ अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥ व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ॥ न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥

जाता है, परन्तु तो भी वायु गन्धसे मिला नहीं है, गन्ध कुछ वायुका नहीं है किन्तु पृथ्वीका गुण है, उसी प्रकार आत्मा पृथ्वीका विकार देहमें प्रविष्ट है, देहके धर्मका आश्रय है पर मिला नहीं है देहोंसे अलग है इस प्रकार समझे और स्थानमें आत्माको ही देखे यह विद्या भी पवनसे ही सीखी, इसलिये वायु गुरु हुआ (२) ॥ ४१ ॥ अब आकाशसे जो विद्या सीखी है सो कहते हैं—जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक और बड़ा है परन्तु घटमें छोटा दिखायी देता है सो घटसे आकाशका कुछ सम्बन्ध नहीं, क्योंकि वह निर्विकार है, ऐसे ही आत्मा इस देहमें है और यह देहसे मिला है, इस कारण इतना ही है और ठौर नहीं ऐसे न समझे, क्योंकि जो आत्मा देहमें है वही सर्वत्र है, जैसे आकाश सब ठौर है, वैसे ही स्थावर जंगम विषे ब्रह्म व्यापक है. यह एक विद्या आकाशसे सीखी है ॥ ४२ ॥ द्वितीय वायु कहते हैं—जैसे

पवनके प्रेरे तेज जल पृथ्वीमय मेघादिक आकाशमें व्याप्त होते हैं पर मेघादिकोंसे आकाशका स्पर्श नहीं होता वह निर्लेप है, वैसे ही यह पुरुष कालसे बनाये हुए पञ्चभूतरूप इस देहसे संयुक्त है, उनका जिनके साथ स्पर्श नहीं है, यह धर्म भी आकाशसे ही सीखा (३) ॥४३॥ जैसे स्वभावसे ही जल अतिनिर्मल है, ऐसे ही मुनि भी निर्मल हो सबके ऊपर स्नेह करें, मीठा बोलें, जल भी मधुर है, जैसे जल तीर्थ स्नान है और मनुष्योंको पापसे छुड़ाता है उसी प्रकार मुनीश्वर भी दर्शन स्पर्श कीर्तनसे सबको पवित्र करें, यह गुण जलसे सीखे हैं (४) ॥ ४४ ॥ अब जो अग्निसे सीखा सो कहते हैं—जैसे अग्नि अति तेजस्वी है, तेजसे दीप्त है, अति दुःसह है और उसका उदर ही पात्र है, क्योंकि जो होम करते हैं, वह अग्निके उदरमें ही डालते हैं इससे वही पात्र है, जो सम्पूर्ण वस्तुको भक्षण कर्ता है पर तो भी पवित्र करनेवाला है, ऐसे ही मुनीश्वर भी हों ॥ ४५ ॥ जैसे अग्नि कहीं गुप्त है, कहीं प्रकट है, जो अपने कल्याणकी चाहना करते हैं उनको सेव्य है, दाताकी

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ॥ मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ॥ सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥४५॥ क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥ भुङ्क्ते सर्वत्र दातॄणां दहन्प्रागुत्तरा शुभम् ॥ ४६ ॥ स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥ विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः ॥ कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥

इच्छासे सर्वत्र हविष्य लेता है, उनके भूत, भविष्य, वर्तमान पाप सब दूर करता है इसी प्रकार मुनि रहे॥४६॥और भी अग्निसे सीखा है, जैसे अग्नि एकरूप है, बहुत ईंधनसे बहुत भांति बड़ा दिखायी देता है और जब ईंधन थोड़ा रहता है तो छोटा दीख पड़ता है, ऐसे ही जीवात्मा एकरूप है, न छोटा है न बड़ा है, अपनी अविद्यासे उपजाये ऊँचनीच भेद संयुक्त देहमें प्रविष्ट हुआ ऊँच नीच रूपसे दिखायी देता है (५) ॥४७॥चन्द्रमासे जो सीखा है, सो कहते हैंः—जन्मसे मरणपर्यन्त धर्म देहके ही है, आत्माके नहीं। इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि जैसे चन्द्रमाका मंडल सदा पूर्ण एकरूप है, नित्य वृद्धि और क्षय जो देखा जाता है वह कलाओंका है, जितना सूर्यमण्डलसे नित्य अलग पड़ता है इतना ही दीखता है और ज्यों-ज्यों मण्डलके नीचे दबता है त्यों-त्यों घटता है इसी प्रकार आत्मा एकरूप है, अप्रकट गति कालसे जन्म-मरणा-

दिकभाव देहको होते हैं आत्माको नहीं, यह ज्ञान चन्द्रमासे पाया है इससे चन्द्रमा गुरु है (६) ॥ ४८ ॥ अग्निगुरुकी फिर प्रशंसा करते हैं, जैसा अग्निका स्वरूप है कि नाश नहीं होता, अग्निकी ज्वालाओंका नाश होता है परन्तु दीखता नहीं वैसे ही काल नदीके वेगसे जन्म-मरण इस देहको ही हैं आत्माको नहीं, क्योंकि आत्मा तो नित्य अर्थात् अमर है ॥४९॥ अब सूर्यसे जो सीखा है सो कहते हैं:—जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जल सोखता है और फिर वर्षाके समय वही जल छोड़ देता है, परन्तु उसमें आसक्त नहीं है, इसी प्रकार योगीजन इंद्रिय अपेक्षित पदार्थोंका ग्रहण करे और कोई याचना करे तो तत्काल दे दे, ममता न रखे ॥५०॥ जिस प्रकार सूर्य आकाशमें अपने स्वरूपमें रहता है और एक ही है परंतु जलादिकमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे अनेकरूप दीखता है उसी प्रकार आत्मा स्वरूपसे भिन्न नहीं

कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति ॥ न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुध्यते स्वे न भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥ नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥ कुर्वन्विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित् समाः ॥ ५३ ॥ कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥ दृष्टिं दृष्ट्याङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥ शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥

है, देहादिकोंमें व्याप्त होनेसे स्थूल बुद्धिवालोंको अनेक रूपसे प्रतीत होता है (७) ॥५१॥ अब कपोतसे जो सीखा है सो कहते हैं:—कहीं किसीसे अधिक स्नेह न करे, किसीमें आसक्त न हो, क्योंकि जो संग करे तो सन्तापको प्राप्त होता है और दीन मति होती है, जैसे कपोतको हुआ॥५२॥कपोतकी कथा कहते हैं:—एक कपोत वनमें किसी वृक्षपर अपना घर बनाकर अपनी स्त्रीसे मिलकर कितनेक वर्षतक दोनोंने वास किया ॥ ५३ ॥ वे दोनों स्त्री पुरुष (कपोत कपोतिनी) परमस्नेहसे बँधे हुए दृष्टि-दृष्टिसे बँधी, हृदय-हृदयसे बँधा, अंग-अंगसे बँधा, बुद्धि-बुद्धिसे बँधी ॥५४॥ शयन, आसन, गमन, स्थान, वार्ता, क्रीड़ा, भोजन सब काम एक ही स्थानपर बैठकर करें, अलग

अलग होकर कभी न करें, इस प्रकार एक संग निःशंक हुए फिरा करें ॥ ५५ ॥ इसके उपरांत वह कपोतिनी अपने हावभाव, लावण्य मधुर भाषणसे प्रसन्न कर कपोतसे दीन होकर जो जो वस्तु मांगे वह वह कपोत अतिकष्टसे भी ले आवे, इस भांति अजितेंद्रिय उसके अधीन रहा करता था ॥ ५६ ॥ एक समय कपोतिनी प्रथम गर्भवती हुई तो पतिव्रता कपोतिनीने अपने समीप आये पतिके समीप ही अपने घरमें अंडे दिये ॥५७॥ कुछ समय बीतनेपर उन अण्डोंमेंसे अचिन्तनीय हरिकी शक्तियोंसे हाथ पांव आदि युक्त बच्चे उत्पन्न हुए और उनके कोमल अंगोंमें रूएँ हुए ॥५८॥ इसके उपरांत ये दोनों कपोत कपोतिनी प्रसन्न हुए और अपने बच्चोंका यत्नसहित पालन करने

यं यं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता ॥ तं तं समानयत् कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥ कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ॥ अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥ तेषु काले व्यजायन्त रचितावयवा हरेः ॥ शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलाङ्गतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दम्पती पुत्रवत्सलौ ॥ शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥ तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥ प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योऽन्यं विष्णुमायया ॥ विमोहितौ दीनधियौ शिशून् पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थं तौ कुटुम्बिनौ ॥ परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः ॥ जगृहे जालमावृत्य चरतः स्वालयान्तिके ॥ ६३ ॥

लगे, पुत्रोंमें स्नेह बहुत हुआ और दिन-दिन अपने बच्चोंका मधुर वचन सुननेसे उनको बड़ा सन्तोष प्राप्त हुआ ॥५९॥ उनके पंखोंसे जब अपना स्पर्श हो तब बहुत सुख पावें, प्रसन्न हो जायँ, अपने पुत्रोंके मुखकी सुन्दर चेष्टा, उनके वचन और अपने निकट आनेसे परमसुख प्राप्त करने लगे ॥ ६० ॥ उस स्नेहसे बद्धहृदय हो हरिकी मायासे परस्पर मोहित हुए अति दीनबुद्धि ये स्त्री पुरुष बच्चोंको पालने लगे ॥६१॥ एक दिन ये दोनों कुटुम्बी कपोत वनके चारों ओर बालकोंके अन्नके लिये बड़ी देरतक अभिलाषासे फिरे ॥ ६२ ॥ अपनी इच्छासे वनमें फिरते किसी एक क्रूर वधिकने अपने घोसलेके निकट चुगते बालकोंको देख जाल रोपकर पकड़ लिये ॥ ६३ ॥

इसके उपरांत ये कपोत कपोतिनी हर्षसंयुक्त जो प्रजाका चुग्गाचारा लेने गये थे, लेके अपने घरमें आये ॥ ६४ ॥ तो वह कपोतिनी अपने बालकोंको जालमें अति दुःखित पुकारता देखकर आप भी पुकारती हुई दौड़ी ॥ ६५ ॥ वह कपोतिनी बहुत स्नेहसे बँधी दुःखितचित्त जालमें बँधे बालकोंको देख हरिकी मायासे ज्ञानरहित हो आप भी जालमें बँध गयी ॥६६॥ इसके उपरांत वह कपोत भी अपनेसे अधिक प्यारे बालकोंको और अपने समान स्त्रीको भी बँधी देख अति दुःखित हो विलाप करने लगा ॥ ६७ ॥ अहो ! देखो मैं अल्प पुण्य हूँ, मूर्ख हूँ इन भोगोंसे अब भी तृप्त न हुआ, देखो मैंने कुछ पुण्य नहीं किया, इसी लिये धर्म, अर्थ, काम साधक मेरा घर नष्ट

कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥ गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥६४॥ कपोती स्वात्मजान् वीक्ष्य बालकान् जालसंवृतान् ॥ तानभ्यधावत् क्रोशन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥६५॥ साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥ स्वयं चाबध्यत शिचा बद्धान् पश्यन्त्यपस्मृतिः ॥६६॥ कपोतश्चात्मजान् बद्धानात्मनोऽप्यधिकान् प्रियान् ॥ भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥६७॥ अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ॥ अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः॥६८॥अनुरूपाऽनुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥ शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः॥६९॥ सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥ जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवावृतान् शिग्भिः प्रत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥ स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥७१॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ॥ कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥

हो गया ॥ ६८ ॥ यह स्त्री मेरे अनुकूल और पतिव्रता थी सो आज मुझे सूने घरमें छोड़कर साधु पुत्रोंसहित स्वर्गको जाती है ॥ ६९ ॥ मेरे स्त्री पुत्र सब मरे, मैं दीन, विधुर अर्थात् रंडुवा और अतिदुःखित हुआ अब किसलिये जीनेकी इच्छा करूँ, मेरा जीवन दुःखरूप है ॥ ७० ॥ इस प्रकार वह कपोत विलाप करता उन बालकोंको और अपनी प्रियाको मृत्युसे ग्रसे जालमें चेष्टा करते देख दीन हो आप भी उस पुरुषके देखते जालमें जा पड़ा ॥७१॥ इसके उपरांत उस गृहस्थ कपोतको और कपोतिनी तथा उसके बालकोंको ले कार्य सिद्ध

होनेपर वह दुष्टवधिक अपने घरको चला गया ॥७२॥ अवधूत बोले कि हे यदु ! जिस प्रकार कुटुम्बी कपोत अशान्तचित्त हुआ उसी प्रकार यह पुरुष सुखदुःखमें ही रतिमान दीन होकर कुटुम्बका भरण पोषण करते कुटुम्बसहित दुःख ही प्राप्त करते हैं, सुख कभी नहीं पाते; किन्तु कपोतकी भांति बँध जाते हैं॥७३॥ जो पुरुष मुक्तिके खुले द्वाररूप इस मनुष्य लोकको पाकर कपोतके समान गृहोंमें आसक्त होता है, वह उत्तम गतिपाकर भी अधोगतिमें पड़ता है, घरकी आसक्ति पशु पक्षियोंको भी अनर्थ देती है, तो मनुष्यको दे तो इसमें कहना ही क्या है ? यह विद्या मैंने कपोतसे सीखी, इसलिये कपोत गुरु हुआ (८) ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश स्कन्धे भाषाटीकायामवधूतगीतेऽष्टगुरुनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा—इस अष्टम अध्यायमें, दत्तात्रेय सुजान । नवमें अजगरकी

एवं कुटुम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्रिवत् ॥ पुष्णन्कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥ ७३ ॥ यां प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥ गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥ इति श्रीभा० म० एका० अवधूतगीतेऽष्टगुरुनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैन्द्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥ देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥ १ ॥ ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा ॥ यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥ शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ॥ यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३ ॥ ओजः सहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ॥ शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि ॥ ४ ॥

कथा, सो सब कहों बखान ॥ हे राजन् ! प्रारब्धके कर्मोंका भोग अवश्य करनेसे ही छूटता है, इसलिये कर्मोंके उद्यमसे वृथा आयु न खोवे, इसपर अजगर की सीख अवधूतजी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन पुरुषोंको देहाभिमान है उन्हें इंद्रियोंका सुख नरकमें भी होता है, जैसे दुःख विना इच्छाके होता है, वैसे ही सुख भी होता है इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि सुख की चाहना न करे ॥ १ ॥ उद्यम विना अनायाससे जो कुछ प्राप्त हो सरस अथवा विरस हो, थोड़ा या बहुत हो उसे प्रसन्नतापूर्वक ले सबसे उदासीन रहे, शरीरके निर्वाहमात्र ही ग्रहण करे जिस प्रकार अजगर रहता है ॥२॥ जिस दिन कुछ न प्राप्त हो उस दिन विना भोजन किये ही सो रहे तो अवश्य अजगरके समान ईश्वर देगा, उद्यम न करे इस प्रकार धैर्यसे रहे ॥ ३ ॥ यद्यपि इंद्रिय समर्थ हों, मन तुष्ट हो, शरीर पुष्ट हो परन्तु तो भी कुछ कर्म

न करे, जागता ही पड़ा रहे, किसी वस्तु की अपेक्षा हो तो भी यत्न न करे, इस भांति निरपेक्ष होकर रहे (९) ॥ ४ ॥ अब जो समुद्रसे सीखा है सो कहते हैंः-जैसे समुद्रजल निश्चल है वैसे ही अन्तःकरणमें प्रसन्न रहे, समुद्र महागम्भीर है, उसका पार और अन्त नहीं जिसको कोई लांघ न सके, कोई पकड़ न सके; क्षोभ न कर सके, यह सब गुण समुद्रसे सीखे हैं, यही महात्माओंको उचित है ॥५॥ जैसे समुद्र चौमासेमें नदियोंके जलसे बढ़ता नहीं, ग्रीष्ममें सूखता और घटता नहीं उसी प्रकार योगिराजोंको चाहिये कि जो कुछ मिले उसीमें सन्तोष करे, यदि न मिले तो खेद न करे, केवल एक नारायणके विषे ही तत्पर होकर विषयोंसे दूर रहे (१०) ॥ ६ ॥ इंद्रियोंके पांच विषय हैं, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, इनमें आसक्त होनेसे यह जीव नष्ट हो जाता, जैसे पतंग, भ्रमर, गज, हरिण, मीन इत्यादिक नाशको

मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥ अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥ ५ ॥ समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ॥ नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ॥ प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ७ ॥ योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ॥ प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकंस्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्तेत यावता ॥ गृहानहिंसन्नातिष्ठेद् वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥

प्राप्त होते हैं। इसलिये इन पांच विषयोंमें आसक्त न हो, यह बात इन पांचोंके पाससे सीखी हैं। इनमें पहले पतंगसे जो सीखी हैं सो कहते हैंः-जैसे पतंग अग्निका रूप देख भ्रमके वश होकर उसमें जा पड़ता है ॥७॥ उसी प्रकार यह स्त्री देवमाया है, सुवर्ण, आभरण और वस्त्रादि मायारूप विलाश देख उसके हावभावसे मोहित होकर अजितेंद्रिय लोभी पुरुष भोगकी इच्छासे अन्धकूपमें जा पड़ते हैं। उनकी दृष्टि नष्ट हो जाती है इसलिये अन्धकूपको नहीं जानते, रूप देखते ही उत्तमतासे नष्ट हो जाते हैं, यह विद्या पतंगसे सीखी (११) ॥ ८॥ अब भ्रमरसे जो सीखी है सो कहते हैंः-भ्रमर दो प्रकारका होता है, एक शहदकी मक्खी, दूसरा भौंरा। जो मुनि होता तो थोड़ा ग्रास मात्र मांग ले जितनेसे देह रहे, परन्तु एकही 'घरसे न मांगे जिससे गृहस्थानको पीड़ा हो, जैसे भ्रमर सुगंधके लोभसे एक कमलमें ही बसे

तो उसमें बँध जाय, वैसी ही यह एक ठौर मांगनेसे बँध जाते हैं ॥ ९ ॥ चतुर मनुष्यको चाहिये कि सब शास्त्रोंसे सारवस्तु ग्रहण कर ले, शास्त्र छोटे हों अथवा बड़े हों, सार सबका ले, जैसे भ्रमर पुष्पोंमेंसे मकरंदका सार लेता है यह बात भ्रमरसे सीखी है ॥ १० ॥ भ्रमरका दूसरा नाम मधुकर है, मधुकर मधुमक्खियोंमें ही रहता है उन मधुमक्खियोंसे जो सीखा है सो कहते हैंः—मुनि भिक्षाको ले आवे परन्तु सांझको अथवा दूसरे दिनको संग्रह न रखे, पाणिपात्रमें लेकर उदरपात्र पूर्ण करे, मधुमक्खीकी नाई संग्रह न करे, देखो मधुकी मक्खी सब वृक्षोंके पुष्पोंका रस संग्रह करके एक मुहाल बनाती है, वह शहद अनेक रोगोंको दूर करता है वैसे ही मुनि लोगोंको चाहिये कि शास्त्रोंमेंसे ऐसा उत्तम सार निकालें जो मनुष्योंके मायारूप रोगोंको हरे ॥ ११ ॥ और जो मोहमें फँसकर संग्रह करे तो नष्ट हो, जैसे मधुमक्खी मधु-

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ॥ सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ १० ॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ॥ पाणि पात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ११ ॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः ॥ मक्षिका इव संगृह्णन्सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥ पदाऽपि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ॥ स्पृशन्करीव बध्येत करिण्या अङ्गसङ्गतः ॥ १३ ॥ नाधिगच्छेत् स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ॥ बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४ ॥ न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसंचितम् ॥ भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥ १५ ॥

सहित नष्ट हो जाती है ॥ (१२) ॥ १२ ॥ अब हाथीकी सीख कहते हैंः—भिक्षुक काष्ठकी स्त्री पूतरीको पांवसे भी न छुवे और यदि छुवे तो बँध जाय, जैसे हाथी हथिनीके अंगसंगसे बँध जाते हैं, यह विद्या मैंने हाथीसे सीखी ॥ १३ ॥ जो बुद्धिमान् हो तो कभी स्त्रीके निकट न जाय, जाय तो अवलम्बन करके पिटे, क्योंकि स्त्री आत्माकी मृत्यु है जैसे और बलवान् हाथियोंसे हाथी मारा जाता है (१३) ॥१४॥ जो कोई मधुमक्खियोंके पास जाकर और उन्हें छुड़ाकर मधु हरकर ले आता है वह मधुहा कहाता है, जो मनुष्य लोभी हैं और अनेक दुःखोंसे धनसंचय करते हैं, न दान करते हैं, न आप भोग करते हैं, तो उस धनका भोग और ही कोई करेगा, जैसे मक्खी ठौर-ठौरसे मधु लाकर

संग्रह करती है परन्तु भोग और ही कोई करता है, यह धनके संग्रहका परिणाम है ॥ १८ ॥ अतिदुःखसे संचय किये हुए धनको ग्रहण करे, मनोरथोंकी चाहना करनेवाले गृहस्थोंके पहले संन्यासी भोजन करता है, जैसे मधुहा मक्खियोंसे प्रथम भोजन करता है संन्यासी और ब्रह्मचारी रांध अन्नके स्वामी हैं, इनको पहले दिये विना जो पुरुष भोजन कर लेता है वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है (१४)॥१६॥ संन्यासी वनमें फिरते हैं, गांवके गीत प्राकृत कभी नहीं सुनते। यदि सुनें तो बंधनमें पड़ जायँ जैसे मृगगण वधिकके गीत सुनकर मर जाते हैं यह विद्या हरिणसे सीखी ॥१७॥ गांवके गीत, नृत्य, वादित्र सुन और उनके वशमें हो बंधनमें पड़ते हैं जैसे मृगीके पुत्र ऋष्यशृङ्गऋषि वेश्याओंके विषयसम्बन्धी नाच वाद्य और गाना सुननेसे ही उन वेश्याओंके खिलौनेके समान वशमें हो गये (१९) ॥१८॥ मीनसे जो विद्या सीखी

सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः ॥ मधुहेवाग्रतो भुङ्क्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतं न शृणुयाद् यतिर्वनचरः क्वचित् ॥ शिक्षेत हरिणाद् बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् ॥ आसां क्रीडनको राजन् ऋष्यशृङ्गो मृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनो-रसविमोहितः ॥ मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥ इंद्रियाणि जयन्त्याशु निराहारा मनीषिणः ॥ वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥ तावज्जितेंद्रियो न स्याद् विजितान्येन्द्रियः पुमान् ॥ न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥

सो कहते हैं:—यह मूर्ख मनुष्य अति बलवंत जिह्वाके वश हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, जैसे वंसीके लोहमें मांस लगाते हैं, उसके स्वादसे मछली वंसीको पकड़ती है तो मृत्युको प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ पंडितजन आहारको त्यागकर शीघ्र इंद्रियोंको जीत लेते हैं, परन्तु एक रसेन्द्रियको नहीं जीत सकते, क्योंकि आहार त्यागनेसे जिह्वाका लोभ बढ़ता है ॥ २० ॥ जिस पुरुषने और इंद्रियें जीत ली हैं वह भी तबतक जितेंद्रिय नहीं होता, जबतक जिह्वाको न जीते, क्योंकि जो जीभको जीते तो जानो कि सब जीते। यहां अभिप्राय यह है कि जो केवल आहार छोड़िये तो और इंद्रियोंकी जय हो, रसनेन्द्रिय बढ़े और भोजन करे तो रसकी आसक्तिसे सब इंद्रियोंको लोभ होता है, इसलिये

रसकी आसक्ति छोड़कर ओषधिके समान अन्न ले (१६) ॥ २१ ॥ अब पिंगलाका उपाख्यान कहते हैंः—अवधूतजी बोले कि हे महाराज ! पिंगला नामक एक वेश्या पहले विदेह नगरमें थी, उससे भी मैंने कुछ सीखा है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! एक दिन उस कामचारिणी वेश्याने द्वारेपर नगाड़े धरकर यह संकेत किया कि जो पुरुष इस नगाड़ेपर जितने डंके मारे वह रात्रिमें मेरे पास आकर उतने हजार रुपये देगा, इस प्रकार समस्या बनायी, इतनेमें ही मैंने फिर नगाड़ेपर दश-बीस दंड़े लगा दिये और सामने जो एक दुकान खुली पड़ी थी उसमें जा बैठा, उस वेश्याने समझा कि आज कोई बड़ा धनी पुरुष आया, इस आशापर कंतको रतिस्थानमें ले जानेकी इच्छासे अत्युत्तम रूप

पिङ्गला नाम वेश्याऽऽसीद् विदेहनगरे पुरा ॥ तस्या मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनन्दन ॥ २२ ॥ सा स्वैरिण्येकदा कान्तं सङ्केत उपनेष्यती ॥ अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥ मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥ ताञ्छुल्कदान्वित्तवतः कान्तान्मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥ आगतेष्वपयातेषु स सङ्केतोपजीविनी ॥ अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥ एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलम्बती ॥ निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥ तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः ॥ निर्वेदः परमो जज्ञे चिन्ताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ॥ निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥ २८ ॥

धारण किये सायंकालके समय द्वारपर आकर स्थित हुई ॥२३॥ उस वेश्याने मार्गमें आते हुए धनवान् मोलके दाता पुरुषोंको देख अपने मनमें जाना कि यह भोगके योग्य हैं, क्योंकि उसके तो अधिक अर्थकी ही कामना थी ॥२४॥ उनको आये और गये देखकर और कोई धनवान् मुझे बड़ा दाता प्राप्त होगा, इस आशासे वह संकेतकी जीवनहारी वेश्या द्वारपर बैठी रही ॥ २५ ॥ इस प्रकार दुराशासे जागते हुए द्वारपर आवे कभी भीतर जाय इस भांति अर्धरात्रि हो गयी ॥२६॥ उसका धनकी आशासे चित्त दीन हो गया, मुख सूखने लगा और चिंतासे परमवैराग्य उत्पन्न हो गया उस वैराग्यसे जो कहा सो सुनो ॥ २७ ॥ इस प्रकार धनकी आशासे चित्त दीन हुआ मुख

* शंका—ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मुनियोंने अनेक जन्म तप किया ओर तपस्या ही करते करते अनन्त युग बीत गये, परंतु ज्ञानकी प्राप्ति मुनियोंको नहीं हुई, ज्ञान ऐसा महा कठिन है और पिंगला वेश्याने कभी भी सुन्दर कर्म नहीं किया कि, जिन कर्मोंसे परमेश्वर प्रसन्न हों ऐसी पतित महाअपवित्र पिंगला गणिका क्षणमात्रमें ज्ञानको कैसे प्राप्त हो गई यह बड़े आश्चर्यकी बात है ।

उत्तर—जो काम करनेके लिये ब्रह्माने जिस प्राणीको बनाया है, वह प्राणी उसी कामको करे तो किसी प्रकारका दोष नहीं लगे देखो! हरिश्चन्द्रने चाण्डालकी नोकरीकी और मरघटमें मुर्दोंको उस समय फेंकने देता था जब अपना दंड-

सूखने लगा, निर्वेदचित्तसे उस समय कामकंदलाने जो गाया सो मैं कहता हूँ तुम सुनो—हे राजन् ! वह मनमें विचार करती है, कि वैराग्य पुरुषके दुराशा पास काटनेको खड्ग है। जिसको वैराग्य नहीं उस पुरुषके देहके बन्धन नहीं छूटते॥२८॥२९॥पिंगला बोली—अहो देखो ! मेरे लोभका विस्तार कि मैंने अपना मन न जीता, मैं विवेक रहित हूँ, जो ऐसे दुष्टोंको प्रिय मानकर अपना अभिलाष पूर्ण किया चाहती हूँ॥३०॥ अपना अतिप्रिय निकट ही सदा रहता है, अति सुखकारी रतिका दाता, धनदाता परन्तु नित्य प्रियको छोड़ दुःखित हुई चिंता शोक

नह्यङ्गाजातनिर्वेदो देह बन्धं जिहासति ॥ यथा विज्ञानरहितो मनुजो ममता नृप ॥ २९ ॥ पिङ्गलोवाच ॥ अहो मे मोहवितर्तिं पश्यताऽविजितात्मनः ॥ या कान्तादसतः कामं कामये येन बालिशा ॥ ३० ॥ सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ॥ अकामदं दुःखभयादिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥३१॥ अहो मयाऽऽत्मा परितापितो वृथा साङ्केत्यवृत्त्याऽतिविगर्ह्यवार्तया ॥ स्त्रैणान्नराद्याऽर्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥३२॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम् ॥ क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति काऽन्या ॥ ३३ ॥ विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥ याऽन्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥ ३४ ॥

मोहको देनेवाले तुच्छ मनुष्योंका मैंने सेवन किया, न तो उनसे मेरा काम पूर्ण होता है, न सुख ही होता है, अतः मैं मूढ़ हूँ ॥ ३१ ॥ अहो ! मैंने यह आत्मा वृथा सताया, जिससे अतिनिन्दासंयुक्त शोकसे ग्रसे धन और रतिकी इच्छासे मेरी देह बिकी ॥३२॥ हाथ पात्रोंके हाड़ थूनी पसलियोंके हाड़ बांस और पीठके हाड़ जहां बरेंडा है, ऐसा शरीर रूप घर त्वचा रोमनखसे ढका है, जिसके नौ द्वार स्रवते हैं, सो विष्ठा मूत्रसे पूर्ण नरकरूप कांतको मेरे विना कौन स्त्री सेवेगी ? ॥३३॥ इस विदेह राजाके नगरमें एक मैं ही अति मूढ़ हूँ, क्योंकि जो मैं असाध्वी

-ले लेता था, परंतु भगवान् उसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए, और ऐसे ही सदन कसाईपर प्रसन्न हुए सो अपने कारबारमें किसी प्रकारका दोष नहीं, परंतु अपने कुलका धर्म करके कुछ देर भगवान्‌का प्रीतिसहित ध्यान करे तो निस्सन्देह भगवान् उससे प्रसन्न हो; ऐसे ही ब्रह्माने जो कर्म करनेके लिये पिंगलाको बनाया था वही पिंगला करती थी क्योंकि जनकपुरीमें सब प्राणी अपने-अपने कुलके धर्मको करके पीछे भगवान्‌को प्रीति करते थे ईश्वर को नहीं भूलते थे स्त्री पुरुष सब भगवान्‌का नाम जपते थे और पिंगला भी पुरुषोंके संग रति करे और पीछे स्नान करके दूसरे वस्त्र पहन भगवान्‌का ध्यान करती थी और ईश्वरकी प्रार्थना करके अपनी देहसे जो पाप होते थे, उनको बारम्बार क्षमा कराती थी, उस दिन भगवान्‌की कृपा हो गई जो उसने पाप कर्मसे ग्लानि मानी और ज्ञान में लय हो गई, एक क्षणमें पिंगलाको ज्ञान हुआ तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं ।

साक्षात् अच्युत परमात्माको छोड़ तुच्छ कामभोगकी इच्छा करती हूँ ॥३४॥ यह ईश्वरही सब देहधारियोंका आत्मा और सुहृद है, परम प्रिय नाथ है, क्योंकि अपने देहको देकर दूसरेको मोल ले लेता है, इसलिये अब उसीसे लक्ष्मीके समान रमण करूँगी ॥३५॥ विषय और कामके दाता मनुष्य और देवता ये सब उत्पत्ति मरण संयुक्त हैं, कालसे ग्रसे है वे स्त्रीकी कामना क्या करेंगे ॥ ३६ ॥ अब अपने भाग्यकी सराहना करती है कि मुझे जान पड़ता है कि निश्चय मुझपर भगवान् विष्णु किसी कर्मसे प्रसन्न हुए हैं, जिससे दुष्ट आशा संयुक्त मुझे सुखदायक ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥३७॥ कदाचित् कहो कि धनकी प्राप्ति न हुई उसका खेद हुआ, विष्णु क्या प्रसन्न हुए ? तो कहते हैं कि मंदभागिनीको ऐसे क्लेश वैराग्यके कारण नहीं होते, क्योंकि इसी प्रकार और भी पहले दिन हो गये थे जब धनकी प्राप्ति न हुई

सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चाहं शरीरिणाम् ॥ तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥३५॥ कियत्प्रियं ते व्यभजन् काम ये कामदा नराः ॥ आद्यन्तवन्तो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३६ ॥ नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा ॥ निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥३७॥ मैवं स्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ॥ ये नानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥३८॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः ॥ त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ॥ ३९ ॥ संतुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती ॥ विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥ ४० ॥ संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥ ग्रस्तं कालाहिनाऽऽत्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४१ ॥ आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाऽखिलात् ॥ अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ४२ ॥

थी, अर्थात् कोई पुरुष नहीं आया था, आज मुझे क्लेशसे वह वैराग्य हुआ है, जिससे यह पुरुष गृहादिक बन्धन छोड़कर शांतिको प्राप्त होता है ॥३८॥ ईश्वरने मेरा यह बड़ा उपकार किया है, इस उपकारको मैंने माथेपर चढ़ा लिया और नीच लोगोंके योग्य दुष्ट आशाओंको त्याग मैं उन्हीं जगदीशकी शरण लेती हूँ ॥ ३९ ॥ अब मैं सन्तुष्ट हो परमेश्वरमें श्रद्धा करती; यथालाभसे जीविका करती निश्चयसे आत्मामें ही स्मरण कर आनन्दसे विहार करूँगी ॥ ४० ॥ जो पुरुष संसाररूप कुएँमें पड़ा है, विषयोंसे अन्ध दृष्टि हैं कालस्वरूपसे ग्रस रहा है, ऐसे आत्माकी रक्षा करनेकी इन आत्मस्वरूप भगवान् विना और कौन समर्थ है ? ॥ ४१ ॥ जब सबसे यह आत्मा विरक्त हुआ

तब आप ही अपनी रक्षा करनेको सावधान हुआ, इस जगत्को, जो कालस्वरूपसे ग्रसित है, अप्रमत्त होकर देखे ॥ ४२ ॥ अवधूत बोले कि हे महाराज! इस भांति निश्चित मतिसे धन और विषयभोगकी आशा छोड़ शांतिको प्राप्त हो वह वेश्या शय्यापर सो गयी ॥४३॥ इसमें मैंने फलितार्थ इतना लिया है, कि आशा परम दुःखरूप है, आशाको छोड़ बैठना ही परमसुख है, जैसे पिंगला कांतकी आशा छोड़ सुखसे सोई है। अतःसाधुओंको संग्रह करना उचित नहीं है क्योंकि इससे दुःख होता है यहां एक दृष्टान्त है * (१७) ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भाग-

ब्राह्मण उवाच ॥ एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजाम् ॥ छित्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश स ॥ ४३ ॥ आशा हि परमं दुखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥ यथा संच्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महा० एकाद० अजगरादिनवगुरुशिक्षानिरूपणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥ अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिञ्चनः ॥ १ ॥

वते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादेऽजगरादिनवगुरुशिक्षानिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ दोहा—इस नवमें अध्यायमें, कुररीसों उपदेश। जो पायो सो कहतु हौं, सुनहु कृपालु नरेश ॥ अवधूतजी बोले कि हे यदु! अब कुरर पक्षीसे जो मैंने सीखा है सो कहते हैंः—मनुष्योंको जो जो वस्तु प्रिय हैं वे वे मुझे दुःखदायी हैं, यह जानकर जो पुरुष संग्रहको छोड़े वह अनन्त सुखको प्राप्त होगा ॥ १ ॥

* दृष्टान्त—एक बाबाजीने महाकष्टसे पचीस अशरफी संग्रह की, जब तब निकाल चुटियामे धरा करते थे,एक दिन किसीने देख लिया सो बाबाजीसे आकर बोला-महाराज! आपका आज मेरे यहां निमंत्रण है। बाबाजी बोले अच्छा, वह घर लिवा ले गया और इतना हलुवा पूरी खिलाया कि बाबाजीसे उठातक न गया, उसने खाट बिछा दी और अपनी स्त्रीसे कहा कि इनके चरण खूब दाबना और मैं जाता हूं, यह तो सेवा करने लगी और वह पुरुष थोड़ी देरमें व्याकुलतासे घरमें आकर आलेमें ढूंढ़ने लगा, स्त्रीने कहा—क्या ढूढ़ते हो? तो उसने कहा कि यहां पचीस अशरफी रखीं थीं सो कहां गयीं? अब बाबाजी सकुचाये वह स्त्रीको मारने लगा कि तूने बाबाजीको दे दी होगी? बाबाजी बोले हमारे कपड़े देख लो, दो चार आदमी इकट्ठे हो गये, इसने बाबाजीकी चुटिया देखी तो उसमे से अशरफी निकली, बाबाजी बड़े लज्जित हुए,धनका धन गँवाया चोरके चोर हुए। जब बाबाजी चले तो इसने हाथ जोड़कर कहा कि महा राज! फिर भी दर्शन देना, तो बाबाजी बोले कि पचीस अशरफी और कर लूंगा तब आऊंगा।

यहां एक दृष्टान्त कहते हैंः—एक कुरर पक्षीने मांस पाया तो उससे बलवान् और पक्षी आकर मांस हित उसको मारने लगे, तब इसने वह मांस डाल दिया तो वह उसे छोड़ मांसमें लिपट गये, तब वह छूटकर अत्यन्त सुखी हुआ। इसी प्रकार मुनिजनोंको चाहिये कि संसारके व्यवहारोंको मांसकी नाईं परित्याग करें (१८) ॥२॥ अब बालककी सीख कहते हैंः—कि हे राजन् ! न तो मुझे मान अपमानका सुख दुःख है, न घरकी चिन्ता है, न पुत्रोंकी चिन्ता है, एक आत्माके ही संग क्रीड़ा करता फिरता हूँ, जैसे बालक चिन्तासे छूटकर आनन्दमें मग्न

सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ॥ तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥२॥ न मे मानावमानौ स्तो न चिन्ता गेहपुत्रिणाम् ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥ द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ ॥ यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥४॥ क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् ॥ स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्यवहारार्थं शालीन्रहसि पार्थिवः ॥ अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः सङ्खाः स्वनं महत ॥ ६ ॥ सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥ बभञ्जैकैकशः शंखान् द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत ॥७॥

रहते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दो ही मनुष्य चिंतारहित हो परमानन्दमें मग्न रहते हैं, एक तो उद्यमसे रहित अज्ञ बालक, दूसरा गुणरहित ईश्वरको प्राप्त होनेवाला *(१९) ॥४॥ कुमारीसे जो विद्या सीखी है सो कहते हैंः—कहीं एक कन्या थी, उसके भाई बन्धु पिता कहीं गये थे, इसके पीछे कन्या बिदा करानेके लिये घर पाहुने आये तो उनका आतिथ्यभाव उसने आप ही किया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! कन्या उनके भोजन करानेके लिये एकान्तमें बैठकर धान कूटने लगी तो उसकी चूड़ियोंका बड़ा शब्द होने लगा ॥६॥ वह कन्या आप धान कूटना

* शंका—उद्धवजीसे श्रीकृष्णने कहा था कि बालकोंके मनमें चिंता नहीं रहती परंतु जो बालकोंको चिन्ता न होती तो जन्मसे ही क्यों रोते ! जिस समय माताके उदरसे पृथ्वीपर गिरते है, उसी कालसे रात दिन रोते हैं,जो प्राणी चिन्तासे रहित हं उनको रोनेसे क्या प्रयोजन ? और बालकोंका तो जबतक बालपन रहता है तबतक रोते हं ?

उत्तर—ज्ञानकी वार्तामें सज्जन लोग बालकको बालक नहीं कहते। पंडित लोग बालक उसको कहते हैं कि जो प्राणी संसारकी तथा अपने कुलकी लाजको तथा भयको त्याग दे, इस प्रकार पंडितोंके वचनके प्रमाणसे कृष्णचन्द्र भी उसी बालकको कहते हैं कि चिन्ता नहीं रहती, जन्म लिये हुए बालकको नहीं कहते।

भा० ए०
॥२३॥

निंदित दरिद्रका कर्म जान क्रमसे एक-एक चूड़ी उतारने लगीं, केवल हाथमें दो-दो चूड़ी रखीं ॥७॥ परन्तु धान कूटनेमें दो-दो चूड़ियोंका भी शब्द होता रहा जब उसने उनमेंसे भी एक-एक उतार दी तो शब्दका होना बन्द हो गया ॥८॥ हे शत्रुनाशक ! लोकोंका तत्त्व जाननेकी इच्छासे सर्वत्र घूमते हुए मैंने कुमारीको इस प्रकार धान कूटती देख यह उपदेश उससे सीखा ॥९॥ कि बहुतोंका जहां वास हो वहां अवश्य कलह होता है जो दो हों तो भी आपसमें बातें करें, इसलिये अकेला ही विचरण करे, जैसे कुमारीका कंकण (२०) ॥१०॥ अब बाण बनानेवालेसे जो सीखा है सो कहते हैं:—मनको ईश्वरमें स्थिर कर प्राणोंको वश कर आसन जीते, वैराग्यके अभ्याससे मन स्थिर कर सावधान रहे ॥११॥ गुण और उनके कार्य-रहित यह मन परमानन्दरूप भगवान् विषे जब स्थान पावे तो शनैः शनैः कर्मवासना छोड़े, जब इसको

उभयोरप्यभूद्घोषो ह्यवघ्नन्त्याः स्म शंखयोः ॥ तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिन्दम ॥ लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥ वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ॥ एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या एव कङ्कणः ॥ १० ॥ मन एकत्रसंयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥ वैराग्याभ्यासयोगेन ह्रियमाणमतन्द्रितः ॥ ११ ॥ यस्मिन्मनो लब्धपदं यदेतच्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून् ॥ सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ॥ १२ ॥ तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किञ्चिद्बहिरन्तरं वा ॥ यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥ एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥

भा० टी०
अ० ९

सत्त्वगुण बढ़े तो रजोगुण, तमोगुणको दूर करके ब्रह्ममें लीन हो, तब ब्रह्म विना और कुछ दृष्टिमें नहीं आता ॥१२॥ इस प्रकार जब आत्मासे चित्त मिल जाय तो बाहर भीतरका भेद नहीं रहता, सब एकरूपसे दीखते हैं, जैसे बाण बनानेवालेका चित्त बाण बनानेमें ऐसा लगा था कि निकट होकर सेना समेत राजा चला गया परंतु उससे न जाना, वैसे ही साधुओंको चाहिये कि ईश्वरमें ऐसा मन लगावे कि और कुछ सुध न रहे (२१) ॥ १३ ॥ अब जो सर्पसे सीखा है सो कहते हैं:—जैसा सर्प सब लोकोंसे डरता हुआ अकेला ही रहता है, एक ही ठौर घर बनाकर नहीं रहता; सदा सावधान रहता है, एकान्तमें ही रहता है दूसरेकी सहायता नहीं चाहता, अपनी गति दूसरेसे

छिपाये रखता है और विष-निर्विष जाननेमें नहीं आता ऐसा रहता है, थोड़ा बोलता है इसी प्रकार मुनियोंको रहना चाहिये ॥ १४ ॥ यह देह अनित्य है, इसके लिये घर न बनावे, क्योंकि घर दुःखका रूप है और फल कुछ नहीं। जैसे सर्प पराये घरमें प्रविष्ट होकर सुखसे वसता है, परंतु आप घर नहीं बनाता ॥१५॥ एक नारायणदेव ईश्वर आप इस विश्वको अपनी मायासे बनाते हैं, फिर प्रलयमें कालशक्तिसे संहार करके आप ही रखते हैं ॥ १६ ॥ तब एक अद्वितीय आत्माधार सबका आश्रय एक आप ही रहते हैं, वे अपने इस समतारूप कालसे सत्त्वगुण आदिशक्ति मायामें लीन करते हैं, वही आदिपुरुष माया और पुरुषके ईश्वर हैं ॥१७॥ ब्रह्मादिक और मुक्त पुरुषोंके पाने योग्य हैं, मोक्षके रूप केवल अनुभवानन्दके पात्र निरुपाधि और अनन्त हैं ॥१८॥ हे शत्रुनाशक! जब सृष्टि उत्पन्न करते

गृहारम्भो हि दुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ॥ सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ १५ ॥ एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ॥ संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः ॥ १६ ॥ एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ॥ कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ॥ सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ॥ केवलानुभवानन्दसंदोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥ केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ॥ संक्षोभयन् सृजत्यादौ तया सूत्रमरिन्दम ॥ १९ ॥ तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतोमुखम् ॥ यस्मिन् प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्त्रतः ॥ तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥२१॥ यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ॥ स्नेहाद् द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥२२॥

हैं, तो केवल अपने प्रभावसे अपनी त्रिगुणमायाको क्षोभ उपजाकर उससे पहले सूत्ररूप महत्तत्त्व उपजाते हैं ॥ १९ ॥ उससे त्रिगुणरूप विश्व अहंकारद्वारा होता है, जिस महत्तत्त्वमें यह विश्व बँधा है, जिस प्राणसूत्रसे पुरुष संसारको प्राप्त होते हैं (२२) ॥ २० ॥ अब मकरीकी शिक्षाका दृष्टान्त कहते हैं:—जैसे मकरी अपने हृदयसे उगलकर तागा मुखसे निकाल फैलाकर उससे क्रीड़ा कर फिर निगल जाती है, उसी प्रकार ईश्वर स्वयं इस जगत्को बनाकर फिर संहार करते हैं ॥२१॥ यह जीव स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे युक्त बुद्धि कर जहां-जहां एकाग्र मन धारण करता है उसी-उसी रूपको प्राप्त होता है इसलिये जो ईश्वरका ध्यान करे तो ईश्वररूप हो जावे, इसमें

क्या आश्चर्य है ! (२३) ॥२२॥ हे राजन् ! जैसे भृंगीसे भीतमें रखा कीट भृंगीका ध्यान करते-करते उसी देहसे उस रूपको प्राप्त करता है (२४) ॥ २३ ॥ इस प्रकार इतने गुरुओंसे मैंने यह मति सीखी, परन्तु हे राजन् ! एक बुद्धि अपनी देहसे सीखी है सो मैं कहता हूँ, सुनो ॥ २४ ॥ देह मेरा गुरु है, क्योंकि इस देहसे मुझे वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुआ है, यह देह पीड़ासहित सदा जन्म-मरणको धारण करता है, इस देहसे यथार्थ तत्त्वोंका विचार करनेसे मुझे वैराग्य हुआ तो भी मैं इसपर प्रीति नहीं करता, क्योंकि यह कुत्ते और स्यारका भक्ष्य है, यह निश्चय कर सर्व संगरहित हो विचरता हूँ ॥ २५ ॥ जिस देहको प्रसन्न करनेकी इच्छासे स्त्री, पुत्र, धन, पशु, दास, गृह,

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुडयां तेन प्रवेशितः ॥ याति तत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्यजन् ॥२३॥ एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ॥ स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥ देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सततार्त्युदर्कम् ॥ तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथातथापि पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसङ्गः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ॥ स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः सदेहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥ २६ ॥ जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ २७ ॥

बन्धुके समूहोंका पोषण करते हैं और बहुत कष्टसे धनसञ्चय करते हैं, इतने पर भी अन्तमें यह देह आप ही नष्ट हो जाता है, फिर देहके जानेपर भी दुःख नहीं जाता, दूसरे देहका कर्मबीज उपजाये जाता है, उस कर्मसे फिर दुःख रूप देह इस प्रकार उत्पन्न हो जाता है; जैसे वृक्ष अपना बीज छोड़ता है, उसीसे फिर वृक्ष उत्पन्न हो जाता है ॥ २६ ॥ और इस देहको इस एक ओरसे जिह्वा रसके लिये खैंचती है, शिश्न स्त्रीसङ्गके लिये खैंचता है, त्वगिंद्रिय एक ओरसे स्पर्शके लिये खैंचता है, श्रवण शब्दके लिये खैंचते हैं और घ्राण गन्धके लिये

खैंचते हैं, चञ्चल दृष्टि रूपके लिये खैंचती है, कहीं कर्मशक्ति अपने विषयके लिये खैंचती है, जैसे बहुत सौत गृहस्थको लूटती हैं, उसी प्रकार ये सब इंद्रियें देहको लूटती है ॥२७॥ हे देव ! अपनी शक्ति मायासे वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी डांस, मछली अनेक प्रकारके शरीरोंको उपजाकर ब्रह्मा सन्तुष्टहृदय न हुए, परंतु ब्रह्मज्ञानकी बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंकी देह रचकर आनन्दको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ उससे यह अतिदुर्लभ मनुष्यदेह अनेकजन्म पीछे पाया है, पुरुषार्थका दाता है पर अनित्य है, यह जानकर शीघ्र मोक्षके लिये जबतक मृत्यु न हो शीघ्र यत्न करे, क्योंकि विष तो इसको सब योनिमें प्राप्त होंगे ॥ २९ ॥ इस प्रकार जब मुझे वैराग्य हुआ और ज्ञानका प्रकाश हुआ

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्याजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवान्ते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥ तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥ एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥ विचरामि महीमेतां मुक्तसङ्गोऽनहं कृतिः ॥ ३० ॥ नह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥ ब्रह्मैतदद्वितीयं हि गीयते बहुधार्षिभिः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः ॥ वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ ३२ ॥

तो आत्मनिष्ठ हुआ, इसलिये संग और अहंकार छोड़कर पृथ्वीपर फिरता हूँ ॥३०॥ यदि कहो कि तुमने बहुत गुरु क्यों किये ? गुरु तो एक करना चाहिये, तो कहते हैं कि एक गुरु से अति निश्चल ज्ञान विस्तारको प्राप्त नहीं होता, इसलिये अद्वितीय ब्रह्मको ऋषि निश्चल बहुत भांतिसे कहते हैं । कोई कहते हैं कि वह प्रपञ्चरहित है, कोई कहते हैं सप्रपंच है, जिससे भ्रम उत्पन्न होता है सो भ्रम उन गुरुओंसे निवृत्त हो जाता है, परमगुरु मुख्य ज्ञानका देनेवाला एक ही है, परन्तु ज्ञानके लिये पीछे अपनी बुद्धिसे उपदेशके अनुकूल दृष्टांत लेनेसे वह ज्ञान दृढ़ हो जाता है ॥३१॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! इतना वृत्तांत कह यदुकी आज्ञाले और गम्भीर बुद्धिवाले राजासे प्रणामको प्राप्त

हो उसको स्वीकार कर प्रसन्न हो अवधूत अपनी इच्छासे जैसे आये थे वैसे ही चले गये ॥ ३२ ॥ यह अवधूत दत्तात्रेय हैं, इनके ही वचन सुन हमारे बड़ोंके भी बड़े राजा यदु सब सङ्ग छोड़ समचित्त हो गये, यह सब श्रीभगवान्ने उद्धवजीसे कहा और कपोत, मत्स्य, मृग, कुमारी, हाथी, सर्प, पतंग, कुरर ये आठ तो त्यागके लिये गुरु किये, भ्रमर, मधुहा पिंगला यह तीनों त्याज्य और ग्राह्य अर्थके लिये गुरु किये ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे नवगुरुशिक्षानिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ दोहा–दशवें तनुसम्बन्धसे, है सिगरो संसार । तत्त्वज्ञानसे होत है, साधन और विचार ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! मेरे कहे हुए धर्मोंमें सावधान होकर मेरा आश्रय करे और वर्ण आश्रम कुलका आचरण निष्काम होकर करे ॥१॥ जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाय तो पुरुषको

अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥ सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे नवगुरुशिक्षानिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥ वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥ अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् ॥ गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ॥ २ ॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ॥ नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ॥ जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥ यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ॥ मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥

उचित है कि विषयोंमें लगे हुए प्राणी जो विषयोंको निश्चल मानकर उद्योग करते हैं उनके कार्योंके फल विपरीत होते हैं, उनको विचारता रहे, इससे निष्कामता प्राप्त होती है ॥२॥ जो विषय इंद्रियोंसे जाने जाते हैं वे सदा नहीं रहते, इसीसे वे अनेक प्रकारके प्रतीत होते हैं, परन्तु जो अनेक प्रकारके हैं वे अध्रुव हैं, जिस प्रकार मनसे उत्पन्न हुए स्वप्न और मनोरथ अनेक होनेसे चल हैं ऐसा अनुमान करनेसे निष्कामता प्राप्त होती है ॥३॥ निष्काम कर्म करे सकामका त्याग करे, मुझमें तत्पर हो आत्माके विचारमें रहे. कर्मकी विधिमें आदर करे ॥४॥ मेरे विषे तत्पर होकर आदरपूर्वक संयमोंको सेवे और सामर्थ्य हो तो शौचादिक नियमका भी सेवन करे ।इससे भी विशेष धर्म

यह है कि जो सहनशील हो; मेरे स्वरूपको जानता हो, शान्त हो सो मेरा ही रूप है, ऐसे गुरुकी सेवा करे ॥५॥ अभिमान न रखे, आलस्य न करे, असहनता न करे, स्त्रीपुत्रादिकमें ममता न करे, गुरुओंमें सुहृदता रखे, कर्ममें चित्त व्यग्र न करे, परमार्थ जाननेकी इच्छा करे, किसीकी निंदा न करे, व्यर्थ बातें न करे ॥६॥ स्त्री, सम्पत्ति, घर, खेत, स्वजन, धन इत्यादि सबसे उदासीन रहें क्योंकि सबमें एक ही आत्मा है, इससे अपनी ही भांति सबमें सुखादिक समान देखे ॥७॥ यह आत्मा स्थूल सूक्ष्म देहसे भिन्न है, सबका द्रष्टा है, व्यापक है, स्वयं ज्ञानवान् है, आकाशवत् है, जैसे अग्नि दाह्य काष्ठके मध्य ही रहता है परंतु काष्ठसे भिन्न है, प्रकाशक है और काष्ठका दाह करता है ॥८॥ जैसे काष्ठमें प्रविष्ट अग्नि ही काष्ठके संग उत्पत्ति, नाश, अल्पता, महत्त्व, नानात्व, गुणको धारण करता है वैसे यह आत्मा भी इस देहके

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ॥ असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥ जायापत्य गृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ॥ उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥ विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादात्मेक्षिता स्वदृक् ॥ यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान्गुणान् ॥ अन्तःप्रविष्ट आधत्ते एवं देहगुणान्परः ॥९॥ योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ॥ संसारस्तन्निबन्धोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् ॥ सङ्गम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः ॥ तत्संधानं प्रवचनं विद्यासन्धिः सुखावहः ॥ १२ ॥

संगसे देहके गुणोंको धारण करता है, पर देहसे भिन्न और अमर है ॥९॥ यदि कोई कहे कि देहसे आत्मा भिन्न है तो देहके गुण क्यों धारण करता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि ईश्वरके अधीन मायाके गुणसे पुरुषका यह सूक्ष्म स्थूल शरीर उपजाया हुआ है, जिस देहमें 'अहं' यह अभिमान करनेसे संसारमें गिरता है, जिस देहको 'मेरा' यह संसार काटनेको आत्मविद्या उपाय है ॥ १० ॥ इसलिये अपनेमें ही स्थित देहसे भिन्न आत्मज्ञानकी इच्छासे आत्मामें चित्त मिलाकर क्रमसे स्थूल सूक्ष्म देहादिकोंमें आत्मबुद्धिको छोड़े ॥ ११ ॥ यह ज्ञान किस प्रकार प्राप्त होता है सो कहते हैंः—आचार्यरूप नीचेकी अरणी, शिष्यरूप ऊपरकी अरणी तथा उपदेशरूप मथनका काष्ठ इनसे ब्रह्मविद्या

रूप परमसुखदायक अग्नि उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥ जिस समय बुद्धिमान् गुरुसे चतुर बुद्धिवाला शिष्य यह विद्या पाता है, तो यह विद्या गुणोंके कार्यरूप संसारकी ओर, जिनसे निर्मित होकर यह जगत् जीवके संसारका निमित्तरूप होता, उन गुणोंको भस्म कर काष्ठ रहित अग्निके समान आप भी शांत हो जाता हैं, उसी प्रकार कार्य, कारण और विद्याकी एकता होनेसे जीव परमानन्द रूप हो जाता है ॥ १३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! आत्मा स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप, नित्य और एक है। इसमें कर्ता भोक्ता धर्म देहकी उपाधिसे प्राप्त होते हैं। आत्माके अतिरिक्त और पदार्थ मायारचित हैं, इनसे विरक्त हो पुरुष मुक्तिको प्राप्त होता है, परन्तु मीमांसक कहते हैं कि 'मैं हूँ' ऐसी प्रतीति करनेवाला आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है, वही कर्मकर्ता और सुख दुःखका भोक्ता है, इसका स्वरूपभूत कोई दूसरा निर्विकार परमात्मा नहीं है, भोगके स्थानरूप लोक, भोगका काल भोगरूप कर्मोका बतानेवाला वेद भोगके साधन और भोग भोगने-

वैशारदी सातिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् ॥ गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत् स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथा-ग्निः ॥१३॥ अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः ॥ नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ॥ तत्तदाकृतिभेदेन जायते विद्यते च धीः ॥ १५ ॥

वाला आत्मा यह अनित्य हो तो वैराग्य होना सम्भव है, परंतु वह सब नित्य है इससे वैराग्य होना सम्भव नहीं। भोग्य पदार्थ बीचमें नष्ट हो जाते हैं अथवा मायामय हों तो भी वैराग्य होना सम्भव है ॥१४॥ माला, चन्दन आदि भोगोंकी स्थिति प्रवाह रूपसे नित्य हैं और यथार्थ हैं, इससे वैराग्य होना असंभव है, क्योंकि जिस दिशामें यह संसार देखा जाता है उस दिशामें पहले भी था, इस कारण जगत्का कर्ता कोई ईश्वर नहीं, आत्मा स्वयं नित्य ज्ञानमय नहीं, उसमें अनेक ज्ञानका विपर्यास होता है, एक क्षणमें घटका ज्ञान नष्ट होकर पटका ज्ञान होता है ? इस प्रकार अनेक ज्ञान उत्पन्न होते रहते हैं, पूर्वज्ञानसे पृथक् हो जाता है, इससे आत्मा नित्य ज्ञानमय नहीं। कहते हैं कि ज्ञानका विपर्यास होनेसे क्या आत्मा अनित्य हो जाता है ? नहीं। आशय यह है कि ज्ञानरूप विकार आत्मामें कुछ बाधा नहीं कर सकता, मुक्तिमें आत्मा इंद्रिय रहित है इससे उसमें ज्ञानका परिणाम न होनेके कारण जड़ता हो जायगी। इसमें मुक्तिकी

आत्मामें प्राप्ति होना पुरुषार्थरूप नहीं, प्रवृत्तिमार्ग ही इससे श्रेयस्कर है निवृत्ति नहीं ॥१५॥ हे उद्धव ! सत्य प्रवृत्ति मार्ग ऐसा ही है परन्तु आगे अनर्थका हेतु है, इन देहियोंको देहके संयोगसे संवत्सररूप कालसे जन्ममरणादि भाव वारंवार होते हैं ॥ १६ ॥ तुम्हारे ही मतमें कर्मोंके कर्त्ताओंको और सुख दुःखके भोक्ताओंको पराधीनता देखी जाती है, इसलिये ऐसे परवशका जो भजन करता है वह क्या सिद्ध है ? और जीव स्वतन्त्र हो तो उसे दुष्टकर्म वा दुःखकी प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकती ॥१७॥ इस प्रकार इस लोकमें सुख नहीं तथा और लोकोंमें भी सुख नहीं सो कहते हैं, ईर्षा, निन्दा, नाश होनेसे स्वर्गादिकमें भी कर्मोंकी विधिके जाननेवाले विद्वान् अभिमानीको किञ्चित सुख भी प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार मूर्खोंको दुःख देखनेमें नहीं आता, जो कहते हैं, कि हम कर्ममें निपुण हैं इससे सुखी हैं, यह उनका

एवमप्यङ्ग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः ॥ कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत ॥ १६ ॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते ॥ भोक्तुश्च दुःखसुखयोः को न्वर्थो विवशं भजेत् ॥ १७ ॥ न देहिनां सुखं किंचिद्विद्यते विदुषामपि ॥ तथा च दुखं मूढानां वृथाहंकरणं परम् ॥ १८ ॥ यदि प्राप्तिं विघातं च जानन्ति सुखदुःखयोः ॥ तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥ १९ ॥ को न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरन्तिके ॥ आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥ २० ॥ श्रुतं च दृष्टवद्दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ॥ बह्वन्तरायकामत्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥ २१ ॥

वृथा अहंकार है, इससे श्रेष्ठ कर्म करनेसे सुख मिलता है, यह नियम भी न रहा ॥ १८ ॥ और जो कदाचित् सुखदुःखकी प्राप्ति और विघात अर्थात् नाशको जानते हैं, वे भी इस उपायको नहीं जानते, जिससे साक्षात् मृत्यु न हो ॥१९॥ क्योंकि जब मृत्यु अपने निकट है तो अर्थ अथवा कामके प्राप्त होनेसे कौन सुखी हो सकता है ? जैसे अपराधीको मारनेको ले जाते हैं, उस समय उस पुरुषको अर्थ कामादि सुख नहीं देते ॥ २० ॥ उसी प्रकार जैसे यहां सुख नहीं ऐसे ही परलोकमें भी नहीं, स्वर्गादिकमें भी पराये सुखकी असहनता और ईर्षादिक रहती ही हैं, इससे यहांके समान वहां भी दोष है, जैसे कृषीके सफल होनेमें विघ्न होते हैं ऐसे ही यजनसे मिलनेवाले

स्वर्गमें भी भूलचूकके अनेक विघ्न होते हैं ॥२१॥ इतने परभी विघ्नको निवारण कर जो धर्म अच्छी भांति करे, उन धर्मोंमें प्राप्त होनेवाले स्थानोंमें जैसे यह प्राणी जाते हैं सो सुनो॥२२॥ इस लोकमें देवताओंको यज्ञसे सन्तुष्ट कर यज्ञके कर्त्ता स्वर्गमें जाते हैं और देवताओंके समान अपने उपार्जन किये हुए दिव्य भोग भोगते हैं ॥२३॥ और वहां अपने पुण्यसे प्राप्त हुए उत्तम विमानमें बैठ सुन्दर वेष धरे अप्स-राओंके साथ विहार करते फिरते हैं, गन्धर्व उनकी बड़ाई करते हैं ॥२४॥ किंकणी अर्थात् घुँघुरुओंके समूहसे शोभित और मनकी रुचिके

अन्तरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ॥ तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥ २२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ॥ भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३ ॥ स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ॥ गन्धर्वैर्विहरन् मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥ स्त्रीभिः कामगयानेन किंकिणीजा-लमालिनः ॥ क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतः सङ्गादसतां वाऽजितेन्द्रियः ॥ कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥

अनुसार चलनेवाले विमानमें बैठ सुखको प्राप्त हो देवताओंके बागोंमें देव स्त्रियोंके संग विहार करते फिरते हैं,परन्तु आत्मपातको नहीं जानते * ॥२५॥ स्वर्गमें वहां तक सुख करते हैं, जहां तक पुण्य पूर्ण न हो, जब पुण्य क्षीण हो जाता है, तब कालसे विना इच्छाके ही नीचे डाल दिये जाते हैं ॥ २६ ॥ यह फल जो सकाम कर्म करता है उसको है, वहां भी जो निषिद्ध प्रकार न करे तब हो और जो असत् सङ्ग करे तो

* शंका—श्रीकृष्ण भगवान् ने उद्धवसे कहा था कि, ईर्षा निन्दा आदि जो बुरे कर्म हैं, उन कर्मोंसे वेदोंके वचन नष्ट हो गये, इसमें यह शंका होती है, कि ईर्षा आदि बुरे कर्म सतयुग, त्रेता द्वापरमें भी थे ?

उत्तर—शास्त्रमें लिखा है भगवान्की देहमें धर्म और अधर्म दोनों रहते हैं, सतयुगमें अथवा और युगोंमें थोड़ा बुरा कर्म भगवान्की देहमें रहता है और किसी युगमें अधिक रहता है,क्योंकि युगोंकी मर्यादा पालन करनेके लिये दूसरी बात मत जानना, इस लिये कृष्णचन्द्रने उद्धवजीसे कहा था ।

अधर्मी हो, जितेन्द्रिय न हो, स्त्रीलंपट हो, काममें भी चित्त हो, प्राणियोंको दुःख देता हो, लोभी हो, कृपण हो ॥ २७ ॥ और जो अविधिसे पशुओंको मारकर भूत प्रेतगणको पूजते हैं, ऐसे जीव परवश हो नरकमें पड़े स्थावरके भावको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥ उन कर्मोंमें दुःख फल है। ऐसे कर्मोंको जो देहसे करते हैं वे मेरे पीछे फिर उन कर्मोंसे दुःख भोगकर वैसा ही देह धरते हैं, इसलिये जो मरेगा उसको क्या सुख है ? ॥ २९॥ यद्यपि लोकपाल कल्पपर्यन्त जीते हैं परन्तु तो भी उनको मुझ कालरूपसे भय रहता है और कल्पपर्यन्त जानेवाले लोकपालोंको भी वही भय रहता है, मेरे भयसे यह सब देवता अपना-अपना काम करते हैं, ब्रह्माकी आयु दो परार्द्ध है परन्तु उसे भी मौतका डर है ॥३०॥ कर्म कुछ ईश्वर नहीं, ईश्वर नियन्ता फलका दाता मैं हूँ, परन्तु मुझसे और उन कर्मोसे सम्बन्ध नहीं, कर्मका

पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान् यजन् ॥ नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥ २८ ॥ कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः ॥ देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥२९॥ लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ॥ ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥३०॥ गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ॥ जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥ यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ॥ नानात्वमात्मनो यावत्पारतन्त्र्यं तदैव हि ॥ ३२ ॥ यावदस्यास्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ॥ य एतत् समुपासीरंस्ते मुह्यन्ति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥

सम्बन्ध इस देहसे है, सो प्रकार बताते हैं:--प्रथम इंद्रियें कर्मोसे बनायी हैं गुण (सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण) इंद्रियोंको सृजते हैं, आत्मा कुछ नहीं करता, पर यह जीव तो इंद्रियोंके सङ्गसे 'अहं कर्ता' अभिमान धारण करता है, इसलिये कर्मोके फल भोगता है ॥ ३१ ॥ यदि कहो कि आत्मा अनेक क्यों दिखायी देते हैं, आत्मा तो एक ही सुना है, तो कहते हैं कि इन गुणोंके धर्मसे जबतक असम्भाव है तबतक अनेक प्रतीत होते हैं और जब मायाके गुण छूट जायँगे तो आत्मा एक ही दिखायी देगा और जहांतक उसे आत्मा अनेक लगते हैं, तभीतक पराधीन भी हैं ॥ ३२ ॥ जबतक इसे पराधीनता है तबतक ईश्वरका भय है, इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गमें दोष हैं, इसका जो

सेवन करते हैं वे भी मोहमें पड़े हुए शोकयुक्त हैं ॥ ३३ ॥ काल, आत्मा, शास्त्र, लोक, स्वभाव, धर्म यह नाम तो गुण सम्बन्धसे कहे परन्तु गुणसम्बन्ध छूटनेपर ये मेरे स्वरूप हैं, सबमें मैं ही हूँ मायाके सम्बन्धसे अनेकरूप दीखते हैं, इससे निवृत्तिमार्ग ही उत्तम मुक्तिका कारण है ॥३४॥ उद्धवजी बोले कि हे भगवन् ! यद्यपि यह आत्मा गुणोंसे मिला हुआ है, परन्तु तो भी गुणका कार्य सुख दुःख कर्मसे बद्ध नहीं है, इसलिये आकाशकी भांति सर्वत्र व्यापक है और निर्लेप है, आवरणरहित तुम्हारे मतमें आत्मा एक ही है तो वह कैसे बन्धनमें आ सकता है ? और जिससे उसे मुक्तिकी अपेक्षा होती है, वह कहिये ॥३५॥ और बँधनेके पीछे किस प्रकार रहता है तथा जब मुक्त हो जाता है तब किस प्रकार रहता है ? सो कहो और किस भांति रहे, कैसे आहार विहार करे, किस लक्षणसे जाना जाय, क्या भोजन

काल आत्मागमो लोकः स्वभावो धर्म एव च ॥ इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४ ॥ उद्धव उवाच ॥ गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ॥ गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥३५॥ कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ॥ किं भुञ्जीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ नित्यबद्धो नित्यमुक्त एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे संसारप्रकारनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

करे क्या छोड़े कहां सोवे कैसे बैठे, कहां जाय, ये दोनों किन लक्षणोंसे दूसरोंके जाननेमें आवे ? सो कहो ॥ ३६ ॥ हे अच्युत ! हे विदांवर ! इसके उपरांत मेरे मनमें एक और सन्देह है कि एक ही आत्मा शरीरादिकोंको अनादि सम्बन्धके कारण अनादिकालसे बद्ध है इस प्रकार निश्चय करना पड़ता है और इस भांति निश्चय कर फिर उसको मोक्ष हो जाता है इस प्रकार निश्चय करे तो मुक्ति उत्पन्न हुई होनेके कारण मुक्तिमें अनित्यता आ जाती है, इसलिये वह आत्मा निरंतर मुक्ति ही है ऐसा भी मानना पड़ता है। तो एक समयमें ही बद्धत्व और मुक्तत्व यह दोनों कैसे सम्भव हो सकते हैं ? इस प्रश्नका उत्तर कृपापूर्वक दीजिये ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे संसारप्रकारवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-इस ग्यारह अध्यायमें, बद्ध मुक्तको ज्ञान । साधु सन्त अरु भक्तिके लक्षण कहौं बखान ॥ श्रीभवान् बोले कि हे उद्धवजी ! आत्मा बद्धमुक्त है यह कथन मेरे गुणसम्बन्धसे है सत्य नहीं, गुणका मूल माया है मैं तो मायाका नियंता हूँ इसलिये मुझे न बन्ध है न मोक्ष ॥१॥ हे उद्धव ! मुझे मोह सुख दुःख देहको प्राप्त यह सब संसारके धर्म मायासे होते हैं, जैसे स्वप्नसे बुद्धिका विवर्त्त है इसी प्रकार संसार है, सत्य नहीं है ॥२॥ हे उद्धव ! एक विद्या, दूसरी अविद्या, ये दोनों मेरी मायासे रची हैं, मेरी देहरूप शक्ति है, अनादि देहधारियोंको मोक्ष और बन्धन करती हैं ॥३॥ हे महाबुद्धिमान् उद्धव ! यह सब मेरा ही एक अंश जीव है, उसे अविद्यासे अनादि बन्ध है विद्यासे मोक्ष है, मुझे तो न बन्धन है न मोक्ष है अब इसका भेद बताते हैं-परस्पर आत्मा और परमात्मा विरुद्ध धर्म होकर एक ही देहमें

श्रीभगवानुवाच ॥ बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥ गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥ ॥ १ ॥ शोकमोहौ सुखं दुखं देहोत्पत्तिश्च मायया ॥ स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्नतु वास्तवी ॥ २ ॥ विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ॥ मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥ बन्धोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥ अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ॥ विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥ ५ ॥ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ॥ एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥ आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ॥ योऽविद्यया युक्स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥

स्थित हैं, इनमें एक तो जीव ईश्वरका भेद, दूसरे जीवसे जीवका भेद ये दो भेद हैं, एक शरीरमें स्थित जीव ईश्वरमें ईश्वरका धर्म आनन्द और जीवका धर्म दुःख है, एक नियंता ईश्वर एक जीव है, देहाभिमान धरे वृद्ध है, इन दोनोंका भेद दृष्टांतसे कहते हैं ॥ ५ ॥ दोनों पक्षी हैं, चैतन्यरूपके समान हैं, दोनों मित्र हैं अपनी इच्छासे एक देहरूप वृक्षके ऊपर आ बैठे हैं, इनमें एक तो इस देहके फलको भोग करता है, दूसरा साक्षी हुआ देखता है वह यद्यपि भोग नहीं करता, तो भी ज्ञानशक्तिसे अतिबलिष्ठ है इस भांति एक ही रूपके दोनों विरुद्ध कर्म करते हैं ॥६॥ जो परमात्मा ईश्वर साक्षी ज्ञाता है, वह अपने स्वरूपको और जीवोंके स्वरूपको भी जानता है और जीवात्मा न आपको

जानता है न ईश्वरको, वह अज्ञ है, इसलिये जो अविद्यासे मिला है सो नित्यबद्ध है, जो विद्यासे संयुक्त है सो नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥ ज्ञानकी विलक्षणता कहकर स्थितिकी विलक्षणता कहते हैं—वही पंडित है जो अपने स्वरूप और परमात्माको जानता है; सो यद्यपि देहमें ही है परंतु देहसे न्यारा है, देहके धर्म उसे व्यापते नहीं—जैसे स्वप्नसे उठेको देहको स्वप्नके धर्म नहीं लगते। जो अज्ञानी हैं सो यद्यपि वस्तुसे और देहसे अलग ही है परन्तु देहके अभिमानसे देहमें स्थित हैं, सुख दुःखको भोग करते हैं—जैसे स्वप्नके देहमें स्थित स्वप्नके सुखदुःख भोगते हैं ॥ ८ ॥ और भी विलक्षणता कहते हैं—यद्यपि इन्द्रियां अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं परन्तु तो भी राग द्वेषादि रहित मुक्त पुरुषमें इन विषयोंको भोगता हूँ ऐसे नहीं मानते, इसका कारण यही हैं कि विषयोंको जो इन्द्रिय स्वीकार करती है वह गुणोंके कार्यको गुण ही ग्रहण

देहस्थोऽपि न देहस्थोविद्वान् स्वप्नाद्यथोत्थितः ॥ अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा ॥ ८ ॥ इन्द्रियै-रिन्द्रियार्थेषु गुणैरपिगुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहं कुर्यान्न विद्वान् यस्त्वविक्रियः ॥ ९ ॥ दैवाधीने शरीरेऽस्मिन्गुणभाव्येन कर्मणा ॥ वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने ॥ दर्शन-स्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन्गुणान् ॥ प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सविताऽनिलः ॥ १२ ॥

करते हैं ज्ञानी उससे अपनेको निर्लिप्त मानते हैं ॥ ९ ॥ यह देह पूर्व कर्मके अधीन है, इसमें स्थित इन्द्रियें अपने विषयोंमें प्रवृत्त होती हैं, यहां मैं कर्त्ता हूँ, इस अभिमानसे यह आत्मा बँध जाता है, यह अज्ञ है। शयन, आसन, गमन, स्नान, दर्शन स्पर्शन आघ्राण, भोजन, श्रवण ये सब इंद्रियोंके धर्म हैं मेरे धर्म नहीं। वृथा अभिमान करनेसे बँध जाते हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार वैराग्य और विवेक जिसे हो वह बद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो इन्द्रियोंको विषय भोग कराता है कुछ आप नहीं करता इसीलिये बन्धनमें नहीं पड़ता ॥ ११ ॥ यहां दृष्टांत है कि जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है पर सबसे निर्लेप है। जैसे सूर्य जलादिकोंमें प्रतिबिंबित है परन्तु तो भी कम्परूप जलके धर्मसे भिन्न है, जैसे वायु सर्वत्र फिरती है तो भी निर्लेप है; इसी प्रकार आत्मा इस देहमें स्थित है और इंद्रियोंके स्वभावसे उन-उन

विषयोंको ग्रहण करता है, परन्तु तो भी उनसे भिन्न है ॥ १२ ॥ वैराग्यद्वारा तीक्ष्ण निर्मल ज्ञानसे सब संशय काट अनेक विधिके इस प्रपंचसे निवृत्त हो जैसे स्वप्नसे जाग स्वप्नके कर्मोंसे निवृत्त हो जाते हैं, ॥ १३ ॥ जिसके प्राण, इंद्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्ति संकल्प-विकल्प रहित होकर देहमें स्थित है तो भी देहके धर्मोंसे मुक्त है ॥ १४ ॥ जिसका देह स्वेच्छासे दुर्जनसे पीड़ित वा किसीसे पूजित हो तो भी उसको सुख या दुःख न हो और कुछ विकार उत्पन्न न हो वही ज्ञानवान् है ॥ १५ ॥ कोई भला करे अथवा बुरा, अच्छा कहे, वा खोटा परन्तु आप किसीकी निन्दा, स्तुति न करे, लौकिक व्यवहारसे अलग रहे, समान दृष्टि होकर रहे, वही मुनि और मुक्त है॥१६॥ कर्मादिकमें

वैशारद्येक्षयाऽसङ्गशितया भिन्नसंशयः ॥ प्रतिबुद्धय इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥ १३ ॥ यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् ॥ वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणः ॥ १४ ॥ यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किञ्चि-द्यदृच्छया ॥ अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥ न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा ॥ वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥१६॥ न कुर्यान्न वदेत्किंचिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ॥ आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥१७॥ शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ॥ श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥१८॥

उदासीन रहे, न कुछ करे, न कुछ विचारे, भला बुरा मनमें न धरे, एक आत्मामें ही रमता रहे, इसी वृत्तिसे जड़की नाईं मुनि लोग फिरा करते हैं ॥ १७ ॥ मुक्त पुरुषके जो लक्षण हैं, वे ही मुमुक्षुके साधन हैं, जो पुरुष वेदार्थमें निपुण हो वह प्रथम कहे हुए साधनोंसे वेदमें निष्ठा रखकर ईश्वरका ध्यानादिक करे तो उसका पढ़ा हुआ शास्त्र जैसे बहुत दिनोंकी प्रसूता गोसे फिर दूध मिलना सम्भव न हो उसके दूधकी आशावाले पुरुषके श्रमका फल केवल श्रम ही होता है, उसी प्रकार क्रिया न करनेसे शास्त्राभ्यास व्यर्थ है * ॥ १८ ॥

शंका—शास्त्रमें और वेदोंमें ऐसा लिखा है कि गाय व्याती हो चाहे न व्याती हो, व्यानेपर भी दूध न देती हो,लात मारती हो परंतु गायको तो चारा, मोदक, जल, अन्न और अनेक प्रकारकी वस्तु खिलाकर उसकी सेवा करना और डंश, मच्छर, मक्खी आदिसे उसकी रक्षा करना ही युक्त है, क्योंकि गाय सदा धर्मकी मूल है, फिर उद्धवसे श्रीकृष्णने क्यों कहा कि जो गाय दूध देना बन्द कर दे अथवा बांझ हो, जो मनुष्य ऐसी गायका पालन पोषण करेगा उसका परिश्रम सब व्यर्थ है ?

उत्तर—"गां दुग्धदोहां यो ज्ञात्वा तामरक्षति दुर्मतिः । सनरो दुःखदुःखं वै भुनक्तीति विनिश्चितम्" इस श्लोकमें भगवान्की नीति वर्णन की है सो सुनिये हम कहते हैं—श्रीकृष्ण भगवान्ने—कहा था कि जो प्राणी गायको-

हे उद्धव ! दूध दुही गौ, दुष्टा स्त्री, पराधीन देह, दुष्ट संग, अपात्रोंका दिया धन और मेरा नाम-रहित वचन इतनी बातोंवाले मनुष्य सदा दुःखी ही रहते हैं और आगे भी दुःख पावेंगे ॥१९॥ मेरा जिस वाणीमें नाम न हो वह बात न कहे, इस विश्वकी मर्यादा जन्म, पालन, नाशरूप मेरे पवित्र कर्म और लीला अवतारोंके विषे जगत्का प्रिय श्रीराम कृष्णादिक जन्म जिस वाणीमें न हो, उसको बुद्धिमान् पुरुष

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च ॥ वित्तं त्वतीर्थीकृतमङ्ग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी
॥ १९ ॥ यस्यां न मे पावनमङ्ग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्वन्ध्यां गिरं तां
बिभृयान्न धीरः ॥२०॥ एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ॥ उपारमेत विरजं मनोमय्यर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥
यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणिनिश्चलम् ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥ श्रद्धालुर्मे कथाः
शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः ॥ गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥

धारण न करे ॥२०॥ इसप्रकार निश्चय कर आत्माविषे नाना प्रकारका भ्रम दूर विचारसे निर्मलमन मुझे अन्तर्यामी विषे स्थिर होकर निवृत्त हो ॥२१॥ जो मुझमें मन निश्चल कर धरनेको समर्थ हो तो सब कर्म मुझमें अर्पण कर निरपेक्ष हो कर्म करे, ॥२२॥ 'ज्ञानमार्ग कठिन है, भक्तिमार्गसे ही कृतार्थ होगा' यहां कहते हैं कि प्रथम तो श्रद्धासंयुक्त हो, पीछे अतिसुन्दर लोकोंके पवित्र करनेको समर्थ मेरी कथा श्रवण

-ऐसा जानकर, कि वह अब दूध-नहीं वेती, अथवा वांझ है, व्यायगी नहीं ऐसा समझकर उसकी रक्षा करना छोड़ देगा अथवा उसको खाने पीनेको नहीं देगा तो इस लोकमें तो गायका मूल्य डूब जायगा; क्योंकि पालन करता तो फिर व्याती अथवा वांझ होती तो भी गोबर करती। और अन्तसमय रौरव नरकका वास होगा। इसी प्रकार जो स्त्री दुष्टा हो जाय तो उसका भी पालन करना अवश्य चाहिये, क्योंकि जो उसने दुष्ट कर्म किया तो संसारमें उस प्राणीकी निन्दा होगी और परलोकमें नरक भोगना पड़ेगा और जो उसका पालन करेगा तो धीरे धीरे चाहे ज्ञान उपदेश होनेसे सुधर भी जाय और सन्तान भी उत्पन्न हो जाय, फिर न जानिये सन्तानमें कैसा महापुरुष निकले ऐसी ही पराधीन समझकर हानि मानकर देहका पालन करना नहीं छोड़े, क्योंकि पालन न करनेसे उसका नाश हो जायगा और जो शरीरका पालन करेगा तो कभी-न-कभी सुख अवश्य होगा; ऐसे ही धनको मान ले कि इस धनमेंसे में पुण्य नहीं करता किस काममें आवेगा, ऐसा जानकर धनकी रक्षा करना छोड़ देगा तो चोर चोरी करके ले जायंगे और जो धनकी रक्षा करता रहेगा तो कभी-न-कभी तो पुण्य होगा ही। ऐसे ही वचनसे भगवान्का नाम नहीं लिया, ऐसा जानकर सत्सङ्ग छोड़ दिया तो भ्रष्ट हो जायगा और जो बिगड़े वचनसे भी सत्संग करेगा और अच्छा प्रबंध करेगा तो कभी भगवानूका वचनसे नाम निकलेगा ही, ऐसा नीतियुक्त अर्थ भक्त उद्धवके सामने भगवान्ने किया है, यह नहीं कि गाय ,दूध देना बन्द कर दे तो उसका पालन नहीं करना।

करे, मेरे जन्म, कर्म गावे, स्मरण करे, वारंवार वैसी ही लीला करे ॥२३॥ हे उद्धव ! धर्म, कर्म, काम मेरे लिये करे, विषय भोगार्थ न करे, मेरा ही आश्रय करे तो सनातन स्वरूप मेरे विषे निश्चल भक्तिको प्राप्त हो ॥ २४ ॥ इस प्रकार सत्संग कर प्राप्त हुई भक्तिसे मेरा सेवन करे तो मेरे स्थानको निश्चय प्राप्त हो, यह मेरे पानेका मार्ग साधन कर दिखाया है ॥ २५ ॥ तब उद्धवजी साधु और भक्तिके लक्षण पूछने लगे कि हे उत्तमश्लोक ! हे प्रभो ! साधु पुरुष कैसे होते हैं उनके चिह्न क्या हैं और उनकी की हुई भक्ति कैसे होती है, जिस भक्तिको आप मानते हैं ? और साधु आदर करते हैं ?॥२६॥ हे पुरुषके नियन्ता ! हे जगत्पते ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, अनुरक्त हूँ, आपकी शरण आया हूँ इसलिये यह सब मुझसे कहिये ॥२७॥ हे भगवन् ! तुम साक्षात् परब्रह्म प्रकट हुए हो,प्रकृतिसे परे हो, पुरुष हो,

मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः ॥ लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥ सत्सङ्गलब्धया भक्त्या मयि मां समुपासिता ॥ स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥२५॥ उद्धव उवाच ॥ साधुस्तवोत्तमश्लोक मतः कीदृग्विधः प्रभो ॥ भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥ २६ ॥ एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ॥ प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥२७॥ त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ अवतीर्णोऽसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ॥ सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिंचनः ॥ अनीहो मितभुक्शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ॥ अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥

आकाश की भांति निर्लेप हो, भक्तोंकी इच्छासे रूप धारण करते हो ॥२८॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! जो पराया दुःख न देख सके और किसीसे द्रोह न करे, क्षमावान् हो, सत्य ही बोले, निन्दा आदि दोषरहित हो, समदृष्टि हो, सुख दुःखमें समान हो, यथाशक्ति सबका उपकार करे, सब प्राणियोंका अपराध सहे ॥२९॥ काम करके बुद्धि चञ्चल न हो, बाहरकी इंद्रियां जीते हो; कोमल शुद्धचित्त हो, परिग्रही न हो; व्यर्थ कार्य न करे,भोजन थोड़ा करे, शान्त हो,स्वधर्ममें स्थित हो, मेरा ही एक आश्रय करे, मेरा ही स्मरण करे॥३०॥ सावधान रहे, निर्विकार रहे, धैर्यवान् हो, क्षुधा, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु ये सब जीते हो, अभिमानी न हो; दूसरेको मान देनेवाला हो,

औरके प्रबोधनका समर्थ हो, सबका मित्र हो, सबका भला चाहे, दयावान् हो, पूर्णज्ञानवान् हो ॥३१॥ ऐसे ही पुरुष साधु कहाते हैं और स्वरूपभूत वेदके धर्म करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है नहीं करनेमें दोष हैं, ऐसा जाननेपर भी धर्म स्वामीके ध्यानमें विक्षेप करनेवाले हैं और जो धर्म (मैं) न करूँ तो भक्तिसे ही सिद्ध हो जायँगे। इस प्रकार भक्तिकी दृढ़ताके लिये दृढ़ निश्चयकर अपने धर्मका अधिकार रुद्ध हो जानेसे उन धर्मोंको छोड़कर जो प्राणी मेरा भजन करे वह भी महात्मा है ॥३२॥ तब जैसे मेरे चरित्र हैं उसी प्रकार मुझे जाने अथवा विना जाने भी जैसे हो तैसे जो कोई अनन्यभावसे मेरा भजन करते हैं वे मेरे परमभक्त हैं ॥३३॥ साधुओंके लक्षण कहकर अब भक्तके लक्षण कहते हैंः—कि मेरे चिह्न प्रतिमा आदि अनेक भांतिके हैं और मेरे भक्तजनोंके दर्शन, स्पर्श, पूजा, सेवा, स्तुति प्रणाम गुण-कर्म

आज्ञायैवंगुणान्दोषान्मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान्॥ धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः॥३२॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः ॥ भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥३३॥ मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ॥ परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥ मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ॥ सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥ ३५ ॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ॥ गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥ ३६ ॥ यात्राबलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ॥ वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥ ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ॥ उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः ॥ गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥

कीर्तन ॥३४॥ हे उद्धव ! मेरी कथा श्रवण करनेमें श्रद्धासहित मेरा ध्यान करे, जो कुछ मिले सो सब मुझे समर्पण करे, दास्यभावसे आत्म निवेदन करे ॥३५॥ मेरे जन्म कर्म, गावे, जन्माष्टमी आदि पर्वमें फूल नैवेद्य आदिसे मेरी पूजा करे, गात नृत्य वादित्र गोष्ठीसे मेरे मंदिरमें उत्सव करे ॥ ३६ ॥ मेरे लिये यात्रा करे, पुष्पादिकोंसे पूजा करे, भेंट समर्पण करे, वर्ष प्रतिवर्ष उत्सव करे, वैदिक तांत्रिक दीक्षा ले मेरे व्रत करे ॥ ३७ ॥ और प्रतिमामें श्रद्धा रखे, आपसे अथवा औरसे मिलकर मेरे लिये फूलोंका बाग, मंदिर, क्रीड़ा-स्थल, नगर गांवके करनेमें उद्यम करे ॥३८॥ मेरे मंदिरमें बुहारी देना, लीपना, छिड़काव करना, चौक पूरना ओर रंगवल्ली आदि चित्रांकित करना, इस

प्रकार मेरे गृहकी शोभा करे दासकी भांति निष्कपट मेरी उपासना करे ॥३९॥ आप अभिमान तथा दम्भ न करे, जो करे वह कहे नहीं, मेरे निवेदित दीपादि वस्तुसे अपने घरका काम करे ॥ ४० ॥ जो वस्तु इस लोकमें आपको अतिप्रिय हो निषिद्ध न हो सो मुझे अर्पण करे तो वह वस्तु अनन्त फल देगी ॥४१॥ अब यह ग्यारह ठौर पूजा कहते हैं कि हे उद्धव ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गो, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, भूमि, आत्मा, इत्यादि सब प्राणीमात्र मेरी पूजाके स्थल हैं ॥४२॥ अब जिसकी पूजा जिस प्रकार करनी चाहिये सो कहते हैं–वेदोक्त विद्यासे सूर्यकी पूजा करे, अग्निमें घृत होमकर मेरी पूजा करे, ब्राह्मणमें आतिथ्य अभ्यागतसे पूजे, गायमें सुन्दर तृणादिकसे

अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ॥ अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥४०॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ॥ तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥४१॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ॥ भूरात्मा सर्वभूतानि भद्रपूजापदानि मे ॥४२॥ सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ॥ आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वङ्ग यवसादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ॥ वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥४४॥ स्थण्डिले मन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ॥ क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥४५॥ धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शंखचक्रगदाम्बुजैः ॥ युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥ ४६ ॥ इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ॥ लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥

सेवा करे ॥ ४३ ॥ वैष्णवोंमें अपने बन्धुके समान आदरसे मेरी पूजा करे, हृदय आकाशमें ध्यान धरके पूजा करे, वायुमें प्राणबुद्धिसे पूजा करे, जलमें तर्पण आदि द्रव्यसे पूजा करे ॥ ४४ ॥ भूमिमें गोप्य मन्त्र न्यास कर मेरी पूजा करे, अपने आपमें आत्माकी पूजा भोग करके जो भोग करे सो सब आत्माको समर्पण कर दे; सब प्राणिमात्रमें समान दृष्टि रखकर मेरी पूजा करे, मैं अन्तर्यामी हूँ ॥४५॥ एकाग्रमन हो इन स्थलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धरे चतुर्भुज शान्त रूपका ध्यान कर मेरी पूजा करे ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य ऐसा करते हैं वे निश्चयमन होकर यज्ञ, वापी, कूप, तड़ाग, बागसे मेरी पूजा कर साधुओंकी सेवासे मेरा स्मरण करके मुझमें परम भक्ति प्राप्त करते हैं॥४७॥

भा. ए. ॥४२॥ इस प्रकार ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहकर विशेषसे भक्तिमार्गको श्रेष्ठ कहते हैं कि हे उद्धव ! पहले सत्संग करे कि जिससे भक्ति उत्पन्न हो। संसारसागरसे तरनेको इससे उत्तम उपाय और कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि साधुओंका एक मैं ही आश्रय हूँ इसलिये उत्तम वैष्णवोंका सत्संग अति श्रेष्ठ है ॥ ४८ ॥ हे उद्धव ! तुम सर्व प्रकारसे मेरे उत्तम सुहृद् सखा हो, इसलिये यह गुप्त बात भी श्रवण करनेवाले तुमसे कही है ॥४९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा–बारहमें सतसंगकी, महिमा कहौं बखान। कर्म करन अरु त्यागको, वरणों आतमज्ञान ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव !

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव ॥ नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥ अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन ॥ सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत् सखा ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते म० एकाद० भगवदुद्धवसंवाद एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न रोधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म एव च ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥२॥ सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ॥ गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥३॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ॥ रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥ बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ॥ वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥ ५ ॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ॥ व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथा परे ॥ ६ ॥

भा० टी० अ० १२ योग और तत्त्वोंका विवेक और अहिंसा आदि धर्म विद्याका अध्ययन, तप, त्याग, अग्निहोत्रादिक, वापी, कूप, तड़ाग, दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नियम, संयम ये सब मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते; जैसे श्रेष्ठ विष्णुभक्तका सत्संग वश करता है, क्योंकि सत्सङ्ग सब कुसंगोंका छुड़ानेवाला है ॥२॥ दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक ॥३॥ विद्याधर और मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्री ये सब नीच जाति राजस, तामस स्वभावयुक्त भी उन-उन युगोंमें ॥४॥ मेरे पदको प्राप्त हुए और भी बहुत हैं, जैसे–वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय, विभीषण ॥ ५ ॥ सुग्रीव, हनुमान्, जांबवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार; व्याध,

कुब्जा, गोपी, ब्रजमें यज्ञपत्नी ऐसे और भी अनेक मुझे प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥ ये वेदार्थ नहीं पढ़े थे, महत्पुरुषोंकी उपासना नहीं की थी, व्रत दान तप कुछ नहीं करते थे, एक मेरे सङ्गसे ही मुझे प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ गोपी, गाय, यमलार्जुन, मृग और मूढ़बुद्धि काली आदि नाग सिद्ध अनायास मुझे प्राप्त हो गये * ॥ ८ ॥ सांख्य, योग, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, अध्ययन, इतने यत्नसे भी जिन्होंने मुझे न पाया, वे एक भावमात्रसे ही प्राप्त हुए ॥९॥ अब मुख्य उत्तम भाव गोपियोंका कहते हैं, इस कारण पहले गोपियोंके भावकी स्तुति

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ॥ अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः ॥ ७ ॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ॥ येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥८॥ यं न योगेन साङ्ख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः॥ व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ॥ विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावन-गोचरेण ॥ क्षणार्धवत्ताः पुनरङ्ग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥ ता नाविदन्मय्यनुषङ्गबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ॥ यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ १२ ॥

करते हैंः—हे उद्धव ! जब अक्रूर आकर बलदेवसहित हमको मथुरा ले गये तो दृढ़ प्रीतिसे मुझमें आसक्त चित्तवाली योगसे दुःसहचित्त गोपियोंने सुखके लिये मेरे अतिरिक्त और किसीकी ओर न देखा ॥ १० ॥ हे उद्धव ! वृन्दावनमें फिरते उनको अतिप्रिय मेरे सङ्ग जो रात्रियें एक क्षणके समान बीतती थी वही मुझ विना उन गोपियोंको कल्प समान बीती ॥११॥ मुझमें गोपियोंकी बुद्धि अधिक आसक्त हो गयी थी, इसलिये उन्हें पति पुत्रादि तथा देह और परलोकका भी कुछ ध्यान न रहा, जैसे समाधिमें मुनियोंको नाम स्वरूपका

* शंका—श्रीकृष्ण भगवान्ने उद्धवसे कहा कि, हे उद्धव ! पर्वत, पक्षी, मृग यह सब सत्संगसे हमारे लोकको गये इस बातका हमको बड़ा संदेह है कि, सत्संग तो बड़े बड़े महात्माओंको भी बड़ा दुर्लभ है सो इन तुच्छ जीवोंको क्योंकर हुआ ?

उत्तर—महात्मा पुरुष तो पर्वतोंपर बसते हैं इसलिये इनको पर्वतोंका सत्संग हुआ और महात्माओं के सम्मुख नित्य रात दिन पक्षी और मृग बसते थे, महात्माओंका नित्य दर्शन करते थे कुछ सत्संगकी बात कानोंसे सुन ली, कुछ भगवान्के पूजन आदिककी सामग्री देख ली इस प्रकार योगियोंको दुर्लभ सत्संग पर्वतोंको, पशुओंको तथा मृगोंको प्राप्त हुआ ऐसा कृष्णने कहा था ।

भा. ए. ध्यान नहीं रहता, अथवा जैसे नदी समुद्रमें मिल जाती हैं, उसी प्रकार गोपियें मेरे स्वरूपमें लीन हो गयीं ॥१२॥ इस प्रकार केवल मेरी
॥४३॥ इच्छावाली सहस्रों स्त्रियां यद्यपि मेरे स्वरूपको नहीं जानती थीं परन्तु तो भी जारबुद्धिसे जाने हुए मुझे परब्रह्मके सत्संगकी महिमासे मुक्त हो गयीं ॥१३॥ हे उद्धव ! मेरे भजनका ऐसा प्रभाव है कि गोपियें जारबुद्धिसे भजन करनेपर भी मुझे प्राप्त हुईं, इसलिये तुम श्रुति स्मृतिके विधिनिषेध छोड़ प्रवृत्ति निवृत्ति धर्म छोड़, सुना सुनाया छोड़ ॥ १४ ॥ सबोंमें सब देहधारियोंके आत्मा मेरा भाव रख, केवल मेरी शरणको प्राप्त होकर तुम निर्भय होगे ॥१५॥ यह सुनाकर उद्धवजी बोले कि हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! तुम्हारी बात सुनकर आत्मा विषयक मेरा संदेह निवृत्त नहीं होता, क्योंकि प्रथम तो आपने कहा कि मेरा भजन करो, अब कहते हो कि सब धर्म छोड़कर हमारी शरण आओ इन दोनोंमेंसे क्या करना उचित है, त्याग करना चाहिये अथवा भजन करना चाहिए ? यह मुझे बड़ा भ्रम है सो निवारण करो ॥१६॥

मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः ॥ ब्रह्म मां परमं प्रापुः सङ्गाच्छतसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ॥ याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ संशयः शृण्वतोवाचं तव योगेश्वरेश्वर ॥ न निवर्त्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! पहले तो यह जीव ईश्वर है, अर्थात् ब्रह्म है, परन्तु अविद्याके संगसे अपना धर्म भूल गया है, अविद्याके धर्मको ही अपना धर्म समझ 'अहंकर्त्ता' अभिमान से बँधता है, जब अविद्याके धर्म दूर हो जायँ तब शुद्धचित्त हो उसके
भा० टी० लिये निष्काम कर्म करना कहा है, जब चित्त शुद्ध हुआ तब कर्मका त्याग कहा, जब विवेक उसको उत्पन्न हो तब विवेकसे सर्वत्र वह मेरा
अ० १२ रूप जानता है तब कर्म और ज्ञानका अधिकार होता है, इस कारण सब कर्म त्यागकर मेरी शरण आवे, यह उपदेश दिया, अब ईश्वरसे वाणी इन्द्रिय द्वारा जीवके संसारके कारण भूत प्रपंचकी उत्पत्ति कहते हैं;—सो ईश्वर आधारादि चक्रोंमें प्रकट होते हैं उस प्रकटताको भी कहते हैं, सो ईश्वर नादवन्त पर नाम प्राणसहित आधारचक्रोंमें प्रविष्ट होकर मनोमय सूक्ष्मरूप देखे और मध्यमा नाम मणिपूरक और

विशुद्ध चक्रविषे आकर मुखमें हूँ, स्वरादिक मात्रा, उदात्तादिक स्वर, अकारादिक अक्षररूप वैखरी नाम अति स्थूल नानाविधिरूप होते हैं ॥ १७ ॥ जैसे आकाशमें गर्मीरूप अग्नि अप्रकट है, बलपूर्वक काष्ठके मथनेसे वायुकी सहायतासे पहले सूक्ष्मरूपसे निकलती हैं, पीछे हविष्यसे वृद्धिको प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार यह प्राणी मेरे प्रकट होनेके स्थान है ॥ १८ ॥ हाथोंका धर्म क्रिया, चरणका धर्म, तीर्थ गमन करना और गुह्येन्द्रियका धर्म मलादि विसर्जन करना, आघ्राण, रस, दर्शन, श्रवण यह सब ज्ञानेन्द्रियोंके धर्म, संकल्प मनका धर्म; विज्ञान और बुद्धि चित्तका धर्म, अभिमान अहंकारका धर्म, सूत्र मायाका धर्म, सत्त्व, रज,तम इन तीन गुणोंका विकार अधिदैव, आध्यात्म, अधिभूत ये सब मेरे प्रकट होनेका स्थान हैं ॥१९॥ यह आत्मा ब्रह्म है, एकही है, अप्रकट है; कालसे अलग कर वाणी रूप इंद्रियोंकी

यथाऽनलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ॥ अणुः प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥ एवं गदिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक्स्पर्शः श्रुतिश्च ॥ संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजः सत्त्वतमोविकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः ॥ विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः ॥ य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥

शक्तियोंको अनेक भांतिसे प्रकाशै है, जिससे आदि है, तीन गुणोंका आश्रय है, सृष्टिकमलका कारणभूत है, जैसे बीज खेतको पाकर अनेक भांति प्रकाशमान् होता है उसी प्रकार यह आदिकारण ईश्वर भी कालकी गतिसे मायाको अंगीकार कर प्रपंचरूप हो जाते हैं ॥ २० ॥ इसमें दृष्टांत कहते हैंः—जैसे तंतुके विस्तारमें स्थितमान् पट तंतुओंमें ओतप्रोत है और पृथक् नहीं है उसी प्रकार यह सब जगत् ब्रह्ममें विद्यमान है, उससे भिन्न नहीं है। ऐसे ही समष्टि व्यष्टि रूप अविद्या से आत्मामें अध्यास किया हुआ प्रपंचरूप वृक्षही जीवके कर्त्ता भोक्ता आदि संसारका कारण हैं. इससे जब यथार्थरीतिसे आत्मकी सत्यता और प्रपंचकी अनित्यता जाननेमें आवे उस समय कामादि सबका त्याग करना कहा है, यह अनादिकालसे प्रवृत्तिवाला प्रपंचरूप वृक्ष अपने भोगादिरूप पुष्प फलोंको उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥

इसके पाप पुण्य दो बीज हैं, अनेक भांतिकी वासना इसकी जड़ है, तीनों गुण (रजोगुण, तमोगुण, सत्त्वगुण) इसकी पेड़ी (तना) हैं, रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द यह पांच रस हैं, पांच महाभूत इसके स्कन्ध हैं, एकादश इंद्रिय शाखा हैं, दो पक्षी जीव और परमात्माका घर वात पित्त, कफ यह तीनों वल्कल हैं, दुःख सुख दो फल हैं, सूर्यमंडलतक यह वृक्ष है, इससे आगे संसार नहीं ॥२२॥ अब इसके फलके भोक्ताको कहते हैं इसके एक फल दुःखरूपका गृहस्थ ग्रामचारी कामी गीदड़के समान भोग करते हैं, दूसरे फलका सुख अरण्यवासी परम हंस संन्यासी भोग करते हैं, इससे यह एकही परमात्मा मायामय अनंतरूप है,इतना तत्त्वार्थ गुरुद्वारा जिस पुरुषने जान लिया है,उसने सब देह जान लिया ॥ २३ ॥ इस प्रकार धीर सावधान होकर तुम गुरुकी सेवा करना और एकान्त भक्तिसे तीक्ष्ण ज्ञानरूप कुठारीसे

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः ॥ दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥ अदन्ति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ॥ हंसा य एकं बहुरूप मिज्यैर्मायामयं वेद स वेदवेदम् ॥ २३ ॥ एवं गुरूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥ विवृश्च्य जीवा शयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥ इति श्रीभा० म० एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे सत्सङ्ग माहात्म्यादि निरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेन चात्मनः ॥ सत्त्वेना न्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥ सत्त्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ॥ सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥

त्रिगुणमय इस लिंग शरीरको काट परमात्मासे मिल पीछे सब साधन छोड़ देना ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे सत्संगमाहात्म्यादिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–इस तेरह अध्यायमें, हंसरूप इतिहास । बढ़े अधिक जब सतोगुण, प्रगटै बुद्धि विलास ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं आत्माके नहीं, इस कारण सत्त्वगुणकी वृद्धिसे रजोगुणण तमोगुण की वृत्तिका नाश कर सत्त्व दयादिरूप सत्त्वगुणका उपशमरूप सत्त्वगुणसे नाश करना॥ १ ॥ रजोगुण तमोगुणके सम्मुख सत्त्वगुण कैसे बढ़े ? सात्त्विक पदार्थोंकी उपासनासे सत्त्वकी वृद्धि होती है और जो सत्त्व

गुण बढ़े तो मेरा भक्ति-लक्षण-धर्म हो ॥ २ ॥ उसीसे रज तम भी दूर हो सत्त्वकी वृत्ति भी हो जाती है इस कारण भक्ति अति श्रेष्ठ है। रज तमके दूर होनेपर रज-मूलवाला अधर्म निश्चयसे शीघ्र दूर हो जाता है ॥३॥ शास्त्र, जल, प्रजा, देश, काल, कर्म जन्म, ध्यान, मंत्र संस्कार यह सब प्राणके हेतु हैं ॥ ४ ॥ यह भी दश सात्त्विक, राजस, तामस हैं। इनके मध्य जिसकी बड़ाई करते हैं वह सात्त्विक है जिसकी निन्दा करते हैं वह तामस है और जिसकी न स्तुति करते हैं न निन्दा करते हैं वह राजस है ॥ ५ ॥ सत्त्वगुण बढ़ानेके लिये पुरुषको सात्त्विकवृत्ति शास्त्रका सेवन करना चाहिये, प्रवृत्ति मार्ग के पाखंडियोंके शास्त्र न देखे, जल, तीर्थका ही सेवन करे, सुगंधित जलका सेवन न करे, सङ्ग निवृत्तिमार्गवालोंका ही करे, दुराचारियोंका न करे, देश एकान्त ही सेवे, चोर ठग और जुआ खेलनेवालोंका

धर्मो रजस्तमो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ॥ आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३ ॥ आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ॥ ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते ॥ निन्दन्ति तामसं यत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये ॥ ततो धर्मस्ततोज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥ वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ॥ एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥

सङ्ग न करे, ध्यानका सेवनकाल ब्राह्ममुहूर्त आदिमें करे, आधीरातके समय प्रदोष कालमें सेवन न करे, कर्म नित्य ही करे, काम्य और अविचारादि कर्म न करे, वैदिक तांत्रिक दीक्षारूप जन्म ले, क्षुद्र देवताओंकी दीक्षा न ले, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ही गुरु करे, अस्त्रोंका और शत्रुओंका ध्यान न करे, जब प्रणव आदि उत्तम मन्त्रको जपे, उस समय काम्य मन्त्र और क्षुद्र मन्त्रको न जपे, जो संसारसे आत्माका शोधक हो वही करे, देवगृहको न करे। इस प्रकार सब सात्त्विक सेवे तो सत्त्वगुणकी वृद्धि हो और राजस तामस छूटे. तब भक्तिरूपी तप धर्म होता है, उससे मेरे स्वरूपका ज्ञान होता है ॥ ६ ॥ जैसे बांसोंके वनकी अग्नि आपसमें घिस और प्रज्वलित हो सब अरण्यको जला ईंधन घट जानेपर आपही शांत हो जाती है, उसी प्रकार गुणके क्षोभसे उत्पन्न हुआ देह आप ही शांतहो जाता है ॥ ७ ॥

उद्धवजी बोले हे कृष्ण ! बहुधा सब मनुष्य कहते हैं कि विषय दुःखरूप है, उससे दुःख पाते हैं तो फिर क्यों यह पुरुष कूकर, गर्दभ, बकरेके समान निर्लज्ज हो उसीमें प्रवृत्त होते हैं ? ॥८॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! जब यह विवेकसे रहित होते हैं तब इसके हृदयमें अहंभाव बुद्धि सत्यसी होती है, तो सात्त्विक मत भी दुःख रूप राजस धर्मसे व्याप्त होते हैं॥९॥ यह पुरुष जब रजोगुणसे व्याप्त होता है तब मनमें संकल्प उत्पन्न होते हैं और संकल्पसे विषयका जो ध्यान करता है उससे इस दुष्टबुद्धि पुरुषको काम उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ इसके उपरांत उनके वश हो रजोगुणके वेगसे मोहित हुआ अजितेन्द्रिय दुःख फलवाले कर्मोंको ही करता है ॥११॥ इसमें भी जो विवेकी

उद्धव उवाच ॥ विदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् ॥ तथापि भुञ्जते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहमित्यन्यथा बुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि ॥ उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ॥ ततः कामो गुणध्यानाद् दुःसह स्याद्धि दुर्मतेः ॥ १० ॥ करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमोहितः ॥ ११ ॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः पुनः ॥ अतन्द्रितो मनो युञ्जन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२ ॥ अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः ॥ अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः ॥ १३ ॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः ॥ सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा ॥ १४ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव ॥ योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम ॥ १५ ॥

हो सो यद्यपि रजोगुण तमोगुणसे विक्षिप्त मन है, असावधान है, परंतु तो भी मनको खींचकर रखे तो वह दोष जानकर विषयमें आसक्त न होगा ॥ १२ ॥ जो विवेकी स्नेहसे मुझमें मन लगाता है और आलस्य छोड़ श्वास रोक आसन दृढ़ कर मुझमें मन स्थिर कहता है ॥१३॥ सो हे उद्धव ! मेरे शिष्य सनकादिकोंने इतना ही योग बताया है कि यह जीव सब ओरसे मन खींच प्रत्यक्ष मुझमें रखे ॥१४॥ उद्धवजी बोले कि हे केशव ! सनकादिकोंके रूप से जिस समय तुमने यह योग कहा था सो तुम्हारा रूप और वह समय जाननेकी इच्छा है सो कहिये ॥१५॥

तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! एक समय ब्रह्माके मानसी पुत्र सनकादिक योगकी सूक्ष्म गति ब्रह्मदेवसे पूछने लगे ॥ १६ ॥ सनकादिक बोले कि हे प्रभो ब्रह्माजी ! चित्त अपने स्वभावसे ही रागादिकोंके हेतु विषयधर्ममें प्रविष्ट होता है और अनुभूत विषय वासना रूपसे चित्तमें प्रवेश करते हैं, अब विषयोंका त्याग करनेकी इच्छावाला मुमुक्षु पुरुष परस्पर इन दोनोंको किस प्रकार भिन्न-भिन्न करें ? ॥१७॥ इस प्रकार पुत्रोंके पूछनेपर ब्रह्माजीने जो कुछ कहा था वही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे कहते हैं कि इस भांति जब सनकादिकोंने कहा तो स्वयंभू ब्रह्मा बड़े देव विश्वके पालक विचारने लगे, परंतु प्रश्नका पार न पाया इससे कर्मसे विक्षिप्त बृद्धि हुई ॥१८॥ तब प्रश्नका उत्तर देनेके लिये ब्रह्माने मेरा चिन्तन किया, तब मैं हंसरूप हो ब्रह्माके निकट गया ॥१९॥ तब मुझे देखते ही सब

श्रीभगवानुवाच ॥ पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ॥ पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम् ॥१६॥ सनकादय ऊचुः ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ॥ कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः ॥ ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥ स मामचिन्तयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ॥ तस्याहं हंसरूपेण संकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ॥ यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥२१॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ॥ कथं घटेत वो विप्रा वक्तुं-र्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥

प्रणाम कर ब्रह्माके आगेसे मेरे निकट आकर तुम कौन हो ? इस प्रकार पूछने लगे ॥ २० ॥ हे उद्धव ! तत्त्वके जाननेकी इच्छासे मुनिने जब इस प्रकार मुझसे पूछा तो मैंने जो उनसे कहा वह तुम सुनो ॥२१॥ हंसरूप भगवान् सनकादिकोंसे बोले कि तुम आत्माको आगे कर प्रश्न करते हो वा आत्माके उपाधिस्वरूप भूतसमूहको लेकर प्रश्न करते हो ? जो आत्माका अधिकार कर प्रश्न करते हो तो परमार्थसे आत्मामें अभेद होनेके कारण तुम कौन हो ? यह प्रश्न करना, कि जो अनेकोंमें एकका निश्चय करनेके लिये है, सम्भव नहीं हो सकता, अतः मैं तुम्हें क्या विषय लेकर उत्तर दूँ ? आत्मा कोई जाति वा गुणादिरूप हो तो उत्तर दिया जाय कि मेरी यह जाति और मुझमें यह गुण है, परन्तु

आत्मामें कोई बात नहीं, इससे तुम्हारा प्रश्न ठीक नहीं बन सकता ॥२२॥ और जो पंचभूतसन्धानका प्रश्न है वह अनर्थरूप है, देव मनुष्यादि देह सब पञ्चभूतात्मक हैं इससे सब समान हैं, अपने कारणसे न्यारे नहीं, वे सब कारणरूप एक ही हैं अर्थात् ब्रह्मरूप ही है, यह नाम रूप अलग-अलग धर लिये हैं सो अज्ञान है, इस कारण इसका मैं क्या उत्तर दूं ? ॥२३॥ मन, वचन, दृष्टि और इंद्रियोंसे जो ग्रहण किये जाते हैं सो मैं हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है, यह तत्त्वका विचार करके जान लो ॥२४॥ इस प्रकार उनके प्रश्नका खण्डन करनेके बहाने आत्माका स्वरूप कहा । अब ब्रह्मको भी जो अशक्य उत्तर है सो देते हैं कि यह विषय और चित्त दोनों गुँथे हैं, ब्रह्मरूप जीवका देह है सो उपाधि है, कुछ सत्य नहीं है, जो पुरुष अपने आपको ब्रह्मरूपसे विषयोंको मिथ्या करके जानते हैं और वैराग्यसे भगवान्‌का भजन करते हैं

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ॥ को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ॥ अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥ २४ ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ॥ जीवस्य देहं उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥ गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ॥ गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ॥ तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ २७ ॥ यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ॥ मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥ अहंकारकृतं बंधमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ॥ विद्वान्निर्विद्य संसारचिन्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥

वे उपाधि छोड़कर मुक्त हो जाते हैं ॥२५॥ क्योंकि विषयोंकी ही सेवा करनेसे और उनकी वासनासे विषयोंमें चित्त प्रविष्ट होता है, इस लिये विषय और चित्त यह दोनों जब मेरा रूप जाने तो छूटे ॥ २६ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंसे रहित जीव शुद्ध आत्मरूप कैसे हो ? सो कहते हैं–यह अवस्था तीन गुणोंसे होती है, बुद्धिकी ही वृत्ति अवस्था है, जीव इन अवस्थाओंसे भिन्न है, ऐसा निश्चय किया गया है, इसलिये जीव इन सबका साक्षी है॥२७॥जो यह साक्षी हुआ तो भिन्न क्यों है ? और "मैं सोया जागा" ऐसा क्यों कहते हैं ? क्योंकि जब अहंकारके धर्मसे संसारका बन्धन है तो मैं जागता हूँ, सोता हूँ यह बुद्धि है, जब अहंकार देहसे छूट जाय और आत्माके मध्यमें दृष्टि हो तब यह अवस्था भी सब जाती रहे और विषय तथा चित्तका परस्पर त्याग हो ॥२८॥ यह बन्धन देहके अभिमानसे

है इसीसे आत्माको भी अनर्थ लगता है, इस प्रकार निश्चय कर वैराग्यसे आत्मामें चित्त लगाकर संसारकी सब चिन्ताका त्याग करे ॥ २९ ॥ जबतक भेदबुद्धि युक्तियोंसे निवृत्त नहीं है तबतक यह अज्ञानी पुरुष कर्मादिकोंसे जागता अर्थात् जानकर भी स्वप्नमें अपने को जागृत मानते हुए मनुष्यके समान स्वप्नको ही देखता है, क्योंकि उसे यथार्थ ज्ञान नहीं है ॥३०॥ यह सब देह और देहका किया सब भेद वर्ण, आश्रम, स्वर्ग आदि फल कर्म आत्माके धर्म नहीं हैं, यह देहके धर्म हैं अविद्यासे उत्पन्न होते हैं इस कारण मिथ्या है उत्तम नहीं जैसे स्वप्न देखनेवालेके सब मनोरथ मिथ्या है ॥ ३१ ॥ यह जीव जागतेमें जो विषय भोग करता है, वह भोग एक क्षणभरका है, कुछ नित्य नहीं, जैसे बाल्यावस्था और तरुणपन आये और गये जाग्रतके समान भोग करते हैं और सुषुप्तिमें यह सब धर्म लीन हो

यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः ॥ जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥३०॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भवानां तत्कृता भिदा ॥ गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान् भुङ्क्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् ॥ स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥ ३२ ॥ एवं विमृश्य गणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ॥ संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्ण-ज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥३३॥ ईक्षेत विभ्रमिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ॥ विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ ३४ ॥

जाते हैं, केवल आत्माही रहता है, मैंने पहले तो स्वप्न देखा फिर सुखसे सोया, कुछ ज्ञान न रहा इस अनुभवके स्मरणसे तीनों अवस्था बुद्धिकी हैं, इनका साक्षी एक आत्माही रहता है और सब लीन होजाते हैं इस कारण आत्मा सब इंद्रियोंका ईश्वर है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यह तीनों अवस्था मनके वशमें है आत्माके वश में नहीं सो मेरी शक्ति अविद्यासे अपने को मान लेती है, ऐसा निश्चयकर सब सन्देहका स्थान अहंकार है उसको विवेकसे, अनुमानसे और प्रमाण वचनसे उपजा जो ज्ञानरूपी खड्ग, उससे काटकर हृदयमें स्थित मेरा भजन करे ॥ ३३ ॥ अनुमान किस प्रकारका है सो कहते हैं यह जो जगत् दीखता है सो सब मनका विलास है, भ्रम और मिथ्या विलास है, यह द्वैत भी भ्रांतिरूप है, क्योंकि यह अति चञ्चल है और जो चञ्चल हो वह अलातचक्रके समान भ्रांतिरूप हैं ब्रह्ममें द्वैतकी

अनेक भ्रांति होती हैं, इसलिये भ्रांतिका अधिष्ठान रूप एक ब्रह्मही अनेक प्रकार दीखता है और जो यथार्थ विचारसे देखते हैं तो यह त्रिगुणात्मक मायाका तुम स्वप्नके समान है ॥३४॥ इससे मैं उद्धव ! ऐसे प्रपंचसे दृष्टि फेर तृष्णा छोड़ आत्मासुखके विचारमें तत्पर हो इंद्रियोंके सब धर्म छोड़ दो । यदि कहो कि देहवान्से देहकी चेष्टा कैसे छूट सकती है और न छूटनेसे द्वैत हो जायगा, तो कहते हैं कि कहीं ऐसे भी देह की चेष्टा देखी जाती है परन्तु वह चेष्टा अलंकार रहित है सत्य नहीं, जिससे प्रपञ्चमें उनकी मिथ्या बुद्धि है, जो मिथ्या जानकर छोड़ दिया जाता है तो वह फिर मोह उत्पन्न नहीं करता, यह निश्चय है, देहतक कर्मोंका संस्कार है ॥३५॥ जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष इस विनाशी देहको दैवगतिसे आसनसे उठा, आसनपर स्थित, उठकर खड़ा हुआ बाहर को गया अथवा दैवगतिसे फिर आया हुआ नहीं देखते, जैसे

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवोनिरीहः ॥ संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात् ॥ ३५ ॥ देहं च नश्वरमवस्थिमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥ ३६ ॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्मयावत्स्वारम्भकं प्रति समीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥ मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्साङ्ख्ययोगयोः ॥ जानीत माऽऽगतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥ अहं योगस्य साङ्ख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ॥ परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥

मदिरा पान से मत्त हुआ पुरुष पहने हुए वस्त्रको नहीं जानता; उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ब्रह्मको प्राप्त हो चुके हैं ॥३६॥ यहां तर्क करते हैं कि देहको न जाने तो देह क्यों नहीं गिरे ? तो कहते हैं कि देह भी दैवके अधीन है और जबतक इसका प्रारब्धकर्म है तबतक प्राण इंद्रियों सहित देह रहता है इसलिए जो समाधियोगमें आरूढ़ हैं, जो परमार्थवस्तु और आत्मस्वरूको जानते हैं वे पुरुष प्रपञ्च सहित स्वप्नके समान इस देहको नहीं भजते ॥३७॥ हे ब्राह्मणो ! सांख्य और योगमार्गका जो रहस्य था वह मैंने आपसे वर्णन किया, तुम्हें धर्म और ज्ञानका उपदेश देनेके लिये मैं यज्ञरूप विष्णु आया हूँ, ऐसा जानो ॥ ३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! योग, सांख्य, सत्य ऋत अर्थात् शास्त्रोक्त धर्म, तेज, प्रभाव, श्री, कीर्ति और इंद्रियपन इन सब धर्मोंका मैं ही परमार्थस्थान हूँ यह सब मुझमें ही रहते हैं ॥ ३९ ॥

सब गुण मेरे ही आश्रित हैं, मैं निरपेक्ष हूँ, सुहृद परमप्रिय हूँ सबका आत्मा और सब मुझे समान हैं, संग किसीका नहीं ऐसे गुण मुझमें हैं ॥४०॥ इस प्रकार मेरे वचन सुन संदेह निवृत्त कर सनकादिक मुनियोंने अतिभक्तिसे मेरी पूजा और स्तुति की ॥४१॥ जब उन ऋषियोंने भलीभांति स्तुति और पूजा की तब ब्रह्माके देखते-देखते मैं भी अपने धामको चला गया ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां हंसेतिहासवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा—इस चौदह अध्यायमें, सबका यही विचार। सब साधनमें मुख्य हैं, भक्ति मुक्तिदातार ॥ उद्धवजी बोले कि हे श्रीकृष्ण! जो पुरुष ब्रह्मका विचार करते हैं, वे तो ब्रह्मका साधन बहुत

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्याऽसंगादयो गुणाः ॥ ४० ॥ इति मे छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः ॥ सभाजयित्वा परयाभक्त्याऽगृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥ तैरहं पूजितः सम्यक्संस्तुतः परमर्षिभिः ॥ प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चित्तगुणविश्लेषवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ उद्धव उवाच ॥ वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥ तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥ भवतोदाहृतः स्वामिन्भक्तियोगोऽनपेक्षितः ॥ निरस्य सर्वतः सङ्गं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ॥ मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ ३ ॥ तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ॥ ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥

बताते हैं, उन सबोंमें जो एक मुख्य साधन है सो कहो ॥१॥ हे ईश्वर! तुम निरपेक्ष भक्ति ही एक मुख्य साधन कहते हो कि सब संग छोड़ भक्तियोगसे मुझमें चित्त रखे ॥२॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव! भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ साधन है और जो अनेक साधन हैं वह अपनी इच्छानुसार संसारके लोगोंने मूर्खपनसे मुख्य मान रखे हैं, वह सब तुच्छ फलके देनेवाले हैं और मुख्य तो यह मेरी वेदरूप वाणी है, जो प्रलयकालमें नष्ट हो गयी थी, यह वह वाणी है, जिससे प्राणीका मन मुझमें लग जाय, यह पहले मैंने ब्रह्माजीसे कहा था ॥३॥ ब्रह्माने अपने बड़े पुत्र मनुसे वह वाणी कही, मनुने महर्षि भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु इन सात ब्रह्माके पुत्रोंसे कही ॥ ४ ॥

उनसे उनके पुत्र दैत्य, देवता, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर ॥५॥ चारण, किंदेव (मनुष्य जातिमें देवतुल्य), किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुषादिक सबोंने वह वाणी ग्रहण की, जिनकी वासना रजोगुण तमोगुण आदिसे अनेक प्रकारकी हैं ॥ ६ ॥ जिन वासनाओंसे देवतुल्य मनुष्यादिक प्राणियोंके शरीर भिन्न-भिन्न होते हैं और उनकी बुद्धियोंमें भी भेद है उन सबोंने अपनी वासनाके अनुसार भिन्न-भिन्न वेदका व्याख्यान किया है ॥७॥ इस प्रकार प्रकृतिकी विचित्रतासे मनुष्योंकी बुद्धि विचित्र हो गयी और शास्त्रोंमें भी भेद पड़ गये किसी प्राणीके उपदेशकी परंपरासे वेद विरुद्ध पाखण्ड बुद्धि हुई ॥ ८ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! मेरी मायासे मोहितबुद्धि पुरुष अनेक प्रकारसे इच्छानुसार

तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ॥ मनुष्याः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥ किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षः किंपुरुषादयः ॥ बह्व्यस्तेषां प्रकृतयो रजः सत्त्वतमोभुवः ॥ ६ ॥ याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा ॥ यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवन्ति हि ॥ ७ ॥ एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यन्ते मतयो नृणाम् ॥ पारम्पर्येण केषांचित्पाखण्डमतयोऽपरे ॥८॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषा पुरुषर्षभ ॥ श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि ॥९॥ धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ॥ अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥ केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥१०॥ आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ॥ दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ॥ ११ ॥ मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः ॥ मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥१२॥

कल्याणके साधन कहते हैं ॥ ९ ॥ कोई धर्मको ही मुख्य कहता है कोई यशको, कोई कामको, कोई सत्यको, कोई शम दमको, कोई ऐश्वर्यको और कोई स्वार्थको ही मुख्य कहते हैं, कोई दान करो; भोग करो यही कहते हैं, कोई यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियम, संयम यह सब साधन कहते हैं ॥१०॥ इन प्राणियोंको अपने कर्मानुसार लोक, कर्मफल मिलते हैं वह सब परिणाममें दुःखसे पूर्ण किंचित आनन्दयुक्त शोकसे व्याप्त आदि अंतवाले हैं ॥११॥ हे सौम्य ! मुझमें जिन्होंने आत्मसमर्पण किया है और जो सबसे निरपेक्ष हैं उनको मेरे परमानन्द स्वरूपकी प्राप्तिसे सुख मिल रहा है, वह सुख विषयोंमें लगे पुरुषोंको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जो भक्तोंका सुख है वह विषयी पुरुषोंको कहां ? ॥१२॥

जो अकिंचन, दांत, समचित्त और सन्तुष्टमन हैं उनको सब दिशायें सुखरूप हैं ॥ १३ ॥ जिन्होंने मुझमें आत्मसमर्पण कर दिया है, उनको मेरे अतिरिक्त और किसी वस्तु की चाहना नहीं है; मैं एकही उन्हें प्रिय हूँ; अधिक क्या कहें, ब्रह्मलोक, इन्द्रका सम्पूर्ण राज्य, भूमिका राज्य, पातालका राज्य, अणिमा महिमादिक योगसिद्धि व मोक्ष तककी उनको चाहना नहीं है ॥१४॥ इसलिये भक्तोंके समान मुझे कोई प्यारा नहीं ? हे उद्धव ! अब मैं तेरे आगे अधिक क्या कहूँ, मेरा आत्मा भी मुझे प्रिय नहीं, हे उद्धव ! जैसे तुम मुझे प्यारे हो वैसे मेरा पुत्र ब्रह्मा महादेव; संकर्षण और लक्ष्मीजी भी मुझे प्यारे नहीं हैं, यह अति सन्तोषसे भगवान् श्री कृष्णन्द्रने कहा ॥ १५ ॥

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ॥ मया संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥ न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्र धिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥ १४ ॥ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः ॥ न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ ॥ निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ॥ अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥ निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ॥ कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत् तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥ बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः ॥ प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥ यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ॥ तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २० ॥

॥१६॥ उत्तम भक्तोंकी तो कथा ही क्या है जो सामान्य भी मेरे भक्त हैं वे भी कृतार्थ हैं और जो मेरे भक्त विषयोंसे पीड़ित अजितेंद्रिय उनको भी दृढ़ भक्ति होनेके कारण विषय पराभव नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि काष्ठको भस्म कर देती हैं उसी प्रकार मेरी दृढ़ भक्ति सब पापोंका नाश कर देती है ॥ १९ ॥ इसके भक्ति विना और कोई उपाय नहीं है । हे उद्धव ! योग, सांख्य, धर्म, पाठ, तप, त्याग यह कोई मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते जैसे एक दृढ़ भक्ति मुझे वश कर लेती है ॥ २० ॥

भक्तोंको प्रिय आत्मारूप मैं श्रद्धासे उत्पन्न हुई भक्तिसे ही आत्माओंके वश हो जाता हूँ। यदि मेरी भक्ति चाण्डाल करे तो उसके भी जातिदोष पवित्र हो जाते हैं * ॥ २१ ॥ सत्य और दयासंयुक्त धर्म और तपसे संयुक्त विद्या भी उस पुरुषको पवित्र नहीं कर सकती जिसके चित्तमें मेरी भक्ति नही है ॥ २२ ॥ जिसके रोमाञ्च न हो, द्रवीभूत न हो, आनंद के आंसू न चले, उसकी भक्ति कैसे जानी जाय और भक्ति विना हृदय कैसे शुद्ध हो ॥ २३ ॥ अब भक्तिका लक्षण कहते हैंः—जिसकी वाणी गद्गद हो, चित्त द्रवीभूत

भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ॥ भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥ २१ ॥ धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ॥ मद्भक्त्याऽपेतमात्मानं सम्यक् प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥ कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ॥ विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या विनाऽऽशयः ॥ २३ ॥ वाग्गद्गदाद्रवते यस्य चित्तं रुदत्यवीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ॥ विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥ यथाग्निना हेम मलं जहाति ध्यातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम् ॥ आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ ॥ २५ ॥ यथायथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ॥ तथातथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम् ॥ २६ ॥

कोमल हो, नेत्रोंसे वारंवार आंसू बहे, कभी हँसे कभी लज्जा छोड़ उच्चस्वरसे गावे नाचे इस प्रकार जो मेरी भक्तिसे युक्त हो वही लोकोंको पवित्र करता है ॥२४॥ जैसे सुवर्ण अग्निमें तपाने से श्यामता छोड़ निर्मल ही अपने रूपको प्राप्त होता है वैसे ही यह आत्मा मेरे भक्ति योगसे कर्मवासना त्यागकर मेरेही स्वरूपको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ ज्ञान विना अविद्या नहीं जाती, अविद्याके गये विना आप नहीं

* दृष्टान्त—'एक तिलोक सुनार बड़े साधुसेवी थे' जो कुछ वस्तु प्राप्त होती थी, सब साधुओंमें व्यय कर देते थे। एक समय राजाके यहांसे कुछ आभूषण बनानेको आये, सो इनके यहां बहुतसे साधु आ गये, इन्होंने उस राजाके द्रव्यकी भोजन सामग्री मँगाकर साधुओंको खिला दी और आप टालबाल करते रहे। जब राजाके यहां व्याहका दिन आया तो यह जङ्गलको भाग गये, तब भगवान्ने भक्तकी रक्षा की, तिलोकका रूप बना गहना लेकर राजाके घर गये, वहांसे अच्छे आभूषण बनानेके कारण पुरस्कार पाया और गहना दिया। भगवान् वह पुरस्कार का द्रव्य तिलोकके घर दे जंगलमें जाकर उससे कहने लगे कि घरको जा, राजाने बहुत द्रव्य दिया है। त्रिलोक सुनते ही घर आकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। आशय यह है कि ईश्वरके भक्त कभी कष्ट नहीं पाते।

मिलते, इस प्रकार कहते हैं कि यह पुरुष जैसे-जैसे मेरी पुण्य कथा श्रवण कीर्तन करते हैं वैसे ही वैसे शुद्ध चित्त होते हैं, नेत्र जैसे-जैसे अञ्जनसे सूक्ष्म होते हैं वैसे ही वैसे सूक्ष्म पदार्थ देखनेमें आते हैं ॥ २६ ॥ यद्यपि विषयके ध्यानसे मन विषयमें रहता है परंतु तो भी मेरा ध्यान करनेसे शुद्धचित्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है क्योंकि मेरी भक्ति विना ज्ञान नहीं होता और मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होनी यही ज्ञान है ॥२७॥ हे उद्धव ! इसलिये स्वप्न मनोरथके समान मिथ्या वस्तुका ध्यान छोड़ मेरी भावनासे चित्त शुद्धकर मेरे स्वरूपमें

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥ तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथान् ॥ हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥ स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ॥ क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥ २९ ॥ न तथाऽस्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्य-प्रसङ्गतः ॥ योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथातत्सङ्गिसङ्गतः ॥ ३० ॥ उद्धव उवाच ॥ यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् ॥ ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ॥ हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥

रखे ॥२८॥ स्त्रियोंका संग और स्त्रियोंके संगियोंका संग दूरसे छोड़ आत्माको जान धीर हो एकान्तमें बैठ परमकल्याणरूप मेरा चिंतन करे ॥२९॥ क्योंकि जैसा स्त्रियोंके संगसे और स्त्रियोंके संगियोंके संगसे इसे क्लेश बन्ध होता है वैसा औरके संग नहीं होता ॥ ३० ॥ उद्धवजी बोले कि हे कमलनयन ! जो मोक्ष चाहे वह तुम्हारा ध्यान किस प्रकार करे, किस स्वरूपका करे ! यह मुझसे कहो, क्योंकि आपके दास भावसे पुरुषार्थ को प्राप्त हो चुका हूँ * ॥३१॥ श्रीकृष्ण बोले कि हे उद्धव ! समान आसनपर बैठ अपनी देह सम रख जैसे

* शंका—श्रीकृष्णसे उद्धवने पूछा कि मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगीजन भगवान्‌का ध्यान कैसे करते हैं ? तब श्रीकृष्णने उद्धवकी बातको त्याग कर सगुणरूपका वर्णन किया इसका क्या कारण ?

उत्तर—श्रीकृष्णचन्द्रने विचार किया ब्रह्मका ध्यान मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगीराज करते हैं,सो ध्यान सुननेसे और कहनेसे प्राप्त नहीं होता, वह बहुत दिनोंतक सत्संग करनेसे प्राप्त होता है और उद्धवका हृदय ज्ञानमें कच्चा है और हमारी इच्छा परमधामके जानेकी है, जो कुछ अधिक दिन हमको मर्त्यलोकमें रहना होता तो भी उद्धव ब्रह्मज्ञान जाननेमें पक्का हो जाता । ऐसा विचार करके सगुणका ध्यान वर्णन किया कि धीरे-धीरे सगुणका ध्यान करते-करते ब्रह्मके ध्यानको उद्धव प्राप्त हो जायेंगे इसलिये ब्रह्मके ध्यानको त्यागकर सगुणका ध्यान श्रीकृष्णचन्द्रने वर्णन किया ।

सुख हो वैसे ही बैठ अपने दोनों हाथ गोदपर रख नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखे ॥३२॥ इस प्रकार बैठ प्राणके मार्ग पूरक, कुम्भक, रेचक करके शुद्ध हो जितेन्द्रिय हो शनैः शनैः प्राणायामका अभ्यास कर रेचक, पूरक, कुम्भक, क्रमसे अभ्यास करे ॥३३॥ प्राणायाम दो प्रकारका है एक तो प्रणवसहित प्राणसे प्रकट करके ॐकारमें घण्टे के शब्दके समान उदात्त नाद स्थिर करे ॥३४॥ इस प्रकार प्रणवसंयुक्त प्राणके अभ्याससे प्रकट करे और प्रणवमें घटाना, बढ़ाना संधानका स्थित अभ्यास करे, दश प्राणायाम तीनों काल करे इस प्रकार अभ्यास करनेसे एक महीनेमें प्राणवायु वशमें हो जाता है ॥३५॥ इस देह के भीतर हृदय कमल अधोमुख है; उसकी दंडी ऊपर रहती है, जैसे केलेका फल होता है ऐसे ही कमलकी कली होती है। उसका ध्यान ऐसा करे कि वह नीचे नालवाला और ऊपर मुखवाला

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ॥ विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत्॥प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम्॥३४॥एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत्॥दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥ ३५ ॥ हृत्पुण्डरीकमन्तःस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ॥ ध्यात्वोर्ध्वमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥ कर्णिकायां न्यसेत् सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम्॥वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमङ्गलम्॥ ३७ ॥ समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम्॥सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥३८॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सं श्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥ ४० ॥

खिला हुआ आठ पखुरीसे युक्त है, कर्णिकासहित मनसे चिंतन करे ॥ ३६ ॥ उस कमलकी कर्णिकामें सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं, उस अग्निमें मेरे इस रूपका क्रमसे ध्यान करे, उसमें प्रथम अग्निके बीचमें वक्ष्यमाण ध्यानके मंगलरूप विषय मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ॥३७॥ सम, अतिशांत, सुन्दरमुख, दीर्घ सुन्दर चार भुजा धारण किये, अतिसुन्दर ग्रीवा, उत्तम गोल कपोल, अति उज्ज्वल मन्द मुसकान युक्त ॥ ३८ ॥ समान कानोंमें प्रकाशमान मकराकृति कुण्डल धारण किये, पीतांबर पहने, मेघकी भाँति श्याम, सुन्दर श्रीवत्स संयुक्त, लक्ष्मीको वक्षस्थलमें धारे ॥ ३९ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म वनमालासे भूषित, नूपुरोंसे शोभित चरणकमल, कौस्तुभ मणिकी

कांतिसे संयुक्त ॥ ४० ॥ प्रभावसे दीप्तिमान् कंकण, कटिमेखला, बाजूबन्द धारण किये, सर्वांग सुन्दर और मनोहर प्रसन्नताके कारण अतिसुन्दर शोभित मुख और नेत्र, अति सुकुमार रूपका ध्यान करे, सब अंगोंमें मन दे ॥ ४१ ॥ प्रथम इंद्रियोंको विषयोंसे खींच मनमें मिलावे, मनको बुद्धि सारथीसे विषयोंमें निकाल मेरे स्वरूपमें से मिलावे ॥४२॥ चित्त सर्वत्र व्याप्त है, अंग अंगमें फिरता है, उसको उन अंगोंसे निकाल मेरे मुखकी भावनामें रखे, मन्दहास्यसंयुक्त मेरे मुखका बहुत कालतक चिंतन करे और कुछ मनमें न धरे ॥ ४३ ॥ जब मुखमें मन स्थिर हो जाय तो मुखसे भी खींच कर सबके मूलभूत साक्षात् मेरे स्वरूपमें रखे, उसे वहां से छुड़ाकर साक्षात् शुद्ध ब्रह्म-

द्युमत्किरीटकटककटिसूत्राङ्गदायुतम् ॥ सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥ ४१ ॥ सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ॥ बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥ तत सर्वैव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ॥ नान्यानि चिन्तयेद् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥ ४३ ॥ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ॥ तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥४४॥ एवं समाहित-मतिर्मामेवात्मानमात्मनि ॥ विचष्टे मयि सर्वात्मञ्ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम्॥४५॥ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ॥ संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे भक्ति-ध्यानयोर्वर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥ मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥

रूप मेरे सम्पूर्ण स्वरूपमें संलग्न हो जाय तब और कोई चिंतवन न करे ॥४४॥ इस प्रकार समाधिमें दृढ़मति हो अपने आत्मामें आत्मारूप मुझे ही देखे जैसे ज्योतिमें ज्योति मिल जाती है उसी प्रकार सर्वात्मरूपमें अपने आत्माको मिला देखे ॥४५॥ इस प्रकार सुदृढ़ तीक्ष्ण ध्यानसे योगीजन मुझमें मन संयुक्त करें तब वह द्रव्य ज्ञान क्रियारूप भ्रम शीघ्र ही निवृत्त होनेसे शांतिको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे भक्तियोगनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ दोहा–प्रथम धारणा अनुसरण, करत विष्णुपद प्रेम । विघ्नरूप सिद्धी सकल, समझ यही दृढ़ नेम ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! जो जितेंद्रिय

भा० ए० हो और श्वास जीते, चित्त मुझमें रखता हो, योगी हो, स्थिर चित्त हो, उसे यह सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥ तब उद्धवजी बोले कि
॥९१॥ हे श्री कृष्ण ! कैसी धारणा से यह सिद्धि प्राप्त होती हैं और सिद्धि कितनी हैं ? इनका रूप क्या है ? सो सब मुझसे कहो, क्योंकि तुम योगियोंको भी सिद्धियोंके देनेवाले हो ॥ २ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! धारणा और योगके पारंगतोंने अठारह (१८) सिद्धि कही हैं उनमें आठ मेरे आश्रय रहती हैं, वह मुझे ही प्राप्त होती हैं, अथवा जो मेरे सारूप्यको प्राप्त हैं उन्हें होती हैं, परन्तु कुछेक न्यून हो और दश सिद्धि गुणोंका कार्य हैं, सत्त्वगुणका उत्कर्ष बढ़ाती हैं ॥ ३ ॥ उनको कहते हैंः—अणिमा, महिमा, लघिमा, ये तीनों देहकी सिद्धि हैं; प्राप्ति सिद्धि इन्द्रियकी है, इन्द्रियोंसे मिल इन्द्रियोंके देवताओंका संग होना, परलोक और इस लोकके

उद्धव उवाच ॥ कया धारणया कास्वित्कथं वा सिद्धिरच्युत ॥ कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिद्धयोऽष्टादशप्रोक्ता धारणायोगपारगैः ॥ तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥ अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ॥ प्राकाश्यंश्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥ गुणेष्वसंगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन् दूरश्रवण-दर्शनम् ॥ मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥

विषयोंसे भोग देखनेका सामर्थ्य तथा भूमिके गुप्त पदार्थका ज्ञान होना प्राकाम्य सिद्धि है; ईश्वरमें मायाकी और दूसरोंमें मायाके अंशोंकी प्रेरणा करनेके सामर्थ्यको ईशिता सिद्धि कहते हैं ॥ ४ ॥ गुणमें असंग हो, विषय भोग करे और संग दोष न लगे, उसे वशिता सिद्धि
भा० टी० कहते हैं और जिसकी कामना करे वही प्राप्त हो, उसे प्राकाम्य सिद्धि कहते हैं, हे उद्धव ! यह आठ सिद्धियां मेरे आश्रय रहती हैं ॥ ५ ॥
अ० १५ क्षुधा पिपासादिक शरीरमें न व्यापे, उनको अनूर्मिमत्व सिद्धि कहते हैं (१), दूरकी सब बातें सुननेमें भले प्रकार आवें इसका नाम दूर श्रवण सिद्धि है (२), दूरके सब पदार्थ और सर्वत्र स्थान घर बैठे दीखें उसका नाम दूरदर्शनसिद्धि है (३), जहां मन जाय वहां देह सहित पहुँचना इसका नाम मनोजव सिद्धि है (४), जैसा रूप बनाना चाहे उसी प्रकार का रूप हो जाय इसका नाम कामरूप सिद्धि है (५), दूसरेके

शरीरमें प्रवेश करना इसका नाम परकायप्रवेशन सिद्धि है (६) ॥ ६ ॥ अपनी इच्छानुसार मरना, इसका नाम स्वच्छन्दमृत्यु सिद्धि है (७), देवता अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करते हैं उनको देखनेका सामर्थ्य इसका नाम देवांगना सह क्रीडानुदर्शन सिद्धि है (८), जो मनमें इच्छा हो वही वस्तु तत्काल प्राप्त हो, इसका नाम यथासंकल्पसिद्धि है (९), किसी स्थलमें आकाश भंग न हो इसका नाम अप्रतिहताज्ञा सिद्धि है (१०) यह दश सिद्धि सत्त्व गुणकी वृत्तिसे मिलती हैं ॥७॥ पांच सिद्धि तुच्छ हैं सो कहते हैंः—तीन कालका ज्ञान होना, इसका नाम

स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ॥ यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहताऽऽगतिः ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ॥ अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥ ८ ॥ एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ॥ यया धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥ ९ ॥ भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ॥ अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥

त्रिकालज्ञ सिद्धि है (१), शीत उष्ण कुछ न लगना, इसका नाम अद्वन्द्व सिद्धि है (२), पराये मनकी बात जान लेना इसका नाम प्रचित्ताद्यभिज्ञता सिद्धि है (३), अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिसे देहको किसी प्रकारकी हानि न हो, इसका नाम प्रतिष्टम्भ सिद्धि है (४) और कहीं पराजय न हो, इसका नाम अपराजय सिद्धि है (५) यह पांच क्षुद्रसिद्धि हैं ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! यह सब योगधारणाकी सिद्धिमात्र कही अब ज्ञानधारणासे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह मैं आपके सामने वर्णन करता हूँ सो सुनो ॥९॥ सूक्ष्म मेरे रूपमें सूक्ष्म

---

* शंका—अग्नि, सूर्य, विष, जल इत्यादि और बड़े–बड़े पदार्थोंका तेज रोकनेके लिये श्रीकृष्णने सिद्धियें वर्णन की हैं, ऐसी सिद्धियोंसे योगीजन अग्नि, सूर्य, विष, जल इन सबके संपूर्ण तेजको रोक लेते हैं, इसमें यह शंका है कि, भगवान् वासुदेवमें जिन योगीश्वरोंका मन लगा है उनको इन सब पदार्थों के रोकनेसे क्या प्रयोजन ?

उत्तर—योगशास्त्रके जाननेवाले मुनिजन दो प्रकारके योगी होते हैं, एक तो गृहस्थ योगी जो घरमें बैठे-बैठे योग करते हैं जैसे राजा जनक, दूसरे विरक्त योगी जो घर त्यागकर योग करते हैं जैसे भूतनाथ शिव, आठ सिद्धि भी आदिसे चली आती हैं, श्रीकृष्णने गृहस्थ योगियोंके लिये इन सिद्धियोंको कहा था अग्नि, सूर्य,विष, जलका तेज रोकनेके लिये नहीं कहा । जो कोई कहे कि, ऐसा भेद नहीं कहा कि, गृहस्थ योगियोंके लिये यह सिद्ध तो ठीक है भगवान्को वैकुण्ठसे जानेकी इच्छा थी इसलिये आतुरतासे योगियोंका नेम नहीं किया ।

भूत अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सूक्ष्म तन्मात्राके आकारसे इस भूतसूक्ष्म उपाधिमान् मेरे स्वरूपमें धारण करनेसे सूक्ष्मरूपका उपासक पुरुष अणिमा सिद्धिको प्राप्त होता है ॥१०॥ ज्ञानशक्ति महत्तत्त्वरूपमें महत्तत्त्वरूप मनमें धारण करे तो महिमा सिद्धिको प्राप्त हो । और भिन्न-भिन्न आकाशादिक भूतोंकी ही रूपमें मन लगावे तो भूतोंकी गरिमा सिद्धिको प्राप्त हो ॥११॥ पञ्चभूतोंके परमाणु अतिसूक्ष्म हैं सो मेरा रूप है, उनमें चित्त अनुरक्त करे, तब योगी परमाणु कालके रूपको प्राप्त होता है इसीका नाम लघिमा सिद्धि है॥१२॥ सात्त्विक अहंकार तत्त्वरूप मुझमें एकाग्रमन धरे तो सब इन्द्रियोंका अधिष्ठाता हो जाता है, मुझमें ही मन लगानेके प्रभावसे यह प्राप्ति सिद्धि प्राप्त

महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् ॥ महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥ परमाणुमये
चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन् ॥ कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो
वैकारिकेऽखिलम् ॥ सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥ महत्यात्मनि यः सूत्रं धारयेन्मयि
मानसम् ॥ प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥ विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ॥ स
ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ॥ मनो मय्यादधद्
योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनः ॥ परमानन्दमाप्नोति यत्र कामो-
ऽवसीयते ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ॥ धारयन् श्वेततां याति षडूर्मिरहितो नरः ॥ १८ ॥

होती है ॥१३॥ प्रकृतिसे क्रियाशक्ति रूप महत्त्व होवै है, सो रूप है, उसमें मन लगावे तो सबसे उत्तम प्राकाम्य सिद्धिको प्राप्त हो ॥१४॥ त्रिगुण मायाके नियन्ता अन्तर्यामी कालरूपी व्यापक मेरे रूपमें मन लगावे तो सब जीव और चर अचर शरीरका नियन्ता होवे, सो ईशिता सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ विराट्, हिरण्यगर्भ और कारणसे चौथे तुरीय ब्रह्म भगवान् नारायणमें जो मन लगावे तो वह योगी मेरे धर्मको प्राप्त होता है, तब वशिता सिद्धिको पाता है ॥१६॥ निर्गुण ब्रह्ममें निर्मल मन रखे तो परमानन्दको प्राप्त हो जहां सब कामना समाप्त होती हैं ॥ १७ ॥ अब गुणहेतुसिद्धि कहते हैं–कि श्वेतद्वीपके पति शुद्ध धर्ममय मेरे रूपमें मन लगावे तो मनुष्य

शुद्धता को प्राप्त हो और उसे क्षुधापिपासा आदि यह छः ऊर्मी लहरी नहीं व्यापती ॥१८॥ आकाशरूप प्राण है, सो मेरा स्वरूप है उनमें मन लगाकर शब्दका चिंतवन करे, तब वह आकाशमें भूतोंकी वाणी प्रकट दूरसे ही सुनता है ॥ १९ ॥ यह नेत्र सूर्यमें मिलावे, मनसे मेरा ध्यान करे तब सूक्ष्म दृष्टि विश्वको दूरसे ही देखे ॥ २० ॥ मन वायुके सङ्ग देहको मुझमें संयुक्त करके जो मेरी धारणा करे तो इस धारणाके प्रतापसे जहां मन करे वहां ही देह चली जाय ॥ २१ ॥ जब मेरे मनकी धारणासे धरे तब मेरे प्रभावसे जैसा रूप करना चाहे, वैसाही रूप करे, क्योंकि उन्हें मेरे योगबलका आश्रय है ॥२२॥ जो सिद्धि परायी कायामें प्रवेश करना चाहे सो आत्माका चिन्तन करे, तब अपनी देह छोड़ प्राणरूप हो बाहरकी वायुमें प्रविष्ट हो वायुके संग परकायामें प्रविष्ट होते हैं, जैसे भ्रमर पुष्पसे दूसरे पुष्पमें

मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ॥ तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥ चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ॥ मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ॥ मद्धारणाऽनुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥२१॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ॥ तत्तद्भवे-न्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायं विशन् सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ॥ पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणो वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ॥२३॥ पार्ष्ण्याऽऽपीड्य गुदं प्राणं हृदुरः कण्ठमूर्धसु ॥ आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत् तनुम् ॥ २४ ॥ विहरिष्यन्सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ॥ विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥ यथा संकल्पयेद् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ॥ मयि सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥

अनायास चले जाते हैं ॥२३॥ अब स्वच्छन्द मृत्युकी क्रिया कहते हैं:-योगधारणा करते समय प्रथम एँड़ीसे गुदाका द्वार दाबकर रोके, पीछे प्राणको हृदयमें ले आवे, फिर हृदयको उरुवक्षस्थलमें मिलावे, इसके पीछे कण्ठमें ले आवे फिर माथेमें लावे, तब ब्रह्मरन्ध्रद्वारा इस देहको छोड़े और जिस स्थानमें जाना चाहे वहां जाय ॥२४॥ और जो देवताओंके क्रीड़ास्थलमें विहार करना चाहे तो मेरी सत्वगुणरूपी मूर्तिका ध्यान करे, तब सत्त्वगुणके अंशसे वहां ही विमान समेत देवांगना आकर उपस्थित हो जाती हैं ॥२५॥ पुरुष मुझमें विश्वास कर बुद्धिसे मनोरथ करे,तब सत्यसंकल्परूप मेरे रूपमें मन संयुक्त करे, तब वैसे ही मनोरथको प्राप्त हो यथासंकल्प नाम सिद्धिको पाता है ॥२६॥

मैं सबोंका ईश्वर और नियन्ता हूँ, स्वतन्त्र हूँ, मेरे भावको प्राप्त हुआ पुरुष कहीं प्रतिहत नहीं होता, जैसे मेरी आज्ञा सब मानते हैं वैसे ही उसकी आज्ञा भी सब मानते हैं, कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता, यह पुरुष सब गुण हेतु अप्रतिहताज्ञा नाम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥२७॥ अब तुच्छसिद्धि कहते हैं-मेरी भक्तिसे शुद्धसत्त्वरूपमय होकर योगी, ईश्वर त्रिकालके ज्ञाता हैं इस प्रकार मेरी धारणा करे,तब जन्म मृत्यु सहित तीनों कालका सा ज्ञान होता है और इसीसे दूसरेके चित्तकी सब बात जानी जाती है ॥२८॥ मेरे योगसे जिसका चित्त युक्त हो उसकी देह भोगमय होकर अग्नि और अनेक उपाधिसे उपहत नहीं होती है, जैसे जलजन्तुको जल बाधा नहीं करता, ऐसेही उसको कोई बाधा नहीं कर सकता ॥२९॥ श्रीवत्स, अस्त्र, ध्वज, छत्र, चमरयुक्त मेरी विभूति अवतारका ध्यान करे तो कभी उसकी पराजय न हो ॥३०॥

यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ॥ कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥२७॥ मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ॥ तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ॥ मद्योगश्रान्तचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥ मद्विभूतीरभिध्यायञ्छ्रीवत्सादिविभूषिताः ॥ ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥ उपासकस्य मामेव योगधारणया मुनेः ॥ सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः ॥३१॥ जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ॥ मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥ अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् ॥ मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥ जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ॥ योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥

इस प्रकार मेरी उपासना करे तो मेरी योग धारणा करनेसे पहिले ही सब सिद्धि उसके आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं ॥ ३१ ॥ अनेक भांतिकी धारणामें कष्ट बहुत हैं इस कारण एक ही धारणा ऐसी करे कि जिससे सब सिद्धि प्राप्त हों, सो कहते हैं—जितेन्द्रिय हो, दान्त हो, श्वासजित् हो, मनोजित् हो, तुरीय ब्रह्म नारायण स्वरूप जो मैं हूँ, मेरी धारणा करनेवाले पुरुषको कौन सिद्धि दुर्लभ है ? ॥३२॥ जो मेरे साक्षात स्वरूपकी धारणा करते हैं, उनको मेरी प्रीति होनेके कारण यह सिद्धि विघ्न करती हैं, इसलिये इन सिद्धियोंसे व्यर्थ काल न खोवै, अर्थात् इन सिद्धियोंकी चाहना न करे ॥ ३३ ॥ एक सिद्धि जन्मसे ही होती है, जैसे देवताओंका सिद्धिसहित ही जन्म होता है, और मन्त्रसे,

औषधसे, तपसे जितनी सिद्धियां होती हैं, ये सब योगसे मिलती हैं, परन्तु इनसे सालोक्यादि मुक्ति नहीं प्राप्त होती ॥ ३४ ॥ इसलिये हे उद्धव ! सब सिद्धियोंका एक मैं ही प्रभु हूँ, क्योंकि उनकी उत्पत्ति और पालन मैं ही करता हूँ, सिद्धियोंका ही प्रभु नहीं किन्तु मोक्ष, सांख्य, ज्ञान, धर्म और ब्रह्मके जाननेवालोंका पालक भी हूँ, इसलिये सिद्धियोंकी अपेक्षा न रखकर मुझको प्राप्त होना यही योगका प्रधान फल कहा है ॥३५॥ मैं सब जीवोंका आत्मा हूँ, क्योंकि सबका अन्तर्यामी हूँ, सर्वत्र व्यापक हूँ, जैसे भूतोंमें महाभूत सर्वत्र व्याप्त है और आव-

सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥ अहमात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥ यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादेऽष्टादशसिद्धिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् ॥ सर्वेषामपि भावानां त्राणास्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ॥ उपासते त्वां भगवन् याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥

रणरहित है ॥३६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे सिद्धिकथनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ दोहा—इस सोलह अध्यायमें, ज्ञानप्रभाव विचार। वह विभूति वर्णन करूँ, देत सदा फल चार ॥ उद्धवजी बोले कि हे कृष्ण ! तुम साक्षात् परब्रह्म अनावृत तथा स्वतन्त्र हो, जिसमें सब भूतमात्रकी उत्पत्ति, प्रलय, रक्षा और जीवन होता है ऐसे तुम सबके कारण हो, आदि अन्तसे रहित हो ॥१॥ हे भगवन् ! ब्राह्मण (जो वेदके तत्त्वको जानते हैं) सर्वत्र ऊँच-नीच पदार्थोंमें कारणरूप तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ २ ॥

* शंका—भक्तोंके प्यारे भगवान्का पूजन करे,भजन करे, ध्यान करे और जो भगवान्की सेवा है सो ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबको लिखी है ऐसा नहीं लिखा है कि ब्राह्मणही अकेला भगवान्का पूजन करे । हे ब्राह्मणोंमें उत्तम कुलभूषण ! तो फिर श्रीकृष्णसे क्यों उद्धवजीने कहा कि हे भगवान् जिस विधिसे ब्राह्मण आपका पूजन करते हैं सो कहो हमको यह बड़ी भारी शंका है, क्योंकि ब्राह्मणके पूजनमें और विधि और शूद्रकी अलग है ? और भक्तिमार्गमें तो सबकी एक विधि है और उद्धव परमभक्त है, भक्तिमार्गकी पूजाका, वृत्तान्त पूछना था ।

उत्तर—उद्धवने ब्राह्मणके शापसे यदुवंशियों का क्षय देखकर ब्राह्मणोंको बहुत माना, क्योंकि श्रीकृष्ण के देखते ब्राह्मणोंके शापसे यादवोंका नाश हो गया, श्रीकृष्ण ने कुछ सहायता नहीं की, इस वास्ते उद्धवजीने जाना कि ब्राह्मणोंके ऊपर भगवान्का भी कुछ वश नहीं चलता ।

जो आत्मतत्त्वको नहीं जानते, उनके जाननेमें तुम नहीं आते और जिन-जिन भावनाओंमें ऋषीश्वर भक्तिसे तुम्हारी उपासना करके सिद्धिको प्राप्त होते हैं सो मुझसे उन पदार्थोंके नाम कहो ॥ ३ ॥ हे भूतभावन! सब प्राणियोंके मध्य तुम गुप्त रीतिसे विचरते हो, तुम उनको देखते रहते हो, परन्तु सब भूत तुम्हारी मायासे मोहित होकर तुम्हें नहीं देखते ॥ ४ ॥ जिनमें गुप्त रहते हो उन विभूतियोंको पूछते हैं। हे महाविभूतियोंके पति! जो तुम्हारी विभूति भूमिसे स्वर्ग पातालादि दिशाओंमें निश्चय की हैं और जो विभूति तुम्हारे प्रतापसे संयुक्त हैं सो मुझसे कहो, तुम्हारे तीर्थरूप चरणारविन्दोंको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! इस प्रकार उद्धवका प्रश्न सुन अति सन्तुष्ट हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे प्रश्नके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ! इसी भांति शत्रुओंसे युद्ध करनेकी इच्छावाले अर्जुनने

येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ॥ उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥ ३ ॥ गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ॥ न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥ ४ ॥ याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते ॥ ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदांवर ॥ युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥ ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ॥ ततो निवृत्तो हन्ताऽहं हतोऽयमिति लौकिकः ॥ ७ ॥ स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ॥ अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥ अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥

युद्धके समय कुरुक्षेत्रमें प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ यदि कोई कहे कि युद्धके समय इस प्रश्नका क्या प्रसंग था तो इसका उत्तर यह है कि राज्यके लिये अपने जातिवालोंका वध करना अनुचित, अतिनिन्दित और अधर्मरूप जानकर कि मैं इन्हें मारूँगा, यह मरेंगे ऐसी करुणा व्याप्त बुद्धि होनेसे पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन युद्ध करनेसे निवृत्त हो स्थित हुआ ॥ ७ ॥ तब मैंने युक्तिसे पुरुष श्रेष्ठ अर्जुनको समझाया कि कौन मारता है और कौन मृत्युको प्राप्त होता है? उस उपदेशके प्रसंगमें अर्जुनने यह भी मुझसे पूछा था जैसे अभी तुमने पूछा? अब उससे जो मैंने वर्णन किया है वही तुमसे कहता हूँ ॥ ८ ॥ हे उद्धव! इन सब प्राणिमात्रका आत्मा मैं हूँ, सुहृद ईश्वर नियन्ता मैं हूँ और सब प्राणियोंमें मैं हूँ,

एवं सबकी उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयकर्त्ता भी मैं ही हूँ ॥ ९ ॥ गतिवालोंकी जो गति चलती फिरती हैं, उनका भी योग, मन और कर्म मैं ही हूँ, जो सबको वशमें करते हैं उनमें मेरा रूप है, अनन्त गुण हैं, उनमें समता गुण मेरा रूप है, गुणसंयुक्त पुरुषका स्वाभाविक गुण मैं हूँ ॥१०॥ गुणवाले पदार्थोंमें क्रियाशक्ति प्रधान जो महत्तत्व है वह मैं ही हूँ, सूक्ष्मोंमें प्रथम जीव हूँ दुर्जयोंमें मन हूँ ॥ ११ ॥ वेदोंका अध्यापक हूँ, मन्त्रोंमें प्रणव हूँ अक्षरोंमें अकार हूँ, छन्दोंमें गायत्री हूँ ॥१२॥ सब देवताओंमें इन्द्र हूँ, आदित्योंमें विष्णु हूँ,रुद्रोंमें नील लोहित हूँ ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षियोंमें भृगु हूँ, देवर्षियोंमें नारद हूँ, राजर्षियोंमें मनु हूँ, गायोंमें कामधेनु हूँ ॥१४॥ सिद्धेश्वरोंमें कपिलदेव

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ॥ गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥ गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम् ॥ सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥ हिरण्यगर्भो वेदानां मन्त्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ॥ अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि च्छन्दसामहम् ॥ १२ ॥ इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ॥ आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः ॥ देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् ॥ प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा ॥ १५ ॥ मा विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् ॥ सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥ ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ॥ तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७ ॥ उच्चैःश्रवास्तुरङ्गाणां धातूनामस्मि काञ्चनम् ॥ यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥ नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् ॥ आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥

हूँ, पक्षियोंमें गरुड़ हूँ, प्रजापतियोंमें दक्षप्रजापति हूँ, पितरोंमें अर्यमा हूँ ॥ १५ ॥ हे उद्धव ! दैत्योंमें दैत्योंका राजा प्रह्लाद मैं हूँ, नक्षत्र औषधियोंका पति प्रभु चन्द्रमा मैं हूँ, यक्ष राक्षसोंका प्रभु कुबेर मैं हूँ ॥१६॥ गजेन्द्रोंमें ऐरावत हूँ, जलजन्तुओंमें प्रभु वरुण हूँ प्रतापवानोंमें और दीप्तवन्तोंमें सूर्य हूँ, मनुष्योंमें नराधिप हूँ, ॥१७॥ घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा हूँ, धातुओंमें सुवर्ण हूँ, दण्डकर्त्ताओंमें यम हूँ सर्पोंमें वासुकी हूँ ॥ १८ ॥ नागेन्द्रोंमें अनन्त शेषनाग हूँ, सींग तथा डाढवालोंमें सिंह हूँ, आश्रमोंमें संन्यास हूँ, हे निष्पाप ! वर्णोंमें

ब्राह्मण मैं हूँ ॥१९॥ तीर्थ और प्रवाहोंमें गंगारूप मैं हूँ, स्थिर जलोंमें समुद्र मैं हूँ, आयुधोंमें धनुष मैं हूँ, धनुषधारियोंमें त्रिपुरका घाती महारुद्र मैं हूँ, निवासस्थानमें सुमेरु मैं हूँ, दुर्गम, स्थलोंमें हिमालय मैं हूँ, वनस्पतियोंमें अश्वत्थ मैं हूँ, औषधियोंमें यव मेरा रूप है ॥ ॥ २० ॥ २१ ॥ पुरोहितोंमें वसिष्ठ हूँ, वेदार्थज्ञाताओंमें बृहस्पति हूँ, सेनापतियोंमें स्वामिकार्त्तिक हूँ, उत्तम मार्ग प्रविर्त्तियोंमें ब्रह्मा मैं हूँ ॥ २२ ॥ यज्ञोंमें ब्रह्म यज्ञ हूँ, व्रतमें हिंसारहित व्रत मैं हूँ, शोधकोंमें वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाणीरूप शोधक मैं हूँ, यह सदा पवित्रकारी हैं ॥ २३ ॥ योगीजनोंमें समाधि मैं हूँ, विजयकी इच्छावालोंका जो विचार है वह मैं हूँ, विवेकियोंमें आत्मा अनात्माकी विवेक-

तीर्थानां स्रोतसां गङ्गा समुद्रः सरसामहम् ॥ आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥ धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ॥ वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः ॥२१॥ पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ॥ स्कन्दोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ॥ वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३ ॥ योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम् ॥ आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणांतु शतरूपाऽहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः ॥ नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥ धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ॥ गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ॥ मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाभिजित ॥ २७ ॥

कारिणी विद्या मेरा रूप है, पांच प्रकार के जो ख्यातिवादी हैं वह यह हैं—आख्याति, अन्यथाख्याति, शून्यख्याति, असतख्याति, और अनिर्वचनीयख्याति । इनमें अनेक प्रकार वाद विवाद करनेवालोंका "यह इस प्रकारके हैं, वह उस प्रकारके हैं" इस रीतिके जो अनेक विकल्प हैं वह मैं हूँ ॥२४॥ स्त्रियोंमें शतरूपा मैं हूँ, पुरुषोंमें स्वायंभुवमनु मैं हूँ, मुनियोंमें नारायण मुनि मैं हूँ, ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मैं हूँ ॥ २५ ॥ धर्मोंमें अभयदान मेरा ही रूप है, निर्भय स्थानोंमें आत्मनिष्ठा मैं हूँ, अति रहस्योंमें प्रियवचन और मौन मैं हूँ, मिथुन अर्थात् स्त्री पुरुषोंमें ब्रह्मा मैं हूँ, जिनके दो अर्द्धभागोंसे स्त्री और पुरुष प्रकट हुए हैं ॥२६॥ जो पुरुष धर्ममें सावधान हैं उनका संवत्सररूपी

काल मैं हूँ, ऋतुओंमें वसन्त मैं हूँ, महीनोंमें मार्गशीर्ष मैं हूँ, और सम्पूर्ण नक्षत्रोंमें अभिजित् मैं हूँ ॥ २७ ॥ युगोंमें सत्ययुग मैं हूँ, धीरोंमें असित देवल मैं हूँ, वेदके विभागकर्त्ताओंमें द्वैपायन व्यास मैं हूँ, कवियोंमें शुक्राचार्य मैं हूँ ॥२८॥ प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलयगति अगति विद्या अविद्याका जाननेवाला वासुदेव मैं हूँ । हे उद्धव ! वैष्णवोंमें तुम मेरे रूप हो, किंपुरुषोंमें हनुमान् मैं हूँ, विद्याधरोंमें सुदर्शन मैं हूँ, ॥ २९ ॥ रत्नोंमें पद्मराग मैं हूँ, अतिसुन्दर वस्तुओंमें पद्मकोष मैं हूँ, दर्भजातियोंमें कुश मैं हूँ, घृतोंमें गौका घृत मैं हूँ ॥ ३० ॥ उद्यमी पुरुषोंमें लक्ष्मी मेरा रूप हैं, द्यूतोंमें छल करके जो ग्रहण करना है वह मेरा रूप है, क्षमावान् पुरुषोंमें क्षमा मैं हूँ, सत्यवादियोंमें सत्य

अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः ॥ द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ॥ किंपुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥२९॥ रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् ॥ कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविष्वहम् ॥३०॥ व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ॥ तितिक्षाऽस्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥ ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्वताम् ॥ सात्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परः ॥ ३२ ॥ विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् ॥ भूधराणामहं स्थैर्यं गन्धमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥ अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ॥ प्रभासूर्येन्दुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ॥ भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥३५॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षणम् ॥ आस्वादः श्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥

मैं हूँ ॥ ३१ ॥ बलवानोंमें इंद्रियबल और उत्साहबल मैं हूँ, भक्तोंमें भक्तिरूप कर्म मैं हूँ, जो नौमूर्त्ति भक्तोंकी पूजाको प्रकट हैं उन वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वाराह, नृसिंह, ब्रह्मामें आदिमूर्त्ति वासुदेव मैं हूँ ॥ ३२ ॥ गन्धर्वोंमें विश्वावसु मैं हूँ, अप्सराओंमें पूर्वचित्ति मैं हूँ, पर्वतोंमें स्थैर्य हिमालय मैं हूँ ॥३३॥ जलोंमें उत्तम माधुर्यरस मेरा ही रूप हैं, तेजस्वियोंमें अग्नि मैं हूँ, सूर्य, चन्द्र और ताराओंमें कांति मैं हूँ, आकाशमें परानाम शब्द मैं हूँ ॥३४॥ ब्राह्मणके भक्तोंमें बलिराजा मैं हूँ; वीरोंमें अर्जुन मैं हूँ। हे उद्धव ! निश्चय करके सम्पूर्ण भूतमात्रकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय मैं हूँ ॥ ३५ ॥ चरण, वाणी, गुदा, हस्त, लिंग इन पांच कर्म-

द्रियोंका गमन, वचन मलत्याग ग्रहण, आनन्द लेना यह कर्म मैं हूँ, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, श्रवण, नासिका, ज्ञानेंद्रियोंके स्पर्श, चितवन, आस्वाद, सुनना, आघ्राण कर्म मैं हूँ, उन उनके अर्थ ग्रहण करनेकी शक्ति भी मैं हूँ ॥ ३६ ॥ विशेष कहकर अब सामान्यसे सब विभूति कहते हैं:-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच सूक्ष्ममात्र हैं, अहंकार महत्तत्त्व आदि ये सात प्रकृतिके विकार हैं, पञ्चमहाभूत और एकादश इंद्रिय यह सोलह तत्त्व हुए, एक पुरुष और प्रकृति दो यह हुए, इस प्रकार सब पच्चीस (२५) तत्त्व हुए। रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण यह तीन गुण इनसे आगे जो परब्रह्म सो सब मैं ही हूँ, इनकी संख्या, इनका लक्षण सहित ज्ञान और उसका फल तत्त्वका निश्चय सब मैं ही हूँ ॥ ३७ ॥ मैं ही सबका ईश्वर हूँ, सब जीवरूप हूँ, मैं ही गुणीरूप हूँ मैं ही क्षेत्ररूप और क्षेत्रज्ञरूप हूँ, इसलिये मुझ विना जीव,

पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ॥ विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ ३७ ॥ अहमेतत प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः॥ मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना॥ सर्वात्मनाऽऽपि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया॥ न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः ॥ ३९ ॥ तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ॥ वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ॥ ४० ॥ एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ॥ मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥

ईश्वर, गुणी, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, इत्यादिक भाव कहीं नहीं ॥३८॥ अहो! तुम ऐसे संक्षेपसे क्या कहते हो, अच्छी भांति विस्तारसहित समझाकर कहो तो इसका उत्तर यह देते हैं-कि पृथ्वीके परमाणुकी संख्या कितने ही कालमें मैं करता हूँ और करके कहनेको भी समर्थ हूँ, परन्तु मेरी जो विभूतियें हैं उनकी संख्या नहीं की जाती, मैं अनेक कोटि ब्रह्माण्डोंको सृजता हूँ, जब ब्रह्माण्डकी ही संख्या नहीं तब उनमें स्थित मेरी विभूतियोंकी संख्या कौन कर सकता है ? ॥ ३९ ॥ परन्तु तो भी संक्षेपसे विशेष कर विभूति कहता हूँ कि जहां-जहां तेज श्री कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, दान, मान और नेत्रोंका आनन्द, भाग्य, वीर्य, क्षमा, विज्ञान इत्यादि ये जो धर्म हैं सो ये सब मेरा ही अंश हैं ॥ ४० ॥ ये विभूतियां संक्षेपसे मैंने इसलिये कहीं कि ये मनका विकार हैं, परमार्थरूप नहीं, जैसे आकाशके फूल आदि वाणीमात्रसे कहे

हैं, उनके तुल्य हैं ॥४१॥ पुरुषोंको उचित है कि सत्त्व-गुण युक्त बुद्धिसे वाणीको रोके, मनका नेम करे, प्राणोंको रोके, इंद्रियोंका निरोध करके बुद्धिको रोके तब फिर संसारके मार्गमें न पड़े ॥४२॥ यदि पुरुष इंद्रियोंका और बुद्धिका संयम नहीं करे तो दोष उपजता है, सो कहते हैं—जो बुद्धिसे भलीभांति वाणी और मनका संयम नहीं करे तो उसके व्रत और ज्ञान सब क्षीण हो जाते हैं जैसे कच्चे घड़े का जल क्षण क्षणमें क्षीण होता है ॥४३॥ इसलिये वचन, मन, प्राणको जीतकर मुझमें तत्पर हो, बुद्धि मेरे विषे युक्त करे, क्योंकि ऐसा करनेसे पुरुष कृतकृत्य हो जाता है ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवाद विभूतिनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेन्द्रियाणि च ॥ आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥ यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः ॥ तस्य व्रतं तपोज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ ४३ ॥ तस्मान्मनोवचः प्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ॥ मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥४४॥ इति श्रीभा० म० एका० भगवदुद्धव संवादे विभूतिव० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ उद्धव उवाच ॥ यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥ यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ॥ स्वधर्मेणारविन्दाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥२॥ पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ॥ यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥

दोहा—इस सत्रह अध्यायमें साधन भक्ति उपाय। हंसरूप धरि जो कही, सो वरणी यदुराय ॥ उद्धवजी बोले कि हे कमलदल लोचन! तुमने पहले कह दिया है कि धर्मरूप कर्म भक्तिका और मोक्षका साधन है, परन्तु इस प्रकार कर्म करनेवालोंको अवश्य भक्ति मिल जाती है, ऐसा नियम देखने में नहीं आता, इस कारण वर्ण-आश्रमके आचारवालोंका तथा उस आचारके अधिकारसे रहित सम्पूर्ण पुरुषोंका स्वधर्म वर्णन करो कि वह धर्म जिस भांति करनेसे पुरुषोंमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न हो जाय सो श्रवण करने की इच्छा है, तुम्हें अवश्य वर्णन करना चाहिये॥१॥२॥ हे प्रभो! हे महाभुज! हे श्रीमाधव! पहले आपने हंसरूप धारण कर जो कर्म ब्रह्माजीसे कहा था वह परमसुखरूप धर्म निश्चय करके कहो॥३॥

हे शत्रुनाशक ! बहुधा पहले बहुत कालसे सिखाया हुआ भी धर्म अब मनुष्यलोकमें न होगा ॥४॥ इस धर्मका वक्ता, कर्त्ता, रक्षक तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा भूमिपर नहीं है। हे अच्युत ! हे प्रभो ! ब्रह्माजीकी सभामें भी तुम्हारे विना और नहीं, जहां मूर्तिमन्त वेदादिक हैं ॥५॥ हे मधुसूदन ! सब धर्मके कार्यकर्त्ता, सब धर्मके वक्ता रक्षक जब तुम इस पृथ्वीको छोड़ोगे तो नष्ट हुए धर्मोंको कौन कहेगा ? ॥ ६ ॥ क्योंकि सब धर्मके ज्ञाता तुम हो, इससे हे प्रभो ! तुम्हारी भक्ति जिस प्रकार करे सो सब धर्म जैसे जिसका कर्त्तव्य हैं वैसे ही मुझसे कहो ॥७॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् । इस प्रकार भक्त उद्धवजीके पूछनेसे भगवान् हरि अतिसन्तुष्ट हो मनुष्योंका

स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ॥ न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥४॥ वक्ता कर्ताऽविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि॥सभायामपि वैरिञ्च्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः॥५॥कर्त्राऽवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन॥त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति॥६॥तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः॥ यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो॥७॥ श्रीशुक उवाच॥ इत्थं स्वभृत्यमुख्येन पृष्टः सः भगवान्हरिः॥ प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ॥ ॥८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ धर्म्य एष तव प्रश्नो नैः श्रेयसकरो नृणाम् ॥ वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥ आदौ कृतयुगेन वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ॥ कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥१०॥ वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ॥ उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥११॥ त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी ॥ विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥

मरणधर्म दूर करनेवाला सनातनधर्म कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! यह तुम्हारा प्रश्न धर्मरूप है और वर्णाश्रमोंके आचारवाले पुरुषोंको भक्ति आनन्दकारी है, उसको मैं कहता हूँ, तुम एकाग्रचित् होकर सुनो ॥ ९ ॥ पहले सत्ययुगमें मनुष्योंका वर्ण हंसरूप था तब सब प्रजा जन्मसे ही कृत्यकृत्य थी, इसीसे कृतयुग नाम हुआ, और कर्म भी कुछ कर्तव्य था सो कहते हैं॥१०॥ उस समय प्रणव ओंकार ही वेद था, चारों पावोंसे धर्म वृषभरूप धारण किये मैं था, यज्ञादिक कर्म नहीं थे, एक तपस्यासे ही इंद्रियोंको स्थिर कर एकाग्रचित हो हंसरूप शुद्ध मेरा ध्यान करते थे ॥११॥ हे महाभाग ! जब त्रेतायुग हुआ तब विराट् मेरे प्राणसे और हृदयसे वेदत्रय

विद्या प्रकट हुई, उसके होता, अध्वर्यु, उद्गाता सहित त्रिरूप यज्ञ प्रकट हुआ, सो यज्ञ मेरा रूप है ॥१२॥ ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र यह चारों वर्ण विराट् स्वरूपके मुख, बाहु, जंघा और चरणोंसे प्रकट हुए और भी जो जिसका स्वधर्म था सो प्रकट हुआ ॥ १३ ॥ गृहस्थका तो आश्रम जंघासे प्रकट हुआ, ब्रह्मचर्य्यका धर्म हृदयसे हुआ, वानप्रस्थ वक्षस्थलसे हुआ, संन्यास मस्तकसे प्रकट हुआ ॥१४॥ और सब वर्ण आश्रमके स्वभाव भिन्न भिन्न हुए, जिसने नीचयोनिमें जन्म धारण किया उसका स्वभाव नीच हुआ, जिसने उत्तम योनिमें जन्म लिया उसका स्वभाव उत्तम हुआ ॥ १५ ॥ शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, शुद्ध भाव, भक्ति, दया, सत्य सब ब्राह्मणका स्वभाव

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ॥ वैराजात्पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥ १३ ॥ गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ॥ वक्षः स्थानाद्वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ॥ आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमाः ॥ १५ ॥ शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम् ॥ मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥१६॥ तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ॥ स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम् ॥ अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥ शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ॥ तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृत यस्त्विमाः ॥१९॥ अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ॥ कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् ॥ २० ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ॥ भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥

है ॥ १६ ॥ तेज, बल, धैर्य, शौर्य्य, क्षमा, उदारता, उद्यम, स्थैर्य, ब्रह्मण्यता, ऐश्वर्य यह क्षत्रियोंका स्वभाव है ॥ १७ ॥ आस्तिकता, दान, निर्दम्भ, ब्राह्मणकी सेवा, द्रव्यसंग्रहमें अतृप्ति यह वैश्यका स्वभाव है ॥ १८ ॥ गायोंकी, ब्राह्मणोंकी और देवताओंकी निष्कपट सेवा करे, जिससे जो पावे उसीमें सन्तोष रखे यह शूद्रका स्वभाव है॥१९॥ अशौच, मिथ्या वाणी, चोरी, नास्तिकता, वृथा कलह, काम, क्रोध, तृष्णा यह सब नीच जातिके स्वभाव हैं ॥ २० ॥ हिंसा न करे, सत्य बोले, चोरी न करे, काम, क्रोध, लोभ न हो, क्योंकि सबसे

बड़ा जातिका धर्म है ॥ २१ ॥ अब चार आश्रमोंमें पहले ब्रह्मचारीके धर्म कहते हैंः–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके गर्भसे लेकर सब संस्कार हुए हों अर्थात् जन्म धारण करनेके उपरांत दूसरा जन्म गायत्री उपदेश होनेके पीछे गुरुके घर रहे इन्द्रियोंका दमन करे, जब गुरु बुलावे तब वेद पढ़े ॥२२॥ मेखला, मृगचर्म, दण्ड, रुद्राक्षमाला, यज्ञोपवीत, कमण्डल, जटा इत्यादि सब धारण किये रहे, तेलसे स्नान न करे, दन्तधावन न करे, वस्त्र क्षारसे न धोवे, आसनको न रँगे, दर्भ धारण करे ॥२३॥ स्नान, भोजन, होम, जप, मूत्र, पुरीष जब करे तो मौन रहे; नख, रोम और क्षौरकर्म न करावे और कांखके उपस्थके केश दूर न करावे ॥ २४ ॥ वीर्यस्खलन न करे आप ब्रह्मचर्यको

द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ॥ वसन्गुरुकुले दान्तो ब्रह्माधीयीत चाहुतः ॥ २२ ॥ मेखलाजिनदण्डाक्ष-
ब्रह्मसूत्रकमण्डलून् ॥ जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान्दधत ॥२३॥ स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः॥
न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २४ ॥ रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ॥ अवकीर्णेऽवगाह्याप्सु
यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥ २५ ॥ अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुराञ्छुचिः ॥ समाहित उपासीत सन्ध्ये च यतवाग्जपन्
॥२६॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ॥ न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥२७॥ सायं प्रातरुपा-
नीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ॥ यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥ २८ ॥ शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत
नीचवत् ॥ यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृताञ्जलिः ॥ २९ ॥

धारण किये रहे और जो प्रमादसे स्वप्नमें वीर्य स्खलित हो जाय तो जलमें स्नान करके प्राणायाम करके गायत्रीका जप करे ॥२५॥ अग्नि, सूर्य, आचार्य, गो, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, देवताओंकी पवित्र और एकाग्रचित्तसे उपासना करे और यतवाक् होकर जप करे ॥ २६ ॥ गुरुओंका मनुष्यबुद्धिसे सेवन न करे किन्तु मेरा स्वरूप, जानकर सेवन करे। कभी अवज्ञा न करे क्योंकि सम्पूर्ण देवता गुरुओंमें वास करते हैं ॥ २७ ॥ सांझ सबेरे भिक्षा ले आवे, उसे गुरुके आगे धरे और भी जो कुछ प्राप्त हो सों सब गुरुको समर्पण करे और जब गुरुजीकी आज्ञा हो संयमसे भोजन करे ॥२८॥ जो गुरु कहीं जायँ तो उनके संग जाय, जब गुरु सोवें तो उनके चरण दाबे, जब बैठे तब

सावधान हो हाथ जोड़ बहुत दूर न बैठे, आचार्यका आदर सम्मान करे, अच्छी भांति सदा उपासना करे ॥२९॥ इस प्रकार विषयभोग रहित होकर गुरुकुलमें वास करे और जबतक विद्या न पूर्ण हो तबतक अखंडित व्रत धारण किये रहे ॥३०॥ यह तो ब्रह्मचर्य आश्रमका सामान्य धर्म कहा, अब जो यह ब्रह्मलोकके जानेकी इच्छा करे सो मेरी निष्ठासे ब्रह्मचर्य व्रत करे सो कहते हैं जो यह ब्रह्मचारी जहां मूर्तिधारण कर वेद रहते हैं ऐसे ब्रह्मलोकमें जाना चाहे तो गुरुके ही पास रहे, वेदाध्ययन करे, निष्काम ब्रह्मचर्य व्रत करे, अधिक क्या कहें ? अपना देहतक गुरुके समर्पण कर दे ॥ ३१ ॥ अब पूजाके स्थल कहते हैं—अग्नि, गुरु, आत्मा सब प्राणिमात्रमें मेरी बुद्धि रखे, मुझसे भिन्न न जाने, इस प्रकार ब्रह्मतेजयुक्त निष्पाप मेरी उपासना करे, स्त्रियोंका ॥ ३२ ॥ दर्शन, उनसे भाषण, परिहास न करे और

एवं वृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ॥ विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखण्डितम् ॥ ३० ॥ यद्यसौ छन्दसां लोकमारोक्ष्यन्ब्रह्मविष्टपम् ॥ गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥३१॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ॥ अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥ स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ॥ प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत ॥ ३३ ॥ शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवम् ॥ तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ॥ ३४ ॥ सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनन्दन ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥ ३५ ॥ एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥ ३६ ॥ अथानन्तरमावेक्ष्यन् यथा जिज्ञासितागमः ॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद् गुर्वनुमोदितः ॥ ३७ ॥

जो कहीं कोई स्त्री पुरुष इकट्ठे होकर बैठे हों तो उनको न देखे, आप गृहमें न रहे ॥३३॥ यह धर्म सब आश्रमोंका कारण है । शौच—मिट्टीसे हाथ पांव धोवे, आचमन करे, स्नान, सन्ध्या, शुद्ध भावसे तीर्थसेवन, तप, भिक्षा करे, परन्तु स्पर्श किसीका न करे, जो असम्भाष्य हैं उन नीचोंका त्याग करे ॥३४॥ हे कुलनन्दन ! सब प्राणिमात्रमें मेरा भाव रखे, मन वचन इन्द्रियोंको संयत करे यह नियम सब आश्रमोंका है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार जो व्रत रखे सो अग्निके समान तेजस्वी हो सब कर्म जला निर्मल हो मेरी भक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ यह निष्काम ब्रह्मचारीके लिये मोक्षका प्रकार कहा और जो सकाम हो वह वेदार्थ विचार ब्रह्मचर्य छोड़ गृहस्थ आश्रममें आना चाहे तो

गुरुको दक्षिणा दे आज्ञा ले और अभ्यङ्गादिक करके मेखला, दण्ड, मौजी छोड़े (इस कर्मको समावर्तन कहते हैं) ॥ ३७ ॥ यहां दोनों पक्ष कहते हैं कि जो विवाह की इच्छा हो तो गृहस्थ हो जाय, निष्काम हो तो वानप्रस्थ आश्रम ले अथवा संन्यास ले अर्थात् आश्रमसे आश्रममें जाय, आश्रम विना न रहे, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उस आश्रममें मेरी भक्ति करता हुआ विचरे और पिछले आश्रमसे पूर्वमें ना आवे, अर्थात् संन्यासी गृहस्थ न हो ॥३८॥ जो गृहस्थ होना चाहे वह समावर्तन कर्म से विवाह करे । गृहस्थ होकर लक्षणवाली अपने कुल समान कुलकी कन्या विवाहे; प्रथम तो अपने वर्णकी व्याहे, पीछे और भी करना चाहे तो अनुक्रम से और व्याहे ॥३९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन वर्ण समान हैं अतः यज्ञ, अध्ययन, दान यह तीनों धर्म समान हैं, परन्तु प्रतिग्रह अध्यापन, यज्ञ कराना यह

गृहं वनं वोपविशेत् प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥ ३८ ॥ गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ॥ यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३९ ॥ इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ॥ अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तयोः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ॥ कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥ ४२ ॥ शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचेता धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः ॥ मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति शान्तिम् ॥ ४३ ॥

तीनों कर्म ब्राह्मणको ही करने उचित हैं ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहमें जप, यज्ञमें कृपणता आदि दोष जब देखे तो स्वामीसे छोड़े खेतमें पड़े कणसे आजीविका करे अथवा और किसी वस्तु से आजीविका करे; यज्ञ करे, करावे अथवा पढ़ावे यह दो वृत्ति करे जो इनमें भी हीनता दोष देखे तो उञ्छवृत्ति ही करे ॥४१॥ ब्राह्मणका यह देह निश्चय ही तपस्याके कष्ट सहनेको उत्पन्न किया है, क्षुद्र कामको न करे परलोकमें अनन्त सुख ब्राह्मणको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ जो हाटमें अथवा क्षेत्रोंमें अन्न पड़ा रहे उसे बीनकर उसीसे निर्वाह करे और उसीमें सन्तोष रखे, उत्तम निष्काम कर्म करे, मुझमें चित्त रखे । घरमें तो रहे परन्तु बहुत आसक्त न हो, इस प्रकार शांतिको प्राप्त होकर रहना

चाहिये ॥ ४३ ॥ हे उद्धव ! दरिद्रीके लिये इस प्रकार निर्वाह करनेको कहा है कि जो ब्राह्मण दरिद्री हो और मेरी भक्ति करनेमें तत्पर हो उसका जो आपदासे उद्धार करते हैं, उन मनुष्योंका मैं थोड़े ही कालमें उद्धार करूँगा, जैसे समुद्रमें डूबते हुओंको नाव पार लगाती है वैसे ही जो मनुष्य ब्राह्मणका निर्वाह करते हैं, मैं संसाररूप समुद्रसे उन मनुष्योंको निश्चय पार करूँगा * ॥ ४४ ॥ राजा हो तो उसका आवश्यक धर्म यही है कि जैसे पिता कष्टसे छुड़ाता है तथा जैसे कीचड़में पड़े हाथीको हाथी निकालता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण

समुद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत्परायणम् ॥ तानुद्धरिष्ये न चिरादापद्भयो नौरिवार्णवात् ॥४४॥ सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः ॥ आत्मानमात्मना धीरो यथागजपतिर्गजान् ॥ ४५ ॥ एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ॥ विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिन्द्रेण सह मोदते ॥ ४६ ॥ सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ॥ खड्गेन वाऽऽपदाक्रान्तो न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४७ ॥

प्रजाको दुःखसे उद्धृत करे, इसी प्रकार धैर्यवान् राजाको विपत्तियोंसे अपनी रक्षा आप करना उचित है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार राजा लोग इस लोकमें सब पाप दूर कर सूर्यके समान प्रकाशित विमानमें बैठ इन्द्रके सङ्ग आनन्द करते हैं ॥ ४६ ॥ यदि ब्राह्मण दरिद्रसे दुःख पाता हो तो उचित है कि वाणिज्यवृत्ति कर आपदासे छूटे, परंतु मदिरा (शराब) और रसादिक न बेंचे। यदि इसमें भी निर्वाह न हो

---

* शंका—श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि हमारा भजन करनेवाले ब्राह्मणको दुःख दारिद्र्य आदि अनेक संकटसे जो कोई छुड़ाता है, उस छुड़ानेवाले मनुष्यको हम बहुत शीघ्र दुःख दारिद्र्य से छुड़ा देते हैं, इस बातमें यह शंका होती है कि अपने भजन करनेवाले ब्राह्मणोंको आप दुःख दारिद्र्यसे क्यों नहीं छुड़ाते, दूसरेकी सहायता क्यों कराते हैं ?

उत्तर—जब बड़े बड़े पाप ब्राह्मणलोग करते हैं तो उन पापोंसे ब्राह्मणोंको दुःख दारिद्र्य होता है और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रको थोड़े ही पापोंसे दुःख होता है, इस बातका भगवान्ने विचार किया कि हम शीघ्र ब्राह्मणोंको अपना भजन करनेवाला जानकर दुःख दारिद्र्यसे छुड़ा देंगे तो ब्राह्मण और अभिमान करके पाप करेंगे और जान लेंगे कि,भजनके प्रतापसे दुःखनाश जल्दी हो जाता है फिर संसारका सुख क्यों नहीं भोगें,हमारा पाप क्या करेगा ? ऐसा विचार कर ब्राह्मणोंका मान नष्ट करनेके लिये जब तक ब्राह्मण पापसे छूटता तबतक उस ब्राह्मणके दुःख दारिद्र्य को दूसरे मनुष्यसे दूर कराते हैं, जिससे ब्राह्मणोंको विदित हो जाय कि हम भगवान्का ऐसा भजन करते हैं तो हमको पापी जानकर हमारे दुःख दारिद्र्यका नाश नहीं होता तो हमारा पाप हमारे पास न होता तो शीघ्र ही भजनके प्रभावसे ईश्वर हमारे पापदुःखका नाश कर देते अतः अब पाप कभी नहीं करेंगे ऐसा विचार करके कि, ब्राह्मण पापबुद्धिको त्याग दे इसलिये दूसरेसे ब्राह्मणका दुःख दारिद्र्य नाश करनेके लिये श्रीकृष्ण ने कहा ।

भा० ए० तो क्षत्रियवृत्ति करे, परंतु नीच सेवाकी वृत्ति कभी न करे, यह ब्राह्मणका धर्म कहा ॥ ४७ ॥ अब क्षत्रियका धर्म कहते हैं:-जो आपदा
॥६०॥ आ पड़े तो वैश्यवृत्तिसे जीविका करे या मृगया करके जीवन धारण करे वा ब्राह्मणका रूप धर अध्यापनसे जीविका करे परंतु नीचकी सेवा न करे ॥ ४८ ॥ वैश्यको यदि आपदा पड़ जाय तो शूद्रकी वृत्ति करे, उसमें भी आपदा हो तो चतुरताकी क्रियासे जीविका करे, जब आपदा निवृत्त हो जाय तो नीचवृत्ति छोड़ दे ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सबकी वृत्ति कही, अब गृहस्थका आवश्यक पञ्चयज्ञ कर्तव्य कर्म कहते हैं कि ब्रह्मयज्ञ करके तो ऋषियोंको सन्तुष्ट करे, श्राद्धमें स्वधासे पितृयज्ञ करे, होममें स्वाहा करके देवताओंका यज्ञ करे, बलिदानसे भूतयज्ञ करे, अन्न जलसे मनुष्योंको यथाशक्ति तृप्त करे, सबमें मेरी बुद्धि रखे, यह कर्म सब अवश्य कर्तव्य हैं ॥ ५० ॥

वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि ॥ चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४८ ॥ शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यश्शूद्रः कारुकटक्रियाम् ॥ कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४९ ॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ॥ देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥ ५० ॥ यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ॥ धनेनापीडयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥ ५१ ॥ कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुम्ब्यपि ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५२ ॥ पुत्रदाराप्तबन्धूनां सङ्गमः पान्थसङ्गमः ॥ अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥ ५३ ॥ इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन् ॥ न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥ ५४ ॥

अब शक्तिके अनुसार कर्तव्य कर्म कहते हैं कि विना ही उद्यम अथवा उद्यमसे पाया हो और शुद्ध हो तो धनसे जिसमें कुटुम्बको पीड़ा
भा० टी० न हो वैश्य ही न्यायसे यज्ञोंको करे ॥५१॥ कुटुम्बमें आसक्त न हो किन्तु मेरे भजनमें सावधान रहे, इस संसार प्रपञ्चको मिथ्या जाने,
अ० १७ स्वर्गको मिथ्या माने, आत्माको ही केवल सत्य जाने ॥ ५२ ॥ पुत्र, स्त्री, कुटुम्बी, बन्धु इत्यादिकोंका सङ्ग यात्रा करनेवालोंके सङ्गके समान हैं, जैसे निद्रामें स्वप्न देखते हैं और जागते ही नष्ट हो जाते हैं वैसे ही देहके नष्ट होनेपर यह सब चले जाते हैं ॥ ५३ ॥ इस प्रकार घरमें विचार करता अतिथिकी भांति रहे, 'यह मेरा घर है' ऐसा अहंकार न रखे; क्योंकि अहन्ता और ममता छोड़नेसे ही

पुरुष बन्धनसे छूटता है ॥ ५४ ॥ गृहस्थके जो सब धर्म कहे हैं उनसे मेरी पूजा करे, मुझमें भक्ति करे और गृहस्थाश्रममें रहनेके उपरांत वानप्रस्थ होकर जो सन्तान हो तो संन्यास ले ॥ ५५ ॥ जो पुरुष केवल घरमें ही आसक्त हैं, पुत्र वित्तमें प्रीतिकर स्त्रीके वश रहते हैं वे महादीन हैं, मूर्ख हैं और अहंता ममतासे बँधे हैं ॥५६॥ मेरी माता और मेरा पिता वृद्ध हैं; स्त्री छोटी है, बालक छोटे हैं, यह मेरे विना कैसा जीवन धारण करेंगे ? हम विना यह दीन अनाथ दुःखी हो जायँगे इस प्रकार जो सोचते हैं ॥५७॥ और ऐसे गृहकी आशा करके विक्षिप्तमन हो बुद्धि मूढ़ होनेसे स्त्री पुत्रादिकोंका ध्यान करते रहते हैं वे पुरुष कभी तृप्त न होकर मरनेके उपरांत अत्यन्त तामसी योनिमें

कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ॥ तिष्ठेद्वनं वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥ यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ॥ स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥५६॥ अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः ॥ अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः ॥ ५७ ॥ एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥ अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोऽन्धं विशते तमः ॥ ५८ ॥ इति श्रीभा० महा० एकादश० भगवदुद्धवसंवादे ब्रह्मचर्यादि० सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ॥ वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥ कंदमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥ वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद्दतः ॥ न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥ ३ ॥

पड़ते हैं ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकदशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे गृहस्थाश्रमब्रह्मचर्य विभागो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ दोहा–अष्टादश अध्यायमें, वानप्रस्थ संन्यास । कहूँ दोउनके धर्म मैं, करहु यही अभ्यास ॥ श्रीभगवान् बोले कि जब आयुका तीसरा भाग आवे अर्थात् सौ वर्षकी आयुके हिसाबसे पिछत्तर (७५) वर्ष पूरे हों तो पुत्रोंको घर सौंपकर वनमें बसे । यदि स्त्री सङ्ग आवे तो उसे भी वनमें रखे, नहीं तो वह पुत्रके पास रहे, आप वनमें शांत होकर रहे ॥१॥ कन्द, मूल, फलोंसे आत्माको तृप्त करे, वल्कल वस्त्र पहने, तृण, पत्ते और मृगचर्म धारण करे, यह सब वनकी वस्तु अति पवित्र हैं ॥ २ ॥ केश, रोम, नख, दाढ़ी, मूछ दूर

न करावे और इनको धोवे भी नहीं, जलमें तीन काल स्नान करे, भूमिमें शयन करे ॥३॥ ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्नि तापे, वर्षामें जलवृष्टि सहे, जाड़ेमें कण्ठतक जलमें मग्न रहे इस प्रकार तप करे ॥४॥ अग्नि से पका हुआ पदार्थ खाय या समयके पक्व फलादि खाय; ओखली व पत्थरसे जो कुटी हो वह वस्तु खाय, दांतसे कुटी वस्तुको न खाय ॥ ५ ॥ अपनी सब आजीविकाकी वस्तु आपही ले आवे और देश-कालका बल देखे, पहला संग्रह न रखे, जब नवीन अन्न प्राप्त हो जाय तो पुरानेका त्याग करे ॥ ६ ॥ वनकी वस्तुके चरु पुरोडाशसे देवताओंका यज्ञ करे, वनमें आश्रम बनाकर रहे परन्तु वेदोक्त पशुसे मेरा यजन करे ॥७॥ पूर्ववत् नाम, गृहस्थाश्रम सरीखे अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमासेष्टि, चातुर्मास्य यज्ञ इतना ही वेदने गृहस्थाश्रमोंको अनुष्ठान कहा है ॥ ८ ॥ इस प्रकार जीवनतक तपस्या करनेसे जिसका

ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन्वर्षास्वासारषाड्जले ॥ आकण्ठमग्नः शिशिर एवं वृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समश्नी-
यात्कालपक्वमथापि वा ॥ उलूखलाश्मकुट्टो वा दन्तोलूखल एव वा ॥ ५ ॥ स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्ति-
कारणम् ॥ देशकालबलाभिज्ञो नाददीतान्यदाहृतम् ॥ ६ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत् कालचोदितान् ॥ न तु श्रौतेन
पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥ अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ॥ चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि
च नैगमैः ॥ ८ ॥ एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसंततः ॥ मां तपोमयमाराध्यऋषिलोकादुपैति माम् ॥ ९ ॥ यस्त्वे-
तत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ॥ कामायाल्पीयसे युञ्ज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः ॥ १० ॥ यदाऽसौ नियमे-
ऽकल्पो जरया जातवेपथुः ॥ आत्मन्यग्नीन् समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥

मांस सूख जानेसे सम्पूर्ण देहमें नसें दिखायी देने लगें वह वानप्रस्थ तपोमय मेरा आराधन करनेसे प्रथम ऋषिलोकसे महर्लोकमें जाय, इसके उपरांत क्रमसे मुझे भी प्राप्त हो ॥९॥ इतने कष्टसे प्राप्त हुई मोक्ष फलदायक तपस्या तुच्छ काममें न लगावे, जो लगावे तो उससे मूर्ख कौन है ? ॥ १० ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण धर्म निष्काम करे तो निश्चय मोक्ष हो जाय और जो आयुके तीसरे भागमें वैराग्य थोड़ा सा उत्पन्न हो तो संन्यास ले, यदि शरीर का सामर्थ्य पहले ही घट जाय तो विरक्त होकर रहे, संन्यास ले, और जो विरक्त भी न हो, क्या करना चाहिये ? तो कहते हैं कि जब यह धर्मके करनेमें असमर्थ हो, वृद्धावस्था हो तो अग्निहोत्रकी अग्नि आपमें

रखकर चित्त मुझमें स्थिर कर अग्निमें प्रविष्ट हो शरीरको छोड़ दे ॥ ११ ॥ और जो विरक्त हो सो कर्मोंका फल तथा देवताओंके लोकको नरकके समान जाने, ऐसा करनेसे यह सब अग्निहोत्रादिक कर्म छोड़ अच्छी भांति संन्यास ले ॥ १२ ॥ संन्यासके आरम्भके उपदेशके अनुसार मेरा पूजन करे, ऋत्विजोंको सर्वस्व दे, अग्निहोत्रको अपने प्राणोंमें प्रविष्ट कर आप निरपेक्ष हो संन्यास ले ॥ १३ ॥ जब ब्राह्मण संन्यास लेता है तो देवता स्त्री पुत्ररूप होकर उसको इस कारण विघ्न करते हैं कि यह हमारी अवज्ञा करके आगे चलना चाहता है,

यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ॥ विरागो जायते सम्यङ्न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥ इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ॥ अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥ विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ॥ विघ्नान्कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम् ॥१४॥ बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दण्डपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥ १५ ॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥ १६ ॥ मौनानीहानिलायामा दण्डवाग्देहचेतसाम् ॥ न ह्येतं यस्य सन्त्यङ्ग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥ १७ ॥

परन्तु तो भी पुरुष उन विघ्नोंको लांघ संन्यास ग्रहण करे, उनके विघ्न न माने * ॥१४॥ यदि संन्यासी वस्त्र पहरना चाहे तो जितनेसे कोपीन ढके उतना वस्त्र पहने और कुछ धारण न करे, एक दण्ड धारण करे, एक जलपात्र अर्थात् कमण्डलु अपने पास रखे और कुछ नहीं ॥ १५ ॥ पृथ्वीमें देखकर पांव धरे वस्त्रसे छना जल पान करे, वचन सत्य बोले और आचरण मनमें विचार जब शुद्ध मन हो तब करे ॥ १६ ॥ हे उद्धव ! वचनका दण्ड मौन रहना, देहका दण्ड सकाम कर्म नहीं करना, चित्तका दण्ड प्राणायाममें स्थिरता, जिसके यह

* शंका—जो ब्राह्मण वैराग्यमें मन लगाकर संन्यास लेनेकी इच्छा करते हैं उनके विघ्न स्त्री आदि परिवार कैसे करेंगे ? क्योंकि मन कच्चा हो तब तो जो चाहे सो विघ्न कर देवे और जो मन पक्का होकर वैराग्यमें लग गया तो ? किसी का किया विघ्न नहीं हो सकता।

उत्तर—भाई, स्त्री, पुत्र,कुटुंबसे उत्पन्न हुई जो फांसी है उसको सब चर अचर जीव जन्तु काटा चाहें तो किसीकी काटी नहीं कट सकती, जो कोई महात्मा काटनेकी इच्छा करें तो बड़ी कठिनतासे वह फांसी कट सकती है, क्योंकि स्त्री पुत्रके मोहमें पशु, पक्षी भी बंध गये हैं, तो मनुष्य बंध गया तो क्या आश्चर्यकी बात है इसलिये श्रीकृष्णभगवान्ने कहा कि ब्राह्मणका मन वैराग्यमें लगा हो तो भी स्त्री पुत्र आदि परिवार संन्यास में विघ्न करते हैं।

दण्ड नहीं वह बांसके दण्डका संन्यासी कहलाता है ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंमें ही प्रतिग्रह, यज्ञ अध्यन शिलोञ्छवृत्ति यह चार वर्ण होते हैं, उनके घर भिक्षा करे, और जो निंदित हो उसके घर भिक्षा न करे, यहांसे मुझे यह अलभ्य लाभ होगा इस उद्वेगसे रहित सात घर भिक्षा करे, जो कुछ प्राप्ति हो उसीमें संतोष करे ॥१८॥ भिक्षा लेकर जहां जलाशय हो वहां जाय और पांव धो, आचमनकर, मौन होकर मार्जन करे, मार्गके दोषकी शुद्धि करे पीछे विभाग कर विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, भक्तोंको समर्पण करे, थोड़ा-थोड़ा अलग करके रखे, बाकी सब भोजन करे ॥ १९ ॥ अब एक दूसरी क्रिया और भी है कि संपूर्ण पृथ्वीमें फिरे, परन्तु संग किसीका न करे, जितेंद्रिय रहे, आत्मामें ही संतुष्ट धीर और समदृष्टि हो ॥ २० ॥ एकांत निर्भय स्थलमें रहे, मेरी भावनासे चित्त निर्मल रखे, आत्मामें और मुझमें भेद नहीं देखे,

भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् ॥ सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेनतावता ॥ १८ ॥ बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ॥ विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीताशेषमाहृतम् ॥१९॥ एकश्चरेन्महीमेतां निसंङ्गः संयतेन्द्रियः ॥ आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान्समदर्शनः ॥ २० ॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः ॥ आत्मानं चिंतयेदेका मभेदेन मया मुनिः ॥ २१ ॥ अन्वीक्षेतात्मनो बन्धं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ॥ बन्ध इन्द्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरेन्मुनिः ॥ विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनि सुखं महत् ॥२३॥ पुरग्रामव्रजान्सार्थान्भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ॥ पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥२४॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ॥ संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलांधसा ॥ २५ ॥

अभेदसे एक आत्मा विचारे ऐसा विचारशील ॥२१॥ ज्ञाननिष्ठासे अपने बन्ध मोक्षका विचार करे (इंद्रियोंके विक्षेपको बन्ध कहते हैं और इंद्रियोंके संयमको मोक्ष कहते हैं) ॥२२॥ इंद्रियोंको निग्रह करके मुझमें चित्त रखे तुच्छ कामनाओंसे विरक्त रहे तो मुनि अति उत्तम आत्म-सुखको प्राप्त हो सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक विचरे ॥ २३ ॥ नगर, ग्राम, व्रजमें भिक्षाको जाय, जहां कहीं बहुतसे मनुष्योंका संग आया हो या यात्रियोंका संग हो वहां भिक्षाको जाय, पृथ्वीमें जो पुण्य देश, नदी, पर्वत, वन, आश्रम हैं वहां फिरे ॥२४॥ वानप्रस्थके आश्रममें जाकर नित्य भिक्षा करे, उसका अन्न शुद्ध होता है; उससे सत्त्व शुद्ध होता है तो शीघ्र ही सिद्धि मिलती है और मोह सम्पूर्ण घट जाता है ॥ २५ ॥

गृहस्थके घर उत्तम सामग्री मिष्टान्न पावे, वह भिक्षा छोड़ उञ्छवृत्तिके अन्नकी भिक्षाको मन कैसे चले ? तो कहते हैं कि इन मिष्टान्नादिकोंको वस्तु करके न देखे, इससे नाशको प्राप्त होता है, इस लोक तथा परलोकमें मन आसक्त न करे, मिष्टान्नादिकके लिये उपाय न करे ॥२६॥ जो यह जगत् और शरीर मन वचन प्राणसे युक्त है, अहंता ममताके धर्म यह आत्मामें सब मायामात्र है, यथार्थ नहीं, ऐसी युक्तियोंसे आत्मनिष्ठ हो फिर देहादिकका स्मरण न करे, क्योंकि स्मरणसे वैराग्यमें प्रतिबन्ध होता है ॥ २७ ॥ अब परमहंसधर्म कहते हैं:—एक वैराग्यसे मुक्ति की इच्छा रखनेवाले पूर्ण ज्ञानी अथवा मुक्ति भी न चाहने वाले मेरी दृढ़ भक्ति करनेवाले भक्त दण्डादिककी आवश्यकतावाले आश्रम धर्मोंकी आसक्ति त्यागकर जितना अपनेसे हो सके उतना आश्रम सम्बन्धी धर्म करें; परन्तु अत्यन्त उसमें

नैतद्वस्तुतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति ॥ असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥ यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ॥ सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः ॥ सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥ बुधो बालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् ॥ वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥ वेदवादरतो न स्यान्न पाखण्डी न हैतुकः ॥ शुष्कवादविवादे न कञ्चित्पक्षं समाश्रयेत् ॥३०॥ नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं नोद्वेजयेन्न तु ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥ देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केनचित् ॥ ३१ ॥ एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ॥ यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२ ॥

लिप्त न हों ॥२८॥ विवेकी होने पर भी बालकके समान फिरते हैं, मान अपमानसे शून्य रहते हैं, अति चतुर हैं परन्तु तो भी जड़की भांति रहते हैं, फलका अनुसन्धान नहीं रखते वे ही बुद्धिमान् हैं, उन्मत्तके समान वेदके धर्मोंमें निष्ठ हैं परन्तु कुछ आचारका नियम नहीं है ॥ २९ ॥ कर्म करना ही मुख्य है, ऐसे वेदके वादमें आसक्त न हो, पाखण्डी न हो, केवल तर्क ही सब जगह न करे और जहां प्रयोजन विना वाद होता हो वहां किसीका पक्ष न करे ॥३०॥ किसी मनुष्यको उद्विग्न न करे, न मनुष्योंसे आप उद्विग्न हो, अपमान किसीका न करे परन्तु आप अपमान सह ले, इस देहके लिये पशुके समान किसीसे वैर न करे ॥ ३१ ॥ क्योंकि सबमें आत्मा एकही है वैर किससे

करे ? ऐसे समझकर निवृत्त हो, जैसे जलके पात्र अनेक होते हैं और उनमें अनेक चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब दीखते हैं परन्तु चन्द्रमा एक ही है, इसी प्रकार आत्मा भी एक ही है और अनंतसा भासता है ॥३२॥ और जो समय समयपर भोजन न मिले तो खेद न करे, पावे तो हर्ष न करे, धैर्य रखे, क्योंकि प्राप्ति अप्राप्ति दोनों दैवाधीन हैं ॥३३॥ आहार तो अवश्य चाहिये, जिससे जीवन हो । प्राणधारणका प्रयोजन यह है कि तत्त्वको विचारे, जिससे मुक्त हो ॥३४॥ ईश्वरेच्छासे जो कुछ मिले वही भक्षण करे, भला हो वा बुरा! इसी प्रकार मुनि भी वस्त्र, शय्या जैसी पावे उसे ही ग्रहण करे ॥ ३५ ॥ जैसे मुझे कुछ चाहना नहीं परन्तु लीलापूर्वक धर्म करता हूँ, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी आसक्ति छोड़ शौच, आचमन, स्नान और नियम भी करें, विधिके वश होकर न करे, ज्ञानदृष्टि रखकर करे ॥३६॥ ज्ञानी को भेदकी प्रतीति

अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् ॥ लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभयं दैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ॥ तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥ तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ शौचमाचमनं स्नानं नतु चोदनया चरेत् ॥ अन्यांश्च नियमाञ्ज्ञानी यथाऽहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ नहि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ॥ आ देहान्तात्क्वचित् ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ॥ ३७ ॥ दुखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥ ३८ ॥ तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः ॥ यावद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥३९॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः ॥ ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति ॥ ४० ॥

नहीं होती और जो होती है वह पहले ही मेरे ज्ञानसे नष्ट हो जाती है; यद्यपि देह गिरनेतक कभी कभी आहारादिकमें भेदप्रतीति देखी जाती है, परन्तु तो भी वह अयथार्थरूप जानी हुई है; देहके गिरनेपर मुक्ति हो जाती है ॥३७॥ अब केवल वैराग्ययुक्त हो ज्ञानकी इच्छा रखनेवालेका कर्त्तव्य कहते हैं कि जो यह गृह पुत्र आदि सबको दुःखरूप जान वैराग्ययुक्त हो और ज्ञानकी इच्छा करता हो, मेरे धर्म भी कुछ जानता हो वह उत्तम गुरुका सेवन करे ॥ ३८ ॥ जबतक ब्रह्मज्ञान न मिले तबतक श्रद्धा और भक्ति रखकर ईर्षा छोड़ गुरुको मेरा ही स्वरूप जान अत्यन्त आदर सत्कारसे उसकी सेवा करे ॥ ३९ ॥ अब अधिकार विना जो संन्यास लेता है, उसकी निंदा करते हैं ॥

इन्द्रियोंका निग्रह न किया हो, बुद्धि अति आसक्त हो, ज्ञान वैराग्यसे रहित हो ऐसा जो संन्यास लेता है वह संन्यास जीविकाके अर्थ है, इसी कारण निंदित है ॥ ४० ॥ वे अधर्मी संन्यासी हैं, जिन्होंने देवताओंकी वंचना की है, जो गृहस्थ धर्ममें देवता अतिथि पूजन करना था सो छोड़ दिया, संन्यास धर्म भी नहीं करते इससे सबकी अवज्ञा ही करते हैं, इनकी वासना दग्ध नहीं और आत्मरूप हृदयमें स्थित मेरी भी वंचना करते हैं, इसी लिये इस लोक और परलोकसे नष्ट हो जाते हैं ॥४१॥ संन्यासीका मुख्यधर्म शम और अहिंसा है, वानप्रस्थका मुख्य धर्म तपस्या और विचार है, गृहस्थका मुख्य धर्म प्राणिमात्रमें दया, रक्षा और देवताओंका यज्ञ है और ब्रह्मचारीका धर्म यही है कि गुरुओंकी सेवा करे ॥ ४२ ॥ यहां गृहस्थका और भी धर्म कहते हैंः—ब्रह्मचर्य, तप, शौच, संतोष, प्राणिमात्रसे सुहृदता और

सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा ॥ अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ॥ गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं सन्तोषो भूतसौहृदम् ॥ गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक् ॥ सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दतेऽचिरात ॥ ४४ ॥ भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥ ४५ ॥ इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो न चिरात्समुपैति माम् ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ॥ स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥

ऋतुके दिन स्त्रीसंग करे, यह गृहस्थके धर्म हैं, मेरी सेवा करनी तो सबका ही धर्म है ॥ ४३ ॥ हे उद्धव ! इस प्रकारके स्वधर्मसे मेरा नित्य भजन करे और स्त्री पुत्रादिकोंमें प्रीति न रखे, प्राणिमात्रमें मेरी भावना रखे तो उस पुरुषको शीघ्र ही मेरी भक्ति मिल जाती है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! ऐसी अव्यभिचारिणी भक्तिसे सब लोकके महेश्वरको जो सबकी उत्पत्ति, पालन और प्रलयका कारण ब्रह्मरूप मुझको प्राप्त हो जाता है ॥४५॥ इस प्रकार स्वधर्मसे शुद्धचित्तसे होनेसे मेरा स्वरूप जाननेमें आता है, विज्ञान और वैराग्ययुक्त होकर शीघ्र मुझे प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ अब सबको निर्धार तात्पर्य कहते हैं कि वर्णाश्रमवालोंका यह अत्याचाररूप धर्मका फल पितृलोककी प्राप्ति

करानेवाला है, यही धर्म भक्तिसे मुझे समर्पण करे तो परम फल मोक्षानंदको प्राप्त हो ॥ ४७ ॥ हे साधो ! यह सब धर्म मैंने तुमसे कहा, जो तुमने मुझसे पूछा था, जो भक्त स्वधर्म संयुक्त होकर इसे करे वह मेरे परब्रह्मरूपको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे वनस्थसंन्यासधर्मनिरूपणं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, पूर्वधर्म निर्वाह । सो सब वर्णन करत हूँ, सुनो सहित उत्साह ॥ श्रीभगवान् बोले कि जिसको विद्या करके, श्रवण करके आत्मतत्त्वका अनुभवतक ज्ञान प्राप्त हो गया है सो प्रपंचकी निवृत्तिका साधन मुझमें मायामात्र जाने और ज्ञानके साधन सब छोड़े उसको विद्वान् संन्यास

एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम्॥यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम्॥४८॥इतिश्रीभागवतेमहापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे वनस्यपत्यादिधर्मनिरूपणं नामाऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यो विद्या श्रुतसम्पन्न आत्मवान्नानुमानिकः ॥ मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥१॥ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च सम्मतः॥स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः॥२॥ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ॥ ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम्॥३॥तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च॥नालंकुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता॥४॥

कहते हैं ॥ १ ॥ ज्ञानी पुरुषका आत्मरूप मैं ही प्रिय हूँ उसको और स्वार्थका हेतु कुछ नहीं है, पर स्वार्थका हेतु मुझे ही चाहते है इससे स्वर्ग और मोक्ष तथा और भी अर्थ मुझ विना उन्हें प्रिय नहीं, इस कारण उसका न कुछ कर्तव्य है, न प्राप्त करना है ॥२॥ यहां ज्ञानका अनुभव प्रमाण बताते हैं, ज्ञान विज्ञानसे जो सिद्धिको प्राप्त करना है श्रेष्ठ स्थानोंको जानते हैं इस कारण मुझे ज्ञानी अतिप्रिय हैं, वे ज्ञानसे ही मुझे हृदयमें धारण किये रहते हैं ॥३॥ तप, तीर्थ, जप, दान और पवित्र साधन उस सिद्धिको नहीं करते जो सिद्धि ज्ञानके लेशसे होती है * ॥४॥

* शंका—तप, तीर्थ, जप, दान आदिक जो अनेक अनेक सुख देनेवाली क्रिया है, उन सबको त्यागकर केवल ज्ञानको ही श्रीकृष्णने बड़ा क्यों कहा

उत्तर—जितने संसारमें तप तीर्थ आदि उत्तम क्रिया कर्म हैं वे सब बहुत जन्ममें फल देते हैं क्योंकि जप शीघ्र फल नहीं देता तीर्थमें स्नान करनेमात्रसे स्वर्ग नहीं प्राप्त होता और जिस समय शरीरमें ज्ञान उत्पन्न होगा उसी समय अनेक जन्मोंका दुख दूर होकर शीघ्र सुख प्राप्त होगा और लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने अपना और उद्धवका समागम थोड़े दिनोंका समझा, इसलिये अपने परम मित्र उद्धवको सुख होनेके निमित्त ज्ञानीकी उपासना बतायी, क्योंकि श्रीकृष्णके वियोगका दुःख जप, तप, तीर्थ करनेसे दूर नहीं हो सकता और उस दुःखको ज्ञान बहुत शीघ्र दूर कर सकता है इस लिये जप तपको त्यागकर श्रीकृष्णने ज्ञानको श्रेष्ठ कहा ।

हे उद्धव ! इसलिये तुम ज्ञानके रूपको जान ज्ञान विज्ञानयुक्त होकर भक्तिसे मेरा भजन करो॥५॥ सब यज्ञोंके स्वामी और आत्मा मुझको अपने आपमें ही ज्ञान व विज्ञानरूप यज्ञसे यजन करके मुनिगण मेरे रूप की सिद्धि पा चुके हैं ॥६॥ इसलिये तुम भी इसी ज्ञानसे धर्ममें प्रवृत्त हो । हे उद्धव ! यह देह और इन्द्रियोंके विकार सब मायिक हैं, कुछ परमार्थवस्तु नहीं हैं, यह विकार देहसे पहले भी आत्माके नहीं हैं, पीछे भी नहीं हैं मध्यमें हैं सो भ्रम जानिये । आत्मा शुद्ध है, जन्मादिक भी जो देखे जाते हैं, सो देहके ही हैं, कुछ आत्माके नहीं हैं, देहको जन्म-मरण है, देह भी मायारूपी है, देहके आदि अन्त जो ब्रह्म हैं सो मध्यमें रहते हैं, जब देह ही नहीं तो सब ब्रह्म होते हैं तो फिर

तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ॥ ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥ ५ ॥ ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वाऽऽत्मानमात्मनि ॥ सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायान्तराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत् ॥ जन्मादयोऽस्य यदमी तव यस्य किं स्युराद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ॥ आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥ तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे सन्तप्यमानस्य भवाध्वनीश ॥ पश्यामि नान्यच्छ-रणं तवाङ्घ्रिद्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥ दष्टं जनं सम्पतितं बिलेऽस्मिन्कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् ॥ समुद्ध-रैनं कृपयाऽऽपवर्ग्यैर्वचोभिरासिञ्च महानुभाव ॥ १० ॥

देहके जन्म मरण कहां हो सकते हैं ? जब यथार्थ से देहके भी जन्म मरणादिक नहीं, सब ब्रह्मरूप हैं तो ब्रह्म न जन्मता है न मरता है, निर्विकार ब्रह्म ही है इसमें क्या करना ? ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले कि हे विश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्ते ! जिस प्रकार निश्चय हो वैसे ही वैराग्य युक्त और विज्ञानयुक्त पुरातन विशुद्ध ज्ञान तुम कहो और जिसको ब्रह्मादिक खोजते हैं ऐसे भक्तियोगको कहो ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! इस घोर संसार मार्गमें तीन तापसे तपा हुआ मुझे तुम्हारे चरण द्वन्द्वरूप छत्रके अतिरिक्त और शरण नहीं दीखता, यह छत्र केवल छाया ही नहीं करता बरन् सब ओरसे अमृत बरसाता है ॥ ९ ॥ हे महानुभाव ! यह पुरुष इस संसार रूप बिलमें गिरा हुआ है और कालरूपी

सर्पने इसे काट लिया है, तुच्छ सुखोंमें बहुत तृष्णा है, ऐसे इस जनका कृपा पूर्वक उद्धार करो और मोक्ष रूप अपने वचनामृतसे सींचो॥१०॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित ! जब इस प्रकार प्रार्थना की तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! इसी भांति
पहले राजा युधिष्ठिरने हमारे सबके सामने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्म पितामहसे पूछा था ॥ ११ ॥ भारतयुद्ध निवृत्त होनेके उपरांत बन्धु
वधसे व्याल हो राजा युधिष्ठिरने पूछा ॥ १२ ॥ वहां भीष्मने जो धर्म युधिष्ठिर से वर्णन किया वह हमने भी सुना, वही हम तुमसे
कहते हैं जो ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य, श्रद्धा, भक्तिसे संयुक्त है ॥१३॥ यहां प्रथम ज्ञान कहते हैं, प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्व, अहंकार,
शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये नौ तत्त्व हुए और एकादश इन्द्रियें, पञ्चमहाभूत, तीन गुण ये सब मिलकर अट्ठाईस(२८) तत्त्व हुए,

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥ अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥
निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः ॥ श्रुत्वा धर्मान्बहून्पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तानहं तेऽभिधास्यामि
देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ॥ ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥ नवैकादश पञ्च त्रीन्भावान्भूतेषु येन वा ॥
ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥१४॥ एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्ये-
द्भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥ आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात्सृज्य यदन्वियात् ॥ पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे मच्छिष्येत
तदेव सत् ॥ १६ ॥ श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ॥ प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते ॥ १७ ॥

सो ये सब प्राणियोंमें व्याप्त हैं ज्ञानसे देखे और इन तत्त्वोंमें भी एक परमात्माको जिस ज्ञानसे व्याप्त देखे सो निश्चय मेरा ज्ञान है ॥१४॥
 जैसे ज्ञानके समय सब पदार्थ देखनेमें आते हैं वैसे यह पदार्थ देखनेमें नहीं आते, केवल एक परब्रह्म देखनेमें आता है, वही ज्ञान विज्ञान
 कहा जाता है और उत्पत्ति, प्रलय, स्थिति होने से पदार्थ त्रिगुणात्मक नाशवान् है ऐसा देखे ॥१५॥ यदि कोई कहे कि सब ब्रह्मरूप ही
है तो जन्मादि क्यों होता है ? उत्पत्ति तथा दूसरे रूपकी प्राप्तिके मध्य सबका आश्रय कारण होने से जो कार्य और कार्यांतरमें रहता है,
उत्पत्तिमें व्याप्त होता है और इनके प्रलयमें जो अवशेष रहता है वही ब्रह्म है, उसे ही देखे ॥१६॥ अब विज्ञान कहकर वैराग्य कहते हैं-वेद,

प्रत्यक्ष परंपराकी प्रसिद्धि और अनुमानसे यह प्रपञ्च मिथ्या है, अद्वैत ही सत्य है, जैसे यह दृश्य ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, क्योंकि ब्रह्मसे उत्पन्न है, जो जिससे उत्पन्न है वह उससे भिन्न नहीं जैसे मिट्टीके बने घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं, इस प्रकार भ्रमरूप द्वैत जानकर विकल्पसे विरक्त होना चाहिये ॥ १७ ॥ कदाचित् स्वर्गादिकमें सुखभोग हैं, वहांकी इच्छा हो तो विरक्त होना किस प्रकार सम्भव है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि स्वर्गादिक ब्रह्मलोकतकका सुख भी इसी लोकके समान पंडित जन दुःखरूप मिथ्या ही देखते हैं क्योंकि यह विनाशी कर्मोंके फल हैं ॥ १८ ॥ अब वैराग्य कहकर भक्ति कहते हैंः—हे निष्पाप उद्धव! मैंने भक्ति योग पहले भी तुमसे कहा था, और अब फिर अपनी भक्तिके परम कारणसे प्रीतियुक्त तुमसे कहता हूँ ॥ १९ ॥ हे उद्धव! प्रथम अमृतरूप मेरी कथामें श्रद्धा हो, कथा सुननेमें आदर हो, सुननेके उपरांत

कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चादमङ्गलम् ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८॥ भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ॥ पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥१९॥ श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ॥ परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥२०॥ आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ॥ मद्भक्तपूजाऽभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥ मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ॥ मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥२२॥ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ॥ इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थे यद् व्रतं तपः ॥२३॥ एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ॥ मयि सञ्जायते भक्तिः कोन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥ २४ ॥ यदात्मन्यर्पितं चित्तं शान्तं सत्त्वोपबृंहितम् ॥ धर्मज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥ २५ ॥

निरंतर मेरा कीर्तन करे ॥ २० ॥ मेरी पूजामें तत्पर हो, सर्वांगसे नमस्कार करे आदरपूर्वक मेरे भक्तकी अधिक पूजा करे, सब प्राणिमात्रमें मेरी बुद्धि रखे ॥२१॥ लौकिक कार्योंको मेरे लिये करे, वचनसे मेरे गुणानुवाद कहे, मन मेरे रूपमें ही अर्पित करे, सब कामनाओंका त्याग करे ॥ २२ ॥ मेरे लिये अर्थका त्याग करे, भोग और सुखका त्याग करे, विषय भोग न करे, यज्ञ, दान, होम, जप, तप, सब मेरे लिये ही करे ॥ २३ ॥ हे उद्धव! इस प्रकार धर्मसहित जो मनुष्य मुझमें आत्मनिवेदन करते हैं, उन मनुष्योंको प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है, फिर उनको कुछ करना शेष नहीं रहता ॥ २४ ॥ क्योंकि जब शांत सत्त्वगुणसे बढ़ा चित्त मुझमें लगा दिया तब और सब

ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आप ही प्रकट हो जाते हैं ॥२८॥ और यही चित्त जब गृह कुटुम्बादिमें आसक्त होता है तब इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें भ्रमण करता है, जिससे अधर्म, अज्ञान, अनुरक्तता और कुभाग्यता प्राप्त होती है ॥२६॥ धर्म वही है जो मेरी भक्तिके सहित हो, ज्ञान वही है जिससे आत्मरूप दीखे, इन्द्रियोंके धर्मोंमें आसक्त न होना वैराग्य और अणिमादिकका होना ऐश्वर्य है ॥ २७ ॥ उद्धवजी बोले कि हे शत्रुनाशक ! हे कृष्ण ! हे प्रभो ! संयम नियम कितने प्रकारके हैं ? शम, दम किनको कहते हैं ? क्षमा, धैर्य क्या है ? ॥ २८ ॥ दान, तप, शौर्य, सत्य, ऋत, त्याग, धन, इष्ट, यज्ञ, दक्षिणा इत्यादि क्या है ? ॥२९॥ हे श्रीमन् ! पुरुषका बहुत भाग्य क्या है ? परम

यदर्पितं तद् विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति ॥ रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥ धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ॥ गुणेष्वसङ्गो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्शन ॥ कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥ किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ॥ कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥ पुंसः किंस्विद् बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव ॥ का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥ कः पण्डितः कश्च मूर्खः कः पन्था उत्पथश्च कः ॥ कः स्वर्गो नरकः कः स्वित् को बन्धुरुत किं गृहम् ॥ ३१ ॥ क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ॥ एतान् प्रश्नान् मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसञ्चयः ॥ आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम् ॥ ३३ ॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ॥ तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥ ३४ ॥

विद्या क्या है ? लज्जा, श्री, दुःख, सुख क्या हैं ॥ ३० ॥ पंडित कौन है ? मूर्ख कौन है ? मार्ग उन्मार्ग कौन हैं ? स्वर्ग नरक कौन हैं ? बन्धु गृह कौन हैं ? ॥ ३१ ॥ धनी दरिद्री कौन हैं ? कृपण ईश्वर कौन हैं ? हे साधुओंके पति ! यह प्रश्न मुझसे समझा कर कहो ॥ ३२ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! जीवमात्रकी हिंसा न करे, सत्य बोले मनसे भी परायी वस्तु न चुरावे, आसक्ति कहीं न रखे, लज्जा, असञ्चय, धर्ममें विश्वास, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य क्षमा यह बारह संयम हैं॥३३॥शौच दो भांतिके हैं–अन्तःकरणकी शुद्धि,

और बाह्यशुद्धि । शौच, तप, जप, होम, श्रद्धा, अतिथि और मेरी पूजा, तीर्थयात्रा,परोपकार,सन्तोष,आचार्यसेवा यह बारह नियम हैं॥३४॥ जो यह संयम नियम नित्य करे तो जो कुछ ही चाहे पूर्ण हो ॥ ३५ ॥ अब शम, दम, कहते हैं कि मुझमें बुद्धि स्थिर हो वह सम है, केवल शांति ही शम नहीं कहाती, इन्द्रियों का संयम दम है, चोर दुष्टका मारन दम नहीं, दुःखका सहना क्षमा है, बहुत भार सहना क्षमा नहीं, जिह्वा और उपस्थका वेग सहे सो धैर्य उद्वेग मनमें न उत्पन्न हो इतना ही धैर्य नहीं ॥ ३६ ॥ प्राणिमात्रसे द्रोह त्यागनेको दान कहते हैं, धनका त्याग दान नहीं, कामका त्याग तप कहाता है, कृच्छ्र चान्द्रायण तप नहीं, स्वभावको जिसने जीत लिया वही शूर, पराक्रम शौर्य नहीं । ब्रह्मका दर्शन सत्य है ॥३७॥ पंडितोंने सत्य और प्रियवाणीको ऋत कहा है, कर्मोंकी अनासक्तिको शौच और त्यागको संन्यास

एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ॥ पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ॥ ३५ ॥ शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इंद्रियसंयमः ॥ तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥ ३६ ॥ दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ॥ स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥ ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ॥ कर्मस्वसङ्गमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥ धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ॥ दक्षिणा ज्ञानसन्देशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ॥ विद्याऽऽत्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा हीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्या सुखं दुखसुखात्ययः ॥ दुःखं कामसुखापेक्षा पण्डितो बन्धमोक्षवित् ॥ ४१ ॥

कहा है ॥३८॥ मनुष्योंका श्रेष्ठ धन धर्म है,पशु पुत्रादिक धन नहीं, परमेश्वर ही यज्ञ है, अर्थात् मेरी बुद्धिसे यज्ञ करे, कर्मबुद्धिसे न करे, मेरे ज्ञानका उपदेश ही उस यज्ञकी दक्षिणा है, सुवर्णादि धन दक्षिणा नहीं । प्राणायामसे मनको वश करे वही परम बल है ॥३९॥ मेरा ऐश्वर्य सौभाग्य है, कुछ लौकिक संपत्ति सौभाग्य नहीं, मेरी भक्ति पावे वही परमलाभ है, कुछ धनका लाभ नहीं । आत्मामें भेद बुद्धि दूर हो वही विद्या है, केवल ज्ञान मात्र विद्या नहीं, कुत्सित कर्मका करना लज्जा है, केवल लाज लज्जा नहीं॥४०॥ गुण अच्छे हों वही शोभा है कुछ आभूषण शोभा नहीं,दुःख सुखका स्मरण करे वही सुख है, भोग सुख नहीं, बंध मोक्षको जाने सो पंडित है,केवल शास्त्र पढ़े पंडित नहीं,

सुख भोगकी इच्छा दुःख है, अग्निदाहादिक दुःख नहीं ॥४१॥ जिसके देहादिक अहंकार है वही मूर्ख है, जिस मार्गमें मुझे पावे वही उत्तम मार्ग है, कांटोंसे रहित सन्मार्ग नहीं, जहां मन चञ्चल हो संसारमें फिर प्रवृत्ति हो ऐसे मार्गको कुत्सित मार्ग कहते हैं, चोरादिकोंसे व्याप्त उत्पथ मार्ग नहीं, सत्त्वगुण अधिक हो, राजस, तामस गुण न हों वही स्वर्ग है, कुछ इन्द्रलोक स्वर्ग नहीं ॥ ४२ ॥ तमोगुण अधिक हो वही नरक है और नरक नहीं और बन्धु सब बन्धु नहीं, परम बन्धु गुरु है, सो गुरु मैं हूँ। मनुष्यका शरीर गृह है, और गृह नहीं, जो गुणसे सम्पन्न है वही धनी है और धनी नहीं ॥ ४३ ॥ जो सदा असन्तोष रखे वही दरिद्री है धन हीन दरिद्री नहीं, जो इंद्रियोंको न जीत सके वही कृपण है, दीन कृपण नहीं, विषयोंमें आसक्त न होकर जो स्वाधीन है वह ईश्वर है राजा स्वाधीन नहीं जो गुणमें आसक्त है, वही

मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्था मन्निगमः स्मृतः ॥ उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥ नरकस्तम उन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे ॥ गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥ ४३ ॥ दरिद्रो यस्त्वसन्तुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः ॥ गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसङ्गो विपर्ययः ॥ ४४ ॥ एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ॥ किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ॥ गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे ज्ञानत्यागो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ उद्धव उवाच ॥ विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमोहीश्वरस्य ते ॥ अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणदोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥ वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ॥ द्रव्यदेशवयः कालान् स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥

परवश है ॥४४॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! यह तुम्हारे सब प्रश्न तुमको अच्छे प्रकार समझाये, अब बहुत क्या वर्णन करें गुण दोषका लक्षण इतना ही है, जो सबके गुण दोष विचारता रहे वही दोष है और गुण तथा दोष न देखे वही गुण है ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे यमादिनिरूणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ दोहा–कहूँ बीस अध्यायमें, गुण दोषनके अर्थ। भक्ति ज्ञान औ कर्म यह, तीनों योग समर्थ॥ उद्धव बोले कि हे श्रीकृष्ण ! विधि निषेध वेद कहते हैं सो वेद तुम्हारी आज्ञा है, तुम सबके ईश्वर हो, आपकी आज्ञासे वेद कर्मोंके पुण्य पापोंको देखते हैं ॥१॥ उन धर्मोंके अधिकारी उत्तम, मध्यम,

हीन तीन प्रकार के हैं। सो वह वर्णाश्रम अलग हैं; जिनका गुण दोष सब वेद देखते हैं ॥२॥ अब आप कहते हो कि गुण दोष छोड़कर धर्म में प्रवृत्त हो सो गुण दोष भेददृष्टि बिना विधि निषेध तुम्हारा वचन मनुष्योंको कैसे फलदायक हो सकता है? ॥३॥ हे ईश्वर! पितृ-देवता तथा मनुष्यों को तुम्हारा वेद ही मोक्ष और स्वर्गादिकोंमें श्रेष्ठ प्रमाण है, और साध्य साधन विषे प्रमाण है ॥४॥ और गुण दोषके भेदका ज्ञान तुम्हारे वेद ही हैं आपसे नहीं माना है, गुण दोषोंपर दृष्टि न रखे यह अब तुम्हीं कहते हो इसलिये भ्रम होता है ॥५॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव! मनुयोंके कल्याणार्थ वेदमें भेदसे तीन योग हमने कहे हैं:–ज्ञान, कर्म, भक्ति। इससे परे और

गुणदोषभिदा दृष्टिमन्तरेण वचस्तव ॥ निश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ॥ श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥४॥ गुणदोषभिदा दृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः ॥ निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सयाः ॥ ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥ निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ॥ तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥ ७ ॥ यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ॥ न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ॥ मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥ स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीः काम उद्धव ॥ न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥ १० ॥ अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ॥ ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्ति वा यदृच्छया ॥ ११ ॥

उपाय कहीं नहीं ॥ ६ ॥ इनके अधिकारी अलग अलग हैं, एक ही नहीं सो कहते हैं–इनमें जो कर्मोंमें विरक्तता हो, फलकी कुछ चाहना न हो उसे ज्ञानयोग कहा है ॥ ७ ॥ यदृच्छासे मेरी कथामें जिसकी श्रद्धा हो अतिविरक्त न हो अति आसक्त भी न हो उसे भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है ॥ ८ ॥ प्रथम कर्मयोगको कहते हैं कि कर्म वहांतक करे जहांतक वैराग्य उत्पन्न न हो और मेरी कथा श्रवणादिकमें श्रद्धा न उपजे ॥९॥ हे उद्धव! स्वधर्ममें स्थित हो फलकी इच्छा छोड़ निष्काम यज्ञ करे तो उसे न नरक हो न स्वर्ग हो, जो और आचरण न करे ॥१०॥ इस लोकमें स्वधर्ममें स्थित हो निषेधका त्याग करे, ऐसा करनेसे जब मन शुद्ध हो तो विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त करता है और

भा० ए० यदृच्छासे मेरी भक्ति पाता है ॥११॥ ज्ञानभक्तिका यह मनुष्यदेह कर्ता है, इससे मनुष्यदेह उत्तम है सो कहते हैं-जो स्वर्गमें हैं और
॥६८॥ नरकमें हैं वह मनुष्यदेहकी बाधा करते हैं, जिस देहका ज्ञान भक्ति करनेसे मोक्ष होता है, स्वर्ग और नरकमें भी शरीरमें सो मोक्ष
साधन नहीं ॥१२॥ जो चतुर मनुष्य हो वह स्वर्ग की गति न चाहे, जैसे मनुष्य नरककी गति नहीं चाहते और यह लोक भी नहीं चाहते
क्योंकि देहके आवेशसे प्रमाद होता है ॥ १३ ॥ अर्थ सिद्धिका दाता भी मनुष्यदेहको जानकर मृत्युसे पहले सावधान मनुष्य मोक्षका
यत्न करे ॥१४॥ जैसे पक्षी किसी वृक्षपर घर करे, उस वृक्षको कोई निर्दयी पुरुष आकर काटे, उसे काटता जान अनासक्त होकर
घर छोड़ दे तो जीता है ॥ १५ ॥ अहोरात्रसे काल आयुर्बलको काटता है,यह जान भयसे कांपते इस देहकी आसक्ति छोड़ शान्तचित्त होकर

स्वर्गिणोऽप्येनमिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा ॥ साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥ १२ ॥ न नरः स्वर्गतिं
काङ्क्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ॥ नेमं लोकं च काङ्क्षेत देहावेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ ॥ एतद्विद्वान् पुरा मृत्योरभवाय
घटेत सः ॥ अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥ छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ॥ खगः
स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलम्पटः ॥१५॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः ॥ मुक्तसङ्गः परं बुद्ध्वा निरीह
उपशाम्यति ॥ १६ ॥ नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ॥ मया अनुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्
भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥१७॥ यदारम्भेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः ॥ अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेद-
चलं मनः ॥ १८ ॥ धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् ॥ अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥१९॥

रहे ॥१६॥ देहको ऐसा जानकर भी जो सावधान नहीं होता उसकी निंदा करते हैं, यह मनुष्य देह अत्यन्त दुर्लभ है, अनेक जन्मके पुण्यसे
भा० टी० पाया है, साधन करनेको समर्थ है, संसार समुद्रसे तरनेकी नाव है, गुरु नावका चलानेवाला है, मैंने अनुकूल पवनसे प्रेरित की है ऐसे साधनको
अ० २० पाकर जो यह प्राणी संसारसमुद्रसे न तरे तो वह आत्मघाती है ॥१७॥ यह कर्मयोग तो जो विरक्त न हों उनका कहा, अब जो विरक्त हों
उनका पहले जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे, वर्णन करते हैं-जिन कर्मोंमें उद्वेग हो, वैराग्य उपजे तब इंद्रियोंका निग्रह करे, स्थिरतासे आत्माके
अभ्याससे मनका निग्रह करे तब वह योगी हो ॥ १८ ॥ मनका निग्रह करनेपर भी चंचल हो तो सावधान हो कुछ मनकी आकांक्षा पूर्ण

करके फिर मनको वश करे॥१९॥मनकी धारणा नहीं छोड़े, प्राणवायु जीते, इंद्रियां जीते और सत्वगुणी बुद्धिसे अपने मनको वश करे॥२०॥ यह मनका निग्रह निश्चय उत्तम योग है, जैसे सवार दमन करने योग्य घोड़ेकी गतिको अपनी इच्छानुसार चाहता हुआ पहले उसे इच्छानुसार जाने देता है, फिर लगामको थामकर चलाता है वैसे ही शनैः शनैः मनको वश करे ॥ २१ ॥ सब तत्वोंके विवेकसे और प्रकृतिसे उत्पत्तिका क्रम विचारे, यह पृथ्वीआदि क्रमसे अनुलोम प्रतिलोमसे लीन होते हैं ऐसा ध्यान करता रहे, ऐसा ध्यान उस समयतक करे, जबतक चित्त प्रसन्न न हो ॥२२॥ जब चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो तब गुरुके बताये धर्मका विचार करे, भ्रमसे यह चित्त देहका अभिमान

मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः ॥ सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥ एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ॥ हृदयज्ञत्वमन्विच्छन् दम्यस्ये वार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥ सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ॥ भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ॥ मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया ॥ २३ ॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ॥ ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ॥ योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥ स्वेस्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ॥ विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निर्णयः ॥ कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ॥ गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥ जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ॥ वेद दुखात्मकान्कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥

छोड़ देता है ॥ २३ ॥ संयम नियम आदि योगधारण, आत्माविचार और मेरी प्रतिमाकी सेवा इन उपायोंसे योग्य परमात्माका मनसे स्मरण करे; क्योंकि मेरे स्मरणका इससे अधिक और उपाय नहीं है ॥ २४ ॥ जो प्रमादसे योगी कुछ निंदित कर्म करे, उस योगी को योगाभ्याससे ही अपना पाप दूर करना चाहिये, क्योंकि इसका और प्रायश्चित नहीं है ॥ २५ ॥ अपने अधिकारमें रहना ही गुण है, प्रवृत्ति मार्ग स्वभावसे ही अशुद्ध है तथापि जो सहसा (एकाएकी) न छोड़ा जाय तो संगप्रवृत्तिके छुड़ानेकी इच्छासे गुण दोष कर इन कर्मोंके संकोच द्वारा निवृत्ति चाहिये, क्योंकि योगीको स्वाभाविक वृत्ति न होनेसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं ॥ २६ ॥ मेरी कथामें

श्रद्धा कर्मोंमें वैराग्य होनेपर और काम्य कर्मोंको दुःखरूप जाननेपर भी उनका परित्याग न हो सके ॥२७॥ तो प्रीतिपूर्वक श्रद्धायुक्त हो दृढ़ निश्चय से मेरा भजन करे, विषय भोग करता हुआ भी आसक्त न हो, उनकी निंदा करता रहे। अब भजनका प्रकार कहते हैं ॥२८॥ पहले मैंने भक्तियोग तुमसे कहा है। उसी रीतिसे जब निरन्तर मुनि मेरा भजन करे, तो उसके हृदयमें मेरा वास होनेसे सब कामना नष्ट हो जायँगी ॥२९॥ सबके आत्मारूप जो मुझे देखे तो उसके हृदयकी गांठ छूट जाती है और सब सन्देह मिटकर संपूर्ण कर्म क्षीण हो जाते

ततो भजत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ॥ जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥ प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः ॥ कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ॥ न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ॥ योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥ सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ॥ स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥ न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ॥ वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥३४॥

हैं ॥३०॥ इसलिये मेरी भक्तिसंयुक्त मुझमें चित्त युक्त करनेवाले योगी को ज्ञान और वैराग्य कल्याणके साधन नहीं हैं, किन्तु भक्तियोग ही कल्याणका साधक है ॥३१॥ जो फल कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म और तीर्थयात्रादिकके साधनसे होता है ॥३२॥ वही फल केवल मेरी भक्ति करनेसे प्राप्त हो जाता है, मेरे सुखसे मेरा वैकुण्ठधाम पाते हैं परन्तु कुछ चाहना नहीं करते ❋ ॥ ३३ ॥ हे उद्धव ! जो पुरुष बुद्धिमान् हैं उनकी मुझमें अत्यन्त प्रीति है, वह परम साधु है यद्यपि मैं उनको अनेक विभव देता हूँ परन्तु तो भी

शंका—पहले तो श्रीकृष्णने ज्ञानकी प्रशंसा की फिर कुछ कालोपरान्त ज्ञान, वैराग्य, तप, जप, तीर्थ आदि और जो सुन्दर कर्म हैं उनको भी त्यागकर भक्तिकी प्रशंसा की कि सबसे भक्ति ही बड़ी है, यह बड़े संदेहकी बात है, किसको श्रेष्ठ मानें और किसको मध्यम मानें। भगवान् श्रीकृष्ण तो कभी कुछ कहते हैं कभी कुछ कहते हैं, ऐसे वचन सुनकर हमको बड़ा भ्रम होता है।

उत्तर—श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि थोड़े ही दिनोंमें कलियुग आवेगा तो जप, तप, तीर्थादिक सब सुन्दर कर्मोंका नाश कर देगा परंतु भक्तिका नाश नहीं हो सकता; इस लिये भगवान्‌ने भक्तिकी प्रशंसा की कि कलियुगमें भक्तिके सिवाय मनुष्यों से और कोई काम नहीं होगा।

वे कुछ चाहना नहीं करते ॥ ३४ ॥ मेरी निरपेक्ष भक्ति ही परम कल्याणरूप है, उसमें भी मेरी निष्काम भक्ति निष्काम भक्तको ही प्राप्त होती है। ॥३५॥ जो मेरे विषे एकान्त भक्त रागद्वेषादिकरहित समचित्त हैं और बुद्धिसे परे ईश्वरको प्राप्त हैं उनको विधिनिषेधके गुण-दोषसे उत्पन्न हुए पुण्यपाप नहीं लगते ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मेरे कहे हुए मार्गोंमें जो पुरुष चलते हैं वे परमकल्याणरूप मेरे धामको (जिसको परब्रह्म कहते हैं) प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा—इक्किसवें अध्यायमें, कर्म भक्ति अरु ज्ञान। सबके गुण अरु दोष मैं वरणों सहित विधान॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले कि हे उद्धव! जो पुरुष मेरे बताये मार्ग, भक्ति, ज्ञान, निष्कामको छोड़कर इन चंचल प्राणोंसे तुच्छ कामनाओंका सेवन

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ॥ तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥ न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ॥ साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥ एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः ॥ क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद् ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥ इति श्रीभा० म० एका० भगवदुद्धवसंवादे योगत्रयभक्त्यादिनि० विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥ क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ॥ विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ॥ द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥ धर्मार्थं व्यवहाराय यात्रार्थमिति चानघ ॥ दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥

नहीं करते हैं वे फिर संसारकी प्राप्त नहीं होते ॥ १ ॥ जिस प्रकार अग्निसे किसीको ताप होना और किसीको न होना सम्भव नहीं इसी प्रकार उन्हीं कर्मोंसे किसीके गुण और किसीके दोष होना सम्भव नहीं, यह सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि जिन अधिकारमें निष्ठा रखनेको गुण और न रखनेको दोष कहते हैं, गुण दोषके विचारका यही निश्चय है ॥ २ ॥ 'यह शुद्ध है लीजिये, यह अशुद्ध है न लीजिये' ऐसे सन्देहसे स्वाभाविक प्रवृत्तिकी निवृत्त करनेके लिये समान वस्तुओंमें भी वेदमें शुद्धि और अशुद्धिका विधान किया है, इसी लिये उनमें गुण दोष माने हैं, इसीसे पुण्य और पाप मानते हैं ॥ ३ ॥ हे निष्पाप! धर्मका भार धारण करनेवाले पुरुषोंकी मैंने ही

मनु आदि रूपसे यह आचार दिखाया है, यह शुद्धि और अशुद्धि धर्मव्यवहार तथा निर्वाहके लिये गुण और दोषरूपसे प्रतिपादन की है, धर्मके लिये शुद्धिसे धर्म, अशुद्धिसे अधर्म कहा है। व्यवहारमें अशौचादिसे अशुद्ध भी राजव्यवहारमें न्याय करनेको शुद्ध और दूसरे कार्योंमें अशुद्ध हैं आपदामें निर्वाहमात्र पदार्थ लेनेसे शुद्धि और अधिक लेनेसे अशुद्धि होती है॥ ४ ॥ यद्यपि यह सब वस्तु समान हैं, क्योंकि पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, ब्रह्म आदि जड़ तक सब देहके कारण पञ्च महाभूत हैं और आत्मा भी सब एक ही है ॥५॥ परन्तु तो भी हे उद्धव ! देहविषे समान भी वेदने नाम, रूप, वर्ण, आश्रम सम्पूर्ण इन जीवोंकी स्वार्थसिद्धिके लिये पृथक्-पृथक् किये हैं॥ ६ ॥

भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः ॥ आब्रह्मस्थावरादीनां शरीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥ वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ॥ धातुषूद्धव कल्प्यन्त एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ॥ गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ॥ कृष्णसारोऽप्यसौ वीरः कीकटा संस्कृतेरिणम् ॥ ८ ॥

केवल देहमें ही विभाग नहीं किन्तु देशकाल आदि सम्पूर्ण वस्तुओंमें कर्मके संकोचके किये गुण दोषका विधान किया है, अब शुद्धि अशुद्धिका विषय कहते हैं ॥ ७ ॥ जिस देशमें काला मृग न हो वह देश अशुद्ध है और सत्पात्ररहित देश, मार्जनरहित देश, ऊषर देश, यह अशुद्ध है और जहां ब्राह्मणोंमें भक्ति न हो वह तो अत्यन्त ही अशुद्ध है। अंग, वंग, कलिंगादिक देश भी अशुद्ध हैं, जहां काले मृग और सत्पात्र हों वह अशुद्ध भी देश शुभ है। देशकी शुद्धि अशुद्धि कहकर काल (समय) की शुद्धि कहते हैं * ॥ ८ ॥

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि जिस देशमें कालामृग नहीं होता वह देश भ्रष्ट है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि जिस देशमें गंगा यमुना आदि, प्रयाग पुष्कर आदि तीर्थ, बद्रीनारायण आदि आश्रम हैं वह देश भी कालेमृग विना भ्रष्ट है तो इस बातसे यह सिद्ध हुआ कि काला हिरण ही सबोंमें मुख्य ठहरा, यह गंगा और प्रयागादिक तीर्थ किसीको शुद्ध नहीं कह सकते ।

उत्तर—श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा सो सब सत्य है परंतु विना व्याकरण पढ़नेसे अर्थ करनेकी शक्ति नहीं हो सकती यह पुरुष अर्थका अनर्थ कर देते हैं, क्योंकि भगवान्‌में अकृष्णसारका अर्थ ऐसे व्यासजीने कहा है कि जिस देशमें कालामृग न हो वह देश भ्रष्ट है,जो मनुष्य संसारको कुछ नहीं मानते इससे कुछ भी सार नहीं है ऐसा जानकर बड़े निश्चयसे कृष्णाको ही सार जानते हैं कि सब झूठा है, श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका आश्रय सत्य है । ऐसे जाननेवाले पुरुष जिस देशमें नहीं है वह देश भ्रष्ट है सो श्रीकृष्णने ऐसा कहा था, कुछ ऐसा नहीं कहा था कि जिस देशमें कालामृग नहीं है वह देश भ्रष्ट है ।

जो काल द्रव्यकी सम्पतिसे कर्मके योग्य हैं, अथवा स्वतः ही प्रातः पूर्वाह्ल मध्याह्न आदि कर्मके योग्य हैं वह काल उस कर्मको शुद्ध है। जो सूतकादि काल कर्मके योग्य नहीं है, यद्यपि काल सब एक है परन्तु तो भी यह भेद किया गया है कि कर्मके अयोग्य काल अशुद्ध है ॥ ९ ॥ अब द्रव्यकी शुद्धि कहते हैंः–द्रव्यकी शुद्धि अशुद्धि द्रव्य, वचन, संस्कार, बड़ेपन और छोटेपनसे मानी जाती हैं, द्रव्यको शुद्ध जल करता है, मूत्रादिक अशुद्ध करते हैं। ब्राह्मणका वचन प्रमाण है, यदि वे कहें कि यह वस्तु शुद्ध है तो वह शुद्ध है, अशुद्ध कहें तो अशुद्ध ही है; पुरुष पुष्पादि सूँघ ले तो अशुद्ध ही जाता है, प्रोक्षणादिक संस्कारसे शुद्ध हो काल (दशाहादि) से नये जलादिकी शुद्धि चातुर्मास्यमें तीन दिनसे शुद्धता, बड़ेपनसे तालाब, नदी आदिका जल चांडालादिकके स्पर्शसे भी शुद्ध ही है, छोटेपनसे घटादिका जल चाण्डालादिके स्पर्शसे अशुद्ध हो जाता है ॥१०॥ अब शक्ति अशक्तिसे शुद्धाशुद्धि कहते हैंः–सूर्यग्रहणमें शक्तिमान्को

कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ॥ यतो निवर्त्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥ द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च ॥ संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथवा ॥ १० ॥ शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने ॥ अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम् ॥ कालवाय्यग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२ ॥

सूतक लगता है, स्नान दानसे शुद्धि होती है और जो अशक्त हैं उन्हें नहीं। बुद्धिसे पुत्रजन्मादि अशौचके दशदिनके भीतर जाननेसे अशुद्धि उपरांत शुद्धि, समृद्ध होनेके कारण जीर्ण व मलिन वस्त्र श्रीमानोंको अशुद्ध हैं, दरिद्रीको शुद्ध हैं। सूतकका अन्न समर्थ को तो अशुद्ध है असमर्थको शुद्ध। यह द्रव्य वचन आदि द्रव्यकी अशुद्धिसे आत्माको पातक लगाते हैं, सो देशकाल अवस्थाके अनुसार ही हैं तथा निर्भय देशमें पापी चौरादिके उपद्रवयुक्त देशमें नहीं लगते, युवावस्थामें यही पापदायक और वृद्धावस्था तथा बालकपनमें शुद्ध हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार द्रव्यकी शुद्धि द्रव्योंसे कही। वचनशुद्धि एक ही भांति है, द्रव्यकी शुद्धि बहुत प्रकार है, सो कहते हैंः– अन्न, काष्ठ, हाथीदांत, सूत्र, रस, तैल, घृत, आदि, सुवर्ण और मार्गकी कीच, कलश, ईंट यह सब काल, वायु, अग्नि, जलसे यथायोग्य शुद्ध है,

अर्थात् धान्यकी शुद्धि वायुसे, यज्ञपात्र तथा काष्ठकी जलसे, हाथी दांत आदिकी कालसे, तैल, घृत, सुवर्णादिकी अग्निसे, तन्तुओंकी जलसे, चामकी काल और रंगसे, पार्थिवविकार ईंट आदिकी कालसे शुद्धि होती है, कभी तो यह सब मिलकर शुद्धि करते हैं और कभी अकेले करते हैं, तो भी जो काक और चाण्डालादिक नीच जातिका स्पर्श हुआ हो तो उसके देश अवस्था देखकर विचार करे, तब शुद्ध हो ॥ १२ ॥ और भी शुद्धि कहते हैंः– पीढ़ा, पात्र, वस्त्र, आदिमें जो अपवित्र वस्तु लग जाय तो काष्ठ छिलानेसे शुद्ध हो, द्रव्यकी शुद्धि राख और खटाईसे धोवे तब शुद्ध हो, वस्त्र खारसे गन्ध और लेप छूटनेतक धोवे तब शुद्ध हो, अर्थात् जब दुर्गन्ध न रहे स्वच्छ हो जाय तब शुद्ध है ॥ १३ ॥ अब कर्ताकी शुद्ध कहते हैंः–स्नान, ध्यान, तप, अवस्था (बाल्य, कौमारादि) वीर्य, संस्कार, गायत्री–उपदेश, सन्ध्याकर्म, दीक्षादिक कर्मसे ब्राह्मण जब शुद्ध हो तब कर्म करे, और आत्माकी शुद्धि मेरे स्मरणसे होती है और प्रकारसे नहीं। ब्राह्मणा-

अमेध्यलिप्तं यद्येन गन्धं लेपं व्यपोहति ॥ भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोऽवस्थावीर्यं संस्कारकर्मभिः ॥ मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद्द्विजः ॥ १४ ॥ मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ॥ धर्मः संपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥ क्वचिद्गुणोऽपि दोषः स्याद्दोषोऽपि विधिना गुणः ॥ गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥

दिककी देहशुद्धि संस्कारोंसे होती है और प्रकार नहीं, देहकी शुद्धि संस्कारोंसे होती है, सो भी व्यवहारके लिये ही है, उसके निमित्त विहित कर्म करे ॥१४॥ अब मन्त्रकी शुद्धि कहते हैंः–श्रेष्ठ गुरुके मुखसे सुने, इसके उपरान्त उस मन्त्रका अच्छे प्रकार ज्ञान हो तो मन्त्रकी शुद्धि हो, जो कुछ कर्म भले अथवा बुरे करे सो सब मुझे समर्पण करे, यह कर्म शुद्धि है। देश, काल, द्रव्य, कर्त्ता, मन्त्र और कर्म इन छः पदार्थोंके शुद्ध होनेसे धर्मकी शुद्धि होती है, यदि ये अशुद्ध हों तो अधर्म होता है ॥ १५ ॥ यह गुण दोषका विभाग यथार्थ नहीं है कहीं आपदामें प्रतिग्रह लेनेसे दोष गुण हो जाता है, धन होनेसे निषेध होनेके कारण कहीं दोष है और कहीं दोष विधिसे भी गुण दोषके कहनेसे कुटुम्बका त्यागना दोष है, परन्तु विरक्तको कुटुम्ब त्यागना दोष नहीं, गुण दोषके कहनेवाले शास्त्र गुण दोषके बाधक हैं ॥ १६ ॥

दोष भी नहीं दोष नहीं होता, यहां एक दृष्टान्त कहते हैंः—जो सुरापानसे पतित हैं उन पतितोंको सुरापानसे दोष नहीं होता क्योंकि वह जाति कर्मसे पहले ही पतित हैं उनको सुरापान अधिक पातक क्या करेगा ? और जो धर्मशील हैं उन्हें उसका संग भी पातक है। संन्यासीको संग भी बन्धनमें डाल देता है, वही गृहस्थका गुण है, क्योंकि गृहस्थको संग करना होता, जैसा कि वेदमें कहा है—"ऋतुके दिन स्त्री संग करे" आशय यह है कि जो पहले ही पृथ्वीपर सोया है वह नीचे नहीं गिरता ॥१७॥ इस प्रकार गुण दोषका विचार प्रवृत्तिमार्गमें है, निवृत्ति होनेके उपरांत कुछ नहीं, सो कहते हैंः—वेदका यही तात्पर्य नहीं है कि सदा प्रवृत्तिमें ही रहे, वेद प्रवृत्ति छुटाकर निवृत्ति बताते हैं, इस प्रकार जिस जिस विषयसे निवृत्त हुआ उससे मुक्त हो जाता है, यह धर्म मनुष्योंको अत्यन्त शुभकारी और शोक, मोह तथा

समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ॥ औत्पत्तिको गुणः संगो न शयानः पतत्यधः ॥ १७॥ यतोयतो निवर्त्तेत विमुच्येत ततस्ततः ॥ एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥ विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततो भवेत् ॥ संगात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ ॥ कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्त्तते ॥ तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥ तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ॥ ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेदनापरम् ॥ वृक्षजीविकया जीवन् व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥

भयको दूर करनेवाला है ॥ १८ ॥ प्रवृत्तिमार्गमें अनर्थरूप है सो कहते हैं कि जब मनुष्योंको विषयमें इंद्रियोंका अभ्यास हो जाता है तब आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से काम और कामसे कलह उत्पन्न होता है ॥१९॥ कलहसे अति असह्य क्रोध होता है, क्रोधसे तम अर्थात् अज्ञान होता है, अज्ञानसे पुरुषकी चेतना जो सब देहमें व्याप रही है, शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥२०॥ हे साधो ! जब वह चेतना से रहित हुआ, तब यह जीव असाधुके तुल्य हो मूर्च्छित होता है, मूर्च्छा होते ही मृतक समान होनेसे इसके पुरुषार्थकी हानि होती है ॥ २१ ॥ जो मृतक समान है उसका स्वरूप कहते हैं—जो विषयोंमें आसक्त होनेके कारण आत्माको तथा औरको भी नहीं जानते, वे

वृक्षोंकी जीविकाकी नाईं वृथा जीते हैं, धौंकनीके समान श्वास लेते भी मृतके समान हैं ॥ २२ ॥ यह जो प्रवृत्ति मार्गकी आज्ञा है सो वेदने यहां कर्मोंके फल रुचि दिखानेके लिये वर्णन किये हैं, जैसे रोगी को रुचि उपजाकर औषधी पिलाते हैं, तात्पर्य आरोग्यतासे है, सदा औषधी सेवनसे नहीं, इसी प्रकार जबतक ज्ञान न हो तबतक कर्म करनेकी वेद आज्ञा करता है, सब काल कर्म करनेसे तात्पर्य नहीं ॥२३॥ मनुष्य स्वभावसे ही पशु आदिमें और इंद्रिय, बल, वीर्यमें पुत्रादिकोंमें आसक्तिचित्त हो जाता है सो सब अपने आपको अनर्थका हेतु है ॥ २४ ॥ इससे स्वार्थ अर्थात परमसुखको जो पुरुष नहीं जानते वे अनेक पापरूप मार्गोंकी उन उन योनियोंमें भ्रमण करते हैं। इसके पीछे जड़रूप वृक्ष आदि योनियोंमें प्रविष्ट होते हैं, उनको फिर वेद भी धर्मोंमें नहीं प्रवृत्त कराते, जिससे अनिष्ट हो उसीमें

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम्॥ श्रेयो विवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥ उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च॥ आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥ २४ ॥ न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि ॥ कथं युञ्ज्यात पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥ २५ ॥ एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ॥ फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि॥ २६ ॥ कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः ॥ अग्निमुग्धा धूमतान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते॥ २७ ॥ न ते मामङ्ग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः ॥ उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८ ॥

वेद प्रवृत्त करे तो हितकारी होता है ॥ २५ ॥ कर्ममार्गी कैसे फल बताते हैं सो कहते हैं–इस प्रकार वेदका अभिप्राय जाने विना कुबुद्धि ही यह फल बताते हैं और जो वेदके तात्पर्यको जानते हैं; वे व्यास आदि ऋषि ऐसा नहीं कहते ॥ २६ ॥ कामी, कृपण, लोभी पुष्परूपी स्वर्गादि सुखरूप अवान्तर फलको मुख्य माननेवाले अग्निहोत्रादिसे मुग्ध धूम्रयुक्त चित्तवाले अपने सुखदायक लोकको नहीं जानते ॥२७॥ हे उद्धव ! जिससे यह जगत् प्रकट है और जो जगत् रूप है, ऐसे मुझ परमात्माको वे हृदयमें स्थित नहीं जानते, कर्मरूप शास्त्रोंसे पशु हिंसाकर बकवत् प्राण पुष्ट करते हैं, जैसे कुहरेसे कुछ नहीं दीखता, वैसे ही अज्ञानसे उनके नेत्र व्याप्त हैं, क्योंकि जो समीपमें स्थित मुझे

नहीं जानते ॥ २८ ॥ इसी कारणसे मेरे वाक्यरूप वेदके गूढ़ तात्पर्यको विषयी नहीं जानते। मेरा मत यह है, कि यदि मांस भक्षणके लिये हिंसाकी विधिमें वेदकी प्रीति होती तो वेद यज्ञमें ही मांस–भक्षणकी विधि नहीं करता, किन्तु सदाके लिये आज्ञा देता। मनुष्योंकी मांसमें अधिक प्रवृत्ति देख उनको इससे छुड़ानेके लिये कि एक संग तो छूट नहीं सकता, इस कारण छुड़ानेका उपाय प्रतिपादन करता है कि पशुको यज्ञमें ही मारना और स्थलमें नहीं उसमें भी अमुक पशु मारना इससे वेदका अभिप्राय पशुहिंसासे निवृत्ति ही करनेका है ॥ २९ ॥ हिंसामें जिनके व्यवहार हैं, अपने विषय भोगोंके लिये पशुओंकी हिंसा करके देवता, पितृ, भूतपतियोंका जो पुरुष पूजन करते हैं वे अति दुष्ट हैं ॥३०॥ स्वप्नके समान कानोंको सुख दायक परलोक और इस लोककी कामनाओंका मनमें संकल्प करके अपने धनको सकाम

ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ॥ हिंसाया यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥ हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ॥ यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः ॥ ३० ॥ स्वप्नोपमममुं लोकमसन्तं श्रवणप्रियम् ॥ आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजत्यर्थान् यथा वणिक् ॥ ३१ ॥ रजः सत्त्वतमोनिष्ठा रजः सत्त्वतमोजुषः ॥ उपासते इन्द्रमुख्यान् देवादीन्न तथैव माम् ॥ ३२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ॥ तस्यान्त इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥ एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ॥ मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्तापि न रोचते ॥ ३४ ॥ वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे ॥ परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥

कर्मोंमें व्यय करते हैं और दोनों लोकसे भ्रष्ट हो जाते हैं, जैसे बनिया दुस्तर समुद्रके उल्लंघन करनेमें बहुत धन प्राप्तिकी इच्छा कर अपने संचित किये धनको छोड़ दोनों ओरसे भ्रष्ट हो जाता है॥३१॥ और जो रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुणसे युक्त होकर जैसे इन्द्रादिक देवताओंकी सेवा करते हैं वैसे मेरी सेवा नहीं करते ॥३२॥ मनमें अनेक मनोरथ करते हैं कि "यहां यज्ञसे देवताओंको सन्तुष्ट कर स्वर्गमें जाकर विहार करेंगे और फिर यह भोग भोगकर अन्तमें यहां आकर बड़े गृह तथा बड़े कुलमें स्थित होंगे" ॥ ३३ ॥ इस प्रकार फूली बातोंसे चञ्चलचित्त मनुष्य मान, अहंकार भरे गृहमें अनम्र रहते हैं- उनको मेरी वार्ता अच्छी नहीं मालूम होती ॥३४॥ इस कारण वेदका तात्पर्य ब्रह्मविषे है, निवृत्ति ही बताते हैं, यद्यपि कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, उपासनामार्ग भिन्न भिन्न कहे हैं परंतु तो भी तात्पर्य ब्रह्ममें ही है

मन्त्र और मन्त्रोंके द्रष्टा ऋषि परोक्ष रीतिसे ही पदार्थका प्रतिपादन करते हैं, इससे ब्रह्म आत्मामें गूढ़ होनेके कारण प्रकाशित नहीं होता। परोक्षरीतिसे कहनेका कारण यह है कि मुझे परोक्ष प्रिय है। जिनके अन्तःकरण शुद्ध हैं वे ही उसको जान सकते हैं, दूसरे नहीं। दूसरोंके जाननेमें हित तो दूर रहे, किन्तु कर्मभ्रष्ट होने की आपत्ति आ पड़ती है ॥३५॥ कहते हैं कि जैमिनि आदि ऋषि वेदके ज्ञाता थे, इन्होंने ऐसा क्यों नहीं कहा? इसका उत्तर यह है कि वेदका तत्त्व मुझे विना कोई नहीं जानता, क्योंकि शब्द ब्रह्म अति दुर्ज्ञेय है, वही सूक्ष्म और स्थूल भेदसे दो प्रकारका है। सूक्ष्मका तो स्वरूप जानना भी अति कठिन है, क्योंकि प्रथम तो वह परा नामक प्राणमय है, दूसरा पश्यन्ती नाम मनोमय है, तीसरा मध्यम नाम इंद्रियमय है, देहमें ये तीनों स्वरूप सूक्ष्मरूपसे रहते हैं इसलिये इनका जानना कठिन है, चौथा वैखरीस्वरूप है जिससे मनुष्य बोलते हैं। समष्टि प्राणमय वेदब्रह्मका देशकालसे परिच्छेद न होनेके कारण उसके पारका अन्त नहीं है, जिस प्रकार शब्दसे

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् ॥ अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥३६॥ मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणाऽनन्तशक्तिना ॥ भूतेषु घोषरूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते ॥३७॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ॥ आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ॥ ओंकाराद्व्यञ्जितस्पर्शस्वरोष्मान्तःस्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥ विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ॥ अनन्तपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥४०॥

वेद ब्रह्म जानना कठिन है, उसी प्रकार अर्थसे भी यह महागंभीर समुद्रके समान अवगाहन करनेको दुस्साध्य है ॥ ३६ ॥ अनन्तशक्ति व्यापकरूप अन्तर्यामी ब्रह्मसे यह नादवंत वाणीरूप कमलनालमें तंतुके समान सब प्राणिमात्रमें प्रतीत होता है, इसी स्वरूपका विद्वान पुरुष विचार करते हैं ॥३७॥ जैसे मकरी हृदयसे निकाल मुखद्वारसे जालको प्रकट करती है उसी प्रकार प्राणोपाधि हिरण्यगर्भ प्रभु भगवान् वेदमूर्ति अमृतमय नादवंत स्पर्शादिकोंके कर्ता मन करके हृदयाकाशसे वैखरी नामवाणीको उपजाते हैं, जो बृहती वा वैखरी नामक वाणी उपजाते हैं फिर आप ही संहार करते हैं। वह कैसी वाणी है जिसके अनेक मार्ग हैं ॥ ३८ ॥ हृदयमें प्राप्त अतिसूक्ष्म प्रणवसे प्रकट हुए जो स्पर्श, स्वर, ऊष्मा, अन्तस्थसे शोभित ॥ ३९ ॥ अनेक लौकिक भाषाओंसे फैल उत्तरोत्तर चार चार अक्षर जिनमें बढ़े ऐसे

गायत्री आदि छंदोंसे युक्त पारावार रहित हैं, वह प्राण उसे आप ही प्रकट करके उपसंहार करते हैं ॥ ४० ॥ उनमें कितने ही छन्दोंको दिखाते हैं–गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति,, त्रिष्टुप् जगति, अत्यष्टि, अतिजगत् और अतिविराट इत्यादि छन्द हैं, चार-चार अक्षर बढ़ानेसे बनते हैं, जैसे चौबीस २४ अक्षरोंका गायत्री छन्द होता है, अट्ठाईस २८ अक्षरोंका उष्णिक छन्द होता है बत्तीस ३२ अक्षरोंका अनुष्टुप् छन्द होता है। इसी प्रकार चार-चार अक्षरोंका अधिक करके छन्दोंका लक्षण जान लेना॥४१॥ यह वेदवाणी कर्मकाण्डमें विधिवाक्योंसे क्या प्रतिपादन करती हैं, और मन्त्रवाक्योंसे देवताकाण्डमें किसका प्रकाश करती है, ज्ञानकाण्डमें यही वेदवाणी किसका अनुवाद करके विकल्प बताती है ? इस प्रकार वेदवाणीके तात्पर्यको मेरे अतिरिक्त जाननेका किसीमें सामर्थ्य नहीं ॥ ४२ ॥ वेदवाणी

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥ त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छन्दो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥ ४१ ॥ किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ॥ इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥ ४२ ॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ॥ एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥ मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥ इति श्रीभा० महा० एका० भगवदुद्धवसंवादे गुणदोषव० एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ उद्धव उवाच ॥ कतितत्त्वानि विश्वेश सङ्ख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥ नवैकादश पञ्च त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

देवतारूप मेरा ही प्रतिपादन करती है और उससे आकाश उत्पन्न हुआ इत्यादि वाक्योंसे विकल्प कथन कर पीछे निराकरण करते हैं, सो भी मेरा ही स्वरूप है। सब वेदका तात्पर्य यही है कि परमेश्वर परमार्थरूप है भेद मायामात्र है, इस प्रकार जो ॐकारमें अर्थ है वही सब कांडोंमें हैं, जैसे अंकुरका रस शाखा प्रशाखा फल पुष्पादि सबमें आ जाता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश-स्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धव-संवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा–बाइसवें अध्यायमें, प्रकृतीपुरुष विचार। तत्त्वोंकी संख्या सकल, अरु अविरोध प्रकार ॥ उद्धवजी बोले कि हे भगवन् ! हे विश्वेश्वर ! हे प्रभो ! कितने एक महात्मा तत्त्वोंकी संख्यामें विवाद करते हैं, उन्होंने अपने शास्त्रोंमें तत्त्वोंकी संख्या पृथक्-पृथक् की है, आप सब मिलाकर तत्त्वोंकी संख्या अट्ठाईस २८ कहते हैं, यह

भा० ए०
॥७४॥

आपके ही श्रीमुखसे सुना है ॥ १ ॥ कोई छब्बीस कहता है, कोई सात ७ कहता है, कोई ९ कहता है, कोई ६ कहता है, कोई चार ४ कहता है, कोई ग्यारह ११ कहता है, कोई सत्रह १७ कहता है, कोई सोलह कहता है, कोई तेरह १३ कहता है ॥२॥ ऋषीश्वर जिस प्रयोजनके अर्थ इतनी संख्या भिन्न-भिन्न कहते हैं सो हे चिरंजीव ! यह मुझे समझाकर कहो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार पूछा तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! ब्राह्मण जो कहते हैं सो युक्त है यह तत्त्व सर्वत्र है, मेरी मायाको अंगीकार करके कहते हैं; जिस मायामें किसी प्रकारका कहना अशक्य नहीं है ॥ ४ ॥ तुम जैसे कहते हो सो ऐसे नहीं, जो मैं कहता हूँ सो सत्य है।

केचित्षड्विंशति प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ॥ सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥२॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ॥ एतावत्त्वं हि सङ्ख्यानामृषयो यद्विवक्षया ॥ गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ॥ मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किन्नु दुर्घटम् ॥ ४ ॥ नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ॥ एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां पदम् ॥ प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनुशाम्यति ॥ ६ ॥ परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ॥ पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च ॥ पूर्वस्मिन्वाऽपरस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥ पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसङ्ख्यानमभीप्सताम् ॥ तथा विविक्तं यद्वक्रं गृह्णीमो युक्ति संभवात् ॥ ९ ॥

भा० टी०
अ० २२

इस प्रकार उन तत्त्वोंके मूलकारणोंमें जो ब्राह्मणोंका विवाद है वह यथार्थरूपसे देखा जाय तो अपने-अपने स्वभावके अनुसार परिणाम होनेवाले मायाके सत्त्वादिगुण ही विवादके कारण हैं ॥५॥ जिन शक्तियोंके क्षोभसे विवादकर्त्ताओंका भेद आश्रय हुआ है; जब शम प्राप्त होनेसे भेद दूर हो तो भेद जानकर पीछे विवाद शान्त हो जाय ॥ ६ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! तत्त्वोंके परस्पर अनुप्रवेशसे कार्य कारणरूप तत्त्वोंकी संख्या वक्ताकी इच्छानुसार हो सकती है ॥७॥ अब अनुप्रवेशको कहते हैं—एक ही तत्त्वमें सब तत्त्व कारणमें अथवा कार्यमें प्रविष्ट दीखते हैं, जैसे मृत्तिकामें घट और घटमें मृत्तिका अन्योन्य प्रविष्ट है ॥ ८ ॥ इन तत्त्वोंका कार्य कारणभाव और न्यून आदिक संख्या

वादियोंके मध्य करनेकी इच्छासे जिह्वा जिस प्रकार प्रवृत्त होती, वैसी ही सिद्धि कर सकती है, हम इन सबको सम्भव जानते हैं ॥९॥ जीव ईश्वर जो चैतन्यरूप है, उसके भेद अभेद माननेके कारणको कहता हूँ कि जो जीव अनादिकालसे अविद्यासे संयुक्त है, इसलिये उसे अपने स्वरूपका ज्ञान स्वयं नहीं हो सकता, उसे ज्ञानदाता सर्वत्र ईश्वर पृथक् है ऐसा जानकर जीव ईश्वरमें भेद माननेवालोंके मतमें चौबीस तत्त्व और पचीसवां जीव तथा छब्बीसवां ईश्वर तत्त्व है ॥ १० ॥ स्वयं संख्याविषे भेद कल्पना व्यर्थ है, क्योंकि जीव ईश्वर दोनों चैतन्य होनेसे उनमें कुछ भेद नहीं और ऐसा माननेवाला पचीस तत्त्व कहते हैं, ज्ञान प्रकृतिका गुण है इसीसे प्रकृतिमें गिना है यह एक पक्ष है ॥ ११ ॥ अहो ! ज्ञान तो जीवका धर्म है, प्रकृतिका गुण कैसे है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि तीनों गुणोंके समान अवस्था

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ॥ स्वतो न सम्भवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥ पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ॥ तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणः ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ १२ ॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते ॥ गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥ १३ ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ॥ ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥ श्रोत्रं त्वक् दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ॥ वाक्पाण्युपस्थपाय्वङ्घ्रिः कर्माण्यङ्गोभयं मनः ॥ १५ ॥

प्रकृति है, गुण प्रकृतिके ही हैं, आत्माको नहीं, सत्त्व, रज, तम गुण उत्पत्ति, पालन और प्रलयके कारण हैं ॥१२॥ सत्त्वमयज्ञान प्रकृतिका गुण है, कर्म रजोगुणका गुण है, अज्ञान तमोगुणका गुण है, और स्वभाव महतत्त्वका स्वरूप है, काल ईश्वरका स्वरूप है, इसलिये काल स्वभाव भिन्न तत्त्व नहीं है। मैंने जो अट्ठाइस तत्त्व कहे हैं, उनमें पूर्वोक्त पच्चीस और तीन गुण यह सब मिलाकर अट्ठाईस होते हैं ॥१३॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ये मैंने नौ तत्त्व कहे हैं ॥१४॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका ये पांच ज्ञानेंद्रिय हैं। वाणी, हाथ, पांव, उपस्थ, गुदा, यह पांच कर्मेंद्रिय हैं। हे उद्धव ! ज्ञान और कर्मरूप मन यह ग्यारह हैं ॥ १५ ॥

भा० ए० ॥७८॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच ज्ञानेंद्रियके विषय हैं । गति, वचन, मलत्याग, ग्रहण, आनन्द ये पांच कर्मेंद्रियोंके फल हैं, भिन्न नहीं, इससे अट्ठाईसके भीतर हैं तत्त्व नहीं है ॥ १६ ॥ इस विश्वके आदिमें कार्यकारणरूपिणी प्रकृति सत्वादि गुणसे इस विश्वकी उत्पत्ति आदि अवस्था धारण करती है, निर्विकार पुरुष केवल साक्षी हुआ देखता है, इस कारण विकारयुक्त प्रकृतिसे पुरुष भिन्न है ॥ १७ ॥ प्रकृतिसे उत्पन्न हुए महत्तत्वादिं धातु विकारको पाकर पुरुषकी चितवनसे बल पाकर महतत्त्वादिक परस्पर मिल प्रकृतिके आश्रयसे ब्रह्माण्डरूप कार्यको उत्पन्न करते हैं, इसके संघातको प्राप्त होकर उनके उत्पन्न किये देहादिक पदार्थ उन्हींके अन्तर्भूत हो जाते हैं, इससे देहादिक पृथक् तत्त्व नहीं है ॥ १८ ॥ किसीके मतमें आकाश, वायु, तेज, पृथ्वी यह पांच पदार्थ और द्रष्टा जीव आकाशादि

शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः॥ गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥१६॥ सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ॥ सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥ व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ॥ लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥ सप्तैव धावत इति तत्रार्थाः पञ्च खादयः ॥ ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः ॥ १९ ॥ षडित्यत्रापि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान् ॥ तैर्युक्त आत्मसम्भूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥ २० ॥ चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः ॥ जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥२१॥ संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेन्द्रियाणि च ॥ पञ्चपञ्चैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥

भा० टी० अ० २२ पदार्थों का और जीवका आधार आत्मा, ये सात तत्त्व हैं, इस मतमें प्रकृति महतत्त्व, और अहंकार इन कारणतत्त्वोंका आकाशादिमें अन्तर्भाव माना है, इन्हीं सातों तत्त्वोंसे देह इंद्रियादिकी उत्पत्ति मानी है ॥ १९ ॥ जिनके मतमें छः तत्त्व हैं वह पांच तो पञ्चमहाभूत और छठे परमात्माको मानते हैं, इस मतमें परमात्मा अपनेसे उत्पन्न हुए भूतोंसे जगत्को रचकर उसमें प्रविष्ट है इससे सब पदार्थोंका परमात्मामें अन्तर्भाव है ॥२०॥ जिनके मतमें चार तत्त्व हैं उनमें आत्मा और आत्मासे प्रादुर्भूत वायु, तेज, जल, पृथ्वी यही चार तत्त्व हैं, इन्हींसे सब जगत् उत्पन्न है, सब कार्यका इन्हींमें अन्तर्भाव है ॥२१॥ सत्रह तत्त्वके मतमें पञ्चमहाभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांच

ज्ञानेंद्रिय, पांच कर्मेंद्रिय एक मन सत्रहवां आत्मा ॥२२॥ सोलह तत्त्वके मतमें आत्माको ही मन कहा हैं और तेरहके मतमें पञ्चमहाभूत और पांच ज्ञानेंद्रिय, एक मन जीवात्मा और परमात्मा ये तेरह हैं ॥२३॥ ग्यारहके मतमें पंचमहाभूत और पांच ज्ञानेंद्रिय, एक आत्मा। नौके पक्षमें, पांच महाभूत, प्रकृति, महत्तत्त्व अहंकार और पुरुषसे कहते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार ऋषियोंने तत्त्वोंकी पृथक्-पृथक् संख्या कही है। यह सब प्रकृतिसे पुरुषको भिन्न जाननेको हैं, ये सब यथार्थ हैं, क्योंकि विद्वानोंका कहा और न्यायसिद्ध है, विद्वान क्या नहीं कह सकते? ॥२५॥ उद्धवजी बोले कि हे कृष्ण! प्रकृति और पुरुष जिनमें एक जड़ और एक चैतन्य है, यद्यपि यह स्वभावसे ही भिन्न

तद्वत्षोडशसंख्यानि आत्मैव मन उच्यते ॥ भूतेन्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥ एकादशत्वमात्माऽसौ महाभूतेन्द्रियाणि च ॥ अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥ इति नानाप्रसङ्ख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् ॥ सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ ॥ अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ २६ ॥ प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ॥ एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि ॥ छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ॥ त्वमेवह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ॥ एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥२९॥ ममाङ्ग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते ॥ वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदेवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥

हैं परन्तु तो भी परस्परका त्याग करते उनकी प्रीति नहीं होती, इससे भेद नहीं देखा जाता ॥ २६ ॥ हे पङ्कजलोचन! आत्मा देहमें भासता है, देहको ग्रहण किये प्रतीत होता है "मैं हूँ" इस प्रकार दोनोंके अभेद प्रकाशसे देहका आत्मासे भेद नहीं देखा जाता, हे सर्वज्ञ! मेरे सन्देहको युक्तिके वचनोंसे दूर करो ॥२७॥ तुम्हारी कृपासे ही संसारके जीवोंको ज्ञान प्राप्त होता है, तुम्हारी मायासे ही अज्ञान होता है, आपके अतिरिक्त आपकी मायाकी गति कोई नहीं जानता ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि देह और आत्मामें बहुत विलक्षणता है, गुणोंके क्षोभसे होनेवाला यह देह तो विकारी है, आत्मा विकार रहित है ॥२९॥ हे उद्धव! मेरी गुणमयी मायाने अनेक भांति भेद और

भा० ए० ॥७६॥ भेदके ज्ञान रचे हैं, यद्यपि इस देहमें अनेक भेद हैं, परन्तु तो भी तीन प्रकारके कहे हैं—एक अध्यात्मरूप, एक अधिदैवरूप, एक अधिभूतरूप ॥ ३० ॥ दृष्टि अध्यात्म है और अधिभूत नेत्रगोलकमें प्रविष्ट सूर्यका अंश अधिदैव है, नेत्रोंसे रूप जानना; सो नेत्रोंकी प्रवृत्ति प्रेरणावाले देवता विना होती नहीं; इससे अधिष्ठात्री देवतासे नेत्रोंकी प्रवृत्ति, इससे रूपज्ञान होता है, इस प्रकार तीनों परस्पर सिद्ध होते हैं जो सूर्य आकाशविषे आपसे ही सिद्ध है इसलिये आत्मा अध्यात्मादिकोंका कारण है, इससे भिन्न है। अपने आप सिद्ध, प्रकाश करके परस्पर प्रकाश करनेवालोंका भी प्रकाशक है, जैसे नेत्रमें तीन प्रकार हैं ऐसे ही त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत, वायु अधिदेव, श्रवण अध्यात्म, शब्दअधिभूत, दिशा अधिदैव, जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत, वरुण अधिदैव,नासिका अध्यात्म,गन्ध अधिभूत,अश्विनीकुमार अधिदेव, चित्त अध्यात्म, जिसके चित्तसे जानिये ऐसा अधिभूत, वासुदेव अधिदैव, मन अध्यात्म, जिसको मन कीजिये वह अधिभूत

दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे ॥ आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयानुभूत्याऽखिलसिद्धसिद्धिः ॥ एवं त्वगादि श्रवणा चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥ ३१ ॥ योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ॥ अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥३२॥ आत्मा परिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदाऽर्थनिष्ठः ॥ व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो ॥ उच्चावचान्यथा देहान्गृह्णन्ति विसृजन्ति च ॥ ३४ ॥

चन्द्रमा अधिदैव, बुद्धि अध्यात्म—जो जानिये, ऐसे ही अधिभूत; ब्रह्मा अधिदेव, अहंकार अध्यात्म अहंकारसे जो कीजिये सो अधिभूत, रुद्र अधिदेव ॥ ३१ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है—सात्त्विक, राजस, तामस। गुणके क्षोभकर्ता काल और प्रकृतिके मूल महत्तत्त्वसे उत्पन्न

भा० टी० अ० २२ हुए विकार हैं यही अधिदेव अध्यात्म—अधिभूतरूपी मोहसे देहादिक विकल्पका कारण हैं। जब देहादि अहंकार मिट जाय तब आत्माकी प्रतीति हो सकती है ॥३२॥ आत्माका न जानना इसका स्वरूपभूत नहीं ऐसा विवाद मेटके अधर्ममें निष्ठा और यह विवाद व्यर्थ ही है परन्तु तो भी स्वरूपभूत मुझसे विमुख जिनकी बुद्धि है उनको निवृत्ति नहीं होती, परन्तु विवादसे किये कर्मोंसे ऊँच-नीच देहमें जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ उद्धवजी बोले कि हे प्रभो! तुमसे जिनकी बुद्धि विमुख है वे अपने किये कर्मोंसे आप ही

नीचदेहोंको ग्रहण करते हैं। व्यापक आत्माको देहसे और देहमें जाना अकर्ताका कर्म और नित्यका जन्म-मरण कैसे संभव हो सकता है?॥३४॥ हे गोविंद ! अजितेंद्रियोंसे जो जानने योग्य है वह मुझसे कहो क्योंकि लोकमें बहुधा इसके जाननेवाले नहीं हैं और हैं भी सो मायासे मोहित हैं ❋ ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् बोले हे उद्धव ! कर्ममय मनुष्योंका मन पांच इंद्रियोंके सहित इस लोकसे और लोकमें जाता है और मनसे भिन्न आत्मा अहंता ममतासे मनके पीछे जाता है, लिंगदेहसे यह सब बन सकता है ॥३६॥ कर्मोंके आधीनमन इस लोक और परलोकके विषे ध्यान करता हुआ उन विषयोंमें प्रकट होता है और पहले विषयोंमें लीन हो जाता है, इसके उपरांत उसको पहले पिछलेको स्मरण

तन्ममाख्याहि गोविन्द दुर्विभाव्यमनात्मभिः ॥ न ह्येतत् प्रायशो लोके विद्वांसः संति वञ्चिताः॥३५॥श्रीभगवानुवाच॥ मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् ॥ लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥३६॥ ध्यायन्मनोऽनुविषयान् दृष्टान् वाऽनुश्रुतानथ ॥ उद्यत्सीदत् कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनुशाम्यति ॥ ३७ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानंयत्स्मरेत् पुनः ॥ जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः ॥ ३८ ॥ जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ॥ विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः ॥ ३९ ॥ स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ॥ तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥

जाता रहता है ॥ ३७ ॥ कर्मोंके द्वारा दूसरे देहमें अत्यन्त अभिनिवेश होनेपर वह देवतादिक हो तो हर्षसे, अधम हो तो शोकके भयसे जीवको प्रथम देहका विस्मरण होना और उस देहका अहंकार नष्ट होना यही आत्माका मरण है, कुछ देहके समान उसका मरण नहीं होता ॥३८॥ हे दानी ! मनका दूसरे देहके साथ सम्बन्ध होनेपर उसमें अत्यन्त अहंकार प्रादुर्भूत होता है, मनके अभ्याससे आत्मामें देहका ममत्व होता है, यही आत्माका जन्म है ॥३९॥ जैसे एक स्वप्न देखनेके उपरांत दूसरा स्वप्न होता है तथा एक मनोरथके उप-

शंका—श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि पृथ्वीमें विद्वान् नहीं हैं जो व्याकरण आदि शास्त्र को पढ़ते हैं ऐसे विद्वान् तो पृथ्वीपर बहुत हैं परंतु उद्धव जिसको विद्वान् कहें वे विद्वान् कौन हैं ?

उत्तर—शास्त्र पढ़नेवाले को विद्वान् योगीश्वर लोग नहीं कहते,विद्वान् उसका नाम है,जो पुरुष मोक्ष विद्याको जानता हो, मोक्ष विद्या कैसी है कि जिसे मोक्षविद्याकी प्राप्तिके लिये बड़े बड़े चतुर योगी जन अनेक उपाय कर करके हार गये, परंतु मोक्ष विद्या प्राप्त नहीं हुई और जो किसी योगी पुरुषको हो गयी तो बड़ी कठिनतासे ऐसी विद्याजाननेवाले विद्वान् पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये उद्धवजीने कहा शास्त्र पढ़नेवाले विद्वानोंके लिये नहीं कहा ।

रांत दूसरा होता है तो पहला मनोरथ और स्वप्न विस्मृत हो जाता है। इसी प्रकार आत्मा मनके अभ्याससे अपने आपको नवीन उत्पन्न मानता है, इस भांतिकी दशा होनेसे मनके अभ्यासके कारण एक देहका अभिमान नष्ट होनेपर दूसरे देहका तीव्र अभिमान होनेसे यह अपने पूर्वजन्मको नहीं जानता॥४०॥इंद्रियोंका आश्रय जो मन और देहके अभिनिवेशसे उत्पत्तिद्वारा, आत्मामें उत्तम, मध्यम, नीचता, मिथ्या होनेपर भी प्रकाशित होते हैं। उन्हींके द्वारा आत्मा बाह्यविषयोंको और अन्तरमें सुखादिकोंको देखता है, जैसे जीव स्वप्नमें झूंठे बहुत देहोंका कर्ता देखता बहुत रूप भासता है अथवा जैसे दुष्ट पुत्रका पिता पुत्रके प्रेमसे पुत्रके शत्रु मित्रोंको अपना शत्रु मित्र मान लेता है, इसी प्रकार आत्मा मनके अभिनीवेशसे देहको अपना जानता है, ॥ ४१ ॥ जिसकी तीव्र गति जाननेमें नहीं आती, ऐसे कालके लिये यह शरीर क्षण-क्षणमें उत्पन्न होते और मरते हैं परन्तु कालकी सूक्ष्मताके कारण अज्ञानी इस जन्म-मरणको नहीं जानते ॥ ४२ ॥ नित्य

इन्द्रियायनसृष्टयेदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि ॥ बहिरन्तर्भिदा हेतुर्जनोऽसज्जनकृद् यथा ॥४१॥ नित्यदा ह्यङ्ग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च ॥ कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥४२॥ यथार्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ॥ तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥ ४३ ॥ सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ॥ सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥

जन्म-मरण होता है। यद्यपि इसका प्रमाण कहीं देखनेमें नहीं आता है परन्तु तो भी अनुमानसे जन्म बताते हैं जैसे ज्योति पहले कोमल होती है, फिर कुछेक अधिक होती है, इसके उपरांत अतिक्षीण हो जाती है, जैसे वृक्षका फल पहले कच्चा हुआ, फिर कुछेक पीला पड़ा, इसके उपरान्त पक गया, जिस प्रकार क्रमसे भिन्न अवस्था कालसे होती है पर जानी नहीं जाती, ऐसे ही इसी अनुमानसे शरीरको भी कालसे नित्य वय अवस्थादिक होती है, परंतु जानी नहीं जाती हैं। प्रथम अवस्था भेदवाला त्याग, दूसरेका ग्रहण यही जन्म-मरण नित्य होता है, यही जगत् अवस्थाका भेदवाला है, इसीसे क्षण-क्षणमें उत्पत्ति और नाशको प्राप्त होता है, अवस्थाके भेदवालोंकी यही दशा है ॥ ४३ ॥ यहां तर्क करते हैं कि नित्य अवस्थाभेदसे जन्म-मरण होने वालेको ऐसा ज्ञान क्यों होता है ? कि यही देह है; सो यहां दृष्टांत

दिखाकर कहते हैं कि जातियोंके सादृश्यसे यह वही दोष है। ऐसा ज्ञान होता है कि जिस प्रकार जल क्षणक्षणमें बदलता है, परंतु नया जल आनेपर भी उसे वही जल है यह भ्रांति होती है, इसी प्रकार शरीर क्षणक्षणमें परिवर्तित होता है परंतु यह वही शरीर है ऐसी वाणी अज्ञानी पुरुष भ्रांतिसे कहा करते हैं ॥४४॥ अहो! बड़ा आश्चर्य है, जिसको देहाभिमान है उसको कर्म जन्म मरण सब है, औरोंको नहीं सो कैसे सम्भव हो सकता है? तो उत्तरमें कहते हैं कि वस्तुसे देहाध्यासवत्का भी जन्म मरण नहीं, अध्यासवत् पुरुष अपने कर्मबीजसे न उत्पन्न होता न जन्म लेता है, भ्रांतिसे अजन्मा होनेपर भी जन्मता सा और होने पर भी मरता सा प्रतीत होता है ॥४५॥ अब देहके अवस्थान को कहते हैंः—देहका प्रथम तो उदरमें प्रवेश और फिर गर्भवास होता है, पीछे जन्म, फिर बाल्य, कौमार, यौवन पैंतालीस वर्षसे पीछे साठ वर्ष तक मध्यम वय, उपरांत जरा, पीछे मृत्यु यह तो देहकी अवस्था है ॥ ४६ ॥ यह मनोरथमयी अवस्था ऊँच नीच देहको

मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ॥ म्रियते वाऽमरो भ्रान्त्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥ निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ॥ वयो मध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः ॥ गुणसंगादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहाति च ॥४७॥ आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ॥ न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ॥४८॥ तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वान् जन्मसंयमौ ॥ तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥ प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ॥ तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥

है। सत्त्व, रज, तम, गुणके संगसे आपको मान लेते हैं इनमें कोई एक ईश्वरके अनुग्रहसे भक्त इन अवस्थाओंको बहुत विवेक ज्ञानसे छोड़ देते हैं ॥४७॥ यदि कहो कि देहके जन्म मरणमें तो वह मूर्च्छित रहता है, इसे इतना ज्ञान कैसे हो सके? तो सुनो, पिता मरता है, उसकी क्रिया करते हैं, तब देहका नाश देखते हैं, पुत्रजन्म होता है तब जातकर्म करते हैं, वहां देहका जन्म देखते हैं उस अनुमानसे अपने देहका जन्म, मरण जानते हैं, परन्तु जन्म मरण खाली देहको है, द्रष्टाको जन्म मरण नहीं होवे ॥ ४८ ॥ जैसे धानादिके बीजसे जन्मका और पक जानेसे मरणका जाननेवाला जो द्रष्टा है वह वृक्ष और फलसे भिन्न है, इसी प्रकार देहके जन्म मरण जाननेवाला जो द्रष्टा है देहसे पृथक् है ॥४९॥ इस भांति शरीरादिसे आत्माका यथार्थ विचार करना चाहिये। यदि यह विचार न किया जाय तो विषय मोहमें

गिरनेके कारण यह मूढ़प्राणी संसारमें गिरता है ॥५०॥ गुणके भेदसे विविध संसार कहते हैं; उसमें एक एकके दो दो भेद हैं सो कहते हैं कि सत्वगुणके संगसे ऋषि देवता होते हैं, रजोगुणसे असुर और मनुष्य होते हैं, तमोगुणसे भूत, पशु, पक्षी इत्यादि सब उत्पन्न होते हैं सो वह अपने कर्मोंमें भ्रमण करते हैं वे ही उन योनियोंमें पड़े हैं ॥ ५१ ॥ अहो ! आत्मा तो करता नहीं तो कर्मोंसे क्यों भ्रमण करता है? इसपर कहते हैं कि जैसे नाचते और गाते पुरुषको देखकर यह पुरुष उनमें स्थित गाने और तालको अपने मनमें अनुवर्तन करता है इसी प्रकार बुद्धि और गुणोंके अवलोकनसे गुणोंके सामर्थ्यसे अकर्ता पुरुष उन्हें अपने आपमें मान लेता है ॥५२॥जैसे जलमें तीरके वृक्ष दौड़-तेसे दीखते हैं, जैसे दृष्टिके भ्रमसे पृथ्वी भी भ्रमतीसी दिखायी देती है, तो यह धर्म वृक्षमें भूमिमें नहीं, यह अपने दोषसे दीखते हैं । इसी

सत्त्वसंगादृषीन् देवान् रजसाऽसुरमानुषान् ॥ तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः ॥ ५१ ॥ नृत्यतो गायतः पश्यन् यथैवानुकरोति तान् ॥ एवं बुद्धिगुणान्पश्यन्ननीहोप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥ ५३ ॥ यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ॥ स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥ ५४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्त्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ५५ ॥ तस्मादुद्धव मा भुङ्क्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः ॥ आत्माऽग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ ५६ ॥

प्रकार दृश्यका धर्म द्रष्टामें स्फुरण होता है और आनन्दादि आत्माके लक्षण होनेपर भी विषयोंके गुणसे प्रतीत होते हैं ॥५३॥ यदि कोई कहे कि आत्मा भोग करता है सो भी मिथ्या है जैसे मनोरथकी बुद्धि मिथ्या है और स्वप्नमें देखी बुद्धि सब मिथ्या है, इसी प्रकार आत्मामें प्रतीत होता हुआ विषयोंका अनुभवरूप संसार भी असत्य है ॥५४॥ तो निवृत्तिके उपायका प्रयोजन क्या है? इसपर कहते हैं कि यद्यपि स्वप्न असत्य है परन्तु तो भी उन विषयोंके ध्यान करनेवाले पुरुषकी उन अवस्थामें स्वप्नके दुःख नहीं जाते, इसी प्रकार संसारके मिथ्या होनेपर भी विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषके जन्म मरण नहीं जाते ॥ ५५ ॥ हे उद्धव ! इसी लिये तुम इन दुष्ट इन्द्रियोंसे विषय

भोग मत करो, आत्माके ज्ञान विना यह संसारका भ्रम हुआ है, ऐसा जानो ॥ ५६ ॥ कोई निन्दा करे, कोई अपमान करे, कोई उपहास करे, कोई वंचना करे, कोई ताड़ना करे, कोई रोक रखे, कोई वृत्ति छीन ले ॥ ५७ ॥ कोई मूत्र डाले, जूठन डाले, ब्रह्मनिष्ठा बिगाड़े परन्तु अपना कल्याण चाहनेवाला पुरुष इतने कष्ट सहे और आत्मासे आत्माका उद्धार करे, क्रोधित होकर अपने धर्मको न खोवे ॥ ५८ ॥ उद्धवजी बोले कि हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम्हारा वचन हम अच्छी रीतिसे समझ सकें उसी प्रकार समझाकर कहो कि नीच अधम पुरुष इस प्रकार पांडित्य करे तो उसका सहन करना महाकठिन है ॥ ५९ ॥ हे विश्वके आत्मरूप ! जो तुम्हारे

क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा ॥ ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ५७ ॥ निष्ठितो मूत्रितो वाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रकम्पितः ॥ श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥ उद्धव उवाच ॥ यथैवमनुबुद्ध्येयं वद नो वदतांवर ॥ सुदुःसहमिमं मन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥ विदुषामपि विश्वात्मन प्रकृतिर्हि बलीयसी ॥ ऋते त्वद्धर्मनिरताञ्छान्तांस्ते चरणालयान् ॥ ६० ॥ इति श्रीभागवते म० एका० भगवदुद्धवसंवादे तत्त्वसंख्याऽविरोधादिव० द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥ सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः ॥ दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥

चरणके आश्रय हैं तुम्हारे धर्ममें तत्पर और शांत हैं उनको छोड़कर अति पंडितको भी ऐसे अपराधोंका सहन होना अति कठिन है ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि स्वभाव बड़ा बली होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे सांख्यतत्त्वनिरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ दोहा–तेइसवें अध्यायमें, सहन भीख अपमान। बुद्धिहिसे मनको करैं, निग्रह मुनि विद्वान् ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम राजा परीक्षित् ! इस प्रकार भक्तोंमें मुख्य यादवोंमें श्रेष्ठ उद्धवजीके पूछनेपर मुकुन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उत्तर देने लगे, जिन भगवान्के चरित्र श्रवण करनेमें अत्यन्त सुखकारी हैं ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि

भा॰ ए॰ ॥७९॥

हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव! इस लोकमें वह साधु नहीं हैं जो दुष्टवचनसे खेदयुक्त मनको समाधान न कर सके॥२॥ मर्मस्थानमें लगे बाणोंसे विद्ध पुरुष ऐसा ताप नहीं पाते, जैसे मर्ममें लगे दुष्टवचनसे व्यथा पाते हैं ॥ ३ ॥ तथापि मेरे कहे हुए उपाय करे, उपाय कहता हूँ—हे उद्धव! इस विषयमें एक अतिपवित्र इतिहास है सो मैं तुमसे वर्णन करता हूँ, भले प्रकार सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ कोई एक भिक्षुक दुर्जनसे पीड़ित हो धैर्य धारणकर अपने प्रारब्धकर्मोंका भोग मानकर यह कहने लगा ॥५॥ परन्तु वह भिक्षुक पहले बड़ा धनवान् और सज्ञान था अत्यन्त दुःखसे जो धन प्राप्त किया था उसके विनाश हो जानेसे वह अत्यन्त पीड़ित और संतप्त हो गया, फिर चित्तमें धैर्य बढ़ाने और वैराग्य आनेसे संन्यास धारण कर भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करने लगा, परन्तु नगरनिवासी उसको पिछले वैरभावसे अनेक

न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः॥यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥३॥ कथयन्ति महत्पुण्यमितिहास-मिहोद्धव॥ तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥४॥ केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः॥ स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥५॥ अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया ॥ वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽति-कोपनः ॥ ६ ॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिता ॥ शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः ॥ दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन्प्रियम् ॥ ८ ॥ तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभय लोकतः ॥ धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पंचभागिनः ॥ ९ ॥

प्रकारके दुःख देने लगे, तब उस भिक्षुकने एक कथा कही सो उसके चरित्र हम आपके आगे कहते हैंः—अवन्तिका (उज्जैन) नगरमें एक

भा॰ टी॰ अ॰ २३

ब्राह्मण लक्ष्मीसे अति संपन्न कामी, लोभी, महाक्रोधी और कदर्य था। कदर्यका लक्षण स्मृतिमें कहा है "आत्मा, धर्मकार्य, पुत्र, स्त्री, देवता, अतिथि और सेवकोंको जो दुःख दे वह कदर्य है" ॥ ६ ॥ बांधव और अतिथिको वचनसे न पूजे, धर्म, काम, करके शून्य देहरूप घरमें भोगोंसे कभी आत्माकी पूजा नहीं की ॥ ७ ॥ ऐसे दुःशील कदर्यके पुत्र, बांधव, स्त्री, बेटी, सेवक सब द्रोह करें, कोई उसका प्रिय न करे ॥ ८ ॥ फिर वह इस प्रकार दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुआ। धर्म, अर्थ, कामसे हीन केवल भूतके द्रव्यकी रक्षा करता रहे ऐसे पुरुषपर नित्यकर्तव्य

पंच महायज्ञोंके अंशमें भागी देवता अत्यन्त क्रोधित हुए। देवताओंके तिरस्कार करनेसे पुण्यका विस्तार सब क्षीण हो गया, तब अनेक परिश्रमसे युक्त खेती आदिसे कमाया द्रव्य भी नष्ट हो गया ॥९॥१०॥ श्रीकृष्ण बोले कि हे उद्धव ! कुछेक द्रव्य उसके घरका बांधव ले गये, कितना ही द्रव्य चोर ले गये, कितना एक द्रव्य गृहदाहसे जाता रहा, कितना ही जहां गाड़ दिया था, वहां से गया। कुछ द्रव्य अधर्मी ब्राह्मण और मनुष्य ले गये, कितना ही द्रव्य राजद्वारमें गया ॥११॥ इस प्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे धर्म, अर्थ, कामसे रहित हुआ, स्वजन कुटुम्बी

तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद ॥ अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥ ज्ञातयो जगृहुः किञ्चित्किंचिद्दस्यव उद्धव ॥ दैवतः कालतः किंचिद् ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः ॥ उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ॥ खिद्यतो बाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ सचाहेदमहो कष्टं वृथाऽऽत्मा मेऽनुतापितः ॥ न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥ प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ॥ इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥

इसका अनादर करने लगे, तब यह अपार चिन्ता को प्राप्त हुआ ॥१२॥ द्रव्य जानेसे वह ब्राह्मण अतिचिन्ता करके उस धनका बहुत ध्यान करता सन्तप्त हुआ और गद्गदकण्ठ होकर उसको बहुत वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥१३॥ * तब कहने लगा कि अहो ! यह देखो बड़ा ही कष्ट है इतना बड़ा मेरा द्रव्यका परिश्रम वृथा ही गया जो यह आत्मा संतप्त किया। न तो धर्मार्थ ही हुआ, न कामार्थ ही अर्थात् सब वृथा ही गया, ॥१४॥ बहुधा जो कदर्य हैं उनको द्रव्यका सुख कभी नहीं होता, जीवित इस लोकमें आपको सन्ताप होता है और मरने पर नरक मिलता है॥१५॥

---

* शंका—महा दुष्ट, नीचबुद्धि, अत्यन्त कृपण, भगवान्में प्रीति नहीं ऐसा दुष्ट ब्राह्मण मुनियों करके बड़े दुःखसे प्राप्त होने योग्य ज्ञानको क्यों प्राप्त हुआ ?

उत्तर—धनका नाश हो गया तो ब्राह्मण मनमें दुःखी होकर भ्रमता-भ्रमता सन्ध्या हो गयी तो क्या देखता है कि एक गाय कीचमें सनी हुई पड़ी है और दलदलसे किसी प्रकार निकल नहीं सकती, उस गायको देखकर ब्राह्मणको बड़ी दया आयी, और यह विचार किया कि, किसी प्रकार यह इस दलदलसे बाहर निकले, उसने हाय हाय शब्द करके बड़े परिश्रमसे उस गायको दलदलसे बाहर खींच खांचकर निकाल लिया। गाय प्रसन्न हो ब्राह्मणको आशीर्वाद देती हुई धीरे-धीरे चली गयी; गायकी कृपासे बहुत शीघ्र ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त हो गया, वह ज्ञान मुनिलोगोंको भी महाकठिमतासे प्राप्त होता, गृहस्थीसे जो कुछ कर्म ब्राह्मणने किये थे उन कर्मोंसे धनका नाश हुआ, अनेक विघ्न हुए परंतु ज्ञानको पाकर आनंद हो गया इस उपायसे दुष्ट ब्राह्मणको ज्ञान हुआ था।

जो यशस्वी हैं, उनका यश अतिनिर्मल है और गुणियोंका गुण बड़ाईके योग्य है, परन्तु जो थोड़ा भी लोभ हो तो सब गुण यशको दूर करे, जैसे उत्तम रूपको थोड़ा भी कोढ़ दूर कर देता है ॥१६॥ इसलिये द्रव्य सब दुःखरूप है, प्रथम तो साधनमें कष्ट है इसके उपरांत सिद्ध होनेपर वह द्रव्य बढ़ाना चाहे तो उसमें भी कष्ट है, फिर उसकी रक्षा करनी चाहिये। भोगमें व्यय होता है नाश होता है, इस प्रकार आदिसे अन्त तक श्रम, भय, चिन्ता, भ्रम, मनुष्योंको रहते हैं, इस कारण कभी अर्थ सुखकारी नहीं है॥१७॥ और भी दोष कहते हैं:— चोरी, हिंसा, दम्भ, झूठ, काम, क्रोध धनके साधनमें हैं, गर्व अहंकार भेद वैर अविश्वास, अश्रद्धा ये छः अनर्थ पानेके पीछे होते हैं और तीन व्यसन—स्त्री, मद्य, जुआ इसी धनसे होते हैं ॥१८॥ इस प्रकार पन्द्रह अनर्थ अर्थ (द्रव्य) से होते हैं। (हे उद्धवजी!) इसका नाम

यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ॥ लोभः स्वल्पोऽपि तान्हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥ अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ॥ नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥ १७ ॥ स्तेयं हिंसाऽनृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ॥ भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥ एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ॥ तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥ भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ॥ एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ॥ त्यजन्त्याशुस्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥ लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम् ॥ तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम् ॥ २२ ॥

तो अर्थ है पर अनर्थरूप है, इसलिये जो पुरुष अपना भला चाहे तो वह दूरसे ही अर्थका त्याग करे ॥१९॥ दोष यह है कि माता, पिता, भ्राता, स्त्री, सम्बन्धी जो स्नेहके कारण एकचित्त होकर मिले रहते हैं वे भी धनके लिये पृथक हो जाते हैं और वीस कौड़ीके ऊपर तत्काल वैरी हो जाते हैं ॥२०॥ यह प्राणी थोड़ेही द्रव्यके लिये क्षोभको प्राप्त हो महाक्रोध कर श्रद्धासे एकसाथ सुहृदता और स्नेह छोड़कर परस्पर मारने लगते हैं ॥२१॥ इस लोकमें जो अनर्थ उठे हैं और जो परलोकमें भी अनर्थ होंगे सो कहते हैं—देवताओंके प्रार्थनीय मनुष्य जन्मको पाकर उसमें भी उत्तम ब्राह्मण जन्मको पाकर उस जन्मका अनादर कर अपना स्वार्थ खो देते हैं वे अधमगतिको प्राप्त होंगे ॥ २२ ॥

इसलिये स्वर्ग और मोक्षका द्वार यह देह पाकर इस अनर्थक घर द्रव्यमें कौन मरणधर्मा पुरुष आसक्त हो ? ॥२३॥ देवता, ऋषि, पितर, भूत, जाति, बन्धु और जो अंशके भागी हैं उनको और अपने आत्माको जो न दे सो अधम गतिमें जाते हैं इससे वे भूतकी नाईं द्रव्यके रक्षक हैं ॥२४॥ अब अपनी अवस्था कहता हूँ, मैं व्यर्थ अर्थकी क्रियासे सदा असावधान रहा। मेरा द्रव्य व्यर्थ ही गया और वय, क्रम, अवस्था भी व्यर्थ गयी। जो विवेकी हैं वे अर्थसे मोक्षके अधिकारी होते हैं और मेरा बल भी व्यर्थ गया। अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। हाय! मैं कुछ भी न कर सका ॥२५॥ यह अर्थकी चेष्टा व्यर्थ होनेपर भी जानबूझकर इसकी तृष्णासे ज्ञानी पुरुष भी क्यों क्लेश पाते हैं इससे विदित होता है कि किसीकी मायासे यह प्राणी अत्यन्त मोहित हो रहे हैं ॥२६॥ यद्यपि धनसे संसारी भोगोंको भोगते हैं परन्तु जब इस प्राणीके निकट

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ॥ द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥ देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बन्धूंश्च भागिनः ॥ असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥ व्यर्थयाऽर्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् ॥ कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये ॥ २५ ॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान् व्यर्थयाऽर्थेहयाऽसकृत् ॥ कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥ किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ॥ मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥ २७ ॥ नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ॥ येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥ सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः ॥ अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥ तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वाङ्गः समसाधयत् ॥ ३० ॥

प्रतिदिन मृत्यु चली आती है तब इस धनसे धनके देनेवालेसे, सुखसे, सुखके देनेवालोंसे तथा बारंबार जन्मदाता कर्मोंसे क्या सिद्ध है ? ॥२७॥ मेरे ऊपर निश्चय ही सर्व देवरूप भगवान् सन्तुष्ट हुए जिससे मैं इस दशाको प्राप्त हुआ, मुझे वैराग्य उपजा, वैराग्य संसार समुद्रसे तरनेको नौका है ॥२८॥ अब मेरा जितना समय शेष रहा है, उस कालसे तपस्या करके मैं अपने अङ्गोंको क्षीण करूँगा, आत्मासे ही सन्तोष मान समस्त धर्मोंमें सावधान रहूँगा ॥२९॥ मुझपर त्रिलोकीके ईश्वर तथा देवता अनुग्रह कर रहे हैं। कदाचित् कहो कि देवताओंके अनुग्रह करनेसे वृद्ध हो गया सो समय थोड़ा रह गया, अब क्या कर सकूँगा ? तो कहते हैं कि खट्वांग राजाने एक मुहूर्तमें ब्रह्मलोक

को साध लिया था ॥३०॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! जब अवन्ती नगरीके ब्राह्मणने इस प्रकार मनमें निश्चय किया तब हृदयकी गांठ अहन्ता ममताकी खोल शांत मन हो संन्यासी हो गया ॥३१॥ इंद्रिय, वायु, मनको निश्चल करके पृथ्वीपर फिरने लगा, इसके उपरांत भिक्षाके लिये एक नगरमें आया ॥३२॥ वहां भी कहीं आसक्त नहीं और न किसीको अपनी श्रेष्ठता दिखाता था, किन्तु विचरता रहता था कल्याणरूप वह ब्राह्मण अतिवृद्ध भिक्षुक अवधूतवेषसे रहता था, उसको देखकर दुष्ट जन अनेक प्रकारके तिरस्कारसे दुःख देने लगे॥३३॥ अब सात श्लोकमें इसका उत्तर कहते हैं:-किसीने तो उसका त्रिदण्ड ले लिया और कोई आसन पीढ़ा ले लेकर चले गये॥३४॥ हे महापुरुष !

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः ॥ उन्मुच्य हृदयग्रन्थीञ्छान्तो भिक्षुरभून्मुनिः ॥३१॥ स चचार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः ॥ भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥३२॥ तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ॥ दृष्ट्वा पर्यभवन्भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमण्डलुम् ॥ पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ॥३४॥ प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ॥ अन्नं च भैक्ष्यसंपन्नं भुञ्जानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्य च मूर्धनि ॥ यतवाचं वाचयन्ति ताडयन्ति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥ तर्जयन्त्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमितिवादिनः ॥ बध्नन्ति रज्ज्वा तं केचिद् बध्यतां बध्यतामिति ॥३७॥ क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः ॥ क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥ अहो एष महासारो धृतिमान्गिरिराडिव ॥ मौनेन साधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥ ३९ ॥

पहले इस प्रकार दिखाकर मुनिको देखकर फिर ले लिया और जब भिक्षा मांग अन्न ले नदीके तीर भोजन करे ॥३५॥ तब पापी इसके माथेपर मूत्र कर दे, फिर वह जो मौन रहे तो बुलावे यदि न बोले तो मारे, कोई इस प्रकार डरावे कि यह चोर है, ऐसे वचन कहे ॥ ३६ ॥ कितने एक यह कहने लगे कि इसे बांधो, ऐसे कहकर उसको रस्सियोंसे बांधते थे, कितने एक कहने लगे कि, "मारो मारो" क्योंकि यह धर्मका ढोंग बनानेवाला और लोगोंको ठगनेवाला है, इस प्रकार तिरस्कार करके उसकी निंदा करने लगे यह पाखण्डी है, धूर्त है, अब द्रव्य तो सब गया, स्वजन सम्बंधियोंने सबने छोड़ दिया, अब यह वृत्ति ग्रहण की है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अहो ! देखो यह बड़ा ढीठ

और अतिबली है क्योंकि पर्वतके समान धैर्यवान् मौनसे बकध्यानी होकर अपना स्वार्थ साध रहा है, इसका दृढ़ निश्चय है ॥३९॥ इस प्रकार एक तो हँसे, कोई उसके ऊपर अधोवायु छोड़े कोई बांधे कोई रोक रखे ॥ ४० ॥ इस भांति बहुत दुःख दुर्जनोंने दिया, देहका दुःख ज्वरादिकोंका किया, दैवके दुःख शीत, उष्ण "यह सब अपना प्रारब्धभोग है" दुःख पाकर उस ब्राह्मणने ऐसे समझ लिया ॥४१॥ यद्यपि यह ब्राह्मण नराधम दुर्जनोंसे तिरस्कृत हुआ, परन्तु तो भी सात्त्विक धैर्यसे अपने धर्ममें रहकर इस कथाको गाने लगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण बोला कि यह जन, देवता, आत्मा, गृह और काल कोई भी मेरे सुख दुःखका कारण नहीं है, मन ही केवल कारण है जो यह संसारचक्रको फिराता है॥४३॥वही कारण कहते हैं कि बलवान् मन ही गुणकी वृत्ति सृजता है, फिर उन गुणोंसे ही सात्त्विक, राजस, तामस भिन्न-भिन्न

इत्येकेविहसन्त्येनमेके दुर्वातयन्ति च ॥ तं बबन्धुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥ एवं स भौतिकं दुःखं दैहिकं दैविकं च यत् ॥ भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यत ॥४१॥ परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः ॥ पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२ ॥ द्विज उवाच ॥ नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः ॥ मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ४३ ॥ मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ॥ शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति ॥ ४४ ॥ अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ॥ मनः स्वलिङ्गं परिगृह्य कामाञ्जुषन्निबद्धो गुणसङ्गतोऽसौ ॥ ४५ ॥ दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि ॥ सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥ ४६ ॥

कर्म होते हैं और उन्हीं कर्मोंसे सात्त्विक, राजस तामस देवता मनुष्य पक्षियोंकी जाति होती है ॥४४॥ अब कहते हैं कि मनका ही संसार होता है, आत्माका संसार कैसे हो सकता है? तो कहते हैं कि अविद्या और मनके अभ्याससे आत्माका संसार है, आपसे संसार नहीं इससे वासना सहित मन है यद्यपि उसके सङ्ग नियंता होकर रहते हैं तथापि आत्माके संग नहीं, कर्म भी नहीं क्योंकि वह ज्ञानरूप है, जीवका सखा है और यह जो जीव है, सो मनके धर्मोंको ग्रहण कर अहंकार और गुणके संगसे विषयोंका सेवन करनेसे बँधा है ॥४५॥ मनका निग्रह किये बिना सब व्यर्थ है, सो कहते हैं:-दान, स्वधर्म, नेम, आचार, विद्याध्ययन, कर्म, उत्तम व्रत आदि यह सब एक मनके निग्रह करनेके

उपाय हैं, इससे निश्चय करके परमयोग मनका निग्रह ही है ॥४६॥ जिसका मन स्थिर और शान्त है उसे दान आदि करनेसे क्या प्रयोजन है ? मन तो समाधिमें स्थिर हुआ है और जिसका मन विक्षिप्त है, तथा आलस्ययुक्त है सो उसे दानादिकोंसे और जपसे क्या होगा ? ॥४७॥ यदि कहो कि दान आदि धर्मसे और इन्द्रियोंका तो जय होगा वहां उनको जय तो नहीं होता ऐसा कहते हैं और जो देवता, इंद्रिय यह सब मनके वश हैं कुछ मन उनके वशमें नहीं है, यह मन आप ही देव है, महाबलिष्ठ है योगीजनोंको भी महाभयंकर है इसको जो पुरुष अपने वशमें कर लेते हैं, वह देवको भी देख लेते हैं ॥४८॥ यह मनरूप शत्रु दुर्जय है, इसका वेग नहीं सहा जाता है, सबको पीड़ा करता है, सबको जीते बिना और मनुष्योंसे युद्ध करता है, इसमें और भी जो अनुकूल प्रतिकूल मित्र उदासीन शत्रु कर लेते हैं, वे मूर्ख हैं ॥४९॥

समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ॥ असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७ ॥ मनोवशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ॥ भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् युञ्ज्याद्वशे तं स हि देवदेवः ॥ ४८ ॥ तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ॥ कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून् विमूढाः ॥ ४९ ॥ देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वाममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः ॥ एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥ ५० ॥ जनस्तु हेतुः सुखदुखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र हि भौमयोस्तत ॥ जिह्वां क्वचित् सन्दशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥

और इसीसे संसारमें भ्रमण करते है, यह देही एक मनकी वासनासे इस देहको ग्रहण करके "यह मेरा देह है" इस ममतासे अहंकारसे अन्धबुद्धि मनुष्य "यह मैं, यह तू" इस भ्रमसे अन्त पारसे रहित संसारमें भ्रमण करते हैं ॥५०॥ इससे सुख दुःखका कारण मन है और कोई नहीं है । इसपर शंका करते हैं कि सुखदुःखका कारण मन है तो आत्माका कारण क्या है ? दोनों देह मट्टीके विकार हैं, उनको सुख दुःख ही कारणता है, आत्माका कुछ नहीं लगता है, जीव तो देहके अभिमानसे मान लेता है, आत्माके मूर्ति नहीं, क्रिया नहीं, किसको मारें किसको सुख दें, परमात्मा दोनों जगह एक है, उसको कुछ नहीं लगता ? तो कहते हैं जैसे अपनी जीभ आप काटे तो क्रोध किसपर करे, इसी प्रकार

देह से देहका सुख दुःख मान ले तो आत्मा क्या करे ? ॥५१॥ जो सुख दुःखके हेतु देवता हैं तो यह आत्माको क्या ? दुःखका कारण तो देवताओंको है और देवता विकारी हैं; जैसे अंग से अंगको मारिये तो पुरुष अपनी देहमें किसपर क्रोध करे, जैसे एकके मुखमें हाथ डाले, वह काट खाय तो मुखका देवता अग्नि है, हाथका देवता इन्द्र है उनका किया दुःख है, अविकारी अहंकाररहित आत्माको कुछ नहीं लगता ॥५२॥ जो आत्माको ही सुख दुःखका कारण मानो तो औरसे क्या है ? जिसके ऊपर कोप करे, इस पक्षमें भी औरसे दुःख हुआ, यह कहना संभव नहीं हो सकता, क्योंकि वह अपना ही स्वभाव है, आत्मा तो सर्वत्र एक ही है, आत्मासे और दूसरा नहीं। कदाचित् कहो कि जो कुछ यह दीखता है सो मिथ्या है। जब अपना आत्मा और दूसरेका आत्मा एक ही है तो कोप किसपर करे इससे निमित्त नहीं, दुःख भी नहीं ॥५३॥ जो कहो कि ग्रह सुख दुःखका निमित्त है तो भी आत्माको क्या ? ग्रह तो लगे हैं जिसका जन्म है। जन्म तो देहका है

दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ॥ यदङ्गमङ्गेन निहन्यते क्वचित् क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ॥ न ह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात् क्रुध्येत कस्मान्न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥ ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्यजनस्य ते वै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदन्ति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ ५४ ॥ कर्मास्तु हेतुः सुखदुःखयोर्वै किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ॥ देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै नहि कर्ममूलम् ॥ ५५ ॥

आत्माको नहीं, क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है, जिस लग्नमें देह जन्म लेता है उस लग्नमें जैसे ग्रह हों उसीके अनुसार सुख दुःखका निमित्त है जिसका देहाभिमान है उसको ग्रह हैं इससे ग्रह तो अंतरिक्षमें है, ग्रह परस्पर दृष्टि पड़नेसे ग्रहको पीड़ा देते हैं, ऐसा ज्योतिषी कहते हैं परन्तु आत्माको क्या ? आत्मा ग्रह और देहसे भिन्न है, इसलिये पुरुष क्रोध किसपर करे ॥५४॥ जो कर्म ही सुख दुखका हेतु है तो भी आत्माको क्या आत्मा तो कर्मसे भिन्न है, सो कर्म हो तो दुःख हो और कर्म नहीं तो दुःखका हेतु कहां से हो सो कहते हैं, कर्म तब हो जब एक देहको ही जड़रूपता और अजड़रूपता हो, जड़ रूपसे तो विकारी हो, अजड़रूपसे हितकारीपन; यह दोनों धर्म आने चाहिये उनमें विकारता जड़तावालोंको हो और हितका अनुसंधान जड़तारहितोंको हो और यदि कहो कि देह कर्म करता है तो देह जड़ होनेसे उसमें अपने

हितका अनुसंधान नहीं और आत्माका भी कम करना नहीं बन सकता, क्योंकि वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, जब सुख दुःखका कारणरूप कर्म सिद्ध नहीं तो फिर पुरुष किसपर क्रोध करे ॥५५॥ जो काल सुख दुःखका हेतु है; तो भी आत्माको क्या, क्योंकि आत्मा भी कालरूप ही है, काल भी ब्रह्मका अंश है आत्मा ब्रह्म ही है, अपने अंशको आपसे भय उत्पन्न नहीं होता जिस प्रकार अग्निकी ज्वालाका ताप अग्निको नहीं व्यापता और हिमकण तुषारका शीत हिमको नहीं व्यापता, ऐसे ही कालके किये सुखदुःखके आत्माको सुख दुःख नहीं होता, आत्मा असंग है इस कारण उसमें सुख दुःखका द्वन्द्व नहीं व्यापता, दुःख सुखका कारण अज्ञान है आत्मा नहीं ॥ ५६ ॥ इन छः दुःख सुखके कारण विना जो कोई और हेतु कहे सो ईश्वरकी महिमा जानकर संभव नहीं, यहां कहते हैं जो प्रकृतिसे परे भी हैं उसे किसी भांति भी

कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ॥ नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात् क्रुद्ध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम् ॥ ५६ ॥ न केनचित्क्वापि कथञ्चनास्य द्वन्द्वोपरागः परतः परस्य ॥ यथाऽहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥५७॥ एतां समास्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ॥ अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रि निषेवयैव ॥५८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ॥ निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकम्पितोऽमुं मुनिराह गाथाम् ॥ ५९ ॥ सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ॥ मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥६०॥

सुख दुःखका संबन्ध नहीं जैसे अहंकार संसाररूपी है, उसीसे सुख दुख होता है, जो इस प्रकार समझता है वह किसीसे नहीं डरता; उसको डर ही नहीं इस भांति मैं परमात्मामें चित्त रख समुद्र तरूँगा ॥ ५७॥ पूर्व महर्षियोंकी यह जो परमात्माकी निष्ठा है इस निष्ठाको धारण कर साक्षात् मोक्षके देनेवाले भगवान् वासुदेवके चरणारविंदोंकी सेवा करके पारसे रहित संसारसमुद्रके पार जाऊँगा ॥५८॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! इस प्रकार द्रव्य नष्ट होने से द्रव्य का क्लेश दूरकर संन्यास लेकर वह ब्राह्मण पृथ्वीपर फिरता रहा । यद्यपि दुष्टोंने उसका बहुत अपमान किया, परन्तु तो भी उसका चित्त अपने स्वधर्मसे चलायमान न हुआ, तब यह गाथा गायी कि ॥५९॥ पुरुषको सुख दुःखका दाता मनके भ्रम विना और दूसरा कोई नहीं है, शत्रु मित्र उदासीन यह जो संसार है सो अज्ञानसे होता है,

विचार से कुछ नहीं॥६०॥ हे उद्धव ! इसलिये तुम सब भावसे मुझमें बुद्धि रखकर मनका निग्रह करो, इतना ही योगका तापर्त्य है॥६१॥ जो कोई यह भिक्षुककी गायी हुई ब्रह्मनिष्ठाको सावधान होकर धारण करेंगे सुनेंगे अथवा सुनावेंगे वह सुख दुख आदि द्वन्द्व धर्मोंसे पराभव नहीं पावेंगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकाशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीतानिरूपणं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥ दोहा-चौबिसमें अध्यायकी, कथा कर्म आधीन । आत्मासे सब होत है, आत्मा ही में लीन ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! अब मैं तुमसे कपिलदेव आदि आचार्योंका निश्चय किया हुआ सांख्य वर्णन करूँगा, जिस सांख्यके जाननेसे पुरुष शीघ्र

तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया॥ मय्यावेशितया युक्त एतावान् योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥ य एतां भिक्षुणां गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ॥ धारयच्छ्रावयञ्छृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥६२॥ इति श्रीभाग० म० एकाद० भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता वर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥ यद्विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥ आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम् ॥ यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ २ ॥ तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ॥ वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद् बृहत् ॥३॥ तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ॥ ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥४॥ तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ॥ मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥

भेदबुद्धि से उत्पन्न हुई सुख दुःखादिकी भ्रांतिको त्याग देता है ॥१॥ महाप्रलयमें द्रष्टा और दृश्य भेदरहित एकब्रह्ममें लीन हो गया; इसके उपरांत प्रथम सत्ययुगमें जब सब प्राणी विवेकमें निपुण थे तब भी कुछ भेद न होनेसे सब ईश्वररूप ही जाना जाता था, भेद नहीं था॥२॥ पीछे जब बहुत सृष्टिकी इच्छा हुई तो वह अक्षरब्रह्म भेदरहित केवल आनंदमय एकरूप अपने रूपके द्रष्टा और दृश्य भेदरहित दो रूप कर दिये एक मायाके फलरूप वाणी मनको गम्य प्रपञ्चरूप कर दिया एक सत्यरूप ॥ ३ ॥ ब्रह्मसे हुए उनके मध्य एक कार्यकारणरूपिणी प्रकृति हुई, दूसरे भावसे ज्ञानरूप पुरुष हुआ, जो प्रकृति पुरुष कहाता है॥ ४ ॥ पुरुषरूप मेरे देखनेसे क्षुभित हुई, प्रकृतिद्वारा सत्त्वगुण,

रजोगुण, तमोगुण प्रकट हुए ॥५॥ प्रथम इन तीनों गुणोंसे सूत्र क्रिया शक्तिरूप हुआ, पीछे वह सूत्र ज्ञानशक्तिरूप तत्त्व प्रकट हुआ । एक ही तत्त्वज्ञान क्रियाभेदसे दोनों रूप हुए, उस महत्तत्त्वसे अहंकार हुआ, जो सबको मोह उत्पन्न करता है और जीवको भ्रमण करा रहा है ॥ ६ ॥ सो अहंकार तीन प्रकारका हैं; सो सात्त्विक, राजस, तामस; यही अहंकार; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन्द्रिय मन तथा देवताओंका कारण है, जीव और देहकी ग्रंथिरूप यही है ॥ ७ ॥ अब इस त्रिविध अहंकारसे त्रिविध प्रपंचकी उत्पत्ति दिखाते हैंः—इनमें तामस अहंकारसे पहले सूक्ष्मभूत प्रकट हुए इसके उपरांत पञ्चमहाभूत हुए; प्राणियोंके आवरणरूप दश अहंकार हुए, प्रवृत्ति—स्वभाव—रूप सात्त्विक अहंकारसे

तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान् सूत्रेण संयुतः ॥ ततो विकुर्वतो जातोऽहङ्कारो यो विमोहनः ॥ ६ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ॥ तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥७॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च ॥ तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥ मया सञ्चोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ॥ अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितो ॥ मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥१०॥ सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ॥ लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवः स्वरिति त्रिधा ॥ ११ ॥

देवता दश इंद्रियोंके अधिष्ठाता दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, प्रजापति यह सब दश, मनका देवता चन्द्रमा मिलकर ग्यारह देवता हुए, क्योंकि मन विना इंद्रियोंका प्रकाश नहीं होता, वह प्रकाशक है, इस प्रकार सब तत्त्व भिन्न-भिन्न हुए पीछे एक अण्ड उत्पन्न किया, सो ब्रह्माण्ड विराट पुरुष अन्तर्यामीका (मेरा) उत्तम घर है ॥ ८ ॥ ९ ॥ जलमें अण्ड हुआ उस अण्डमें श्रीनारायणरूप लीलाशरीरसे मैं स्थित हुआ वहां मेरी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ, वह कमल जगत्‌रूप तत्त्वात्मक लोकोंका कारणभूत है। उस कमलमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए ❋ ॥१०॥ उन ब्रह्माजीने विश्वरूप तपस्या करके गुणसे युक्त मेरे अनुग्रहसे लोकपाल समेत तीन लोक भूमि,

* शंका—श्रीकृष्णने वारंवार 'मम' ऐसा वचन क्यों कहा ? क्योंकि परमेश्वर होकर अभिमानयुक्त वचन कहना यह वड़े आश्चर्यकी वात है ?

उत्तर—पहिले ही उद्धवने श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रार्थना की थी कि हे महाराज ! मेरे सामने आप किसी दूसरे देवताकी और अपने दूसरे अवतारकी कथा मत कहना और कहना भी तो अपनी ही कथा कहना, क्योंकि आपके नामके रसके मुखमें मग्न हो गया हूँ, दूसरेका चरित्र मुझको अच्छा नहीं जान पड़ता, ऐसी उद्धवकी प्रार्थनाको मानकर श्रीकृष्णचन्द्रने 'मम' शब्द कहा था कुछ अभिमानसे नहीं ।

अन्तरिक्ष, स्वर्गको सृजा। उन लोकोंमें ही चौदह लोक समझ लेना, सो भूमि कहनेसे पाताल लोक नीचेके आये, भुवः कहनेसे अन्तरिक्ष कहा और स्वर्ग कहनेसे महर्लोकसे लेकर सत्यलोकतक सब कहे ॥ ११ ॥ लोकसृष्टिका प्रयोजन कहते हैंः—देवताओंका लोक (स्थान) स्वर्ग हुआ भू प्राणियोंका स्थान अन्तरिक्ष हुआ, मनुष्योंका लोक भूमि हुई, जो सिद्धि हैं और योगसाधना करते हैं उनका स्थान महर्लोक आदि जान लेना। महात्मा ब्रह्माजीने नाग तथा असुरोंका निवास स्थान पृथ्वीके नीचे अर्थात् पाताल बनाया है ॥१२॥ त्रिगुणात्मक कर्म करनेसे जो गतियें होती हैं वे सब त्रिलोकीके ही मध्य हैं, इस प्रकार लोक भिन्न भिन्न रचे हैं महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, और सत्यलोकमें योग संन्यास ज्ञानसे निर्मल गति होती है वैकुण्ठकी गति मेरी भक्ति विना नहीं होती, भक्तियोग करनेसे होती है और

देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवःपदम्॥मर्त्यादीनां च भूर्लोकःसिद्धानां त्रितयात्परम्॥१२॥अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ॥ त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ॥ १३ ॥ महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ माया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १४ ॥ अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिद्ध्यति ॥ सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १५ ॥ यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ॥ विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १६ ॥

वैकुण्ठकी गतिके विना अन्य सब स्थान चञ्चल हैं स्थिर नहीं। स्थिर तो एक मेरी गति है इससे और ठौर वैराग्य रखना उचित है, मैं कालरूप परमेश्वर हूँ, यह सब जगत् मैंने ही कर्मयुक्त किया है सो मायाके गुणप्रवाहमें सब विश्व डूबता उछलता है। इस लोकसे और लोकमें जाकर फिर गिरता है, इसलिये इसमें चित्त न लगावे ॥ १३ ॥ १४ ॥ इसको ब्रह्मरूप कहते हैं कि जो पदार्थ सूक्ष्म है और जो बड़ा है जो स्थूल है दुर्बल है सो प्रकृति और पुरुष इन दोनोंसे युक्त है ॥ १५ ॥ जिस कार्यका जो आदि कारण है और जो पीछे भी रहनेका स्थान है वही इसके मध्य है, वह इसीका रूप है, परन्तु व्यवहारमें और प्रकार भासता है, जैसे सुवर्ण भूषण और मिट्टीके घड़े सरैया आदि नाम अलग अलग हैं वस्तुतः सुवर्ण और मिट्टी ही है, इस प्रकार सब समझकर नाम भेदसे जो व्यवहार है वही विकार है सो

मिथ्या है ऐसा समझना चाहिये ॥१६॥ यहां तर्क करते हैं कि जो तुम इस प्रकार कार्यको एकरूप कहकर सत्य कहते हो तो अपने अपने कार्यमें महत्तत्त्व आदि सब तत्त्व आदि अन्त मध्यमें संयुक्त है तो महत्तत्त्वादिकोंकी सत्यता हो सकती है ? तो कहते हैं कि वे कारणरूप ब्रह्मभावको अंगीकार करके कार्यको बनाते हैं, जैसे मृत्तिकाके पिण्ड निमित्तकारण घट को बनाते हैं, परन्तु उसके आदि अन्तमें मृत्तिका ही है जो जिसका आदिअन्त है, सो सत्य है, इससे सबके आदिसे मृत्तिकाको ही लेकर बनाते हैं, अन्त ब्रह्म ही है॥१७॥ प्रकृति इस जगत्का उपादान कारण है, उत्पत्ति स्थान है, पुरुष आधार अधिष्ठाता है और काल गुणोंके क्षोभसे उसको प्रकट करनेवाला है सो यह तीनों ब्रह्मरूप मैं ही हूँ, मुझसे यह भिन्न नहीं है प्रकृति मेरी शक्ति है, पुरुष और काल मेरी अवस्था है, मेरा रूप होनेसे मैं ही अद्वितीय स्वरूप हूँ ॥१८॥

यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम् ॥ आदिरन्तो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १७ ॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादान-
माधारः पुरुषः परः ॥ सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ॥१८॥ सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ॥
महान्गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥ १९ ॥ विराण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ॥ पञ्चत्वाय
विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २० ॥ अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते ॥ धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे
प्रलीयते ॥ २१ ॥ अप्सु प्रलीयते गन्ध आपश्च स्वगुणे रसे ॥ लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥२२॥

अब इस सृष्टिकी अवधि कहते हैंः—जीवोंके भोग देनेके लिये प्रकट हुई यह मेरी सृष्टि जबतक इसका अन्त नहीं आता तबतक पिता पुत्र रूपसे निरन्तर चलती है और जबतक परमात्माका ईक्षण हो तबतक रहती है, इसके उपरांत प्रलय हो जाती है सो कहते हैं ॥ १९ ॥

यह ब्राह्मण्ड विराट्रूप जिसमें लोकोंकी कल्पना है, जब इसके निकट मेरा स्वरूप भूतकाल पहुँचने लगता है तब मुझसे पीड्यमान हो सब लोक नाशको प्राप्त होते हैं, जैसे उत्पन्न हुए हैं उसी क्रमसे तत्त्व भिन्न भिन्न होकर अपने कारणसे मिलकर नष्ट हो जाते हैं ॥ २० ॥ यह शरीर अन्नसे हुआ है इस कारण शतवर्ष अनावृष्टिके होनेसे क्षीण हो उसमें लीन होता है अन्न बीजमें लीन होता है, बीज भूमिमें लीन होता है, अर्थात् बोनेसे नहीं उपजता भूमि गन्धमें, महाप्रलयकी अग्निसे दग्ध हो गन्धमात्र रहता है॥२१॥गन्ध जलमें लीन होता है जल अपने

गुणमें लीन होता है, रस ज्योतिमें लीन होता है ज्योति रूपमें लीन होती है ॥२२॥ रूप वायुमें लीन होता है, वायु स्पर्शमें लीन होता है, स्पर्श आकाशमें लीन होता है और आकाश शब्दमें लीन हो जाता है इंद्रियें उत्पत्त्यनुसार उस-उस देवतामें लीन होती हैं ॥२३॥ देवता और मन सात्त्विकाहकारमें और शब्द अहंकारमें लीन हो जाता है, त्रिविध अहंकार महत्तत्त्वमें लीन हो जाता है ॥२४॥ महत्तत्त्व अपने-अपने उत्पत्तिके गुणानुसार उस-उस गुणमें, त्रिविधगुण प्रकृतिमें और प्रकृति अव्यक्तमें एकत्र होके रहती है ॥२५॥ काल ज्ञानरूप महापुरुषमें लीन होता है, पुरुष आत्मारूप जन्मरहित मुझमें लीन होता है॥२६॥ तब आत्मा एक शुद्ध विकल्पसंकल्परहित अपने ही आनन्दमें

रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे॥ अम्बरं शब्दतन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २३ ॥ योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरः ॥ शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥२४॥ स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ॥ तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥ २५ ॥ कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ॥ आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २६ ॥ एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ॥ मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २७ ॥ एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः ॥ प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सांख्यनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

स्थित होकर रहता है, इस भांति सब सृष्टिका प्रकार कहा, अब इसका प्रयोजन कहते हैं ॥२७॥ जब इस प्रकार ज्ञानसे देखे तब उसके मनका कल्पना किया हुआ भ्रम क्यों हो और हुआ भी भ्रम हृदयमें क्यों रहे ? जैसे आकाशमें सूर्योदयके भयसे अन्धकार नहीं रहता है ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि हे उद्धव ! यह सांख्यज्ञानकी विधि मैंने तुमसे वर्णन की इसके जानते ही हृदयकी गांठ छूट जाती है और इसलिये उत्पत्ति तथा प्रलयके प्रकार तुमको समझाकर कहे, क्योंकि मुझे सब ज्ञान पूर्ण है ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे सांख्यतत्त्वनिरूपण नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा–पच्चिसमें कुछ निर्गुण, अरु कुछ सत्य विवेक। मनमें प्रगटत है सदा, सत रज वृत्ति अनेक॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव! जबतक प्रकृति पुरुषका ज्ञान न हो, जबतक तीनों गुणोंके स्वभाव न जीते हों, तबतक सुख दुःख आदि द्वंद्व धर्म नहीं जाने जाते। इससे जैसे गुणके स्वभाव जाने जाते हैं उस उपाय करनेको प्रथम गुणके स्वभाव कहते हैंः–हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ उद्धव! तीनों गुण भिन्न-भिन्न होते हैं, जब जिस गुणसे जैसा पुरुष होता है सो आप मन लगाकर सुनिये मैं कहता हूँ॥ १॥ जिसका सत्त्वगुणी स्वभाव हो उसके यह धर्म होते हैं–शम, दम, क्षमा, विवेक, तप, सत्य, दया, पहला और पिछला स्मरण, सन्तोष, त्याग, वैराग्य, आस्तिक्यबुद्धि, अनुचितकर्ममें लज्जा, दान, आत्मासे रति यह सत्त्वगुणकी वृत्ति कही॥ २॥ अब रजोगुणकी वृत्ति कहते हैंः–कामना, चेष्टा, दर्प, तृष्णा, गर्व, देवताओंसे सुखकी

श्रीभगवानुवाच॥ गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत्॥ तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः॥ १॥ शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः॥ तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः॥ २॥ काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशीर्भिदा सुखम्॥ मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः॥ ३॥ क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याञ्चा दम्भः क्लमः कलिः॥ शोकमोहौ विषादार्ती निद्राऽऽशा भीरनुद्यमः॥ ४॥ सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः॥ वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु॥ ५॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः॥ व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः॥६॥ धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽसौ परिनिष्ठितः॥ गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः॥ ७॥

आकांक्षा, विषयभोग, बुद्ध्यादिकोंका उत्साह, जगमें प्रीति, हास्य, वीर्य, बलका उद्यम इत्यादि यह सब रजोगुणकी वृत्ति हैं॥३॥ अब तमोगुणकी वृत्ति कहते हैंः–क्रोध, लोभ, मिथ्या, हिंसा, याञ्चा, दम्भ, अनुद्यम, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दुःख हीनता, निद्रा, आशा, भय, यह तमोगुणकी वृत्ति भिन्न-भिन्न कही। अब जो एक मिली है, वह वृत्ति सुनो॥ ४॥ ५॥ हे उद्धव! "अहं राम" यह जो बुद्धि है, इसमें मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इंद्रिय और प्राण यह सात्त्विक, राजस, तामस हैं, इनसे जो कार्य है, उसे सन्निपात जनित कार्य कहना चाहिये, क्योंकि तीनों गुणोंके मिले कार्य हैं, मैं शांत हूँ, मैं कामी हूँ; मैं क्रोधी हूँ, मुझे शांति है; काम है, क्रोध है, इस प्रकार व्यवहार तीनों गुणोंका सन्निपात कहलाता है॥ ६॥ जब यह पुरुष धर्म अर्थ काममें स्थित हो तब जान लीजिये कि

तीनों गुणोंकी एकता है, धर्म सात्त्विक, अर्थ राजस, धर्ममें काम तामस, धर्ममें श्रद्धा हो, अर्थमें प्रीति हो, काममें धन हो॥७॥प्रवृत्ति–सकाम धर्ममें निष्ठा रखे, गृहस्थाश्रम धर्ममें निष्ठा रखे यह भी गुणोंके सन्निपातसे होता है, क्योंकि सकाम धर्म रजोगुण है, घरमें आसक्ति तमोगुणमय है, जो नित्य नैमित्तिक धर्ममें निष्ठा है, वह सत्त्वगुणमय है ॥८॥ इस प्रकार भिन्न भिन्न और मिले गुणोंकी अवस्था कहकर जिस गुणसे जैसा पुरुष होता है, सो कहते हैं कि पुरुषके जो शम, दम, क्षमा, दया यह धर्म होते हैं, सो सात्त्विक जानना, काम अनुरागसे राजस समझ लेना, क्रोधादिसे तामस जानना ॥ ९ ॥ और जो भक्तिपूर्वक निरपेक्ष होकर स्वकर्मसे मेरा भजन करे, वह पुरुष हो अथवा स्त्री हो, उसका सत्त्वगुणरूपी स्वभाव जानना। जो स्वकर्मसे मेरा भजन करते हैं और मुझमें कुछ चाहना करते हैं उन्हें

प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान् यर्हि गृहाश्रमे ॥ स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥ ८ ॥ पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ॥ कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ ९ ॥ यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ॥ तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव च ॥ १० ॥ यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ॥ तं रजः प्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे ॥ चित्तजा यस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥ १२ ॥ यदेतरो जयेत् सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ॥ तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥ १३ ॥

रजोगुणस्वभावयुक्त कहना चाहिये ॥१०॥ और जो किसीके मारनेको मेरा भजन करे उसे तमोगुणी स्वभाववाला जानना॥११॥ अब कहते हैं कि इन गुणोंके वश तो तुम भी देख पड़ते हो और जो नहीं हो तो तुम सेव्य क्यों हुए ? और जीव सेवक क्यों हुआ ? इसका उत्तर देते हैं कि ये तीनों गुण जीवको हैं, कुछ मुझे नहीं हैं, यह सब चित्तके विकारसे होते हैं, जिसमें प्राणी आसक्त होकर बँध जाता है, मैं तो आसक्त नहीं हूँ, नियन्ता हूँ और द्रष्टा ही रहा हूँ, इससे बंधनमें नहीं, इसलिये अपना भजन करनेके लिये वारंवार कहता हूँ ॥ १२ ॥ जब एक गुणकी अधिकता होती है, उसका कार्य दिखाते हैं कि जब प्रकाशरूप निर्मल शांत सत्त्वगुण बढ़कर रजोगुणको जीते, तब

पुरुष धर्म ज्ञानसे परमसुखी होता है ॥१३॥ जब रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणको जीते तब रजोगुणसे संग होता है, उस संगसे सर्वत्र भेदबुद्धि होती है, उससे प्रवृत्तिमार्गका स्वभाव होता है, अतः कर्म यश श्री और दुःखसे युक्त होता है ॥ १४ ॥ जब तमोगुण सत्त्वगुण और रजोगुणको जीते, तब अज्ञानसे मोह को प्राप्त हो शोक, मोह, निद्रा, हिंसा, आशासे युक्त हो, विवेक तज अनुद्यमरूप जड़सा होकर रहता है और लय हो जाता है ॥ १५ ॥ जब चित्त निर्मल होकर इंद्रियोंके विषयोंसे निवृत्ति हो, देहमें अभय हो मनकी आसक्ति कहीं न हो, वह सत्त्वगुण मेरी प्राप्तिका स्थान जानना चाहिये ॥ १६ ॥ जब क्रियासे विकारको प्राप्त हो, बुद्धिका विक्षेप हो, ज्ञानेन्द्रियोंको शांति न हो, कर्मेन्द्रियोंकी निश्चलता न हो, मन भ्रमता रहे तब जान लो कि रजोगुण बहुत बढ़ गया है ॥ १७ ॥ जब चित्त अंतर्धान होकर

यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः संगभिदाबलम् ॥ तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥ यदा जयेद्रजः
सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ॥ युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाऽऽशया ॥ १५ ॥ यदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रि-
याणां च निर्वृतिः ॥ देहेऽभयं मनोऽसङ्गं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥ विकुर्वन् क्रियया चाधीरनिर्वृत्तिश्च
चेतसाम् ॥ गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रान्तं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥ सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ॥ मनो
नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८ ॥ एधमानो गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ॥ असुराणां च रजसि तमस्यु-
द्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ॥ प्रस्वाप तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु सन्ततम्
॥ २० ॥ उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ॥ तमसाऽधोऽध आमुख्याद्रजसान्तरचारिणः ॥ २१ ॥

लीन हो जाय, ज्ञानसे पदार्थके ग्रहणको असमर्थ हो, मनमें भी संकल्प विकल्प उपजते रहें, नष्ट होकर शून्यसा रहे, अज्ञान ग्लानि दुःख हो तब जानिये कि तमोगुणकी वृद्धि है ॥१८॥ हे उद्धव ! यदि सत्त्वगुण बढ़ता है तो देवताओंका बल बढ़ जाता है, रजोगुण बढ़ता है तो असुरोंका बल बढ़ता है और तमोगुण बढ़ता है तो सब राक्षसोंका बल बढ़ जाता है ॥१९॥ सत्त्वगुणसे जाग्रत, रजोगुणसे स्वप्न और तमोगुणसे सुषुप्तिकी अवस्था होती है, इन तीनों अवस्थाओंमें व्याप्त एक चतुर्थ अवस्था रूप आत्मतत्त्व है सो वह तुरीय निर्गुण अवस्था है ॥ २० ॥ अब गुणके उत्कर्षसे कर्मफलको दिखाते हैंः—सत्त्वगुणके उत्कर्षसे ब्राह्मण वेदोक्त कर्मको करके ऊपर ब्रह्मलोकतक जाते

हैं, तमोगुणसे नीचेके लोकोंमें जाते हैं और रजोगुणसे मनुष्यदेहको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ अब जिस गुणकी अधिकतामें मरनेसे जो गति होती है, उसे कहते हैंः—सत्त्वगुणसे मरे तो स्वर्गलोकमें जाय, रजोगुणमें मरे तो मनुष्यलोकमें जाय, तमोगुणमें मरे तो नरकमें जाता है और निर्गुण हो तो मुझेही प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ यदि स्वकर्म करे, और उसका फल न चाहे अथवा मुझे अर्पण करे तो वह सात्त्विक कर्म है, जिस कर्ममें फलकी याचना है वह राजस है, जिसमें हिंसा अधिक है वह तामस कर्म है ॥२३॥ अब सब गुण निर्गुण भेदसे ज्ञान और भक्ति भी चार प्रकारकी है, कहते हैंः—केवल आत्मनिष्ठ ज्ञान सात्त्विक है, जो ज्ञान देह इंद्रियोंके सम्बन्धसे लीन होता है वह राजस और जो बालक गूंगेका ज्ञान है, वह तामस है। केवल शुद्ध पुरुषोत्तमनिष्ठ ज्ञान हो वह निर्गुण कहलाता है ॥ २४ ॥ बनका वास सात्विक है,

सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलयाः ॥ तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥ मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ॥ राजसं राजसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥ २३ ॥ कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ॥ प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ वने तु सात्त्विको वासो ग्रामे राजस उच्यते ॥ तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥ सात्त्विकः कारकोऽसङ्गी रागान्धो राजसः स्मृतः ॥ तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥ सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी ॥ तामस्य-धर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥ पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाशुचि ॥ २८ ॥

ग्रामका वास राजस है, जुएके घरमें वास तामस है और भगवत् मंदिरमें निर्गुण वास है ॥ २५ ॥ आसक्ति विना कर्मका कर्त्ता सात्विक कहलाता है, आसक्तिसे अंधा होकर कर्म करना राजस है, स्मरणसे रहित कर्म करना तामस है और केवल एक मेरी शरणको प्राप्त हो, अहंकार छोड़कर कर्म करे वह निर्गुण है ॥ २६ ॥ आत्माकी श्रद्धा सात्त्विकी, कर्मकी श्रद्धा राजसी, अधर्ममें श्रद्धा तामसी और मेरी सेवामें श्रद्धा निर्गुण है ॥ २७ ॥ जो आहार भक्ष्य भोज्य वस्तु हो, पवित्र हो, विना श्रम प्राप्त हुई हो वह सात्त्विक कहलाती है, और इंद्रियोंका परमप्रिय मधुर, कटु, अम्ल, लवण ये सब राजस हैं, जिससे पीड़ा हो, अशुद्ध हो उसे तामस कहते हैं और जो वस्तु मुझे

निवेदनकी हो वह निर्गुण कहलाती है ॥ २८ ॥ आत्माके अनुभवसे हुआ सुख सत्त्वगुणकीरूपी है, विषय अनुभवसे हुआ सुख राजस है, मोह दीनतासे सुख हो वह तमोगुणी है और केवल मेरे आश्रयका सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ यह जितने पदार्थ कह आये हैं, द्रव्य, पवित्र वस्तु, देश, वन, ग्राम, फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा, अवस्था, आकृति, मरण यह सब त्रिगुणमय है ॥ ३० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह सब प्रपञ्चरूप भाव गुणमय जानना, पुरुष और प्रकृतिसे अधिष्ठित है, जितना देखा है, सुना है, बुद्धिसे ध्यानमें रहता है सो सब गुणमय

सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ॥ तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ॥ २९ ॥ द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ॥ श्रद्धावस्थाऽऽकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥ सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ॥ दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥३१॥ एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः ॥ येन मे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ॥ भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम् ॥ गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥३३॥ निःसङ्गो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः ॥ रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शान्तधीः ॥ ३४ ॥

है ॥३१॥ यह गुण कर्मसे बँधे पुरुषको संसारकी गति है । हे सौम्य ! जो जीव चित्तसे उत्पन्न हुए गुणको जीते वे भक्तियोग करके निष्ठासे मेरे भावको प्राप्त होते हैं ॥३२॥ इसलिये विवेकी पुरुष जीतनेका ही उपाय करते हैं, सो कहते हैंः—ज्ञान-विज्ञानको देनेवाला मनुष्यदेह या गुणसंगको दूरकर निपुण मेरा भजन करे ॥ ३३ ॥ ज्ञानवान् सावधान जितेन्द्रिय पुरुष सब संग छोड़कर निस्संग हो मेरा भजन करे, सत्त्वगुणकी सेवासे रजोगुण तमोगुणको जीते, इसके उपरांत निरपेक्ष और शांतबुद्धि हो मुझमें चित्त रखकर सत्त्वगुणको भी जीते ॥ ३४ ॥

* शंका—जीव क्या वस्तु है जो जीव छट जाता है ?

उत्तर—जीव ब्रह्मका रूप है, अजीव देह है । जबतक देहके सुखकी इच्छा करता है तबतक दुःख भोगता है और देहसे बँधा भी रहता है और देहके सुखकी इच्छा को जब त्याग देता है, तब देहको भी त्यागके ब्रह्म सुखको प्राप्त हो जाता है ।

तब इस प्रकार मुझे प्राप्त हो सो कहते हैं कि जब यह जीव गुणोंसे छूट जाय तब अपने वासना देहको छोड़ मुझे प्राप्त हो और जब मुझे प्राप्त हुआ फिर उसे संसारका आवागमन नहीं रहता, लिंग शरीरसे और चित्तसे उत्पन्न हुए गुणसे मुक्त हुए अथवा मैं जो परब्रह्म हूँ उसीसे पूर्ण हुआ जीव विषय भोग नहीं करता और विषयभोगोंका स्मरण भी नहीं करता ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ दोहा–छब्बिस माहिं कुसंगते, होत योगमें भङ्ग। योग भोग पूरण करै, सन्तनको सतसङ्ग ॥ श्री भगवान् बोले कि हे उद्धव ! जिससे मेरा स्वरूप जाना जाय, ऐसे मनुष्यदेहको पाकर जो मेरे धर्म में स्थित हो वह अपने आत्मामें स्थिर आनन्दरूप परमात्माको प्राप्त होता है ॥१॥ ज्ञाननिष्ठाके प्रभावसे कारण गुणमय लिंग शरीरसे मुक्त हुआ पुरुष गुणकी जो

सम्पद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥ जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसम्भवैः ॥ मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नान्तरश्चरेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभा० म० एकादशस्कन्धे वृत्तिभेदनि० पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मल्लक्षणमिमं कामं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥ आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥ गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ॥ गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ॥ वर्तमानोऽपि न पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥ सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ॥ तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगोऽन्धवत् ॥ ३ ॥ ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ॥ उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥

मायामात्र और वास्तविक रीतिसे प्रतीत हो रहे हैं उनमें निवास करनेपर भी इस मिथ्या गुणोंके संगको प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ यद्यपि उसे सर्वत्र वस्तुकी इच्छा नहीं है, परन्तु तो भी दुष्टसंग न करे जो केवल उपस्थ इंद्रिय और उदरको तृप्त करनेवाले हैं, ऐसे दुष्टोंका कभी संग न करे, क्योंकि जो एक भी दुष्ट जनका संग हो तो भी महाघोर अन्धतम नरकमें पड़ता है, जिस प्रकार एक अन्धेके पीछे दूसरा अन्धा गिरता है और बहुतोंका संग बाधा करता है, इसमें तो कहना ही क्या है ? ॥ ३ ॥ इलाका पुत्र बड़ा यशस्वी राजा पुरूरवा जब प्रथम उर्वशीके विरह से मोहित हुआ था, तब अत्यन्त दुःखसे कातर हो कुरुक्षेत्रमें पहुँचा और वहां उर्व्वशीको देख प्रार्थनाकी तब उसने उपासना बतायी, उसीके द्वारा राजा गन्धर्वलोकमें प्राप्त हुआ, जब वहां उसका शोक निवृत्त हुआ तब उसने यह गाथा गायी ॥ ४ ॥

पुरूरवा राजाको छोड़कर जब उर्व्वशी चली गयी, तब उन्मत्तकी नाईं नग्न उसके पीछे विलाप करता हुआ, 'हे घोरे तिष्ठ तिष्ठ' इस प्रकार विह्वल होकर कहता हुआ उठकर उसके पीछे चला ॥ ५ ॥ पुरूरवा राजा अपनी पहली अवस्था कहता है कि तुच्छ कामनाओंका सेवन करनेसे मैं अभी तृप्त नहीं हुआ, क्योंकि अनेक वर्षोंकी रात्रियाँ आकर बीत गयीं, परन्तु मैंने नहीं जाना, चित्त उर्व्वशीसे हर रहा था जब ज्ञान हुआ तब जैसे वचन कहे थे वह कहते हैं ॥६॥ पहले आठ श्लोकोंमें राजाका पश्चाताप कहते हैंः-अहो ! देखो मेरे मोहका विस्तार, कि मैंने इतना विषय किया परन्तु तो भी कामसे मलिन चित्तमें उर्व्वशीने मेरे कण्ठका आलिंगन किया सो इसीमें मेरी इतनी आयु व्यर्थ गयी, मैंने कुछ नहीं जाना ॥७॥ अब अत्यन्त खेदित होकर कहता है कि देखो ! इस उर्व्वशीसे मैं वंचित हुआ, सूर्य उदय हुआ व अस्त

त्यक्त्वाऽऽत्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ॥ विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥५॥ कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः ॥ न वेद यान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याऽऽकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥ ऐल उवाच ॥ अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ॥ देव्या गृहीतकण्ठस्य नायुः खण्डा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥ नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाऽभ्युदितोऽमुया ॥ मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥ ८ ॥ अहो मे आत्मसंमोहो येनात्मा योषितां कृतः ॥ क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥ सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ॥ यान्तीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावः स्यात्तेज ईशत्वमेव वा ॥ योऽन्वगच्छन् स्त्रियं यान्तीं खरवत्पादताडितः ॥ ११ ॥ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ॥ किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ १२ ॥

हुआ यह भी मैंने न जाना, बहुत वर्षोंके इतने दिन बीत गये, परन्तु मैंने कुछ न जाना ॥८॥ हे उद्धव ! यह फिर कहने लगा-अहो ! मेरे मनको देखो कि मेरा आत्मा इन स्त्रियोंने खेलनेको हरिण किया मैं, राजाओंका राजा हूँ सो मैं इस प्रकार पराधीन हुआ ॥९॥ राज्यादि सहित चक्रवर्ती मुझे देखो-जो तृणके समान मुझे छोड़ उठकर चली गयी, उस स्त्रीके पीछे नग्न उन्मत्तकी भांति मैं भी उठ चला ॥१०॥ ऐसे मुझे प्रताप, तेज ऐश्वर्य कहांसे हो ? कि जो मैं चली जाती हुई स्त्रीके पीछे लगा ही चला आया, गधैयाके समान वह तो लातोंसे मारती जाती है और गधा उसके पीछे जैसे चला जाता है, ऐसे ही मैं चला गया ॥११॥ जिसका मन स्त्रियोंसे हर गया है, उसको विद्या,

तप, दान, अध्ययन, एकान्त, मौन इन साधनोंसे क्या होता है ॥ १२ ॥ इससे मैंने अपना स्वार्थ न जाना और आपको पंडित मान लिया, इसलिये मैं अतिमूर्ख हूँ, मुझे धिक्कार है, कि जो ऐश्वर्यको प्राप्त होकर भी स्त्रीसे बैल गधेकी भांति अधीन हुआ ॥ १३ ॥ यद्यपि अनेक वर्षोंके समूहसे मैंने उर्व्वशीका अधर-मधु पिया परन्तु तो भी इस कामसे तृप्ति नहीं होती है, जैसे आहुतियोंसे अग्नि तृप्त नहीं होता ॥ १४ ॥ इस प्रकार आठ श्लोकोंमें वैराग्य कहा, अब दश श्लोकोंमें विवेक कहते हैं—कि जिनके चित्त वेश्याओंने हर लिये हैं, उन्हें छुड़ानेको आत्माराम ईश्वर अधोक्षज भगवान्के विना और कौन समर्थ है? इसलिये एक परमेश्वरका ही भजन करना उचित है क्योंकि बहुतेरोंने यज्ञोंसे देवता प्रसन्न किये, परन्तु अंत समयमें दुःख ही पाया ॥ १५ ॥ ईश्वरके प्रसाद विना मोह निवृत्त नहीं होता, इसलिये

स्वार्थस्याकोविदं धिङ् मां मूर्खं पंडितमानिनम् ॥ योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥ सेवतो वर्षपूगान् मे उर्वश्या अधरासवम् ॥ न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥१४॥ पुंश्चल्याऽपहृतं चित्तं को न्वन्यो मोचितुं प्रभुः ॥ आत्मारामेश्वरमृते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ १५ ॥ बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ॥ मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ॥ रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ क्वायं मलीमसः कायो दौर्गन्ध्याद्यात्मकोऽशुचिः ॥ क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः ॥ १८ ॥

उन्हींका भजन करना चाहिये। देखो उर्वशीने मुझे उत्तम वाक्योंसे समझाया था, परन्तु तो भी मेरे मनका मोह न गया, मैं अजितेन्द्रिय महामूढ़ हूँ ॥ १६ ॥ उर्व्वशीका अपराध नहीं, यह मेरा ही अपराध है क्योंकि मैं अपने अजितेंद्रियपनसे ही दुःखी हुआ हूँ उसने मेरा क्या अपराध किया है? रस्सीको न जान जैसे रस्सीमें सर्पका भ्रम करे तो विद्यमान रस्सीका क्या अपराध है ॥ १७ ॥ यदि कहो कि इसने अपने रूप गुणसे मोह उत्पन्न किया, यह दोष इसीका है, यह दोनों दोष मनमें रचे हैं, अज्ञानसे हैं सो कहते हैं—यह अति मलिन दुर्गंधादिसे भरी देह कहां और पुष्पकी सुगंधके तुल्य आत्माके गुण कहां, सब ठौर ममत्त्व अविद्याका किया है, वस्तुतः विचारसे सब

मिथ्या है ॥ १८ ॥ यह देह माताकी है, अथवा स्त्रीकी है, वा स्वामीकी है वा अग्निकी है, या कूकर गिद्धोंकी है वा आत्माकी है, वा मित्रकी है, वा किसकी कहनी चाहिये ? इतना तो इसका निश्चय होता ही नहीं और न होगा ॥ १९ ॥ जैसे अपवित्र तुच्छ देहमें आसक्त होते हैं सो कहते हैं कि देखो तो कैसा सुन्दर मुख है, कैसी सुन्दर नासिका है, कैसा सुन्दर हँसना है, क्यों भूले हैं और यह तो सब कृमि विष्ठा भस्मरूप हैं ॥ २० ॥ त्वचा, मांस, रुधिर, आंत मेद, मज्जा, हड्डी, संघातरूप देहमें जो आसक्त हैं उनमें और विष्ठा मूत्र पीवमें जो रमते हैं उनमें क्या अन्तर है अर्थात् कुछ नहीं। हमारे विचारसे तो जैसे कृमि वैसे वे मनुष्य हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि इस प्रकार स्त्री कदर्यमयी जाने हैं परंतु तो भी उनके गुरु स्त्रीलम्पटोंके निकट जो विवेकी हो तो न जाय, क्योंकि विषय-असत् इंद्रियोंके संगसे मन सर्वथा

पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः ॥ किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते ॥ १९ ॥ तस्मिन् कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ॥ अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियाः ॥ २० ॥ त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ ॥ विण्मूत्रपूयं रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥ २१ ॥ अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ॥ विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥ अदृष्टादश्रुताद्भावान्नभाव उपजायते ॥ असम्प्रयुञ्जतः प्राणाञ्छाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥ तस्मात्सङ्गो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः ॥ विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं प्रगायन्नरदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय ॥ आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥

विकारको प्राप्त हो जाता है और जो संग न हो तो नहीं हो सकता अतः उससे दूर ही रहे ॥ २२ ॥ जो वस्तु देखी सुनी नहीं है, उसमें मनकी इच्छा नहीं होती, इस कारण जो पुरुष इंद्रियोंको रोकता है, उस पुरुषका मन निश्चल होकर शान्त हो जाता है ॥ २३ ॥ इसमें इंद्रियोंका, स्त्रियोंका और स्त्रीलम्पटोंका संग न करे, जो ज्ञानवान् हैं उनको भी इन इंद्रियोंका विश्वास करना योग्य नहीं है, मुझ सरीखोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! इस प्रकार गाता हुआ वह राजाधिराज पुरूरवा उर्वशीलोकको

छोड़ अपने आपमें आत्मरूपको जान ज्ञानसे मोह निवृत्ति कर निवृत्त हो गया ॥२५॥ इसलिये दुःखदायी संगको छोड़ बुद्धिमान् होकर जो साधुओंका संग करते हैं वे अपने कर्मसे मनकी गाँठ काट देते हैं ॥२६॥ साधु पुरुष कुछ चाहना नहीं करते हैं, क्योंकि वे तो निरपेक्ष हैं और उनके चित्त मुझमें लग रहे हैं वे समदृष्टि और ममतारहित, अहंकाररहित शांत हैं एवं सुखदुःख परिग्रहहीन हैं, इस कारण उनका संग ही इन मनुष्योंको तार देता है ॥ २७ ॥ हे महाभाग ! वे बड़े भाग्यवान् हैं, निरंतर जो मेरी कथाओंको श्रवण करते हैं क्योंकि वह कथा मनुष्यके मनके संपूर्ण पाप दूर करती है ॥२८॥ जो कोई मेरी कथा सुनेंगे, गावेंगे, स्तुति करेंगे अथवा आदर करेंगे

ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ॥ सन्त एतस्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः ॥ २६ ॥ सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रणताः समदर्शिनाः ॥ निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥२७॥ तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ॥ संभवन्ति हिता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥२८॥ ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः ॥ मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥ भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते ॥ मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् ॥ शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥ निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ॥ सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥ अन्नं हि प्राणिनां प्राणा आर्तानां शरणं त्वहम् ॥ धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग्बिभ्यतोऽरणम् ॥ ३३ ॥

वे मुझमें तत्पर हो श्रद्धासहित मेरी भक्तिको प्राप्त होंगे ॥२९॥ अनंतगुण पूर्ण आनंद और अनुभवरूप मुझमें जिस साधुने भक्ति प्राप्त की, फिर उसे और क्या बाकी रहा ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्निकी सेवासे अंधकार, शीत जाता रहता है, इसी प्रकार साधु पुरुषोंकी सेवा करनेसे संसारका भय जाता रहता है ॥३१॥ प्राणी घोर संसाररूपी समुद्रमें डूबते उछलते हैं, उनको ब्रह्मके ज्ञाता शांत साधु ही परमगति है, जैसे जलमें डूबते हुए पुरुषको दृढ़ नाव परमगति होती है ॥ ३२ ॥ प्राणियोंको जैसे अन्न प्राण है ऐसे ही आर्त पुरुषको शरण मैं हूँ,

मनुष्यको परलोकका धर्म ही धन है, ऐसे ही संसार से डरे हुए पुरुषको शरण देनेवाले साधु हैं॥२३॥ सूर्य तो भलीभांति उदय होनेपर भी बाहरी एक चक्षु इंद्रियको ही देता है और साधु पुरुष तो सगुण तथा निर्गुण ज्ञानरूप आंतरीय अनेक चक्षुओंको देते हैं,इस कारण देवता बंधुरूप साधु पुरुष ही है और आत्मा तथा तद्रूप भी साधुओंमें ही है॥३४॥प्रथम इसका पिता शुद्ध मनसे स्त्रीरूप होकर पार्वतीके वनमें गया था, इसलिये उसके पुत्र पुरूरवाका नाम वैतसेन कहा, सो उस उर्वशीलोकसे इस प्रकार निस्पृह होकर संग छोड़ आत्माराम हो इस पृथ्वीमें विचरण करने लगे ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे ऐलगीतं नाम षड्विंशो-

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ॥ देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥ ३४ ॥ वैतसेनस्ततो-ऽप्येवमुर्वश्या लोकनिःस्पृहः ॥ मुक्तसङ्गो महीमेतामारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एका-दशस्कन्धे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ उद्धव उवाच ॥ क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥ यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १ ॥ एतद्वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥ नारदो भगवान् व्यास आचार्योऽङ्गिरसः सुतः ॥ २ ॥ निःसृतं ते मुखाम्भोजाद्यदाह भगवानजः ॥ पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान्भवः ॥ ३ ॥

ऽध्यायः ॥२६॥ दोहा-सत्ताइस अध्यायमें, स्वस्थचित्तकी मूल । सब फलदायक कहत हौं, पूजा हरिअनुकूल ॥ उद्धवजी बोले कि हे याद-वोंमें श्रेष्ठ ! अपना और धनरूप क्रियायोग मुझसे कहो और तुम्हारे भक्त जैसे तुम्हारी पूजा करते हैं, सो सब कहो ॥ १ ॥ तुम्हारा पूजन मनुष्योंको परम श्रेयदायक है, यह नारद भगवान् व्यास और अंगिराके पुत्र बृहस्पति आदि मुनीश्वर वारंवार कहते हैं ॥२॥ जो वाणी तुम्हारे मुखकमलसे निकली वही भगवान् अजन्मा ब्रह्माजीने अपने पुत्र भृगु आदि सबसे कही जो महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा था

* शंका——सब वेद और शास्त्रोंमें लिखा है कि भगवान् तीन लोक और १४ भुवन के प्राणियोंके स्वामी हं तो फिर श्रीकृष्णने अपने मुखसे क्यों कहा कि, दुःखी प्राणीको शरण हम हं वह बड़ी शंका है ?

उत्तर——तुम्हारी सबकी बात सत्य है परंतु अभिमानी कामी दुष्ट यह सब परमेश्वरको नहीं जानते और दीन रात दिन परमेश्वरको जानते हैं,इसलिये दीन लोग परमेश्वरको प्यारे हं, अभिमानी द्रोही हं इसलिये श्रीकृष्णने कहा कि मं दीन लोगोंका स्वामी हूं ।

वही तुमने हमसे कहा है ॥३॥ हे मानके दाता ! यह सब वर्ण आश्रमोंको सम्मत है और स्त्री शूद्रोंको भी परमकल्याणकारी हैं * ॥ ४ ॥ हे कमलदललोचन ! हे विश्वेश्वरोंके ईश्वर ! इस कर्म बंधनका छुड़ानेवाला पूजाविधान मुझसे कहो, क्योंकि मैं तुम्हारा भक्त हूँ और तुमहीमें, अनुरक्त हूँ ॥५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इस प्रकार उद्धवजीने प्रार्थना की तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! यह कर्मकाण्ड अनंत है इसका पार नहीं, इसलिये जैसे है वैसे ही क्रम करके संक्षेपसे कहता हूँ ॥ ६ ॥ वैदिक, तांत्रिक

एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ॥ श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥ एतत्कमलपत्राक्ष कर्म-बन्धविमोचनम् ॥ भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न ह्यन्तोऽनन्तपारस्य कर्म-काण्डस्य चोद्धव ॥ संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ॥ त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥ यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ॥ यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥

और मिश्रित यह तीन प्रकारका पूजन है । इन तीनोंमें जिसकी जो इच्छा हो, उस विधिसे भक्तिपूर्वक मेरा भजन करे ॥७॥ जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण अपनी विधिसे भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करना चाहे तो उसका प्रकार सुनोः—प्रथम गर्भसे लेकर अष्टम, एकादश और द्वादश वर्षमें अपने-अपने नियमके अनुसार गायत्री उपदेश पाकर पुरुषको जिस प्रकार भक्तिपूर्वक मेरा भजन करना चाहिये, वह तुम

* शंका—छहों शास्त्रोंका, चारों वर्णोंका और चारों आश्रमोंका मत यह है कि स्नान, चन्दन, पुष्प,धूप,दीप, नीरांजन और अनेक सामग्री करके ईश्वरका पूजन करना योग्य है,परंतु तीन आश्रम जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ ये तीनों भगवान्‌का पूजन करना मानते हैं,परंतु इन तीनों से बड़े जो संन्यासी लोग हैं,वे भगवान्‌का पूजन करना क्यों मानेंगे ? उन्होंने तो सब कर्म त्याग दिये हैं तो फिर उद्धवजीने क्यों कहा कि भगवान्‌का पूजन करना चारों आश्रमोंका मत है ।

उत्तर—मुनिजन पहले तो बड़ी-बड़ी विधियोंसे वैकुण्ठनाथका पूजन करते हैं पीछे संन्यास लेते हैं, संन्यास ले लेनेपर फिर उनका मत यह नहीं है कि अब भी पहिलेकी नाई सामग्री संग्रह करके भगवान्‌का पूजन करना,परंतु जो कोई सज्जन भगवान्‌की पूजा करनेकी विधि उनसे पूछते हैं तो वे उनको बता देते हैं । इसलिये उद्धवने कहा कि संन्यासी देहसे पूजन नहीं करते परंतु मनमें तो जानते हैं कि पूजनको भूलें नहीं,जो भूल जाते तो दूसरेको कैसे बताते ? इसलिये चारों आश्रमोंका मत पूजन करनेको उद्धवने कहा ।

मुझसे श्रवण करो ॥ ८ ॥ प्रतिमामें पूजायोग्य भूमिमें, अग्निमें, हृदयमें, सूर्यमें, जलमें, ब्राह्मणमें द्रव्य करके भक्तिसे निष्कपट होकर अपने गुरुजीकी पूजा करे ॥ ९ ॥ आप प्रथम तो दन्तधावन करे, फिर मट्टी लेकर अङ्गशुद्धिके लिये स्नान करे, इसके उपरान्त वैदिक तांत्रिक मन्त्रोंको पढ़ता हुआ स्नान करे॥१०॥इसके उपरांत वेदविहित सन्ध्योपासनादि कर्म सब करे, फिर उन कर्मोंको करके कर्मकी दूर करने-वाली मेरी पूजा करे, मनका संकल्प मुझमें रखे ॥ ११ ॥ अब प्रतिमाके भेद कहते हैंः—शिलाकी, काष्ठकी, धातुकी, मट्टीकी, चन्दनकी, चित्रकी, रेतकी, मानसी, मणिजटित हो ये आठ प्रकारकी प्रतिमाएँ कहीं हैं ॥१२॥ हे प्यारे उद्धव ! भगवान्‌की मानसी पूजा करना हो तो हृदयमें मनोमयी मूर्तिकी पूजा करनी। प्रतिमा दो प्रकारकी हैं, एक तो चर, दूसरी अचर। इनमें स्थिर मूर्तिकी पूजामें आवाहन

अर्चायां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजे ॥ द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत् स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥ पूर्वस्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये ॥ उभयैरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिभिः ॥ १० ॥ संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदे-नाऽऽचोदितानि ये ॥ पूजां तैः कल्पयेत् सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम् ॥ ११ ॥ शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥ ॥ १२ ॥ चलाचलेति द्विविधा प्रविष्टा जीवमन्दिरम् ॥ उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥ अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु भवेद् द्वयम् ॥ स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥ द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ॥ भक्तस्य च यथा लब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥१५॥ स्नानालङ्करणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ॥ स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥१६॥

विसर्जन नहीं है ॥ १३ ॥ शालग्राममें आवाहन विसर्जन न करे और स्थिर प्रतिमामें ही आवाहन विसर्जन करना चाहिये, मिट्टी और चन्दनकी प्रतिमामें तथा चित्रकीमें मार्जनमात्र करे स्नान नहीं करावे ॥ १४ ॥ अब सकाम-निष्काम भेदसे विशेष कहते हैंः—सकामका प्रसिद्ध द्रव्य पूजामें कहते हैं, उनसे मेरी प्रतिमामें पूजा करे, जो भक्त निष्काम हो वह जो सामग्री यथालाभ पावे सो सब मुझे समर्पण करे, न पावे तो वह हृदयमें भावना करके पूजा करे तो वह पूजा मैं उसके भावसे ही स्वीकार कर लेता हूँ ॥ १५ ॥ स्नान अलंकार यह सब प्रतिमामें ही मुझे प्रिय हैं। हे उद्धव ! स्थंडिलमें मन्त्रोंसे ही अपने स्थानमें उन-उन देवताओंका स्थापन है, अग्निमें घृत संयुक्त

हविसे होम करे ॥ १६ ॥ सूर्यके लिये अर्घ्य उपस्थान करे, जलमें तर्पणादि करे, भक्तोंका दिया श्रद्धासे जल मात्र भी मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ १७ ॥ सुगन्ध, फूल, धूप, दीप, अन्नादिक समर्पण करे तो उसकी तो बात ही क्या है ? मेरा भक्त न हो और बहुत समर्पण करे तो मैं उससे सन्तुष्ट नहीं होता ॥ १८ ॥ अब पूजाका प्रकार कहते हैं कि प्रथम तो आप स्नानादिक शौचसे शुद्ध हो, फिर पूजाकी सब समग्री शुद्ध करके रखे, फिरे पूर्वमुख वा उत्तर को मुख करके बैठे, पूर्व मुखको अग्र करके दर्भोंसे आसन बनाकर प्रतिमाके सम्मुख स्थिर होकर पूजा करे ॥ १९ ॥ प्रथम तो न्यास करे फिर मूलमन्त्रोंसे न्यासकृत मेरी प्रतिमाके हाथसे स्पर्श करे, रातके निर्माल्य फूल पत्र जो कुछ हो उसे दूर करे, अपने आगे जलभरा कलश रखे और प्रोक्षणीपात्र रखे उसे चन्दन, तुलसीपत्र तथा पुष्पसे शोधन करे

सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ॥ श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥१७॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ गन्धो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥ शुचिः संभृतसंभारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ॥ आसीनः प्रागुदग् वार्चेदर्चायामथ सम्मुखः ॥१९॥ कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् ॥ कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥ तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ॥ प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥२१॥ पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः ॥ हृदा शीर्ष्णाथ शिखया गायत्र्याचाभिमन्त्रयेत ॥२२॥ पिण्डेवाय्वग्निसंशुद्धहृत्पद्मस्थां परां मम ॥ अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभाविताम् ॥ २३ ॥

॥ २० ॥ इसके उपरान्त प्रोक्षणीके जलसे पूजाका स्थान शुद्ध करे उसीसे द्रव्यका और अपने आपका प्रोक्षण करे फिर पाद्यके लिये उस कलशके जलसे तीन पात्र भरकर रखे उनको भी इन वस्तुओंसे शोधन करे । पाद्यके पात्रमें श्याम दूब, कमल और विष्णुक्रांता आदि पदार्थ डालना, गन्ध, पुष्प अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों यह अर्घ्यके आठ द्रव्य चाहिये । जावित्री, लौंग, कंकोल यह अर्पण करना चाहिये ॥२१॥ पाद्य, अर्घ्य और आचमनके तीन पात्रोंका हृदय, मस्तक, शिखा मन्त्रोंसे तथा गायत्रीसे अभिमन्त्रण करे ॥ २२ ॥ इसके उपरांत देहको कोष्ठगतवायुसे शोधन करे, मूलधारमें स्थित अग्निमें जलावे फिर ललाटमें स्थित चन्द्रमंडल है वहां अमृत प्रवाह करके

अमृतमय करे, वहां हृदयकमलमें स्थित जीवकला श्रीनारायणजीकी मूर्ति है, उसका ध्यान करके जिसका सिद्ध ध्यान करते हैं, उस प्रणवअक्षरके अकार मकारका ध्यान करे ॥ २३ ॥ दीपकके प्रकाशसे घरके समान अपने स्वरूपकी भावनासे जब देह व्याप्त हो तो प्रथम उस देह में ही पूजा करके आप तन्मय हो, इसके उपरांत आवाहन करके प्रतिमामें स्थापित करे, फिर न्यास करनेके पीछे मेरी पूजा करे ॥२४॥ फिर आवाहनसे प्रतिमामें पाद्य, आचमन, अर्घ्यादि सब उपचार करें,धर्मादिक नवशक्ति हैं उनसे मुझे आसन दे॥२५॥ अष्टदल कमल बनावे,केशरसे उज्ज्वल सुन्दर कर्णिकामें वेद आगममें कथित मुक्ति पाने और फलकी सिद्धिके लिये वैदिक तांत्रिक मार्गोंसे मेरी पूजा करे,वह आसन सुख शय्या है, उसके चार कोने हैं चार पांव हैं,वहां धर्म,ज्ञान,वैराग्य,ऐश्वर्य, आग्नेय नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान

तयात्मभूतया पिण्डे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः ॥ आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत् ॥२४॥ पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान् प्रकल्पयेत् ॥ धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम ॥ २५ ॥ पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥ उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥२६॥ सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ॥ मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥ २७ ॥ नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च ॥ महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥२८॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् ॥ स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥२९॥ चन्दनोशीरकर्पूरकुङ्कुमागुरुवासितैः ॥ सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥

इन चारों कोनोंमें रखे ॥२६॥इसके उपरांत सुदर्शन चक्र, पांचजन्य शंख, गदा, खड्ग,बाण, धनुष, हल, मूसल, कौस्तुभमाला, श्रीवत्सादि आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये। यही सुदर्शन आदि आठ आयुधोंका आठ दिशाओंमें और कौस्तुभ आदि तीनको वक्षस्थलमें पूजा करे ॥२७॥ नन्द, सुनन्द, गरुड़ प्रचण्ड, चण्ड महाबल कुमुद, कुमुदेक्षण यह आठ पार्षद हैं इनकी आठों दिशाओंमें पूजा करे ॥ २८ ॥ दुर्गा, विनायक, व्यास विष्वक्सेनको कोनोंमें रखे, गुरुको वामभागमें रखे, देवता इंद्र आदि लोकपालोंको पूर्वसे लेकर अपनी अपनी दिशाओंमें ईश्वरके सम्मुख रखे और अर्घ्य, पाद्य देकर पूजा करे ॥ २९ ॥ चन्दन, उशीर कपूर कुंकुम अगर इन सुगन्धियों करके

रखे, मन्त्रोंके जलसे स्नान करावे। जो वैभव हो तो ये सामग्रियें करे, न हो तो जो हो उससे ही करे ॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाक और महापुरुष विद्या तथा सहस्रशीर्षा और राजाओंकीसी सामग्रियोंसे मेरी पूजा करे ॥३१॥ स्नान करनेके उपरांत वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, मकराकृति कुण्डल, माला, सुगन्ध लेपन आदि करके शृङ्गार करे, इस प्रकार, प्रेमपूर्वक मेरे भक्तको मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ पाद्य, आचमन, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य यह सब श्रद्धासहित मेरे भक्तको मुझे देने चाहिये ॥ ३३ ॥ यदि वैभव हो तो नैवेद्यको अनेक प्रकारकी सामग्री बनावे, गुड़, मिश्री, खीर, घृत, पूरी,पुआ, लड्डू, गेहूँकी खीर, दही आदि व्यंजन करे ॥३४॥ पर्वमें, उत्सवमें अथवा

स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ॥ पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः ॥ अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥ पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान् ॥ धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ॥ संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥ अभ्यङ्गोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् ॥ अन्नाद्यं गीतनृत्यानि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥३५॥ विधिना विहिते कुण्ले मेखलागर्तवेदिभिः ॥ अग्निमाधाय परितः समूहेत् पाणिनोदितम् ॥३६॥ परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथा विधि ॥ प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत मास् ॥ ३७ ॥ तप्तजाम्बूनदप्रख्यैः शंखचक्रगदाम्बुजैः ॥ लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ॥ ३८ ॥

नित्य फुलेलसे अभ्यंग-उबटन, दर्पण, दन्तधावन, स्नान, अन्नादि पाक सामग्री, गीत, नृत्य ये सब करने चाहिये। यदि सदा न हो सके तो पर्वमें वा उत्सवमें तो अवश्य ही करे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार प्रतिमामें पूजा कही है। अब अग्निमें पूजा करते हैंः-विधिपूर्वक कुण्ड बनावे। मेखला, गर्त्त और वेदी कर उसमें अग्नि रखे, प्रथम हाथसे जब एकत्र कर ले तब कुण्डमें रखे ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत कुशा बिछाकर चारों दिशाओंमें छिड़के अन्वाधान नाम कर्म समिधसे होम करे, फिर जल छिड़ककर मेरा ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार मेरे रूपका ध्यान करना चाहिये सो कहते हैं कि जैसा तप्त सुवर्ण लाल होता है, उसी प्रकारका रूप, पीतांबर पहने, शांत रूप, शंख,

भा० ए० ॥९४॥

चक्र, गदा, पद्मसे चारों भुजा शोभायमान ॥ ३८ ॥ प्रकाशित मुकुट, कंकण, मेखला; बाजूबंद, श्रीवत्सका वक्षस्थलमें चिह्न, शोभायुक्त वनमाला धारण किये हुए ॥ ३९ ॥ इस प्रकारके रूपका ध्यान करनेके उपरांत घृत, मिठाई, समिध इत्यादिसे होम करे, फिर आज्यभाग और अघोर नामक होम करे और घृतमें डूबी हविष्य ले ॥ ४० ॥ मूलमन्त्रके द्वारा सहस्रशीर्षाकी ऋचाओंसे धर्मादिक देवताओंके लिये यथायोग्य हवन करे ॥ ४१ ॥ पार्षदोंको बलि दे, नारायणरूप ब्रह्मका स्मरण कर देवताओंके समीप बैठ मूलमंत्र जपे, फिर नैवेद्य दे करके भोजनकी सामग्रियोंका ध्यान करे ॥ ४२ ॥ इसके उपरांत आचमन दे और वह बचा हुआ उच्छिष्ट भाग विष्वक्सेनके

स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवराङ्गदम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥ ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाऽभिघृतानि च ॥ प्रास्याज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४०॥ जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चाऽवदानतः ॥ धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥ ४१ ॥ अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ॥ मूलमन्त्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥४२॥ दत्त्वाऽऽचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ॥ मुखवासं सुरभिमत्ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥ उपगायन् गृणन् नृत्यन् कर्माण्यभिनयन् मम ॥ मत्कथाः श्रावयञ्छृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ॥ स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥ इति शेषं मया दत्तं शिरस्याधायसादरम् ॥ उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥

भा० टी० अ० २७

आगे रख उनकी आज्ञासे आप ग्रहण करे, इसके पीछे मुखवासार्थ सुगन्ध ताम्बूल समर्पण करे ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त मेरे चरित्रोंका गान करे, नृत्य करे, मेरे कर्मोंका अभिनय दिखावे, मेरी कथा मुझे सुनावे और आप भी सुने, एक मुहूर्तभर निश्चलचित्त होकर रहे ॥४४॥ वेद पुराण तथा प्राकृत भाषाके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करे "हे भगवन् ! प्रसन्न हूजिये" इस प्रकार कहके दण्डवत् प्रणाम करे ॥ ४५ ॥ प्रणाम इस प्रकार करे कि मेरे चरणोंपर शिर रख दोनों हाथ बांधकर पीठपर रखे "अपराधीके समान तुम्हारी शरण हूँ; हे प्रभो मुझे शरणमें रख लो, क्योंकि मृत्युरूप जहां ग्राह हैं ऐसे संसारसमुद्रसे भयभीत हूँ" ॥ ४६ ॥ उस प्रकार पूजा करके शेष प्रसाद

पुष्प तुलसीदल मुझे दे, ऐसा ध्यान करे, उसको माथेपर धर आदर पूर्वक विसर्जन कर ज्योति ज्योतिसे मिलावे ॥४७॥ इतने स्थल तथा प्रतिमादिकोंमें कौन मुख्य हैं इसपर कहते हैं कि जिसकी जहां श्रद्धा हो वहां पूजा करे, क्योंकि सर्वभूतोंमें सर्वरूप मैं ही स्थित हूँ और सब भूत मुझमें निवास करते हैं ॥४८॥ इस प्रकार क्रियायोगके मार्ग तथा वैदिक तांत्रिक प्रकारसे पूजा करनेवाले पुरुष मुझसे इस लोक और परलोककी वांछित सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥४९॥ मेरी प्रतिमाकी स्थापना करके दृढ़ मंदिर बनावे पीछे फूलोंका उत्तम बाग बनावे, जहां मेरी यात्राका उत्तसव होता है ॥ ५० ॥ नित्य अथवा बड़े पर्वोंमें पूजा सदा चली जाय, उसके लिये क्षेत्र व पुर लगा दे तो मेरे समान

अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ॥ सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥ एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतांत्रिकैः ॥ अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम् ॥ पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ॥ क्षेत्रापणपुरग्रामान्दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठया सार्वभौमं दानेन भुवनत्रयम् ॥ पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्समतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ॥ भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ॥ वृत्तिं सजायते विड्भुग्वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५४ ॥

ऐश्वर्यको प्राप्त हो ॥ ५१ ॥ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करे तो सब पृथ्वीका राजा हो, मंदिर बनानेवाला त्रिलोकीका राज्य पाता है, पूजा आदि यह सब कृत्य करे तो ब्रह्मलोकको प्राप्त हो और तीनों प्रकार करनेसे मनुष्य मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है ॥५२॥ इस प्रकार पूजाका फल मुक्तितक कहा, अब जो निष्काम हैं उनकी भक्तिका फल कहते हैंः—निरपेक्ष भक्तियोग करके मुझे ही पावे वह भक्ति कैसे हो ? तो कहते हैं कि भक्ति तब हो, जब इस भांति मेरी पूजा करे ॥५३॥ दाताका फल कहा, अब जो देकर फिर छीन लेता है उसका निंदित कर्म कहते हैं कि जो अपनी दी तथा परायी दी हुई ब्राह्मण देवताकी वृत्तिका हरण कर लेता है वह अयुत वर्षतक विष्ठा भोजन करता है ॥ ५४ ॥

जो फलकर्ताको होता है वही सहाय करनेवालेको भी होता है। प्रेरक, अनुमोदनकर्ता इन सबोंको परलोकमें फल होता है, कारण यह है कि यह सब कर्मके विभागी हैं जिसने जितना अधिक किया उसे उतना ही अधिक फल मिलता है, यदि सहाय आदि बहुत कर्म किया हो तो बहुत फल मिलता है॥५५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे पूजा विधिनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ दोहा–अट्ठाइस अध्यायमें, ज्ञानयोग विस्तार । अब वरणौं संक्षेपसो, सज्जन लेहु विचार ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! जो मेरी भक्तिमें अथवा पूजामें रहे सो यह ज्ञान निष्ठा करे, पराये स्वभाव एवं कर्मोकी स्तुति और निंदा न करे, संम्पूर्ण विश्वको

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥ कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे प्रतिमापूजानि० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥ विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति ॥ स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः ॥ मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक्पुमान् ॥ ३ ॥ किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ॥ वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥

प्रकृति पुरुष करके जाने, मुझसे भिन्न न जाने ॥१॥ जो पराये स्वभाव और कर्मकी निंदा करता है अथवा सराहना करता है सो मिथ्याभूत प्रपंचदृष्टि होकर शीघ्रही ज्ञानसे भ्रष्ट हो जाता है ॥२॥ जब इंद्रियगण निद्रासे व्याप्त होता है तब मनसे यह जीव स्वप्न देखता है, मायारूप स्वप्न है पीछे मन भी लीन हो जाता है तब चेतना नष्ट हो जाती है, तब मनुष्य मृतकसमान सुषुप्ति दशाको प्राप्त होता है इसलिये जिसकी बुद्धि इस विश्वको नाना प्रकारसे जानती है वह विक्षेप लयको प्राप्त होता है व स्वप्नमें जो होता है वही भ्रमरूप यह है॥३॥ और जो वस्तु

* शंका—श्रीकृष्णने कहा कि कोई सुन्दर कर्म करे तो उसकी बड़ाई नहीं करना और जो कोई बुरा कर्म करे तो उसकी निन्दा भी नहीं करना, क्योंकि जैसा स्वभाव जिस जीवका होता है वह वैसा ही कर्म करता है तो सुन्दर वचन श्रीकृष्णचन्द्रने किसके लिये कहा, गृहस्थ किसी की निन्दा स्तुति न करे कि विरक्त किसीकी निन्दा स्तुति न करे, यह बात बताओ ?

उत्तर—यह वचन भगवान्ने विरक्तोंके लिये कहा है और विरक्तोंमें जो कोई संन्यासी हो तो उसके लिये भी कहा है, संन्यासियोंमें जो कोई परमहंस हो जाते हैं उनके लिये तो निश्चय ही कहा है । तात्पर्य यह है कि सब साधु महात्माओं को किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करनी चाहिये, यह श्रीकृष्णके वचन गृहस्थ लोगोंके लिये नहीं है ।

ही नहीं केवल भ्रम है उसमें, यह भला हुआ यह बुरा हुआ, इतना भला, इतना बुरा, इसका क्या कहना? इसका धरा हुआ नाम सब मिथ्या है, मनमें ध्यान करते हैं और नेत्रोंसे जो देखते हैं सो सब मिथ्या है, यहां भला बुरा कहे तो सब अपना ही अज्ञान भ्रम है॥४॥ जैसे प्रतिबिम्बकी झांई, सीपीमें रूपेकी बुद्धि मिथ्या है, कार्यको करते हुए उसी प्रकार यह देहादिक भाव मरनेतक भय देते हैं ॥५॥ वेदमें जो सृष्टि कही है सो आपही ब्रह्मविश्वरूप होकर प्रकट होते हैं, आपही उत्पन्न हो आपही सृजते हैं और आपही रक्षा करते हैं, आपही संहार करते हैं और जिसका संहार करते हैं वह आत्मा ही है ॥६॥ आत्मा जो सबसे पृथक् निरूपण किया है, उससे कोई पदार्थ पृथक् नहीं है, यह अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूप जो प्रतीत होता है, सब माया रचित होनेसे निर्मूल है। यह अध्यात्मादि तीन प्रकारका गुणयुक्त संसार आत्मामें

छाया प्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः ॥ एवं देहादयो भावा यच्छन्त्यामृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥ आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ॥ त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥ तस्मान्न ह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः ॥ निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥ इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ॥ न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥ आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह ॥ ९ ॥ उद्धव उवाच ॥ नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ अनात्मसदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥

मायाके द्वारा भासता है ॥७॥ जो पुरुष यह मेरी कही हुई ज्ञान विज्ञानकी चेष्टाको जानते हैं, वे किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करते, सूर्यकी भांति समान होकर लोकोंमें विचरण करते हैं॥८॥ वह कैसे हो! सो प्रकार कहते हैं—जो वस्तु आदि अन्तयुक्त है वह मिथ्या है, यह जानकर प्रत्यक्ष उपजे और नष्ट हुए जगत्को अनुमान वेद और अपने अनुभवसे ऐसे जाने कि जो यह दीखता है सो सब मिथ्या है, यह ज्ञान जब दृढ़ हो जाय तब निःसंग होकर विचरण करे ॥९॥ उद्धवजी बोले कि हे भगवन्! आत्मा स्वयं प्रकाश है ज्ञानरूप है, देह जो जड़ है तो यह संसार किसको लगता है ? हे प्रभो! यह संसार आत्माका है अथवा देहका है ? इसका आत्मा ही द्रष्टा है वही देखता है. देह तो जड़ है आत्मा जड़

नहीं परन्तु देखनेवाला है॥१०॥ आत्मा अव्यय है, सगुण है, शुद्ध है, स्वयं ज्योति है, आवरणरहित है और देह तो जड़ है परन्तु इसका संयोग काष्ठ और अग्नि से है, जैसे अग्नि और काष्ठ भिन्न नहीं है, इसी प्रकार आत्मामें एकता है, इन दोनोंमें संसार किसीको भी संभव नहीं और जो संभव है तो भी अग्नि प्रकाशक है, काष्ठ प्रकाश्य है॥११॥ यद्यपि सत्य है परन्तु तो भी संसारका अविवेक कारण है तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि जहांतक देह, इंद्रिय और प्राणसे आत्माका सम्बन्ध है, वहांतक मिथ्या भी संसार भासता है, यद्यपि आत्माका और इंद्रियोंका सम्बन्ध नहीं परन्तु तो भी अविवेकसे मान लेते हैं॥१२॥ उद्धवजी बोले कि देह तो असत्य है, इसको संसार क्या भासता है? तो इसके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि यद्यपि विषय भोगकी वस्तु पास नहीं परन्तु तो भी संसार नहीं जाता, क्योंकि

आत्माऽव्ययोगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ॥ अग्निवद्दारुवदचिद्देह कस्येह संसृतिः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् ॥ संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥ अथ ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ १३ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एवं प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥ अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोऽभिमानो जीवोऽन्तरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ॥ सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतन्त्रः ॥ १६ ॥

इसका ध्यान विषयोंमें रहता है, इससे संसार होता है और स्वप्नमें अनर्थको देखता है ॥१३॥ अब तर्क करते हैं कि ध्यानसे जो विषयकी स्फूर्ति है वह तो जीवनमुक्तिसे भी निवारण नहीं होती तो मुक्ति किसीको हो ही नहीं सकती! इसके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे शोचनेवालेको स्वप्न भी अनर्थ देता है वही जो जागता रहे तो जागनेवालेको वह अनर्थ नहीं होते ऐसे ही जीवन्मुक्त पुरुषोंको विषयकी स्फूर्ति अनर्थ नहीं कर सकती ॥१४॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, काम, जन्म और मृत्यु वह सब अहंकारसे हैं; आत्माको यह कुछ नहीं लगते॥१५॥ देह इंद्रियों, प्राण और मनका अभिमान कर यह आत्मा ही उनके मध्यमें स्थित जीव है, इसीसे गुण कर्म मय मूर्ति है और इन्हीं गुणकर्मसे

पुरुष बँध रहा है, इसी कारण ईश्वरके अधीन होकर सब संसारमें दौड़ते फिरते हैं, सूत्र और महत्तत्त्व आदि नानारूपसे अनेक प्रकारका कहा है ॥१६॥ इस प्रकारके अहंकारसे जब यह जीव बँध रहा है तब ज्ञानसे मुक्ति होती है सो कहते हैं कि वचन मन प्राणीमें अहंकार निर्मूल है, अज्ञानमें बहुत रूप प्रकाशते हैं, इसलिये गुरुकी सेवा कर तीक्ष्ण ज्ञानरूपखड्ग हाथमें ले इस अहंकार बंधनको काट सङ्ग छोड़ पृथ्वीमें फिरे, इसका यही उपाय है ॥१७॥ अब वही ज्ञान कहते हैं, जिसका साधन करनेवाला वेद है, सो वेदके कहे धर्म करे तब विवेक उत्पन्न हो। जब स्वधर्म, अपना अनुभव, उपदेश, तर्क इतने साधनसे जो उत्पन्न हो तो उस ज्ञानका फल कहते हैं कि योग तप है और कारण है और जगत्के आदि अंत मध्यमें वही है ॥१८॥ नाना भेदके व्यवहार भी ब्रह्ममें ही होते हैं सो कहते हैंः—जैसे सुवर्णके अनेक आभूषण

अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचः प्राणशरीरकर्म ॥ ज्ञानासिनोपासनया शितेनच्छित्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥१७॥ ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ॥ आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥ १८ ॥ यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ॥ तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानाऽपदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत् त्रियवस्थमङ्ग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ ॥ समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येणतदेव सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् ॥ भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेवतत्स्यादिति मे मनीषा ॥ २१ ॥

बनते हैं और उसकी उत्पत्ति प्रथम भी और पीछे भी सुवर्ण ही है, अनेक भांति होनेके उपरांत भी सुवर्ण ही रहता है, क्योंकि सुवर्णसे और कोई वस्तु तो नहीं; इसी प्रकार यह विश्व अनेक रूपसे दीखता है सो भी मैं ही हूँ, ऐसा जानना चाहिये॥१९॥इस प्रकार विश्वका रूप कहकर इस देह इद्रियोंमें जिससे प्रकाश होता है उसका तद्रूप कहते हैंः—इस मनकी तीन अवस्था कारण हैं। सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह गुण हैं, जो सब कार्यकारण कर्त्ता रूप है, अध्यात्म कारण, कार्य अधिभूत, कर्त्ता अधिदैव इस प्रकार त्रिगुणरूप जगत् है, इस प्रकार भी जिससे होता है और जिसके अनुभवसे प्रकाश करता है वह चतुर्थ स्थान ब्रह्म है, इंद्रियादिकके ज्ञान विना जो समाधि आदि विषे हैं वे ही सत्य हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार ज्योतियोंमें भी और भांति न हो सो सत्य है यह कहा, अब जो और प्रकार होता है वह असत्य है इसपर कहते हैं

कि जो वस्तु प्रथम नहीं और पीछे भी नहीं, मध्यमें भी नहीं केवल नाममात्र ही कहनेको है, जिससे प्रकट हुई और प्रकाशी सो वही है, ऐसी मेरी बुद्धि है॥२१॥प्रपञ्चका ब्रह्मसे अभेद कहते हैं कि यद्यपि प्रथम मैं ही हूँ यह जो गुणसे उत्पन्न हुआ विकारका समूह ब्रह्मका कार्य है परंतु तो भी ब्रह्मके प्रकाशसे भासता है, ब्रह्म स्वयंज्योति है, इससे इंद्रिय, विषय, आत्मा, देवता, पञ्चभूत यह सब तत्त्व ब्रह्मरूप होकर भासते हैं, यह विचित्रता ब्रह्मका ही कार्य है ॥२२॥ इस प्रकार ब्रह्म विवेकके हेतुसे और देहादिकमें आत्मबुद्धि त्यागकर गुरुद्वारा अपना सन्देह काटकर सब कामनाओंसे निवृत्त हो आत्माके आनन्दसे सन्तुष्ट होकर रहे ॥२३॥ जो छोड़ने चाहिये उनका स्वरूप कहते हैं:—यह देह आत्मा नहीं पृथ्वीका विकार है, इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवता, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह कोई आत्मा नहीं हैं, क्योंकि अन्नमात्रके

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः ॥ ब्रह्म स्वयं ज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥ एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन ॥ छित्त्वात्मसन्देहमुपारमेत स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३ ॥ नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ॥ मनोऽन्नमत्रं धिषणा च सत्त्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ॥ २४ ॥ समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः ॥ विक्षिप्यमाणैरुत किन्नु दूषणं घनैरुपेतैर्विगते रवेः किम् ॥ २५ ॥ यथा नभो वाय्वनलाम्बुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ॥ तथाऽक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलैरहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥

आश्रयसे रहता है, इससे विकारयुक्त हैं और वायु, जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी यह पंचभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध प्रकृति ये भी आत्मा नहीं, क्योंकि जड़ हैं॥२४॥इस प्रकारके विवेकवत ज्ञानी मुक्त पुरुषका इंद्रियोंका किया हुआ गुण दोष नहीं होता, सो कहते हैं कि जो विवेकी ज्ञानवंत हैं जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हैं उन्होंने गुणरूप इन इंद्रियोंका निग्रह किया हो अथवा न किया हो, उन्हें न तो गुण है न दोष है, जैसे मेघके आकाशमें आनेसे सूर्यको कुछ दोष नहीं लगता और मेघ जानेके उपरांत कुछ गुण भी नहीं लगता ॥ २५ ॥ जो निःसंग हैं और ब्रह्मरूप हो रहे हैं, उनको किसीसे गुणदोष नहीं लगता, जैसे आकाश भूमिमें आते जाते ऋतुके गुण, शीत, उष्णादिक और

वायु, अग्नि, जलसे बन्द नहीं होते इसी प्रकार अक्षय ब्रह्म सत्त्व, रज, तम यह गुण अहंकारके हैं, संसारका हेतु कारणसे नहीं मिलता उनसे भिन्न-भिन्न है ॥२६॥ तथापि वहांतक मायाके गुणोंका संगम करे, जहांतक मेरे दृढ़भक्तियोग करके मनकी विषयाशक्ति दूर न हो जाय॥२७॥ जैसे रोगको भले उपचारोंसे दूर न किया हो तो वारंवार वह रोग उत्पन्न होकर दुःख देता है, उसी प्रकार रागादिक और कर्म जिसके दग्ध नहीं हुए तो और सब विषयोंमें आसक्त मन भी योगी पुरुषको फिर बाधा करता है ॥२८॥ और जो योगसे भ्रष्ट हो गया हो तो उसका क्या उपाय ? तो कहते हैं कि योगीको देवताओंके प्रेरे जो बन्धुरूप भ्रष्ट करते हैं, योगके भ्रष्ट होनेसे फिर पूर्व अभ्यासबलसे

तथापि सङ्गः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् ॥ मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजोनिरस्येत मनः कषायः ॥ २७ ॥ यथामयोऽसाधु चिकित्सितो नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् ॥ एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्वसंगम् ॥ २८ ॥ कुयोगिनो ये विहितान्तरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ॥ ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युञ्जन्ति योगं न तु कर्मतन्त्रम् ॥ २९ ॥ करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केनाप्यसौ चोदित आ निपातात् ॥ न तत्र विद्वान् प्रकृतौ स्थितोऽपि निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्वा ॥ ३० ॥ तिष्ठन्तमासीनमुत व्रजन्तं शयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम् ॥ स्वभावमन्यत् किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं नानुमानेन विरुद्धमन्यत् ॥ न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥

योग करें परंतु जो कर्ममार्गके धर्म न करें, केवल धर्मकी ही साधना करें ॥ २९ ॥ जो किसीसे प्रेरित हो तो मरने तक कर्मोंसे सुखःदुख पाता है; परंतु जो विवेकी हो तो देहमें स्थित आत्मसुखके अनुभव करके तृष्णासे निवृत्त हुए विकारको प्राप्त नहीं होता ॥३०॥ जिसकी मति आत्मामें स्थित है वह खड़े होते, चलते, सोते, मूत्र करते भोजन करते और भी स्वभावसे दर्शन आदिक कर्म करते देहको नहीं जानता ॥३१॥ जो इंद्रियवाले हैं वे विना देखे क्यों रहेंगे ? इसपर कहते हैं कि जो विवेकयुक्त हैं वे यद्यपि इन इंद्रियोंको विषयोंको देखते हैं परंतु तो भी अनुमानसे विरुद्ध जान आत्मासे और वस्तुसे मानते हैं, वे स्वप्नकी भांति सब मिथ्या जानते हैं, जैसे जागनेपर स्वप्नके

विषय सब आपही अंतर्धान हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! आत्मामें मुक्तावस्थादिमें भी विकार नहीं होता, क्योंकि वृद्धावस्थामें गुण और कर्मोंसे विचित्र अज्ञानके कार्यरूप देहेन्द्रियादि अध्याससे अपने स्वरूपमें मिले हुए माने गये हैं, वही देहेन्द्रियादि मुक्तावस्थामें ज्ञानसे निवृत्त हो जाते हैं यह आत्मा किसीसे त्याग और ग्रहण नहीं किया जाता, यदि मुक्तिको क्रियाका फल माने तो आत्मामें विकार होता है, इससे मायिक पदार्थोंकी निवृत्तिका होना ही मोक्ष है। बंध मोक्ष आत्माका स्पर्श नहीं करते, इस कारण आत्मामें निर्विकार है ॥ ३३ ॥ जैसे प्रथमसे ही विद्यमान घटादिक पदार्थोंमें कुछ विकार नहीं करता, इसी प्रकार मेरी अध्यात्म विद्या मनुष्योंके मनके अन्धकारको दूर करती है, परंतु आत्मामें कुछ विकार नहीं होता, आत्मा तो जिस स्थितमें स्थित है, उसीमें रहता है ॥ ३४॥ यह स्वयंप्रकाश

पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविमुक्तमङ्ग ॥ निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥ यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते ॥ एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥ एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ॥ एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥ ३५ ॥ एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले ॥ आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि ॥ ३६ ॥ यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् ॥ व्यर्थेनाऽप्यर्थवादोयं द्वयं पण्डितमानिनाम् ॥ ३७ ॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः ॥ उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥ ३८ ॥

जन्मरहित ज्ञान विज्ञानसे भी जाना नहीं जाता। महान् प्रतापयुक्त किसी विकारसे न बढता है न घटता है, किन्तु सदा एक रूप रहता है और सबोंका प्रकाशक एक है, वह दूसरेसे रहित है,एवं जिसमें वचन की गति नहीं है। श्रुति भी कहती है कि जब आगे गम्य नहीं, वहांसे मन समेत वाणी फिर आती है, जिसके प्रेरे वाणी और प्राण कार्य करते हैं ॥ ३५ ॥ केवल भेद रहित आत्मा है, उसमें भेद देखना इतना ही भ्रम मनका है अपने आत्माके विना इस भेदका आश्रय है ही नहीं ॥ ३६ ॥ और जो भेद मानते हैं उनका मन दुःखित है क्योंकि रूप और नामसे जो वस्तु कही जाती है, वह पञ्चभूतरूप है। देह, इंद्रिय दूसरा पदार्थ है यह मत पंडित लोगोंका वाद है तत्त्व जाननेवालोंके मतमें वस्तु विचारकर देखो तो सब मिथ्या है ॥३७॥ जो कच्चा योगी योग साधता है उसे उसके देहसे उठे रागादिक उप-

द्रव करके योगभ्रष्ट कर देते हैं उनको मैंने यह आगे लिखी विधि कही है ॥३८॥ कि योगकी धारणासे चन्द्रमा तथा सूर्यके तापको जीते, आसनसे प्राणवायु और धारण वायुसे वात रोग जीते । तप, ग्रह, ओषधीसे पापग्रहकृत सब अशुभ दूर करे ॥ ३९ ॥ चित्तका दोष मेरा ध्यान करके दूर करे, मेरे नाम कीर्त्तन आदिसे काम क्रोधादिकोंको दूर करे और कितने ही योगीश्वरोंकी सेवा करके सब दंभ अहंकारादिक अशुभोंको शनैः शनैः दूर करे ॥ ४० ॥ कितने ही योगीश्वर इस देहको समर्थ तरुणतामें अनेक उपायोंसे स्थिर करके परकाया-प्रवेशकी सिद्धिके लिये योग करते हैं, ज्ञानकी निष्ठा नहीं करते ॥ ४१ ॥ और जो कुशलज्ञाता हैं, सो उनका आदर नहीं करते क्योंकि देह अनित्य है, इस कारण निश्चय मनसे योग करके इसके रखनेका श्रम निरर्थक है, जैसे वट वृक्षके फल मिथ्या हैं ॥ ४२ ॥ यद्यपि योग

योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः ॥ तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः ॥ योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥ ४० ॥ केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ॥ विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥ ४१ ॥ नहि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ॥ अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥ योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पामियात् ॥ तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान्योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥ योगचर्यामिमां योगी विचरन्मद्व्यपाश्रयः ॥ नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० म० एका० ज्ञानयोगनि० नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ उद्धव उवाच ॥ सुदुश्चरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ॥ यथाञ्जसा पुमान्सिद्ध्येत्तन्मे ब्रूह्यञ्जसाऽच्युत ॥ १ ॥

सिद्धिका नित्य सेवन करते करते प्राणायामादिक प्रभावसे शरीरमें हो ही जाता है, परन्तु तो भी बुद्धिमान् मेरे भक्त पुरुषको समाधि त्यागकर इस शरीरकी सिद्धिपर विश्वास करना योग्य नहीं ॥ ४३ ॥ इसलिये योगीजनोंको चाहिये कि मेरे आश्रयसे यह योग करे तो विघ्न नहीं होता । जब निस्पृह होनेपर आत्माका अनुभव प्राप्त हो और मेरे आश्रयसे सब विघ्न निवृत्त हों तो वह योगी आनन्दसे परिपूर्ण होता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे ज्ञानयोगनिरूपणं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ दोहा—उनतिसवें अध्यायमें, भक्तियोग विस्तार । प्रथम निरूपण कर चुके, अब संक्षेप विचार ॥ उद्धवजी बोले कि

हे श्रीकृष्ण ! यह तुमने योगकी क्रिया कही सो जिस पुरुषका मन वशमें नहीं उसको तो अतिकठिन लगती है, क्योंकि वे अज्ञानी हैं इस लिये जिससे शीघ्र सिद्धि हो और सुगम हो सो उपाय मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे कमलनेत्र ! बहुधा जो योग करते हैं वे मनका निग्रह करनेमें अत्यन्त क्लेसको प्राप्त होते हैं, तो भी मनका निग्रह नहीं होता तो थकित हो विषादयुक्त होते हैं ॥२॥ योगमें अति क्लेश है, जो परमहंस हैं वे सार असारको जानते हैं। हे कमलदललोचन ! जो तुम्हारे चरणारविन्दोंका आश्रय करते हैं तो यह चरणारविंद ही उनके आनंदको पूर्ण करते हैं। हे भगवन् ! आप भक्तोंको सुखरूप हो और जो योगीश्वर तुम्हारी मायासे मोहित योग कर्म करके अभिमानको धारण करते हैं वे सिद्ध नहीं होते ॥३॥ हे श्रीकृष्ण ! हे सबके बन्धु ! जो अनन्यशरण तुम्हारे दास हैं, उनके तुम वश हो इसमें आश्चर्य नहीं जैसे नन्द

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मनः ॥ विषीदन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात आनन्द-दुघं पदाम्बुजं हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचनं ॥ सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमी विहिता न मानिनः ॥ ॥ ३ ॥ किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ॥ योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥ तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ॥ को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥ नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ॥ योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥

यशोदाके घर खेलते फिरे, रामरूप धारणकर वन्दरोंसे मित्रता की, ब्रह्मा आदि देवताओंके शोभासंयुक्त-मुकुटोंके अग्रभागने तुम्हारे चरणा-रविन्दका सिंहासन पीडित किया है ऐसे तुम हो ॥ ४ ॥ तुम भक्तोंकी सेवा जानते हो, सबके आत्मा हो, इसी कारण अतिप्रिय हो, ईश्वर हो जो पुरुष केवल तुम्हारे ही आश्रय रहते हैं उनको सब अर्थ देते हो, प्रह्लाद आदि भक्तोंमें किया उपकार जान कौन आपको छोड़ सकता है ? यदि कहो कि क्या फूलके लिये मेरा सेवन करे ? तो कहते हैं नहीं नहीं, और देवता अथवा धर्मज्ञानादि साधन तो ऐश्वर्य अथवा मोक्षके अर्थ नहीं हैं इसलिये कौन भजे ? कहते हैं कि साधन विना मोक्षादिका फल कैसे हो ? तो तुम्हारे चरणारविन्दकी रेणुके सेवन करनेवालेको क्या फल नहीं होता ? अर्थात् जो चाहते हैं वही मिलता है ॥५॥ अब कहते हैं कि और भजनकी बात तो दूर है, तुम्हारे किये

उपकारका तुम्हारे विषे आत्मनिवेदन करे तभी प्रत्युपकार हो और प्रकारसे नहीं होता सो कहते हैंः—आनन्दबद्ध ब्रह्मके ज्ञाता तुम्हारे उपकारको स्मरण करके ब्रह्माकी आयुसे भी तुम्हारे उपकारसे उऋण नहीं हो सकते । उपकारको कहते हैं कि जो तुम बाहर गुरुरूप हो और मध्यमें अन्र्यामीरूपसे प्राणियोंकी वासना दूर करनेको अपना आनन्दरूप प्रकट करते हो हम इसका प्रत्युपकार क्या करें ? ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित् ! जब अनुरक्तचित्त उद्धवने इस प्रकार पूछा तब ईश्वरके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि जो भगवान् सत्त्व, रज, तम, इन शक्तियोंसे ब्रह्मादिक तीन मूर्ति धारण करते हैं और जगत जिनका खिलौना है ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! मैं सुमंगल अपने धर्म तुमसे कहूँगा जिन धर्मोंको श्रद्धासहित करनेसे यह मनुष्य

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ॥ गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमङ्गलान् ॥ याञ्छ्रद्धयाऽऽचरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥ कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ॥ मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥९॥ देशान्पुण्यान्संश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ॥ देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥१०॥ पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ॥ कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ॥ ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥

दुर्जय मृत्युको भी जीत लेता है ॥ ८ ॥ मेरा स्मरण करते करते शनैः शनैः सब कर्म करे, पर सब कर्म मेरे लिये करे अर्थात् मुझमें ही मन तथा बुद्धि अर्पित करे तथा धर्ममें ही आत्माकी और मनकी प्रीति रखे ॥ ९ ॥ जहां मेरे भक्त साधु पुरुष निवास करते हों उन्हीं पुण्यदर्शनोंमें जाकर वास करे और देव असुर, मनुष्योंमें जो मेरे भक्त हैं उनके कर्मोंका आश्रय करे ॥ १० ॥ उन भक्तोंसे मिलकर उत्सव करे, अथवा अलग आपही सब यात्रा उत्सव करे, नृत्य गीत सब करावे, महाराजके छत्र चामरादि उपचारसे सब करावे॥११॥ निर्मलचित्त पुरुष सब भूतमात्रमें अपनेमें तथा बाहर भीतर मुझे ही देखे, मैं आकाशकी नाई असंग होनेके कारण सबमें

स्थिर भी आवरणरहित और बाहर भीतर सदा पूर्ण हूँ ॥ १२ ॥ जो इस प्रकार मनमें स्थित हो सब प्राणिमात्रको मेरा ही भाव जानकर पूजे, वही पंडित है ॥१३॥ ब्राह्मण, नीच जाति, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, अग्निके कणिका यह क्रूर हों वा न हों इनमें जो समदृष्टि हो वही पंडित है ॥ १४ ॥ मनुष्योंमें मेरे भावकी भावना रखे तो शीघ्र ही पुरुषके ईर्षा, निन्दा, तिरस्कार, अहंकार यह सब निश्चय नष्ट हो जावें ॥ १५ ॥ इसलिये अन्तर्यामी ईश्वरकी दृष्टिसे सबको प्रणाम करे हँसी करते अपने मित्रोंको छोड़ और अपनी ऊँच दृष्टि लज्जा छोड़ भूमिको दण्डवत करे । कूकर, चांडाल, बैल, खर, नीचोंको भी मेरी बुद्धिसे प्रणाम करे ॥१६॥ जबतक सब भूतमात्रमें मेरा भाव न उत्पन्न हो तबतक पुरुषको

इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ॥ सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ १३ ॥ ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ॥ अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः ॥ १४ ॥ नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ॥ स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥ विसृज्य स्मयमानान्स्वान्दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमावश्वचाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥ यावत्सर्वेषु भूतेषु यद्भावो नोपजायते ॥ तावदेवमुपासीत वाङ्मनः कायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥ सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ॥ परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥ अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥ न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ॥ मया व्यवसितः सम्यङ् निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २० ॥ यो यो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ॥ तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥ २१ ॥

चाहिये कि वाणी, मन और देहकी प्रवृत्तिसे मेरी उपासना करे ॥१७॥ इस प्रकार उपासना करके उसे सब विश्व ब्रह्मरूप ही भासता है, आत्मविद्यासे सर्वत्र ब्रह्म ही देखते सब सन्देह दूर हो जाते हैं और आप सबसे विरक्त हो जाता है ॥१८॥ यह सब पक्षोंसे निश्चय किया हुआ मेरा उत्तम पक्ष है कि देह, प्राण, मनसे सब प्राणिमात्रमें मेरा भाव हो ॥ १९ ॥ हे उद्धवजी ! यदि निष्काम मेरे धर्म करते-करते कुछ भूल चूक हो जाय तो भी हानि नहीं क्योंकि यह उत्तम धर्म, निर्गुणपनके लिये मैंने निश्चय किया ॥ २० ॥ हे साधुश्रेष्ठ ! जो व्यर्थ भी

लौकिक परिश्रम करते हैं उसे भी जो मुझे समर्पण करे, फल वांछा विना मेरे लिये करे, जैसे भय शोकादिक दौड़ना रोना एवं अन्य क्लेश व्यर्थ हैं तो भी मुझे समर्पण कर देनेसे धर्म हो जाते हैं ॥२१॥ वही बड़े बुद्धिमानोंको बुद्धि और चतुरोंको चतुरता है जो असत्त्वरूप इस मनुष्य देहसे सत्यरूप मुझे उस जन्ममें प्राप्त हो ॥२२॥ हे उद्धव ! यह ब्रह्मवादका संपूर्ण संग्रह मैंने तुमसे संक्षेप और विस्तारसहित वर्णन किया, जो कि देवताओंको भी दुर्लभ था ॥२३॥ वारंवार मैंने तुझसे प्रकट करके युक्तियोंसे यह ज्ञान कहा है, क्योंकि यह ब्रह्मवाद रीतिका ज्ञान जानकर पुरुष सन्देहरहित और मुक्त हो जाता है ॥२४॥ जो इसका स्मरण रखे, कहे, सुने अथवा पढ़े तो भी इसका फल होता है हे

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ॥ यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम् ॥ २२ ॥ एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः ॥ समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥ अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्ट-युक्तिमत् ॥ एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥ सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ॥ सनातनं ब्रह्म-गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥ य एतन्मम भक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम् ॥ तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमा-त्मना ॥२६॥ य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ॥ स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥ २७ ॥ यः एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ॥ मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥ अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समव-धारितम् ॥ अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥ नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ॥ अशुश्रुषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥

उद्धव ! मैंने यह तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दिया इसे जो कोई चित्तसे धारण करे वह नित्य वेदमें भी गोप्य परब्रह्मको प्राप्त होगा ॥२५॥ जो पुरुष मेरे भक्तोंसे विस्तार सहित यह ज्ञान कहता है उसे मैं अपना आत्मातक दे देता हूँ, क्योंकि वह भक्तोंका दाता है ॥२६॥ जो कोई परममित्र साधकको इस ज्ञानरूपी दीपकसे मेरा दर्शन करावे सो दिन प्रतिदिन शुद्ध होता है ॥२७॥ जो मनुष्य इसको श्रद्धासहित नित्य सावधान होकर श्रवण करते हैं सो मुझमें परमभक्तिको प्राप्त होकर कर्मोंसे बद्ध नहीं होते ॥ २८ ॥ हे उद्धव ! हे मित्र ! तूने यह ज्ञान अच्छे प्रकार मनमें धर लिया है इसलिये तेरे मनका मोह शोक गया ॥२९॥ बुद्धिमान्को चाहिये कि यह ज्ञान दंभी नास्तिक धूर्त्त इत्यादि और जिससे

सुननेकी इच्छा न हो उसे कभी न सुनावे ॥३०॥ हे उद्धव ! जो इन दोषोंसे रहित हो, ब्रह्मण्य हो, अतिप्रिय साधु हो, शुद्ध हो उससे यह ज्ञान कहना चाहिये, जो भक्त हो तो स्त्री शूद्रसे भी कहे ॥ ३१ ॥ जाननेवालेको इसके जाननेके उपरांत फिर कुछ जाननेकी आवश्यकता नहीं, जैसे सुस्वादु अमृत पीनेके पीछे और पीनेके योग्य नहीं रहता ॥३२॥ भक्तोंको और साधना कुछ नहीं चाहिये क्योंकि भक्तोंका तो सब मैं ही हूँ, ज्ञानसे मोह होता है विहित कर्म करनेसे धर्म होता है, योग करे, अणिमादिसिद्धि हो सहजके कर्म करनेसे काम हो, खेती करे अर्थ हो, दण्डनीति करे ऐश्वर्य हो, और इन साधनोंसे चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। हे उद्धव ! सब पुरुषार्थरूप तुमको मैं हूँ इसलिये

एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ॥ साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥ ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे ॥ यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥ मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ॥ तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदुत्तमश्लोकवचो निशम्य ॥ बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो न किञ्चिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः ॥ कृताञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥

तुमको और कुछ नहीं करना चाहिये, केवल मेरी शरण रहो ॥३३॥ जब यह मनुष्य सब कर्मोंको छोड़कर मुझे आत्म निवेदन करे तब मेरे श्रेष्ठ करनेके योग्य होता है उसीसे फिर मोक्षको प्राप्त होता है और निश्चय मेरे समान ऐश्वर्यके योग्य हो जाता है ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत राजा परीक्षित् ! जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सफल योगमार्गका स्वरूप दिखाया तब उत्तम यशवाले श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर हाथ जोड़ प्रीतिपूर्वक गद्गदकण्ठ हो नेत्रोंसे अश्रुपात करते गला रुक जानेके कारण उद्धवजी कुछ भी न बोल सके ॥३५॥ फिर अतिस्नेहसे विह्वल चित्तको धैर्यसे थामकर अपनेको कृतार्थ मानने लगे। इसके उपरांत हाथ जोड़ माथेसे

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्पर्श कर उद्धवजी बोले ॥३६॥ कि हे ब्रह्मादिकोंके उत्पन्नकर्त्ता ! मैंने जो मोहरूपी अन्धकारका आश्रय किया था सो तुम्हारे समीप जाता रहा, जैसे सूर्यसे अन्धकार, शीत भय नष्ट हो जाते हैं * ॥ ३७ ॥ तुमने अति दया करके मुझ अपने सेवकको विज्ञानदीपक दिया इस कारण कौन तुम्हारे उपकारका ज्ञाता है, अब तुम्हारे चरणारविन्द मूलको छोड़कर और मैं किसकी शरण जाऊँ ?॥३८॥ उद्धवजी बोले कि हे प्रभो ! जो सृष्टिकी वृद्धिके लिये तुमने अपनी मायासे मेरा स्नेहरूप पाश दाशार्ह, वृष्णि,

उद्धव उवाच ॥ विद्रावितो मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ॥ विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥ ३७ ॥ प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकम्पिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ॥ हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥ वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यन्धकसात्वतेषु ॥ प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥ नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम् ॥ यया त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ॥ ४० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ॥ तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥

अन्धक और सात्वतोंमें बढ़ाया था सो आत्मज्ञानरूप शस्त्रसे तुमने ही काटकर दूर कर दिया॥३९॥हे महायोगिन् ! तुमको प्रणाम है; मैं आपकी शरण हूँ मुझे इतनी शिक्षा दो कि मेरी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें मूढ़ प्रीति हो ॥ ४० ॥ यह बात उद्धवजीकी अंगीकार करके लोकसंग्रहके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी कि हे उद्धव ! मेरी यह आज्ञा है कि तुम बद्रिकाश्रमको जाओ, क्योंकि वहां मेरे चरणतीर्थ

* शंका—श्रीकृष्णसे उद्धवने कहा कि महाराज ! मेरा मोह अब मेरे शरीरको छोड़कर भाग गया, मोहसे अब मैं छूट गया, तो फिर यमुनाके तटपर विदुरजीने उद्धवसे श्रीकृष्णका वृतान्त पूछा तो क्यों मोहग्रस्त हो गये ? श्रीकृष्णका वृतांत भी पूरा नहीं कह सके, हाल भी कुछ देर पीछे कहा, जो कोई कहे कि ज्ञान पानेके पीछे फिर मोहने घेर लिया होगा तो सत्य है, जो बहुत दिन हो गये होते तो आश्चर्य नहीं था, परंतु ज्ञान पाकर कृष्णके पाससे दो अथवा तीन ही दिन बीते थे जब विदुरजीका समागम हुआ था यह शंका है ।

उत्तर—निस्सन्देह उद्धवजीका मोह नाश हो गया था परंतु मनुष्यके स्वभाव करके क्षणक्षणमें मोहके वश होकर श्रीकृष्णका स्मरण कर फिर मोहको त्याग दिया और श्रीकृष्णका मोह भी इसलिये किया कि श्रीकृष्ण ही भक्ति ओर मुक्तिके देनेवाले हैं, इसलिये यमुनाके निकट उद्धवको मोह प्राप्त हुआ, कुछ अज्ञानपनसे मोह उत्पन्न नहीं हुआ ।

गंगाजलसे स्नान आचमन करके शुद्ध होंगे ॥४१॥ हे उद्धव ! अलकनन्दाके दर्शनसे सफल हो पाप दूर कर वल्कल वस्त्र पहन वनके फल खाकर सुखमें निष्ठ होओ ॥ ४२ ॥ वहां इंद्रियोंके निग्रहसे शीत, उष्ण सहकर सुशील शान्त हो, ज्ञान विज्ञानसे संयुक्त समाधिमें बुद्धि स्थिर करो ॥ ४३ ॥ और मुझसे तुमने जो-जो सीखा है, तथा अच्छी भांति विचारा है उसकी भावना करते आवेशयुक्त वचन चित्तसे मेरे धर्ममें तत्पर हो, इन तीनों गुणोंकी गतिका अतिक्रम करके आगे मुझे प्राप्त होंगे ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कहनेसे उद्धवजी प्रदक्षिणा कर माथा भगवान्के चरणोंमें रख अश्रुपातके जलसे भगवान्के चरणोंको अभिषेक

ईक्षयाऽलकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः ॥ वसानो वल्कलान्यङ्ग वन्यभुक् सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥ तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः ॥ शान्तः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥ मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ॥ मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ॥ अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ॥ शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥ सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ॥ कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमन्तर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् ॥ यथोपदिष्टां जगदेकबन्धुना तपः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ॥ ४७ ॥ य एतदानन्दसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ॥ कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥

करने लगे । यद्यपि सुखदुःख रहित हुए हैं; परन्तु तो भी चलनेके कारण स्नेहसे कोमलबुद्धि हो गये ॥ ४५ ॥ अत्यन्त दुस्त्यज स्नेहके वियोगसे अति अधीर हो अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके छोड़नेको समर्थ न हुए और इसके उपरांत अति कष्ट पाकर फिर अपने स्वामीकी पादुका माथेपर धर प्रणाम करके चले; इस प्रकार वारम्वार प्रणाम करके चले ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त अपने अन्तःकरणमें श्रीकृष्णको धारण कर परम भागवत उद्धव बद्रिकाश्रमको चले गये और जगद्बन्धु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे इस भांति उपदेश पाकर उसी भांति तपस्याको साध हरिकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ जिनके चरणकमलोंका योगीश्वर सेवन करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

जीने यह ज्ञानरूप अमृतआनन्द समुद्र परमभागवत उद्धवजीसे कहा। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक इसका सेवन करते हैं, वे संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ जिन वेदकर्त्ता भगवान्ने संसारका भय दूर करनेके लिये एक ज्ञानरूप वेदसार अमृतका भ्रमरकी भांति उद्धार किया ? एक अमृत तो समुद्रसे निकाला था सो तो देवताओंको दिलाया, अब दूसरा यह वाणीरूप अमृत अपने सेवक तथा भक्तोंको पिलाया ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां उद्धवबदरीप्रवेशो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ दोहा–तीसमाहिं वैकुण्ठकी, सुरति करी करतार। मुसलयुद्धमिस सबनको, क्षणमें कियो सँहार ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन्! परमभागवत उद्धवजीके वन चले जानेपर विश्वके रक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्या किया ? ॥ १ ॥

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥ अमृतमुदधितश्चापाययद् भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भक्तियोगसंग्रहो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ राजोवाच ॥ ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥ द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥१॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ॥ प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥२॥ प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् ॥ यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं न मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान्समुत्थितान् ॥ दृष्ट्वाऽऽसीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥

अपने कुलको ब्रह्मलोकव्याप्त देख सबके नेत्रोंके परमप्रिय शरीरको यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रने कैसे छोड़ दिया ? ॥ २ ॥ जिस रूपमें लगे हुए नेत्रोंको स्त्रियें खैंचनेको समर्थ न हुईं; जो स्वरूप कर्ण द्वारा हृदयमें प्रविष्ट हुआ और साधुपुरुषोंके मनमें तो लिखासा रहता है; जिस रूपकी शोभा वर्णन करनेसे पंडितोंकी वाणीमें प्रीति उत्पन्न होती है। अर्जुनके रथपर स्थित जिस स्वरूपको देखकर भारतमें मरे युद्ध विषे जो योद्धा थे, वे सारूप्यमुक्तिको प्राप्त हुए ॥३॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्ग में सूर्यके मंडल आदिभूमिमें कम्पादि अन्तरिक्षकी दिशामें दाहादिक उठने लगे, बड़े बड़े उत्पातोंको देख सुधर्मा सभामें बैठे यादवोंसे यह कहने लगे ॥४॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! यह छोर मृत्युको बतानेवाले उत्पात उठ रहे हैं इसलिये अब हमको दो घड़ी भी द्वारकामें वास करना योग्य नहीं ॥ ५ ॥ इस कारण सब स्त्री, बालक और वृद्ध शंखोद्धारतीर्थोंको जाओ और हम भी प्रभासक्षेत्रको जायँगे जहां पश्चिमवाहिनी सरस्वती हैं ॥ ६ ॥ वहां स्नानसे पवित्र हो उपवासकर भलीभांति सावधानता से स्नानकर चन्दन और पूजाकी सामग्रियोंसे देवताओंका पूजन करेंगे ॥७॥ बड़े भाग्यवान् ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण वस्त्र और हाथी घोड़े रथोंसे पूजेंगे ॥ ८ ॥ निश्चय करके यह विधि अरिष्टकी नाशक है और उत्तम मंगलका आश्रय है, क्योंकि प्राणियोंमें देवता ब्राह्मण, गौकी पूजा कल्याणका हेतु है ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ॥ मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शङ्खोद्धारं व्रजन्त्वितः ॥ वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ॥ देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययनावयम् ॥ गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् ॥ देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥९॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ॥ तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥१०॥ तस्मिन्भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः ॥ चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ॥ दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ॥ कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ॥ धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥

यादवोंमें सब वृद्ध इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका-वचन सुन "ऐसे ही है" इस भांति स्तुति कर नावों द्वारा समुद्र उतरकर सब प्रभास क्षेत्रको चले गये ॥१०॥ यादवोंके देव भगवान्के उपदेशको सब यादव मङ्गलों सहित परमभक्तिसे प्रभासक्षेत्रमें करने लगे ॥११॥ इसके उपरांत प्रभासक्षेत्रमें दैवसे हतबुद्धि यादवोंने सुर मदिराका महापान किया, जिस मदिराके रससे बुद्धि दुष्ट हो जाती है ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित मद्यपानसे अतिगर्वयुक्त चित्तवाले यादवोंका अति बड़ा कोलाहल हुआ ॥ १३ ॥ इसके उपरांत

अत्यन्त क्रोधित हो वधको उद्यत यादव समुद्र तटपर धनुष, खड्ग, गदा, तोमर और ऋषियोंसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ दुर्मद यादव चलायमान ध्वजावाले रथ, हाथी, खच्चर, ऊँट, बैल और भैंसोंसे परस्पर मिलकर बाणोंसे मारने लगे, जैसे वनमें हाथी दांतोंसे परस्पर हाथियोंको मारते हैं ॥ १५ ॥ असहनताको प्राप्त हो प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर तथा भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्रामजित् अतिदारुण होकर गद श्रीकृष्णका भाई, एक श्रीकृष्णका पुत्र सुमित्र और सुरथ ये अति क्रूरस्वभाववाले मत्सरसे व्याप्त होकर परस्पर घोर युद्ध करने लगे ॥१६॥ इसी प्रकार और भी निशठ, उल्मुक, सहस्रजित्, शतजित्, भानु आदि यादव जो भगवान्की इच्छासे

पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि॥ मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदान्यहञ्छरैर्दद्भिरिव द्विपा वने॥१५॥ प्रद्युम्नसाम्बौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ॥ सुभद्रसङ्ग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः॥१६॥अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः॥अन्योऽन्यमासाद्य मदान्धकारिता जघ्नुर्मुकुंदेन विमोहिता भृशम्॥१७॥ दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोजसात्वता मध्वर्बुदामाथुरशूरसेनाः॥ विसर्जनाः कुकुराः कुन्तयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥१८॥ पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ॥ मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिर्ज्ञातीस्त्वहन्ज्ञातय एव मूढाः॥१९॥शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु॥शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्नुरेरकाः ॥२०॥ ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः॥ जघ्नुर्द्विषस्ते कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥२१॥ प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ॥ हन्तु कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥

मोहित हो गये थे; वे वारुणीके पानसे मत्त और अन्धप्राय हो परस्पर युद्ध कर करके लड़ने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधुके वंशके और अर्बुद मथुरा शूरसेन देशके विसर्जन, कुकुर, कुन्ति देशके स्नेहको तोड़ परस्पर मारने लगे ॥१८॥ पुत्र पितासे और भाई भानजेसे, धेवतोंसे काकाओंसे, मित्रोंसे, सुहृदोंसे युद्ध करने लगे, मूर्ख जाति जातियोंको ही मारने लगे ॥ १९ ॥ बाणोंसे हीन होनेके उपरांत धनुषके टूटनेसे शस्त्रोंके छिन जानेसे पटेरोंको ग्रहण करने लगे ॥ २० ॥ वह पटेरे यादवोंके हाथमें लेते ही वज्रके समान दुधार खड़े हो गये उससे यादव वैरियोंको मारने लगे ॥ २१ ॥ और हे परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें रोका तब वे

श्रीकृष्ण और बलदेवजीको वैरी मानकर मारनेकी बुद्धिसे यादव मोहित हो शस्त्र ले सम्मुख आये ॥२२॥ हे कुरुनन्दन ! इसके उपरांत दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो खड्गरूप पटेरोंको हाथमें लेकर युद्धमें विचरते हुए मारने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापसे व्याप्त श्रीकृष्णकी मायासे मोहित आत्मा यादवोंको स्पर्धासे उत्पन्न हुए क्रोधने क्षय कर दिया, जैसे बांसका अग्नि वनका क्षय कर डालता है ॥ २४ ॥ इस प्रकार अपना सब कुल नाश हो जानेके पीछे एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही केवल अवशेष रह गये, तब श्रीकृष्णने जाना कि अब भूमिका भार उतर गया ॥२५॥ महात्मा बलदेवजीने समुद्रके तटपर परम पुरुषके ध्यानरूप योगसे आपको आपमें युक्त कर मनुष्यलोक छोड़ दिया ॥२६॥ इसके उपरांत

अथ तावपि संक्रुद्धा वुद्यम्य कुरुनन्दन ॥ एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौ जघ्नतुर्युधि ॥२३॥ ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ॥ स्पर्धा क्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥ २४ ॥ एवं नष्टेषुसर्वेषु कुलेषुस्वेषु केशवः ॥ अवतारितो भुवो भार इतिमेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ॥ तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान् देवकीसुतः ॥ निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥२७॥ बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ॥ दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः ॥२८॥ श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ॥ कौशेयाम्बरयुग्मेन परिवीतं सुमङ्गलम् ॥ २९ ॥ सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् ॥ पुंडरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकाङ्गदैः ॥ हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ॥ ३१ ॥

श्रीदेवकीजीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीका चलना देख पीपलका आश्रय ले मौन होकर भूमितलमें बैठ गये ॥२७॥ शोभायमान चतुर्भुजरूप धारण किये अपनी कांतिसे दिशाओंका अंधकार दूर करते निर्मल अग्निसे दिखायी देने लगे ॥ २८ ॥ अब चतुर्भुज उनका वर्णन करते हैंः—श्रीवत्सका चिह्न, मेघके समान श्याम, सुवर्णके समान कांतिवाले, पीतांबर पहने, परममंगल ॥ २९ ॥ सुन्दर हास्ययुक्त मुखकमल नील केशसे शोभित, कमलसे सुन्दर, नेत्र, देदीप्यमान मकराकृति कुण्डल ॥३०॥ कटिसूत्र, जनेऊ, मुकुट, कंकण, विराजमान हार

नूपूर, मुद्रिका, कौस्तुभसे शोभित ॥ ३१ वनमालासे व्याप्त अंग, मूर्तिमत् अपने आयुधोंसे युक्त, लाल कमलकीसी शोभावाला बाम चरण दाहिनी जांघपर धरकर बैठे ॥३२॥ मूसलके अवशेष लोहके खण्डसे जिसने बाण बनाया था, उस जरानाम वधिकने मृगके आकारवाले उस चरणको मृगकी शंकासे बींध डाला । "यह व्याध कुछ बहुत समयका नहीं था, उसी समय स्वर्गसे भगवत्की इच्छानुसार अङ्गद व्याधके रूपमें आया और मोहित हो बाण मार पिताके ऋणसे मुक्त हुआ" * ॥३३॥ फिर भगवान्के समीप आकर चतुर्भुज

वनमालापरीताङ्गं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पङ्कजारुणम् ॥ ३२ ॥ मुसलावशेषायः खण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा ॥ मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशङ्कया ॥ ३३ ॥ चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ॥ भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥ अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ॥ क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेऽनघ ॥ ३५ ॥ यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वान्तनाशनम् ॥ वदन्ति तस्य ते विष्णो मयाऽसाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥ तन्माशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ॥ यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७ ॥

श्रीभगवान्को देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ । इसके उपरांत वह अपराधी वधिक माथेसे दैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें गिर पड़ा ॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन ! पापबुद्धि मैंने यह अपराध अज्ञानसे किया है, हे उत्तमयश ! निष्पाप ! मुझ पापीको क्षमा करो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! जिसका स्मरण मनुष्योंके अज्ञानतमका नाश करता है, उन्हीं आप विष्णुका मैं अपराधी हूँ ॥३६॥ हे वैकुण्ठनाथ ! इसलिये मुझ

* शंका—वधिकको मनुष्यके और मृगके पहँचाननेमें भेद क्यों न हुआ ? जिस भ्रमसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द चरणारविन्दको मृग समझकर महाराजके चरणमें बाण मारा ? निशाना लगाने वाले मनुष्य कभी नहीं चूकते छोटी वस्तु होती है तो भी दृष्टि से देख लेते हैं और त्रिलोकी नाथकी देह तो बड़ी थी वह वधिक कैसा मूर्ख हो गया ? मृग और मनुष्य उसको नहीं जान पड़े ?

उत्तर—अंगद वालिका पुत्र श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंकी सेवा करके स्वर्गको जाने लगा तो रघुनाथजीने अंगदसे कहा कि जो वरदान तुझको चाहिये सो मांग ? तब अंगदने कहा कि हे रघुनंदन ! हे दीनबन्धु ! मेरे पिताको आपने विना अपराध मार डाला सो उसका बदला आपसे लिया चाहता हूं। तब रघुनाथजी बोले कि हम कुछ युग बीते द्वापरमें कृष्णावतार धारण करेंगे तब तुम्हारे पिताका ऋण तुमको चुकावेंगे और तुम्हारे हाथके बाणसे हम प्राण तजकर परमधामको जायेंगे । जिस समयको श्रीरघुनाथजी कह गये थे वही समय देखकर वीर अंगदने स्वर्गलोकसे उसी वनमें आकर वधिकका रूप धारण कर लक्ष्मीपति भगवान्के चरणमें बाण मारा । इसलिये व्याधको मनुष्य और मृगकी पहँचान नहीं हुई, क्योंकि बहुत दिन का व्याध नहीं था, वह तो नया वधिक था, केवल पिताका बदला लेने को आया था।

मृगलोभी पापीको शीघ्र मारो, जिसमें फिर कभी साधुओंका ऐसा अपराध न करूँ ॥३७॥ जब तुम्हारी स्वाधीन मायाकी रचनाको ब्रह्मा और ब्रह्माके पुत्र रुद्रादिक तथा देहके द्रष्टा भी नहीं जानते, उन्हें ब्राह्मणोंके शापका लगना मायासे अन्धे हुए पुरुषोंसे किस प्रकार कहा जा सकता है, इससे यह बात चाहे कुछ भी हो, परन्तु आप मुझे मार डालिये ॥३८॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे जरा ! तू भय मत कर उठकर खड़ा हो तूने तो यह मेरी इच्छानुसार ही कार्य किया है, इसलिये तू मेरी आज्ञासे पुण्यवानोंके स्थान स्वर्ग को जा ॥३९॥ इच्छा करके शरीरधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाकर वह वधिक श्रीकृष्णकी तीन परिक्रमा दे नमस्कार कर विमानमें बैठ स्वर्ग को चला

यस्याऽऽत्मयोगरचितं न विदुर्विरिञ्चो रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ॥ त्वन्मायया पिहितदृष्टय एतदञ्जः किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ॥ याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ॥ त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् ॥ वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥ तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ॥ स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो रथादवप्लुत्य सबाष्पलोचनः ॥ ४२ ॥ अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजं प्रभो दृष्टिः प्रनष्टा तमसि प्रविष्टा ॥ दिशो न जाने न लभे च शान्तिं यथा निशायामुडुपे प्रनष्टे ॥ ४३ ॥ इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः ॥ खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षितः ॥ ४४ ॥

गया ॥ ४० ॥ इसके उपरांत दारुक मार्गमें भगवान्‌को देखकर तुलसी चन्दनकी गन्ध मिली वायुको सूँघता हुआ श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥ ४१ ॥ उस पीपलके वृक्षके नीचे तीक्ष्ण कांतियुक्त आयुधोंसे व्याप्त अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रको बैठा देख स्नेहसे मग्न आत्मा, नेत्रोंमें जल भर दारुक रथसे उतर उनके चरणोंमें गिरा ॥४२॥ हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्द विना देखे मेरा सब ज्ञान नाशको प्राप्त हो गया और मोहमें प्रविष्ट हुआ, मैं दिशाओंको भी नहीं जानता हूँ तथा शांति भी मुझे नहीं है, जैसे रात्रिमें चन्द्रमाके गये पीछे दिशा नहीं जानी जाती है ॥४३॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार दारुक सारथीने कहा तब सारथीके देखते ही गरुड़चिह्नयुक्त रथ, घोड़े ध्वजा सहित आका-

शको उड़ गया ॥ ४४ ॥ इसके उपरांत विष्णुके दिव्य आयुध चले गये, इससे विस्मित सारथीसे भगवान् जनार्दन कहने लगे ॥ ४५ ॥ कि हे सूत ! तू द्वारकाको जा; बांधवोंसे परस्पर जातिका मरण, योग्यमार्गसे बलदेवजीका प्रस्थान और मेरी दिशा जो कुछ तूने देखा है सो कहना ॥४६॥ तुम बान्धवोंसहित द्वारकामें मत रहना, क्योंकि मुझसे छोड़ी हुई द्वारकाको अब समुद्र डुबा देगा ॥४७॥ इसलिये अपनी सब सामग्री तुम हमारे माता-पिताको ले करके अर्जुनसे रक्षित हो इन्द्रप्रस्थको जाओ, इस प्रकार बांधवोंसे कहो ॥ ४८ ॥ तुम ज्ञाननिष्ठ निस्पृह हो, मेरे धर्मसे यह तेरी मायाकी रचना जान शांतिको प्राप्त होओ ॥४९॥ जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब दारुक

तमन्वगच्छन् दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ॥ तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ॥ संकर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥ द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिः स्वस्वबन्धुभिः ॥ माया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥ स्वंस्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ॥ अर्जुनेनान्विताः सर्व इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥ त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ॥ मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ॥ महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥ पितरः सिद्ध-गन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रकी वारम्वार परिक्रमा दे माथा नवाकर कुलके नाश होनेसे मलिनचित्त हो द्वारकापुरीको चला गया ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां मौशलोपाख्याने यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ दोहा—इकतिसमें नरलोकते, कृष्ण गये निज धाम । गये निज-निज भवन, तजि द्वारका ललाम ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! दारुकसारथीके जानेके उपरांत वहां ब्रह्मा, पार्वतीसहित महादेव, इन्द्रादिक देवता, सनकादिक मुनि, मरीचि आदि प्रजापति ॥ १ ॥ पितर, गंधर्व, विद्याधर

महानाग, चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा, पक्षी ॥ २ ॥ भगवान्का प्रस्थान देखतेकी इच्छासे परम उत्कंठित श्रीकृष्णके जन्म कर्म गाते और कहते वहां आये ॥३॥ हे राजन् ! फूलोंकी वर्षा करते, परमभक्तिसे युक्त विमानोंकी पंक्तिसे आकाशको संकुल करने लगे ॥४॥ इसके उपरान्त प्रभु सर्व व्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मा, इंद्रादिक अपनी विभूतिको देख अपने आपको अपने आपमें संयुक्त कर अपने लोक ले जानेके लिये आये हुए बहुतसे देवताओंको देख, समाधि लगाकर अपने नेत्रकमल मूँद लिये ॥५॥ जैसे स्वच्छन्द मृत्यु-वाले योगी अपने शरीरको योगधारणासे जलाकर लोकमें प्रवेश करते हैं; परन्तु श्रीकृष्णने वैसे नहीं किया, किन्तु उसी शरीरसे अपने परमधामरूप वैकुण्ठको चले गये । कारण यह था कि यदि इस शरीरको योगधारणासे जला देते तो उसमेंका सम्पूर्ण जगत् भी भस्म

द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ॥ गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ॥ कुर्वन्तः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥ भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ॥ संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥ लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम् ॥ योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ॥ सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७ ॥ देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ॥ अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८॥ सौदामन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाऽभ्रमण्डलम् ॥ गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

हो जाता और उस शरीरका ध्यान व धारणा करने वाले उपासक लोगोंको पीछे उस देहका साक्षात्कार और फलकी प्राप्ति न होती ॥६॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वधाम पधारे, उस समय देवलोकमें नगाड़े बजने लगे, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और श्रीकृष्ण-चन्द्रके पीछे भूमिसे सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्त्ति, लक्ष्मी ये सब चले गये ॥७॥ परन्तु ब्रह्मादिक देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको स्वधाममें प्रवेश करते न देखा, इस कारण यह अति आश्चर्यको प्राप्त हुए, क्योंकि श्रीकृष्ण की गति किसीने न जानी ॥ ८ ॥ जैसे मेघमण्डलीको छोड़कर आकाशमें जाती बिजलीकी गति मनुष्योंसे नहीं देखी जाती, उसी प्रकार देवताओंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति नहीं देखी

गयी, उनकी गति उनके पार्षद ही जानते हैं ॥ ९ ॥ सो ब्रह्मा, रुद्रादिक देवता श्रीकृष्णचन्द्रकी योगगति देखकर अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए और उस गतिकी स्तुति करते हुए अपने अपने लोकोंको चले गये ॥१०॥ हे राजा परीक्षित् ! यादवोंमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म धारण करना मायासे अनुकरणमात्र जानना, जैसे नट निर्विकार है, परन्तु नानारूपोंसे अनुकरण करता है, इस प्रकार आप ही इस जगत्को उत्पन्न कर और अन्तर्यामी भावसे उसमें आवेशकर अन्तकालमें संहार करते हैं,परन्तु आप अपनी महिमासे निर्विकार हैं ॥११॥ तुम और मूर्ति मत जानो; इसी अवतारमें श्रीकृष्णचन्द्रका प्रताप बहुत बड़ा देखा है जिन्होंने परलोकसे सांदीपनका पुत्र प्राप्त किया और उसे उसी शरीरसे शरणागतरक्षक श्रीकृष्ण ले आये, ब्रह्मास्त्रसे दग्ध तुम्हारी रक्षा की, फिर कालोंके महाकाल रुद्र भगवान् महादेव

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ॥ विस्मितास्तां प्रशंसन्तः स्वंस्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य ॥ सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते संहृत्य चात्ममहिमोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥ मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ॥ जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशः किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥ तथाऽप्यशेषस्थितिसम्भवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ॥ नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

जीको बाणासुरके संग्राममें जीत लिया और जरानाम बधिकको देहसहित स्वर्गको भेज दिया ! तो वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्या अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ थे ? ॥ १२ ॥ अहो ! जो श्रीकृष्णचन्द्र समर्थ थे तो कुछ काल अभी यहां ही क्यों न रहे ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि सम्पूर्ण जगत्के सृष्टिप्रतिपालन और संहारमें आपही कारण हैं और की आकांक्षा वे नहीं रखते हैं क्योंकि अनेक शक्तियोंको धारण करते हैं। यद्यपि ऐसे हैं परन्तु तो भी यादवोंका संहार हो जानेसे अपने देहको इस लोकमें रखनेकी इच्छा न की, आपही निजधाममें अपने देहको प्राप्त किया । यहां हेतु कहते हैंः—भगवान्ने विचारा कि अब इस देहका यहां क्या काम है ? स्वधर्मी आत्मनिष्ठोंकी जो रीति थी सो दिखायी और भांति वह आत्मनिष्ठ दिव्यगतिके अनादरसे योगबलसे देहकी सिद्धि कर कहीं यहां ही क्रीड़ा करनेको मन करे इस कारण

भगवान् आपही चले गये ॥ १३ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर, सावधान मनसे, अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रकी परमगतिको कहेगा वह परम उत्तम गतिको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ अब वसुदेवादिककी गति कहते हैंः—इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे बिछुड़ा हुआ दारुक नाम सारथी द्वारकामे आकर वसुदेव उग्रसेनके चरणोंमें पड़, अपने अश्रुजलसे उनके चरणोंको सींचने लगा ॥ १५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! फिर उस सारथीने सब यादवोंके नाश होनेका वृत्तांत कहा । वह सुनकर वसुदेवादिकोंके हृदयमें अत्यन्त उद्वेग हुआ और शोकसे मूर्छित हो ॥ १६ ॥ मुख काटते श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल उतावले वहीं आये जहां बांधव प्राणरहित शयन कर रहे

य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ॥ प्रयतः कीर्त्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ॥ पतित्वा चरणावस्रैर्न्यषिञ्चत्कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥ कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ॥ तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्च्छिताः ॥ १६ ॥ तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः ॥ व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नन्त आननम् ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ ॥ कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥ प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ॥ उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥ रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ॥ वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ॥ कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥

थे ॥१७॥ देवकी, रोहिणी और वसुदेव, श्रीकृष्ण और बलदेव अपने पुत्रोंके विना देखे शोकसे आतुर हो बेसुध हो गये ॥ १८ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगसे अत्यन्त आतुर हो वहां ही प्राण छोड़ दिये और, अपनी अपनी पत्नियोंसे मिलकर स्त्रियां चितामें प्रवेश कर गयीं ॥ १९ ॥ बलदेवजीकी स्त्री बलदेवजीके देहको आलिंगन कर चितामें प्रवेश कर गयी और वसुदेवकी स्त्री वसुदेवसे, श्रीकृष्णकी पुत्रवधू प्रद्युम्न आदि अपने अपने पतियोंसे मिलकर, रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी स्त्री श्रीकृष्णमय हो अग्निमें प्रवेश कर गयीं ॥ २० ॥

अर्जुनने अपने परमप्रिय सखा श्रीकृष्णचन्द्रके विरहसे आतुर होनेपर भी सच्ची सुक्ति देनेवाले भगवान्‌के वचनोंका स्मरण करके उसने अपने आत्माको सांत्वना दी ॥ २१ ॥ जिनकी सम्पत्ति नाशको प्राप्त हुइ, और आप भी नाशको प्राप्त हुए, उन बांधवोंका अर्जुनने पिंडदान, तर्पण आदि कार्य विधिपूर्वक क्रमसे किया ॥२२॥ हे महाराज परीक्षित् ! इसके उपरान्त श्रीयुत भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके मंदिरको छोड़ कर श्रीकृष्णचन्द्रसे त्यागी सम्पूर्ण द्वारकाको समुद्रने क्षणभरमें डुबा दिया ॥ २३ ॥ मंदिर बचानेका कारण यह है कि भगवान् मधुसूदन

अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ॥ आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बन्धूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः सांपरायिकम् ॥ हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् ॥ वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भागवदालयम् ॥ २३ ॥ नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥ स्मृत्याशेषाशुभहरं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ २४ ॥ स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनञ्जयः ॥ इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राभ्यषेचयत् ॥२५॥ श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ॥ त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥ य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ॥ कीर्त्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

वहां नित्य विराजते हैं और वह मंदिर कैसा है कि जिसका स्मरणमात्र करनेसे ही सम्पूर्ण अमङ्गल नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ २४ ॥ मरनेसे बचे हुए स्त्री, बालक, वृद्धको अर्जुनने लेकर इंद्रप्रस्थमें प्रवेश कराकर वहां वज्रनामको अभिषेक किया ॥ २५ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परमभागवत परीक्षित् ! तुम्हारे पितामह पांडव अर्जुनके मुखसे सुहृदोंका वध सुनकर तुमको वंशधारी समझ महाप्रस्थको चले गये ॥ २६ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासहित देवदेव भगवान् विष्णुके जन्म और कर्मोंको सुनेंगे अथवा कहेंगे वे सम्पूर्ण पापोंसे

छूट जायँगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार इस ग्रन्थमें और दूसरे ग्रन्थोंमें वर्णन किये हुये परममंगल भगवान् वासुदेवके सुन्दर अवतारोंके चरित्र जो मनुष्य कहेंगे वे परमहंसोंके शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त होंगे * ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे

इत्थं हरेर्भगवतो रुचि रावतारवीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि ॥ अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत् ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदन्तर्द्धानं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३१॥ समाप्तोऽयमेकादशः स्कन्धः ॥

अष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णपरिवारनिर्यापणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

---

* भजन–जनप्रतिपाल दयाल दयानिधि क्यों चितवत नहि ओर हमारी । कीजे कृपा जान जन हमपर हे ब्रजेश गोपाल मुरारी । जबसे सत शिक्षा हम त्यागी । बुधिबल आरु सुख संपति भागी । पीछे विपति अविद्या लागी । निशिदिन देत रहत सुध भारी ॥१॥ कुमति कलह घट घटमें छाई । शुभगण सुमति समूल नसाई । करत परस्पर द्वेष बुराई । हानि लाभ नहिं तनक विचारी ॥२॥ हम सब तुम्हरी ओर निहारें । त्राहि-त्राहि दिन रात पुकारें । तुम विन काको जाय जुहारें । ऐसो को भक्तन हितकारी ॥३॥ वेग जननकी ओर निहारो । कलह कुमतिकी मूल उखारो । दारिद दुर्गुण दुर्ग उदारो । दुष्टदलन दीनन दुखहारी ॥४॥ नाथ विनय मम स्वीकृत कीजै । विद्यादान दया कर दीजै । चरण शरण में हमको लीजै । लाग रही दृढ़ आश तुम्हारी ।

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वादशस्कन्धप्रारंभः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

द्वादशस्कंधः

शुकः
परीक्षितः
शिष्यसमुदायः
श्रीव्यासः
परीक्षितः
ऋषिः
कश्यपः
तक्षकः
श्रीव्यासः
नरनारायण.
मार्कंडेय.
बालमुकुंद
श्रीधरस्वामीः

श्रीगणेशाय नमः । दोहा—आदि ब्रह्म अद्वैत अज, अविनाशी अविकार । श्रीमुकुन्द गोविन्दपद, भज मन वारंवार ॥ कवित्त—काहूको सहारो है भवानी राजरानीजूको, काहूको सहारो नीको गिरजाके प्यारेको । काहूको सहारो पुनि काली विकरालीजूको, काहूको सहारो भूतनाथ बैलवारेको ॥ काहूको सहारो भलो भैरो हनुमानजीको, काहूको सहारो नीको पूर्ण नाथद्वारेको । जाने गिरिधारो औ उबारो ब्रज शालिग्राम, मोहिं तो सहारो वाहि नन्दके दुलारेको ॥१॥ काहूकी है उमा रमा शारदामें बड़ी प्रीति, काहूको भवानी और लक्ष्मीमें मन है । काहूको गणेश और महेशमाहिं लागो चित्त, काहूको तो इष्टदेव पानी रूप पवन है ॥ काहूको है ध्यान हनुमान और भैरवको, काहूको सुपूज्य शम्भुपुत्र गजानन है। शालिग्राम काहूको राम—नाम अमरमूल, मेरे तो केवल एक राधिका ही धन हैं ॥ सोरठा—जय ब्रज चन्द मुकुन्द, आनन्द—निधि ऋषि—सिद्धिभवन । जय वृन्दावन चन्द, नन्दसुवन त्रिभुवनपति ॥ दोहा—अहै प्रथम अध्यायमें, भावी

ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॥ राजोवाच ॥ स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ॥ कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ योऽन्त्यः पुरंजयो नाम भाव्यो बार्हद्रथो नृप ॥ तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥ प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः ॥ २ ॥ विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥ नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे ॥ ३ ॥ अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ॥ शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः ॥ क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ४ ॥

मागध वंश । धरा भोग करिहै सविधि, सो वर्णब विनशंस ॥१॥ राजा परीक्षित्ने पूछा कि हे मुने ! यदुकुलके भूषणरूप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जब अपने परमधामको चले गये तब पृथ्वीपर आगेको किसका वंश चला ? यह मुझको समझाकर कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! बृहद्रथके कुलके अन्तमें पुरंजय नाम राजा होगा, जिसका वर्णन प्रथम नवम स्कन्धमें आपको सुना चुका हूं । उसका मन्त्री शुनक पुरंजयको मारकर प्रद्योतनाम अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बैठा लेगा, उसके पालक नामक पुत्र होगा ॥ २ ॥ उसके विशाखयूप नामक पुत्र होगा, उसके राजक नाम एक पुत्र होगा, राजकके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा । पांच राजा प्रद्योतन नामसे प्रसिद्ध होंगे ॥ ३ ॥ और एक सौ अड़तीस (१३८) वर्ष तक पृथ्वीकी रक्षा करेंगे । उनके पीछे शिशुनाग नाम राजा होगा,

उसके पीछे काकवर्ण राजा होगा, काकवर्णके क्षत्रधर्मा नाम पुत्र होगा, उसके क्षेत्रज्ञ नाम पुत्र होगा ॥ ४ ॥ क्षेत्रज्ञके विधिसार नाम पुत्र उत्पन्न होगा, उसके अजात शत्रु नामक पुत्र होगा, उसके दर्भक नाम पुत्र होगा उसके अजय नाम पुत्र होगा ॥५॥ अजयके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा, उसके महानन्द नाम पुत्र होगा। हे कुरुवंशभूषण ! यह शिशुनागादिवंशी दस राजा तीन सौ साठ (३६०) वर्षतक कलियुगमें राज्य भोग करेंगे हे महाराज ! महानन्दका पुत्र शूद्रीके गर्भसे बड़ा तेजस्वी और पराक्रमी ॥ ६ ॥ ७ ॥ महापद्म सेनाका पति, नन्दनाम क्षत्रियवंशका विध्वंस करनेवाला होगा, इस नन्दराजासे लेकर आगेको शूद्रके तुल्य अधर्मी राजा होंगे ॥ ८ ॥ सो-यह नन्द

विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ॥ दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ५ ॥ नन्दिवर्धन आजेयो महानन्दिः सुतस्ततः ॥ शिशुनागा दशैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ६ ॥ समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः ॥ महानन्दि सुतो राजञ्छूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥ ७ ॥ महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् ॥ ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ८ ॥ एकच्छत्रां स पृथिवीमनुल्लङ्घितशासनः ॥ शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ ९ ॥ तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ॥ य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ १० ॥ नव नन्दान् द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति ॥ तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥ ११ ॥ स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ तत्पुत्रो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १२ ॥ सुयशा भविता तस्य सङ्गतः सुयशः सुतः ॥ शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १३ ॥

पृथ्वीपर एक महाछत्रधारी राजा होगा और कोई संसारमें उसकी आज्ञाको उल्लंघन न करेगा, मानो क्षत्रियोंका मानभङ्ग करनेमें दूसरा परशुराम होगा ॥९॥ उस नन्दराजाके सुमाल्यादिक आठ पुत्र होंगे, वे सब राजा होकर सौ १०० वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करेंगे ॥ १० ॥ अपने अनुगत उन नवों नन्दराजाओंको कोई एक चाणक्य नाम ब्राह्मण मारेगा, उनके मारणोपरांत कलियुगमें मौर्य नाम राजा पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ ११ ॥ फिर वही नवनन्दका मारनेवाला चाणक्य नाम ब्राह्मण चन्द्रगुप्त मौर्यको राजसिंहासनपर बैठा लेगा, उस चन्द्रगुप्तके वारिसार नाम पुत्र होगा, उसके अशोकवर्द्धन नाम पुत्र होगा ॥ १२ ॥ अशोकवर्द्धनके सुयशा नाम पुत्र होगा, उसके संगत

नाम पुत्र होगा, संगतके शालिशूक नाम पुत्र होगा, उसके सोमशर्मा नाम पुत्र होगा ॥१३॥ सोमशर्माके शतधन्वा पुत्र होगा, उसके दूसरा वृहद्रथ पुत्र होगा। यह दश मौर्यवंशी राजा कलियुगमें एकसौ तैंतिस १३३ वर्षतक पृथ्वीपर आनन्द भोगेंगे। हे कौरवकुलमार्त्तण्ड ! इन सब मौर्योंमें पहले एकसे दश मौर्य होंगे, यह जानने योग्य बात है॥१४॥ (फिर मौर्य वंशके राजा वृहद्रथका सेनापति पुष्पमित्र जिसका दूसरा नाम शुङ्ग भी है वह अपने स्वामीको मारकर स्वयं सिंहासनपर बैठेगा) उसका पुत्र अग्निमित्र राजा होगा, उसका सुज्येष्ठ नाम पुत्र होगा, सुज्येष्ठका पुत्र वसुमित्र होगा, वसुमित्रके भद्रक नाम पुत्र होगा, भद्रकका पुत्र पुलिन्द होगा ॥१५॥ पुलिन्दका पुत्र घोष होगा, घोषका

शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः ॥ मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥ समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कलौ कुरुकुलोद्वह ॥१४॥ (हत्वा बृहद्रथं मौर्यं तस्य सेनापतिः कलौ ॥ पुष्पमित्रस्तु शुंगाह्वः स्वयं राज्यं करिष्यति ॥) अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥ वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिन्दो भविता सुतः ॥१५॥ ततो घोषः सुतस्तस्माद्वज्रमित्रो भविष्यति ॥ ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिरिति श्रुतः ॥१६॥ शुङ्गा दशैते भोक्ष्यन्ति भूमिं वर्षशताधिकम् ॥ ततः काण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप ॥ १७ ॥ शुङ्गं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥ स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ॥ तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ॥१८॥ नारायणस्य भविता सुशर्मा नाम विश्रुतः ॥ काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगे ॥१९॥

पुत्र बज्रमित्र होगा, बज्रमित्रका पुत्र भागवत होगा, भागवतका पुत्र देवभूत होगा ॥ १६ ॥ यह दश शुंगराजा कहाये जायँगे और दशों राजा एक सौ बारह ११२ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करेंगे। हे कुरुकुलभूषण ! इन सबमें शुंगा नाम राजा पहले होगा। हे नरेन्द्र ! फिर यह भूमि अल्पगुणवाले कण्व नाम राजाओंके अधीन रहेगी ॥ १७ ॥ देवभूमि नाम शुंगाका मन्त्री बड़ा बुद्धिमान् वसुदेव नाम होगा, सो परस्त्रीगामी देवभूति शुङ्गाको मारकर आप ही राज्य करेगा, उसके भूमित्र पुत्र होगा, भूमित्रके नारायण नाम पुत्र होगा ॥ १८ ॥ नारायणके सुशर्मा नाम पुत्र होगा। यह कण्ववंशी चार राजा कलियुगमें तीनसौ पैंतालीस ३४५ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करेंगे ॥ १९ ॥

भा० द्वा० ॥ २ ॥

सुशर्माका कोई चाकर महानीच शूद्र जाति असत्तम बली नाम कण्ववंशी सुशर्माको मारकर कुछ वर्षतक आप पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ २० ॥ फिर उसके पीछे उस बलीनाम राजाका भ्राता कृष्णनाम पृथ्वीका पति होगा, श्रीशांतकर्ण नाम पुत्र होगा, श्रीशांतकर्णके पौर्णमास नाम पुत्र होगा ॥ २१ ॥ उसके लम्बोदर नाम पुत्र होगा, लम्बोदरका पुत्र विलक होगा, विलकके मेघस्वाति नाम पुत्र होगा, उसके अटमान नाम पुत्र होगा ॥२२॥ अटमानके अनिष्टकर्मा नाम पुत्र होगा, उसके हालेय नाम पुत्र होगा, हालेयके तलक नाम पुत्र होगा, तलकके पुरीषभीरु नाम पुत्र होगा, उसके सुनंदन नाम पुत्र होगा ॥२३॥ सुनंदनके चकोर नाम तनय होगा, चकोरके नवम, उसके शिव-

हत्वा कण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ॥ गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कंचित्कालमसत्तमः ॥ २० ॥ कृष्णनामाऽथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ॥ श्रीशान्तकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥२१॥ लम्बोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माद्विलको नृपः ॥ मेघस्वातिश्च विलकादटमानस्तु तस्य च ॥ २२ ॥ अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः ॥ पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥ २३ ॥ चकोरो नवमो यत्र शिवस्वातिररिन्दमः ॥ तस्यापि गोमती पुत्रः पुरीमान् भविता ततः ॥ २४ ॥ मेदः शिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ॥ विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः स लोमधिः ॥ २५ ॥ एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ॥ षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरुनन्दन ॥ २६ ॥ सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनो नृपाः ॥ कङ्काः षोडश भूपाला भविष्यन्ति च लोलुपाः ॥२७॥ ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश च तुरुष्ककाः ॥ भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥ २८ ॥

भा० टी० अ० १

स्वाति नाम पुत्र होगा । हे रिपुदमन ! उसके गोमती नाम पुत्र होगा, गोमतीके पुरीमान् नाम पुत्र होगा ॥ २४ ॥ उसके मेदशिरा नाम पुत्र होगा, मेदशिराके शिवस्कन्दनाम पुत्र होगा, उसके यज्ञश्री नाम पुत्र होगा, यज्ञश्रीके विजय नाम पुत्र होगा, उसके चंद्रविज्ञ नाम पुत्र होगा और उसके सलोमधि नाम पुत्र होगा ॥ २५ ॥ हे कुरुनंदन ! ये तीस राजा चारसौ छप्पन (४५६) वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे ॥ २६ ॥ इसके उपरांत आवभृति नाम नगरीमें सात आभीर जातिके राजा होंगे, उनके फिर दश गर्दभ नाम राजा होंगे, उनके उपरांत कंकजातिके सोलह राजा महालोभी होंगे ॥ २७ ॥ उनके पीछे आठ यवन राजा होंगे, उनके पीछे चौदह तुरुष्क (तुरक, तुरकिस्तानके

वासी राजा) होंगे, फिर दश गुरण्ड (अँगरेज, इंग्लिस्ताननिवासी) राजा होंगे, उनके पीछे ग्यारह मौन राजा होंगे ॥ २८ ॥ यह सब राजा एक सहस्र निन्यानवे १०९९ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! ग्यारह मौन राजा तीन सौ ३०० वर्षतक पृथ्वी का भोग करेंगे, उनके मरनेके पीछे किलकिला नगरमें भूतनंद नाम राजा होगा, उसके पीछे वंगिरि नाम राजा होगा ॥३०॥ फिर उसके पीछे उसका भाई शिशुनंदि और शिशुनंदिके पीछे यशोनदि, यशोनंदिके पीछे प्रवीरक, यह सब राजा एकसौ छः १०६ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे ॥ ३१ ॥ उस शिशुनंदिके तेरह पुत्र होंगे और वह सब बाल्हीक ही कहलावेंगे और आनंदपूर्वक पृथ्वीका राज्य

एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ॥ नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ २९ ॥ भोक्ष्यन्त्यब्दशतान्यङ्ग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ॥ किलकिलायां नृपतयो भूतनन्दोऽथ वङ्गिरिः ॥ ३० ॥ शिशुनन्दिश्च तद्भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः ॥ इत्येते वै वर्षशतं भविष्यन्त्यधिकानि षट् ॥३१॥ तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः ॥ पुष्यमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ॥ ३२ ॥ एककाला इमे भूपाः सप्तान्ध्राः सप्त कौशलाः ॥ विदूरपतयो भाव्या निषधास्तत एव हि ॥ ३३ ॥ मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरंजयः ॥ करिष्यत्यपरो वर्णान् पुलिन्दयदुमद्रकान् ॥ ३४ ॥ प्रजाश्च ब्रह्मभूयिष्ठा स्थापयिष्यति दुर्मतिः ॥ वीर्यवान् क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ॥ अनुगङ्गामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूद्रा अर्बुदमालवाः ॥ व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥ ३६ ॥

करेंगे, फिर और एक दूसरा पुष्पमित्र नामराजा होगा, उसके दुर्मित्र नाम पुत्र होगा ॥३२॥ फिर सात तो अन्ध्र, सात कौशल और एक वैदूर्य नगरका नरेश नैषध यह सब खण्डमण्डलेश्वर राजा तकही समयमें होंगे ॥३३॥ फिर मगधदेशमें विश्वस्फूर्जित पुरंजय नाम राजा होगा, सो बड़ापराक्रमी दुर्मति होगा और ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको धर्मसे भ्रष्ट करके पुलिंद, यदु और मद्रक म्लेच्छके तुल्य कर देगा ॥३४॥ और जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य न हों ऐसी नीच प्रजाको स्थापित करेगा, यह वीर्यवान् पुरंजय क्षत्रियोंका विध्वंस करके पद्मावती नाम पुरीमें बसकर हरद्वारसे लेकर प्रयागतक राज्य करेगा ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्र देश, उज्जैन, आभीर, शूर, अर्बुद, माल-

वादेशनिवासी द्विज अर्थात् तीनों वर्ण यज्ञोपवीत क्रिया न करके संस्कार हीन हो जायँगे और राजा भी शूद्रके समान काम करने लगेंगे ॥ ३६ ॥ सिंधु नदीसे लेकर चंद्रभागा नदीके किनारे तक और कौंतीपुरी काश्मीर आदि सब देशोंमें शूद्र क्रियाहीन म्लेच्छप्राय वेदमर्यादारहित तेजहीन राजा होंगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह सब एक ही कालमें म्लेच्छप्राय, अधर्मी, असत्यपरायण, अल्पदाता, महा-क्रोधी ॥ ३८ ॥ स्त्री, बालक, गौ, ब्राह्मणको मारनेवाले, परनारी, पराये द्रव्यके हरनेवाले उत्पन्न होंगे और मरेंगे, अल्पपराक्रम, अल्प आयुबलवाले होंगे ॥ ३९ ॥ गर्भाधान आदिक संस्कारोंसे रहित सन्ध्या तर्पणादि क्रियाओंसे हीन, रजोगुण, तमोगुणसे आवृत्त, म्लेच्छ राजाओंका रूप धारण किये, प्रजाको अनेक अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले होंगे ॥ ४० ॥ इन पालनेवाले राजाओंके सब देश उन राजा-

सिन्धोस्तटे चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम् ॥ भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३७ ॥ तुल्यकाला इमे राजन् म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ॥ एतऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥ ३८ ॥ स्त्रीबालगोद्विज-घ्नाश्च परदारधनादृताः ॥ उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥३९॥ असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसा-वृताः ॥ प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥ ४० ॥ तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ॥ अन्योऽन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥४१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे कलौ भाविनृपान्वय० प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥ कालेन बलिना राजन्नङ्क्ष्य-त्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥ वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ॥ धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥

ओंके भाव और आचरणको और अपवाद करनेवाले लोगोंको परस्परके क्लेशोंसे और राजाओंके किये हुए दुष्टकर्मोंसे दुःखी होकर क्षयको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां राजवंशवर्णन नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा—दूसरे जब कलिकालको, बढ़ै दोष अत्यंत । तब हरि कल्की रूप धरि, मारहिं दुष्ट असन्त ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरांत फिर महाबलवान् कालके प्रभावसे दिनपर दिन धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल, स्मरण आदि घटता चला जायगा ॥ १ ॥ कलि-युगके विषे जिस पुरुषके पास धन होगा वही बलवान् गुणनिधान, आचारवान् और बुद्धिमान् कहलावेगा और जो महा बलवान् होगा

वही धर्माध्यक्ष और न्यायशाली हो सबको जीतेगा ॥ २ ॥ रीति प्रीति केवल एक स्त्री और पुत्रमें ही रहेगी और सुहृद्, मित्र, कुल, गोत्रादिकमें कपट व्यवहार रह जायगा। स्त्री, पुरुष होनेमें कुछ श्रेष्ठ कुल आचार विचार न होगा, केवल रति करनेमें कुशल देख लेंगे और ब्राह्मणपनमें केवल जनेऊमात्र ही रह जायगा ॥३॥ आश्रम चिह्नमात्र ही करके पहचाने जायँगे, परस्पर स्नेह कहीं नहीं रहेगा, धनहीन न्यायमें नित्यप्रति हारते ही रहा करेंगे, क्योंकि न्यायाध्यक्ष जबतक धनपात्रोंसे द्रव्य पाते रहेंगे तबतक धनहीनको हराते ही रहा करेंगे और अधिक बोलनेवालेको ही लोग पंडित कहेंगे ॥४॥ निर्धनोंका नाम लोग असाधु रखेंगे, दम्भवान् और कपटीको ही लोग साधु कहेंगे, विवाह स्वीकारमात्र ही समझा जायगा और स्नान मात्र ही सब शृङ्गार होगा ॥ ५ ॥ जो तालाब वा सरोवर दूर होगा, वही तीर्थ माना

दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ॥ स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥ लिङ्गमेवाश्रमख्यातावन्योऽन्यापत्तिकारणम् ॥ अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥ अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ॥ स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥ दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्ये केशधारणम् ॥ उदरम्भरिता स्वार्थः सत्यत्वे धाष्टर्यमेव हि ॥ ६ ॥ दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ॥ एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ॥ ७ ॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ॥ प्रजा हि लुब्धे राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥ आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् ॥ शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥

जायगा, माता, पिता और गुरुको कोई तीर्थ नहीं मानेंगे, शिरपर बाल रखना यही सब सुन्दरता कहावेगी, जैसे तैसे पेट भर लेना परम चतुरता और पराक्रम गिना जायगा, और ढ़ीठ पुरुष ही सत्यवादी कहलावेंगे ॥६॥ कुटुम्बका उदरपूर्ण करना ही सयान और चतुराईका मूल समझा जायगा, धर्मका सेवन केवल इसीलिये किया जायगा जिससे संसारमें यश हो, इस प्रकार जब सर्वत्र भूमण्डल प्रजाओंसे व्याप्त हो जायगा ॥७॥ तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इनमें जो बली होगा वही भूपाल कहा जायगा, लोभी, निर्दयी, लुटेरोंसे और राजाओंसे ॥८॥ अपना स्त्री, धन छीन लेनेके भयसे सब प्रजा भागकर पर्वतोंमें, वनोंमें जा छिपेगी और वहां शाक, कन्द, मूल, फल, मधु, मांस, पुष्प,

बीज इनसे अपना उदर पूर्ण करेगी ॥ ९ ॥ अकाल और राजाओंके दण्डसे कष्ट पाकर अनावृष्टि, शीत, वायु, धूप, वर्षा और हिमसे परस्पर अत्यंत पीड़ित हो क्लेश पाकर सम्पूर्ण नष्ट हो जायगा ॥१०॥ भूख, प्यास, रोग, सन्ताप और चिंतासे प्रजा अत्यंत पीड़ित हो जायगा और मनुष्योंकी पूर्ण अवस्था कलियुगमें २० अथवा ३० वर्षकी हुआ करेगी ॥ ११ ॥ जब कलियुगका महादोष बढ़ेगा तब प्राणी तनु क्षीण और महामलीन हो जायँगे । धर्मके बदलेमें पाखण्ड ही पाखण्ड रह जायगा, राजा लुटेरे होंगे, वृथा हिंसा और बात बातमें झूंठ बोलकर नाना प्रकारकी वृत्तियोंको करेंगे और सदा बुरे कामोंमें निष्ठा रहेगी॥१२॥१३॥ सब वर्णाश्रम शूद्रके सदृश हो जायँगे

अनावृष्टया विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ शीतवातातपप्रावृड्ढिमैरन्योऽन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥ क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तप्स्यन्ते च चिन्तया ॥ त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥ क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ॥ वणाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥ पाषण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ॥ चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥ शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु ॥ गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बन्धुषु ॥ १४ ॥ अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ॥ विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥ १५ ॥ इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मणि ॥ धमत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥ १६ ॥ चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ॥ धर्मत्राणाय साधूनां जन्मकर्मापनुत्तये ॥ १७ ॥

और गायें बकरीके समान छोटी-छोटी होंगी, चारों आश्रम गृहस्थप्राय हो जायँगे और स्त्रीके भाइयोंसे लोग प्यार करेंगे और घरको सम्बन्धमात्र मानेंगे ॥१४॥ अन्न और ओषधियें सब क्षीण हो जायँगी, केवल वृक्षोंमें शमी (उदड़) के वृक्ष ही रह जायँगे, वर्षाकालमें बिजली अधिक चमकेगी, वर्षा बहुत थोड़ी हुआ करेगी, गृहस्थियोंके घर धर्मकर्मसे शून्य हो जायँगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार कलियुगमें सब मनुष्य अधर्मी हो गधेके समान हो जायँगे और जब महाभयंकर कलियुगके अन्तका समय आवेगा तब धर्मकी रक्षा करनेके लिये आदिपुरुष भगवान् शुद्ध सत्त्वगुण मूर्ति धारण करके निष्कलंकरूपसे प्रकट होंगे ॥ १६ ॥ चराचरके गुरु सबके आत्मा ईश्वर विष्णुका अवतार महात्मा

पुरुषोंके धर्मकी रक्षा और उनके कर्मोंके प्रचारके लिये होगा॥१७॥ उस विष्णुयशी ब्राह्मणके घरमें चैत्र शुक्ला द्वादशीको विष्णु भगवान् कल्कि अवतार धारण करेंगे ॥ १८ ॥ उसी समय देवता लोग अत्यन्त शीघ्रगामी देवदत्त नाम एक घोड़ा लेकर उनके सम्मुख उपस्थित होंगे, भगवान् उस घोड़ेपर चढ़कर खड्ग हाथमें ले दुष्टोंके दमनकर्त्ता अणिमादिक अष्टसिद्धियोंसे संयुक्त ॥१९॥ जगदीश्वर अनुपम कांतिवाले महातेजस्वी कल्कीरूपसे राजाओंकासा वेष धारण किये उस घोड़ेपर चढ़ करोड़ों चोरोंका विध्वंस करेंगे ॥२०॥ जब सब चोरोंका संहार हो जायगा, तब देश देशांतरोंके मनुष्योंके अतिपुण्यरूप सुगंधयुक्त पवनके लगनेसे उन मनुष्योंके मन उज्ज्वल हो जायँगे ॥२१॥ और

शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥ अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ॥ असिनाऽसाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥ विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ॥ नृपलिङ्गच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥ अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै ॥ वासुदेवाङ्ग-रागातिपुण्यगन्धानिलस्पृशाम् ॥ पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥ तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभ-विष्यति ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥ यदाऽवतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ॥ कृतं भवि-ष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी॥ २३ ॥ यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती॥ एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवति तत्कृतम् ॥ २४ ॥ येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यन्ति च पार्थिवाः ॥ ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः ॥ २५ ॥ आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ॥ एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम् ॥ २६ ॥

उन नगर निवासियोंके हृदयमें शुद्ध चैतन्य सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव स्थित होंगे तो उन प्रजाओंके पुत्रादिक उत्तम और पुष्ट होंगे॥२२॥ जब धर्मके पालनेवाले कल्किभगवान् प्रकट होंगे तब सत्ययुग वर्त्तने लगेगा और प्रजाकी संतानसात्त्विकी होगी ॥ २३ ॥ जब चंद्र, सूर्य, वृहस्पति सब पुष्यनक्षत्रके योग करके एक राशिमें आवेंगे तब सत्ययुग होगा ॥ २४ ॥ जो चंद्रवंशी और सूर्यवंशी राजा हो चुके हैं और जो इस समय विद्यमान हैं तथा आगेको होंगे, उन सबके नाम संक्षेपसे भिन्न भिन्न मैंने आपको सुनाये ॥ २५ ॥ तुम्हारे जन्मसे लेकर

नंदके राज्यतक पंद्रह सौ दश १५१० वर्ष बीत गये ॥ २६ ॥ आकाशमें सप्त ऋषियोंके मध्य जो दो तारे पुलह और ऋतु पहले दीखते हैं उन दोनोंके मध्यमें रात्रिके समय दोनोंको समान देखनेवाले ॥ २७ ॥ अरुंधतीके नक्षत्र सहित सप्तऋषि मनुष्योंके १०० वर्षतक प्रत्येक नक्षत्रपर रहा करते हैं,अर्थात् जैसे चंद्रमा एक नक्षत्रपर एक दिवस रहता है उसी प्रकार सप्तऋषि सौ १०० वर्षके अनुमान एक नक्षत्रपर रहते हैं, यही सप्तऋषि तुम्हारे जन्मके समय मघा नक्षत्रपर थे और इस समय भी मघा नक्षत्रपर स्थित हैं ॥२८॥ कलियुगके आनेका समय ठीक ठीक इस प्रकार निश्चय किया है कि जब महातेजस्वी शुद्ध सत्त्वमूर्ति श्रीकृष्ण भगवान् अपने परम धामको सिधारे, उसी समय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, जिस कलियुगके आते ही मनुष्योंकी पापमें रुचि हुई ॥ २९ ॥ हे राजन् ! जबतक रमापति

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ॥ तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥ २७ ॥ तेनैव ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतानि च ॥ ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥२८॥ विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः ॥ तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥ यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ॥ तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रान्तुं न चाशकत् ॥ ३० ॥ यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ॥ तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥ यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः ॥ तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥ यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ॥ प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥ दिव्याब्दानां सहस्रान्ते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ॥ भविष्यति यदा नृणां मम आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥

भगवान् अपने चरणारविंदोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए इसपर विराजमान रहे, तबतक कलियुग पृथ्वीपर अपना कुछ कर्तव्य न कर सका ॥३०॥ जबसे मघा नक्षत्रमें सप्तऋषि वर्तमान होते हैं तभीसे प्रवृत्त होकर देवताओंके बारह सौ १२०० वर्षतक कलियुग रहता है ॥३१॥ अब सप्तऋषि मघा नक्षत्रसे निकल पूर्वाषाढा नक्षत्रपर जायेंगे तब नन्दका राज्य वर्तेगा और उसी नन्दके राज्यसे कलियुगका अत्यन्त प्रताप बढ़ेगा ॥ ३२ ॥ जिस दिनसे, जिस मुहूर्तसे, जिस क्षणसे श्रीकृष्णभगवान् अपने परमधामको सिधारे उसी दिन और उसी समय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, ऐसे भूतकालके जाननेवाले ऋषि लोग कहते हैं ॥३३॥ जब देवताओंके एक सहस्र १००० वर्ष

व्यतीत हो जायँगे, जो कलियुगका प्रमाण है, तो फिर पीछे सत्ययुगका प्रवेश होगा और सत्ययुगके आनेका यही लक्षण दिखाई देगा कि मनुष्योंके मनमें आपसे आप आत्माका प्रकाश हो जायगा ॥३४॥ हे राजन्! जिस प्रकार पृथ्वीपर मनुका वंश हुआ और आपसे कहा, उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंका वंश युग-युगमें जानना योग्य है ॥ ३५ ॥ जो आजतक नाममात्रसे ही जाने जाते हैं, उन जाननेवालोंकी केवल कथामात्र ही कहनेको रह गयी है, ऐसे महात्मा पुरुषोंकी कीर्ति ही संसारमें आजतक चली आती है, वे लोग पृथ्वी पर न रहे इसलिये प्राणियोंको चाहिये कि राज्य और पुत्रादिकी मोह ममताको त्यागकर अपने धर्म कर्ममें तत्पर रहे ॥ ३६ ॥ चन्द्रवंशी शन्तनुका भ्राता देवापि और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ सूर्यवंशी राजा मरु ये दोनों राजा अत्यन्त योगबलके प्रतापसे कलाप

इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि ॥ तथा विट्छूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगे युगे ॥ ३५ ॥ एतेषां नामलिङ्गानां पुरुषाणां महात्मनाम् ॥ कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ॥ ३६ ॥ देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ॥ कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥ ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ ॥ वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्त्तते ॥ ३९ ॥ राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथाऽपरे ॥ भूमौ ममत्वं कृत्वान्ते हित्वेमां निधनं गताः ॥४०॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽन्ते राजानाम्नोऽपि यस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥

ग्राममें वास करते हैं ॥ ३७ ॥ ये दोनों राजा कलियुगके अन्तमें भगवान्‌की शिक्षा पाकर पहलेके समान सब वर्णाश्रम धर्मोंका विस्तार करेंगे ॥३८॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये चारों युग इसी क्रमसे पृथ्वीपर मनुष्योंके विषे वर्त्तते रहते हैं ॥३९॥ हे राजन्! यह जो राजा मैंने आपके आगे वर्णन किये, इनके सिवाय और भी जो हुए सो सब इस भूमिमें ममता करके और इसकी यहीं छोड़कर आप रीते हाथों नाशको प्राप्त हुए ॥४०॥ जिस देहका नाम राजा था उसी देहके अन्तसमय कृमि, विष्ठा, खाक ये नाम हुए, ऐसे शरीरसे जो कोई शरीरधारी दूसरेसे द्रोह करते हैं उनका कौनसा स्वार्थ सिद्ध होता है? नरकमें वास करनेके सिवाय कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता ॥ ४१ ॥

किस प्रकारसे अखण्ड भूमिको हमारे पूर्वपुरुषोंने पाली थी और अब किस प्रकार हमारे पुत्र पौत्रों और वंशजोंके पास स्थिर रहेगी ? ॥४२॥ वे मूर्खलोग पञ्चभूतमय इस देहको अपना मानकर भूमिमें ममता कर अन्तसमय दोनोंको छोड़कर आप अकेले ही गये ॥४३॥ हे राजन् ! जो जो भूपति हुए, अपने पराक्रमसे भूमिका भोग करते रहे, इस महाविकराल कालने उन सबकी भी कथामात्र ही शेष रखी ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां कल्क्यवतारवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–तिसरेमें वसुधावचन, राज्य दोष गुणग्राम । कुलकलंक कलिकालके, मेटन हरिका नाम ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! यह पृथ्वी अपने जीतनेको परिश्रम करते

कथं सेयमखण्डा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ॥ मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य च ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वात्मतयाऽबुधाः ॥ महीं ममतया चोभौ हित्वान्तेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥ ये ये भूपतयो राजन्भुञ्जन्ति भुव-मोजसा ॥ कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० म० द्वा० कल्क्यवतारादि० द्वितीयोऽ-ध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ॥ अहो मां विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥ काम एष नरेन्द्राणां मोहः स्याद्विदुषामपि ॥ येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्राम्भिता नृपाः ॥ २ ॥ पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमन्त्रिणः ॥ ततः सचिवपौराप्तकरीन्द्रानस्य कण्टकान् ॥ ३ ॥ एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ॥ इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥

हुए राजाओंको देखकर मन ही मन ठट्ठे मार हँसती है कि अहो ! यह सब मृत्युके खिलौने राजा मुझको जीतना चाहते हैं, यह नहीं जानते कि तेरे समान अनन्त राजा मरकर खप गये ॥ १ ॥ जिस कामनाने बुद्बुदके समान इस देहविषे जिन राजाओंको विश्वास उपजाया, उनकी भी कामना निष्फल हुई ॥ २ ॥ मुख्य तो राजाओंका यह विचार है कि पहले पांचों इंद्रिय और छटे मनको जीतकर मन्त्री, प्रधान, सचिव पुरवासी और कुटुम्बादिक अपने वशमें करके शत्रुओंकी जड़को उखाड़ महावत और कटककी ओरसे बेखटक हो राज्य करेंगे ॥ ३ ॥ और इसी रीतिसे समुद्रतककी भूमिको जीतेंगे इस प्रकार आशावेष्टित हृदय वाले राजा अपने निकट रात-दिन डंका बजानेवाले कालका

कुछ ध्यान नहीं करते ॥४॥ अनेक राजा तो समुद्रके पारतक मुझको अपने पुरुषार्थसे जीतकर अत्यन्त तृष्णासे समुद्रके देशोंमें भी प्रवेश करते हैं, इंद्रिय और मनके जीतनेपर राज्य साधनेकी इच्छा करना मूर्खता है और आत्मजयका फल तो एक मुक्ति ही है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! वसुधा कहती है कि देखो ! जो मुझको छोड़कर मनु और मनुकी सन्तान मेरे ऊपर जैसे आये वैसे ही हाथ पसारे चले गये, मुझ अचलाको यह कुबुद्धि राजा युद्धमें जीतना चाहते हैं ॥६॥ देखो ! राज्यकी ममतामें बँधे हुए असत् राजा मेरे लिये पिता, पुत्र, भ्राता ये परस्पर भी क्लेश करते हैं ॥ ७ ॥ हे मूढ ! यह वसुधा मेरी है, इसमें तेरी किंचिन्मात्र भी नहीं है यह

समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा ॥ कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥ यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ॥ गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ॥ ६ ॥ मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातॄणां चापि विग्रहः ॥ जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥ ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेतिवादिनः ॥ स्पर्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥ पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ॥ मान्धाता सगरो रामः खट्वाङ्गो धुन्धुहा रघुः ॥ ९ ॥ तृणबिन्दुर्ययातिश्च शर्यातिः शन्तनुर्गयः ॥ भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥१०॥ हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ॥ नमुचिः शम्बरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥ अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ॥ सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥ ममतां मय्यवर्त्तन्त कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ॥ कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥

कहते और परस्पर स्पर्द्धा करते हुए मेरे लिये अनेक राजा युद्ध ही करते करते मर गये ॥ ८ ॥ पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, अर्जुन, भरत, मांधात, सगर, राम, खट्वांग धुन्धुमार, रघु ॥ ९ ॥ तृणबिंदु, ययाति, शर्याति, शान्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, रावण, नमुचि, नरकासुर, शम्बर, हिरण्याक्ष, तारक ॥ ११ ॥ ऐसे ऐसे अनेक दैत्य और राजा जो कि बड़े बड़े बलवान् और सर्वगुणनिधान, योद्धाओंके पराजय करनेवाले, जिन्होंने कहीं भी हार नहीं मानी, सब ही अजित हो गये ॥ १२ ॥ सो सब मरणधर्मा मेरे विषे अत्यन्त ममता करके रहते थे सो अब विना ही मनोरथ पूर्ण

किये कालके गालमें चले गये ॥१३॥ और सबकी सब कथा ही मात्र रह गयी। हे विभो ! लोकोंमें यश विस्तार करके आपतो परलोकको चले गये, ऐसे बड़े बड़े राजाओंकी कथा मैंने तुमसे कही, सो केवल विषयोंकी असारता और विज्ञान और वैराग्यका निरूपण करनेके लिये सो इसमें केवल वाणीका विलास है, कुछ परमार्थ नहीं ॥ १४ ॥ जिस अमंगलके दूर करनेवाले उत्तमश्लोक भगवान्के गुणोंको कवीश्वर लोग सदा गाते हैं, जो कोई श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी निर्मल भक्तिको चाहे वह निरन्तर उनके गुणोंको सुने ॥ १५ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! हे महामुने ! कलियुगके बड़े बड़े दोषोंको कलियुगके मनुष्य कौनसे उपायसे दूर कर सकते हैं ? सो तुम हमसे

कथा इमास्ते कथिता महीयसां वितीर्य लोकेषु यशः परेयुषाम् ॥ विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥ यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः सङ्गीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः ॥ तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ केनोपायेन भगवन् कलेर्दोषान्कलौ जनाः ॥ विधमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥ युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ॥ कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृते प्रवर्त्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ॥ सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥ संतुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तितिक्षवः ॥ आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥ त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ॥ अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसन्तोषविग्रहैः ॥ २० ॥

कहो ॥ १६ ॥ पहले तो युगोंके धर्मका और प्रलय कल्पका प्रमाण कहो, फिर महात्मा कालरूप विष्णुभगवान् की गति कहो ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नरेन्द्र ! सत्ययुगमें मनुष्योंका धर्म चार चरण करके बर्ते हैं एक तो सत्य, दूसरी दया, तीसरा तप, चौथा दान ये धर्मके चार चरण हैं ॥ १८ ॥ सत्ययुगके मनुष्य सन्तोषी, करुणावान्, सब प्रेम प्रीति रखनेवाले, शान्तचित्त, जितेंद्रिय, सहनशील, आत्माराम, समदृष्टि और परमार्थमें निरालस्य युक्त और परिश्रमी होते हैं ॥ १९ ॥ त्रेतायुगके विषे झूँठ, हिंसा, तृष्णा, विग्रह इन चार अधर्मके चरणोंसे सत्य, दया, तप, दान ये धर्मके चरण हैं, इनमेंसे धीरे धीरे चौथा भाग क्षीण होता जाता है ॥ २० ॥

हे राजन्! क्रिया तपमें निपुण न तो अतिहिंसक और न अतिलम्पट, धर्म, अर्थ, काममें निष्ठा, वेदत्रयी—धर्मपरायण ब्राह्मणवर्ण जिनमें मुख्यतया युगकी प्रजा होती है ॥२१॥ द्वापर युगमें अधैर्य, हिंसा, झूठ बोलना और द्रोह इन धर्मके चार चरणोंसे दया, तप, सत्य दान ये धर्मपांव आधे-आधे घट गये ॥ २२ ॥ इससे द्वापर युगमें यशस्वी, बड़े शीलवान्, वेदाध्ययनमें निपुण, अति ऐश्वर्यवाले, कुटुम्बी, प्रसन्नमुख, ब्राह्मण और क्षत्रिय चारों वर्णोंमें, मुख्य माने जायँगे ॥२३॥ कलियुगमें जब अधर्मकी वृद्धि होगी तब धर्मका एक चरण रह जायगा। सो भी शनैः शनैः करके अन्तमें नष्ट हो जायगा ॥ २४ ॥ कलियुगमें लोग लोभी, दुराचारी, निर्दयी, झूंठी लड़ाई करनेवाले,

तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लम्पटाः ॥ त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥ तपः सत्यदयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ॥ हिंसातुष्ट्यानृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥ यशस्विनो महाशीलाः स्वाध्यायाध्ययनेरताः ॥ आढ्याः कुटुम्बिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥ कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ॥ एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोऽपि विनङ्क्ष्यति ॥२४॥ तस्मिँल्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ॥ दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराः प्रजाः ॥२५॥ सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ॥ कालसञ्चोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥ २६ ॥ प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ॥ तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥२७॥ यदा कर्मसु काम्येषु भक्तिर्भवति देहिनाम् ॥ तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥२८॥ यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः ॥ कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥ २९ ॥

दुर्भागी, अत्यन्त तृष्णावाले, शूद्र और दास जिनमें मुख्य माने जायँगे ॥ २५ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों गुण ईश्वरके अधीन हैं, काल करके प्रेरित हैं, प्राणियोंमें सदा फिरते दिखायी देते हैं ॥ २६ ॥ जब मन, बुद्धि और इंद्रिय सत्त्वगुणमें स्थित हों तब सत्ययुग समझना चाहिये क्योंकि सत्ययुगके प्रभावसे ज्ञानमें रुचि होती है ॥ २७ ॥ हे बुद्धिमान् नृप! जब प्राणियोंकी रुचि सकाम कर्मोंमें हो तब रजोगुणयुक्त त्रेतायुग जानिये ॥ २८ ॥ जब लोभ, तृषा, अभिमान, दम्भ, मत्सरता, और काम्यकर्ममें प्रवृत्ति हो तब

भा॰ द्वा॰ ॥ ८ ॥

रजोगुण तमोगुणका उत्पन्न करनेवाला मुख्य द्वापर युग समझना चाहिये ॥२९॥ जब मनुष्योंके मनमें कपट, झूंठ, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय, दीनता हो तब तमोगुणको प्रकट करनेवाला मुख्य कलियुग जानिये ॥ ३० ॥ सो प्राणी कलियुगके हेतुको पाकर मन्दबुद्धि, भाग्यहीन, बहुत भोजन करनेवाले, कामी और निर्धन होंगे और स्त्री असाध्वी और व्यभिचारिणी होंगी॥३१॥ देश देशान्तरोंमें चोरोंका बड़ा भय होगा, वेद पाखण्डसे अत्यन्त दूषित होंगे, राजा प्रजाके लूटनेवाले होंगे, ब्राह्मण स्त्रीलम्पट उदरपरायण होंगे ॥३२॥ ब्राह्मण व्रत, आचारसे भ्रष्ट होंगे, गृहस्थ भिखारी होंगे, तपस्वी ग्रामवासी होंगे, संन्यासी द्रव्यके लोभी होंगे ॥ ३३ ॥ कलियुगकी नारी

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ॥ शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥ यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ॥ कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥ दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषण्डदूषिताः ॥ राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥ अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ॥ तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥ ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः॥ शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥ पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः ॥ अनापद्यपि मंस्यन्ते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥ पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ॥ भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

भा॰ टी॰ अ॰ ३

अत्यन्त ठिंगनी और बहुत भोजन करनेवाली, कालीकाली, बहुत सन्तान उपजानेवाली, महानिर्लज्ज, सदा कटुक वचन बोलनेवाली, चोर, ढीठ, कपटकी भरी हुई अनेक प्रकारकी माया दिखानेवाली होंगी ॥ ३४ ॥ तुच्छ किरातादि कपटी, दुराचारी, म्लेच्छ व्यापारी होंगे, आपदा विना ही सब लोक निन्दित जीविकाको श्रेष्ठ समझेंगे, जिस वृत्तिको सत्पुरुष स्वप्नमें भी धिक्कार करते थे ॥ ३५ ॥ धनहीन उत्तम पतिको भी स्त्री त्याग देंगी, नौकर अपने स्वामियोंकी नौकरी छोड़कर औरोंकी नौकरी करेंगे और नौकर रोगी हो जायँगे

तो स्वामी लोभके मारे नौकरीसे हटा देंगे, विना दूधकी गायोंको लोग म्लेच्छोंके हाथ बेंच डालेंगे ॥ ३६ ॥ पिता, भ्राता, सुहृद् और जातिवालोंको छोड़कर स्त्रीके सम्बन्धियोंसे प्यार करेंगे और स्त्रीके बहिन (साली), स्त्रीका भ्राता (साला) और उसकी स्त्री

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ॥ ननान्दृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥

(सलहेज) के साथ गुप्त मतकी बातें करेंगे । इस प्रकार दीन स्त्री और लम्पट नर कलियुगमें होंगे * ॥ ३७ ॥

---

* लावनी—धनि कलियुग महराज आपने लीला अजब दिखाई है। उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥ नीति पंथ उठ गया कचहरी पापन आन लगाई है । धर्म गया पाताल सभीके मन बेधरमी छाई है ॥ गुप्त हुए सच्चे वकील झूठोंकी बात सवाई है । सच्चोंकी परतीति नहीं झूठांने सनद बनाई है ॥ न्याय छोड़ अन्याय करें राजोंने नीति गँवाई है । हकदारोंका हक्कमेट बेहकपर कलम उठाई है ॥ जो हैं जाली फरेबवाले उनकी ही बनि आई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥१॥ गूजर जाट बने संन्यासी पोथी बगल दबाई है । मूड़मुड़ाकर इक धेलेमे कफनी लाल रँगाई है ॥ पन्थ चले लाखों पाखंडी अद्भुत कथा बनाई है । मुंह काला कर दिया किसीने शिरपर जटा रखाई है ॥ हुए नीच कुरसी नसीन ऊँचोंको नहीं तिपाई है । जुगुनू पहुँचे आसमान पर जाकर दुम चमकाई है ॥ फांके करते सन्त मिलें भडुओंको दूध मलाई है । उलटा ० ॥२॥ सास बहू से लड़ें बहू भी आंख फेर मुसलाई है । लेकर मूसल हाथ कोसती दांत पीस उठ धाई है ॥ घरवालेको छोड़ गैर कर कुलकी लाज गवांई है । निज पतिकी सेवा तजकर परपतिसे प्रीति लगाई है । पुरुष हुए ऐसे व्यभिचारी विषयवासना छाई है । वेश्या-ओंके फन्देमें पड़ घरकी तजी लुगाई है ॥ मात पिताकी करें बुराई नारि परमसुखदाई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥३॥ व्याह बुढ़ापेमें जो करते उनपर गजब खुदाई है । साठ बरसके आप करी कन्याके सङ्ग सगाई है ।कुछ दिन पीछे आप मर गये करके राड़ बिठाई है । लगी करन व्यभिचार लाज तजि घर घर लोग हँसाई है । पंडित पाधा करें दलाली मंत्री जिनका नाई है । शर्म रही नहिं बेशर्मोंको बेटी बेंचकर खाई है ॥ बहन भानजी त्यागन करके साली ज्योति जिमाई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥४॥गंगाजल गोरसको छोड़कर गाढ़ी भांग छनाई है । भक्ष्य अभक्ष्य लगे खाने मदिराकी होति छकाई है । श्वशुर बहूको कुदृष्टि देखें अदनी नियति डुलाई है । ठट्ठा अरु मसखरी करें सासूसे ज्वान जमाई है ॥ कहे भतीजा चचासे अपने तू मूरख सौदाई है । हमें चैन करनेसे मतलब किसकी चाची ताई है ॥ बहिन बहिनसे लड़ें और लड़ता भाईसे भाई है । उलटा चलन चला-दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥ ५ ॥ जामा अङ्गा दिया त्याग दिया अरु पगड़ी फारि बहाई है । पहन कोट पतलून शीशपर टोपी गोल जमाई है । तोड़ तख्त अरु सिंहासनको लाके बेंच बिछाई है । खीर खांड़ को त्यागन करके रोटी डबल पकाई है ॥ तोड़के ठाकुरद्वारा मसजिद सबकी करी सफाई है । गिरजा घरमें जाकरके ईसाकी करी बड़ाई है । बात करें सब अंगरेजीमें निज भाषा बिसराई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥६॥ मित्र शत्रु-सम हुए प्रीतिकी डाली तोड़ जलाई है । विद्या बिन हो गये विप्र गायत्री तलक भुलाई है । क्षत्रिय बैठे नारी बनकर ले तलवार छिपाई है । बन आईना कुछ बनियोंसे माया मुफ्त लुटाई है । शूद्र हुए धनवान ब्राह्मणोंने कीन्हीं स्योकाई है । गयावाल और मथुराके चौबोंकी बात बनि आई है। चारों युगोंसे कलिने अपनी नई रीति दिखलाई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सब की मति बौराई है ॥७॥ अपुज पूजने लगे कहुं सब शिरपर देवी आई है । घर घरमें गुलगुले शेख सद्दोंकी चढ़ी कढ़ाई है ॥ परब्रह्मको छोड़ भूत प्रेतोंकी दई दुहाई है । मूंड़ हिलाती कही मलिनियां कहुं कुसुम्भी माई है ॥ बालभोग ठाकुरको नहिं सय्यदके लिये मिठाई है । सन्तको कंबल नहीं पतुरियाको कुरती सिलवाई है ॥ गुरू हरैं चेलोंका धन चेला करता है चतुराई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥८॥ विधवालग गईपान चबाने दे सुरमा मुसुकाई है । नित करती शृङ्गार देखकर अहिवाती शरमाई है ॥ बैठें ज्वारी और अगामी हुआ जगत अन्यायी है । सब लक्षणं विपरीति और घर-घरमें होत लड़ाई है ॥ गाय जाय लाखों मारी करता नहिं कोई सुनाई है । इसीसे पड़ता काल सृष्टि में संपति सकल बिलाई है । हो दयाल हे नाथ ! आज कलयुगकी महिमा गाई । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥९॥

शूद्र तपस्वियोंका वेष धारण करके जीविका करेंगे और प्रतिग्रह लेंगे अधर्मी लोग ऊँचे आसनोंपर बैठकर धर्मका उपदेश करेंगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जब पृथ्वी अन्नहीन हो जायगी तब प्राणी अनावृष्टिके भयसे अत्यन्त पीड़ित और सदा दुर्भिक्ष्य और राजाओंके करसे क्लेशवान् और अत्यन्त व्याकुल हो जायँगे॥३९॥और वसन, भूषण, खान, पान, स्नान, शयन मैथुन,आदि सुखोंसे हीन दीन पिशाचसे दिखायी देंगे। सब प्रजा कलियुगमें इस प्रकार हो जायगी ॥ ४० ॥ कलियुगमें बीस कौड़ियोंके लिये मित्रता छोड़कर परस्पर लड़ेंगे और उसीको धन समझ

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः ॥ धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥ वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ॥ हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥४०॥ कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ॥ त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥ ४१ ॥ न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ॥ पुत्रान्सर्वार्थकुशलान् क्षुद्राः शिश्नोदरम्भराः ॥ ४२ ॥ कलौ न राजञ्जगतां परं गुरुं त्रैलोक्यनाथानतपादपङ्कजम् ॥ प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥ यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन्वा विवशो गृणन् पुमान् ॥ विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥

कर मरने मारनेको उपस्थित होंगे ॥ ४१ ॥ और अपने माता पिताका पालन नहीं करेंगे, सब अर्थोंसे निपुण पुत्रकी भी रक्षा न करेंगे, केवल स्त्रीसङ्ग और उदरपूर्ण करके सब प्रजा क्षुद्र हो जायगी ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! सब सृष्टिके परमगुरु और त्रिभुवनके पति जिनके चरणकमलको ब्रह्मादिक देवता नित्यप्रति नमस्कार करते हैं, ऐसे जगदीश्वर भगवान् अच्युतको कलियुगमें मरनेके समय पाखण्डोंसे दूषित हो बहुत पूजन न करेंगे, कभी रामनवमी, नृसिंहचौदस, जन्माष्टमीको भगवान्‌की पूजा कर लिया करेंगे ॥ ४३ ॥ वा जब मरण

समय आतुर होकर अथवा ऊँचेसे गिरकर वा मार्गमें रपटनेके समय विवश होकर कहेंगे कि 'हे भगवन्!' परन्तु नाम लेते ही वह मनुष्य कर्मबन्धनसे छूटकर परमगतिको प्राप्त होंगे तो भी उन भगवान्का कलियुगमें लोग पूजन नहीं करेंगे ॥ ४४ ॥ हे राजन्! अब कलियुगके सम्पूर्ण दोषोंको दूर करनेका उपाय आपके सामने वर्णन करता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये, द्रव्य देश शरीरसे उत्पन्न हुए कलियुगके दोषोंके नाशक पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्यके चित्तमें स्थित होकर सब दोषोंको हर लेते हैं ॥४५॥ जो प्राणी परमेश्वरका श्रवण, कीर्त्तन, पूजन, ध्यान और सत्कार करते हैं भगवान् उन पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर दशसहस्र जन्मके पापोंको दूर कर देते हैं ॥ ४६ ॥ जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त होकर और सब धातुओंके मिले हुए मलिनपनको दूर कर देता है ऐसे ही विष्णु भगवान् हृदयमें

पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ॥ सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥ श्रुतः सङ्कीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा ॥ नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥ यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम् ॥ एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशुभम् ॥ ४७ ॥ विद्यातपः प्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ॥ नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥ ४८ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हृदिस्थं कुरु केशवम् ॥ म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥ म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ॥ आत्मभावं नयत्यङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥ कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ॥ कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥

स्थित होकर सब अशुभ वासनाओंको कलियुगमें दूर करेंगे ॥४७॥ विद्या अर्थात् अन्यदेवकी उपासना, तप, प्राणायाम, मित्रता, तीर्थ स्नान, व्रत, दान, जप आदिके करनेसे वैसा मन शुद्ध नहीं होता जैसा कि अनन्त भगवान् जब हृदयमें वास करें, तब शुद्ध होता है ॥ ४८ ॥ इसलिये हे राजन्! आपका मरण समय निकट आ गया है, अब आप सब प्रकारसे सावधान हो वसुदेव भगवान्का हृदयमें ध्यान धरो, तब तुम परमगतिको प्राप्त होओगे ॥ ४९ ॥ हे राजन्! जिसकी मृत्यु निकट आ जाय वह सर्वाश्रय, सर्वात्मा सर्वेश्वर भगवान्का ध्यान करें, क्योंकि उनका ध्यान करनेसे आदिपुरुष अविनाशी परमात्माके विषे लय हो जाता है ॥५०॥ हे राजन्! यह महाघोर कलियुग अनेक दोषोंकी

खानि है, परन्तु इसमें भी एक गुण बड़ा भारी है कि इस युगमें केवल परमेश्वरका कीर्त्तन करनेसे ही मनुष्य सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूट कर तीन ही दिनमें श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके परमधामको चला जाता है ॥ ५१ ॥ सत्ययुगमें विष्णु भगवान्के ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, त्रेतामें यज्ञोंके करनेसे जो फल होता है, द्वापरमें परिचर्या करनेसे जो फल होते हैं वे सब फल कलियुगमें केवल हरिके कीर्तनसे ही प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां कलियुगदोषवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा–नैमित्तिक प्राकृतिक अरु, आत्यंतिक औ नित्य। चौथे चार प्रकारके, प्रलय कहूँ हरिचिंत्य ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! जो कि आपने दो प्रश्न किये थे कि कलियुगका दोष किस उपायसे निवारण हो सकता है? और कलियुगमें कौनसा धर्म मुख्य

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ॥ द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥ ५२ ॥ इति श्रीभा० महा० द्वादश० कलिदोषादि व० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ॥ कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥ चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशाम्पते ॥ २ ॥ तदन्ते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता ॥ त्रयो लोका इमे तत्र कल्पन्ते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥ एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ॥ शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥ द्विपरार्द्धे त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥

है, जो पालना चाहिये? इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर तो मैंने आपसे वर्णन किया, अब प्रलयकालको निरूपण करता हूँ–परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्धतक काल और युगोंके प्रमाण मैं तुमसे पहले कह चुका हूँ अब कल्प और प्रलय (सृष्टिका अन्त) का प्रमाण सुनो ॥ १ ॥ हे प्रजा पालक! युगोंकी सहस्र चौकड़ीका ब्रह्माका एक दिन होता है, उसीको कल्प कहते हैं, जिसमें चौदह मनु राज्य करते हैं ॥ २ ॥ फिर अन्तमें चार सहस्र युगवाली ब्रह्माकी रात्रि होती है, उस रातमें इस त्रिलोकीकी प्रलय हो जाती है ॥ ३ ॥ इस प्रलयको विद्वान् लोग नैमित्तिक प्रलय कहते हैं, इस प्रलयमें विश्वस्रष्टा श्रीनारायण ब्रह्मा सहित त्रिलोकीको अपने उदरमें धारण करके अनन्त भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं ॥ ४ ॥ अब प्राकृतिक प्रलयका वृत्तांत सुनिये, परमेष्ठी ब्रह्माजीके द्विपरार्द्धका जब अन्त होता है तब महत्तत्त्व

अहंकार और पञ्चतन्मात्रा इन सातों प्रकृतियोंकी प्रलय होती है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसलिये इस प्रलयको पंडित लोग प्राकृतिक प्रलय कहते हैं, जिस प्रलयमें नाशका कारण प्राप्त होनेसे सातों प्रकृतियां और उनके कार्यरूप सब ब्रह्माण्ड भी लय हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जब प्रलय होगा उस समय सौ १०० वर्षतक मेघ नहीं वर्षेगा, तब सब पृथ्वी अन्नरहित हो जायगी, उस समय सब प्रजा क्षुधासे पीड़ित हो एक एकको भक्षण करने लगेगी । इस प्रकार कालाधीन हो सहज सहजमें सब नाशको प्राप्त हो जायगी ॥७॥ फिर प्रलयकालका मार्त्तण्ड अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्रके और सब शरीरोंके रसोंको खैंच लेगा, किंचिन्मात्र भी नहीं छोड़ेगा ॥ ८ ॥ फिर संकर्षण भगवान्‌के

एष प्राकृतिको राजन् प्रलयो यत्र लीयते ॥ आण्डकोशस्तु संघातो विघांत उपसादिते ॥ ६ ॥ पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति ॥ तदा निरन्ने ह्यन्योऽन्यं भक्ष्यमाणाः क्षुधार्दिताः ॥ क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ ७ ॥ समुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्त्तको रविः ॥ रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ॥ ८ ॥ ततः संवर्तको बह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ॥ दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान् भूविवरानथ ॥ ९ ॥ उपर्यधः समन्ताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥ दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् ॥ १० ॥ ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ परः संवर्तको वाति धूम्रं खं रजसा वृतम् ॥ ११ ॥ ततो मेघकुलान्यङ्ग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥ शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः ॥ १२ ॥ तदा भूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्याप उदप्लवे ॥ ग्रस्तगन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १३ ॥

मुखमें स्थित प्रलयका जो अग्नि है वह वायुके वेगसे भड़ककर इस शून्य मण्डलको सातों पाताल सहित जला देगा ॥ ९ ॥ फिर ऊपर नीचे सब ओर सूर्यकी मित्राग्निसे जलकर ऐसा शोभित होगा जैसा जला हुआ उपला (सूखा हुआ गोबर) शोभित होता है ॥ १० ॥ फिर इसके पीछे प्रलयकालकी महाप्रचण्ड पवन सौ वर्षतक चलेगी, उस समय आकाश धूरिसे आवृत होकर धूम्रवर्ण हो जायगा ॥ ११ ॥ हे अंग ! फिर पीछे विचित्र वर्णवाले अनेक प्रकारके मेघोंके समूह गम्भीर गर्जन शब्द करते १०० वर्षतक बरसेंगे, फिर पीछे यह ब्रह्माण्ड टूट टूटकर सब विश्व जलमय हो जायगा ॥ १२ ॥ उस समय भूमिका गन्ध गुण जल ग्रस्त हो जायगा, सो पृथ्वी गन्धहीन

होकर प्रलयको प्राप्त होगी ॥ १३ ॥ जलके रसको तेज ग्रस लेगा, सो जल निरस होकर प्रलयको प्राप्त होगा, तेजका रूप गुण वायु ग्रस लेगा, सो तेज रूप हीन हो पवनमें लीन होगा ॥ १४ ॥ पवनका स्पर्श गुण आकाश ले लेगा, सो वायु आकाशमें लीन होगा। ॥१५॥ हे राजन्! फिर आकाशका शब्द गुण उसको तामस अहंकारने ग्रस लिया, सो आकाश गुणहीन होकर अहंकारमें लीन होगा। राजस अहंकारने वृत्तियोंसहित इंद्रियोंको ग्रस लिया, सात्त्विक अहंकारने इंद्रियोंके देवताओंको ग्रस लिया तब देवता सात्त्विक अहंकारमें लीन हो जायँगे ॥ १६ ॥ हे राजन्! तीनों प्रकारके अहंकारको महत्तत्त्वने ग्रस लिया, तब अहं महत्तत्त्वमें लीन हो जायगा और महत्तत्त्वको

अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसाः ॥ ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १४ ॥ लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ॥ स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥ १५ ॥ शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते ॥ तैजसश्चेन्द्रियाण्यङ्ग देवान्वैकारिको गुणैः ॥ १६ ॥ महान्ग्रसत्यहङ्कारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ॥ ग्रसतेऽव्याकृतं राजन् गुणान् कालेन चोदितम् ॥ १७ ॥ न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ॥ अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १८ ॥ न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी ॥ न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ १९ ॥ न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ॥ संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥ २० ॥ लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ॥ शक्तयः संप्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २१ ॥

सत्त्वादि गुणोंने ग्रस लिया, तब सत्त्वादिक गुणोंको कालकी प्रेरित माया ग्रस लेगी ॥ १७ ॥ इस मायाका कालके वेगसे रातिदिन घट बढ़ नहीं होता और यह माया आदि अन्त करके अव्यक्त नित्य है, एकरस है, न स्पष्ट देखनेमें आती है, सर्वत्र जगत्‌की कारणरूप है ॥ १८ ॥ जहां वाणी मन सत्त्व रज तम तीनों गुण महत्तत्त्वादिक नहीं हैं, और प्राण, बुद्धि, इंद्रियोंके देवता विश्वकी रचना भी नहीं है ॥ १९ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, आकाश, पवन, अग्नि, जल, भूमि और सूर्य भी वहां नहीं हैं, सुषुप्ति शून्यके समान है, उसको कविलोग अतर्क्य मूलपद कहते हैं ॥ २० ॥ प्राकृतिक प्रलय यह आपसे कही, जिस प्रलयके पुरुष प्राकृतिक शक्ति सब कालसे

प्रेरित होकर लीन हो जाती। यह माया ईश्वरकी शक्ति है इससे सबके कारण रूप एक परब्रह्म परमेश्वर ही हैं ॥२१॥ हे राजन्! अब आपसे आत्यंतिक प्रलय कहते हैं–बुद्धि इंद्रिय, विषयरूप इन सबका आश्रय ज्ञान ही भासता है, जिससे अन्वय, व्यतिरेक करके जो आदि अन्तवान् हैं, सो सब वस्तु हैं। विचार करके देखो तो यही मोक्ष आत्यन्तिक प्रलय है क्योंकि यह मोक्ष आत्मज्ञानसे सब प्रपञ्चका लयरूप है। यहां पर प्रलय अर्थात् मृत्तिकाके ज्ञानसे जैसे घट वारुणी आदिका प्रतिरोध होता है, इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानसे और दूसरे सबका प्रतिरोध समझना। जो आत्माके सदृश प्रपञ्च यथार्थ हो तो उसका प्रतिरोध होना ठीक नहीं, इससे ज्ञात होता है कि प्रपञ्च पर ब्रह्मसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है अर्थात् यह ब्रह्मसे भिन्न सत्ताको नहीं रखते, इसलिये यह बुद्धिआदि प्रपञ्च भी दृश्यपनके हेतु और आदि अन्तवान् होनेके कारण और अपने कारणभूत परब्रह्मसे भिन्न नहीं है, इसलिये वास्तविक भी नहीं है ॥ २२ ॥ जैसे दीपक नेत्र, रूप यह

बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् ॥ दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २२ ॥ दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् ॥ एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥ २३ ॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ॥ मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥ २४ ॥ यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च ॥ ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २५ ॥ सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ॥ विनार्थेन प्रतीयेरन्पटस्येवाङ्ग तन्तवः ॥ २६ ॥

सब ज्योतिसे भिन्न नहीं है ऐसे ही बुद्धि, इंद्रिय, तन्मात्रा ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ २३ ॥ हे राजन्! जब यह बुद्धि परमात्मासे विलग नहीं है तब उसकी अवस्थारूप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनों परमात्मासे किस प्रकार विलग हो सकती हैं? क्योंकि ये तीनों अवस्था बुद्धिकी ही हैं। सब विद्वान् लोग यही कहते हैं कि तीनों अवस्थाओंके मानके लिये जगत् तैजस और प्राज्ञपन जो आत्मामें माना जाता है वह केवल मायामात्र ही है ॥२४॥ जैसे किसी समय मेघ आकाशमें नहीं होते और कभी होते हैं, ऐसे ही ब्रह्ममें यह जगत् कभी दीखता है कभी नहीं दीखता। जैसे घट चिह्नवाला है इससे आदि अन्तवाला है और जो पदार्थ आदि अन्तवाला होता है वह अपने आपसे किसी प्रकार भिन्न सत्तावाला नहीं हो सकता, इस बातका विद्वान् लोगोंने भलीभांति निर्णय किया है ॥ २५ ॥ हे राजन्! सब अवयवी जग-

त्में कारणभूत जो एक अवयव है वही मुख्य है, क्योंकि अवयवी विना भी अवयवकी प्रतीति होती है, इसी प्रकार विना ब्रह्म भी प्रतीत होता है, इसलिये जगत्का कारण रूप ब्रह्म ही है, देखो तन्तु विना वस्त्रका ज्ञान नहीं होता परन्तु वस्त्र तन्तुओंसे भिन्न नहीं हैं, क्यों कि वस्त्र तन्तुरूप ही है, इस प्रकार ब्रह्म विना जगत्की प्रतीति नहीं होती, इसलिये जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥२६॥ कार्यकारण मिलके जो कुछ हो सो सब भ्रमसे है, इसलिये आश्रमसे आदि लेकर अन्ततक जो कुछ है सो सब अवस्तु है ॥२७॥ यद्यपि विकारमय यह सब जगत् प्रकाशवान् भी है, परन्तु ब्रह्म विना उसका किञ्चिन्मात्र भी प्रकाश नहीं हो सकता और जो ब्रह्म विना प्रकाश हो तो उस आत्मासे ब्रह्मरूप ही होगा किसी प्रकार भिन्न हो ही नहीं सकता ॥ २८ ॥ सत्य वस्तुमें अनेक रीति नहीं हो सकतीं और जिसमें अनेक रीति हैं उसमें सत्यता नहीं हो सकती, यद्यपि आत्मामें और जीव ब्रह्ममें भेद दृष्टि आता है, परन्तु यह जीव और ब्रह्मका भेद घटा-

यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः ॥ अन्योऽन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २७ ॥ विकारः ख्याय-मानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा ॥ न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ॥२८॥ न हि सत्यस्य नानात्वम-विद्वान्यदि मन्यते ॥ नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ २९ ॥ यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रिया-भिर्व्यवहारवर्त्मसु ॥ एवंवचोभिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३० ॥ यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्क-दर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ॥ एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबन्धनः ॥ ३१ ॥

काश और महाकाशके समान है घटाकाश परिच्छिन्न है और महाकाश अपरिच्छिन्न होनेपर भी जैसे दोनोंके मध्यमें भेद नहीं है इसी प्रकार जीव परिच्छिन्न और ब्रह्म अपरिच्छिन्न होने पर भी जीव ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं। जैसे जलके बीचमें सूर्य कम्पायमान विकारसहित और आकाशमें निर्विकार सूर्य होनेपर कुछ भेद नहीं इसी प्रकार ब्रह्मकी सृष्टि आदि और जीवकी सृष्टि आदि क्रियामें अलग अलग होनेपर कुछ भेद नहीं जान पड़ता यह सब उपाधिमात्र ही भेद है, जीव ब्रह्ममें भेद मानना मूर्खोंका काम है ॥ २९ ॥ जैसे सुवर्ण मनुष्योंके व्यवहारादिकोंमें मुकुट कुण्डलादि रूपोंसे अनेक प्रकारका दृष्टि आता है, इसी प्रकार अहंकाररूप उपाधिवाले मनुष्य ऐसे ही भगवान् अधोक्षजकी लौकिक वैदिक वाणियोंसे अनेक अनेक प्रकारकी महिमा वर्णन करते हैं ॥ ३० ॥ जैसे बादल सूर्यसे ही

प्रकट हुए और सूर्यसे ही प्रकाशित हुए सूर्यके अंशरूप नेत्रोंका आवरण करता है, ऐसे ही ब्रह्मसे प्रकट हुआ और ब्रह्मसे ही प्रकाशित अहंकार ब्रह्मके अंश जीवको उस ब्रह्मके दर्शनका आवरण करता है ॥ ३१ ॥ सूर्यसे उत्पन्न हुआ बादल जब विदीर्ण हो जाता है, तब चक्षु सूर्यको देखते हैं ऐसे ही अहंकाररूप उपाधि जब तत्त्वविचार करके विनष्ट हो तब यह जीव अपने ब्रह्मस्वरूपको पहचानता है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार विवेकरूप खड्गसे मायामय अहंकाररूप आत्माके बन्धनको काटकर जब शुद्ध ब्रह्मका अनुभव करके स्थित हो, तब उसको कविलोग आत्यंतिक प्रलय (मोक्ष) कहते हैं ॥ ३३ ॥ हे शत्रुओंके ताप देने वाले! सूक्ष्मवेत्ता विद्वान् लोग कहते हैं कि ब्रह्मादिक सब प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलय क्षणक्षणमें होती रहती है ॥ ३४ ॥ नदी प्रवाह और दीपककी ज्वाला आदि परिणामी पदार्थोंकी

घनो यदाऽर्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ॥ यदा ह्यहङ्कार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥३२॥ यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहङ्करणात्मबन्धनम् ॥ छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यन्तिकमङ्गसंप्लवम् ॥ ३३ ॥ नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप ॥ उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ॥ ३४ ॥ कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा ॥ परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३५ ॥ अनाद्यन्तवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ अवस्था नैव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषामिव ॥३६॥ नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ॥ आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥३७॥ एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कार्त्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३८ ॥

क्षणक्षणमें लोटपोट होनेसे जैसी अवस्थायें होती हैं, वैसी ही कालरूप नदीके वेगसे नित्य आयुर्बल हरी जानेसे देहादिकोंकी अवस्थायें नित्य जन्म-मरणके कारणको प्राप्त होती हैं ॥ ३५ ॥ आदि अन्तसे हीन ईश्वरकी मूर्ति कालसे प्राणियोंकी सूक्ष्म अवस्था नहीं जानी जाती, जैसे आकाशमें नक्षत्रादिकी क्षणक्षणकी चालें दिखायी नहीं देतीं इसी प्रकार कालसे झपटी हुई शरीरादिकोंकी क्षणक्षणकी अवस्थायें भी दिखायी नहीं देतीं ॥ ३६ ॥ नित्य नैमित्तिक प्राकृतिक और आत्यन्तिक यह चार प्रकारकी प्रलय आपसे कही और कालकी गति भी आपसे कही ॥ ३७ ॥ हे कौरव कुलभूषण ! जगत्के कर्त्ता और सब प्राणियोंके जीवन आधार श्रीमन्नारायणकी लीला

और कथा आपसे संक्षेपमात्र कही और सम्पूर्ण चरित्र कहनेका तो ब्रह्माको भी सामर्थ्य नहीं ॥ ३८ ॥ जो प्राणी अनेक भांतिके दुःखरूपी दावाग्निसे कष्ट पाकर इस महादुस्तर संसाररूपी समुद्रके पार उतरना चाहे, उनको भगवान् पुरुषोत्तमकी लीला और चरित्रोंकी कथारूपी रसपानके सिवाय इस संसारसागरके पार होनेके दूसरा उपाय नहीं। विश्वासरूप नौकापर चढ़कर संसाररूपी समुद्रसे तर सकता

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ॥ लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ३९ ॥ पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ॥ नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४० ॥ स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः ॥ इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमिताम् ॥ ४१ ॥

है * ॥ ३९ ॥ अव्ययरूप श्रीनारायण ऋषिने यह पुराणसंहिता पहले नारदमुनिसे कही थी और नारदमुनिने श्रीवेदव्यासजीसे कही ॥४०॥ हे महाराज! उन आत्मज्ञानी भगवान् वेदव्यासदेवजीने अत्यंत प्रसन्न होकर यह सब वेदोंके समान 'श्रीमद्भागवत' संहिता मुझको पढ़ायी॥४१॥

---

* दृष्टान्त—एक गूजरी कहीं पंडितजीकी कथा सुननेको गयी, पंडितजी उस समय यह कथा कह रहे थे कि परमेश्वरके नाम लेनेसे प्राणी संसाररूपी समुद्रके पार हो जाता है। गूजरी बातको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, क्योंकि उसे प्रतिदिन यमुनाजीके उतरनेमें नाववालेको पैसा देना पड़ता था। वह विचारने लगी कि जब श्रीकृष्णके नामसेसमुद्रको तर जाते हैं तो क्या यमुनाजी नहीं तरी जायेंगी ? बस, वह उसी समय श्रीकृष्णका नाम ले यमुनामें घुस पड़ी और क्षणमात्रमें पार उतर गयी,इसी प्रकार प्रतिदिन यमुना उतर कर आने जाने लगी; तब एक दिन गुजरीने अपने मनमें विचार किया कि पंडितजीने मेरे सङ्ग बड़ा उपकार किया जो विना ही नौका यमुनापार हो जाती हूं, उनको निमंत्रण देना चाहिये। सो उसने पंडितजीको निमंत्रण दिया और भोजन करानेके लिये पंडितजीको अपने साथ लेकर चली। पंडितजी उसको यमुनाजीमें घुसती देख आप भी उसके पीछे-पीछे हो लिये और समझा कि घाट बहुत गहरा न होगा, जब कंठतक पानी आ गया और पांवोंके नीचेका रेता निकलने लगा परंतु उस गूजरीके घुटनेतक न भीजे, तब तो पंडितजीने घबराकर पुकारा कि अरी ! तू किधरको ले आयी ? मैं तो डूबा मुझे किसी प्रकार बचा। गूजरी बोली —क्या तुमने श्रीकृष्णका नाम नहीं लिया ? श्रीकृष्णका नाम ले लो, क्या तुम उस दिनकी कथाके वृत्तान्तको भूल गये ? आपने कहा था कि एक श्रीकृष्णके नामसे प्राणी महादुस्तर समुद्रके पार हो जाता है। पंडितजी बोले—क्या यह नदी भी श्रीकृष्णका नाम लेनेसे तरी जाती है ? गूजरीने कहा कि क्या आप इतना भी नहीं जानते कि जब समुद्र से ही पार हो गये तो क्षुद्र नदी कहां रही ? गूजरीने पंडितजीका हाथ पकड़कर कहा कि श्रीकृष्णका नाम लेकर मेरे संग चले चलो ! देखो ! विश्वासवाली गूजरीने इस प्रकार पंडितजीको पार उतार अपने घर ले गयी और उस गूजरीने प्रीतिसे पंडितजीको भोजन कराया, कहनेका तात्पर्य यह है कि विश्वास करके भक्ति करनेसे ही मनुष्य संसारसागरके पार होते हैं

हे कुरुकुलभूषण ! नैमिषारण्यमें बड़े यज्ञके करनेवाले शौनकादि ऋषि जब पूछेंगे तब सूतजी उन ऋषियोंको यह श्रीमद्भागवत पुराण कहेंगे ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां प्रलयवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा—पंचममें संक्षेपसों, परब्रह्म उपदेश । सर्पडसन भय नृपतिको, काटो शुकदेवेश ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस भागवतमें निरंतर विश्व आत्माका ही वर्णन है, जिन भगवान्का रजोगुणसे ब्रह्मा और तमोगुणसे रुद्र हुए ऐसे ब्रह्मा रुद्रादि सब सृष्टिके कर्त्ता भगवान्के गुणानुवाद जो हित-चित्तसे सुनता है उसको किसी प्रकारका भय नहीं ॥ १ ॥ हे राजन् ! हम मरेंगे इस पशुबुद्धिको छोड़ दो । इस देहसे न तो तुम पहले उत्पन्न हुए और न नष्ट होओगे यह आत्मा तो अजर अमर अनादि है, यह तो न कभी मरता है न जीता है ॥ २ ॥ यह शरीर बीज

एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये ॥ दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥४२॥ इति श्रीभा० महापु० द्वादशस्कन्धे चतुर्लय० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ॥ यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥ त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धीमिमां जहि ॥ न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥ न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ॥ बीजाङ्कुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥ ३ ॥ स्वप्ने यथा शिरश्छेदः पञ्चत्वाद्यात्मनः स्वयम् ॥ यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥ घटे भिन्ने यथाऽकाश आकाशः स्याद्यथा पुरा ॥ एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥ ५ ॥

और अंकुरकी नाईं पुत्र पौत्रादि रूप होकर जन्मता मरता रहता है, कभी बीजसे अंकुर होता है, कभी अंकुरसे बीज होता है, ऐसे तुम बीज अंकुरवत् देहादिकोंसे भिन्न हो, जैसे अग्नि काष्ठसे भिन्न है ॥ ३ ॥ जैसे कोई प्राणी स्वप्नमें अपना शिर काटा हुआ देखे, ऐसे ही जाग्रत अवस्थामें देहके मरणको आप देखता है, इससे मैं मरूंगा यह केवल भ्रांति है, क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है ॥ ४ ॥ आत्माका जन्म मरणादिक जगत्की भ्रांति देहरूप उपाधिके साथ है; इसलिये उपाधिकी निवृत्ति होनेसे इस जीवकी मुक्ति हो जाती है । जैसे घट फूट जानेसे घटाकाश महाकाशमें जा मिलता है अर्थात् जैसा प्रथम महाकाशरूप था वैसा ही फिर हो जाता है, वैसे ही जीवको जब आत्म-

ज्ञान हो जाता है, तो फिर वह ब्रह्मका ब्रह्म हो जाता है ॥ ५ ॥ आत्माके देह, गुण और कर्मोंको मन ही उत्पन्न करता है और मनको माया उत्पन्न करती है और इसी करके जीवका जन्म-मरण होता है और विचार करके देखो तो आत्मा निर्लेप है ॥ ६ ॥ जबतक तेल, सराव, बत्ती और अग्निका संयोग बना रहता है, तबतक ही दीपक कहलाता है, ऐसे ही जबतक कर्म मन चैतन्य संसारादिक और इस देहका संयोग है तबतक ही संसार है और जब इन समुदायोंकी निवृत्ति हो जाती है, तब यह संसार भी नहीं रहता ॥ ७ ॥ यह देह ही सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जन्मता मरता है, आत्मा न जन्मे न मरे, इसके स्थूल सूक्ष्म दोनों देहोंसे मरता है और स्वयंप्रकाश देहादि-

मनः सृजति वै देहान्गुणान् कर्माणि चात्मनः ॥ तन्मनः सृजते मायां ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥ स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ॥ ततो दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ॥ रजः सत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥ न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ॥ आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः ॥ ८ ॥ एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ॥ बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिन्तया ॥ ९ ॥ चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ॥ मृत्यवो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥ १० ॥ अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ॥ एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ ११ ॥ दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ॥ न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥

कोंका आश्रय नित्य निर्विकार, अनंत, अनादि और निरूपम है कभी नष्ट नहीं होता ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! अनुमानयुक्त बुद्धिसे भगवान् वासुदेवका चिन्तवन करते हुए शरीरमें स्थित शुद्ध आत्माको मनसे विचार करो ॥ ९ ॥ इस प्रकारका विचार करोगे तो ब्राह्मणके वाक्योंसे प्रेषित किया हुआ तक्षक सर्प तुमको नहीं जला सकेगा, क्योंकि परब्रह्मको मृत्यु भी नहीं जला सकती ॥ १० ॥ जो मैं हूँ सो परमधामरूप ब्रह्म है और जो परमधामरूप ब्रह्म है वह मैं हूँ, यह विचार करके निरूपाधि ब्रह्ममें तुम अपने आपको रखोगे तो ॥ ११ ॥ विषयुक्त मुखसे अपने चरणमें काटते हुए तक्षक नागको किसी प्रकार न देखोगे, न इस देहको देखोगे और न आत्मासे भिन्न विश्वको देखोगे ॥ १२ ॥

हे तात ! हे नृपेन्द्र ! विश्वके आत्मा भगवान्‌का चरित्र जो कुछ तुमने पूछा वह सब मैंने आपसे कहा, अब आप क्या सुनना चाहते हो सो कहो ? ॥ १२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां ब्रह्मोपदेशो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा—इस छठवें अध्यायमें, भये परीक्षित् मुक्त । सुत न अहि होमे सकल, इद्रासन संयुक्त ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ऋषि ! सबकी बुद्धिको जाननेवाले निवृत्तिपरायण व्यासके पुत्र शुकदेवजीके गूढ़ वचन सुनकर विष्णुरात परीक्षित् शिर झुकाकर चरणारविन्दोंकी वन्दना कर हाथ जोड़कर बोले ॥ १ ॥ हे मुने करुणानिधान ! आपने परम अनुग्रह करके मुझको कृतार्थ किया, कि आदि अन्तसे हीन साक्षात् भगवान् परब्रह्मका चरित्र

एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप ॥ हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१२॥ इति श्रीभा० महा० द्वा० तत्त्वोपदेशेन मृत्युभीतिनिवारणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्व्या-सात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ॥ तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ॥ श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥२॥ नात्य-द्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ॥ अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥ पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ॥ यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥ भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ॥ प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥ अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ॥ मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥ अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ॥ भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥

सुनाया, जिसको सुनकर सिद्ध हुआ ॥ २ ॥ आपसे मुक्तिरूप सज्जन इस संसाराग्निके तापोंसे तपे हुए अधम लोगोंका अच्युत भगवान्‌में मन लगानेवाले और उनपर अनुग्रह करना मैं इस बातको कुछ अद्भुत नहीं समझता ॥ ३ ॥ यह पुराणसंहिता आपके मुखारविन्दसे मैंने सुनी, इस 'श्रीमद्भागवत' संहितामें उत्तम यशवाले भगवान्‌का निरंतर वर्णन है ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! तक्षकादिक मृत्युओंसे अब मुझे किसी प्रकारका भय नहीं रहा, क्योंकि आपने जो परमानंद ब्रह्मरूप मुझे दिखा दिया मैं उसीमें लय हो गया ॥५॥ हे ब्रह्मन् ! जो मुझको आज्ञा हो तो वाणीको रोककर निष्काम चित्तको भगवान् अधोक्षजमें रखकर प्राणोंका त्याग कर दूँ ॥ ६ ॥ ज्ञानविज्ञानकी निष्ठासे मेरा सब अज्ञान

निवृत्त हो गया, जबसे आपने मंगलरूप भगवान्‌का परमपद मुझको दिखाया ॥७॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! राजा परीक्षित्‌ने इस प्रकार प्रार्थना कर श्रीशुकदेवजीका पूजन किया, तब भगवान् बादरायण परीक्षित्‌की पूजा स्वीकार कर बिदा मांग मुनियोंसहित वहांसे पधारे ॥८॥ पीछे राजऋषि परीक्षितने बुद्धिसे मनको रोक, परब्रह्ममें मन लगा, श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानमें मग्न हो इंद्रियोंको निश्चल कर, सूखे वृक्षकी

सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ॥ जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥ परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ॥ समाधाय परं दध्यावस्पन्दासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥ प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गङ्गाकूलं उदङ्मुखः ॥ ब्रह्मभूतो महायोगी निःसङ्गश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥ तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ॥ हन्तुकामो नृपं गच्छन्ददर्शपथि कश्यपम् ॥ ११ ॥ तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

नाईं अचल हो गया ॥ ९ ॥ गंगाके किनारेपर पूर्व अग्र कुशासन पर बैठ उत्तरदिशाकी ओरको मुख करके संशयछिन्न निस्संग महायोगी परब्रह्ममें तदाकार हो गया ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो ! क्रोधी ब्राह्मणके पुत्रका भेजा हुआ तक्षक राजाके काटनेकी इच्छा करके चला तब मार्गमें कश्यपजीको देखा * ॥ ११ ॥ कि कश्यपजी राजा परीक्षित्‌के पासको जाते हैं और यह विषके उतारनेमें

* जिस समय तक्षक ब्राह्मणका वेष धारण करके राजा परीक्षित्‌को काटनेके लिये चला तो मार्गमें उसको कश्यपजी मिले तक्षकने कश्यपजीसे पूछा कि आज आप कहाँको चल दिये? कश्यपजी बोले कि राजा परीक्षित् को आज सर्प काटेगा, हम उसको अच्छा करने जाते हैं तब तक्षकने कहा कि तक्षकके काटेको आरोग्य करनेकी किसीका सामर्थ्य नहीं, आप तो क्या वस्तु हें ! कश्यपजी बोले कि यदि वह होता तो उसको अपना कर्त्तव्य दिखाते । तक्षक बोला कि में ही तक्षक हूं और इस वृक्षको काटता हूं अब तुम इसको अच्छा करो । उसने ज्योंही वृक्षको डसा त्यों ही वह जलकर भस्म हो गया; वरन् उस वृक्षपर सूखी लकड़ी तोड़नेके लिये एक लकड़हारा चढ़ा था वह भी उस वृक्षके संग जलकर भस्म हो गया तब कश्यपजीने संजीविनी मन्त्र पढ़कर दो घड़ीमें लकड़हारे सहित उस वृक्षको यथावत् कर दिया। तब तक्षक आश्चर्यमय होकर कहने लगा कि आप कुछ ज्योतिष विद्या भी जानते हैं । कश्यपजी बोले हां, तब तक्षकने कहा कि विचारो तो राजाकी अवस्था कितनी और रही है कश्यपजी बोले कि हमारे विचारमें ऐसा आता है कि राजाका आयुर्बल दो घड़ी शेष है । तब तक्षकने कहा कि मन्त्र अकाल मृत्युवालेको जीवित कर सकता है ? परंतु जिसकी मृत्यु ही निकट आ गयी हो उसको कोई नहीं बचा सकता, फिर वृथा उपाय करनेसे मान हानि होती है और जो आपकी धनकी इच्छा है तो इसी वृक्षके नीचे बहुत गड़ा है । जितना चाहिये उतना ले जाओ, कश्यपजीको और किसी बातसे प्रयोजन नहीं था अपनी इच्छानुसार धन लेकर अपने आश्रमको लौट गये, तब तक्षकने राजाके पास जाकर एक पुष्पमें कीड़ेकारूप धारण कर घुस बैठा और तक्षकके पुत्रने ब्राह्मणका रूप धरकर वह फूल राजाको दिया, राजा फूलको देखकर कहने

चतुर हैं तब तक्षकने * उस विषके दूर करनेवाले कश्यपजीको धनसे तृप्त कर जानेसे रोक लिया, तब इच्छारूपी तक्षकने ब्राह्मणका रूप धरके अपने आपको छिपाकर राजा परीक्षित् को जाकर काटा ॥१२॥ ब्रह्मस्वरूप राजऋषि परीक्षित्की देह विषाग्निसे सबके देखते देखते उसी समय जलकर क्षार हो गयी ॥१३॥ उस समय पृथ्वी, आकाश, सब दिशाओंमें बड़ा हाहाकार होने लगा, नगरमें कोलाहल मच गया।

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ॥ बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥ हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ॥ विस्मिता ह्यभवन् सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वाप्सरसो जगुः ॥ ववर्षुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥ जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ॥ तथा जुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सह द्विजैः ॥ १६ ॥

देवता, असुर, मनुष्यादिक सब आश्चर्यमय हो गये ॥१४॥ आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभी बजने लगीं, गंधर्व गाने लगे, अप्सरा नृत्य करने लगीं और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और महात्मा पुरुष बारम्बार धन्यवाद देने लगे ॥ १५ ॥ राजा जनमेजय अपने पिता परी-

---

लगे कि संध्या हो गयी और तक्षक अभीतक नहीं आया कहीं ब्राह्मणका वचन झूठा न हो जाय इस कीड़ेसे ही मस्तकमें कटवा लें। ज्यों राजाने कीडेसे कटवाया त्योंही तक्षकने अपना रूप धर राजाको डसा कि राजा तुरंत भस्म हो गये और तक्षक उसी समय उड़ गया, उस लकड़हारेने जब सब वृत्तांत कहा तब जनमेजयने तक्षकका अपराध विचार सर्पसत्र यज्ञ किया।

* शंका—द्वादशके पांचवें अध्यायमें शुकदेवजीने कहा कि हे राजन्! ब्राह्मणके शापकी आज्ञाको जिस सर्पने पाया वह सर्प तुमको नहीं डसेगा; भागवतके श्लोकोंमें 'त्वाम्' शब्द लिखा है सो शुकदेवजीने 'त्वाम्' किसी को कहा था कि 'त्वाम्' परीक्षित्की देहको कहा था कि जीवको कहा था; जो जीवको 'त्वाम्' कहा तो भी अयोग्य है, क्योंकि जीव किसीके जलानेसे जल नहीं सकता, जो कदापि ऐसा देखकर कि संसारमें शरीरकी प्रशंसा है जीवको कोई नहीं जानता, शरीरको ही 'त्वाम्' कहा था तो फिर सर्पके काटनेसे शरीर क्यों भस्म हो गया, मुनिने तो कहा था कि भस्म नहीं होगा। यह शंका होती है ?

उत्तर—जो प्रश्न तुम लोगोंने किया सो सत्य है,संसारसे शरीर की प्रशंसा देखकर कि देहके जीवको कोई भी नहीं जानता इसलिये शुकदेवजीने देहको 'त्वाम्' कहा था अब देह भस्म होनेका कारण सुनो—शुकदेवजीका वचन सत्य था कि राजाका देह सर्पके काटनेसे भस्म नहीं होता परंतु परीक्षित्ने मरनेके समयमें शुकदेवजीसे भागवत सुनी, सर्पके काटनेसे नरक होता है, भागवत्के प्रभावसे अब इसको नरक नहीं होना चाहिये, जो ऐसा करेंगे तो सर्पकी मर्यादा नाश हो जायगी, इसलिये भागवन्तकी, सर्पकी,शुकदेवजीकी इन तीनों की मर्यादा रखने के लिये भगवान्ने परीक्षित्का तीन कर्म करके तीनोंकी मर्यादा राखी, सर्पके काटनेसे मृत्यु होती है तो उस प्राणीको नरकमें जाना पड़ता है सो श्रीमद्भागवत् सुननेके प्रतापसे राजा परीक्षित्को भगवान्ने नरकवाससे छुड़ाया और शुकदेवजीका राजा शिष्य था इसलिये वैकुण्ठमें राजाको भेजा, सर्पकी मर्यादा रखनेके लिये राजाका देह भस्म किया, इसलिये राजाकी देह भस्म हो गयी कुछ शुकदेवजीका वाक्य झूंठा नहीं था, परंतु सर्पकी मर्यादा भगवान् न रखते तो कभी राजाकी देह भस्म न होती ?

भा० द्वा० ॥१६॥ क्षितको तक्षकसे डँसा सुनकर महाक्रोधित हुआ और ब्राह्मणोंको बुला सर्पसत्रयज्ञमें सर्पोंका होम करने लगा ॥ १६ ॥ उस यज्ञकी महा-प्रचण्ड अग्निमें बड़े बड़े सर्पोंको जलता हुआ देखकर तक्षक डरके मारे अत्यन्त व्याकुल हो इन्द्रकी शरण गया ॥ १७ ॥ परीक्षितके पुत्र राजा जनमेजयने जब तक्षकको यज्ञमें न देखा तो ब्राह्मणोंसे पूछा कि सर्पोंमें अधम तक्षक यहां आकर क्यों नहीं भस्म हुआ ? ॥१८॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे नरेंद्र ! अपनी शरण गये तक्षककी इन्द्र रक्षा करता है और इन्द्रने ही उसको अपने समीप बैठा रखा है इसी लिये वह अग्निमें आकर नहीं पड़ा॥१९॥ ब्राह्मणोंका यह वचन सुनकर उदारबुद्धि राजा जनमेजय ब्राह्मणोंसे बोला कि हे ब्राह्मणो ! इन्द्रसहित

सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ॥ दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥ अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा परीक्षितो द्विजान् ॥ उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥ तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणमागतम् ॥ तेन संस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥ पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ॥ सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वा जुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे ॥ तक्षकाशु पतस्वेह सहेन्द्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिन्द्रः प्रचालितः ॥ बभूव संभ्रान्तमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥ तं पतन्तं विमानेन सह तक्षकमम्बरात् ॥ विलोक्याङ्गिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥

भा० टी० अ० ६ उस तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं डाल देते, क्या इतना सामर्थ्य आपमें नहीं है ? ॥२०॥ जनमेजयका वचन सुनकर सब ब्राह्मण इन्द्रसहित उस तक्षकको आहुतिमन्त्र पढ़कर आवाहन करने लगे "हे तक्षक ! मरुद्गणाधीस इन्द्रके संग तू शीघ्र यज्ञाग्निमें आकर पड़" इस प्रकार आहुति मन्त्रोंसे इन्द्रसहित तक्षकको बुलाया॥२१॥ब्राह्मणोंके कठोर वचनोंसे मन्त्रोंके आकर्षणसे तक्षक सहित इन्द्र अपने स्थानसे चलायमान हो विमान और तक्षक सहित अपने मनमें घबड़ा गया ॥ २२ ॥ इन्द्रको विमान और तक्षकसहित आकाशसे गिरता हुआ देखकर अंगिराके

पुत्र बृहस्पतिजीने जनमेजयसे कहा ॥ २३ ॥ हे नरेंद्र ! यह सर्पराज आपके हाथसे वध करने योग्य नहीं है, क्योंकि इसने अमृतपान किया है * इसलिये यह अजर अमर है ॥२४॥ हे राजन् ! तक्षकके डँसनेसे पिताका मरण सुनकर आपको इतना क्रोध तक्षक पर करना नहीं चाहिये, क्योंकि जीवोंका जीवन, मरण और परलोक अपने कर्मोंसे ही होता है, इसे सुख दुःखका दाता और कोई दूसरा नहीं जान पड़ता ॥ २५ ॥

नैष त्वया मनुष्येन्द्र वधमर्हति सर्पराट् ॥ अनेन पीतममृतमथवा अजरामरः ॥ २४ ॥ जीवितं मरणं जन्तोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ॥ राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ॥ पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदं राजन् संस्थीयेताभिचारिकम् ॥ सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥

हे नरेश ! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली क्षुधा, तृषा, रोगादिकोंसे प्राणी मृत्युको प्राप्त होता है सो वह अपने प्रारब्ध और कर्मोंका ही भोग भोगता है कुछ सर्पादिक स्वतन्त्र नहीं हैं, उनको भी प्रारब्ध और कर्म ही प्रेरणा करता है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह प्राणी अपने अदृष्टका ही भोग करता है, इसलिये इस हिंसक अभिचार यज्ञको समाप्त करो। देखो ! इस यज्ञमें अनेक निरपराधी सर्प भस्म हो गये, परन्तु

---

* शंका—राजा जनमेजयके यज्ञमें बृहस्पतिजीने राजा जममेजयसे कहा कि हे राजन् ! तक्षकने अमृत पी लिया है, आपके मारनेसे वह नहीं मरेगा क्योंकि अमृतको जो प्राणी पी लेता है वह किसीके मारनेसे नहीं मरता । इस बातमे यह संदेह है कि अमृतका स्वामी इन्द्र जिसने रातदिन अमृत पिया, वरन् अमृत पीते-पीते अनेक युग बीत गये ऐसे इन्द्रको ब्राह्मणोंने तप और मंत्रोंके प्रभावसे राजा जनमेजयके यज्ञकुण्डमें स्वर्गसे गिराकर भस्म करनेका सामर्थ्य तो ब्राह्मणोंसे था और जिस तक्षकने राई भर अमृत पी लिया, क्या वह ब्राह्मणोंके मन्त्र और जपके प्रभावसे भस्म नहीं हो सकता ?

उत्तर—जो प्राणी बहुत दुःखी होकर भगवान्का नाम एक बार भी लेता है उसको असंख्य नामके जपनेका फल प्राप्त होता है। ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। तक्षकने जाना ? कि मैं बड़े-बड़े देवताओंके पास गया, किसीने भी मेरी सहायता नहीं की, ऐसा विचार कर इन्द्रलोकमें गया, महादुःखी हो रहा था नेत्रोंसे आंसू चले जाते थे और अत्यन्त आतुर होकर 'हे भगवत्' हे नारायण ! इस प्रकार बड़े आदरसे वारंवार भगवान्का नाम जपा, वही भगवान्का नाम अमृत हो गया। उसी भगवन्नाम अमृतको तक्षकने पान किया, इस लिये गुप्त करके बृहस्पतिजीने कहा था कि तक्षकने अमृत पी लिया है, तुम्हारे मारनेसे नहीं मरेगा, कुछ इन्द्रवाले अमृतको नहीं कहा था ।

क्षित्‌को तक्षकसे डँसा सुनकर महाक्रोधित हुआ और ब्राह्मणोंको बुला सर्पसत्रयज्ञमें सर्पोंका होम करने लगा ॥ १६ ॥ उस यज्ञकी महाप्रचण्ड अग्निमें बड़े बड़े सर्पोंको जलता हुआ देखकर तक्षक डरके मारे अत्यन्त व्याकुल हो इन्द्रकी शरण गया ॥ १७ ॥ परीक्षित्‌के पुत्र राजा जनमेजयने जब तक्षकको यज्ञमें न देखा तो ब्राह्मणोंसे पूछा कि सर्पोंमें अधम तक्षक यहां आकर क्यों नहीं भस्म हुआ ? ॥१८॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे नरेंद्र ! अपनी शरण गये तक्षककी इन्द्र रक्षा करता है और इन्द्रने ही उसको अपने समीप बैठा रखा है इसी लिये वह अग्निमें आकर नहीं पड़ा॥१९॥ ब्राह्मणोंका यह वचन सुनकर उदारबुद्धि राजा जनमेजय ब्राह्मणोंसे बोला कि हे ब्राह्मणो ! इन्द्रसहित

सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ॥ दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥ अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा परीक्षितो द्विजान् ॥ उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥ तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणमागतम् ॥ तेन संस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥ पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ॥ सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वा जुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे ॥ तक्षकाशु पतस्वेह सहेन्द्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिन्द्रः प्रचालितः ॥ बभूव संभ्रान्तमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥ तं पतन्तं विमानेन सह तक्षकमम्बरात् ॥ विलोक्याङ्गिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥

उस तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं डाल देते, क्या इतना सामर्थ्य आपमें नहीं है ? ॥२०॥ जनमेजयका वचन सुनकर सब ब्राह्मण इन्द्रसहित उस तक्षकको आहुतिमन्त्र पढ़कर आवाहन करने लगे "हे तक्षक ! मरुद्गणाधीस इन्द्रके संग तू शीघ्र यज्ञाग्निमें आकर पड़" इस प्रकार आहुति मन्त्रोंसे इन्द्रसहित तक्षकको बुलाया॥२१॥ब्राह्मणोंके कठोर वचनोंसे मन्त्रोंके आकर्षणसे तक्षक सहित इन्द्र अपने स्थानसे चलायमान हो विमान और तक्षक सहित अपने मनमें घबड़ा गया ॥ २२ ॥ इन्द्रको विमान और तक्षकसहित आकाशसे गिरता हुआ देखकर अंगिराके

पुत्र बृहस्पतिजीने जनमेजयसे कहा ॥ २३ ॥ हे नरेंद्र ! यह सर्पराज आपके हाथसे वध करने योग्य नहीं है, क्योंकि इसने अमृतपान किया है * इसलिये यह अजर अमर है ॥२४॥ हे राजन् ! तक्षकके डँसनेसे पिताका मरण सुनकर आपको इतना क्रोध तक्षक पर करना नहीं चाहिये, क्योंकि जीवोंका जीवन, मरण और परलोक अपने कर्मोंसे ही होता है, इसे सुख दुःखका दाता और कोई दूसरा नहीं जान पड़ता ॥ २५ ॥

नैष त्वया मनुष्येन्द्र वधमर्हति सर्पराट् ॥ अनेन पीतममृतमथवा अजरामरः ॥ २४ ॥ जीवितं मरणं जन्तोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ॥ राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ॥ पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदं राजन् संस्थीयेताभिचारिकम् ॥ सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥

हे नरेश ! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली क्षुधा, तृषा, रोगादिकोंसे प्राणी मृत्युको प्राप्त होता है सो वह अपने प्रारब्ध और कर्मोंका ही भोग भोगता है कुछ सर्पादिक स्वतन्त्र नहीं हैं, उनको भी प्रारब्ध और कर्म ही प्रेरणा करता है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह प्राणी अपने अदृष्टका ही भोग करता है, इसलिये इस हिंसक अभिचार यज्ञको समाप्त करो। देखो ! इस यज्ञमें अनेक निरपराधी सर्प भस्म हो गये, परन्तु

---

* शंका—राजा जनमेजयके यज्ञमें बृहस्पतिजीने राजा जनमेजयसे कहा कि हे राजन् ! तक्षकने अमृत पी लिया है, आपके मारनेसे वह नहीं मरेगा क्योंकि अमृतको जो प्राणी पी लेता है वह किसीके मारनेसे नहीं मरता । इस बातम यह संदेह है कि अमृतका स्वामी इन्द्र जिसने रातदिन अमृत पिया, वरन् अमृत पीते-पीते अनेक युग बीत गये ऐसे इन्द्रको ब्राह्मणोंने तप और मंत्रोंके प्रभावसे राजा जनमेजयके यज्ञकुण्डमें स्वर्गसे गिराकर भस्म करनेका सामर्थ्य तो ब्राह्मणोंसे था और जिस तक्षकने राई भर अमृत पी लिया, क्या वह ब्राह्मणोंके मन्त्र और जपके प्रभावसे भस्म नहीं हो सकता ?

उत्तर—जो प्राणी बहुत दुःखी होकर भगवान्का नाम एक बार भी लेता है उसको असंख्य नामके जपनेका फल प्राप्त होता है । ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। तक्षकने जाना ? कि मैं बड़े-बड़े देवताओंके पास गया, किसीने भी मेरी सहायता नहीं की, ऐसा विचार कर इन्द्रलोकमें गया, महादुःखी हो रहा था नेत्रोंसे आंसू चले जाते थे और अत्यन्त आतुर होकर 'हे भगवत्' हे नारायण ! इस प्रकार बड़े आदरसे वारंवार भगवान्का नाम जपा, वही भगवान्का नाम अमृत हो गया । उसी भगवन्नाम अमृतको तक्षकने पान किया, इस लिये गुप्त करके बृहस्पतिजीने कहा था कि तक्षकने अमृत पी लिया है, तुम्हारे मारनेसे नहीं मरेगा, कुछ इन्द्रवाले अमृतको नहीं कहा था ।

उसमें आपका भी कुछ दोष नहीं, क्योंकि प्राणी सदा अपने प्रारब्ध और कर्मोंका भोग भोगते रहते हैं ॥ २७ ॥ जब बृहस्पतिजीने इस प्रकारके वचन कहे तब राजाने उसी समय उन वचनोंको आदर सम्मान दे अभिचार यज्ञसे निवृत्त हो देवगुरु बृहस्पतिजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ देखिये! ब्राह्मणके क्रोधसे परीक्षित्‌का मरण हुआ और परीक्षित्‌के पुत्र जनमेजयने कोप करके करोड़ों सर्पोंको जला डाला, यह क्रोधरूप मोह ऐसे ऐसे महात्मा पुरुषोंको भी हुआ इसमें काई आश्चर्य माननेकी बात नहीं है, क्योंकि विष्णुभगवान्‌की अलक्षित माया किसी प्रकार किसीसे निवारित नहीं हो सकती। देखो! उन्हीं विष्णुभगवान्‌की मायासे विष्णु भगवान्‌के ही अंशरूप जीव दूसरे जीवोंपर अपनी देहमें तीनों गुणोंकी वृत्ति क्रोधादिकोंसे मोहित हो संसारमें भ्रमते हैं ॥ २९ ॥ यह माया तत्त्ववादी ब्रह्मविचार करनेवालोंके सिवाय और सब स्थानोंमें

सूत उवाच ॥ इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ॥ सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥ सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणा यया ॥ मुह्यन्त्यस्यैवात्मभूतां भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥ २९ ॥ न यत्र दम्भीत्यभया विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ॥ न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो मनश्च संकल्पविकल्पवृत्तिमत् ॥ ३० ॥ न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ॥ तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिध्य चोर्मीन्विरमेत्स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥ परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद् यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

निर्भय वास करती है और ब्रह्मवादी लोग जब तत्त्वविचार करते हैं तो वे लोग भलीभांति जानते हैं कि यह माया बड़ी कपटकारिणी है और लोकोंकी वंचना करनेवाली है, जिन महात्मापुरुषोंने ऐसा समझ रखा है उनके सम्मुख निर्भय होकर अपना प्रकाश नहीं कर सकती, क्योंकि उनसे यह भय मानती है और मोह ममतादिक कार्योंको नहीं करती, अपने दिन पूरे करती है, और जहां तत्त्वविचार है, मायाके कारण अनेक वाद विवाद नहीं हैं और संकल्प-विकल्प वृत्तियोंसे युक्त-मन भी जहां नहीं है ॥ ३० ॥ सृष्टिके करनेवाले सब कारण और कर्मसे सिद्ध हुए फल इन तीनों सहित अहंकार युक्त जीव जिस विष्णुमें विघ्न डालनेवाला विघ्न भी जहां नहीं जा सकता, अहंकारादि ऊर्मियोंके त्यागनेवाले मुनि लोग उसी विष्णुपदमें रमण करते हैं ॥ ३१ ॥ और स्थान, सौहृद, दुष्टता और अनात्म पदार्थोंको त्याग

'नेति नेति' कहकर अहंभावको निवृत्त कर सिवाय परमात्माके और किसीसे स्नेह न रखनेवाले विवेकी पुरुष परमतत्त्वरूपको ही विष्णुका मरमपद कहते हैं, उसीका ध्यानादिक सावधानतासे विज्ञानी लोग हृदयमें धारण करते हैं ॥३२॥ विष्णुके परमपदको वे ही आत्मतत्त्ववेत्ता जानते हैं; जिनके देह गेहमें अहंता, ममता, दुर्जनताका मिथ्या अभिमान नहीं है ॥३३॥ मनुष्यको उचित तो यह है कि अज्ञानियोंके दुर्वाक्योंको सहन करे, किसीकी अवज्ञा न करे और इस देहके कारण किसीसे शत्रुता न करे ॥३४॥ अकुण्ठित बुद्धिवाले भगवान् व्यासदेवजीको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ, कि जिनके चरणकमलके ध्यानसे मैंने यह "श्रीमद्भागवत"–संहिता पढ़ी है ॥ ३५ ॥ शौनक ऋषि बोले–हे सौम्य ! व्यासदेवजीके शिष्य, वेदोंके आचार्य पैलादि महात्मा ऋषियोंने वेदोंका कितनी रीतिसे विभाग किया, सो

ते एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३ ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥ न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥३४॥ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ यत्पादाम्बुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥ शौनक उवाच ॥ पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ॥ वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥३६॥ सूत उवाच ॥ समाहितात्मनो ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ हृदाकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥ यदुपासनया ब्रह्मन् योगिनोऽमलमात्मनः ॥ द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥ ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ॥ यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥ शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ॥ येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥

यह वृत्तांत हम पूछते हैं और पुराणोंकी संहिताओंके विभाग किस प्रकारसे किये गये हैं सो जाननेकी हमारी अभिलाषा है ॥ ३६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! एकाग्रमन परमेष्ठी ब्रह्माके हृदय–आकाशसे प्रथम एक नाद शब्द उत्पन्न हुआ, जो कि कानोंपर हाथ रखनेसे सुनायी देता है ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिस नादकी उपासना करके योगी पुरुष अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, इन तीनों मनके मलोंको दूर करके मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ उस नाद शब्दसे स्वयं प्रकाश हुआ जिसकी उत्पत्ति स्पष्ट रीतिसे किसी प्रकार जाननेमें नहीं आती ऐसा अव्यक्त तीन अक्षरयुक्त ओंकार हुआ, जो कि भगवान् परमात्मा परब्रह्मका जतानेवाला है ॥ ३९ ॥ इंद्रिय मन विना ही जो

भगवान् हैं सब शून्य हो जानेपर भी आप ज्ञाता होनेसे कानोंके बन्द किये रहनेपर भी इस अव्यक्त ओंकारको सुनते हैं, जीव इंद्रियोंके अधीन है इसलिये कान बन्द किये जाने पर कुछ भी नहीं सुनता, हृदयरूप आकाशमें आत्मासे उत्पन्न हुए ओंकारको विस्तृत वैखरी वाणी प्रकट होती है ॥ ४० ॥ अपने आश्रयरूप सर्वव्यापक साक्षात् परमात्मा परब्रह्मका बतानेवाला सब मन्त्रोंका रहस्य, वेदोंका बीज, सनातन ओंकार है ॥४१॥ हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! उस ओंकारसे अकार, उकार, मकार ये तीन वर्ण हुए, तीन वर्णसे सत्त्व, रज और तम तीन गुण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद यह तीन वेद भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक ये तीनों लोक, जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाएँ हुई ॥४२॥ भगवान् ब्रह्माजीने इन्हीं वर्णोंसे अक्षरोंके समूह रचे-सोलह १६ तो स्वर, पच्चीस २५ स्पर्श, चार ४ अन्तस्थ, चार ४ ऊष्माण,

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ॥ स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥ तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा आकाराद्या भृगूद्वह ॥ धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥४२॥ ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः ॥ अन्तःस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ॥ सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चतुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४ ॥ पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ॥ ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥४५॥ ते परम्परया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ॥ चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥ क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ॥ वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन् हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥ ४७ ॥

ये सब ह्रस्व दीर्घ जिह्वामूलीय करके युक्त हैं ॥ ४३ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इन्हीं अक्षरोंसे चारों मुखोंसे और छन्दोंसे ओंकार सहित चारों वेदोंको रचा, चातुर्होत्र कर्मोंके लिये ब्रह्माने अथर्वण, यजुर्वेदी उद्गाथा, सामवेदी होता, ऋग्वेदी आहुति देनेवाले रचे ॥ ४४ ॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने वेदोंके उच्चारणादिकोंमें चतुर ब्रह्मर्षि अपने पुत्रोंको वह वेद पढ़ाये और धर्मोंके उपदेष्टा अपने वेदको बनाया ॥ ४५ ॥ उन सब वेदोंके हृदयमें धारण करनेवाले व्रतधारी शिष्योंकी परंपरायें चारों युगोंमें चली आयी हैं, द्वापरके अन्तमें महाऋषियोंने वेदोंके विभाग क्यों किये ? ॥४६॥ इसका कारण यह है कि भगवान्ने जाना कि कलियुगमें सब महर्षि कालसे क्षीण, अल्प आयु, वीर्यहीन अशक्त और

मन्दमति होंगे, यह विचारकर अच्युत भगवान्‌ने हृदयमें विराजमान होकर प्रेरणा की, तब उन ऋषियोंने वेदका विभाग किया ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मन्! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् धर्मकी रक्षाके लिये ब्रह्माशिवादिक लोकपालोंकी स्तुति करनेसे ॥४८॥ विभु भगवान् अपने अंशकलाओंसे पराशरमुनिके वीर्य करके सत्यवतीके गर्भमें वेदव्यासरूपसे अवतीर्ण होकर वेदोंके चार विभाग किये ॥ ४९ ॥ जैसे रत्नपारखी अनेक मणियोंकी राशियोंसे पद्मरागादि मणियोंको छांट छांटकर अलग कर लेता है ऐसे ही मन्त्रोंके समुदाय एक वेदमेंसे ऋग्, यजु, साम और अथर्वण नामके मन्त्रोंको उद्धारके उन मन्त्रोंसे चार संहिता श्रीवेदव्यासजीने रची ॥५०॥ हे शौनक!

अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन् भगवाँल्लोकभावनः ॥ ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥ पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ॥ अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥४९॥ ऋगथर्वयजुः साम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ॥ चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥ तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामति ॥ एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥ पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ॥ वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥ ५२ ॥ साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ॥ अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ॥ ५३ ॥ पैलः स्वां संहितामूच इन्द्रप्रमितये मुनिः ॥ बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥ चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ॥ पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ॥५५॥ अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् ॥ तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥

फिर पीछे महामति व्यासदेवजीने अपने चार शिष्योंको बुलाकर एक-एक संहिता दे दी ॥५१॥ पैल नाम शिष्यको बहुत ऋचा होनेसे बह्वृचनाम ऋग्वेदी संहिता दी, निगदानाम यजुर्वेदकी संहिता वैशंपायनको दी ॥५२॥ छन्दोगनाम सामवेदकी संहिता जैमिनिको पढ़ायी और अंगिरसनाम अथर्वण वेदकी संहिता अपने शिष्य सुमंतको पढ़ायी॥५३॥पैल मुनिने अपनी पढ़ी हुई संहिता इन्द्रप्रमित और बाष्कलनाम अपने दोनों शिष्योंको दी ॥५४॥ हे ब्रह्मन्! बाष्कलने अपनी संहिताके चार विभाग करके बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र इन चारों अपने शिष्योंको पढ़ायी। महात्मा इन्द्रप्रमितने अपनी संहिता कवि मण्डूक ऋषिको पढ़ायी ॥ ५५ ॥ मण्डूकने देव-

मित्रको, देवमित्रने सौभर्यादि ऋषियोंको पढ़ायी ॥ ५६ ॥ मण्डूकके पुत्र शाकल्यने अपनी संहिताके पांच विभाग करके वात्स्य, मुद्गल, सालोन, गोखल्य, शिशिर नाम अपने पांचों शिष्योंको दी ॥ ५७ ॥ शाकल्यके छठे जातूकर्ण्य नाम शिष्यने अपनी संहिताके तीन भाग कर वैदिक पदार्थोंका व्याख्यानरूप निरुक्त नाम ग्रन्थ रचकर बलाक, पैज, वैताल और विरज नाम अपने चार शिष्योंको पढ़ायी ॥५८॥ बाष्कलि (बाष्कलके पुत्र) ने सब संहिताओंकी शाखाओंमेंसे वालखिल्य नाम संहिता बनाकर वह संहिता बालायनि, भज्य और कसार नाम अपने तीनों शिष्योंको दी ॥५९॥ यह सब ब्रह्म ऋषि ऋग्वेदकी बह्वृचानामसंहिताके धारण करनेवाले हुए। जो पुरुष इस वेदके विस्तारको सुनेगा वह सब पापोंसे निवृत्त हो जायगा ॥६०॥ वैशंपायनके शिष्यने यजुर्वेद संहिता पढ़ी, इसलिये उन्होंने यज्ञमें अध्वर्युकी

शाकल्यस्तत्सुतस्तां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम् ॥ वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७ ॥ जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ॥ बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥५८॥ बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् ॥ चक्रे बालायनिर्भज्य काशारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥ बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ॥ श्रुत्वैनं छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥ वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ॥ यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहः क्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् ॥ चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥ इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ॥ विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥

पदवी पायी, जब उनके गुरु वैशंपायनको ब्रह्महत्याका पाप लगा तब उस पापके निवारणके लिये अपने गुरुके बदले उन्होंने अपने आप प्रायश्चित किया, उस दिनसे उनका नाम "चरकाध्वर्यु" हुआ ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यने ब्रह्महत्याका प्रायश्चित करनेके समय वैशंपायन अपने गुरुसे कहा कि हे स्वामिन्! अल्प दृढ़तावाले जो और आपके शिष्य हैं जो आपके पापका प्रायश्चित करें तो क्योंकर होगा? यह महाकठिन प्रायश्चित मैं अकेला ही करूंगा ॥ ६२ ॥ याज्ञवल्क्यका यह वचन सुनकर वैशंपायन अत्यन्त कुपित होकर बोले–तू मेरे सामनेसे चला जा; तू दूसरे प्राणकी अवज्ञा करनेवाला शिष्य है, इसलिये मुझे तुझसे कुछ प्रयोजन नहीं। तूने मुझसे जो कुछ पढ़ा

है उसको इसी समय त्याग ॥ ६३ ॥ गुरुके मुखसे इस प्रकार वचन सुनकर देवरातके पुत्र याज्ञवल्क्यने अभिमानमें आकर यजुर्वेदके मन्त्रोंको उगल वहांसे चल दिया, उस समय मुनिगणोंने यजुर्वेदके अमूल्य मन्त्रोंको पड़ा देखा ॥६४॥ जिन मन्त्रोंमें उन मुनियोंकी परम इच्छा थी, उन मन्त्रोंको उस मुनियोंने तीतर पक्षीका रूप धारण करके याज्ञवल्क्यके वमन किये हुए यजुर्वेदके मन्त्रोंको ग्रहण कर लिया, उसी दिनसे उस यजुर्वेदकी तैत्तिरीय नाम शाखा हुई ॥६५॥ हे ब्रह्मन्! याज्ञवल्क्यजीने गुरुसे भी अधिक वेद विद्या प्राप्त करनेके लिये श्रीसूर्यनारायणकी उपासना करनी आरम्भ की ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य बोले कि हे सूर्यनारायण भगवन्! आदित्यस्वरूप आपको वारंवार नमस्कार है, आप ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके समुदायरूपसहित इस विश्वके हृदयमें निरू-

देवरातसुतः सोऽपि छर्दित्वायजुषां गणम् ॥ ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥ यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः ॥ तैत्तिरीया इति यजुः शाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥ याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मन्छन्दांस्यधिगवेषयन् ॥ गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ॥ ६७ ॥ यदुह वा व विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥

पाधि अन्तर्यामी रूप हो और बाहर लवनिमेष क्षणके अनेक अवयववाले वर्षोंके समुदायवाले कालरूपसे आकाशके सदृश उपाधिसे आच्छादित नहीं होते और प्रत्येक वर्षोंमें पानीके सोखने और वर्षानेसे एकही आप इस जगत्की दिन रात यात्रा करते रहते हो, ऐसे जो आप त्रिलोकीनाथ हो आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ ६७ ॥ हे त्रिभुवनपते! हे त्रयतापके नशानेवाले! हे नित्य! हे त्रिकाल वेदविधिसे पूजन करनेवाले! हे भक्तजनोंके अखिल पापोंके फल दूषण और बीज अज्ञानके जाननेवाले! हे सर्व देवताओंमें श्रेष्ठ! हे सविता भगवन्! आपका जो यह मण्डल त्रिलोकीमें प्रकाश करता है, ऐसे जो आप निशिवासर जगत्के तपानेवाले हैं सो मैं एकाग्रचित्तसे

आपका ध्यान करता हूँ ॥६८॥ हे भास्कर ! आपके रहनेके स्थान स्थावर जंगम अनन्त समुदायके जड़रूप मन इन्द्रिय प्राणोंके समूहोंको आपही अन्तर्यामी आत्मारूप होकर प्रेरणा करते हो, ऐसे तेजस्वरूपको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥ ६९ ॥ हे विश्वतमनाशक ! हे कृपानिधे ! महाभयानक मुखवाले अन्धकाररूप अजगरसे ग्रसे हुए मृतकके समान संज्ञारहित अचेतन लोगोंको देखकर परमकरुणानिधान आप दयादृष्टिसे उनको उठाकर नित्य समय समयपर कल्याणरूप स्वधर्मनिष्ठामें प्रवृत्त करते हो और भूपतिके तुल्य असाधु लोगोंको भय देते हुए सब ओर घूमते रहते हो, ऐसे जो आप दयालु हो सो आपको वारंवार प्रणाम करता हूँ ॥७०॥ हे सूर्य ! जहां तहां

य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मान्तर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥ य एवेमं लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्त्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥ परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥ अथ हे भगवंस्तव चणरनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वन्दितमहमयातयामयजुष्काम उपसरामीति ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान् वाजि-रूपधरो हरिः ॥ यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥ यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपञ्चशतैर्विभुः ॥ जगृहुर्वा-जसन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः ॥ ७४ ॥

दिक्पाल देवता कमलकोशयुक्त अञ्जलियोंसे आपको अर्घ्य दे देकर आराधना करते हैं, ऐसे जो सर्वान्तर्यामी आप हो सो आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७१ ॥ हे भगवन् ! आप दीनदयालु हो, त्रिलोकीके अधीश्वरोंसे पूजित आपके चरणारविन्दकी उत्तम यजुर्वेदकी कामनाके लिये मैं शरण आया हूँ ॥७२॥ सूतजी बोले कि हे शौनकादि ऋषियों ! याज्ञवल्क्यने जब इस प्रकार सूर्यनारायणकी प्रार्थना की तब उस प्रार्थनाको सुन सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर अश्वका रूप धारण किया, और याज्ञवल्क्यको उसकी इच्छानुसार ही यजुर्वेदके मन्त्र दिये ॥ ७३ ॥ तब याज्ञवल्क्य मुनिने उस यजुर्वेदकी पन्द्रह (१५) शाखा की । सूर्यनारायणने अपनी केशावलीसे जो मन्त्र

निकाले इसलिये यह शाखा वाजसनेयी नामसे प्रसिद्ध हुई। उन शाखाओंको कण्व और माध्यंदिनादि ऋषियोंने ग्रहण किया ॥ ७४ ॥ सामवेदके वेत्ता जैमिनिने सुमन्त नाम अपने पुत्रको और सुन्वान् नाम अपने नातीको एक एक संहिता पढ़ा दी ॥७५॥ फिर जैमिनिजीका दूसरा शिष्य सुकर्मा नाम द्विज बड़ा चतुर था, उसने सामवेद वृक्षकी सहस्र संहिता बनाकर अलग-अलग रचीं ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, पौष्यंजि और वेदपाठी आवन्त्य ये शिष्य सुकर्माके हुए, उन्होंने सहस्रों संहितओंको ग्रहण किया ॥७७॥ हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि और आवन्त्यके महाचतुर पांचसौ ५०० शिष्य सामवेदके गानेवाले उदीच्यानाम (उत्तर–दिशानिवासी) हुए; उनमें कोई-कोई पूर्व-

जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमन्तुस्तनयो मुनिः ॥ सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥ सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ॥ सहस्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यञ्जिश्च सुकर्मणः ॥ शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवन्त्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥ उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पञ्चशतानि च ॥ पौष्यञ्ज्यावन्त्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान् प्रचक्षते ॥ ७८ ॥ लौगाक्षिर्माङ्गलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ॥ पौष्याञ्जिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥ कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ॥ शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे वेदशाखा प्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ सूत उवाच ॥ अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकम् ॥ संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥

दिशाके वासी कहलाये ॥७८॥ पौष्यञ्जिके शिष्य लौगाक्षि, मांगालि, कुल्य, कुशीद, कुक्षी ये पांच शिष्य और थे, उन्होंने सौ सौ संहिताओंको ग्रहण किया ॥७९॥ हिरण्यनाभका कृत नाम दूसरा और क्षिष्य था, उसने अपने शिष्योंको चौवीस संहिता पढ़ायीं और जो संहितायें अवशेष रह गयी थी वह ज्ञानवान् आवन्त्यने शिष्योंको पढ़ा दीं ॥८०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे माषा-टीकायां वेदशाखाप्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा–सप्तममाहिं अथर्वको, कहों सहित विस्तार। फेर पुराणोंके कहों, लक्षण सकल विचार ॥ सूतजी बोले कि अथर्ववेदपाठी सुमन्तने अपनी संहिता अपने कबन्धनाम शिष्यको पढ़ायी, कबन्धने अपनी संहिताके दो भाग

करके पथ्या और वेददर्श नामको पढ़ायी ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो! वेददर्शने अपनी संहिताके चार भाग किये और शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष, पिप्पलायनि नाम अपने चार शिष्योंको पढ़ायी और पथ्यने अपनी संहिताके तीन भाग करके कुमुद, शुनक और जाजलि नाम तीन शिष्योंको पढ़ायी ॥ २ ॥ शुनकने बभ्रु और सैन्धवायन नाम दो शिष्योंको अपनी संहिताके दो विभाग करके पढ़ाया। सैन्धवायन आदिके सावर्णि आदि शिष्य हुए ॥ ३ ॥ नक्षत्रकल्प, शांतिकल्प, कश्यप और आंगिरस आदि शिष्य हुए। हे मुनिराज! यह तो मैंने आपसे अथर्ववेदके आचार्य कहे, अब मैं आपके सामने पुराणोंके आचार्योंका वर्णन करता हूं, सो आप सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥

शौल्कायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ॥ वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ॥ कुमुदः शुनको ब्रह्म-ञ्जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ॥ २ ॥ बभ्रुः शिष्योऽथाङ्गिरसः सैन्धवायन एव च ॥ अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथा-ऽपरे ॥३॥ नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः ॥ एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥४॥ त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः ॥ वैशम्पायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥ अधीयन्त व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ॥ एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥ कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः ॥ अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥ पुराणलक्षणं ब्रह्मन् ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ॥ शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥

त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत ये छः पुराणोंके आचार्य्य हुए ॥ ५ ॥ वेदव्यासजीने पहले पुराणोंकी छः संहिता रचकर मेरे पिता रोमहर्षणको पढ़ायी थीं, फिर रोमहर्षणके मुखसे इन छहों जनोंने छहों संहिताओंको पढ़ा, मैं इन छहों महात्माजनोंका शिष्य हुआ, सबसे एक एक संहिता पढ़ी ॥ ६ ॥ इनमें जो पुराणोंकी चार संहितायें मूल थीं उनको कश्यप, सावर्णि, परशुरामजीका शिष्य अकृतव्रण और चौथा मैं इन चारों जनोंने व्यासजीके शिष्य मेरे पितासे चारों मूलसंहिताओंको पढ़ा ॥ ७ ॥ हे शौनक! ब्रह्मऋषियोंने जो पुराणोंके लक्षण वर्णन किये हैं, वेद शास्त्रके अनुसार हम कहते हैं, आप सावधान हो ध्यान लगाकर सुनिये ॥८॥

सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, राजाओंके वंश, उन वंशवाले राजाओंके चरित्र, निरोध, मुक्ति, हेतु और अपाश्रय ॥ ९ ॥ जिसमें ये दश लक्षण हों विद्वान् लोग उसको महापुराण कहते हैं और कोई कोई आचार्य लोग पांच लक्षण (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित्र) वाले ग्रन्थको भी पुराण कहते हैं, परन्तु यह केवल छोटे बड़ेकी व्यवस्था है ॥१०॥ इस मायाके गुणक्षोभसे महतत्त्व तीन प्रकारका अहंकार, पञ्चमहाभूत और इंद्रिय गणकी उत्पत्तिको सर्ग कहते हैं ॥११॥ ईश्वरके अनुग्रहसे महत्तत्त्व आदिसे प्रकट होता हुआ और बीजमेंसे बीजके सदृश प्रवाहरूपसे चलते हुए स्थावर जंगमरूप प्रपञ्चको विसर्ग कहते हैं ॥१२॥ जंगम प्राणियोंका स्थावर आहार

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च ॥ वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ॥ केचित्पञ्चविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥ अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ॥ भूतसूक्ष्मेन्द्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥ पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ॥ विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥१२॥ वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ॥ कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा ॥ १३ ॥ रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे युगे ॥ तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥ मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ॥ ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥ राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ॥ वंश्यानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥ १६ ॥

है और जंगमोंकी मांसमें भी साधारण प्रीति है, उनमें मनुष्योंके निमित्त रागसे अथवा शास्त्रवचनोंमें जो आजीविकाका विधान है, वह वृत्ति कहाती है ॥१३॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवताओंमें भगवान् अवतीर्ण होकर युगयुगमें जो लीला करके विश्वकी रक्षा करते हैं वही विश्वकी रक्षा कहलाती है और वही अनेक प्रकारके अवतार धारण करके वेदके द्रोही दुष्ट और पाखण्डियोंको मार पृथ्वीकी रक्षा करते हैं वही रक्षा कहलाती है ॥१४॥ मनु, देवता, मनुके पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और हरिके अंशावतार यह छः मिलकर मन्वन्तर कहलाते हैं ॥१५॥ ब्रह्मासे उत्पन्न हुए शुद्ध राजाओंकी भूत, भविष्य, वर्तमान कालकी सन्तानको वंश कहते हैं, उन राजाओंके वंशको और उन वंशोंमें हुए

चरित्रोंको वंशानुचरित्र कहते हैं ॥१६॥ नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक चार प्रकारके प्रलयको कविजन संस्था (निरोध) कहते हैं ॥१७॥ अविद्याके कारण कर्मकर्त्ता जीव, जिसे मुख्यवेत्ता अनुशयी और उपाधिवेत्ता अव्याकृत कहते हैं, उसकी वासना इस जगतकी सृष्टि होनेमें निमित्त है, वह मुक्ति हेतु (ऊति) कहलाती है ॥ १८ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिमें जीवरूपसे बर्तनेवाले ईश्वर मायामें विश्व, तैजस और प्राज्ञमें प्रविष्ट हैं और समाधिमें उनसे पृथक् हैं इसलिये वे अपाश्रय कहलाते हैं ॥१९॥ जैसे घटादिक पदार्थमें मृत्तिकादिक प्रविष्ट हैं उनके नामरूप सत्तामात्र ही हैं, ऐसे ही जन्मसे लेकर मरणतक उन सब अवस्थाओंमें ब्रह्म युक्त भी है और अलग

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः ॥ संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः ॥१७॥ हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ॥ यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरम् ॥१८॥ व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥ मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥ पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ॥ बीजादिपञ्चतान्तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥ २० ॥ विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ॥ योगेन वा तदात्मानं वेदेहा या निवर्तते ॥ २१ ॥ एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ॥ मुनयोऽष्टादश प्राहु क्षुल्लकानि महान्ति च ॥ २२ ॥ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम् ॥ नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् ॥ २३ ॥ भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् ॥ वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥

भी हैं ॥ २० ॥ जब सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंकी वृत्तियोंको त्यागकर पुरुषका चित्त शांत हो अथवा योगाभ्यास करके शान्त हो तब यह पुरुष अपने शुद्ध रूपको जानकर संसार चेष्टाओंसे छूट जाता है ॥२१॥ इन छोटे-बड़े लक्षणोंसे पुराण पहिचाने जाते हैं, अठारह महापुराण हैं और अठारह लघुपुराण हैं, इस प्रकार बड़े-बड़े प्राचीन कविवर कहते हैं ॥२२॥ ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुड़पुराण, नारदीयपुराण; भागवतपुराण, अग्निपुराण स्कन्दपुराण ॥ २३ ॥ भविष्यपुण, ब्रह्मवैवर्तपुराण मार्कण्डेयपुराण,

वामनपुराण, वाराहपुराण मत्स्यपुराण, कूर्म्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, यह अठारह पुराण कहे ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन् ! वेदव्यासजीने और उनके शिष्योंने और उनके शिष्योंके शिष्योंने जो वेदकी शाखाओंका विस्तार किया है, वह वृत्तांत मैंने आपको सुनाया, क्योंकि वह ब्रह्मतेज और भक्तिका बढ़ानेवाला है ॥२५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां पुराणलक्षणवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा—मोह मार्कण्डेयको, तपचर्य्या अरु काम । इस अष्टम अध्यायमें, हरि अस्तुति सुखधाम ॥ शौनकादि मुनि बोले—कि हे साधो ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीसूतजी महाराज ! इस अपार संसारमें भ्रमण करनेवाले मनुष्योंको पार लगानेवाले तुम चिरजीवित रहो ॥ १ ॥ मृकण्डुके

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ॥ शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजो विवर्धनम् ॥ २५ ॥ इति श्रीभा० म० द्वाद० अथर्ववेदपुराणलक्षणादि नि० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ॥ तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥ आहुश्चिरायुषमृषिं मृकण्डतनयं जनाः ॥ यः कल्पान्ते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ २ ॥ स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः ॥ कल्पेऽस्मिन् भार्गवर्षभः ॥ न वाऽधुनापि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥ एक एवार्णवे भ्राम्यन्ददर्श पुरुषं किल ॥ वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥ एष नः संशयो भूयान् सूत कौतूहलं यतः ॥ तं नश्छिन्धि महायोगिन् पुराणेष्वपि संमतः ॥ ५ ॥

पुत्र मार्कण्डेयजीको लोग चिरंजीव कहते हैं, क्योंकि जिस प्रलयमें सब जगत् ग्रस्त हुआ तो उस कल्पान्तरमें मार्कण्डेयजी किस प्रकार बचे रहे ॥ २ ॥ जो भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ इसी कल्पमें हमारे वंशज उत्पन्न हुए, उस दिनसे लेकर आजतक प्राणियोंका प्राकृतिक अथवा नैमित्तिक कोई भी प्रलय नहीं हुआ, फिर उनका प्रलयमें अवशेष रहना क्योंकर सम्भव हो सकता है ? ॥ ३ ॥ कोई-कोई महात्मा जन ऐसा भी कहते हैं कि मार्कण्डेय ऋषि अकेले ही प्रलयके समुद्रमें घूम रहे थे और वहां उन्होंने वटके पत्रके दोनेमें एक अद्भुत बालकको सोता हुआ देखा, सो प्रलयकालमें वटका वृक्ष कैसे रह गया ? ॥ ४ ॥ हे सूत ! हे महायोगिन् ! हमको बड़ा सन्देह है और उसका

उत्तर सुननेकी अभिलाषा है आप सब पुराणोंके ज्ञाता और परम ज्ञानी हो, हमारे इस संशयको निवारण करो * ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि हे महापुरुषो ! आपका यह प्रश्न सम्पूर्ण लोकोंके पापोंका दूर करनेवाला है क्योंकि इस प्रश्नमें श्रीनारायणकी कथा कलियुगके दोषोंकी मिटानेवाली है ॥ ६ ॥ क्रम करके पितासे द्विजन्म संस्कार पाकर मार्कण्डेयने तप-स्वाध्याय-पूर्वक वेदोंको पढ़ा ॥ ७ ॥ नैष्ठिक, बालब्रह्मचारी, शांत वल्कलवस्त्र धारण किये; जटा, दण्ड, कमण्डलु, उपवीत (जनेऊ) पहिने ॥ ८ ॥ कृष्ण मृगचर्म, कमलाक्षकी माला,

सूत उवाच ॥ प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ॥ नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥६॥ प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् ॥ छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपः स्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥ बृहद्व्रतधरःशान्तो जटिलो वल्कलाम्बरः ॥ बिभ्रत्कमण्डलुं दण्मुपवीतं समेखलम् ॥८॥ कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ॥ अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन् सन्ध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥ सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ॥ बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥ १० ॥ एवं तपः स्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ॥ आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥११॥

नित्य नैमित्तिक सिद्धिके लिये कुशाओंको धारण किये, अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मामें दोनों सन्ध्या करके भगवत् आराधना करने लगे ॥ ९ ॥ सांझ-सवेरे भिक्षा लाकर गुरुके सम्मुख रख देते थे और जब गुरु आज्ञा देते थे तब मौन साध एकबार भोजन कर लेते थे और गुरु कभी आज्ञा नहीं देते थे तो उस दिन निराहारी रह जाते थे ॥ १० ॥ इस प्रकार मार्कण्डेयजीने विद्याध्ययन-परायण होकर

* शंका—श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धके अष्टम अध्यायमें लिखा है कि सूतके मुखसे ब्राह्मणने विद्या पढ़ी तो इसमें यह शंका है कि उस समय ब्राह्मणोंको विद्या पढ़ानेके लिये ब्राह्मणवंश नहीं था, क्या सब ब्राह्मण नष्ट हो गये थे, जो ब्राह्मणोंने सूतके मुखसे विद्या पढ़ी यह बड़ा आश्चर्य है ।

उत्तर—सूतने व्यासदेवजीकी सेवा बहुत वर्षतक की तब व्यासजीने सूतको अपना पुत्र मानकर शास्त्र और पुराण पढ़ाये और यज्ञोपवीतकर्म भी सूतका किया,क्योंकि व्यासजी साक्षात् भगवानके अवतार थे; संस्कार करके सूतको वरदान दिया कि हे पुत्र सूत ! तुम्हारे मुखसे भगवान्की कथाको जो ब्राह्मण अभिमान त्यागकर सुनेंगे अथवा पढ़ेंगे उन सुनने पढ़नेवाले ब्राह्मणोंकी कथाका सहस्रगुण फल होगा और विद्या पढ़नेका फल भी सहस्रगुणाही होगा, इसलिये सब, ब्राह्मण और शौनकादिकोंने अभिमानको त्यागकर सूतसे कथा सुनी और विद्या पढ़ी, ब्राह्मणोंका वंश नष्ट नहीं हुआ था, पुण्यकी अभिलाषासे सब ब्राह्मणोंने पढ़ा सुना था ।

दश करोड़ १०००००००० वर्ष तक हृषीकेशका आराधना करके तप किया और अतिदुर्जय मृत्युको जीत लिया ॥११॥ तब तो ब्रह्मा, महादेव, भृगु, दक्ष और भी ब्रह्माके अनेक पुत्र, मनुष्य, देवता, पितर, भूत और संपूर्ण देहधारियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥१२॥ इस प्रकार नैष्ठिकब्रह्मचारीव्रत धारणकर मार्कण्डेयजी तप, अध्ययन, संयमों करके क्लेश रहित मनसे अधोक्षज भगवान्का ध्यान करने लगे ॥१३॥ इस प्रकार भगवान्में मन लगाये उस महायोगी मार्कण्डेयको छः मन्वन्तर बीत गये ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! सातवें मन्वन्तरमें मार्कण्डेयके तपको देखकर इंद्र शंकायुक्त हुआ और उनके तपमें विघ्न डालना चाहा ॥१५॥ तब इंद्रने उनका तप भंग करनेके लिये गन्धर्व, अप्सरा,

ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च ये परे ॥ नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥ इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना ॥ १३ ॥ तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः ॥ व्यतीयाय महान् कालो मन्वन्तरषडात्मकः ॥ १४ ॥ एतत्पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलांतरे ॥ तपो विशङ्कितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥ गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ ॥ मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तदा ॥ १६ ॥ ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे ॥ पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥ तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम् ॥ पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥ मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥

मनोभव, बसन्तऋतु, मलय पवन, रजोगुणके मित्र लोभ व मदको मार्कण्डेयमुनिके पास भेजा ॥१६॥ हे विभो ! वह सब मिलकर हिमालयकी उत्तर ओर उन मुनिके आश्रममें गये, जहां पुष्पभद्रा नदी और चित्र नाम शिला है ॥१७॥ वह परमपवित्र मार्कण्डेयजीका आश्रम जहां सुंदर-सुंदर वृक्ष और लतायें शोभायमान हो रही थीं, अनेक प्रकारके पक्षियोंके शब्दसे व्याप्त हो रहा था, जहां परमविद्वान् ब्राह्मणोंके कुल निवास करते थे और सरोवरोंमें जहां-तहां निर्मल जल झकोर रहे थे ॥ १८ ॥ मतवाले भ्रमर गुंजार कर रहे थे, मदोन्मत्त कोकिला 'कुहू कुहू' शब्द पुकार रही थी, मदमाते मोर जहां-तहां नटोंकी-भांति नाच रहे थे और मत्त पक्षियोंके समुदाय अपनी

भा० द्वा० ॥२४॥

अपनी वाणी बोल रहे थे ॥ १९ ॥ शीतल जलके झरनोंके किनकाओंको लेकर वनपवन पुष्पोंको स्पर्श करते हुए परम सुगंधवाले कामदेवको बढ़ानेवाले कामदेवको देखकर सबके चित्तको प्रफुल्लित करने लगा ॥ २० ॥ चन्द्रमाके उदय होनेसे सन्ध्या समयके सुन्दर नवीन पल्लव और फूलोंके गुच्छोंके समूह अनेक शाखा और वृक्षलताओंसे युक्त वसन्तऋतु वहां आकर प्रकट हुई ॥२१॥ गीत और वादित्रवाले गंधर्व और अप्सराओंके समूहोंसे युक्त कामदेव हाथमें धनुषबाण लिये दिखायी दिया ॥२२॥ अग्निहोत्रसे निश्चित हो उस आश्रममें ध्यानसे नेत्र मूँदकर मूर्तिमान अग्निके समान अनन्ततेजस्वी मार्कण्डेयजीको आसनपर विराजमान देखा ॥२३॥ उस समय मार्कण्डे-

वायुः प्रविष्ट आदाय हिम निर्झरशीकान् ॥ सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तम्भयन्स्मरम् ॥ २० ॥ उद्यच्चन्द्रनिशा वक्रः प्रवालस्तबकालिभिः ॥ गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥२१॥ अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ॥ अदृश्यतात्तचापेषु स्वः स्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥ हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिङ्कराः ॥ मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवानलम् ॥ २३ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ॥ मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥ संदधेऽस्त्रं स्व धनुषि कामः पञ्चमुखं तदा ॥ मधुर्मनोरजस्तोकमिन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥ २५ ॥ क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात् ॥ भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ॥ २६ ॥ इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलन्त्या अनुकन्दुकम् ॥ वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितिमेखलम् ॥ २७ ॥

भा० टी० अ० ८

यजीके सामने अप्पसरायें नाचने लगीं, गंधर्व गाने लगे, मृदंग, वीणा, ढोलकादि अनेक प्रकारके सुन्दर-सुन्दर बाजे बाजने लगे ॥२४॥ ऐसा सुन्दर समय पाकर कामदेवने शोषण, दीपन, संमोहन, संतापन, उन्मादन नाम यह पांच मुखवाले बाण अपने धनुषपर धारण किये और वसन्त लोभादिसे सब इन्द्रके अनुचर मार्कण्डेयजीके मनको कम्पायमान करने लगे ॥२५॥ गेंदको उछालती अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करती पुञ्जिकस्थली नाम अप्सरा स्तनोंके भारसे जिसकी लंक लचक रही थी, कि जिसके केशपाशसे शिथिल होनेके कारण पुष्प गिर रहे थे ॥२६॥ गेंदको उछालती तिरछी चितवनसे चारों ओरको देखती भालती जब वह चञ्चल चित्तवाली चली तब कटिमेखला टूट जानेसे

उसका वस्त्र भी छूट गया, पीछे समीरने उस बीरबालाका सूक्ष्म वस्त्र हरण कर लिया ॥ २७ ॥ उस समय वह स्मर मार्कण्डेयजीको अपने वशमें जानकर अपना महातीक्ष्ण शर चलाया, परन्तु उस अवसरमें कामदेवके सब शर उद्यम व्यर्थ हो तिरस्कार करनेवाले मन्मथादिक मार्कण्डेयके तेजसे भस्म होने लगे, तब तो भयभीत होकर वे ऐसे गये, जैसे भाग्यहीनके सब उद्यमनिष्फल हो जाते हैं ॥२८॥ हे मुने ! इस प्रकार वे मुनिके आगे से भागने लगे जैसे बालक सर्पको जगाकर भागता है ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार पुरन्दरके अनुचरोंके किये हुए कर्त्तव्यको वृथा देखकर मार्कण्डेयजीके मनमें किसी प्रकारका अहंकार और विकार नहीं उपजा, सो इस बातका महात्मा पुरुषोंमें

विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ॥ सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८ ॥ त इत्थमपकुर्वन्तो मुनेस्तत्तेजसा मुने ॥ दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥ ॥२९॥ इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः ॥ यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् ॥ श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥ ३१ ॥ तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥ तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ चतुर्भुजौरौरववल्कलाम्बरौ ॥ पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्क-मण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥ पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ॥ तपत्तडिद्वर्ण-पिशङ्गरोचिषां प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४ ॥

कुछ आश्चर्य नहीं ॥ ३० ॥ गणों समेत कामदेवको निस्तेज देखकर और ब्रह्मर्षिका प्रभाव सुनकर इन्द्र अपने मनमें अत्यन्त विस्मित हुआ ॥ ३१ ॥ इस प्रकार तप, अध्ययन और संयमोंसे मनको वशमें रखनेवाले भगवान्में जिनका चित्त लग रहा ऐसे मार्कण्डेयजी पर अनुग्रह करनेके लिये नर नारायण भगवान् वहां आकर प्रकट हुए ॥३२॥ शुक्ल श्याम नवीन कमलसे सुन्दर नेत्र, चतुर्भुज, मृगचर्म वल्कलके वस्त्र, हाथमें कमण्डलु, जनेऊ, सूधे बांसके दण्डको धारण किये ॥ ३३ ॥ कमलकी माला, जीव जन्तु न मर जायँ उनको हटानेके लिए वस्त्रका झाड़ू, वेदको धरे, गौर वर्ण तेजधारी, बिजलीके समान प्रकाशवान्, साक्षात् मूर्तिमान्, तपरूप शरीर, परमश्रेष्ठ, देवताओंके पूज्य

दोनों ऋषीश्वर आय ॥३४॥ भगवत्स्वरूप नर नारायण ऋषीश्वरोंको देखकर मार्कण्डेयजीने बहुत आदरपूर्वक उठकर दण्डके समान गिर कर दोनोंको साष्टांग दंडवत् किया ॥३५॥ नरनारायणके दर्शनके आनंदसे बुद्धि, इंद्रिय, मनसे शांत हो और अंग प्रफुल्लित होनेसे और नेत्रोंमें जल भर आनेसे मार्कण्डेय जी भगवान्‌की ओर देखनेको समर्थ न हुए ॥३६॥ फिर सँभलकर खड़े हो, हाथ जोड़, नम्रता और उत्कण्ठासे आलिंगन कर गद्गद वाणीसे केवल 'नमो नमः' शब्द नरनारायणकी ओर देखकर कहा ॥३७॥ फिर उन दोनोंको आसनपर बैठाकर चरण पखार, अर्घ्य दे, चन्दन, धूप, मालासे पूजन किया ॥३८॥ सुखपूर्वक आसनपर बैठे प्रसन्नमुख, ऐसे दीनदयालु नरनारायणके चरणारविन्दोंमें मार्कण्डेयजीने फिर दण्डवत् करके यह वचन कहा ॥३९॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे प्रभो! मैं आपकी क्या स्तुति करूं ?

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ॥ दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत् ॥ ३५ ॥ स तत्सन्दर्शनानन्दनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः ॥ हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥ उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्वः औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ॥ नमोनम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥ तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ॥ अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥ सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ॥ पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः संस्पन्दते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि ॥ स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥ मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ॥ नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥

जिस आपकी प्रेरणासे ब्रह्माके, शिवके, सब प्राणीमात्रके और मेरे भी प्राण चेष्टा करते हैं, उन प्राणोंके पीछे मन, वाणी, इंद्रिय चेष्टा करती हैं, तो भी आप अपने भजन करनेवालोंपर अधिक दया करते हो, क्योंकि आप दयाके सागर हैं, पिता आदिक तो इस शरीरके ही बन्धु हैं, परंतु आप सदैव इस आत्माके बंधु हो ॥४०॥ हे भगवन्! सदासे जैसे इस विश्वकी रक्षाके लिये आप अनेक प्रकारके स्वरूप धारण करते हो इसी प्रकार यह दो स्वरूप भी त्रिलोकीके मङ्गल करनेके निमित्त, सांसारिक तापोंके दूर करनेके अर्थ और मृत्युको जीतनेके लिये आपने धारण किये हैं, जैसे आप सृष्टिकी रक्षा करनेमें प्रसिद्ध हैं, ऐसे ही विश्वके संहार करनेमें भी आप विख्यात हैं, जैसे मकरी जालेको रचकर पीछे आप

ही निगल जाती है ॥ ४१ ॥ स्थावर जंगमके रक्षा करनेवाले ईश्वर, आपके चरणारविन्दोंका मैं भजन करता हूँ, जिन चरणारविन्दोंके आश्रयसे मनुष्योंको काल, कर्मगुणोंके मान्य तापादिकोंका कोई स्पर्श भी नहीं करते और बड़े बड़े वेदपाठी महात्मा लोग जिन चरणारविन्दोंकी प्राप्तिके लिये नित्य ध्यान करते हैं, यजन करते हैं और दिन रात स्तुति करते हैं ॥४२॥ हे ईश अपवर्गमूर्ते ! जिन प्राणियोंको चोरोंसे भय है उन प्राणियोंके लिये आपके चरणकमलकी प्राप्तिसे अधिक मंगल और निर्भय स्थान हम और कोई दूसरा नहीं समझते। दो परार्द्धकी अथुर्बलवाला ब्रह्मा भी आपकी भ्रुकुटी बंकरूप कालसे अतिशय भयभीत रहता है, उसके सृजे हुए प्राणी भयभीत हों तो इसमें क्या आश्चर्य्य है ? ॥४३॥ आत्माके आवरण करनेवाले तुच्छ, नश्वर, निष्फल भी हैं, परन्तु सत्यसे दृष्टि आते हैं, ऐसे देहादिकोंके भजनको

तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरङ्घ्रिमूलं यत्स्थं न कर्मगुणकालरजः स्पृशन्ति ॥ यद्वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥ ४२ ॥ नान्यं तवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितो भिय ईश विद्मः ॥ ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्ध्यधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥ तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ॥ देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ॥ लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५ ॥ तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति ॥ यत्सात्वताः पुरुषरूपमुशन्ति सत्त्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥ ४६ ॥

छोड़कर सत्य ज्ञान स्वरूप सब जीवोंके नियन्ता सबसे परे आपके उन चरणारविन्दोंको मैं भजता हूँ, जो आपके चरणकमलके भजनेवाले हैं उनकी आपसे ही सब अभिलाषायें पूर्ण होती हैं ॥४४ हे ईश ! सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों गुण आपकी मायासे ही उत्पन्न हुए हैं और पालन, उत्पत्ति, संहारके कारण विष्णु आदि सब आपकी ही लीला–मूर्ति हैं, परन्तु उनमें जो सत्वगुणकी मूर्ति है वह मनुष्योंके मनको शान्त करनेवाली है और रजोतमोगुणवाली मूर्ति मनको शान्त नहीं करती, बरन् दुःख मोह और भय उपजानेवाली है ॥४५॥ हे भगवन् ! ब्रह्मादिक देवता और भक्तलोग शुद्ध सत्वमूर्तिका ही भजन करते हैं और सत्त्वगुणको ही ईश्वर मानते हैं, रजोगुण

तमोगुणमें प्रवृत्त नहीं होते और ज्ञानीलोग इसलिये आपका इस नरनारायण नाम सत्त्वमूर्तिका भजन करते हैं, कि सत्त्वगुणके प्रभावसे पुरुष निर्भय और सुखी होकर तुम्हारे लोकको प्राप्त होता है ॥४६॥ विश्वका गुरु, विश्वरूप, सर्वोत्तम, पुरुष, शुद्धस्वरूप, वाणीके नियंता, वेदके प्रवर्त्तक, भगवान् नर नारायण ऋषि आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥ कपटरूप इद्रियमार्गसे विक्षिप्त बुद्धिवाले और आपकी मायासे आवृतमतिवाले प्राणी अपने हृदय-आकाशमें,प्राणोंमें, नेत्रोंमें निरन्तर विराजमान हों तो भी आपको नहीं जानते, हे भगवन्! आदिपुरुष अखिलकेगुरु ब्रह्माको भी जब आपने अपने प्रकाशसे वेद दिये तब ब्रह्माको आपकेसाक्षात् रूपका ज्ञान हुआ है ॥४८॥ रहस्य तत्त्वका प्रकाश करनेवाला आपके दर्शनका ज्ञान एक वेदके ही जाननेसे होता है, इसीसे सांख्ययोगादिकोंकी रीतिसे यत्नके करने

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदैवताय ॥ नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७ ॥ यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः सन्तं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ॥ तन्मायया ऽऽवृतमतिः स उ एव साक्षादाद्यश्च तेऽखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥ ४८ ॥ यद्दर्शनं निगम आत्मरहः प्रकाशं मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ॥ तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० महा० द्वादश० मार्कंडेयोपाख्याने नरनारायणस्तुतिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ संस्तुतो भगवानित्थं मार्कंडेयेन धीमता ॥ नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भो भो ब्रह्मर्षिवर्योसि सिद्ध आत्मसमाधिना ॥ मयि भक्त्यानपायिन्या तपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥

वाले ब्रह्मादिक कवि सब आपके दर्शनको पाते हैं, निर्गुण सगुणादिक सबके वचनके अनुकूल स्वभाव और देहादिकके अभिनिवेशसे गूढतत्त्वज्ञानवाले महापुरुष आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां मार्कण्डेयोपाख्याने नारायणस्तवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–नववेंमें भगवान्‌की, माया परम अनूप । बूड़त प्रलय समुद्रमें, देखेउ मुनि हरिरूप ॥ सूतजी बोले कि बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके इस प्रकार स्तुति करनेसे नरके मित्र भगवान् नारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर मार्कण्डेयमुनिसे कहने लगे ॥१॥ श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ मनकी एकाग्रतासे और तप, अध्ययन, संयमोंसे और अनपायिनी हमारी

भक्तिसे तुम सिद्ध हुए हो ॥२॥ हे मुने ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कर्मसे हम बहुत सन्तुष्ट हुए, वरदान देनेवालोंके ईश्वर हम तुमको वरदान देनेके लिये आये हैं, तुम मनोवांछित वर मांगो, जो तुम्हारी इच्छा हो ॥३॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे देव ! हे भक्त भयभञ्जन ! हे अच्युत ! आप जो वारंवार वर देनेके लिये मुझसे कहते हो यह आप अपनी उत्कृष्टता (बड़ाई) प्रकट करते हो, परन्तु मुझको किसी प्रकारके वरदानकी अभिलाषा नहीं, आपने जो मुझको दर्शन दिया यही महा वरदान है, इससे अधिक क्या वरदान होगा ? ॥४॥ योगसे परिपक्व मन हो जिस आपके चरणारविन्दके दर्शन पाकर ब्रह्मादिक देवता भी कृतार्थ होते हैं वही आप साक्षात् मेरे नेत्रोंके आगे

वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्बृहद्व्रतचर्यया ॥ वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ॥३॥ ऋषिरुवाच ॥ जितं ते देव देवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ॥ वरेणैतावताऽलं नो यद्भवान्समदृश्यत ॥४॥ गृहीत्वाऽजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ॥ मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षिगोचरः ॥५॥ अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ॥ द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान् मुने ॥ तथेति स स्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥ तमेव चिन्तयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ॥ वसन्नग्न्यर्कसोमाम्बुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥

विराजमान हो, क्या इससे भी बढ़कर कोई और वरदान दोगे ? ॥५॥ हे कमलदललोचन ! हे पुण्यशिखामणि ! जो आपकी वर देनेकी ही इच्छा है तो यह वर दीजिये, कि जिस आपकी मायासे लोकों सहित लोकपाल मोहित हो जाते हैं, उसी मायाको मुझे दिखाओ ॥६॥ सूतजी बोले कि–हे ऋषियो ! इस प्रकार मार्कण्डेयसे स्तुति और वरदानका मांगना सुन भगवान ईश्वर उन मुनिसे पूजित हो मुसकाकर वही वर दे बद्रिकाश्रमको चले गये * ॥ ७ ॥ तब मार्कण्डेयजी उस मायाके वरदानका चिन्तवन करने लगे और अपने आश्रममें बैठकर अग्नि,

* शंका—दुष्ट लोगोंका लक्षण यह है कि बात करते करते मुसका देते हैं और जो कोई मनुष्य उन दुष्टोंके स्थानपर जाय तो उनको आता देखकर हँसते हैं और चलते समय भी वह दुष्ट मनुष्य उनके ठट्ठे उड़ाते हैं, वह दुष्ट उनके घर जायें तो भी हँसा करते हैं, चलते समय भी हँसी करते हैं,ये दुष्ट लोगोंकी पहिचानके लक्षण है, मार्कण्डेय मुनिके आश्रमसे नारायण जब अपने आश्रमको चले तब मुसकाते हुए क्यों चले ? बड़े मुनीश्वर होकर ऐसा बुरा कर्म क्यों किया !

उत्तर—नारायण मुनिने विचार किया कि मार्कण्डेयजी मायाका प्रभाव देखना चाहते हैं, इनके मनमें ऐसा अभिमान है कि मैंने मायाको तप करके जीत लिया है, ऐसी माया करके इनको मोह उपजाऊंगा, जो वह युगानुयुग भूलेंगे नहीं, ऐसा विचारके अपने मनमें नारायण मुनि मुसकाये कुछ दुष्टकर्मसे नहीं मुसकाये ।

सूर्य, जल, चन्द्रमा, पृथ्वी, पवन, आकाश और मनमें भगवान्का ध्यान करने लगे ॥ ८ ॥ भावनारूपी द्रव्यसे नित्यप्रति भगवान्का पूजन किया करें, कभी भक्तिके आवेशसे पूजा को भी भूल जाते थे ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! हे मुने ! हे ब्रह्मन् ! एक दिन सन्ध्यासमय पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कण्डेयजी बैठे थे, बड़ा भयंकर पवन चलने लगा ॥ १० ॥ महावेगसे प्रचण्ड शब्द होने लगा, उस पवनके पीछे महाविकराल कालरूप प्रलयकीसी काली काली घटा चारों ओरसे उमड़ने लगीं, बड़े गम्भीर शब्दसे बिजली कड़कड़ाने लगी, वज्रपात होने लगा, गजशुण्डके समान मोटी जलधारा वर्षने लगी ॥११॥ पवनके वेगसे पानीमें तरंगें उठने

ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ॥ क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥ ९ ॥ तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुने ॥ उपासीनस्य संध्यायां ब्रह्मन् वायुरभून्महान् ॥ १० ॥ तं चण्डशब्दं समुदीरयन्तं बलाहका अन्वभवन्करालाः ॥ अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनन्त उच्चैरभिवर्षधाराः ॥११॥ ततो व्यदृश्यन्त चतुः समुद्राः समन्ततः क्ष्मातलमाग्रसन्तः ॥ समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्रमहाभयावर्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥ अन्तर्बहिश्चाभिरतिद्युभिः खरैः शतह्रदाभीरुपतापितं जगत् ॥ चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥ तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभञ्जनाघूर्णितवामहार्णवः ॥ आपूर्यमाणोवर्षद्भिरम्बुदैः क्ष्मामप्यधाद् द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥ सक्ष्मान्तरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सह दिग्भिराप्लुतम् ॥ स एक एवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडान्धवत् ॥ १५ ॥

लगीं, पृथ्वी डूबने लगी, उग्र ग्राह जहां तहां दिखायी देने लगे, महाभयानक भ्रमर जलमें पड़ने लगे, चारों ओर समुद्रकासा अरराहट होने लगा ॥१२॥ आकाशके अतिक्रम करनेवाले जलसे और महातीक्ष्ण पवनसे और अत्यन्त दमकती हुई दामिनीसे चार प्रकारके जगतको बाहर भीतरसे व्याकुल देख और पृथ्वीको पानीमें डूबती हुई देखकर मुनि अपने मनमें घबड़ाने लगे और विस्मित होकर त्रासको प्राप्त हुए ॥१३॥ मार्कण्डेयजीके देखते ही तरंग उठनेसे भयानक, पवनसे चलायमान, वर्षते हुए मेघोंसे पूर्ण हो समुद्र सब ओर से द्वीप, खण्ड, पर्वतों सहित पृथ्वीको डुबाने लगा ॥१४॥ भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, नक्षत्र, दिशाओंसहित त्रिलोकी जलमय हो गयी । उस समय केवल

मार्कण्डेयजी ही अवशेष रहे, वह अकेले ही अपनी बड़ी बड़ी जटाओंको फैलाये जड़ अन्धके सदृश जलमें भ्रमने लगे ॥१५॥ भूख और प्याससे पीड़ित, मकर और तिमिंगिलोंसे भयभीत, महाप्रचण्ड पवनके झकोरोंसे और जलकी तीव्रतरंगोंके प्रहारसे व्याकुल, अपार अन्धकारमें भ्रमण करते हुए मुनिने दिशा तथा आकाश और पृथ्वीको नहीं जाना ॥ १६ ॥ कभी महागम्भीर भँवरोंमें उछलते डूबते थे, कभी तरंगोंमें आकर इधर उधर चले जाते थे, कभी भूखे जलजन्तु उनको खानेके लिये परस्पर लड़ते थे ॥१७॥ कभी शोक, कभी मोह, कभी दुःख, कभी सुख, कभी मरण, कभी जीवन, कभी रोगदिकोंसे ग्रस्त होकर अनेक प्रकारके क्लेश पाते थे ॥१८॥ नारायणकी मायासे आवृत

क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिङ्गिलैरुपद्रुतो वीचिनभस्वताहतः ॥ तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥१६॥ क्वचिद्गतो महावर्ते तरङ्गैस्ताडितः क्वचित् ॥ यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योऽन्यघातिभिः ॥ १७ ॥ क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् ॥ क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥१८॥ अयुतायुत वर्षाणां सहस्राणि शतानि च ॥ व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥ स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि द्विजः ॥ न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम्॥२०॥प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् ॥ शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥२१॥ महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम् ॥ कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुंदरभ्रुवम् ॥ २२ ॥ श्वासैजदलकाभातं कम्बु श्रीकर्णदाडिमम् ॥ विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥

चित्तवाले मार्कण्डेयजीको उस जलमें भ्रमते भ्रमते अयुतायुतके सौ हजार अर्थात् एक शंख १०००००००००००० बीत गये ॥ १९ ॥ तब महाप्रयलयके समुद्रमें भ्रमते भ्रमते एक टापू दिखायी दिया । उस टापूमें फल फूलोंसे अत्यन्त शोभायमान एक वटका वृक्ष दृष्टि आया ॥२०॥ उस वृक्षके पूर्व उत्तर (ईशान) कोणकी शाखाके पत्रके जोड़ेमें सोता हुआ अपनी कांतिसे अन्धकारको दूर करनेवाला एक बालक देखा ॥२१॥ महामरकत मणिके सदृश श्यामवर्ण , अत्यन्त शोभायमान मुखारविन्द, शंखके तुल्य तीन रेखाओंसे युक्त ग्रीवा, परम विशाल वक्षस्थल, सुन्दर नासिका और सुन्दर भौहें हैं ॥२२॥ श्वाससे कांपती हुई अलकोंकी मनोहर छबि, भीतरकी ओरको शंखके

तुल्य आंटी खाये हुए शोभित, कानोंमें दाडिमके फूलोंकी कली धरी, विद्रुमसे अरुण अधरोंकी कांति, सुधासरिस मन्दमुसकान ॥२३॥ कमलकोशसे अरुण नेत्रोंके कोये, सुन्दर हास्ययुक्त चितवन, श्वास लेनेमें चलायमान, त्रिवलीसे शोभित गम्भीर नाभि अत्यन्त शोभा दे रही थी, पीपलके समान सुन्दर उदर ॥ २४ ॥ अपने दोनों हाथोंकी उँगलियोंसे दाहिने चरणके अँगूठेको थांभे हुए मुखसे पी रहा था, उस बालकको देखकर मार्कण्डेजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २५ ॥ उसके दर्शनके आनन्दसे सब श्रम दूर हो गया, हृदय कमल खिल गया, शरीर पुलकायमान होने लगा, इस अद्भुत प्रभाव को देख मुनि अतिशंकित होकर पूछनेके लिये उस बालकके समीप

पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम् ॥ श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥ २४ ॥ चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्या-मुन्नीयचरणाम्बुजम् ॥ मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥२५॥ तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृ-त्पद्मविलोचनाम्बुजः ॥ प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशङ्कितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥ तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोऽन्तःशरीरं मशको यथाऽविशत् ॥ तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुराऽमुह्यदतीव विस्मितः ॥ २७ ॥ खं रोदसी भगणानद्रिसागरान्द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान् ॥ वनानि देशान्सरितः पुराकरान्खेटान्व्रजा-नाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥ महान्ति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुतकल्पकल्पनम् ॥ यत्किञ्चिदन्य-द्व्यवहारकारणं ददर्शविश्वं स दिवावभासितम् ॥ २९ ॥

गये ॥२६॥ उस समय वह भृगुवंशी मार्कण्डेय मुनि उस बालकके मुखके समीप पूछनेको झुके, कि इतनेमें ही बालकने श्वास जो लिया उसके श्वासके संग ही मच्छरकी नाई बालकके मुखके मार्ग होकर उसके उदरमें पहुँच गये, वहां भी यह विश्व प्रलय से पहिलेकी नाई देखा, उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो मोहित हो गये ॥२७॥ और वैसा ही आकाश, भूमि, स्वर्ग, वृक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, पर्वत, समुद्र, द्वीप, खण्ड, दिशा, देवता, असुर, वन, देश, नदी, पुर, खान, किसानोंके ग्राम, गायोंके खरक, वर्ण, आश्रम और इन सबकी जीविकाको देखा ॥२८॥ पञ्च महाभूतोंके रचे प्राणी, युग, अनेक पदार्थ और कल्पोंकी कल्पना करनेवाला काल और भी जो व्यवहारोंके कारण थे वे सब

उस बालककी सत्तास सत्यसे प्रतीत होते मार्कण्डेयजीने देखे ॥२९॥ घूमते घूमते हिमालयमें पहुँच गये, वहां पुष्पभद्रा नाम नदी और अपना आश्रम और उसमें रहनेवाले ऋषि और मुनियोंको भी देखा, तब मार्कण्डेजीने अपना स्थान जानकर रहनेका विचार किया, परन्तु मनमें यही सन्देह था कि "यह क्या माया है" मार्कण्डेयजी यह विचार कर ही रहे थे इतनेमें बालकने ऊर्ध्व श्वास जो लिया तो फिर मुखसे बाहर निकलकर उसी प्रलयरूप समुद्रके जलमें आ पड़े ॥३०॥ फिर वहां वही पृथ्वीका टापू और वही वटका वृक्ष और वही बालक उस वटके पत्तेपर सोता हुआ देखा और उस बालकने भी प्रेमरूप सुधासरिस मन्द मुसकानसहित बांकी चितवन से मुनिकी ओरको देखा ॥ ॥३१॥ तब तो मनको मोहित करनेवाले बालकको दोनों नेत्रोंसे देखकर लज्जित हो अत्यन्त क्लेश मान मार्कण्डेयजी उन अधोक्षज भग-

हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ॥ विश्वं विपश्यन् श्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तोन्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥ तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ॥ तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोऽपाङ्गनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥ अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्याधिष्ठितं हृदि ॥ अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥ तावत्स भगवान् साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः ॥ अन्तर्दधे ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥ तमन्वथ वटो ब्रह्मन् सलिलं लोकसंप्लवः ॥ तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे वटपत्रे शिशुदर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ॥ वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥

वान्को आलिंगन करनेके लिये उनके सम्मुख धाये॥३२॥इतनेमें वह बालरूप साक्षात् योगके ईश्वर सर्वान्तर्यामी भगवान् मार्कण्डेयजीके देखते देखते अन्तर्धान हो गये, जैसे हरिविमुखोंकी क्रिया लोप हो जाती है ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! तब तो उस वटवृक्ष और प्रलयके जलसे लोकोंके डूबनेका चिह्न भी न रहा, क्षणमात्रमें ही सब अन्तर्हित हो गये और मार्कण्डेयजी पहलेकी नाईं अपने आश्रममें बैठ गये ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवन्मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा—कहौं दशम अध्यायमें, शिवागमन मुनिधाम । अति प्रसन्न हो वर दिये, शिव अरु शिवकी वाम ॥ सूतजी बोले कि मार्कण्डेयजी नारायणसे निर्मित योगमायाके

वैभवका ऐसा अद्भुतचरित्र देखकर भगवान्‌की शरणमें आये ॥१॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे ईश्वर ! शरणागतोंके अभयदान देनेवाले आपके चरणारविन्दकी मैं शरण आया हूँ । देखो ! ज्ञानसी प्रकाशवान् आपकी मायासे बड़े बड़े पंडित ज्ञानी भी मोहित हो जाते हैं, क्योंकि अपने तप और पुरुषार्थके घमण्डमें आपका भजन नहीं करते, वह मेरे समान मायारूप समुद्रमें उछलते डूबते रहते हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि एक दिन बैलपर चढ़े भवानीको सङ्ग लिये भगवान् महादेवजी आकाशमें गणोंसे वेष्टित पर्यटन करते फिरते थे कि पुष्पभद्रा नदीके निकट एकाग्रचित्तवाले मार्कण्डेय मुनिको बैठा देखा ॥ ३ ॥ शैलनंदिनी भवानी मार्कण्डेयजीको देखकर शिवजीसे बोलीं कि हे भगवन् ! जैसे

मार्कण्डेय उवाच ॥ प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ॥ यन्माययाऽपि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ॥ रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ॥ पश्येमं भगवन् विप्रं निभृतात्मेन्द्रियाशयम् ॥ ४ ॥ निभृतोदझषव्रातं वातापाये यथार्णवम् ॥ कुर्वस्य तपसः साक्षात् संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ॥ भक्तिं परां भगवति लब्धवान् पुरुषेऽव्यये ॥६॥ अथापि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ॥ अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥

पवन न चली हो उस समय समुद्रका जल और जन्तु आदि निश्चल रहते हैं, ऐसे ही इसके अंग, इंद्रिय और मन निश्चल हो गये हैं, ! ऐसे इस विप्रको देखो और इसके तपका फल इसको दो, क्योंकि तुम सब सिद्धियोंके दाता हो ॥ ४ ॥ ५ ॥ श्री महादेवजी बोले कि हे पार्वती ! अव्यय अविनाशी आदिपुरुष भगवान्‌में प्रेमलक्षणा भक्ति होनेसे यह ब्रह्मऋषि मोक्षपर्यन्त कामनाको भी नहीं चाहता ॥ ६ ॥ तो भी हे भवानी ! इस साधु पुरुषसे कुछ सुखसंवाद करेंगे, क्योंकि मनुष्योंमें साधु पुरुषोंका समागम होना परमलाभदायक है ॥७॥ सूतजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! सर्व मुनि और साधुओंकी गति जाननेवाले सर्व विद्याओंके और सम्पूर्ण जीवोंके ईश्वर भगवान् शिवजी पार्वतीसे

यह बात कहकर मार्कण्डेयजीके सन्निकट गये ॥८॥ अन्तःकरणकी वृत्तियोंके रोकनेके कारण मार्कण्डेयजीको अपने आत्मा और विश्वकी ओर कुछ ध्यान नहीं था, इस लिये साक्षात् ईश्वर और विश्वात्मा विश्वनाथ महादेव और पार्वतीके शुभागमनको भी उन्होंने नहीं जाना ॥९॥ मार्कण्डेय ऋषिको समाधिनिष्ठ जानकर पवन जैसे छिद्रमें घुस जाता है, ऐसे ही कैलासपति भगवान् महादेजीने योगमाया करके मुनिके हृदयाकाशमें प्रवेश किया ॥१०॥ तीन नेत्र, दश भुजा, ऊँचा शरीर, बिजली सदृश पीत जटाओंको धारण किये, प्रातःकालके सूर्यके समान शोभायमान तेजस्वी ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्मके वस्त्र पहिने, त्रिशूल, धनुषबाण, खड्ग, ढाल, डमरू, रुद्राक्ष, कपालमाला और

तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ॥ न वेदरुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥ भगवांस्तदभिज्ञाय गिरिशो योगमायया ॥ आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥ आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् ॥ त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्माम्बरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः ॥ अक्षमालाडमरुक-कपालपरशुं सह ॥ बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः ॥१२॥ किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम् ॥ १३ ॥ रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ तस्मै सपर्यां व्यद-धात् सगणाय सहोमया ॥ स्वागतासनपाद्यार्घ्यगन्धस्रग्धूपदीपकैः ॥ १४ ॥ आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ॥ करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥ १५ ॥

परशु हाथमें लिये, शिवजीको अकस्मात् ही हृदयमें प्रकाशमान देख अत्यन्त विस्मित होकर बोले ॥१२॥ क्या आश्चर्य ? यह कौन है ? कहां से आये ? इस विचार ही विचारसे मुनिकी समाधि निवृत्त हो गयी, तब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती और गणोंसहित शिवजी सम्मुख खड़े हैं ॥१३॥ त्रिभुवनका प्रधान गुरु शिवजीको समझकर मार्कण्डेयजीने मस्तक नवाकर नमस्कार किया "भले आये महाराज !" यह कह आसन दे, चरणामृत ले, अर्घ्य, चन्दन, माला, धूप, दीपादिसे गण और गिरिजा सहित शिवजीका पूजन किया ॥ १४ ॥ फिर कहा कि हे विभो ! हे ईश ! हे नाथ ! आप तो अपने प्रभावसे ही पूर्ण काम और विश्वके आनन्ददाता हो, मैं आपका क्या पूजन करूँ ? ॥१५॥

आप निर्गुण, शांत तत्त्वके अधिष्ठाता, सबके परम सुखदाता और रजोगुण तमोगुणके धारण करनेवाले होकर भी अघोर हो मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार जब मुनिने स्तुति की तब संतुष्ट हृदयवाले महात्मा पुरुषोंके शरणरूप आदिदेव विश्वनाथ प्रसन्न होकर हास्यपूर्वक मुनिसे कहने लगे ॥ १७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे मुने ! तुम हमसे मनोवांछित वर मांगो, क्योंकि हम तीनों वर देनेवालेके ईश्वर हैं, हमारा तीनों देवताओंका दर्शन अमोघ है, जो जिस कार्यके लिये भजता है, उसका कार्य

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च ॥ रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः ॥ परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसन्तमभाषत ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः ॥ अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विन्दतेऽमृतम् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निःसंगा भूतवत्सलाः ॥ एकान्तभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ १९ ॥ सलोका लोकपालास्तान् वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते ॥ अहं च भगवान् ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥२०॥ न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ॥ नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान् वयमीमहि ॥ २१ ॥

सफल होता है और मरणधर्माओंको मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण, साधु, सन्त शांतचित्त रागरहित सब प्राणियोंपर दया रखनेवाले हमारे पूर्ण भक्त वैरभावरहित समदर्शी हैं ॥ १९ ॥ उनका लोकों सहित लोकपाल और देवता वंदन करते हैं पूजते हैं और दिन रात सेवन करते हैं, सब इतना ही न समझना किन्तु जो सबके अधिष्ठाता विष्णु, ब्रह्मा और हम भी उनका सेवन करते हैं ॥ २० ॥ आपके समान ब्राह्मण, हम, विष्णु, ब्रह्मा अपने आत्मा और लोकोंमें किञ्चिन्मात्र भी भेद दृष्टि नहीं रखते, * इसीलिये हम आपका निर

* शंका—जब मार्कण्डेय मुनिने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवसे पूछा नहीं कि तुम तीनों देवताओं में कौन वड़ा कौन छोटा है अथवा तुम तीनों एकसे हो, फिर बिना पूछे शिवजीने क्यों कहा कि हे मार्कण्डेय ! ब्रह्मा, विष्णु और मुझमें कुछ भेद नहीं, हम तीनों देव एक ही हैं ?

उत्तर—मार्कण्डेयजीके मनमें यह संदेह था कि तीनों देवों में कौन बड़ा है, और कौन छोटा है, परंतु लज्जाके मारे पूछ नहीं सके थे, अतः महादेवजीने मार्कण्डेयकी अन्तर्गति जानकर उनकी शांतिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके एक स्वरूपकी कथा कहने लगे थे ।

न्तर भजन करते हैं ॥ २१ ॥ जलमें क्या तीर्थ नहीं है ? क्या मूर्तियोंमें देवता नहीं हैं ? अर्थात् निश्चय हैं परन्तु वे तत्काल फल नहीं देते, बहुत कालमें पवित्र करते हैं और हे महाराज ! आप सरीखे महात्मा तो दर्शनसे पवित्र करते हैं ॥ २२ ॥ चित्त की एकाग्रता, तपस्या, स्वाध्याय, संयम, वेदत्रयी, यम, हमारे रूपको जो ब्राह्मण धारण करते हैं, उनको हम भी नमस्कार करते हैं ॥२३॥ जब कि आपके श्रवण अथवा दर्शनसे ही महापातकी और चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं तो आपके सम्भाषणसे शुद्ध हो तो उसमें कहना ही क्या है ? ॥२४॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार चन्द्रभाल शिवजीके गूढ़ धर्ममय अमृतरूप वचनोंको श्रवणद्वारा पान करके मार्कण्डेयजी तृप्त न हुए ॥२५॥

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २२ ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् ॥ बिभ्रत्यात्मसमाधानतपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ २३ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोऽपि वः ॥ शुध्येरन्नन्त्यजाश्चापि किमु संभाषणादिभिः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् ॥ वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ॥ २५ ॥ स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्षितो भृशम् ॥ शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्तमब्रवीत् ॥ २६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्याशरीरिणाम् ॥ यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥ २७ ॥ धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ॥ आचरन्त्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति च ॥ २८ ॥ नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ॥ न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥ २९ ॥

नारायणकी मायासे बहुत दिनतक भ्रमण करते और क्लेश पाते मार्कण्डेयजीने शिवजीकी सुधारूप मधुर सुधावाणीसे सम्पूर्ण क्लेशोंके समुदायसे निवृत्त होकर भवानीपतिसे यह वचन कहा ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अहो ! यह विष्णु भगवान्के चरित्र प्राणियोंके जाननेमें आने बहुत कठिन हैं, क्योंकि आप त्रिलोकीके ईश्वर होकर भी अपने शरणागत प्रजागणकी स्तुति करके उनको नमस्कार करते हो ॥ २७ ॥ मुझको तो ऐसा जान पड़ता है कि ईश्वर भी धर्मके उपदेष्टा होकर धर्मके ग्रहण करानेके लिये प्राणियोंके आचरणोंकी स्तुति और अनुमोदन करते हैं और आप भी उन्हीं आचरणोंको करते हैं ॥ २८ ॥ आप अपनी मायामय वृत्तियोंसे

भा० द्वा० ॥२१॥

और लोकोंको नमस्करादि किया करते हैं, इससे आपकी महिमामें किसी प्रकारका दोष नहीं लगता क्योंकि जैसे नट नाटकके विषे दूसरा रूप धारण करके अपने पुत्र, पौत्र और दास-दासियोंको दण्डवत् प्रणाम करता है और दीन वचन कहता है, उस दीनता और दण्डवत् करनेसे उसके महत्त्वमें किसी प्रकारका लांछन नहीं लग सकता, वैसे ही आपको भी किसी प्रकारका दोष नहीं लगता ॥२९॥ जो ईश्वर आपही अपने मनसे गुणोंके द्वारा इस सृष्टिको रचकर उसमें प्रविष्ट होकर कर्त्ताके समान जान पड़ता है, जैसे स्वप्नमें कोई पुरुष नया नगर बनाकर उसमें प्रविष्ट होकर कर्त्ताके ही सदृश प्रतीत होता है ॥ ३० ॥ ऐसे त्रिगुणोंके नियन्ता शुद्धरूप अद्वितीय सबके गुरु ब्रह्ममूर्ति आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३१॥ हे सर्वोत्तम ! हे भगवन् ! मुझको आपका दर्शन हो गया, इससे अधिक

सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ॥ गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तृवत्स्वप्नदृग्यथा ॥ ३० ॥ तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ॥ केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३१ ॥ कं वृणे नु परं भूमन् वरं त्वद्वरदर्शनात् ॥ यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत् ॥ ३२ ॥ वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् ॥ भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्यर्चितोभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ॥ तमाह भगवान्शर्वः शर्वया चाभिनंदितः ॥ ३४ ॥ कामस्तेऽयं महर्षेऽस्तु भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ॥ आ कल्पान्ताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३५ ॥

और क्या वर है, जो मैं आपसे मांगू ? जिस मनुष्यपर आपकी कृपादृष्टि होती है, उसके सब काम सत्य और पूर्ण हो जाते हैं ॥३२॥ तो भी जो आप पूर्ण काम और भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हो तो मैं आपसे इतना वरदान मांगता हूँः—वह वरदान यह है कि अच्युत भगवान् और उनके भक्तोंमें, उसी प्रकार आपके चरणकमलमें मेरी निश्चय भक्ति रहे ॥३३॥ सूतजी बोले कि जब इस प्रकार शिवजीकी पूजा मार्कण्डेयजीने की तब भगवान् महादेव और गिरिराजकुमारी अति प्रसन्न हो मुनिसे कहने लगे॥३४॥ हे महर्षि ! आपके सब मनोरथ पूर्ण होंगे, क्योंकि आप तो पहिलेसे ही अधोक्षज भगवान्‌के भक्त हो; आपका यश और पुण्य कल्पकल्पांतर अखंड हो और सदा आप

अजर अमर रहें ॥३५॥ हे ब्रह्मन् ! तुम त्रिकालज्ञ हो और विज्ञान–सहित पूर्ण वैराग्य हो, ब्रह्मतेजमें पूर्ण और पुराणाचार्य भी होगे ॥३६॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार मुनिको वर देकर मुनिके पिछले चरित्र जो कुछ भगवान्की मायाके वैभव देखे थे सो सब वृत्तान्त त्रिलोचन महादेवजी भवानी से कहते हुए चले गये ॥३७॥ परमयोगकी महिमाको पाकर विष्णुभगवान्की एकांत भक्तिसे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी अब तक पृथ्वी पर विचरते हैं॥३८॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने भगवान् वासुदेवकी अद्भुत माया वैभव आदि जो देखा सो मार्कडेण्य जीका पवित्र चरित्र आपके सम्मुख वर्णन किया ॥ ३९ ॥ सृष्टिके जो उत्पत्ति प्रलय आदिक होते रहते हैं वह सब आदि पुरुष भगवान्की ही माया है, कोई कोई मूर्ख लोग इस बातको नहीं जानते । मार्कण्डेयजीने जो यह मायाका वैभव देखा सो केवल भगवदिच्छासे देखनेमें

ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन्विज्ञानं च विरक्तिमत् ॥ ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यताऽस्तु ते ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वरान्स मुनये दत्त्वाऽगात्त्र्यक्ष ईश्वरः ॥ देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरा मुनेः ॥ ३७ ॥ सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ॥ विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकान्ततां गतः ॥ ३८ ॥ अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः ॥ अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ३९ ॥ एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः ॥ अनाद्यावर्तितं नृणां कदाचित्कं प्रचक्षते ॥४०॥ य एवमेतद् भृगुवर्यवर्णितं रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ॥ संश्रावयेत्संशृणुयादुतावुभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥४१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धेमार्कण्डेय० शिवदत्तवरदानं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

आया, कुछ प्राकृतिक वा नैमित्तिक कर्मोंका यह प्रलय नहीं था और अज्ञानी लोग अबतक उसे अनादि कालके समान सातवां नैमित्तिक प्रलय ही समझ रहे हैं, इसीसे मार्कण्डेयजीकी सात कल्पकी अवस्था संसारमें विख्यात है, परन्तु यह सम्पूर्ण भ्रांति है और जो मायाके वेत्ता हैं, वे उस कालको निमेष मात्र कहते हैं, अर्थात् मायाका कौतुक देखा था, वह सब एक क्षणमात्रका था ॥ ४० ॥ हे भृगुवंशियोंमें उत्तम ! भगवान्के प्रभावयुक्त मार्कण्डेयका यह चरित्र जो कोई प्रेम पूर्वक एकाग्रचित्त होकर सुनेगा अथवा सुनावेगा उन दोनोंको कर्म वासना युक्त संसारकी माया न व्यापेगी ॥४१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां मार्कण्डेयोपाख्याने श्रीशिववरप्रदाने नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा–इस ग्यारह अध्यायमें महापुरुषका ध्यान। भिन्न भिन्न प्रतिमासमें, व्यूह सूर्य भगवान्॥ शौनकादिक बोले कि हे भागवतोंमें श्रेष्ठ महामुनिसूतजी! आप सर्व तंत्रशास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता हो, इसलिये हे बहुज्ञ! महात्माओंमें मुकुटमणि! हम आपसे यह प्रश्न करते हैं॥ १॥ हे ब्रह्मन्! सर्व तन्त्रोंके उपासक केवल हरि भगवान्की परिचर्या विषे अंग अर्थात् पादादिक, उपांग गरुड़ादिक, आकल्प–चक्रादिक अलंकार और कौस्तुभादिक आभूषणोंकी रचना जिस जिस भांति कल्पना करते हैं॥ २॥ उस क्रियायो-

शौनक उवाच॥ अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम्॥ समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान्भागवततत्त्ववित्॥ १॥ तान्त्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः॥ अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पान्कल्पयन्ति तथैव यैः॥ २॥ तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम्॥ येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम्॥ ३॥ सूत उवाच॥ नमस्कृत्य गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि॥ याः प्रोक्ता वेदतन्त्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः॥ ४॥ मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट्॥ निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम्॥ ५॥

गके जाननेकी हमारी इच्छा है, जिसकी निपुणतासे मरणधर्मा पुरुष अमरत्वको प्राप्त हो जाता है। हे सूतजी! आप उस विद्याके जानने वाले हैं सो कृपा करके बतलाइये आपका कल्याण होगा॥ ३॥ सूतजी बोले कि गुरुको नमस्कार करके विष्णु भगवान्की विभूतियोंका वर्णन करूँगा, जिन विभूतियोंका साक्षात् ब्रह्मादिक देवताओंने भी वेद और तंत्रोंमें वर्णन किया है ❋॥ ४॥ माया, रूप, महत्तत्त्व, अहंकार, पांच तन्मात्रा इन नौ तत्त्वोंसे ग्यारह इंद्रिय पञ्चमहाभूत रूप यह विराट् शरीर ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ, जिस चैतन्यसे

* शंका—बड़े आश्चर्यकी बात है कि सूतजी कहते हैं अब अपने गुरुको दण्डवत् करके विष्णुकी विभूति ऐश्वर्यका मैं वर्णन करता हूं यह मुझको संशय है कि पहले स्कन्धसे बारह स्कन्धके दशवें अध्याय तक विष्णुकी विभूतिका वर्णन नहीं हुआ, फिर किसकी विभूतिका वर्णन हुआ।

उत्तर—पहले ऐसा वर्णन हुआ है तीन लोक चौदह भुवन चराचर यह सब ईश्वरका स्वरूप है इसलिये विष्णुरूप जो संपूर्ण संसार है उसकी विभूतिका वर्णन हुआ है और अब अकेले भगवान्की महिमा और चरित्रोंका वर्णन होगा इसलिये सूतने कहा था कि अब हम भगवानकी विभूतिका वर्णन कहते हैं।

अधिष्ठित ब्रह्मांडमें पृथ्वी आदि सब लोक देखनेमें आते हैं, इन्हीं पृथ्वी आदि लोकोंसे भगवान्‌के अंगोंकी पूजा करनेमें आती है ॥५॥ इस ब्रह्मांडको भगवान्‌में कल्पित होनेके कारण भगवान्‌का देहरूप मानकर उसमें पृथ्वीको चरणरूप, स्वर्गको मस्तकरूप, अंतरिक्षको नाभिरूप, सूर्यको नेत्र रूप, पवनको नासिकारूप, दिशाओंको कानरूप ॥६॥ प्रजापतिको शिश्नेंद्रियरूप, मृत्युको गुदेंद्रियरूप, लोकपालोंको भुजारूप, चन्द्रमाको मनरूप, यमको भ्रुकुटीरूप ॥७॥ लज्जाको ऊपरके ओष्ठरूप, लोभको नीचेके ओष्ठरूप, चांदनीको दांतरूप, भ्रांतिको हास्यरूप, वृक्षोंको रोमरूप और मेघोंका केशरूप कल्पना करते हैं ॥ ८ ॥ ऐसे ब्रह्मांडरूपका धूप, दीप, चन्दनादिसे पूजन और ध्यान एक बारमें नहीं बन सकता इसलिये पाषाण, धातु आदिकी प्रतिमामें उस विराट् देहकी और अवयवोंकी कल्पना कर उसका

एतद्वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः ॥ नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥ प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः ॥ तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥ लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दन्ता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः ॥ रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्द्धजाः ॥ ८ ॥ यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मितः ॥ तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥ कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ॥ तत्प्रभा व्यापिनी साक्षाच्छ्रीवत्समुरसा विभुः ॥ १० ॥ स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ॥ वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥ ११ ॥ बिभर्ति साङ्ख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले ॥ मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम् ॥ १२ ॥

पूजन और ध्यान ठीक-ठीक करनेमें आता है। इस ब्रह्मांडरूप पुरुषका जो प्रमाण है, जैसी स्थिति है, वह प्रमाण और वह स्थित भगवान्‌की छोटी मूर्तिमें भी जानी जाती है, इसलिये मूर्तिमें भगवान्‌का पूजन करते हैं ॥ ९ ॥ मूर्तिमें जो प्रभुने कौस्तुभमणि धारणकी है, यही शुद्ध चैतन्य धारण किया है, ऐसा मान रखा है और प्रतिमाके वक्षस्थलमें श्रीका चिह्न है, उनकी प्रभासे व्याप्त जीव है ॥१०॥ उनकी माया ही अनेक गुणमयी वनमाला है और वेद ही साक्षात् पीतांबर है और अकार, उकार, मकाररूप त्रिमात्रावाला ओंकार ही यज्ञोपवीत हैं ॥११॥ सांख्य और योग ये दोनों मकराकृति कुंडल हैं, सब लोकोंसे नमस्कार और अभयदायक ब्रह्मलोक मुकुटमणि हैं ॥१२॥

वसुधाके आधाररूप शेष भगवान् हैं, वह अनन्त नामसे प्रसिद्ध हैं, वही नारायणके विराजनेके कमलासन हैं और कोई-कोई विद्वान् लोग ऐसा भी कहते हैं कि अनेक रंगकी जो परमेश्वरकी माया है, वही अनन्त आसन हैं, कोई कहते हैंः–धर्मज्ञानादि सहित सत्त्वगुण कमलासन है ॥ १३ ॥ इंद्रियोंकी निपुणता, मनका उत्साह, शरीरके बल सहित प्राण ही विराट्स्वरूपकी गदा है, जलका तत्त्व ही शंख है, तेजका तत्त्वही सुदर्शन चक्र है ॥१४॥ आकाश ही नीलवर्ण बिजलीयुक्त झमझमाता हुआ खड्ग है, आकाशरूप तत्त्व जो अन्धकार है वही ढाल है, काल ही शारङ्गधनुष है और कर्म ही बाणोंसे भरा हुआ तूणीर (तरकस) है ॥१५॥ इंद्रियें ही भालावाले बाण हैं, मन ही रथ

अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः ॥ धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥ ओजः सहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ॥ अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥ नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ॥ कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्यस्यन्दनम् ॥ तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥ मण्डलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः ॥ परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥ भगवान्भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ॥ धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥ आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम् ॥ त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥ अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ॥ विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥ २० ॥

है, तन्मात्राही रथकी चाल है, अभयवरदान की देनेवाली क्रिया ही विराट् पुरुषकी मुद्रा है ॥१६॥ सूर्य, अग्नि, चन्द्रमंडल परपुरुष भगवान्की पूजा करनेका स्थान है, गुरुकी दी हुई जो मंत्र दीक्षा है वही पूजन करनेवालोंके संस्कार हैं, भगवान्की परिचर्या ही आत्माके पापोंको नाश करनेवाली है ॥ १७ ॥ छः प्रकारका भग शब्दका अर्थ लीलाकमल है, धर्म यश दोनो चामर और बीजना हैं ॥ १८ ॥ हे द्विजो ! छत्र धारण करनेका निर्भय धाम वैकुंठ है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ही यज्ञ पुरुष भगवान्का बाहन गरुड़ है ॥ १९ ॥ साक्षात् भगवती लक्ष्मी जो भगवान्के पार्श्वमें विराजमान है वह हरिकी अनपायिनी शक्ति है, पार्षदोंमें अधीश्वर जो मुख्य विष्वक्सेन है वही तंत्रशास्त्रकी मूर्ति हैं, अणिमादिक अष्टसिद्धियां जो हैं वहीं नन्द सुनंदादिक भगवान् वैकुण्ठविहारीके द्वारपाल हैं ॥ २० ॥

हे ब्रह्मन् ! वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यही श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदकी चार मूर्ति परम पवित्र हैं ॥ २१ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय चार अवस्थाओंसे और इनके कारण विषय, मन, अज्ञान और ज्ञानसे भगवान् जाने जाते हैं, यही भावना ईश्वरसंबन्धी है ॥२२॥ अंग, उपांग, चरणादिक चार भुजावाली मनोहर मूर्ति गरुड़ादिक, आयुध, आकल्प, अलंकार इन चारों सेयुक्त चतुर्मूर्ति भगवान् हरि ईश्वर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय इन चारों अवस्थाओंको धारण करते हैं, जो पुरुष इन चारों मूर्तियोंका ध्यान धरते हैं उनको भगवान् वासुदेव चार फल देते हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तम ! भगवान् वेदके कारण स्वयंद्रष्टा, स्वमहिमासे परिपूर्ण, अपनी मायाहीसे सब

नन्दादयोऽष्टौ द्वाःस्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ॥ वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ॥ अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्ति-व्यूहोऽभिधीयते ॥ २१ ॥ स विश्वतैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ॥ अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥ २२ ॥ अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ॥ बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥ द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक् स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत् ॥ सृजति हरति पातीत्याख्ययाऽनावृताक्षो विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलक्ष्यः ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविंद गोपवनिताव्रजभृत्यगीत तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गल पाहि भृत्यान् ॥ २५ ॥ य इदं कल्य उत्थाय महापुरुष-लक्षणम् ॥ तच्चित्तः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम्॥ २६ ॥

जगत् उत्पन्न करते हैं, संभालते हैं, और नष्ट करते हैं, क्योंकि ईश्वर सबके अंतर्यामी हैं ॥ २४ ॥ जिन मनोहर मूर्तियोंकी उपासना कही अब उनकी सूतजी स्तुति करते हैं—हे श्रीकृष्णचंद्र ! हे अर्जुनके प्रिय सखा ! हे यदुकुलभूषण ! हे वसुधाके द्रोही राजाओंके वंशके विध्वंस करनेवाले ! हे अग्निरूप एकरस पराक्रमी ! हे गोविन्द ! हे श्रवणमंगल ! हे गोपवनिताओंके समुदाय और नारद भृत्यादिकोंसे पवित्र यश गाये हुए तीर्थोंके समान पवित्र कीर्तिवाले ! हे हरि ! हे विश्वभावन ! हे वैकुण्ठविहारी ! हमारी इस कालरूप संसारसे रक्षा करो ॥२५॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर एकाग्रचित्त हो महापुरुष भगवान्के इन लक्षणोंको चित्तमें रखकर ध्यान करेगा वह सर्व घटवासी वासुदेव

भगवान्‌को अपने हृदयमें विराजमान देखेगा॥२६॥शौनकादिक बोले कि हे सूतजी। मूर्तियोंके विषयमें जो व्यूह आपने कहा उसको सुनकर हमको सूर्यके व्यूह सुननेकी अभिलाषा हुई और राजा परीक्षित्‌से श्रीशुकदेवजीने (पञ्चमस्कन्धमें) वर्णन किया था कि गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, दैत्य, ऋषि, और देवता इन सातका सूर्यसम्बन्धी गण मास मास प्रति कहा है ॥२७॥ इन गणोंके नाम और इनके स्वामी सूर्योंके नाम और कर्म हमको सुनाओ, क्योंकि सूर्य नारायण भी नारायणके ही स्वरूप हैं, इसलिये उनका व्यूह श्रवण करनेकी हमारी श्रद्धा है ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, कि सर्वत्र जीवमात्रका आत्मा विष्णु भगवान्‌की माया है। उस अनादि मायासे रचित सब लोकोंकी सीमामें

शौनक उवाच ॥ शुको यदाह भगवान्विष्णुराताय शृण्वते ॥ सौरो गणो मासिमासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७ ॥ तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् ॥ निर्मितो लोकतन्त्रोऽयं लोकेषु परिवर्त्तते ॥ २९ ॥ एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः ॥ सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥ ३० ॥ कालो देशः क्रिया कर्त्ता कारणं कार्यमागमः ॥ द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजयो हरिः ॥३१॥ मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ॥ लोकतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥ ३२ ॥ धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने ॥ पुलस्त्यस्तुम्बुरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी ॥ ३३ ॥

प्रवृत्त करनेवाले यह सूर्य नारायण लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं ॥२९॥ सब लोकोंके आत्मा और आदिकर्त्ता जो विष्णु भगवान् हैं, वही प्रकटरूपसे सूर्यनारायण हैं और यह भगवान् ही सब वेदोंकी क्रियाओंका कारण हैं, इसीसे ऋषि लोग उन उन क्रियाओंसे नाना प्रकारके कहते हैं ॥३०॥ हे शौनक ! भगवान् ही सब कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये मायाके सङ्ग काल, देश, क्रिया, कर्त्ता, अनुष्ठान, यजमान, साधन, यज्ञादिक, मन्त्र, हविष्य ये नौ प्रकार हरिकी मायासे हैं, इस प्रकार कविलोग कहते हैं ॥३१॥ कालरूप सूर्य भगवान् चैत्रादिक बारहवों मास लोगोंके कर्मोंके विषे प्रवृत्त करनेको अपने गणोंको साथ लिये अलग-अलग द्वादशरूप धारण किये घूमते रहते हैं ॥३२॥ चैत्रके महीनेमें कृत

स्थली नाम अप्सरा, हेति नाम राक्षस, वासुकी नाग, तुम्बुरु गंधर्व, रथकृत यक्ष, पुलस्त्य नाम ऋषि इनके साथ धाता नाम सूर्य विचरण करता है ॥३३॥ वैशाखमें पुञ्जिकस्थली नाम अप्सरा, प्रहेति नाम राक्षस, कच्छनीर नाम नाग, नारद नाम गन्धर्व, अथौजा यक्ष, पुलह ऋषि इनके साथ अर्यमा नाम सूर्य विचरण करता है ॥३४॥ ज्येष्ठमासमें मेनका नाम अप्सरा, पौरुषेय नाम राक्षस, तक्षक नाम नाग, हाहा नाम गंधर्व, रथस्वन यक्ष, अत्रि ऋषि उनके साथ मित्र नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३५ ॥ आषाढ़ मासमें रम्भा नाम अप्सरा, मित्रस्वन नाम राक्षस, शुक्र नाम नाग, हूहू नाम गंधर्व, सहजन्य यक्ष, वसिष्ठ ऋषि इनके साथ वरुण नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥३६॥

अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुञ्जिकस्थली ॥ नारदः कच्छनीरश्च नयन्त्येते स्म माधवम् ॥ ३४ ॥ मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः ॥ रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयन्त्यमी ॥ ३५ ॥ वसिष्ठो वरुणो रम्भा सहजन्यस्तथा हुहूः ॥ शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयन्त्यमी ॥३६॥ इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथांगिराः ॥ प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयन्त्यमी ॥ ३७ ॥ विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ॥ अनुम्लोचा शंखपालो नभस्याख्यं नयन्त्यमी ॥३८॥ पूषा धनंजयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा ॥ घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥ ३९ ॥ ऋतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा ॥ विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ४० ॥

श्रावणमासमें प्रम्लोचा नाम अप्सरा, वर्य नाम राक्षस, एलापत्र नाम नाग, विश्वावसु नाम गन्धर्व, श्रोता यक्ष, अंगिरा नाम ऋषि इनके साथ इन्द्र नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥३७॥ भाद्रपद महीनेमें अनुम्लोचा नाम अप्सरा, व्याघ्र नाम राक्षस, शङ्खपाल नाम नाग, उग्रसेन नाम गंधर्व, आसारण नाम यक्ष,भृगु नाम ऋषि इनके साथ विवस्वान् नाम सूर्य विचरण करता है॥३८॥ माघ मासमें घृताची नाम अप्सरा, वात नाम राक्षस, धनंजय नाम नाग, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष, गौतम नाम ऋषि इनके साथ पूषा नाम सूर्य विचरण करता है ॥३९॥ फाल्गुनके महीनेमें सेनजित् नाम अप्सरा, वर्चा नाम राक्षस, ऐरावत नाम नाग, विश्व नाम गन्धर्व, ऋतु यक्ष, भरद्वाज नाम ऋषि इनके

साथ पर्जन्य नाम सूर्य भ्रमण करता है ॥४०॥ अगहनके महीनेमें उर्वशी नाम अप्सरा, विद्युत्शत्रु नाम राक्षस, महाशङ्ख नाम नाग, ऋतुसेन नाम गन्धर्व, तार्क्ष्य नामक यक्ष, कश्यप ऋषि इनके साथ अंशु नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ४१ ॥ पौषके महीनेमें पूर्वचित्त नाम अप्सरा, स्फूर्जरा नाम राक्षस, कर्कोटक नाम नाग, अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्ण यक्ष, आयु ऋषि इनके साथ भग नाम सूर्य विचरण करता है ॥४२॥ आश्विनमासमें तिलोत्तमा नाम अप्सरा, ब्रह्मपेत नाम राक्षस, कंबल नाम नाग, धृतराष्ट्र नाम गंधर्व, शतजित यक्ष, जमदग्नि ऋषि इनके साथ त्वष्टा नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४३ ॥ कार्तिकमें रम्भा नाम अप्सरा, मखापेत नाम राक्षस,

अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी ॥ विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासं नयन्त्यमी ॥ ४१ ॥ भगः स्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पञ्चमः ॥ कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्त्यमी ॥ ४२ ॥ त्वष्टा ऋचीकतनयः कम्बलश्च तिलोत्तमा ॥ ब्रह्मापेतोऽथ शतजिद् धृतराष्ट्र इषंभराः ॥ ४३ ॥ विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ॥ विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयन्त्यमी ॥ ४४ ॥ एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः ॥ स्मरतां संध्ययोर्नृणां हरन्त्यंहो दिनेदिने ॥ ४५ ॥ द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै ॥ चरन्समन्तात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ॥ ४६ ॥ सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिङ्गैर्ऋषयः संस्तुवन्त्यमुम् ॥ गन्धर्वास्तु प्रगायन्ति नृत्यन्त्यप्सरसोऽग्रतः ॥ ४७ ॥ उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः ॥ चोदयन्ति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः ॥ ४८ ॥

अश्वतर नाम नाग, सूर्यवर्चा गंधर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि इनके साथ विष्णु नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४४ ॥ यह सब सूर्यरूप विष्णुभगवान्की विभूतियोंका जो पुरुष दोनों संध्याकालमें स्मरण करते हैं उनके संपूर्ण पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४५ ॥ यह सूर्यनारायण इन छहों गणों सहित बारह महीनेमें सब ओर घूमते हैं और लोगोंको इस लोकमें और परलोकमें उत्तम बुद्धि देते हैं ॥ ४६ ॥ अप्सरायें सुन्दर शृंगार कर करके सूर्य नारायणके संमुख नृत्य करती हैं, बलवान् राक्षस रथको पीछेसे ढकेलते हैं, यक्ष रथको जोड़ते हैं, नाग रथको बांधते हैं, गंधर्व सूर्यके आगे यश गान करते हैं और ऋषीश्वर, मुनीश्वर, ऋगू, यजु, सामवेदके मन्त्रोंसे श्रीसूर्यनारायणकी स्तुति

करते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ साठ सहस्र ६०००० निर्मल वालखिल्य ब्रह्मर्षि अंगुष्ठप्रमाणमात्र स्वरूप सब मिलके स्तोत्रोंसे विभुके सम्मुख होकर पिछले पावोंसे चलते श्रीसूर्यनारायणकी स्तुति करते हैं ॥ ४९ ॥ आदि अन्तरहित अजन्मा भगवान् हरि ईश्वर इस प्रकार कल्प-कल्पमें अपना सूर्यरूप विभाग करके सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां सूर्यव्यूहविवरणं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा–इस द्वादश अध्यायमें, श्रीभागवत पुराण । वरणों सब संक्षेपसों, जो शुक किय

वालखिल्याः सहस्राणिषष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ पुरतोऽभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिर्विभुम् ॥ ४९ ॥ एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥ इति श्रीभा० म० द्वादश० आदित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥ सूत उवाच ॥ नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान्॥१॥एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम्॥भवद्भिर्यदहं पृष्ठो नराणां पुरुषोचितम् ॥ २ ॥ अत्र सङ्कीर्तितः साक्षात्सर्वपापहरो हरिः ॥ नारायणो हृषीकेशो भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ३ ॥

निर्माण ॥ सूतजी बोले कि श्रेष्ठ धर्मको नमस्कार करके और सृष्टिकर्त्ता श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके अब सब ब्राह्मणों के चरणोंमें शिर धर इस 'श्रीमद्भागवत' पुराणमें जो जो सनातन धर्म और सब कथाओंकी अनुक्रमणिका हैं वे मैं आपसे कहता हूँ * ॥१॥ हे ब्राह्मणो ! सम्पूर्ण प्राणियोंके सुनने योग्य यह विष्णु भगवान्का अद्भुत चरित्र इसमें जो जो प्रश्न आपने किये उन उनके उत्तर मैंने आपको दिये ॥ २ ॥ इस पुराणमें सब पापोंके विध्वंस करनेवाले भक्तवत्सल हृषीकेश भगवान् हरि नारायणकी साक्षात् महिमा वर्णन की है ॥ ३ ॥

---

* शंका—सूतजीने मुनियोंसे कहा कि अब हम सनातनधर्म कहते हैं आप सावधान होकर सुनो-इसमें हम को यह शंका है कि पहले जो धर्म वर्णन हुआ सो सनातनधर्म नहीं हैं, क्या ये शीघ्रके बनाये हैं ।

उत्तर—भागवत्में जो धर्म वर्णन किये हैं, सो सब सनातनधर्म हैं शीघ्र के बनाये हुए कोई भी नहीं हैं, परंतु एक कारण है सो वह भी कहते हैं, मुनियोंने प्रथम इस धर्मको बहुत संक्षेपके साथ वर्णन किया था वारंवार वर्णन हुआ परंतु जब हुआ तब संक्षेपसे ही हुआ और धर्मका विस्तार बहुत श्लोकोंमें कविलोक करते हैं इस अध्यायमें वारह स्कन्धोंकी कथाको व्यासजीने थोड़ेही में वर्णन की है जैसे पहले मुनिजनोंने थोड़े श्लोकोंमें संपूर्ण धर्म वर्णन किये थे, इस लिये सूतजीने कहा था कि कि अब मैं सनातन धर्म वर्णन करता हूं,क्योंकि सनातनधर्म तो दो ही हैं जो मुनिलोक थोड़े श्लोककरके वर्णन किये थे, बहुत विस्तार तो पोछेसे कवि लोगोंने किया । सूतने ऐसे विचारके नहीं कहा था कि अबतक सनातन धर्म वर्णन नहीं हुआ, सनातन धर्म अब वर्णन करता हूँ ।

भा० द्वा०
॥२६॥

अब यहांसे आगे पहले कही हुई "बारहवों स्कन्ध" की कथाको सूतजी शौनकादिकोंको फिर स्मरण कराते हैं, जिसमें जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार ऐसे परमगुह्य परब्रह्मके यशका गान और उस परब्रह्मका प्रकाशक विज्ञान और ज्ञानके साधन इस महापुराणमें कहे हैं ॥४॥ भक्ति योग और भक्तिभोगसे प्रकट होनेवाला वैराग्य भी कहा, नारदजीका आख्यान और परीक्षित्का उपाख्यान ॥५॥ ब्राह्मणके शापसे राजऋषि परीक्षित्का अनशन व्रत धारण करना,उन राजऋर्षि सहित ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजी महाराजका संवाद यह सब प्रथमस्कन्धमें वर्णन किया ॥६॥ योगधारणासे प्राण छोड़ना, ब्रह्मा नारदका संवाद और अवतारोंका वर्णन, विराट् पुरुष की उत्पत्ति, यह सब द्वितीय स्कन्धमें वर्णन

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥ भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ॥ पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥ ५ ॥ प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः ॥ शुकस्यैव च ब्रह्मर्षेः संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥ योगधारणयोत्क्रान्तिः संवादो नारदाब्जयोः ॥ अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥ ७ ॥ विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ॥ पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥ ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये ॥ ततो ब्रह्माण्डसम्भूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ॥ ९ ॥ कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ॥ भुव उद्धरणेऽम्भोधौ हिरण्याक्षवधो यथा ॥१०॥ ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ॥ अर्धनारीनरस्याथ यतः स्वायंभुवो मनुः ॥ ११ ॥ शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा ॥ संतानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥१२॥ अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ॥ देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥१३॥

भा० टी०
अ० १२

किया ॥७॥ विदुर और उद्धवका संवाद, फिर विदुर और मैत्रेयका संभाषण, पुराण संहिताके विषयमें प्रश्न, विराट् पुरुषकी रचना ॥ ८ ॥ पहिले मायाके गुणोंसे महत्तत्त्वादिक सात प्रकारकी सृष्टि रची गयी, उससे फिर इस ब्रह्मांडकी उत्पत्ति, जो कि वैराज पुरुषके रहनेका स्थान है ॥ ९ ॥ स्थूल, सूक्ष्म कालकी गति नाभिसे कमलकी उत्पत्ति, समुद्रसे पृथ्वीका उद्धार, हिरण्याक्षका वध ॥ १० ॥ वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य इनकी सृष्टि, रुद्रकी सृष्टि, ब्रह्माके आधे अङ्गसे पुरुष और आधे अङ्गसे नारी (स्त्री) हुई, उसमें पुरुष तो स्वायंभुव मनु और स्त्री शतरूपा हुई, कर्दम प्रजापतिसे धर्मपत्नियोंकी सन्तान कही ॥ ११ ॥ १२ ॥ जिन प्रजापति कर्दमजीसे

महात्मा भगवान् कपिलदेवजीका अवतार और उन बुद्धिमान् कपिलदेवजीसे देवहूतिका सम्भाषण, ये तीसरे स्कन्धकी कथा हैं ॥१३॥ मरीच्यादि ब्राह्मणोंकी सन्तानकी उत्पत्ति, दक्षके यज्ञका विध्वंस, ध्रुवजीका चरित्र, पृथु और प्राचीनबर्हि राजाके चरित्रका वर्णन, यह चौथे स्कन्धकी कथा हैं ॥१४॥ हे द्विजोत्तम ! नारद प्रियव्रतका संवाद फिर राजा प्रियव्रतका चरित्र नाभि राजाका आख्यान, ऋषभ देवजीका चरित्र, राजा भरतका इतिहास ॥ १५ ॥ द्वीप, समुद्र, पर्वत, खण्ड और नदियोंका वर्णन, ज्योतिश्चक्रका स्थापन, पातालकी रचना, नरकोंका वर्णन यह पञ्चमस्कन्धकी कथा हैं ॥१६॥ प्रचेतानसे दक्षका जन्म, फिर उस दक्षकी पुत्रियोंका वृत्तान्त, जिन सन्तानसे देवता

नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ॥ ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥ नारदस्य च संवादस्ततः प्रियव्रतं द्विजाः ॥ नाभेस्ततोऽनुचरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥ ततो द्वीपसमुद्राद्रिवर्षनद्युपवर्णनम् ॥ ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥ दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणां च संततिः ॥ यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥१७॥ त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ॥ दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ १८ ॥ मन्वन्तरानुचरितं गजेन्द्रस्य विमोक्षणम् ॥ मन्वन्तरावताराश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९ ॥ मात्कौर्मं स्यं नारसिंहं वामनं च जगत्पतेः ॥ क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थं दिवौकसाम् ॥ २० ॥ देवासुरं महायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ॥ इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ॥ सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृपादयः ॥ २२ ॥

असुर, नर, पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी, आदिकी उत्पत्ति ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! वृत्रासुरका जन्म और दितिके दोनों पुत्रोंकी उत्पत्ति, हिरण्यकशिपुका और महात्मा प्रह्लादका चरित्र ये षष्ठ और सप्तम स्कन्धकी कथा हैं॥१८॥ मन्वन्तरोंका वर्णन, गजेन्द्रको छुड़ाना, मन्वन्तरोंमें विष्णु भगवान्के हयग्रीवादिक अवतारोंका वर्णन ॥ १९ ॥ विष्णु भगवान्के अवतार—कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, वामनका उपाख्यान, देवताओंको समुद्रका मथना ॥२०॥ देवता, असुरोंका महाभयंकर संग्राम यह अष्टमस्कन्धकी कथा हैं । राजाओंके वंशोंका वर्णन राजा इक्ष्वाकुका जन्म और उनके वंशका वर्णन और महात्मा सुद्युम्नका इतिहास ॥ २१ ॥ इला और तारका आख्यान; शशादि नृगादि सूर्यवंशी

राजाओंका वर्णन ॥२२॥ सुकन्याका चरित्र, शर्यातिका चरित्र, बुद्धिमान् ककुत्स्थका उपाख्यान, खट्वांग, मान्धाता, सौभरि, सगरका चरित्र ॥२३॥ कौशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी कथा, सब पापोंका नाशक निमिके शरीरका त्याग, जनकवंशियोंकी उत्पत्ति ॥ २४ ॥ भृगुवंशी परशुरामजीका पृथ्वीको निक्षत्रिय करना, चन्द्रवंशी ऐलादि ययाति राजा नहुषका वृत्तान्त ॥ २५ ॥ दुष्यन्तका पुत्र राजा भरत, शंतनु और शंतनुके पुत्रका चरित्र और राजा ययातिके ज्येष्ठ पुत्र राजा यदुके वंशका वर्णन ये नवमस्कन्धकी कथा हैं ॥ २६ ॥ जिस यदुके वंशमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जगदीश्वरने अवतार लेकर भूमिका भार उतारा था,वह वृत्तान्त इस भांति है कि–वसुदेवके

सौकन्यं चाथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः ॥ खट्वाङ्गस्य च मान्धातुः सौभरेः सगरस्य च ॥ २३ ॥ रामस्य कोसलेन्द्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ॥ निमेरङ्गपरित्यागो जनकानां च सम्भवः ॥ २४ ॥ रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः ॥ ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नाहुषस्य च ॥ २५ ॥ दौष्यन्तेर्भरतस्यापि शन्तनोस्तत्सुतस्य च ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोऽनुकीर्तितः ॥ २६ ॥ यत्रावतीर्णो भगवान् कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ॥ वसुदेव गृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥ २७ ॥ तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ॥ पूतनाऽसुपयः पानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥ २८ ॥ तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः ॥ धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥ गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः ॥ दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नन्दमोक्षणम् ॥ ३० ॥ व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽऽच्युतो व्रतैः ॥ प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ॥ ३१ ॥

घर अवतीर्ण होकर गोकुल गये और वहां वृद्धि पायी ॥२७॥ असुरोंके शत्रु श्रीकृष्णजीके अपार चरित्र हमने कहे, बाला अवस्थामें पूतनाके प्राणसहित स्तनोंका पान, लात मारकर शकटका तोड़ना, तृणावर्त्त और वत्सासुरका मारना, अघासुरका वध, ब्रह्माका वत्स और बालकोंका हरना, धेनुक और प्रलम्बासुरका वध ॥२८॥२९॥ सब ओर फैली हुई दावानलसे गोपगायोंको बचाना, कालिय सर्पका दमन और महा अजगर सर्पसे नन्दजीको छुड़ाना ॥ ३० ॥ व्रजकन्याओंका व्रत करना और व्रतसे अच्युत भगवान्का प्रसन्न होना, द्विजपत्नि-

योंपर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणोंको पश्चात्ताप करना ॥३१॥ गोवर्धन पर्वतका करपर धरना, सुरभियोंके सहित इन्द्रका किया श्रीकृष्णका अभिषेक और रात्रिके समय व्रजवालाओं सहित श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ा ॥ ३२ ॥ दुर्बुद्धि शंखचूड़का वध और केशी अरिष्टका संहार, अक्रूरका व्रजमें आना, फिर रामकृष्णका मथुराको प्रस्थान ॥३३॥ उस समय व्रजयुवतियोंका विलाप, उसके पीछे मथुराका देखना और मुष्टिक, चाणूर, कंसादि दैत्योंका वध ॥ ३४ ॥ सान्दीपन गुरुके मरे हुए पुत्रको फेरकर ला देना, मथुरामें बसकर उद्धव बलदेव सहित मिलकर यादवोंसे स्नेह करना ॥३५॥ हे विप्रो ! जरासन्धकी लायी हुई सेनाका वारंवार वध करना और मुचकुन्दद्वारा कालयवनका मरना

गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ ॥ यज्ञाभिषेकः कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु ॥ ३२ ॥ शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ॥ अक्रूरागमनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥ ३३ ॥ व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ॥ गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ॥ ३४ ॥ मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सान्दीपनेर्गुरोः ॥ मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ॥ ३५ ॥ कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ जरासन्धसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ॥ घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३६ ॥ आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् ॥ रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥ ३७ ॥ हरस्य जृम्भणां युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम् ॥ प्राग्ज्जोतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३८ ॥ चैद्यपौण्ड्रकशाल्वानां दन्तवक्रस्य दुर्मतेः ॥ शम्बरो द्विविदः पीठो मुरः पञ्चजनादयः ॥ ३९ ॥ माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् ॥ भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ॥ ४० ॥

और समुद्रके टापूमें द्वारकापुरीका वसाना ॥ ३६ ॥ इन्द्रलोकसे पारिजात और सुधर्मा सभाका ले जाना और युद्धमें शत्रुओंको जीत कर रुक्मिणीको हर लाना ॥ ३७ ॥ युद्धमें जृम्भास्त्र करके शिवको जम्भाई लेना, बाणासुरकी भुजाओंका काटना, नरकासुरका मारना, सोलह सहस्र एक सौ आठ (१६१०८) कन्याओंका उद्धार ॥३८॥ शिशुपालका वध, मिथ्या वासुदेवका मरना, शाल्वका संहार, दुर्मति दन्तवक्रका दमन, द्विविदका हनन, पीठासुरका प्राणहरण, मुरका मारण, पञ्चजनदैत्यको मारकर कृतार्थ करना ॥३९॥ काशीका जलान, दैत्योंका

प्रभाव प्रकट करना,पांडवोंको निमित्तमात्र बनाकर पृथ्वीका भार उतारना, यह दशमस्कन्धकी कथा है ॥४०॥ ब्राह्मणके शापका बहाना रख-
कर अपने कुलका संहार करना, वासुदेव और उद्धवका उत्तम संवाद ॥४१॥ जिस संवादमें आत्मतत्त्वका निर्णय और धर्मका निर्णय फिर
अपनी मायाके प्रभावसे मनुष्यलोकका छोड़ना यह एकादशस्कन्धकी कथा है ॥४२॥ युगोंके लक्षण, उन युगोंमें जीविकाका वर्णन, कलि-
युगमें उपद्रव और चार प्रकारकी प्रलयका वर्णन मायासे और ब्रह्मासे उत्पन्न होनेवाली तीन प्रकारकी उत्पत्ति॥४३॥ बुद्धिमान् राजर्षि विष्णु-
रातका देहका त्यागना, व्यासजीसे वेदकी शाखाओंका विस्तार, मार्कण्डेय ऋषिकी सुन्दर कथा ॥४४॥ हे द्विजोत्तम ! जगत्के आत्मा सूर्य

विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ॥ उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥ ४१ ॥ यत्रात्मविद्या ह्यखिला
प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः ॥ ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥ ४२ ॥ युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः ॥
चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥ ४३ ॥ देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ॥ शाखाप्रणयनमृषे-
र्मार्कण्डेयस्य सत्कथा ॥ ४४ ॥ महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥ इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्ठोऽहमिहास्मि
वः ॥ लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥ ४५ ॥ पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् ॥ हरये
नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४६ ॥ संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ॥ प्रविश्य
चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥ ४७ ॥ मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवान-
धोक्षजः ॥ तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥

नारायणका मासमासका वर्णन, तुमने जो कुछ हमसे पूछा सो सब कहा, इस भागवत पुराणमें भगवान्की लीला अवतारसम्बन्धी कर्मोंका
यश गाया है ॥४५॥ गिरते, पड़ते, उठते, बैठते, विपत्तिके समय, छींकते विवशतासे ऊँचे स्वरसे "हरये नमः" जो पुरुष इस प्रकार कहता है,
वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है॥४६॥ जो पुरुष भगवान्का कीर्तन करता है अथवा उनके गुणोंको गाता है, तो अनन्त भगवान् उसके
चित्तमें प्रवेश करके सब पापोंको दूर कर देते हैं, जैसे सूर्यनारायण अंधकारको, पवन मेघोंको दूर करता है ॥४७॥ जिस वाणीसे भगवान्,

अधोक्षजकी सत्कथा नहीं गायी जाती उस वाणीको मिथ्या और विषयवाली समझना चाहिये, जिसमें भगवान्‌के नाम का गुणानुवाद हो, वही वाणी सत्य मंगलरूप और पवित्र करनेवाली है॥४८॥वही वाणी रमणीक और रुचिर नित्य नये-नये मनको महाउत्सवरूप मनुष्योंके शोक समुद्रको सुखानेवाली है, जिस वाणीसे उत्तमश्लोक भगवान्‌का यश गाया जाता है ॥ ४९ ॥ जिस वाणीमें चित्र विचित्र पद भी हो, और उत्तम रचना भी हो, परन्तु जगत्‌के पवित्र करनेवाला हरिका यश कुछ न हो, तो उस वाणीमें काकके तुल्य विषयी रमण करते हैं, हंसके समान साधुजान उस वाणीसे संतुष्ट नहीं होते। साधुजन उसी पवित्र वाणीमें रमण करते हैं, जिस वाणीमें अच्युत भगवान्‌का वर्णन है॥५०॥जिस वाणीमें श्लोक श्लोक विषे उत्तम पदरचना नहीं केवल हरियश और हरि नामका ही वर्णन है वह वाणी प्राणियोंके पापोंके

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ॥ तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥४९॥ न यद्वचश्चित्र पदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५० ॥ स वाग्विसर्गो जनताऽघसंप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥५१॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥५२॥ यशःश्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपः श्रुतादिषु ॥ अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥ ५३ ॥ अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च ॥ सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ ५४ ॥

समूहोंको नाश करनेवाली है, उस वाणीको निर्मलचित्तवाले सब सुनते हैं, गाते हैं और कहते हैं ॥५१॥ ब्रह्मका प्रकाश करनेवाला निर्मूल भी जो अच्युत भगवान्‌के भावसे रहित है वह किसी प्रकार शोभित नहीं होता, उत्तम कर्म भी ईश्वरके अर्थ विना अमंगल रूप है सो किसी प्रकार शोभित नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥ वर्णाश्रमके आचार, तप, वेदाध्ययन आदिमें बड़े परिश्रमसे केवल यश और ऐश्वर्य प्राप्त होता है परन्तु हरिके गुणका कथन और श्रवणादि करनेसे भगवान्‌के चरणकमलका नित्यप्रति स्मरण होता है ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदका स्मरण सदा अमंगलका हरनेवाला, मंगलका विस्तार करनेवाला और अन्तःकरणको शुद्ध करता है, परमात्मामें स्नेह

बढ़ाता है और ज्ञान विज्ञान सहित वैराग्यको देता है ॥ ९४ ॥ हे द्विजोत्तम ! आप बड़े भाग्यवान् हो, जो अखिल लोकोंके आत्मा भगवान् सर्वोत्तम, सर्वान्तर्यामी सर्वहितकारी नारायण देवको निरन्तर हृदयमें धारण करके सदा अखंड भावसे भजते रहते हो ॥ ९५ ॥ जब कि राजा परीक्षित् अन्न पानी त्यागकर गंगाके किनारे जा बैठे, उस समय बड़े-बड़े ऋषीश्वर मुनीश्वर श्रीमद्भागवतके सुननेको उस सभामें विद्यमान थे, वहां श्रीशुकदेवजीके मुखसे पहले मैंने जो कुछ सुना था वह आत्मतत्त्वका ज्ञान मुझको आपने स्मरण कराया,

यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् ॥ नारायणं देवमदेवमीशमजस्रभावा भजताऽऽविवेश्य ॥ ५५ ॥ अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्रात् ॥ प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥ ५६ ॥ एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ॥ माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥ ५७ ॥ य एवं श्रावयेन्नित्यं यामं क्षणमनन्यधीः ॥ श्रद्धावान्योऽनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः ॥ ५८ ॥

यह आपने बड़ी कृपादृष्टि की ॥ ९६ ॥ विप्रो ! जिनके सब कर्म और चरित्र वर्णन करनेके योग्य हैं उन वासुदेव भगवान्का कीर्तन और माहात्म्य सब अशुभोंका विनाश करनेवाला है सो मैंने आप लोगोंके सम्मुख वर्णन किया ॥९७॥ जो कोई पुरुष अनन्य बुद्धि होकर नित्य एक पहर,वा एक क्षण इस माहात्म्यको सुने * अथवा जो कोई पुरुष श्रद्धापूर्वक इसको सुनावे,वह प्राणी अपने आपको पवित्र करता है॥९८॥

---

* दृष्टान्त—परंतु ऐसी कथा नहीं सुननी चाहिये,जैसी, कथा एक पंडितजीने कही और बुढ़िया स्त्रीने सुनी ।एक पंडित किसी ठाकुरद्वारेमें कथा कहने थे और एक बुढ़िया भी कथा सुननेको जाया करती थी और वहां बैठकर बहुत रोती, पंडितजीने समझा कि यह बुढ़िया बड़ी प्रेमिन है, कुछ अधिक दक्षिणा चढ़ायेगी, जब कथा संपूर्ण होनेका दिन आया तो बुढ़िया नहीं आयी पंडितजीने कथामें कुछ विलंब भी किया परंतु बुढ़िया तब भी न आयी । अब कथा पूरी हो चुकी, पंडितजीने जाना कि बुढ़ियाको कुछ हो गया, नहीं तो बुढ़िया अवश्य आती । दूसरे दिन पंडितजीने कहा कि बुढ़ियाके घरको चलें, कुछ दक्षिणा प्राप्त हो जायगी । यह विचार उसके द्वारपर पहुंचे और जाकर पुकारा, बुढ़िया चरखा कात रही थी,बोली पंडितजी आओ । बैठ जाओ कैसे कृपा की पंडितजी बोले बुढ़िया कैसे है कल कथा भी समाप्त हो गयी और तू बड़ी प्रेमिन थी; फिर न आनेका क्या कारण ? तू तो घंटो तक कथामें बैठी रोया करती थी । तब बुढ़िया बोली क्या कथाको सुनकर थोड़े ही रोती थी । पंडितजी बोले कि, फिर क्यों रोती थी ? बुढ़िया बोली कि जैसा तुम्हारी पोथी बांधनेका वस्त्र है ऐसा ही मेरी लल्ली मोहनीके लालका पाजामा था सो उसको देखते ही मोहिनीके लाला मुझको याद आ जाते थे इसलिये रोती थी, पंडितजी सुनते ही सुन्न हो गये और उठकर सीधे अपने घरको चले गये ।

जो कोई पुरुष एकादशी वा द्वादशीके दिन इस महापुराण भागवतको सुने उसका आयुर्बल अधिक होता है और जो कोई निर्जलव्रत धारण करके एकाग्रचित्त हो इसका पाठ करे वह सब पापोंसे छूटकर निष्पाप हो जाता है ॥ ५९ ॥ पुष्कर, मथुरा, द्वारकामें वास करके एकाग्रचित्त हो जो इस संहिताको पढ़ेगा वह सब भयादिकोंसे छूट जायगा ॥६०॥ जो कोई इस महापुराणसंहिताको सुनाता है, कीर्त्तन करता है, उसको देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनुष्य और राजालोग ये सब मनोवांछित मनोरथको देते हैं ॥६१॥ द्विजवर्णोंको ऋग्वेद, यजुर्वेद-सामवेदके पढ़नेसे जो फल प्राप्त होता है और शहदकी नदी, घृतकी नदी, दूधकी नदी दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है वह सब

द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्य वान्भवेत् ॥ पठत्यनश्नन्प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥ ५९ ॥ पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् ॥ उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥ देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः ॥ यच्छन्ति कामान्गृणतः शृण्वतो यस्य कीर्तनात् ॥ ६१ ॥ ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोऽधीत्यानुविन्दते ॥ मधुकुल्या घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ॥ ६२ ॥ पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजाः ॥ प्रोक्तं भगवता यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ॥ वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात् ॥ ६४ ॥ कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ॥ इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसंगैः ॥ ६५ ॥ तमहमजमनन्तमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् ॥ द्युपतिभिरजशक्रशङ्कराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ॥ ६६ ॥

फल इस महापुराण संहिताके पढ़नेसे होता है ॥६२॥ हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष पवित्र होकर इस महापुराण संहिताको पढ़ते हैं, वे भगवान् वासुदेवके परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥ इस महापुराण संहिताको ब्राह्मण पढ़कर उत्तम बुद्धिको प्राप्त होते हैं, क्षत्रिय पढ़े तो उदय अस्ततक सर्वत्र भूमण्डलका राजा हो, वैश्य पढ़े तो निधिपति हो और शूद्र पढ़े तो सब पापोंसे छूट जाय ॥६४॥ कलिकालके मलके समूहोंका विध्वंस करनेवाले अखिलेश्वर वासुदेव भगवान् इस प्रकार और दूसरे शास्त्रोंमें वारंवार नहीं गाये गये और इस पुराणमें तो कथाओंके प्रसङ्ग प्रसंगमें पद पदके विषे अशेष मूर्ति भगवान्के ही चरित्र गाये गये हैं इसीसे इस पुराणका नाम महापुराण है ॥६५॥ जगतकी उत्पत्ति

पालन संहार करनेवाली जिनकी शक्ति है और ब्रह्मा, इंद्र, शिवादिक देवताओंको जिनकी स्तुति दुर्लभ है, ऐसे अजन्मा अनन्त आत्मतत्त्व अच्युत भगवान्‌को नमस्कार है ॥६६॥ वृद्धिको प्राप्त हुई प्रकृति आदि शक्तियोंसे जिसने अपने स्वरूप स्थावर, जंगम उत्पन्न किये हैं ऐसे सबमें व्यापक, देवताओंमें श्रेष्ठ, अनादि, ज्ञानमात्र स्वरूप भगवान्‌को मैं वारंवार प्रणाम करता हूँ ॥६७॥ अपने आत्मसुखसे ही सम्पूर्णचित्त होनेसे अन्य पदार्थोंमें भाव न रखनेवाले, कि जिन्होंने अपना मन नारायणकी सुन्दर लीलाओंमें आकर्षित हो जानेसे नारायणके तत्त्वका प्रकाशक यह पुराण संसारके उपकारके लिये अनुग्रह करके प्रकट किया है, उन सब जगतके पाप दूर करनेवाले व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी महाराजको प्रणाम करता हूँ ॥ ६८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशस्कन्धार्थनिरूपणं नाम द्वादशो-

उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्मन्युपरचितस्थिरजङ्गमालयाय ॥ भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने सुरऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६७ ॥ स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ॥ व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥६८॥ इति श्रीभाग० म० द्वा० द्वादशस्कन्धार्थ संग्रहो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ॥ ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥ पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयनान्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः ॥ यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनाम्भसां यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥ २ ॥

ऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–इस तेरह अध्यायमें, पूरण होत पुराण । संख्या सकल पुराणकी, बरणौं सहित प्रमाण ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र और मरुत देवता दिव्य स्तोत्रोंसे जिन भगवान्‌की स्तुति करते हैं और सांगोपांग पदक्रम उपनिषद् सहित वेदोंसे सामवेदके गाने वाले जिनका गान किया करते हैं और ध्यानमें स्थित होकर मन लगाकर योगी जन जिनको देखा करते हैं, देवता असुरगण जिनका आदि अंत नहीं जान सकते ऐसे परमदेवको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥ पीठपर भ्रमते श्रेष्ठ मन्दराचलकी शिलाओंके अग्रसे गात्र खुजानेके समान निद्राका अनुभव करते कच्छपरूप भगवान्‌के श्वासोंकी पवन तुम सबोंकी रक्षा करे, जिस पवन संस्कारके लेश अनुव-

नके वशसे समुद्रके क्षोभके मिषकरके निरंतर आना जाना बन्द नहीं होता, नित्य घटता बढ़ता रहता है, आजतक विश्राम नहीं लेता, वह तुम्हारी रक्षा करे ❋ ॥२॥ पुराणोंकी संख्याका निरूपण और श्रीभागवतका विषय, प्रयोजन, दान और दानका माहात्म्य और पाठादिकोंका माहात्म्य अब सावधान होकर हमसे सुनिये ॥ ३ ॥ ब्रह्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १०००० है, पद्मपुराणके श्लोंकी संख्या पचपन सहस्र ५५००० है, विष्णुपुराणके श्लोकोंकी संख्या तेईस सहस्र २३००० है, शिवपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौबीस सहस्र २४००० है ॥ ४ ॥ श्रीमद्भागवतके श्लोकोंकी संख्या अठारह सहस्र १८००० है, नारदपुराणके श्लोकोंकी संख्या पच्चीस

पुराणसङ्ख्यासम्भूतिमस्यवाच्यप्रयोजने ॥ दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥ ३ ॥ ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च ॥ श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥ ४ ॥ दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशतिः ॥ मार्कण्डं नव वाह्नं तु दशपञ्चचतुः शतम् ॥ ५ ॥ चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च ॥ दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशैव तु ॥ ६ ॥ चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम् ॥ स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥ कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दशम् ॥ एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ॥ ८ ॥

सहस्र २५००० है, मार्कण्डेयपुराणके श्लोकोंकी संख्या नव सहस्र ९००० है, अग्निपुराणके श्लोकोंकी संख्या पन्द्रह सहस्र चारसौ १५४०० हैं ॥५॥ भविष्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र पांचसौ १४५०० है, ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्लोकोंकी संख्या अठाहर सहस्र १८००० है, लिंगपुराणके श्लोकोंकी संख्या ग्यारह सहस्र ११००० है ॥ ६ ॥ वाराहपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौबीस सहस्र २४००० है, स्कन्द पुराणके श्लोकोंकी संख्या इक्यासी सहस्र एकसौ ८११०० है, वामनपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १०००० है ॥ ७ ॥ कूर्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या सत्रह सहस्र १७००० है, मत्स्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र १४००० है, गरुड़पुराणके श्लोकोंकी

* शंका—श्रीमद्भागवतकी समाप्तिमें सूतजीने अपने गुरुको और सब देवताओं को ब्रह्मा विष्णु भगवान्के सब अवतारोंको इन सबको त्यागकर कच्छप भगवान्को नमस्कार क्यों किया ?

उत्तर—जैसे कच्छप भगवान्की कृपासे समुद्रको मथकर देवता लोगोंने अमृत पाया उस अमृतको पाकर देवताओंका मनोरथ सिद्ध हुआ,ऐसे ही सूतजी कूर्मका स्मरण करके समुद्ररूप भागवतके पार उतर गये, इसलिये सूतजीनें अपने नेत्रोंसे प्रेमके आंसू बहाते हुए सबको त्यागकर कूर्मभगवान्को नमस्कार किया और भगवान्के अवतारोंमें कुछ भेद नहीं है ?

संख्या उन्नीस सहस्र १९००० है, ब्रह्मांडपुराणकी संख्या बारह सहस्र १२००० है ॥८॥ इस प्रकार अठारह पुराणके श्लोकोंकी संख्याका प्रमाण चार लाख ४००००० श्लोकका है। यह प्रमाण कवीश्वरोंने कहा है, जिसमें भागवत अठारह सहस्र १८००० है॥९॥ अपने नाभिकमलमें विराजते हुए संसारमें भयभीत ब्रह्माजीको भागवत पुराण भगवान्ने सुनाया था ॥ १० ॥ इस श्रीमद्भागवत महापुराणके आदि मध्य और अन्तमें संपूर्ण वैराग्यके ही उपाख्यान कहे हैं, इस पुराणने हरिकी लीला और कथाओंके समूह अमृतसे साधुओंको और देवताओंको आनंद कर रखा है, ऐसा आनंददायक और अघघातक यह श्रीमद्भागवत पुराण ही है ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण वेदांतका सारभूत, ईश्वर जीवकी एकताको दर्शानेवाला जो यह अद्वितीय पदार्थ (परब्रह्म) है सो इस महापुराणका विषय है और मुख्य प्रयोजन इस महापुरा-

एवं पुराणसन्दोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ॥ तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥ ९ ॥ इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥ स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्संप्रकाशितम् ॥ १० ॥ आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् ॥ हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ॥ ११ ॥ सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ॥ वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ १२ ॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ॥ ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥ राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ॥ यावद्भागवतं नैव श्रूयतेऽमृतसागरम् ॥ १४ ॥ सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ॥ तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥ निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा ॥ वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥

णका केवल कैवल्य अर्थात् मोक्ष है ॥१२॥ भादों सुदी पूर्णमासीके दिन सोनेके सिंहासन सहित जो मनुष्य इस महापुराण श्रीमद्भागवतका दान करे वह परमोत्तम गतिको पाता है ॥ १३ ॥ उसी समयतक और दूसरे पुराण महात्मा पुरुषोंकी मण्डलीमें शोभा पाते हैं जिस समयतक अमृतके समुद्ररूप यह 'श्रीमद्भागवत' महापुराणके सुननेमें नहीं आता ॥१४॥ सब उपनिषद् और वेदान्तका सार श्रीमद्भागवतको माना है इसलिये इस पुराण अमृतरससे जो प्राणी तृप्त हो रहे हैं उनकी प्रीति कभी और ठौर नहीं ॥ १५ ॥ जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ मानी हैं,देवताओंमें अच्युत भगवान् सर्वसुखदानी हैं,वैष्णवोंमें महादेव परमज्ञानी हैं ऐसे ही पुराणोंमें श्रीमद्भागवत बखाना है॥१६॥

हे ब्राह्मणो ! जैसे संपूर्ण क्षेत्रोंमें परमोत्तम काशी है ऐसे ही सब पुराणोंमें अत्युत्तम श्रीमद्भागवत पुराण है ॥ १७ ॥ परमहंसोंका परम प्रिय निर्मल और श्रेष्ठ ज्ञान जिसमें गाया है और निर्दोष परब्रह्मका निरूपण करके दर्शाया है, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको एकत्र करके भगवत्तत्त्व जिसमें झलकाया है ऐसे श्रीमद्भागवत पुराणको जो कोई भक्तजन भक्तिसे सुने वा पढ़े और हितचित्तसे विचारे, वह इस संसार सागरसे पार उतरकर परमधामको जाता है ॥१८॥ प्रथम विष्णु भगवान्‌ने इस अतुल श्रीमद्भागवतरूप ज्ञानदीपको करुणा करके ब्रह्माजीके सम्मुख प्रकाशित किया, ब्रह्माजीने ब्रह्मरूप धारण करके नारदजीके आगे प्रकाशित किया, फिर नारदरूप होकर व्यासजीके निकट

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ॥ तथा पुराणव्रतानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्विपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ १८ ॥ कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥ योगीन्द्राय तदात्मनाऽथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥ नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे ॥ य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥ २० ॥ योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ॥ संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥

प्रकाशित किया, फिर वेदव्यासरूपसे परमयोगेश्वर श्रीशुकदेवजीके समीप प्रकाशित किया, अन्तमें श्रीशुकदेवरूप धरकर करुणानिधान भगवान्‌ने करुणा करके विष्णुरात राजा परीक्षित्‌के सामने प्रकाशित किया, उन शुद्धसत्त्व, निर्मल सदा आनन्दमय निरूपाधि, सर्वोत्तम, मोक्षरूप परब्रह्म वासुदेव भगवान्‌का हम ध्यान करते हैं ॥१९॥ सर्वसाक्षी वासुदेव भगवान्‌ने जो अनुग्रह करके यह श्रीमद्भागवत पुराण संसारसे मुक्ति पानेवाले ब्रह्माजीके आगे वर्णन किया उन विष्णु भगवान्‌को बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥ जिन्होंने संसाररूप सर्पसे डँसे हुए विष्णुरात राजा परीक्षित्‌को छुड़ाया, उन ब्रह्मरूपयोगिराज श्रीशुकदेवजीको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥

हे योगेश ! हे प्रभो जिस प्रकार जन्मजन्मान्तरमें आपके कोमल अमल चरणकमलकी भक्ति हो ऐसा कोई उपाय कहो, क्योंकि हमारे ऊपर दया करने और कष्ट हरनेवाले आपही नाथ हो ॥ २२ ॥ जिन श्रीकृष्णभगवान्के नामका संकीर्तन सब पापोंका नाशक है और जिनको नमस्कार करनेसे सम्पूर्ण विघ्नोंकी शांति हो जाती है उन सर्वोत्तम सर्वान्तर्यामी भगवान्को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥२३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां श्रीयुतशालग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां द्वादशस्कन्धे पुराणसंख्यादानमाहात्म्य वर्णनं नाम संक्षेपभागवतवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा–व्यासपुत्र शुकदेवको, विनवत वारंवार । जिनकी कृपाकटाक्षसे,

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ॥ तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥ २२ ॥ नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां द्वादशस्कन्धे पुराणसंख्यादानमाहात्म्यादिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ हरिः ॐ ॥ समाप्तोऽयं द्वादशस्कन्धः ॥ १२ ॥ समाप्तं चेदं पुराणम् ॥

मिटत अनेक विकार ॥ १ ॥ संपूर्ण भई भागवत गुरुप्रसादसे आज । पढ़े सुनेते जासुके, सिद्ध होत सब काज ॥ २ ॥ हरिलीलामृत जानिकै, जहँ तहँ किय विस्तार । तामें दोष न दीजिये, सज्जन सकल उदार ॥ ३ ॥ यदपि मूलभर रचनको, निजमन कियो विचार । वर्णत वर्णत बढ़ गयो, कृष्णचरित्र अपार ॥४॥ होत न चित्तमें तृप्तता, निशिदिन यही विचार । बढ़े कृष्णलीला अधिक, मुद मंगल दातार ॥५॥ शशि शशिधरमुख रस धरणि, संवत विक्रम व्याप्त । ज्येष्ठ शुक्ल द्वितिको भयो, शुकनिधि ग्रन्थसमाप्त ॥ ६ ॥ मैं अजान जानत नहीं, गद्य पद्यको सार । पंडितजन जन जान मोहिं, लीजो सकल सुधार ॥ ७ ॥

विदुषामभ्यर्थना

अत्रास्माकं मुद्रणालये ऋगादयो वेदा उपनिषदो वेदान्तग्रन्था महाभारतादीतिहासाः श्रीमद्भागवतादिमहापुराणोपपुराणानि धर्मशास्त्र-कर्मकाण्ड-व्याकरण-न्याय-योग-सांख्य-मीमांसादिशास्त्रीयग्रन्थाः काव्य-नाटक-चम्पू-प्रभृतयो ग्रन्थाः सहस्रनामाद्यनेकस्तोत्रग्रन्था विविधभाषाग्रन्थाश्च सीसकोत्तममहल्लघ्वक्षरैर्मनोहरं मुद्रिता योग्यमूल्येन क्रय्याः सन्ति, तांश्च ग्राहका यथापुस्तकसूचीपत्रं मूल्यप्रेषणेन प्राप्नुयुः।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष / फैक्स-०२२-२३८५७४५६.
Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डिंग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
ज्योति बिल्डिंग के पीछे,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट, पुणे - ४११०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई